॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवत उत्तरार्द्धकी विषयसूची

नवमस्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२४	विदर्भके तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति और बलराम कृष्णपर्यन्त अनेकों वंशों की कथा	२०८

दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ

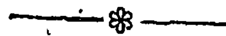
दशमस्कन्ध–उत्तरार्द्ध

एकादशस्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ

द्वादशस्कन्ध

॥ इति विषयसूची समाप्त ॥



मिलने का पता—

सनातनधर्म यन्त्रालय,

मुरादाबाद.

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥





अथ अष्टमस्कन्धप्रारम्भः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । राजोवाच । स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः । यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः ॥१॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः । गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भगवान् विश्वभावनः । कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥३॥ ऋषिरुवाच । मनवोऽस्मिन् व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः । आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥४॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः । धर्मज्ञानो-

---

॥ श्रीः ॥ राजाने कहा कि–हे गुरो ! जिसमें मरीचि आदि जगत्के रचने वाले प्रजापतियोंकी, मनुकन्याओंके विषैं पुत्र पौत्र आदि सृष्टि हुई है ऐसा यह स्वायम्भुव मनुका वंश आपसे मैंने विस्तारके साथ सुना अब और मनुओंका भी आप हमसे वर्णन करें ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिस जिस मन्वन्तरमें परमपूज्य श्रीहरिके अवतारोंके चरित्र, कवि, वर्णन करते हैं वह मन्वन्तर, सुननेकी इच्छा करने वाले हमसे आप कहिये ॥ २ ॥ और हे ब्रह्मन् ! पहिले बीते हुए, इस समय विद्यमान तथा आगेको होने वाले मन्वन्तरोंमें विश्वपालक भगवान्ने जो चरित्र करे हैं, जो करते हैं और जो करेंगे वह सब हमसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस कल्पमें स्वायम्भुव आदि छः मनु होगये हैं, उनमेंसे जिसमें देवादिकोंकी उत्पत्ति हुई है उस पहिले स्वायम्भुव मनुका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ उस स्वायम्भुव मनुकी आकूति और देवहूति कन्याके विषैं भगवान् श्रीहरिने क्रमसे

पदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥ कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् । आख्यास्ये भगवान् यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६ ॥ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः। विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् । तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥ मनुरुवाच । येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् । यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किंचिज्जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १० ॥ यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति । तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥ न यस्याद्यन्तौ मध्यं स्वः परो नान्तरं बहिः । विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥ स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः । धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह

धर्मोपदेश करनेके निमित्त यज्ञरूपसे और ज्ञानोपदेश करनेके निमित्त कपिलरूपसे पुत्र होकर अवतार धारण करा ॥ ५ ॥ उनमेंसे हे कुरुश्रेष्ठ ! भगवान् कपिलजीने जो किया सो मैंने तुमसे पहिले ही वर्णन करा है अब भगवान् यज्ञरूप परमेश्वरने जो चरित्र करा सो मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ६ ॥ हे राजन् ! काम भोगोंमें विरक्त हुए शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु, राज्यको त्याग कर तप करनेके निमित्त, स्त्रीके सहित वनको चले गये ॥ ७ ॥ और हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! तहाँ सुनन्दा नदीके तट पर सौ वर्ष पर्यन्त एक चरणसे भूमि पर खड़े होकर घोर दुष्कर तप करते हुए, अनुभव करी हुई वस्तुके विषयमें 'जैसे कोई सोतेमें वर्रावे तैसे' यह कहा ॥ ८ ॥ मनुने कहा कि-अहो ! जिससे यह विश्व सचेतन होता है, परन्तु यह विश्व जिसको सचेतन नहीं कर सकता है, और इस विश्वके शयन करने पर सुषुप्ति अवस्थामें जो साक्षीरूपसे जागता रहता है, उसको यह लोक नहीं जानता है और वह इस लोकको जानता है यह कैसे आश्चर्यकी बात है ? ॥ ९ ॥ अब उसका ईश्वरत्व दिखा कर लोकोंके हितका उपदेश करते हैं कि-हे प्राणियो ! ब्रह्माण्डमें जो कुछ चेतन अचेतन पदार्थ है वह सब ईश्वरसे व्याप्त हैं, इस कारण ईश्वरने ही जो कुछ धन आदि दिया हो उससे ही तू अपने भोगोंको भोग, दूसरे किसीके भी धनकी आकाङ्क्षा न कर ॥ १० ॥ कहो कि—यदि परमेश्वर सब विश्वमें व्याप रहा है तो चक्षुइन्द्रियके द्वारा वह दीखता क्यों नहीं है ! तहाँ कहते हैं कि-हे प्राणियो ! जिस देखने वाले द्रष्टाको सबकी चक्षु इन्द्रियें नहीं देखती हैं, क्यों कि-जो नेत्र आदिकोंका अगोचर है और जो कभी भी नष्ट नहीं होता है उस सर्वान्तर्यामी निःसङ्ग परमेश्वरका तुम भजन करो ॥ ११ ॥ अब उस ईश्वरके स्वरूपकी नित्यताका वर्णन करते हैं कि-हे प्राणियो ! उत्पत्ति पालन, नाश, अपना पराया, भीतर और बाहर, यह सब जिसके नहीं हैं, जिससे विश्वकी उत्पत्ति, पालन लय होते हैं और विश्व जिसका रूप है वह सत्यस्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥ हे प्राणियो ! वह ईश्वर जन्म आदि विकाररहित त्रिकालमें एक रस, स्वयं प्रकाश और अनादि होनेके कारण यद्यपि यह विश्व उस परमेश्वरका स्वरूप है और यद्यपि वह अनेकों नामों वाला है तथा वह

आस्ते ॥ १३ ॥ अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्ते कर्महेतवे । ईहमानो हि पुरुषः प्रायोनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥ ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते । आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् । नॄन् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच । इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् । दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन् क्षुधा ॥ १७ ॥ तांस्तथाऽवसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः । यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासत्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् । द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद् देवाश्च तुषितादयः । ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् । तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः । अन्वशिक्षन् व्रतं तस्य कौमारे ब्रह्मचारिणः

विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय अपनी मायाके द्वारा करता है और नित्यसिद्ध विद्याके द्वारा उस मायाको भी त्याग कर वह कर्म रहित ही रहता है ॥ १३ ॥ इस कारण ऋषि भी मोक्षके निमित्त पहिले कर्म करते हैं, क्यों कि-निष्काम कर्म करने वाला पुरुष ही, प्रायः निरीह (किसी प्रकारकी इच्छा न करने वाला) होता है १४ हे प्राणियो ! भगवान् ईश्वर कर्म करते हैं परन्तु आत्मलाभसे पूर्ण मनोरथ होनेके कारण उन कर्मोंमें आसक्त नहीं होते हैं, इतना ही नहीं किन्तु उनके अनुयायी होकर बरताव करने वाले पुरुष भी, कर्मोंमें आसक्त नहीं होते हैं ॥१५॥ हे प्राणियो ! जो सकल धर्मोंको चलाने वाले होनेके कारण, अपने आप उनका आचरण करके मनुष्योंको शिक्षा देनेके निमित्त, अपने मनुष्य अवतार-रूप मार्गका उत्तम प्रकारसे अवलम्बन करके कर्मोंका आचरण करते हैं, जो ज्ञानी होनेके कारण अहंकाररहित हैं, जो परिपूर्ण होनेके कारण निष्काम और स्वतन्त्र हैं उन परमेश्वरकी मैं शरण जाता हूँ ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित ! एकाग्र अन्तःकरण वाले होकर भी इस प्रकार मन्त्ररूप उपनिषद्का पाठ करते हुए मनुको देख कर, यह कोई भी स्वप्नमें बरबराने वाले पुरुषकी समान विक्षिप्त है; ऐसा मानने वाले असुर और राक्षस, क्षुधासे पीड़ित होकर उनको भक्षण करनेके निमित्त शीघ्रतासे उनके समीप आये ॥ १७ ॥ इतने ही में मनुको भक्षण करनेका निश्चय करे हुए उन असुर आदिकोंको देख कर सर्वसाक्षी यज्ञ नाम वाले श्रीहरिने अपने याम नामवाले पुत्ररूप देवताओंके साथ तहाँ आकर उनका वध करा और स्वर्गका पालन करा अर्थात् वह यज्ञरूपी श्रीहरि आप ही इन्द्र बने ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अग्निका स्वारोचिष नाम वाला पुत्र दूसरा मनु हुआ और द्युमान्, सुषेण तथा सुरोचिष्मान् आदि उनके पुत्र हुए ॥ १९ ॥ उस मन्वन्तरमें यज्ञका पुत्र रोचन इंद्र हुआ, तथा अन्य यज्ञके पुत्र तुषित आदि देवता हुए, ऊर्जस्तम्भ आदि सात ब्रह्मज्ञानी सप्तऋषि हुए ॥२०॥ तदनन्तर वेदशिरा नामक ऋषिकी तुषिता नाम वाली स्त्रीके विषें विभु नामसे प्रसिद्ध भगवान्का अवतार हुआ ॥ २१ ॥ हे राजन् ! यम

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः । पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥ वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः । सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः । सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् । भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः । पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः । ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ २८ ॥ देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप । नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान् हरिण्यां हरिमेधसः । हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच । बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् । हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥ तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् । यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान् गीयते हरिः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच । परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोप-

---

नियम आदि साधनों वाले अट्ठासी सहस्र (८८०००) मुनियोंने, कुमार अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण करने वाले उन विभुके आचरणरूप व्रतकी शिक्षा ग्रहण करी ।२२। हे राजन् ! प्रियव्रतका उत्तम नाम वाला पुत्र तीसरा मनु हुआ और पवन सृञ्जय तथा यज्ञहोत्र आदि उसके पुत्र हुए ॥ २३ ॥ तथा वशिष्ठके पुत्र प्रमद आदि सप्त-ऋषि हुए, सत्य वेदश्रुत और भद्र नाम वाले देवता हुए और सत्यजित् नाम वाला इन्द्र हुआ ॥ २४ ॥ तैसे ही धर्मकी सूनृता नाम वाली स्त्रीके विषैं, भगवान् पुरुषोत्तम सत्यसेन नामसे प्रसिद्ध होकर सत्यव्रतोंके साथ अवतीर्ण हुए ॥ २५ ॥ और इंद्रके साथ मित्रता करके उन्होंने, मिथ्या बोलना ही जिनका व्रत है, जो स्वभावसे दुष्ट हैं और जो प्राणीमात्रसे द्रोह करने वाले हैं ऐसे उन यक्ष राक्षस नामक भूतगणोंका वध करा ॥ २६ ॥ तदनन्तर इस उत्तम नाम वाले तीसरे मनुका जो तामस नाम वाला भ्राता था वह चौथा मनु हुआ, उसके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दश पुत्र हुए ॥ २७ ॥ तथा सत्यक, हरि और वीर नाम वाले देवता हुए और त्रिशिख नाम वाला इन्द्र हुआ और उस तामस मन्वन्तरमें ज्योतिर्धाम आदि सात ऋषि हुए ॥ २८ ॥ तथा हे राजन् ! विधृतिके पुत्र और भी वैधृति नाम वाले देवता उस समय हुए और उन्होंने कालवश नष्ट हुए वेदोंको अपने तेजसे धारण करा ॥ २९ ॥ और उस ही मन्वन्तरमें हरिमेधा नाम वाले ऋषिसे हरिणी नाम वाली स्त्रीके विषैं भगवान्ने 'हरि' नामसे प्रसिद्ध अवतार धारण करके ग्राहसे गजराजको छुड़ाया ॥३०॥ राजाने कहा, कि-हे व्यासपुत्र ! ग्राहसे ग्रसे हुए गजराजको श्रीहरिने किस प्रकार छुड़ाया, यह हम आपसे सुननेकी इच्छा करते है ॥ ३१ ॥ क्यों कि-जहाँ जहाँ श्रेष्ठ कीर्त्ति भगवान् श्रीहरिका गान होता है, वह कथा सकल कथाओंमें परम पुण्यरूप, धनकी प्राप्ति कराने वाली, इष्ट फल देने वाली और मोक्ष भी देने वाली है ॥ ३२ ॥ सूतजीने कहा कि-हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार अन्न जलको छोड़ प्राण त्यागनेका निश्चय करके बैठे हुए राजा परीक्षितने, व्यासपुत्र

विष्टेन कथासु चोदितः । उवाच विप्राः प्रतिनंद्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे मन्वंतरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच । आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इव विश्रुतः । क्षीरोदेनावृतः श्रीमान् योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् । दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः ॥ २ ॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः । नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानांघ्रिः समन्तात्पय ऊर्मिभिः । करोतिश्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥४॥ सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः । किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥५॥ यत्र संगीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया । अभिगर्जंति हरयः श्लाघिनः परशंकया ॥६॥ नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः । चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः । देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः॥८ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः । उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम्॥९

शुकदेवजीको, प्रश्न करके भगवान्की कथा कहनेमें प्रवृत्त करा तब उन्होंने भी राजाकी प्रशंसा करके उस सभामें सकल ऋषियोंके सुनते हुए बड़े आनन्दसे उस कथाके वर्णन करनेका प्रारंभ करा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टमस्कन्धमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ * छ

श्री शुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! त्रिकूट नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ पर्वत है वह क्षीरसमुद्रसे घिरा हुआ रत्न आदि समृद्धियोंकी शोभासे युक्त,दशसहस्र योजन ऊँचा और चारों ओरसे भी उतना ही दशसहस्र योजन फैला हुआ है और चाँदी के लोहेके तथा सुवर्णके ऐसे तीन शिखरोंसे क्षीरसमुद्र, दशों दिशा और आकाश को प्रकाशित कररहा है ॥ १ ॥ २ ॥ तैसे ही वह रत्न और धातुओंसे चित्र विचित्र होकर, नानाप्रकारके लता वृक्षोंके झुंडोंसे युक्त और शिखरोंसे तथा झरनोंके जलके प्रवाहके द्वारा सकल दिशाओंको शोभा देरहा है ॥ ३ ॥ तथा उस पर्वतके मूलभाग (जड़) के चारों ओर उत्पन्न होने वाली क्षीरसमुद्रकी तरङ्गोंसे धुलनेके कारण हरे रङ्गकी मरकतमणियोंसे तहाँकी भूमिको श्यामल कर रहा है ॥ ४ ॥ उस पर्वत की गुफाओंमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, महोरग, किन्नर और अप्सराओं के समूह क्रीड़ा करते हैं ॥ ५ ॥ उस पर्वतके ऊपर किन्नर आदिकोंके गानेके बड़े भारी शब्दसे जहाँ गुहा गुञ्जारती रहती हैं उधरको मुख करके अपनी प्रशंसा करने वाले सिंह, उस शब्दके सहन न होनेके कारण 'क्या यहाँ कोई दूसरा सिंह है ?' ऐसा सन्देह करके दहाड़ते हैं ॥६॥ हे राजन् ! वहपर्वत नानाप्रकारके वनके पशुओं से भरीहुई गुहाओंसे भूषित और चित्र विचित्र वृक्षोंसे युक्त देवताओंके क्रीड़ा करने के वनोंमें मधुर शब्द करने वाले पक्षियोंसे युक्त है ॥ ७ ॥ तथा वह निर्मल जलभरी नदियें और सरोवरोंसे युक्त है,जिनमें रत्नोंकी समान बालुका है ऐसे नदीके पुलिनों से युक्त और देवाङ्गनाओंके स्नान करनेसे उत्पन्न हुई अति उग्र सुगन्धिसे बसे हुए

सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः । मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचंपकैः ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रै राम्रातकैरपि । क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥११॥ मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः । अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः १२ पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः । द्राक्षेक्षुरंभाजंबूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः १३ बिल्वैः कपित्थैर्जंबीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः । तस्मिन् सरः सुविपुलं लसत्कांचनपंकजम् ॥ १४ ॥ कुमुदोत्पलकल्हारशतपत्रश्रियोर्जितम् । मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥ १५ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि । जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥ मत्स्यकच्छपसञ्चारचलत्पद्मरजः पयः । कदम्बवेतसनलनीपवंजुलकैर्वृतम् ॥ १८ ॥ कुन्दैःकुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेंगुदैः । कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १८ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः । शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १९ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् । सकण्टकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन् वनस्पतीन् ॥ यद्गंधमात्राद्धरयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाश्च खड्गाः । महोरगाश्चापि भयाद्

जल तथा पवनोंसे युक्त है ॥ ८ ॥ उस पर्वतके ऊपर एक ओर ऐश्वर्यवान् महात्मा वरुणका ऋतुमत् नाम वाला एक बगीचा है और वह निरन्तर पुष्प फलोंसे युक्त रहने वाले दिव्य वृक्षोंसे सब ओर शोभायमान है और देवाङ्गनाओंके क्रीड़ा करने का स्थान है, तथा वह पर्वत मन्दार, पारिजात, पाटल, अशोक, चम्पक ॥ ९ ॥१०॥ एक प्रकारके आम, प्रियाल, पनस, आम्र, आम्रातक, सुपारी, नारियल, खजूर, बिजौरा, महुआ, साल, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, रीठ, गूलड़, पिलखन, बड़, ढाक, चन्दन ॥ ११ ॥ १२ ॥ पिचुमन्द, कोविदार, सरल, देवदारु, दाख, ईख, केला, जामुन, बेर, बहेड़े, हर्ड़, आँवले, बेल, कैथ, जंबीरी और भिलावा आदि वृक्षोंसे भरा हुआ है और उस पर्वतके ऊपर एक बड़ा चौड़ा सरोवर है, उसमें सुवर्णके कमल खिले हुए हैं॥१३॥१४॥श्वेत कमल नील कमल, सन्ध्याके समय खिलने वाले श्वेत-कमल और साधारण कमलोंकी शोभासे अतिसुन्दर है मदमत्त भ्रमरोंसे और शब्द करने वाले पक्षियोंसे वह गुञ्जार रहा है ॥१५॥ हंस, कारण्डव, चक्रवाक और सारस पक्षियोंसे वह अत्यन्त भरा हुआ है जलमुरग, पपहिया, और जलकाकोंके समूहोंसे वह शब्दायमान होरहा है ॥१६॥ मच्छ कच्छोंके इधर उधरको फिरनेसे चलायमान हुए कमलोंके परागोंसे उसका जल मिला हुआ है, कदम्ब, बेत, नल, अशोक और स्थलपद्म (गुलाब आदि) इन वृक्षोंसे घिरा हुआ है ॥१७॥ कुन्द, कुरबक, अशोक, शिरस, कुटज, हिंगोट, कुब्जक, पीलीजुही, नाग, पुन्नाग, जुही, मोगरा शतपत्र और बटमोगरा आदि पुष्पोंकी बेलोंसे तथा सदा फल पुष्पों युक्त रहने वाले और तटके वृक्षोंसे वह अत्यन्त शोभित है ॥ १८॥१९ ॥ ऐसे उस चित्रकूट पर्वतके वनमें रहने वाला, गजोंके समूहोंका स्वामी एक गजराज, कि-जिसकी केवल गन्धसे ही सिंह, बड़े २ हाथी, व्याघ्र आदि वनके हिंसक जीव, सर्प, हरिण, गैंड़े, बड़े २ साँप, गोरे और काले शरभ और चमरी नामक वनकी गौ यह सब, भयभीत हो-

द्रवन्ति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च । अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥२२॥ स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः । गिरिं गरिम्णा परितः प्रकंपयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३ ॥ सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः । वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ॥ २४ ॥ विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं हेमारविंदोत्पलरेणुवासितम् । पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन् गतक्लमः ॥ २५ ॥ स्वपुष्करेणोद्धृतसीकराम्बुभिर्निपाययन् संस्नपयन्यथा गृही । घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २६ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् । यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा । विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २८ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्ष-

कर भागते हैं, जिसके अनुग्रहसे, भेड़िये, शूकर भैंसे, रीछ, सई, गोपुच्छ नामक वानर, श्वान, मर्कट, हरिण, खरगोश आदि छोटे २ प्राणी, हथिकी ओटमें निर्भय हो कर विचरते हैं, जो अपनी धाँगमेंके हाथियोंसे और हथनियोंसे घिरा हुआ है, जिस के पीछे २ मद टपकाने वाले पाठे चले आरहे हैं, जो मद भक्षण करने वाले भ्रमरोंके समूहोंसे अत्यन्त सेवन करा हुआ है और जिसके नेत्र मदसे धुँदले होरहे हैं वह हथिनियोंसहित विचरनेवाला गजराज, सूर्यके तापसे संतप्त होकर पिलासे हाथियों के समूहोंसे घिरा हुआ. कमलोंके परागसे व्याप्त सरोवरमें लग कर आने वाले वायु को सूँघता २ अपने गारीपनसे चलतेमें चारों ओर पर्वतको बारम्बार कम्पायमान करता हुआ, खोकले बाँस, ठास बाँस, काँटोंके वृक्ष, लताओंके झाड़ और वनस्पतियों को कड़ाकड़ तोड़ता हुआ उस सरोवरके समीप बड़ी शीघ्रतासे आपहुँचा २०॥२४ उसने तदनन्तर उस सरोवरमें घुस कर अपने शरीरको जलोंसे स्नान कराते कराते श्रमरहित होने पर, पीते और नीलकमलोंके परागोंकी सुगन्धिसे युक्त, अमृतकी समान मधुर और सूँडके अग्रभागसे ऊपरको उछाले हुए जलको चित्त भर कर पिया ॥ २५ ॥ तदनन्तर घर आदिमें आसक्त हुए पुरुषकी समान भगवान्की माया से मोहित हुआ वह दुर्मद और दयालु गजराज अपनी सूँडके अग्रभागसे बाहरको निकाले हुए जलकी बिंदुओंसे हथनियों और पाठोंकी पिलासको दूर करता हुआ उनको स्नान करा रहा था सो उसने 'मुझे कौन संकट घेरे लेता है' सो नहीं जाना२६ इतने हीमें हे राजन् ! दैवके प्रेरणा करेहुए किसी एक बलवान् नाकेने क्रोधके साथ उसका चरण पकड़ लिया ऐसे दैववश संकटमें पड़ा हुआ वह महाबली गजराज, उस संकटसे अपने तो छुड़ानेके निमित्त यथाशक्ति उद्योग करने लगा२७उस समय महाबली नाके करके बलपूर्वक भीतरको खेंचे जाते हुए और अत्यन्त वेवश हुए उस गजराजको देखकर मनमें दुःखित हुई हथनियें केवलदीनबुद्धि होकर चिंघारने लगीं और उसके साथके अन्य हाथियोंमेंसे भी उसको कोई नहीं छुटा सका २८

तोरंतरतो बहिर्मिथः । समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः । विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥३०॥ इत्थं गजेन्द्रः स यदाप संकटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया । अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३१ ॥ न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् । ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३२ ॥ यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् । भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते म० अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेंद्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः २

श्रीशुक उवाच । एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि । जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥ गजेन्द्र उवाच । नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् । पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं

हे भूपते ! इस प्रकार उन महाबली नाके और गजराजका परस्पर युद्ध होतेहुए और एकको दूसरेके भीतर बाहरको खैंचते हुए सहस्र (१०००) वर्ष बीतगये तब देवताओंने भी वह बड़ा आश्चर्य माना॥२९सहस्र वर्षके अनन्तर भी बहुत काल तक जलमें खैंचे जानेके कारण खेद पाने वाले उस गजराजको, भोजन न मिलनेके कारण मन का उत्साह,शरीरकी सामर्थ्य और इंद्रियोंका बल अत्यन्त क्षीण होने लगा और उस जलचारी नाकेकी उत्साहशक्ति,शरीरकी शक्ति और इंद्रियबल जलमें आहार मिलते रहनेके कारण बढ़ने लगा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार देवगतिसे नाकेके वशमें पड़ कर, अपनेको छुटानेमें असमर्थ हुआ वह देहधारी गजराज जब प्राणोंका संकट (प्राण बचनेमें भी सन्देह) हुआ तब,अपने छूटनेके निमित्त बहुत कालतक विचार करते करते उसको एकाएकी ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि-॥ ३१ ॥ मैं नाकेरूप दैवके पाशसे बँधा हुआ हूँ इस कारण मुझ विपत्तिमें पड़े हुएको, इस पाशमेंसे छुटानेको यह जातिके हाथी समर्थ नहीं हैं और मैं भी समर्थ नहीं हूँ फिर यह हथनियें तो कहाँसे समर्थ होंगी ? इस कारण अब मैं ब्रह्मादिकोंके भी आश्रय उन प्रसिद्ध परमेश्वरकी ही शरण जाता हूँ ॥ ३२ ॥ क्योंकि-असह्य वेग वाले, चारों ओरसे आतेहुए और महाबली मृत्युरूप बड़े भारी सर्पसे अत्यन्त भयभीत होकर शरणमें आये हुए प्राणीकी जो कोई ईश्वर रक्षा करता है और जिसके भयसे प्राणियोंको मारनेके निमित्त मृत्यु भी जिधर तिधरको भागता है उसकी ही हम शरण हैं ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम अस्कन्धमें द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ❀

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित ! इस प्रकार निश्चय करने वाले गजराजने बुद्धिसे अपने मनको हृदयमें स्थिर करके, इंद्रद्युम्न नामवाले पहिले जन्म में अभ्यास करे हुए सर्वोत्तम स्तोत्रका जप करा ॥ १ ॥ गजेन्द्रने कहा कि-जिस चैतन्यरूप परमात्मासे यह देह आदि सचेतन होता है, उस कारणरूपसे देहमें प्रवेश करनेवाले षड्गुण ऐश्वर्यसम्पन्न और प्रकृतिपुरुषरूप परमेश्वरको हम केवल

येनेदं य इदं स्वयम् । योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥ ३ ॥ यः स्वात्मनीदं निजमाययाऽर्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् । अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥ कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु । तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥ न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् । यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥ दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसंगा मुनयः सुसाधवः । चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥७॥ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा । तथाऽपि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने । नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्त्वेन

मन ही में नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ अब यहाँसे अध्यायकी समाप्ति पर्यंत ईश्वरत्व को ही स्पष्ट करनेके अभिप्रायसे गजेन्द्र कहता है कि-यह विश्व जिसमें स्थित है, जिस से उत्पन्न हुआ है, जिसने रचा है, जो स्वयं ही यह है और जो इस कार्यसे तथा महत्तत्व आदि कारणोंसे भिन्न है उस स्वयंसिद्ध परमेश्वरकी मैं शरण जाता हूँ ॥ ३ ॥ इस प्रकार ईश्वर स्वतःसिद्ध और विश्वका कारण है ऐसा कहा अब वह स्वयंप्रकाश होकर जगत्का प्रकाशक है ऐसा कहते हुए प्रार्थना करते हैं कि-जो साक्षीरूप भगवान् अपनेमें अपनी मायाके रचेहुए और कभी कभी सृष्टिके समयमें प्रकट होनेवाले और कभी कभी प्रलयके समयमें लीन होनेवाले ऐसे दोनों प्रकारके कार्यकारणरूप विश्वको अपनी,अलुप्तदृष्टिसे देखते हैं वह दूसरेसे प्रकाशित होनेवाले नेत्र आदिको प्रकाशित करनेवाले स्वयंप्रकाश परमात्मा मेरी रक्षा करें ॥४॥ प्रलयके समय सब लोक, उन लोकोंके पालन करनेवाले और उनके सकल कारणोंके काल के द्वारा नष्ट होने पर जिसमें प्रवेश करना कठिन है ऐसा अपार अन्धकार होता है, उसके भी पार जो सर्वव्यापक प्रभु विराजमान होते हैं ॥ ५ ॥ जिनके स्वरूपको देवता और ऋषि भी नहीं जानते हैं फिर उस स्वरूपके जाननेको वर्णन वा करनेको और कोई प्राणी कैसे समर्थ होसकता है ? इसकारण जैसे नानाप्रकारके वेष धारण करके रङ्गभूमिमें खेल करने वाले नटके स्वरूपको लोक नहीं समझ सकते हैं, तैसे ही जिनका चरित्र दुर्गम है वह परमेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ अत्यन्त श्रेष्ठ आचरण वाले, निःसङ्ग, प्राणियोंमें आत्मदृष्टि रखने वाले और सबका हित करने वाले,मुनि, जिनका परममंङ्गलकारी स्वरूप देखनेकी इच्छासे वनमें रह कर निरन्तर ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंको धारण करते हैं वही मेरी गति है ॥ ७ ॥ जिनका जन्म, कर्म, नाम, रूप, गुण वा दोष इनमेंसे कोई भी नहीं है तथापि जो लोकोंके जन्म मरण करनेके निमित्त अपनी मायाके द्वारा उन जन्मकर्मादिकोंको स्वीकार करते हैं, जो ब्रह्मस्वरूप होनेके कारण रूपरहित हैं, जो अनन्तशक्ति होनेके कारण अनेक रूप हैं और जिनके कर्म आश्चर्यकारक हैं उन परमेश्वरको बारम्बार नमस्कार हो॥८॥९

प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता । नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमः शांताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे । निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥ क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे । पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे । असता छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय । सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥ गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय । नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय । स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥ आत्मात्मजाप्तगृहवित्त-

---

तथा जो दूसरोंसे प्रकाशित न होकर सबके प्रकाशक हैं उन वाणीके, मनके और चित्तकी वृत्तियोंके अगोचर परमात्माको बारम्बार नमस्कार हो ॥ १० ॥ निपुण संन्याससे शुद्धचित्त हुए पुरुषोंको जिसकी प्राप्ति होती है, तिस आनन्दानुभवरूप मोक्षके स्वामी परमेश्वरको नमस्कार हो ॥ ११ ॥ तथा शान्त, भयंकर और मूढ़ इन सत्व आदि गुणोंके धर्मोंका अनुकरण करने वाले, भेदशून्य, सब स्थानमें समानभावसे वर्त्ताव करने वाले, ज्ञानस्वरूप परमात्माको नमस्कार हो ॥ १२ ॥ तैसे ही, क्षेत्रज्ञ, सबके अध्यक्ष, सबके साक्षी, सकल जीवोंके मूलकारण और सबसे पहिले ही विद्यमान होनेके कारण मायाकी भी उत्पत्तिके हेतु आपको नमस्कार हो ॥१३॥ तथा जो सकल इन्द्रियोंके विषयोंको देखने वाले हैं, विषयोंमें जिनका सत्रूप आभास है अर्थात् जो सकल विश्वासोंके हेतु हैं, प्रतिबिम्ब (परछाहीं) से सूचित होने वाले बिम्ब (जिसकी छाया पड़े उस) की समान, जो मिथ्यारूप अहङ्कार आदि प्रपञ्चसे सूचित होते हैं और जिनका सकल इन्द्रियोंकी वृत्तियोंसे ज्ञान होता है ऐसे आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥ जैसे महासमुद्रमें सकल नद नदी आदिकोंके जलके प्रवाहोंका अन्त होता है तैसे ही जिनमें सकल शास्त्र और वेदोंकी समाप्ति होती है जो, सबके कारणरूप हैं और जिनका कोई कारणरूप नहीं है, ऐसा होनेपर भी मृत्तिका आदिकी समान विकारको प्राप्त न होनेके कारण जो अद्भुत कारणरूप हैं और मोक्षरूप होनेके कारण जो उत्तम जनोंके आश्रय हैं तिन आपको नमस्कार हो ॥ १५ ॥ जो गुणरूप अरणी (काठ) में छुपे हुए ज्ञानाग्निरूप हैं, जिनका मन उन गुणोंके क्षोभरूप कार्यमें बहिर्वृत्ति हुआ है और आत्मतत्त्वकी भावनासे विधि निषेधरूप शास्त्रोंका त्याग करने वाले ज्ञानियोंमें जिनका स्वयं ही प्रकाश होरहा है उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ जो परमदयालु होनेके कारण भक्तोंके संकट को दूर करनेमें आलस्यरहित हैं,जो मुक्त होनेके कारण मुझ समान शरणागत पशुओं की अज्ञानरूप फाँसीको समूल नष्ट करनेको समर्थ हैं, जो अन्तर्यामीरूपसे सकल देहधारी प्राणियोंके मनमें प्रसिद्ध भीतरके ज्ञानरूप होकर भी अपरिच्छिन्न हैं और जो सकल प्राणियोंको वशमें रखनेको समर्थ हैं ऐसे आपको नमस्कार हो ॥ १७ ॥ जो गुणोंके सङ्गसे रहित होनेके कारण अन्तःकरणमें विद्यमान होकर भी देह पुत्र,

जनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसंगविवर्जिताय । मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥ १८ ॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति । किंत्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् १९ एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं वांछन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः । अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥ तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् । अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः । नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥ यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः । तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥ स वै न देवा सुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः । नायं गुणः कर्म न सन्नचासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयभयोन्या । इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥ सोऽहं विश्वसृजं

अपने सम्बन्धी, घर, धन, और सेवकोंमें आसक्त रहने वाले पुरुषोंको प्राप्त नहीं हो सकते हैं और इस कारण ही देह आदिकोंमें आसक्ति न करने वाले ज्ञानी पुरुषोंने जिनका अपने हृदयमें ज्ञानरूप, अचिंतनीय ऐश्वर्योंसे युक्त और सबके नियन्तारूप से निरन्तर चिन्तवन करा है उन परमेश्वरको नमस्कार हो ॥ १८ ॥ जिनकी सेवा करते हुए, धर्म अर्थ, काम अथवा मोक्षकी इच्छा करने वाले पुरुष, इष्ट फल पाते हैं इतना ही नहीं किन्तु जो भगवान् उनको, इच्छा न करे हुए भी भोग और दृढ़ शरीर देते हैं वह परमदयालु परमात्मा मुझे मुक्त करें ॥ १९॥ यह तो मैं भक्ति-सुखके आनन्दको न जाननेके कारण माँगता हूँ परन्तु जिन्होंने सर्वज्ञ मुक्त पुरुषोंकी सेवा करी है ऐसे जिनके अनन्य भक्त, चार प्रकारके पुरुषार्थोंमेंसे किसीकी भी इच्छा नहीं करते हैं और अति आश्चर्यकारी तथा मङ्गलकारी उन भगवान्के चरित्रों का गान करते हुए आनन्दसागरमें निमग्न होते हैं उन अविनाशी,सर्वव्यापी,सर्वोत्तम, ब्रह्मादिकोंको वशमें रखने वाले, अव्यक्त, आध्यात्मिक योगसे प्राप्त होने वाले, सूक्ष्म होनेके कारण अति दूरकी वस्तुकी समान इन्द्रियगोचर न होने वाले,विनाशरहित, सबके प्रथम विद्यमान और परिपूर्ण परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ २०॥२१ जिसके बहुत ही थोड़े अंशसे ब्रह्मादि देवता, वेद और स्थावर-जङ्गमरूपलोक यह सब नामरूप भेदसे उत्पन्न हुए हैं।२२॥जैसे, अग्निकी ज्वाला वा सूर्यकी किरणें,एक एकके अनन्तर दूसरी इसप्रकार प्रवाहरूप करके उत्पन्न होकर फिर उनमें ही लीन होजाती हैं तैसे ही बुद्धि, मन, इंद्रियें और शरीर यह सब गुणोंके प्रवाहरूप करके जिन स्वयम्प्रकाशरूप परमात्मासे उत्पन्न होते हैं, जो परमात्मा देवता नहीं, असुर नहीं, मनुष्य नहीं, पशु पक्षी नहीं, स्त्री नहीं; नपुंसक नहीं,पुरुष नहीं अथवा कोई भी प्राणी नहीं हैं, गुण, कर्म, कार्य और कारण इनमेंसे भी कोई नहीं हैं, सबका निषेध होने पर जो शेष रहते हैं और जो माया करके सर्वरूप हैं वह परमेश्वर मुझे मुक्त करनेको प्रकट हों ॥२३-२४॥ इस नाकेसे छूटकर मुझे जीवित रहनेकी इच्छा

विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् । विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥ योगरंधितकर्माणो हृदि योगविभाविते । योगिनो यं प्रपश्यंति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥ नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय । प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिंद्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥ नायं वेद स्वात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् । तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिंगभिदाऽभिमानाः । नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥ ३० ॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः । छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥ ३१ ॥ सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् । उत्क्षिप्य सांबुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥ तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य समाह

नहीं है, क्योंकि–भीतर और बाहर अज्ञानसे भरी हुई इस हाथीकी योनिसे यहाँ क्या करना है, सो जिसका कालसे नाश नहीं होता है उस आत्मप्रकाशको ढकने वाले अज्ञानके दूर होनेकी मुझे इच्छा है ॥ २५ ॥ ऐसा केवल मोक्षकी इच्छा करने वाला मैं विश्वको उत्पन्न करने वाले, जगन्मूर्त्ति, जगत्से निराले, जगतरूप-क्रीड़ाकी सामग्रीसे युक्त, जगत्के आत्मारूप और जन्म आदि विकारशून्य, उत्तम पद-रूप ब्रह्मको प्रणाम करता हूँ ॥ २६ ॥ भगवद्धर्मसे जिनके कर्म भुने हुए बीजोंकी समान दग्ध होगये हैं वह योगीपुरुष, योगके द्वारा शुद्ध हुए हृदयमें जिनका दर्शन करते हैं उन योगेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ जिनकी सत्त्व आदि तीनों शक्तियोंका वेग असह्य है, जो सकल इंद्रियें शब्द आदि विषयरूप करके बाहरी दृष्टि से प्रतीत होते हैं, जिनकी इंद्रियें विषयोंमें उत्कण्ठित हैं ऐसे पुरुषोंको जिनका मार्ग नहीं मिलता है, जो शरणागतोंका पालन करने वाले हैं; जिनकी शक्तियोंका अन्त नहीं है ऐसे आपको नमस्कार हो ॥ २८ ॥ जिनकी मायासे उत्पन्न हुए अहंकारके द्वारा ढके हुए अपने स्वरूपभूत आत्माको यह प्राणी नहीं जानता है और जिनके प्रभाव को कोई उल्लंन नहीं कर सकता है उन भगवान्का ही मुझे आश्रय है ॥ २९ ॥ श्री शुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार उस गजेन्द्रके भेदशून्य परमतत्त्वका वर्णन करने पर नानाप्रकारकी अपनी अपनी भिन्न २ मूर्त्तियोंमें अभिमान रखने वाले ब्रह्मादि देवताओंमेंसे जब कोई भी उसके समीप नहीं आया तब सर्वदेवमय भगवान् श्रीहरि तहाँ प्रकट हुए ॥ ३० ॥ और उस गजेंद्रको तैसा पीड़ित हुआ जान कर तथा उसके करे हुए स्तोत्रको सुन कर, वह जगन्निवास परमात्मा, वेदमय गरुड़जीके ऊपर चढे और हाथमें चक्ररूप आयुधको धारण कर, अपनी स्तुति करने वाले देवताओंके साथ तहाँ गजराजके समीप आये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! उस समय सरोवरमें महाबली नाकेके चरण पकड़ लेनेके कारण पीड़ित हुए उस गजेंद्रने, हाथमें चक्र लेकर आकाशमें गरुड़जीके ऊपर चढ़े हुए श्रीहरिको देख कर भगवान्के चरणोंमें समर्पण करनेके निमित्त, अपली सूँडके अग्रभागसे कमल लेकर

माशु सरसः । कृपयोज्जहार । ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीमागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । मुमुचुः कुसुमासारं शंसंतः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुंभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः । ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् । मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गंधर्वसत्तमः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् । अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥४॥ सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् । लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् । प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ स वै पूर्वमभूद्राजा पांड्यो द्रविडसत्तमः । इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥७॥ स एकदाराधनकाल आत्मवान् गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् । जटाधरस्तापस आप्लुतो-

---

और उस कमलसहित सूँडको ऊपरको उठा कर "हे भगवन् ! हे नारायण ! हे जगत्गुरो ! आपको नमस्कार हो" बड़े संकटके साथ ऐसी वाणी उच्चारण करी ३२ तब उस पीड़ित हुए गजेन्द्रको देखते ही गरुड़ भी मन्दगामी (धीरे चलने वाले) हैं ऐसा विचार तत्काल उनके ऊपरसे नीचे उतर कर जन्म आदि विकाररहित श्रीहरिने, बड़ी कृपा करके नाके सहित उस गजेंद्रको शीघ्र ही सरोवरके बाहर निकाला और चक्रसे उस नक्रका मुख चीरकर सकल देवताओंके देखते हुए गजराजको छुड़ाया ॥ ३३ ॥ इति अष्टमस्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् परीक्षित ! उस गजेन्द्रको छुटानेके समय ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता, ऋषि और गन्धर्व, श्रीहरिके उस कर्मकी प्रशंसा करते हुए पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥ देवताओंकी बजाई हुई दुंदुभी बजने लगीं, गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे और ऋषि, चारण तथा सिद्ध पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति करने लगे॥२॥वह जो नाका था सो पहिले जन्ममें हूहू नामक श्रेष्ठ गन्धर्व था और देवल मुनिके शापसे उसको नाकेका जन्म मिला था, सो वह उस समय तत्काल शापसे छूट गया और आश्चर्यकारीरूप धारण करके अविनाशी, यशके स्थान, जिनके गुण वर्णन करने योग्य हैं, जिनकी कथा पवित्र हैं ऐसे उत्तमकीर्त्ति परमेश्वरको मस्तकसे प्रणाम करके उनके माहात्म्यको गाने लगा ॥ ३ ॥ ४ ॥ तदनन्तर परमेश्वरने जिसके ऊपर कृपा करी है ऐसा वह हूहू नामक गन्धर्व, उन परमेश्वरको प्रदक्षिणा और नमस्कार करके सब लोकोंके देखते हुए गन्धर्वलोकको चला गया ॥ ५ ॥ इधर वह गजेन्द्र भी, भगवान्का स्पर्श होनेके कारण अज्ञानरूप बन्धनसे मुक्त हुआ और भगवान्के सारूप्यको प्राप्त होकर पीताम्बरधारी चतुर्भुज हुआ ॥ ६ ॥ हे राजन् परीक्षित ! वह गजेन्द्र पहिले जन्ममें द्रविड़देशनिवासी लोकोंमें श्रेष्ठ और मुख्यतासे विष्णुव्रतका ही आचरण करने वाला इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध, पाड्यदेशका राजा था७हे राजन् परीक्षित ! एक समय मलय पर्वतके ऊपर अपने आश्रममें रहता हुआ

ऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः । तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥ तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य । विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥१०॥ श्रीशुक उवाच । एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः । इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥ ११ ॥ आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् । हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥ एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः । गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥ एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् । स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥ १४ ॥ यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः । शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥ १५ ॥ इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरु-

वह जटाधारी तपस्यामें तत्पर राजा इन्द्रद्युम्न, पूजाका समय होने पर स्नान करके अन्तःकरणका निग्रह कर मौनभाव धारण करे सकल दुःखनिवारक प्रभु अच्युत भगवान्‌का पूजन कर रहा था ॥ ८ ॥ उस समय चारों ओर शिष्योंसे घिरे हुए परमयशस्वी अगस्त्य ऋषि, उस इन्द्रद्युम्न राजाके आश्रममें भगवान्‌की इच्छासे आपहुँचे, वह-राजा मेरा पूजन आदि न करके एकान्तमें स्वस्थ बैठा हुआ है ऐसा देख कर क्रुद्ध हुए ॥ ९ ॥ और उन्होंने उस इन्द्रद्युम्न राजाको यह शाप दिया कि-जैसे हाथी उद्धतबुद्धि होता है तैसे ही अशिक्षितबुद्धि यह दुष्ट दुरात्मा राजा, ब्राह्मणोंका अपमान कर रहा है, इस कारण यह परम अज्ञानरूप हाथीकी योनिको ही प्राप्त हो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार शाप देकर भगवान् अगस्त्य मुनि, अपने साथके शिष्यों सहित तहाँसे चले गए तब, इधर राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी यह प्रारब्ध कर्मका ही फल है ऐसा जान कर ११ आत्मस्वरूपके स्मरणका नाश करने वाली हाथीकी योनिको प्राप्त हुआ, परन्तु हरि पूजनके प्रभावसे उस हाथीकी योनिमें भी उसको फिर आत्मस्वरूपकी स्मृति प्राप्त हुई ॥१२॥ इस प्रकार कमलनाभ भगवान्‌ने गजेन्द्रको छुटा कर, पार्षदके स्वरूपको प्राप्त हुए उस गजेन्द्रसे तथा और भी अपने पार्षदोंसे युक्त होकर, जिनके गजेन्द्र मोक्ष आदि कर्मका गन्धर्व, सिद्ध और देवताओंने गान करा है ऐसे वह पद्मनाभ भगवान् गरुड़जीके ऊपर चढ़ कर अपने अलौकिक वैकुण्ठ धामको चले गये ॥१३॥ हे कुरुश्रेष्ठ महाराज ! यह गजेन्द्रमोक्षरूप श्रीकृष्णका चरित्र मैंने तुमसे कहा है, यह चरित्र, सुनने वाले पुरुषोंको स्वर्गकी प्राप्ति कराने वाला, यशकी वृद्धि करने वाला, कलियुगी पापोंका नाश करने वाला और दुःखोंका नाश करने वाला है १४ हे राजन् ! इस प्रकारके इस पुण्यकारी आख्यानको धर्म आदि पुरुषार्थोंकी प्राप्ति की इच्छा करने वाले ब्राह्मण प्रातःकालके समय उठ कर, स्नान कर शुद्ध होते हुए खोटे स्वप्न आदिकी शान्तिके निमित्त पढ़ते हैं ॥१५॥ हे कौरवोंमें श्रेष्ठ ! गजेन्द्रकी मुक्ति करनेके अनन्तर सकल भूतात्मक, सर्वव्यापी, श्रीहरि होकर, सकल प्राणियोंके

सत्तम। शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम्। वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥ शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च। क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥ १८ ॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम। सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं ममाश्रयाम्। ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे। कर्माण्यनंतपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥ प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम्। दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥२२॥ गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिंदीं सितवारणम्। ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥ उत्थायापररात्रांते प्रयताः सुसमाहिताः। स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥ २४ ॥ ये मां स्तुवन्त्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये। तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच। इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम्। हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच। राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम्। गजेंद्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं

सुनते हुए उस गजेन्द्रसे कहने लगे ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे पुत्र! जो पुरुष मुझे, तुझे और इस सरोवर, त्रिकूट पर्वत, उसमें की गुहा, वन, वेत, खोखले बाँस, ठोस बाँस, इनके झुंड, देववृक्ष, इस चित्रकूट पर्वतके शिखर, ब्रह्माजीके मेरे और शिवजीके निवासस्थान, क्षीरसागर और देदीप्यमान श्वेतद्वीप, यह दोनों मेरे प्रियस्थान, श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि, वैजयन्तीमाला, मेरी कौमोदकी नामक गदा, सुदर्शनचक्र, पाञ्चजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़, मेरी सूक्ष्मकला शेष, मेरे आश्रयसे रहने वाली लक्ष्मीदेवी, ब्रह्माजी, नारदऋषि, शिवजी, प्रह्लाद, मत्स्य कूर्म और वाराह आदि अवतारोंके द्वारा करे हुए मेरे परमपुण्यकारी कर्म, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, प्रणव (ॐ), सत्यभाषण माया, गौ, ब्राह्मण, अविनाशी धर्म, दक्षकी कन्या जो धर्म, सोम और कश्यपकी स्त्री थीं, गंगा सरस्वती, नन्दा, यमुना ऐरावत, ध्रुव सात ब्रह्मर्षि और पवित्र कीर्ति धार्मिक मनुष्य तथा मेरी विभूतियों का जो पुरुष प्रभातकालके समय उठ कर और पवित्र होकर एकाग्र अन्तःकरणसे स्मरण करते हैं वह सकल पातकोंसे छूट जाते हैं ॥ १६–२४ ॥ और हे राजन्! प्रभातकालके समय उठ कर जो पुरुष इस तेरे कहे हुए स्तोत्रसे मेरी स्तुति करते हैं उनको मैं अन्तकालमें निर्मल बुद्धि देता हूँ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन्! इस प्रकार उस गजेंद्रसे कह कर और अपने सबसे उत्तम शंखको बजा कर देवताओंको आनन्द देने वाले भगवान् हृषीकेश वैकुण्ठलोकको जानेके लिये गरुड़ जीके ऊपर चढ़े ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन्! पुण्यकारी और पापनाशक यह श्रीहरिका गजेन्द्रमोक्षरूप कर्म मैंने तुमसे कहा अब रैवत मन्वंतरको सुनो ॥१॥ तामस नामक

न्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥ पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः । बलिविंध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥ विभुरिंद्रः सुरगणा राजन् भूतरयादयः । हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥ पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः । तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः । रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥५॥ तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः । भौमान् रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः । पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥ इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः । मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ८ तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः । अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा । भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥ राजोवाच । यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः । यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किंचान्यदभवत्ततः । एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥ त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां

मनुका सगा भ्राता रैवत पाँचवाँ मनु हुआ, और उसके जिनमें अर्जुन पहिला है ऐसे बलि विंध्य आदि पुत्र हुए ॥२॥ हे राजन्! विभुनाम वाला इंद्र हुआ, भूतरय आदि देवगण हुए; और हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु, देवबाहु, सुधामा पर्जन्य और महामुनि यह सात ऋषि हुए॥३॥शुभ्र नामक ऋषि और उनकी विकुंठानामक स्त्री इन दोनोंसे वैकुण्ठ नाम वाले श्रेष्ठ देवताओंके साथ अपने अंशसे स्वयं भगवान् अवतार धारण करके वैकुण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ ४ ॥ हे राजन्! उन भगवान्ने रमा देवीकी प्रार्थनासे उसका प्रिय कार्य करनेकी इच्छा करके सकल लोकोंके पूजनीय वैकुण्ठलोकको रचा है, उन वैकुण्ठ नामक श्रीहरिका पराक्रम ब्राह्मण, भक्ति आदि गुण और परम समृद्धि यह सब पहिले मैंने संक्षेपसे तुमसे कहे ही हैं क्योंकि-जो विष्णुभगवान्के सकल गुणोंका वर्णन करेगा वह पृथ्वीकी रजके कणोंको भी गिन सकेगा॥५॥६॥चक्षुका पुत्र चाक्षुष छठा मनु हुआ और पूरु, पुरुष तथा सुद्युम्न यह जिनमें मुख्य हैं ऐसे उसके पुत्र हुए ॥ ७ ॥ हे राजन्! उस मन्वंतरमें मन्त्रद्रुम नामक इंद्र हुआ, आप्यादिक देवगण हुए, और हविष्मान्, वीरक, सुमेधा, उत्तम मधु, अतिनामा और सहिष्णु यह सात मुनि हुए ॥८॥ तैसे ही उस मन्वन्तरमें भी वैराज और उसकी स्त्री सम्भूति इन दोनोंसे नानाप्रकारकी क्रीड़ा करनेवाले, जगत्पालक भगवान् पुत्ररूपसे अपने अंश करके अवतार धारण करके अजित नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ ९ ॥ और हे राजन्! उन्हों ही ने क्षीरसागरको मथकर देवताओं को अमृत प्राप्त करादिया और जलमें घूमनेवाले मन्दर पर्वतको कूर्मरूपसे अपनी पीठपर धारण करा ॥ १० ॥ राजा परीक्षितने कहा, कि-हे ब्रह्मन्! भगवान्ने जिस प्रकार क्षीरसागरको मथा और जिसके निमित्त मथा तथा जिस कारणसे कूर्मरूप होकर मन्दराचलको धारण करा ॥ ११ ॥ तथा जिस प्रकार देवताओंने अमृत पाया, और उस मन्थनसे अमृतके सिवाय दूसरा कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ यह

पतेः । नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच । संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः । अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥ श्रीशुक उवाच । यदा युद्धे सुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः । गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन् स्म भूयशः ॥ १५ ॥ यदा दुर्वाससः शापात्सेंद्रा लोकास्त्रयो नृप । निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥१६॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः । नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयंतो विनिश्चयम् ॥१७॥ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्द्धनि सर्वशः । सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्वान्विगतप्रभान् । लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥ १९ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् । उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥ अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यक्द्रुमघर्मजातयः । यस्यावतारांशकलाविसर्जिता

सब भगवान्‌का परम अद्भुत कर्म मुझसे कहो ॥ १२ ॥ क्योंकि-तुम्हारे उत्तम प्रकारसे वर्णन करीहुई भक्तपालक भगवान्‌की महिमासे,बहुत काल पर्यन्त त्रिविधतापसे दुःखित हुआ मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १३ ॥ सूतजीने कहा कि--हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार भगवान् व्यासपुत्रसे,राजाके उत्तम प्रकार प्रश्न करने पर,उनके प्रश्नको आनन्द पूर्वक स्वीकार करके उन्होंने श्रीहरिका माहात्म्य कहनेका प्रारम्भ करा ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! जब युद्धमें असुरोंके छोड़े हुए तीखे आयुधोंसे घायल हुए और प्राणहीन होकर पड़े हुए बहुतसे देवता, फिर उठकर जीवित नहीं हुए ॥ १५ ॥ और हे राजन् ! जब दुर्वासा मुनिके शाप* से इंद्रसहित तीनों लोक लक्ष्मीरहित हुए, तब यज्ञ याग आदि कर्म नष्ट होगये,इंद्र वरुण आदि देवताओंने यह दशा देख कर नानाप्रकारकी युक्तियोंसे अपने २ चित्तमें विचार करा तब भी जब उनको लक्ष्मी आदि प्राप्त होनेका कोई निश्चयपूर्वक उपाय नहीं सूझा तो वह सब मेरुपर्वतके मस्तक पर ब्रह्माजीकी सभामें गये और ब्रह्माजीको प्रणाम करके बीता हुआ सब वृत्तांत सुनाया ॥ १६-१८ ॥ हे राजन् ! तब उन ब्रह्माजीने निर्बल निस्तेज हुए इन्द्र वायु आदि देवताओंको और अमङ्गलमय हुए लोकोंको देख कर और उनसे विपरीत तेज बल आदिसे युक्त हुए असुरोंको देखकर, एकाग्र मनसे पुरुषोत्तम भगवान्‌का स्मरण करते हुए,श्रीहरिकी शरण जाने पर हमें पहिलेकी समान सकल सम्पत्तिय प्राप्त होंगी, ऐसा निश्चय करके प्रफुल्लितमुख हुए वह देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्माजी उन देवताओंसे कहने लगे कि-॥ १९ ॥ २० ॥ हे देवताओं ! मैं, शिव, तुम और असुर आदि, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष और स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न हुए जूँ आदि) प्राणी यह सब जिस

*एक समय दुर्वासा मुनिने मार्गमें ऐरावतके ऊपर अम्बारीमें बैठ कर जाते हुए इन्द्रको देखा, तब अपने कण्ठमेंकी माला प्रसादरूपसे इन्द्रको समर्पण करी,तब ऐश्वर्यके मदसे मत्त हुए उस इंद्रने, अनादरके साथ वह ऐरावतके मस्तकपर डालदी,सो मत्त ऐरावतनें उस मालाको चरणसे कुचल डाला, तब क्रुद्ध हुए उन दुर्वासा ऋषिने इन्द्रको शाप दिया कि-तू तीनों लोकों सहित सम्पत्ति रहित होजा ।

व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥ २१ ॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयाद-रणीयपक्षः । अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥ २२ ॥ अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् । तस्माद् व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिंदम । अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ ॥ तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो । स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः २५ ब्रह्मोवाच । अविक्रियं सत्यमनंतमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् । मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥ विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थे-न्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् । छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे२७ अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु । त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥ य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनंतपारम् ।

पुरुषरूप अवतारके अंशके अंशोंके (मरीचि आदिकोंके) उत्पन्न करे हुए हैं उन ही अविनाशी परमात्माकी हम सब शरण जाते हैं ॥ २१ ॥ हे देवताओ ! जिनको किसीका वध, रक्षा, उपेक्षा वा आदर करनेका पक्षपात नहीं है तथापि जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेके निमित्त यथायोग्य समयपर क्रमसे रजोगुण सतोगुण वा तमोगुणको स्वीकार करते हैं ॥ २२ ॥ इस समय तो उन प्राणियोंका पालन करनेके निमित्त सतोगुणको स्वीकार करनेवाले भगवान्‌को मर्यादाका पालन करना है, इस कारण उन जगत्‌गुरुकी हम शरण जाते हैं सो वह देवताओंके प्रिय परमेश्वर हम जो अपने निजजन तिनका कल्याण करेंगे ॥ २३ ॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं कि-हे शत्रुनाशक राजन् ! ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओंसे कह कर उनके साथ जिस क्षीरसमुद्रमें श्रीहरि रहते हैं उस साक्षात् भगवान्‌के स्थानको गये ।२४। और हे राजन् ! तहाँ पहिले सुने हुए तथा दृष्टि न पड़ने वाले भगवान्‌की प्राप्ति होनेके निमित्त इन्द्रियोंको स्थिर करके, लोकमें अप्रसिद्ध वेदवाणीके द्वारा स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-हे देव ! मनसे भी अधिक वेगवान्, वाणी के अविषय, अतर्क्य, उपाधिरहित, सर्वान्तर्यामी, अनन्त, आद्य, विकारशून्य, सत्य-स्वरूप, सबसे श्रेष्ठ और संकटके समय सब प्रकार रक्षक होनेके कारण आश्रय लेने योग्य आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ तिसी प्रकार प्राण, मन, बुद्धि और अहंकारको जानने वाले, शब्दादि विषय और इन्द्रिय इन दोनोंके रूपसे भासमान होने वाले, देहशून्य, स्वप्न देखनेवाले, पुरुषकी समान अज्ञानरहित, अक्षय, आकाश की समान सर्वव्यापी तीनों युगोंमें प्रकट होने वाले और जिनके विषै जीवके पक्ष-पाती, अविद्या और उसको दूर करनेवाली विद्या यह दोनों ही नहीं हैं ऐसे आपकी हम शरण आये हैं ॥ २७ ॥ हे परमेश्वर ! जिसमें मन मुख्य है, जिसमें दश इन्द्रियें और पञ्चप्राण यह पन्द्रह आरे हैं; जिसकी गति शीघ्र है, जिसके मध्यमें तीन गुण ही नाभि हैं, जो बिजलीकी समान चञ्चल है, जिसकी आठ प्रकृति ही धारकी समान हैं, और जो मायाके द्वारा चलाया जाता है ऐसा यह जीवका देहरूप चक्र जिसके

आसांचकारोपहुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥ न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् । तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ३० ॥ इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः । गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥ पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः । स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिद्ध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः । लोका यतोऽथाखिल-लोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३३ ॥ सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां यो बलमन्ध आयुः । ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा । अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३५ ॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयी-

---

आश्रयसे रहता है ऐसे सत्यस्वरूप तुम परमात्माकी मैं शरण आया हूँ ॥ २८ ॥ जो जीवोंके समीपमें नियन्तारूपसे रहते हैं, ज्ञान ही जिनका मुख्य स्वरूप है, जो प्रकृति से पर, अदृश्य, निर्विकल्प, और देश तथा कालके परिच्छेदसे रहित ब्रह्मस्वरूप हैं और जिनकी उपासना विवेकी पुरुष, योगरूप प्राप्तिके साधनसे करते हैं ॥ २९ ॥ प्राणी जिससे मोहित होकर आत्मस्वरूपको नहीं जानता है ऐसी मायाका कोई भी उल्लंघन नहीं करसकता है, ऐसी मायारूप अपनी शक्ति और उसके गुणोंको जिन्होंने सर्वथा जीत लिया है और जो सकल प्राणियोंमें एक समान हैं, उन परमेश्वरको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥ जिनमें रजोगुण और तमोगुण मुख्य है ऐसे असुरोंकी तो बात ही क्या, किन्तु उनके प्रिय शरीर सत्त्वगुणसे उत्पन्नहुए हम देवता और ऋषि भी, सत्ता और प्रकाशके द्वारा, भीतर और बाहर प्रकट भी जिनके निरुपाधिक स्वरूपको नहीं जानते हैं उनको हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ जरायुज (झिल्ली में लिपट कर उत्पन्न हुए मनुष्य आदि), अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न हुए कबूतर आदि), स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्नहुए जूँ आदि) और उद्भिज्ज (फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि), ऐसी चार प्रकारकी प्राणियोंकी सृष्टिसे युक्त उनकी ही उत्पन्न करी हुई यह पृथ्वी, जिनके चरणस्थानमें है, और जो अचिन्त्य ऐश्वर्ययुक्त हैं वह ब्रह्म स्वतन्त्र भगवान् हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥ तथा जिससे तीनों लोक और सकल लोकपाल उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और वृद्धि पाते हैं वह महाशक्तियुक्त जल जिनका वीर्य है वह अचिन्तनीय ऐश्वर्य युक्त होनेके कारण ब्रह्मस्वरूप परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों जिसको देवताओंका अन्न, बल तथा आयु कहते हैं और जो प्रजाओंकी वृद्धि करने वाले और वृक्षोंका स्वामी है वह चन्द्रमा जिन का मन है वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ यज्ञ आदि कर्मोंका अनुष्ठान करनेके निमित्त जिनकी उत्पत्ति हुई है, जो पेटमें पकने योग्य अन्न आदिको पकाता हुआ समुद्रमें भी बड़वानलरूपसे जलको सुखाता है और जिससे द्रव्य उत्पन्नहुए हैं वह अग्नि जिनका मुख हुआ है ऐसे अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ तैसे ही तीनों वेदोंके स्वरूप, ब्रह्माजी

मयो ब्रह्मण एव धिष्ण्यम्। द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३६॥ प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः। अन्वास्म संम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः। प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिंचः। खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९ ॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययासन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत्। द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥ विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च। ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः॥४१ लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद् द्युतिर्नस्तः पशव्य स्पर्शेन कामः। भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयः कर्म गुणान्विशेषं यद्योग-

---

के उपासनास्थान अर्चिरादि मार्गोंके अधिष्ठात्री देवता, मुक्तिके द्वार अमृतस्वरूप और कालात्मा होनेके कारण मृत्युरूप यह सूर्य जिनकी दृष्टि हैं वह अचिंत्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥३६॥ तथा जो चर अचर प्राणियोंकी मानसिक शक्ति, शरीरका बल और इंद्रियोंकी शक्तिरूप धर्मोंसे युक्त है तथा जैसे सार्वभौम राजाके सेवक उसके अनुकूल रहते हैं तैसे ही हम जिसके अनुकूल हैं ऐसा यह प्राणरूप वायु जिनके प्राणसे उत्पन्न हुआ है वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ तथा जिनकी श्रवण इंद्रियसे दिशा उत्पन्न हुई, जिन के हृदय से शरीरमें के छिद्र उत्पन्न हुए और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय यह दश प्राण, इंद्रियें, मन और शरीरका आश्रयभूत आकाश जिन पुरुषकी नाभिसे उत्पन्न हुआ है वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हो ॥३८॥ तथा जिनके बलसे महेन्द्र, प्रसादसे सकल देवता, क्रोधसे रुद्र, बुद्धिसे ब्रह्मा, देहके छिद्रोंसे छन्द तथा ऋषि और शिश्नसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ तथा जिनके वक्षःस्थलसे महालक्ष्मी छायासे पितर, स्तनोंसे धर्म, पीठसे अधर्म, मस्तकसे स्वर्ग और क्रीडासे अप्सरा उत्पन्न हुई हैं वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ तथा जिनके मुखसे ब्राह्मण और इन्द्रियोंसे समझमें न आने वाले अर्थका ज्ञान कराने वाला वेद, भुजाओंसे क्षत्रिय और प्रजाओंका पालन करनेकी सामर्थ्य, जङ्घाओंसे वैश्य और उनकी वृत्ति (व्यापारकी चतुराई) और चरणोंसे वेदके सिवाय सेवावृत्ति और उससे आजीविका करने वाले शूद्र उत्पन्न हुए हैं वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ तथा जिनके नीचेके ओठसे लोभ, ऊपरके ओठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे पशुओंका हितकारी काम, भ्रकुटिसे यम और पलकोंसे कालकी उत्पत्ति हुई है वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४२॥ और अधिक तो क्या परन्तु पञ्चमहाभूत, काल, कर्म, सत्त्व आदि

मायाविहितान्वदन्ति। यद्दुर्विभाव्यं प्रभुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ४३ नमोऽस्तु तस्मा उपशांतशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने। गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्। प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखांबुजम् ॥ ४५ ॥ तैस्तैः स्वेच्छाधृतैः रूपैः काले काले स्वयं विभो। कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ॥४६॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा। देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ४७ नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः। कल्पते पुरुषस्यैव स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥ यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम्। एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे। निर्गुणाय गुणेशाय सत्वस्थाय च सांप्रतम् ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

गुण और पञ्चभूतसे रचित प्रपञ्च मिल कर होने वाला, विद्वान् पुरुषोंका त्यागने योग्य और अतर्क्य यह कार्यकारणरूप सकल जगत्, जिनकी योगमायाने उत्पन्न करा है; ऐसा कहते हैं वह अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् परमात्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों ४३ जिनका मन अपने आनन्दके लाभसे ही परिपूर्ण होरहा है, जिनके विषें सकल शक्तियें उपरामको प्राप्त हुई हैं और जो मायाके रचे हुए प्रकृतिके गुणोंमें दर्शन आदि वृत्तियोंके द्वारा आसक्त नहीं होते हैं उन वायुकी समान सर्वत्र विचरने वाले और कहीं आसक्त न होने वाले आपको नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ ऐसे अचिन्त्य शक्ति वाले और भक्तवत्सल तुम, तुम्हारे मुख कमलका दर्शन करनेकी इच्छासे शरणमें आये हुए हमको, इस प्रकार अपना स्वरूप दिखाओ कि-हमारी इंद्रियोंके ज्ञानमें आ जाय ॥ ४५ ॥ हे प्रभो! तुम्हारा वर्त्ताव बहुत समयोंमें भक्तोंकी इच्छाके अनुसार होता है क्योंकि-तिन २ अवसरों पर भक्तोंकी इच्छासे वा अपनी इच्छासे धारण करे हुए स्वरूपोंसे तुम, जिनको हम नहीं कर सकते हैं ऐसे कर्म करते हो ॥४६॥ देहमें अभिमान करने वाले और विषयासक्त पुरुषोंके कर्म जैसे प्रायः क्लेश और थोड़ेसे फलसे युक्त होते हैं तथा परिणाममें निष्फल होते हैं ॥ ४७ ॥ तैसे ही अति थोड़े और आभासमात्र होने वाले भी कर्म ईश्वरको समर्पण करनेमें उनसे कुछ परिश्रम वा क्लेश नहीं होता है क्योंकि-यह ईश्वर ही पुरुषोंके आत्मा प्रिय और हितकारी हैं इस कारण उनको समर्पण करे हुए कर्म निष्फल नहीं होते हैं ॥४८॥ जैसे वृक्षकी जड़को जलसे सींचने पर उसके गुद्द और शाखा भी सींची हुई हो जाती हैं तैसे ही विष्णुभगवान्‌की आराधना करने पर सकल प्राणियोंका और स्वयं अपना भी आराधन होजाता है ॥ ४९ ॥ जिनके स्वाभाविक कर्मोंकी तर्कना नहीं होसकती जिनका अन्त नहीं है जो स्वयं निर्गुण और गुणोंके नियन्ता हैं और जिन्होंने इस समय सतोगुणको अङ्गीकार किया है ऐसे आपको नमस्कार हो ५० इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान् हरिरीश्वरः । तेषामाविरभूद्राजन् सहस्रार्कोदयद्युतिः ॥१॥ तेनैव सहसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः । नापश्यन् खं दिशः क्षोणीमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरिंचो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् । स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥ तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा । प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥४॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् । कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखांबुजाम् ॥ ५ ॥ काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् । कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥६॥ सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् । तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् । सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥७॥ ब्रह्मोवाच । अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय । अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥ रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतांत्रिकेण । योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥९॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यंत आसीदिद-

---

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार सकल देवताओंके स्तुति करने पर, सहस्रों सूर्योंकी समान जिनकी कान्ति है ऐसे दुःखहर्ता भगवान् ईश्वर उनके आगे प्रकट हुए ॥१॥ उसी तेजसे जिनके नेत्र चौंधा गये हैं ऐसे देवताओंको आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपना शरीर भी नहीं दीखा फिर सर्वव्यापी ईश्वर तो दीखते ही कैसे ॥ २ ॥ उस समय शिवजी सहित ब्रह्माजीने, वह भगवान्‌की मूर्त्ति देखी वह निर्मल और मरकतमणिकी समान श्यामवर्ण थी, उसके नेत्र कमलके भीतरके भागकी समान लाल २ थे ॥३॥ वह तपाये हुए सुवर्णकी समान पीले वर्णके और रेशमी वस्त्रसे युक्त थी, उसके सकल अङ्ग प्रसन्न और मनोहर थे, वह उत्तम मुख और सुन्दर भृकुटिसे युक्त थी ॥४॥ वह बड़े २ रत्नोंसे जड़े हुए मुकुटसे और बाहुभूषणोंसे शोभित थी, कर्णोंमें धारण करे हुए कुण्डलोंके द्वारा अत्यन्त प्रकाशित हुए कपोलोंसे उसके मुख पर शोभा आरही थी, वह कमरमें मेखला हाथोंमें कड़े तोड़े, कण्ठमें हार और चरणोंमें नूपुरोंसे शोभित थी, उसके कण्ठमें कौस्तुभमणिरूप भूषण था, वह वक्षःस्थल पर लक्ष्मीको धारण करे और गलेमें वनमाला धारण करे हुए थी, और मूर्तिधारी सुदर्शन चक्र आदि अस्त्र उसकी उपासना कर रहे थे ऐसे उस परमपुरुषकी मूर्तिको देख कर साष्टाङ्ग नमस्कार करने वाले सकल देवताओंके साथ वह ब्रह्माजी स्तुति करने लगे ॥५-७॥ ब्रह्माजीने कहा कि-हे प्रभो ! निर्गुण, उत्पत्ति स्थिति और प्रलयशून्य, अपार मोक्षसुखके समुद्र, परमाणुसे भी सूक्ष्म, अचिन्तनीय प्रभावयुक्त और जिनके स्वरूपका ओर छोर नहीं ऐसे आपको नमस्कार हो ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ विधातः ! तुम्हारा यह स्वरूप ही, वेद और तन्त्रोंमें कहे हुए उपायोंके द्वारा, कल्याणकी इच्छा करने वाले पुरुषोंके सदा पूजने योग्य है, अहो वास्तवमें विश्वमूर्त्ति आपके स्वरूपमें, हम सकल देवताओं सहित तीन लोकोंको मैं देखता हूँ इस कारण यह आपका स्वरूप अपरिच्छिन्न है ॥ ९ ॥ हे परमेश्वर ! जैसे मृत्तिका घड़ेका आदि, अन्त और मध्य होती है तैसे ही तुम भी

मात्मतन्त्रे । त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥ त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनु प्रविष्टः । पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥ यथाऽग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् । योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् । दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गांगमम्भः ॥ १३ ॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्त पादमूलम् । समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्किंवान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः १४ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते । किं वा विदामेश पृथग्विभात विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं विरिंचादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव । जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥ एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः । विहर्तुकामस्तानाह समु-

इस जगत्के आदि, अन्त और मध्य हो, और प्रकृतिसे पर हो इस कारण यह जगत् सृष्टिसे पहले स्वतन्त्र आपके विषैं था, सृष्टिके समयमें तुम्हारे विषैं ही है और सृष्टिके अन्तमें भी तुम्हारे विषैं ही लय पावेगा ॥ १० ॥ हे देव ! तुम अपने वशमें रहने वाली अपनी मायाके द्वारा इस विश्वको रच कर तदनन्तर इसमें ही प्रविष्ट हुए हो, इस कारण गुणोंका परिणाम होनेके समय भी सावधानचित्त, शास्त्रको जानने वाले विवेकी पुरुष निर्गुण आपको मनसे देखते हैं ॥ ११ ॥ जैसे मनुष्य, काठमेंके अग्नि, गौ मेंके घृत, भूमिमेंके अन्न और जल तथा उद्योगमेंकी जीविकाको क्रमसे मथ कर, दुह कर, हल जोत कर, खोद कर और व्यापार करके इत्यादि उपायोंके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं तैसे ही गुणोंके विषैं विद्यमान आपको बुद्धिके द्वारा विवेकी पुरुष प्राप्त कर लेते हैं और आपसे सम्भाषण आदि करते हैं ॥ १२ ॥ तिससे हे प्रभो, पद्मनाभ ! जैसे वनकी दौं से पीड़ित हुए हाथी गङ्गाजलको पाकर सुखी होते हैं तैसे ही बहुत काल पर्यन्त मनमें रहने वाले, इस समय प्रकट हुए परमपुरुषार्थरूप आपका प्रत्यक्ष दर्शन करके आज हम सबोंको परम आनन्द प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥ हे बहिरन्तरात्मन् ! हम सब लोकपाल जिस निमित्त तुम्हारे चरणोंके समीप आये हैं उस कार्यको तुम करो, क्योंकि-अन्तर्यामी रूपसे सबके साक्षी रहने वाले आपको दूसरोंके समझाने योग्य बाहरकी कौनसी वस्तु है ? १४ हे ईश्वर ! मैं, महादेव, अन्य देवता तथा दक्ष आदि प्रजापति यह सब अग्निसे उत्पन्न हुए चिनगारियोंका समान तुमसे पृथक् प्रतीत होनेके कारण क्या अपने सुखके साधनको जानते हैं ? इस कारण तुम ब्राह्मणोंके और देवताओंके सुखका उपाय (कि-अमुक कार्य करो, सो-) हमसे कहो ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्मादिकोंने जिनकी स्तुति करी है ऐसे वह भगवान, जैसा उनका अभिप्राय था उसको तैसे ही जानकर, सकल इंद्रियोंको वशमें करके, अपने आगे हाथ जोड़े खड़े हुए उन देवताओंके प्रति मेघ समान गम्भीर वाणीसे कहने लगे ॥ १६ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! देवताओंके अधिपति

द्रोन्मथनादिभिः ॥ १७॥ श्रीभगवानुवाच । हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् । शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १८ ॥ यात दानवदैतेयैस्तावत्सन्धिर्विधीयताम् । कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥ अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे । अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥ अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलंबितम् । यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२ ॥ सहायेन मया देवा निर्मंथध्वमतंद्रिताः । क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः । न संरंभेण सिद्ध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सांत्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् । लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच । इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः । तेषामन्तर्दधे राजन् स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः । भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं

भगवान् यद्यपि उस देवकार्यको इकले ही कर सकते थे तथापि वह आप ही समुद्रमन्थन आदिके द्वारा क्रीड़ा करनेकी इच्छा करते हुए उनसे कहने लगे ॥१७॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे राजन् ! हे शम्भो ! हे देवताओं ! हे गन्धर्वादिकों ! तुम सब मनको एकाग्र करके मेरे कथनको सुनो तब तुम्हारा उत्तम प्रकारसे कल्याण होगा ॥ १८ ॥ हे देवताओं ! तुम पहिले दैत्यदानवोंके समीप जाओ; और तुम्हारी अपनी जब तक वृद्धि होय तब तक जिनके समय अनुकूल है ऐसे उन दैत्यदानवोंके साथ मित्रता करो ॥ १९ ॥ क्योंकि-हे देवताओं ! कोई बड़ाभारी कार्य करना हो तो उसके सिद्ध करनेके निमित्त शत्रुओंके साथ भी मित्रता करलेना चाहिये, सो तुम ऐसा करो और अपना कार्य होने पर तुम सर्प मूषक ÷ की समान वध्यघातक भावसे वर्त्ताव करना ॥ २० ॥ मित्रता करनेके अनन्तर, जिसको पीने पर मृत्युका ग्रसा हुआ प्राणी अमर होजाता है ऐसे अमृतको उत्पन्न करनेके निमित्त तुम उनके साथ शीघ्र ही यत्न करो ॥ २१ ॥ हे देवताओं ! पहिले क्षीरसागरमें बेले, तृण और लताओंको डालकर मन्दर पर्वतकी मथानी (रई) बनाकर और वासुकिकी रस्सी बनाकर मेरी सहायतासे तुम निरालस्य होकर मथो,ऐसे होनेपर दैत्य केवल क्लेश के ही भागी होंगे और तुम फल पाओगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ हे देवताओं! असुर जो कुछ इच्छा करें उसको तुम स्वीकार करलेना, क्योंकि-शान्तिके साथ जैसे कार्य सिद्ध होते हैं वैसे क्रोधमें भरकर नहीं होसकते हैं ॥ २४ ॥ और समुद्रमेंसे उत्पन्न हुए कालकूटसे तुम भय न करना,और भी मथनेसे जो वस्तुएँ उत्पन्न हों उनके विषय में तुम काम, क्रोध वा लोभ कदापि न करना ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार देवताओंसे कहकर अपनी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले

÷ जैसे पिटारीमें बन्द हुआ सर्प बाहर निकलनेको द्वार कर लेनेके निमित्त पहिले चूहेके साथ मेल करता है, और बाहर निकालने पर उस चूहेको ही भक्षण करलेता है तिस प्रकार ।

धर्मोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्तान् जातक्षोभान् स्वनायकान् । न्यषेधद्दैत्यराट् श्लोक्यः संधिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः । श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सांत्वयित्वा महामतिः । अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥ तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः । शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः । उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः । नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः दूरभारोद्वहश्रांताः शक्रवैरोचनादयः । अपारयंतस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ३४ निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् । चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ३५ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकंधरान् । विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ३६ गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् । ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्

श्रीभगवान् पुरुषोत्तम ईश्वर उनके सामने ही अन्तर्धान होगये ॥ २६ ॥ तदनन्तर उन भगवान्को नमस्कार करके ब्रह्माजी और रुद्र यह दोनों अपने अपने स्थानको चलेगये ॥ २७ ॥ तब, सन्धि करनेका कौन समय है और विग्रह करनेका कौन समय है इसको ठीक २ जानने वाले इस कारण ही प्रशंसा करने योग्य दैत्यराज बलिने भी, देवताओंको युद्ध करनेमें उद्योगी न देखकर, युद्धके निमित्त क्षोभमें भरे अपने सेनापतियोंको निषेध करदिया ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह देवता, सबोंको जीतने वाले, परम सम्पत्तियोंसे युक्त और असुर सेनापतियोंसे उत्तम प्रकार रक्षा करे हुए सिंहासन पर विराजमान उस विरोचनके पुत्र राजा बलिके समीप गये ॥ २९ ॥ तदनन्तर परम बुद्धिमान् इन्द्रने, मधुर वाणीसे उनको सान्त्वना कर पुरुषोत्तम भगवान्का कहा हुआ अमृतमन्थन आदि सकल वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३० ॥ तब वह इंद्रका कहा हुआ वृत्तान्त राजा बलिको और तहाँ बैठे हुए पौलोम, कालकेय, शंबरासुर और अरिष्टनेमि आदि दैत्यपति थे उनको और जो त्रिपुरवासी थे उनको भी उत्तम प्रतीत हुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे शत्रुतापन राजन्! देवता और असुरोंने परस्परके कहनेको स्वीकार करके आपसमें मित्रता करली और अमृत पानेके निमित्त बड़े भारी उद्योगका प्रारम्भ करा ॥ ३२ ॥ तब परिघकी समान भुजा वाले, शक्तिमान् होनेके कारण दुर्मद उन दैत्योंने मन्दराचलको बलात्कारसे उखाड़ लिया और गर्जना करतेहुए उसको समुद्रके समीप लेजाने लगे ॥ ३३ ॥ तब लेजातेमें इन्द्रादिक देवता और बल आदिक दैत्य यह सब दूर तक उस पर्वतका भार उठानेके कारण थक कर अत्यन्त विवश होगये और आगेको लेजानेमें असमर्थ होकर उन्होंने मार्ग में ही उस पर्वतको छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ तहाँ गिरते २ उस कनकाचलने अपने बड़े भारीपनसे बहुतसे देवता और दैत्योंका चूरा कर डाला ॥ ३५ ॥ इतने हीमें जिनकी बाहु, जंघा और भुजा टूट गई हैं और जिनके मनका उत्साह नष्ट होगया है, ऐसा उन देव दैत्योंको जान कर तहाँ साक्षात् गरुड़ध्वज भगवान् प्रकट हुए ॥ ३६ ॥ और पर्वतके गिरनेसे अत्यन्त चूर्ण हुए देव दैत्योंको देख कर उन्होंने अपनी अमृत-

यथा ॥ ३७ ॥ गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया । आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥ अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः । ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते म०अष्टमस्कन्धे अमृतमथने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

श्रीशुक उवाच । ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् । परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदाऽन्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह । हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥ २ ॥ तन्नैच्छन् दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् । न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥ स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः । इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः । स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः ॥ ४ ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः । ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ॥ ५ ॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपो विशत् । ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ६ ॥ ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुख-

मयी दृष्टिसे उनको जीवित करा और पहिलेकी समान शक्तियुक्त तथा व्रण (घाव) रहित करा ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उन्होंने लीलामें एक हाथसे ही उस पर्वतको उठा कर गरुड़जीके ऊपर रक्खा और आप भी उसके उपर चढ़ कर देवदैत्योंके समुद्रके समीप गमन करा ॥ ३८ ॥ तब पक्षियोंमें श्रेष्ठ जो गरुड़जी उन्होंने, उस पर्वतको अपने कन्धे परसे नीचे उतारकर समुद्रके जलमें रखदिया और श्रीहरिके जानेको× आज्ञा देने पर वह गरुड़जी तहाँसे चले गये ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! तदनंतर उन देवदैत्योंने नागराज वासुकि 'तुम्हें भी कुछ अमृतका भाग मिलेगा' ऐसा कह कर, उनके शरीररूप रज्जुसे उस पर्वतके चारों ओर लपेटकर अमृतकी प्राप्तिके निमित्त यत्नके साथ बड़े हर्षसे समुद्रको मथनेका प्रारम्भ करा, उस समय वासुकिका विष उगलने वाला अति तीखा मुख दैत्योंसे पकड़वानेके निमित्त ही श्रीहरिने पहिले उस मुखको पकड़ा तब देवता भी उस मुखकी ओर ही लगे ॥ १ ॥ २ ॥ यह महापुरुष भगवान्का कार्य दैत्याधिपतियोंको अच्छा नहीं प्रतीत हुआ इस कारण वह कहने लगे, कि-वेद शास्त्रोंको पढ़े हुए और जन्म कर्मोंसे प्रसिद्ध हम, सर्पके पूँछरूप इस अमङ्गल अङ्गको नहीं ग्रहण करेंगे, ऐसा कहकर स्वस्थ बैठेहुए उन दैत्योंको देखकर पुरुषोत्तम भगवान्ने हँसते२ उस मुखको छोड़कर देवताओंके साथ पूँछको पकड़ लिया इस प्रकार रज्जुके पकड़नेका स्थान बाँट कर वह कश्यपजीके पुत्र देवता और दैत्य, बड़े प्रयत्नसे अमृतके निमित्त क्षीर समुद्रको मथने लगे ॥ ३-५ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! जब क्षीरसागर मथा जाने लगा तब महाबली देवता और दैत्य, उस पर्वतको सम्हाल कर धारण करते थे तथापि वह नीचे कुछ आधार न होनेके कारण जलमें डूबगया इस

× यदि यहाँ गरुड़ रहेंगे तो वासुकि सर्प नहीं आवेगा इस कारण भगवान्ने गरुड़जीको तहाँसे चले जानेकी आज्ञा दी ।

श्रियः । आसंस्त्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदे- श्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसंधिः । कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरा- सुराः । दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥ सुरासुरे- न्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः । बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो मेने- ऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥ तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् । उद्दीपयन् देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपतः ॥ ११ ॥ उपर्यगेन्द्रं गिरिराडि- वान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः । तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुम- नोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥ उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः । ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥ अहीन्द्रसाहस्रकठोर- दृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः । पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाः

प्रकार परमबली दैवयोगसे समुद्रमन्थनरूप अपने पराक्रमको व्यर्थ हुआ जान कर वह देवता और दैत्य, मनमें अत्यन्त खिन्न हुए और उनके मुखकी कांति मलिन होगई ॥ ६-७ ॥ उस समय जिनके पराक्रमका अन्त पाना कठिन है और जिनका संकल्प कभी असत्य नहीं होता है ऐसे ईश्वरने, विघ्नराजके करे हुए उस विघ्नको देख कर परम अद्भुत कूर्मरूप धारण करा और जलमें घुसे हुए मन्दराचलको ऊपर को उभारा ॥ ८ ॥ हे पाण्डुनन्दन राजन् ! उस समय इधर फिर ऊपरको आये हुए उस पर्वतको देखकर देवता और दैत्य फिर उस समुद्रके मथनेको उठे, इधर मानो दूसरा जम्बुद्वीप ही है ऐसा बड़ा शरीर धारण करनेवाले कूर्मरूप श्रीहरिने लाख योजन चौड़ी-अपनी पीठ पर उस पर्वतको धारण करा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! तब देव दैत्योंने;अपने बाहुबलसे कँपाये हुए और चारों ओरको घूमनेवाले उस पर्वतको पीठ पर धारण करनेवाले,अपरिमित बलशक्तियुक्त उन कूर्म रूप भगवान्ने, उस पर्वत के घूमनेको अपने शरीरका खुजलाना माना ॥ १० ॥ इस प्रकार कूर्म रूपसे विद्य- मान भी वह विष्णुभगवान् मन्थन करते करते उन देव दैत्योंको बड़ा परिश्रम होने के कारण, उस पर्वतको घुमानेके कार्य को ठीक ठीक न देख कर असुरोंमें असुरा- काररूपसे, देवताओंमें देवाकार रूपसे और नागराजमें निद्रारूपसे, उनके बल वीर्य को उत्तेजना देते देते प्रवेश करा ॥ ११ ॥ और उस पर्वतका मस्तक हिलनेके कारण उसके ऊपर महापर्वतकी समान दूसरा सहस्र भुजा वाला शरीर धारण करके और एक हाथसे उस पर्वतको पकड़कर जब भगवान् स्थित हुए तब उनकी स्तुति करने वाले स्वर्गवासी देवताओंने उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ १२ ॥ इस प्रकार उस पर्वतके ऊपर सहस्र भुजावाले रूपसे,नीचे कूर्म रूपसे; देवदैत्योंके शरीरोंमें देवदैत्य रूपसे, पर्वतमें दृढरूपसे और सर्परूप रज्जुमें अभेद्य और अबोधरूपसे प्रविष्ट हुए परमात्माके द्वारा, बल आदिकी वृद्धिसे युक्त और मदोन्मत्त हुए देवता और दैत्य बड़े भारी पर्वतसे जिसमेंके नाकोंके समूहको क्षोभ प्राप्त हुआ है ऐसे उस समुद्रको बड़े वेगके साथ मथने लगे ॥ १३ ॥ उस समय तिस सर्पराज वासुकिके अपरिमित

. सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान् । धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् । समभ्यवर्षन् भगवद्वशा घना ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५ ॥ मथ्यमाने तथा सिन्धौ देवासुरवरूथपैः । यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् १६ मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः । जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः । संभ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यवीर्यम् । भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥ विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् । आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥ २० ॥ प्रजापतय ऊचुः । देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन । त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहना-

और कठोर नेत्र, मुख तथा श्वासोंसे निकले हुए अग्नि और धुएँसे जिनका तेज नष्ट होगया है ऐसे वह पौलोम, कालेय, बलि और इल्वल आदि असुर वनकी दौंसे भस्म हुए सरलके वृक्षकी समान दीखने लगे, ॥ १४ ॥ तथा उस वासुकिके श्वास की लपटोंसे निस्तेज होनेके कारण धुमैले हुए हैं वस्त्र, माला उत्तम कवच और मुख जिनके ऐसे देवताओंके ऊपर मेघवान् अधीन रहने वाले मेघ वर्षा करने लगे और समुद्रकी तरङ्गोंसे स्पर्श करे हुए गीले वायु चलने लगे ॥ १५ ॥ इस प्रकार देव दैत्योंके अधिपतियों करके मथे हुए उस समुद्रमेंसे जब अमृत उत्पन्न नहीं हुआ तब अजित भगवान् आप ही मथने लगे ॥१६॥ हे राजन्! उससमय मेघकी समान श्यामवर्ण, जिन्होंने पीला पीताम्बर पहिना है, जिनके कानोंमें कुण्डलरूप बिजली चमक रही है, जिनके मस्तक पर देदीप्यमान केश चञ्चल होरहे हैं, जिन्होंने वनमाला धारण करी है जिनके नेत्र लाल२ हैं और जिन्होंने पर्वतको धारण करा है ऐसे वह भगवान्, अपनी जयशील भुजाओंके द्वारा सर्परूप रज्जुको ग्रहण करके पर्वतरूप मथनीसे मथने लगे, उस समय दूसरे पर्वतकी समान शोभित हुए१७इसप्रकार मथे हुए तिमि नामक मत्स्य, गज, नाके और तिमिङ्गिलोंसे (बड़े २ मत्स्योंसे) और जिसमें मच्छियें खलबला गई हैं और मकर, सर्प तथा कछुए ऊपरको आगये हैं ऐसे उस क्षीरसागरसे पहिले अत्यन्त दुःसह हलाहल नामवाला विष उत्पन्न हुआ १८ जिस भयङ्कर वेगवालेके सामने कोई भी उपाय नहीं चलता है हरएक दिशा२ में ऊपरको उछलने वाले और नीचेको गिरने वाले उस असह्य विषको देखकर हे राजन्! भयभीत हुए पालन करने वालों सहित सकल प्रजा, दूसरे किसीसे रक्षा नहीं होयगी ऐसा विचार कर सदाशिवकी शरणमें गई ॥ १९ ॥ त्रिलोकीके कल्याणके निमित्त भवानी देवीके साथ कैलास पर्वत पर बैठे हुए, मुनियोंके माननीय और मुनियोंको मोक्षकी प्राप्ति होनेके निमित्त तपस्या करने वाले उन देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवजीको देख कर वह नमस्कार करके स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ प्रजापतिने कहा कि—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे जगदात्मन्! हे भूतपालक! तुम हम

द्विषात् ॥ २१ ॥ त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः । तं त्वार्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥ गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो । धत्से यदा स्वदृग्भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥ २३ ॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः । नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः । कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् । कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥ २६ ॥ नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान् सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः । परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवन् शिरस्ते ॥ २७ ॥ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते । छन्दांसि साक्षात्तव सप्त धातवस्त्रयीमयात्मन् हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥ मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः । यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देव स्वयंज्योतिरव-

---

शरणागतोंकी त्रिलोकीको भस्म करने वाले इस विषसे रक्षा करो ॥२१॥ हे परमात्मन् ! सकल जगत्‌के प्राणियोंके बन्धन और मोक्षके अधिपति एक तुम ही हो, इस कारण शरणागतोंका दुःख दूर करने वाले, जगद्गुरु आपका, विवेकी पुरुष पूजन करते हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे सर्वव्यापक ! इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेकी जब तुम्हें इच्छा होती है तब स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् तुम ही, अपनी गुणमयी शक्तिके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामको धारण करते हो ॥ २३ ॥ क्योंकि—अत्यन्त गुह्य जो ब्रह्म सो तुम ही हो, और देव तिर्यक् आदि प्राणियोंके उत्पन्न करने वाले भी तुम ही हो, नाना प्रकारकी शक्तियोंके द्वारा जगत् रूपसे प्रतीत होने वाले और जगत्‌के चलाने वाले भी तुम ही हो ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! तुम वेदके कारण हो, अतः स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् हो, तथा तुम महत्तत्वरूप हो और प्राण, इन्द्रिय तथा पृथिवी आदि द्रव्य, इनके कारणभूत गुणों करके युक्त तीन प्रकारके अहङ्कार, स्वभाव, काल तथा संकल्परूप हो, और सत्य तथा ऋत यह दो प्रकारके धर्म भी तुम ही हो, क्योंकि—त्रिगुणात्मक माया तुम्हारे ही आश्रयसे रहती है ऐसा वेदवेत्ताओंका कथन है ॥ २५ ॥ तैसे ही हे विश्वको उत्पन्न करनेवाले ! सकल देवमय अग्नि तुम्हारा मुख, भूमि तुम्हारे चरण कमल, काल सकल देवतारूप तुम्हारा गमन, दिशा, तुम्हारे कर्ण और वरुण तुम्हारी रसना इन्द्रिय है ऐसा कहते हैं ॥ २६ ॥ तथा हे भगवन् ! आकाश तुम्हारी नाभि, वायु तुम्हारा श्वास, सूर्य तुम्हारा नेत्र, जल तुम्हारा वीर्य, उत्तम अधम जीवोंका आश्रय तुम्हारा अहंकार, चन्द्रमा तुम्हारा मन और स्वर्ग तुम्हारा शिर है ॥ २७ ॥ हे तीन वेदरूप परमात्मन् ! यह सात समुद्र तुम्हारी कोख, पर्वत तुम्हारी अस्थियोंके समूह, सकल औषधि और लता तुम्हारे रोम, गायत्री आदि छन्द साक्षात् तुम्हारी सात धातु, और सब प्रकारका धर्म तुम्हारा हृदय है ॥ २८ ॥ तथा हे ईश्वर ! तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान, यह उपनिषद्रूप पाँच मन्त्र तुम्हारे पाँच मुख हैं, उन पाँच मन्त्रोंके द्वारा पदच्छेदरूपसे ३८ मन्त्रोंका समूह होता है, हे देव ! जो शिव नामक स्वयंप्रकाश

स्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि । सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥ न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् । ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते । यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ॥ ३२ ॥ ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् । कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥ ३३ ॥ तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः । ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥ एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर । मृडनाय

परमार्थतत्त्व है वह तुम्हारी उपरामको प्राप्त हुई अवस्था है ॥ २९ ॥ हे देव ! अधर्मकी दम्भ लोभ आदिरूप जो लहरें सो तुम्हारी छाया है और जिनसे नाना प्रकारकी सृष्टि होती है ऐसे सत्त्व, रज और तम यह गुण तुम्हारे तीन नेत्र हैं और गायत्री आदि छन्दरूप सनातन वेद तुम्हारा सकल शास्त्रोंका प्रवृत्त करने वाला अवलोकन है ॥ ३० ॥ हे शङ्कर ! जहाँ रज, तम और सत्त्व यह तीनों गुण नाममात्र भी नहीं है ऐसा तुम्हारा भेदशून्य और परम ज्योतिरूप ब्रह्मस्वरूप है, उसको सकल लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु और देवेन्द्र भी नहीं जान सकते हैं ॥ ३१ ॥ हे शङ्कर ! कामदेव, दक्षका यज्ञ, त्रिपुरासुर और कालकूट विष आदि अनेकों प्रकारके प्राणियोंसे द्रोह करने वालोंका नाश करने वाले तुम्हारा वह कर्म अतिअल्प (थोड़ा) होनेके कारण तुम्हारी स्तुति करनेके योग्य नहीं है, क्योंकि–तुम संहारके समय अपने उत्पन्न करे हुए इस विश्वके, अपने नेत्रोंमेंसे उत्पन्न हुए अग्निके कणोंकी ज्वालासे भस्म होने पर उसकी ओरको देखते भी नहीं हो ॥ ३२ ॥ हे ईश्वर ! जगत्को हितका उपदेश करने वाले और अपने स्वरूपमें रमण करने वाले पुरुष, जिन तुम्हारे दोनों चरणों का निरन्तर ध्यान करते हैं और जो तुम ऋषियोंके सम्प्रदायको चलानेके निमित्त तप करते हो, सो तुम उमादेवीके विषैं अत्यन्त आसक्त होकर उनके साथ विहार करते हो इस प्रकार जो तुम्हारी निन्दा करते हैं निःसन्देह वह तुम्हारी लीलाको नहीं जानते हैं, क्योंकि–आत्मामें रमण करने वाले योगियोंने जिनके चरणकमलका सेवन करा है ऐसे आप कामी कैसे होसकते हैं ? और तपके द्वारा शान्त रहनेके कारण उग्रता वा परुषता कैसे होसकती है ? इस कारण वह निन्दक निर्लज्ज ही हैं ॥ ३३ ॥ कार्य कारणसे पर जो माया उससे भी पर, सर्वव्यापक तुम परमेश्वरके साक्षात् स्वरूपके जाननेको पूर्वके ब्रह्मादिक भी समर्थ नहीं हुए फिर स्तुति करनेको तो कहाँसे समर्थ होते ? और उन ब्रह्मादिकोंकी सृष्टिमें अत्यन्त समीपके हम तो तुम्हारी स्तुति करनेको कैसे समर्थ होसकते हैं ! तथापि हमने यह जो स्तुति करी है सो केवल अपनी शक्तिके अनुसार करी है ॥ ३४ ॥ क्योंकि–हे महेश्वर ! केवल यह तुम्हारा दीखने वाला रूप ही देख रहे हैं इससे दूसरा जो तुम्हारा, सबका कारणरूप अतिसूक्ष्म स्वरूप है उसको हम नहीं देखते हैं तथापि तुम्हारा दर्शन

हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच । तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः । सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच । अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् । क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥३७॥ आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे । एतावान् हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ ३८ ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पांति साधवः क्षणभंगुरैः । बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ ३९ ॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः । प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः । तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥ एवमामन्त्र्य भगवान् भवानीं विश्वभावनः । तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् । अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः । यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥४३॥ तप्यंते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः । परमाराधनं तद्धि पुरुषस्या-

होनेके कारण ही आज हम कृतार्थ हुए हैं, क्योंकि-अव्यक्त है कर्म जिसका ऐसा यह तुम्हारा प्रकटपना केवल लोकोंके सुखके निमित्त ही है इस कारण तुम इस विषका नाश करके हमें सुखी करो ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उन प्रजाओंके विषकी उत्पत्तिसे होने वाले दुःखको देख कर महादेवजी कृपासे अत्यन्त व्याकुल हुए और सकल प्राणियोंका हितचिन्तन करने वाले वह महादेवजी अपनी प्रिया सतीसे इस प्रकार कहने लगे कि-॥ ३६ ॥ हे भामिनी ! क्षीर समुद्रको मथनेसे प्रकट हुए कालकूट विषसे यह देख प्रजाओंको कैसा दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ सो प्राणरक्षाकी इच्छा करने वाले इन प्रजाओंको मुझे अभय देना ही चाहिये, क्योंकि-दीनोंका परिपालन करना ही प्रभुओंका अवश्यकर्त्तव्य कार्य है ॥ ३८ ॥ इस कारण साधुपुरुष, अपने, क्षणभंगुर प्राणोंके द्वारा अन्य प्राणियोंकी रक्षा करते हैं और हे भद्रे ! परमात्मा भगवान्‌की मायासे मोहित होकर, एक दूसरेसे वैरभाव करके परस्परका घात करने वाले प्राणियोंके ऊपर जो पुरुष कृपा करता है उसके ऊपर सर्वात्मा श्रीहरि प्रसन्न होते हैं और भगवान् श्रीहरिके प्रसन्न होने पर इस चराचर विश्व सहित मैं भी प्रसन्न होता हूँ इस कारण मैं इस विषको भक्षण करता हूँ, प्रजाओंका कल्याण हो ॥ ३९ ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! विश्वपालक भगवान् शंकरने इस प्रकार भवानीसे कह कर उस विषको भक्षण करना प्रारंभ करा, उस समय उनके प्रभावको जानने वाली पार्वतीने उस कार्यको करनेकी सम्मति दी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सकल जगत्‌में फैलने वाले उस हालाहलनामक विषको अपनी शक्तिसे हथेली पर रख कर उन भूतपालक महादेवजीने कृपापूर्वक भक्षण करा ॥४२॥ उस समय तिस विषने अपना, प्रभाव, उन महादेवजीको भी ऐसा दिखाया कि-उनके कण्ठमें नीलावर्ण उत्पन्न कर दिया परन्तु वह नीलापन भी उन दयालु महादेवजीका भूषण ही हुआ ॥ ४३ ॥ इस प्रकार साधु पुरुष प्रायः लोकोंके दुःखसे आप भी दुःखी होते हैं अर्थात् लोकोंका दुःख देख कर उसको दूर करनेके निमित्त आप दुःख भोगते हैं, दूसरोंके

खिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः । प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् । वृश्चिकाहिविषौषध्यो दंदशूकाश्च ये परे ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे अमृतमथने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच । पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः । ममन्थुस्तरसा सिंधुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥ तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः । यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः । तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः । दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन् भगवतो महिम् ॥ ४ ॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः । तस्मिन् हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् । पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥ ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः । रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ७

निमित्त दुःख सहन करना ही सर्वात्मा पुरुषोत्तम भगवान्‌का सर्वोत्तम आराधन है ॥ ४४ ॥ भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले उन देवाधिदेव शंकरके उस कर्मको देख कर, सकल प्रजा, पार्वती, ब्रह्माजी और विष्णुभगवान्‌ने उनकी प्रशंसा करी ४५ हे राजन् ! उन महादेवजीके विषको पीते समय उनके हाथमेंसे जो यत्किञ्चित् विष नीचे गिरपड़ा उसको विच्छू, साँप, विषैली औषधि, सर्पोंकी अनेकों जातियें तथा अन्य अन्य विषैले प्राणियोंने ग्रहण कर लिया ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ❀ छ

श्रीशुकदेवजीने कहा, कि-हे राजन् ! शिवजीके विषको पीलेने पर प्रसन्न हुए वह देव दानव बड़े वेगसे समुद्रको मथने लगे; तदनन्तर उसमेंसे कामधेनु उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ हे राजन् ! अग्निहोत्रके साधन घृत आदिको उत्पन्न करनेवाली वह कामधेनु, ब्रह्मलोकको पहुँचानेवाले यज्ञमें होमकी सामग्रीके निमित्त वेदवेत्ता ऋषियोंने ग्रहण करी ॥ २ ॥ तदनन्तर चन्द्रमाकी समान श्वेतवर्ण उच्चैःश्रवा नामवाला घोड़ा उत्पन्न हुआ, उसको ग्रहण करनेके विषयमें दैत्यराज बलिने इच्छा करी, असुर जो इच्छा करें उसको तुम स्वीकार करलेना, ऐसा पहिले विष्णुभगवान्‌ने उपदेश करा था इस कारण इन्द्रने उस घोड़ेको लेनेके विषयमें इच्छा न करी ॥ ३ ॥ तदनन्तर अपने चारदन्तोंके द्वारा भगवान् महादेवजीके कैलासपर्वतकी शोभाको हरनेवाला और चन्द्रमाकी समान श्वेत एक ऐरावतहाथी निकला ॥ ४ ॥ तदनन्तर उस महासागरमेंसे पद्मरागमणिरूप एक कौस्तुभ नामवाला रत्न उत्पन्न हुआ, उस कौस्तुभमणिसे अपना वक्षःस्थल भूषित करनेके विषयमें श्रीहरिने इच्छा करी ॥ ५ ॥ तदनन्तर मानों देवलोकका भूषण है ऐसा पारिजात वृक्ष उत्पन्न हुआ हे राजन् ! जैसे भूतलपर तुम सदा याचकोंके मनोरथ पूर्ण करते हो, तैसे ही वह वृक्ष भी इष्ट वस्तु देकर स्वर्गमेंके याचकोंके मनोरथोंको सदा पूर्ण करता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर उत्तम वस्त्र पहिरने वाली, कण्ठमें जुगनी आदि भूषण धारण करने वाली और

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा । रञ्जयंती दिशः कांत्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ८ ॥ तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः । रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥९॥ तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् । मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुंभैर्जलं शुचि ॥१०॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः । गावः पञ्च पवित्राणि वसंतो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि । जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ मेघा मृदंगपणवमुरजानकगोमुखान् । व्यनादयन् शंखवेणुवीणास्तुमुलनिःस्वनान् ॥१३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्माकरां सतीम् । दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥ १४ ॥ समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् । वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥१५॥ भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः । हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्विरेफां परिगृह्य पाणिना । चचाल वक्त्रं सुक-

---

सुन्दर गति विलास तथा अवलोकनके द्वारा स्वर्गमें रहने वाले देवताओंको रमण करानेवालीं अप्सरा उत्पन्न हुईं ॥७॥ तदनन्तर सुदामा नामक पर्वतकी एक दिशा से उत्पन्न हुई विद्युच्छटाकी समान अपनी कान्तिसे सकल दिशाओंको प्रकाशित करनेवाली और साक्षात् सम्पत्तिका ही रूप धारण करनेवाली भगवत्परायण लक्ष्मी उत्पन्न हुई ॥८॥ उसके सुन्दररूप, उदारता अवस्था और कान्तिकी महिमासे मोहित चित्तहुए सकल ही देव दानव और मनुष्य इसकी इच्छा करनेलगे ॥९॥ हे राजन् ! उस लक्ष्मीको महेन्द्रने एक बड़ा अद्भुत आसन समर्पण करा, और मूर्तिमती श्रेष्ठ नदियें सुवर्णके कलशोंमें उसके अभिषेकके निमित्त जल लाईं ॥ १० ॥ तैसेही भूमि ने अभिषेक कार्यमें लगने वाली सकल औषधियें समर्पण करीं, गौओंने दूध आदि पञ्चगव्य समर्पण करा, और वसन्त ऋतुने अपने चैत्र वैशाखमासमें होने वाले फल पुष्प आदि समर्पण करे ॥ ११ ॥ तदनन्तर ऋषियोंने, शास्त्रमें कही हुई विधिसे उसका अभिषेक करनेका प्रारम्भ करा, उस समय गन्धर्व मङ्गलकारी गीतोंका गान करने लगे, तथा नटोंकी स्त्रियें नृत्य और गान करने लगीं ॥ १२ ॥ उस समय मेघ मन्द मन्द गर्जना करने लगे, और लोग बड़े २ शब्दवाले मृदङ्ग, पणव, मुरज आनक और गोमुख आदि बाजोंको बजाने लगे और शंख, वेणु तथा वीणाओंका भी नाद होने लगा ॥ १३ ॥ तदनन्तर हाथमें कमल धारण करने वाली पतिव्रता लक्ष्मी देवी को ब्राह्मणोंके पढ़ेहुए सूक्तवाक्योंके साथ जलके भरेहुए कलशोंसे दिग्गजोंने अभिषेक करा ॥ १४ ॥ तदनन्तर सागरने उस लक्ष्मीको रेशमके पीले वस्त्रोंका जोड़ा समर्पण करा, वरुणने, जिसके ऊपर मदको भक्षण करने वाले भ्रमर गुञ्जार शब्द कर रहे हैं ऐसी वैजयन्ती नामक माला समर्पण करी ॥ १५ ॥ विश्वकर्मा प्रजापति ने नानाप्रकारके रङ्ग वाले रत्नोंसे जड़े हुए भूषण दिये सरस्वतीने हार समर्पण करा; ब्रह्माजीने कमल समर्पण करा और नागोंने दो कुण्डल दिये ॥१६॥ तदनन्तर भूषण और कुङ्कुम आदि सौभाग्यके द्रव्योंको धारण करके, सुन्दर कपोलोंपर कुंडलों की कान्तिसे झलकने वाले और लज्जा युक्त हास्य सहित ऐसे शोभायमान मुख

पोलकुण्डलं समं.द्धासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥ स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दनकुंकुमोक्षितम् । ततस्ततो नूपुरवल्गुशिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥ विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारि सद्गुणम् । गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ॥ १९ ॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न संगवर्जितम् । कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ॥ २० ॥ धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् । वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं न हि द्वितीयो गुणसंगवर्जितः ॥ २१ ॥ क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः । यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न कांक्षते हि माम् ॥२२॥ एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतागुणाश्रयम् । वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा

वाली वह लक्ष्मी, जिसके ऊपर गुञ्जार शब्द करने वाले भ्रमर हैं ऐसी कमलोंकी मालाको हाथमें लेकर अपने योग्य वरको देखनेके निमित्त आसन परसे उठी ।१७। जिसका उदर अतिकृश है ऐसी वह लक्ष्मी, चन्दन और केशरसे लिप्त, एक समान और परस्पर सटे हुए दोनों स्तनोंको धारण करती हुई, नूपुरोंके मनोहर शब्दोंसे अपना चलना जताती हुई इधर उधरको विचरतेमें सुवर्णकी लताकी समान शोभायमान हुई ॥ १८ ॥ हे राजन् ! वह लक्ष्मी निर्दोष, अविनाशी और निरन्तर रहनेवाले श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त ऐसे, अपने आश्रयभूत पतिको, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध चारण और स्वर्गवासी देवादिकोंमें खोजने लगी परन्तु सर्वत्र किसी न किसी दोषके होनेके कारण उसको वैसा पति नहीं मिला॥१९॥ दुर्वासा आदिकोंमें तप है परन्तु उन्होंने क्रोधको नहीं जीता है, कहीं कहीं बृहस्पति शुक्र आदिके विषें ज्ञान है परन्तु उनमें वैराग्य नहीं है, ब्रह्मा चन्द्रमा आदि कोई२ महात्मा हैं परन्तु उन्होंने कामको नहीं जीता है और जो इंद्रियादि दूसरेके आश्रयकी इच्छा करने वाले हैं उनको ईश्वर ही कैसे कहा जाय ? इससे वह भी वरनेके योग्य नहीं हैं ॥ २० ॥ तथा कोई परशुराम आदि धर्मनिष्ठ हैं परन्तु उनमें प्राणियोंके ऊपर दयाभाव नहीं है, कहीं शिवि राजा आदिके विषें दान है परन्तु वह मुक्तिका कारण नहीं है, किसी कार्त्तवीर्य समान पुरुषमें बल है परन्तु वह कालके वेगसे छूटा हुआ नहीं है, विषयोंके संगसे रहित ऐसे कोई सनकादिक हैं परन्तु वह निरन्तर समाधि लगानेके कारण वरनेके योग्य नहीं हैं ॥ २१ ॥ कहीं मार्कण्डेय आदिके विषें बड़ी आयु है परन्तु स्त्रियोंका सुखकारी स्वभाव नहीं है, कहीं कहीं हिरण्यकशिपुकी समान पुरुषोंमें स्त्रियोंको सुखदायक स्वभाव भी है परंतु उनकी आयुका निश्चय समझनेमें नहीं आता, कहीं शिव शंकर आदिकेविषें स्त्रियोंका सुखकारी स्वभाव और आयुका निश्चय यह दोनों ही हैं परंतु वह अमंगल हैं और कोई एक पुरुष (श्रीमुकुन्द) अत्यन्त मङ्गलकारी आचरणोंसे युक्त और सब प्रकार निर्दोष है परंतु वह मेरी इच्छा नहीं करता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार विचार करके मायाके गुणोंसे पर, नित्य रहनेवाले, धर्मज्ञान आदि श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त और अपने मुख्य आश्रय होनेके कारण सर्वोत्तम, और अपनेको प्रिय

मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥ २३ ॥ तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् । तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥ २४ ॥ तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः । श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥ शंखतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः । देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्रांगिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् । ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिंगैः पुष्पवर्षिणः ॥ २७ ॥ श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः । शीलादिगुणसम्पन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥ २८ ॥ निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः । यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्याबभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना । असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥ अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः । उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥ ३१ ॥ दीर्घपीवरदोर्दंडः कम्बुग्रीवोरुणेक्षणः । श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ३२

प्रतीत होनेवाले तथा अणिमा आदि सकल गुणोंने जिनको वरा है ऐसे कुछ अपेक्षा न करने वाले श्रीमुकुन्दको लक्ष्मीने वर लिया ॥ २३ ॥ अर्थात् मदोन्मत्त भ्रमरोंके झुण्डोंकी झंकारसे गुञ्जारती हुई सुंदर नवीन कमलोंकी माला मुकुन्दभगवान्के कंधेमें स्थापन करके समीपमें, लज्जायुक्त हास्यसे खिलनेवाले नेत्रोंसे, अपने निवासभूत उनके वक्षःस्थलकी ओरको 'यह स्थान मुझे प्राप्त हो' ऐसी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी रही ॥ २४ ॥ हे राजन् ! सकल ऐश्वर्योंसे युक्त उन त्रिभुवनजनक श्रीविष्णुभगवान्ने अपना वक्षःस्थल ही उस त्रैलोक्यजननी लक्ष्मीका स्थिर निवासस्थान करा, तदनन्तर तहाँ रहने वाली उस लक्ष्मीने, दयायुक्त अवलोकनके द्वारा अपनी प्रजाओंकी अर्थात् लोकपालों सहित त्रिलोकीमेंके प्राणियोंकी वृद्धि करी ॥ २५ ॥ उस समय शंख, तुरही और मृदङ्ग इन बाजोंका तथा स्त्रियोंके साथ नृत्य और गान करने वाले देवताओंके अनुयायी गन्धर्वोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥२६॥ तैसे ही ब्रह्मा, रुद्र और अंगिरा जिनमें मुख्य हैं, ऐसे सकल प्रजापति, पुष्पोंकी वर्षा करते हुए, विष्णुभगवान्का वर्णन करने वाले यथार्थ मन्त्रोंसे स्तुति करने लगे २७ तदनन्तर लक्ष्मीने जिनको अपने कृपाकटाक्षसे अवलोकन करा है ऐसी प्रजापतियों सहित सकल प्रजा, सुन्दर स्वभाव आदि गुणोंसे युक्त होकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥ २८ ॥ हे राजन् ! जब लक्ष्मीने देव दानवोंकी उपेक्षा करी (उनको नहीं वरा) तब वह धैर्यहीन, विषयासक्त, उद्योगहीन और निर्लज्ज हुए ॥ २९ ॥ तदनन्तर उस क्षीर समुद्रमेंसे जिसके कमलकी समान नेत्र हैं ऐसी सुन्दर रूपवती देवी, कन्यारूपसे उत्पन्न हुई तब श्रीहरिकी सम्मतिसे उस सुराको असुरोंने स्वीकार करा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे महाराज ! अमृतकी प्राप्तिके निमित्त देव दैत्योंके क्षीरसागरको मथते हुए उसमेंसे अत्यन्त अद्भुत एक पुरुष निकला ॥ ३१ ॥ उसकी भुजा लम्बी और पुष्ट थी, कण्ठ शंखकी समान तीन रेखाओंसे युक्त था, नेत्र कुछ एक लाल लाल थे और वर्ण मेघकी समान श्याम था, अवस्था तरुण थी, कण्ठमें

पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः । स्निग्धकुञ्चितकेशांतः सुभगः सिंहविक्रमः अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः । स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ३४ धन्वंतरिरिति ख्यात आयुर्वेदहगिज्यभाक् । तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् । लिप्संतः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ॥ ३५ ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने । विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ ३६ ॥ इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान् भृत्यकामकृत् । मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ३७ मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् । अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं त्वमिति प्रभो ३८ देवाः स्वं भागमर्हंति ये तुल्यायासहेतवः । सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः । इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः । दुर्बलाः प्रबलान् राजन् गृहीतकलशान्मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः । योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥ प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् । समानकर्णाभरणं

पुष्पोंकी माला थी और वह सकल भूषणोंसे भूषित था ॥ ३२ ॥ तथा वह पीले वस्त्र पहिने हुए था, उसका वक्षःस्थल विशाल था, उसके रत्नजटित कुण्डल बड़े ही स्वच्छ थे, उसके केशोंके अग्रभाग चिकने और बल खाये हुए थे वह देखनेमें सुन्दर और सिंहकी समान पराक्रमी था ॥३३॥ वह हाथमें अमृत भरा कलश लिये हुए था वह हाथमें धारण करे हुए कड़े तोड़ोंसे भूषित था, वह साक्षात् विष्णुभगवान्के अंशसे उत्पन्न हुआ धन्वंतरि इस नामसे प्रसिद्ध, वैद्यकशास्त्रका चलानेवाला और यज्ञमें हविका भाग ग्रहण करने वाला हुआ, उसको और उसके हाथमेंके अमृतसे भरे कलशको देख कर, कामधेनु आदि सकल वस्तुएँ अपनेको प्राप्त होनेकी इच्छा करनेवाले उन सकल असुरोंने वेगसे वह अमृतका कलश उससे छीनलिया ३४।३५ हे राजन् ! जब अमृतके पात्र उस कलशको लेकर असुर जाने लगे तब देवता मन में खिन्न होकर श्रीहरिकी शरण गये ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उनकी दीनताको देख कर अपने सेवकोंके मनोरथ पूर्ण करने वाले भगवान्ने, उन देवताओंसे कहा कि-तुम खेद न करो, मैं अपनी मायाके प्रभावसे उनमें आपसमें कलह उपजा कर तुम्हारा कार्य साधूँगा ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! तदनन्तर उस अमृतके निमित्त जिनके मन आशासे भरे हुए हैं ऐसे उन असुरोंका मैं पहिले अमृत पीऊँगा, मैं पहिले अमृत पीऊँगा, तू नहीं, तू नहीं, इस प्रकार परस्पर कलह हुआ ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! समान परिश्रम करनेके कारण अमृतको उत्पन्न करनेमें कारणभूत देवता भी सत्रयागकी समान अमृतमेंसे अपना अपना भाग पानेके योग्य हैं, यही सनातन धर्म है ऐसा कहकर डाहमें भरे हुए दुर्बल दैत्य, कलश हर कर लेजाने वाले अपने बलवान् दैत्योंको बारम्बार निषेध करने लगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ इस प्रकार उन दैत्योंमें कलह होना प्रारम्भ हुआ, सो इतनेमें ही सकल उपायोंको जानने वाले सर्वसमर्थ विष्णुभगवान्ने अति अद्भुत, जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसा स्त्रीका रूप धारण करा ॥ ४१ ॥ वह रूप देखने योग्य नील कमलकी समान श्यामवर्ण और सकल अङ्गोंसे सुन्दर था, जिसमें एक समान कानोंमें भूषण धारण करे थे और

सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् । मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् । सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजांगदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजांबरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया । कांच्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ॥४५॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः । दैत्ययूथपचेतःसु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच । तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरंतस्त्यक्तसौहृदाः । क्षिपंतो दस्युधर्माण आयांतीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥ अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः । इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥२॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि । कस्यासि वद वामोरु मथ्नंतीव मनांसि नः ॥ ३ ॥ न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः । नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥ ४ ॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषिताऽसि शरीरिणाम् । सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ५

उत्तम कपोल तथा उत्तम नासिकासे युक्त मुख था ॥ ४२ ॥ जिसका उदर, नवीन यौवनके कारण गोल २ स्तनोंके भारसे झुका जाता था, जिसके नेत्र मुखरूप कमलकी सुगन्धिमें आसक्त हुए भ्रमरोंके झङ्कार शब्दोंसे व्याकुल होरहे थे ॥ ४३ ॥ जिसने अपने शिरकी चोटीमें मोगरेके खिले हुए फूलोंकी माला धारण करी थी,जो कण्ठको शोभा देने वाले कण्ठके आभूषणोंसे भूषित था, ॥ ४४ ॥ जो रूप उत्तम भुजाओंमें धारण करे हुए बाजूबन्दोंसे शोभायमान था, जो निर्मल वस्त्रसे ढके हुए नितम्बरूप द्वीपके ऊपर शोभा पाने वाली तागड़ीसे अत्यन्त ही सुन्दर दीखता था, जिसने सुन्दर गतिसे चलने वाले चरणोंमें पायजेबें धारण करी थीं ॥ ४५ ॥ और जो स्वरूप, लज्जायुक्त हास्यके साथ फेंके हुए भ्रुकुटिके कम्पायमान भ्रूविलासों सहित चितवनों करके दैत्यसेनापतियोंके अन्तःकरणोंमें बारम्बार कामोद्दीपन करता था ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तदनन्तर अमृतके निमित्त स्नेहको त्याग कर परस्परकी निन्दा करते हुए और बलात्कारसे चोरी करने वाले डाँकुओंकी समान एक दूसरेसे अमृतका पात्र छीनते हुए उन दैत्योंने आती हुई एक स्त्रीको देखा ॥ १ ॥ तदनन्तर उसको देखनेसे जिनके कामोद्दीपन हुआ है ऐसे वह असुर अहा-हा ! कैसी इसकी सुन्दरता है, कैसी इसकी कान्ति है ! कैसी इसकी अवस्था है ! ऐसे कहते कहते उसके समीप जाकर उससे बूझने लगे कि-॥ २ ॥ हे कमलदलनयनि ! हे सुन्दर जङ्घावाली ! हमारे मनोंको मथने वाली तू किसकी कौन है ? कहाँसे आयी है ? और यहाँ आकर तू कौनसा कार्य करनेकी इच्छा कर रही है? ३ हे सुन्दरि ! देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और लोकपालोंमेंसे किसीने भी आज पर्यन्त तुझे स्पर्श नहीं करा है, ऐसा हम समझते हैं, फिर मनुष्य तो तेरा स्पर्श करते ही कहाँसे ? ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु ! देहधारी प्राणियोंकी सकल इन्द्रियें और मनको तृप्त करनेके निमित्त ही, निःसन्देह परमदयालु विधाताने तुझे भेजा है ॥५॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि । ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥ वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः । विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥ इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः । प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः । विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥९॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः । सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच । इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः । जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥ ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा । यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् । १२ । इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः । अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत १३ अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् । दत्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥१४॥ यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते । कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्राग-

तिससे हे सुमध्यमे ! हे मानिनि ! एक ही वस्तुमें स्पर्धा करने वाले, परस्पर दूसरेके वैरी हुए हम सब ज्ञातिवालोंका तू कल्याण कर॥६॥हे सुन्दरि ! हम सब कश्यपजीके पुत्र परस्परमें भ्राता हैं और अमृत पानेके निमित्त हम सबोंने मिल कर बड़ाभारी उद्योग करा है इस कारण जिस प्रकार हम सबोंका आपसमें विरोध न होय तिस रीतिसे तू हमें यह अमृत बाँट दे ॥७॥ इस प्रकार दैत्यों करके प्रार्थना करे हुए और मायासे स्त्रीका रूप धारण करने वाले श्रीहरि कुछ हँस कर मनोहर नेत्र कटाक्षोंसे उनकी ओरको देखते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे कश्यपजीके पुत्रों ! मुझ व्यभिचारिणी स्त्रीके विषैं तुम कैसे आसक्त हुए हो ? क्योंकि-जो पण्डित है वह कामिनी स्त्रियोंमें कभी भी विश्वास नहीं करता है ॥ ९ ॥ हे दैत्यो ! नित्य नवीन नवीनकी खोज करने वाले श्वानोंकी और व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी मित्रता अनित्य है ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उसके लीलायुक्त वचनोंसे जिनके मनको विश्वास हुआ है ऐसे असुरोंनें, किसी एक अकथनीय अभिप्रायसे गम्भीरताके साथ हँस कर अमृतका पात्र उसके हाथमें दे दिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस अमृतके पात्रको ले कर कुछ मुसकुरानेसे शोभायमान वाणीके द्वारा श्रीहरि इस प्रकार कहने लगे कि—हे दैत्यो ! मेरा करा हुआ कार्य भला हो या बुरा हो यदि तुम उसको स्वीकार करो तो मैं इस अमृतको बाँट देती हूँ ॥ १२ ॥ इस प्रकारके उसके कथनको सुन कर उसके भेदको न जाननें वाले असुरोंने 'ठीक है, ऐसा कह कर' उसको वह अमृत बाँट देनेकी सम्मति दी ॥ १३ ॥ तदनन्तर एक दिन निराहार व्रत करके दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्नान करके, अग्निमें हवनकी सामग्रियोंसे होम करके, गौ, ब्राह्मण और अन्य प्राणियोंको यथा योग्य कोमल तृण आदिका दान देकर तथा ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करवा कर, अपने चित्तके अनुसार नवीन २ वस्त्र धारण करके और भूषण पहिन कर वह सब ही देव दैत्य पूर्वकी ओरको अग्रभाग करे हुए

ग्रे ष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च । धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेंद्र करभोरुशदुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी । सा कूजती कनकनूपुरशिंजितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ॥ १७ ॥ तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् । संवीक्ष्य संमुमुहुरुस्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकांताम् ॥१८॥ असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् । मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥ कल्पयित्वा पृथक्पंक्तीरुभयेषां जगत्पतिः । तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पंक्तिषु ॥ २० ॥ दैत्यान् गृहीतकलशो वंचयन्नुपसञ्चरैः । दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप । तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः । बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥ २३ ॥ देवलिंगप्रतिच्छन्नः

कुशोंके ऊपर बैठे ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! पुष्प और दीपोंसे युक्त और धूपोंसे बसे हुए उस स्थानमें देवता और दैत्योंके पूर्वको मुख करके बैठने पर, जिसकी जङ्घा करभकी समान (हाथके पहुँचेसे लेकर हाथके अँगूठे पर्यन्त हाथके बाहरके भागकी समान) उतार चढ़ावकी गोल हैं, जिसकी गति, सुन्दर पीताम्बरसे ढके हुए विशाल कटिभागके कारण (नितम्बके भारसे) मन्द होरही है, सुवर्णकी पायजेबोंकी झनकारका शब्द कररही है, जिसके नेत्र मदसे विह्वल होरहे हैं जो और जिसके स्तन कलशकी समान गोल और पुष्ट हैं ऐसी वह मोहिनी स्त्री, हाथमें अमृतका कलश लेकर उस सभामेंको गई ॥ १६ ॥ १७ ॥ उस समय, जिसने सुवर्णके कुण्डल धारण करे हैं, जिसके कान, नासिका, कपोल और मुख यह अङ्ग मनोहर हैं और जिसकी चोली स्तनों परसे कुछ एक सरकी हुई सी होरही है ऐसी उस परदेवता नामक लक्ष्मीकी सखीको देख कर उसकी मुसकुरान सहित चितवनसे वह देवता और दैत्य अत्यन्त मोहित होगये ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जो स्वभावसे ही क्रूर हैं ऐसे असुरोंको अमृत देना सर्पोंको दूध पिलानेकी समान अन्याय है ऐसा जान कर अच्युत भगवान्ने उनको वह अमृत नहीं दिया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन जगत्पति श्रीहरिने, उन दोनोंकी अलग अलग पंक्ति करके अपनी अपनी पंक्तिमें बैठा दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर हाथमें अमृतका कलश धारण करने वाले श्रीहरिने, बड़े सन्मानके साथ नेत्रके कटाक्ष, हास्य, लज्जा और प्रियवचनोंके द्वारा उन दैत्योंको धोखा देकर दूर बैठे हुए भी देवताओंको जरा और मृत्युका नाश करने वाला अमृत पिलाया ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उस समय अपने करे हुए नियमका पालन करने वाले वह असुर, स्त्रीके साथ वादविवाद करनेकी लज्जाके कारण और उसने उनको प्रेम दिखाया इस कारण मौन ही बैठ रहे ॥ २२ ॥ क्योंकि-उसमें उनका अत्यन्त ही प्रेम होगया था उसमें अन्तर पड़ जानेका उनको भय था, और यह देवता अत्यन्त अधीर होरहे हैं इस कारण पहिले थोड़ासा अमृत इनको पिलाये देती हूँ तुम धैर्यवान् हो इस कारण क्षण भर धीरज रक्खो, इस प्रकार बड़े

स्वर्भानुर्देवसंसदि । प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥ चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः । हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥२५॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् । यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः । पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वरूपं जगृहे हरिः ॥२७॥ एवं सुरासुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः । तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसापुर्यत्पादपंकजरजः श्रयणान्न दैत्याः ॥ २८ ॥ यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् । तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सन्मानके साथ उनको अत्यन्त वशमें कर लिया था इस कारण उन्होंने कुछ अप्रिय भाषण नहीं करा ॥ २३ ॥ इतने हीमें देवताओंके वेषसे अपने स्वरूपको ढक कर और देवताओंकी पंक्तिमें सूर्य चन्द्रमाके बीचमें बैठे हुए राहुने अमृत पिया सो इतने ही में उन सूर्य और चन्द्रमाने 'यह दैत्य है' ऐसा विष्णु भगवान्को सूचित करा ॥ २४ ॥ उसी समय छुरेकी सी तीखी धार वाले अपने चक्रसे श्रीहरिने, उस अमृत पीने वाले राहुका शिर धड़से अलग कर दिया तब जिसको अमृतका स्पर्श नहीं हुआ ऐसा धड़ प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ २५ ॥ परन्तु उसका मस्तक तो अमृतका स्पर्श होनेके कारण अमर होगया था इस कारण उसको भगवान्ने सूर्य आदिकी समान ग्रह होनेका अधिकार देदिया, वह राहु, सूर्य चन्द्रमाने सूचित करा था इस कारण उनके साथ वैरभाव रखकर अब भी पर्वके दिन सूर्य चन्द्रमाके सन्मुख दौड़ता है ॥ २६ ॥ जब देवताओंने खूब अमृत पीलिया तब लोकपालक भगवान् श्रीहरिने, दैत्याधिपतियोंके सामने अपना स्वरूप धारण करा हे राजन् ! इस प्रकार देश, काल, हेतु (मन्दराचल आदि) अर्थ (समुद्रमें लता डालना इत्यादि) प्रयत्न और बुद्धि यह सब देवताओंके और दैत्योंके एक समान ही थे तथापि उन देवता और दैत्योंको फल मिलनेमें भेद हुआ, उनमें जिनके चरण कमलोंकी रजके कणोंका आश्रय करनेके कारण देवताओंको अनायासमें अमृतरूप फल प्राप्त हुआ और जिनसे विमुख होनेके कारण दैत्योंको वह फल नहीं प्राप्त हुआ उन श्रीहरिकी ही सबको सेवा करना उचित है ॥ २८ ॥ क्योंकि-प्राण द्रव्य, कर्म, वाणी और मनके द्वारा देह तथा पुत्र आदिके निमित्त जो पुरुष कर्म करते हैं वह भेदबुद्धिसे करा हुआ होनेके कारण, जैसे वृक्षकी शाखाओंको सींचना व्यर्थ होता है तैसे ही व्यर्थ होता है और उन ही प्राण आदिकोंके द्वारा ईश्वरके उद्देश्यसे पुरुष जो कर्म करते हैं वह कर्म अभेद बुद्धिसे होनेके कारण, जैसे वृक्षकी जड़का सींचना सकल गुद्दे शाखा आदिकी तृप्ति करने वाला होता है तैसे ही सबको पहुँचकर परम फलदायक होता है ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच। इति दानवदैतेया नाविंदन्नमृतं नृप। युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥१॥ साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान्। पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः। अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः। प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥४॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः। रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे। समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शंखतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान्। हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥७॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः। हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥ ८ ॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः। केचिद्गौरमुखैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ९ गृध्रैः कंकैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः। शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः १० शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः। वस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस प्रकार एकाग्रतासे समुद्रका मथनारूप कर्ममें उद्योग करनेवाले भी उन दानवदैत्योंको, अमृत नहीं मिला, क्योंकि-वह वासुदेव भगवान्‌से विमुख थे ॥ १ ॥ हे राजन्! इस प्रकार समुद्रको मथनेसे अमृत पाकर और वह अपने भक्त देवताओंको पिला कर तहाँ विद्यमान सकल प्राणियोंके देखते हुए वह भगवान्, गरुड़जीके ऊपर बैठ कर अपने वैकुण्ठलोकको चले गये ॥ २ ॥ तदनन्तर अपने शत्रुओंकी परम उन्नति देख कर उसको सहन न करने वाले दैत्य, आयुध उठाकर युद्ध करनेको देवताओंके ऊपरको दौड़े ३ तदनन्तर श्रीनारायणके चरणका आश्रय करनेके कारण पियेहुए अमृतसे बल पुष्टि आदि सम्पत्ति करके वृद्धिको प्राप्तहुए सकल देवता अस्त्र शस्त्र ग्रहण करके असुरों के साथ युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ हे राजन्! उस क्षीरसमुद्रके तट पर, शरीर पर रोमाञ्च खड़े करने वाला देवासुर नामक महाभयङ्कर घोर युद्ध हुआ ॥ ५ ॥ उस युद्धमें जिनका चित्त क्रोधमें भर गया है ऐसे वह देवता और दैत्यरूप शत्रु, अपने अपने बल ऐश्वर्य आदिकी समता जान कर एक दूसरेके समीप आकर खड्ग,बाण और नानाप्रकारके आयुधोंसे परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ६ ॥ तब तहाँ शंख, डंका मृदङ्ग, भेरी और डौरू इन बाजोंका और गर्जना करने वाले हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलोंका बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ ७ ॥ उस युद्धमें रथियोंके साथ रथी, पैदलों के साथ पैदल,घोड़ोंके साथ घोड़े और हाथियोंके साथ हाथियोंका युद्ध होनेलगा ८ तथा हे राजन! कोई योधा ऊँटोंके ऊपर, कोई हाथियोंके ऊपर कोई गधोंके ऊपर, कोई गोरे मृगोंके ऊपर, कोई रीछोंके ऊपर, कोई व्याघ्रोंके ऊपर, कोई सिंहोंके ऊपर, कोई गिद्धोंके ऊपर, कोई कंक पक्षियोंके ऊपर, कोई बगुलोंके ऊपर, कोई बाजोंके ऊपर, कोई भास पक्षियोंके ऊपर, कोई तिमिङ्गिल नाम वाले मच्छोंके ऊपर, कोई शरभोंके ऊपर, कोई भैंसोंके ऊपर, कोई गैंडोंके ऊपर, कोई बैलोंके ऊपर, कोई नीलगायोंके ऊपर, कोई अरुणोंके ऊपर, कोई गीदड़ोंके ऊपर, कोई

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः । सेनयोरुभयो राजन् विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः । महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः । स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥ देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन । रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः । यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः । बालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः । नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः । शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शंकुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः । तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः । अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः । सर्व एते

चूहोंके ऊपर, कोई घिरघटोंके ऊपर; कोई खरगोशोंके ऊपर, कोई मनुष्योंके ऊपर, कोई बकरोंके ऊपर, कोई कृष्णसार मृगोंके ऊपर, कोई हंसोंके ऊपर, कोई शूकरों के ऊपर, कोई जलचर और थलचर जीवोंके ऊपर और कोई अकराल विकराल देह वाले प्राणियोंके ऊपर चढ़ कर दोनों सेनाओंमें आगे २ को घुसे और युद्ध करने लगे ॥ ९-१२ ॥ हे पाण्डुनन्दन राजन्! नानाप्रकारके रङ्गोंकी ध्वजा पताका, श्वेत और निर्मल छत्र, रत्नोंसे जड़ी हुई दण्डियें वाले बहुमोल पंखे, मोरछल, चँवर, वायु से उड़ने वाले दुपट्टे, पगड़ियें कवच, भूषण; सूर्यकी किरणोंसे दमकनेवाले उज्जल शस्त्र; इनके द्वारा शोभा पाने वाले शूरोंके समूहोंसे देव दैत्योंकी दोनों सेना, जलचर प्राणियोंसे शोभा पाने वाले दो समुद्रोंकी समान शोभित होने लगीं ।१३-१५। हे प्रभो ! उस युद्धमें सकल सेनापतियोंसे घिरा हुआ वह दैत्य-सेनापति विरोचन का पुत्र राजा बलि, युद्धके काममें आनेवाले सकल साधनोंसे युक्त, सकल आश्चर्यों से भरे हुए, कभी दृश्य और कभी अदृश्य होनेके कारण मनसे तर्कना करनेमें और वाणीसे वर्णन करनेमें न आने वाले, मयासुरके रचे हुए और चाहें जिस स्थान पर जाने वाले वैहायस नामवाले उत्तम विमानपर बैठा तब बालोंके व्यजन (चँवर) और उत्तम छत्रोंके द्वारा उदयके समय शोभा पाने वाले चन्द्रमाकी समान शोभित हुआ ॥ १६-१८ ॥ उस बलिके सब ओर अपने अपने रथ आदिकोंके ऊपर चढ़े हुए अपने अपने समूह (रिसाले) के अधिपति असुर, नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, यहग्रीव, शङ्कुशिरा, कपिल, मेघदुंदुभि, तारक, चक्रदृक्, शुम्भ, निशुम्भ, जंभ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति, मयासुर, यह तथा और भी पौलोम, कालेय और निवातकवच आदि थे ॥ १९—२२ ॥ यह सब ही अमृतका भाग न मिलनेके कारण केवल क्लेशके ही भागी हुए थे और इन सबोंने पहिले रणभूमिमें

रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३ ॥ सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शंखान्दध्मुर्महारवान् । दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्वलभित्कुपितो भृशम् ॥ २४ ॥ ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् । यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥ २५ ॥ तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः । लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ २६ ॥ तेऽन्योऽन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः । आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः २७ युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत । वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै । शंबरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥ अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा । सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ३० राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः । निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥ वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः । इल्वलः सह वातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥ ३२ ॥ कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह । बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ॥३३॥ मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः । विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥ त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युद्ध्यमानाः । अन्योऽन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ३५

अनेकों बार देवताओंको जीता था, इस कारण वह सिंहकी समान गर्जते हुए बड़े भारी शब्द वाले शंखोंको बजाने लगे, तब अपने शत्रुओंको उन्मत्त हुआ देख कर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए देवराज इन्द्र, ऐरावत नामक दिग्गजके ऊपर चढ़े तब वह जिसके ऊपर जलका प्रवाह बह रहा है ऐसे उदयाचलके ऊपर चढ़े हुए सूर्यकी समान शोभित हुए ॥ २३-२५ ॥ तब नानाप्रकारकी सवारियें, ध्वजा और शस्त्रोंसे युक्त देवता और अपने अपने गणों सहित वायु, अग्नि, वरुण और लोकपाल उस इन्द्रके चारों ओर होलिये ॥२६॥ तदनन्तर वह देवता और दैत्य एक दूसरेके सामने जाकर, मर्मभेदी वाक्योंसे एक दूसरेका तिरस्कार करते और एक दूसरेका नाम ले कर पुकारते हुए आगे आगेको बढ़ कर युद्ध करने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! इन्द्रके साथ बलि राजा युद्ध करने लगा, तारकासुरके साथ षडानन, हेतिके साथ वरुण, और प्रहेतिके साथ मित्र युद्ध करनेलगा ॥ २८ ॥ हे शत्रुदमन ! कालनाभिके साथ यम, मयासुरके साथ विश्वकर्मा, त्वष्टासे शम्बर, सवितासे विरोचन अपराजित से नमुचि, वृषपर्वासे अश्विनी कुमार और जिसमें बाणासुर बड़ा है ऐसे बलिके सौ पुत्रोंके साथ सूर्यदेव युद्ध करने लगे ॥ २९ ॥ ३० ॥ राहुसे चन्द्रमा, पुलोमासे वायु शुम्भनिशुम्भोंके साथ महावेगवती भद्रकाली देवी, जम्भासुरके साथ वृषाकपि, महिषासुरसे विभावसु, ब्रह्मपुत्रोंके साथ वातापीसहित इल्वल युद्ध करनेलगा ३१।३२ कामदेवके साथ दुर्मर्ष, मातृगणोंके साथ उत्कल, शुक्राचार्यके साथ बृहस्पति, नरकासुरके साथ शनैश्चर, निवातकवचोंके साथ मरुद्गण, कालेयके साथ देवता अष्टवसु, पौलोमके साथ विश्वेदेव और क्रोधवश नामक दैत्यगणोंके साथ एकादश रुद्र युद्ध करने लगे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वह असुर और देवता, युद्धमें दो दो हो कर एक एकके साथ जुटकर युद्ध करते हुए वेगके साथ परस्पर शरीरोंके ऊपरको

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि । निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरंगाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः । निकृत्तबाहूरुशिरोधरांघ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥ तेषां पदाघातरथांगचूर्णितादायोधनादुल्वण उत्थितस्तदा । रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन् न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः । महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥ कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितः स्वशिरोऽक्षिभिः । उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावंतो भटान्मृधे ॥ ४० ॥ बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः । चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्छयत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः । चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान् हसन्निव ॥ ४२ ॥ तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे । तां ज्वलंतीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥४३॥ ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः । यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं

झपटकर बाण, खड्ग और तोमरोंसे प्रहार करने लगे ॥ ३५ ॥ भुशुण्डि, चक्र, गदा खड्ग, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, परशु, निस्त्रिंश, भाला, परिघ मुद्गर और भिन्दिपाल इन आयुधोंके द्वारा परस्परके मस्तक काटनेलगे ॥३६॥ उससमय हाथी घोड़े, रथों पर बैठे हुए रथी, पैदल और चढ़ने वाले वीरोंके साथ पहिले कहे हुए नानाप्रकारके ऊँट आदि वाहन भी युद्ध करने लगे, तब उनमेंसे कितने हीके टुकड़े टुकड़े होगए, कितनों हीकी भुजा, जङ्घा, ग्रीवा और चरण कट कर गिर पड़े और कितनों हीके ध्वजा, धनुष और आभूषण अत्यंत छिन्नभिन्न होगए ॥३७॥ उससमय उन देवादिकोंके चरणप्रहारोंसे और रथोंके पहियोंसे कुचली हुई रणभूमिसे अत्यन्त उड़ीहुई धूलि, आकाश, दिशा और सूर्य को ढकने लगी इतनेहीमें रुधिरकी धाराओंसे रणभूमिके भीग जानेके कारण वह धूलि उस आकाशमेंसे लौट आई ३८ तदनन्तर वह रणभूमि, जिनमेंसे किरीट और कुण्डल गिरपड़े हैं और जिनमें क्रोधयुक्त दृष्टि तथा चाबेहुए ओठ दीख रहे हैं ऐसे मस्तकोंसे, आयुध और भूषणों सहित बड़ी २ भुजाओंसे तथा हाथीकी सूँडकी समान जङ्घाओंसे ढक जानेपर शोभित होनेलगी३९ उस युद्धमें जिन्होंने आयुध उठाये हैं ऐसे कितनेही धड़, अलग पड़ेहुए अपने मस्तकों के नेत्रोंसे देखतेहुए योधाओंके शरीरोंके ऊपर दौडते२ हुए जाकर गिर पडने लगे४० उस युद्धमें राजा बलिने दश बाणोंसे महेन्द्रको, तीन बाणोंसे ऐरावतको, चार बाणों से ऐरावतके चार चरणरक्षकोंको और एकसे महावतको वेधा ॥ ४१ ॥ परन्तु शीघ्र पराक्रमी उन इन्द्रने, बाण अपने समीप भी नहीं आने पाये बीचमें ही उन आने वाले बाणोंके, तीखे उतने ही भल्ल नामक बाणोंसे हँसते हँसते टुकड़े कर डाले ४२ उस इन्द्रके उस बाणोंका काटने रूप कर्मको देख कर उसको न सहन वाले बलिने, उसके ऊपर प्रहार करनेको हाथमें शक्ति उठाई, वह अग्निकी लपटोंकी समान जलता हुई शक्ति उसके हाथमें ही इन्द्रने काट डाली ॥ ४३ ॥ तदनन्तर शूल, तदनन्तर प्रास, तदनन्तर तोमर, तदनन्तर खड्ग इत्यादि जो जो आयुध इन्द्रके मारनेको

तद्भिन्नद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः । ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥४५॥ ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना । शिला सटंकशिखराश्चूर्णयंत्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६ ॥ महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः । सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयंतो महागजान् ॥ ४७ ॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः । छिंधि भिंधीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४८ ॥ ततो महाघना व्योम्नि गंभीरपरुषस्वनाः । अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९ ॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः । सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ५० ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत । प्रचण्डवातैरुद्धूततरंगावर्तभीषणः ॥ ५१॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः । सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः५२ न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिंद्रादयो नृप । ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ततः सुपर्णांसकृतांघ्रिपल्लवः पिशंगवासा नवकञ्जलोचनः । अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया

बलिने उठाया उन सब ही आयुधोंको तिन समर्थ इन्द्रने काट डाला ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे प्रभो ! उस राजा बलिने अन्तर्धान होकर आसुरी माया उत्पन्न करी कि पहिले ही तो देवताओंकी सेनाके ऊपर आकाशमें एक पर्वत उत्पन्न हुआ ॥ ४५ ॥ और उसके ऊपरके वनकी दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष, और देवरूप शत्रुओंकी सेनाओंका चूर्ण करने वाली पैंडकी समान तीखे अग्रभाग वालीं शिला नीचे गिरने लगीं ॥ ४६ ॥ तदनन्तर बड़े २ भुजङ्ग, विच्छुओं सहित सर्प और बड़े २ हाथियोंका मर्दन करने वाले सिंह, व्याघ्र और शूकर देवताओंके सन्मुख आने लगे ॥ ४७ ॥ तैसे ही हे प्रभो ! हाथमें शूल धारण करके 'तोड़ो, फोड़ो' ऐसा कहने वालीं सैंकड़ों नङ्गी राक्षसियें तथा राक्षसोंके समूह देवताओंके ऊपरको आने लगे ॥ ४८ ॥ तदनन्तर गम्भीर और भयङ्कर शब्द करने वाले और वायुके चलायमान करे हुए बड़े २ मेघ आकाशमें आकर अंगारोंकी वर्षा करने लगे और बिजलियें भी अंगारोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ४९ ॥ तदनन्तर वायुरूप सारथिसे युक्त और प्रलय कालके अग्निकी समान अतिभयङ्कर, बलिदैत्यका उत्पन्न करा हुआ बड़ाभारी अग्नि, देवताओंकी सेनाको जलाने लगा ॥ ५० ॥ तदनन्तर प्रचण्ड पवनोंसे उछली हुई तरङ्गे और भँवरोंके द्वारा भयंकर और मर्यादाको लाँघने वाला समुद्र सब ओरसे लोकोंको डुबाता हुआ आरहा है ऐसा दीखने लगा ॥ ५१ ॥ इस प्रकारकी अलक्ष्य गतिके द्वारा भयंकर और सी मायावी दैत्योंने माया उत्पन्न करीं तब देवताओंके सेनापति खिन्न हुए ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! जब इन्द्रादि देवताओंको, उन दैत्योंकी रची हुई मायाओंको दूर करनेका उपाय नहीं सूझा तब उन्होंने विश्वपालक भगवान्का ध्यान करा सो तहाँ भगवान् प्रकट हुए ॥ ५३ ॥ वह उस समय गरुड़जीके कन्धे पर चरण रक्खे हुए, पीताम्बर पहिने हुए, नवीन कमलकी समान नेत्रों वाले, आयुध धारण करे, आठ भुजा वाले, और जिनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मी, कण्ठमें कौस्तुभमणि, मस्तक पर बहुमूल्य किरीट और कानोंमें मकराकृति कुण्डल शोभा

विनेशुर्महिना महीयसः । स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः । तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ५६ माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम् । आहृत्य तिग्मगदयाऽहनदण्डजेन्द्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाद्यः ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच । अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परमानुकंपया । जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान् रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः । उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् । मनस्विनं सुसंपन्नं विचरंतं महामृधे ॥३॥ नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि । जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्ध-

---

देरहे हैं ऐसे दीखे ॥ ५४ ॥ जैसे जागनेकी अवस्था होने पर स्वप्न नष्ट होजाता हैं तैसे ही उस समय उस देवसेनामें श्रीहरिके प्रवेश करने पर उन महात्मा भगवान्के प्रभावसे, मन्त्र आदिके प्रयोगसे उत्पन्न हुई असुरोंकी वह सकल माया नष्ट हो गई, क्योंकि-जब श्रीहरिका स्मरण ही सकल विपत्तियोंका नाश करने वाला है तो फिर उन श्रीहरिका प्रत्यक्ष प्रवेश होने पर आसुरी माया नष्ट हुई इसका क्या कहना ? ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! गरुड्जीके ऊपर बैठे हुए श्रीहरिको युद्धमें देख कर सिंह पर बैठे हुए कालनेमि नामक दैत्यने, अपने शूलको घरघर फिरा कर श्रीहरिके शरीर परको फेंका, उसको गरुड्जीके मस्तक पर गिरता हुआ देख कर उसी समय त्रिलोकीपति श्रीहरिने अनायासमें ही उसको पकड़ कर उसीके द्वारा वाहनसहित उस कालनेमि शत्रुका वध करा ॥ ५६ ॥ तदनन्तर महाबली, माली और सुमाली वह दोनों दैत्य युद्धमें भगवान्के शरीर परको झपटे तब भगवान्के चक्रसे उनके शिर कट गये और वह मरकर गिर पड़े, तदनन्तर माल्यवान् नामक असुरने, तीक्ष्ण गदासे उन भगवान्के ऊपर प्रहार करके, गरुड्जीके ऊपर प्रहार करनेके निमित्त फिर गदा उठाई, सो इतने ही में उन आदिपुरुष श्रीहरिने उस गरजने वाले दैत्यका मस्तक चक्रसे काट गिराया ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित् ! तदनन्तर पुरुषोत्तम भगवान्की परमकृपासे इन्द्र वायु आदि देवताओंका अन्तःकरण शान्त हुआ तब पहिले जिन २ दैत्योंके साथ वह युद्ध करनेमें उद्यत थे, उन २ के ऊपर हीं वह फिर प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ तदनन्तर भगवान् इन्द्रने, क्रुद्ध होकर विरोचनके पुत्र बलिको मारनेके निमित्त जब वज्र उठाया तब सब ही दैत्य हाहाकार करने लगे ॥ २ ॥ उस समय धैर्यवान्, युद्धकी सामग्रीसे युक्त और उस घोर संग्राममें निर्भय होकर विचरते हुए अपने आगे स्थित उस बलिसे वज्रपाणि इन्द्रने, तिरस्कार करके ऐसा कहा कि-॥ ३ ॥ अरे मूढ ! जैसे कपटी पुरुष, मन्त्र आदिके प्रभावसे जिनकी दृष्टि

नम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्संति ये दिवम् । तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान् पूर्वस्माच्च पदादधः ॥५॥ सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा । शिरो हरिष्ये मन्दात्मन् घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच । संग्रामे वर्त्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् । कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥ ७ ॥ तमिमं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः । न हृष्यंति न शोचंति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् । गिरो वः साधुशोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥९॥ श्रीशुक उवाच । इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः । आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥१०॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना । नामृष्यत्तद्धिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥ प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः । शयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥ सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् । अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ स सिंहवाह आ-

भ्रममें पड़ी है ऐसे अज्ञानी पुरुषोंको अपने वशमें कर लेता है और उनके धनको हर लेता है तैसे ही तू मायाके द्वारा, हम मायाके स्वामियोंको जीतनेकी इच्छा करता है परन्तु तेरी माया हमारे ऊपर नहीं चल सकती ॥ ४ ॥ हे मूढ़ ! मेरे प्रभावको सुन, जो पुरुष अपनी मायाके द्वारा स्वर्ग पर चढ़नेकी और मोक्ष पानेकी इच्छा करते हैं उन मूढ़ोंको पहिले भी स्थानसे मैं गिरा देता हूँ ॥ ५ ॥ सो मैं आज शतपर्व वज्रसे, लोकमोहिनी माया फैलाने वाले तेरा शिर काटूँगा, इस कारण अरे मन्दबुद्धे ! मेरे जीतनेके विषयमें तू अपने जाति वालोंके साथ जितनी होसके उतनी चेष्टा कर ॥ ६ ॥ बलिने कहा कि-हे इन्द्र ! कीर्त्ति, जय, पराजय इत्यादिके अनुकूल होने वाले कालने जिनको प्रेरणा करी है ऐसे युद्ध करने वाले सब ही पुरुषोंको क्रमसे कीर्त्ति, जय, पराजय, और मृत्यु यह प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ इस कारण यह कीर्त्ति आदि सब कालके अधीन हैं ऐसा देखने वाले विवेकी पुरुष इस विषयमें न हर्ष ही पाते हैं और न शोक ही करते हैं परन्तु उस विवेकके विषयमें तुम अज्ञानी हो ॥ ८ ॥ तिससे उस कीर्त्ति जय आदिके विषयमें अपनेको ही कारण मानने वाले और साधु पुरुषों करके शोक करने योग्य तुम्हारे मर्मभेदी वचनोंकी ओर मैं ध्यान नहीं देता हूँ ॥ ९ ॥ शुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित ! प्रतिपक्षी वीरोंका मर्दन करने वाले उस बलिनामक वीरने इस प्रकार महेन्द्रकी निन्दा करके, कानों पर्यन्त खैंचे हुए बाणोंसे, निन्दाके वचनोंसे ताडन करे हुए उस इन्द्रके ऊपर फिर भी प्रहार करा ॥ १० ॥ इस प्रकार सत्यभाषण करने वाले उस बलिने इन्द्रका तिरस्कार करा तब उस तिरस्कारको इन्द्रने, जैसे अंकुशसे ताडना करा हुआ हाथी उस ताडनाको नहीं सहता है तैसे ही सहन नहीं करा ११ और उस शत्रुनाशन इन्द्रने, अपने अमोघ वज्रसे उस बलि राजाके ऊपर प्रहार करा तब वह बलि पङ्ख टूटे हुए पर्वतकी समान विमान सहित पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १२ ॥ उस समय बलिके विषैं प्रेम करने वाले उसके सखा जम्भासुरने अपने मित्रको गिरा हुआ देख कर वज्रसे ताडना करे हुए भी अपने मित्रका हित

साय गदामुद्यस्य रंहसा । अत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः । जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः । आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः । शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे १७ सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालंब्य मातलिः । इन्द्रो जंभस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः । नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु । शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥ हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः । तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् । सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥२२॥ नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुंखैर्महेषुभिः । आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥ २३ ॥ सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् । छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवांबुदाः ॥ २४ ॥ अलक्षयन्तस्तमतीवविह्वला विचु-

करनेके निमित्त युद्ध करनेको इन्द्रके सन्मुख गमन करा ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे राजन्! उस सिंह पर चढ़े हुए परम महाबली जम्भासुरने इंद्रके समीप आय गदा उठा कर बड़े वेगसे इन्द्रके और ऐरावतके कन्धे पर प्रहार करा ॥ १४ ॥ तब गदाके प्रहारसे पीडित होनेके कारण अत्यन्त व्याकुल हुआ वह ऐरावत हाथी, पृथ्वी पर घुटने टेक कर 'अत्यन्त मूर्छित होगया' ॥ १५ ॥ तदनन्तर सहस्र घोड़ोंसे जुता हुआ रथ मातलि इन्द्रके समीप लाया तब इन्द्र उस ऐरावत हाथीको छोड़कर रथ पर सवार हुआ ॥ १६ ॥ तब दैत्योंमें श्रेष्ठ जम्भासुरने, उस सारथिके कर्मकी प्रशंसा करतेहुए और आश्चर्य करतेहुए उस संग्राममें अपने जाज्वल्यमान त्रिशूलका उस सारथिके ऊपर प्रहार करा ॥ १७ ॥ उस समय मातलिने धीरज धर कर उस परम दुःसह व्यथाको सहा तब इन्द्रने क्रोधमें भर कर वज्रसे जम्भासुरका शिर अलग कर दिया ॥१८॥ तदन्तर जम्भासुर मारा गया, यह समाचार नारद ऋषिसे पाकर नमुचि; बल और पाक यह तीनों भ्राता बड़ी शीघ्रतासे उस युद्ध भूमिमें आपहुँचे ॥ १९ ॥ और कठोर वचनोंसे इन्द्रको मर्मस्थानोंमें पीडित करनेवाले उन असुरोंने, जैसे मेघ धाराओंसे पर्वतको छा देते हैं तैसे बाणोंसे इंद्रको छा दिया २० शीघ्रपराक्रमी उस बल नामक असुरने इन्द्रके सहस्र घोड़ोंको उतने ही बाणोंसे एक साथ रणभूमिमें पीडित करडाला ॥ २१ ॥ तथा पाक नाम वाले असुरने एक साथ दो सौ बाण धनुषमें चढ़ाकर और उनको छोडकर उनसे मातलिको तथा अङ्गों सहित रथको भिन्न २ स्थानों पर बेधडाला यह उसका कर्म युद्धमें बडा आश्चर्यकारी हुआ॥२२॥तथा नमुचि नामवाला असुर भी जिनका पूर्वभाग सुवर्णका है ऐसे बड़े२पन्द्रह बाणोंसे संग्राममें इन्द्रको वेधकर पानीसे भरेहुए मेघकी समान गर्जना करने लगा ॥ २३ ॥ तैसे ही और भी असुरोंने, जैसे वर्षाकालमें मेघ चारों ओरसे सूर्यको घेरलेते हैं तैसे सारथि और रथ सहित इंद्रको सब ओरसे बाणोंके समूहोंसे ढकदिया ॥ २४ ॥ तब जैसे समुद्रमें नौका टूटने पर व्यापारी हाय २ करते हुए

कुशुर्देवगणाः सहानुगाः । अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥ २५ ॥ ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः । बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे । उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥ स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः । ज्ञातीनां पश्यतां राजन् जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः । जिघांसुरिंद्रं नृपते चकार परमोद्यमम् २९ अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् । प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् । प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥ तदापतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा । तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे रुषाऽन्वितस्त्रिदशपतिः शिरोऽहरत् ॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः । तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः । किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ३३

चिल्लाने लगते हैं तैसे ही शत्रुकी सेना करके पराजित करेहुए स्वामी रहित वह देवता,इंद्रके न दीखनेके कारण अत्यंत विह्वल होकर अनुयायियों सहित हाहाकार करने लगे ॥ २५ ॥ तदनन्तर जैसे रात्रि पूरी होने पर सूर्य अपने तेजसे दिशा, आकाश और पृथ्वीको प्रकाशित करता हुआ शोभित होने लगता है तैसे ही घोड़े, रथ, ध्वजा और सारथियों सहित इन्द्र बाणोंके पिंजरेमेंसे बाहर निकल कर अपने तेजसे बाहर दिशा, आकाश और पृथ्वीको प्रकाशित करने लगा ॥ २६ ॥ और उस वज्रधारी इन्द्रने अपनी सेनाको शत्रुओंसे पीड़ित हुई देखकर संग्राममें शत्रुको वध करनेके निमित्त क्रोधमें भरकर वज्र उठाया ॥ २७ ॥ हे राजन् ! इंद्रने,उस अष्टधारी वज्रसे दैत्योंके जाति बांधवोंको भयभीत करते हुए उनके सामने ही बल और पाक इन दोनों असुरोंके मस्तक धड़से अलग कर दिये ॥ २८ ॥ तब हे राजन् ! उसको वध हुआ देख कर ज्ञाति वालोंके शोक करनेसे और असहिष्णुतासे क्रुद्ध हुए उस नमुचि असुरने इन्द्रका वध करनेके निमित्त बड़ा भारी उद्योग करा ॥ २९ ॥ क्रोधमें भरा हुआ वह नमुचि, घंटे और सुवर्णके आभूषणोंसे युक्त एक लोहेके त्रिशूलको हाथमें लेकर 'अरे अब मरणको प्राप्त होता है' इस प्रकार इन्द्रको ललकारता ललकारता उनके सामनेको दौड़ा और सिंहकी समान गरज कर उसने वह शूल इंद्रको मारनेके निमित्त फेंका ॥ ३० ॥ तब हे राजन् ! अपनी ओरको आतेहुए उस बड़े वेग वाले शूलके आकाशमें ही इंद्रने बाणोंसे सहस्रों टुकड़े करडाले, तदनन्तर क्रोधमें भरे हुए उन देवराज इन्द्रने, उस असुरका शिर काटनेके निमित्त उसके कण्ठ पर वज्रका प्रहार करा ॥ ३१ ॥ परन्तु बड़े बलके साथ फेंके हुए, देवराज इंद्रके उस परम प्रभावशाली वज्रसे,उस असुरकी खाल भी नहीं छिली, तब तो लोकोंको बड़ा आश्चर्य प्रतीत हुआ, क्योंकि-जिसने पहिले परमबली वृत्रासुरका भी वध करा, उसको इस समय नमुचिके कण्ठकी खालने ही खुटला कर दिया ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिससे वज्र खुटला होगया उससे इन्द्र भी भयभीत होगया और मनमें

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये। कृतो निविशतां भारैः पतत्त्रैः पततां भुवि तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः। अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके। नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥ इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी। नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥३७॥ मयाऽस्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः। अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन् रिपोः ॥ ३८ ॥ तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान् सुसमाहितः। ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥३९॥ न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः। तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू। देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः। सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप। वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥४३॥ नारद उवाच। भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः। श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात्

विचार करने लगा कि-अहो! दैवयोगसे लोकोंको मोहित करनेवाला क्या चरित्र होगया? ॥ ३३ ॥ अहो पहिले जब प्रजाओंका नाश होने लगा था तब जिस वज्रसे मैंने पक्षोंसे चाहें जहाँ जाने वाले और अपने बोझेसे पृथ्वी पर गिरने वाले पर्वतोंके पक्षोंको काटा है और परमपराक्रमी त्वष्टाके मूर्त्तिमान् तपोरूप वृत्रासुरका जिसके द्वारा मैंने नाश करा और सकल अस्त्रोंसे जिसकी खाल भी नहीं छिली ऐसे बली अन्य वीरोंका जिसके द्वारा मैंने वध करा, ऐसा यह वज्र, इस क्षुद्र असुरके ऊपर छोड़ने पर खुटला होगया, इस कारण ब्रह्मतेजःस्वरूप होने पर भी निरुपयोगी (बेकार) हुए इस दण्डेकी समान वज्रको अब मैं स्वीकार नहीं करूँगा ॥३४॥३६॥ इस प्रकार कह कर खेद करने वाले, इंद्रसे, आकाशवाणीने कहा कि—हे इंद्र! इस नमुचि दैत्यका सूखी वा गीली वस्तुओंसे वध नहीं होसकेगा ॥ ३७ ॥ क्योंकि—'गीली वा सूखी वस्तुसे तेरा मरण नहीं होगा' ऐसा वरदान मैंने इसको दिया है, तिससे हे इंद्र! शत्रुका वध करनेके निमित्त कोई दूसरा उपाय तू मनमें विचार ३८ हे राजन्! उस परमेश्वरकी वाणीको सुन कर, एकाग्र अन्तःकरणसे विचार करते हुए इंद्रको गीलापन और सूखापन इन दोनों गुण वाले जलके झाग दीखे ॥ ३९ ॥ तब इन्द्रने न केवल सूखे न केवल गीले ऐसे झागोंसे उस नमुचिका शिर धड़से अलग कर दिया, तब इन्द्रकी मुनियोंने स्तुति करी और उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ ४० ॥ उस समय गन्धर्वोंमें मुख्य विश्वावसु और परावसु यह दोनों गाने लगे, देवताओंकी दुंदुभि बजने लगीं, और अप्सरा आनन्दके साथ नृत्य करने लगीं ॥ ४१ ॥ इस प्रकार अग्नि, वायु और वरुण आदि देवताओंने, अस्त्रोंके समूहों करके, अपनेसे द्वन्द्व युद्ध करनेवाले शत्रुओंका, जैसे सिंह हरिणोंका नाश करते हैं तैसेही नाश करडाला ४२ हे राजन्! इसप्रकार देवताओंकी जय होनेपर भी, वैरभावसे उनके द्वारा मारेहुए दानवोंका अत्यन्त नाश होता है ऐसा देखकर, ब्रह्माजीके भेजेहुए देवर्षि नारदजीने देवताओंको रोका ॥ ४३ ॥ नारदजीने कहा कि-हे देवताओ! श्री-

श्रीशुक उवाच । संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः । गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥४५॥ येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते । बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोधरान् । उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥ बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः । पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीबादरायणिरुवाच । वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् । मोहयित्वा सुरगणान् हरिः सोममपाययत् ॥१॥ वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः । सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः । सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन् हरिम् ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच । देवदेव जगद्व्यापिन् जगदीश जगन्मय । सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥ आद्यं

नारायणकी भुजाओंका आश्रय करने वाले तुमने अमृत पालिया और लक्ष्मीके द्वारा तुम सर्वथा उत्तम प्रकारसे वृद्धिको भी प्राप्त होगये हो इसकारण अब युद्धको समाप्त करो ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! उन नारदजीके वचनका सन्मान करने वाले सकल देवता क्रोधके आवेशको त्याग और अपनी स्तुति करने वाले गन्धर्व आदि अनुचरोंके साथ स्वर्गको चले गये और उस संग्राममें जो असुर बचे थे, वह नारदजीकी सम्मतिसे, वज्रके प्रहारसे पीड़ित होनेके कारण व्याकुल हुए बलिको लेकर अस्ताचलको चले गये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर तहाँ जिनके अङ्ग भङ्ग नहीं हुए थे और जिनके कण्ठ विद्यमान थे, उन असुरोंको शुक्राचार्यजीने अपनी सञ्जीविनी विद्यासे जीवित करा ॥ ४७ ॥ राजा बलि तो शुक्राचार्यके स्पर्श करते क्षण ही फिर भी इंद्रियोंको तथा स्मरणशक्तिको प्राप्त हुआ और वह संसारके तत्त्व (अनित्यता) को जानने वाला था इस कारण तिरस्कारको प्राप्त होकर भी खिन्न नहीं हुआ ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें एकादश अध्याय समाप्त ॥११॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं,कि-हे राजन् परीक्षित ! स्त्रीके रूपसे दानवोंको मोहित करके श्रीहरिने देवताओंको अमृत पिलाया, वृषभध्वज महादेवजी यह वृत्तान्त सुन कर मोहिनी रूपको देखनेके निमित्त पार्वतीजीके साथ नन्दीश्वरपर चढ़े और सकल भूतगणोंसे घिरे हुए, जहाँ मधुसूदन भगवान् थे, तहाँ आपहुँचे ॥ १ ॥ २ ॥ तब विष्णुभगवान्ने आदरके साथ पार्वती सहित उन महादेवजीकी;पूजा-प्रशंसा आदि करके सत्कार करा और वह आसन पर स्वस्थताके साथ बैठनेके अनन्तर श्रीहरि का सत्कार करके आश्चर्यके साथ इसप्रकार कहने लगे ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजीने कहा कि-हे जगदीश ! हे जगन्मय ! हे जगद्व्यापिन् ! देवाधिदेव ! सकल पदार्थोंके आत्मा और कारण होनेसे ईश्वर भी तुम ही हो ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! नहीं नहीं ऐसा नहीं है; क्योंकि-इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय यह जिस ब्रह्मसे होते हैं और स्वयं अविनाशी जिस ब्रह्मके यह उत्पत्ति आदि तीनों नहीं हैं और इदं शब्दसे वाच्य दृश्यरूप, अहं शब्दसे वाच्य द्रष्टारूप और बाहर भोग्यरूप तथा

तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः । यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ५ तवैव चरणांभोजं श्रेयस्कामा निराशिषः । विसृज्योभयतः संगं मुनयः समुपासते ६ त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् । विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥७॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः । अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥ त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् । अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥ नाहं परायुऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः । यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥१०॥

भीतर भोक्तारूप वह सत्य और चैतन्यरूप ब्रह्म तुम ही हो इस कारण तुम्हारे विषैं विकारोंकी शङ्का नहीं है ॥ ५ ॥ हे प्रभो ! इस लोकके और परलोकके भोगोंकी आसक्तिको त्याग कर निष्काम हुए, मोक्षकी इच्छा करने वाले मुनिजन, तुम्हारे चरण कमलकी आदरके साथ उपासना करते हैं ॥ ६ ॥ हे परमेश्वर ! तुम निर्गुण शोकरहित, निर्विकार, आनन्दमय, सर्वव्यापक, और सबसे निराले तथा सुखस्वरूप परिपूर्ण ब्रह्म हो तथापि अत्यन्त उदासीन नहीं हो किन्तु प्रपञ्चकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण होकर उत्पत्ति आदि उपाधियोंसे युक्त जीवोंको कर्मोंका फल देते हो, हे परमात्मन् ! तुम निरपेक्ष हो और जीव अपनेको फल मिलनेकी इच्छासे तुम्हारी सेवा करते हैं इस कारण तुम उनको फल देते हो, सारांश यह है कि-सुखात्मक ब्रह्मस्वरूप आपको औरोंकी अपेक्षा नहीं है इसकारण तुम्हारे ऐश्वर्य अपने निमित्त नहीं है किन्तु केवल भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त ही हैं ७ हे जगदीश ! द्वैतभावसे प्रतीत होने वाले कार्य और अद्वैतभावसे प्रतीत होने वाले कारण यह दोनों एक तुम ही हो, इस कारण कुण्डल आदि कार्यरूपसे बनेहुए और कारणरूपसे अकृत्रिम सुवर्ण जैसे वास्तवमें एक ही होते हैं तैसे ही तुम्हारे विषैं वास्तवमें भेद नहीं है, हे परमात्मन् ! प्राणियोंने अज्ञानके कारण तुम्हारे विषैं भेद मान रक्खा है, क्योंकि-उपाधिरहित आपके विषैं यह भेद केवल मायाके गुणों करके ही अनुभवमें आता है, स्वयं अनुभवमें नहीं आता है ॥ ८ ॥ हे जगदीश ! कितने ही वेदान्तवादी आपको ब्रह्म मानते हैं, कितने ही मीमांसक आपको धर्म मानते हैं, कितने ही सांख्यमतावलम्बी तुम्हें प्रकृति पुरुषसे पर, ब्रह्मादिकोंका ईश्वर पुरुषोत्तम समझते हैं, कितने ही पञ्चरात्र आगममें कही हुई दीक्षा धारण करने वाले पुरुष तुम्हें विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा इन नौ शक्तियोंसे युक्त मानते हैं और कितने ही पातञ्जल योग मत वाले पुरुष, तुम्हें जन्मादि विकार रहित स्वतन्त्र महापुरुष मानते हैं ॥ ९ ॥ तैसे ही मैं, ब्रह्माजी और मरीचि आदि ऋषि यह हम सब ही सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं तो भी जिन तुम्हारे रचना करे हुए इस जगत्को भी यथार्थ रीतिसे नहीं जान सकते हैं फिर तुम्हें जाननेको कैसे समर्थ होसकते हैं ?, हमारी जहाँ यह दशा है तहाँ

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ । वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुत्से ॥११॥ अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः । सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥१२॥ येन संमोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः । तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः॥१३ श्रीशुक उवाच । एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना । प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच । कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः । पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम । कामिनां बहुमन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच । इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे । विक्रीडितीं कन्दुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८ ॥ आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्रकृष्टहारो-

---

हे ईश्वर ! सदा तमोगुण और रजोगुणसे उत्पन्न होने वाले और तुम्हारी मायासे मोहित हुए दैत्य मनुष्य आदिका तो कहना ही क्या ? ॥ १० ॥ हे परमेश्वर ! वह तुम सकल जगत्के आत्मा और ज्ञानरूप होनेके कारण, जैसे वायु चराचर प्राणियोंके शरीरोंमें और आकाशमें प्रवेश करता है तैसे ही सकल जगत्में प्रविष्ट होकर अपने करे हुए जगत्के उत्पत्ति, स्थिति, नाश, प्राणीमात्रके कर्म, जगत्को प्राप्त होने वाला संसारबंधन और उससे होने वाला मोक्ष इन सबको जानते हो ११ हे ईश्वर ! सत्त्व आदि गुणोंके द्वारा रमण करने वाले तुम्हारे जो पहिले मैंने नरसिंह आदि अवतार देखे हैं, वही मैं अब, तुमने जो स्त्रीरूप धारण करा था उसको देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १२ ॥ तिस रूपसे तुमने दैत्योंको अत्यन्त मोहित करके देवताओंको अमृत पिलाया था उस ही तुम्हारे रूपको देखनेके निमित्त हम सब यहाँ आये हैं, क्योंकि-उसके विषयमें हमें बड़ा आश्चर्य प्रतीत होरहा है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार शूलपाणि शङ्करके प्रार्थना करे हुए विष्णुभगवान् गम्भीर अभिप्रायसे हँस कर उन महादेवजीसे कहने लगे ॥ १४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे शंकर ! अमृतका पात्र दैत्योंके हाथमें चले जाने पर वञ्चन-मोहन आदि धर्मयुक्त स्त्रीके वेषसे ही देवताओंका कार्य होगा ऐसा जानने वाले आपने दैत्योंको मोहित करनेके निमित्त वह वेष धारण करा था ॥ १५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! कामोद्दीपक और कामीजनोंके बहुमाननीय उस रूपको देखनेकी इच्छा करने वाले तुम्हें मैं दिखाता हूँ ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार विष्णुभगवान् महादेवजीके साथ भाषण करते तहाँ ही अन्तर्धान होगये और उस समय पार्वतीसहित महादेवजी, तहाँ ही चारों ओरको देखते रह गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर चित्र विचित्र पुष्प और कुछ एक लाल कोंपल पत्तों वाले वृक्ष जहाँ हैं ऐसे बगीचेमें एक श्रेष्ठ स्त्री उन महादेवजीने देखी, वह गेंद उछालनेकी लीलासे क्रीड़ा कर रही थी और उसके देदीप्यमान पीताम्बरसे ढकी हुई कमरमें तागड़ी पड़ी थी ॥ १८ ॥ ऊपरको उछलने वाली और नीचेको गिरने

स्तनैः पदे पदे । प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥ दिक्षु भ्रमत्कंदुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् । स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥२०॥ श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना । विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥ २१ ॥ तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयैतद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः । स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥२२॥ तस्याः कराग्रात्स तु कन्दुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः । वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३ ॥ एवं तां रुचिरापांगीं दर्शनीयां मनोरमाम् । दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥ २४ ॥ तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः । भवान्या अपि पश्यंत्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५ ॥ सा तमायांतमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् । निलीयमाना वृक्षेषु हसंती नान्वतिष्ठत२६

वाली गेंदकी लीलासे वारम्वार नीचे ऊपरको होनेसे कम्पायमान हुए स्तनोंके और उत्तम हारके अति भारसे पद पद पर कमरमें मानों टूटी ही हुई है ऐसी वह स्त्री, कोंपलकी समान कोमल अपने चञ्चल चरणोंको इधर उधरको चलाती थी ॥ १९ ॥ चारों ओरको घूमने वाली गेंदकी चपलताके कारण उसके विशाल और चञ्चल नेत्रोंके डले अत्यन्त ही व्याकुल होते थे, उसके कानोंसे झलकने वाले कुण्डलोंकी कान्ति करके देदीप्यमान होने वाले कपोलोंसे और भौंरेकी समान काले केशोंसे उसका मुख भूषित होरहा था ॥ २० ॥ ढीले होते हुए वस्त्रको और खुलती हुई वेणीको, अपने मनोहर वायें हाथसे सम्हाल रही थी और दूसरे हाथसे गेंदको उछालती हुई अपनी मायासे वह सकल जगत्को मोहित करती थी ॥ २१ ॥ उस स्त्रीको देखते क्षण ही महादेवजीने अपने समीप बैठी हुई पार्वतीको और अपने पार्षदोंको नहीं जाना, क्योंकि—गेंदकी क्रीड़ासे जो कुछ एक लज्जा उस करके छुपा हुआ जो हँसना तिसके साथ फेंके हुए कटाक्षसे उनको अत्यन्त वशमें कर लिया था और उन्होंने जो उस स्त्रीको देखा तथा उस स्त्रीने जो उनकी ओरको देखा इस कारण उनका मन अत्यन्त विह्वल होगया था ॥ २२ ॥ तदनन्तर उसके हाथमेंसे जब वह गेंद दूर चली गई तब उन महादेवजीके निरन्तर देखते हुए, उस गेंदके पीछे ही पीछे जाने वाली उस स्त्रीका सूक्ष्म वस्त्र कमरके बन्धन सहित वायुने उड़ाया ॥ २३ ॥ इस प्रकार, नग्न हुई, देखने योग्य, सुन्दर नेत्र कटाक्षों वाली, मनोहर और तिरछे करे हुए कटाक्षोंसे महादेवजीको अपनी आसक्ति दिखाने वाली उस स्त्रीको देखते ही उन महादेवजीने उसमें अपने मनको आसक्त करा २४ तब उसने अपने उत्पन्न करे हुए कामदेवसे उन महादेवजीको विह्वल करके उनके ज्ञानको हर लिया तब तो महादेवजी भवानीके देखते हुए ही निर्लज्ज होकर उस स्त्रीके समीपको चल दिये ॥ २५ ॥ वह स्त्री, महादेवजीको अपनी ओर आते हुए देख कर वस्त्ररहित होनेके कारण अत्यन्त लज्जित होकर एक स्थान पर खड़ी न होकर हँसती हुई वृक्षोंमेंको छुपने लगी ॥ २६ ॥ उसी समय व्याकुलचित्त और

तामन्वगच्छद्भगवान् भवः प्रमुषितेन्द्रियः । कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् । केशबंध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा । इतस्ततः प्रसर्पंती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥ आत्मानं मोचयित्वांग सुरर्षभभुजांतरात् । प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥ तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः । प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥३१॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः । शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः । तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च । यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया । जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥ अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः । अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः । उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ३७

कामके वशमें हुए वह महादेवजी, जैसे कामातुर हुआ गजराज, हथिनीके पीछे २ जाता है तैसे ही उसके पीछे २ गये ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन महादेवजीने, बड़े वेगसे उसके पीछे २ दौड़के जाकर, आलिङ्गन आदिकी इच्छा न करने वाली भी उस स्त्रीके केश पकड़ कर अपने समीपको खैंच लिया और भुजाओंसे उसको दृढ़ताके साथ हृदय लगाया ॥ २८ ॥ इस प्रकार जैसे हाथी हथिनीको आलिङ्गन करता है तैसे ही भगवान् महादेवजीके उस स्त्रीको आलिङ्गन करने पर उसके केश अस्तव्यस्त होगये और वह इधर उधरको भागने लगी ॥ २९ ॥ और हे राजन् ! स्थूल नितम्ब वाली वह देवनिर्मित माया, सुरश्रेष्ठ महादेवजीकी भुजाओंमेंसे अपनेको छुटा कर भागने लगी ॥ ३० ॥ उस समय वह रुद्र, कामरूप शत्रु करके जीते हुएसे परवश होकर, अद्भुत लीला धारण करने वाले श्रीहरिके पीछे २ भागने लगे ॥३१॥ तब गर्भ धारणके समयको प्राप्त हुई गौके पीछे २ दौड़ने वाले मदसे उन्मत्त हुए वृषभ (सांड) का जैसे वीर्यपात होता है तैसे ही उस स्त्रीके पीछे २ दौड़ने वाले अमोघवीर्य शंकरका वीर्यपात हुआ ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! पृथ्वी पर जहाँ २ उन महात्मा शंकरका वीर्य गिरा था वह वह चाँदीकी और सोनेकी खानें हुईं ॥ ३३ ॥ और उसके पीछे दौड़ते २ नदी, सरोवर, पर्वत, वन उपवन और जिस २ स्थानमें ऋषि निवास करते थे तहाँ वह महादेवजी, मोहिनी स्त्रीके साथ जाकर समीपताको प्राप्त हुए अर्थात् वह २ क्षेत्र भक्तोंको शीघ्र महादेवजीका साक्षात्कार होनेके स्थान हुए ॥ ३४ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! वीर्यपात होने पर उन महादेवजीने, देवकी (विष्णुकी) मायाने मुझे अत्यन्त जड़ कर डाला है, ऐसा जाना अर्थात् मोहिनीको देखनेसे ही जड़ हुए अपनेको तैसा जाना और तदनन्तर वह महादेवजी मोहरहित हुए ॥ ३५ ॥ तदनन्तर जिसका परिमाण नहीं ऐसी योगमायाकी शक्ति वाले जगदात्मा श्रीहरिके और अपने वास्तविक प्रभावको जान कर, उस देवमायाने जो अपनेको जड़ कर डाला था सो आश्चर्य माना ॥ ३६ ॥ उस समय व्याकुलता

श्रीभगवानुवाच । दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः । यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया ॥ ३८ ॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् । तांस्तान्विसृजतीं भावान् दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति । मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच । एवं भगवता राजन् श्रीवत्सांकेन सत्कृतः । आमंत्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥ आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान् भवः । शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः । अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥४३॥ यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रान्त उपारतं वै । स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः । सिंधोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥ एतन्मुहुः कीर्त्तयतोऽनु-

---

और लज्जासे रहित उन महादेवजीको देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए उन मधुसूदन भगवान्ने, अपने पुरुष स्वरूपको धारण करके इस प्रकार कहा ॥ ३७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे सुरश्रेष्ठ ! मेरी स्त्रीरूप मायासे तुम अत्यन्त यथेष्ट मोहित होगये थे तब भी स्वयं ही फिर अपनी स्थिति (असली हालत) को प्राप्त हुए हो, यह बड़ा ही अच्छा हुआ ॥ ३८ ॥ क्योंकि—नाना प्रकारके विषय उत्पन्न करने वाली और इन्द्रियोंको वशमें न रखने वाले पुरुषोंको दुस्तर ऐसी इस मेरी मायाको तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन विषयासक्त पुरुष तरेगा ? ॥ ३९ ॥ तिससे गुणोंके विभागसे सृष्टि आदि करने वाले मुझ कालरूप परमेश्वरके अधीन रहनेवाली यह गुणमयी माया,आजसे तुम्हें कभी भी मोहित करनेको समर्थ नहीं होगी ॥४०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इसप्रकार श्रीवत्सलांछन भगवान्के सत्कार करने पर वह महादेवजी उनकी आज्ञा लेकर और उनको प्रदक्षिणा करके अपने गणों सहित निजधामको चले आये ॥ ४१ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! वह रुद्र भगवान्,अपने स्थानको चले गये तब ऋषिश्रेष्ठोंके सुनते हुए, अपनी अंशरूप माया भवानीसे, नीतिके साथ भगवान् की लीलाकी प्रशंसा का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि–॥४२॥ हे देवि ! जन्म आदि विकाररहित परमात्मा पुरुषोत्तमकी मायाको तूने पूर्णरीतिसे देख लिया ? जिस माया करके भगवान्के अंशावतारोंमें श्रेष्ठ मैं रुद्र भी, पराधीन होकर मोहको प्राप्त हुआ, फिर इन्द्रिय आदिके वशमें रहनेवाले और पुरुष मोहित होंगे इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ४३ ॥ हे पार्वति ! पहिले सहस्र वर्षके अन्तमें समाधिसे उठे हुए मुझसे आकर तूने जो बूझा था कि–'तुम परमेश्वर होकर किसका ध्यान करते हो' और जिनके विषयमें कालका अथवा वेदका प्रवेश नहीं होता है निःसंदेह वही यह साक्षात् पुराणपुरुष हैं ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार समुद्रको मथनेके समय जिन्होंने अपनी पीठपर मन्दर नामक बड़े भारी पर्वतको धारण करा, उन शार्ङ्गधन्वा भगवान्का समुद्रको मथना आदि पराक्रम

शृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् । यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ४६ असद्विषयमंघ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् । कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ४७
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे शंकरमायामोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः १२
श्रीशुक उवाच । मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः । सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप ॥ ३ ॥ आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः । अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ॥ ४ ॥ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः । जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् । आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वंतराणि ते । भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥ ७ ॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे । संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ८

मैंने तुमसे कहा है ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष, वारंवार इस आख्यानको सुनता है वा कीर्त्तन करता है उसका उत्तम उद्योग कभी निष्फल नहीं होता है, क्योंकि-श्रेष्ठकीर्त्ति भगवान्के गुणोंका कीर्त्तन करना संसारके सकल ही श्रमोंको दूर करता है ॥ ४६ ॥ जिन भगवान्ने अपनी मायासे स्त्रीका वेष धारण करके दैत्योंको मोहित करते हुए, जिसको दुर्जन न जानसकें और जो भक्तिसे जाना जाता है ऐसे अपने चरणकी शरणमें आये हुए श्रेष्ठ देवताओंको, समुद्र मथनेसे उत्पन्न हुआ अमृत पिलाया है और जो शरणागतोंकी कामनाको पूर्ण करते हैं उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ इतिश्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें द्वादश अध्याय समाप्त

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित ! विवस्वान्का (सूर्यका) श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध पुत्र आजकल वर्त्तमान सातवें मन्वन्तरका मनु है अब उसकी सन्तानोंको तुम मुझसे सुनो ॥ १ ॥ हे शत्रुतापन ! इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति नरिष्यन्त और नाभाग यह छः और सातवाँ दिष्ट यह उसके पुत्र कहे हैं ॥ २ ॥ तथा करूष और पृषध्र यह दोनों तथा दशवाँ वसुमान यह सब मिल कर वैवस्वत मनुके दश पुत्र हैं,हे परन्तप राजन् ! वारह आदित्य, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, विश्वेदेवा, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभुगण यह इस मन्वन्तरमेंके देवता हैं और पुरन्दर नामक इनका इन्द्र है ॥ ३ ॥ ४ ॥ तथा, कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज यह इस मन्वन्तरमेंके सप्तऋषि कहे हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी कश्यपजीसे अदितिके विषें वारह आदित्योंमें छोटे जो वामनरूप धारण करने वाले विष्णु वही भगवान्का अवतार हुआ ॥६॥ इस प्रकार सात मन्वंतर मैंने तुमसे संक्षेपमें कहे हैं अव विष्णुभगवान्के अवतारोंसे युक्त आगे होनेवाले मन्वन्तर भी मैं कहता हूँ ॥ ७ ॥ हे राजन् ! विवस्वान् नामक सूर्यकी संज्ञा और छाया नाम वाली दो स्त्रियें थीं, वह दोनों ही विश्वकर्माकी कन्या थीं, सो मैंने तुम

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः । यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुतान् शृणु ॥९॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या । शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥१०॥ अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः । निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥ तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः । तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥ दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् । राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥ १३ ॥ योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः । निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥ गालवो दीप्तिमान् रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा । ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५ ॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यंति स्वयोगतः । इदानीमासते राजन् स्वे स्वे आश्रममंडले देवगुह्यां सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः । स्थानं पुरंदराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः । भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥१८॥ पारा मरीचिगर्भाद्या देवा इंद्रोऽद्भुतः स्मृतः । द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यंत्यृषयस्ततः

से पहिले छठे स्कन्धमें कहा है ॥ ८ ॥ उस विवस्वान्‌की ही तीसरी बड़वा नामक एक स्त्री थी ऐसा कोई कहते हैं इन तीनोंमेंसे यम, यमी और श्राद्धदेव मनु यह संज्ञाकी सन्तान थीं अब छायाकी सन्तानोंको सुनो॥९॥सावर्णि नामक पुत्र,जो आगे संवरण ऋषिकी स्त्री कही है वह तपती नाम वाली कन्या और तीसरे शनैश्चर यह छायाकी सन्तान हुई अश्विनीकुमार बड़वाके पुत्र हुए ॥१०॥ हे राजन् ! आठवें मन्वन्तरके आने पर सावर्णि नाम वाला मनु होगा, और निर्मोक तथा विरजस्क आदि उस सावर्णिके पुत्र होंगे ॥११॥ उस मन्वन्तरमें सुतपस्, विरज और अमृतप्रभ देवता होंगे, और जिसने इस सातवें मन्वन्तरमें तीन चरण भूमि माँगने वाले विष्णुभगवान्‌को यह सम्पूर्ण पृथ्वी समर्पण करी और जिसको पहिले भगवानने बाँधकर भी पीछे प्रसन्न होकर स्वर्गसे भी अधिक सुखकारी सुतलमें स्थापन करा इस कारण इस समय भी तहाँ इन्द्रकी समान ऐश्वर्यको भोग रहा है, वह विरोचन का पुत्र बलि इंद्र होयगा और तदनन्तर वह विष्णुभगवान्‌के अनुग्रहसे प्राप्त हुए उस इन्द्रपदको त्याग कर मोक्षसिद्धिको प्राप्त होगा १२-१४ उस मंवन्तरमें गालव दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य ऋष्यशृङ्ग और मेरे पिता भगवान् वेदव्यास यह सात ऋषि होंगे, हे राजन् ! इस समय वह ऋषि योगसमाधि लगायेहुए अपने २ आश्रममें वास कररहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ उस मन्वंतरमें ईश्वर प्रभु, देवगुह्य नाम वाले ब्राह्मणकी सरस्वती नाम वाली स्त्रीके विषैं सार्वभौम नामक अवतार धारण करके, इस समयके पुरन्दर नाम वाले इन्द्रसे इन्द्रपदको हर कर बलिको देंगे ॥ १७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! दक्षसावर्णि नाम वाला वरुणका पुत्र नवाँ मनु होगा और भूतकेतु दीप्तिकेतु आदि उसके पुत्र होंगे ॥ १८ ॥ तथा उस मन्वन्तरमें पार तथा मरीचिगर्भ आदि देवता होंगे, अद्भुत नामसे प्रसिद्ध इन्द्र होगा और द्युतिमत् आदि अर्थात् द्युतिमान्, सवन, हव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सत्य यह उससमय सप्तऋषि होंगे ॥ १९ ॥ और आयुष्मान् नामक पितासे अम्बु-

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला । भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् । तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ हविष्मान्सुकृतः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः । सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं करिष्यति । जातः स्वांशेन भगवान् गृहे विश्वसृजो विभुः ॥२३॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् । अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २४ ॥ विहंगमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः । इंद्रश्च वैधृतिस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २५ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः । वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥२६॥ भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२७॥ ऋतधामा च तत्रेंद्रो देवाश्च हरितादयः । ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः॥२८ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः । अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ २९ ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥३०॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः । निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या

धारा नाम वाली माताके विषैं ऋषभ नामसे भगवान् अवतार धारण करेंगे और उनकी वशमें करीहुई त्रिलोकीको अद्भुत नामवाला इंद्र भोगेगा॥ २० ॥ तदनन्तर गुणों करके बड़ा उपश्लोकका पुत्र ब्रह्मसावर्णि नाम वाला दशवाँ मनु होगा,उसके पुत्र भूरिषेण आदि होंगे और हविष्मान् आदि ऋषि होंगे ॥ २१ ॥ हे राजन्! हविष्मान्, सुकृति, सत्य, जय और मूर्त्ति यह उस समय ऋषि होंगे, सुवासन और विरुद्ध आदि देवता होंगे तथा शम्भु नाम वाला इंद्र होगा ॥ २२ ॥ और विश्वस्रष्टा के घर विषूची नाम वाली स्त्रीके विषैं, समर्थ भगवान् विष्वक्सेन नामसे अपना अंशावतार धारण करके शम्भु नामक इंद्रकी सहायता करेंगे ॥ २३ ॥ तदनन्तर जितेन्द्रिय धर्मसावर्णि नाम वाला ग्यारहवाँ मनु होगा और सत्य धर्म आदि उस के दश पुत्र होंगे ॥ २४ ॥ तथा विहङ्गम, कामगम और निर्वाणरुचि, यह उस मंवंतरमें देवता होंगे और उनका वैधृति नामक इंद्र होगा और अरुण आदि अर्थात् अरुण,हविष्मान्, वपुष्मान्,अनघ,उरुधिष्ण्य, निश्चर और अग्नितेजा यह सप्तर्षि होंगे ॥ २५ ॥ और उस मंवंतरमें आर्यक नाम वाले पितासे वैधृति नामवाली माता के विषैं धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध अवतार धारण करके श्रीहरि त्रिलोकीका पोषण करेंगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे राजन्! रुद्रसावर्णि बारहवाँ मनु होगा और देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ इत्यादि उसके पुत्र होंगे ॥२७॥ और उस मंवंतरमें ऋतधामा नामक इंद्र होगा, हरितादिक देवता होंगे और तपोमूर्त्ति, तपस्वी और आग्नीध्रक आदि सात ऋषि होंगे ॥ २८ ॥ और उसमें सत्यसहस् ऋषिकी सूनृता स्त्रीके विषैं स्वधामा नाम वाला श्रीहरिका अवतार होकर उस मंवंतरका पालन करेगा २९ तदनन्तर जितेंद्रिय देवसावर्णि नामक तेरहवाँ मनु होगा और चित्रसेन विचित्र आदि देवसावर्णिके पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ तथा सुकर्मा और सुत्रामा नाम वाले देवता होंगे दिवस्पति नामक इंद्र होगा और निर्मोक,तत्त्वदर्शी निष्कम्प,निरुत्सुक,धृति-

भविष्यंत्यृषयस्तदा ॥ ३१ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः। योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३२ ॥ मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति। उरुगंभीरबुद्ध्याद्या इंद्रसावर्णिवीर्यजाः ॥ ३३ ॥ पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिंद्रो भविष्यति। अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥ ३४ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः। वितानायां महाराज क्रियातंतून्वितायिता ॥ ३५ ॥ राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते। प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो युगसाहस्रपर्ययः ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते म० अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

राजोवाच। मन्वन्तरेषु भगवन् यथा मन्वादयस्त्विमे। यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच। मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते। इंद्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप। मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥३॥ चतुर्युगांते कालेन ग्रस्तान् श्रुतिगणान्यथा। तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥ ४ ॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः। युक्ताः सञ्चारयंत्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृपाः ॥ ५ ॥ पाल-

मान्, अव्यय और सुतपा यह उस समय सप्तऋषि होंगे ॥ ३१ ॥ और दिवस्पति नामक इंद्रको त्रिलोकीका राज्य प्राप्त कराने वाले बृहती नाम वाली माताके विषें देवहोत्रका पुत्र योगेश्वर नामक उत्पन्न होगा ॥ ३२ ॥ और तदनन्तर इंद्रसावर्णि नाम वाला चौदहवाँ मनु होगा और उरु, गम्भीर बुद्धि आदि उस इंद्रसावर्णि के पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ तथा पवित्र और चाक्षुष नामवाले देवता होंगे, शुचि नामवाला इंद्र होगा, और अग्निबाहु, शुचि, तथा मागध आदि सप्तऋषि होंगे ॥३४॥ हे महाराज! उस मन्वंतरमें विताना नामवाली माताके विषें सत्रायणके पुत्ररूपसे अवतार लेने वाले श्रीहरि बृहद्भानु नामसे कर्मकाण्डका विस्तार करेंगे ॥ ३५ ॥ हे राजन्! इस प्रकार भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालोंमें होने वाले यह चौदह मन्वंतर मैंने तुमसे कहे हैं इन चौदहों मन्वंतरोंका काल सहस्रयुग परिमाणका होता है और इसको ही कल्प (ब्रह्माजीका एक दिन) कहते हैं ३६ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ छ

राजा परीक्षितने कहा कि–हे भगवन्! पहिले कहे हुए सकल मनु आदिकोंमेंसे प्रत्येक मन्वन्तरके विषें जिन कर्मोंमें जिनको जिन्होंने योजित करा सो मुझसे वर्णन करिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे भूपते! मनु, मनुओंके पुत्र, मुनि, इंद्र और देवता इन सबको ही भगवान्ने, अपने २ कर्ममें योजित करा है ॥ २ ॥ अर्थात् हे राजन्! परमेश्वरकी जो यज्ञ आदि अवतार–मूर्त्तियें मैंने पहिले तुमसे कही हैं उनके प्रेरणा करे हुए मनु आदि जगत्का निर्वाह करते हैं अर्थात् जगतकी स्थितिके निमित्त अपने अपने कर्मको करते हैं ॥ ३ ॥ हे राजन्! कालकी गतिसे लुप्त हुए वेदोंके समूहोंको चारों युगोंके अन्तमें, सत्ययुगके प्रारम्भके समय अपने तपोवलसे यथोचित रीतिसे ऋषि देखते हैं और वर्णन करते हैं, फिर उनसे लोकमें सनातनधर्मका प्रचार होता है ॥४॥ तदनन्तर हे राजन्! श्रीहरिके आज्ञा करे हुए मनुरूप

यंति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः । यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः॥६॥ इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् । भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन् कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् । ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून् हन्यात्स्वराड्वपुः । कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया । विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् । यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

राजोवाच । बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत । भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥१॥ एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः । यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच । पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हीन्द्रेण

राजे, मनको वशमें करके अपने मन्वन्तररूप समयमें पृथ्वी पर साक्षात् चार चरण वाले धर्मका प्रचार करते हैं ॥ ५ ॥ तथा मनुओंके पुत्र मन्वन्तरकी समाप्ति पर्यन्त पुत्र पौत्र आदिके क्रमसे उस धर्मकी रक्षा करते हैं और उस मन्वन्तरमें यज्ञका भाग लेनेके वाले जो देवता कहे हैं वह भी धर्मकी रक्षा करते हैं ॥ ६ ॥ और भगवान्के दिये हुए संपत्तिमान् त्रिलोकीके ऐश्वर्यको भोगने वाला इंद्र, लोकमें यथेष्ट जलको वर्षा कर त्रिलोकीका पालन करता है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! प्रत्येक युगमें श्रीहरि, सनकादि सिद्धोंका रूप धारण करके ज्ञानका, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंका रूप धारण करके कर्ममार्गका और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरोंके रूपसे योगका उपदेश करते हैं ॥८॥ तथा मरीचि आदि प्रजापतियोंके रूपसे प्रजाओंकी उत्पत्ति करते हैं, राजाके रूपसे चोरोंका वध करते हैं और भिन्न भिन्न प्रकारके गुणोंसे युक्त होकर कालरूपसे वह सबके नाशका कारण होते हैं ॥ ९ ॥ परन्तु नामरूपात्मक मायाके द्वारा जिनके अन्तःकरण मोहित होरहे हैं ऐसे पुरुष, नाना प्रकारके शास्त्रों करके उनका वर्णन करते हैं तो भी वह, उनको दर्शन नहीं देते हैं अर्थात् वह इस प्रकारके हैं कि-उनका समझना अत्यन्त कठिन है ॥ १० ॥ हे राजन् ! जिसमें चौदह मन्वन्तर होते हैं ऐसा पूर्वकालका वृत्तान्त जानने वालोंने कहा है वह यह अवतार कल्पका वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा है ॥ ११ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

राजाने कहा कि-हे भगवन् ! श्रीहरिने स्वयं ईश्वर होकर भी दीनकी समान होकर राजा बलिसे तीन चरण भूमि क्यों माँगी ? और फिर त्रिलोकीको लेनेसे पूर्णमनोरथ होकर भी उन श्रीहरिने बलिको क्यों बाँधा ? इस विषयमें हमें बड़ा कौतुक है इस कारण हम उसको जाननेकी इच्छा करते हैं, क्योंकि-यज्ञका फल देने वाले पूर्णकाम परमेश्वरका याचना करना और देह आदि समर्पण करके निरपराध हुए बलिको बाँधना यह दोनों बातें असम्भव सी प्रतीत होती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! युद्धमें जिसने अपनी सम्पत्ति खो दी थी, और

राजन् भृगुभिः स जीवितः । सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन॥३॥ तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् । जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥ ततो रथः कांचनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरंगवर्णाः । ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं स च दिव्यम् । पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥ एवं विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् । प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामंत्र्य नमश्चकार अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः । सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी . खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥ हेमांगदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः । रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः । पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीमिव ॥१०॥ वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः । ययाविन्द्र-

---

इन्द्रने जिसको मूर्छित भी कर दिया था उस बलिको, भृगुवंशमें उत्पन्न हुए शुक्राचार्य आदिकोंने जीवित करा था, इस कारण वह उदारचित्त बलि उनका शिष्य होकर, 'इनकी सेवा करनेसे ही मुझे ऐश्वर्य आदि सम्पदा प्राप्त होगी' ऐसे दृढ़ विश्वाससे, इष्ट पदार्थ समर्पण करके उनकी सेवा करने लगा ॥ ३ ॥ तब सन्तुष्ट हुए परम प्रभावशाली उन भृगुवंशी ब्राह्मणोंने, स्वर्गको जीतनेकी इच्छा करने वाले उस बलिका, वैदिक ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध इंद्रके महाभिषेककी विधिसे अभिषेक करके उससे विश्वजित् नामक यज्ञ करवाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर होमकी सामग्रियोंसे पूजन करे हुए अग्निमेंसे, सुवर्णकी चादरसे मँढा हुआ रथ, इन्द्रके घोड़ोंकी समान हरे वर्णके घोड़े, और सिंहसे शोभायमान ध्वजा यह तीन वस्तुएँ मिलीं ॥ ५ ॥ तथा सुवर्णसे मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, अक्षय तर्कस, और दिव्य कवच यह भी उस अग्निमेंसे निकले, उस समय प्रह्लाद नामक पितामहने जिसमेंके पुष्प कभी भी नहीं कुम्हलाते हैं ऐसी माला उस बलिको दी और शुक्राचार्यने शंख दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंने उसके युद्धकी सामग्री इकट्ठी करी और फिर स्वस्तिवाचन आदि करने पर उस बलिने उन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर नमस्कार करा तथा प्रह्लादजीको नमस्कार करा तथा प्रह्लादजीको नमस्कार करके उनसे आज्ञा ली ॥७॥ तदनन्तर सर्वोत्तम माला, उत्तम कवच, धनुष, तरवार और तरकस धारण करके वह महारथी बलि, भृगुवंशी ब्राह्मणोंके दिये हुए रथ पर चढ़ा ॥ ८ ॥ उस समय सुवर्णके बाजूबन्दोंसे जिसकी भुजा झलक रही हैं और मकराकृति कुण्डल जिसके कानोंमें चमक रहे हैं ऐसा वह बलि, रथ पर चढ़ कर कुण्डमें प्रज्वलित हुए अग्निकी समान शोभित होने लगा ॥ ९ ॥ तदनन्तर (मुखसे) मानो आकाशको पीरहे हैं और मानो नेत्रोंसे दिशाओंको भस्म ही करे डालते हैं तथा जिनका प्रभाव, बल और सम्पत्ति यह एक समान ही हैं ऐसे दैत्यसेनापतिरूप अपने गणोंसे घिरा हुआ वह समर्थ बलि, स्वर्ग और पृथ्वीको कम्पायमान करता हुआ, प्रचण्ड असुर सेनाको साथ लेकर परम समृद्धिमती इन्द्रपुरीकी ओरको चला ॥ १०॥११ ॥

पुरीं स्वर्द्धां कल्पस्मिव रोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नंदनादिभिः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२ ॥ प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः । हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः । नलिन्यो यत्र क्रीडंति प्रमदाः सुरसेविताः १३ आकाशगंगया देव्या वृतां परिखभूतया । प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥१४॥ रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः । जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् । शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः । भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७ ॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगंधिकस्रजाम् । यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना । पांडुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यांति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् । शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ मृदङ्गशंखानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः । नृत्यैः सवाद्यै

धिक्कार है इस ग्राम्य सुखको ! अहो ! ऐसी अत्यंत संपत्तियोंसे युक्त पुरीको एकाएकी त्याग कर इन्द्रादिक देवता भाग गये, इस प्रकार वैराग्य होनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी इन्द्रपुरीका वर्णन करते हुए कहते हैं कि-हे राजन् ! जो नगरी, शोभायुक्त नन्दन आदि बगीचोंसे और बागोंसे सुन्दर है वह बगीचे आदि ऐसे हैं कि- उनमें मधुर शब्द करने वाले पक्षियोंके जोड़े हैं, गुञ्जारने वाले मत्त भ्रमर हैं कोमल पत्ते, फल और पुष्पोंके अधिक भारसे भरी हुई शाखाओं वाले कल्पवृक्ष हैं, और जहाँ देवताओंके भोगने योग्य उत्तम स्त्रियें क्रीड़ा करती हैं ऐसे हंस, सारस, चक्रवाक और कारण्डव पक्षियोंके समूहोंसे भरे हुए सरोवर हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ जो सकल देवताओंकी पूजनीय खाई समान आकाश गङ्गासे और ऊँचे २ बुर्जों वाले अग्निकी समान तेजयुक्त सुवर्णके परकोटेसे घिरी हुई है ॥ १४ ॥ जो, सोनेकी पट्टी पड़ी हुई किवाड़ों वाले द्वारोंसे, स्फटिकके बने हुए नगरके द्वारोंसे और भिन्न २ राजमार्गोंसे युक्त है, जिसको विश्वकर्माने रचा है ॥ १५ ॥ जो, सभा, आँगन और गलियोंसे शोभायमान तथा दश करोड़ विमानोंसे युक्त है, जो हीरे मूँगोंकी मणिजटित वेदियों वाले चौहाटोंसे युक्त है ॥ १६ ॥ जिसमें सदा तरुणाई और सुकुमारतायुक्त, निर्मल वस्त्र पहिनने वालीं और उत्तम आभूषण धारण करने वालीं श्यामा (सोलह वर्षकी अवस्था वालीं) स्त्रियें, ज्वालाओंसे शोभायमान होने वाला अग्नियोंकी समान शोभित होती हैं ॥ १७ ॥ जहाँ वायु; देवाङ्गनाओंके केशोंमेंसे गिरी हुई नवीन चम्पेकी मालाओंके सुगन्धको ग्रहण करके मार्गमें चलता है ॥१८॥ जहाँ अप्सरा सुवर्णके झरोखोंमेंसे बाहरको निकलने वाले अगरकी गन्धयुक्त श्वेत धुएँसे भरे हुए मार्गोंमें विचरती हैं ॥ १९ ॥ मोतियोंकी झालरदार चँदोवे, मणिजटित सुवर्णकी ध्वजा,और नाना प्रकारकी पताकाओंसे शोभायमान छज्जोंसे भरी हुई तथा जो मोर कबूतर और भ्रमरोंसे गुञ्जार रहो है, और जो देवाङ्गनाओंके मधुर गीतोंसे मङ्गलयुक्त होरही है ॥ २० ॥ जो, मृदङ्ग, शंख, नगाड़े, और दुंदुभि

रूपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१ ॥ यां न व्रजंत्यधर्मिष्ठाः खलाभूतद्रुहः शठाः । मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समंताद्रुरुधे पृतन्यया । आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयमिंद्रयोषिताम् ॥२३॥मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् । सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥ भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेनः पूर्ववैरिणः । अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः॥२५॥ नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः । पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश । दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः । ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः॥ गुरुरुवाच । जानामि मघवन् शत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् । शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥ भवद्विधो भवान्वाऽपि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् । नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतांतस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् । यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३० ॥ एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यू-

इनकी ध्वनि, तवला, वीणा, मुरज, ऋष्टि और वेणु यह बाजे तथा बाजों सहित नाच और गन्धर्व आदिकोंके गीतोंसे मनोहर है तथा जिसने अपनी कान्तिसे प्रभाकी अधिष्ठात्री देवताको जीत लिया है ॥२१॥ जिसमें पातकी, दुष्ट, प्राणियोंको पीड़ा देनेवाले, ठग, अभिमानी, विषयासक्त और लोभी पुरुष गमन नहीं करते हैं और जिसमें इन अधर्म आदि दोषोंसे रहित पुरुष जाते हैं ॥२२॥ ऐसी उस देवताओंके निवास करनेकी नगरीको बाहर चारों ओरसे,उस सेनापति बलिने अपनी सेनासे घेरलिया और इंद्रकी स्त्रियोंको भयभीत करतेहुए शुक्राचार्यका दियाहुआ बड़ेभारी शब्दवाला शङ्ख बजाया२३ उस बलिके बडेभारी उद्योगको जानकर,सकल देवताओं को साथ ले इंद्रने गुरुके समीप आकर यह कहा२४कि हे भगवन ! हमारे पूर्वकालके वैरी बलिका यह बड़ाभारी उद्योग है,मैं तो इसको असह्य समझता हूँ,सो इससमय यह किस कारणसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है वह मुझसे कहिये? २५हे गुरो ! केवल मुझे ही असह्य नहीं है किंतु कोई भी किसी उपायसे भी इसको दूर नहीं करसकता,क्योंकि यह मुखसे मानो विश्वको पिये जाता है और मानो नेत्रोंसे सकल दिशाओंको भस्म ही करे डालता है ऐसा प्रलयकालकी अग्निकी समान हमारा नाश करनेको उद्यत हुआ है॥२६॥ सो जिस कारणसे इसको इंद्रियोंकी शक्ति, मानसिक शक्ति,शरीरका बल और प्रभाव प्राप्त हुए हैं कि-जिन इन्द्रियोंकी शक्ति आदिसे इसने ऐसा बड़ा भारी उद्योग करा है वह मेरे शत्रुके असह्य होनेका कारण कहिये ? ॥ २७ ॥ तव वह बृहस्पतिजीने कहा कि—हे मघवन् ! इस तेरे शत्रुकी उन्नति होनेका कारण मैं जानता हूँ, हे इन्द्र ! अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले शिष्यरूप बलिको ब्रह्मज्ञानी भृगुवंशी शुक्राचार्य आदि गुरुओंने यह तेज अर्पण करा है ॥२८॥ इस कारण जैसे कोई भी पुरुष मृत्युके आगे खड़े होनेको समर्थ नहीं होता है तैसे ही एक ईश्वर श्रीहरिको छोड़कर तू वा तेरी समान दूसरा कोई पुरुष भी, इसके सामने खड़े होनेको समर्थ नहीं है ॥२९॥ इस कारण तुम सब स्वर्गको छोड़कर छुपजाओ

जितविक्रमः । एषामेवापमानेन सानुबन्धो विनंक्ष्यति ॥ ३१ ॥ एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना । हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥ देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनिः पुरीम् । देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥३३॥ तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः । शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन्३४ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् । कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव३५ बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलंभिताम् । कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा । हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥१॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् । निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः । सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥ अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनागतम् । न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ अपि वाऽकुशलं किंचित् गृहेषु गृह-

---

और जिससे तुम्हारे शत्रु (बलि) का तिरस्कार हो उस कालकी प्रतीक्षा करते रहो ॥ ३० ॥ हे देवताओं ! इस बलिकी ब्राह्मणोंके बलसे अधिक २ वृद्धि होरही है इस कारण इस समय यह बड़ाभारी पराक्रमी होगया है, सो जब यह उन ब्राह्मणों का ही अपमान करेगा तब परिवार और दैत्यों सहित नष्ट होगा ॥ ३१ ॥ इस प्रकार बृहस्पतिजी करके उत्तम सम्मति दिये हुए वह देवता, यथेष्टरूप धारण करके स्वर्गको छोड़ कर चले गये ॥ ३२ ॥ देवताओंके छुप जाने पर इसके अनन्तर विरोचनके पुत्र बलिने देवताओंकी निवासस्थानरूप इन्द्रपुरीका स्वामी बन कर सकल त्रिलोकीको वशमें कर लिया३३इसप्रकार पायेहुए इन्द्रपदको स्थिर करनेके निमित्त अपनी आज्ञामें चलने वाले उस जगद्विजयी शिष्यसे, शिष्यके ऊपर प्रेम करनेवाले उन भृगुवंशी ब्राह्मणोंने सौ अश्वमेध यज्ञ कराये ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस अनुष्ठानके प्रभावसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध हुई अपनी कीर्त्तिको दशों दिशाओंमें फैलाने वाला बलि, नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमाकी समान शोभित होने लगा ॥३५॥ और उदारचित्त तथा अपनेको कृतकृत्य हुआसा मानने वाला वह बलि, क्षत्रियादिकोंसे देवताओंकी समान पूजे हुए ब्राह्मणों करके प्राप्त कराई हुई बड़ी २ सम्पत्तियोंको भोगने लगा ३६

इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार इन्द्र आदि पुत्रोंके छुप जाने पर और दैत्योंके स्वर्गलोकको अपने वशमें कर लेने पर देवमाता अदिति अनाथकी समान दुःखित हुई ॥ १ ॥ तब बहुत कालमें समाधिसे उठे हुए भगवान् कश्यपजी एक समय उत्साहरहित और आनन्दशून्य उस अदितिके आश्रममें आये ॥ २ ॥ तब हे कुरुश्रेष्ठ ! यथोचित रीतिसे अदितिके पूजन करे हुए वह कश्यप ऋषि, आसन पर बैठे उस अपनी स्त्रीको मलिनमुख देखकर कहने लगे ॥३॥ कि-हे भद्रे ! इस समय ब्राह्मणों पर इस लोकमें कोई आपत्ति तो नहीं आपड़ी है ? अथवा धर्मको वा मृत्युके वशीभूत पुरुषोंको कुछ अनिष्ट तो नहीं प्राप्त हुआ है ? ॥ ४ ॥ अथवा

मेधिनि । धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥५॥ अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया । गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि । यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति । त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान् याति लोकान् गृहान्वितः । ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि । लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥ अदितिरुवाच । भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च । त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन् गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः । सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः । यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते तवैव मारीच मनःशरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः । समो भवांस्तास्वसुरा-

हे गृहमेधिनि ! जिस गृहस्थाश्रममें योगाभ्यास न करने वाले पुरुषोंको भी, अपने धर्म आदिके द्वारा योगका फल प्राप्त होता है, ऐसे गृहस्थाश्रममें धर्म अर्थ वा काम इनमेंसे किसीमें हानि तो नहीं पहुँची ? ॥ ५ ॥ वा किसी समय अतिथि आदिके आने पर, कुटुम्बके कार्यमें लगी हुई तेरे प्रत्युत्थान आदि करे विना ही तो कहीं वह घरसे लौट कर नहीं चले गये ? ॥ ६ ॥ क्योंकि—जिन घरोंमें आये हुए अतिथि, जलसे भी सत्कार न पाकर यदि वैसे ही लौट जायँ तो वह घर निःसन्देह गीदड़राजके भट्टोंकी समान हैं ॥ ७ ॥ हे पतिव्रते ! हे भद्रे ! मेरे देशान्तरको जाने पर मनमें खिन्न हुई तूने हवनके समय कभी अग्निमें होमकी सामग्रियोंसे हवन न करा हो ऐसा तो तुझसे नहीं बना ? ॥ ८ ॥ जिनका पूजन करनेसे गृहस्थी पुरुष, मनोरथ पूर्ण करने वाले लोकोंको जाता है, वह ब्राह्मण और अग्नि, सकल देवताओंके आत्मारूप श्रीहरिका मुख हैं ॥ ९ ॥ हे मनस्विनि ! तेरे सब पुत्र तो कुशल हैं ? क्योंकि-तेरे मुखकी मलिनता आदि लक्षणोंसे तेरा मन मुझे अस्वस्थसा प्रतीत होता है ॥ १० ॥ अदितिने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! द्विज, गौ, धर्म और इस जनकी सब प्रकार कुशल है, क्योंकि-हे गृहमेधिन् ! यह घर वास्तवमें (धर्म, अर्थ, काम, इस) त्रिवर्गकी उत्पत्ति होनेका मुख्य स्थान है ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! अग्नि, अतिथि, सेवक, संन्यासी तथा अन्य भी, द्रव्य आदिकी इच्छा करके आने वाले जो पुरुष, उन सबका ही मैंने यथोचित रीतिसे सत्कार करा है क्योंकि-हे भगवन् ! मैं जो तुम्हारा प्रतिक्षण ध्यान करती रहती हूँ उसके प्रभावसे मुझे कुछ कमी नहीं पड़ती है ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजापति जिसको इस प्रकार उपदेश कर रहे हो ऐसी मेरा, कौनसा मनोरथ सिद्ध नहीं होगा ? अर्थात् सब ही मनोरथ सिद्ध होंगे १३ हे प्रभो ! मरीचिपुत्र ! सत्त्व, रज और तम इन गुणोंसे युक्त यह प्रजा तुम्हारे ही मनसे और शरीरसे उत्पन्न हुई हैं इस कारण उन असुर आदि प्रजाओंमें यद्यपि तुम्हारी समान दृष्टि है तथापि जैसे महेश्वर अपने भक्तोंके मनोरथ पूरे करते हैं तैसे ही हे प्रभो सुव्रत ! तुम भी, तुम्हारा भजन करने वाली मेरा कल्याण विचारो

दिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्मादीश भजंत्या मे श्रेयश्चिंतय सुव्रत । हृतश्रियो हृतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे । ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः । तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥ श्रीशुक उवाचाप्यवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव । अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥१८॥ क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः । कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् । सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥ स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकंपनः । अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम॥२१॥अदितिरुवाच । केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् । यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ॥ २२ ॥ आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् । आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच । एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः । यथाह ते

और हे प्रभो ! शत्रुओंने सम्पत्ति छीन कर स्थानभ्रष्ट करी हुई मेरी रक्षा करो ।१४ ॥ १५ हे नाथ ! ऐश्वर्य आदि सम्पत्तियोंके द्वारा जिसका तुम पालन करते हो ऐसी मुझको शत्रुओंने स्थानभ्रष्ट करके बाहर निकाल दिया है इस कारण मैं दुःखसागरमें डूब रही हूँ अर्थात् प्रबल शत्रुओंने मेरा ऐश्वर्य, सम्पत्ति, यश और स्थान यह सब छीन लिया है ॥ १६ ॥ तिससे हे कल्याण करने वालोंमें श्रेष्ठ ! हे ! साधो ! जिस प्रकार मेरे पुत्र, वह ऐश्वर्य आदि फिर पावें, ऐसा बुद्धिसे विचार करके उसके साधनका मुझे उपदेश करो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार प्रजापति कश्यपजीकी अदितिने प्रार्थना करी तब वह विस्मितसे होकर कहने लगे कि-अहो ! विष्णुभगवान्की मायाका बल कैसा आश्चर्यकारी है ! क्योंकि-उसके कारण यह जगत् स्नेहकी फाँसीमें बँधा हुआ है ॥ १८ ॥ अहो ! पञ्चमहाभूतोंसे उत्पन्न हुआ यह अनात्मरूप देह कहाँ ? और प्रकृतिसे भिन्न आत्मा कहाँ ? इस प्रकार पति और पुत्र आदि सम्बन्धियोंको देखा जाय तो किसका कौन है ? अर्थात् किसीका कोई नहीं है तथापि इनमें ममता स्नेह होनेमें मोह ही कारण है ॥ १९ ॥ कश्यपजीने कहा कि-हे अदिति ! षड्गुण ऐश्वर्यवान्, परिपूर्ण, मायाको दूर करने वाले और सकल प्राणियोंके अन्तःकरणमें वास करने वाले, जगत्के गुरु वासुदेव भगवान्की तू आराधना कर ॥ २० ॥ तब वह दीनदयालु श्रीहरि, तेरे मनोरथको पूरा करेंगे, परन्तु हे अदिति ! भगवान्की भक्ति ही करी हुई सफल होती है औरोंकी नहीं, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥ अदितिने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! विश्वपालक भगवान्की मैं किस प्रकार सेवा करूँ ? कि-जिससे वह सत्य सङ्कल्प भगवान् मेरे मनोरथको पूरा करें ॥ २२ ॥ इस कारण हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पुत्रों सहित क्लेश भोगने वाली मेरे ऊपर वह देव जिस प्रकार सन्तुष्ट हों वह उनकी सेवाकी रीति तुम मुझसे कहो ॥ २३ ॥ कश्यपजीने कहा कि-हे भद्रे ! प्रजाओंको उत्पन्न करनेकी इच्छासे पहिले मैंने भगवान् ब्रह्माजीसे प्रश्न करा था तब

प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः । अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥२५॥ सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया । यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥ त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता । उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः । अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥२८॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे । सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ।२९। नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च । चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ३० नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःश्रृङ्गाय तन्तवे । सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च । सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ३२ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने । योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥३३॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः । नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ३४ नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये । केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ३५

उन्होंने मुझसे जो व्रत कहा था वही भगवान्‌को सन्तुष्ट करने वाला व्रत मैं तुझसे कहता हूँ ॥ २४ ॥ हे अदिति ! फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे द्वादशीपर्यंत बारह दिन केवल दूध ही पीकर भक्तियुक्त हो कमलनयन भगवान्‌का पूजन करे २५ अमावास्याके दिन, यदि मिल जाय तो शूकरकी उखाड़ी हुई मृत्तिकाको लेकर प्रवाहमें खड़ा रहे और हे देवि ! प्राणियोंको निवासस्थान प्राप्त हो, इस इच्छासे भगवान्‌ने वराह अवतार धारण करके रसातलसे तेरा उद्धार करा है, तुझे नमस्कार हो; तू मेरे पापोंका नाश कर इस प्रकारकी प्रार्थनाका मन्त्र पढ़े तदनन्तर वह मृत्तिका शरीरको लगा कर स्नान करे ॥ २६ ॥ २७ ॥ तदनन्तर नित्यनैमित्तिक कार्यसे निवट कर प्रतिमा, स्थण्डिल, सूर्य, जल, अग्नि अथवा गुरु इनमेंसे किसी एकमें अन्तःकरणको स्थिर करके भगवान्‌का पूजन करे ॥ २८ ॥ और हे भगवन् ! हे पुरुषोत्तम ! हे ब्रह्मादिकोंके पूज्य ! हे सकलप्राणियोंके निवासस्थान और हे सबके साक्षी ! तुम वासुदेवको नमस्कार हो ॥२९॥ तथा अव्यक्त, अतिसूक्ष्म, प्रकृतिपुरुषरूप, चौबीस तत्त्वोंको जाननेवाले, और सांख्यशास्त्रका प्रचार करने वाले तुम भगवान्‌को नमस्कार हो ॥ ३० ॥ तथा प्रायणीय और उदयनीय इन नामों वाले यज्ञमेंके दोनों कर्म जिसके मस्तक हैं, प्रातःसवन मध्याह्नसवन और तृतीयसवन यह तीन जिसके चरण हैं, जिसके वेदरूप चार सींग हैं, जो यज्ञका फल देने वाले हैं, गायत्री आदि सात छन्द जिसके सात हाथ हैं और मन्त्र ब्राह्मणरूप त्रयीविद्यामें जिसका स्वरूप है ऐसे यज्ञमूर्त्ति आपको नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ तैसे ही सकल प्राणियोंके और सकलविद्याओंके स्वामी, सकल शक्तिमान् और, परमानन्दस्वरूप, रुद्रमूर्त्ति आपको नमस्कार हो ॥ ३२ ॥ हिरण्यगर्भ, प्राणरूप, जगत्‌के आत्मा, योगैश्वर्य ही है शरीर जिनका ऐसे, योगशास्त्र का प्रचार करने वाले ब्रह्ममूर्त्ति आपको नमस्कार हो ॥ ३३ ॥ सकल जगत्‌के पूजनीय, सबके साक्षी और दुःखोंको दूर करनेवाले तुम ऋषिरूप नरनारायण श्रीहरि को नमस्कार हो ३४ जिनका शरीर मरतकमणिकी समान श्यामवर्ण है और जिन

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ । अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥३६॥ अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः । स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ॥३७ एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् । अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ३८ अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् । वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनै-स्ततः । गन्धधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥ शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति । ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् । दत्त्वाचमनमर्चित्वा तांबूलं च निवेदयेत् ॥ ४१ ॥ जपेदष्टो-त्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् । कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥ ४२ ॥ कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः । द्व्यवरान् भोजयेद्विप्रान् पायसेन यथो-चितम् ॥४३॥ भुंञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः । ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वभूते प्रथमेहनि ॥४४॥ स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः। पयसा स्नापयित्वा-र्चेत् यावद्व्रतसमापनम् ॥ ४५ ॥ पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः । पूर्ववज्जुहु-

के विषैं लक्ष्मी प्राप्त हुई है ऐसे तुम पुरुषोंको सब प्रकारके वर देनेवाले हो इसकारण विवेकी पुरुष, अपने मनोरथोंकी सिद्धि होनेके निमित्त तुम्हारे चरणोंकी रजकी सेवा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणकमलकी सुगन्धिका सेवन करनेकी इच्छासे ही मानो देवता और लक्ष्मी जिनकी सेवा करते हैं वह भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥३७॥ उनतीसवें श्लोकसे लेकर छत्तीसवें श्लोकपर्यन्त इन श्लोकरूप नौ मंत्रों के द्वारा ध्यान करके, आवाहनकी विधिसे आगे कही हुई प्रतिमामें प्रतिष्ठा करेहुए भगवान्का, पुरुष, श्रद्धाके साथ पाद्य आचमन आदि सामग्रियोंसे पूजन करे ३८ तदनन्तर गन्धपुष्प आदि सामग्रियोंसे पूर्वपूजा करके प्रभुको दूधसे स्नान करावे और तदनन्तर वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध और धूप आदि सामग्रियोंसे द्वादशाक्षर मन्त्र पढ़ता हुआ पूजन करे ॥ ३९ ॥ और शक्ति होय तो दूधमें पकायेहुए और घृत गुड़ मिलायेहुए शाल्योदनका नैवेद्य दिखा कर द्वादशा-क्षर मन्त्रसे उस ही शाल्योदन अन्नका भोजन करे ॥ ४० ॥ और निवेदन कराहुआ वह अन्न भगवान्के भक्तको देय वा आप भक्षण करे, इस प्रकार पूजा और नैवेद्य होनेके अनन्तर आचमन देकर ताम्बूल समर्पण करे ॥ ४१ ॥ पीछे मूल मन्त्रका एकसौ आठ वार जप करके और अन्य स्तोत्रोंसे स्तुति करे तथा प्रदक्षिणा करके आनन्दके साथ भूमि पर साष्टाङ्ग नमस्कार करे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उन भगवानका निर्माल्य मस्तक पर धारण करके देवताओंका विसर्जन करें और दोसे अधिक ब्राह्मणोंको पायस (खीर) का यथोचित भोजन करावे ॥ ४३ ॥ तदनन्तर दक्षिणा आदि देकर सत्कार करे हुए उन ब्राह्मणोंके आज्ञा देने पर शेष रहे हुए अन्नका बान्धवों सहित आप भोजन करे और उस रात्रिमें ब्रह्मचर्य व्रतसे रह कर दूसरे दिन (प्रतिपदाके दिन) प्रातःकालके समय स्नानकर शुचिहुए और स्वस्थ अंतः करणसे दूधका अभिषेक करके पहिले कहीहुई विधिसे भगवान्का पूजन करे,ऐसा ही व्रतकी समाप्ति पर्यन्त करता रहे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ इस प्रकार विष्णुपूजामें भक्ति

यादग्नौ ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६॥ एवं त्वहरहः कुर्याद् द्वादशाहं पयोव्रतः । हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी । ब्रह्मचर्यमधःस्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥ वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा । अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः । कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥५१॥ शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः । नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ॥ ५२ ॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः । तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥ भोजयेत्तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते । अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥ ५४ ॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः । अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ॥५५॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च । विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥५६॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः । कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥ ५७ ॥ एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं

रखने वाला पुरुष केवल दुग्धका ही भोजन करके, इस व्रतको करे और प्रतिदिन पहिले कहे हुए अनुसार द्वादशाक्षर मन्त्रसे अग्निमें हवन करके ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार बारहदिन पर्यंत केवल दुध ही पीकर, हवन, पुजन और ब्राह्मणभोजन, इस तीन प्रकारके कर्मसे श्रीहरिकी आराधनारूप व्रत करे ॥ ४७ ॥ हे अदिति ! प्रतिपदासे शुक्ल त्रयोदशीपर्यंत व्रत करने वाला पुरुष, ब्रह्मचर्यसे रहे, भूमिपर सोवै और त्रिकाल स्नान करे ॥ ४८ ॥ तथा मिथ्या बोलना, छोटे-बड़े भोग और किसी भी प्राणीकी हिंसा इनको त्याग कर वासुदेव भगवान्के ध्यानमें तत्पर होय ॥ ४९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशीके दिन विधिके जानने वाले ब्राह्मणोंसे, शास्त्रमें कही हुई रीतिके अनुसार प्रभु विष्णुभगवान्को पञ्चामृतसे स्नान करावे ॥ ५० ॥ तदनन्तर अपनी शक्ति होते हुए धनका संकोच न करता हुआ महापूजा करके शिपिविष्ट (अन्तर्यामी) विष्णुभगवानके उद्देश्यसे दूधमें चरुको पका कर उस बनाये हुए चरुसे अन्तर्यामी भगवान्का अत्यंत एकाग्र मनसे यजन करके उन परमात्माको सन्तोषकारी सर्वोत्तम महानैवेद्य समर्पण करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तदनन्तर ज्ञानवान् आचार्यको और ऋत्विजोंको वस्त्र, आभूषण तथा धेनुके द्वारा संतुष्ट करे क्योंकि-उनको सन्तुष्ट करना ही श्रीहरिका आराधन है ऐसा समझे ॥ ५३ ॥ इस कारण हे शुचिस्मिते ! उन आचार्य आदिकोंको, अन्य ब्राह्मणोंको तथा और जो कोई तहाँ आये हों उनको भी यथाशक्ति मिष्टता आदि गुणयुक्त उत्तम अन्नका भोजन करावे ५४ तदनन्तर आचार्य और ऋत्विजोंको यथायोग्य दक्षिणा देकर, चांडालपर्यंत जो कोई तहाँ आये हों उनको अन्न आदिसे तृप्त करे ॥ ५५ ॥ और दीन, अन्धे तथा अत्यंत दरिद्र इन सबोंके भोजन करनेपर वह भोजन भगवान्को संतुष्ट करनेवाला होता है ऐसा जानता हुआ आप भी बन्धुबांधवोंके साथ भोजन करे ॥ ५६ ॥ इस प्रकार प्रतिपदासे त्रयोदशी पर्यंत, नृत्य, बाजे, गीत, स्वस्तिवाचन, स्तुति और

परम् । पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥५८॥ त्वं चानेन महाभागे सम्यक् चीर्णेन केशवम् । आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् । तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥ त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः । तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर । भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ६२ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अदितिपयोव्रतं नाम षोडशोऽध्यायः १६

श्रीशुक उवाच । इत्युक्ता साऽदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै । अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतंद्रिता ॥ १ ॥ चिंतयंत्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् । प्रगृह्येंद्रियदुष्टाश्वान् मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि । वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्याःप्रादुरभूत्तातभगवानादिपूरुषः । पीतवासाश्चतुर्बाहुः शंखचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् । ननाम भुवि कायेन दण्डवत्प्रीतिविह्वला ॥५॥ सोत्थाय बद्धांजलि-

---

भगवत्कथाओंके द्वारा प्रति दिन भगवान्का पूजन करे अथवा अपनेमें शक्ति न होय तो दूसरेसे करवावे ॥ ५७ ॥ ब्रह्माजीने मुझसे यह पयोव्रत नामक सर्वोत्तम ईश्वरका आराधन कहा था, वही मैंने तुझसे उत्तम रीतिसे वर्णन करा है ॥ ५८ ॥ इस कारण हे महाभाग्यवति ! शुद्ध चित्त हो इंद्रियोंको वशमें करके उत्तम प्रकारसे करे हुए इस व्रतके द्वारा तू अविनाशी भगवान्की सेवा कर ॥ ५९ ॥ हे भद्रे ! इसके करनेसे ईश्वर प्रसन्न होते हैं इस कारण इस व्रतका 'सर्वयज्ञ' नाम है, इसको ही सर्वव्रत कहते हैं, तपका सार यही है और उत्तम दान भी यही है अर्थात् इस व्रतको करने पर सकल यज्ञ, सकल व्रत, सब प्रकारके तप और सब प्रकारके दान करनेका फल प्राप्त होता है ॥६०॥ क्योंकि-जिससे अधोक्षज भगवान् प्रसन्न होते हैं, वही सर्वोत्तम तप,वही सर्वोत्तम दान, वही सर्वोत्तम व्रत, वही सर्वोत्तम यज्ञ, वही साक्षात् सर्वोत्तम नियम और वही सर्वोत्तम यम है ॥ ६१ ॥ तिससे हे भद्रे ! यत्नके साथ श्रद्धापूर्वक इस व्रतको कर तब भगवान् प्रसन्न होकर तेरा मनोरथ पूरा करेंगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें षोडश अध्याय समाप्त १६

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार अपने भर्त्ता कश्यपजीके कहने पर, उस अदितिने, आलस्यको छोड़ कर बारह दिन पर्यंत इस व्रतको करा ॥ १ ॥ उस समय बुद्धि है सारथि जिसका ऐसी वह अदिति, मनरूपं रस्सीसे इंद्रियरूप दुष्ट स्वभाव वाले घोड़ोंको रोक कर एकाग्र बुद्धिसे प्रभु पुरुषोत्तम भगवान्का चिंतवन करती हुई, एकाग्र बुद्धिसे विश्वात्मा वासुदेव भगवान्के विषैं अपने मन को स्थिर करके पयोव्रतका आचरण करने लगी ॥ २ ॥ ३ ॥ हे तात परीक्षित ! इस प्रकार उस व्रतको करते हुए, उसके प्रभावसे शंख, चक्र, गदा, चार भुजा और पीतांबर धारण करने वाले भगवान्, उसके समीपमें प्रकट हुए ॥ ४ ॥ उन दृष्टिके सामने आये हुए भगवान्को देखते ही प्रीतिसे व्याकुल हुई उस अदितिने,एकसाथ उठ कर आदरके साथ उनको भूमि पर साष्टांग प्रणाम करा ॥५॥ तदनन्तर जिस

रीडितुं स्थिता नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा। बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥ प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह। उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥७॥ अदितिरुवाच। यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय। आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने। स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः।ज्ञानं च केवलमनन्त भवंति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच। अदित्यैवं स्तुतो राजन् भगवान् पुष्करेक्षणः। क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत॥११॥ श्रीभगवानुवाच। देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकांक्षितम्। यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान्। प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासि-

---

के नेत्र आनन्दके अश्रुओंसे भर गये हैं, जिसके सकल शरीर पर रोमाञ्च खड़े हो गये हैं और उनके दर्शनसे अत्यन्त आनन्द होनेके कारण जिसका शरीर काँपने लगा है ऐसी वह अदिति पृथ्वी परसे उठ कर प्रीतिसे विह्वल होनेके कारण केवल हाथ जोड़ कर मौन खड़ी रही और स्तुति करनेको समर्थ नहीं हुई ॥६॥ तदनन्तर हे कुरुश्रेष्ठ! मानो नेत्रोंसे भगवान्को पी रही है, इस प्रकार उत्कण्ठाके साथ देखने वाली वह अदिति देवी, प्रीतिके कारण जिसमें पूरे२ अक्षर नहीं उच्चारण होते हैं ऐसी वाणीसे उन रमाकांत, यज्ञके अधिष्ठाता, जगत्पालक श्रीहरिकी धीरे धीरे स्तुति करने लगी॥ ७ ॥ हे यज्ञका फल देने वाले! हे यज्ञपुरुष! हे अच्युत! हे पवित्रचरण! हे पवित्रकीर्त्ते! जिनका नाम सुनने मात्रसे ही मङ्गल करनेवाला है ऐसे हे आदिपुरुष! शरणागत पुरुषोंके दुःख दूर करनेके निमित्त प्रकट होनेवाले हे ईश्वर! हे भगवन्! तुम हमारा कल्याण करो, क्योंकि-तुम दीनोंके नाथ हो ८ विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेके निमित्त अपनी इच्छासे मायाके गुणों को स्वीकार करनेवाले, निरन्तर प्रकट रहनेवाले पूर्ण ज्ञानके प्रभावसे सदा अपने मैंके नानारूप अज्ञानका नाश करनेवाले, स्वस्थस्वरूप तुम महात्मा विश्वरूप श्रीहरिको नमस्कार हो ॥ ९ ॥ हे अनन्त! तुम्हारे प्रसन्न होने पर तुमसे मनुष्योंको ब्रह्माजीकी आयु, इष्ट शरीर, अनूपम सम्पदा, स्वर्ग, भूमि, रसातल, अणिमा आदि सकल योगसिद्धियें, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्ग तथा मोक्षका साधन ज्ञान यह प्राप्त होते हैं,फिर शत्रुओंको जीतना आदि मनोरथ पूर्ण होंगे,इसका तो कहना ही क्या? ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे भरतकुलोत्पन्न राजन् परीक्षित! इस प्रकार अदितिके स्तुति करे हुए वह सकल प्राणियोंके अन्तर्यामी कमलनयन भगवान् उससे कहने लगे ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे देवमातः! शत्रुओंने सम्पत्तिको हरकर अपने स्थानसे भ्रष्ट करेहुए अपने पुत्रोंमें विपयमें जो तू चिरकालसे चाह रही है वह तेरी इच्छा मैंने जानली है ॥ १२ ॥ हे भद्रे! उन दुर्मद

तुम् ॥ १३ ॥ इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां युधि विद्विषाम् । स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान् सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः । नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥१५॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः । यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति१६ अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते । ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥ १७ ॥ त्वयाऽर्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः । स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् । मां च भावयती पत्यावेवं रूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥ नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथञ्चन । सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच । एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवांतरधीयत । अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥ उपधावत्पतिं भक्त्या परया कृत-

असुरश्रेष्ठोंको समरभूमिमें सब प्रकार पूर्णरीतिसे जीत कर फिर भी जय और सम्पत्तिको प्राप्त हुए अपने पुत्रोंके साथ एक स्थान पर रहनेकी तू इच्छा कर रही है ॥ १३ ॥ तैसे ही हे वीरमातः ! जिनमें इन्द्र बड़ा है ऐसे अपने पुत्रों करके मारे हुए शत्रुओंकी दुःखित स्त्रियोंको अपने अपने भर्त्ताके समीप जाकर रोते हुए देखनेकी तू इच्छा कर रही है ॥ १४ ॥ तैसे ही शत्रुओंको जीत कर उनसे कीर्त्ति और सम्पत्ति फिर भी लौटाके लेकर अत्यन्त समृद्धिमान् हुए और स्वर्गमें आकर क्रीड़ा करने वाले अपने पुत्रोंको तू देखनेकी इच्छा कर रही है॥१५॥ परन्तु हे देवि ! इस समय वह असुरसेनापति बहुत करके जीतनेमें आने कठिन हैं; ऐसा मुझे प्रतीत होता है, क्योंकि–जिनके समय अनुकूल है ऐसे ब्राह्मणोंने उनकी रक्षा करी है इस कारण इस समय उनका तिरस्कार करनेके निमित्त करा हुआ पराक्रम सुखकारी नहीं होगा ॥ १६ ॥ तथापि हे देवि ! तूने व्रत करके मुझे प्रसन्न करा है, इससे मुझे कोई तो उपाय अवश्य ही करना होगा, क्योंकि–मेरा पूजन इच्छानुसार फल देने वाला होनेके कारण व्यर्थ नहीं होसकता ॥ १७ ॥ और तूने तो अपने पुत्रोंकी रक्षा करनेके निमित्त पयोव्रतसे मेरा यथोचित पूजन कर उत्तम प्रकारसे स्तुति भी करी है, इस कारण कश्यपजीके तपसे उत्पन्न हुए तेजमें स्थित हुआ मैं, अपने अंशसे तेरा पुत्र होकर तेरे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा ॥ १८ ॥ इस कारण हे भद्रे ! पतिके विषैं तेजःस्वरूपसे मैं (भगवान्) स्थित हूँ ऐसा समझ कर, अपने निष्पाप प्रजापति पतिकी तू सेवा कर ॥१९॥ और तुझसे यदि कोई बूझे तब भी तू, मैंने जो तुझसे अपने अवतार लेनेका वृत्तान्त कहा है, यह किसीसे किसी प्रकार भी नहीं कहना, क्योंकि–हे देवि ! देवताओंकी सब गुप्त बातें उत्तम प्रकार गुप्त रहनेसे ही सिद्ध होती हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इतना कह कर भगवान् तहाँ ही अन्तर्धान होगए, तब प्रभु श्रीहरिका दुर्लभ जन्म मेरे गर्भसे होगा, ऐसा जान कर अपनेको कृतकृत्य सा मानने वाली वह अदिति; परम प्रेमसे पतिकी सेवा करने लगी ॥ २१ ॥ इधर उन सर्वज्ञ कश्यपजीने भी, समाधिके

कृत्यवत् । स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुद्ध्यत ॥ २२ ॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः । सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् । समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् । हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच । जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते । नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः २५ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे । त्रिणाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥ त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः । कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथांतः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥ त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः । दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीशुक उवाच । इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् । चतुर्भुजः शंखगदाब्जचक्रः पिशंगवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झष-

---

प्रभावसे यह जाना कि-मेरे शरीरमें श्रीहरिके अंशका प्रवेश हुआ है ॥ २२ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! जैसे वायु सब स्थानमें एक समान होकर भी काठमें रगड़के द्वारा वनको जलाने वाले अग्निको स्थापित करता है तैसे ही स्वस्थ अन्तःकरण वाले कश्यपजीने, अपने सब पुत्रोंमें समदृष्टि रख कर भी, तपके द्वारा बहुत काल पर्यंत धारण करा हुआ दैत्यनाशक वीर्य अदितिके विषैं स्थापन करा ॥ २३ ॥ तदनन्तर यह जान कर कि-अदितिके गर्भमें सनातन भगवान् विराजमान हैं, ब्रह्माजीने, विशेष गुणोंके दिखाने वाले नामोंसे उनकी स्तुति करी ॥ २४ ॥ ब्रह्माजीने कहा कि-हे महाकीर्त्तिमान् भगवन् ! हे उरुक्रम ! तुम्हारी जयजयकार हो, तुम ब्राह्मणोंका हित करने वाले और नाना प्रकारकी क्रीड़ा करने वाले हो, तुम तीनों गुणोंके नियन्ता भगवान्को वारम्वार नमस्कार हो ॥ २५ ॥ पृश्निके पुत्र वेदोंमें प्रकाशवान् नाभिमें त्रिलोकीको स्थापन करने वाले होनेसे सबको उत्पन्न करने वाले, त्रिलोकीके पृष्ठभाग (वैकुण्ठ) में रहने वाले, अन्तर्यामी रूपसे सकल जीवोंमें प्रवेश करने वाले, और सर्वव्यापी तुमको नमस्कार हो ॥ २६ ॥ हे ईश्वर ! जगत्के आदि, अन्त और मध्य तुम ही हो इस कारण तुम्हें अनन्त शक्ति पुरुष कहते हैं और जैसे जलका बड़ा भारी प्रवाह अपनेमें पड़े हुए तृण आदिको खैंच कर लेजाता है तैसे ही इस सम्पूर्ण विश्वको कालात्मा तुम खैंचते हो ॥ २७ ॥ और हे देव ! स्थावर जङ्गम प्रजा तथा अस्मदादि प्रजापतियोंको उत्पन्न करना तुम्हारा स्वभाव है इस कारण जलमें डूबते हुए मनुष्योंको जैसे नौका उत्तम प्रकारका आश्रय है तैसे ही स्वर्गसे गिरते हुए देवताओंका सबसे उत्तम आश्रय तुम ही हो इस कारण तुम फिर भी उन देवताओंको स्वर्गमें स्थित करो ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥　　*　　*　　*

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार ब्रह्माजीने, श्रीहरिके कर्मकी और प्रभावकी प्रशंसा करी तब जन्ममरणरहित, शंख, चक्र, गदा और पद्म इन

राजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनांबुजः पुमान् । श्रीवत्सवक्षा वलयांगदोल्लसत्किरीटकांचीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः । प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः । द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥ द्वादश्यां सविताऽतिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः । चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥७॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गन्धर्वप्रवरा जगुः । तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः॥८॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः । चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः॥९॥ गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यंतो विबुधानुगाः । अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥१०॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसम्भवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता । गृही-

आयुधोंको धारण करने वाले, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज और कमलकी समान सुन्दर एवं विशालनेत्र वाले वह श्रीहरि अदितिके विषैं प्रकट हुए ॥ १ ॥ वह पुरुषोत्तम श्यामवर्ण और निर्मल थे, मकराकृति कुण्डलोंकी प्रभासे उनका मुख कमल अत्यन्त शोभित होरहा था, उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न था, वह कड़े, तोड़े, और बाजूबन्दों सहित उज्ज्वल किरीट, मेखला और सर्वोत्तम नूपुर धारण करे हुए थे॥२॥वह भ्रमरोंके समूहसे गुञ्जारती हुई अपनी सुन्दर वनमालासे प्रकाशवान् थे, वह श्रीहरि, कण्ठमें कौस्तुभमणि धारण करे हुए थे और अपनी कान्तिसे प्रजापति कश्यपजीके घरमेंके अन्धकारका नाश कर रहे थे ॥ ३ ॥ उस अवतारके समय दिशा प्रसन्न दीखने लगीं, सरोवरोंमेंके जल निर्मल होगये, सकल प्रजाओंको हर्ष हुआ, ऋतु अपने २ फल पुष्पादि गुणोंसे युक्त हुए, और स्वर्गलोक, अन्तरिक्षलोक, भूलोक, देवता, गौ, द्विज और पर्वत यह सब हर्षयुक्त हुए॥४॥ हे राजन्! श्रवणनक्षत्रमें चन्द्रमा होने पर श्रवण द्वादशीके दिन अभिजित् मुहूर्त्तके समय प्रभुका जन्म हुआ, उस समय अश्विनी आदि नक्षत्र और गुरु, शुक्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रह इन सबोंने उनके जन्मको सुखकारी सूचित करा ॥ ५ ॥ हे राजन्! जिस द्वादशीमें श्रीहरिका अवतार हुआ उसको विजया द्वादशी कहते हैं, उस द्वादशीमें सूर्य मध्याह्नमें थे, उस मुहूर्त्तको अभिजित मुहूर्त्त कहते हैं ॥ ६ ॥ उस समय शङ्ख, दुंदुभि, मृदङ्ग, पणव और आनक यह बाजे बजने लगे, उस समय इन बाजोंका तथा और भी डंका आदि बाजोंका तुमुल शब्द होने लगा ॥७॥ उस समय अप्सरा प्रसन्न होकर नाचने लगीं, श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे, मुनि स्तुति करने लगे और देवता, मनु, पितर, अग्नि, सिद्ध और विद्याधरोंके समूह, किंपुरुषोंके साथ किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, गरुड़ पक्षी, उत्तम भुजङ्ग और देवताओंके अनुयायी यह सब यथा योग्य स्तुति, गान, प्रशंसा और नृत्य करते हुए अदितिके आश्रममें पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ८—१० ॥ उस समय अदिति, अपने गर्भसे उत्पन्न हुए उन

तदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भातिविभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः । बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः । कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् । बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥ ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः । कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः । अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् । भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः । ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिष १८ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् । परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद् द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः । जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे

पुरुषोत्तम भगवान्को देख कर आश्चर्यमें होकर आनन्दको प्राप्त हुई उस समय प्रजापति कश्यपजीने भी अपनी योगमायासे शरीर धारण करने वाले उस भगवान् को देख कर अचरजमें होकर उनसे 'विजयी हो' ऐसा कहा ॥ ११ ॥ हे राजन्! स्वयं अव्यक्तरूप श्रीहरिने, कान्ति भूषण और आयुधोंके द्वारा प्रकट प्रतीत होने वाला जो पहिले कहा हुआ बड़ा शरीर धारण करा था, उस ही शरीरसे वह अद्भुत लीला करने वाले श्रीहरि, माता पिताके देखते हुए ही बटु वामनरूप होगये ॥१२॥ तब बटु वामनरूप हुए उन भगवान्को देख कर आनन्दित हुए महर्षियोंने, प्रजापति कश्यपजीको आगे करके उनके जातकर्म आदि संस्कार करे ॥१३॥ तदनन्तर उनका उपनयन संस्कार होने लगा तब, प्रत्यक्ष सूर्यने उनको गायत्रीका उपदेश करा, बृहस्पतिने यज्ञोपवीत दिया और कश्यपजीने कमरकी मेखला समर्पण करी ॥१४॥ भूमि कृष्णमृगचर्म, वनके स्वामी चन्द्रमाने दण्ड, अदिति माताने कौपीन रूप वस्त्र, और स्वर्गाभिमानिनी देवताने उन जगत्पालक वामन भगवान्को छत्र समर्पण करा १५ तथा ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्त ऋषियोंने कुशा हे महाराज! सरस्वतीने उन अविनाशी स्वरूप वामन भगवान्को रुद्राक्षकी माला समर्पण करी १६ इस प्रकार उपनयन करे हुए वामन भगवान्को कुबेरने भिक्षाका पात्र दिया और साक्षात् षड्गुणऐश्वर्यवान् जगन्माता पतिव्रता उमादेवीने, उनको भिक्षा दी ॥ १७ ॥ इस प्रकार सत्कार करे हुए वह श्रेष्ठ बटु,अपने तेजसे,ब्रह्मर्षियोंकी सेवन करीहुई उस सभासे भीअधिक शोभित होनेलगे १८ तदनन्तर वह ब्राह्मणरूप वामन भगवान्,स्थापन करेहुए और धधकते हुए उस उपनयनके अग्निके चारों और परिषेक करके,परिस्तरण कर और उसकी पूजा करके,समाधियोंसे उसमें होम करनेलगे१९हे राजन्! तदनंतर उन वामनजीने भृगुवंशी ब्राह्मणोंके करायेहुए अश्वमेध यज्ञोंसे ईश्वरका यजन करनेवाले और धन आदिसे बढ़े हुए राजा बलिको सुना और सब प्रकारके बलोंसे पूर्ण वह भगवान् वामनजी, पग पग पर अपने भारसे पृथ्वीको नमाते हुए अपने स्थानसे चल दिये

वलेर्यैं ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके । प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥ ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हततत्विषो वामनतेजसा नृप । सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥ इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः । सदण्डछत्रं सजलं कमंडलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥ २३ ॥ मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् । जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥ प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः । प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् । रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः । अवनिज्यार्चयामास मुक्तसंगं मनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमङ्गलम् । यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच । स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते । ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्यवपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः

और बलिके समीप पहुँचे ॥ २० ॥ तब नर्मदाके उत्तरके तट पर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें उस बलिके श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करनेवाले भृगुवंशी ऋत्विजोंने,अपने समीप में ही उदय होते हुए सूर्यकी समान उन वामनजीको देखा ॥ २१ ॥ तदनन्तर हे राजन्! वामनजीके तेजसे तेजोहीन हुए वह ऋत्विज यजमान और सदस्य (सभासद्) यह सब ही निःसन्देह यह सूर्य अथवा अग्नि, वा सनत्कुमार हैं और यज्ञको देखनेके निमित्त आरहे हैं क्या ? ऐसी तर्कना करने लगे ॥२२॥ इसप्रकार शिष्योंके साथ भृगुवंशी ब्राह्मण नानाप्रकारकी तर्कना कर रहे थे कि-इतने ही में दंड सहित छत्र और जलके भरे कमण्डलुको धारण करने वाले उन भगवान् वामनजीने,अश्वमेध यज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ तदनन्तर मूँजकी मेखलासे जिनकी कमर बँधी हुई है, उपवीतकी समान जिन्होंने कृष्णमृगचर्मरूप उत्तरीय वस्त्र (ओढ़नेका वस्त्र) धारण करा है,माया करके जिन्होंने ब्रह्मचारीका रूप धारण करा है और जो जटाधारी हैं ऐसे उन यज्ञमण्डपमें आये हुए विश्वरूप श्रीहरिको देख कर उनके तेजसे चौंधाये हुए उन शिष्यों सहित भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अग्निओंके साथ उठ कर उनका सत्कार करा ॥ २४ ॥ २५ ॥ और रूपके योग्य अङ्गों वाले उन मनोहर सुन्दर वामनजीको देख कर, अति हर्षको प्राप्त हुए उस यजमानने (बलिने) उनको आसन दिया ॥ २६ ॥ तदनन्तर स्वागतके वचनसे अभिनन्दन करके और उन भगवान्के चरण धोकर निःसङ्ग और मनोहर उन वामनजीका राजा बलि ने पूजन करा ॥ २७ ॥ तदनन्तर प्राणियोंके पापोंका नाश करने वाले और परम मङ्गलकारी, उन भगवान्के चरण धोनेका जल, धर्मको जानने वाले उस बलिने मस्तक पर धारण करा, जो गङ्गारूप भगवान्के चरणका जल देवदेव चन्द्रमौलि महादेवजीने परम प्रेमके साथ अपने मस्तक पर धारण करा था ॥ २८ ॥ फिर वह बलि कहने लगा कि-भगवन्! आप आये यह बड़ा उत्तम हुआ, तुम्हें नमस्कार हो हम तुम्हारा कौन कार्य करें सो हमें आज्ञा करो,क्योंकि-हे श्रेष्ठ ! तुम साक्षात् ब्रह्म-

पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् । अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ३० अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः । हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥ ३१ ॥ यद्यद्बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये । गां कांचनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् । ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान् गजान्वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुक उवाच । इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तंससूनृतम् । निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् । यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशांतः ॥ २ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् । प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः । युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्राद उद्भाति यथोडुपः खे ४ यतो जातो हिरण्याक्ष-

र्षियोंके मूर्त्तिमान् तप ही हो ऐसा मैं मानता हूँ॥२९॥ आहाहा ! क्या कहूँ ! तुम्हारे आगमनसे आज मेरे पितर तृप्त होगये, आज मेरा कुल पवित्र होगया और आज यह हमारा यज्ञ निःसन्देह यथाविधि होगया३०हे ब्राह्मणकुमार ! तुम्हारे चरण धोने के जलोंसे निष्पाप हुए मेरे अग्नि आज यथाविधि हवन करे गये हैं, अहो ! तैसे ही यह मेरी भूमि भी तुम्हारे छोटेसे चरणोंसे पवित्र हुई है ॥ ३१ ॥ इस कारण हे बटो ! हे ब्राह्मणकुमार ! तुम मुझसे कुछ माँगनेको आये हो ऐसा मेरा अनुमान है सो तुम्हें जो जो चाहियें सो मुझसे लेलो, हे परमपूज्य ! गौ, सुवर्ण, सामग्रीसहित घर, शुद्ध अन्न, जल, विवाहके निमित्त ब्राह्मणकी कन्या, सम्पत्तिमान् ग्राम, घोड़े हाथी, अथवा रथ इनमेंसे जो तुम्हें चाहियें सो तुम मुझसे लेलो ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि-हे राजन् ! इसप्रकार यथार्थ और मधुर,उस विरोचनके पुत्र राजा बलिका धर्मयुक्त भाषण सुन कर, प्रसन्न हुए भगवान्ने प्रशंसा करते हुए कहा-॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे लोकनाथ ! इस लोकके व्यवहारके विषयमें भृगुवंशी शुक्राचार्य आदि ब्राह्मण जिसके प्रमाण हैं और पारलौकिक धर्मके विषयमें कुलवृद्ध, परमशान्त पितामह प्रह्लादजी जिसके प्रमाण हैं ऐसे तुम्हारा यह वचन सत्य,कुलके योग्य,धर्मके अनुकूल और यशका करनेवाला है ॥२॥ अहाहा !! इस तुम्हारे कुलमें याचकको 'नहीं दूँगा' ऐसा कहने वाला कोई धैर्यहीन पुरुष अथवा पहिले देनेका वचन कहकर फिर न देनेवाला ऐसा कोई लोभी पुरुष आज पर्यंत नहीं हुआ है, आगेको नहीं होगा और इससमय भी नहीं है ॥३॥ और जैसे आकाशमें चन्द्रमा प्रकाशित होता है तैसे ही जिसमें प्रह्लादजी अपने निर्मल यश से प्रकाशवान् होरहे हैं ऐसे तुम्हारे कुलमें दानके समय अथवा युद्धके समय याचक के अथवा शत्रुके प्रार्थना करने पर विमुख होने वाले अधीर राजे हुए ही नहीं ।४। क्योंकि-इस कुलमें उत्पन्न हुआ हिरण्याक्ष, हाथमें गदा लेकर दिग्विजय करनेको

अदन्नेक इमां महीम् । प्रतिवीरं दिग्विजये-नाविदत गदायुधः ॥ ५ ॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् । नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा । हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ७ तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् । चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविदाम्वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव । अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र । श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद । क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान् समुद्रान् विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ११ अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत् । भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् । अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः ॥ १३ ॥ पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान् द्विज-

इस पृथ्वी पर इकला ही घूमता फिरता था तब उसको कोई अपने समान अपने साथ युद्ध करने वाला वीर नहीं मिला ॥ ५ ॥ फिर वराहरूप धारण करने वाले विष्णुभगवान्ने, भूमिका उद्धार करते समय आये हुए उस हिरण्याक्षको बड़े परिश्रमसे जीता, तथापि उसके बड़े भारी पराक्रमको स्मरण करके अपनेको विजय पाने वाला नहीं माना ॥ ६ ॥ तैसे ही पूर्वकालमें, उसका वध होगया, यह सुन कर उसका भ्राता हिरण्यकशिपु, क्रोधमें भरकर अपने भ्राताका वध करनेवाले विष्णु भगवान्को मारनेके निमित्त श्रीहरिके स्थानको गया ॥ ७ ॥ तब हाथमें शूल लेकर साक्षात् मृत्युकी समान आते हुए उस हिरण्यकशिपुको देख कर, मायावी पुरुषोंमें श्रेष्ठ, समयको जानने वाले विष्णुभगवान् इस प्रकार विचार करने लगे कि-॥ ८ ॥ प्राणी जहाँ जहाँ जाय तहाँ तहाँ उसके पीछे २ जैसे मृत्यु जाता है तैसे ही मैं जहाँ जहाँ जाऊँगा तहाँ यह आवेगा ही इस कारण इस बाहरी दृष्टि वाले हिरण्यकशिपु के हृदयमें ही मैं प्रवेश करता हूँ ॥ ९ ॥ हे दैत्यपते ! इस प्रकार निश्चय करके भय के कारण जिनका हृदय अत्यन्त काँपने लगा है ऐसे उन विष्णुभगवान्ने, जो श्वास वायुमें ही गुप्त होजाय ऐसा सूक्ष्म शरीर धारण करके, अपनी ओरको दौड़ कर उस शत्रुके आने पर नासिकामेंको होकर उसके शरीरमें प्रवेश करा ॥ १० ॥ तदनन्तर उस हिरण्यकशिपुने, विष्णुभगवान्के सूने स्थानको सब ओर ढूँढा परन्तु उनको कहीं भी न देखा तब वह क्रुद्ध होकर, मैंने जीत लिया ऐसी गर्जना करने लगा और फिर पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा, अन्तरिक्ष, सात पाताल और सात समुद्र इन सब स्थानोंमें उनको ढूँढ कर भी उस वीरने नहीं पाया ॥ ११ ॥ तब उनको कहीं न देखता हुआ वह कहने लगा कि-मैंने सकल जगत् ढूँढा तथापि मेरे भ्राताका मारनेवाला विष्णु मुझे कहीं नहीं मिला इस कारण जहाँ गयाहुआ पुरुष फिर लौट कर नहीं आता है उस ब्रह्मस्वरूपको ही वह प्राप्त होगया है इसमें सन्देह नहीं है १२ हे दैत्यपते ! देहमें अभिमानका वर्त्ताव करने वाले शूरोंका वैरभाव इतना ही है अर्थात् मरणपर्यंत ही है, क्योंकि-वैर क्रोधसे होता है, और क्रोध अज्ञानसे उत्पन्न

वत्सलः । स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः । ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्त्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद् वृणेऽहं वरदर्षभात् । पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥ १६ ॥ नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् । नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥ १७ ॥ बलिरुवाच । अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मताः । त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् । पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ न पुमान्मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति । तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं वटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच । यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् । न शक्नुवंति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥ त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते । नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः । अर्थकामै-

---

होकर अहङ्कारसे बढ़ता है और वह मरणपर्यंत ही रहता है ॥ १३ ॥ हे दैत्यराज ! प्रह्लादके पुत्र, ब्राह्मणवत्सल तेरे पिता विरोचनने 'यह ब्राह्मणका वेष धारण करनेवाले मेरे वैरी देवता हैं ब्राह्मण नहीं हैं' ऐसा जान कर भी, ब्राह्मणका वेष धारण करनेवाले देवताओंके याचना करने पर उनको अपनी आयु अर्पण करदी १४ और तैसे ही तूने भी, महाकीर्त्तिमान् गृहस्थाश्रमी शुक्राचार्य आदि ब्राह्मणों करके, विरोचन आदि पूर्वपुरुषों करके तथा और भी शूर पुरुषों करके आचरण करे हुए धर्मों को स्वीकार करा है ॥ १५ ॥ तिससे हे दैत्यपते ! मेरे चरणसे नापीहुई तीन, पैर भूमि, मैं, वरदान देनेवालोंमें श्रेष्ठ तुझसे माँगता हूँ १६ हे राजन् ! अत्यन्त उदार तुझ जगदीश्वरसे मैं और अधिक किसी वस्तुकी भी इच्छा नहीं करता हूँ, क्योंकि—जितनेकी आवश्यकता हो उतना ही स्वीकार करनेवाले ज्ञानीपुरुषको पातक नहीं लगता है, आवश्यकतासे अधिक ग्रहण करनेवालेको पातक लगता है ॥१७॥ राजा बलिने कहाकि—हे ब्राह्मणकुमार ! तुम्हारा भाषण वृद्धोंके मानने योग्य है तथापि तुम बालक हो इसकारण ही तुम्हारी बुद्धि अज्ञ पुरुषोंकी सी है सो तुम्हें अपने प्रयोजनको सिद्ध करनेका कुछ ज्ञान नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि—त्रिलोकीका इकला ही स्वामी होनेके कारण जंबुद्वीप, प्लक्षद्वीप आदि देनेमें समर्थ मुझको संभाषणोंसे प्रसन्न करके जो तुम अपने चरणसे तीन चरण भूमि मांगते हो सो तुम वास्तवमें बुद्धिरहित हो ॥ १९ ॥ याचना करनेको मेरे समीप आया हुआ पुरुष फिर दूसरे से याचना करनेके योग्य नहीं होता है इस कारण हे बटो ! अपनी इच्छानुसार खूब पैर फैलाकर जीविका चलानेवाली बहुतसी भूमि तुम मुझसे लेलो ॥ २० ॥ श्रीभगवान्ने कहा:कि-हे राजन् ! त्रिलोकीमें जितने परमप्यारे विषय हैं वह सब भी अजितेन्द्रिय पुरुषोंके मनोरथ पूरे नहीं करसकते हैं ॥ २१ ॥ इस कारण तीन चरण भूमिसे जो सन्तुष्ट हो य उसको नौखण्ड सहित एक द्वीप यदि मिलजाय तब भी सन्तुष्ट नहीं होगा क्योंकि—उसे श्रेष्ठ सातों द्वीपोंकी इच्छा होगी ॥ २२ ॥ यदि कहो कि—सप्तद्वीपवती, पृथ्वी ही तुम माँगलो सो—वेनका पुत्र पृथु और गय

गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥ यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् । नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसंतोषोऽर्थकामयोः । यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते । तत्प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् । एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् । वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् । जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच । एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः । कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता । न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥३१॥ एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् । दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमांल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति । सर्वस्वं विष्णवे

आदि राजे सातों द्वीपोंके अधिपति होकर भी अर्थ और काम की तृष्णाके अन्तको नहीं पहुँचे ऐसा हमने सुना है२३और जो प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए अन्न आदिसे ही सन्तुष्ट होता है वह सुखसे रहता है और जो जितेन्द्रिय नहीं होता है वह तीनों लोक मिल जाने पर भी सन्तोष नहीं पाता है और इस कारण सुखसे नहीं रहता है ॥ २४ ॥ तिससे अर्थ और कामका असन्तोष पुरुषके संसारबन्धनका कारण होता है और जो कुछ प्रारब्धानुकूल मिल जाय उससे ही सन्तोष मान लेना पुरुषकी मुक्तिका कारण होता है, ऐसा कहा है ॥ २५॥ तैसे ही प्रारब्धवश प्राप्त हुए वस्तुसे ही सन्तुष्ट होने वाले ब्राह्मणका तेज बढ़ता है और असन्तोषसे वह तेज, जैसे जलसे अग्नि नष्ट होजाता है तैसे ही नष्ट होजाता है ॥ २६ ॥ इस कारण तुझ, वरदान देने वालोंमें श्रेष्ठसे, मैं तीन चरण भूमि ही माँगता हूँ, इतने ही से मेरा कार्य सिद्ध होजायगा, क्योंकि-प्रयोजनके सिद्ध होने योग्य धन ही सुखदायक होता है ॥२७॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्ने राजा बलिसे कहा तब उस राजा बलिने, हँसते २ 'अपनी इच्छाके अनुसार ही लो' ऐसा कह कर उसने वामनरूप विष्णुभगवान्को पृथ्वी देनेके निमित्त हाथमें जलका पात्र लिया ॥ २८ ॥ तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने, विष्णुभगवान्का सर्वस्व हरनेका अभिप्राय जान कर, उन वामनरूप विष्णुभगवान्को पृथ्वी देनेको उद्यत हुए अपने शिष्य दैत्यराज बलिसे यह कहा ॥ २९ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा कि-हे विरोचनके पुत्र ! देवताओंका कार्य साधनेके निमित्त कश्यपजीसे अदितिके विषें यह प्रत्यक्ष अविनाशी विष्णुभगवान् प्रकट हुए हैं३०और आगेको होने वाले अनर्थको न जानने वाले,तूने इनको पृथ्वीका दान देनेको जो स्वीकार कर लिया है इसको मैं अच्छा नहीं समझता हू, क्योंकि-यह तेरा भूमिदान करना दैत्योंको बड़ा भारी क्लेश प्राप्त हुआ है ॥ ३१ ॥ हे विरोचनके पुत्र ! मायासे ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हुए श्रीहरि, तेरे स्थान, ऐश्वर्य, श्री, तेज और प्रसिद्ध यश इन सबोंको हर कर इन्द्रको देदेंगे ॥३२॥

दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥ क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः । खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् । प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते । दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥३६॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च । पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥ ३७ ॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम । सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ॥३८॥ सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते । वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेचिरात् । एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥ ४० ॥ पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति । यत्किञ्चिदोमिति ब्रूयात्तेन

अरे मूढ़ ! यह विश्वरूप होकर केवल तीन ही चरणसे इन लोकोंको नाप लेगा, अरे मूढ़ ! विष्णुको सर्वस्व अर्पण करके तू अपना निर्वाह भी कैसे करेगा ? ॥३३॥ हे दैत्यपति ! एक चरणसे पृथ्वी, दूसरे चरणसे स्वर्गको नाप कर और अपने बड़े भारी शरीरसे अन्तरिक्षको भर देने वाले इन सर्वव्यापी परमेश्वरके तीसरे चरणको स्थान कहाँसे मिलेगा ? ॥ ३४ ॥ और इस प्रकार वाणीसे दिये हुए वस्तुको प्रत्यक्ष देनेमें असमर्थ होने वाले तुझे नरकगति प्राप्त होगी, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि-तूने जो वाणीसे दिया है उसको पूरा करनेमें तू असमर्थ है ॥ ३५ ॥ हे दैत्यपते ! जिससे जीविकाके निर्वाहमें बाधा पड़े उस दानकी श्रेष्ठ पुरुष प्रशंसा नहीं करते हैं, क्योंकि—दान, यज्ञ, चित्तकी एकाग्रता और पूर्त्तकर्म (धर्मशाला आदि बनवाना) यह सब जीविकाका निर्वाह चलाने वाले पुरुषके हाथसे ही बन सकते हैं ॥३६॥ इस कारण पुण्यकी उत्पत्ति, उत्तम कीर्त्तिकी प्राप्ति, धनके बढ़ानेके निमित्त व्यापार, अपना भोग, और अपने कुटुम्बियोंका सन्तोष इन पाँच बातोंके निमित्त धनके पाँच भाग करने वाला पुरुष, इस लोकमें और परलोकमें सुख पाता है ।३७। हे असुरश्रेष्ठ ! सत्य असत्यकी व्यवस्थाके विषयमें ऋग्वेदकी श्रुतिमें जो पढ़ा है, उसको सुन, ॐ (हाँ) ऐसा स्वीकार करके जो उच्चारण किया होय वह सत्य और नहीं कह कर जो कहा होय वही असत्य है ॥ ३८ ॥ हे दैत्यपते ! सत्यको देह रूप वृक्षका पुष्प और फल जाने, ऐसा श्रुतिमें कहा है परन्तु यह देहरूप वृक्ष यदि जीवित नहीं रहा तो वह सत्यरूप पुष्प फल प्राप्त नहीं होगा इस कारण असत्य देहकी जड़ है अर्थात् असत्यसे ही देहकी रक्षा होती है ॥ ३९ ॥ जैसे जिसकी जड़ उखाड़ दी जाय वह वृक्ष सूख कर शीघ्र ही नीचे गिर पड़ता है तैसे ही जिसका अनृत (असत्य भाषण) नष्ट होजाय वह देह तत्काल सूख जायगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४० ॥ सर्वथा सत्य ही बोलनेसे देहका निर्वाह नहीं होसकता यह दिखानेको सत्यके दोष और असत्यके गुण रहनेके अभिप्रायसे शुक्राचार्यजी कहते हैं कि-हे दैत्यराज ! 'देता हूँ' यह अक्षर याचना करने वालेके द्वारा द्रव्यको लेकर दूर चले जाते हैं इस कारण धनी रिक्त (खाली) अर्थात् अपूर्ण होता है, इस कारण याचकसे 'हाँ देता ! हूँ' ऐसे कहनेसे पुरुष द्रव्यरहित होजाता है और इस पर भ

रिच्येत वै पुमान्। मिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ ४१ ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः। सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥ ४२॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्यायः १९

श्रीशुक उवाच । बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः । तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥१॥ बलिरुवाच । सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम्। अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम्। प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥ ३ ॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्। सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥४॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात्। न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन् संपरेतं धनादिकम्। तस्य त्यागे निमित्तं किं

याचकको सब देऊँगा, ऐसा अंगीकार करने वाला पुरुष, अपने देहका निर्वाह करनेको भी समर्थ नहीं होता है ॥ ४१ ॥ तैसे ही 'नहीं देता' इस प्रकारका अनृत भाषण, द्रव्यका व्यय न होनेके कारण पूर्ण और दूसरेके धनको खैंचने वाला है अर्थात् जो पुरुष नित्य, 'मेरे पास कुछ नहीं है' ऐसे कहता है वह उस अनृत भाषणके द्वारा लोकोंसे धन पाता है, परन्तु हे राजन्! जो सर्वदा ही 'नहीं' इस प्रकार मिथ्याभाषण करता है उसकी अपकीर्त्ति होती है अतः वह जीता हुआ ही मरे हुएकी समान होता है ॥ ४२ ॥ इस कारण यदि निर्वाहमें बाधा आती होय तब ही अनृतभाषण दोषकारक नहीं होता है ऐसा कहनेके अभिप्रायसे शुक्राचार्य जी कहते हैं कि-हे विरोचनके पुत्र! स्त्रियोंको वशमें करना, विनोद (दिल्लगी), विवाहमें वरकी प्रशंसा, जीविका, प्राणोंपर सङ्कट, गौ ब्राह्मणका हित और हिंसा, इतने अवसरों पर मिथ्याभाषण करना निन्दित नहीं होता है ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥१९॥ *

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस प्रकार कुलगुरु शुक्राचार्यजीने, यजमान बलिसे कहा तब क्षण भरको मौन होकर सावधानीके साथ, वह बलि, अपने गुरुसे कहने लगा ॥ १ ॥ बलिने कहा कि-हे गुरो! अर्थ, काम, यश और जीविकामें जो बाधा न करे वही गृहस्थी पुरुषोंका धर्म है ऐसा जो आपने कहा सो सत्य है ॥ २ ॥ परन्तु वह मैं विरोचनका पुत्र, ब्राह्मणको 'देता हूँ' ऐसा वचन देकर, वञ्चक (धोखा देने वाले) की समान, द्रव्यके लोभसे 'नहीं देता' इस प्रकार कैसे कहूँ? ॥ ३ ॥ और तिस पर भी असत्यसे बढ़ कर दूसरा अधर्म नहीं है इस कारण मिथ्या बोलने वाले मनुष्यके सिवाय सबको ही मैं धारण कर सकती हूँ, ऐसा इस पृथ्वीका कथन है ॥ ४ ॥ और ऐसे अवसरमें प्रतिज्ञाका भङ्ग न करनेमें दोष है, ऐसा आपने कहा है, परन्तु हे आचार्य! ब्राह्मणको धोखा देनेसे जैसा मैं भय मानता हूँ वैसा नरक, दुःखका समुद्ररूप दरिद्रता, स्थानसे बिछुर जाना और मृत्यु इनसे भी नहीं डरता हूँ ॥५॥ इसके सिवाय-जो २ धन आदि पदार्थ हैं

विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥ श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः । दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः । तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥८॥ सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः । न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः । कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो वटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥ यजंति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नायविधानकोविदाः । स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ११ यद्यप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् । तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः । हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मयो श्रीशुक उवाच । एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः । शशाप दैवप्रहितः सत्यसंधं

वह सब मरणको प्राप्त हुए पुरुषको यहाँ ही छोड़ देंगे, फिर उनको जीवित होते हुए ही क्यों न देदेय ! तथापि जीविकामें बाधा आती है इस कारण आधा देना चाहिये, ऐसा कहो तो हे गुरो ! दिये हुए द्रव्यसे यदि ब्राह्मण प्रसन्न न होय तो उस दानका फल ही क्या ? अर्थात् कुछ फल नहीं है अभिप्राय यह है कि-ब्राह्मणके प्रसन्न न होनेसे वह दान व्यर्थ होजायगा इस कारण ब्राह्मण जितना माँगे वह सब ही देना चाहिये ॥६॥ हे आचार्य ! दधीचि और शिबि आदि साधु पुरुष, जिनका त्यागना कठिन है ऐसे अपने प्राणोंका भी त्याग कर प्राणियोंके ऊपर दया करते हैं फिर भूमि आदिको देनेमें तो विचार ही क्या करना ? ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! युद्धमें पीछेको न फिरने वाले जिन दैत्यपतियोंने इस पृथ्वीको भोगा है उनके भोग वा लोकको भी कालने ग्रस लिया परन्तु पृथ्वी पर उनको जो यश मिला था उसको कालने नष्ट नहीं किया इस कारण और सब छोड़ कर कीर्तिको ही प्राप्त करना चाहिये ॥८॥ हे ब्रह्मर्षे ! युद्धमें पीठ न देकर शरीरको त्यागने वाले पुरुष, जैसे इस लोकमें बहुतसे मिलते हैं वैसे सत्पात्रके आने पर जो श्रद्धाके साथ धनको त्यागते हैं वह बहुत नहीं मिलते हैं इसकारण उस दुष्कर धन त्यागको ही मैं करूँगा ॥९॥ हे गुरो ! जिस तिस याचक पुरुषकी भी कामना पूर्ण करनेसे दानशूर दयालु पुरुषको प्राप्त होने वाली दीनता ही जब कल्याणकारी है तो तुमसमान ब्रह्मज्ञानियोंकी कामना पूर्ण करनेसे मुझे प्राप्त होनेवाली दीनता कल्याणकारी है इसका तो कहना ही क्या ? इस कारण इस ब्राह्मणकी जो इच्छा होयगी वही मैं अर्पण करूँगा ॥ १० ॥ वेदमें कहे हुए अनुष्ठानको करनेमें प्रवीण तुम, आदरके साथ यज्ञयागोंके द्वारा जिनकी आराधना करते हो वह यह वरदायक विष्णु हों अथवा कोई शत्रु हों, इसकी इच्छा करी हुई पृथ्वी, इसको दूँगा ॥ ११ ॥ और सर्वस्व अर्पण करके निरपराध हुए मुझको यदि यह अधर्मसे बाँध लेगा तोभी मैं, इस शत्रुका वध नहीं करूँगा क्योंकि-इसने भयभीत होनेके कारण ब्राह्मणका वेष धारण करा है ॥ १२ ॥ और यदि यह श्रेष्ठ कीर्ति वाले विष्णु ही हैं तो अपनी कीर्तिको त्यागनेकी इच्छा नहीं करेंगे, मैं नहीं दूँगा तो युद्धमें मेरा वध करके ही पृथ्वीको हरेंगे, वा मेरे हाथसे मरणको प्राप्त होकर

मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया । मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रस्यसे श्रियः ॥ १५ ॥ एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् । वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥ विन्ध्यावलिस्तदागत्य पत्नी जालकमालिनी । आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा । अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः । तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गंधर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः । मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् २० तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् । भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् । ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥ रसामचष्टांघ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जंघयोः । पत-

---

पृथ्वी पर शयन करेंगे ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार अपने कहनेके ऊपर श्रद्धा न करने वाले और आज्ञाका उल्लङ्घन करने वाले उस सत्य प्रतिज्ञा करने वाले उदारचित्त शिष्य (बलि) को, दैवके प्रेरणा करे हुए गुरु शुक्राचार्यजीने शाप दिया कि-॥ १४ ॥ अरे ! वास्तवमें अज्ञानी और उद्धत होकर भी अपनेको निश्चयके साथ पण्डित मानने वाला जो तू मेरी आज्ञाका उल्लंघन करता है, सो तू हम गुरुओंकी उपेक्षा करनेके कारण शीघ्र ही ऐश्वर्यसे हीन हो-जायगा ॥ १५ ॥ इस प्रकार अपने गुरुके शाप दिये हुए उस महात्मा बलिने, सत्य से न हट कर वामन भगवान्का पूजनकर उनको जलपूर्वक (हाथमें जल लेकर) इस पृथ्वीका दान दिया ॥ १६ ॥ उस समय मोतियोंकी और रत्नोंकी लड़ोंकी मालाको धारण करने वाली विन्ध्यावली नाम वाली बलि राजाकी रानी तहाँ आई और चरण धोनेको जलसे भरी हुई सोनेकी झारी लाई ॥ १७ ॥ राजा बलिने अपने हाथोंसे उनके शोभायमान पदयुगल आनन्दसे धोये और वह जगत्को पावन करने वाला जल शिर पर चढ़ाया ॥ १८ ॥ उस समय स्वर्गमें खड़े देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण ये सब उसकी सरलता और उसके चरित्रकी प्रशंसा करते आनन्द युक्त हो, फूल बरसाने लगे ॥ १९ ॥ सहस्रों दुंदुभी बारम्बार बजने लगीं और गन्धर्व, किन्नर तथा किंपुरुष गाने लगे और सब लोग कहने लगे कि-इस बलि राजाने बड़ा दुष्कर कर्म किया कि--जान बूझ कर शत्रुको त्रिलोकीका राज दिया ॥ २० ॥ महाराज ! संकल्प करते ही अनन्त हरि भगवान्का वह गुणत्रयमयी वामनरूप अद्भुत रीतिसे बढ़ने लगा, कि-जिसमें पृथ्वी, आकाश, दिशा, स्वर्ग, पाताल, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि यह सब अच्छी प्रकार समा रहे थे ॥२१॥ उन महाविभूति भगवान्के गुणमय शरीरमें ऋत्विज, आचार्य और सभासदोंके साथ राजा बलिने पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ, विषय, अन्तःकरण और जीवोंके साथ इस त्रिगुणमय सब जगत्को देखा ॥ २२ ॥ बलि राजाने चरणतलमें पाताल,

त्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीन् जघने आत्ममुख्यान् । नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिंधूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यंग धर्मं स्तनयोमुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेंदुम । श्रियं च वक्षस्यरविंदहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रधानानमरान् भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि । केशेषु मेघान् श्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६ ॥ वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु । अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् । छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणा- नृषींश्च । प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९॥ सर्वात्म- नीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरंग । सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तः । तूणोत्तमावक्षयसायकौ च सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३१॥ स्फुर- त्किरीटांगदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलांबरैः । मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो

चरणोंमें पृथ्वी, जंघामें पर्वत, उन विराट्रूप भगवान्के घुटनोंमें पक्षी और साथरोंमें पवनके समूहोंको देखा ॥ २३ ॥ भगवान्के वस्त्रमें सन्ध्या, गुह्यस्थलमें प्रजापति, जंघामें बलि-आदि दैत्य, नाभिमें आकाश, कोखमें सात समुद्र और वक्षःस्थलमें नक्षत्रमाला देखा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! हृदयमें धर्म, भगवान्के स्तनोंमें ऋत और सत्य, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थलमें कमल, हाथमें लिये लक्ष्मी, और कण्ठमें सामवेद और सकल शब्द देखे ॥ २५ ॥ भुजाओंमें इन्द्रादि देवता, कानोंमें दिशा, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघ, नासिकामें प्राणवायु, नेत्रोंमें सूर्य और मुखमें अग्निको देखा २६ उन पुरुषोत्तमकी वाणीसे चारों वेद, जिह्वामें वरुण, भौंमें विधि और निषेध, पलकोंमें दिन और रात्रि, ललाटमें क्रोध और नीचेके ओठमें लोभको देखा ॥ २७ ॥ तथा हे राजन् ! त्वचामें काम, रेतःस्थान (वीर्य रहके स्थान) में जल, पृष्ठभागमें अधर्म चरण रखनेमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हास्यमें मोहिनीशक्ति और रोमोंमें सकल औष- धियोंकी जातियोंको राजा बलिने देखा ॥ २८ ॥ नाड़ियोंमें नदियें, नखोंमें शिला, बुद्धिमें ब्रह्माजी, और इन्द्रियोंमें देवगण तथा ऋषि देखे, इस प्रकार उन श्रीहरिके शरीरमें उस वीरने स्थावर जङ्गम रूप सकल प्राणियोंको देखा २९ और हे राजन् ! सर्वात्मा भगवान्के विषैं इस सकल जगत्को देख कर सब असुर भयभीत होगये, तदनन्तर जिसका तेज असह्य है ऐसे सुदर्शन नामक चक्र, मेघकी समान शब्द करने वाले शार्ङ्ग नामक धनुष, जल भरे मेघमण्डलकी समान गूँजने वाले पाञ्च- जन्य नामक शंख, विष्णुभगवान्की परमवेगवती कौमोदकी नाम वाली गदा, ढाल सहित विद्याधर नामक खड्ग, जिसमेंके बाण कभी कम न हों ऐसे सर्वोत्तम तर्कस भी देखे, उस समय सुनन्द आदि मुख्य पार्षद भगवान्के समीप आकर उपस्थित हुए ॥ ३० ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! देदीप्यमान किरीट, बाजूबन्द और मकरा-

रराज राजन् भगवानुरुक्रमः ॥ ३२ ॥ क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः । पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि । उरुक्रमस्यांघ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेंदुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् । मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेवयोगिनः ॥१॥ वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासांगपुराणसंहिताः ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रंधितकर्मकल्मषाः । ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥ अथांघ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् । समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपंकेरुहसंभवः स्वयम् ॥३॥ धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र । स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समा-

कृतकुण्डलोंको धारण करने वाले वह भगवान् उरुक्रम, श्रीवत्सलाञ्छन, रत्नोंमें श्रेष्ठ कौस्तुभमणि, मेखला, पीताम्बर और भ्रमरोंके समूहोंसे गुञ्जारती हुई वनमाला से युक्त होने पर अत्यन्त शोभित होने लगे ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! एक चरणसे बलिकी पृथ्वी, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाओंको उन त्रिविक्रमभगवान्ने घेर लिया, तदनन्तर दूसरा चरण रखते हुए उन वामनजीको वह बलिका स्वर्गलोक बहुत ही थोड़ा प्रतीत हुआ इस कारण तीसरा चरण रखनेको तो उस बलि का अणुरेणु समान भी स्थान शेष न रहा, क्योंकि-दूसरे चरणके समय ही उन उरुक्रम भगवान्का चरणकमल स्वर्गलोकके ऊपर जाते २ महर्लोक, जनलोक और तपोलोकसे ऊपर सत्यलोकमें जापहुँचा ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्ध में विंश अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि-महाराज ! भगवान्का चरणारविंद सत्यलोकमें प्राप्त हुआ, उसे देख ब्रह्माजी कि-जिनके भवनकी कान्ति भगवान्के नखरूप चन्द्रमाकी कान्तिसे फीकी पड़ गई थी और जो आप भी नखचन्द्रोंसे आच्छादित होगये थे वह मरीचि-आदि ऋषि, सनत्कुमार आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगीजन, वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, शिक्षादिक वेदके अङ्ग, पुराण और उनकी संहितायें तथा और भी कि-जिनके कर्म योगरूप वायुसे प्रदीप्त हुए ज्ञानरूप अग्निसे भस्म होगये हैं, यह सब २ भगवान्के चरणके निकट आये और इन सबोंने कर्म से प्राप्त न हों ऐसे ब्रह्मलोकको, जिनके स्मरणके प्रभावसे आप प्राप्त हुए हैं, उन भगवान्के चरणोंको प्रणाम किया ॥ १ ॥ २ ॥ फिर पवित्रकीर्ति ब्रह्माजीने विष्णु भगवान्के कि-जिनकी नाभिकमलसे आप उत्पन्न हुए हैं, उनके उन्नत हुये चरणकमलकी जलसे पूजाकी और भक्तिपूर्वक स्तुति करी ॥ ३ ॥ हे राजन् ! ब्रह्माजीके कमण्डलका जल, जो भगवान्के चरण धोनेसे पवित्र हुआ था वही गङ्गा नामसे प्रसिद्ध हुआ है, सो गङ्गा मानों भगवान्की निर्मल कीर्ति हो, इस प्रकार आकाशमें

हताः । सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥ तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः । धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलांकुरैः ॥६॥ स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमांकितैः । नृत्यवादित्रगीतैश्च शंखदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥ जांबवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवैः । विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाञ्चया । ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ न वा अयं ब्रह्मबंधुर्विष्णुर्मायाविनां वरः । द्विजरूपप्रतिच्छिन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ।१०। अनेन याचमानेन शत्रुणा वटुरूपिणा । सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ११ सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः । नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः । इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः । अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवन् जातमन्यवः१४ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप । प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः । कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥ १६ ॥ जयंतः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः । सर्वे नागायुतप्राणाश्चमू

से गिरती हुई त्रिलोकीको पवित्र करती है ॥ ४ ॥ ब्रह्मा आदि लोकपालोंने अपने अनुचरोंके साथ अपने विस्तारको दूरकर, पहिलेकेसे वामनरूपसे विराजमान अपने स्वामी भगवान्‌का आदर पूर्वक पूजन किया, और भेटें अर्पण करीं ५ और जल भेटें, माला, दिव्य और सुगन्ध वाला लेप, धूप, दीप, नैवेद्य, सुगंधिलाजा (लाई) अक्षत फल अंकुर६भगवान्‌के पराक्रमकी महिमा जिनमें वर्णित है ऐसे स्तोत्र, जयशब्द, नृत्य गीत, बाजे; शंख, दुंदुभीके शब्द इनसे भगवान्‌का पूजन किया ७ मन समान वेगवान् ऋक्षराज जामवंतने भेरी बजा कर, सब दिशाओंमें बड़े उत्सवके साथ विजयकी डौंडी पीटी॥८॥तीन पैर माँगनेके मिससे सब पृथ्वी हरली, उसे देखकर दीक्षालिये हुए अपने स्वामीके ऊपर क्रोध करके सब दैत्योंने कहा कि-॥ ९ ॥ अरे यह ब्राह्मण नहीं है, यह मायावियोंका शिरोमणि विष्णु है, यह ब्राह्मणका भेष बनाकर, गुप्तरूपसे काज सिद्ध किया चाहता है ॥१०॥ इस शत्रुने वटुकका रूप बनाकर, याचना करके हमारे स्वामी कि-जिसने यज्ञमें सब प्रकारसे दण्डका त्याग कर दिया है, उसका सर्वस्व हरलिया है ॥ ११ ॥ सत्यसंध और ब्राह्मणोंका भक्त, दयालु तिसमें भी विशेष कर दीक्षा लिया हुआ अपना स्वामी बलि कुछ झूठ तो बोल ही नहीं सकता ॥१२॥ इस कारण इस वामनको मारेंगे तो अपनेको धर्म होगा और स्वामी की सेवा भी समझी जायगी, इस प्रकार विचार करके बलिके अनुचर दैत्योंने हाथों में शस्त्र उठाये ॥१३॥ हे राजन् ! बलि यह बात नहीं चाहता था, परन्तु उन्हें क्रोध आगया, इससे वे सब त्रिशूल और पट्टिश हाथोंमें ले, वामन भगवान्‌को मारनेके लिये दौड़े ॥ १४ ॥ महाराज ! इन दैत्योंको दौड़ते आते देखकर विष्णुभगवान्‌के पार्षदोंने शस्त्र उठाकर, हँसते २ रोकदिया ॥ १५ ॥ नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन गरुड़ ॥ १६ ॥ जयंत, श्रुतदेव, पुष्पदन्त, सात्वत, ये सब दशसहस्र हाथियोंका बल धारण किये दैत्योंकी सेनाका संहार

ते जघ्नुरासुरीम् ॥१७॥ हन्यमानान् स्वकान् दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः । वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः । मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये । तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥ यो नो भवाय प्रागासीद्भवाय दिवौकसाम् । स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः । सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः । दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति । तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥२४॥ श्रीशुक उवाच । पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः । रसां निर्विविशू राजन् विष्णुपार्षदताडिताः ॥२५॥ अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभुचिकीर्षितम् । बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् । गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना । तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः । नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८ ॥ पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर । द्वाभ्यां क्रांता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥

करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान्‌के पार्षद दैत्योंको मार रहे थे, उन्हें क्रोध सहित देखकर शुक्राचार्यजीके शापको याद करके, बलि राजाने निषेध किया ॥१८॥ बलिने कहा कि-"हे विप्रचित्ति ! हे राहु ! हे निमि ! मेरा वचन सुनो, अभी तुम युद्ध मत करो पीछे लौट जाओ, क्योंकि यह समय अपने अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यो ! जो सब जीवोंको सुख दुःख देनेको समर्थ है, उसे कोई भी पुरुष पुरुषार्थ करके, नहीं उल्लंघ सकता है ॥ २० ॥ जो दैव पहिले अपने तो अनुकूल और देवताके प्रतिकूल था, वही आज सब प्रकार विपरीत होगया है ॥ २१ ॥ बल, मंत्री, बुद्धि, दुर्ग (किला) सलाह या मंत्र औषधि-आदि और साम आदि अनेकों उपाय करे, परन्तु यह पुरुष दैवको कभी नहीं उल्लङ्घ सकता ॥२२॥ तुमने इन हरिके पार्षदोंको कई बार जीता है, परन्तु आज ये ही दैवके प्रभावसे वृद्धिगत हो, तुम्हें जीत कर, युद्धमें गर्जना करते हैं ॥ २३ ॥ जब समय अनुकूल होगा तब हम भी उन्हें जीत लेंगे तिससे जो काल अनुकूल होवे उस कालकी बाट देखो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-महाराज ! विष्णुभगवान्‌के पार्षदोंसे पीटे जाते दैत्य और दानवोंके यूथपतियोंने अपने स्वामीका यह वचन सुन कर पातालकी राह ली ॥ २५ ॥ फिर पक्षिराज गरुड़जीने भगवान्‌का अभिप्राय, जान कर यज्ञमें सोमवल्ली कंडनके दिन वरुणपाशसे बलिको बाँध लिया ॥ २६ ॥ समर्थ हरिभगवान्‌ने बलिको बाँधा, उस समय सब दिशाओंमें और स्वर्ग तथा भूमिमें बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ २७ महाराज ! उदारयश वाले स्थिर बुद्धि, उस बलिको लक्ष्मीहीन और वरुणके पाशोंसे बँधा हुआ देख कर वामन, भगवान्‌ने कहा कि-॥ २८ ॥ 'हे दैत्य ! तूने मुझे तीन पैर देने स्वीकार किये हैं' तिनमें दो पैरसे मैंने तेरी सब भूमि दाब ली है अब तीसरा पैर दे ॥ २९ ॥ जहाँ पर्यंत यह सूर्य्य अपनी किरणोंसे प्रकाश करता

यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः । यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥३०॥ पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः । स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥ प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते । विश त्वं निरयं तस्मात् गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः । प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥ विप्रलब्धो ददामीति त्वयाऽहं चाढ्यमानिना । तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिनिग्रहो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः । भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥ १ ॥ बलिरुवाच । यद्युत्तमश्लोक भवान् ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते । करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्व्यसनाद् दुरत्ययात् । नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा ॥ ३॥ पुंसां श्लाघ्यतरं

है, जहाँ तक नक्षत्रों सहित चन्द्रमा प्रकाश करता है और जितनी दूरमें मेघ बरसता है तहाँ पर्यंत तेरी यह पृथ्वी है ॥ ३० ॥ तू देखता है कि-मैंने एक पैरसे तो पृथ्वी लोक दबाया और मेरे व्यापक शरीरने आकाश और दिशायें दबाईं, और दूसरे पैरसे तेरा सर्वस्वरूप यह स्वर्गलोक लिया ॥ ३१ ॥ बलि राजन् ! तूने प्रतिज्ञा करके नहीं दिया, इस कारण तेरा नरकमें वास होना चाहिये, इसमें तेरे गुरुकी भी सम्मति है सो तू नरकमें जा ॥ ३२ ॥ जो प्रतिज्ञा करके नहीं देता है किन्तु याचकको धोखा देता है, उसका मनोरथ वृथा है, स्वर्ग तो दूर रहा उसको उलटा नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ३३ ॥ तूने धनवान्पनेका अभिमान रख कर, 'हाँ मैं देऊँगा' इस प्रकार मुझे ठगा है सो इस मिथ्या वचनका फलरूप जो नरक उसका कुछ एक वर्ष तक भोग कर ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ छ ❀ छ

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के बाँधे हुए, वचनसे तिरस्कार करे हुए और सत्यसे डिगाये हुए भी उस राजा बलिने, सत्यसे चलितचित्त न होकर इस प्रकार दृढ़तायुक्त वचन कहा ॥ १ ॥ बलिने कहा कि-हे उत्तमकीर्त्ति देवश्रेष्ठ ! तुमने ही कपटसे वामनरूप धार भीख माँग कर फिर दूसरा रूप प्रकट करा इस कारण मेरा कहा हुआ वचन यद्यपि असत्य नहीं है तथापि यदि तुम उसको असत्य मानते हो तो जिस प्रकार धोखा देने वाला नहीं होगा उस प्रकार मैं सत्य करता हूँ, तुम अपना तीसरा पग मेरे मस्तक पर स्थापन करो, अब दो पगसे जगत्को घेर लेने वाले मेरे तीसरे चरणसे तेरा मस्तक नहीं पूरा होगा ऐसा न मानो, क्योंकि-सम्पदासे जब दो पग पूरे होगए तो सम्पदासे संपदा वाले की अधिकता होनेके कारण यह अधिक ही होगा ॥ २ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! जिस प्रकार अपकीर्त्तिसे मैं अत्यन्त भय मानता हूँ, तैसा नरक, स्थान त्याग, पाशोंसे बँधना, अतिदुःसह दुःख, धन आदिके खरचसे होने वाले दुःख और भी दिये हुए दण्ड,

मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् । यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ॥ ४ ॥ त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः । यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥५॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः । बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकान्तयोगिनः ॥६॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा । बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः । भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः । किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् । ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः ॥ १० ॥ अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः । इदं

इनमेंसे किसीसे भी मैं भय नहीं मानता हूँ ॥ ३ ॥ परमपूज्य पुरुषोंका लोगोंको करा हुआ दण्ड परमप्रशंसाके योग्य है ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि-जो दण्ड माता, पिता, भ्राता और मित्र नहीं देते हैं, इससे निःसन्देह आप हितकारीका दण्डित करा हुआ मैं स्तुति योग्य ही हूँ ॥ ४ ॥ हे परमेश्वर ! यद्यपि तुम शत्रुरूपसे वर्त्ताव करने वाले हो तथापि हम असुरोंके परम गुरु ही हो, क्योंकि-नानाप्रकारके शूरता वीरता आदि मदोंसे अंधे हुए हमें तुमने ऐश्वर्यनाशरूप नेत्र दिया है ॥ ५ ॥ और भक्तोंकी समान हमारे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त ही तुम्हारी शत्रुता है, क्यों कि—परमयोगियोंको जो सिद्धि प्राप्त हुई है वही सिद्धि बहुतसे असुरोंको तुमसे बड़ा भारी वैरभाव करने पर प्राप्त हुई है, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है ॥ ६ ॥ इस कारण परम गुरुरूप और परम पराक्रमी आपका वशमें करा हुआ तथा वरुण पाशोंसे बाँधा हुआ मैं न लज्जित होता हूँ, न पीड़ा ही पाता हूँ ॥ ७ ॥ और मैं अनुग्रहके योग्य नहीं हूँ तो भी, तुमने जो यह मेरे ऊपर दण्डरूप अनुग्रह करा है सो केवल अपने भक्तके पोते (प्रह्लादजीके पोते).के नातेसे करा है यह कहनेके आशयसे बलिने कहा कि-हे ईश्वर ! तुम ही जिनका मुख्य आश्रय हो और जिनकी कीर्त्ति प्रसिद्ध होरही है वह मेरे पितामह (दादा) प्रह्लादजी, तुम्हारे भक्त माने हुए होनेके कारण, तुम्हारा शत्रु जो उनका पिता हिरण्यकशिपु उसने, उन्हें नाना प्रकारके दुःख दिये तो भी उन्होंने, किसी समय अवश्य मरणको प्राप्त होने वाले पुरुषको जो छोड़ जाता है ऐसे देहसे क्या करना है ? तथा धनको हरने वाले पुत्रादि रूप कुटुम्बी नामसे प्रसिद्ध चोरोंसे कौन लाभ होगा ? जन्म मरण आदि संसारकी कारण स्त्रीसे क्या होना है ? और घरोंका भी क्या करना है ? अर्थात् कुछ नहीं करना है इन सबोंसे इस प्रवृत्तिमार्गमें केवल आयुका नाश ही होता है, ऐसा निश्चय करके, संसारी पुरुषोंके सङ्गसे भय मानने वाले साधुओंमें श्रेष्ठ और अगाधज्ञानवान् वह महात्मा पितामह (प्रह्लादजी) दैत्यकुलका नाश करने वाले आपके, नित्य और निर्भय चरण कमलकी शरणमें गये ॥ ८-१० ॥ मैं भी उनका पोता हूँ इस कारण उनके ही भजनके प्रभावने, अपने शत्रुरूप आपके समीप पहुँ-

कृतांतांतिकवर्तिजीवितं यथाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुद्ध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच। तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः। आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः तमिंद्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम्। प्रांशुं पिशङ्गांबरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत्। ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह१४ स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम्। उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥ प्रह्लाद उवाच। त्वयैव दत्तं पदमैंद्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम्। मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा। तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच। तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृतांजलेः। हिरण्यगर्भो भगवानुवाच

चाया है और तुमने भी कृपा करके बलात्कारसे (जबरदस्ती) मेरी सम्पदा मुझसे छीन ली है, जिस सम्पदासे उन्मत्तबुद्धि हुआ पुरुष मृत्युके समीप पहुँचे हुए इस अपने आयुको भी नाशवान् नहीं जानता है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे कुरुश्रेष्ठ ! वह बलि इस प्रकार कह रहा था कि-इतने ही में उदय हुए चन्द्रमाकी समान प्रकाशवान् होते हुए भगवान्के प्रिय प्रह्लादजी तहाँ आपहुँचे ॥ १२ ॥ उस समय बलिने, कान्तिसे प्रकाशवान् और कमलकी समान विशाल नेत्र, ऊँचे, पीले वस्त्र पहिने, श्यामवर्ण, जानुपर्यन्त लम्बी भुजा वाले और सुन्दर उन अपने पितामह (प्रह्लादजी) को देखा ॥ १३ ॥ तब वरुणके पाशोंसे बँधे हुए होनेके कारण बलिने, पहिलेकी समान उनका पूजन न करके केवल मस्तकसे प्रणाम करा और अश्रुओंसे जिसके नेत्र व्याकुल होरहे हैं ऐसे राजा बलिने लज्जाके कारण नीचेको मुख कर लिया ॥ १५ ॥ उस समय उन उदार चित्त वाले प्रह्लादजीने सज्जनोंके पालक सुनन्दनन्द आदि पार्षदोंसे सेवा करे हुए और तहाँ बैठे हुए उन वामनरूप भगवान्को देखकर और उनके बलिके ऊपर करे हुए अनुग्रहको देख कर, शरीरपर खड़े हुए रोमाञ्चों करके और नेत्रोंमें आये हुए आँसुओंसे विह्वल होते हुए मस्तकसे नमस्कार करते२ आगे जाकर उन्होंने भूमिमें मस्तकसे साष्टाङ्ग नमस्कार करा १५ तदनन्तर प्रह्लादजीने कहा कि-हे भगवन् ! इस बलिके इंद्रपदको तुमने हरा है सो पहिले यह सम्पत्तिमान् इंद्रपद तुमने ही इसको दिया था वह अपना ही अब तुमने फिर ले लिया है, सो बहुत अच्छा करा, सो अपनेको मोहित करने वाली सम्पदासे इसको जो तुमने रहित करा है यह इस बलिके ऊपर तुमने बड़ा भारी अनुग्रह ही करा है ऐसा मैं समझता हूँ ॥१६॥ हे परमेश्वर ! जिस सम्पत्तिके कारण मनको वशमें रखने वाला विवेकी पुरुष भी मोहित होजाता है; उस सम्पत्तिके प्राप्त होने पर तुम्हारे सिवाय और कौनसा पुरुष, आत्माके तत्त्वको ठीक२ देखेगा? इसकारण परमदयालु होकर सम्पत्ति हरने वाले, तुम सब लोकोंके साक्षी, जगदीश्वर, नारायणको नमस्कार हो॥१७॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैंकि-हे राजन् ! उस समय हाथ जोड़कर खड़े

मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला । प्रांजलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच । क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः । कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहंति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥२०॥ ब्रह्मोवाच । भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय । मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये । निवेदितं च सर्वस्वमात्मा विक्लवयाधिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् । अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच । ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् । यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥२४॥ यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः । नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥२५॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः । यद्यस्य न भवे-

उन महेन्द्रजीके सुनते हुए भगवान् ब्रह्माजी, उन वामनजीसे कुछ भाषण करनेको उद्यत हुए ॥ १८ ॥ सो इतने ही में विन्ध्यावली भी कुछ कहनेको हुई सो अतः [illegible] का सन्मान करके ब्रह्माजी क्षणभरको चुप रहे इस कारण पहिले उसका ही वाक्य कहते हैं-हे राजन् ! वरुणकी पाशोंसे बँधे हुए पतिको देख कर भयसे घबराई हुई उस बलिकी पतिव्रता स्त्री, हाथ जोड़ कर, नम्रताके साथ नीचेको मुख करे हुए वामनजीसे इस प्रकार कहने लगी ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिने कहा कि-हे ईश ! तुमने अपनी क्रीड़ा करनेके निमित्त इस त्रिलोकीको उत्पन्न करा है उसमें और कुबुद्धि पुरुष अपना स्वामीपना मानते हैं परन्तु इस त्रिभुवनकी उत्पत्ति,स्थिति और प्रलय करने वाले तुम्हें वह क्या समर्पण करेंगे ? तिससे वह पुरुष, निःसन्देह निर्लज्ज हैं और 'हम स्वतन्त्र हैं' ऐसा तुमने उनमें कहनेमात्रको आरोप कर दिया है अर्थात् सर्वस्व तुम्हारा ही है, सो वृथा अनेकों प्रकारकी अभिमानकी बातें करने वाले इस बलिको आप कृपा करके छोड़ दीजिये ॥ २० ॥ हे प्राणियोंको उत्पन्न करने वाले ! हे प्राणियोंको वशमें रखनेवाले ! हे देवाधिदेव ! हे जगदात्मन् ! यह बलि दण्ड देने के योग्य नहीं है इस कारण सर्वस्व हरे हुए इसको आप छोड़ दीजिये ॥ २१ ॥ इस बलिने अपनी उदारबुद्धिसे तुम्हें सब भूमि, कर्म करके प्राप्त करेहुए स्वर्गादि लोक और शरीर इस प्रकार सर्वस्व समर्पण कर दिया है२२कोईभी निष्कपटबुद्धि पुरुष, जिनके चरणोंमें जलका अर्घ्य समर्पण करके अथवा दूबके अङ्कुरोंसे भी उत्तम पूजा करके उत्तमगति पाता है,ऐसे आपको इसबलिने उदारचित्तसे त्रिलोकी समर्पण करी है फिर यह दुःख क्यों पावे, इसको आप छोड़ दीजिये२३श्रीभगवान्ने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छा करता हूँ, उसका धन ऐश्वर्य आदि मैं उससे छुडा देता हूँ क्योंकि-उस धन आदिके मदसे युक्त हुआ पुरुष, लोकोंका और मेरा अपमान करने लगता है ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन ! परवश (कर्मोंके वशीभूत) हुआ यह जीवात्मा, अपने कर्मोंसे नानाप्रकारकी,कीट-पतङ्गादि योनियोंमें जन्मता भटकता,कभी पुण्योंके उदयसे पुरुष जन्मको पाता है ॥ २५ ॥ तिसमें जन्म, कर्मत

स्तब्धस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः । सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः । अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात् क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः । ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः । छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक्॥३०॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि । सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥३१॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् । यत्राधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः । नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते । सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥ न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरम् । त्वच्छासनातिगान्दैत्यान् चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् । सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते

अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिसे इसको यदि गर्व न होय तो यह मेरा अनुग्रह ही है ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! अनन्यभावसे मेरी शरणमें आया हुआ पुरुष, मान और उद्धतपनेके कारण तथा सकल पुरुषार्थोंके सब प्रकारसे प्रतिकूल जन्म आदिके द्वारा मोहित नहीं होता है इस कारण भक्तोंकी इच्छासे मैं उसको सम्पत्ति देता हूँ परन्तु अभक्तको मोह होता है इसकारण उसके सर्वस्वको हरकर ही मैं उसके ऊपर अनुग्रह करता हूँ ॥२७ ॥ हे ब्रह्मन् ! दैत्य दानवोंका अधिपति और कीर्तिको बढ़ाने वाला यह बलि, क्लेश भोगता हुआ भी, मोह नहीं पाता है इस कारण मेरी अजेय मायाको इसने जीत लिया है ॥२८॥ अहो ! इसका धन छिन गया, यह अपने स्थान से अलग होगया, शत्रुओंने इसका तिरस्कार करके इसको बाँध लिया, जातिवालों ने इसको त्याग दिया, इसको पीडा भोगनी पड़ी, गुरुने इसको ललकार कर शाप दिया तथापि दृढ़संकल्प होनेके कारण इसने सत्यको नहीं त्यागा और छलसे मैंने इसको धर्मका उपदेश करा तो भी इसने उसे नहीं छोडा इसकारण यह सत्यवक्ता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ इस कारण जो देवताओंको भी प्राप्त होना कठिन है ऐसे स्थान को मैंने इसे पहुँचा दिया है, हे ब्रह्मन् ! सावर्णि मन्वन्तरमें यह मेरे आश्रयसे इंद्र होगा ॥ ३१ ॥ तब तक इसे विश्वकर्माके रचे हुए सुतलमें, उसका स्वामी होकर रहने दो, जहाँ रहने वाले पुरुषोंको मेरे दृष्टि डालनेके कारण आधि, व्याधि, ग्लानि, आलस्य तथा और उपद्रव भी प्राप्त नहीं होते हैं॥३२॥ इस प्रकार ब्रह्माजीसे कह कर दयाके वशीभूत हुए, भगवान्, प्रत्यक्ष बलिसे कहने लगे कि-हे महाराज इंद्रसेन ! ज्ञाति वालोंसे घिरे हुए तुम, देवादिक भी जिसको पानेकी इच्छा करते हैं उस सुतलमें प्रवेश करो और तहाँ तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३३ ॥ तहाँ वास करते हुए तुम्हारा इन्द्रादिक लोकपाल भी तिरस्कार नहीं करसकेंगे; औरोंका तो फिर कहना ही क्या? और तहाँ जो तुम्हारी आज्ञासे बाहर बर्त्ताव करने वाले दैत्य होंगे, उन को मेरा सुदर्शनचक्र मारडालेगा ॥ ३४ ॥ हे वीर ! तहाँ सेवक और भोगकी सामग्रियों सहित रहने वाले तेरी मैं सकल उपद्रवोंसे रक्षा करूँगा और तू भी तहाँ सदा

भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां संगात्ते भाव आसुरः । दृष्ट्वा मदनुभावं वै कुण्ठो सद्यः विनंक्ष्यति ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिदानवसंवादो नाम द्वाविंशोऽध्यायः २२

श्रीशुक उवाच । इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोखिलसाधुसंमतः । बद्धांजलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरुवाच । अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः । यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहो-ऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः । विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥ एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् । पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् । निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् प्रह्लाद उवाच । नेमं विरिंचो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते । यन्नो सुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवंद्यैरपि वन्दितांघ्रिः ॥ ६ ॥ यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः । कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टि-

समीपमें विद्यमान मुझे देखेगा॥३५॥ और तहाँ दैत्यदानवोंके सङ्गसे प्राप्त हुआ तेरा असुरस्वभाव, मेरे प्रभावको देख कर कुण्ठित होताहुआ तत्काल नष्ट होजायगा ३६ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् परीक्षित ! इस प्रकार कहने वाले पुराण पुरुष वामनजीसे, परमप्रभावशाली, साधुभावसे सबके माननीय और जिसके नेत्र आँसुओंकी बिंदुओंसे भर गए हैं और जो हाथ जोड कर खडा है ऐसा वह राजा बलि, प्रेमवश कण्ठ रुक जानेके, कारण गद्गद वाणीसे इसप्रकार कहने लगा ॥ १ ॥ बलिने कहा कि-अहा हा ! आपको प्रणाम करनेकी कैसी बडी भारी महिमा है कि जिसके निमित्त करा हुआ उद्योग ही शरणागत भक्तोंका इच्छित पुरुषार्थ, अभक्त-पुरुषोंमें प्राप्त करनेको उद्यत होरहा है, क्योंकि-जिस नमस्कारके उद्योगसे लोक-पाल इंद्रादिक देवताओंको भी पहिले कभी नहीं, मिला ऐसा अपना अनुग्रह, तुम मुझ नीच असुरको देरहे हो ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इसप्रकार कह कर श्रीहरिको और शिवसहित ब्रह्माजीको नमस्कार करके वरुणकी पाशोंसे छूटनेके कारण प्रसन्न हुआ, वह बलि, असुरों सहित सुतलमें जानेको उद्यत हुआ३ इस प्रकार भगवान्ने बलिसे लिया हुआ स्वर्गलोक इंद्रको देकर उससे अदितिका मनोरथ पूरा करा और आप उपेन्द्र होकर सकल जगत्का पालन करा ॥ ४ ॥ तद-नन्तर ईश्वरका प्रसाद प्राप्त होकर वरुणके पाशोंसे छूटे हुए, अपने बलि नामक वंशधर पौत्रको देख कर भक्तिसे नम्र हुए प्रह्लादजी इस प्रकार कहने लगे ॥ ५ ॥ प्रह्लादजीने कहा कि-हे भगवन् ! जगत्के पूजनीय ब्रह्मादिकोंने भी जिनके चरणों को वन्दना करी है ऐसे आप, हम असुरोंके दुर्गपाल हुए हो, यह आपका अनुग्रह हुआ, यह प्रसाद ब्रह्माजी, लक्ष्मी, और रुद्रभगवान्को नहीं प्राप्त हुआ फिर औरों को तो प्राप्त होता ही क्या ॥ ६ ॥ हे आश्रय देनेवाले भगवान् ! जिनके चरणकमल

पदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य । सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् । मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् । मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच । आज्ञां भगवतो राजन्प्रह्लादो बलिना सह । बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृतांजलिः ॥ ११ ॥ परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः । प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके । आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन्संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः । यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच । कुतस्तत्कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् । यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हव-

---

की मकरन्दका सेवन करके ब्रह्मादिकोंको भी सृष्टि रचनेकी शक्ति आदि ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। ऐसे आपकी कृपादृष्टिको, हे भगवन्! दुष्ट और नीच योनिमें उत्पन्न हुए हम कैसे प्राप्त हुए हैं ? यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ७ ॥ यह तुम्हारा चरित्र विचित्र है, जिसने अचिंत्य योगमायाकी लीलासे भुवनोंको उत्पन्न करा है उन सर्वात्मा, सर्वज्ञ और सर्वदृष्टि तुम्हारा भक्तप्रियरूप विषमस्वभाव है सो विषमता आपमें वास्तविक नहीं है, क्योंकि-तुम कल्पवृक्षकी समान स्वभाववाले हो ॥ ८ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे पुत्र प्रह्लाद! तेरा कल्याण हो, तू सुतल नामक स्थानको जा, और तहाँ अपने बलि नामक पौत्रके साथ आनन्दसे रह कर ज्ञातिवालोंको सुख दे ॥ ९ ॥ तहाँ हाथमें गदा लेकर द्वार पर खड़े हुए मुझे तू देखेगा और मेरे दर्शनसे जो तुझे बड़ा भारी आनन्द होगा उससे तेरा अज्ञान दूर होगा ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! ऐसी भगवान्की आज्ञाको उन निर्मलबुद्धि, सकल दैत्योंकी सेनाओंके स्वामी प्रह्लादजीने, मस्तक झुका कर 'ठीक है' ऐसे वचनसे स्वीकार करके हाथ जोड़कर उन आदिपुरुषकी प्रदक्षिणा कर फिर नमस्कार करा और उनकी आज्ञा लेकर राजा बलिके साथ सुतलनामक महाबिलमें चले गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे राजन्! ब्रह्मज्ञानियोंकी सभामें, ऋत्विजोंके मध्यमें, अपने समीप बैठे हुए शुक्राचार्यजीसे उन नारायण श्रीहरि वामन भगवान्ने कहा कि-॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन्! यज्ञकर्म करने वाले आपके शिष्यके उस कर्ममें जो कुछ न्यूनता रही हो उसको पूर्ण करो, कर्ममें जो वैगुण्य (न्यूनता) होय है वह ब्राह्मणोंके देखनेसे ही पूर्ण होजाय है, फिर अनुष्ठान करने पर पूर्ण होनेका तो कहना ही क्या ॥ १४ ॥ तब शुक्राचार्यजीने कहा कि-हे भगवन्! जिस बलिने सर्वस्व अर्पण करके, कर्मको प्रवृत्त करनेवाले, यज्ञका फल देनेवाले, यज्ञ मूर्ति आप परमपुरुषका पूजन करा उसके कर्ममें न्यूनता कहाँसे होगी ? अर्थात् कभी नहीं होसकती १५ पूजाको तो एक ओर रहने दीजिये, परन्तु मन्त्रसे (स्वरादिके अस्तव्यस्त होने पर) तन्त्रसे (अनुष्ठान पीछे आगे होनेपर) देश और कालसे (शास्त्रमें कहे देश

स्तुतः । सर्वं करोति निश्छिद्रमनुसंकीर्तनं तव ॥ १६ ॥ तथाऽपि वदतो भूमन्करिष्याम्यनुशासनम् । एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥ श्रीशुक उवाच । अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति । यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह॥१८ एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः । ददौ भ्रात्रे महेंद्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः । दक्षभृग्वंगिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च । लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥ वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः । मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेंद्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये । तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् । लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेंद्रभुजपालितः । श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप । पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥२६॥ सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् । धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

कालका उल्लंघन करके), योग्यतासे (सत्पात्रको दान न देने पर) और वस्तुसे (दक्षिणादिमें न्यूनाधिकता होनेपर) यदि कर्ममें न्यूनता होजाय तो वह सब तुम्हारा नाम कीर्त्तन करनेसे पूर्ण होजाती है ॥ १६ ॥ तथापि हे सर्वव्यापक ! आप ही कहते हो तो मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा; क्योंकि आपकी आज्ञाका पालन करना ही पुरुषके परमपुरुषार्थका साधन है ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार श्रीहरिकी आज्ञाको स्वीकार करके भगवान् शुक्राचार्यजीने, ऋषियोंके साथ, बलिके यज्ञमें जो कर्म न्यून था उसको पूर्ण करा ॥१८॥ हे राजन् ! इस प्रकार वामनरूप धारण करने वाले श्रीहरिने, बलिसे याचना करके पहिले जो शत्रुओंने (असुरोंने) हर लिया था वह स्वर्गस्थान अपने महेन्द्र भ्राताको अर्पण करा ॥ १९ ॥ तब प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने, दक्ष भृगु और अङ्गिरा जिनमें मुख्य हैं ऐसे देवता, ऋषि, पितर, भूमिपति (मनु) सनत्कुमार और शिवजीने, कश्यप और अदितिकी प्रसन्नताके निमित्त और सकल प्राणियोंके कल्याणके निमित्त वामनजीको सकल लोक और लोकपालोंका स्वामी बनाया ॥ २० ॥ २१ ॥ वेद, सकल देवता, धर्म, यश, लक्ष्मी, कल्याण, व्रत, स्वर्ग और मोक्षका पालन करनेमें समर्थ जो वामनजी तिनको सबके कल्याणके निमित्त उपेंद्रका अधिकार दिया, उस समय हे राजन् ! सकल प्राणियोंको परम आनन्द हुआ ॥ २२॥२३ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञा लेकर, लोकपालोंके सहित इन्द्र, वामनजीको अपने आगेके विमान में बैठा कर स्वर्गको लेगए ॥ २४ ॥ इस प्रकार उपेन्द्रके भुजबलसे रक्षा करा हुआ इन्द्र, त्रिलोकीके मिलने पर परमसम्पत्तिसे युक्त और निर्भय होकर आनन्दित हुआ ॥ २५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर ब्रह्माजी, शिवजी, सनत्कुमार, भृगु,आदि मुनि पितर,सकल भूत,सिद्ध और विमानोंमें बैठकर विचरने वाले अन्य भी जो देवता हैं वह अत्यन्त ही आश्चर्यकारी उन विष्णुभगवान्के बड़े भारी कर्मको गाते हुए अपने

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन । उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् २८ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः । किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥ ३० ॥ क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे । यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ३१ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशोऽध्यायः २३

राजोवाच । भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारकथामाद्यां माया-मत्स्यविडम्बनम् ॥१॥ यदर्थमदधाद् रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् । तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि । उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः । उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच । गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः । रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु

अपने स्थानको चले गए और अदितिकी भी प्रशंसा करने लगे ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन ! श्रोता आदिकोंके पापोंको दूर करने वाला यह वामनजीका सकल चरित मैंने तुमसे कहा है ॥२८॥ हे राजन् ! नानाप्रकारके पराक्रम करनेवाले विष्णु भगवान्‌की सम्पूर्ण महिमाको जो वर्णन करेगा वह मनुष्य पृथ्वीके परमाणुओंको भी गिनलेगा अर्थात् जैसे पृथ्वीके परमाणुओंका गिनना कठिन है, तैसे ही विष्णु भगवान्‌के सकल गुणोंका वर्णन करना भी कठिन है क्योंकि—उत्पन्न होने वाला अथवा उत्पन्न हुआ मनुष्य, पूर्णरूप भगवान्‌की महिमाके अन्तको क्या पावेगा? किन्तु नहीं पावेगा, ऐसा मन्त्रोंको देखनेवाले वसिष्ठ ऋषिने भी कहा है२९अद्भुत चरित करने वाले, देवाधिदेव श्रीहरिके वामन अवतारके चरितोंको जो सुनता है वह सर्वोत्तम गति पाता है ॥३०॥ तथा यज्ञ आदि, श्राद्ध आदि और गुरुपूजा आदि कर्मोंके होते समय जहाँ २ इस वामन भगवान्‌के चरित्रका कीर्त्तन किया जाता है वह २ कर्म अङ्गों सहित पूर्ण होते हैं, ऐसा बड़े २ ज्ञानियोंका कथन है ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ *

मत्स्यावतारके चरित्रको सुननेकी इच्छा करके राजाने कहा कि—हे भगवन् ! मायाके द्वारा मत्स्यरूपका अनुकरण जिसमें वर्णन करा है, उस अद्भुत कर्म करने वाले श्रीहरिके पहिले अवतारकी कथाको सुननेकी मेरी इच्छा है ॥१॥ हे भगवन् ! स्वयं ईश्वर होकर भी उन्होंने कर्मोंसे बँधे हुए साधारण पुरुषकी समान, तमोगुणी लोकनिन्दित और दुःसह मत्स्यरूप जिसके निमित्त धारण करा था, वह सब कारण हमसे यथावत् वर्णन करो, क्योंकि—श्रेष्ठकीर्त्ति परमेश्वरका चरित्र सब लोकोंको सुखकारी है ॥ २ ॥ ३ ॥ सूतजीने कहा कि हे शौनक ! राजा परीक्षितके इसप्रकार प्रश्न करने पर उन भगवान् शुकदेवजीने, मत्स्यरूपसे करे हुए विष्णुभगवान्‌के चरित्रको कहनेका प्रारम्भ करा ॥ ४ ॥ हे राजन् ! भगवान्, स्वतन्त्र होकर भी, गौ, ब्राह्मण देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षा करनेकी इच्छासे मत्स्य आदि

भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः । नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥६॥ आसीदतीतकल्पांते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः । समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥७॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली । मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा तद्दानवेंद्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् । दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् । नारायणपरोऽतप्यत्तपः स सलिलाशनः ॥ १० ॥ योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः । श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणार्पितः ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् । तस्यांजल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत । उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ॥ १३ ॥ तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् । यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ॥ कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ॥ १४ ॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् । अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्य-

---

अवतार धारण करते हैं ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जैसे वायु सकल उत्तम अधम प्राणियों में विचरता हुआ भी उनसे लिप्त नहीं होता है तैसे बुद्धि करके उत्तम अधम प्राणियोंमें प्रेरकरूपसे विद्यमान रहनेवाले ईश्वर भी निर्गुण होनेके कारण उत्तमता और अधमताको नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! बीतेहुए कल्पके अन्तमें ब्राह्म नाम वाला नैमित्तिक (ब्रह्माजीके निद्राको प्राप्त होनेके कारणसे होनेवाला) प्रलय हुआ, उस समय भूः आदि लोक समुद्रमें डूब गये थे ॥ ७ ॥ उस समय कालगतिसे निद्राको प्राप्त होनेके कारण शयन करनेकी इच्छा करने वाले ब्रह्माजीके मुखमें से निकल समीपमें बाहर पड़े हुए वेदोंको हयग्रीव नाम वाले दैत्यने हर लिया ।८। तब उस दैत्यपति हिरण्यगर्भके उस कर्मको जान कर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरिने, मत्स्यरूप धारण करा ॥ ९ ॥ हे राजन् ! उस ही बीते हुए कल्पमें नारायणके ध्यान में तत्पर, और केवल जल पीकर रहने वाला कोई एक महात्मा सत्यव्रत नाम वाला राजर्षि तप करता था ॥ १० ॥ जो इस वाराह नामक महाकल्पमें सूर्यका पुत्र श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध है और जिसको श्रीहरिने मनुका अधिकार दिया है वही उस समयका सत्यव्रत राजा था ॥ ११ ॥ एक समय उस सत्यव्रत राजाको, कृतमाला नाम वाली नदीके तट पर जलसे तर्पण करते हुए अञ्जुलिमेंके जलमें एक मछली मिली ॥ १२ ॥ तदनन्तर हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! वह द्रविड़ देशका स्वामी सत्यव्रत अञ्जुलिमेंकी उस मछलीको जल समेत नदीके जलमें डालने को उद्यत हुआ ॥ १३ ॥ तब वह मछली राजासे कहने लगी कि—हे दीनवत्सल राजन् ! जाति वालोंका प्राणांत करने वाले जलचर प्राणियोंसे भयभीत होनेके कारण मुझ दीनको इस नदीके जलमें तू क्यों डाले देता है ? ॥ १४ ॥ तब अपने ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त प्रीतिसे मत्स्यरूप धारण करने वाले उन भगवान्को न जान कर, उस सत्यव्रतने, इस मछलीकी मैं रक्षा करूँ ऐसा मनमें विचारा ।१५। और उस मछलीके अतिदीन वाक्य सुन कर वह दयालु राजा, अपने कमण्डलुमें

माश्रुत्य स महीपतिः । कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥ सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ । अलब्ध्वात्मावकाशं सा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे । कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय न्यधादौदंचनोदके । तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन्सुखं वस्तुमुदंचनम् । पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे । तदावृत्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः । निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि । जलाशये सम्मितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः । अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् । तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५ ॥ नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च । यो भवान् योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥ २६ ॥ नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः । अनुग्रहाय भूतानां धत्से

के जलमें उसको डाल कर अपने आश्रमको लेगया ॥ १६ ॥ वह मछली एक रात्रिमें ही उस कमण्डलुमें, अपनेको उचित स्थान नहीं मिले, इस प्रकार बढ़ने लगी और उस सत्यव्रत राजासे कहा कि-॥ १७ ॥ हे राजन् ! इस कमण्डलुमें मैं दुःखके साथ रहनेको समर्थ नहीं हूँ इस कारण जहाँ मेरा सुखसे रहना होय, ऐसे बड़े उत्तम स्थानका मेरे निमित्त उद्योग करदो ॥ १८ ॥ उससमय उस राजाने, उसको कमंडलु मेंसे बाहर निकाल कर मटकेके जलमें डाला, सो उसमें डाली हुई वह मछली एक मुहूर्त्तमें तीन हाथ लम्बी बढ़गई और कहने लगी कि-॥ १९ ॥ हे राजन् ! यह जल का पात्र मुझे सुखसे रहनेको पूरा नहीं पड़ता है इस कारण तुम मुझे रहनेको बड़ा स्थान दो क्योंकि- मैं तुम्हारी शरण आई हूँ ॥ २० ॥ हे राजन परीक्षित् ! तदनन्तर उस राजाने, उसको मटकेमेंसे निकाल कर सरोवरमें डाला तब अपने शरीरसे उस सरोवरके जलको भी घेर कर वह बड़ा भारी मत्स्य बढ़ गया और फिर भी कहने लगा कि-॥ २१ ॥ हे राजन् ! जलमें रहनेवाले मुझे यह सरोवरमेंका जल भी थोड़ा होनेके कारण सुखदायक नहीं है इसकारण मेरी रक्षाका उपाय करके तुम मुझे बड़े भारी अक्षय सरोवरमें लेजा कर रक्खो ॥ २२ ॥ इस प्रकार उसके कहने पर राजा सत्यव्रतने उस मत्स्यको आगे आगेको बड़े भारी अक्षय सरोवरमें पहुँचाया तब उस उस सरोवरकी समान बढ़ने वाले मत्स्यको अन्तमें राजाने समुद्रमें डाला २३ जब राजा उस मत्स्यको समुद्रमें डालने लगा तब वह मत्स्य कहने लगा कि-हे वीर! तू मुझे यहाँ न छोड़, क्योंकि-यहाँ अतिबली मगर आदि जलचर मुझे भक्षण कर जायँगे ॥२४॥ इसप्रकार सुन्दर वार्त्ता करनेवाले मत्स्यका अत्यन्त मोहित कराहुआ वह सत्यव्रत राजा उससे कहनेलगा कि-मत्स्यरूपसे हमें मोहित करनेवाले तुम कौन हो ? २५ जो तुमने एकदिनमें ही सौ योजन चौड़े सरोवरको अपने शरीरसे घेरलिया ऐसे प्रभाव वाला कोई भी जलचर प्राणी हमने तो कभी भी न देखा न सुना २६

रूपं जलौकसाम् ॥ २७ ॥ नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर। भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥ २८ ॥ सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः। ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥ २९ ॥ न तेऽरविंदाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः। यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः श्रीशुक उवाच। इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये। विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकांतजनप्रियः प्रियम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच। सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिंदम। निमंक्ष्यत्यप्ययांभोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ३२ त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा। उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च। सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥३४॥ आरुह्य महतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः। एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥३५॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा। उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥३६॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनाव-

---

इस कारण अविनाशी, भक्तोंके दुःखहारी साक्षात् भगवान् नारायण आपने हम समान प्राणियोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त निःसन्देह यह जलचर प्राणीका रूप धारण करा है ॥ २७ ॥ इस कारण हे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्वामी! हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो, हे विभो! हम शरणागत भक्तोंके मुख्य आत्मा और आश्रय भी तुम ही हो ॥ २८ ॥ हे भगवन्! तुम्हारे सब ही लीलावतार, प्राणियोंके कल्याणके हेतु होते हैं ऐसा यद्यपि मैं साधारणरूपसे जानता हूँ तथापि, जिसके हेतु मैंने यह मत्स्यरूप धारण करा है उस कारणको जाननेकी मेरी इच्छा है ॥२९॥ हे कमलनयन! जो हम भक्तजनोंको तुमने अपना यह अद्भुतरूप दिखाया है तिससे, जैसे तुम्हें छोड़ कर अन्य देह आदिका अभिमान रखने वाले पुरुषोंकी शरणमें जाना व्यर्थ होता है तैसे, सबके मित्र, प्रिय और आत्मारूप आपके चरणकी शरण जाना व्यर्थ नहीं होता है ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! जिनको अपने अनन्य भक्त प्यारे हैं और जो सत्यव्रतका प्रिय करने वाले हैं और जिन्होंने कल्पका क्षय होनेके समय प्रलय समुद्रमें क्रीड़ा करनेके निमित्त मत्स्यका रूप धारण करा है वह जगदीश्वर भगवान् इस प्रकार भाषण करनेवाले उस सत्यव्रत राजासे कहने लगे ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे शत्रुदमन राजन्! आजसे सातवें दिन यह भूर्भुवादिक तीनों लोक प्रलयसमुद्रमें डूब जायँगे ॥ ३२ ॥ उस समय प्रलयके जलमें त्रिलोकी डूबने लगेगी तब मेरी भेजी हुई एक बड़ी नौका निःसन्देह तुम्हारे पास आवेगी ॥३३॥ उस समय तू सकल औषधि और बड़े छोटे बीजोंको लेकर, सप्तऋषियोंसे घिरा हुआ और सकल प्राणियोंने जिसके गौरवको बढ़ाया है ऐसा होता हुआ उस बड़ी भारी नौकामें चढ़ कर सूर्य आदिके प्रकाशसे रहित उस महासागरमें ऋषियोंके ही प्रकाशसे प्रसन्नताके साथ विचरेगा ।३४।३५। फिर प्रबल वायुके कारण यह नौका डगमगाने लगेगी तब वहाँ आयेहुए मेरे सींगमें वासुकि सर्पके लपेटोंसे उसको तू बाँध देना ॥ ३६ ॥ तब हे राजन्! जब तक

मुदन्वति। विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम्। वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत। सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥ आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान् राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः। निषसाद हरेः पादौ चिंतयन्मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन्महीम्। वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥ ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम्। तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम्। स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे। एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा। वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच। अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः। यदृच्छयेहोपसता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोयं निजकर्मबन्धनः

ब्रह्माजीकी रात्रि रहेगी तब तक ऋषि और नौका सहित तुम्हें मैं उस प्रलयसागरमें खैंचता हुआ विचरता रहूँगा ॥ ३७ ॥ तदनन्तर परब्रह्म नामसे कहा हुआ अपना स्वरूप, तेरे उत्तम प्रश्नोंके करने पर मैं अनुग्रह करके उपदेशके द्वारा तुझसे कहूँगा तब तू उसको अपने हृदयमें प्रत्यक्ष जानेगा ॥३८॥ इस प्रकार राजासे कह कर वह मत्स्यरूप श्रीहरि, तहाँ ही अन्तर्धान होगये, तदनन्तर वह सत्यव्रत राजर्षि भी जो काल, सातवें दिन आनेवाला भगवान्‌ने कहा था, उसकी बाट देखता हुआ, पूर्वको अग्रभाग करे हुए कुशोंको बिछा कर उनके ऊपर ईशान कोणको मुख करके मत्स्यरूप श्रीहरिके चरणोंका ध्यान करता हुआ बैठा रहा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर वर्षा करने वाले बड़े २ मेघोंसे बढ़ने वाला और मर्यादाको लाँघने वाला समुद्र, सब ओरसे मानो पृथ्वीको डुबाता ही है, ऐसा दीखने लगा ॥ ४१ ॥ तब मत्स्यरूप भगवान्‌की आज्ञाका चितवन करते हुए उस सत्यव्रत राजाने, अपने समीप आई हुई नौका देखी, सो औषधि तथा बीजोंको लेकर सप्त ऋषियोंके साथ उस पर चढ़ा ॥ ४२ ॥ फिर उस सत्यव्रतसे प्रसन्न हुए सप्त ऋषियोंने कहा कि-हे राजन्! तुम केशव भगवान्‌का ध्यान करो, वही हमको इस सङ्कटसे बचा कर हमें सुख देंगे ॥ ४३ ॥ फिर राजाके ध्यान करे हुए वह सुवर्णकी समान वर्ण वाले और लाख योजन चौड़े शरीरके ऊपर एक सींग धारण करने वाले मत्स्यरूप भगवान्, उस महासागरमें प्रकट हुए ॥ ४४ ॥ फिर, पहिले श्रीहरिने जैसा कहा था, उसके अनुसार डोरीरूप वासुकिसे उनके सींगमें वह नौका बाँध कर मनमें प्रसन्न हुआ वह राजा मधुसूदन भगवान्‌की स्तुति करने लगा ॥ ४५ ॥ कि-हे भगवन्! अनादि अविद्यासे जिनका आत्मज्ञान ढक गया है ऐसे, अविद्याके कारण सांसारिक परिश्रमोंसे व्याकुल हुए पुरुष, इस संसारमें सहज ही प्राप्त हुए जिनके अनुग्रहसे, जिनका आश्रय करके, जिनकी प्राप्ति करते हैं वह साक्षात् मुक्तिदाता तुम ही हमारे परमगुरु होकर हमारी हृदयरूप ग्रन्थियोंका भेदन करो ॥ ४६ ॥ हे भगवन्! अपने कर्म

सुखेच्छया कर्म समीहितेऽसुखम् । यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिद्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः । भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरुर्गुरुः ॥ ४८ ॥ न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् । कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरन्धस्य यथाऽग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः । त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः । त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः । तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय । छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन् हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्तवन्तं

रूप बन्धनोंसे बँधा हुआ यह अज्ञानी जन, सुखकी इच्छासे दुःख देने वाले कर्म करता है और फिर भी जिनकी सेवासे उस खोटी बुद्धिरूप इच्छाका नाश करता है वह हमारी हृदयरूप ग्रन्थिका भेदन करें, क्योंकि-वही हमारे परम गुरु हैं ।४७। हे परमात्मन् ! जैसे सुवर्ण वा चाँदी अग्निके सेवनसे अपने सकल मलको त्याग देते हैं और अपने शुद्धस्वरूपको पाते हैं तैसे ही मुमुक्षु पुरुष, जिनकी सेवा करनेसे ही अपने अज्ञानरूप मलको त्याग कर निजस्वरूपको प्राप्त कर लेते हैं वह अविनाशी ईश्वर हो हमारे गुरु हों; क्योंकि-वह गुरुओंके भी परमगुरु हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन् ! देवता, गुरु और अन्य जन यह सब इकट्ठा मिलने पर भी जिनके अनुग्रहके दश हजारवें अंशके लेश समान भी अनुग्रह, किसी पुरुषके ऊपर करने को अपने आप समर्थ नहीं होते हैं ऐसे ईश्वर जो आप तिनकी हम शरण हैं॥४९॥ हे ईश्वर ! नेत्रहीन पुरुषके आगे किसी अन्धेके होने पर जैसे उससे उसको कुछ लाभ नहीं होता है तैसे ही अज्ञानी पुरुषका, अविद्वान् गुरु करना व्यर्थ होता है, तुम तो सूर्यके प्रकाशको समान स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् हो और सकल इन्द्रियोंके प्रकाशक हो इस कारण आत्मतत्त्वको जाननेकी इच्छा करने वाले हमने तुम्हें गुरु मान कर बरा है ॥ ५० ॥ अपनेको गुरु मानने वाला अज्ञानी पुरुष, दूसरे अज्ञानी पुरुषको, अर्थ काम आदि विषयकी बुद्धिका उपदेश करता है, उससे वह प्राणी दुस्तर संसारमें पड़ता है तुम तो अक्षय और अमोघ ज्ञानका उपदेश करते हो इस कारण प्राणीको अनायासमें स्वरूपकी प्राप्ति होजाती है ॥ ५१ ॥ हे परमात्मन् ! तुम सब लोकोंके हितकारी, प्रिय, ईश्वर, आत्मा, गुरु, इच्छितफलरूप और ज्ञानस्वरूप हो तथापि हृदयमें रहने वाले आपको विवेकहीन और विषयासक्त हुआ यह लोक नहीं जानता है ॥५२॥ हे भगवन् ! मैं तत्त्वका उपदेश पानेके निमित्त, देवताओंके भी पूजनीय श्रेष्ठ ईश्वर जो आप तिनकी शरण आया हूँ, इस कारण आप, परमार्थका प्रकाश करने वाले वाक्योंसे मेरे हृदयमेंके अहंकार आदिरूप ग्रन्थिका छेदन करके अपने स्वरूपको प्रकाशित करो ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार प्रार्थना करने वाले उस सत्यव्रत राजाको, महासागरमें

नृपतिं भगवानादिपूरुषः। मत्स्यरूपी महांभोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम्। सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥ अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम्। नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे। हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः। विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः। संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः। संकल्पास्तस्य सिद्ध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा। दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

मत्स्यरूपसे क्रीड़ा करने वाले उन भगवान् आदिपुरुषने तत्त्वका उपदेश करा ॥५४॥ हे परीक्षित्! सांख्य, योग और कर्मका जिसमें वर्णन है ऐसी आत्मरहस्यरूप सम्पूर्ण दिव्य मत्स्यपुराण संहिता, भगवान्ने सत्यव्रत राजर्षिसे कही ॥ ५५ ॥ तब ऋषियोंके साथ नौकामें बैठे हुए उस सत्यव्रत राजर्षिने, भगवान्का कहा हुआ वह सनातन ब्रह्मरूप आत्मतत्त्व निःसन्देह होकर सुना ॥ ५६ ॥ तदनन्तर उन मत्स्यमूर्त्ति श्रीहरिने, पहिलेकी प्रलयके अन्तमें निद्रासे उठे हुए ब्रह्माजीको, हयग्रीव दैत्यका वध करके उससे वेद लाकर दिये ॥ ५७ ॥ शास्त्रमें कहे हुए ज्ञान और अनुभव करे हुए ज्ञानसे युक्त वह राजा सत्यव्रत विष्णुभगवान्के अनुग्रहसे इस कल्पमें श्राद्धदेव नाम वाला वैवस्वत मनु हुआ ॥ ५८ ॥ मायासे मत्स्यरूप धारण करने वाले भगवान् और राजर्षि सत्यव्रतके सम्वाद-रूप इस बड़े आख्यानको सुनने वाला पुरुष पातकसे छूटेगा ॥ ५९ ॥ तैसे ही, जो, यह भगवान्का अवतार हुआ तिसका जो पुरुष प्रतिदिन कीर्त्तन करेगा उसके सकल मनोरथ सिद्ध होंगे और अन्तमें उसको परमगति (मुक्ति) प्राप्त होगी ॥६०॥ जिन्होंने प्रलयके जलमें निद्रा लेते हुए ब्रह्माजीके मुखमेंसे हयग्रीव करके हरके लेगये हुए वेद, उस हयग्रीव नाम वाले दैत्यका वध करके फिर भी लाकर उन ब्रह्माजीको दिये और जिन्होंने सत्यव्रत तथा ऋषियोंसे ब्रह्मका प्रतिपादन करने वाला मत्स्यपुराण कहा, उन, मायासे मत्स्यरूप धारण करने वाले सबके कारणरूप भगवान्को मेरो प्रणाम है ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धमें चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि भारद्वाजगोत्र-गौड़वंश्य-श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थ-राजकीय-प्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतंत्रस्वतंत्र-महामहोपाध्याय-सत्संप्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेन भाषानुवादेन च सहितोऽष्टमस्कन्धः समाप्तः ॥

* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *



अथ नवमस्कन्धप्रारम्भः

श्रीगणेशायनमः । राजोवाच । मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे । वीर्याण्यनंतवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः । ज्ञानं योऽतीतकल्पांते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् । त्वत्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथग्ब्रह्मन् वंश्यानुचरितानि च । कीर्त्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवंत्यद्यतनाश्च ये । तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥ सूत उवाच । एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् । पृष्टः प्रोवाच

श्रीः ॥ पहिले कही हुई कथाके प्रसङ्गको उठा कर राजा प्रश्न करता है कि- हे शुकदेवजी! सब चौदहों मन्वन्तर, 'मनु मनुपुत्र आदि छः भागों सहित' तुमने, मुझसे कहे हैं तथा उन मन्वन्तरोंमें करेहुए अनन्तपराक्रमी श्रीहरिके चरित्र भी कहे हैं और उनको मैंने सुना भी है ॥ १ ॥ जो यह द्रविड़देशोंका स्वामी सत्यव्रत नाम वाला राजर्षि कि-जिसने मत्स्यरूप भगवान्‌की आराधना करके, उनसे पहिले कल्पमें ज्ञान पाया ॥ २ ॥ वह ही इस कल्पमें विवस्वान्‌का पुत्र होकर वैवस्वत नाम वाला मनु हुआ, ऐसा आपसे ही मैंने सुना है और जो उस मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्र हुए वह भी आपने मुझसे कहे ॥ ३ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे महाभाग ! अब उनका वंश और उनके वंशमें हुए राजाओंके चरित्र, नित्य सुननेकी इच्छा करने वाले हमसे कहिये ४ उस मनुके वंशमें जो राजे पहिले होगये, जो आगेको होंगे और जो इस समय हुए

भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच । श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप । न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः । स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो हिरण्मयः । तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः । दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः १० ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत । श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् । नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥ अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल । मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत । दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥१४॥ प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः । हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन् द्विजः ॥१५॥ होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साऽभ-

हैं, उन सब पुण्यकीर्त्ति राजाओंके चरित्र हमसे कहो ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा कि–हे ऋषियो ! इसप्रकार राजा परीक्षित्‌ने, ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंकी सभामें श्रीशुकदेवजीसे प्रश्न करा तब परमधर्मको जानने वाले वह शुकदेवजी बोले ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे शत्रुतापन राजन् ! वैवस्वत मनुका वंश, मैं, मुख्यता करके तुमसे कहता हूँ, तुम सुनो–वह वंश विस्तारसे वर्णन करनेमें सौवर्षमें भी पूरा नहीं हो सकता ॥ ७ ॥ जो छोटे बड़े प्राणियोंके आत्मा परम पुरुष, श्रीनारायण हैं, वही प्रलयके समय यह जगत् था अर्थात् उनमें ही यह सब जगत् लीन था, उनके सिवाय और कुछ नहीं था ॥ ८ ॥ उन श्रीनारायणकी नाभिसे प्रकाशवान् एक कमलकी कली उत्पन्न हुई, हे महाराज परीक्षित् ! उस कमलकी कलीमें चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ उनके मनसे मरीचि ऋषि उत्पन्न हुए, उनके भी पुत्र कश्यप ऋषि हुए, उन कश्यपजीसे, दक्षकी कन्या अदितिके उदरमेंसे विवस्वान् नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥ हे राजन् ! उस विवस्वान्‌से संज्ञा नाम वाली स्त्रीके उदरमेंसे श्राद्धदेव नाम वाले मनु उत्पन्न हुए, उन शुद्धचित्त मनुके श्रद्धा नाम वाली स्त्रीके विषैं दश पुत्र हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि यह थे ॥ १२ ॥ इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंके उत्पन्न होनेसे पहिले पुत्रहीन मनुको, पुत्रकी प्राप्ति होनेके निमित्त ही, उस मनुके आचार्य भगवान् प्रभु वशिष्ठ ऋषिने, मित्रावरुण देवताओंकी एक इष्टि (पुत्रकामेष्टि) करी ॥ १३ ॥ उसके होनेके समय केवल दूधका आहार करके रहने वाली, श्रद्धा नाम वाली मनुकी स्त्री, होताके समीप जा उसको वन्दना करके प्रार्थना करने लगी कि–हे ऋषे ! तुम इस प्रकारका यज्ञ करो कि–जिसके प्रभावसे मेरे कन्या उत्पन्न होय ॥ १४ ॥ फिर अध्वर्युने जब होताको 'यजन कर' ऐसा प्रेष देकर (प्रेरणा करके) हवन करनेके निमित्त होमका पदार्थ ग्रहण करने पर उस होता ब्राह्मणने एकाग्रचित्त होकर, रानीकी प्रार्थना करी हुई बातका ध्यान करते हुए, वाणीसे 'वषट्' ऐसा उच्चारण करके, मनसे 'वौषट्' ऐसा ध्यान करते हुए

वत्। तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम्॥ १६ ॥ भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम्। विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः। कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः। होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम्॥१९॥ एतत्संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः। तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥२०॥ एवं व्यवसितो राजन् भगवान्स महायशाः। अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥२१॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः। ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने। वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैंधवम्॥ २३ ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान्। दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम्॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह। यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥ तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा।

आहुति छोड़ी ॥ १५ ॥ यजमानकी इच्छाके विपरीत होताके उस आहुति देनेसे वह इलानामसे प्रसिद्ध कन्या हुई, उसको देख कर चित्तमें अति प्रसन्न न हुए मनुजी, गुरुवशिष्ठजीसे कहने लगे ॥ १६ ॥ कि—हे भगवन्! तुम ब्रह्मज्ञानियोंका कराहुआ यह कर्म, इष्ट फलसे विपरीत फल देने वाला कैसे हुआ? यह बड़े दुःखकी बात है, क्योंकि-मन्त्रका फल ऐसा विपरीत नहीं होना चाहिये ऐसा होने पर वैदिक कर्मोंके ऊपरका विश्वास लुप्त होकर सन्मार्ग नष्ट होजायगा ॥ १७ ॥ तुम मन्त्रोंका स्वरूप, अर्थ और प्रयोग करना जानने वाले, इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले और तपके प्रभावसे जिनके पातक जल कर भस्म होगये हैं ऐसे हो फिर तुम्हारे सङ्कल्पका विपरीत फल कैसे हुआ? जैसे देवताओंमें असत्य नहीं होता है तैसे ही तुम्हारे संकल्पका विपरीत फल नहीं होना चाहिये ॥१८॥ ऐसे उन मनुके कहनेको सुन कर वह भगवान् वसिष्ठ ऋषि, होताके विपरीत संकल्पको जान कर उन श्राद्धदेव मनुसे कहने लगे कि-हे मनो! तुम्हारे होताका संकल्प विपरीत होनेके कारण यह फल विपरीत हुआ है तथापि मैं अपने तपोबलके प्रभावसे तुम्हारे सुपुत्र होनेका यत्न करूँगा अर्थात् इस कन्याका ही पुत्र होनेकी युक्ति करूँगा ॥१९॥२०॥ हे राजन् परीक्षित्! उन महायशस्वी भगवान् वसिष्ठ ऋषिने, ऐसा निश्चय करके उस इला नामक कन्याको पुरुषपना प्राप्त होनेकी इच्छासे आदिपुरुष भगवान्की स्तुति करी ॥ २१ ॥ तदनन्तर वह भगवान् ईश्वर श्रीहरि; वसिष्ठजीकी करी हुई स्तुतिसे सन्तुष्ट हुए और, उन्होंने उन वसिष्ठजीको, इला नामक कन्यामें पुरुषपना प्राप्त होनेका वरदान दिया, उससे वह इला ही सुद्युम्न नामक पुरुषश्रेष्ठ होगया २२ हे महाराज! वह वीर सुद्युम्न, एक समय वनमें मृगया करने (शिकार खेलने)के निमित्त, कवच धारण करके, कितने ही मन्त्रियोंसे युक्त हो, सुन्दर धनुष तथा परम तीखे बाण लेकर तथा सिन्धुदेशमें उत्पन्न हुए घोड़के ऊपर बैठ कर उत्तर दिशाकी ओरको हरिणके पीछे २ गया ॥ २३ ॥ २४ ॥ वह कुमार सुद्युम्न जहाँ भगवान् शंकर; पार्वतीजीके साथ रमण कर रहे थे उस सुमेरुपर्वतकी तलैटीके

अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥ तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिंगविपर्ययम् । दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७ ॥ राजोवाच । कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः । प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच । एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः । दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान्विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् । भर्तुरंकात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसंगं रममाणयोः । निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥ तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया । स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ ततऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयन्ति हि । सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरंतीं प्रमदोत्तमाम् । स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः सापि तं चमके सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् । स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥ एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः । सस्मार स्वकुलाचार्यं

वनमें गया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! शत्रुओंका नाश करने वाले उस कुमार सुद्युम्नने, उस वनमें प्रवेश करते ही, मैं स्त्री होगया और मेरा घोड़ा भी घोड़ी होगया ऐसा देखा ॥ २६ ॥ तथा उस सुद्युम्नके साथी सब पुरुषोंने, अपना पुरुषपना दूर होकर अपनेको स्त्रीरूप हुए देखा और सब परस्पर एक दूसरेकी ओरको देखते हुए चित्त में अति खिन्न हुए ॥ २७ ॥ राजा परीक्षित्‌ने कहा कि–हे भगवन् श्रीशुकदेवजी ! ऐसा प्रवेश करते ही स्त्री कर देनेवाला वह देश कैसे होगया ? अपने आप तो ऐसा हो नहीं सकता, इस कारण क्या किसीने उस देशको शाप देकर ऐसा कर दिया था ? इस मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये, क्योंकि–इसके सुननेका हमें बड़ा उत्साह हो रहा है ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! एक समय महादेवजीका दर्शन करनेके निमित्त बड़े तपस्वी ऋषि, अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए तहाँ वनमें गये थे ॥२९॥ उन आये हुए ऋषियोंको देख कर शिवजीकी जङ्घा पर नङ्गी बैठी हुई अम्बिका देवीको बड़ी लज्जा आई, सो उन्होंने बड़ी शीघ्रतासे उन पतिकी गोदीमेंसे उठ कर वस्त्र पहना ॥ ३० ॥ तब वह ऋषि भी रमण करने वाले उन शिवपार्वतीको देखकर तहाँसे लौट आये और नरनारायणके आश्रमको गये ॥ ३१ ॥ उस समय अपनी प्रियाका प्रिय करनेकी इच्छासे रुद्रभगवान्‌ने इस प्रकार कहा कि–जो कोई पुरुष, इस स्थानमें प्रवेश करेगा वह निःसन्देह स्त्री होजायगा ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उस रुद्रशापके होनेके अनन्तरसे सब पुरुष, उस वनमें स्त्रीपनेको प्राप्त होजायँगे इस भयसे प्रवेश नहीं करते थे, इस प्रकार सुद्युम्न की हुई वह स्त्री, स्त्रीपनेको प्राप्त हुए सेवकोंके साथ एक वनसे दूसरेमेंको विचरने लगी ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अनुचरोंके साथ अपने आश्रमके समीपमें विचरने वाली उस उत्तम स्त्रीको देखकर चन्द्रमाके पुत्र भगवान् बुधने उसकी इच्छा करी ३४ उस स्त्रीने भी, उन सोमराजके पुत्र बुधको अपना पति होनेकी इच्छा करी, इस प्रकार परस्परकी इच्छासे वह दोनों दम्पती हुए, तदनन्तर उन बुधका उस स्त्रीके विषैं

वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः । सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥ तुष्टस्तस्मै स भगवान् ऋषये प्रियमावहन् । स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥ ३८ ॥ मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः । इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया । पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दंस्म तं प्रजाः ४० तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः । दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः । पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम्४२

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं गतेथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते । पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥१॥ ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् । इक्ष्वाकुपूर्वजान्पुत्रान्लेभे स्वसदृशान्दश ॥ २ ॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः । पालयामास

पुरूरवा नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२५॥ इस प्रकार स्त्रीपनेको प्राप्त हुआ मनुका पुत्र जो राजा सुद्युम्न उसने अपने कुलके आचार्य वसिष्ठजीका स्मरण करा ऐसा हमने सुना है३६तबउनके स्मरण करेहुए गुरु वसिष्ठजी तहाँ आकर उसको स्त्रीपना प्राप्त होनारूप दशा देखकर कृपासे अत्यन्त पीडित हो फिर सुद्युम्नको पुरुषपना प्राप्त होनेकी इच्छासे शंकर भगवान्की स्तुति करने लगे॥३७॥ हे राजन् ! तब वह भगवान् शंकर, वसिष्ठकी करीहुई स्तुतिसे संतुष्ट होकर, उन वसिष्ठजीके हृदयमें संतोष उत्पन्न करते हुए और 'जो इस वनमें प्रवेश करेगा वह तत्काल स्त्री होजायगा'ऐसी अपनी वाणीको भी सत्य करते हुए इस प्रकार कहने लगे कि-॥३८॥ हे वसिष्ठजी ! तुमने इस सुद्युम्नके पुरुष होनेकी जो मनमें इच्छा करी है सो यह एक महीनेको पुरुष होगा और एक महीने स्त्री रहा करेगा,यह इस प्रकारकी व्यवस्थासे यथेष्ट पृथ्वी की रक्षा करे॥ ३९ ॥ इस प्रकार गुरु वशिष्ठजीके अनुग्रहसे व्यवस्था करके पुरुषपनेको प्राप्त होकर वह राजा सुद्युम्न,पृथ्वीका पालन करने लगा तथापि एकमहीने पर्यंत स्त्रीपनेको प्राप्त होनेके कारण वह राजा लज्जावश छुपा हुआ रहता था इस कारण सकल प्रजा उसको अच्छा नहीं समझाती थी ॥४०॥ हे राजन् ! उस सुद्युम्न के उत्कल,गय और विमल यह तीन पुत्र हुए वह दक्षिणदेशके स्वामी और धर्ममें प्रीति करने वाले थे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर बहुत सा काल बीत जाने पर, वृद्ध अवस्था को प्राप्त हुआ भूमण्डलका स्वामी वह राजा सुद्युम्न,अपने पुरूरवा नाम वाले पुत्रको पृथ्वीका राज्याभिषेक करके आप तपस्या करनेको वनमें चला गया॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवमस्कन्धमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इसप्रकार सुद्युम्न नामा पुत्रके वनको चले जाने पर वैवस्वतमनुने पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छासे यमुना नदीके तट पर सौ वर्षपर्यन्त तपस्या करी ॥१॥ उस तपस्यामें वैवस्वत मनुके पुत्रकी प्राप्ति होनेके निमित्त पुत्र देनेमें समर्थ भगवान् श्रीहरिकी आराधना करी तदनन्तर भगवानके अनुग्रहसे उन मनुके अपने समान ही पराक्रमी इक्ष्वाकु आदि दशपुत्र उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ वन

गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति । शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥४॥ एकां जग्राह बलवान्सा चुक्रोश भयातुरा । तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ।।५॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि । अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशंकया ॥ ६ ॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः । निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा । अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥ तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः । न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९ ॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः । अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १० ॥ वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेमले । एकांतित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥ विमुक्तसंगः शांतात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ।

दशों पुत्रोंमें पृषध्र नाम वाला मनुका पुत्र बालक अवस्थामें ज्ञानप्रकाश न होनेके कारण अप्रबुद्ध था, उसको गुरु वसिष्ठजीने गौओंकी रक्षा करनेका काम सौंपा, इस कारण वह रात्रिके समय व्याघ्र आदिकोंसे गौओंकी रक्षा करनेके निमित्त हाथ में तलवार लेकर सावधानीके साथ जागते रहनेका व्रत स्वीकार करके गौओंकी रक्षा करता रहा ॥ ३ ॥ ऐसा होते हुए एक दिन रात्रिके समय, मेघोंके बरसते हुए एक व्याघ्र गौओंमें आगया, तब उसको देख कर गौएँ भयसे उठकर गोठोंमें अपनी रस्सियोंको तुड़ा कर इधर उधरको भागने लगीं ॥ ४ ॥ उस बलवान व्याघ्रने, एक गौको पकड़ा तब वह गौ भयसे विह्वल होकर ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगी, उसके तिस रुदनको सुन कर राजा पृषध्र दौड़ कर उसके समीप गया ॥ ५ ॥ और उसने हाथमें तलवार लेकर बड़े वेगसे, जहाँ मेघोंके द्वारा नक्षत्र आदि छुप गये हैं ऐसे रात्रिके समय, 'यह व्याघ्र है ऐसा न जानकर, व्याघ्रकी बुद्धिसे कपिला गौका मस्तक काट डाला ॥६॥ तदनन्तर तलवारके अग्रभागसे उस व्याघ्रका भी एककान काट लिया था, इस कारण वह अत्यन्त भयभीत होकर मार्गमें रुधिर ओकताहुआ उस गोठमेंसे निकल गया ॥ ७ ॥ तदनन्तर शत्रुका मारने वाला वह पृषध्र, रात्रिमें व्याघ्र मरणको प्राप्त होगया;ऐसा मानता हुआ भी प्रभातको पौ फटनेके समय जब थोड़ा २ प्रकाश होने लगा तब मेरे हाथसे गौकी हत्या होगई है,ऐसा देखकर अत्यंत दुःखित हुआ ॥ ८ ॥ इस प्रकार अज्ञानसे गोवधरूप पाप करने वाले उस पृषध्रको, कुलके आचार्य गुरु वशिष्ठजीने शाप दिया कि—अरे ! इस कर्मको करके तू क्षत्रियों में अधम होकर भी नहीं रहेगा, किन्तु शूद्र ही होगा ॥९॥ इसप्रकार कुलगुरु वशिष्ठजीके शाप देने पर भी उस पृषध्रने, हाथ जोड़ कर उस शापको स्वीकार करा तदनन्तर उस वीरने इंद्रियोंको जीतकर ऋषियोंका प्यारा भगवद्भजनरूप व्रत करा १० उसके प्रभावसे वह, सकल प्राणियोंमें दया करने वाला और सुख दुःख आदिमें समान दृष्टि रखने वाला होकर, भक्तिके प्रभावसे मायातीत, सर्वात्मा और विकार शून्य भगवान् वासुदेवके विषैं चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होकर ॥ ११ ॥ विषयोंमें आसक्तिरहित, शान्तचित्त, इंद्रियोंको वशमें रखने वाला, देहके निर्वाह योग्य अन्न

यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥ आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः । विचचार महीमेतां जडांधबधिराकृतिः ॥ १३ ॥ एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् । तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान्विषयेषु निस्पृहो विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् । निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥ करूषान्मानवादासन्कारूषाः क्षत्रजातयः । उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ । नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता । कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यन्ताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् । तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ।१९। वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् । उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥ ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः । कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥२१॥ ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप । नरिष्यंतान्वयः

के सिवाय सकल परिग्रहको त्यागने वाला और प्रारब्ध करके ही प्राप्त हुए आहार आदिसे देहकी वृत्ति चलाने वाला होकर ॥ १२ ॥ परमात्माके विषैं अपने मनको निश्चलरूपसे स्थापन करके और उस परमानन्द स्वरूपके अनुभवसे तृप्त होकर सावधान होता हुआ जड़, अन्धे और बधिरोंकी समान अपनी आकृतिको धारण करे इस पृथ्वी पर विचरने लगा ॥ १३ ॥ इस प्रकारकी वृत्ति रख कर भजन करने वाला वह पृषध्र, प्रारब्ध कर्मोंका नाश होनेपर एक समय वनमें जाकर तहाँ चारों ओरसे लगी हुई दावानल अग्निमें पड़ कर उसके द्वारा जिसके हाथ चरण आदि अङ्ग जल गये हैं ऐसा होकर परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त हुआ॥१४॥वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दश पुत्रोंमें छोटा जो कवि वह दश बारह वर्षकी अवस्थामें ही विषयोंमें विरक्त होकर और अपने भ्राताओं सहित राज्यको त्याग कर वनमें चला गया और उसने अपने चित्तमें स्वप्रकाश पुराणपुरुषका ध्यान करके उनके स्वरूप की प्राप्ति करली ॥ १५ ॥ करूषनामा मनुके पुत्रसे उत्तरके देशोंके स्वामी, ब्राह्मणों में भक्ति करने वाले और धर्ममें प्रीति रखने वाले कारूष नाम वाले राजे हुए ।१६। धृष्टि नाम वाले मनु पुत्रसे धार्ष्ट नाम वाले क्षत्रियकुल उत्पन्न हुए और वह इस पृथ्वी पर प्रायः ब्राह्मणभावको प्राप्त हुए, नृग नाम वाले मनु पुत्रका सुमति नाम वाला पुत्र हुआ, उससे भूतज्योति हुआ और उससे वसु नाम वाला पुत्र हुआ १७ वसुका पुत्र प्रतीक हुआ उसका पुत्र ओघवान् हुआ, उसका भी ओघवान् ही पुत्र ओघवती नाम वाली एक कन्या हुई उसको सुदर्शन ऋषिने वर लिया ॥ १८ ॥ नरिष्यन्त नाम वाले मनुके पुत्रसे चित्रसेन नाम वाला पुत्र हुआ, उसके ऋक्ष नाम वाला पुत्र हुआ, उसके मीढ्वान्, उससे कूर्च और उसका पुत्र इंद्रसेन हुआ ।१९। इंद्रसेनसे वीतिहोत्र होकर उसका सत्यश्रवा हुआ, उसका पुत्र उरुश्रवा होकर उस से देवदत्त हुआ ॥ २० ॥ तिससे अग्निवेश्य नाम वाला पुत्र हुआ, वह साक्षात् भगवान् अग्निका अवतार था, वही अग्निवेश्य ऋषि, फिर कानीन इस नामसे और

प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः । भलंदनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलंदनात् ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः । खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥२४॥ विविंशतिसुतो रंभः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः । करंधमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥ तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् । संवर्त्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यंगिरःसुतः मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन । सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥ अमाद्यदिंद्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥ मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्द्धनः । सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः॥२९॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद्धन्धुमान्वेगवांस्ततः । बंधुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिंदुर्महीपतिः ॥ ३० ॥ तं भेजेऽलंबुषा देवी भजनीयगुणालयम् । वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् । प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२ ॥ विशालः

जातूकर्ण्य इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ २१ ॥ उससे अग्निवेश्यायन नामक गोत्रवाला ब्राह्मणकुल हुआ, हे राजन् ! नरिष्यन्तका वंश मैंने तुझसे कहा अब मनुके पुत्र दिष्ट का वंश सुन ॥ २२ ॥ दिष्टके नाभाग नाम वाला पुत्र हुआ, वह आगे कहे हुए नाभागसे दूसरा था, वह खेती, गोपालन आदि कर्मके प्रभावसे वैश्यपनेको प्राप्त हुआ, उसका पुत्र भलनन्दन हुआ, उस भलनन्दनसे वत्सप्रीति हुआ ॥२३॥ वत्सप्रीतिका पुत्र प्रांशु, उसका पुत्र प्रमति हुआ, उस प्रमतिसे खनित्र हुआ, उससे चाक्षुष हुआ, उससे विविंशति हुआ ॥ २४ ॥ विविंशतिका पुत्र रम्भ, तिसका पुत्र खनिनेत्र, वह बड़ा धर्मात्मा हुआ, हे राजन् ! उस खनिनेत्रका पुत्र करन्धम नामक महाराजा हुआ ॥ २५ ॥ उसका आवीक्षित् नामक पुत्र हुआ, उसका मरुत्त नामवाला सार्वभौम पुत्र हुआ, जिस मरुत्त राजाको अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्त ऋषिने यज्ञ कराया ॥ २६ ॥ मरुत्त राजाका जैसा यज्ञ हुआ वैसा किसी भी दूसरे राजाका नहीं हुआ, क्योंकि–उसके करे हुए यज्ञमें यज्ञके पात्र आदि जो सामग्री थी वह सब सुवर्णकी थी२७तथा उसके यज्ञमें सोमरसके पीनेसे इंद्रको बड़ा आनन्द हुआ और यथेष्ट दक्षिणा मिलनेके कारण ब्राह्मण हर्षको प्राप्त हुये और उस यज्ञमें मरुत् नामक देवताओंके गण अन्न आदि परोसनेवाले तथा विश्वेदेवा सभासद् थे ॥२८॥ मरुत्तके दम नामवाला पुत्र हुआ, उसका पुत्र राज्य वर्द्धन उसका पुत्र सुधृति, उस सुधृतिका नर नामवाला पुत्र हुआ२९उसका पुत्र केवल, तिससे धिन्दुमान् तिस वेगवान्, उसके बन्धु नामक पुत्र हुआ उसके पृथ्वीपति तृणबिन्दु हुआ३०दूसरोंके स्वीकार करने योग्य गुणोंके स्थान तिस तृणबिंदुको, इंद्रकी अलम्बुषा नामवाली श्रेष्ठ अप्सराने वरा, तदनन्तर उसके विषैं तृणबिंदुके पुत्र हुए और इड़विड़ा नाम वाली एक कन्या हुई ॥३१॥ इसके विषैं विश्रवा ऋषिका कुबेर नामा पुत्र हुआ उन महाबुद्धिमान् कुबेरने उन योगेश्वर अपने पितासे अन्तर्धान होनेकी उत्तम विद्या प्राप्त करी ॥ ३२ ॥ विशाल, शून्यबन्धु और धूमकेतु यह तृणबिन्दुके पुत्र हुए, उन

शून्यबंधुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः । विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ।३३। हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः । तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥ कृशाश्वात्सोमदत्तोभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् । इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥३५॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः । एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच । शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह । यो वा आंगिरसां सत्रे द्वितीय मह ऊचिवान् ॥१॥ सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना । तया सार्द्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥ सा सखीभिः परिवृता विचिन्वत्यंघ्रिपांस्वने । वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥३॥ ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै । अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां च तत्क्षणात् । राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान्विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् । व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूष-

---

मेंसे विशाल वंशको बढ़ाने वाला राजा हुआ, उसने वैशाली नामवाली एक नगरी रची ॥ ३३ ॥ उस विशालका पुत्र हेमचन्द्र, उसका पुत्र धूम्राक्ष, तिसका पुत्र संयम तिसका सहदेव, तिसका पुत्र कृशाश्व हुआ ॥ ३४ ॥ कृशाश्वसे सोमदत्त हुआ, जिस सोमदत्तने अश्वमेधोंके द्वारा यज्ञका फल देने वाले पुराणपुरुषकी आराधना करके भगवान्‌की शरणमें जाकर उत्तम प्रकारकी गति (मुक्ति) प्राप्त करी ॥ ३५ ॥ सोमदत्तका पुत्र सुमति, उसका पुत्र जनमेजय, यह विशाल राजाके वंशमें उत्पन्न हुए राजे तृणबिंदुके यशको बढ़ाने वाले हुए ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्ध में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ॥ छ ॥ छ

श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! मनुका पुत्र शर्याति नाम वाला जो राजा वह वेदोंके अर्थके तत्त्वको जानने वाला हुआ जिसने आंगिरस ऋषियोंके सत्रमें दूसरे दिन करनेका कर्म कहा है ॥ १ ॥ उस शर्यातिकी कमलदलनयनी सुकन्या नामक कन्या थी, एक दिन उस कन्याको साथ लेकर वह राजा शर्याति वनकी शोभा देखनेके निमित्त वनमें जाकर जहाँ च्यवन ऋषिके आश्रममें सेना सहित उतरा ॥ २ ॥ तहाँ तिस सुकन्याने सखियों सहित वनमेंके वृक्षोंकी शोभा देखते हुए एक बँबईके भट्टेमें पटबीजनेकी समान वारम्बार चमकनेवाली दो ज्योति देखीं३ तब दैवकी प्रेरणा करी हुई उस सुकन्याने, मूढ़पनेसे एक काँटा लेकर उससे उन दोनों ज्योतियोंको छेद दिया तब उस बँबईके भट्टेमेंसे बहुतसा रुधिर टपकनेलगा४ उस समय राजा शर्यातिकी सेनामेंके पुरुषोंका मूत्र पुरीष बन्द होगया, यह देख कर विस्मयमें पड़ा हुआ वह राजर्षि (शर्याति) अपने पुरुषोंसे कहने लगा कि–५ अरे ! तुमने च्यवनभार्गव ऋषिका तो कोई अपराध नहीं करा है ! मुझे तो स्पष्ट ऐसा प्रतीत होता है कि–हमारे पुरुषोंमेंसे किसीने तो उन ऋषिके आश्रमका अपराध करा है ऐसा हुए विना सबको एक साथ उपद्रव नहीं होता ॥ ६ ॥ शर्याति

णम् ॥ ६ ॥ सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित्कृतं मया । द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः । मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्गतं शनैः ॥८॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद् दुहितरं मुनेः । कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् । प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ॥१०॥ कस्य चित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ । तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥ ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः । क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ । निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसंततः । ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलित-

राजाके ऐसा कहने पर भयसे घबराई हुई सुकन्या पितासे कहने लगी कि–हे पिताजी ! मैंने कुछ करा है, बँबईके भट्टमें दो ज्योति मेरी दृष्टि पड़ीं, वह क्या थीं, यह न जानने वाली मैंने उन को काँटोंसे छेद दिया है ॥ ७ ॥ उस कन्याके ऐसे कथनको सुन कर जिसको भय प्राप्त हुआ है ऐसे राजा शर्यातिने बँबईमें गुप्तरूपसे विराजमान च्यवनभार्गव ऋषिको धीरे २ स्तुति आदि करके प्रसन्न करलिया॥ ८॥ तदनन्तर उन च्यवनके अभिप्राय*को जानकर राजाने वह अपनी कन्या उन ऋषिको देदी तब कन्याका वर देखनेके दीनता आदि क्लेशोंसे और सेनाके पुरुषोंके मलमूत्र रुकनारूप क्लेशसे छूट कर, एकाग्रचित्तसे उन ऋषिकी आज्ञा लेकर राजा अपने नगरको चला गया ॥९॥ इधर वह सुकन्या परमकोपी स्वभाव वाले उन च्यवन नामक पतिको प्राप्त होकर सावधानीके साथ उनकी इच्छाके अनुसार सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट करने लगी ॥ १० ॥ फिर कुछ काल बीत जाने पर एक दिन उन च्यवनभार्गवने अपने आश्रममें आयेहुए अश्विनीकुमारोंका पूजन करके उनसे कहा कि–हे अश्विनीकुमारो! तुम, किसीसे कुछ प्रार्थना करनेपर उसको पूर्ण करनेमें समर्थ हो इस कारण मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि–अति बूढ़ेपनको प्राप्त हुए मुझ को तुम तरुण अवस्था दो, यज्ञमें सोमपान रहित भी तुमको, मैं सोमरसका भाग दूँगा, कदापि नहीं चूकूँगा,इसकारण उत्तम स्त्रियोंके मनको हरनेवाली तरुण अवस्था और सुन्दर स्वरूप तुम करदो ११॥१२ तब देवताओंके वैद्य उन अश्विनीकुमारोंने, उनके वचनको 'ठीक है इस प्रकार' स्वीकार करके तुम,इस सिद्धोंके रचे हुए कुंडमें गोता लगाओ तब तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, ऐसा कहा, परन्तु वह च्यवनभार्गव ऋषि जराके कारण अतिबूढ़े, शरीर पर दीखने वाली नसोंसे व्याप्त, और सकोड़ने तथा अत्यन्त पके हुए केशों करके विरूप और स्वयं जाकर कुण्डमें गोता लगानेको असमर्थ थे इस कारण अश्विनीकुमारोंने ही उनको कुण्डमें प्रवेश कराया अर्थात् उन्होने आप ही दोनों ओरसे पकड़ कर अपने सहित कुण्डमें गोता

*यह मेरी कन्या अनजान है, क्षमा करो, ऐसा राजाके कहने पर–यह कितने वर्ष की है,इसका विवाह हुआ है या नहीं इत्यादि बातचीतसे उनका विवाह करनेका अभिप्राय जान कर ।

विप्रियः ॥ १४ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः । पद्मस्रजः कुण्डलिन-स्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चसः । अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ । ऋषिमामंत्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्या-श्रमं गतः । ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृत-पादाभिवन्दनाम् । आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलंभितो लोकनमस्कृतो मुनिः । त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥ कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् । बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥२१॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता । उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलंभनम् । विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे २३

लगाया ॥ १३ ॥ १४ ॥ तदनन्तर उस कुण्डमेंसे एकसे तीन पुरुष बाहर निकले वह अति सुन्दर होनेके कारण स्त्रियोंको परमप्रिय प्रतीत होने वाले, कण्ठमें कमलोंकी माला, कानोंमें कुण्डल धारण करने वाले, उत्तम वस्त्र पहिनने वाले और स्वरूपमें एक समान थे ॥ १५ ॥ सूर्यकी समान तेजके समूह, तरुण और समान अवस्था वाले, उन तीन पुरुषोंको देख कर वह पतिव्रता सुकन्या, इनमें मेरा पति कौनसा है, यह न जानती हुई, अश्विनी कुमारोंकी शरण गई अर्थात् तुम ही अलग होकर मेरा पति मुझे दिखादो, ऐसी उन अश्विनीकुमारोंसे प्रार्थना करी ॥ १६ ॥ तब उस के पतिव्रत धर्मसे सन्तुष्ट हुए उन अश्विनीकुमारोंने उस सुकन्याको, उसका पति दिखा दिया और तदनन्तर उन च्यवनभार्गव ऋषिकी आज्ञा लेकर विमानमें बैठ स्वर्गलोकको चले गये ॥ १७ ॥ तदनन्तर एकसमय यज्ञ करनेको उद्यत हुआ राजा शर्याति यज्ञके निमित्त च्यवन ऋषिके बुलानेको और सुकन्याके भी लानेको च्यवन ऋषिके आश्रममें गये ॥ १८ ॥ राजा शर्यातिको देखते ही सुकन्याने उठकर वन्दना करी, उससमय व्यभिचारकी शंकासे असन्तुष्टसा हुआ वह राजा,चरणको वन्दना करने वाली भी उस कन्याको आशीर्वाद न देकर कहने लगा कि-॥ १९ ॥ अरी ! व्यभिचारिणी ! तूने यह क्या करा ? बहुत ही खोटा काम करा है, मननशील,तप-स्वी और सब लोकोंके पूजनीय अपने च्यवनभार्गव पतिको धोखा दिया है,क्योंकि वह अतिबूढ़े होनेके कारण मेरे योग्य नहीं हैं ऐसा समझकर उनको त्याग इस किस मार्ग चलते जार पुरुषकी तू सेवा कररही है ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हो कर तेरी यह विपरीत बुद्धि कैसे हुई ! क्योंकि तू निर्लज्ज होकर जारपुरुषका सेवन कर रही है, यह कर्म कुलको कलंक लगाने वाला है, इस कर्मसे तू पिताके (मेरे) और भर्त्ताके (च्यवन भार्गव ऋषिके) कुलको नरकमें लेजा कर डालती है ॥ २१ ॥ इस प्रकार कहनेवाले पितासे,उनके शंकायुक्त वाक्यसे विस्मित हुई मन्दहास्यपूर्वक वह सुकन्या बोली कि-हे पिताजी ! यह मेरे समीपमेंका पुरुष तुम्हारे जामाता च्य-वनभार्गव ही हैं दूसरा कोई नहीं है ॥ २२ ॥ ऐसा कह कर उनको तरुण अवस्था

सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् । असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः । स वज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः । भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः । शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् । आस्थितोऽभुंक्त विषयानानर्तादीनरिंदम ॥२८॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् । ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥२९॥ कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् । आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः । तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः । तद्गच्छ देवदेवांशो

और मनोहर स्वरूप जिस प्रकार प्राप्त हुआ सो सब वृत्तान्त राजाको कह सुनाया तब राजा विस्मयमें होकर परम सन्तोषको प्राप्त हुआ और उसने कन्याको हृदय से लगाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर च्यवनभार्गवने उस वीर शर्याति राजासे सोमयज्ञ करवाया, उसमें उन्होंने अपने तपोबलके प्रभावसे, सोमपान न पाने वाले भी उन अश्विनीकुमारोंको, सोमरसका भाग दिया अर्थात् उनको सोमका भाग देनेके निमित्त राजासे यज्ञ करवाया ॥ २४ ॥ उस समय तिस कार्यको सहन न करने वाले शीघ्र कोपी इन्द्रने, उस यज्ञ करनेवाले शर्यातिको मारनेके निमित्त हाथमें वज्र लिया, तब उन च्यवनभार्गवने, वज्र धारण करेहुए इंद्रकी भुजाको स्तम्भन कर दिया २५ तब तब वह इन्द्रकी बाहु छूटनेके निमित्त, 'जो अश्विनीकुमार वैद्य होनेके कारण पहिले सोमकी आहुति नहीं पाते थे उनको, उस दिनसे सब देवताओंने सोमकी आहुति देना स्वीकार कर लिया तब इन्द्रका बाहु छूटा ॥२६॥ फिर शर्याति राजाके उत्तानबर्हि, आनर्त्त और भूरिषेण यह तीन पुत्र हुए, उनमें आनर्त्तसे रेवत हुआ २७ उस ने समुद्रमें कुशस्थली नामवाली नगरी (द्वारका) रची और उसमें रहकर आनर्त्त आदि देशोंके ऐश्वर्यको भोगा २८ हे शत्रुदमन राजन्! उस रेवतके, ककुद्मी जिनमें बड़ा है ऐसे उत्तम प्रकारके सौपुत्र हुए, वह ककुद्मी (रैवत) अपनी रेवती कन्याको साथ लेकर उसके योग्य वर बूझनेके निमित्त जानेमें कोई रोक टोक न होनेके कारण ब्रह्मलोकको गया सो तहाँ गान होरहा था इसकारण बूझनेका अवसर न होने से क्षण भरको स्थित होगया ॥ २९॥३० ॥ वह गान समाप्त होने पर ब्रह्माजीको नमस्कार करके 'इसके योग्य वर कौनसा है' सो कहिये, ऐसा उसने प्रश्न करा, यह कथन सुन कर भगवान् ब्रह्माजीने हँस कर उससे कहा कि-॥ ३१ ॥ हे राजन्! यहाँको आते समय तू ने मन में जिनको इसका वर बनाना निश्चय करा था उन सबको कालने नष्ट कर डाला है, अब उनके पुत्र, नाती, परपोते वा गोत्र भी सुननेमें नहीं आते हैं ॥ ३२ ॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग यह चारयुग सत्ताईस बार होगये इतना समय बीत गया है, हे राजन्! अब तू भूमि पर जा,

बलदेवो महाबलः । कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भो ॥३३॥ भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः । अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्त्तनः ॥ ३४ ॥ इत्याश्रिष्टोऽभिवंद्याजं नृपः स्वपुरमागतः । त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद् भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ३५ सुतां दत्वाऽनवद्यांगीं बलाय बलशालिने । बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम्

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् । यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥ भ्रातरोऽभंक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव । त्वां म आर्यास्तताभांक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे आंगिरसः सत्रमासतेद्य सुमेधसः । षष्ठं षष्ठमुपेत्याह कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महा-

और तहाँ इस समय नरनारायणका अंश महाबली बलराम अवतार हुआ है, उस पुरुषरत्नको यह कन्यारत्न दे ॥ ३३ ॥ जिनका श्रवण कीर्त्तन लोकोंको पवित्र करने वाला है ऐसे जगन्नाथ भगवान्ने पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त, अपने उस शेषरूपी अंशके साथ इस समय कृष्णरूपसे अवतार धारण करा है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीके कहने पर वह राजा रैवत ब्रह्माजीको नमस्कार करके, पूर्वके यक्षोंके भयसे जिधर तिधर जाकर रहे हुए अपने भ्राताओंकी छोड़ी हुई उस नगरीको लौट कर आया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सकल अङ्गोंसे सुन्दर अपनी कन्या बलसे शोभायमान उन बलरामजीको देकर वह राजा तपस्या करनेके निमित्त नरनारायणके बदरिकाश्रमको चला गया ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ * * *

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-वैवस्वत मनुका पुत्र जो नभग उसका पुत्र नाभाग नाम वाला हुआ, वह बहुतकाल पर्यंत ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके गुरुकुलमें वास करता रहा, तब यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी है ऐसा मान कर विभागके समय उसका कुछ भाग न रखकर उसके और भ्राताओंने सब धन आपसमें बाँट लिया तदनन्तर गुरुके समीपसे विद्या सीख विद्वान् होकर आये हुए और अपना भाग माँगने वाले उस छोटे भ्राताको (नाभागको) बड़े भ्राताओंने, 'तेरा भाग पिता हैं' ऐसा कहकर पिताको उसके अधीन कर दिया ॥ १ ॥ तब नाभागने भ्राताओंसे बूझा कि—हे भ्राताओं ! तुमने मेरे निमित्त कौनसा भाग रक्खा है ? तब भ्राताओंने कहा-उस समय हम भूल गये परन्तु तुझे तेरे भागके बदलेमें पिताको देते हैं अर्थात् तू पिताको ही अपना भाग समझ कर ग्रहण कर, तब वह पिताके समीप जाकर कहने लगा कि-हे पिताजी ! बड़े भ्राताओंने मुझे भागके बदलेमें आपको दिया है, तब पिता (नभग) ने कहा कि-हे पुत्र ! ऐसा उन्होंने तुझे धोखा देनेके निमित्त कहा है, इस पर तू विश्वास मत कर, क्योंकि-द्रव्यकी समान भोगका साधन मैं नहीं हूँ २ तथापि उन्होंने भागरूपसे यदि मुझे दिया है तो मैं तुझसे जीविकाका उपाय कहता हूँ यह यहाँसे समीप ही आङ्गिरस ऋषि, आज द्वादशाह नामक यज्ञका प्रारम्भ करके बैठे हैं, उनमें छठा २ दिन आने पर उस दिनका कर्म प्रारम्भ होने पर उसके

त्मनः । ते स्वर्यंतो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः॥४॥दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान् यथा । तस्मै दत्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित्स्वीकरिष्यंतं पुरुषः कृष्णदर्शनः । उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥६॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः । स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥७॥ यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् । चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥ नाभागास्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् । इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९ ॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे । ददामि ते मन्त्रदृशो ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १० ॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् । इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान्सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत्संस्मरेत्प्रातः सायं च सुसमाहितः । कवि-

अनुष्ठानमें, वह विद्वान् होकर भी उन सूक्तोंको न जाननेके कारण मोहको प्राप्त होते हैं, तू उनको जानने वाला है ॥ ३ ॥ इस कारण उन महात्मा ब्राह्मणोंको तू 'इदमित्था, ये यज्ञेन, इत्यादि दो सूक्तोंका पाठ करा तब वह, कर्म समाप्त होने पर स्वर्गको जाते हुए अपने सत्रमें शेष रहा धन तुझे देदेंगे, इस कारण तू उनके समीप जा तदनन्तर उस नाभागने, पिताके कहनेके अनुसार कार्य करा फिर सत्र समाप्त होनेपर वह आङ्गिरस ऋषि, सत्रमें शेष रहा हुआ धन उस नाभागको देकर स्वर्गको चले गए ॥ ४ ॥ ५ ॥ तदनन्तर उस द्रव्यको नाभाग लेने लगा उसी समय एकाएकी काला २ दीखने वाला कोई एक पुरुष (श्रीरुद्र) उत्तर दिशासे आकर 'यह यज्ञभूमिमें रहा हुआ धन मेरा है' ऐसा कहने लगा ॥६॥ उस समय नाभागने कहा कि-यह द्रव्य ऋषियोंने मुझे दिया है इस कारण मेरा है, तब रुद्रने कहा कि-मेरा और तेरा, इस प्रकार द्रव्यके विवादमें तेरे पितासे ही प्रश्न होना चाहिये, इस कारण तू अपने पितासे बूझ कर ही 'यह द्रव्य मेरा है या तेरा है' इसका निश्चय कर ले, ऐसा कहने पर नाभागने पिताके समीप जाकर तैसा ही (यह द्रव्य मेरा है वा रुद्रका है ऐसा) बूझा ॥ ७ ॥ तब पिताने कहा कि-यज्ञ भूमिमें शेष रहा हुआ सब, रुद्रका भाग है ऐसा दक्षके यज्ञमें ऋषियोंने निर्णय कर दिया है, इस कारण वह रुद्रदेव सब ही ग्रहण करनेको योग्य हैं अर्थात् वह सब उनका ही है ॥ ८ ॥ इस प्रकार पिताके कहने पर नाभागने उन रुद्रको वन्दना करके कहा कि-हे ईश्वर ! यह यज्ञभूमिमेंका सकल द्रव्य तुम्हारा ही है, ऐसा मेरे पिताने कहा, इस कारण हे ब्रह्मन् ! मैं मस्तकसे वन्दना करके तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ कि-मैं जो तुम्हारा द्रव्य लेनेको प्रवृत्त हुआ तिसकी क्षमा करो ॥ ९ ॥ तब रुद्रने कहा कि-तेरे पिताने जो तेरा पक्षपात न करके सत्यधर्म कहा है और तू भी द्रव्यके लोभको छोड़ कर सत्यवार्त्ता कह रहा है इस कारण वेदका अर्थ जानने वाले भी तुझको मैं सनातन ब्रह्मका ज्ञान देता हूँ अर्थात् मेरे अनुग्रहसे तुझको ब्रह्मका साक्षात्कार हो ॥ १० ॥ तथा यह जो सत्रमेंका शेष रहा हुआ द्रव्य है सो भी मैंने तुझे दिया, इसको तू जीविकाके निमित्त स्वीकार कर, ऐसा कह कर वह सत्यवत्सल रुद्रभगवान् तहाँ ही अन्तर्धान होगये ॥ ११ ॥ जो पुरुष, एकाग्रचित्त होकर इस आख्यानको साय-

संध्यति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती । नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥ राजोवाच । भगवन् श्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः । न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच । अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् । अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५ ॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् । विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६ ॥ वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु । प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ट्रवत्स्मृतम् ॥ १७ ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने । करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥ मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसंगमम् । घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानु-

---

ङ्काल और प्रातःकालके समय स्मरण करता है वह मन्त्रका जानने वाला ज्ञानी होकर परमात्माकी गति (मुक्ति)को प्राप्त होता है फिर संसारमें नहीं आता है. १२ अथ अम्बरीपका चरित्र कहते हैं कि-नाभागसे उपकारक स्वभाव वाला और परम भगवद्भक्त राजा अम्बरीप हुआ, जिस अम्बरीषको दुर्वासा ऋषिने, 'इसको यह भस्म कर देय, 'ऐसा कह कर' अग्नि रचा परन्तु वह अग्नि स्पर्श भी नहीं कर सका ॥ १३ ॥ ऐसा सुन कर राजाने कहा कि—हे सर्वज्ञ ! जिस अम्बरीषके ऊपर प्रयोग करा हुआ दुर्निवार अग्निरूप ब्रह्मदण्ड भी अपना पराक्रम चलानेको समर्थ नहीं हुआ, उस बुद्धिमान् अम्बरीष राजर्षिका चरित्र सुननेको मैं इच्छा करता हूँ ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! महाभाग्यवान् तिस अम्बरीष राजाको सप्तद्वीपयुक्त पृथ्वी, निर्विघ्न सम्पत्तियें और इस भूतल परके पुरुषोंको अतिदुर्लभ तथा अनुपम भोगकी सामग्रीरूप ऐश्वर्य प्राप्त हुआ परन्तु उस सबको राजा अम्बरीषने स्वप्नमें देखे हुए पदार्थोंकी समान मिथ्याभूत माना, क्योंकि वह राजा, जिनसे पुरुष मोहमें डूब जाता है उन ऐश्वर्योंको नाशवान् जानता था ॥ १५ ॥ १६ ॥ और वह वासुदेव भगवान्में तथा उनके भक्त जो साधु पुरुष तिनमें ऐसी उत्तम भक्तिको प्राप्त हुआ था कि-जिससे यह विश्व मट्टीके ढेलेकी समान अतितुच्छ है ऐसा दीखने लगता है ॥ १७ ॥ उस राजाने अपना मन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ध्यानमें एकाग्र करा था, उसने अपना भाषण, भगवान्के गुणोंके वर्णनमें लगाया था, उसने अपने हाथ, श्रीहरिके मन्दिरको स्वच्छ करने आदिके उद्योगमें लगाये थे, उसने अपने कान, संसारको दूर करने वाली भगवान् की कथाओंको सुननेमें लगाये थे ॥ १८ ॥ उसने अपनी दृष्टि, मुक्तिदाता भगवान् की मूर्त्तियोंके और स्थानोंके देखनेमें लगायी थी, उसने अपनी त्वचा इन्द्रिय (शरीरकी खाल), भगवान्के भक्तोंके अंगका स्पर्श करनेमें लगाई थी, उसने अपनी नासिका इन्द्रिय, सुन्दर तुलसीके और भगवान्के चरण कमलोंके सुगन्धमें लगायी थी, उसने अपनी रसना इन्द्रिय (जीभ), भगवान्को निवेदन करे हुए अन्न आदिका रस ग्रहण करनेमें लगायी थी ॥ १९ ॥ उसने अपने चरण,

सर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने । कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २० ॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोऽक्षजे । सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः । ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥२२॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः । तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यंत सुवाससः ॥ २३ ॥ स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः । शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥ समर्द्धयन्ति तान् कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः । दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥ २५ ॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः । स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्सर्वान् शनैर्जहौ गृहेषु दारेषु सुतेषु बंधुषु द्विपोत्तमस्यंदनवाजिपत्तिषु । अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि-

---

श्रीहरिके जो मथुरा आदि क्षेत्र तथा अन्य भी स्थानोंमें वारंवार यात्रा करनेमें लगाये थे, उसने अपना मस्तक, हृषीकेश भगवान्के चरणोंकी वन्दना करनेमें लगाया था, उसने अपना माला चन्दन आदि विषयोंका सेवन करना भी, दासभावके निमित्त से भगवान्का प्रसाद लेनेके विषयमें 'जैसे भगवद्भक्तोंका आश्रय करनेवाली प्रीति होय तैसे, चलाया था, विषय भोगकी इच्छासे नहीं ॥ २० ॥ इस प्रकार वह राजा अम्बरीष, प्रतिदिन अपने सकल कर्म, यज्ञपति परमेश्वर अधोक्षज भगवान्को अर्पण करके सर्वत्र आत्मा ही है ऐसी भावना करता हुआ, भगवत्परायण वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंके कहनेके अनुसार इस पृथ्वीकी रक्षा करने लगा ॥ २१ ॥ तथा उस राजाने अपने बड़े ऐश्वर्यसे बढाये हुए 'प्रयाज आदि' अङ्ग और दक्षिणाओंसे युक्त, वसिष्ठ, असित और गौतम आदि ऋषियोंसे करवाए हुए तथा धन्व (मारवाड़) देशमें सरस्वती नदीके प्रवाहके अभिमुख, एकके अनन्तर एक इस प्रकार क्रमसे विस्तारके साथ करे हुए अनेकों अश्वमेधोंके द्वारा, यज्ञ आदिका फल देनेवाले भगवान्की आराधना करी ॥ २२ ॥ जिसके अश्वमेध यज्ञमें, वस्त्र आभूषण आदि अलंकार धारण करनेवाले सभासद, ऋत्विज और अन्यजन, हविका भाग ग्रहण करने के निमित्त आए हुए देवताओंकी समान ही सुन्दर और निमेष (पलक लगाना) रहित थे और सदस्य आदि लोक आश्चर्य देखनेकी उत्कण्ठासे निमेषरहित होगये थे ॥ २३ ॥ जिसका आश्रय करके रहनेवाले मनुष्योंने देवताओंके प्रिय स्वर्गलोककी भी किञ्चिन्मात्र भी प्रार्थना नहीं करी, क्योंकि-उनको पुण्यकीर्त्ति भगवान्के चरित्रोंके सुनने और कीर्त्तन करनेका अवसर मिलता था, जोकि-देवलोकमें दुर्लभ है ॥ २४ ॥ स्वर्गकी प्रार्थना करनेकी तो शंका अलग रही, परन्तु, अपने हृदयमें मुक्तिदाता भगवान्को प्रत्यक्ष देखनेवाले जो पुरुष हैं उनको, सिद्धोंको भी जिनका मिलना कठिन है ऐसे पदार्थ प्राप्त हों तब भी स्वरूपसाक्षात्कारसे तिरस्कार करे हुए होनेके कारण हर्षित नहीं करते हैं ॥२५॥ इस प्रकार वह राजा अम्बरीष, भक्ति, और तपस्यासे युक्त निज धर्मके आचरणसे श्रीहरिको सन्तुष्ट करके धीरे २ इस लोकके और परलोकके विषयभोगोंकी सकल अभिलाषाओंको त्याग दिया ॥ २६ ॥

ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम्। एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया। युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः। स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा। अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ३१ तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम्। ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम्। पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट्। भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥३४॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे। तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद् दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः।

घर, स्त्री, पुत्र, बन्धु, उत्तम हाथी, रथ, घोड़े, सिपाही, अक्षय रत्न जटित आभूषण, आयुध और अक्षय भण्डार गृह आदि सकल वस्तुओंमें, उसने यह नाशवान् होनेके कारण पुरुषार्थरूप नहीं है ऐसा अपनी बुद्धिका निश्चय कर लिया था ॥ २७ ॥ उस राजाके अनन्य भक्ति भावसे सन्तुष्ट हुए भगवान्ने,सकल शत्रुओं को भयभीत करने वाला और अपने भक्तोंकी सब ओरसे रक्षा करने वाला सुदर्शन चक्र उसको देदिया था ॥ २८ ॥ एक समय श्रीकृष्णजीका आराधन करनेवाले उस अम्बरीष वीरने, भगवान्की आराधनामें अपनी समान ही प्रेम करने वाली स्त्रीके साथ, सम्वत्सर पर्यंत साधनद्वादशीका व्रत धारण करनेका नियम करा ॥ २९ ॥ उसने व्रतके अन्तमें कार्तिकके महीनेमें शुक्ल दशमीके दिन रातमें एकादशीके दिनमें उपावण (निराहार) और द्वादशीके दिन एक वार भोजन करनेका नियम स्वीकार करके, द्वादशीके दिन यमुनामें स्नान करके मधुवनमें श्रीहरि का पूजन करा ॥ ३० ॥ चन्दन पुष्पादि सकल सामग्रियोंकी सम्पत्तियुक्त महाभिषेककी विधिसे अभिषेक करके वस्त्र,आभूषण,चन्दन, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप आदि सामग्रियें करके एकाग्रचित्तसे भगवान्का पूजन करा,तथा सकल विषयोंमें इच्छा रहित ऐसे भगवद्भक्त ब्राह्मणोंका भी पूजन करा ॥ ३१ ॥३२॥ और उन दानयोग्य ब्राह्मणोंको, जिनके सींग सुवर्णसे मँढे हुए हैं, जिनके खुर चाँदीसे मँढेहुए हैं,जिन के ऊपर वस्त्रकी झूलें पड़ी हुई हैं ऐसी बहुतसा दूध देनेवाली,सुन्दर स्वभाववाली प्रथम वार व्याही हुई, तरुण, सींग पूँछ कान और नेत्र आदि अङ्गोंसे श्रेष्ठ, बच्चे सहित, दुहनेका पात्र,सुवर्णके पुष्पोंकी माला आदि सामग्रियोंसे युक्त साठ करोड़ गौएँ उन ब्राह्मणोंके घर भेजदीं और उनको पहिले उत्तम रुचिकारी छः रसोंके अन्न का उत्तम भोजन करा कर, फिर इच्छाके अनुसार दक्षिणा दी, तब उन्होंने आशीर्वाद देकर राजाको भोजन करनेकी आज्ञा दी,तब वह राजा,पारणा करनेको उद्यत हुआ उसी समय उनके पास भगवान् दुर्वासा ऋषि, साक्षात् अतिथिरूपसे आ पहुँचे ॥ ३२—३५ ॥ तब राजाने उन आये हुए अतिथिको उत्थान देकर उनकी आसन पाद्य आदिसे पूजा करी और चरणों पर मस्तक रखकर, आप यहाँ भोजन

ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनंद्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः । निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिंदीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्तार्द्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति । चिंतयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे । यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् । प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥ इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिंतयन्मनसाऽच्युतम् । प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः । राज्ञाऽभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः । बुभुक्षितश्च सुतरां कृतांजलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत । धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमंत्र्य च । अदत्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥४५॥ एवं ब्रुवाण

करें, ऐसी प्रार्थना करी ॥ ३६ ॥ तब उन ऋषिने, उस राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार करा और मध्याह्नका कृत्य करनेको चले गए, उन्होंने यमुनाके शुद्ध जलमें ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करतेहुए स्वस्थतासे स्नान करा ॥ ३७ ॥ उससमय द्वादशी एकघड़ी ही शेष रही थी इस कारण धर्मसंकट प्राप्त होनेपर, उस धर्मको जाननेवाले राजा अम्बरीषने, ब्राह्मणोंसे पारणाके विषयमें प्रश्न करा ॥ ३८ ॥ राजाने कहा कि—हे ब्राह्मणो ! अतिथिरूपसे आये हुए और निमन्त्रण करे हुए ब्राह्मणको भोजन कराये विना आप भोजन करलेनेसे बड़ाभारी दोष (अधर्म) है तैसेही द्वादशीमें पारणा नहीं होय तो व्रतभंगरूप दोष लगेगा, तिससे जिसके करने पर मेरा कल्याण होय और मुझे अधर्म भी स्पर्श न करे सो मुझसे कहो ॥ ३९ ॥ जल पान करने पर वह भोजन करनेके समान और भोजन न करनेके समान भी है, ऐसा जो वेदोंमें कहा है तिससे हे ब्राह्मणो ! केवल जलसे मैं व्रतकी पारणा (समाप्ति) करता हूँ ॥४०॥ इस प्रकार निश्चय कहके उस राजर्षि अम्बरीषने, जलपान करा, और हे कुरुश्रेष्ठ ! वह राजा मनमें भगवान्का ध्यान करताहुआ दुर्वासा ऋषिके आनेकी बाट देखता रहा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर मध्याह्नका कर्म करके दुर्वासा ऋषि यमुनाके तटसे आये तब राजाने उनको प्रणाम करा, तब भी उन्होंने योगशक्तियुक्त अपनी बुद्धिसे 'मेरे विना आये ही' राजाने व्रतकी पारणा करली है यह जान लिया ॥ ४२ ॥ उस समय वह बड़े भूखे होरहे थे इस कारण क्रोधके आवेशसे जिनका शरीर थर थर काँप रहा है ऐसे भ्रुकुटि चढ़ी हुई होनेके कारण त्यौरी चढ़ेहुए वह दुर्वासा ऋषि, हाथ जोड़ कर खड़ेहुए राजासे कहने लगे कि—॥४३॥ अरे पुरुषो ! मैं ही स्वतन्त्र हूँ, ऐसा माननेवाला, सम्पदासे उन्मत्त हुआ, विष्णुकी भक्तिसे रहित, और स्वभावसे ही निर्दयी ऐसे इस अम्बरीष राजाका कितना अन्याय है, देखो तो सही ? ॥ ४४ ॥ अरे ! जो तूने अतिथिरूपसे आये हुए मुझको सत्कारके साथ भोजनके निमित्त निमन्त्रण करके, मुझे भोजन विना कराय ही भोजन करा है इस तेरे अन्यायका फल तुझे मैं अब ही दिखाता हूँ ॥ ४५ ॥ ऐसा कह कर क्रोधमें भरे हुए उन दुर्वासा ऋषिने,

उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः। तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम्। वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना। ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम्। दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥ तमन्वधावद्भगवद्रथांगं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम्। तथानुषक्तं स निरीक्ष्यमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्रान्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः। यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः। देवं विरिंचं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥५२॥ ब्रह्मोवाच। स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्द्धसंज्ञे। भ्रूभंगमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरो भविष्यति ॥५३॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः

अपनी जटा उखाड़कर पृथ्वीपर पटकी, और उससे तिस अम्बरीषका मारण करने के निमित्त प्रलयकालकी अग्निकी समान एक कृत्या उत्पन्न करी ॥ ४६ ॥ उस हाथ में तलवार लेकर शरीर परको चली आनेवाली और आतेमें चरणसे भूमिको कंपायमान करने वाली तथा जाज्वल्यमान अतिभयंकर कृत्याको देख कर भी वह राजा अपने स्थानसे किञ्चिन्मात्र भी चलायमान नहीं हुआ ॥ ४७ ॥ उससमय, पहिले ही अम्बरीषकी रक्षाके निमित्त, महात्मा परमपुरुषके नियत करे हुए सुदर्शन चक्रने, उस कृत्याको, जैसे अग्नि क्रोधमें भरे हुए सर्पको जला डालता है तैसे ही जला डाला ॥४८॥ तदनन्तर दुर्वासा ऋषि,कृत्या उत्पन्न करनेके अपने उद्योगको निष्फल हुआ देखकर और उस सुदर्शन चक्रको अपने सन्मुख दौड़कर आता हुआ देखकर भयभीत हुए और अपने प्राणोंकी रक्षा करनेकी इच्छासे दशों दिशाओंमेंको भागने लगे ॥ ४९ ॥ उससमय जैसे सर्पके पीछे; जिसकी ऊपरको लपटें उठ रही हैं ऐसा बनका प्रचण्ड अग्नि दौड़ता है तैसे उन दौड़ने वाले दुर्वासा ऋषिके पीछे भगवान् का सुदर्शन चक्र दौड़ने लगा, तब अपने पीछे लगे हुए उस चक्रको देख कर भयभीत हुए वह दुर्वासा ऋषि, मेरु पर्वतकी गुफामें घुस जाऊँ इस इच्छासे दौड़ने लगे ॥ ५० ॥ इस प्रकार भागनेवाले वह ऋषि, दिशा,आकाश, पृथ्वी, सात पाताल सात समुद्र, लोकपालों सहित सबलोक और स्वर्ग इतने स्थानोंमें यथाशक्ति दौडते हुए गये,परन्तु जहाँ जहाँ वह भागकरगये तहाँ तहाँ वह असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र उन्होंने देखा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उनको जब कहीं भी रक्षा करने वाला नहीं मिला तब वह मनमें अत्यन्त भय मान कर रक्षा करने वालेको खोजते हुए ब्रह्माजी की शरण जाकर कहने लगे कि-हे विधातः हे आत्मयोने ! विष्णु भगवान्के चक्ररूप तेजसे तुम मुझे बचाओ ॥ ५२ ॥ यह सुन कर ब्रह्माजीने कहा कि-हे मुने ! ब्रह्माण्ड सहित इस मेरे स्थानको (सत्यलोकको) भस्म करनेकी इच्छा करने वाले जिन कालरूप विष्णुके भृकुटि चलानेमात्रसे ही दो परार्ध नाम वाले कालमें होने वाले जगत्के जन्म आदि व्यापाररूप क्रीड़ाके अन्तमें यह मेरा स्थान नाशको प्राप्त

प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः । सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ प्रत्याख्यातो विरिंचेन विष्णुचक्रोपतापितः । दुर्वासाः शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच । वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः । भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥ अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः । कपिलोऽपांतरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः । विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया वृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः । तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ । वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः । आहाच्युतानंत सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाऽघं भवतः प्रियाणाम् । विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहं भक्तपरा-

---

होजाता है ॥ ५३ ॥ मैं (ब्रह्मा), शिव, दक्ष और भृगु आदि तथा मरीचि आदि प्रजापति, ग्यारह रुद्र और इन्द्र आदि देवता, यह जिनमें मुख्य हैं ऐसे सब ही हम जिन भगवान्‌की आज्ञाको पाकर, जिस प्रकार लोकोंका हित होय तिस प्रकार उस आज्ञाको अपने मस्तक पर धारण करते हैं इसकारण उनके भक्तका द्रोह करनेवाले तेरी रक्षा करनेको मैं समर्थ नहीं हूँ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीके निषेध कर देने पर, विष्णुभगवान्‌के चक्रसे सन्तापितहुए वह दुर्वासा ऋषि, कैलासवासी शंकरकी शरण जाकर, विष्णुभगवान्‌के चक्रसे तुम मेरी रक्षा करो ऐसी प्रार्थना करने लगे ५५ तब श्रीशंकरने कहाकि—हे तात दुर्वासा ऋषे ! जिस ब्रह्माण्डमें लोकोंके स्वामीपनेका अभिमान करने वाले हम घूमते हैं तथा इसकी समान और भी सहस्रों ब्रह्माण्ड-शरीर, जिन व्यापक परमेश्वरके विषैं सृष्टिकालमें उत्पन्न होते हैं और संहारकालमें नष्ट होजाते हैं उनके चक्रसे तेरी रक्षा करनेको हम किसी प्रकार समर्थ नहीं हैं ॥ ५६ ॥ मैं (रुद्र), सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्माजी, कपिल, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरि, मरीचि आदि ऋषि तथा और भी विद्या, तप और योगमें तत्पर हम सब, सर्वज्ञ होकर भी मायासे घिरे हुए होनेके कारण जिन भगवान्‌की मायाको नहीं जानते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ उन विश्वेश्वर भगवान्‌का यह सुदर्शननामक चक्र, हम सबोंको भी सहना परम कठिन है, इस कारण तू उन भगवान्‌की ही शरण जा, तब वह हरि तेरा कल्याण करेंगे ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वह दुर्वासा ऋषि, अपनी रक्षा होनेमें निराश होकर, तहाँसे जहाँ लक्ष्मी-सहित श्रीनिवास विष्णु रहते हैं उस वैकुण्ठ नामक भगवान्‌के स्थानको गये ॥ ६० ॥ तहाँ भी वह विष्णु-भगवान्‌के चक्रकी ज्वालासे भुने जानेके कारण कम्पायमान होकर उन भगवान्‌के चरणतलमें जापड़े और कहने लगे कि—हे विश्वरक्षक ! हे प्रभो ! हे अनन्त ! हे अच्युत ! हे भक्तप्रिय ! तुम अब, तुम्हारे भक्तका अपराध करने वाले भी मेरी रक्षा करो ॥ ६२ ॥ हे विष्णो ! तुम्हारे परम प्रभावको न जानने वाले मैंने, तुम्हारे

धीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज । साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना । श्रियं चात्यंतिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ६४ ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम् । हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः । वशे कुर्वंति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् । नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥ ६७ ॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् । मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् । अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् । साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९ ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे । त

भक्तोंका (अम्बरीपका और उसके अनुयायी पुरुषोंका) अपराध करा है, उससे छुटाओ, अर्थात् अपराधको सह कर मेरी रक्षा करो और यही योग्य है क्योंकि–जिन आपके नामका उच्चारण करने पर, नरकमेंका भी प्राणी नरकसे छूट जाता है ऐसे आपको क्या अशक्य है ? कुछ अशक्य नहीं है ॥ ६२ ॥ भगवान्ने कहाकि–हे ब्राह्मण ! मैं भक्तोंके वशमें हूँ इस कारण तेरी रक्षा करनेके विषयमें स्वतन्त्रकी समान नहीं हूँ, क्योंकि––निरपेक्ष भक्तोंके प्रेमने मेरे हृदयको अत्यन्त वशमें कर लिया है इस कारण वह भक्तजन मुझे सबसे अधिक प्यारे हैं ॥ ६३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिनका मैं परम आश्रय हूँ उन परमविवेकी भक्तोंके विना मैं, अपने आत्मा और मेरा आश्रय करके स्थिर रहने वाली लक्ष्मीकी भी इच्छा नहीं करता हूँ फिर औरोंकी तो बात ही क्या ? ॥६४॥ जिन भक्तोंने, स्त्री, घर, पुत्र, अपने प्राण, द्रव्य, यह लोक और परलोक इन सबोंको त्याग कर मेरा ही आश्रय करा है उनको त्यागनेको मैं कैसे समर्थ होसकता हूँ ? अर्थात् कभी समर्थ नहीं होसकता ॥ ६५ ॥ मेरे विषैं अपना चित्त लगाने वाले और सबमें समदृष्टि रखने वाले जो साधु पुरुष हैं वह, जैसे पतिव्रता स्त्रियें श्रेष्ठ पतिको वशमें कर लेती हैं तैसे ही, भक्तिसे मुझे वशमें कर लेते हैं ॥ ६६ ॥ जो मेरे अनन्य भक्त हैं वह, मेरी सेवासे ही अपने मनोरथोंको पूर्ण करते हुए, उस मेरी सेवासे प्राप्त हुई, सलोकता समीपता आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंकी भी इच्छा नहीं करते हैं, फिर कालसे नाशको प्राप्त होने वाले इन्द्रपद आदिकोंकी तो वह इच्छा करेंगे ही क्या ? ॥ ६७ ॥ अधिक तो क्या परन्तु साधुपुरुष मेरा हृदय (परमप्रिय) हैं और मैं साधुओंका हृदय (उनका परमप्रिय) हूँ, क्योंकि–वह मुझसे भिन्न किसी वस्तुको भी प्रिय नहीं जानते हैं, तैसे ही मैं भी उनसे दूसरी अन्य वस्तुको कुछ भी प्रिय नहीं मानता हूँ ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मण ! तुझसे एक उपाय कहता हूँ, उसको तू सुन–'यह तूने कृत्या उत्पन्न करी इस कारण तुझे ही उलटी पीड़ा देने वाला, अभिचार जिस अम्बरीषसे उत्पन्न हुआ है उसकी ही तू शरण जा, क्योंकि–साधुओंके ऊपर चलाया हुआ तेज उलटा अनर्थ करता है ॥६९॥ हे ब्राह्मण ! तू यह आश्चर्य न मान कि–तप और विद्यावान् मुझको यह अनर्थ कैसे प्राप्त हुआ, क्योंकि–यह बात ठीक है कि–तप और विद्या

एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥७०॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम्। क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः । अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः । अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥ अम्बरीष उवाच । त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः । त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय । सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् । त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे। त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं

दोनों ब्राह्मणोंका परमकल्याण करने वाले हैं परन्तु निरपराधी पुरुषका अपराध करने वाले ब्राह्मणको वही दोनों अनर्थकारी होते हैं ॥ ७० ॥ इस कारण हे दुर्वासा मुने ! तेरा कल्याण हो, तू महाभाग्यवान्, नाभागके पुत्र राजा अम्बरीषके समीप जा, और उससे अपराध क्षमा करनेकी तथा अपनी रक्षा होनेकी प्रार्थना कर तब उससे तेरा दुःख दूर होगा ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ ❀ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—इस प्रकार भगवान्के आज्ञा करने पर, चक्रसे सन्तापको प्राप्त होनेके कारण दुःखित हुए दुर्वासा ऋषिने, राजा अम्बरीषके समीप जाकर उसके चरण पकड़ लिये ॥१॥ तब वह राजा अम्बरीष, उन दुर्वासा ऋषिको चरण पकड़नेका उद्योग देख कर, उस ब्राह्मणके करे हुए चरणस्पर्शसे लज्जित होकर और उनके सङ्कटको देख कर कृपासे अत्यन्त पीड़ित होता हुआ, उनके पीछे लगे हुए तिस श्रीहरिके सुदर्शनचक्रकी स्तुति करने लगा ॥ २ ॥ अम्बरीषने कहा कि—हे सुदर्शनचक्र ! तू अग्नि है, तू ही सूर्य भगवान् है और नक्षत्रपति चन्द्रमा भी तू ही है, तथा जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, शब्दादि पाँच विषय और उनको ग्रहण करने वाली श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रियें भी तू ही है अर्थात् तेरी शक्तिसे ही अग्नि आदि अपना २ कार्य करते हैं ॥ ३ ॥ हे सुदर्शन ! तू सहस्र अरोंसे युक्त, पृथ्वीका रक्षक, विष्णुका प्रिय और सकलशस्त्रोंका नाश करने वाला है, तुझे मैं नमस्कार करता हूँ, इस ब्राह्मणका कल्याण करने वाला हो ॥४॥ क्योंकि–तू धर्म, ऋत, सत्य, यज्ञरूप, सकल यज्ञोंका भोक्ता, लोकोंका पालन करने वाला और सर्वात्मरूप होकर तू ही भगवान्की परसामर्थ्यरूप है ॥ ५ ॥ हे उत्तम नाभियुक्त चक्र ! तू सकल धर्मोंका मर्यादारूप और अधर्मी दैत्योंको अग्निकी समान भस्म करने वाला है, तथा त्रिलोकीकी रक्षा करने वाला एवं अति उज्ज्वल तेजसे युक्त है, तेरा वेग मनकी समान है, तू अद्भुत कर्म करने वाला है इस कारण तेरी स्तुति करनेको कोई भी समर्थ नहीं है अतः मैं केवल वाणीसे ही तुझे नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ हे वेद-

तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् । दुरत्ययस्ते महिमा गिरांपते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजितदैत्यदानवम् । बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृश्चन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता । विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः । कुलं नो विप्रदैवं चेद् द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥ यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः । सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच । इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् । अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः । प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच । अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे । कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् । यैः संगृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।

वाणीका पालन करने वाले ! तेरे धर्ममय तेजने, भगवान्‌की उपासना करने वाले पुरुषोंके अज्ञानका नाश करा है और सूर्य आदिकोंको भी प्रकाश अर्पण करा है, कार्यकारणात्मक यह चराचर जगत् तेरा ही रूप है, ऐसे तेरी महिमा अपार है ७ हे अपराजित सुदर्शन ! जब तू श्रीहरिसे छोड़ा जाता है तब तू दैत्य दानवोंकी सेनामें प्रवेश करके उनकी बाहु, उदर, जङ्घा, चरण और कण्ठोंको काटता हुआ युद्धमें शोभाको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ हे जगत्‌की रक्षा करने वाले ! युद्धमें सकल शत्रुओंको सहने वाले तुझे दुष्टोंका ही नाश करनेके निमित्त भगवान्‌ने योजित करा है, इस कारण हमारे कुलको भाग्यवान् होनेके निमित्त इस ब्राह्मणका प्राणरक्षारूप कल्याण कर तब यही हमारे ऊपर तेरा अनुग्रह होगा, नहीं तो ब्रह्महत्या होनेसे हमारी लोकमें अपकीर्त्ति और कुलका नाश आदि होगा ॥ ९ ॥ हमारा यदि कुछ पुण्य हो, यज्ञ आदि वा स्वधर्माचरणका पुण्य हो तथा यदि हमारा कुल ब्राह्मणोंको पूज्यबुद्धिसे मानता हो तो यह ब्राह्मण दुःखसे छूट जाय ॥१०॥ और हमारा सकल प्राणियोंमें आत्मभाव होनेके कारण हमारे ऊपर सकल गुणोंके आश्रय एक भगवान् यदि प्रसन्न हों तो यह ब्राह्मण दुःखरहित हो ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार शपथके साथ राजा अम्बरीषके स्तुति करने पर, सब ओरसे दुर्वासाऋषिको भस्मसा करने वाला सुदर्शन नाम वाला विष्णुभगवान्‌का चक्र, राजाकी याचनासे शान्त होगया ॥ १२ ॥ तदनन्तर सुदर्शनकी अग्निके तापसे छूटे हुए दुर्वासाऋषि, दुःख रहित हो उस राजाको उत्तम आशीर्वाद देकर उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥ अहो ! भगवान्‌के दासोंका महत्त्व आज मैंने देखा क्यों कि-हे राजन् ! मैंने तेरा अपराध करा तब भी तू मुझे सुख प्राप्त होनेकी इच्छा करता है ॥ १४ ॥ अहो ! जिन्होंने, भक्तोंकी रक्षा करने वाले भगवान् श्रीहरिको बड़े प्रेमके साथ हृदयमें स्थापन करा है ऐसे महात्मासाधुओंको क्या करना कठिन है ? अर्थात् सब कुछ करसकते हैं और क्या त्यागना कठिन है ? अर्थात् सब कुछ

तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना । मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकांक्षया । चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥ सोऽशित्वाहतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् । तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै । दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः । कीर्त्तिं परमपुण्यां च कीर्त्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः । ययौ विहायसामंत्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः । मुनिस्तद्दर्शनाकांक्षी राजाब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् । ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुध्वा मेने स्ववीर्यं च परानु-

---

त्याग सकते हैं ॥१५॥ जिन भगवान्के नामोंको सुननेमात्रसे ही पुरुष,पाप आदिकों से रहित होता है उन तीर्थपाद श्रीहरिके दासोंको कौन कार्य करना शेष रहा ? अर्थात् कुछ शेष नहीं रहा ॥१६॥ हे राजन् ! जिसका चित्त अत्यन्त करुणासे व्याप्त है ऐसे तूने मेरे ऊपर अनुग्रह करा है, क्योंकि-तूने मेरे अपराधको पीछे करके (उसको कुछ न गिनकर) मेरे प्राणोंकी रक्षा करी है ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! ब्राह्मण लौटकर आवेगा, ऐसी इच्छासे जिसने भोजन नहीं करा है ऐसे उस राजाने, आये हुए दुर्वासा ऋषिके चरण छूकर उनको प्रसन्न कर बड़ी प्रीतिके साथ भोजन कराया ॥ १८ ॥ उस समय दुर्वासा ऋषि, सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला राजाका आदरके साथ परोसा हुआ अन्न भोजन करके प्रसन्न चित्त हुए और राजासे बड़े आदरके साथ कहने लगे कि-हे राजन् ! अब तू भोजन कर ॥१९॥ और यह भी कहा कि-हे राजन् ! सुदर्शन चक्र की स्तुति करके जो तूने मेरे प्राणोंकी रक्षा करी सो मेरे ऊपर अनुग्रह करा है, तथा तुझ भगवद्भक्त के दर्शन, स्पर्श और भाषणसे एवं परमात्माके विषैं प्रेम उत्पन्न करनेवाले तेरे अतिथिसत्कारसे मैं प्रसन्न हुआ हूँ ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस तेरे निर्मल कर्मको स्वर्गमें रहनेवाली स्त्रियें (देवाङ्गना) वारंवार गावेंगी तथा तेरी पवित्र कीर्त्तिको पृथ्वीपर रहनेवाले सकल लोक वर्णन करेंगे ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार अम्बरीष राजाके प्रसन्न करे हुए वह दुर्वासा ऋषि, राजाकी प्रशंसा कर और उससे आज्ञा लेकर आकाशमार्गसे निष्काम कर्म करनेसे प्राप्त होने वाले ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २२ ॥ अब राजाके परम धैर्यका वर्णन करते हैं कि-सुदर्शन चक्रके भयसे गए हुए वह दुर्वासा ऋषि जब तक लौटकर नहीं आये तब तक एक सम्वत्सर (वर्ष) बीत गया, तब तक उनके दर्शनकी इच्छा करने वाला राजा, केवल जलका ही सेवन करके रहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर दुर्वासा ऋषिके चले जानेपर, उस राजा अम्बरीषने, ब्राह्मणके भोजन करलेनेसे परम पवित्र हुआ शेष बचा हुआ अन्न भोजन करा और उसने, दुर्वासा ऋषिको जो सुदर्शनचक्रसे संकट प्राप्त हुआ था उससे उनका छुटकारा हुआ और उनके आनेके समय पयत

भावम् ॥२४॥ एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे। क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं यया विरिंचान्निरयांश्चकार ॥२५॥ अथांबरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः। वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः २६ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः। संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् २७ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अम्बरीषचरितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

श्रीशुक उवाच। विरूपः केतुमान् शम्भुरंबरीषसुतास्त्रयः। विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तंतवेऽर्थितः। अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरसाः स्मृताः। रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३ ॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः। तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४ ॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप। पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्येऽपरेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाऽष्टका-

अपनेको धैर्य रखनेकी शक्ति प्राप्त हुई ऐसा जान कर, यह सब भगवान्के प्रभाव से ही हुआ है ऐसा निश्चय करा ॥ २४ ॥ इस प्रकार अनेक गुणोंसे युक्त उस राजा ने, परमात्मा ब्रह्मरूप वासुदेव भगवान्के विषैं अपने सकल कर्मोंको समर्पण करके आगेको क्रमसे बढ़ने वाली भक्ति करी कि-जिसके द्वारा प्राप्त हुए वैराग्यसे, ब्रह्मपद सहित सकल भोगोंको नरक समान माना ॥ २५ ॥ तदनन्तर तिस जितेन्द्रिय अम्बरीषने, अपने समान स्वभाववाले पुत्रोंको विभागके अनुसार राज्य देकर, आत्मा रूप वासुदेव भगवान्के विषैं मनकी धारणा करके वनमें प्रवेश करा और तदनन्तर वह त्रिगुणमय संसारसे मुक्त होगया ॥ २६ ॥ हे राजन्! ऐसे इस अम्बरीष राजा के पवित्र आख्यानको वर्णन करने वाला और चिन्तवन करने वाला पुरुष, भगवान् का भक्त होगा ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें पञ्चम अध्याय समाप्त

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! विरूप, केतुमान् और शंभु यह राजा अम्बरीषके तीन पुत्र हुए, उनमें विरूपसे पृषदश्व नाम वाला पुत्र हुआ, उसके रथीतर नाम वाला पुत्र हुआ ॥ १ ॥ उस रथीतरके सन्तानहीन होने पर, उसकी स्त्रीके विषैं संतान होनेके निमित्त प्रार्थना करे हुए अङ्गिरा ऋषिने, ब्रह्मतेजसे युक्त तीन पुत्र उत्पन्न करे ॥ २ ॥ यह पुत्र रथीतरकी स्त्रीके विषैं उत्पन्न होनेके कारण रथीतर गोत्रवाले होकर, अङ्गिरा ऋषिके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण आङ्गिरस नामसे प्रसिद्ध हुए और वह आगेको रथीतरकी दूसरी स्त्रीके विषैं उत्पन्न हुए पुत्रोंमें और उनके वंशजोंमें श्रेष्ठ होकर क्षत्रियधर्मसे युक्त ब्राह्मण हुए ॥ ३ ॥ हे राजन्! एक समय छींकते हुए मनुकी नासिकामेंसे इक्ष्वाकु नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ, इस इक्ष्वाकुके सौ पुत्र हुए, उनमें विकुक्षि, निमि और दण्डक यह तीन बड़े थे ॥ ४ ॥ हे राजन्! शेष सौ पुत्रोंमें पचीस पुत्र हिमाचल और विन्ध्याचल इन दो पर्वतोंके मध्यके आर्यावर्त देशोंमें पूर्वके समुद्रपर्यंत देशोंका विभाग करके राजे हुए तथा दूसरे पचीस पुत्र उस ही देशमें पश्चिमकी ओरके राजे हुए, मध्य भागमें विकुक्षि आदि तीनों बड़े पुत्र राजे हुए, शेष रहे सैंतालीस पुत्रोंमेंसे कोई दक्षिणकी ओर

श्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् । मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् । श्रांतो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः । चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः । देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥९॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् । त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् । शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः । ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥ कृतांत आसीत्समरो देवानां सह दानवैः । पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥१३॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः । वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेंद्रो महावृषः ।१४।

और कोई उत्तरकी ओरके राजे हुए ॥ ५ ॥ उनमें बड़ा जो विकुक्षि उसका ही नाम शशाद हुआ, क्योंकि-एक समय वह इक्ष्वाकु राजा, अष्टका श्राद्धका निमित्त आने पर अपने विकुक्षि पुत्रसे कहने लगा कि-हे विकुक्षे ! तू वनमें जा और शीघ्र ही श्राद्धके योग्य मांस लेकर आ विलम्ब न कर ॥ ६ ॥ तब वह वीर, बहुत अच्छा, ऐसा कह कर वनमें गया और श्राद्धके योग्य मृगका वध करके श्रान्त और भूँखा होगया तब उसने, उन पशुओंमेंसे एक शशाको भक्षण कर लिया, उस समय उस को, अधिक क्षुधा लगी होनेके कारण 'श्राद्धके निमित्त वध करे हुए पशुको, आप भक्षण न करे' यह स्मरण नहीं रहा ॥ ७ ॥ तदनन्तर शेष रहा मांस उसने पिता (इक्ष्वाकु)को लाकर दिया,तदनन्तर उस इक्ष्वाकुने मांसका श्राद्धके योग्य संस्कार करनेके निमित्त गुरु वसिष्ठजीसे कहा, सो वह कहने लगे कि—यह मांस श्राद्धके योग्य नहीं है क्योंकि-थोड़ासा पहिले भक्षण कर लेनेके कारण यह उच्छिष्ट दोषसे युक्त होगया है ॥ ८ ॥ तदनन्तर गुरुके कहे हुए उस पुत्रके कर्मको जान कर राजा इक्ष्वाकुने, शास्त्रके नियमको त्यागने वाले उस विकुक्षि पुत्रको क्रोधके कारण देश से निकलवा दिया ॥ ९ ॥ फिर वह राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठ ऋषिके साथ तत्त्वविचार करके उनके द्वारा ज्ञानवान् होकर अन्तमें शरीरको त्याग कर परब्रह्मको प्राप्त होगया ॥ १० ॥ इस प्रकार राजा इक्ष्वाकुके मरणको प्राप्त होने पर फिर विकुक्षिने घर आकर पृथ्वीका पालन करा और बहुतसे यज्ञ करके श्रीहरिका आराधन करा,फिर वह राजा शशाद इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥११॥ उस विकुक्षिका पुत्र पुरञ्जय वही इंद्रवाह और ककुत्स्थ इन नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हुआ, उसको यह नाम जिन कर्मोंसे प्राप्त हुए वह कर्म तुझसे कहता हूँ ॥ १२ ॥ एक समय देवताओंका दैत्योंके साथ, लोकोंका प्रलय करने वाला बड़ा भारी संग्राम हुआ, तब दैत्योंके जीते हुए देवताओंने, अपनी सहायता करनेके निमित्त तिस पुरञ्जय राजासे प्रार्थना करी ॥१३॥ हे राजन् ! तब उस राजाने यह कहा कि-यदि इन्द्र मेरा वाहन बनेगा तो मैं उसके ऊपर बैठ कर दैत्योंका वध करूँगा, इस प्रकार वाहन होनेके निमित्त उसके वरण करे हुए इन्द्रने यह राजाका कहना नहीं माना परन्तु फिर देवदेव

स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् शितान्। स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः। प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम्। यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ॥ १७ ॥ तस्येषुपाताभिमुखं युगांताग्निमिवोल्बणम्। विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥ जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये। प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९ ॥ पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः। विश्वरंधिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥२०॥ शाबस्तस्तत्सुतो येन शावस्ती निर्ममे पुरी। बृहदश्वस्तु शावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः यः प्रियार्थमुतंकस्य धुंधुनामासुरं बली। सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः २२ धुंधुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः। धुंधोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत। दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुंभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥ बर्हणाश्वो निकुंभस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित्।

विश्वात्मा विष्णुभगवान्के कहनेसे इन्द्र उस राजाका वाहन होनेके निमित्त बड़ा भारी वृषभ बना ॥ १४ ॥ तदनन्तर युद्ध करनेकी इच्छा करने वाला वह राजा पुरंजय, कवच धारण कर दिव्य धनुष और तीखे बाण लेकर, वन्दिजनोंसे स्तुति करा हुआ और सर्वान्तर्यामी परमात्मा विष्णुभगवान्के तेजसे वृद्धिको प्राप्त होता हुआ तिस बड़े भारी वृषभके ऊपर चढ़ कर उसके कन्धेके समीपके ककुद् (टाठी) के ऊपर बैठा और उसने देवताओंको साथ लेकर दैत्योंके नगरको पश्चिमकी ओरसे घर लिया ॥ १५ ॥ १६ ॥ तब दैत्योंके साथ उस राजाका, सुननेसे ही लोकोंके शरीर पर रोमाञ्च खड़ा करने वाला भयंकर युद्ध हुआ, उस युद्धमें उसके सामने जो दैत्य आये उनको यमराजका दर्शन करानेके निमित्त उसने बाणोंसे देह सहित उड़ा दिया ॥ १७ ॥ उसके बाणोंके मारे हुए कितने ही दैत्य, उसकी प्रलयकालकी अग्निकी समान दुःसह युद्धभूमिको छोड़कर अपने पाताल लोकमेंको भाग गये१८ इस प्रकार उस राजर्षिने दैत्योंके शोभासहित नगर और धन जीतकर वह सब इंद्र को दिये, तबसे उसको दैत्योंका पुर जीतनेके कारण पुरञ्जय और इंद्रको वाहन बनानेके कारण इंद्रवाह तथा उसके ककुद्पर बैठनेके कारण ककुत्स्थ इन तीन नामों से लोक पुकारने लगे ॥ १९ ॥ पुरञ्जयका पुत्र अनेना हुआ, उसका पुत्र पृथु हुआ, उसका विश्वरन्धि, उससे चन्द्र हुआ और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ ॥ २० ॥ उस का पुत्र शावस्त हुआ, उसने शावस्ती नाम वाली नगरी बनायी, फिर शावस्तका पुत्र बृहदश्व तिससे कुवलयाश्वक हुआ ॥ २१ ॥ जिस बली कुवलयाश्वकने उत्तङ्क ऋषिका प्रिय कार्य करनेके निमित्त अपने इक्कीस सहस्र पुत्रोंसहित धुन्धुकनामा दैत्यके ऊपर चढ़ाई करके उसका वध करा इस कारण वह कुवलयाश्वक ही धुंधुमार इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, और जो इक्कीस सहस्र उसके पुत्र थे वह सब उस धुंधु दैत्यके मुखसे निकले हुए अग्नि करके भस्म होगये, उनमेंसे तीन ही पुत्र शेष रहे ॥२२॥२३॥ हे भारत ! वह तीन पुत्र दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व इन नामों

युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥ भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोस्य कृपालवः । इष्टिं स्म वर्त्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥ राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः । दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥ उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो । पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८ ॥ राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते । ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् । युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह कं धास्यति कुमारोयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् । मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥३१॥ न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः । युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽग विदधे नाम तस्य वै । यस्मात्त्रसंति

वाले थे, उनमेंसे दृढाश्वका पुत्र हर्यश्व, उसका पुत्र निकुम्भ हुआ २४ तिस निकुंभ का बर्हणाश्व, तिसका कृशाश्व, तिसका सेनजित्, तिसका पुत्र युवनाश्व हुआ, उसकी सौ स्त्रियें थीं, तथा उनमें उसकी सन्तान नहीं हुई अतः संतानहीन होनेके कारण खिन्नचित्त होकर उन सौ स्त्रियोंको साथ लिये वनमें ऋषियोंके आश्रममें गया, वह ऋषि उस राजाके ऊपर कृपालु होकर देवाराधनमें एकाग्रचित्त हुए और उन्होंने राजाके पुत्र होनेके निमित्त (राजाको विदित न करके) जिसका देवता इंद्र है ऐसी पुत्रकामेष्टि करी ॥ २५ ॥ २६ ॥ रात्रिमें प्याससे व्याकुल हुआ राजा ऋषियोंके उस यज्ञमण्डपमें चलागया और तहाँ उन ब्राह्मणोंको सोतेहुए देखकर उनसे बिना बूझेही,उन ऋषियोंने रानीके पुत्र होनेके निमित्त पिलानेकोमंत्रसे अभिमंत्रण करके जो जल रक्खा था वह उस राजाने आप ही पीलिया २७ तदनन्तर सोकर उठे हुए ब्राह्मणोंने जलसे खाली हुए कलशको देखकर तहाँ विद्यमान उस राजासे बूझा कि-हे प्रभो ! यह किसका काम है ? पुत्रकी उत्पत्ति करनेवाला जल किसने पिया है ? २८ तदनन्तर ईश्वरके प्रेरणा करेहुए राजाने ही वह जल पीलिया है ऐसा (उस राजासे ही) जानकर उन ऋषियोंने, अहो ! दैवका बल ही मुख्य है, पुरुषका उद्योग कुछ नहीं कर सकता ऐसा कह कर ईश्वरको ही प्रणाम करा ॥ २९ ॥ तदनन्तर पुत्रके उत्पन्न होनेका समय आने पर युवनाश्वकी दाहिनी कोखको फाड़ कर पुत्र उत्पन्न हुआ, यह कितना आश्चर्य है ! और वह पुत्र फिर चक्रवर्त्ती राजा हुआ ॥ ३० ॥ यह पुत्र भूँखसे व्याकुल होकर स्तन पीनेके निमित्त बहुत ही रोरहा है, अब यह किसका दूध पियेगा ? इस प्रकार दुःखित हुए ब्राह्मणोंके परस्पर भाषण करने पर, उस इष्टिमें आराधना करे हुए इन्द्रने 'मान्धाता' (मेरा पियेगा) ऐसा कहा और हे पुत्र ! तू रुदन मतकर ऐसा उस बालकसे कह कर उस इन्द्रने अमृतको टपकाने वाली अपनी तर्जनी अँगुली उस पुत्रके मुखमें दी ॥ ३१ ॥ इस प्रकार इन्द्रके 'मां धाता' ऐसा कहनेके कारण वह पुत्र आगेको मान्धाता इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, दाहिनी कोख फटनेके कारण मरणका समय प्राप्त होने पर भी उस बालकका पिता युवनाश्व ब्राह्मणोंके और देवताओंके अनुग्रहसे मरणको नहीं प्राप्त हुआ, परन्तु वह आगेको उस वनमें ही कुछ काल पर्यन्त निवास करके तपके द्वारा सिद्धि (मुक्ति)

दुद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोऽथ मांधाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः । सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥ ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद् भूरिदक्षिणैः । सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतींद्रियम् ॥ ३५ ॥ द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः । धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥ यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति । सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ शशबिंदोर्दुहितरि बिंदुमत्यामधान्नृपः । पुरुकुत्समंबरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ॥ ३८ ॥ तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् । यमुनांतर्जले मग्नस्तप्यमानः परं तपः ॥३९॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः । जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥४०॥ सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे । स विचिंत्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः । वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥४१॥ साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् । किं पुनर्मनुजेंद्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥४२॥

को प्राप्त हुआ ॥३२॥ हे राजन् ! इन्द्रने फिर उस पुत्रका त्रसदस्यु यह नाम रक्खा, क्योंकि—उस मांधातासे मनमें काँपे हुए दस्यु अर्थात् दूसरोंको पीड़ा देने वाले दुष्ट रावणादि अत्यन्त भय मानते थे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर वह युवनाश्वका पुत्र सार्वभौम मान्धाता, भगवान्के तेजसे प्रजाओंका पालन करनेमें समर्थ होकर सात द्वीपवाली पृथ्वी पर रहने वालीं सकल प्रजाओंका इकला ही पालन करने लगा ॥ ३४ ॥ वह आत्मज्ञानी था तथापि उसने बहुतसी दक्षिणा वाले यज्ञों करके, यज्ञरूपी सर्वदेवमय, सबके प्रकाशक, विश्वव्यापक और इन्द्रियोंके अगोचर होकर भी, यज्ञमेंके चरु पुरोडाश आदि द्रव्य, मन्त्र, अनुष्ठानकी रीति, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज्, धर्म देश और काल यह सब जिनके स्वरूप हैं तिन भगवान्की आराधना करी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जहाँ सूर्यका उदय होता है और जहाँ अस्त होता है तहाँ तकका यह सकल भूमण्डल, यौवनाश्व मान्धाताके पालन करनेका स्थल है, ऐसा कहा है ॥ ३७ ॥ उस राजाने, शशबिन्दु राजाकी बिन्दुमती नाम वाली कन्याके विषैं पुरुकुत्स और अम्बरीष तथा योगी मुचुकुन्द यह तीन पुत्र उत्पन्न करे ॥३८॥ और उन पुरुकुत्सादिकोंकी पचास बहिनें थीं उन्होंने सौभरिनामक ऋषिको पतिवरा, वह महातपस्वी सौभरि, एक समय यमुनाके जलमें योगशक्तिसे गोता लगा कर उत्तम तप कर रहे थे ॥ ३९ ॥ सो तहाँ मैथुन करने वाले एक श्रेष्ठ मत्स्यके मैथुनसुखको देख कर उनको भी मैथुन-सुखकी इच्छा हुई, और उन ब्राह्मणने, राजा मांधाताके पास जाकर एक कन्या माँगी ॥ ४० ॥ तब वह मान्धाता उनके बूढ़ेपनेको देख कर कहने लगा कि-हे ब्राह्मण ! तुम स्वयम्वरमें कन्याकी इच्छाके अनुसार कन्याको ग्रहण करो अर्थात् तुम कन्याओंके भवनमें जाकर, तहाँ मेरी पचास कन्या हैं उनमेंसे जो कन्या तुम्हें अपने आप वर लेय उसको तुम ग्रहण करो, तब उन सौभरि ऋषिने, मैं वृद्ध हूँ, शरीर पर सकोडन पड़ी हुई हैं, केश पक गए हैं और शिर काँप रहा है, इस कारण मैं स्त्रियोंको (इसकी कन्याओंको) प्रिय नहीं लगूँगा, ऐसा मनमें विचार कर इस राजाने मुझे स्वयम्वरके मिषसे प्रत्युत्तर देदिया है ॥४१॥ अच्छा !

मुनिः प्रवेशितः क्षत्त्रा कन्यांऽतःपुरमृद्धिमत् । वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥ ४३॥ तासां कलिरभूद् भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् । ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥ स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु गृहेषु नानोपवनामलांभःसरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥ महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः । स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥ ४६ ॥ यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः । विस्मितः स्तंभमजहात्सार्वभौमश्रियाऽन्वितः ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः । सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः । ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसंगसमुत्थितम् ॥४९॥ अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य । अन्तर्जले वारिचरप्रसंगात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत्

अब मैं अपने शरीरको ऐसा सुन्दर बनाता हूँ कि-जिससे मैं देवताओंकी स्त्रियोंको भी प्रिय लगूँ, फिर राजाओंके यहाँ की स्त्रियोंका तो कहना ही क्या ? ऐसा निश्चय करके उन्होंने सुन्दर शरीर धारण करा, वह योगी होनेके कारण चित्तमें आवे तैसा करनेको समर्थ थे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर राजाकी आज्ञासे द्वारपालने, उन सौभरि ऋषिको सकल सम्पत्तियुक्त कन्याओंके अन्तःपुर (महल) में पहुँचा दिया तब तहाँ रहने वाली पचासों कन्याओंने उन एकको ही वर लिया ॥ ४३ ॥ उस समय उस वरके निमित्त बहिनपनेके स्नेहको त्याग कर उन ऋषिमें जिनका चित्त लगा है ऐसी वह पचासों स्त्रियें, यह वर मेरे ही योग्य है तुम्हारे योग्य नहीं है, इस प्रकार परस्पर बड़ा भारी कलह करने लगीं ॥ ४४ ॥ अब उन सौभरि ऋषिके गृहस्थाश्रमका वर्णन करते हैं कि-उन ऋग्वेदी सौभरि ऋषिने, बहुमूल्य शय्या, आसन वस्त्र, भूषण, सुगन्धित पदार्थोंके उबटने, भक्षण करनेके उत्तम पदार्थ और सुगन्धित पुष्पोंकी माला आदिसे अलंकृत होकर, उन स्त्रियोंके साथ, जिसका अन्त नहीं है ऐसे तपके प्रभावसे, अमोल पात्र आदि सामग्रियें जिनमें हैं, उत्तम अलंकार धारण करे हुए स्त्री और पुरुष जिनमें हैं, और मधुरगान करने वाले पक्षी, भौंरे तथा बन्दीजन जहाँ हैं ऐसे घरोंमें और नानाप्रकारके बगीचोंमें तथा सुगन्धयुक्त कमलोंके झुण्ड जहाँ हैं ऐसे स्वच्छ जल वाले सरोवरोंमें निरन्तर क्रीड़ा करी ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ जिनके गृहस्थाश्रमके सुखको देख कर सात द्वीप वाली पृथ्वीका स्वामी और सार्वभौम सम्पदासे युक्त उस राजा मान्धाताने भी विस्मयमें होकर गर्व त्याग दिया अर्थात् इन ऋषिके ऐश्वर्यके सामने मेरा ऐश्वर्य कुछ नहीं है ऐसा माना ॥ ४७ ॥ इस प्रकार गृहमें आसक्त हुए, विषयोंकी ओरको दौड़ने वाली कान आदि इंद्रियों करके शब्द आदि विषयोंका सेवन करते हुए भी, जैसे अग्नि घृतकी बूँदोंसे तृप्त नहीं होता है तैसे तृप्त नहीं हुए ॥ ४८ ॥ वह ऋग्वेदियोंके आचार्य, सौभरि, एक समय बैठे थे सो उन्होंने, अपने मनसे ही, मत्स्यका मैथुन देखनेसे विवाह आदिके द्वारा उत्पन्न हुई तपकी हानि देखी ॥ ४९ ॥ और अपने आपसे ही कहने लगे कि-क्या कहूँ ! देखो तो सही ! तपमें निष्ठा रख कर उत्तम प्रकारका

संगं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि। एकश्चरन् रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसंगः ॥ ५१ ॥ एकस्तपस्व्यहमथांभसि मत्स्यसंगात्पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः। नांतं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२॥ एवं वसन् गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः। वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान्। सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम्। अन्वीयुस्तत्प्रभावेन अग्निं शांतमिवार्चिषः ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सौभर्याख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीशुक उवाच। मांधातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः। पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः। हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥ नर्मदा भ्रातृ-

व्रत करने वाले मेरा यह कैसा नाश हुआ है ? जलमें मत्स्यका मैथुन दृष्टि पड़नेसे मुझे विवाह आदि प्रपञ्च प्राप्त होकर, बहुत कालके अभ्याससे मेरा ध्यानमें लाया हुआ जो ब्रह्मस्वरूप था वह सब विस्मृत होगया ॥ ५० ॥ इस कारण मुमुक्षु पुरुष, सब प्रकारसे मनका निश्चय करके, मैथुन धर्मका आचरण करनेवाले स्त्री पुरुषोंका सहवास त्याग देय, शब्दादि विषयोंमें अपनी इन्द्रियोंको प्रवृत्त न करे, इकला ही विचर कर एकान्त स्थानमें रहे, अनन्त भगवान्में अपना चित्त लगावे और यदि संगति करना ही होय तो भगवान्की उपासना करने वाले साधुओंकी सङ्गति करे ॥ ५१ ॥ विषयके सङ्गका दोष ऐसा होता है कि—मैं पहिले इकला ही तप करता था, तदनन्तर जलमें मत्स्यके मैथुनको देखनेके प्रसङ्गसे, पचास स्त्रियोंके वरनेके कारण उनका निर्वाह करने वाला मैं पचासरूप हुआ फिर उनमेंसे प्रत्येक स्त्रीके सौ सौ पुत्र होनेके कारण पुत्ररूपसे पाँच सहस्र स्वरूप वाला हुआ, और अब आगेको उनके संस्कार आदि करने वाला मैं, इस लोक और परलोकमें सुख देने वाले कर्मोंके मनोरथोंका अन्त नहीं पाता हूँ, क्योंकि—मायाके गुणोंसे मेरी बुद्धि खिंच रही है इस कारण मैं विषय भोगोंमें पुरुषार्थबुद्धि मानने वाला हुआ हूँ ५२ इस प्रकार बहुत काल पर्यन्त घरमें रहने वाले उन सौभरि ऋषिने, आगेको विरक्त होकर काम्य कर्मोंको त्याग वनमें प्रवेश करा, उस समय उनकी पतिव्रता स्त्रियोंने भी उनके पीछे २ वनको गमन करा ॥ ५३ ॥ तहाँ आत्मविचार करने वाले उन सौभरि ऋषिने, शरीरको सुखाने वाला तीव्र तप करके अपनी आहवनीय आदि अग्नियोंके साथ जीवात्माको परमात्माके विषें लय करा अर्थात् वह मुक्त होगए ५४ हे महाराज परीक्षित् ! उन सौभरिकी स्त्रियें भी, अपने पतिकी मोक्षकी प्राप्तिरूप गतिको देख कर उनके ही तपके प्रभावसे जैसे शान्त हुए अग्निमें उसकी लपटें लीन होजाती हैं तैसे ही पतिके साथ सहगमन करके मुक्त होगई ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! मांधाताके पुरुकुत्सादि तीनों पुत्रोंमें श्रेष्ठ जो अम्बरीष पुत्र उसको उसके दादा (युवनाश्व) ने पुत्ररूपसे स्वीकार कर

भिर्दत्ता पुरुकुत्साय चोरगैः । तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ २ ॥ गन्धर्वा-न्वधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् । नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥३॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् । हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबंधनः तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशंकुरिति विश्रुतः । प्राप्तश्चांडालतां शापाद् गुरोः कौशिक-तेजसा ॥ ५॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते । पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ ६ ॥ त्रैशंकवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः । यन्निमि-त्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥ सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः । वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८ ॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे

लिया था, उसके यौवनाश्व नामवाला पुत्र हुआ, तिसके हारीत पुत्र हुआ, अम्ब-रीष, यौवनाश्व और हारीत यह तीनों मान्धाताके प्रवरके प्रवर्त्तक हुए ॥ १ ॥ नाग-रूप भ्राताओंने जो अपनी नर्मदा नामवाली बहिन पुरुकुत्स राजाको दी थी वह नागराजकी आज्ञासे, नागोंके शत्रु गन्धर्वोंको मारनेके निमित्त उस पुरुकुत्सको रसातलमें लेगई थी ॥ २ ॥ उस पुरुकुत्सने वध करनेके योग्य बहुतसे गन्धर्वोंका वध करा तब प्रसन्न हुए नागराजसे उस पुरुकुत्सको 'इस, नर्मदाका पुरुकुत्सको रसातलमें लेजाना, इत्यादि आख्यानका स्मरण करनेवाले पुरुषोंको सर्पसे भय नहीं प्राप्त होगा' ऐसा वरदान प्राप्त हुआ ॥३॥ उस पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु हुआ उसका अनरण्य नामवाला पुत्र हुआ, तिसका पुत्र हर्यश्व, तिससे अरुण, तिसका निबन्धन हुआ ॥ ४ ॥ उसका पुत्र सत्यव्रत, वही त्रिशंकु इस नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसने ब्राह्मणकी कन्याको विवाह होते हुए हरलिया इस कारण क्रुद्ध हुए पिताके शापसे वह चाण्डालपनेको प्राप्त होकर भी फिर विश्वामित्रजीके तपके प्रभावसे देह सहित स्वर्गको चलागया, तदनन्तर तहाँ रहनेवाले देवताओंने उसको नीचेको मुख और ऊपरको चरण करके ढकेल दिया तब फिर विश्वामित्रजीने अपने तपो-बलसे उसको तहाँ ही स्तम्भित (अधर रुका हुआ) करदिया वह अब भी आकाशमें दृष्टि गोचर होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस त्रिशंकु * का पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ, तिस हरिश्चन्द्रके कारण परस्परके शाप + से पक्षिरूप हुए विश्वामित्र और वसिष्ठका बहुत वर्षों पर्यन्त युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ वह राजा हरिश्चन्द्र संतानरहित होनेके कारण चित्तमें खिन्न होकर नारदजीके उपदेशसे वरुणकी शरणमें गया और प्रार्थना करी

* उसके तीन शंकु (दोष) थे, क्योंकि-पिताका असंतोष, गुरुकी गौका वध और प्रोक्षण करे बिना ही पदार्थोंका भक्षण, यह तीन शंकु (काँटे) की समान उसके दुःखके हेतु थे इस कारण उसका त्रिशंकु नाम हुआ ॥

+ पहिले, विश्वामित्रने राजसूय यज्ञकी दक्षिणाके मिषसे राजा हरिश्चन्द्रका सर्वस्व हरकर उसको दुःख दिया था, यह सुनकर क्रोधमें भरे हुए राजाके कुलपुरोहित वसिष्ठजीने विश्वामित्रको तू आडिनामवाला पक्षी होजा ऐसा शाप दिया, तब विश्वामित्रजीने भी वसिष्ठजीको तू बक (बगुला) होजा यह शाप दिया, तदनन्तर उन दोनों ऋषियोंका पक्षीरूपसे बहुत वर्षों पर्यन्त युद्ध हुआ ॥

इति। तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥ जातः सुतो ह्यनेनांग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत्। यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्। दंताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११ ॥ जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्। यदा पतंत्यस्य दंता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२ ॥ पशोर्निपतिता दंता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्। यदा पशो पुनर्दंता जायंतेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥ पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्। सान्नाहिको यदा राजन् राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयंत्रितचेतसा। कालं वंचयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम्। प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६ ॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम्। रोहितो ग्राममेयाय तमिंद्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः। रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥ एवं द्वितीये

कि-हे प्रभो ! जिस प्रकार मेरे पुत्र हो सो उद्योग करो ॥ ८ ॥ हे महाराज वरुण ! पुत्र होयगा तो उस ही पुत्ररूप पशुके द्वारा मैं तुम्हारा यजन करूँगा, ऐसा उसने प्रण करा तब वरुणने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा तब उस हरिश्चन्द्रके रोहित नाम वाला पुत्र हुआ ॥ ९ ॥ तब वरुणने राजाके समीप आकर कहा कि-हे राजन् ! तेरे पुत्र हुआ है इस कारण उसके द्वारा तू मेरा यजन कर; तब हरिश्चन्द्रने कहा कि-जब इस पशुरूप पुत्रको दश दिन होजायँगे तब यह पवित्र होयगा ॥ १० ॥ आगे को दशदिन बीतनेपर फिर उस वरुणने आकर 'यजनकर' ऐसा कहा तब हरिश्चन्द्र ने कहा कि-जब पुरुषके दाँत निकल आवेंगे तब पवित्र होगा ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस पुत्रके दाँत निकल आने पर वरुणने 'दाँत निकल आये अब यजन कर, ऐसा कहा तब हरिश्चन्द्रने कहा कि-'जब इस पुरुषपशुके प्रथमके दाँत गिरपड़ेंगे, तब पवित्र होयगा ॥ १२ ॥ दाँत गिरनेपर फिर वरुणने आकर 'पुरुषके दाँत गिर पड़े अब मेरा यजन कर' ऐसा कहा तब फिर हरिश्चन्द्रने कहा कि-जब पशुके फिर दाँत निकल आवेंगे तब पवित्र होगा ॥ १३ ॥ फिर दाँत निकलने पर उस वरुणने आकर 'फिर दाँत निकल आये अब मेरा यजन कर; ऐसा कहा तब हरिश्चन्द्रने कहा कि-हे वरुण! राजरूप पुरुष पशु कवच आदि धारण करके युद्ध करनेके योग्य होयगा तब ही वह यज्ञयागके योग्य होयगा ॥ १४ ॥ इस प्रकार पुत्रके ऊपर स्नेह करने वाले और स्नेहने जिसके चित्तको वशमें करलिया है ऐसे हरिश्चन्द्रने वह २ काल चुकादेनेके निमित्त वरुण देवकी प्रार्थना करी और वरुणने उस २ कालकी बाट देखी ॥ १५ ॥ इधर रोहितने पिताका वह कर्त्तव्य (अपनेको पशु बना कर वरुणका यजन करना) जान लिया और अपने प्राण बचानेकी इच्छासे हाथमें धनुष लेकर वह वनमें को चला गया ॥ १६ ॥ तब यज्ञ होनेके विषयमें निराश हुए वरुणने हरिश्चन्द्रको ग्रसा अर्थात् उसके पेटमें जलोदर नामक रोग उत्पन्न करा, यह वृत्तान्त उस रोहित पुत्रने वनमें ही सुनकर अपने ग्रामको आनेका विचार करा तब इन्द्रने उसको निषेध करा कि-॥ १७ ॥ हे पुत्र रोहित ! तीर्थ और क्षेत्रोंके सेवनसे पृथ्वी पर विचरना ही

तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा । अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥ षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् । उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत । ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ॥२१॥ मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः । विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥ २२ ॥ जमदग्निरभूद् ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः । तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥ २३ ॥ शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्ष्यते । सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥२४॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् । मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत् ॥२५॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ

पुण्यकारक है, घर जाकर पशुरूपसे मरना अच्छा नहीं है जब इन्द्रने उससे इस प्रकार कहा तब वह और भी एक वर्ष पर्यंत वनमें रहा ॥ १८ ॥ इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्षमें वह रोहित जब २ घरको आने लगता था तब तब इंद्र वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें उसके समीप आकर उससे तीर्थयात्रा आदि करनेको कहता था ॥ १९ ॥ तदनन्तर पिताके ऊपर उत्पन्न हुई दयाके वशमें हुए तिस रोहिताश्वने छठा वर्ष पूरा होने पर्यंत वनसे लौट कर फिर घर आनेका निश्चय करा और अपने मरणका भय दूर करनेके निमित्त वरुणके यज्ञके निमित्त भार्गव वंशमें उत्पन्न हुए अजीगर्तके तीन पुत्रोंमेंसे विचले शुनःशेफ नाम वाले पुत्रको मोल लेकर घर को आया ॥ २० ॥ और उसने पिताको अपने परिवर्त्तन (बदले) में यज्ञ करनेके निमित्त वह शुनःशेफ नामक पुरुषपशु निवेदन करके प्रणाम करा, तदनन्तर परम यशस्वी तिस राजा हरिश्चन्द्रने,पुरुषमेध यज्ञ करके वरुण आदि देवताओंका यजन करा, तदनन्तर वरुणकी कृपासे उदरके रोगसे मुक्त हुआ वह हरिश्चन्द्र, जिसकी कथा सत्पुरुषोंमें वर्णन करी गई है ऐसा हुआ उस पुरुषमेध यज्ञमें विश्वामित्र ऋषि होता नामक ऋत्विज हुए थे, आत्मतत्त्वके जानने वाले जमदग्नि ऋषि अध्वर्यु हुए थे,वसिष्ठ ऋषि ब्रह्मा हुए थे और अयास्य नामवाले ऋषि उद्गाता हुए थे,इस प्रकार पुरुषमेध यज्ञसे सन्तुष्ट हुए इंद्रने, हरिश्चन्द्रको एक सुवर्णमय रथ समर्पण करा ॥ २१-२३ ॥ उस शुनःशेफका माहात्म्य आगे विश्वामित्रके पुत्रोंकी कथाके प्रसङ्गमें मैं तुमसे कहूँगा, फिर स्त्रीसहित तिस हरिश्चन्द्रके सत्ययुक्त धैर्यको देख कर ॥ २४ ॥ परमप्रसन्न हुए विश्वामित्रने उस राजाको ज्ञानका उपदेश करा, तिस ज्ञानसे हरिश्चन्द्रकी मोक्ष होनेकी रीति कहते हैं-सकल संसारका मूल मन है और मन अन्नमय है इस कारण राजाने अन्नशब्दवाच्य पृथिवीके विषैं अपने मनकी एकता करके उस पृथ्वीकी जलमें एकता करी,उस जलकी तेजसे एकता करके उस तेजकी वायुमें एकता करी, उस वायुका आकाशमें लय करके,आकाशका अहंकार में और अहंकारका महत्तत्वमें लय करा, उस महत्तत्वके विषैं ज्ञानकलाका चिन्तवन करके उस ज्ञानकलासे आत्मस्वरूपको ढकने वाले अज्ञानको दूर करा २५।२६ तदनन्तर स्वरूपसुखके अनुभवसे उस ज्ञानकलाका भी त्याग करके राजा हरिश्चंद्र संसारबन्धनसे छूट कर, जिसका दिखा देना और तर्कना करना कठिन है ऐसे

तं महात्मनि । तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २६ ॥ हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा । अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ।२७।
इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

श्रीशुक उवाच । हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता । चम्पापुरी सुदेवोतो विजयो यस्य चात्मजः ॥१॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद् वृकस्तस्यापि बाहुकः । सोऽरि-भिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरि-ष्यती । और्वेण जानतात्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभि-र्गरो दत्तोऽन्धसा सह । सह तेनैव सञ्जातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥ सगरश्चक्र-वर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः । यस्तालजंघान्यवनान् शकान् हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः । मुण्डान् श्मश्रुधरान् कांश्चिन्मुक्तकेशार्द्ध-मुण्डितान् ॥ ६ ॥ अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् । सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् । तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः । हय-

अपने सच्चिदानन्द स्वरूपसे स्थित हुआ ॥२७॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्ध में सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ॥ * ॥ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! रोहितका पुत्र हरित, उससे चम्प हुआ उसने चम्पा नगरी बनाई, उस चम्पसे सुदेव, तिसका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ तिसका पुत्र भरुक, तिससे वृक; तिसका बाहुक हुआ, उस राजाकी भूमि शत्रुओं ने छानली तब वह अपनी स्त्रीके साथ वनमें चलागया ॥ २ ॥ वह तहां ही बूढ़ा हो कर मरणको प्राप्त होगया तब उसकी स्त्री उसके साथ परलोकगमन करती थी परन्तु यह गर्भिणी है ऐसा ज्ञानमार्गसे जाननेवाले गुरु और्व ऋषिने,उसको निषेध करा ॥ ३ ॥ फिर उसकी सपत्नियोंने, यह गर्भिणी है, ऐसा जान कर सापत्नभाव के द्वेषसे उसको अन्नके साथ विष देदिया तदनन्तर वह गर्भ उसके विषके साथ उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ इस कारण उसका 'सगर' यह नाम हुआ, यह सगर आगेको बड़ा यशस्वी चक्रवर्ती राजा हुआ,उसके पुत्रोंने समुद्रको उत्पन्न करा, जिस सगरने अपने और्व गुरुकी आज्ञासे कितने ही ताल जंघ, यवन (म्लेच्छ) शक हैहय और बर्बर राजाओंको मार डाला, कितनों हीके हाथ पैर तोड कर उनको विरूप कर दिया,कितनों ही का मुण्डन करदिया कितनों ही को दाढ़ी मूँछ धारण करनेवाला कितनों ही को खुले केश रखनेवाला और कितनों हीको अर्द्धमुण्डित करदिया॥५॥६ कितनों हीको नङ्गा करके ओढ़नेके वस्त्रसे युक्त और कितनोंहीको लँगोटी लगवा कर ओढ़नेके वस्त्रसे रहित कर दिया, उस राजा सगरने और्व ऋषिकी कही हुई रीतिसे अनेकों अश्वमेधोंके द्वारा सकल वेदरूप और सकल देवतास्वरूप जो आत्मा ईश्वर श्रीहरि तिनकी आराधना करी, उस यज्ञमें छोड़े हुए पशुरूप घोड़ेको इंद्रने हरण करलिया ॥ ७ ॥ ८ ॥ राजा सगरकी सुमति और केशिनी दो स्त्रियें थीं, उन उनमेंसे सुमतिके पुत्र बलवान् गर्वमें भरे हुए साठ सहस्र थे,उन्होंने पिताकी आज्ञा

मन्वेषमाणास्ते समंतान्न्यखनन्महीम् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलां-तिके । एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः । उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः । महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥१२॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेंद्रपुत्रा इति सत्वधामनि । कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥ यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् । भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥१४॥ योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृप तमजः । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥ असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् । जातिस्मरः पुरा संगाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् । सरय्वां

से घोड़ेको ढूँढ़ते हुए सकल पृथ्वी चारों ओरसे खोद डाली ९ उस समय उन्होंने ईशान कोणकी दिशामें कपिल मुनिके सामने घोड़ा देखा (उसको वहाँ इन्द्रने बाँध दिया था) सो–यह ऋषि ही घोड़ेको लाने वाला, पापी चोर है और अब नेत्र मूँद कर बैठ गया है, इसको मारो२ ऐसा कहनेवाले वह साठ सहस्र पुत्र, हाथोंमें आयुध उठाकर उनको मारनेको दौड़े, तब कपिल ऋषिने नेत्र खोले१०॥११तब इन्द्रने अपनी मायासे जिनके चित्त मोहित करदिये हैं और कपिलजीके अपराधसे मृतक समान हुए वह साठों सहस्र पुत्र ऋषिकी दृष्टि पडते ही अपने शरीरमेंकी अग्निसे ही एक क्षणमें जलकर भस्म होगये १२ राजा सगरके पुत्र कपिल मुनिके कोपसे भस्म हुए यह कहना ठीक नहीं है; किंतु वह अपने करेहुए अपराधसे ही भस्महुए ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि जिनका शरीर जगत्को पवित्र करनेवाला है उन शुद्ध सत्वगुणमूर्त्ति कपिल मुनिके विषैं क्रोधरूप तमोगुणका होना कैसे संभव होसकता है ? किंतु जैसे भूमिकी धूलिका संबंध निर्लेप आकाशके विषैं नहीं होसकता है तैसेही उनमें क्रोध का होना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है ॥१३॥ जिन कपिल मुनिने इस लोकमें, सांख्य–शास्त्ररूप दृढ़ नौकाका प्रचार कर रक्खा है कि–जिसके द्वारा मुमुक्षु पुरुष, मृत्युके मार्ग और दुस्तर भी संसार समुद्रको तरजाता है, उन सर्वज्ञ परमात्मारूप कपिल मुनिकी 'यह शत्रु है, यह मित्र है' इस प्रकारकी भेदबुद्धि कैसे होसकती है ? ॥ १४ ॥ राजा सगरकी केशिनी नाम वाली दूसरी स्त्री थी, उसका जो पुत्र था जिसको लोक असमञ्जस कहते थे उस असमञ्जसका अंशुमान् नामक पुत्र हुआ और वह राजा सगरका हित करनेमें तत्पर था ॥ १५ ॥ जो असमञ्जस नाम वाला कहा वह पूर्वजन्ममें योगी था और दुष्टसङ्गके कारण योगमार्गसे भ्रष्ट होकर राजाके यहाँ उत्पन्न हुआ था तथा उसको पहिले जन्मके वृत्तान्तका स्मरण था इस कारण वह इस जन्ममें दुष्ट सङ्गति न हो इस हेतुसे लोकमें अपना असमञ्जसपना (उलटा बर्ताव) दिखाता था, अर्थात् ज्ञातिवालोंको प्रिय न लगने वाले निन्दित कर्म करता था, एक समय, सब पुरुष मुझे त्याग दें, ऐसा मनमें विचार कर लोगोंको भय देनेके निमित्त उसने तट पर खेलते हुए बालकोंको सरयूनदीमे डुब

क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयन् जनम् ॥ १७ ॥ एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै । योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥१८॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् । दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरंगान्वेषणे ययौ । पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् । अस्तौत्समाहितमनाः प्रांजलिः प्रणतो महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच । न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुद्ध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः । कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥ ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यन्त्युत वा तमश्च । यन्मायया मोहितचेतसस्त्वे विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २३ ॥ तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः । सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥ २४ ॥

दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ ऐसा करने वाले पुत्रकी ममताको छोड़ कर राजा सगरने उसको नगरसे निकलवा दिया, उसने जाते समय अपनी योगशक्तिसे सरयूमें डूबे हुए बालकोंको फिर जिसका तिसको जीवित दिखा कर वह नगरमेंसे निकल कर चला गया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! उस समय फिर घर आये हुए बालकोंको देख कर उस अयोध्या नगरमें रहने वाले सब ही लोक अचरजमें होगए और राजा सगर भी उन बालकोंको आया हुआ सुन कर 'अहो ! ऐसी सामर्थ्य वाले पुत्रको मैंने वृथा निकलवा दिया ऐसा पश्चात्ताप करने लगा ॥ १९ ॥ उस राजा सगरका आज्ञा करा हुआ असमञ्जसका पुत्र अंशुमान्, घोड़ेको ढूंढनेके निमित्त निकला, चचाओंकी खोदी हुई भूमिके मार्गसे जाते जाते उसने भस्मके समीपमें घोड़ा देखा ॥ २० ॥ तैसे ही वैठे हुए भगवान्के अवतार कपिल मुनिको देख कर उनको नमस्कार करा और हाथ जोड़ कर, विवेकवान् और एकाग्रचित्त वह अंशुमान्, उनकी स्तुति करने लगा ॥ २१ ॥ अंशुमान्ने कहा कि-हे भगवन् ! ब्रह्माजी भी अपनेसे श्रेष्ठ तुम परमेश्वरको अब भी समाधि लगा कर प्रत्यक्ष नहीं देखते हैं और अनुमान आदि शास्त्रकी युक्तियोंसे परोक्ष करके भी उत्तम प्रकारसे नहीं जानते हैं फिर उनसे अनन्तर इधरके तथा उनके मन, शरीर, बुद्धि और सत्व, आदि गुणोंके कार्यों करके नानाप्रकारसे उत्पन्न करे हुए देवता, तिर्यक्, मनुष्य आदिकी सृष्टिमें उत्पन्न करे हुए जो हम अज्ञानी सो तुम्हें जाननेको कैसे समर्थ होसकते हैं ? २२ जो देहधारी प्राणी हैं वह तुम्हारी मायासे मोहितचित्त और त्रिगुणमयी बुद्धिके वशीभूत होकर बाहरी विषयोंके ही ज्ञान वाले होकर केवल जाग्रत् स्वप्नमेंके विषयोंको वा सुषुप्तिमेंके अज्ञानको ही देखते हैं परन्तु अपनेमें अन्तर्यामी रूपसे रहने वाले तुम्हें नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ ऐसे आपकी मायासे मूढ़ हुआ मैं, ब्रह्मादिकोंको भी कठिनसे जाननेमें आने वाले तुम्हारे स्वरूपका विचार कैसे करूँ ? क्योंकि—तुम शुद्ध ज्ञान मूर्त्ति होनेके कारण ज्ञानके विषय नहीं हो और जिनकी मायाके गुणोंसे उत्पन्न हुए भेद तथा मोह यह जिनके अपने अनुभवसे ही नष्ट होगए हैं ऐसे सनन्दनादि ऋषियोंके ही

प्रशांतमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् । ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु । भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रांतचेतसः ॥२६॥ अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः । मोहपाशो दृढच्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः । अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव । इमे च पितरो दग्धा गङ्गाऽम्भोऽर्हंति नेतरत् ॥ २९ ॥ तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् । सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३० ॥ राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः । और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सगरोपाख्याने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

चिन्तवन करने योग्य तुम्हारा स्वरूप है, फिर तुम्हारी मायाके गुणोंसे तिरस्कार करा हुआ मैं तुम्हारा स्वरूप जाननेको कैसे समर्थ होसकता हूँ ? ॥२४॥ इस कारण हे अतिशान्तस्वरूप देव ! जिन तुमसे मायाके सत्व आदि गुण, विश्वकी सृष्टि आदि कर्म और ब्रह्मादिक स्वरूप उत्पन्न हुए हैं ऐसे कार्यकारणरूप, स्थूल सूक्ष्म उपाधियोंसे रहित, देव मनुष्य आदि नामरूपोंसे रहित और ज्ञानका उपदेश करनेके निमित्त शुद्ध सत्वगुणी मूर्त्ति धारण करने वाले तुम पुराण पुरुषको हम केवल नमस्कार करते हैं ॥ २५ ॥ हे प्रभो ! यह सब लोक, विषयोंकी अभिलाषा, लोभ, ईर्षा और अविवेकसे मोहित चित्त होते हुए, तुम्हारी मायाके रचे हुए इस लोकमें घर स्त्री आदिकोंमें सत्यता मान कर आसक्त होरहे हैं ॥ २६ ॥ हे सर्वभूतात्मन् भगवन् ! आज तुम्हारी कृपासे ही प्राप्त हुए तुम्हारे दर्शनसे, विषयवासना कर्म और इंद्रियोंके आश्रय हमारी, मोहरूप दृढ़पाशी कट गई है अर्थात् तुम्हारे अनुग्रहसे मैं कृतार्थ हूँ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार जिनका प्रभाव वर्णन करा है ऐसे वह सर्वज्ञ कपिल मुनि, उस अंशुमान्के ऊपर बुद्धिसे अनुग्रह करके इस प्रकार कहने लगे ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे पुत्र ! यह घोड़ा तेरे पितामह (राजा सगर) का यज्ञपशु है, इसको तू लेजा, यह भस्म हुए तेरे चचा गङ्गाजलके ही योग्य हैं और किसीके नहीं ।अर्थात् यहाँ गङ्गाके आने पर उसके जलसे इनका उद्धार होयगा और किसी भी प्रकारसे नहीं होयगा ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार कहने वाले उन कपिल महामुनिकी प्रदक्षिणा करके मस्तक नवाकर करे हुए प्रणामसे प्रसन्न करके वह अंशुमान् घोड़ेको ले आया तदनन्तर राजा सगरने उस पशुके द्वारा शेष रहे हुए यज्ञको समाप्त करा ॥ ३० ॥ तदनन्तर इस लोकमेंके और परलोकमेंके भोगोंकी इच्छाके विषयमें निःस्पृह और अविद्यारूप बन्धनसे रहित वह राजा सगर उस अंशुमान्को राज्य पर स्थापन करके और्व ऋषिके कहे हुए योगकी रीतिसे सर्वोत्तमगतिको (मोक्षको) प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

श्रीशुक उवाच । अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया । कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् । भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत्तपः ॥ २ ॥ दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले । अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥ किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजंत्यघम् । मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिंत्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच । साधवो न्यासिनः शांता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः । हरंत्यघं तेऽङ्गसंगात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥६॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् । यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तंतुषु ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् । कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥८॥ तथेति राज्ञाऽभिहितं सर्वलोकहितः

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! जिस प्रकार राजा सगरने पोतेको राज्य देकर तप करा तैसे ही अंशुमान्ने भी अपने पुत्रको राज्य देकर बहुत काल पर्यन्त तप करा तथापि वह गङ्गाको भूमि पर लानेको समर्थ नहीं हुआ, तदनन्तर काल वश आप भी मरणको प्राप्त होगया ॥ १ ॥ उस अंशुमान्का पुत्र दिलीप हुआ, वह भी तैसे ही अपने पुत्रको राज्य देकर तप करके गङ्गाको लानेमें असमर्थ होता हुआ मृत्युको प्राप्त होगया, तिसका पुत्र भगीरथ हुआ, उसने भी पुत्रको राज्य देकर गङ्गाको लानेके निमित्त बड़ा भारी तप करा ॥ २ ॥ उस तपसे प्रसन्न हुई गङ्गाने, राजाको अपना दर्शन दिया और मैं तुझे दर्शन देनेके निमित्त आई हूँ, ऐसा उसके कहनेपर राजा भगीरथने उसको प्रणाम करके प्रार्थना करी कि-तू मेरे पूर्वपुरुषाओंका उद्धार करनेके निमित्त भूमि पर आओ ॥ ३ ॥ तब गङ्गाने कहा कि-हे राजन् ! स्वर्गसे भूमि पर गिरने वाली मेरे वेगको कौन धारण करेगा ? यदि वेगको धारण करने वाला नहीं होयगा तो मैं भूमिको फोड़ कर पातालमें चली जाऊँगी ॥ ४ ॥ और मैं भूमि पर आऊँगी भी नहीं, क्योंकि-भूमि परके प्राणी अपने करे हुए पाप मेरेमें स्नान आदि करके धोवेंगे उन पापोंको मैं कहाँ धोऊँगी ? हे राजन् ! इसको तू विचार कर देख ॥ ५ ॥ भगीरथने कहा कि—हे मातः ! विषयवासनाओंको छोड़ने वाले, शान्त, ब्रह्मनिष्ठ और लोकोंको पवित्र करने वाले सत्पुरुष, तेरे प्रवाहमें स्नान आदि करके अपने अङ्गके स्पर्शसे तेरे में जो पाप होंगे उनको दूर करेंगे, क्योंकि-उनके हृदयमें पातकोंका नाश करने वाले श्रीहरि विद्यमान हैं ॥ ६ ॥ हे गङ्गे ! जिनके विषैं यह जगत् सूधे और आड़े तन्तुओंमें बुने हुए वस्त्रकी समान ओतप्रोत है वह सकल प्राणियोंके आत्मा रुद्र तेरे वेगको धारण करेंगे ॥ ७ ॥ ऐसा गङ्गासे कह कर और उसकी रुचि उत्पन्न कर उस राजाने तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न करा, हे राजन् ! उस तपस्याके प्रभावसे थोड़े ही कालमें शिवजी प्रसन्न होगए ॥ ८ ॥ तब भगीरथके गङ्गाका वेग धारण करनेके निमित्त उनसे प्रार्थना करने पर, सब लोकोंका हित करने वाले उन शिवजीने, तथास्तु (बहुत अच्छा ऐसा ही होगा) यह कहकर सावधानचित्तसे, जिसका जल श्रीहरिके चरणसे

शिवः । दध्रावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥९॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवन-पावनीम् । यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥ रथेन वायुवेगेन प्रयान्त-मनुधावती । देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥११॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि । सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥१२॥ भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः । किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः १३ न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् । अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः संनिवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः । त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो याता स्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् । सिन्धुद्वीपस्तत-स्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥ ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् । दत्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्ती-पतिर्नृपः । आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् । वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदन-

पवित्र है ऐसी तिस गङ्गाको अपने मस्तकपर धारण करा ९, तदनन्तर वह राजर्षि भगीरथ, अपने पूर्वपुरुषोंके देह जहाँ भस्महुए पड़े थे तहाँ तिस जगत्पावनी गङ्गा को लेगया ॥१०॥ उस समय वायुकी समान वेगवाले रथमें बैठकर जानेवाले भगीरथके पीछे जानेवाली और मार्गमेंके देशोंको पवित्र करनेवाली तिस गङ्गाने, भस्मरूपहुए सगर राजाके पुत्रोंको सींचदिया ॥ ११ ॥ जिस गङ्गाके जलका स्पर्शमात्र करनेसे कपिल महामुनिके विषैं करेहुए अपराधसे जलकर भस्म हुए भी सगरराजाके पुत्र, केवल देहकी भस्मके सम्बन्धसे ही यदि स्वर्गको चलेगए तो श्रद्धासे निरन्तर उसका सेवन करनेवालोंको प्राप्त होनेवाले फलका तो कहना ही क्या १२ अर्थात् भस्मरूप हुए देहके सङ्गसे ही यदि सगरके पुत्र स्वर्गको चले गये तो गङ्गा के स्नान पान आदिका नियम धारण करनेवाले जो पुरुष, गङ्गादेवीका श्रद्धाके साथ पूजा, स्तुति नमस्कार, आदि करके पूजन करते हैं वह स्वर्गको जायँगे इस का तो कहना ही क्या ? ॥ १३ ॥ हे राजन् ! गङ्गाका जो यहाँ स्वर्गको पहुँचानेका माहात्म्य कहा है सो कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि—वह गङ्गा अनंतरूपी भगवान्के चरण कमलसे उत्पन्न होनेके कारण संसार बन्धनको भी दूर कर देनेवाली है ॥ १४ ॥ वह अनन्त भगवान् ऐसे हैं कि-श्रद्धाके साथ जिनके विषैं मनको स्थापन करके शुद्ध चित्त हुए मुनि, जिसको त्यागना कठिन है ऐसे भी देहके संबन्धको त्यागकर तत्काल भगवान्के स्वरूपको प्राप्त होगये हैं ॥ १५ ॥ भगीरथसे श्रुत नामक सुत हुआ, उस श्रुतका नाभ नामवाला दूसरा सुत हुआ, तदनन्तर उससे सिन्धुद्वीप हुआ, तिससे अयुतायु हुआ ॥ १६ ॥ उससे ऋतुपर्ण हुआ वह राजा नलका मित्र था, उसने राजा नलको द्यूतशास्त्र (जुआ खेलनेकी रीति) का गुप्त भेद सिखाकर उससे घोड़ोंकी शिक्षा देनेकी विद्या पायी, उस ऋतुपर्णका सुत सर्वकाम हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस सर्वकामसे सुदास हुआ उसका पुत्र मदयन्तीका पति, जिसको मित्रसह और कल्माषपाद कहते हैं वह हुआ, वह एक समय वशिष्ठजीके शापसे बारह वर्ष पर्यन्त राक्षस रहा था, उस समय आने करे

पत्यः स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ राजोवाच । किन्निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः । एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच । सौदासो मृगयां कश्चिच्चरन् रक्षो जघान ह । मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे । गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥ परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा । राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥ रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् । सोऽप्यपोञ्जलिमादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥२३॥ वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ । दिशः खमवनीं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥ राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः । व्यवायकाले ददृशे वनौकौ दंपती द्विजौ ॥२५॥ क्षुधार्त्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्या-

---

हुए कर्मसे आगेको वह औरसपुत्रसे हीन हुआ ॥ १८ ॥ राजाने कहा कि--उस उदारचित्त सौदास राजाको गुरुका शाप किस निमित्तसे हुआ ? उस शापका कारण जाननेको मैं इच्छा करता हूँ, वह यदि गुप्त रखनेयोग्य न होय तो अर्थात् कहने योग्य होय तो कहिये ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-राजा सौदास, एक समय मृगया करनेके निमित्त (शिकार खेलनेको) वनमें विचर रहा था सो उस ने एक राक्षसका वध करा और उसके भ्राताको छोड़ दिया तब वह भागकर चला गया, तदनन्तर, राजाने मेरे भ्राताको मार डाला है ऐसा मनमें विचार कर राजा का कुछ अनिष्ट करनेकी इच्छासे वह रसोइयेका रूप धारण करके राजाके घरगया और उसने तहाँ एक समय भोजनकी इच्छा करने वाले गुरु वसिष्ठजीको मनुष्यका मांस पका कर परोस दिया २०॥२१ तदनन्तर उन सर्वज्ञ वसिष्ठजीने,परोसा हुआ नरमांस अभक्ष्य है, ऐसा तत्काल जान लिया और क्रुद्ध होकर राजाको यह शाप दिया कि-नरमांस परोसनेके दोषसे तू राक्षस ही होयगा ॥ २२ ॥ तदनन्तर वह नरमांस परोसना, रसोइयेका रूप धारण करनेवाले राक्षसने करा है, राजाने नहीं करा है, ऐसा जान कर वसिष्ठजीने ही अपना वाक्य असत्य न होनेके निमित्त, 'यह शाप बारह वर्ष पर्यंत ही रहेगा' ऐसा कह दिया, उस समय वह राजा भी अञ्जुलिमें जल लेकर गुरु वसिष्ठजीको शाप देनेको उद्यत हुआ तब, जो शाप हो गया है वह दूर नहीं होगा तथा गुरुका अपमान करनेसे दूसरा एक और अनर्थ होजायगा, ऐसा जानने वाली उसकी मदयन्ती नाम वाली स्त्रीने, 'गुरुको शाप न दो, ऐसा राजासे कहा तब उस राजाने, दिशा आकाश, पृथ्वी आदि सब स्थल जीवमय हैं, ऐसा देख कर शाप देनेको लिया हुआ जल, तहाँ छोड़ने पर उनका नाश होगा ऐसी शंकासे वह तीक्ष्ण जल अपने ही चरण पर डाल लिया ॥२४॥ इस प्रकार मित्ररूप स्त्रीका वचन सहने (मानने) के कारण मित्रसह नाम वाला वह राजा फिर गुरुके शापसे राक्षसभावको प्राप्त होकर, चरणमें कालेपनको प्राप्त हुआ तदनन्तर राक्षसकी समान वनमें विचरते हुए उसने एक समय वनमें रहने वाले एक ब्राह्मण और उसकी स्त्री इन दोनोंको सङ्गम करते समय देखा ॥२५॥ सो तब ही भूँखसे व्याकुल हुए उस राक्षसरूप राजाने, ब्राह्मणको भक्षण करनेके निमित्त

हाकृतार्थवत्। न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥२६॥ मदयन्त्याः पति वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि। देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः। तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८॥ एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः। आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम्। सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो। कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः। कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सम्मतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः। न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ३२ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत्। व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम्। शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४ ॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया। तवापि

पकड़ लिया तब उस ब्राह्मणकी स्त्री अनाथकी समान कहने लगी कि-हे राजन्! तू साक्षात् राक्षस कुलमें उत्पन्न हुआ नहीं है किन्तु तू इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुए राजाओंमें श्रेष्ठ, महारथी, मदयन्ती पतिव्रताका पति है, इस कारण हे वीर! तू ब्राह्मणका वधरूप पाप करनेको योग्य नहीं है ॥ २६ ॥ किन्तु संतानकी इच्छा करने वाली मुझे जिसका मैथुन कार्य पूर्ण नहीं हुआ है ऐसा यह पति दे, हे राजन्! यह मनुष्य शरीर जीवके सकल पुरुषार्थोंको सिद्ध करदेने वाला है ॥ २७ ॥ इसकारण हे वीर! इस ब्राह्मणके शरीरका वध करना, सकल ही पुरुषार्थोंका वध करना है ऐसा शास्त्रमें कहा है, तिस पर यह ब्राह्मण तो विद्वान् है तथा तप,शील और गुणों से युक्त है ॥२८॥ और सकल प्राणियोंमें रहतेहुए भी अहंकार आदि गुणोंके कार्यों से ढकेहुए महापुरुष नामक परब्रह्मकी,यह सकल प्राणियोंके आत्मा हैं,ऐसी भावना से आराधना करनेकी इच्छा करने वाला है ॥ २९ ॥ हे धर्मज्ञ विभो! ऐसा यह ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ, तुझ राजर्षिके हाथसे वध होनेको कैसे योग्य होगा? किन्तु जैसे पुत्र पिताके हाथसे वध होनेके योग्य नहीं होता है तैसेही यह तुमसे वधको प्राप्त होने के योग्य नहीं है ॥ ३० ॥ और साधुओंका माननीय तू तो, मुक्तिके साधनमें तत्पर अध्ययन आदि युक्त, और वेदके अर्थका उपदेश करनेको समर्थ ऐसे इस ब्राह्मणके वध करनेका मनमें भी कैसे विचार करता है? किन्तु जैसे गौका वध करनेका मन में विचार करना भी अयोग्य है तसे ही यह भी तुझे अयोग्य है ॥ ३१ ॥ जिसके बिना मैं क्षणभर भी जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करती हूँ ऐसा यह ब्राह्मण, यदि तुझे भक्षण ही करना है तो मृतक समान हुई मुझे पहिले भक्षण करे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार उस स्त्रीके दीनताके साथ भाषण करने पर और अनाथकी समान रोनेपर, शापसे मोहित हुए राजा सौदासने, जैसे व्याघ्र पशुको भक्षण करता है तैसे उस ब्राह्मणको भक्षण कर लिया ॥ ३३ ॥ उस समय, गर्भाधान करने वाले मेरे पतिको राक्षसने भक्षण कर लिया ऐसा देख कर, अपने निमित्त शोक करने वाली उस ब्राह्मणीने, क्रोधमें भर कर उस राजाको ऐसा शाप दिया कि-॥३४॥ अरे पापाचरण

मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥३५॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा । तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्राप्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दांते मैथुनाय समुद्यतः । विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥ तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजः । वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥ सा वै सप्तसमा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत । जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥३९॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः । नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥४०॥ ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः । राजा विश्वसहो यस्य खट्वांगश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः । मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं सन्दधे मनः ॥ ४२ ॥ न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः । न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥४३॥ न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते

करने वाले दुर्बुद्धि राजन् ! तूने जो मेरे कामदेवसे आर्त्त पतिको भक्षण करा है इससे तुझे भी गर्भाधानसे ही मैंने मृत्यु दिखाया है अर्थात् जब तू मेरे पतिकी समान अपनी स्त्रीके विषें गर्भाधान करनेको उद्यत होगा तबही तेरा मरण होगा३५ इस प्रकार राजा मित्रसहको शाप देकर पतिलोकको जानेकी इच्छा करनेवाली वह स्त्री, पतिकी हड्डियें जलतेहुए अग्निमें डालकर और उसमें ही अपने शरीरका गिरा कर सहगमनकी विधिसे पतिको प्राप्तहुए लोकको चली गई ॥३६॥ तदनन्तर बारह वर्ष होते ही शापसे छूटा हुआ वह राजा सौदास जब मैथुन करनेको उद्यत हुआ तब उसकी स्त्री मदयन्तीने ब्राह्मणीका शाप जान कर उसको निषेध करा ॥३७॥ उस दिनसे उसने स्त्री-संभोगका सुख त्याग दिया; इस प्रकार ब्राह्मणका भक्षण करनेके कारण होने वाले शापसे सन्तानहीन हुआ तब सन्तान उत्पन्न करनेके निमित्त उसके प्रार्थना करे हुए मदयन्तीके विषें गर्भ स्थापन करा ॥ ३८ ॥ उसने सात वर्ष पर्यंत गर्भको धारण करा तो भी पुत्र नहीं हुआ तब वसिष्ठजीने ही उस का पेट पत्थरसे फोड़ दिया; इस निमित्तसे उत्पन्न हुए उस पुत्रका अश्मक नाम पड़ा ॥ ३९ ॥ अश्मकसे मूलक हुआ, उसकी स्त्रियोंने (जब परशुरामने पृथिवीको क्षत्रियहीन कर दिया उस समय) कवचकी समान चारों ओरसे रक्षा करी इस कारण उसका नारीकवच नाम पड़ा; फिर वह क्षत्रियकुलका मूल हुआ इसकारण मूलक नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ४० ॥ उससे दशरथ हुए; उनसे ऐड़विड़ पुत्र हुआ, उससे राजा विश्वसह हुआ, तिससे सार्वभौम खट्वाङ्ग हुआ ॥४१॥ उस खट्वांग राजाको युद्धमें जीतना शत्रुओंको कठिन था इस कारण देवताओंने अपनी सहायता करनेको उसकी प्रार्थना करी तब उसने दैत्योंका वध करा, तदनन्तर प्रसन्न हुए देवताओंने 'वर माँग' ऐसा कहा, सो वह कहनेलगा कि तुम पहिले यह बताओ कि-मेरी आयु कितनी है; फिर उसके अनुसार ही वर माँगूँगा, तब देवताओंने कहा कि-तेरी आयु तो भूतल पर दो घड़ीकी ही है, यह जानकर देवताओंके दिये हुए विमानमें बैठकर वह राजा, अपने नगरमें आया और उसने अपना मन परमेश्वर में लगाया ॥ ४२ ॥ उस समय उसने यह निश्चय करा कि-कुलपूज्य ब्राह्मणकुलकी

क्वचित् । न पश्याम्युत्तमश्लोकादन्यत्किंचन यस्त्वहम् ॥४४॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः । न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् । न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥४६॥ अथेशमायारचितेषु संगं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु । रूढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया । हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् । भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीशुक उवाच । खट्वांगाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः । अजस्ततो महाराज तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥ तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः । अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः । रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ २ ॥

अपेक्षा मुझे पृथ्वी, राज्य, सम्पदा, स्त्री, पुत्र और यह प्राण भी अधिक प्रिय नहीं प्रतीत होते हैं ॥४३॥ मेरी बुद्धि बालक अवस्थामें ही संकटके समयभी कभी अधर्ममें नहीं लगी, तैसे ही उत्तमकीर्त्ति भगवान्‌की अपेक्षा कोई भी दूसरी वस्तु सत्य हो ऐसा मैंने देखा नहीं ४४ यद्यपि त्रिभुवनपति देवताओंने, मुझे इच्छित वस्तु माँगने का वरदिया है तथापि प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान्‌के विषैं मन लगानेवाला मैं, उस भगवद्भजनमें विघ्नरूप वरको मैं नहीं मागूँगा४५क्योंकि-जो सत्वगुणी प्रसिद्ध हैं वह देवता भी, इंद्रियें और बुद्धिके विषयोंमें आसक्त होनेके कारण, तथा तमोगुणी अपने हृदयमें निरंतर रहनेवाले, प्रिय आत्मा भगवान्‌को नहीं जानते हैं फिर और रजोगुणी स्वभाववाले मनुष्य आदि नहीं जानते इसका तो कहना ही क्या? ४६इसकारण स्वभावसे अपनेमें चिकटे हुए और ईश्वरको मायाके रचे हुए गन्धर्व नगरकी समान विषयोंमेंके सङ्गको, विश्वकर्त्ता भगवान्‌की भावनासे त्यागकर उनही भगवान्‌की शरण जाता हूँ ४७ इसप्रकार श्रीनारायणने अपनेमें खैंचीहुई बुद्धिसे करा है निश्चय जिसने ऐसा वह राजा खट्वाङ्ग, देह आदिमेंके अभिमानरूप अज्ञानको त्याग कर आत्मस्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ४८ ॥ जो वेदान्तमें परब्रह्म नामसे प्रसिद्ध है, इन्द्रियोंका अगोचर होनेके कारण जिसकी शून्यकी समान कल्पना करते हैं परन्तु वास्तवमें जो सत्स्वरूप है और भगवद्भक्त जिसको भगवान् वासुदेव कहते हैं तिस आत्मस्वरूपको वह राजा खट्वाङ्ग प्राप्त होगया ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ ❋ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! खट्वाङ्गसे दीर्घबाहु हुआ, उससे महाकीर्त्तिमान् रघु हुआ, तिससे महाराज अज हुए, तिनसे दशरथ हुए ॥ १ ॥ उन दशरथजीके भी, देवताओंके प्रार्थना करे हुए साक्षात् ब्रह्ममय यह श्रीहरि भगवान् अपने अंशोंके अंश करके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन नामों करके चार प्रकारके पुत्ररूपको प्राप्त हुए ॥ २ ॥ हे राजन्! यद्यपि उन सीतापति रामचन्द्रजी का चरित्र, परमार्थको जानने वाले वाल्मीकि आदि ऋषियोंने, तुमसे बहुत कुछ

तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥३॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्। वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोपितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः। पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैरृतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयम्वरगृहे त्रिशतोपनीतम्। आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥६॥ जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्। मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥७॥ यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य

वर्णन करा है और तुमने भी वारम्वार सुना है तथापि मैं भी संक्षेपसे कहता हूँ उसको सुनो ॥ ३ ॥ जो दशरथजीके वाक्यको सत्य करनेके निमित्त राज्यको त्याग कर, जिनको सीताजीके हाथोंका छूना भी कठिन लगता था ऐसे कमल समान अतिसुकुमार चरणोंसे प्रत्येक वनमें विचरे, जिनका मार्गमें चलनेसे प्राप्त हुआ, श्रम, सुग्रीव और लक्ष्मणने दूर करा है और सूपनखा राक्षसीके कान नासिका काट कर विरूप करनेके कारण क्रोधमें भरी हुई उस सूपनखाने, रावणके चित्तमें सीताजीके प्राप्त होनेके विषयका लोभ उत्पन्न करके उससे सीताजीका हरण कराने पर, उन सीताजीके वियोगसे प्राप्त हुए क्रोध करके चढ़ी हुई भ्रुकुटिके आवेश करके ही जिनसे समुद्र भयभीत होगया है, तदनन्तर उस समुद्रकी प्रार्थनासे ही जिन्होंने समुद्रके ऊपर सेतु (पुल) बाँधा है और जो रावणादिदुष्टरूपी वनको जला डालनेमें अग्नि ही हैं वह कोशलदेशोंके राजा श्रीरामचन्द्रजी, हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥ इस प्रकार संक्षेपसे कहा हुआ राम-चरित्र अब विस्तारसे कहते हैं— जिन्होंने विश्वामित्र ऋषिके यज्ञमें लक्ष्मणजीके देखते हुए ही, राक्षसोंमें श्रेष्ठ मारीच आदि राक्षसोंका वध करा वह श्रीरामचन्द्रजी, हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिन श्रीरामचन्द्रजीने, सीताजीके स्वयम्वर भवनमें सब लोकोंमेंके वीरसमाजके सामने, तीन सौ उठाने वालोंके लाए हुए अत्यन्त ही भारी और परम कठोर शिवजीके धनुषको उठा कर चढ़ाया और खैंच कर, जैसे बालगजकी लीलाको करता हुआ हाथी गन्नेको बीचमेंसे तोड़ डालता है तैसे उसको बीचमें ही से तोड़ डाला ॥ ६ ॥ तदनन्तर जिन श्रीरामचन्द्रजीने, अपने योग्य गुण, स्वभाव, अवस्था, शरीर और सुन्दरतायुक्त, जिसने पहिले समुद्रमन्थनसे उत्पन्न होते समय ही वक्षःस्थलमें सत्कारके साथ स्थान पाया था उस सीता नाम वाली लक्ष्मीको धनुष तोड़ कर जीत लिया फिर अपनी अयोध्या नगरीको जातेमें, 'जिन्होंने पहिले इक्कीस वार पृथिवीको राजबीजरहित करा था वह' परशुरामजी, धनुषके टूटनेका शब्द सुन कर क्रोधमें भर कर मार्गमें आये तब उनका बढ़ा हुआ दर्प दूर करा वह श्रीरामचन्द्रजी, हमारी रक्षा करें ॥ ७ ॥ एक समय कैकेयीके ऊपर प्रसन्न हुए राजा दशरथने, कहा कि-तेरी इच्छाके अनुसार मैं दो वरदान दूँगा, फिर श्रीराम-

चापि शिरसा जगृहे सभार्यः । राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८ ॥ रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् । जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण । जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् । भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥ दग्ध्वाऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः । बुद्ध्वाऽथ वालिनिहते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्स

चन्द्रजीका यौवराज्य पद पर अभिषेक करते समय, कैकयीने भरतको राज्य और श्रीरामचन्द्रजीको वनवास यह दो वरदान माँगे, तब सत्यरूप पाशीसे बँधे हुए, स्त्रीके वशीभूत भी उन पिताकी वनवासको जानेकी आज्ञा जिन श्रीरामचन्द्रजीने बड़े सम्मानके साथ स्वीकार करी और राज्यका अधिकार, राज्यकी सम्पत्तियें, प्रेम करने वाली माता आदि सुहृद्जन और अयोध्या नगरी इनको, 'जैसे विरक्त हुआ योगी अपने प्राणोंको भी त्याग देता है तैसे' त्यागकर सीताजी सहित वनको गमन करा ॥ ८ ॥ तदनन्तर कामातुरपनेसे, सीताजीका तिरस्कार करनेको आई हुई सूपनखाका स्वरूप जिन्होंने कान नाक काट कर विरूप करा, और उसके भेजे हुए, उसके ही खर, त्रिशिर और दूषण यह भ्राता जिसमें मुख्य हैं ऐसे चौदह सहस्र राक्षसोंका वध करा वह श्रीरामचन्द्रजी, हाथमें असह्य धनुष धारण करके विचरते हुए, लोकशिक्षाके निमित्त, बड़ी कठिनतासे वनमें रहे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उस सूपनखाके मुखसे सीताजीकी कथा सुननेसे कामातुर होकर सीताजीका हरण करनेकी इच्छा करने वाले परन्तु अपनेसे भयभीत हुए रावणने अपनेको आश्रमसे बाहर करनेके निमित्त भेजे हुए मरीचको देख कर, सुवर्णके हरिणका देह धारण करने वाले मारीचने सीताजीको लोभित करके आश्रमसे बाहर लेगये हुए जिन श्रीरामचन्द्रजीने, शीघ्र जाने वाले बाणोंके द्वारा तिस मारीचका 'जैसे वीरभद्रने दक्ष प्रजापतिका वध करा था तैसे' वध करा ॥ १० ॥ तदनन्तर राक्षसोंमें अधम तिस रावणने, भेड़ियेकी समान, राम लक्ष्मणके तहाँ न होनेके समय सीताजीका हरण करने पर स्त्रीके वियोगको प्राप्त हुए वह श्रीरामचन्द्रजी, स्त्रीके सङ्गी पुरुषोंको इस प्रकारकी परिणाममें दुःख प्राप्त कराने वाली गति प्राप्त होती है ऐसा दिखाते हुए दुःखित पुरुषकी समान लक्ष्मणजी सहित वनमें विचरने लगे ॥ ११ ॥ तब उन श्रीरामचन्द्रजीने, अपनी प्रीतिके निमित्त रावणके साथ करे हुए युद्धरूप कर्मसे, जिसके दाह आदि कर्म नष्ट होगये हैं ऐसे जटायु नामक पक्षीका पुत्रधर्मकी समान दाह करके, तदनन्तर अपने पकड़नेको भुजा फैलाने वाले कबन्ध राक्षसका वध करा फिर वानरोंके साथ मित्रता करके, तदनन्तर वालिका वध करने पर, वानरोंसे सीताजीकी सुध जान कर, ब्रह्मा और रुद्रने जिनके चरणोंका पूजन करा है तथापि मनुष्यलीलाको स्वीकार करने वाले

मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥ यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रांतनक्रमकरो भयगीर्णघोषः । सिंधुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविंदमुपगम्य बभाष एतत् न त्वां वयं जडधियोनुविदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् । यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीरपत्नीम् । बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥ बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपींद्रकरकंपितभूरुहांगैः । सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणदृशाविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥ सा वानरेंद्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका । निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥ रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुंभकुंभधूम्राक्षदुर्मुखसुरांतनरांतकादीन् ।

वह श्रीरामचन्द्रजी, श्रेष्ठ वानरोंकी सेनाके साथ समुद्रके तट पर पहुचे ॥ १२ ॥ तहाँ श्रीरामचन्द्रजीने तीन रात्रि उपवास करके समुद्रकी बाट देखी तो भी जब श्रीरामचन्द्रजीके समीप नहीं आया तब जिन श्रीरामचन्द्रजीकी क्रोधलीलासे फैले हुए नेत्रोंके कटाक्षपात करके जिसमें नाके और मगर भयभीत हुए हैं ऐसा समुद्र, भयसे अपना शब्द बन्द करके पुरुषरूप धार मस्तक पर पूजाकी सामग्री रख कर श्रीरामचन्द्रजीके चरण कमलके समीप आ इस प्रकार कहने लगा कि—॥ १३ ॥ हे पूर्णब्रह्मरूप श्रीरामचन्द्रजी ! इतने समय पर्यन्त जडबुद्धि मैंने तुम्हें जाना नहीं, अब ही जाना है कि-तुम्हारे सत्वगुणसे देवता, रजोगुणसे प्रजापति और तमोगुणसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं ऐसे तुम तीनों गुणोंके नियन्ता, निर्विकार, आदिपुरुष और सकल जगत्के ईश्वर हो ॥ १४ ॥ हे वीर श्रीरामचन्द्रजी ! जैसे तुम्हारी इच्छा होय तैसे तुम मेरे जलके ऊपरको होकर लङ्कामें चले जाओ और त्रिलोकीको रुलाने वाले तथा विश्रवा ऋषिके मलकी समान रावणका वध करके अपनी स्त्री (सीताजी) को प्राप्त कर लो, प्रथम, अपने यशका विस्तार करनेके निमित्त यहाँ मेरे जलके ऊपर सेतु बाँधो, तब दिग्विजयी राजे उस सेतुके समीप आकर तुम्हारे दुष्कर कर्मको देख तिस तुम्हारे यशको गावेंगे ॥ १५ ॥ तदनन्तर उस समुद्रके कहनेको स्वीकार करके श्रीरामचन्द्रजीने, श्रेष्ठ वानरोंके हाथसे कम्पायमान हुई शाखा आदिकोंसे युक्त अनेकों प्रकारके पर्वतोंके शिखरोंसे उस समुद्र के ऊपर सेतु बाँध कर विभीषणके दिखाये हुए मार्गसे सुग्रीव नील और हनुमान् यह जिसमें मुख्य हैं ऐसी वानरोंकी सेनाके साथ लंकामें प्रवेश करा, वह लंका पहिले हनुमान्जीकी जलाई हुई थी ॥ १६ ॥ तदनन्तर वह लंका, हाथियोंके समूहों से बघोली हुई नदीकी समान, श्रेष्ठ वानरोंकी सेनासे, जिसमेंके क्रीडाके स्थान, अन्न आदिके स्थान, धनके भण्डार, मन्दिरोंके द्वार, नगरके द्वार, सभाओंके स्थान, छज्जे और पक्षियोंकी रक्षाके निमित्त बनाये हुए घर यह सब रोकलिये गये हैं और जिसमें वेदी आदि स्थान, ध्वजा, सुवर्णके कलश और चौराहे तोड़ फोड़ डालेगये हैं ऐसी अस्तव्यस्त होगई॥ १७॥ तब रावणने उस श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाकी करतूत

पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकंपनादीन्सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥१८॥ तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम । सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोगात् ॥१९॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः । जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥२०॥ रक्षःपति स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् । स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥ रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कान्ता समक्षमसताऽपहृता श्ववत्ते । त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन्धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद । सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥२३॥ ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः । मन्दोदर्या समं तस्मिन्प्ररुदन्त्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥ स्वान्स्वा-

देखकर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, देवान्तक, नरान्तक आदि, इन्द्रजित् (मेघनाद) नामक पुत्र, प्रहस्त अतिकाय और विकम्पन आदि सकल राक्षसोंको श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेके निमित्त भेजकर अन्तमें कुम्भकर्णको भी भेज दिया ॥ १८ ॥ तब तरवार, शूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण तोमर खड्ग इन शस्त्रोंसे दुर्भेद्य उस राक्षसोंकी सेनाके साथ युद्ध करनेके निमित्त श्रीरामचन्द्रजी, सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान्, गन्धमाद, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पनस आदिके साथ चले ॥ १९ ॥ वह श्रीरामचन्द्रजीके अङ्गदादि सकल सेनापति, हाथी, पैदल, रथ, और सवारों सहित तिस रावणकी सेनाके साथ, द्वन्द्वरीतिसे जुटकर, सीताके स्पर्शसे हतभाग्य हुआ रावण जिनका स्वामी है, तिन राक्षसोंके ऊपर वृक्ष, पर्वत, गदा और बाण आदिका प्रहार करनेलगे ॥२०॥ तदनन्तर राक्षसपति रावण, अपनी सेनाका नाश हुआ ऐसा देखकर क्रुद्ध होता हुआ पुष्पक विमानमें बैठकर श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेको चला और इधर मातलि नामवाला इंद्रका सारथि इंद्रका स्वर्गमेंका रथ लाया, तब उस तेजके पुञ्जरूप रथ पर विराजमान होने वाले श्रीरामचंद्रजीके ऊपर वह रावण, छुरेकी समान तीखी धारवाले बाणोंका प्रहार करनेलगा ॥ २१ ॥ उस रावणसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि–हे राक्षसोंके विष्टारूप रावण ! जैसे कुत्ता घरके स्वामीके न होने पर घरमें घुसकर एकाद वस्तु उठाकर लेजाता है तैसे जो तुझ दुष्टने, मेरे पीछे सीताको हरलिया है तिससे जैसे अलंघ्य पराक्रमी काल अधर्म करनेवाले पुरुषको उसका फल देता है तैसे ही तुझ निर्लज्ज को मैं आज निन्दित कर्मका फल देता हूँ ॥ २२ ॥ ऐसी निंदा करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण छोड़ा, उस बाणने वज्रकी समान कठोर भी उस रावणके हृदयको वेध दिया, तब वह रावण दशों मुखोंसे रुधिरकी वमन करता हुआ, तहाँके लोकोंके हाहाकार करते हुए, जैसे पुण्यवान् पुरुष पुण्य क्षीण होते ही स्वर्गसे नीचे गिर पड़ता है तैसे पुष्पक विमानमेंसे नीचे गिर पड़ा ।२३। तदनन्तर रावणकी मन्दोदरी नामक स्त्रीके साथ रोनेवाली सहस्रों राक्षसियें लंका

न्वंधूनपरिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् । रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना॥ हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण । कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥ नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः । तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥ कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन । देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच । स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेंद्रानुमोदितः । पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे । क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकंपत । आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः । विभीषणाय भगवान्दत्वा रक्षोगणेशताम् लंकामायुश्च कल्पांतं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् । अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३२ ॥ उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा । गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं

मेंसे बाहर निकल कर, जहाँ रावण पड़ा था उस स्थान पर आयीं ॥ २४ ॥ उन्होंने उस युद्धभूमिमें लक्ष्मणजीके बाणोंसे मरणको प्राप्तहुए अपने २ पतियोंको आलिङ्गन करके आप ही अपनी देहीको कूटती हुई और दुःखित होती हुई ऊँचे स्वरसे रोने लगीं ॥ २५ ॥ हे लोकोंको रुलाने वाले नाथ रावण ! हम सब ही लंकावासी लोग मरे हुओंकी समान होगये हैं,अब शत्रुओंसे पीड़ित और तुमसे रहितहुई यह लंका किसकी शरण जायगी ? ॥ २६ ॥ हे महाभाग ! कामके वशमें हुए तूने, सीताजीके तेजका प्रभाव ऐसा है यह नहीं जाना था, जिससे कि-तू इस दशाको प्राप्त हुआ है ॥ २७ ॥ हे कुलनन्दन रावण ! तूने हमें और इस लंकाको, सीताजीका हरण करके विधवा करा है,तथा अपना शरीर गृध्र पक्षियोंका भोजन करा है,और अपने जीवात्माको नरक भोगनेके योग्य करा है ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीके आज्ञा करे हुए विभीषणने, मरणको प्राप्त हुए रावण आदि अपने सब बांधवोंका पितृयज्ञकी रीतिसे जो और्ध्वदेहिक (प्रेत कर्म) कहा है सो सब करा ॥ २९ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने, अशोक वनमेंके आश्रममें शिंशिपा वृक्षकी जड़के समीप बैठी हुई, अपने वियोगके दुःखसे दुःखित दुर्बलहुई सीताको देखा ॥ ३० ॥ और पराधीन होनेके कारण दीन दीखने वाली परन्तु अपने दर्शनसे होने वाले आनन्दके कारण जिसका मुखकमल प्रफुल्लित हुआ है ऐसी उस अपनी प्रियतमा स्त्रीको देखकर उन श्रीरामचन्द्रजीने उसके ऊपर दया करी३१ और उसको पुष्पक विमानमें बैठाय कर, तदनन्तर लक्ष्मण सुग्रीव और हनुमान् जी सहित वह श्रीरामचन्द्रजी आप भी उस विमानमें बैठ उस समय राक्षसोंका आधिपत्य (स्वामीपना), कल्प पर्यंत आयु और लंकाका राज्य, यह विभीषणको देकर उसको भी साथमें लेलिया और अपने चौदह वर्षका वनवासरूप व्रत पूरा करके वह श्रीरामचन्द्रजी, अयोध्या नगरीमें पहुँचनेके निमित्त चल दिये उससमय मार्गमें इन्द्रादि लोकपालोंने,पुष्पोंकी वर्षा करके उनके विमानको ढक दिया३२॥३३ तथा ब्रह्माजी और नारद आदिकोंने, आनन्दके साथ उनके चरित्रोंका गान करा,

वल्कलांबरम् । महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ ३५ ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः । पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ ३६ ॥ नंदिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः । ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः । सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥३८॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः । पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥३९॥ पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः । पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः ॥४०॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः । रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः । तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४१ ॥ धुन्वंत उत्तरासंगान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् । उत्तराः कोशला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ४२ पादुके भरतोगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे । विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ४३ धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् । अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप

वह परमदयालु श्रीरामचन्द्रजी, मेरे भरत भ्राता, गोमूत्रमें पकाये हुए जौके दलिये को भक्षण करके, वृक्षोंकी छालके वस्त्र तथा जटाओंको धारण करके, कुशा बिछाय भूमि पर शयन करते हुए मेरी बाट देख रहे हैं ऐसा सुन कर अत्यन्त ही दुःखित हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इधर भरतजी, मेरे बड़े भ्राता श्रीरामचन्द्रजी, अयोध्याको लौट कर आरहे हैं ऐसा सुन कर, उनकी पादुका (खड़ाऊँ) मस्तक पर रख कर, श्री रामचन्द्रजीके विना अयोध्या नगरीमें प्रवेश न करनेके संकल्पसे जो नन्दिग्राममें पर्णकुटी बना कर रहते थे, तहाँसे पुरवासी लोक, मन्त्रिमण्डल और पुरोहितोंको साथ ले तथा गान मृदङ्ग आदि बाजोंका शब्द, वेदघोष और बारम्बार ऊँचे स्वरसे पढ़ने वाले वेदवेत्ता ब्राह्मण, जिनके इधर उधर सुवर्णका मीना करा हुआ है ऐसी पताका, चित्र विचित्र ध्वजाओंसे युक्त होकर उत्तम घोड़ोंसे जुने हुए तथा सुवर्ण की घण्टियोंसे बँधे हुए सुवर्णके बने हुए, सुवर्णके कवच धारण करने वाले योधा, बड़े २ सेठ, श्रेष्ठ वारांगना और पैदल चलने वाले सेवकोंके साथ, महाराजके योग्य छत्र, चँवर आदि चिह्न और छोटी बड़ी भेट (नजराने) लेकर श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख चले ॥ ३६ ॥ ३९ ॥ और प्रेमसे गीला हुआ है हृदय और नेत्र जिनके ऐसे वह भरतजी, श्रीरामचन्द्रजीके सामने पादुका रखकर चरणोंपर गिरे और तदनंतर हाथ जोड़ कर, प्रेमके आँसुओंसे जिनके नेत्र भर आये हैं ऐसे होते हुए आगे खड़े होगये ॥ ४० ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने, उन भरतजीको बहुत देरी पर्यंत हृदय से लगा कर नेत्रोंमेंसे निकले हुए आनन्दके आँसुओंकी बूँदोंसे स्नान कराया, तदनन्तर लक्ष्मण और सीताजीके साथ उन श्रीरामचन्द्रजीने ब्राह्मणोंको तथा जो नमस्कार करनेके योग्य कुल वृद्ध थे उनको नमस्कार करा और उस समय सकल प्रजाओंने श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करा ॥ ४१ ॥ उस समय उत्तर कोशल देशोंके लोक, बहुत दिनोंमें आये हुए श्रीरामचन्द्रजीको देखकर, हर्षके कारण पुष्पोंकी वर्षा करते हुए आनन्दसे नृत्य करने लगे ॥ ४२ ॥ भरतजीने श्रीरामचन्द्रजीकी पादुका लीं, विभीषण और सुग्रीवने चँवर और पंखा लिया, हनुमान्जीने श्वेत छत्र उठा

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बन्दिभिः । विरेजे भगवान्राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ ४५ ॥ भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् । प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥४६॥ गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् । वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥४७॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः । आरोप्यांकेऽभिषिचन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४८ ॥ जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः । अभ्यषिचद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥ ४९ ॥ एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः । स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ५० ॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः । प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः । जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५१ ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृत-

लिया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! धनुष और तरकस शत्रुघ्नने उठाये, सीताजीने तीर्थोंके जलसे भरा हुआ कमण्डलु लिया, अङ्गदने तलवार ली, जाम्बवान्ने सुवर्णकी ढाल उठाई ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! उस समय वाराङ्गनाओंसे घिरे हुए, बन्दीजनोंसे स्तुति करे हुए वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, पुष्पक विमानमें बैठने पर, गुरु शुक्र आदि ग्रहोंके साथ उदय होते हुए चन्द्रमाकी समान शोभाको प्राप्त हुए ॥४५॥ तदनन्तर भरत आदि भ्राताओंने जिनका गौरव करा है ऐसे वह श्रीरामचन्द्रजी, उन भ्राताओं के साथ ध्वजा आदिसे शोभित करी हुई और उत्साह भरी नगरीमें गए, तदनंतर उन श्रीरामचन्द्रजीके, राजभवनमें प्रवेश करने पर, कैकेयी आदि महाराज दशरथजी की स्त्रियें, कौसल्या माता, वसिष्ठ आदि गुरुजन, समान अवस्था वाले पुरुष और अपनेसे छोटी अवस्था वाले पुरुषोंके उनका उत्तमप्रकारसे सत्कार करनेपर उन्होंने भी नमस्कार आदि करके उनका सन्मान करा, तैसे ही सीताजी और लक्ष्मणजी का भी सबोंने यथायोग्य सत्कार करा तब उन्होंने भी सबका सत्कार करके वह राजभवनमें चले गए ॥ ४६ ॥४७ ॥ उस समय उनकी कौसल्या आदि माता तो, जैसे प्राणोंके आने पर मूर्छित पड़े हुए शरीर उठ बैठते हैं तैसे उठीं और उन्होंने, अपने २ पुत्रको गोदमें बैठा कर तथा आनन्दके आँसुओंसे उनको स्नान करा कर विरहके शोकोंका त्याग करा ॥ ४८ ॥ तदनन्तर गुरु वसिष्ठजीने, कुलके वृद्धोंके साथ, श्रीरामचन्द्रजीकी जटाओंको दूर कराकर चार समुद्रोंके जल आदिको मँगवा कर उससे श्रीरामचन्द्रजीका शास्त्रकी रीतिके अनुसार अभिषेक करा४९इस प्रकार शिरसे स्नान करने वाले और उत्तम प्रकारके वस्त्र, माला तथा आभूषणोंको धारण करनेवाले वह श्रीरामचन्द्रजी वस्त्र भूषण आदि धारण करनेवाले भ्राताओं सहित और आभूषण आदि धारण करने वाली सीताजीके साथ परम शोभायमान होने लगे ॥५०॥तदनन्तर भरतजीने नमस्कार करके जिनको प्रसन्न करा है ऐसे श्रीरामचन्द्रजीने, राजसिंहासनको स्वीकार करा, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने वर्णोंके और आश्रमोंके पञ्चमहायज्ञ आदि गुणोंसे युक्त और अपने धर्ममें तत्पर ऐसी अपने देश की सकल प्रजाओंकी, जैसे पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है तैसे रक्षा करी और उन प्रजाओंने भी श्रीरामचन्द्रजीको पिताकी समान माना ॥ ५१ ॥ उस समय सकल

समोऽभवत् । रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५२ ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः । सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः । मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोऽक्षजे ५४ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः । स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरत्॥५५ प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती।धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीता हरन्मनः

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीशुक उवाच । भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः । सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥१॥ होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः । अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥२॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा । मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३ ॥ इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः । तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता ॥ ४ ॥ ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य

प्राणियोंको सुख देने वाले, धर्मको जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी,राज्य करने लगे तब त्रेतायुग था तथापि समय सत्ययुगकी समान होगया ॥ ५२ ॥ हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! अचिन्तनीय शक्ति वाले उन श्रीरामचन्द्रजीके राजा होने पर वन, नदियें, पर्वत, खण्ड, द्वीप और समुद्र यह सब ही प्रजाओंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाले हुए, मनकी पीड़ा, शरीरकी पीड़ा वृद्धपना, ग्लानि, दुःख, शोक,भय और श्रम यह प्रजाओंको नहीं हुए और तो क्या इच्छा न करनेवाले पुरुषोंको मृत्यु भी नहीं प्राप्त होता था ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ एक पत्नी व्रत धारण करनेवाले, राजा होकर भी ऋषियोंकी समान आचारसे युक्त और रागलोभादि दोषरहित वह श्रीरामचन्द्रजी,गृहस्थाश्रमीके निमित्त शास्त्रमें कहेहुए अपने धर्मको, लोकोंको सिखानेके निमित्त आचरण करने लगे ॥५५॥ तब विनयसे नम्र और सूक्ष्म बुद्धिसे श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानने वाली पतिव्रता सीताजीने भी बड़े प्रेमके साथ सुन्दर स्वभाव और लज्जा करके श्रीरामचन्द्रजीका चित्त अपने वशमें कर लिया ॥ ५६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ *

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने, वसिष्ठजीको गुरु करके, उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा आप ही, सब देवमय और प्रकाशमय अपना पूजन करा ॥ १ ॥ यज्ञके अन्तमें उन प्रभुने, होताको पूर्वकी ओरकी भूमि दक्षिणा दी, ब्रह्माको दक्षिणकी ओरकी, अध्वर्युको पश्चिमकी ओरकी और उद्गाताको उत्तर ओरकी भूमि दक्षिणा दी ॥ २ ॥ उन चारों दिशाओंके मध्यमें जितनी भूमि शेष रही थी वह सब आचार्यको अर्पण करी, क्योंकि-वह श्रीरामचन्द्रजी ऐसा मानते थे कि-इस सकल भूमण्डलका प्रतिग्रह करनेको निःस्पृह ब्राह्मण ही योग्य हैं ॥३॥ इस कारण उन श्रीरामचन्द्रजीने, दानरूपसे सर्वस्व देकर आप केवल शरीर परके आभूषण और वस्त्रोंके साथ ही शेष रह गये तथा रानी सीताजी भी सौभाग्यके हेतु नासिकाके आभूषण आदि गहने और धारण करे हुए वस्त्रोंके साथ ही शेष रह गयीं ॥ ४ ॥ उस समय वह होता आदि ब्राह्मण,

संस्तुतम् । प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्यैदमभाषिरे ॥ ५ ॥ अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर । यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे । उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पितांघ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः । चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् । स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥९॥ इति लोकाद्बहुमुखाद् दुराराध्यदसंविदः । पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥१०॥ अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ । कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥११॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ । तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥ सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः । गन्धर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् । तदीयं धनमा-

जो देवताओंकी समान ब्राह्मणोंकी ही आराधना करते हैं ऐसे तिन श्रीरामचन्द्रजीके आचारवान् पुरुषोंके ऊपरके प्रेमभावको देख कर, प्रसन्न और स्नेहसे आर्द्रचित्त होते हुए, हम भूमिकी रक्षा करनेको असमर्थ हैं इस कारण तुम ही इसकी रक्षा करो, ऐसा कह उन श्रीरामचन्द्रजीको ही सकलभूमि समर्पण कर कहने लगे कि-५ हे जगत्पालक भगवन् ! तुम जो हमारे हृदयमें प्रवेश करके हमारे अज्ञानरूप अन्धकारको अपने स्वप्रकाशसे नष्ट करते हो, सो तुमने हमें क्या नहीं दिया ? अर्थात् सब कुछ दिया है ॥ ६ ॥ इस कारण जिसकी बुद्धि, देश, काल और वस्तुके द्वारा कुण्ठित नहीं होती है, जो महायशस्वी पुरुषोंमें भी आगे गिनने योग्य हैं, जिनका चरण प्राणियोंके द्रोहका त्याग करने वाले मुनियोंने अपने हृदयमें स्थापन करा है और जो ब्राह्मणोंके हितकारी होकर अपने तेजसे प्रकाशवान् हैं ऐसे तुम श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार हो ॥ ७ ॥ हे राजन् परीक्षित ! एक समय, लोक मुझे क्या कहते हैं, यह जाननेकी इच्छा करने वाले उन श्रीरामचन्द्रजीने, रात्रिके समय उस नगरीमें किसीकी दृष्टि न पड़े इसप्रकार गुप्तरूपसे विचरते हुए, एक पुरुषका स्त्रीके प्रति भाषण सुना, वह यह था कि—॥ ८ ॥ हे स्त्रि ! परपुरुषके घरमें गई हुई और व्यभिचार करनेवाली तुझे, मैं अपने घरमें नहीं रहने दूँगा और तेरा पोषण भी नहीं करूँगा, यद्यपि स्त्रीके लोभी श्रीरामचन्द्रजीने सीताको अङ्गीकार कर लिया है परन्तु मैं तो तुझे अङ्गीकार करूँगा नहीं ॥९॥ इस प्रकार नाना प्रकारकी बातें करने वाले और जिसको समझाना कठिन है ऐसे मूर्खके अपवाद (बदनामी) से भयभीत हुए तिन श्रीरामचन्द्रजीसे, वनमें लेजाकर छोड़ी हुई वह सीताजी, वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें जा पहुँचीं ॥ १० ॥ वह उस समय गर्भवती थीं, उन्होंने फिर प्रसूतिका समय प्राप्त होने पर लव और कुश इन दो नामोंसे प्रसिद्ध दो पुत्रोंको उत्पन्न करा तहाँ उन पुत्रोंके जातकर्म आदि संस्कार वाल्मीकि ऋषिने करवाये ११ तथा अङ्गद और चित्रकेतु यह दो लक्ष्मणजीके पुत्र थे तक्ष और पुष्कल यह दो भरतजीके पुत्र थे तथा हे राजन् ! सुबाहु और श्रुतसेन यह दो शत्रुघ्नके पुत्र हुए१२ भरतजीने दिग्विजयके समय करोड़ों गन्धर्वोंको मार कर उनका द्रव्य लाकर वह

नीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ १३ ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् । हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ १४ ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता । ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥१५॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः । स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥१६॥ स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः । अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ १७ ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः । त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् १८ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः । स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः । रक्षोवधो जलधिबंधनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥ यस्या-

सब श्रीरामचन्द्रजीको दिया ॥ १३ ॥ शत्रुघ्नजीने भी मधु दैत्यके पुत्र लवणनामक राक्षसको मार कर मधुवनमें मथुरा नामक नगरी बसायी ॥ १४ ॥ इधर श्रीरामचन्द्रजीकी वनमें छोड़ी हुई सीताजी, गर्भिणी थीं इस कारण प्रसूतिकाल पर्यन्त वाल्मीकिजीके आश्रममें रह कर तदनन्तर उत्पन्न हुए कुश लव नाम वाले दोनों पुत्रोंको उन वाल्मीकिजीके अधीन रख कर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका ध्यान करती हुई भूमिके विवरमें प्रवेश कर गई ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसा समाचार सुन कर, शोकसे उत्पन्न हुए दुःखके आँसुओंको विवेक बुद्धिसे रोकते हुए भी और ईश्वर (विषयोंमें आसक्त न होने वाले) होकर भी उन सीताजीके सुशीलता आदि गुणोंका स्मरण आनेके कारण उन दुःखके आँसुओंको रोकनेको समर्थ नहीं हुए ॥ १६ ॥ हे राजन् ! यह कोई विशेष आश्चर्य माननेकी बात नहीं है, क्योंकि—स्त्री पुरुषोंका परस्परका प्रेम, इस प्रकारके समर्थ (जितेन्द्रिय) पुरुषोंको भी सब विषयमें त्रास देने वाला है फिर घरमें आसक्तचित्त गृहस्थीको त्रास देगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥१७॥ उन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके त्याग करनेसे पहिले तेरह सहस्र वर्ष पर्यन्त अखण्डित अग्निहोत्र करा था, परन्तु सीताजीका विवरमें प्रवेश करनेका वृत्तान्त सुन कर दूसरी स्त्री आदि स्वीकार न करके केवल ब्रह्मचर्य ही धारण करा ॥ १८ ॥ तदनन्तर तिन श्रीरामचन्द्रजीने, अपने भक्तोंके हृदयमें, दण्डकारण्यके काँटोंसे विधा हुआ अपना चरणपल्लव स्थापन करके निज धामको गमन करा ॥ १९ ॥ हे राजन् ! यद्यपि कवियोंने यह सेतु बाँधनारूप और शस्त्र समूहोंसे रावणका वध करनारूप श्रीरामचन्द्रजीका यश, बड़े आश्चर्यकी समान वर्णन करा है तथापि यह विशेष आश्चर्य माननेकी समान नहीं है क्योंकि—जिनके प्रभावसे औरोंका प्रभाव, समता भी नहीं कर सकता फिर अधिक तो कहाँसे होगा ? क्या उनको रावणका वध करनेमें वानरोंकी सहायता की इच्छा थी ? किन्तु नहीं, इस कारण जैसे उन्होंने सुग्रीव आदिका आश्रय लीलामात्र करा था तैसे ही सेतुबन्ध आदि भी लीला ही थीं और यही ठीक है, क्योंकि—पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त देवताओंकी प्रार्थनासे श्रीविष्णु भगवान्ने यह लीलावतार धारण करा था ॥ २० ॥ जिनके, दिग्गजोंके पट्टू वस्त्रकी

मलं नृपसदस्सु यशोऽधुनाऽपि गायंत्यघघ्नमृषयो दिगिभेंद्रपट्टम्। तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादांबुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ यैः संस्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा। कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्। आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच। कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः। तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच। अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः। आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गंधोदैः करिणां मदसीकरैः। स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥२६॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु। विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥२७॥ पूगैः सवृन्तैः रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम्। आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥२८॥

समान आभूषणरूप अर्थात् सकल जगत्में फैल कर दिग्गजों पर्यन्त व्याप्त होकर रहने वाले, पापोंका नाश करने वाले शुद्ध यशको, युधिष्ठिर आदि राजाओंकी सभामें मार्कण्डेय आदि ऋषि अब भी गाते हैं, तैसे ही स्वर्गपालक देवताओंने और भूमिपालक राजाओंने अपने किरीटोंसे जिनके चरण कमलकी सेवा करी है तिन श्रीरघुपतिकी मैं शरणमें प्राप्त होता हूँ ॥ २१ ॥ जिन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणका स्पर्श करा, जिन्होंने श्रीरामचंद्रजीको देखा, जिन्होंने श्रीरामचंद्रजीको आसन पर बैठाया और जो श्रीरामचंद्रजीकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करते थे वह सब ही कोसल देशके निवासी पुरुष, जहाँ योगी जाते हैं, उस स्थानको प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ हे राजन्! जो पुरुष श्रीरामचंद्रजीके चरित्रोंको सुनता है वह परमशान्तिको प्राप्त होता हुआ कर्मबंधनसे छूट जाता है ॥ २३ ॥ राजाने कहा कि-हे शुकदेवजी! वह भगवान् श्रीरामचंद्रजी, अपने आप कैसे वर्त्ताव करते थे और अपने ही अंशरूप भ्राताओंमें कैसा वर्त्ताव करते थे तथा उन प्रभु श्रीरामचंद्रजीके विषैं वह भ्राता, सकल प्रजा और पुरवासी यह सब कैसा वर्त्ताव करते थे सो मुझसे कहो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! त्रिभुवनपति तिन श्रीरामचंद्रजीने, राजसिंहासनको स्वीकार करनेके अनंतर लक्ष्मण आदि भ्राताओंको दिग्विजय करनेके निमित्त जानेको आज्ञा करी और उसको उन्होंने स्वीकार करा, तदनंतर उन्होंने अपने भक्तजनोंको दर्शन देनेके निमित्त सेवकोंको साथमें लेकर अयोध्या नगरीको देखा ॥२५॥ चन्दन आदिकी युक्त सुगन्ध जलोंसे तथा हाथियोंके मदोंकी बूँदोंसे उस नगरीका मार्ग छिड़का हुआ था और हमारे स्वामी आये ऐसा देख कर वह नगरी अति मतवालीकी समृद्धिको धारण कर रही थी अर्थात् उसमेंके सकलपुरुष, आनन्द और उत्साहमें निमग्न होगये थे ॥ २६ ॥ तथा राजमन्दिर, नगरद्वार, सभा, अखाड़े और देवमन्दिर आदिकोंमें स्थापन करे हुए सुवर्णके कलशोंसे और पताकाओंसे भूषित होरही थी ॥ २७ ॥ फलोंके गुच्छों सहित पूँगीफल (सुपारी) के वृक्ष, केलेके खम्भे, और ऊँची वस्त्रोंकी पताकाओं सहित ध्वजा इनसे शोभित हो रही थी तथा, दर्पण, वस्त्र एवं फूलोंकी मालाओंके

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः। आशिषो युयुजुर्देवपाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहा स्त्रियो नराः। आरुह्य हर्म्याण्यरविंदलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥३०॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः। अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपंक्तिभिः। स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ३२ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः। मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कांतकामोपपत्तिभिः ३३ धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डितैः। स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन्स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया। रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन्। वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

उत्साहके साथ वन्दनवार बाँधे हुए थे ॥२८॥ उस नगरीकी शोभा देखनेके निमित्त राजमार्गसे श्रीरामचंद्रजीके जाते समय, जहाँ २ नगरवासी पुरुष, उन श्रीरामचंद्रके समीपमें हाथमें पूजाकी सामग्री लेकर आते हुए आशीर्वाद देकर कहते थे कि-हे देव श्रीरामचंद्रजी! तुम, पहिले वराहरूपसे उद्धार करी हुई इस पृथ्वीकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ उस समय चौदह वर्ष वनवास करके अयोध्यामें आये हुए श्रीरामचंद्रजीको देखनेकी इच्छासे कितनी ही स्त्रियें और पुरुष, अपने घरके काम छोड़कर, ऊपर महलों पर चढे और उन कमलनेत्र श्रीरामचंद्रजीको देख कर जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं ऐसे होते हुए वह उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥३०॥ इस प्रकार उस अयोध्या नगरीको देखने पर तिन श्रीरामचंद्रजीने अपने राजभवनमें प्रवेश करा वह भवन अपने (श्रीरामचंद्रजीके) अनेकों पूर्व पुरुष राजाओंका सेवन करा हुआ, अनन्त सकलरत्नोंके भण्डारगृहोंसे भरपूर, अमूल्य और असंख्य वस्तुओंसे युक्त और मूँगोंकी देहलवाले द्वारोंसे, वैदूर्यमणिके खम्भोंकी पंक्तियोंसे, मरकतमणिकी बनाई हुई स्वच्छ भूमियोंसे और देदीप्यमान स्फटिकमणिकी भीतों (दीवारों) से युक्त था ॥३१॥३२॥ चित्रविचित्र मालाओंसे,ध्वजाओंकी पताकाओंसे, वस्त्रोंकी और रत्नोंके समूहोंकी कांतियोंसे, चैतन्यकी समान उज्ज्वल मोतियोंसे, रमणीय भोगकी सामग्रियोंसे, सुगन्धकारी धूप दीप आदिसे और पुष्पोंके आभूषणोंसे शोभित तथा भूषणोंको भी परमशोभा देनेवाले देवताओंकी समान स्त्री पुरुषोंसे सेवन करीहुई थी ॥३३॥३४॥ ऐसे उस राजभवनमें, अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले, जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ वह भगवान् श्रीरामचंद्रजी, अत्यन्त स्नेह करने वाली प्रिया सीता नामक स्त्रीके साथ विहार करने लगे ॥३५॥ और सकल मनुष्योंमें जिनके चरणपल्लवका चिन्तवन करा है ऐसे उन श्रीरामचन्द्रजीने वर्ण और आश्रमके धर्ममें विरोध न आवे इस रीतिसे बहुत वर्षों पर्यंत यथोचित समयमें विषयभोगोंका सेवन करा ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

श्रीशुक उवाच । कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः । पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत्ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः । ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥ २ ॥ खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः । ततो हिरण्यनाभोभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥३॥ शिष्यः कौशल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः । योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥ ४ ॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् । सुदर्शनोग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५ ॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः । कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥६॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः । महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ७ ॥ ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः । ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ ८ ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् । बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः । उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति । प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ १० ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् । प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ ११ ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः । तस्यांतरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥१२॥ बृहद्राजस्तु

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! कुशका अतिथि नाम वाला पुत्र हुआ, उससे निषध, उसका पुत्र नभ, तिसका पुत्र पुण्डरीक, तिससे क्षेमधन्वा हुआ १ तिसका देवानीक, तिसका अनीह, तिसका पुत्र पारियात्र, तिसका बल, तिसका स्थल, तिसका सूर्यके अंशसे वज्रनाभ पुत्र हुआ ॥ २ ॥ तिसका पुत्र खगण, तिसका विधृति हुआ, तिससे हिरण्यनाभ हुआ, वह जैमिनिका शिष्य और योगाचार नामसे प्रसिद्ध था ॥ ३ ॥ जिसके शिष्य होकर याज्ञवल्क्य ऋषिने, महासिद्धि देने वाले और हृदयकी ग्रन्थिका भेदन करने वाले अध्यात्मयोगको पढ़ा है ॥ ४ ॥ तिस हिरण्यनाभका पुत्र पुष्य हुआ, तिससे ध्रुवसन्धि हुआ तिसका सुदर्शन, तिसका अग्निवर्ण तिसका शीघ्र, तिसका पुत्र मरु हुआ ॥ ५ ॥ वह राजा मरु, योगसाधना से मृत्युको जीत कर कलापग्राममें तहाँके किन्हीं लोगोंके साथ रहता है वह कलियुगके अन्तमें नष्ट हुए सूर्यवंशको, फिर पुत्र पौत्र,आदि वंश परम्परासे चलावेगा६ तिस मरुसे प्रश्रुत हुआ, तिसका सन्धि, तिसका अमर्षण तिसका पुत्र महस्वान्, तिससे विश्वसाह्व हुआ ॥ ७ ॥ तिससे प्रसेनजित्, तदनन्तर उससे तक्षक हुआ तिससे बृहद्बल हुआ, उसका तुम्हारे पिता (अभिमन्यु) ने युद्धमें वध करा ॥ ८ ॥ यह राजे इक्ष्वाकु राजाके वंशमें होगये, अब आगेको होने वाले राजाओंका वर्णन करता हूँ, सुन, बृहद्बलका पुत्र बृहद्रण नामक होयगा ॥ ९ ॥ उसका उरुक्रिय,तिसका वत्सवृद्ध होयगा, तिससे प्रतिव्योम, तिससे भानु,तिससे दिवाक,वह देवसेना का स्वामी होयगा ॥ १० ॥ तिससे सहदेव, तिससे वीर बृहदश्व होयगा, तिससे भानुमान्, उस भानुमान्से प्रतीकाश्व, तदनन्तर उसका पुत्र सुप्रतीक होयगा ॥११॥ तिसका पुत्र मरुदेव होयगा, तिसका सुनक्षत्र, तिसका पुष्कर होयगा, तिसका पुत्र अन्तरिक्ष, तिसका पुत्र सुतपा, तिसका अमित्रजित् होयगा ॥ १२ ॥ तिसका

तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतञ्जयः । रणञ्जयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥ १३ ॥ तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लांगलस्तत्सुतः स्मृतः । ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥१४॥ रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः । सुमित्रो नाम निष्ठांत एते बार्हद्बलान्वयाः ॥१५॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रांतो भविष्यति । यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् । आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥१॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय । तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥ निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् । ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः । अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥ निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने । तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५ ॥ इत्यु-

बृहद्राज, तिसका पुत्र बर्हि, तिससे कृतञ्जय होयगा, तिसका पुत्र रणञ्जय, तिससे सञ्जय होयगा ॥ १३ ॥ तिससे शाक्य, तिससे शुद्धोद, तिसका पुत्र लाङ्गल होयगा तिससे प्रसेनजित्, तिससे क्षुद्रक होयगा ॥ १४ ॥ तिससे रणक होयगा, तिससे सुरथ पुत्र होयगा, तिससे सुमित्र नाम वाला अन्तका पुत्र होयगा यह बृहद्बलके वंशके राजे हैं ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकु राजाके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका यह वंश, सुमित्र राजा पर्यन्त ही होयगा, क्योंकि-सुमित्र राजाके होने पर आगे कलियुगमें यह वंश नष्ट होजायगा ॥१६॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ छ ॥ * ॥ छ ॥ छ

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इक्ष्वाकु राजाका पुत्र जो निमिराजा उसने मनमें सत्र (यज्ञ) करनेका विचार करके गुरु वसिष्ठजीसे प्रार्थना करी कि— आप इस सत्रमें ऋत्विज बनें, तब वसिष्ठजीने कहा कि-हे राजन्! तेरे वरण करनेसे पहिले ही इन्द्रने मुझे अपने यज्ञका ऋत्विज वर लिया है ॥ १ ॥ इस कारण वह इन्द्रका यज्ञ समाप्त करके मैं आता हूँ तब तक तुम यज्ञके विधानको बन्द रख कर मेरी बाट देखो, यह सुनकर राजा निमि मौन होरहा और उन वसिष्ठजीने भी इंद्रके समीप जाकर उसके यज्ञका प्रारम्भ कराया ॥ २ ॥ इधर, जिसको आत्मानात्मका विवेक है ऐसे उस राजा निमिने, यह आयु चञ्चल है ऐसा जानकर गुरु वसिष्ठजीके आनेसे पहिले ही और ऋत्विजोंको वर कर उनसे सत्र करनेका आरम्भ करा ॥ ३ ॥ इतने हीमें इंद्रका यज्ञ समाप्त करके आये हुए गुरु वसिष्ठजीने, शिष्य (राजा निमि) ने मेरी आज्ञाको उल्लंघन करा है ऐसा देखकर, अपनेको ही पण्डित मानने वाले तिस राजा निमिको 'तेरा देहपात हो' यह शाप दिया ॥ ४ ॥ यह सुनकर राजा निमिने भी, इन्द्रसे और मुझसे धन पानेके लोभसे 'इस देहके नाशवान् होनेके कारण धर्म करनेमें विलम्ब न करे ऐसे' धर्मके सिद्धान्तको न जाननेवाले और अधर्मसे वर्त्ताव करने वाले तुम वसिष्ठ गुरुका भी देहपात हो ऐसा पलटेमें

त्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः । मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः । समाप्ते सत्रयागेथ देवानूचुः समागतान् ॥ राज्ञो जीवतु देहोयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि । तथेत्युक्ते निमिः प्राह माभून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न वांछन्ति वियोगभयकातराः । भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयावहम् । सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः । विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् । उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥ अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः । देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ॥ १२ ॥ जन्मना जनकः सोभूद्वैदेहस्तु विदेहजः । मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोभून्नन्दिवर्द्धनः । ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥

शाप दिया ॥ ५ ॥ इस प्रकार शाप देकर आत्मविद्यामें प्रवीण तिस राजा निमिने अपने शरीरका त्याग कर दिया, और हमारे प्रपितामह ('परदादा वसिष्ठजी') ने भी देहको त्याग कर, फिर मित्रावरुणके पुत्ररूपसे उर्वशीके विषैं अर्थात् पहिले उर्वशीको देखनेसे मित्रावरुण देवताओंका वीर्य स्खलित होगया था उसको उन्होंने घड़ेमें डाल दिया था, उसके आश्रयसे देह धारण करा ॥ ६ ॥ उस समय निमिका जो देहपात हुआ,सो उसको उसके श्रेष्ठ ऋत्विजोंने सुगन्ध युक्त तेलमें रखदिया और फिर सत्रयागकी समाप्ति होने पर तहाँ आये हुए देवताओंसे वह ऋषि कहने लगे कि-॥ ७ ॥ हे देवताओं ! यदि तुम प्रसन्न हो और वर देनेको समर्थ हो तो निमि राजाका यह देह जीवित हो,तदनन्तर देवताओंने 'तथास्तु' (ऐसी ही हो) कहा तब राजा निमिने कहा कि-मुझे देहका सम्बन्ध न हो ॥ ८ ॥ क्योंकि-मनन करने वाले विवेकी पुरुष, इस देहका फिर वियोग होगा,इसकारण भयभीत होकर उसके सम्बन्धकी ही इच्छा नहीं करते हैं किंतु संसारसे छूटनेके निमित्त भगवान् के चरणकमलकी ही सेवा करते हैं ॥ ९ ॥ इस कारण दुःख, शोक और भय इनके हेतु इस शरीरको ग्रहण करनेकी मुझे इच्छा नहींहै,जैसे जलमें वसनेवाली मच्छियों को जलसे बाहर सर्वत्र मृत्यु प्राप्त होती है तैसे ही देह ग्रहण करने वाले जीवको सब योनियोंमें मृत्यु प्राप्त होती है, कहीं भी तरनेका उपाय नहीं मिलता है ॥१०॥ देवताओंने कहा कि-हे ऋषियो ! यह राजा निमि देहरहित ही रह कर देहधारी मनुष्योंके नेत्रोंमें स्थित होता हुआ, नेत्रोंके खोलने और मीचनेका प्रवर्त्तक होकर रहेगा ॥ ११ ॥ राजा न होनेके कारण मनुष्योंको भय होगा, ऐसा समझने वाले महर्षियोंने, उस निमिके देहको मथा तिसमेंसे पुत्र हुआ ॥ १२ ॥ वह जन्मसे ही जनक (आगेको होने वाले वंशोंका उत्पन्न करने वाला) विदेह निमि राजाके अंश से उत्पन्न होनेके कारण वैदेह और मथनेसे उत्पन्न होनेके कारण मिथिल इन तीन नामोंसे प्रसिद्ध हुआ और उसने मिथिला नाम वाली नगरी बसाई ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उस मिथिलसे उदावसु नामवाला पुत्र हुआ,उसका पुत्र नन्दिवर्धन हुआ तिसका सुकेतु, तिसका भी देवरात हुआ ॥ १४ ॥ उससे बृहद्रथ,तिसका महावीर्य

तस्माद् बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता । सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोथ मरुस्ततः॥१५॥ मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः। देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः। स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत॥ १७॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम्। सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः॥ १८॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः। धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ॥ १९॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खांडिक्यस्तु मितध्वजात्। कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः॥२०॥ खांडिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजस्ततः। भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः॥ २१॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत्। ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः२२ अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः। ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः। आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः२४ वस्वनंतोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः। श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्माहतः सुतः॥ २५॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः। बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृति-

नाम वाला पुत्र हुआ, तिसका सुधृति हुआ, तिस सुधृतिका धृष्टकेतु, तिसका हर्यश्व हुआ, तिससे मरु हुआ॥ १५॥ मरुका प्रतीपक, तिससे कृतिरथ, तिससे देवमीढ़ तिसका पुत्र विश्रुति, तिसका महाधृति हुआ॥१६॥ तिससे कृतिरात, तिससे महारोमा, फिर उसका पुत्र स्वर्णरोमा होकर उसका पुत्र ह्रस्वरोमा हुआ॥ १७॥ तिससे सीरध्वज हुआ, वह यज्ञ करनेके निमित्त भूमिको खोद रहा था सो उसके हलकी नोकसे एक डिब्बी लगी वह उघड़ कर देखते ही उसमें सीता दीखी इसकारण उसका सीरध्वज नाम पड़ा॥ १८॥ उस सीरध्वजका पुत्र कुशध्वज, तिससे राजा धर्मध्वज हुआ, धर्मध्वजके कृतध्वज और मितध्वज यह दो पुत्र हुए॥ १९॥ उनमें कृतध्वजसे केशिध्वज और मितध्वजसे खाण्डिक्य हुआ हे राजन्! कृतध्वजका पुत्र जो केशिध्वज वह अध्यात्मविद्यामें प्रवीण था॥ २०॥ और मितध्वजका पुत्र जो खाण्डिक्य वह कर्मविद्यामें निपुण था, वह केशिध्वजसे भयभीत होकर अपने घरमेंसे भाग गया, उस केशिध्वजका पुत्र भानुमान् हुआ उसका पुत्र शतद्युम्न हुआ॥ २१॥ तिसका पुत्र शुचि होकर उससे सनद्वाज हुआ, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु हुआ, तिससे अज होकर उसका पुत्र पुरुजित् हुआ।२२। तिसका अरिष्टनेमि, तिसका श्रुतायु, तिसका सुपार्श्वक, तिसका चित्ररथ और उसका पुत्र मिथिलाधिपति क्षेमधि हुआ २३ तिससे हेमरथ हुआ, तिसका पुत्र सत्यरथ, तिससे उपगुरु हुआ, तिससे उपगुप्त हुआ वह अग्निके अंशसे उत्पन्न हुआ था॥२४॥ तदनंतर उसका पुत्र वस्वनन्त, तिसका युयुध, तिसका सुभाषण, तिसका श्रुत, तिससे जय, तिससे विजय, तिससे ऋत पुत्र हुआ॥ २५॥ तिसका पुत्र शुनक हुआ, तिससे वीतहव्य, तिससे धृति, तिस धृतिका बहुलाश्व, तिसका कृति और उसका महावशी हुआ॥ २६॥ हे राजन्! यह मिथिलके वंशमें उत्पन्न हुए राजे थे, यह गृहस्थाश्रम करते हुए भी याज्ञवल्क्य आदि योगेश्वरोंके अनुग्रहसे ज्ञानवान् होनेके

रस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः । योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥१३

श्रीशुक उवाच । अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः । यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥ सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् । जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल । विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणः कल्पितः पतिः ॥३॥ सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् । पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् । नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् । हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् । सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथांगिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् । तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः

कारण चेतनजड़का विचार करनेके विषयमें निपुण और सुख दुःख, हर्ष शोक, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे छूटे हुए थे ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ * * छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! अब आगे जिस वंशमें पवित्रकीर्त्ति पुरूरवा आदि राजाओंका वर्णन करा है वह परमपवित्र सोमका वंश मैं तुमसे कहता हूँ सुनो-॥ १ ॥ सहस्रशीर्षा भगवान् नारायणके नाभिरूप सरोवरमें उत्पन्न हुए कमलमेंसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए उनसे, सत्य, शौच, सुशीलता आदि गुणों करके उन ब्रह्माजीकी समान ही अत्रि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ उनके नेत्रोंमेंके आनन्दके आसुओंसे अमृतमय चन्द्र पुत्र उत्पन्न हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है, उसको ब्रह्माजीने, ब्राह्मण, औषधि और तारागणोंका स्वामी बनाया ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस चन्द्रने त्रिलोकीको जीत कर राजसूय नाम वाले यज्ञसे भगवान्का यजन करा, और गर्वमें भर कर बृहस्पतिकी तारा नाम वाली स्त्रीको बलात्कारसे हर लिया ४ तदनन्तर बृहस्पतिजीने अपनी स्त्री फेर देनेके निमित्त उसकी बारम्बार याचना करी तब भी जब उसने गर्वसे नहीं दी तो उसके कारण देवता और दानवोंका बड़ा भारी संग्राम हुआ ॥ ५ ॥ उसका कारण यह था कि-बृहस्पतिजीके द्वेषके कारण शुक्राचार्यजीने दैत्योंके साथमें चन्द्रमाका प्रतिपक्षी बनना स्वीकार करा तथा शिवजीने पहिले अङ्गिरा ऋषिसे विद्या पढ़ी थी इस कारण बृहस्पति उनके गुरुभ्राता थे उस स्नेहके कारण शिवजीने सकल भूतगणोंके साथ बृहस्पतिजीका पक्ष लेना स्वीकार करा ॥ ६ ॥ और इन्द्र भी सकल देवताओं सहित गुरु बृहस्पतिजीके पक्षमें हुआ, ऐसा होने पर उस समय तिस ताराके निमित्तसे होने वाले संग्राममें देवताओंका और असुरोंका बहुत नाश हुआ ॥ ७ ॥ तथापि ताराको चन्द्रने नहीं दिया तब बृहस्पतिने यह वृत्तान्त ब्रह्माजीसे कहा तब उन्होंने चन्द्रमाको ललकार कर उससे बृहस्पतिको तारा दिलवायी तब बृहस्पतिजीने यह

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः । नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सांतानिकः सति ॥ ९ ॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् । स्पृहामांगिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः । पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया । किं नावोचस्त्वसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥ ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् । सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप । बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः । तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणाम् । तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् । निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् १७

गर्भिणी है, ऐसा जान कर उससे कहा कि–॥ ८ ॥ अरी दुर्बुद्धि तारा ! तू मेरी स्त्री है और तेरे विषैं शत्रुने गर्भ स्थापन कर दिया है, सो यदि तू पतिव्रता है और शत्रुने बलात्कार करा है तो तू इसी समय अपने पातिव्रतधर्मके प्रभावसे इस गर्भका त्याग कर दे, त्याग कर दे, तो हे सति ! मैं तुझे शापसे भस्म नहीं करूँगा, क्यों कि–मुझे तेरे विषैं सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा है ॥ ९ ॥ तदनन्तर लज्जित हुई उस ताराने, गर्भको त्याग दिया, तब उस सुवर्णकी समान कान्तियुक्त पुत्रके विषयमें बृहस्पति और चन्द्रमा इन दोनोंने इच्छा करी ॥ १० ॥ और वह दोनों ही 'यह पुत्र मेरा है, तेरा नहीं' ऐसा परस्पर ऊँचे स्वरसे वादविवाद करने लगे तब देवताओंने और ऋषियोंने, उससे,'यह पुत्र किसका है' ऐसा प्रश्न करा तब लज्जित हुई उस ताराने कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ११ ॥ तब क्रोधमें भरा हुआ वह पुत्र ही मातासे कहने लगा कि–अरी ! दुश्चारिणी ! ऐसे व्यर्थ लज्जा करके तू बोलती क्यों नहीं है ? तू अपना दुष्कर्म (किससे गर्भ धारण करा है यह) शीघ्र मुझसे कथन कर ॥ १२ ॥ ऐसा बूझने पर भी जब नहीं बोली तो ब्रह्माजीने उसको एकान्तमें बुला कर, शान्तिके साथ युक्तिसे बूझा तब उसने धीरेसे कहा कि-यह पुत्र चन्द्रका है, तदनन्तर उस पुत्रको चन्द्रने ग्रहण कर लिया ॥ १३ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उस पुत्रका ब्रह्माजीने बुध यह नाम रक्खा, क्योंकि–गम्भीर बुद्धि वाले उस पुत्रसे चन्द्रको आनन्द प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ उस बुधके इलाके विषैं पुरूरवा नाम वाला पुत्र हुआ, ऐसा मैंने पहिले ही तुमसे कहा है, उस पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील, सम्पत्ति और पराक्रमका इंद्रकी सभामें नारदजीने गानकरा तब देवताओंकी अप्सरा उर्वशी उसके सुनने करके कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होती हुई तिस पुरूरवाके समीप आई ॥ १५ ॥ १६ ॥ यदि कहो कि–वह उर्वशी देवाङ्गना होकर मनुष्यके समीप कैसे आई तो सुनो–उसको मित्र और वरुण नाम वाले इन दो देवताओंका 'तू मनुष्यरूपको प्राप्त होगी' ऐसा शाप दिया था इस कारण उस देवाङ्गना उर्वशीने, कामदेवकी समान सुन्दर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ उस राजा पुरूरवाको देख कर धीरज धरा और उसके समीपमें खड़ी होगई ॥ १७ ॥ तब वह राजा, उस

धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके । स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच । स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किं । संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच । कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर । यदङ्गांतरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद । संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥२१॥ घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् । विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥ अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् । को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३ ॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयंत्या यथाऽर्हतः । रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या

देवाङ्गना उर्वशीको देख कर हर्षसे प्रफुल्लितनेत्र और शरीर पर रोमाञ्च धारण करता हुआ कहने लगा ॥ १८ ॥ राजाने कहा कि-अरी सुन्दरि ! तेरा आगमन अति उत्तम हुआ, तू यहाँ बैठ, हम तेरा कौनसा प्रिय कार्य करें ? तू मेरे साथ रमण कर, तेरी और मेरी बहुत वर्षों पर्यंत रति क्रीड़ा होय ॥ १९ ॥ ऐसा राजाका कथन सुन कर उर्वशी कहने लगी कि-हे सुन्दर ! कौनसी स्त्रीका मन और दृष्टि तुझमें आसक्त नहीं होगी ? सबकी ही होगी, क्योंकि-जिस तेरी दृष्टिके सामने पड़ी हुई स्त्री, तेरे साथ रमण करनेकी इच्छासे तेरे समीपसे और स्थानको नहीं जाती है, यह स्पष्ट है, अथवा जिस तेरे वक्षःस्थलको देखते ही तेरे साथ रति क्रीड़ा करने की इच्छा करने वाली स्त्रीके विवेक धीरज आदि नष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ अब शाप समाप्त होने पर फिर स्वर्गको जानेकी इच्छा करने वाली तिस उर्वशीका प्रण कहते हैं उर्वशीने कहा कि-हे सम्मान देने वाले राजन् ! इन दोनों मेंढों को मैंने पुत्रोंकी समान पाला है और यह मैं रक्षा करनेके निमित्त तेरे समीप रखती हूँ, तू इनकी रक्षा कर, जब तक तू इनकी रक्षा करेगा तब तक मैं देवाङ्गना होकर भी तेरे साथ रमण करूँगी, नहीं तो तुझे छोड़ कर चली जाऊँगी, क्योंकि-जो रूप उदारता आदि गुणोंसे वर्णन करने योग्य होय वही हम अप्सराओंका पति कहा है ॥ २१ ॥ और हे वीर ! देवताओंका भोजन अमृत है और मनुष्य लोकमें घृत ही अमृत है, इस कारण मैं घृत का ही भक्षण करूँगी, अन्नका भक्षण नहीं करूँगी, और मैथुन कर्मके सिवाय और किसी समय भी तुझे नग्न नहीं देखूँगी, यदि देख पाऊँगी, तो चली जाऊँगी, इस प्रकारके उसके प्रणको सुन कर, वह सब वैसा ही करनेको; उदारचित्त राजा पुरूरवाने स्वीकार कर लिया ॥ २२ ॥ और उससे यह कहा कि-मनुष्यलोकको मोहित करने वाली तेरी सुन्दरता कैसी अद्भुत है ! तेरी चतुराई कैसी अपूर्व है ! स्वयं आई हुई देवताओंके भोगने योग्य तुझ उर्वशीको कौन मनुष्य सेवन नहीं करेगा ? ॥ २३ ॥ ऐसा कहते ही वह उर्वशी उसके साथ रमण करनेको उद्यत हुई, तदनन्तर यथोचित रीतिसे रमण कराने वाली उस उर्वशीके साथ वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ राजा पुरूरवा, देवताओंके क्रीड़ा करनेके स्थान चैत्ररथ नन्दन आदि बगीचोंमें यथेष्ट क्रीड़ा करने लगा ॥ २४ ॥ कमलोंके मकरंद

पद्मकिञ्जल्कगन्धया । तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥२५॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समनोदयत् । उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥ त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते । उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः । हतास्म्यहं कुनाथेन न पुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥ यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः । यः शेते निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः । निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः । आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥ ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव । तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः । पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ३३

की समान जिसके अङ्गकी गन्ध है ऐसी उस उर्वशीके साथ रमण करने वाला वह राजा, उसके मुखकी सुगन्धसे मोहित होकर बहुत दिनों पर्यंत आनन्दको प्राप्त हुआ ॥२५॥ तदनन्तर एक दिन स्वर्गमें उर्वशीको न देखने वाले इन्द्रने, उर्वशीके विना मेरा स्थान अत्यन्त शोभित नहीं है ऐसा देख कर उसको लानेके निमित्त गन्धर्वोंको भेजा ॥ २६ ॥ वह गन्धर्व आधी रात्रिके समय परम अन्धकार होने पर भूतलमें आकर पुरूरवाके समीप उर्वशीके रक्खे हुए दोनों मेंढ़ोंको भागते हुए ले चले ॥२७॥ तब लिये जाते हुए और पुत्रोंकी समान पालन करे हुए मेंढोंके विलाप के साथ रोनेको सुनकर वह उर्वशी पुरूरवाको छोड़गई और जाते समय उसने यह कठोर वचन कहे कि-अरे पुरूरवा ! नपुंसककी समान पराक्रमरहित और वृथा ही अपनेको वीर माननेवाले तुझ निन्दित स्वामीने मेरे साथ बड़ा घात करा है २८ जिस तेरे ऊपर 'यह वीर मेरे पुत्रोंकी रक्षा करेगा' ऐसा विश्वास रखकर मैं नष्ट हुई क्योंकि-मेरे पुत्रोंको चोर लेगये; जो तू, रात्रिके समय स्त्रीकी समान अत्यन्त भयभीत होकर सोता है, केवल दिनमें पुरुषकी समान व्यवहार करता है ऐसे तुझे नपुंसक नहीं तो और क्या कहाजाय ? ॥२९॥ ऐसे वचनरूपी बाणोंसे 'जैसे अंकुशों से हाथी बिधता है तैसे' बिंधा हुआ वह राजा पुरूरवा, नंगा ही हाथमें तरवार लेकर, क्रोधमें भरकर रात्रिके समय गन्धर्वोंके पीछे चला ॥ ३० ॥ तब गन्धर्वोंने मेंढोंको तहाँ ही छोड़ दिया और वह बिजलीकी समान परम कान्तियुक्त होकर प्रकाश करनेलगे, तब मेंढोंको लेकर आनेवाले पतिको (पुरूरवाको) उस उर्वशी ने नङ्गा देखा, तब वह उर्वशी 'प्रण करे हुए नियमोंका भङ्ग होनेके कारण' तत्काल उसको त्यागकर चली गई ॥ ३१ ॥ तब राजा पुरूरवा भी पलंग पर उर्वशीको न देखनेके कारण चित्तशून्य सा (बेदिल सा) होगया और उसमें चित्त लगाकर विह्वल होता हुआ 'अब वह उर्वशी मुझे कैसे मिलेगी' ऐसा शोक करके उन्मत्तकी समान भूमिपर विचरनेलगा ॥३२॥ इस प्रकार पृथ्वी पर फिरते २ एक समय उस पुरूरवाने, कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर, उस उर्वशीको और हर्षयुक्त उसकी पाँच सखियोंको देखकर मधुरवाणीमें यह कहा ॥ ३३ ॥ अहो स्त्री ! तू अब मुझसे

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि । मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥३४॥ सुदेहोयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया । खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच । मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मास्म त्वाऽद्युर्वृका इमे । क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः । घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः । नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ३८ संवत्सरांते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर । वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ३९ अन्तर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् । पुनस्तत्र गतोऽब्दांते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥ उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् । अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् । गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति । तस्य संस्तुवतस्तुष्टा

उत्तम सुखको न पाकर मुझे घोर विरह दुःखमें डालनेके योग्य नहीं है इस कारण जा नहीं, ठहर, ठहर, तू और मैं मिल कर परस्पर आनन्दकी बातें करें ॥ ३४ ॥ हे देवि ! यह मेरा सुन्दर देह,तूने बहुत दूर छोड़ दिया है,इसके ऊपर तेरी कृपा नहीं हुई तो अब यह यहाँ ही प्राणहीन होकर गिर पड़ेगा और इसको भेड़िये तथा गिद्ध खायँगे, इस कारण तू मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३५ ॥ ऐसा भाषण करने पर उर्वशी कहने लगी कि-हे राजन् ! तू प्राण न त्याग, क्योंकि-तू पुरुष है इसकारण धीरज धर, यहाँके भेड़िये तुझे भक्षण न करें अरे ! स्त्रियोंकी मित्रता कहीं भी स्थिर नहीं होती है,जैसे भेड़ियोंका हृदय अतिक्रूर होता है तैसे ही स्त्रियोंका हृदय होता है ॥ ३६ ॥ अर्थात् यह स्त्रियें क्रूर स्वभाववाली,निर्दयी और क्षमाहीन होकर अपने हितके लिये साहसका काम करती हैं, इस कारण उस थोड़ेसे कामके निमित्त भी, विश्वास करनेवाले पतिको वा भ्राताको भी मारडालती हैं फिर औरोंका तो कहना ही क्या ? ॥ ३७ ॥ और यह स्त्रियें, अज्ञानी पुरुषोंमें कपट करके विश्वास दिखाती हैं परन्तु आप स्नेहहीन होकर व्यभिचार करने वाली और नवीन २ पतिकी इच्छा करने वाली होनेके कारण यथेच्छ वर्त्ताव करती हैं इस कारण तू मेरा स्नेह छोड़ दे ॥ ३८ ॥ ऐसा कहने पर भी उस राजाको शान्ति न हुई इस कारण समझाती है कि-हे समर्थ राजन् ! तू धीरज धर, आजसे एक वर्षके अनन्तर तू एक रात्रिको मेरे साथ इस स्थल पर वास करेगा और मुझसे तेरी और सन्तान भी होंगी (इस से उसने यह सूचित करा कि-अब मैं गर्भिणी हूँ) ॥३९॥ तदनन्तर उस उर्वशीको गर्भिणी जान कर वह राजा पुरूरवा अपने नगरको लौट गया, फिर वर्षभर बीत जाने पर तिस कुरुक्षेत्रमें आकर उसने पुत्रसहित आईहुई उर्वशीको देखा और हर्षयुक्त होकर उसके साथमें उस रातको तहाँ ही रहा ॥४०॥ दूसरे दिन तहाँसे जाते में अपने वियोगसे व्याकुल हुए उस दीन पुरूरवासे उर्वशीने कहा कि-तू गन्धर्वोंको स्तुति आदि करके सन्तुष्ट करले तब यह गन्धर्व तेरे अर्थ मुझे देदेंगे ॥४१॥ हे राजन् ! तदनन्तर उस पुरूरवाके स्तुति करनेपर प्रसन्नहुए गन्धर्वोंने उस पुरूरवाको, 'इस अग्निके द्वारा तू,उर्वशीलोककी प्राप्तिके साधन कर्मको करके तहाँ जायगा

अग्निस्थालीं ददौ नृप । उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुद्ध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि । त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः । तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४ ॥ उर्वशीं मंत्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् । आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५ ॥ यस्य निर्मथनाज्जातो जातवेदा विभावसुः । त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनायजत यज्ञेशं भगवंतमधोऽक्षजम् । उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥ एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः । देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप । अग्निना प्रजया राजा लोकं गांधर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

तो तुझे उर्वशी मिलेगी, ऐसे अभिप्रायसे उन्होंने उसको' उर्वशी नाम वाली एक अग्निस्थाली दी, तदनन्तर वह राजा, उस स्थालीको ही यह उर्वशी है ऐसा मान कर हृदयसे लगाये हुए कुछ कालपर्यंत वनमें फिरता रहा, फिर उसने यह उर्वशी नहीं है, किन्तु अग्निस्थाली है ऐसा जाना ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उस स्थालीको वन में ही डाल कर वह अपने घरको चला गया और रात्रिके समय नित्य उर्वशीका ही ध्यान करने वाले उस राजाके मनमें तिस त्रेतायुगके प्रारम्भमें कर्मको बताने वाले तीन वेद प्रकट हुए ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उसने स्थाली डालनेके स्थान पर वनमें जा कर तहाँ शमी (जण्ट) के वृक्षके पेटमें उत्पन्न हुए अश्वत्थ (पीपल) के वृक्षको देख कर और उसमें 'यह अग्नि है' ऐसा विशेषरूपसे जान कर उस पीपलके काठ की दो अरणि (अग्निको मथनेके काठ) बना कर अपनेको उर्वशीलोककी प्राप्ति होनेके निमित्त अग्निको मथा ॥ ४४ ॥ उनमेंसे नीचेकी अरणिको यह उर्वशी है और ऊपरकी अरणिको यह पुरूरवा है ऐसा विचारने वाले और दोनोंके मध्यमेंके काठ को पुत्ररूपसे विचारने वाले तिस राजा पुरूरवाने, अग्निके मथनेको प्रकाशित करनेवाले मन्त्रके द्वारा अग्निको मथा ॥ ४५ ॥ उसके मथनेसे जातवेदा नामवाला अग्नि उत्पन्न हुआ, वह तीनों वेदोंसे होनेवाले आधान संस्कार करके आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन नामोंसे प्रसिद्ध हुआ, उसको, पुण्यलोकको पहुँचाने वाला होनेके कारण राजाने 'यह मेरा पुत्र है' ऐसा माना ॥ ४६ ॥ तदनन्तर उर्वशीलोककी इच्छा करने वाले उस पुरूरवाने, उस साधनरूप अग्निके द्वारा, यज्ञ का फल देने वाले, सर्वदेवमय, अधोक्षज, भगवान् श्रीहरिका यजन करा ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! पहिले सत्ययुगमें सकल वाणीका बीजभूत एक ॐकार ही वेद था, देवता भी एक नारायण ही थे, दूसरा कोई नहीं था, तथा लौकिक अग्नि और हंस नामक वर्ण यह भी एकर ही थे ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! फिर त्रेतायुगके प्रारम्भमें तीन वेद पुरूरवासे ही प्रकट हुए अर्थात् सत्ययुगमें बहुधा सब ही लोग सत्वगुणप्रधान ध्याननिष्ठ थे, त्रेतायुगमें ही तीन वेदोंके विभागसे यज्ञ आदि कर्ममार्ग प्रकट हुआ तदनन्तर राजा पुरूरवा, पुत्ररूपसे स्वीकार करे हुए अग्निके द्वारा गंधर्वलोकको चलागया ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त १४

श्रीशुक उवाच । ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप । आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः । रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ कांचनो होत्रकस्ततः । तस्य जन्हुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् । जन्होस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशांबुमूर्त्तयो वसुः । कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशांबुजः ॥४॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः । वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् । सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥ इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणांतिकम् । आनीय दत्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया । श्रपयित्वोभयैर्मंत्रैश्चरुं स्नातुं गतो

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! उस पुरूरवा राजाके उर्वशीसे छः पुत्र हुए, उनके नाम आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय यह थे ॥ १ ॥ उनमें श्रुतायुका पुत्र वसुमान् हुआ, सत्यायुसे श्रुतञ्जय हुआ, रयके एक नाम वाला पुत्र हुआ, जयके अमित नाम वाला पुत्र हुआ ॥ २ ॥ विजयके भीम नाम वाला पुत्र हुआ, तिससे काञ्चन हुआ, तिससे होत्रक हुआ,तिसके जन्हु नामवाला पुत्र हुआ उसने सकल ही गङ्गाको अञ्जुलिमें लेकर पीलिया था, फिर वह उसकी जंघामेंको होकर निकली इस कारण उसको जान्हवी कहते हैं ॥ ३ ॥ जन्हुसे पूरु नाम वाला पुत्र हुआ, तिसका पुत्र बलाक, तिसका पुत्र अजक, तिससे कुश नाम वाला पुत्र हुआ, तिस कुशके भी कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ यह चार पुत्र हुए, उन में कुशाम्बुसे गाधि नाम वाला पुत्र हुआ; ॥ ४ ॥ उसके विश्वामित्र नामक ब्रह्मर्षि पुत्र हुए यह आगेके अध्यायमें आवेगा, उस राजा गाधिकी सत्यवती नामक कन्या ऋचीक ऋषिने विवाह करनेके निमित्त माँगी तव राजा गाधिने,ऐसा मनमें विचार कर कि-यह वर मेरी कन्याके योग्य नहीं है, ऋचीक ऋषिसे कहा कि-॥ ५ ॥ हे ऋषे ! दायाँ वा बायाँ इन दोनों कानोंमेंसे जिनका एक कान श्यामवर्ण है और जिनके सकल शरीरमें चन्द्रमाकी समान तेज है ऐसे एक सहस्र घोड़े मेरी कन्या का शुल्क (विवाहके समय देनेका नजराना) दो तव मैं कन्या दूँगा,यह भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि-हम कुशिक कुलके परमकुलीन हैं इस कारण हमारी कन्या दुर्लभ है ॥ ६ ॥ ऐसा कहने पर उस गाधि राजाका अभिप्राय, अर्थात् मैं योग्य नहीं हूँ इस कारण दुर्लभ घोड़े माँगकर मुझे टाल दिया है, ऐसा जानकर वह ऋषि वरुण के समीप गये और उनसे वह उस प्रकारके घोड़े माँग कर लादिये और उन्होंने तिस सत्यवती कन्याको वर लिया ॥ ७ ॥ फिर एक समय सत्यवतीने और उसकी माताने मेरे पुत्र हो इस इच्छासे ऋषिकी प्रार्थनाकरी तव स्त्रीके निमित्त ब्रह्मतेजकी वृद्धि करने वाले और सासके निमित्त क्षत्रियतेजको बढ़ाने वाले ऐसे दो प्रकारके मंत्रोंसे संस्कार करे हुए अलग २ चरु पका कर, वह ऋषि स्नान करनेको नदीपर गये, सो लौट कर आनेसे पहिले ही 'स्त्रीके ऊपर पतिका विशेष प्रेम होता है इस

मुनिः ॥ ८ ॥ तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती । श्रेष्ठं मत्वा तयायच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः । घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः । अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी । रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥ तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः । यवीयान् जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलांतकम् । त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् १४ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् । रजस्तमोवृतमहन् फल्गुन्यपि कृतेऽहसि राजोवाच । किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः । कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच । हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः । दत्तं नारायणांशांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥१७॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्द्धर्षत्वमरातिषु अव्या-

कारण मेरेसे मेरी कन्याका चरु श्रेष्ठ है ऐसा मान कर' सत्यवतीकी माताने तिस पतिव्रता अपनी कन्या सत्यवतीसे माँगा तब उसने अपना वह ब्रह्मतेजको बढ़ाने वाले मन्त्रोंसे अभिमन्त्रण कराहुआ चरु माताको दिया और माताका क्षत्रियके तेज को बढ़ाने वाले मन्त्रोंसे अभिमंत्रण करा हुआ चरु आप भक्षण कर लिया । ८॥९। तदनन्तर स्नान करके आये हुए उन ऋषिने, 'मेरी स्त्री और सासने चरुको बदल कर भक्षण करा है यह' जानकर स्त्रीसे कहा कि—हे स्त्री ! तूने चरु बदला यह बड़ा बुरा कर्म करा है, इस कारण तेरा पुत्र शस्त्र धारण करनेवाला क्रूर स्वभावका होयगा और तेरा भ्राता ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ होयगा ॥ १० ॥ तदनन्तर ऐसा न होने के निमित्त सत्यवतीके प्रार्थना करे हुए वह ऋचीक ऋषि कहने लगे कि–यदि तेरा ऐसाही कहना है तो तेरा पोता तैसा (शस्त्रधारी और क्रूरस्वभाववाला) होयगा फिर उस सत्यवतीके जमदग्नि नामक शान्तस्वभाववाला पुत्र हुआ ॥११॥ और वह सत्यवती लोकोंके पापोंका नाश करनेवाली, महापुण्यकारिणी कौशिकी नाम वली नदी होगई, अर्थात् नदीरूपसे परिणामको प्राप्त हुई, जमदग्नि ऋषिने, रेणु ऋषिकी रेणुका नाम वाली कन्याके साथ विवाह करा, उसके विषें उन जमदग्नि ऋषिसे वसुमान आदि पुत्र हुए, उनमें जो छोटे थे वह राम (परशुराम) नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ १२ ॥ १३ ॥ जिनको वासुदेव भगवान्का अवतार और हैहय राजाओंका (सहस्रबाहु आदिकोंका) अन्त करने वाला कहते हैं, उन परशुरामजीने इस पृथ्वीको इक्कीसवार क्षत्रिय बीज रहित करा ॥ १४ ॥ उन्होंने थोड़ासा भी अपराध करने पर उसके निमित्तसे रजोगुणी और तमोगुणी, अधर्मी, ब्राह्मणोंमें भक्ति न करने वाले तथा पृथ्वीके भार समान उस घमण्डी क्षत्रियकुलका नाशकर डाला १५ राजाने कहा कि–हे शुकदेवजी ! जिसके हेतु परशुरामजीसे क्षत्रियोंका कुल बारंबार नाशको प्राप्त हुआ ऐसा, मनको न जीतने वाले राजाओंने उस भगवान् परशुरामजीका कौनसा अपराध करा था ? ॥१६॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! हैहय नामक राजाओंका अथवा देशोंका स्वामी और क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ जो कार्त्तवीर्य

इतीन्द्रियौजः श्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः । चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवांभसि मदोत्कटः । वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥ विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतःसरिज्जलैः । नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः । माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने । यदृच्छयाश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् । ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४ ॥ स वीरस्तत्र तद्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् । तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः सहैहयः ॥२५॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् । ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रंदतीं बलात् ॥ २६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम

अर्जुन तिसने सेवा आदिके द्वारा श्रीनारायणके अवतार श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना करके प्रसन्न करे हुए उनसे, दश सहस्र भुजा, शूरोंमें अजेयपना, किसीसे न रुकने वाला इन्द्रियोंका बल, धन सम्पत्ति, शरीरकी कांति, बुद्धिबल, कीर्त्ति और शरीरका बल यह पाये ॥ १७ ॥ १८ ॥ तथा योगेश्वरपना और जिसमें अणिमा महिमा आदि गुण हैं ऐसे ऐश्वर्यको भी पाकर, जैसे वायु लोकोंमें बेरोक गतिसे विचरता है तैसे विचरने लगा ॥ १९ ॥ एक समय अत्यन्त मदमें भरा हुआ वह सहस्रार्जुन, कण्ठमें रत्नोंसे जड़ी वैजयन्ती मालाको पहिन कर उन स्त्रियोंसे घिरा हुआ नर्मदा नदीके जलमें क्रीड़ा कर रहा था सो उसने अपनी सहस्रभुजाओंसे उस नदीके प्रवाहको रोक दिया ॥ २० ॥ उस समय दिग्विजयके निमित्त निकला हुआ रावण, उस सहस्राबाहुकी नगरीके समीपमें नर्मदाके तट पर सेना सहित उतर कर देवपूजा कर रहा था, सो सहस्राबाहुके रोकनेके कारण पीछेको लौट कर चले हुए जलने, मेरे शिबिर (सेनाके पड़ावके स्थान) को डुबो दिया, ऐसा देख कर, अपनेको उस सहस्रबाहुसे भी अधिक वीर मानने वाले तिस रावणने, उस सहस्रबाहुकी नदीको रोकनेकी शक्तिको नहीं सहा ॥ २१ ॥ तदनन्तर क्रीड़ा करने वाले उस सहस्रबाहुका तिरस्कार करनेको प्रवृत्त हुए तिस रावणको, जिस सहस्रबाहुने स्त्रियोंके सामने अनायासमें पकड़ कर माहिष्मती नगरीमें कुछ समय पर्यंत वानरकी समान रोक रक्खा था और फिर अपमान करके छोड़ दिया था ॥ २२ ॥ वह सहस्राबाहु एक समय भयंकर वनमें मृगया (शिकार) करते २ अनायास ही जमदग्नि ऋषिके आश्रममें चला गया ॥ २३ ॥ तब उन तपोधन ऋषिने, सेना और मन्त्रिमण्डली तथा घोड़े हाथी आदि सहित आये हुए उस राजा सहस्राबाहुका, कामधेनुके आश्रयसे भोजन आदिसे अलौकिक सत्कार करा ॥ २४ ॥ तब हैहय राजाओं सहित और अपनेमें वीरपनेका अभिमान रखने वाले उस सहस्राबाहुने, तिस आश्रममें अपने ऐश्वर्यसे भी अधिक, तिस कामधेनुके आश्रयसे रचे हुए ऋषिके ऐश्वर्यको देख कर कामधेनुको लेनेकी अभिलाषा करी और ऋषिके करे हुए अतिथिसत्कारसे सन्तोष नहीं माना ॥ २५ ॥ और घमण्डसे ऋषिकी कामधेनु

आश्रम आगतः । श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २६ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् । अन्वधावत दुर्द्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् । ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभियुतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः । अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः । ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकंधरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः । विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥ ३२ ॥ अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स सन्दधे । रामाय रामोऽस्त्रभृतः समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपा-

छीन लेनेको मनुष्योंको आज्ञा दी, तब उसे बलात्कारसे रम्भाने वाली तिस बछड़े सहित कामधेनुको माहिष्मती नगरीमेंको लेगए ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस राजाके चले जाने पर; पहिलेसे कहीं औरको गये हुए परशुरामजी पिताके आश्रममें आये और सहस्राबाहु राजाकी वह गौको ले जानारूप दुर्जनताको सुन कर, ताड़ना करे हुए सर्पकी समान क्रुद्ध हुए ॥ २७ ॥ और भयंकर फरसा तथा तर्कस सहित ढाल और धनुषको लेकर, जिनका जीतना कठिन है ऐसे उन परशुरामजीने, जैसे सिंह गजराजके ऊपरको धावा करता है तैसे उस सहस्राबाहुके ऊपर धावा करा ॥ २८ ॥ उस समय धनुष धारण करने वाले, बाण और फरसा इन आयुधोंको सम्हाले हुए, कृष्णमृगचर्मको धारण करे और सूर्यकी समान जिनका तेज है ऐसी जटाओं वाले वह परशुरामजी, वेगसे झपटे चले आरहे हैं ऐसा, नगरीमें घुसते हुए तिस सहस्राबाहुने देखा ॥ २९ ॥ और उसने तिन परशुरामजीके ऊपर हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलों वाली तथा गदा, खड्ग, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति इन आयुधोंसे अति भयंकर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, उसको इकले ही परशुरामजीने परमधाम पहुँचा दिया ॥ ३० ॥ उस समय, जिनका फरसा शत्रुओंका प्रहार कर रहा है और जिनका वेग मनकी समान तथा वायुकी समान है वह शत्रुसेनाका नाश करने वाले परशुरामजी, उस रणभूमिमें जिधर २ फिरते थे उधर २ ही जिनकी भुजा, जङ्घा और कण्ठ कट गए हैं तथा जिनके सारथि और घोड़े आदि वाहन मरणको प्राप्त होगए हैं ऐसे सहस्रों वीर मर कर गिरते थे ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वह सहस्राबाहु, परशुरामजीके फरसे और बाणोंसे, जिसकी ढाल, ध्वजा, धनुष और शरीर कट गए हैं तथा जो रुधिरके बहनेसे किचौंदी हुई युद्धभूमिमें पड़ी है ऐसी अपनी सेनाको देख कर क्रोधमें भर गया और आप ही युद्ध करनेको आया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सहस्र भुजा वाले तिस अर्जुनने, पाँच सौ धनुषोंपर पाँच सौ भुजाओंसे पाँच सौ बाण, परशुरामजीको मारनेके निमित्त एक साथ चढ़ाये, उस समय जिनका सहायक एक ही धनुष है परन्तु शस्त्रधारियोंमें मुख्य ऐसे तिन परशुरामजीने, वह पाँच सौ धनुष अपने छोड़े हुए बाणोंसे तत्काल काट दिये ॥ ३३ ॥

नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि । भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् । हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा । समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥३६॥ स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च । वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् । अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयाऽर्हणतां गताः । यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा । क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥ राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः । तीर्थसंसेवया चांहो जह्यंगाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच । पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन । संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् । गंधर्वराजं

फिर अपने हाथोंसे युद्धके साधन पर्वतवृक्ष आदिको लेकर वेगसे दौड़ने वाले तिस सहस्रबाहुकी भुजाएँ, परशुरामजीने बलात्कारसे अपने तीखी धार वाले फरसेसे सर्पके फन काटनेकी समान युद्धमें काट डालीं ॥३४॥ तदनन्तर जिसकी भुजा कट गई हैं ऐसे उस सहस्रबाहु अर्जुनका मस्तक, पर्वतके शिखरको तोड़ कर गिरानेकी समान काट डाला, इस प्रकार उस सहस्रबाहु अर्जुनका वध करने पर उसके दश सहस्र पुत्र थे वह भयके मारे युद्धकी भूमिको छोड़कर भाग गये ३५ तदनन्तर शत्रुवीरोंका नाश करने वाले परशुरामजी, शत्रुके खैंचनेके कारण परम दुःखित हुई तिस बछड़े सहित धेनुको लौटा कर अपने आश्रममें आये और वह अपने पिता (जमदग्नि) को समर्पण करी ॥ ३६ ॥ और परशुरामजीने, वह राजा अर्जुनका वध करना आदि अपना करा हुआ कर्म, पितासे और भ्राताओंसे कहा, तिसको सुन कर जमदग्नि ऋषिने कहा कि-॥ ३७ ॥ हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! तूने जो सकल देवतामय राजा अर्जुनका व्यर्थ वध करा है सो बड़ा भारी पाप करा ॥ ३८ ॥ हे तात राम ! हम ब्राह्मण निःसन्देह क्षमा करके पूजनीय-पनेको प्राप्त हुए हैं, तिस क्षमा करके ही सब लोकोंके पूजनीय यह ब्रह्माजी भी सर्वोत्तम ब्रह्मपदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ क्षमासे ही ब्राह्मणकुलका शमदमादिका तेज सूर्यकी कान्तिकी समान प्रकाशित होरहा है, क्षमावान् पुरुषोंके ऊपर ही भगवान् ईश्वर श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥ ४० ॥ हे राम ! क्योंकि-अभिषेक करके राज्य पर स्थापन करे हुए राजाका वध ब्राह्मणके वधसे भी अधिक पापकारक है इससे तू भगवान्के विषै अपना चित्त लगा कर, गङ्गादि तीर्थोंके सेवनसे अर्जुनका वध करनेसे प्राप्त हुए पापका नाश कर ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे कुरुकुलनन्दन राजन् ! इस प्रकार पिताके आज्ञा करने पर तिन परशुरामजीने, पिताकी आज्ञाको 'तथास्तु' (बहुत अच्छा) कह

क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयंती क्रीडंतमुदकार्थं नदीं गता । होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथे स्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशंकिता । आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृतांजलिः ॥ ४ ॥ व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् । घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५ ॥ रामः संचोदितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् । प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च यः ॥ ६ ॥ वरेणच्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः । वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥७॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवांजसा । पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८ ॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् । रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥ एकदाश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।

कर स्वीकार करा और एक वर्ष पर्यंत तीर्थयात्रा करके फिर लौट कर आश्रममें आगये ॥ १ ॥ एक समय परशुरामजीकी माता रेणुका, गङ्गाजी पर जल लानेको गई सो उसने तिस गङ्गामें अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करने वाले और कमलोंकी माला पहिने हुए चित्ररथ नामवाले गन्धर्वको देखा और उसको देखती हुई खड़ी रहनेवाली तिस रेणुकाने, चित्ररथके विषयमें कुछ इच्छा करके, हवनका समय बीताजाता है यह कुछ ध्यान नहीं रक्खा ॥२॥३॥ तदनन्तर हवनका समय बीत गया ऐसा जानकर जमदग्निके शापसे डरी हुई वह रेणुका, शीघ्रतासे आकर लाया हुआ जलका कलश जमदग्नि ऋषिके सामने रखकर हाथ जोड़कर खड़ी होगई ४ तदनन्तर वह जमदग्नि ऋषि, योगशक्तिसे यह जानकर कि-मेरी स्त्री रेणुकाका चित्ररथके साथ भोगकी इच्छारूप मानसिक व्यभिचार हुआ, अतिक्रोधमें भरकर पुत्रोंसे कहने लगे कि-अरे पुत्रो ! परपुरुषसे चित्त लगाने वाली इस अपनी माता को तुम मारडालो, ऐसा कहनेसे भी उन पुत्रोंने माताका वध नहीं करा ॥ ५ ॥ तब तिन जमदग्नि ऋषिने, परशुरामजीको पुकार कर उनको, अपनी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले भ्राताओंको और माताका वध करनेके निमित्त आज्ञा देनेपर तिन परशुरामजीने माता सहित भ्राताओंका वधकरा; क्योंकि-वह परशुरामजी, जमदग्नि ऋषिकी समाधि, योग और तपके प्रभावको जानते थे अर्थात् यदि मैं भ्राताओंका वा माताका वध नहीं करूँगा,तो यह ऋषि कोपमें होकर शाप देनेको समर्थ हैं और जो यदि वधकरडालूँगा तो मेरे प्रार्थना करने पर तिन सबोंको जीवित करनेको समर्थ हैं, ऐसा जानते थे ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हुए जमदग्नि ऋषिने, परशुराम जीसे कहा कि-इच्छित वर माँगले, तब परशुरामजीने मरणको प्राप्तहुए माता और भ्राता जीवित हों और उनको अपने वधका स्मरण नहीं हो, यह वर माँगलिया ७ तदनन्तर वह भ्राता और माता यह सब सोकर उठे हुए की समान अनायासमें ही जीवित होकर उठ खड़े हुए इस प्रकार पिताके तपके प्रभावको जाननेवाले तिन परशुरामजीने भ्राता आदिकोंका वध करा ॥८॥ सब क्षत्रियोंके वध करनेका कारण यह है कि हे राजन् ! परशुरामजीके प्रभावसे तिरस्कार पाकर युद्धमेंसे भागे हुए जो अर्जुनके दशसहस्र पुत्र थे, वह परशुरामजीके करे हुए अपने पिताके वधको

वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन्॥१०॥दृष्ट्वाऽग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम्। भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥११॥ याच्यमाना कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः। प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्त्ता निघ्नत्यात्मानमात्मना। राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ।१३। तदुपश्रुत्य दूरस्था हा रामेत्यार्त्तवत्स्वनम्। त्वरयाश्रममासाद्य ददृशो पितरं हतम्१४ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः। हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान्स्वर्गतो भवान् ॥ १५ ॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम्। प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रांताय मनो दधे ॥१६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम्। तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥१७॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम्। हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमंगलकारिणि ॥ १८ ॥ त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्ष-

स्मरण करते हुए कहीं भी सुखको प्राप्त न हुए ॥ ९॥ एक समय वह परशुरामजी, अपने भ्राताओंके साथ आश्रममेंसे कहीं वनको चले गए थे सो जमदग्नि ऋषिके वध करनेका अवसर पाकर वह अर्जुनके पुत्र, परशुरामजीके करेहुए अपने पिता के वधका वैर, उनके पिताका वध करके साधें यह निमित्त करके उनके आश्रममें आये ॥ १० ॥ तब अग्निकी हवनशालामें बैठे हुए और उत्तमकीर्त्ति भगवान्‌के विषैं जिन्होंने अपनी बुद्धिको स्थिर करा है ऐसे उन जमदग्नि ऋषिको देख कर, उनके वधरूप पापका ही निश्चय करनेवाले उन्होंने तिन जमदग्नि ऋषिका वध करा११ तब दीन रेणुकाने, 'इनको मारो मत, मारो मत' ऐसी उनकी प्रार्थना करी, तबभी अतिक्रूर स्वभाव वाले वह अधमक्षत्रिय, बलात्कारसे उनका शिर काट कर अपने नगरमेंको लेगये ॥ १२ ॥ उस समय पतिके वियोगसे उत्पन्न होनेवाले दुःखसे और पतिके विना आगेको कैसी होयगी इस चिन्तासे पीड़ित हुई तथा हाथोंसे शिर और छातीको कूटने वाली वह पतिव्रता रेणुका, हे राम ! हे राम ! हे तात ! शीघ्र आओ, इस प्रकार ऊँचे स्वरसे परशुरामजीको पुकारने लगी ॥ १३ ॥ तदनन्तर उसका 'हा राम !' ऐसा दुःखितकी समान शब्द, दूरसे ही सुन कर परशुरामजी शीघ्रतासे आश्रममें आये और उन्होंने मरणको प्राप्त हुए पिताको देखा ॥ १४ ॥ तब सन्ताप, क्रोध, अपराध न सहना, दीनता और शोकके वेगसे मोहित हुए तिन परशुरामजीने, हे तात ! हे साधो ! हे धर्मात्मन् ! हमको छोड़ कर तुम स्वर्गको सिधार गये,ऐसा विलाप करके,रक्षा करनेके निमित्त वह पिताका शरीर भ्राताओं को सौंपा और हाथमें फरसा लेकर क्षत्रियकुलका नाश करनेका संकल्प करा१५।१६ तदनन्तर हे राजन् ! उन परशुरामजीने, ब्रह्मघातक राजे होनेके कारण जिसकी शोभा नष्ट होगई है ऐसी उस माहिष्मती नगरीमें जाकर, तहाँ उन अधम क्षत्रियों के काटे हुए मस्तकोंसे एक बड़ा भारी पर्वत बना दिया ॥ १७ ॥ और उन राजाओं के रुधिरसे, ब्राह्मणोंकी भक्ति न करने वाले लोकोंको भय देने वाली एक भयंकर नदी उत्पन्न करी, हे राजन् ! जब क्षत्रियोंका कुल अन्यायसे वर्त्ताव करने लगा तब पिता (जमदग्नि) के वधको निमित्त करके उन प्रभु परशुरामजीने इक्कीस

त्रियां प्रभुः । स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान्नव ॥ १९ ॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि । सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥२०॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् । अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवांतरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् । आर्यावर्त्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥२२॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः । सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् । ऋषीणां मण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४ ॥ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः । आगामिन्यंतरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशांतधीः । उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥२६॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः । अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥ गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः । तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ।२८। विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप । मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते

बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करा और स्यमन्तपञ्चक नाम वाले देशमें रुधिररूपाजल के पाँच तालाब बनाये ॥ १८ ॥ १९ ॥ तदनन्तर पिताका वह मस्तक लाकर, यज्ञमें पिताके शरीरसे जोड़कर तिन परशुरामजीने, बहुतसे यज्ञों करके सबके अन्तरात्मा सकलदेवमय विष्णुभगवान्की आराधना करी ॥ २० ॥ उन यज्ञोंमें परशुरामजीने होताको पूर्वदिशाकी पृथ्वी दी, ब्रह्माको दक्षिण दिशामेंकी, अध्वर्युको पश्चिममेंकी और उद्गाताको उत्तर दिशामेंकी पृथ्वी दी॥२१॥और ऋत्विजोंको अग्निकोण आदि दिशाओंमेंकी भूमि देकर कश्यपजीको मध्यकी भूमि दी, उपद्रष्टाको आर्यावर्त्त (विन्ध्याचल और हिमाचलके मध्यकी भूमि) दी ॥२२॥ तदनन्तर ब्रह्मा हैं देवता जिसके ऐसी सरस्वती नदीमें यज्ञके अन्तका स्नान करनेके कारण जिनके सकल पातक दूर होगए हैं ऐसे वह परशुरामजी मेघमण्डलसे छूटे हुए सूर्यकी समान शोभित होने लगे ॥ २३ ॥ वह जमदग्नि ऋषि तो पहिलेके स्मरणसे युक्त अपना शरीर पाकर, परशुरामजीसे पूजित होते हुए कश्यपादि ऋषियोंके मण्डलमें सातवें एक ऋषि हुए ॥ २४ ॥ हे राजन् ! वह जमदग्निके पुत्र कमलनेत्र भगवान् परशुरामजी भी, आगे आने वाले सावर्णि नामक मन्वन्तरमें वेदका प्रचार करने वाले सप्तऋषियोंमें एक ऋषि होयँगे ॥ २५ ॥ वह परशुरामजी, क्षत्रियोंका वध करना आदि दण्डका त्याग करकेऔर बुद्धिको परमशान्त करके सिद्ध गन्धर्व और चारणों ने जिनके चरित्रको गाया है ऐसे महेन्द्र नामक पर्वत पर अब भी रहते हैं ॥ २६ ॥ इस प्रकार विश्वात्मा, भगवान् ईश्वर श्रीहरिने, भृगुवंशमें अवतार धार कर पृथ्वीके परमभाररूप बहुतसे राजाओंका वध करा ॥ २७ ॥ हे राजन् ! गाधि राजासे जलते हुए अग्निकी समान परमतेजस्वी विश्वामित्र नाम वाला पुत्र हुआ, उसने अपने तपसे अपने क्षत्रियपनेको त्याग कर ब्रह्मर्षिपना पाया था ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उन विश्वामित्रजीके भी एक सौ पुत्र थे, उनमें बिचले पुत्रका नाम मधुच्छन्दस् था,उस के कारण उन सबोंको मधुच्छन्दस् कहते थे ॥ २९ ॥ विश्वामित्रजीने भृगुवंशमें

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् । आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः । स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबन्धनात् ॥३१॥ यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः । देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः ॥ ३२ ॥ ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् । अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥ स होवाच मधुच्छन्दाः सार्द्धं पञ्चाशता ततः । यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वंचो वयं स्म हि । विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ । ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवंतमकर्त माम् ॥ ३५ ॥ एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित । अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥३६॥ एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् । प्रवरांतरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥

उत्पन्न हुए अजीगर्त्तके देवरात इस (दूसरे) नामसे प्रसिद्ध शुनःशेप नाम वाले पुत्रको अपने पुत्रके नातेसे स्वीकार करके अपने सौ पुत्रोंसे कहा कि-हे पुत्रो ! तुम इस शुनःशेपको अपना मधुच्छन्दा नाम वाला बड़ा भ्राता जानो ॥ ३० ॥ जो शुनःशेप, राजा हरिश्चन्द्रके यज्ञमें पुरुषपशु बना कर मारनेके निमित्त माता पिताने स्नेहको त्याग कर बेच दिया तब यज्ञके खम्भेमें बाँधा गया था, वह अपने जीवित छूटनेके निमित्त विश्वामित्रकी शरणमें गया तब उनके उपदेश करे हुए मन्त्रसे ब्रह्मादि देवताओंकी स्तुति करके उनकी कृपा होने पर पाश बन्धनसे छूट गया३१ जिसको यज्ञमें देवताओंने जीवित छोड़ कर, रक्षा करी इस कारण फिर जो गाधि राजाके कुटुम्बियोंमें देवरात इस नामसे प्रसिद्ध तपस्वी हुआ, वही भृगुवंशमें उत्पन्न होने वाला शुनःशेप था ॥ ३२ ॥ इसको तुम बड़ा भ्राता मानो, ऐसा जो विश्वामित्र जीने कहा था तिसको विश्वामित्रजीके मधुच्छन्दस् नामवाले सौ पुत्रोंमेंसे उनञ्चास पुत्रोंने अच्छा नहीं माना, तब क्रुद्ध हुए विश्वामित्र ऋषिने, उनको यह शाप दिया कि-अरे दुष्टो ! तुम म्लेच्छ होजाओ ॥३३॥ तदनन्तर पचास छोटे भ्राताओं सहित जो विचला (पचासवाँ) मधुच्छन्दा था वह विश्वामित्रसे कहने लगा कि—तुम पिता, हम पुत्रोंको जो (शुनःशेपको बड़ा माननेको) कहते हो तिस तुम्हारी आज्ञा में हम रहेंगे ॥ ३४ ॥ ऐसा कह कर उन्होंने मन्त्रद्रष्टा उस देवरातको बड़ा बना लिया और कहने लगे कि-हे शुनःशेप ! हम सब तुम्हारे छोटे भ्राता हैं तब प्रसन्न हुए विश्वामित्रजीने उन पुत्रोंसे कहा कि-जिन तुमने मेरा पूजनीयपना स्वीकार करा और मुझे पुत्रवान् करा सो तुम भी आगेको पुत्रवान् होओगे॥३५॥हे कुशिको ! यह देवरात तुम्हारा कुशिक ही है क्योंकि-यह मेरा पुत्र है इस कारण अब तुम इसके अनुकूल वर्त्ताव करो, विश्वामित्रजीके उन पुत्रोंके सिवाय और भी अष्टक, हारीत, जय, क्रतुमान् आदि पुत्र थे ॥ ३६ ॥ इसप्रकार किन्हींको शाप हुआ, किन्हीं के ऊपर कृपा हुई और एक पुत्ररूपसे स्वीकार करा गया, इस प्रकार विश्वामित्रजी के पुत्रोंसे यह कौशिक गोत्र नानाप्रकारका हुआ क्योंकि-देवरातको बड़ा माननेके कारण यह भिन्न प्रकारके होगये अतः उनके दूसरे ही प्रवर हुए ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें षोडश अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ छ ॥

श्रीशुक उवाच । यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः । नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् । अनेना इति राजेंद्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् । क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् । शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमःपिता । धन्वंतरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः । तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः । स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः । तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥ ७ ॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः । धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥८॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः । वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भर्गभूमिरभून्नृपः ॥ ९ ॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः । रंभस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः । शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥ ततः शांतरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् । रजेः पंचशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजेन्द्र ! जो पुरूरवा आयु नाम वाला पुत्र कहा था उसके आगेको पाँच पुत्र हुए, उनके नाम-नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, महापराक्रमी रम्भ और अनेना यह थे, तिनमें पहिले क्षत्रवृद्धका वंश कहता हूँ सुनो क्षत्रवृद्धका पुत्र सुहोत्र, उसके काश्य, कुश और गृत्समद यह तीन पुत्र थे, उनमें गृत्समदसे शुनक हुआ, तिसका ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ शौनक मुनि नामक पुत्र हुआ ॥ १—३ ॥ काश्यका पुत्र काशि, तिसका पुत्र राष्ट्र, तिसका पुत्र दीर्घतमा, तिसका पुत्र आयुर्वेद का प्रचार करने वाला धन्वन्तरि हुआ ॥ ४ ॥ वह यज्ञभोक्ता वासुदेव भगवानका अंश था, और स्मरणमात्रसे ही रोगोंकी पीड़ाका नाश करनेवाला था तिसका पुत्र केतुमान्, तिसका भीमरथ हुआ, तिससे दिवोदास, तिससे द्युमान् हुआ, हे वत्स राजन् ! उसको ही प्रतर्दन कहते हैं और वही शत्रुजित्, ऋतध्वज और कुवलयाश्व इन नामोंसे कहा गया है, तिस द्युमानसे अलर्क आदि पुत्र हुए ॥५॥६॥ हे राजन् ! साठ सहस्र वर्ष और साठसौवर्ष अर्थात् छयासठ सहस्र वर्षपर्यंत अलर्कनेही युवा-रहकर पृथ्वीका राज्य करा, उतनों वर्षोंपर्यंत उस अलर्कसे दूसरा राजा नहीं हुआ७ अलर्कसे सन्तति नाम वाला पुत्र हुआ, तिससे सुकेतन, तिससे धर्मकेतु पुत्र हुआ, तिससे सत्यकेतु हुआ ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तिससे धृष्टकेतु पुत्र तिससे सुकुमार नामा पृथ्वीपति, तिससे वीतहोत्र, वीतहोत्रका भर्ग, इस भर्गसे भर्गभूमि हुआ ९ यह कहे हुए काशिवंशसे उत्पन्न हुए राजे, क्षत्रवृद्धके वंशमेंके हैं, रम्भके रभस और गम्भीर यह दो पुत्र हुए, तिस रभससे अक्रिय हुआ ॥ १० ॥ तिसकी स्त्रीके विषैं ब्राह्मणकुल उत्पन्न हुआ, अब अनेनाका वंश सुनो, अनेनाका शुद्ध तिससे शुचि, तिसका त्रिककुप् हुआ वह धर्म सारथिनामसे प्रसिद्ध हुआ ॥११॥ तिससे शान्तरय हुआ, वह कृतकृत्य आत्मज्ञानी था, उसने सन्तान उत्पन्न नहीं करी रजीके

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेंद्रायाददाद्दिवम् । इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशंकितः । पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः१४ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः । गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान् रजेः१५ अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः । कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्सञ्जयस्तत्सुतो जयः॥१६॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः । सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥ १७ ॥ संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः । क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

श्रीशुक उवाच । यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः । षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥ १ ॥ राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् । यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥२॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिंद्राण्या धर्षणाद् द्विजैः । प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥ चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्

महाबल पराक्रमी पाँच सौ पुत्र थे ॥ १२ ॥ उस रजीने देवताओंकी प्रार्थनासे दैत्योंका वध करके, उनका छीना हुआ स्वर्ग फिर इन्द्रको दिया, परन्तु प्रह्लाद आदि शत्रुओंसे डरे हुए इन्द्रने, वह स्वर्ग फिर रजीको देकर उसके चरण पकड़ कर अपना आपा अर्पण करा अर्थात् अपनी रक्षाका भार उसके ही ऊपर रक्खा, फिर रजी पिताका मरण होने पर उसके पुत्रोंने, माँगने वाले इन्द्रको स्वर्ग नहीं दिया, वह आप ही यज्ञका भाग लेने लगे, फिर बृहस्पतिजीने उनकी बुद्धि भ्रष्ट करनेके निमित्त अभिचारकी विधिसे अग्निमें हवन करा तब अपने बुद्धिमार्गसे भ्रष्ट हुए उन रजीके सब ही पुत्रोंका इन्द्रने वध करा उनमेंसे एक भी शेष नहीं रहा, क्षत्रवृद्धके पोते कुशसे प्रति नाम वाला पुत्र हुआ, तिससे सञ्जय, तिसका पुत्र जय हुआ ॥ १३-१६ ॥ तिससे कृत, कृतका भी पुत्र हर्यवन राजा हुआ, फिर सहदेव, तिससे हीन, तिसका पुत्र जयसेन, तिसका संकृति, तिसका भी जय हुआ, वह क्षत्रिय धर्मनिष्ठ महारथी था, हे राजन् ! यह क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न हुए राजे कहे, अब नहुषसे उत्पन्न हुए वंशको सुनो ॥१७-१८॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें सप्तदश अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ छ * छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! पहिले कहे हुए नहुषके यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियति और कृति यह छः पुत्र थे, जैसे नेत्र कान आदि इन्द्रियें जीवके वशमें होती हैं तैसे नहुषके अधीन थे ॥ १ ॥ उनमेंसे यति नाम वाले बड़े पुत्रने, नहुष पिताका दिया हुआ राज्य लेना नहीं चाहा, क्योंकि-वह यह जानता था कि-राज्यका परिणाम अनर्थकारक है, जिस राज्यमें आसक्त हुआ पुरुष, अभिमानमें भर कर यह नहीं जानता है कि-आगेको मेरी क्या गति होगी ॥ २ ॥ फिर नहुष पिताको, इन्द्राणीके साथ भोग करनेकी अभिलाषाके कारण अगस्त्य आदि ब्राह्मणोंने, स्वर्गके अधिकारसे भ्रष्ट करके अजगरकी योनिमें पहुँचा दिया तब ययाति ही राजा हुआ ॥ ३ ॥ उसने, संयाति आदि अपने चार छोटे भ्राताओंको

भ्राता यवीयसः । कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥ राजोवाच । ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबंधुश्च नाहुषः । राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ।५। श्रीशुक उवाच । एकदा दानवेंद्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका । सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले । व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः । तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिंचतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् । सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् । स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥१०॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् । अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥११॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये । धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च

चारों दिशाओंमें पृथ्वीकी रक्षा करनेके निमित्त नियुत (मुकर्रिर) करा और आप शुक्राचार्यजीकी तथा वृषपर्वा दानवकी इन दोनों कन्याओंको अपनी स्त्री करके पृथ्वीका पालन करा ॥४॥ राजाने कहा कि–हे शुकदेवजी ! भगवान् शुक्राचार्यजी ब्रह्मर्षि थे और राजा ययाति श्रेष्ठ क्षत्रिय था, ऐसा होते हुए राजाका ब्राह्मणके यहाँ उलटा विवाह कैसे हुआ ? अर्थात् क्षत्रियकी कन्याको कारणवश ब्राह्मण स्वीकार कर लेय परन्तु ब्राह्मणकी कन्याको क्षत्रिय कभी ग्रहण न करे, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा होते हुए भी यह कैसे हुआ ? ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! यह बानक ईश्वरका बनाया हुआ होनेके कारण इसमें प्रतिलोमता दोष नहीं है, इस विषयमें कथा कहता हूँ सुनो–एक समय दानवोंमें श्रेष्ठ वृषपर्वाकी, तरुणाईमें आई हुई शर्मिष्ठा नाम वाली कन्या, सहस्र दासियोंके साथ, शुक्राचार्यजीकी देवयानी नाम वाली कन्याको साथमें लिये हुए, फूले हुए वृक्षोंसे भरे हुए, और जिसमें मधुर २ गान करने वाले भौंरे हैं ऐसे स्थलमें खिलने वाली कमलिनियोंकी वाड़ी वाले आरामबागमें क्रीड़ा करनेको गई ॥ ६ ॥ ७ ॥ तब शर्मिष्ठा आदि उन कमलनयनी कन्याओंने, तालके समीप आकर, अपने २ वस्त्र तट पर रखकर उसमें प्रवेश करा और एक दूसरीके ऊपर जल उछालती हुई क्रीड़ा करने लगीं॥८॥ इतने ही में उन कन्याओंने, पार्वतीजीके साथ नन्दीगणके ऊपर बैठ कर जानेवाले शिवजीको देखा सो लज्जित हो एकाएकी तट पर अपने २ वस्त्र पहिने ॥ ९ ॥ उस समय अनजानमें शर्मिष्ठाने, देवयानीके वस्त्र अपने जान कर पहर लिये, तदनन्तर देवयानी, यह देख कर कि–शर्मिष्ठाने, मेरे वस्त्र पहिन लिये हैं, बड़े क्रोधमें होकर कहने लगी ॥ १० ॥ अरे ! देखो तो इस दासीका कैसा अयोग्य कर्म है ? जैसे कुतिया यज्ञमें हविका भाग पानेके अयोग्य है तैसे ही हमारे धारण करे हुए वस्त्रोंके धारण करनेको यह योग्य नहीं है और तो भी इसने मेरे वस्त्र पहिन लिये हैं ॥ ११ ॥ जिन ब्राह्मणोंने इस जगत्को तपके बलसे उत्पन्न करा है, जो परमपुरुष भगवान्के मुखसे उत्पन्न होनेके कारण श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने इस संसारमें अपने हृदयमें स्वप्रकाशरूप परब्रह्मको उपासना करने योग्य मान कर धारण करा है और

दर्शितः ॥ १२ ॥ यान्वदन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः । भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः । अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥ एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत । रुषा श्वसंत्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि । किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् । शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् । प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ दत्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे । गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा । राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जयः ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृहीतायास्त्वया हि मे । एष ईशकृतो वीर

जिन्होंने कल्याणकारी वैदिकमार्गका प्रचार करा है तथा जिनको इन्द्रादि लोकपाल नमस्कार करके स्तुति करते हैं, अधिक तो क्या परन्तु लक्ष्मीके आश्रय और जगत्को पवित्र करने वाले विश्वात्मा भगवान् भी जिनकी वन्दना और स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥ उन ब्राह्मणोंमें भी हम भृगुकुलके अर्थात् जिन भृगुजीके चरणकी लातको भी भगवान्ने सहन करा उनके वंशके श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं इस पर भी इसका पिता वृषपर्वा हमारा शिष्य है, इस प्रकार सर्वथा हमसे हीन इस शर्मिष्ठाने, जैसे तीनों वर्णसे हीन शूद्र ब्राह्मणोंके पढ़ने योग्य वेदको पढ़े तैसे ही, हमारे धारण करने योग्य वस्त्रोंको इसने धारण करा है ॥ १४ ॥ इस प्रकार तिरस्कार करनेवाली देवयानीको, अपना नीचेका ओठ चबा कर, चरणसे कुचली हुई नागनकी समान क्रोधमें भर कर लम्बे २ श्वास लेने वाली वह शर्मिष्ठा कहने लगी ॥ १५ ॥ कि-अरी भिखमँगी ! तू अपने वर्त्तव पर ध्यान न देकर बहुत ही अपनी प्रशंसा कर रही है, अरी ! कौए और कुत्तोंकी समान अपने पिताके साथ पेट भरनेके निमित्त हमारे घरकी ओरको टकटकी बाँध कर क्या नहीं देखती रहती है ? ॥ १६ ॥ ऐसे और भी कठोर वचनोंसे, गुरुकन्या होनेके कारण पूजनीय तिस देवयानीकी निन्दा करके, क्रोधसे उसके पहिने हुए वस्त्र लेकर शर्मिष्ठाने उसको कुएमें धक्का देदिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस शर्मिष्ठाके अपने घरको चले जाने पर, शिकारके निमित्त वनमें फिरते हुए पिलाससे व्याकुल हुआ राजा ययाति, अचानक उस कूपके समीप आया और उस कुएमें पड़ी हुई नङ्गी देवयानीको देखा ॥ १८ ॥ और पिलाससे व्याकुल हुए तिस राजाने, उस नङ्गी देवयानीको पहरनेके निमित्त अपना दुपट्टा देकर, अपने हाथसे उसका हाथ पकड़ कर कुएसे बाहर निकाल लिया ॥१९॥ तब अपनेको निकालने वाले उस राजा ययातिसे, शुक्राचार्यकी कन्या वह देवयानी प्रेमभरी वाणीसे कहने लगी कि-हे शत्रुनाशक राजन् ! तुमने जो मेरा हाथ पकड़ा है इस कारण तुम्हारे ग्रहण करे हुए मेरे हाथको ग्रहण करनेवाला तुमसे दूसरा कोई न हो अर्थात् तुम ही मुझे वरो, तुम यह संदेह न करो कि-ब्राह्मण की कन्याके साथ क्षत्रिय होकर उलटा विवाह कैसे करूँगा ? क्योंकि-हे वीर !

संबंधो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥ यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम । न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज । कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः । मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः । न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् । स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् । गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः । कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥२७॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।

हमारा यह स्त्रीपतिरूप सम्बन्ध ईश्वरका ही करा हुआ है, पुरुषका करा हुआ नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ क्योंकि-कूपमें पड़ी हुई मुझे अचानक जो यह तुम्हारा दर्शन हुआ है सो ईश्वरकी इच्छासे ही हुआ है, इस कारण हे महापराक्रमी ! मेरा पाणिग्रहण करने वाला (पति) ब्राह्मण नहीं होगा, क्योंकि-पहिले मैंने जो कच नाम वाले बृहस्पतिजीके शिष्यको 'तेरी विद्या निष्फल हो' ऐसा शाप दिया था * तब उसने भी मुझे 'तेरा ब्राह्मण पति नहीं होगा' यह शाप दिया था ॥ २२ ॥ तदनन्तर राजा ययाति ने शास्त्रके प्रतिकूल होनेके कारण अपनेको प्रिय न लगने वाले परंतु प्रारब्धसे प्राप्त हुए उस देवयानीके भाषणको सुनकर और अपने मनको उसमें आसक्त हुआ जानकर, मेरा मन अधर्ममें कभी नहीं जाता है, ऐसा निश्चय करके उसके वचनको स्वीकार करा अर्थात्-तेरा पिता यदि मुझे देदेगा तो मैं तुझे ग्रहण करलूँगा, यह कहा ॥ २३ ॥ तदनन्तर वह वीर राजा ययाति, तहाँसे चला गया तब उस देवयानीने, तहाँसे रोदन करते हुए पिताके समीप आकर उसको शर्मिष्ठाने जो ताने मारे थे तथा कूपमें धक्का देना आदि जो कार्य करा था सो सब कहा ॥ २४ ॥ यह सुनकर वह भगवान् शुक्राचार्यजी, चित्तमें दुःखित होकर, पुरोहितकी वृत्तिको निन्दा करते हुए और एक २ कण बीन कर खानेकी प्रशंसा करते हुए उस कन्याको साथ ले वृषपर्वाके नगरसे निकलकर चलेगये ॥ २५ ॥ तदनन्तर शत्रुओंको जय प्राप्त करादें, यह शुक्राचार्यके मनमें आया है, ऐसा जान कर वृषपर्वाने ,मार्गमें जाते हुए उन शुक्राचार्यजीको प्रसन्न करनेके निमित्त मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें गिरपड़ा ॥ २६ ॥ तब आधे क्षणको क्रोधमें रहने वाले वह भगवान् शुक्राचार्यजी, अपने शिष्य वृषपर्वासे कहने लगे कि-हे राजन् ! इस देवयानीका जो मनोरथ होय उसको तू पूर्ण कर, इसको मैं इस दशामें ही रखकर उदासीन नहीं करना चाहता हूँ ॥२७॥ तब वह, 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर मौन

* बृहस्पतिजी के कच नाम वाले पुत्रने, शुक्राचार्यजीसे मृतसञ्जीविनी विद्या प्राप्त करी, तब देवयानीने उससे कहा कि-तू मेरा पति हो तब उसने कहा कि-तू गुरुकी कन्या होनेके कारण मेरी पूजनीय है इस कारण मैं तुझे नहीं वरूँगा; ऐसा कहने पर क्रोधमें भरीहुई देवयानीने उसको 'तेरी विद्या निष्फल होय' यह शाप दिया तब कचने देवयानीको, तेरा पति ब्राह्मण नहीं होगा' यह शाप दिया।

भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥११॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः । आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥ यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् । समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते । तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥१६॥ मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥ पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् । तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् । निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥ दृष्टश्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् । संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥२०॥ इत्युक्त्वा नाहुषो

दी ॥ १० ॥ फिर वृषण ठीक होने पर वह बकरा भी कुएमें मिली हुई उस बकरीके साथ बहुत दिनों पर्यन्त विषय भोग करता हुआ भी उन विषयोंसे आज पर्यन्त तृप्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ हे सुन्दरी देवयानी ! उस बकरेकी समान मैं भी तेरे प्रेमके वशीभूत होकर तेरी हावभावरूप मायासे मोहित होता हुआ आज पर्यन्त अपने परमार्थको नहीं जानता हूँ ॥ १२ ॥ पृथ्वी पर जितने, तण्डुल, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियें हैं वह सब, विषयवासनाओंसे ग्रसे हुए, पुरुषके मनको सन्तुष्ट करनेको पूरे नहीं पड़ते हैं ॥ १३ ॥ क्योंकि-विषयोंके भोगनेसे, विषयभोगकी तृष्णा कभी भी शान्त नहीं होती है किन्तु जैसे घृतसे अग्नि अधिक २ प्रदीप्त होती जाती है तैसे ही वह तृष्णा अधिक ही होती है ॥ १४ ॥ जब पुरुष सकल पदार्थोंमें 'यह अच्छा है, यह बुरा है' ऐसा भेदभाव नहीं करता है तब सर्वत्र समदृष्टि रखने वाले उस पुरुषको सब ही दिशा सुखरूप होजाती हैं अर्थात् चाहें जहाँ जाय उसको सुख ही प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जिस तृष्णाको अविवेकी पुरुष नहीं त्याग सकते हैं, अवस्थाकी हानिको प्राप्त होने वाले भी पुरुषकी जो तृष्णा जीर्ण नहीं होती है तिस परम दुःख देने वाली तृष्णाका सुखकी इच्छा करने वाला पुरुष शीघ्र ही त्याग करे ॥ १६ ॥ माता बहिन और कन्या इनके साथ भी पुरुषको एक आसन पर नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि-बलवान् इन्द्रियोंका समूह विवेकी पुरुषको भी उनकी ओर देखना, स्पर्श करना आदि विषयोंमें प्रवृत्त करता है ॥ १७ ॥ बारम्बार विषयोंका सेवन करते हुए भी मुझे एक सहस्र १००० वर्ष पूरे होगये तथापि उन २ विषयोंके सेवनके समय उन २ विषयोंमें जो तृष्णा उत्पन्न हुई थी वह शान्त नहीं होती है ॥ १८ ॥ इस कारण अब मैं, इस तृष्णाका (विषय भोगकी वासनाका) त्याग करके और अपना मन; ब्रह्मरूप भगवान्के विषैं स्थिर करके सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे रहित और अहंकारशून्य होकर मृगकी समान वनमें विचरता हूँ ॥१९॥ इस लोकमें देखे हुए और परलोकमें सुने हुए सकल विषय तुच्छ हैं, ऐसा जान कर, उन विषयोंका ध्यान मात्र करनेसे भी जन्म मरणरूप संसार प्राप्त होता है और सुखका

जायां तदीयं पूरवे वयः। दत्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम्। प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् २२ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम्। अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः। क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसंग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिंगः। परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः। स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ या सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम्। विज्ञायेश्वरतंत्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥२७॥ सर्वत्र संगमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी। कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिंगमा-

नाश होता है ऐसा जानने वाला जो पुरुष, उन देखे और सुने हुए विषयोंका चिन्तवन नहीं करता है और उनका उपभोग भी नहीं करता है वही पुरुष विषयवासनाओंको त्याग कर आत्मदर्शी होता है ॥ २० ॥ इस प्रकार उस राजा ययातिने देवयानीसे कह कर और अपने आप विषयभोगोंमें इच्छा रहित होकर अपने पूरु नाम वाले पुत्रको उसकी तरुण अवस्था देकर उससे अपनी वृद्धावस्था फेरली २१ तदनन्तर उसने आग्नेय दिशामें अपने द्रुह्यु नामक पुत्रको, दक्षिण दिशामें यदु पुत्रको, पश्चिम दिशामें तुर्वसुको और उत्तर दिशामें अनुको राज्यका अधिकार दिया ॥ २२ ॥ और अवस्थामें छोटे परन्तु गुणोंमें बड़े और सकल प्रजाओंके परममाननीय पूरुको, सकल भूमण्डलके राज्यका अभिषेक करके और यदु आदि सब बड़े भ्राताओंको उसके अधीन करके वह राजा आप वनमें चला गया ॥ २३ ॥ उस राजा ययातिने सहस्रों वर्ष पर्यन्त शब्दादि विषयोंमें सेवन करा हुआ इन्द्रियसुख एक क्षणमें, जैसे पंख निकला हुआ पक्षी बहुत दिनोंके सेवन करे हुए अपने घोसलेको छोड़ देता है तैसे छोड़ दिया ॥ २४ ॥ हे राजन्! वह प्रसिद्ध राजा ययाति, उस वनमें जिसने सकल संग त्याग दिये हैं, और जिसने आत्मसाक्षात्कारसे त्रिगुणमय लिङ्ग शरीरका तिरस्कार करा है ऐसा होकर सकल दोष रहित वासुदेव परब्रह्मके विषैं भगवान्‌की उपासनासे मिलने वाली मोक्षगतिको प्राप्त हो गया ॥ २५ ॥ देवयानीने तो पतिकी कही हुई उस कथाको सुन कर यह समझा कि–मेरा हास्य करा है, अर्थात स्नेहसे परिणाममें एकसे दूसरेका वियोग होता है इस कारण इन्होंने उस स्नेहको छोड़ कर मोक्षका मार्ग स्वीकार करनेको यह कथा कही है ऐसा माना ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस देवयानीने, परमेश्वराधीन पति पुत्रादिकोंके सङ्गको 'पानीकी पौपर इकट्ठे हुए बटोहियोंके सङ्गकी समान' चिरकाल न रहने वाला और प्रभुकी मायाका रचा हुआ जान कर, सकल प्रपञ्च स्वप्नकी समान मिथ्या है, ऐसा समझ कर, सकल पदार्थोंमेंकी आसक्ति छोड़ दी और श्रीकृष्णभगवान्‌में अपना मन लगाकर अपने लिङ्ग शरीरका त्याग करा अर्थात् वह भी मुक्त होगई ॥ २७ ॥ २८ ॥ उसने श्रीकृष्ण भगवान्‌में मन लगाकर कहा कि–हे प्रभो! षड्गुणऐश्वर्यसम्पन्न, जगत्‌के कारण, सर्वान्तर्यामी, रागद्वेष आदि रहित

पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥२८॥ स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम्। देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत्॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः। तमाह राजन् शर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥३०॥ विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सुप्रजां क्वचित्। तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित्। स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत। द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी। देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन्। न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष। त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच। अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां

होरहा तब देवयानीने अपने मनका विचार कहा कि—पिताकी दी हुई मैं जहाँ (सुसरालमें) जाऊँ तहाँ ही यह शर्मिष्ठा, सखियों सहित मेरा दासीकर्म करनेके निमित्त जाय ॥ २८ ॥ तब शर्मिष्ठाने, शुक्राचार्यजीके चले जाने पर, पिता आदि सबोंको यह बड़ा कष्ट प्राप्त होगा,ऐसा देखकर और देवयानीको प्रसन्न करने पर उनका बड़ाभारी कार्य सिद्ध होगा, ऐसा जानकर, सहस्र स्त्रियोंके साथ दासी की समान, देवयानीकी सेवा करना स्वीकार करा ॥ २९ ॥ तदनन्तर शुक्राचार्यजीने, राजा ययातिको, शर्मिष्ठादासी सहित देवयानीको अर्पण करके उससे कहा कि-हे राजन्! शय्या पर शर्मिष्ठाके साथ तू कभी भी गमन नहीं करना ॥ ३० ॥ फिर हे राजन्! एक समय शर्मिष्ठाने, देवयानी पुत्रवती होगई यह देखकर,अपना ऋतुधर्मका समय आने पर, अपनी सखीके पति तिस राजा ययातिकी ही संतान की प्राप्ति होनेके निमित्त सम्भोग करनेकी प्रार्थना करी ॥ ३१ ॥ इसप्रकार संतान की प्राप्तिके निमित्त राजकन्या शर्मिष्ठाके प्रार्थना करे हुए उस राजा ययातिने,धर्म जान कर अर्थात् ऋतुकालमें संतानकी प्राप्तिके निमित्त प्रार्थना करने वाली स्त्रीकी इच्छा पूरी करना धर्म है, ऐसा मनमें विचार कर, शुक्राचार्यजीके कहनेका स्मरण होते हुए भी ऋतुकालमें यह सम्भोग दैववश प्राप्त हुआ है ऐसा माना॥३२॥ऐसा होने पर देवयानीके यदु और तुर्वसु यह दो पुत्रहुए और वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाके द्रुह्यु, अनु और पूरु यह तीन पुत्र हुए ॥ ३३ ॥ तब देवयानी, अपने पतिसे शर्मिष्ठाको गर्भ हुआ जान कर रूठ कर और क्रोधमें भर कर वह वृत्तान्त पितासे कहनेके निमित्त पिताके घर गई ॥ ३४ ॥ तब उसको प्रसन्न करनेकी इच्छा करने वाला राजा ययाति भी, उस देवयानीके पीछे चल दिया और मार्गमें चरण छूकर तथा उत्तम वचनोंसे समझा कर भी उसको प्रसन्न करनेको समर्थ नहीं हुआ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर देवयानीने पिताके घर जाकर वह सब वृत्तान्त कहा तब क्रुद्ध हुए शुक्राचार्यजी उस राजा ययातिसे कहने लगे कि-अरे मन्द बुद्धि! स्त्रीके लोभी! खोटे पुरुष! तुझे मनुष्योंका रूप बिगाड़ने वाली जरा (बुढ़ापा) प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ ऐसे शुक्राचार्यजीके शापको सुनकर राजा ययातिने कहा कि-हे ब्राह्मण! तुम्हारी कन्या

ग्रहान्वुहित्ररिरंस्म ते । व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योभिधास्यति ॥३७॥ इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत । यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् । वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः यदुरुवाच । नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव । अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पुरुषः ॥४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत । प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् । न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच । को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् । प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥४३॥ उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः । अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्त्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४ ॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः । सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप॥४५॥

के साथ विषयोंका सेवन करके अब भी मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ इस कारण तुम्हारे शापसे तुम्हारी कन्याका ही अनिष्ट हुआ है ? तब शुक्राचार्यजीने कहा कि—यदि ऐसा है तो जो कोई तेरा प्रेमी वा पुत्र तुझे अपनी तरुणाई देकर तेरी जरा लेलेय उसको तू यथेष्ट अपनी जरा देदे और उसकी तरुणाईको लेकर विषयोंका भोग कर ॥ ३७ ॥ ऐसी अवस्था होनेपर जरासे ग्रसा हुआ वह राजा ययाति,अपने नगर में आकर यदु नाम वाले अपने बड़े पुत्रसे कहने लगा कि–हे बेटा यदु ! इस अपने नानाकी करी हुई जराको तू ग्रहण कर और अपनी तरुण अवस्था मुझे देदे, हे बेटा ! अभी मैं विषयभोगमें तृप्त नहीं हुआ हूँ इस कारण तेरी तरुणाईसे कुछ वर्षों पर्यंत विषयभोगका सुख प्राप्त करूँगा ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यदुने कहा कि–हे पिताजी ! मध्यमें ही प्राप्त होने वाली तुम्हारी जरा (वृद्धावस्था) से युक्त होकर रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है, क्योंकि-विषयसुख कैसा है, यह जाने विना पुरुष उन विषयोंसे विरक्त नहीं होता है इसकारण वैराग्यहुए विना मुझे अपनी तरुण अवस्था देनेकी इच्छा नहीं है४०हे भारत राजन् ! तदनन्तर इसी प्रकार पिता ययातिके वृद्धावस्था लेनेके निमित्त कहे हुए तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु इन तीन पुत्रोंने भी उसका निषेध कर दिया, क्योंकि–वह सब यह नहीं जानते थे कि–पिताकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करना श्रेष्ठ धर्म है, और अनित्य देह आदिके विषैं नित्यबुद्धि रखते थे ४१ तदनन्तर अवस्थामें सबसे छोटे और गुणोंमें सबसे अधिक अपने पूरु नाम वाले पुत्रसे राजा ययातिने कहा कि–हे पुत्र ! मेरे बुढ़ापेको लेकर क्या अपनी तरुणाई मुझे देदेगा ? बड़े भ्राताओंकी समान तुझे निषेध करना योग्य नहीं है ॥ ४२ ॥ यह सुनकर पूरु कहने लगा कि–हे मनुष्येन्द्र ! जिनके अनुग्रहसे पुरुष इसलोकके और परलोकके पुरुषार्थको पाता है ऐसे अपनेको उत्पन्न करनेवाले अपने पिताका प्रत्युपकार (पलटेमें उपकार) करनेको इस लोकमें कौन समर्थ है ? ॥ ४३ ॥ तिसमें भी जो पुत्र, पिताके मनका कार्य (विना कहे ही) करता है वह उत्तम है, जो कहा हुआ कार्य करता है वह मध्यम है, जो कहेहुए कार्यको श्रद्धारहित होकर भी करता है वह अधम है और जो पिताके कहेहुए कार्यको अश्रद्धासे भी नहीं करता है वह

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन् प्रजाः। यथोपजोषं विषयान् जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥ देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः। प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥ अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः। सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः। नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम्। नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम्। विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्रीशुक उवाच । स इत्थमाचरन्कामान् स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः। बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ।

पिताके विष्टाकी समान है ॥ ४४ ॥ ऐसा कह कर हर्षयुक्त हुए उस पूरुने, अपनी तरुण अवस्था देकर पिताकी वृद्धावस्था ग्रहण करली, तदनन्तर हे राजन्! वह ययाति राजा भी पूरुकी दीहुई तरुण अवस्थासे सुखके साथ विषयोंका भोग करने लगा ॥ ४५ ॥ जिसकी इंद्रियें कभी भी श्रम न मानने वालीं (दृढ़) हैं और जो सात द्वीप वाली पृथ्वीका स्वामी है तिस राजा ययातिने उत्तम प्रकारसे पिताकी समान स्नेहके साथ प्रजाओंका पालन करके जैसे प्रीति विर्द्धित होय तैसे विषयों का सेवन करा ॥ ४६ ॥ उस समय उसकी परमप्रिया देवयानीने भी प्रतिदिन परम स्नेहके साथ मधुर भाषणसे, शुश्रूषा करके और इच्छित वस्तुएँ समर्पण करके एकान्तमें उस अपने प्रिय पतिको परम प्रसन्न करा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उस राजा ने, सकल वेदोंके तात्पर्यरूप और सकल देवमय, यज्ञका फल देने वाले श्रीहरिदेव की बहुतसी दक्षिणा वाले यज्ञोंके द्वारा आराधना करी ॥ ४८ ॥ जैसे आकाशमें उत्पन्न हुई मेघोंकी पंक्ति कभी दीखती है कभी नहीं दीखती है तैसेही जिन भगवान्के विषैं यह जगत्, जिनके रचना करने पर व्यवहारकी स्थितिके समय जब तक इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति रहती है तबतक स्वप्न,माया और मनोरथकी समान नाना प्रकारका भासता है और सुषुप्तिके समय इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके रुकनेपर कुछ भी नहीं भासता है ॥४९॥ उन ही सर्वान्तर्यामी अतिसूक्ष्म, नारायण वासुदेवका हृदय में ध्यान करके, फलकी इच्छासे रहित तिस राजाने भगवान्की आराधना करी ५० इस प्रकार जिनमें मन छटा है ऐसी विषयोंमें आसक्त पाँच इन्द्रियोंसे विषयोंको भोगताहुआ भी वह चक्रवर्ती राजा ययाति तृप्त नहीं हुआ ॥५१॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ ॥ ॐ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस प्रकार स्त्रीके वशमें हुआ वह राजा ययाति विषयोंका भोग करता हुआ भगवान्की आराधनाके प्रभावसे विषय भोगों से विरक्त होकर अपना विषयासक्तपना जान देवयानीसे यह कथा कहनेलगा कि हे देवयानि! इस भूमि पर जिस कामी गृहस्थी पुरुषका वनमें रहने वाले जितेंद्रिय पुरुष, 'अरे इसका कल्याण कैसे होयगा; ऐसा,शोक करते हैं उस मुझसमान

धीरा यस्यानुशोचंति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥ बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः । ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिंतयन् । व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥ सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल । तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योजाः कांतकामिनीः ५ पीवानं श्मश्रुलं श्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् । स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्द्धनः । रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुद्ध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया । विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् । इन्द्रियारामुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् । कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ॥९॥ तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा । लंबन्तं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥ संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया । कालं बहुतिथं

पुरुषकी आचरण करी हुई कथा सुन ॥ २ ॥ किसी एक बकरे (कामी) ने वनमें (संसारमें) मेरा प्रिय (विषयभोग) कहाँ होयगा, यह खोजते हुए, कुएमें पड़ी हुई अपने कर्मोंके वशीभूत एक बकरी देखी ॥ ३ ॥ तब उस कामातुर बकरेने, उस बकरीको कुएमेंसे बाहर निकालनेका विचार करके, कुएके समीपकी मट्टी आदि को अपने सींगोंके अग्रभागसे खोद कर उसके बाहर निकलनेका मार्ग बनाया ।४। तब उस सुन्दर बकरीने कुएसे बाहर निकल कर उस बकरेको ही पति कर लिया तब उस बकरीके वरे हुए तिस बकरेको देख कर पतिकी इच्छा करने वाली और भी बहुतसी बकरियोंने ॥ ५ ॥ परमप्रिय, रतिसुख देने वाले, मैथुन कर्ममें चतुर और सकल अङ्गोंमें पुष्ट उस ही बकरेको वरा तब वह इकला ही बड़ा बकरा, उन बहुतसी बकरियों के रतिसुखकी वृद्धि करता हुआ, अपने आप कामरूप पिशाचके आवेशमें होकर उनके साथ क्रीड़ा करने लगा और उसने इसका कुछ ध्यान नहीं करा कि–आगेको मेरी क्या दशा होगी ॥ ६ ॥ उस ही बकरेको, अन्य परमप्रिय बकरियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए देख कर भयभीत हुई और बकरेकी कुएसे बाहर निकाली हुई तिस पहिली बकरीने, वह बकरेका कर्म सहा नहीं ॥ ७ ॥ और वह, कपट करनेवाले, ऊपरसे प्रेमयुक्त दीखने वाले, क्षणिक मित्रता करने वाले, कामसे आतुर और केवल इन्द्रियोंकी तृप्ति करने वाले उस बकरेको छोड़ कर दुःखित होती हुई अपने पिताके यहाँ जानेको चल दी ॥ ८ ॥ तब स्त्रीके वशमें होनेके कारण वह दीन बकरा भी उसको प्रसन्न करनेके निमित्त इडविड़ २ शब्द (अपनी जातिका शब्द) करता हुआ उसके पीछे २ चला तथापि मार्गमें उसको प्रसन्न करनेको वह समर्थ नहीं हुआ ॥९॥ तहाँ उसका स्वामी जो कोई एक ब्राह्मण था, उसने क्रोधमें भर कर बकरेका लम्बायमान वृषण (अण्डकोश) काट डाला अर्थात् उसको बुढ़ापा देकर स्त्री सम्भोग करनेके अयोग्य कर कर दिया और फिर अपनी बकरीके कामभोगका उपाय करनेवाले उस ब्राह्मणने वह वृषण ठीक कर दिया अर्थात् बुढ़ापेके बदलेमें तरुणाई देकर सम्भोग करनेकी शक्ति

त्मनः ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । सर्वभूताधिवासाय शांताय बृहते नमः ॥ २९ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच । पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत । यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जनमेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः । प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥२॥ तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः । संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥३॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः । जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः । घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रंतिभारोऽभूत्त्रय-स्तस्यात्मजा नृप । सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वो प्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः । पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्ये दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः॥७॥ दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः । तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ ८ ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् । बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः । पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रह-

और सर्वव्यापक तुम वासुदेव भगवान्को वारम्वार नमस्कार हो ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ❀

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! जिस वंशमें तुम उत्पन्न हुए हो और जिसमें क्षत्रियवंशको चलाने वाले राजर्षि तथा ब्राह्मणवंशको चलाने वाले श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं वह पूरुका वंशमें तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ १ ॥ पूरुका पुत्र जनमेजय हुआ तिसका पुत्र प्रचिन्वान्, तिससे प्रवीर हुआ, तिससे नमस्यु हुआ, तिससे चारुपद हुआ ॥ २ ॥ तिसका पुत्र सुद्यु हुआ, तिससे बहुगव हुआ, तिससे संयाति, तिसका अहंयाति और तिस अहंयातिका पुत्र रौद्राश्व हुआ ॥ ३ ॥ तिस रौद्राश्वके घृताची नाम वाली अप्सराके विषैं जैसे जगत्के आत्मा मुख्य प्राणके अधीन दश इन्द्रियें होती हैं तैसे ही, उसके अधीन रहने वाले-ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थंडिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु, और सबोंमें छोटा वनेयु यह दश पुत्र हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥ उनमें ऋतेयुसे रन्तिभार हुआ, हे राजन् ! उस रन्तिभारके सुमति ध्रुव और अप्रतिरथ इन नामोंके तीन पुत्र हुए, उनमें अप्रतिरथका पुत्र कण्व हुआ ॥ ६ ॥ उसका मेधातिथि हुआ, तिससे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मण हुए सुमतिका पुत्र रैभ्य हुआ, तिसका पुत्र दुष्यन्त नामसे प्रसिद्ध हुआ ७ एक समय राजा दुष्यन्त, शिकार खेलनेको वनमें जाकर अचानक कण्व ऋषिके आश्रममें चला गया, उसने तहाँ बैठी हुई अपनी क्रान्तिसे उस आश्रमके स्थानको शोभायमान करने वाली देवकी मोहिनी शक्तिकी समान शकुन्तला नाम वाली एक स्त्री देखी और वह तत्काल कामदेवके वशीभूत होगया, तब कितने ही वीरोंसे घिरा हुआ, उस स्त्रीके देखनेसे हर्ष युक्त और जिसका शिकारका श्रम दूर होगया है परन्तु कामके सन्तापको प्राप्त हुआ वह राजा दुष्यन्त, हँसता हुआ मधुर वाणीसे

सन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१०॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे । किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११ ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे । न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२ ॥ शकुन्तलोवाच । विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने । वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥१३॥ आस्यतां ह्यरविंदाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः । भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥१४॥ दुष्यन्त उवाच । उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये । स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् । गान्धर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १६ ॥ अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे । श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥१७॥ कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः । बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८ ॥ तं दुरत्ययविक्रांतमादाय प्रमदोत्तमा । हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १९ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिंदितौ । शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी २०

उस सुन्दरीसे कहने लगा कि—॥८-१०॥ हे कमलदलनयनि ! हे मनोहरे ! तू किस जातिकी किसकी कन्या है ? इस निर्जन वनमें क्या करनेकी तेरी इच्छा है ? ११ हे सुमध्यमे ! तू राजकन्या है, यह मैं स्पष्ट रीतिसे जानता हूँ, क्योंकि–पूरुके वंशमें उत्पन्न हुए राजाओंका चित्त, अधर्ममें कभी नहीं रमता है और मेरा चित्त तुझमें आसक्त हुआ है सो तू निःसन्देह राजकन्या है ॥१२॥ शकुन्तलाने कहा कि–विश्वामित्रकी (क्षत्रियकी ही) कन्या मैं मैनका अप्सरासे उत्पन्न हुई हूँ, उसने स्वर्गको जाते हुए मुझे वनमें डालदिया था, यह सब वृत्तान्त—भगवान् कण्व ऋषि जानते हैं, उनसे ही मैंने सुना है, हे वीर ! तुम्हारा हम कौन काम करें ? ॥१३॥ हे कमलनयन ! आप इस आश्रममें बैठें, हमारी करी हुई आसन आदि पूजाको स्वीकार करें, यहाँ नीवार (वनमेंका अन्न) है उस अन्नका भोजन करें, यदि इच्छा हो तो आप यहाँ ठहरें भी ॥ १४ ॥ दुष्यन्तने कहा कि–हे सुभ्रु ! कुशिक-वंशमें उत्पन्न हुई तेरा यह कहना कि–'तुम्हारा कौन कार्य करूँ' योग्य ही है क्योंकि–राजाओंकी कन्या, आप ही योग्य पतिको वरलेती हैं ॥ १५ ॥ तदनन्तर उसने; दुष्यन्तके कहनेको 'ठीक है' ऐसा कहकर स्वीकार करा तब देशकालके विभागको जानने वाले उस राजा दुष्यन्तने, गान्धर्व (परस्परके संकेतरूप) विधिसे, धर्मके अनुकूल शकुन्तलाको स्वीकार करा ॥ १६ ॥ तदनन्तर अमोघवीर्य उस राजर्षिने, उस शकुंतलाके विषैं वीर्य स्थापन करा और दूसरे दिन प्रातःकाल वह अपने नगरको चला गया फिर प्रसूतिकाल आनेपर उस शकुन्तलाके भरत नामवाला पुत्र हुआ ॥१७॥ तब उस कुमारके जातकर्म आदि योग्य संस्कार कण्व ऋषिने, वनमें ही करे, वह बालक बलात्कारसे सिंहोंको बाँधकर उनके साथ खेलता था ॥ १८ ॥ इस प्रकार बालक अवस्थासे ही अपरिमित पराक्रमवाले श्रीहरिके अंशसे उत्पन्न हुए उस कुमारको लेकर वह सुन्दरी शकुंतला भर्त्ता (दुष्यन्त) के समीप आई ॥१९॥ तब निर्दोष भी उन स्त्री और पुत्रको; लोकनिन्दाके भयसे जब राजा दुष्यन्तने ग्रहण नहीं करा

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥२०॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् । त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुंतला ॥ २२ ॥ पितर्युपरते सोपि चक्रवर्ती महायशाः । महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २३ ॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः । ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड् विभुः ॥ २४ ॥ पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः । मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २५ ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु । भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः । सहस्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२६॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्ध्वा विस्मापयन्नृपान् । दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २७ ॥ मृगान् शुक्लदतः कृष्णान्हिरण्येन परी-

तब सब लोकोंके सुननेमें आवे ऐसी आकाशवाणी अर्थात् जिसका कहनेवाला कोई शरीरधारी नहीं दीखता है ऐसी वाणी उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ उसने कहा कि-जैसे धोंकनी वायु उत्पन्न होनेका आधाररूप पात्र है तैसेही माता पुत्र उत्पन्न होनेका आधारमात्र ही है और पुत्र पिताका ही है क्योंकि-जिस पुत्रको जिस पिताने उत्पन्न करा है वह उसका ही स्वरूप है इस कारण हे दुष्यन्त! तू पुत्रको पोषण कर, शकुन्तलाका अपमान न कर ॥ २१ ॥ वीर्यके द्वारा वंशकी वृद्धि करने वाला पुत्र, यमके स्थानसे पिताको तारता है और, इस गर्भका धारण करने वाला तू ही है ऐसा जो शकुन्तलाने कहा सो सत्य है, ऐसा आकाशवाणीके कहने पर राजा दुष्यन्तने उस स्त्री और पुत्रको स्वीकार करा ॥ २२ ॥ फिर दुष्यन्त पिताका मरण होने पर वह परम कीर्त्तिमान् भरत भी सात द्वीप वाली पृथ्वीका स्वामी हुआ, भूमि पर भगवान्के अंशसे उत्पन्न हुए उस भरतकी महिमा ऋग्वेदमें वर्णन करी है २३ इस भरतके दाहिने हाथमें चक्रकी समान रेखाका चिह्न था और दोनों चरणोंमें कमलकी कलीकी समान रेखाका चिह्न था, महाभिषेककी विधिसे राज्यपर अभिषेक करे हुए तिस सार्वभौम परमसमर्थ राजा भरतने, मामतेय नाम वाले ऋषिको पुरोहित करके गङ्गाके तट पर अनुलोम (एकके अनन्तर दूसरा इसप्रकार) पचपन पवित्र अश्वमेध यज्ञ करके भगवन्की आराधना करी तैसेही बहुतसा द्रव्य दान देकर यमुनाजीके तट पर भी एकके अनन्तर एक इस प्रकार अठहत्तर पवित्र घोड़ोंको बाँधा अर्थात् उतने अश्वमेध यज्ञोंसे भगवान्का पूजन करा, उस दुष्यन्तके पुत्र भरतका अग्नि, उत्तमगुण युक्त स्थानमें चिना गया, जिस अग्नि चयनके स्थलमें सहस्र ब्राह्मणोंने, उस भरतकी दीहुई गाएँ प्रत्येकने एक २ बद्व×(१३०८४) करके बाँटलीं ॥ २४-२६ ॥ उस दुष्यन्तके पुत्र भरतने, अपने रथमें तैंतीससौ ३३०० घोड़े जोत कर उसको भूमि पर फिराया और अपना ऐश्वर्य दिखलाकर सब मांडलिक राजाओंको आश्चर्ययुक्त करके देवताओंके ऐश्वर्यको भी पीछे छोड़दिया और पूजनीय भगवान्की प्राप्ति करी ॥ २७ ॥ उसने मष्णार नामवाले यज्ञके कर्ममें सुवर्ण

×'चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिकशतांशकः । बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश॥ अर्थात् चौदह लाखका एकसौ सातवाँ भाग अर्थात् तेरह सहस्र चौरासीको बद्व कहते हैं

वृनान् । अद्भुतकर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २८ ॥ भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः । नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २९ ॥ किरातहूणान्यवनान्पौण्ड्रान्कङ्कान्खशाञ्छकान् । अब्रह्मण्यान्नृपांश्चाहन् म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् जित्वा पुराऽसुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे । देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३१ ॥ सर्वकामान्दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी । समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३२ ॥ स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् । चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३ ॥ तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः । जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३४ ॥ तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् । मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५ ॥ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः । प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३६ ॥ तं त्यक्तु-

से भूषित, श्वेत दाँत और काले वर्णके तेरहलाख गजराज ब्राह्मणोंको दान दिये २८ उस भरत राजाकेसे अद्भुत कर्म, पहिले बीते हुए राजाओंने नहीं करे और वर्त्तमान समयके तथा आगेको होनेवाले राजे भी नहीं करेंगे जैसे पुण्यके विना केवल भुजबलसे लोगोंको स्वर्ग नहीं मिल सकता तैसे ही भरतके कर्म औरोंको दुर्लभ हैं ॥ २९ ॥ उस भरतने, दिग्विजयके समय ब्राह्मणोंसे प्रतिकूल रहनेवाले हूण, यवन अन्ध्र, कङ्क, खश शक और हीन जातिके सकल राजाओंको परमधाम पठादिया ३० और पहिले जो असुर देवताओंको जीत कर पातालमें जाकर रहे थे उनको जीत कर, वह बलवान् असुर देवताओंकी जिन स्त्रियोंको पातालमें लेगये थे उन्हें फिर लौटा कर लिया ॥ ३१ ॥ उस भरतके राज्य करते समय उसके राज्यमेंकी सकल प्रजाओंको, स्वर्ग भूमिने इच्छित पदार्थ दिये, इस प्रकार सत्ताईस सहस्र वर्ष पर्यंत उसने अपनी आज्ञा चलाई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उस सार्वभौम राजा भरतने लोकपालोंमें भी प्रसिद्ध अपना ऐश्वर्य, सार्वभौम सम्पत्ति, अटल आज्ञा और प्राण, इन सबोंको 'मिथ्या हैं' ऐसा निश्चितरूपसे जान कर उनसे विरक्त हो भगवत्स्वरूप का चिन्तवन करते हुए उसकी प्राप्ति करली ॥ ३३ ॥ हे राजन्! विदर्भ राजाकी तीन कन्या उन राजा भरतकी प्रिय स्त्री थीं उन्होंने, अपने उत्पन्न हुए पुत्रोंको, 'यह पुत्र मेरी समान नहीं हैं ऐसा पतिके कहनेसे 'यह पुत्र फिर राजाकी दृष्टिके सामने पड़े तो, मेरी समान नहीं हैं ऐसा समझ कर राजा हमारे ऊपर व्यभिचार का सन्देह करके हमें त्याग देगा, इस भयसे, मार डाला ३४ इसप्रकार उस भरतका वंश व्यर्थ होने पर, पुत्रके निमित्त मरुत्स्तोम नाम वाले यज्ञसे अपना आराधन करने वाले उस राजाके ऊपर प्रसन्न हुए मरुत् देवताओंने भरद्वाज नाम वाला पुत्र लाकर दिया ॥ ३५ ॥ एक समय बृहस्पति, अपने उतथ्य नामवाले भ्राताकी गर्भिणी ममता नाम वाली स्त्रीके विषें चोरीसे मैथुन करनेको उद्यत हुए, तब दूसरे गर्भके रहनेको स्थान न होनेके कारण उसके पेटमेंके गर्भने, चिल्ला कर उन बृहस्पतिजी को निषेध करा तब क्रुद्ध हुए बृहस्पतिजीने 'तू अन्धा हो यह' उस गर्भको शाप देकर बलात्कारसे वीर्य स्थापन करा, उस समय बृहस्पतिजीके शापसे गर्भमेंका

कामां ममतां भर्तृत्यागविशंकिताम् । नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ३७ मूढे भरद्वाजमिमं भरद्वाजं बृहस्पते । यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ३८ चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् । व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीशुक उवाच । वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः । महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पांडुनन्दन । रंतिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥२॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धंबुभुक्षतः । निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल । घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जात-

वह दीर्घतमा पुत्र अन्धा हुआ और उसने बृहस्पतिजीका वीर्य लात मारकर योनि के बाहर कर दिया, वह पृथ्वी पर गिरते ही तत्काल पुत्र होगया ॥ ३६ ॥ तिस पराये वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रका त्याग करनेकी इच्छा करने वाली और मनमें अपने पतिके त्याग कर देनेकी शङ्का करने वाली उस ममतासे देवताओंने, उस बालकका नाम उत्पन्न करनेवाला, बृहस्पति और ममताका सम्वादरूप यह श्लोक गान करा है ॥ ३७ ॥ पुत्रका त्याग करके जानेवाली ममतासे बृहस्पतिजी कहते हैं कि-अरी मूढे ! तू उस पुत्रका पोषण कर, यदि कहै कि-मैं पतिसे भय खाती हूँ तो यह पुत्र मेरे वीर्य और उसके क्षेत्र दोनोंसे उत्पन्न हुआ है इसकारण उसका भी है, सो उस से तू भय की शंका न कर, तब वह बृहस्पतिसे कहने लगी कि-हे बृहस्पते ! तुम ही इसका पोषण करो; क्योंकि-यह तुम्हारा मुझसे उत्पन्न हुआ है इसकारण, मैं इकली ही इसका पोषण नहीं करूँगी, ऐसा कहकर विवाद करनेवाले वह दोनों (ममता और बृहस्पति) अन्तमें जो इस पुत्रको तहाँ ही छोड़कर चलेगये तिस कारण यह पुत्र भरद्वाज नामवाला हुआ ३८ इसप्रकार देवताओंकी सूचित करीहुई तिस ममता ने व्यभिचारसे उत्पन्न हुआ यह पुत्र, निरर्थक है ऐसा मानकर त्यागदिया तब फिर मरुत् देवताओंने, उसका पोषण करा सो यह पुत्र भरतवंशके व्यर्थ होनेपर उन्होंने लाकर दिया इसकारण वितथ नामसे प्रसिद्ध हुआ ३९ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें विंश अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ छ ॥ * ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! वितथका पुत्र मन्यु हुआ, तिससे बृहत्-क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग यह पाँच पुत्र हुए उनमेंसे नरका पुत्र संकृति हुआ ॥ १ ॥ हे पाण्डुनन्दन ! संकृतिके गुरु और रन्तिदेव यह दो पुत्र हुए, उनमेंसे रन्तिदेवका यश तो इस लोकमें और परलोकमें गाया जाता है ॥ २ ॥ कि-उद्योगके विना केवल प्रारब्धसे ही प्राप्त हुए पदार्थको भोगने वाला, भूँखसे व्याकुल होने पर भी जो २ मिले वह २ याचकोंको देने वाला, सन्ध्याके समय वा दूसरे दिनको भोजनके निमित्त अन्न आदि इकट्ठा न करनेवाला, धैर्यवान् कुटुम्बके साथ क्लेश पानेवाला ॥३॥ जिसका कुटुम्ब क्लेश पारहा है और जिसके शरीरमें भूँख प्यास के कारण कपकपी उठ रही है ऐसे उस रन्तिदेवको पीनेको जल भी विना मिले

वेपथोः। अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥५॥ तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः। हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपतेः। विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥७॥ याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः। राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ८ स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम्। तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम्। पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे१० तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम्। कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः११ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा। आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२॥ क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिभ्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः। सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ।१३।

निःसन्देह अड़तालीस ४८ दिन बीत गए, तदनन्तर उनञ्चासवें दिन दैववशात् किसीने उसको घृत, खीर, लहपसी और जल यह पदार्थ लाकर दिये, तदनन्तर भोजनका समय होनेपर उसने कुटुम्बसहित भोजन करनेकी इच्छा करी सो इतने हीमें कोई एक ब्राह्मण अतिथि आगया ॥४॥५॥ तब उन रन्तिदेवने, उसका आदर करके, दानकी श्रद्धासे युक्त होकर, सकल प्राणियोंमें श्रीहरिकी भावना करते हुए उस अतिथिको घृत, खीर और लहपसी इनमेंसे भोजन परोसा, तब वह ब्राह्मण भोजन करके चला गया ॥ ६ ॥ हे भूपते राजन्! तदनन्तर ब्राह्मणके भोजन कर लेने पर शेष बचे हुए अन्न आदिका अपने कुटुम्बको विभाग करके वह रन्तिदेव भोजन करनेको हुए इतने ही में दूसरा कोई शूद्र अतिथि आगया सो कुटुम्बको विभाग करे हुए भी अन्नमेंसे फिर विभाग करके वह अन्न, तिस शूद्रमें श्रीहरिकी भावना करने वाले तिस राजाने उसे दिया ॥ ७ ॥ वह शूद्र भोजन करके चला गया तब, कुत्तोंसे घिरा हुआ एक तीसरा अतिथि आकर कहने लगा कि-हे राजन्! इन कुत्तोंके समूह सहित भूँखसे व्याकुल हुए मुझे अन्न दे ॥ ८ ॥ तब धैर्य और भक्तियुक्त उन रन्तिदेवने, उसका आदर करके शेष रहा हुआ जो अन्न था वह सब उसको बड़े सन्मानके साथ देकर उन कुत्तोंको और कुत्तोंके स्वामीको नमस्कार करा ॥ ९ ॥ तदनन्तर केवल पानी बचा वह भी एक ही पुरुष की तृप्ति करने योग्य था, उसको कुटुम्बसहित पीनेकी इच्छा करनेवाले उस राजाके समीप आकर कोई चाण्डाल अतिथि कहने लगा कि-हे राजन्! मुझ नीचेको जल दो ॥ १० ॥ उसकी तिस, कण्ठ सूख जानेके कारण बड़े परिश्रमसे उच्चारण करी हुई दीन वाणीको सुन कर जिनको अत्यन्त दया आई है ऐसे उन रन्तिदेवने, इस प्रकार अमृतकी समान मधुर भाषण करा कि-॥ ११ ॥ मैं ईश्वरसे, अणिमादि ऐश्वर्ययुक्त सर्वोत्तम गतिकी इच्छा नहीं करता हूँ, तथा मोक्षकी भी इच्छा नहीं करता हूँ, किन्तु सकल प्राणियोंके अन्तःकरणोंमें रह कर उनके दुःखको पानेकी इच्छा करता हूँ कि-जिस दुःखको मेरे भोग लेनेसे वह दुःख रहित होते हैं ॥ १२ ॥ देखो-दीन और बचनेकी इच्छा करने वाले प्राणीको, जीवनका कारण जलके देनेसे

इति सम्भाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया। पुल्कसाय ददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम्। आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः। वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥ १६ ॥ ईश्वरालंबनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः। माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७ ॥ तत्प्रसंगानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः। अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत। दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः। बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः। अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः। बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत। रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः

मेरे भूँख, प्यास, अङ्गोंका श्रम, दीनता, ग्लानि, शोक खेद और मोह यह सब ही दूर होगये हैं ॥ १३ ॥ ऐसा कह कर, प्याससे स्वयं प्राण निकलते हुए परन्तु स्वाभाविक करुणासे युक्त और धैर्यवान् उन राजा रन्तिदेवने, उस चाण्डालको जल दिया ॥ १४ ॥ तब रन्तिदेवको, उनके धैर्यकी परीक्षा करनेके निमित्त प्रथम माया करके शूद्रादिरूपसे दर्शन देने वाले और नाना प्रकारके फलकी इच्छा करने वाले भक्तोंको फल देने वाले त्रिलोकीके स्वामी, ब्रह्मा विष्णु और शिव इन तीनोंने अपना दर्शन दिया ॥ १५ ॥ तब निःसङ्ग और इच्छा रहित उन रन्तिदेवने, वासुदेव भगवान्के विषैं भक्तिभावसे उनको केवल नमस्कार करके, हाथ जोड़ कर उनको ही देखते हुए खड़े रहे और उनसे कुछ भी माँगा नहीं ॥ १६ ॥ उस समय ईश्वरसे भिन्न फलकी इच्छा न करने वाले और भगवान्के विषैं अनन्यभावसे चित्त लगाने वाले उन रन्तिदेवकी त्रिगुणमयी माया (सकल संसार) स्वप्नकी समान आत्मस्वरूपमें ही लीन होगई अर्थात् वह जीवन्मुक्त होगये ॥ १७ ॥ फिर उन रन्तिदेवके समागमसे उन रन्तिदेवके अनुसारी जितने पुरुष थे वह सब नारायणपरायण योगी होगये ॥ १८ ॥ गर्गसे शिनि हुआ, तिससे गार्ग्य हुआ, वह क्षत्रिय था तथापि उससे आगेको पुत्रादि रूपसे ब्राह्मणकुल उत्पन्न हुए, महावीर्यसे दुरितक्षय नाम वाला पुत्र हुआ, उसके त्रय्यारुणि, कवि, और पुष्करारुणि यह तीन पुत्र हुए, जो कि-इस क्षत्रियवंशमें होकर भी फिर ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुए, बृहत्क्षत्रका हस्ती नाम वाला पुत्र हुआ, जिसने हस्तिनापुर बसाया ॥ १९ ॥ २० ॥ उस हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ यह तीन पुत्र हुए, अजमीढ़के वंशमें प्रियमेधा आदि ब्राह्मण हुए ॥ २१ ॥ अजमीढ़का दूसरा पुत्र बृहदिषु हुआ, तिसका पुत्र बृहद्धनु, तिससे बृहत्काय, तिसका पुत्र जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ तिसका पुत्र विशद, तिसका पुत्र सेनजित् हुआ, तिसके रुचिराश्व, दृढ़हनु, काश्य और वत्स यह चार पुत्र हुए ॥ २३ ॥ रुचिराश्वका पुत्र पार, तिसका पुत्र पृथुसेन हुआ, पारका

पृथुसेनस्तदात्मजः। पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत्। स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह। उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥ यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः। नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः। कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः। तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत्। नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतस्ततः ॥३०॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत्। भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहद्रिपुः काम्पिल्यः संजयः सुताः। भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः।

दूसरा पुत्र नीप, तिस नीपके सौ पुत्र हुए ॥ २४ ॥ उस ही नीपने कृत्वी नामवाली शुकदेव + जीकी कन्याके विषें ब्रह्मदत्त नाम वाला पुत्र उत्पन्न करा, उस योगी ब्रह्मदत्तने वाणी नाम वाली स्त्रीके विषें विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न करा ॥२५॥ तिस विष्वक्सेनने, जैगीषव्य नामक ऋषिके उपदेशसे योगशास्त्र रचा, तिस विष्वक्सेनसे उदक्स्वन हुआ, तिससे भल्लाद हुआ यह सब बृहद्रिपुके वंशमें उत्पन्न हुए ॥ २६ ॥ द्विमीढ़का पुत्र यवनीर हुआ, तिसका पुत्र कृतिमान् हुआ, तिससे सत्यधृति नामक पुत्र हुआ, तिसका दृढनेमि, तिसका सुपार्श्व हुआ ॥२७॥ सुपार्श्वसे सुमति हुआ, तिसका पुत्र संनतिमान् हुआ, तिसका कृति हुआ, उस कृतिने, हिरण्यनाभ नाम वाले अपने गुरुसे योग और प्राच्यसामोंकी छः संहिता प्राप्त करके उनका विभाग करा और अपने शिष्योंको पढ़ाई, उस कृतिका नीप नाम वाला पुत्र हुआ, तिससे उग्रायुध हुआ, तिसका क्षेम्य, तिससे सुवीर हुआ, तिस सुवीरका रिपुञ्जय हुआ ॥ २८ ॥ २९ ॥ तिससे बहुरथ नाम वाला पुत्र हुआ, पहिले कहे हुए पुरुमीढ़की आगेको सन्तान नहीं हुई; अजमीढ़से प्रियमेधादि ब्राह्मणोंका एक, और बृहद्रिपु आदि राजाओंका एक इस प्रकार दो वंश कहे अब उनके ही और वंश कहते हैं-अजमीढ़का नलिनी नाम वाली स्त्रीके विषें नील नाम वाला पुत्र हुआ, उसका शान्ति नाम वाला पुत्र हुआ ॥३०॥ शान्तिसे सुशान्ति, तिसका पुरुज, तिससे अर्क हुआ, तिसका पुत्र भर्म्याश्व, तिसके मुद्गलादि पाँच पुत्र हुए ॥ ३१ ॥ वह मुद्गल, यवीनर, बृहद्रिपु, काम्पिल्य और सञ्जय यह पाँच पुत्र थे, उस समय सभामें भर्म्याश्वने कहा कि-यह मेरे मुद्गल आदि पाँच पुत्र पाँच देशोंकी रक्षा करनेको समर्थ हैं, तिससे इन पाँचोंका पञ्चाल यह नाम है, उनमें मुद्गलसे

+ यद्यपि शुकदेवजी उत्पत्तिसे ही मुक्त संग होनेके कारण घरसे निकल कर चले गये थे तथापि उन्होंने, विरहसे व्याकुल होकर पीछे आते हुए व्यासजीको देख कर एक छायाशुक रच कर पीछेको लौटा दिया और आप चले गये, उस छायाशुकका गृहस्थाश्रम आदि व्यवहार हुआ ऐसा जानना।

मुद्गलाद् ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥३३॥ मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत्। अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः । शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥ ३५ ॥ शरस्तं-बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् । तद् दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् । कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

श्रीशुक उवाच । मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप । सुदासः सहदेवोथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥१॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः । द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥ धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे । योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः । परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोः सुताः ॥ ४ ॥ सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती । वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः । बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥ ६ ॥ जज्ञे सत्यहितो-

मौद्गल्य नामक गोत्रके ब्राह्मण कुल उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वका पुत्र जो मुद्गल उससे दिवोदास पुत्र और अहल्या नाम वाली कन्या यह दो सन्तान हुई उस अहल्याके विषैं गौतम ऋषिसे शतानन्द नामक ऋषि हुए ॥ ३४ ॥ उन शतानन्दका पुत्र सत्यधृति हुआ वह धनुर्वेदमें अत्यन्त निपुण था उसका पुत्र शरद्वान् हुआ, उस शरद्वान्को एक दिन उर्वशी नाम वाली अप्सराका दर्शन हुआ तब कामातुर हुए उसका वीर्य स्खलित होकर कुशाके झुण्डमें गिर पड़ा सो तत्काल उससे एक पुत्र और एक कन्या यह सुलक्षण दो सन्तान हुई ॥ ३५ ॥ एक समय उस वनमें शिकारके निमित्त फिरते हुए राजा शन्तनुने उनको देख कर कृपावश अपने घर लाकर उनकी रक्षा करी इस कारण उन दोनोंमें जो पुत्र था वह कृपाचार्य और कन्या कृपी नाम वाली हुई, वह फिर द्रोणाचार्यजीकी स्त्री हुई ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! दिवोदाससे मित्रेयु हुआ, तिसके च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक यह चार पुत्र हुए, उनमें सोमकके सौ पुत्र हुए, तिनमें जन्तु बड़ा था और पृषत् छोटा था, तिस पृषत्के द्रुपद हुआ, तिसके द्रौपदी नाम वाली कन्या और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए ॥ १ ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु हुआ, यह भर्म्यके वंशमें उत्पन्न हुए सब ही पाञ्चाल नाम वाले राजे थे, पहिले कहा हुआ अजमीढका दूसरा जो ऋक्ष नाम वाला पुत्र था तिससे संवरण हुआ ॥ ३ ॥ तिससे तपती नाम वाली सूर्यकी कन्याके विषैं कुरुक्षेत्रका स्वामी कुरु नाम वाला पुत्र हुआ, तिस कुरुसे परीक्षित्, सुधनु, जन्हु और निषधाश्व यह चार पुत्र हुए ॥ ४ ॥ उनमें सुधनुसे सुहोत्र हुआ, तिससे च्यवन हुआ, तिससे कृती हुआ, तिस कृतीके उपरिचर वसु हुआ, तिससे बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप यह चेदि देशके स्वामी पुत्र हुए उनमें बृहद्रथसे कुशाग्र हुआ,

ऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः । अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥७॥ ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते । जीव जीवेति क्रीडंत्या जरासंधोऽभवत्सुतः ८ ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः । परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ९ ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत् । जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च । ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥ देवापिः शंतनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः । पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥ अभवच्छंतनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः । यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥१३॥ शांतिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शंतनुः । समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४ ॥ शंतनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ता त्वमग्रभुक् । राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् । तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो ॥ १६ ॥ गिरा-

तिसका पुत्र ऋषभ हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तिसका पुत्र सत्यहित हुआ, तिसका पुत्र पुष्पवान् हुआ, तिसका जन्हु हुआ, बृहद्रथसे ही दूसरी स्त्रीके विषें एक शरीरके मध्यमेंसे ही विभाग करे हुए दो टुकड़े उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥ वह प्राणहीन टुकड़े माताने बाहर फैंकदिये, तब तहाँ क्रीड़ा करनेवाली जरा नामवाली राक्षसीने 'जीव, जीव' ऐसा कहकर उन दोनोंको एक करके जोड़ दिया तब उनसे पुत्र हुआ वह जरासंध नामवाला था ॥ ८ ॥ उससे सहदेव हुआ, तिसका सोमापि हुआ, तिससे श्रुतश्रवा हुआ, कुरुका पुत्र जो परीक्षित् उसके सन्तान नहीं हुई जन्हुके सुरथ नामवाला पुत्र हुआ॥९॥ तिस सुरथसे विदूरथ हुआ, तिससे सार्वभौम नाम वाला पुत्र हुआ, तिसका पुत्र जयसेन हुआ, तिसका पुत्र राधिक हुआ, तिस राधिकसे अयुत हुआ ॥ १० ॥ तिससे क्रोधन हुआ, तिसका देवातिथि हुआ तिसका पुत्र ऋष्य हुआ, तिसका दिलीप हुआ, तिसका पुत्र प्रतीप हुआ ॥११॥ तिसके देवापि, शन्तनु, और बाह्लीक यह तीन पुत्र हुए, उनमेंसे देवापी पिताके राज्यको त्यागकर वनमें चलागया ॥ १२ ॥ इस कारण उसका छोटा भ्राता शन्तनु ही राजा हुआ, वह पहिले जन्ममें महाभिष नामवाला था, उसका शन्तनु नाम पडनेका यह कारण हुआ कि-वह जिस २ वृद्धपुरुषको हाथसे छूता था वह २ वृद्धपुरुष तरुण अवस्थाको प्राप्त होजाता था और आरोग्य पाकर उत्तम सुख पाता था इस कारण इस कर्मसे वह शन्तनु नाम वाला हुआ, उसके राज्यमें जब बारहवर्ष पर्यन्त जलकी वर्षा नहीं हुई तब उस शन्तनुसे ब्राह्मणोंने कहा कि-तुम जो अपने बडे भ्राताको छोड कर पृथ्वीका राज्य करते हो सो परिवेत्ता * हो इसकारण मेघ नहीं बरसता है सो नगरकी और राज्यकी वृद्धि होनेके निमित्त शीघ्र ही अपने बड़े भ्राताको राज्य दो ॥ १३-१५ ॥ ऐसा ब्राह्मणोंके कहने पर उस राजा शन्तनुने, वनमें जाकर अपने

* बडे भ्राताका विवाह हुए विना जो छोटा भ्राता विवाह करके गृहस्थाश्रम करता है वह 'परिवेत्ता' होता है और बडा भ्राता 'परिवित्ति' कहता है अर्थात् क्रमका उल्लंघन करनेके दोषसे उनके यह नाम होते हैं ॥

वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह । देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः१७ सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति । बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद् भूरिर्भूरिश्रवा-स्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शन्तनोरासीद्गंगायां भीष्म आत्मवान् । सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः । शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्रांगदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्रांगदो हतः । यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥ वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् । हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन् भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥ मह्यं पुत्राय शांताय परं गुह्यमिदं जगौ । विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् २३ स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाऽम्बालिके उभे। तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः२४

बड़े भ्राता (देवापी) की 'तुम राज्यको ग्रहण करो' यह प्रार्थना करी तहाँ उससे पहिले ही उस शन्तनुके अश्मराव नामवाले मंत्रीने देवापीको पाखण्डी करके राज्य का अनधिकारी करनेके निमित्त जो ब्राह्मण उस देवापीके पास भेजे थे उन्होंने पाखण्ड मतके अनुसार वचनोंके द्वारा उसको वेदमार्गसे भ्रष्ट कर दिया था इस कारण उसने राज्यको स्वीकार न करके उलटे शन्तनुसे वेदमार्गकी निन्दाके वचन कहे, इस कारण पतित होजानेसे वह राज्य करनेके योग्य नहीं रहा तब शन्तनुका दोष न होनेसे जलकी वर्षा हुई, वह देवापि इस समय योगसाधन करके कलापग्राममें रहता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ वह कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश होनेपर फिर सत्ययुग आदिके विषैं उसको स्थापन करेगा, बाह्लीकसे सोमदत्त हुआ, तिससे भूरि, भूरिश्रवा और शल यह तीन पुत्रहुए पहिले कहेहुए शन्तनुसे ही ब्रह्मशापके कारण स्त्रीरूपको प्राप्त हुई गङ्गाके विषैं भीष्म हुए वह इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले,सकल धर्म जानने वालोंमें श्रेष्ठ, परमभगवद्भक्त आत्मज्ञानी और सकल वीरसमूहके अधिपति थे, जिन्होंने युद्धमें परशुरामजीको भी अपने बलसे सन्तुष्ट करा ॥ १८॥१९ ॥ उन ही शन्तनुसे दाशकन्याके विषैं अर्थात् उपरिचर वसुके जलमें पड़े हुए वीर्यको भक्षण करने वाली मच्छीके गर्भमें उत्पन्न हुई, दाशों (धीमरों) को मिलीहुई और उनके रक्षा करनेसे दाशकन्या नामसे प्रसिद्ध हुई जो सत्यवती उसके विषैं चित्रांगद नाम वाला पुत्र हुआ ॥ २० ॥ और उसका छोटा भ्राता विचित्रवीर्य भी हुआ उनमेंसे चित्राङ्गदको चित्राङ्गद ही नामवाले गन्धर्वने युद्धमें मारडाला,उस सत्यवती के ही विषैं, शन्तनुके उसको स्वीकार करनेसे पहिले ही, पराशर ऋषिसे साक्षात् श्रीहरिका अवतार, वेदोंकी रक्षा करनेवाले कृष्णद्वैपायन नामवाले वेदव्यास मुनि हुए, उनसे उत्पन्न हुए मैंने (शुकदेवने) इस श्रीमद्भागवतको पढ़ा, उन बादरायण व्यास भगवान्ने, अपने पैल आदि शिष्योंको छोड़ कर अर्थात् उनसे न कह कर शान्तस्वभाव मुझ पुत्रको, सकल वेद और इतिहासोंके सार इस भागवतका उपदेश करा,विचित्रवीर्यने काशिराजके यहाँसे स्वयम्वरमेंसे भीष्मजीकी बलात्कारसे लाई हुई अम्बिका और अम्बालिका इन दो कन्याओंको वरा, उनमें आसक्त चित्त हुआ वह विचित्रवीर्य, सन्तान होनेसे पहिले ही क्षयरोगसे ग्रस्त होकर मरणको

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः । धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥ गांधार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप । तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥ शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः । जाता धर्मानिलेंद्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥ नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः । द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् । अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथापरे । युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिंबायां काल्यां सर्वगतस्ततः । सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयासूत पार्वती ॥३१॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः । इरावंतमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् । मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥३२॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत । सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥३३॥ परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौण्यब्रह्मास्त्रतेजसा । त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनया-

प्राप्त होगया ॥ १२-२४ ॥ तदनन्तर सत्यवतीके आज्ञा करेहुए व्यासजीने, सन्तानहीन अपने विचित्रवीर्य भ्राताकी अम्बिका और अम्बालिका नामवाली स्त्रीके विषैं क्रमसे धृतराष्ट्र और पाण्डु इन पुत्रोंको तथा दासीके विषै विदुरजीको उत्पन्न करा॥२५॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्रके गान्धारीके विषैं सौ पुत्र और दुःशला नाम वाली एक कन्या यह सन्तान हुई, उन पुत्रोंमें दुर्योधन बड़ा था ॥ २६ ॥ वनमें किन्दम नाम वाले ऋषिका शाप होनेसे जिसका मैथुन कर्म रुक गया है ऐसे राजा पाण्डु की कुन्ती नाम वाली स्त्रीके विषैं यम, वायु और इन्द्रसे युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन यह महारथी तीन पुत्र हुए ॥ २७ ॥ तथा राजा पाण्डुकी माद्री नाम वाली दूसरी स्त्रीकेविषैं अश्विनीकुमारोंसे नकुल और सहदेव यह दो पुत्र हुए,तिन युधिष्ठिर आदि पाँचोंसे द्रौपदी नाम वाली एक स्त्रीके विषैं पाँच पुत्र तुम्हारे चचा ताऊ हुए ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य,भीमसेनसे श्रुतसेन,अर्जुनसे श्रुतकीर्त्ति,नकुलसे शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा यह हुए तथा युधिष्ठिरादिकोंसे और स्त्रियों में भी पुत्र हुए; जैसे युधिष्ठिरसे पौरवीके विषैं देवक हुआ; भीमसेनसे हिडिम्बाके विषैं घटोत्कच हुआ, तथा उन ही भीमसेनसे कालीके विषैं सर्वगत हुआ, सहदेवसे पर्वतकी कन्या विजयाके सुहोत्र हुआ ॥ २९-३१ ॥ नकुलका करेणुमतीके विषैं निरमित्र हुआ; तथा अर्जुनका भी उलूपी नाम वाली नागकन्याके विषैं इरावान् नाम वाला पुत्र हुआ मणिपुर देशके राजाकी कन्याके विषैं बभ्रुवाहन नाम वाला पुत्र हुआ, वह बभ्रुवाहन अर्जुनका पुत्र होनेपर भी,वह कन्या पुत्रिका धर्मसे (इसके जो पुत्र वह मेरा होगा ऐसा ठहरा कर) दी थी इस कारण नानाने (मणिपुरके राजाने) लेलिया था ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! सब अतिरथियोंको जीतने वाला तुम्हारा पिता वीर अभिमन्यु भी अर्जुनसे सुभद्राके विषैं उत्पन्न हुआ था, उस अभिमन्युसे ही उत्तराके विषैं तुम हुए हो ॥ ३३ ॥ दुर्योधन आदि कौरवोंका नाश होनेपर क्रोधमें भरे हुए अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे भस्म होतेहुए भी तुमको,श्रीकृष्णके प्रभाव

स्तात जनमेजयपूर्वकाः। श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥ जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम्। सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ॥ ३६ ॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट्। समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन्। अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधकः। असीमकृष्णस्तस्यापि निमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति। उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥ ४० ॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः। सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः। नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति। तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ४२ ॥ शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं वहीनरः। दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः। क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥४४॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते। भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः॥४५

ने जीता ही मृत्युसे छुड़ा लिया है ॥ ३४ ॥ हे तात परीक्षित्! तुम्हारे यह परम पराक्रमी जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन चार पुत्र हैं ॥ ३५ ॥ यह जनमेजय तुम्हें तक्षकसे मरणको प्राप्त हुआ जानकर क्रोधयुक्त होगा और सर्पोंका नाश करने वाले यज्ञकी अग्निमें सर्पोंका होम करेगा ॥ ३६ ॥ कावषेयतुर नामवाले ऋषि को पुरोहित करके, चारों ओर पृथ्वी परके सकल राजाओंको जीत कर अश्वमेध यज्ञोंसे भगवान्की आराधना करेगा तब अश्वमेधयाजी इसनामसे प्रसिद्ध होयगा॥३७ तिस जनमेजयका पुत्र शतानीक होयगा, वह याज्ञवल्क्य ऋषिसे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद पढ़ कर और कृपाचार्यसे अस्त्र विद्या तथा कर्मकाण्डको सीख कर शौनक ऋषिसे परमात्मज्ञान पावेगा ॥ ३८ ॥ उस शतानीकका पुत्र सहस्रानीक होयगा, तिससे अश्वमेधज, तिसका असीमकृष्ण और उसका भी पुत्र निमिचक्र होयगा ॥ ३९ ॥ वह गङ्गाके हस्तिनापुरको डुबा देनेपर, तहाँसे निकलकर कौशांबी नगरीमें सुखसे रहेगा, तिससे चित्ररथ नाम वाला पुत्र होयगा, तिससे कविरथ पुत्र होयगा ॥ ४० ॥ तिससे वृष्टिमान् होयगा, तदनन्तर उसका पुत्र सुषेण महीपति होयगा तिसका पुत्र सुनीथ, तिसका नृचक्षु, तिसका सुखीनल, तिससे पारिप्लव पुत्र होयगा तिससे सुनय, तिसका पुत्र मेधावी, तिससे नृपञ्जय, तिससे दूर्व, तिससे तिमि होयगा, तिमिसे बृहद्रथ, तिससे सुदास, तिससे शतानीक ४१॥४२ शतानीकसे दुर्दमन, तिसका पुत्र वहीनर होयगा, तिसका दण्डपाणि, तिसका निमि, तिसका राजा क्षेमक होयगा ॥ ४३ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके कुलोंका कारण और देवता तथा ऋषियोंका सत्कार करा हुआ यह वंश मैंने तुमसे कहा है, यह वंश कलियुगमें राजा क्षेमकको पाकर समाप्त होजायगा ॥ ४४ ॥ अब जरासन्धके वंशमें आगेको होने वाले राजे तुमसे कहता हूँ-जरासन्धका पुत्र सहदेव, तिसका मार्जारि नाम वाला पुत्र होयगा, तिसका श्रुतश्रवा होयगा ॥ ४५ ॥

ततो युतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः । सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोथ कर्मजित् ॥४६॥ ततः सुतञ्जयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति । क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥४७॥ द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः । सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुञ्जयः । बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीशुक उवाच । अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः । सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥ जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशालो महामनाः । उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ २ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः । वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ ३ ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः । ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४ ॥ अङ्गवंगकलिंगाद्याः सुह्मपुण्ड्रांध्रसंज्ञिताः । जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ ५ ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान् षडिमान्प्राच्यकांश्च ते । खनपानोऽगतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥६॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजः । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा । शांतां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ॥ ७ ॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् । नाट्यसंगीतवादित्रैर्विभ्रमालिंगनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु

तिसका अयुतायु, तिसका निरमित्र होयगा, तिसका पुत्र सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका बृहत्सेन, तिससे कर्मजित् ॥ ४६ ॥ तिससे सुतञ्जय, तिसका विप्र, तिसका शुचि होयगा, तिससे क्षेम; तिससे सुव्रत, तिससे धर्मसूत्र, तिससे शम ॥ ४७ ॥ तिससे द्युमत्सेन, तिससे सुमति, तिससे सुबल होयगा, तिससे सुनीथ, तिससे सत्यजित्, तिससे विश्वजित् और तिससे रिपुञ्जय नामक पुत्र होयगा यह सब बृहद्रथके वंशमें सहस्र वर्षपर्यंत राजे होयँगे ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ ॥ ॐ ॥ छ ॥ ॐ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! ययातिके पुत्र अनुके-सभानर, चक्षु और परोक्ष यह तीन पुत्र हुए, उनमेंसे सभानरसे कालनर हुआ, तिससे सञ्जय हुआ ॥ १ ॥ तिसका पुत्र जनमेजय, तिसका महाशील तिसका महामना तिस महामनाके उशीनर और तितिक्षु यह दो पुत्र हुए ॥ २ ॥ उनमें उशीनरके पुत्र, शिवि, वन, शमि और दक्ष यह चार हुए उनमें शिविसे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय नाम वाले यह चार पुत्र हुए तितिक्षुसे रुशद्रथ, तिससे हेम, तिससे सुतपा हुआ, सुतपासे बलि हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तिस भूपति बलिकी स्त्रीके विषैं उतथ्यके पुत्र दीर्घतमासे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध्र इन नामों वाले छः पुत्र हुए ॥ ५ ॥ उन्होंने पूर्वादि दिशाओंमें अपने नामोंसे प्रसिद्ध अङ्ग आदि छः देश बसाये हैं, उनमेंसे अङ्गसे खनपान हुआ, तिससे दिविरथ हुआ, तिससे धर्मरथ पुत्र हुआ, तिसका चित्ररथ हुआ, वह पुत्रहीन था, फिर वह चित्ररथ ही रोमपाद नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसको उसके मित्र राजा दशरथने, अपनी शान्ता नामवाली कन्या दत्तक दी, तिसको ऋष्यशृङ्गने वर लिया ॥ ६ ॥ ७ ॥ जो विभाण्डक ऋषिसे

राज्ञोनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः । प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरंगो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ १० ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः । आद्याद् बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः॥ ११॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत । ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ १२ ॥ योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मंजूषांऽतर्गतं शिशुम् । कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ १३॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः । द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गांधारस्तस्य धर्मसुतो धृतः । धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ १५ ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः । तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ १६ ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करंधम उदारधीः । मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् १७ दुष्यंतः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः । ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ १८ ॥ वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ।

हरिणीके विषैं उत्पन्न हुए थे और जब राजा रोमपादके देशोंमें वर्षा नहीं हुई तब 'ऋष्यशृङ्ग तुम्हारे देशमें आवेंगे तो वर्षा होयगी' ऐसा ब्राह्मणोंके निश्चयके साथ कहने पर, जिनको वेश्या स्त्रियें गीत नृत्य आदि उपायोंसे मोहित करके वनमेंसे रोमपादके नगरमें लाईं थीं ॥ ८ ॥ उन्होंने इन्द्र देवताकी पुत्रकामेष्टि करके सन्तान हीन राजा रोमपादको सन्तान दी और सन्तानहीन राजा दशरथकी भी जिन्होंने पुत्रकामेष्टि करी तब उनके श्रीरामचन्द्र आदि चार पुत्र हुए ॥ ९ ॥ रोमपादसे चतुरङ्ग हुआ, तिसका पुत्र पृथुलाक्ष हुआ ॥ १० ॥ तिस पृथुलाक्षके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु यह तीन पुत्र थे, उनमेंसे बृहद्रथसे बृहन्मना हुआ, तिससे जयद्रथ हुआ ११ तिसका सन्भूतिके विषैं विजय हुआ, तिससे धृति हुआ, तिससे धर्म, तिसका धृतव्रत, तिसका सत्कर्मा, तिसका अधिरथ हुआ १२ वह सन्तानहीन राजा, एक समय गङ्गाके तट पर क्रीड़ा कर रहा था, सो तहाँ उस अधिरथको 'कुन्तीने, कन्यावस्थामें अपनेसे उत्पन्न होनेके कारण पिटारीमें रख कर बहाया हुआ' कर्ण नाम वाला पुत्र मिला, उसको ही उसने पुत्र समझ कर पाला तिस भूपति कर्णके वृषसेन नाम वाला पुत्र हुआ ॥ १३ ॥ ययातिका तीसरा पुत्र जो द्रुह्यु तिसका बभ्रु नामक पुत्र हुआ, तिसका पुत्र सेतु, तिसका आरब्ध, तिसका गान्धार, तिसका धृत हुआ तिस धृतका दुर्मना हुआ, तिससे प्रचेता हुआ, तिस प्रचेताके सौ पुत्र हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ वह उत्तर दिशामें रहने वाले और म्लेच्छोंके अधिपति हुए, ययातिका दूसरा पुत्र जो तुर्वसु तिसका पुत्र वन्हि हुआ, तिस वन्हिसे भर्ग हुआ, तिससे भानुमान् हुआ ॥ १६ ॥ तिसका पुत्र त्रिभानु, तिसका पुत्र करन्धम हुआ वह बड़ा उदार बुद्धि था, तिसके पुत्र मरुतने पुत्रहीन होनेके कारण पूरु वंशमें उत्पन्न हुए दुष्यन्तको पुत्र बना कर रख लिया ॥ १७ ॥ वह दुष्यन्त उसका पुत्र होकर भी राज्यकी इच्छा करने वाला होनेके कारण फिर अपने पौरव वंशमें ही चला गया, क्योंकि-पुरुवंशमेंके राजाओंको ही सिंहासनका अधिकार है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! अब तुमसे मनुष्योंके सकल पापोंका नाश करने वाला और परमपुण्य-

यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥ यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः । यदोः सहस्रजित् क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ २० ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः । महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ २१ ॥ धर्मस्तु हैहयसुनो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः । सोऽहंजिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान् भद्रसेनकः॥२२॥दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः । कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥२३॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः २४ न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यंति पार्थिवाः । यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः । अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे । जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः २७ जयध्वजात्तालजंघस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् । क्षत्रं यत्तालजंघाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम्२८ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २९ ॥ माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिताः । यदुपुत्रस्य

कारी, राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ,क्योंकि–मनुष्य यदुके वंशको सुनकर सकल पापोंसे छूट जाता है ॥१९॥ क्योंकि–जिस वंशमें परमात्मा भगवान्ने मनुष्यकी आकृतिका अवतार धारण करा है, यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु इन नामोंसे प्रसिद्ध चार पुत्र हुए उनमें सहस्रजित्का पुत्र शतजित् हुआ, तिसके महाहय, वेणुहय और हैहय यह तीन पुत्र हुए ॥ २० ॥ २१ ॥ उनमेंसे हैहयका पुत्र धर्म, तिससे नेत्र हुआ, तिससे कुन्ति हुआ, कुन्तिसे सोहंजि हुआ, तिसका महिष्मान्, तिसका भद्रसेनक हुआ, ॥ २२ ॥ भद्रसेनके दुर्मद और धनक यह दो पुत्र हुए धनकके कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा यह चार पुत्र हुए ॥ २३ ॥ कृतवीर्यके अर्जुन हुआ, वह सात द्वीपोंका स्वामी हुआ, उसने श्रीहरिके अंश दत्तात्रेयजीकी आराधना करके उनसे योगसिद्धि और अणिमादि महाऐश्वर्य पाई ॥ २४ ॥ हे राजन् ! कोई भी राजे, यज्ञ, दान, तप, योग, शास्त्र पढ़ना, पराक्रम और जय आदिकें द्वारा उस कार्त्तवीर्य अर्जुनकी समताको नहीं पासकेंगे ॥२५॥ पचासी सहस्र (८५०००) वर्ष पर्यन्त जिसके शरीर इंद्रियादिकी शक्ति कुछ भी कम नहीं हुई, और जिसको इच्छित वस्तुके न मिलनेका स्मरण भी नहीं होता था, उसने अपनी अक्षय इन्द्रियोंसे छः विषयोंका सेवन करा ॥ २६ ॥ उसके दश सहस्र (१००००) पुत्र थे उनमेंसे, परशुरामजीके साथ होने वाले युद्धमें पाँच ही शेष रहे, उनके नाम जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित यह थे ॥ २७ ॥ जयध्वजसे तालजङ्घ हुआ, उसके भी जो तालजङ्घ नाम वाले क्षत्रियोंके सौ कुल थे वह सौ पुत्र हुए, उनको और्वऋषिके तेजसे राजा सगरने मारडाला २८ उन तालजङ्घ नाम वाले पुत्रोंमें बड़ा पुत्र वीतिहोत्र था, उसके मधु नाम वाला पुत्र हुआ उसके जिनमें वृष्णि नामक पुत्र बड़ा है ऐसे सौ पुत्र हुए मधु, वृष्णि और यदुसे जो यह कुल फैले इस कारण आगेको सब राजे माधव, वृष्णि और यादव नाम वाले हुए, यदुके बड़े पुत्र क्रोष्टासे वृजिवान् पुत्र हुआ ॥ २९ ॥ ३० ॥ तिससे

च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ ३० ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः । शशबिंदुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥३१॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्त्यपराजितः । तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३२॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् । तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३३ ॥ धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् । तत्सुतो रुचकस्तस्य पंचासन्नात्मजाः शृणु ॥ ३४ ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः । ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् । रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ ३६ ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै । स्नुषा तवेत्यभिहितं स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ अहं बन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् । जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ ३८ ॥ अन्वमोदन्त तद्विश्वे देवाः पितर एव

श्वाहि, तिससे रुशेकु, तिसका पुत्र चित्ररथ, तिससे शशबिन्दु हुआ, वह महायोगी महाभोगवान् और सत्यसंकल्प आदि गुणोंसे भी महान् था ॥ ३१ ॥ उसके पास श्रेष्ठ चौदह रत्न × थे और वह सार्वभौम, किसीसे पराजय न पाने वाला तथा परमयशस्वी था ॥ ३२ ॥ उसने अपनी दश सहस्र स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकके लाख २ इस प्रकार दश लाख पुत्र उत्पन्न करे, उनमें पृथुश्रवा, पृथुकीर्त्ति आदि छः पुत्र मुख्य थे, उनमेंसे पृथुश्रवाके धर्म नाम वाला पुत्र हुआ, तिसके उशना हुआ, उसने सौ अश्वमेध करे, तिसका पुत्र रुचक उसके पाँच पुत्र हुए उनके नाम कहता हूँ सुनो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ यह उनके नाम थे, उनमेंसे ज्यामघकी स्त्रीका नाम शैब्या था और उसके बन्ध्या होनेसे ज्यामघके सन्तान नहीं हुई, उसने स्त्रीके भयसे दूसरी स्त्री ग्रहण नहीं करी, एक समय वह शत्रुओंको जीत कर उनके घरमेंसे भोगनेके निमित्त भोज्या नाम वाली कन्याको ले आया, तब रथमें बैठी हुई उस कन्याको देख कर, क्रोधमें भरी हुई वह शैब्या पतिसे कहने लगी कि-॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अजी धोखा देने वाले ! रथ पर मेरे बैठनेके स्थानमें यह कौन बैठी है ? तब उसके भयसे ज्यामघने कहा कि—यह तेरे पुत्रकी स्त्री है, तब हँसती हुई वह शैब्या फिर पतिसे कहने लगी कि-॥ ३७ ॥ मैं बन्ध्या हूँ और मेरे कोई सपत्नी (सौत) भी नहीं है फिर मेरे पुत्रवधू कैसे होसकती है ? तब अत्यन्त भयभीत हुआ ज्यामघ कहने लगा कि-हे प्रिये ! तेरे जो अब पुत्र होयगा उसकी स्त्री यह ठीक होगी ॥ ३८ ॥ ऐसा कहकर स्त्रीके भयसे काँपने वाले और पसीनेमें भीगे हुए उस राजाका प्राणसंकट देख कर, जिनकी उसने पहिले अनेकों बार उपासना करी थी ऐसे विश्वेदेवा और पितरोंने, दयालु होकर उसके तिस कहनेको ही 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) कह दिया, तदनन्तर उन विश्वेदेवा आदिकोंके अनुग्रहसे और ज्यामघके उस वाक्यको मुखमेंसे निकालनेके समय जो मुहूर्त्त था उसके गुणसे उस शैब्याने गर्भ धारण करा और समय आने पर शुभ

× हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, पुष्प, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, पाश, मणि छत्र और विमान यह चौदह महारत्न हैं ।

च। शैव्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम्। स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

श्रीशुक उवाच। तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ। तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥ रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत। उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृपाः २ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोभूद् धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः। ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥ जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः। ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करंभिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः। देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः। भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः। सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥६॥ भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो वृष्णिरेव च। एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयःसुताः। शताजिच्च सहस्राजिद्युताजिदिति प्रभो ॥७॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठंत्यमू ॥८॥ यथैव शृणुमो दूरात्संपश्यामस्तथांऽतिकात्। बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ ९ ॥ पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट् सहस्राणि चाष्ट च। येमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि १०

लक्षण वाले पुत्रको उत्पन्न करा, यह विदर्भ इन नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसने थोड़े ही कालमें तरुण होकर जो पहिले ही से शैव्याकी पुत्रवधू कहलाती थी उस कन्याको वर लिया ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ * छ

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! तिस भोज्याके विषें विदर्भ राजाके कुश और क्रथ नाम वाले दो पुत्र और विदर्भ कुलको आनन्द देने वाला रोमपाद नामक तीसरा पुत्र हुआ ॥ १ ॥ रोमपादका पुत्र बभ्रु तिस बभ्रुसे कृति हुआ, तिसका पुत्र उशिक, तिससे चेदि हुआ, तिससे दमघोष आदि पुत्र हुए ॥ २ ॥ क्रथका पुत्र कुंति हुआ, तिसका धृष्टि, तिसका निर्वृति, तिससे दशार्ह नाम वाला पुत्र हुआ, तिस से व्योम पुत्र हुआ, तिसका जीमूत, तिसका विकृति, तिसका पुत्र भीमरथ, तिस से नवरथ पुत्र हुआ, तिससे दशरथ हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ तिससे शकुनि, शकुनिका पुत्र करम्भि हुआ, तिसका पुत्र देवरात, तिसका देवक्षत्र, तिसका मधु, तिससे कुरुवश, तिससे अनु हुआ ॥५॥ अनुका पुत्र पुरुहोत्र, तिसका आयु, तिससे सात्वत हे राजन्! तिस सात्वतके भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि देवावृध, अन्धक और महाभोज यह सात पुत्र हुए ॥६॥ हे राजन्! भजमानकी एक स्त्रीके विषें निम्लोचि, किंकिण, और वृष्णि यह पुत्र हुए तथा दूसरी स्त्रीके विषें शताजित्, सहस्राजित् और अयुताजित् यह तीन पुत्र हुए ॥ ७ ॥ देवावृधका पुत्र बभ्रु हुआ, तिस देवावृध और बभ्रुके विषयमें पुरुष इन दो श्लोकोंको पढ़ते हैं ॥८॥ देवावृध और बभ्रु यह दोनों जैसे गुणवान् हमने दूरसे सुने थे, वैसे ही अब प्रत्यक्ष देखरहे हैं, मनुष्यों में बभ्रु श्रेष्ठ है और देवावृध तो देवताओंकी समान है ॥ ९ ॥ क्योंकि-बभ्रु और

महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥ वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परंतपः । शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ । अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः । युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः । धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश । तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः । पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कंबलबर्हिषः । कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः । अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥२०॥ तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ । देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः २१ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः । तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शांतिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता । सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः २३

देवावृध इन दोनोंसे उपदेश पाकर चौदह सहस्र पसठ (१४०६५) पुरुष मुक्ति पागये हैं ॥ १० ॥ महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था, उसके वंशमें भोज नामवाले राजे उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ हे शत्रुसन्तापन राजन् ! वृष्णिसे सुमित्र और युधाजित् यह दो पुत्र हुए, उनमेंसे युधाजितके शिनि और अनमित्र यह दो पुत्र हुए, अनमित्रसे निम्न हुआ ॥ १२ ॥ निम्नके भी सत्राजित् और प्रसेन यह दो पुत्र हुए,अनमित्रके एक और शिनि नाम वाला पुत्र था उसका सत्यक हुआ, तिस सत्यकके युयुधान नाम वाला (सात्यकि) पुत्र हुआ, तिसका जय, तिसका कुणि, तिससे युगन्धर हुआ, अनमित्रका तीसरा वृष्णि नाम वाला पुत्र था उससे श्वफल्क और चित्ररथ यह दो पुत्र हुए,श्वफल्कसे गान्दिनी नामवाली स्त्रीके विषैं अक्रूर आदि और बारह अर्थात् अक्रूरसहित तेरह पुत्र हुए ॥ १३-१५ ॥ उन बारहोंके आसङ्ग,सारमेय,मृदुर, मृदुवित, गिरी, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन,शत्रुघ्न,गन्धमाद और प्रतिबाहु यह नाम थे, तथा सुचीरा नामवाली उनकी बहिन थी, अक्रूरके देववान् और उपदेव यह दो पुत्र हुए, तथा चित्ररथके पुत्र पृथु, विदूरथ आदि हुए,यह सब राजे वृष्णिके कुलमें हुए ॥ १६-१८ ॥ अन्धकके कुकुर,भजमान,शुचि और कम्बल बर्हिष यह चार पुत्र हुए, उनमें कुकुरका वह्नि नामक पुत्र हुआ, तिससे विलोम नामक पुत्र हुआ ॥१९ ॥ तिसका कपोतरोमा, तिसका अनु हुआ, तिस अनुका तुम्बरु नाम वाला गन्धर्व मित्र था, अनुसे अन्धक हुआ, तिसका दुंदुभि, तिसका अरिद्योत, तिसका पुनर्वसु हुआ ॥ २० ॥ उसके आहुक पुत्र और आहुकी कन्या यह दो सन्तान हुईं, आहुकके देवक और उग्रसेन यह दो पुत्र हुए, उनमेंसे देवकके पुत्र देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन यह चार हुए, हे राजन् ! उन चारोंकी धृतदेवा आदि सात बहिनें थीं ॥ २१ ॥ २२ ॥ उनके नाम-धृतदेवा, शान्तिदेवा, उप-

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कंकः शंकुः सुहूस्तथा । राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥ कंसा कंसवती कंका शूरभू राष्ट्रपालिका । उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥ शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः । शिनिस्तस्मात्स्वयंभोजा हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देववाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः । देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् । वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥ सृञ्जयं श्यामकं कंकं शमीकं वत्सकं वृकम् । देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुंदुभिम् । पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः । कुंतेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥३१॥ साप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् । तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥ ३२ ॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा । प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् । योनिर्यथा न

देवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी यह थे, उन सबोंको वसुदेवजीने वर लिया ॥ २३ ॥ उग्रसेनके पुत्र-कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शङ्कु, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान् यह नौ थे ॥ २४ ॥ तथा कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू, राष्ट्रपालिका यह पाँच उग्रसेनकी कन्या थीं, यह वसुदेवजीके देवभाग, आदि छोटे भ्राताओंकी स्त्रियें थीं ॥ २५ ॥ पहिले कहे हुए विदूरथसे शूर हुआ, तिससे भजमान पुत्र हुआ तिससे शिनि हुआ तिससे स्वयं भोज हुआ, तिसका पुत्र हृदीक हुआ वह सबका माननीय था ॥ २६ ॥ तिसके पुत्र देववाहु, शतधनु, कृतवर्मा और देवमीढ़ यह चार थे, उनमें देवमीढ़के शूर हुआ, उसकी मारिषा नाम वाली स्त्री थी ॥ २७ ॥ उसके विषैं देवमाढ़ने, निर्दोष दश पुत्र उत्पन्न करे, उनके नाम-वसुदेव, देवभाग, देवश्रव, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक यह थे, उनमेंसे जिसके जन्मके समय देवताओंके आनक (नौबत) और दुंदुभि (नगाड़े) अपने आप बजने लगे, इस कारण श्रीकृष्णके अवतारके योग्य स्थान उन वसुदेवका नाम आनक दुंदुभि कहते हैं-पृथा श्रुतदेवा, श्रुतकीर्त्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी यह शूरकी पाँच कन्या वसुदेव आदिकोंकी बहिनें थीं, उनमेंसे पृथा, उसके पिता शूर ने, अपने पुत्रहीन कुन्ति नामवाले मित्रको दत्तक देदी थी इसकारण उसका 'कुंती' यह दूसरा नाम पड़ा था ॥ २८-३१ ॥ तिस कुन्तीने एक समय अपने घर आये हुए शुश्रूषा आदि करके प्रसन्न करे हुए दुर्वासा ऋषिसे देवताओंको बुला लेनेकी मन्त्र-विद्या प्राप्त करी थी, उसके प्रभावकी परीक्षा करनेके निमित्त उसने एक मन्त्रका प्रयोग करके शुद्ध सूर्यभगवान्‌को अपने समीप बुलाया ॥ ३२ ॥ उसी समय समीप आये हुए सूर्यको देखकर चित्तमें विस्मित हुई तिसने कहा कि-सत्यपनेकी परीक्षा करनेके निमित्त मैंने इस विद्याका प्रयोग करा था परन्तु आपसे किसी कार्यके करानेकी आवश्यकता नहीं है इस कारण तुम लौट कर चले जाओ, निष्कारण बुलानेके मेरे अपराधको क्षमा करो ॥३३॥ तब सूर्यने कहा कि-सुन्दरि! मेरा दर्शन

दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥ इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः । सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं साऽत्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती । प्रपितामहस्तामुवाह पांडुर्वै सत्यविक्रमः ॥३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् । यस्यामभूद्दन्तवक्त्रः ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविंदत । संतर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावंत्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ शिशुपालः सुतस्तस्यां कथितस्तस्य संभवः । देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा । कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा संजयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् । हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा । तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥ सुमित्राजुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी । कंकश्च

निष्फल नहीं होता है इस कारण मैं तेरे विषैं पुत्ररूप गर्भ स्थापन करता हूँ यदि कहे कि-मैं अभी कन्या हूँ तो हे सुमध्यमे ! जिस प्रकार तेरी योनिको किसीप्रकार का दोष नहीं लगेगा तैसे मैं गर्भ स्थापन करूँगा अर्थात् वह गर्भ योनिद्वारसे कष्ट न देकर कानमेंको होकर ही बाहर आजायगा ॥ ३४ ॥ ऐसा कह कर तिस सूर्यने उसके विषैं गर्भ स्थापन करा और तदनन्तर स्वर्गको चले गये, फिर मानो जैसे दूसरा सूर्य हो, ऐसा तेजस्वी कुमार तत्काल विना परिश्रम कानमेंको होकर उत्पन्न हुआ ॥३५॥ तब लोक निन्दासे भय माननेवाली तिस कुन्तीने दुःखसे उस बालक को पिटारीमें बन्द करके नदीके जलमें छोड़ दिया, फिर उस कुन्तीको सत्यपराक्रमी तुम्हारे प्रपितामह (परदादा) ने वरा३६श्रुतदेवाको करूष देशके स्वामी वृद्धशर्मान वरा, उसके विषैं तो पहले सनकादि ऋषियोंने जिसको शाप दिया था वह भगवान्का विजय नामवाला,द्वारपाल जो दितिका पुत्र हिरण्याक्ष था वह दंतवक्त्र नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ३७ श्रुतकीर्त्तिको कैकेय (केकय देशके स्वामी) धृष्टकेतुने वरा, उसके विषैं कैकेय सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ राजाधिदेवीके विषैं, जयसेन राजाने, अवन्तिदेशके स्वामी विन्द, अनुविन्द नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न करे, चेदिदेशोंका राजा जो दमघोष उसने श्रुतश्रवाको वरा३९तिसके शिशुपाल नाम वाला पुत्र हुआ, उसके उत्पन्न होनेका वृत्तांत सातवें स्कन्धमें तुम से कहा था-इस प्रकार वसुदेवकी बहिनोंके पति और पुत्र कह कर अब उन वसुदेवजीके नौ भ्राताओंकी स्त्रियें और पुत्रोंका वर्णन करते हैं-देवभागके कंसा नाम वाली स्त्रीके विषैं चित्रकेतु और बृहद्बल यह दो पुत्र हुए ॥ ४० ॥ तथा देवश्रवाके कंसावती स्त्रीके विषैं सुवीर और इषुमान् यह दो पुत्र हुए,तैसे ही आनकसे कंकाके विषैं सत्यजित और पुरुजित् यह दो पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ सृञ्जयके राष्ट्रपालीके विषैं वृष दुर्मर्षण आदि पुत्र हुए, श्यामकने शूरभूतिके विषैं हरिकेश और हिरण्याक्ष यह दो पुत्र उत्पन्न करे ॥ ४२ ॥ तथा वत्सकने, मिश्रकेशी नाम वाली अप्सराके विषैं वृक आदि पुत्र उत्पन्न करे, वृकने दुर्वाक्षी स्त्रीके विषैं तक्ष; पुष्करशाल आदि पुत्र

कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥४४॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला। देवकीप्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुंदुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम्। वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च। पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥ नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः। कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमांगदादयः। इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥ विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुंदुभेः। शांतिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः ५० राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवसुता दश। वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः। वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥५२॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव। वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत्५३ कीर्त्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः। ऋजुं संमर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ५४ अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल। सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥५५॥ यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः। तदा तु भगवानीश आत्मानं

उत्पन्न करे ॥ ४३ ॥ शमीकसे सुदामनी स्त्रीके सुमित्र, अर्जुनपाल आदि पुत्र हुए कंकने कर्णिकाके विषैं ऋतधाम और जल पुत्र उत्पन्न करे ॥ ४४ ॥ अब वसुदेवजी के स्त्री पुत्रोंका वर्णन करते हैं-पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि वसुदेवजीकी अठारह स्त्रियें थीं ॥ ४५ ॥ उनमेंसे रोहिणीके विषैं वसुदेवजीने-बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव इन पुत्रोंको तथा कृत आदि और भी पुत्रोंको उत्पन्न करा ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीसे पौरवीके सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद भद्र और भूत आदि प्रसिद्ध बारह पुत्र थे ॥ ४७ ॥ नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि मदिराके पुत्र थे, कौशल्या नाम वाली वसुदेवकी स्त्रीने तो-कुलनन्दन केशी नाम वाला एकही पुत्र उत्पन्न करा ॥ ४८ ॥ रोचनाके विषैं वसुदेवजीसे हस्त और हेमांगद आदि पुत्र हुए तथा वसुदेवजीने इला नाम वाली स्त्रीके विषैं यादवोंमें मुख्य उरु और वल्क आदि पुत्र उत्पन्न करे ॥ ४९ ॥ वसुदेजीके धृतदेवाके विषैं विपृष्ठ नाम वाला एक ही पुत्र हुआ, हे राजन् ! वसुदेवकी शान्ति देवा नाम वाली स्त्रीके विषैं तो श्रम, प्रतिश्रुत आदि पुत्र हुए ॥५०॥ कल्प, वर्ष आदि दश राजे तो वसुदेव जीकी उपदेवाके पुत्र हुए, श्रीदेवाके तो वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र हुए ॥५१॥ देवरक्षिता नाम वाली स्त्रीके तो गद आदि नौ पुत्र हुए तथा वसुदेवजीने सहदेवा नामवाली स्त्रीके द्वारा पुरु,विश्रुत आदि आठ पुत्र, जैसे साक्षात् धर्मने वसु उत्पन्न करे थे तैसे उत्पन्न करे, तथा उदार बुद्धि उन वसुदेवजीने देवकीके विषैं आठ पुत्र उत्पन्न करे ५२॥५३ वह कीर्त्तिमान् सुषेण, भद्रसेन, ऋजु,संमर्दन,भद्र और शेषजीके अवतार संकर्षण (बलराम) यह सात थे५४और उन देवकी वसुदेवके आठवेंपुत्र तो स्वयं साक्षात् श्रीहरि ही श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुए थे और हे राजन् ! तुम्हारी दादी महाभागा सुभद्रा,यह उन देवकी वसुदेवकी कन्या थी ॥५५॥ जिसर समय इस लोकमें धर्मका नाश और पापकी वृद्धि होती है उसी २ समय कर्त्तुं अकर्त्तुं

सृजते हरिः ॥ ५६ ॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते । आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि । अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥ अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः । भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयाणि मनसाऽपि सुरेश्वरैः । सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् । अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् । श्रोत्रांजलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यंधकमधुशूरसेनदशार्हकैः । श्लाघनीदेहितः शश्वत्कुरुसृञ्जयपांडुभिः ६३ स्निग्धस्मितेक्षतोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया । नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया

अन्यथा कर्त्तुं समर्थ भगवान् श्रीहरि, साधुओंकी रक्षा करके धर्मकी स्थापना करनेके निमित्त अपना अवतार उत्पन्न करते हैं ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! मायाके ऊपर आज्ञा चलाने वाले असङ्ग, साक्षी और सर्वव्यापक इन भगवानका, अपनी मायाके विनोदके विना जन्मका वा कर्मका कारण कुछ भी नहीं होता है ॥ ५७ ॥ और इच्छामात्रसे ही करी हुई जिनकी लीला, जीवकी उत्पत्ति, पालन और प्रलयके निमित्त होती है और जिनका अनुग्रह प्राणियोंकी जन्म आदि संसारकी निवृत्ति करके मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त होता है, उनके अवतार लेनेके विषयमें उनकी इच्छाके सिवाय दूसरा कौन कारण है ? अर्थात् और कोई कारण नहीं है ॥ ५८ ॥ राजाओंका चिह्नमात्र धारण करने वाले परन्तु आसुरी सम्पत्ति वाले और जिनकी गिनती अक्षौहिणियोंके नामसे ही होसकती है ऐसी सेनाओंके स्वामी जो शिशुपाल जरासन्ध, कंस आदि उनकी पीड़ित करी हुई पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त उद्योग करने वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने बलरामके साथ, इन्द्रादि देवता जिनको करनेका मनमें संकल्प भी न कर सकें ऐसे पूतना-वक और केशीका वध आदि कर्म करे ॥ ६० ॥ और कलियुगमें उत्पन्न होने वाले भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त, दुःख, शोक और अज्ञानका नाश करने वाला तथा धर्म आदि पुरुषार्थरूप पुण्यका उत्पन्न करने वाला यश फैलाया है ॥ ६१ ॥ साधुओंके कानोंको अमृतकी समान मधुर लगने वाले जिस यशरूप श्रेष्ठ तीर्थके विषैं, श्रोत्र इन्द्रिय (कान) ही जिनके पास पीनेका साधनरूप पात्र है वह पुरुष, एक बार भी आचमन करके अर्थात् थोड़ासा भी सुन कर भगवान्की सुन्दरतासे चित्तका आकर्षण होने पर वह मोक्षका प्रतिबन्ध करने वाली वासनाका त्याग कर देता है ॥ ६२ ॥ भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु शूरसेन, दशार्हक तथा कुरु, सृञ्जय और पाण्डवोंने निरन्तर जिनकी लीलाओंकी स्तुति करी है उन श्रीकृष्ण भगवान्ने, स्नेहके साथ और हँसते हुए जो अपना अवलोकन (देखना) तिससे भक्तोंके मनोरथोंको पूरा करने वाले वाक्योंसे, गोवर्द्धनको उठाना आदि पराक्रम युक्त लीलाओंसे, और सकल अङ्गोंमें सुन्दर अपनी मूर्त्तिसे मनुष्यलोकको आनन्दित करा है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ यही दिखानेके निमित्त भगवान्के मुखकी शोभा कहते

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम् । नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुत शतानि कृतोरुदारः । उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयन् जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः । दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टादशसाहस्र्यां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यवंशानुकीर्तने यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

है कि-मकराकृति कुण्डलोंसे सुन्दर जो कान और दमकते हुए कपोलोंसे सुन्दर, जिसमें विलासयुक्त हास्य है, और जिसमें निरन्तर परमशोभा है ऐसे जिन श्रीकृष्णजीके मुखको, अनन्तदृष्टियोंसे आदरके साथ देखने वाली स्त्रियें और पुरुष भी तृप्त नहीं हुए किन्तु नेत्रोंके पलक लगने खुलनेमें व्यवधान (रुकावट) को न सहते हुए उस व्यवधान करने वाले निमिके ऊपर कुपित हुए ॥ ६५ ॥ अब श्रीकृष्णजीका चरित्र संक्षेपसे वर्णन करते हैं कि-हे राजन् ! वह भगवान् श्रीकृष्णजी, पहिले मथुरामें अपने चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए, फिर पिताके कारागार (जेलखाने) में से गोकुलमें गये, तहाँ गोकुलवासी पुरुषोंके धर्म आदि अर्थको बढ़ाते हुए पूतना आदि शत्रुओंको मार कर फिर मथुरामें आये और सोलह सहस्र एक सौ आठ (१६१०८) स्त्रियोंको ग्रहण करके उनमेंसे प्रत्येकके दश दश इस प्रकार सैंकड़ों पुत्र उत्पन्न करके, अपना वेदमार्ग लोकोंमें प्रसिद्ध करनेके निमित्त उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञोंसे अपना आराधन करा ॥ ६६ ॥ और उन श्रीकृष्णजीने, कौरव और पाण्डवोंके मध्यमें उत्पन्न हुए कलहके निमित्तसे, पृथ्वी पर अत्यन्त बढ़ा हुआ भार दूर करनेके निमित्त युद्धमें राजाओंकी सेनाओंका अपनी दृष्टिसे ही नाश करके, अर्जुनको जय प्राप्त कराई और फिर उद्धवजीको आत्मतत्त्वका उपदेश करके निजधाम (वैकुण्ठ धाम) को चले गए ॥ ६७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ छ * छ

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य, पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि भारद्वाजगोत्र-गौडवंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थ-राजकीय-प्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतंत्रस्वतंत्र महामहोपाध्याय-सत्संप्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेन भाषानुवादेन च सहितो नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं नवमः स्कन्धः ॥

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥



अथ दशमस्कन्धः प्रारम्भः

श्रीः ॥ नमो भगवते वासुदेवाय । राजोवाच । कथितो वंशविस्तारो भवता

विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ॥
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ॥ १ ॥

जगत्के सर्ग विसर्गादि नौ लक्षणों करके लक्षित और जगत्के अधिष्ठान जो श्रीकृष्ण नामक परब्रह्मस्वरूप तिनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ दशम स्कन्धमें श्रीकृष्ण भगवान्की कीर्त्तिका वर्णन करनेके निमित्त नव्वै (९०) अध्याय कहे हैं. तिनमें पहिले चार अध्याओं करके ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार दूर करनेके निमित्त प्रसङ्ग सहित श्रीहरिका अवतार निरूपण करा है, तदनन्तर पतीस अध्यायों करके गोकुलमें वास करते हुए रामकृष्णकी वृन्दावन आदिके विषैं करी हुई लीला वर्णन करी हैं फिर एक अध्यायमें यमुनाके जलके विषैं अक्रूरजीकी करी हुई स्तुति वर्णन करी है, तदनन्तर ग्यारह अध्यायों करके मधुवन अर्थात मथुरापुरीके विषैं रहते हुए श्रीकृष्णजीकी कंसवध आदि और विद्याभ्यास आदि लीलाओंका वर्णन करा है, शेष उनतालीस अध्यायों करके द्वारकापुरीकी लीला वर्णन करी हैं, इस प्रकार नब्बै (९०) अध्यायोंका सारांश है, तिनमें पहिले अध्यायमें तो 'देवकीके आठवें गर्भसे तेरी मृत्यु होयगी' ऐसी आकाशवाणी सुन

सोमसूर्ययोः । राज्ञाञ्चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम । तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः । कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥३॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् । क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिंगिलैः । दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वातरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥ द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदंगं संतानबीजं कुरुपांडवानाम् । जुगोप कुक्षिंगत आत्त-

कर भयभीत हुए कंसने तिस देवकीके छः पुत्रोंका वध करा, यह कथा वर्णन करी है नवम स्कन्धके अन्तमें संक्षेपसे वर्णन करे हुए कृष्णावतारके चरित्रोंके श्रवणरूपी अमृतसे तृप्त हुए राजा परीक्षितने तिन ही चरित्रोंको विस्तार पूर्वक श्रवण करनेकी इच्छासे प्रश्न करा राजाने कहा कि–हे शुकदेवजी ! चन्द्रसूर्यके वंशका विस्तार, तुमने मेरे अर्थ वर्णन करा, और दोनों वंशोंमे उत्पन्न हुए राजाओंका आश्चर्यकारक चरित्र भी वर्णन करा, ॥ १ ॥ तिसमें चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुआ अत्यन्त धर्मशील जो राजा यदु तिसके वंशका विस्तार और चरित्र भी वर्णन करा, अब तिस यदुवंशके विषैं अंश करके अवतार धारण करने वाले श्रीविष्णुभगवान्के चरित्र मेरे अर्थ वर्णन करिये ? ॥ २ ॥ और यदि कहो, कि–वह तो नवम स्कन्धमें वर्णन कर ही चुके, सो ठीक है, परन्तु जगदात्मा और प्राणियोंके रक्षक विष्णुभगवान्ने, राजा यदुके वंशमें अवतार धारण करके जो चरित्र करे हैं वह हमारे अर्थ विस्तारपूर्वक वर्णन करो ? ॥ ३ ॥ इस लोकमें मुक्त मुमुक्षु और विषयी यह तीन प्रकारके प्राणी हैं,तिनमें भगवच्चरित्रका किसीको भी विराग नहीं है ऐसा वर्णन करते हैं, कि–जिनकी विषयभोगकी इच्छा निवृत्त होगई है ऐसे जीवन्मुक्त पुरुषों करके भी गान करे हुए, मुमुक्षुपुरुषोंको तो संसाररोगकी औषधिरूप और विषयी पुरुषोंके कर्णोंको मधुर प्रतीत होनेवाले, श्रेष्ठकीर्त्ति भगवान्के गुणानुवादसे आत्मघातीको छोड़ दूसरा कौनसा पुरुष विरक्त होगा ? अर्थात् कोई नहीं होगा ॥ ४ ॥अब अपने कुलदेव श्रीकृष्ण हैं इसकारण तिनकी कथा ही नित्य श्रवण करना उचित हैं,इस आशयसे कहते हैं, कि–हे ब्रह्मनिष्ठ ! मेरे पितामह (युधिष्ठिर आदि)जिस श्रीकृष्णरूप नौकाका आश्रय करके, युद्धमें,देवताओंको भी जीतनेवाले भीष्म आदि अतिरथीरूप तिमिङ्गिल † नामक महामत्स्यों करके दुस्तर, कौरवोंकी सेनारूपी समुद्रको, बछड़ेके चरणके चिह्नकी समान अतितुच्छ करके तरगए अर्थात् उन्होंने अनायासमें ही कौरवोंकी सेनाको, जिनके अवलम्बसे जीत लिया तिन श्रीकृष्णजीके चरित्र मेरे अर्थ वर्णन करिये ? ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजीने केवल पांडवोंकी ही रक्षा करी ऐसा नहीं किन्तु अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भस्म होते हुए कौरव पांडवों के वंशके मूलबीज, इस प्रत्यक्ष मेरे शरीरको भी, शरणगई हुई मेरी माता (उत्तरा)

† चार सौ कोस लम्बे मत्स्य (मच्छ) को 'तिमि' कहते हैं उसको भी निगल जाने वाला मत्स्य 'तिमिंगिल' होता है ।

चक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ॥ ६ ॥ वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः । प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया । देवक्या गर्भसंबंधः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद् व्रजं गतः । क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतां पतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः । भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः । यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥ नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते । पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥१३॥ सूत उवाच । एवं निशम्य भृगुनन्दनसाधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् । अत्यर्च्य

के उदरमें प्रवेश कर जिन्होंने हाथमें चक्र लेकर रक्षा करी है ॥ ६ ॥ और जो संपूर्ण प्राणियोंके भीतर और बाहर पुरुषरूप और कालरूपसे स्थित होकर अन्तर्दृष्टि और बाह्यदृष्टि पुरुषोंको मोक्ष और संसार देते हैं, तिन माया करके मनुष्य अवतार धारण करने वाले श्रीकृष्ण भगवान्के पराक्रम मेरे अर्थ वर्णन करो ? इस प्रकार कहनेका अभिप्राय यह है, कि-जो अन्तर्दृष्टि पुरुषोंको अन्तर्यामीरूपसे मुक्ति देते हैं और बहिर्दृष्टि पुरुषोंको कालरूपसे जन्म मरणरूप संसारचक्रमें डालते हैं तिन के चरित्र अन्तर्दृष्टिसे ही श्रवण करने चाहियें ७ तिस प्रकार ही तुमने संकर्षण बलरामजीको, रोहिणीका पुत्र कहा और फिर उन ही को देवकीका पुत्र कहा, सो देहान्तर हुए बिना एक ही जन्ममें दोनोंके पुत्र किस प्रकार हुए सो मेरे अर्थ वर्णन करो ? ॥ ८ ॥ तथा यादवोंके पति जो श्रीकृष्णभगवान्, वह कंसादिका भय न होने पर भी पिता वसुदेवजीके स्थानको त्यागकर गोकुलमें किस कारणसे गए और उन्होंने नन्दादि गोपोंके साथ कहाँ निवास करा ? ॥ ९ ॥ तथा तिन श्रीकृष्णजीने गोकुलमें, मथुरामें और द्वारकीपुरीमें रहकर क्या २ चरित्र करे ? और उन्होंने देवकीका भ्राता होनेके कारण बध करनेके अयोग्य ऐसे अपने कंस मामाका अपने आप ही किस कारण बध करा ? ॥ १० ॥ तथा उन्होंने मनुष्य शरीरको स्वीकार करके यादवोंके साथ द्वारकापुरीमें कितने वर्ष निवास करा ? तिन प्रभु श्रीकृष्णजीकी स्त्री कितनी थीं ? ॥ ११ ॥ हे सर्वज्ञ मुने ! यह मेरे बूझे हुए और जो न बूझे हुए भी होयँ वह सम्पूर्ण श्रीकृष्णभगवान्के चरित्र श्रद्धापूर्वक श्रवण करने वाले मेरे अर्थ कृपा करके विस्तारपूर्वक वर्णन करिये ॥ १२ ॥ यदि कहो, कि-क्षुधा (भूँख) और तृषा (प्यास) करके व्याकुलहुए तुम्हें श्रवण करनेके विषयमें स्वस्थता किस प्रकार है ? सो-जो यह क्षुधा पहिले मुझे अतिदुःसह प्रतीत होरही थी वह क्षुधा इस समय जलका भी त्याग करनेवाले मुझको, 'मैं तुम्हारे मुखकमलसे प्रकट होते हुए हरिकथारूप अमृतको पीरहा हूँ, इस कारण' पीड़ा नहीं देती है, परन्तु तिस हरिकथारूप अमृतका सेवन न होने पर मेरे प्राण नहीं बचेंगे ॥ १३ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनक ! राजा परीक्षित्के इसप्रकारके उत्तम प्रश्नोंको सुनकर, भगवद्भक्तों

कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच। सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम। वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी मतिः ॥ १५ ॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि। वक्तारं प्रच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ॥ १६ ॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः। आक्रांता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥ १७ ॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रंदंती करुणं विभोः। उपस्थितांऽतिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥१८॥ ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह। जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥ तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्। पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह। गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥२१॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम्।

में श्रेष्ठ, तिन भगवान् शुकदेवजीने, राजाकी प्रशंसा करके, कलियुगके पातकोंका नाश करने वाले श्रीकृष्णभगवान्के चरित्रोंको वर्णन करना प्रारम्भ करा ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजर्षिश्रेष्ठ ! तुम्हारी बुद्धिने बड़ा सुन्दर निश्चय करा है, क्योंकि-जिस बुद्धिके द्वारा तुम्हें वासुदेव भगवान्की कथामें निष्ठायुक्त प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ १५ ॥ वासुदेव भगवान्की कथाके विषयमें करा हुआ प्रश्न भी, जिस प्रकार वासुदेव भगवान्का चरणोदक (गङ्गा) दर्शन स्पर्श आदि करने वालेको पवित्र करता है, तिसी प्रकार वर्णन करनेवाले प्रश्न करनेवाले और श्रवण करनेवाले ऐसे तीन प्रकारके पुरुषोंको पवित्र करता है ॥ १६ ॥ अब प्रथम भगवान्के अवतारका कारण वर्णन करते हैं, कि-हे राजन् ! मदोन्मत्त होकर राजाओंकेसे वर्त्ताव करने वाले जो दैत्य तिनकी लक्षों सेनाओंके अत्यन्त भार करके पीड़ित हुई भूमि, खिन्न होनेके कारण गौका स्वरूप धारण करके करुणायुक्त विलाप करती हुई और जिसके मुख पर दुःखसे आँसू बह रहे हैं ऐसी होकर ब्रह्माजीकी शरण गई और उनके समीपमें खड़ी होकर स्तुति करती हुई तिनसे अपना दुःख वर्णन करने लगी ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी, तिस भूमिके दुःखको श्रवण करके, तिसके साथ देवताओं और महादेवजीको साथमें लेकर क्षीरसमुद्रके तीर पर गए ॥ १९ ॥ तहाँ जाकर उन्होंने, एकाग्रचित्त होकर जगत्के नाथ, देवताओंके देव, भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करने वाले और तिसके दुःखको दूर करने वाले भगवान्की पुरुषसूक्तसे स्तुति करी ॥ २० ॥ तब तिन ब्रह्माजीने समाधिके समय आकाशमें उच्चारण करी हुई देववाणीको सुनकर समाधिको त्यागा और देवताओंसे कहने लगे, कि-हे देवताओं ! समाधिके विषैं मेरी श्रवण करी हुई भगवान्की आज्ञारूप वाणीको, तुम मुझसे शीघ्र ही सुनो और बड़ी शीघ्रतासे उसके अनुसार वर्त्ताव करो देरी न करो ॥ २१ ॥ ईश्वरने हमारे प्रार्थना करनेसे पहिलेही भूमिके सन्तापको जानलिया है, इस कारण तुम भी अपने अपने अंशों करके यादवोंके विषैं, तिनके अवतार धारण करनेसे पहिलेही अवतार धारण करलो, और वह देवाधिदेव भगवान् अपनी कालशक्तिके प्रभावसे पृथ्वीका भार दूर करते हुए जिस समय पर्यन्त पृथ्वी पर

स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः । जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥ वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् । अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् । आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति॥२५ श्रीशुक उवाच । इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः । आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥ शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् । माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥२७॥ राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् । मथुरा भगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः । देवक्या सूर्यया सार्द्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥ २९ ॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया । रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् । अश्वानामयुतं सार्द्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥

विचरैं तब तक उनकी सहायता करनेको तुम भी पृथ्वी पर रहो ॥ २२ ॥ वसुदेवजीके यहाँ साक्षात् भगवान् परमपुरुष, अवतार धारण करैंगे उनका प्रिय करनेके निमित्त तुम्हारी स्त्रियें भी अवतार धारण करैं२३ सहस्र मुख वाले और अपने तेज से प्रकाशवान् जो वासुदेवभगवान्के अंश दिव्यरूप शेषजी,वह भी श्रीहरिका प्रिय करनेकी इच्छासे तिनसे पहिले 'तिनके बड़े भ्रातारूपसे' अवतार धारण करैंगे २४ अधिक क्या कहूँ जिसने सम्पूर्ण ही जगत्को मोहित कर रक्खा है वह ऐश्वर्यादि गुणयुक्त विष्णुभगवान्की माया भी, भगवान्के आज्ञा करने पर, देवकीके गर्भका आकर्षण करना और यशोदाको मोहित करना, इत्यादि कार्य्य करनेके निमित्त यशोदाके गर्भमें अवतार धारण करेगी ॥ २५ ॥ इस प्रकार मरीचि आदि प्रजापतियोंके अधिपति प्रभु ब्रह्माजी, देवताओंको आज्ञा करके और पृथ्वीको, 'तेरा अहोभाग्य है, तू भगवान्के चरणकमलोंसे शीघ्र ही भूषित होयगी' इस प्रकारके वचनोंसे धैर्य धरा कर, सर्वश्रेष्ठ अपने स्थान सत्यलोकको चले गए ॥ २६ ॥ अब कंसके बन्दीगृह (जेलखाना) में अवतार हुआ यह वर्णन करनेके निमित्त भूमिका बाँधते हैं, कि-पहिले यादवोंका अधिपति शूरसेन नामक राजा था, उसने मथुरा नामक नगरीमें निवास करके माथुर और शूरसेन नामक देशोंका राज्य करा २७ उस समयसे यादवोंमें सब राजाओंकी राजधानी (रहनेका मुख्य स्थान) वह मथुरापुरी हुई, जिस मथुराके विषैं भगवान् श्रीहरि नित्य निवास करते हैं ॥२८॥ तिस मथुरापुरीके विषैं,एक समय शूरपुत्र वसुदेवजी विवाह करके नवीन प्राणिग्रहण करी हुई देवकी स्त्री सहित अपने स्थानको जानेके निमित्त रथ पर सवार हुए ॥ २९ ॥ उस समय उग्रसेनका पुत्र जो कंस तिसने, अपनी बहिनका सन्मानपूर्वक प्रिय करनेकी इच्छासे, सुवर्णसे मँढ़े हुए सैंकड़ों रथोंको अपने साथमें लेकर और स्वयं वसुदेवजीके रथपै बैठकर घोड़की बागडोर लेलीं अर्थात् वसुदेव देवकीको रथके भीतर बैठा कर अपने आप सारथि बना ॥ ३० ॥ तब चलते समय कन्या पर प्रेम करने वाले देवक (देवकीके पिता) ने अपनी कन्या देवकीको, 'सुवर्णकी

दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते । दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ३२ शंखतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् । प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥३३॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् । अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥ इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः । भगिनीं हंतुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् । वसुदेवो महाभाग उवाच परिसांत्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच । श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः । स कथं भगिनीं हन्यात् स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते । अद्य वाब्दशतांते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥ ३८ ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः । देहांतरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥ ३९ ॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति । यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ॥४०॥

मालाओंसे भूषित चार सौ हाथी, पन्द्रह सहस्र घोड़े, अठारह सौ रथ और नवीन यौवनको प्राप्त हुई आभूषण धारण करेहुए दोसौ दासी, इतना दहेज दिया ३१॥३२ तब चलनेके समय वरवधूको मङ्गलकारक शंख-नरसिंगे-मृदङ्ग और नगाड़े आदि बाजे एक साथ बजने लगे ॥ ३३ ॥ मार्गमें घोड़ोंकी बागडोर पकड़ने वाले कंससे अरे अरे ! कंस ! ऐसा सम्बोधन करके अदृश्यरूप वाणी (आकाशवाणी) कहने लगी, कि-अरे मूर्ख कंस ! तू जिस अपनी बहिनको सन्मानपूर्वक पतिके यहाँ पहुँचाता है तिस देवकीका आँठवाँ गर्भ तेरा वध करेगा॥३४॥ इस प्रकार आकाशवाणीके कहने पर, भोजके कुलमें कलङ्करूप वह पापी दुष्ट कंस, बहिनके मारनेको उद्यत हुआ और उसने एक हाथमें खड्ग लेकर दूसरे हाथसे तिस देवकीकी चोटी पकड़ ली ॥ ३५ ॥ तब निर्लज्ज घातकी (कठोर) और निन्दित कर्म करने वाले तिस कंसको स्तुति, युक्ति समझाना और भेदके द्वारा समझाते हुए महाभाग्यवान् (परमधर्मिष्ठ) वसुदेवजी कहने लगे ॥ ३६ ॥ वसुदेवजी बोले, कि-हे कंस ! जरासन्ध आदि शूरोंने जिस तेरे, शूरता आदि गुणोंका वर्णन करा है वह, भोजकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंके यशको बढ़ाने वाला तू, विवाहोत्सवमें, स्त्रीजातिका, तिस पर भी बहिनका कैसे वध करता है ? ॥ ३७ ॥ यदि ऐसा कहे, कि-मरणके भयसे मारता हूँ, सो-हे वीर ! जन्म धारण करने वाले प्राणियोंके शरीरके साथ ही मृत्यु उत्पन्न हुई है, यह ब्रह्माजीने ललाटमें लिख ही दिया है तथापि अधिक काल तक जीवित रहनेके निमित्त मारता हूँ,यदि ऐसा कहो,सो-आज अथवा सौ वर्षके अनन्तर प्राणियोंका मरण अवश्य ही होगा फिर अधिक काल जीवित रहनेके निमित्त पापकर्म करना उचित नहीं है॥३८॥ और इस देहके जाने पर यदि दूसरा देह प्राप्त होय ही नहीं तो पापकर्म्म करके भी तिसकी रक्षा करना उचित होय,परन्तु तैसा है नहीं, इस देहके मरणको प्राप्त होनेका समय आते ही तिस देहके विषैं विद्यमान कर्मानुसारी परतन्त्र जीव, कर्मके वशीभूत होकर यत्नके बिना ही प्राप्तहुए दूसरे शरीरके मिलने पर, पहिले शरीरको त्यागता है ॥३९॥ जैसे चलनेवाला पुरुष आगे रक्खे हुए एक पैर से भूमिको पकड़ कर और तिस चरण पर शरीरका भार डाल

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः । दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ॥ ४१ ॥ यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु । गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते । एवं स्वमायारचितेष्वसौ

कर खड़ा रहता है, तदनन्तर पिछला चरण आगेको धरके चलता है अथवा जिस प्रकार तृणों परका कीड़ा अपने देहके आगेके भागसे प्रथम दूसरे तृणको पकड़ लेता है तदनन्तर पिछले भागसे पकड़े हुए तृणको छोड़ देता है तिसी प्रकार कर्ममार्गके विषैं प्राप्त हुआ जीवभी पहिले दूसरे शरीरको प्राप्त होकर तदनन्तर पहिले शरीरको त्यागता है ॥ ४० ॥ स्वीकार करना अथवा परित्याग करना, यह धर्म्म देहका ही है, यह वार्त्ता दर्शानेके निमित्त दूसरा दृष्टान्त कहते हैं, कि-जाग्रत् अवस्थामें देखे हुए (राजादि शरीर) और श्रवण करे हुए (इन्द्रादि शरीर) पदार्थोंको प्राप्त करनेके निमित्त तिन पदार्थोंका मनसे चिन्तवन करने वाला पुरुष, जिस प्रकार स्वप्नमें तिन राजादि शरीरोंकी समान ही किन्हीं शरीरों को देखता है और तत्काल ही 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है और तदनन्तर तिसको जाग्रत् अवस्थाके शरीरका विस्मरण होजाता है, अथवा दूसरा दृष्टान्त है, कि-जिस प्रकार जाग्रत् अवस्थामें ही देखे और श्रवण करे हुए विषयोंका मनसे चिन्तवन करने वाला पुरुष, मनोरथके द्वारा, बुद्धिके तदाकार होजानेसे, तिन देखे और श्रवण करे हुए ही किसी देहको प्राप्त होता है और वह ही मैं हूँ ऐसा मानता है तदनन्तर मूल (असली) देहकी स्मृति रहित होजाता है तिसी प्रकार जीव इस जन्ममें ही कर्म्मके वशीभूत होनेके कारण दूसरे देहको प्राप्त होकर ही पहिले देहका त्याग करता है ॥ ४१ ॥ यदि कहो, कि-अनेक प्रकारके देह उत्पन्न होनेके कारण रूप कर्मोंके करने पर, अमुक ही शरीर मिलेगा, यह कैसे प्रतीत होसकता है ? तहाँ कहते हैं, कि-देहके मरणकालमें फल देने वाले कर्मोंका प्रेरणा करा हुआ, इस जीवका संकल्पविकल्पात्मक मन, माया करके देवमनुष्यादि नानाप्रकारके देहरूपसे रचे हुए गुणोंके कार्यरूप पञ्चमहाभूतात्मक देहोंमेंसे जिस २ देहकी ओरको दौड़ता है अर्थात् जिस २ देहका चिन्तवन करता है और जिस २ देहको अभिमान करके प्राप्त करता है, तिस २ देहके विषैं, यह जीवात्मा, 'वह मैं ही हूँ' ऐसा मान कर उसके साथ उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥ और यदि कहो, कि-कोई न कोई शरीर प्राप्त होयगा यह ठीक है, परन्तु इस अतिप्रिय राजशरीरकी रक्षा करनेके निमित्त, निन्दित कर्मको भी करता हूँ ? सो हे कंस ! जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमादि ज्योति, जलसे भरे हुए घटादिकोंके विषैं प्रतिबिम्बित होने पर, वायुसे कम्पायमान होते हुएसे प्रतीत होते हैं, तिसी प्रकार अपनी अविद्यासे रचे हुए देहादिके विषैं, यह जीवात्मा प्रेमसे प्रवेश करने पर तिसके अभिमानको धारण करता है, इस प्रकार कहनेका अभिप्राय यह है, कि-देहके अध्याससे देहके कृशत्व (दुबलापन) आदि धर्म जिस प्रकार आत्माके विषैं प्रतीत होने लगते हैं तिसी प्रकार प्रेमास्पदत्व आदि

पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥ ४३ ॥ तस्मान्न कस्यचिद् द्रोहमाचरेत्स तथा-विधः। आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ॥ ४४ ॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा। हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच। एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोपि दारुणः। न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिंत्यानकदुन्दुभिः। प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्व-पद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमतापोह्यो यावद् बुद्धिबलोदयम्। यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥ ४८ ॥ प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम्। सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ ॥ विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दु-

आत्माके धर्म भी देहके विषैं प्रतीत होते हैं, इस कारण राजाके अथवा श्वान शूक-रादिके शरीरमें किसी प्रकारकी विशेषता न होनेके कारण मृत्युका उपाय करना व्यर्थ है ॥ ४३ ॥ अब भेद नामक उपायका वर्णन करते हैं, कि-दूसरेसे द्रोह करने वाले पुरुषको इस लोकमें जिससे द्रोह करै उससे और उसके संबन्धियोंसे तथा परलोकमें यमराजसे भय प्राप्त होता है, इस कारण अपने कल्याणकी इच्छा करने वाला पुरुष, किसीसे द्रोह न करे ॥ ४४ ॥ फिर साम उपाय ही कहते हैं, कि-हे कंस! यह देवकी तो काठकी पुतलीकी समान, अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ, दीन और लाड़ करने योग्य, तेरी छोटी बहिन है, और तू दीनोंके ऊपर अनुग्रह करने वाला है, इस कारण इस निरपराधिनीका वध करना तुझे उचित नहीं है ४५ श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि-हे राजन् परीक्षित्! इस प्रकार साममार्गों करके और भेदों करके देवकीके वधसे निवृत्त होनेके निमित्त समझाया हुआ भी वह कंस, अपने क्रूरस्वभावसे और तिस पर भी हिंसा करने वाले राक्षसोंका अनुगामी होनेके कारण निवृत्त नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ तब तो कंसका आग्रह जान कर, देवकीके प्राप्त हुए मृत्युको हटानेके निमित्त, विचार करके वसुदेवजीने यह उपाय मनमें सोचा, कि-॥ ४७ ॥ जहाँ तक अपनी बुद्धि और बलका प्रभाव चले तहाँ तक बुद्धिमान् पुरुष अपनी तथा दूसरेको प्राप्त हुई मृत्युको हटावै और प्रयत्न करने पर भी यदि मृत्यु दूर नहीं होय तो फिर प्राणीका अपराध नहीं है अन्यथा है ॥ ४८ ॥ इसकारण इस मृत्युरूप कंसको, आगेको उत्पन्न होने वाले पुत्रोंके देनेका वचन देकर आज इस दीन देवकीको छुड़ाता हूँ, यदि कहो कि-ऐसा वचन देना भी उचित नहीं है, तहाँ कहते हैं, कि-इस देवकीके विषैं यदि आगेको मेरे पुत्र होयँगे तो उस समय जो होयगा सो होय, परन्तु आज तो यह बच जाय, कदाचित् तब तक यह ही मृत्युको प्राप्त होगया तो फिर कुछ भी अनुचित नहीं है, और यदि मेरे पुत्र उत्पन्न होयँगे तथा तब तक इस कंसका मरण नहीं होयगा तो मेरे पुत्रसे ही इसका मरण होजाय, ऐसा विपरीतपना क्या नहीं होसकता है? यदि कहो कि-ऐसे महाबली कंसकी तेरे बालकसे किस प्रकार मृत्यु होयगी? तहाँ कहते हैं कि-'इसका आठवाँ गर्भ तेरा वध करेगा' ऐसा कहने वाले ईश्वरकी शक्ति अचिन्त्य है इस कारण इस समय पुत्र देनेका वचन देना ही श्रेष्ठ है, और ऐसा होने पर आज प्राप्त हुआ देवकी

रस्यया। उपस्थितो निवर्त्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोग-योरदृष्टतोऽन्यन्न निमित्तमस्ति। एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोग-हेतुः ॥ ५१ ॥ एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम्। पूजयामास वै शौरिर्बहु-मानपुरःसरम् ॥५२॥ प्रसार्य वदनांभोजं नृशंसं निरपत्रपम्। मनसा दूयमानेन विह-सन्निदमब्रवीत् ॥५३॥ वसुदेव उवाच। न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीर-वाक्। पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच। स्वसु-र्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित्। वसुदेवोपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद् गृहम्५५ अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता। पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ५६ कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः।अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः

का मरण हट जायगा तथा आज हट कर फिर किसी समय आजायगा तो मेरा दोष नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ अब प्राणियोंके प्रारब्धकी दुर्वितर्कताका दृष्टान्तके द्वारा वर्णन करते हैं; कि—जिस प्रकार वनमें वृक्षोंको और नगरमें स्थानोंको जलाने वाला अग्नि समीपके भी वृक्षों अथवा स्थानोंको बीचमें छोड़ कर दूरके वृक्षोंको तथा स्थानोंको जलाने लगता है, उस अग्निको काष्ठोंका संयोग अथवा वियोग होनेके विषयमें, प्राणियोंके पुण्य पापरूप अदृष्ट (प्रारब्ध) के सिवाय दूसरा कुछ भी निमित्त नहीं है, तिस ही प्रकार जीवके भी शरीरके जन्म और मरणका हेतु तर्कना करनेमें नहीं आता है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार वसुदेवजीने अपनी बुद्धिकी शक्तिके अनुसार विचार करके, पाप करनेको उद्यत हुए तिस कंसका अति आदर पूर्वक 'स्तोत्र नमस्कार आदिके द्वारा सत्कार करा ॥ ५२ ॥ और भयके कारण कम्पायमान होरहा है मन जिनका ऐसे भी वह वसुदेवजी, तिसको विश्वास करानेके निमित्त मुख कमल प्रसन्न कर हँसते हँसते तिस क्रूर और निर्लज्ज कंससे कहने लगे ॥ ५३ ॥ वसुदेवजी बोले, कि—हे सौम्य! तिस आकाश वाणीने, जैसा तुमसे कहा है वैसा ही मैंने भी निश्चय करा है, कि-इस देवकीसे तुम्हें भय नहीं होयगा, क्योंकि—जिस पुत्रसे तुम्हें भय उत्पन्न हुआ है, अर्थात् 'आठवाँ पुत्र वध करेगा' ऐसा आकाश वाणीने कहा है, सो परस्परकी अपेक्षासे कदाचित् सब ही पुत्र अष्टम हों, इस कारण इस देवकीके सब ही पुत्र मैं तुम्हें समर्पण कर दूँगा, फिर तुम उनको मारो या न मारो, इसका मुझे कुछ आग्रह नहीं है ॥ ५४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि-हे राजन्! तिन वसुदेवजीके वाक्यमें की युक्ति और सत्यताको जानने वाले उस कंसने, उसी समय बहिनके वध करनेका निश्चय त्याग दिया, तदनन्तर मनोरथ सिद्ध होनेसे प्रसन्न हुए वसुदेव-जीने भी तिस कंसकी 'तू बड़ा ज्ञानी और तत्त्वको जानने वाला है' इस प्रकार प्रशंसा करके देवकी सहित अपने स्थानमें प्रवेश करा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर सन्तानके उत्पन्न होनेका समय आनेपर, केवल भगवान्का ही आराधन करनेवाली उस देवकीने 'प्रत्येक वर्षमें एक २ इस प्रकार आठ पुत्र और एक कन्याको उत्पन्न करा ॥ ५६ ॥ असत्यसे अत्यन्त भय मानने वाले, सत्यप्रतिज्ञ तिन वसुदेवजीने तिन आठों पुत्रोंमेंसे

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् । किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् । कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ प्रतियातु कुमारोयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् । अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ॥ ६० ॥ तथेति सुतमादाय ययावानकदुंदुभिः । नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ॥६१॥ नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः । वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत । ज्ञातयो बंधुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः॥६३॥एतत्कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः । भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥ ६४ ॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति । देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ६५

प्रथम उत्पन्न हुआ कीर्त्तिमान् नामक पुत्र, बड़े दुःखसे कंसको समर्पण करा ॥५७॥ यदि कहो कि-मृत्युके निमित्त पुत्र कैसे देदिया ? तहाँ कहते हैं, कि-सत्यप्रतिज्ञ साधु पुरुष कौनसे दुःखको नहीं सह सकते ? अर्थात् सब दुःखोंको सह लेते हैं, यदि कहो कि-पुत्रके लालनकी इच्छा क्यों त्याग दी ? तहाँ कहते हैं कि-संसारमें भगवान् ही सार हैं और सब असार है ऐसा जानने वाले विवेकी पुरुषोंको किसी वस्तुकी इच्छा नहीं रहती है, यदि ऐसा कहोकि-अपने आप ही लाएहुए बालकका कंस वध नहीं करेगा ऐसा समझकर लेगए होंगे ? सो नहीं, क्योंकि-आत्मा-धर्म कार्य-पुत्र-स्त्री और सेवक आदिकोंको पीड़ा देनेवाले कठोर पुरुषोंको करनेके अयोग्य कौनसा कार्य है ? अर्थात् कोई भी नहीं है, यदि कहोकि-देवकीने माता होकर अपना पुत्र किसप्रकार देदिया ? तहाँ कहते हैं, कि-जो अपने चित्तमें श्रीहरिको धारण करे हुए हैं उनको कौन वस्तु त्यागना कठिन है ? अर्थात् कुछ त्यागना कठिन नहीं है ॥ ५८ ॥ सो हे राजन् ! पुत्रको ले आनेसे वसुदेवजीकी सुख दुःखमें समता और सत्यवचनमें निष्ठा देखकर चित्तमें प्रसन्न हुआ कंस यह वचन बोला कि- ॥ ५९ ॥ हे वसुदेव ! इस कुमारको लौटाकर लेजाओ, क्योंकि-इससे मुझे भय नहीं है, किंतु तुम्हारे आठवें गर्भसे मेरी मृत्यु है, ऐसा आकाशवाणीने कहा है ॥ ६० ॥ तब वसुदेवजी, 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर पुत्रको ले अपने घरको चले आए, परन्तु तिस अव्यवस्थितचित्त दुष्ट कंसके वचनको सत्य नहीं माना ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार कंसका शांति करना देवताओंके कार्यमें अनुकूल नहीं होयगा ऐसा जानकर भगवान् नारदजी कंसके पास आए, और उससे एकान्तमें कहने लगे, कि- हे कंस ! गोकुलमें जो नन्द आदि गोप हैं और यशोदा आदि जो उनकी स्त्रियें हैं, तथा वसुदेव आदि जो यादव हैं और उनकी भी देवकी आदि जो स्त्रियें हैं, तथा नन्द और वसुदेवजीके जो गोत्रके पुरुष बान्धव और मित्र हैं तथा तुम्हारे आश्रित रहनेवाले जो अक्रूर आदि हैं यह सब ही प्रायः देवतारूप हैं और उन्होंने पृथ्वीके भाररूप हुए दैत्योंका वध करनेके निमित्त, भगवान्‌की प्रार्थना करनेका उद्योग करा है ॥ ६२ ॥ ६४ ॥ इस प्रकार कंसको जताकर नारदजी तो चलेगए और कंसने यादवोंको देवता जानकर तथा अपना वध करनेके निमित्त देवकीके गर्भ के विषें

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे। जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशंकया ॥६६॥ मातरं पितरं भ्रातृन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा। घ्नंति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥ ६७॥ आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम्। महासुरं कालनेमि यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८॥ उग्रसेनं च पितरं यदुभोजांधकाधिपम्। स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

श्रीशुक उवाच। प्रलंबबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः। मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः। यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥२॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपांचालकैकयान्। शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥३॥ एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासत। हतेषु

उत्पन्न हुए विष्णुभगवान् ही हैं ऐसा जानकर देवकी और वसुदेव इन दोनोंके पैरोंमें बेड़ी डालकर कारागार (जेलखाने) में डालदिया और विष्णुभगवान्की शंकासे देवकीके जो २ पुत्र उत्पन्न हुआ उन सबका वध करता गया ॥ ६५ ॥ हे राजन्! इस पृथ्वीपर अपने प्राणोंको ही तृप्त करनेवाले और विषयभोगकी कामना करनेवाले जो राजे होते हैं वह बहुधा माता, पिता भ्राता और सम्पूर्ण मित्रोंका भी प्राणान्त कर देते हैं औरोंका तो कहना ही क्या ? ॥ ६७ ॥ मैं पहिले जन्ममें कालनेमि नामक दैत्य था और विष्णुभगवान्ने मेरा वध करा था, वह ही मैं इसरूपसे उत्पन्न हुआ हूँ ऐसा जाननेवाला वह कंस 'यादव देवता हैं' ऐसा सुन कर उनके साथ विरोध करनेलगा ॥ ६८ ॥ और तदनन्तर यादव, भोज, अंधक इनके अधिपति अपने पिता राजा उग्रसेनको भी कारागार (जेलखाने) में डालकर वह महाबली कंस अपने आप ही शूरसेन देशोंका राज्य करनेलगा ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

अब इस द्वितीय अध्यायमें कंसका वध करनेके निमित्त देवकीके गर्भमें विराजमान श्रीहरिकी ब्रह्मादिक देवताओंने स्तुति करी और तिस देवकीको धैर्य दिया यह कथा वर्णन होयगी कंस यादवोंके साथ विरोध करने लगा ऐसा वर्णन करा, तिस विरोधका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन्! प्रलम्ब दैत्य, बक (पक्षिरूपधारी दैत्य) चाणूर (मल्ल), तृणावर्त (आँधीरूपी दैत्य), अघासुर (अजगररूपी दैत्य) मुष्टिक (मल्ल), अरिष्ट (वृषभरूपी दैत्य), द्विविद (वानर) पूतना (राक्षसी), केशी (अश्वरूपी दैत्य), और धेनुक (गर्दभरूपी दैत्य), इन करके तथा बाणासुर नरकासुर इत्यादि और दैत्यरूप राजाओं करके युक्त तथा जरासन्धका है आश्रय जिसको ऐसा वह महाबली कंस यादवोंको दुःख देने लगा॥१॥२॥ तिस कंससे पीड़ाको प्राप्त हुए वह यादव कोई कुरुदेशोंमें, कोई पाञ्चालदेशोंमें कोई कैकयदेशोंमें, कोई शाल्वदेशोंमें, कोई विदर्भ देशोंमें कोई निषधदेशोंमें और कोई कोसलदेशोंमें जाकर रहने लगे॥३॥ कितने ही अक्रूर आदि तिस कंसकी आज्ञामें रह कर उसकी सेवा करने लगे, जब कंसने देवकीके छः पुत्रों

षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते । गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्द्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् । यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥ गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् । रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले । अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् । तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥ अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे । प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् । धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वंति स्थानानि च नरा भुवि । दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥११॥ कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च । माया नारायणीशानी शारदेत्यंबिकेति च गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि । रामेति लोकरमणाद्बलं बलयदुच्छ्रयात् १३ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः । प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत्

का प्राणान्त करदिया तिसके अनन्तर जिनको अनन्त कहते हैं वह विष्णुभगवान् का तेजरूपी अंश देवकीके सातवाँ गर्भ हुए वह गर्भ आनन्दरूप भगवान्का अवतार होनेके कारण हर्षका और पहले गर्भोंकी समान दृष्टिको शोकका कारण भी हुआ॥५ तदनन्तर विश्वरूप भगवान्ने, अपने आप ही हैं नाथ जिनके ऐसे यादवोंको कंस से भय प्राप्त होरहा है ऐसा जान कर, अपनी शक्तिरूप योगमायाको आज्ञा करी कि-॥ ६ ॥ हे देवि ! हे भद्रे ! तू गोप और गौओं करके शोभायमान गोकुलमें जा तिस नन्दजीके गोकुलमें वसुदेवजीकी रोहिणी नामक स्त्री है, यदि कहै कि-वह गोकुलमें क्यों है ? तहाँ कहते हैं, कि-वह ही केवल गोकुलमें है यह नहीं किन्तु और भी वसुदेवजीकी स्त्रियें कंसके भयसे देशान्तरोंमें गुप्तरूपसे निवास करती हैं ॥ ७ ॥ तहाँ जाकर यह कार्य्य कर कि-देवकीके उदरमें शेष नामक मेरा अंश गर्भरूपसे विराजमान है, उसको तहाँसे युक्तिसे निकाल कर रोहिणीके उदरमें ठीक ठीकर स्थापन कर ॥८॥ हे शुभे ! तदनन्तर शीघ्र ही मैं परिपूर्ण स्वरूपसे देवकीके पुत्ररूपको प्राप्त होऊँगा और तू नन्दपत्नी यशोदाके विषैं उत्पन्न होयगी ॥ ९ ॥ इस प्रकार मेरी आज्ञाको पालन करने पर पुत्र आदि कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ और भक्तोंको इच्छित वर देने वाली जो तू तिस तेरा धूप दीप नैवेद्य और बलि आदि सामग्रीसें मनुष्य पूजन करेंगे ॥ १० ॥ और भूलोकमें मनुष्य तेरे मन्दिर बनवावेंगे और तेरे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका ऐसे नाम रक्खेंगे ११।१२ तू गर्भको खैंचेगी इस कारण तिस रोहिणीके पुत्रका भूलोकवासी पुरुष 'संकर्षण' नाम कहेंगे, वह पुरुषोंको प्रसन्न करेंगे इस कारण पुरुष उनको 'राम' इस नामसे पुकारेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण तिनको 'बल' इस नामसे पुरुष पुकारेंगे ॥१३॥ इसप्रकार श्रीभगवान्के आज्ञा करके उस योगमायाने 'तथास्तु' इस प्रकार और 'ॐ' इस प्रकार कहकर आदरपूर्वक तिन श्रीभगवान्के वचनको स्वी-

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया । अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः । आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥ स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः । दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी । दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे । भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती॥१९॥तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितांतरां विरोचयन्तीं भुवनं शुचि-

कार करा, तिस कार्य्यको करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होनेके निमित्त भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके भूलोकको चली गई और जिस प्रकार भगवान्‌ने आज्ञा करी थी सो सब कार्य्य तिसी प्रकार करदिया ॥ १४ ॥ उससमय तिस योगनिद्राने जब देवकी का गर्भ रोहिणीके उदरमें पहुँचा दिया तब 'अहो ! देवकीका गर्भपात होगया' इस प्रकार खिन्न होते हुए मथुरावासी पुरुष पश्चात्ताप करने लगे परन्तु इसका तत्व उन्होंने कुछ नहीं समझा ॥ १५ ॥ इधर भक्तोंको अभय करने वाले विश्वरूप श्रीहरिने, पूर्ण आनन्दसे वसुदेवजीके मनमें प्रवेश करा१६ भगवत्सम्बन्धी तेजको धारण करे हुए वह वसुदेवजी सूर्य्यकी समान प्रकाशको प्राप्त होने लगे,उससमय किसी प्राणीको उनके समीप जानेकी तथा उनका तिरस्कार करनेकी शक्ति अपने में नहीं प्रतीत होती थी ॥ १७ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने शुद्ध मनसे वैधदीक्षा × करके अर्पण करे हुए, अपने (देवकीके) विषैं पहिलेसे ही विराजमान, संसारके मूर्त्तिमान् मङ्गलरूप और अखण्ड ऐश्वर्यरूप भगवान्‌को तिस शुद्धसत्त्वरूप देवकीने मन करके ही,जिस प्रकार पूर्वदिशा चन्द्रमाको धारण करती है तिस प्रकार धारण करा ॥ १८ ॥ तिस समय जगन्निवास भगवान्‌का निवासस्थान हुई वह देवकी, कंसके कारागार (जेलखाने) में पड़ी हुई थी इस कारण, जिस प्रकार घड़े आदि में बन्द करी हुई दीपककी ज्वाला सम्पूर्ण प्राणियोंमें प्रकाश करने वाली नहीं होती है और जिस प्रकार 'मेरी विद्याको दूसरा पुरुष न जान जाय' ऐसा विचारने वाले ज्ञानवञ्चक पुरुषके विषैं गुप्त रहने वाली वेदादि विद्या संपूर्ण प्राणियोंको लाभदायक नहीं होती है तिसीप्रकार सब प्राणियोंको आनन्दित न करके अत्यन्त शोभा को प्राप्त न हुई किन्तु स्वयं ही आनन्दका अनुभव करने लगी ॥ १९ ॥ उस समय जिसकी कोखमें भगवान् वास कर रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे तिस स्थानको शोभायमान कर रही है और जिसका हास्य आनन्दयुक्त है ऐसी तिस देवकीको देखकर कंस कहने लगा, कि-यह देवकी पहिले तो ऐसी कान्तियुक्त देखनेमें नहीं आती थी, इससे प्रतीत होता है, कि-मेरे (गजके) प्राणहरण करने वाले हरि ही

×"यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यानमात्रेण पोषयेत् । वैधदीक्षोपदेशस्तु तादृशः कथितः प्रिये ॥" अर्थात्-जैसे कछुआ अपने बच्चोंका ध्यानमात्रसे ही पोषण करता है तैसे तू ध्यानमात्रसे परमेश्वरको धारण कर, ऐसे उपदेशको वैधदीक्षा कहते हैं, ऐसा कुलार्णव तन्त्रमें कहा है ॥

ह्मिताम् । आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् । स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥ स एष जीवन् खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यंतनृशंसितेन । देहे मृते तं मनुजाः शपंति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥ इति घोरतमाद्भावात्सन्निवृत्तः स्वयं प्रभुः । आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३ ॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुंजानः पर्यटन्महीम् । चिंतयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः । देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये । सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥

(सिंह ही) इसकी कोखमें (गुहामें) निःसन्देह विराजमान हैं ॥ २० ॥ सो अब मुझे इस विषयमें क्या करना चाहिये ? यदि साम आदि उपायोंसे कार्य लेता हूँ तो-यह भगवान् देवताओंका कार्य करनेके निमित्त उद्योग कर रहे हैं, इस कारण मेरा वध करनेके निमित्त पराक्रम अवश्यही करेंगे,और यदि इस देवकीका प्राणांत कर दूँ सो भी ठीक नहीं है क्योंकि-कार्य सिद्ध करते हुए पुरुषको अपना पराक्रम नष्ट नहीं करना चाहिये, और यह स्त्री तिस पर भी वहिन तिस पर भी गर्भिणी है इस कारण इसका प्राणान्त करने पर तत्काल यश सम्पत्ति और आयुका नाश होयगा ॥२१॥ और यदि अतिक्रूरपनेसे वर्त्ताव करूँ सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि-जो पुरुष अतिक्रूरतासे वर्त्ताव करता है वह जीवित भी मृतककी समान होता है कारण यह है कि-उसके जीवित रहते ही पुरुष उसको धिक्कार देते हैं और देहत्याग (मरण) के अनन्तर पापियोंको प्राप्त होने वाले नरकमें पड़ता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार विचार करके देवकीके वधरूप अतिभयंकर संकल्पसे वह स्वाधीन कंस अपने आप ही निवृत्त होकर चित्तमें श्रीहरिसे वैरभाव होनेके कारण तिन श्रीहरिके जन्मकी बाट देखता हुआ समयको व्यतीत करने लगा ॥ २३ ॥ तदनन्तर बैठतेमें, शयन करतेमें, खड़े रहतेमें,भोजन करतेमें,और पृथ्वीपर विचरतेमें, अर्थात् हर समय वैरभावसे श्रीकृष्णका चिन्तवन करने वाले उस कंसने सम्पूर्ण जगत्को श्रीकृष्णरूप ही देखा ॥२४॥ एक समय नारदादि ऋषि, गन्धर्व आदि अनुचर और इंद्रादि देवताओं सहित ब्रह्माजी और महादेवजी तिन वसुदेव देवकीके समीप कारागारमें आए और सब मिल कर सुन्दर वाणियोंसे मनोरथ पूर्ण करने वाले तिन भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ तहाँ पहिले तो भगवान्ने अपने कथन को सत्य करा इस कारण हर्षयुक्त हुए वह देवता तिन भगवान्की सत्यरूपसे स्तुति करने लगे, कि—जिनका व्रत (संकल्प) सत्य है जिनके विषैं सत्य ही सुन्दर प्राप्तिका साधन है, जो सृष्टिके पहिले प्रलयके अनन्तर और स्थितिकालमें सत्यरूपसे रहते हैं, जो पृथ्वी—जल—तेज-वायु और आकाश इन पञ्चमहाभूतोंके कारण हैं, जो तिन पञ्चमहाभूतोंके विषैं अन्तर्यामिरूपसे विराजमान हैं, और तिन पञ्चमहाभूतोंके लयस्थान हैं तथा जो मधुरवाणी और समदृष्टिके

एकायनोऽसौ त्रिफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा। सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥ त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च। त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य। सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥ त्वय्यंबुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके। त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः। भवत्पदांभोरुहनावमत्र

प्रवर्त्तक हैं ऐसे सत्य प्रकारसे सत्यरूप तुम भगवान्की हम शरणमें प्राप्त हुए हैं २६ यदि कहो कि—तुम भी लोकाधिपति होनेके कारण मेरी समान ही हो फिर मेरी शरण क्यों आए हो? सो ठीक नहीं है, क्योंकि—सम्पूर्ण सृष्टि आदिके मूलकारण और अद्वितीय सर्वेश्वर तुम ही हो, हम तो तुम्हारे आश्रयसे ही रहने वाले हैं, और लोकादिरूप द्वैत तुमसे निराला नहीं है, ऐसा वर्णन करनेके निमित्त द्वैतप्रपञ्चका वृक्षरूपसे वर्णन करते हैं, कि-यह प्रपञ्च आदि वृक्षरूप है, प्रकृति ही जिस वृक्षका एक थमला है, जिसके सुख दुःख यह दो फल हैं, सत्व रज और तम यह तीन मूल (जड़) हैं, धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह चार जिसमें रस हैं, त्वचा-नेत्र—कर्ण—जिह्वा और घ्राण (नासिका) यह पाँच जिसके जाननेके प्रकार हैं काम—क्रोध—लोभ—मोह मद और मत्सर यह छः जिसके स्वभाव हैं, त्वचा चर्म्म आदि सप्तधातु जिसकी छाल हैं, पञ्चमहाभूत मन बुद्धि और अहंकार यह आठ जिसकी शाखा हैं, मुख आदि नौ द्वार जिसकी नौ खकोड़ल हैं, और दश प्राण ही जिसके दश पत्ते हैं, तथा जिसके ऊपर जीव और ईश्वर यह दो पक्षी बैठे हैं ॥२७॥ ऐसे इस संसारवृक्षरूप कार्य्य के तुम एक ही उत्पत्ति स्थान हो, तुम ही लयस्थान और तुम ही पालन करने वाले हो, यदि कहो कि—ऐसे कार्य करने वाले तो ब्रह्मा विष्णु और रुद्र प्रसिद्ध हैं, तहाँ कहते हैं कि—तुम्हारी मायासे जिनका ज्ञान आच्छादित होरहा है वह तुमको ही ब्रह्मादिरूप करके नाना प्रकारका देखते हैं और जो मायामोह करके रहित विवेकी पुरुष हैं उनको ऐसी प्रतीत नहीं होती है किन्तु ब्रह्मादिरूप करके स्थित जो तुम तिनको एकरूप ही देखते हैं ॥ २८ ॥ यदि कहो, कि—मुझ देवकीके पुत्रका इस प्रकार वर्णन कैसे करते हो? तहाँ कहते हैं कि—ज्ञानैकस्वरूप आत्मा जो तुम सो तुम ही स्थावर जङ्गमरूप जगत्का पालन करनेके निमित्त धर्मके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले पुरुषोंके सुखकारक और दुष्टोंके नाशक शुद्ध सत्त्वगुणात्मक स्वरूपको धारण करते हो तुम किसीके भी पुत्र नहीं हो ॥ २९ ॥ और केवल इतनेके निमित्त ही नहीं किन्तु भक्तोंको मोक्ष देनेके निमित्त भी तुम अवतार धारण करते हो ऐसा वर्णन करते हैं, हे कमलनेत्र! शुद्धसत्त्वगुण है मूर्त्ति जिनकी ऐसे आपके विषें समाधिके द्वारा स्थापन करे हुए चित्तसे विवेकी पुरुष, साधुओंके सेवन करे हुए तुम्हारे चरणरूप नौकाका आश्रय करके संसारसमुद्रको गौ के बछड़ेके खुरके चिह्नकी समान कर लेते हैं ॥ ३० ॥ यदि

ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येऽन्येऽरविंदाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्य-स्तभावादविशुद्धबुद्धयः । आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्म-दंघ्रयः ॥ ३२ ॥ तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यंति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः । त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः । वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्त-वार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदाप-

कहो कि—चरणरूप नौकाके द्वारा पूर्वपुरुष इस संसार समुद्रको तर गए परन्तु आजकलके पुरुषोंकी क्या गति होयगी ? तहाँ कहते हैं, कि—हे स्वप्रकाशस्वरूप ! जिस प्रकार सूर्य्यका आश्रय करने वाले पुरुषोंको अन्धकारका भय नहीं होता है तिसी प्रकार तुम्हारा आश्रय करने वाले भक्तोंको संसारका भय नहीं होता है, इस कारण संपूर्ण प्राणियोंसे प्रेमभाव रखने वाले तुम्हारे भक्त, तुम्हारे चरणरूप नौकाके समीप पहुँचते ही, उनको संसार समुद्र बछड़ेके चिह्नकी समान होजाता है, फिर वह भक्त तुम्हारे चरणकमलरूप नौकाको, अन्य पुरुषोंके उपकारके निमित्त तहाँ ही छोड़ कर अर्थात् भक्तिमार्गके सम्प्रदायको चला कर वह भक्तपुरुष, अन्य पुरुषोंको भयदायक तथा दुस्तर संसारसमुद्रको अनायासमें तर गए, इसका मुख्य कारण यह है, कि—तुम भक्तोंके ऊपर अनुग्रह करने वाले हो ॥ ३१ ॥ यदि यह कहो, कि—विवेकी पुरुषोंको मेरा भजन करनेसे क्या लाभ है ? क्योंकि—वह तो मुक्त ही है, सो हे कमलनयन ! जो कोई पुरुष अपनेको स्वयं ही मुक्त मानने वाले हैं और तुम्हारे चरणोंका आदर नहीं करते हैं तथा तुम्हारे विषैं भक्ति न होनेके कारण जिनकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई है वह पुरुष अनेकों जन्मोंमें करे हुए तपके प्रभावसे सत्कुलमें जन्म, तप और शास्त्रपठन आदि मोक्षके समीपकी पदवीको प्राप्त होकर भी तहाँसे नीचे (नरकमें) गिर पड़ते हैं, अर्थात् विघ्नों करके तिरस्कार को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ हे माधव ! तुम्हारे भक्त तो तुम्हारे विषैं दृढ़ प्रेम करनेके कारण अभक्तोंकी समान कदापि अपने भक्तिमार्गसे भ्रष्ट नहीं होते हैं, किन्तु हे प्रभो ! तुम्हारे रक्षा करे हुए वह भक्त काल कर्म्मादिकोंके भयसे रहित होकर विघ्नोंकी सेनाके स्वामियोंके भी मस्तक पर चरण धर कर विचरते हैं अर्थात् वह सम्पूर्ण विघ्नोंको जीत अपने कार्योंको सिद्ध करते हैं ॥ ३३ ॥ साधुओंके सुख-कारकरूपको धारण करते हो ऐसा कहा सो यदि कहो कि—वह कौन प्रकारका सुख देना है ? तहाँ कहते हैं, कि—हे प्रभो ! तुम जगत्का पालन करनेके निमित्त प्राणियोंको कर्मोंका फल देने वाले शुद्ध सत्त्वगुणीरूप शरीरको धारण करते हो इस कारण तिस शरीर करके युक्त हुए तुम्हारा, चारों आश्रमोंको अङ्गीकार करने वाले पुरुष, क्रमसे वेदाध्ययन, कर्म्मानुष्ठान–वानप्रस्थ धर्म्म और समाधिके द्वारा पूजन करते हैं, यदि तुम अवतार धारण न करो तो, न तुम्हारा पूजन होय और न कर्मफलकी सिद्धि होय॥३४॥हे जगत्के आधार ! तुम्हारा यह सत्त्वगुणात्मक शरीर यदि प्रकट न होय तो अज्ञानियोंको अज्ञानसे उत्पन्न हुए द्वैतभेदको नष्ट करनेवाला

मार्जनम् । गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥ न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः । मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियंत्यथापि हि ॥३६॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिंतयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते क्रियासु यस्त्वच्चरणारविंदयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः । दिष्ट्यांऽकितां त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकंपिताम् ॥३८॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे । भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु

अपरोक्षज्ञान कदापि नहीं होय, यदि कहो कि-जिससे बुद्धि आदि जड़ पदार्थों का प्रकाश होता है उस ब्रह्मका ज्ञान हो ही जायगा? तहाँ कहते हैं, कि-ऐसा नहीं होसकता क्योंकि-जिसके संबंधसे यह घटपटादि पदार्थरूप गुण, बुद्धिके विषैं प्रतिबिम्बित हुए जिसके योगसे प्रकाशको प्राप्त होते हैं, और तिस प्रकाशसे द्वारा तुम सर्वसाक्षी परिपूर्ण हो ऐसा जो केवल अनुमान होता है वह काल्पनिक है इसकारण इसको प्रत्यक्षज्ञान नहीं कह सकते, और तुम शुद्ध सत्त्वगुणरूप उत्पन्न होते हो, सो तुम्हारी सेवासे तदाकार हुए अन्तःकरणके विषैं तुम्हारे अनुग्रहसे तुम्हारा साक्षात्रूप प्रत्यक्षज्ञान होता है ॥ ३५ ॥ हे देव ! जो मन इन्द्रियादिकोंका साक्षी है और जिसका मार्ग अनुमान करके ही जाननेमें आता है तिन तुम्हारे भक्तवात्सल्य आदि गुण, रामकृष्ण आदि जन्म और रावणवध आदि कर्म इनके साथमें स्वीकार करे हुए जो नाम और रूप हैं वह यद्यपि अभक्तोंको मनसे चिन्तवन करनेको और वचनसे कीर्त्तन करनेको अशक्य हैं परन्तु तुम्हारी उपासना करने वाले पुरुष उपासनाके विषैं आपका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ इसकारण जो पुरुष तुम्हारे पुण्यकारक नामोंका, रूपोंका और कर्मोंका श्रवण करते हुए, वर्णन करते हुए, चिन्तवन करते हुए और दूसरे पुरुषोंको स्मरण कराते हुए, लौकिक कर्मोंके विषैं भी, तुम्हारे चरण कमलोंके विषैं चित्तको लगाए रखते हैं वह फिर संसारमें जन्म नहीं लेते हैं अर्थात् कर्मबन्धनसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥ अब विशेष करके श्रीकृष्णावतारकी प्रशंसा करते हैं, कि-हे हरे ! तुम ईश्वरके जन्ममात्रसे ही तुम्हारी चरणरूप इस पृथ्वीका भार दूर हुआ सा ही है यह बड़े मङ्गलकी वार्त्ता है, अब हम आपके वज्र अंकुश आदि शुभलक्षणयुक्त कोमल चरणों करके चिन्हित पृथ्वीको और आपके कृपा करे हुए स्वर्गको भी देखेंगे यह भी हमारा भाग्य ही उदय होने वाला है ॥ ३८ ॥ अब यदि ऐसा कहो कि-"आपके जन्म होनेसे भू भार दूर हुआ सा ही है" ऐसा कहनेसे क्या मुझे भी जीवकी समान संसार है, ऐसा कहते हो ? सो नहीं, किन्तु हमारे कहनेका प्रयोजन यह है; कि--हे नित्यमुक्त ! हे ईश्वर ! तुम जन्मरहित हो और तुम्हारे जन्म धारण करनेका कारण, क्रीड़ाके सिवाय दूसरा हमारे तर्क करनेमें नहीं आता, तुम्हारे जन्मका कारण नहीं है यह वार्त्ता तो अलग रही किंतु

कृतावतारः । त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४० दिष्ट्यांऽब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः । मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥ श्रीशुक उवाच । इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा । ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादि-
कृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच । अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः । यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् । मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः । द्विजालिकुलसन्ना-

---

जीवात्माके विषैं भी जो उत्पत्ति मरण और स्थितिकी प्रतीत होती है सो भी, तुम्हारे विषैं, देह, इन्द्रिय अन्तःकरण आदिके विषैं जो तादात्म्य अध्यासरूप अविद्या तिसके करेहुए हैं वास्तवमें सत्य नहीं हैं ॥३९॥ अव प्रस्तुत कार्यकी प्रार्थना करते हैं, कि-हे ईश्वर ! जिस प्रकार तुम मत्स्य, हयग्रीव, कूर्म, वराह, नृसिंह, हंस, श्रीराम और वामन आदि अवतार धारण करके हमारी और त्रिलोकीकी रक्षा करते हो तिसी प्रकार इस समय भी पृथ्वीका भार दूर करिये, हे यादवश्रेष्ठ ! आपके अर्थ प्रणाम है ऐसा कहकर संपूर्ण देवताओंने मस्तकसे नमस्कार करा ॥ ४० ॥ तदनन्तर देवता देवकीसे कहने लगे, कि-हे मातः ! जिन साक्षात् षड्गुण ऐश्वर्य संपन्न परमपुरुष ईश्वरने हम देवताओंके कल्याणके निमित्त पहिले श्रीराम आदि अवतार धारण करे थे वह इस समय तुम्हारी कोखके विषैं आकर प्राप्त हुए हैं यह बड़े ही आनन्दकी वार्त्ता है, अब कंसके मरणका समय समीप ही आगया है इस कारण तुम अब उससे भय मतमानो, तुम्हारा पुत्र यादवोंकी रक्षा करनेवाला होगा श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! इस प्रकार जिनका स्वरूप 'यह अमुक हैं' ऐसे दिखानेमें नहीं आता तिन सर्वान्तर्यामी पुरुषकी स्तुति करके ब्रह्माजी और महादेवजी इन दोनोंको आगे कर सब देवता स्वर्गलोकको चलेगए ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कंधमें द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

अब इस तृतीय अध्यायके विषैं श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए, देवकी वसुदेवने उन की स्तुति करी और कंससे भयभीत हुए वसुदेवजीने उनको गोकुलपुरीमें पहुँचा दिया, यह कथा वर्णन होयगी । श्रीशुकदेवजी कहते हैं, कि—हे राजन् परीक्षित् ! ब्रह्मादि देवताओंके चलेजानेके अनन्तर जिस समय भक्तजनोंकी अविद्याको दूर करनेवाले और काल कर्मादिके स्वाधीन जो जन्म तिस करके रहित—यह स्वतंत्र भगवान् प्रकट हुए वह संपूर्णगुणों करके युक्त,परमकल्याणकारक समय प्राप्त हुआ उस समय शांतस्वरूप नक्षत्रतारा और ग्रहों करके युक्त ब्रह्माजीका रोहिणी नक्षत्र था ॥ १ ॥ उस समय संपूर्ण दिशा प्रसन्न होगईं आकाश निर्मल और नक्षत्रादिकों के उदयसे युक्त होगया, पृथ्वी जिनके विषैं पुत्रजन्मादि अनेकों उत्सव होरहे हैं ऐसे नगर, ग्राम, गोशाला और रत्नादिकी खानों करके युक्त होगई ॥ २ ॥ नदियें

द्रस्तवका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः । अग्नयश्च द्विजातीनां शांतास्तत्र समिन्धत ॥ ४ ॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् । जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुंदुभयो दिवि ॥ ५ ॥ जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्ध-चारणाः । विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः । मन्दं मंदं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने । देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः । आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदाद्युदायुधम् । श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीतांबरं सांद्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् । उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ १० ॥ स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा । कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमो द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥

स्वच्छ जलयुक्त होगईं, बड़े २ सरोवर कमलोंकी शोभासे युक्त होगए, वनके वृक्षों की पंक्तियें जिनके ऊपर पक्षी और भ्रमरोंके समूहोंका मनोहर शब्द होरहा है ऐसे पुष्पोंके गुच्छों करके युक्त होगईं ॥ ३ ॥ उस समय वायु स्पर्श होनेपर आनन्द देने वाला, पवित्र, सुगन्धयुक्त और शुद्ध चलने लगा, और ब्राह्मणादिके कुण्डोंके विषें शान्त हुआ अग्नि स्वयं जाज्वल्यमान होने लगा ॥ ४ ॥ कंसादि असुर जिनसे द्वेष करते थे उन साधुओंके मन प्रसन्न होगए, तिन जन्मरहित परमेश्वरका जन्म होने पर स्वर्गके विषें दुंदुभी बजने लगीं ॥ ५ ॥ उस समय किन्नर और गन्धर्व भगवान् के गुणानुवाद गान करने लगे, सिद्ध और चारण स्तुति करने लगे, विद्याधरोंकी स्त्रियें अप्सराओंके साथ नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ हर्षसे पूर्ण हुए ऋषि और देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, समुद्रकी गम्भीर गर्जनाका प्रारम्भ होते ही मेघ भी मन्द मन्द गर्जने लगे ॥ ७ ॥ घनान्धकारयुक्त अर्धरात्रिके समय जिस प्रकार पूर्वदिशाके विषें सोलहों कलायुक्त चन्द्रमाका उदय होता है तिसीप्रकार देवतारूप तिस देवकी के विषें सबकी बुद्धियोंमें अन्तर्यामीरूपसे निवास करने वाले वह व्यापक विष्णु भगवान् चतुर्भुजसे प्रकट हुए ॥ ८ ॥ जिसके कमलकी समान सुन्दर नेत्र थे, जो चार भुजा और उनमें शंख गदा चक्र तथा कमल धारण करे हुए, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और कण्ठमें शोभायमान कौस्तुभमणि धारण करे हुए, पीताम्बर पहिने और जल भरे हुए काले मेघमण्डलकी समान सुन्दर श्यामवर्ण था, जिसके केश बहुमूल्यके वैदूर्यरत्नों करके जटित किरीटकी और कानोंके कुण्डलोंकी कांति से प्रकाशित होरहे थे, और जो सुन्दर तगड़ी-बाजूबन्द-तथा कड़े आदि भूषणोंसे शोभायमान होरहा था ऐसे तिस अद्भुत बालकका वसुदेवजीने दर्शन करा९॥१० उस समय वह वसुदेवजी 'साक्षात् श्रीहरि मेरे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए हैं' ऐसा देख कर आश्चर्यसे प्रफुल्लनेत्र और कृष्णावतारके निमित्त करने योग्य उत्सवकी शीघ्रता में लग कर अत्यन्त ही हर्षयुक्त हुए, और मनसे ब्राह्मणोंको दश सहस्र गौ-दान करदीं क्योंकि-उस समय कारागारमें बन्द होनेके कारण प्रत्यक्ष तो गौओंका दान

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नतांगः कृतधीः कृतांजलिः । स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयंतं गतभीः प्रभावविद् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच । विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः । केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् । तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे १४ यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह । नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयंति हि ॥१५॥ सन्निपत्य समुत्पाद्य दृश्यंतेऽनुगता इव । प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥ १६ ॥ एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः । अना-

---

कर ही नहीं सकते थे इस कारण उन्होंने गौओंके देनेका मनसे ही संकल्प कर लिया ॥ ११ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर शुद्धबुद्धि और भगवान्के प्रभावको जाननेके कारण निर्भय हुए वह वसुदेवजी, अपनी कांन्तिसे सूतिका गृहको प्रकाशित करने वाले तिस बालकका, 'यह परमेश्वर हैं' ऐसा जानकर साष्टाङ्ग नमस्कार करा और हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥ वसुदेवजी कहने लगे; कि–हे ईश्वर ! मैंने तुमको जान लिया है, तुम इससमय यद्यपि मुझे पुत्रकी समान दीखरहे हो तथापि तुम वास्तवमें प्रकृतिसे पर और केवल अनुभव करने योग्य आनन्दस्वरूप हो, संपूर्ण प्राणियोंकी बुद्धियोंको देखने वाले अन्तर्यामी ईश्वर हो, तुम्हारा मुझे जो यह प्रत्यक्ष दर्शन हुआ सो यह मेरे भाग्यका उदय है ॥ १३ ॥ यदि कहो कि–देवकीके उदरमें प्रविष्ट होने वाले मेरी इतनी अधिक स्तुति क्यों करते हो ? तहाँ कहते हैं, कि–हे भगवन् ! वास्तवमें तुम सच्चिदानन्द स्वरूप हो और सृष्टिकी आदिमें अपनी मायाके द्वारा इस त्रिगुणमय जगत्को उत्पन्न करके तदनन्तर तिसमें प्रविष्ट न होकर भी प्रत्यक्षमें अथवा सद्रूपसे प्रविष्टहुएसे दीखते हो ॥१४॥ इस विषयमें दृष्टांत कहते हैं, कि–जिस प्रकार यह भिन्न स्वभाव वाले महत्तत्त्वादि एकसे एक भिन्न होकर जब तक भिन्न भिन्न रहते हैं तब तक किसी विशेष कार्य्यको उत्पन्न नहीं कर सकते हैं और वह ही तत्त्व शब्दादि पाँच विषय तथा ग्यारह इन्द्रियें इस प्रकार सोलह विकारोंके साथ एक स्थानमें मिल कर ब्रह्माण्डको उत्पन्न कर देते हैं और उत्पन्न करनेके अनन्तर उसमें प्रविष्टहुएसे दीखते हैं परन्तु उसमें वह प्रविष्ट नहीं होते हैं क्योंकि–कार्य्य उत्पन्न होनेके प्रथम ही वह तहाँ होनेके कारण कार्य्य उत्पन्न होनेके अनन्तर उनका प्रवेश नहीं होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस प्रकार जिन का स्वरूप रूपादि विषयोंके ज्ञानसे अनुमान करने योग्य है ऐसी इन्द्रियें और तिन इंद्रियों करके ग्रहण करने योग्य जो घटादि विषय तिनके साथ वर्त्तमान भी तुम रहते हो परन्तु तिन विषयोंके साथ तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि—ऐसा नियम नहीं है कि-पदार्थोंके साथ जितने गुण हों उन सबका ही प्रत्येक इन्द्रियको ज्ञान हो किन्तु जिस इंद्रियमें जिस विषयको ग्रहण करनेकी शक्ति है उस इंद्रिय का उतने ही विषयका ज्ञान होता है, जिस प्रकार आम्र आदि पकेहुए फलको दूरसे देखने पर चक्षु इन्द्रियसे उसके पीले रूपमात्रकी ही प्रतीति होगी परन्तु उसके साथ में विद्यमान मधुररस और कोमल स्पर्श आदि गुणोंका ज्ञान चक्षु इन्द्रियसे कदापि

यतत्वाद्बहिरंतरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥ य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः । विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदंत्यनीहादगुणादविक्रियात् । त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुद्ध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।

नहीं होता तिसी प्रकार हे प्रभु ! तुम विषयोंके साथ वर्त्तमान रहते हो परंतु विषयों के ज्ञानके साथ तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है, इस प्रकार यह वर्णन करा, कि—जो पदार्थ पहिले ही विद्यमान है उसका पीछे प्रवेश होना नहीं बन सकता; अब आप के स्वरूपका यदि कुछ प्रमाण (नाप) होता तो जिस प्रकार पक्षी आदिका घोंसला (निवासस्थान) में प्रवेश होता है तिसी प्रकार तुम्हारा प्रवेश होना भी सम्भव था परन्तु तुम तो आवरणरहित सर्वरूप, सर्वात्मा, व्यापक और परमार्थ वस्तु हो इस कारण तुम्हारा बाहरका और भीतरका भाग, ऐसा विभाग है ही नहीं, फिर प्रवेश होना किस प्रकार बनसकता है ? अर्थात् कदापि नहीं बन सकता,इससे यह सिद्ध हुआ कि--तुम अन्तर्यामीरूपसे सृष्टिमें प्रवेश करते हो स्थूलरूपसे नहीं, फिर देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुए यह कहना तो कदापि बन ही नहीं सकता, इस कारण आप केवल अनुभवगम्य आनन्दस्वरूप हो, और तुम्हारा ज्ञान जो मुझे हुआ सो मेरा बड़ा भाग्योदय है१७जो पुरुष आत्मासे प्रकाशको प्राप्त होनेवाले देहादिके विषें आत्मासे भिन्न भी यह देहादि सत् हैं ऐसा निश्चय करता है वह मूढ़ है, क्योंकि विचार करने पर वह सत् माने हुए देहादि सम्पूर्ण पदार्थ केवल वाणीसे उच्चारण करनेमात्र ही हैं इसके सिवाय उनमें और कुछ तथ्य नहीं है इस कारण विचारवान् पुरुषोंने जिनको, अवस्तु जान कर त्याग दिया है ऐसे देहादि पदार्थोंको,सत् बुद्धिसे स्वीकार करने वाला पुरुष, निःसन्देह मूर्ख ही है ॥ १८ ॥ हे सर्वव्यापक भगवन् ! सत्त्व रज और तम इन तीन गुणों करके रहित,किसी प्रकारका भी व्यापार न करने वाले और विकार रहित जो तुम तिन तुमसे ही इस जगत्के उत्पत्ति पालन और संहार होते हैं ऐसा लोक और वेद वर्णन कर रहे हैं, यदि कहो कि—मुझ व्यापारशून्यके विषें कर्तृत्व किस प्रकार होसकेगा ? और कर्तृत्व हुआ तो निर्विकारपना किस प्रकार होसकेगा ? तहाँ कहते हैं, कि-तुम ब्रह्मस्वरूप (सर्वव्यापक) और ईश्वर (सर्वशक्तिमान्) हो इस कारण तुम्हारे विषें कर्तृत्व और निर्विकारित्व यह दोनों धर्मविरुद्ध नहीं होते हैं, तुम्हारे विषें कर्तृत्व कहनेका इतना ही है, कि-तुम गुणोंके आश्रय हो इस कारण जिस प्रकार सेवकके करे हुए कर्मोंका कर्तृत्व राजाके विषें मानते हैं तिसीप्रकार गुणोंके करे हुए सृष्टि आदि कार्य्योंका कर्तृत्व तुम्हारे विषें मानते हैं तथापि वास्तवमें तुम अकर्त्ता और निर्विकार हो ॥ १९॥ वह ही तुम त्रिलोकीकी रक्षा करनेके निमित्त अपनी मायाके द्वारा अपने शुभ्रवर्ण (सत्वगुणात्मक विष्णुमूर्त्ति) को धारण करते हो, तिसी प्रकार त्रिलोकीकी उत्पत्ति करनेके निमित्त रजोगुण करके वृद्धिको प्राप्त हुए ताम्रवर्ण

सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर । राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर । स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ।२२। श्रीशुक उवाच । अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् । देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥ देवक्युवाच । रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् । सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः २४ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु । व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः ॥ २५॥ योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबंधो चेष्टामाहुश्चेष्टते

(रजोगुणात्मक ब्रह्मारूप) को धारण करते हो और संपूर्ण प्राणियोंका प्रलय (नाश) करनेके समय कृष्णवर्ण (तमोगुणात्मक रुद्रमूर्त्ति) को धारण करते हो ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे सर्वशक्तिमान् ! हे परमेश्वर ! इस समय इस लोककी रक्षा करनेकी इच्छा करने वाले तुम, मेरे गृहमें कृष्णरूप मूर्त्ति धारण करके अवतीर्ण हुए हो इस कारण साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त तुम, राजाओंका नाममात्र धारण करने वाले जो करोड़ों दैत्य सेनापति हैं उनकी इधर उधर नियत करके भेजी हुई सेनाओंका संहार करोगे ॥ २१ ॥ हे देवादिदेव ! इस दुष्ट कंसने तो, तुम्हारा जन्म हमारे घर होयगा ऐसा सुन कर तुम्हारे बड़े छः भ्राताओंका प्राणान्त कर दिया, वह अब ही अपने दूतोंके सूचित करे हुए तुम्हारे अवतारको सुन कर हाथमें शस्त्र धारण करके यहाँको दौड़ता हुआ आवेगा इस कारण आप सावधान होजाइये २२ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! तदनन्तर कंससे भयभीत हुई देवकी, भगवान्के चतुर्भुजादि लक्षणोंसे युक्त इस अपने पुत्रको देख कर आनन्दसे प्रसन्न मुख होती हुई तिस पुत्रकी स्तुति करने लगी ॥२३॥ देवकी कहने लगी, कि–हे ईश्वर ! वेदोंने जो परमार्थस्वरूप वर्णन करा है वह बुद्धि आदि इन्द्रियोंके प्रकाशित करने वाले साक्षात् विष्णु तुम ही हो, वह तुम्हारा स्वरूप ऐसा है, कि—जो अव्यक्त (समझमें न आने वाला) सबका आदि कारण, ब्रह्मरूप, प्रकाशरूप, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, सर्व प्रकारके विशेष धर्मों करके और सम्पूर्ण क्रिया धर्मों करके रहित है इस कारण तुमको दूसरेसे भयकी शंका नहीं है ॥ २४ ॥ अब महाप्रलयके समय भी शेष रहने वाले तुमको किससे भय होसकता है ? ऐसा वर्णन करते हैं, कि–हे प्रभो ! कालके वेगसे ब्रह्माजीकी दो परार्द्ध आयु समाप्त होने पर महाप्रलयके समय चराचर सम्पूर्ण प्राणी जब नष्ट होकर पञ्चमहाभूतोंमें लीन होजाते हैं तब 'यह जगत्, मेरे विषैं इस प्रकार लयको प्राप्त हुआ है फिर इसको इस प्रकार उत्पन्न करना चाहियें' ऐसा जानने वाले एक तुम ही शेष रहते हो २५ हे मायाके प्रेरक देव ! जिस करके यह जगत् चल रहा है, जो निमेषसे सम्वत्सर पर्यन्त भेदों करके युक्त और प्रलयका कारण है, वह यह महाकाल, प्रलयके विषैं अवधिभूत (मर्यादारूप) जो तुम तिन तुम्हारी ही लीला है ऐसा कहते हैं, तिन

येन विश्वम्। निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ २६ ॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत्। त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाऽद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहाऽसि। रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥ जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन। समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्। शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथाऽवकाशं पुरुषः परो भवान्। बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडंबनं हि तत् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच। त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति। तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः। सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु। सहमानौ श्वास-

---

अभयस्थानरूपी परमात्माकी मैं शरण आई हूँ ॥ २६ ॥ अब भगवान्‌का निर्भयस्थानपना वर्णन करते हैं, कि-हे सृष्टिकर्त्तः ईश्वर ! मृत्युरूप सर्पसे भयभीत हुआ यह मरणधर्मयुक्त संसारी जन, सम्पूर्ण लोकोंमें भागता फिरा परन्तु तहाँ तहाँ सब लोकोंमें मृत्यु होनेके कारण इसको निर्भय स्थान नहीं मिला, परन्तु इस समय किसी भाग्योदयके कारण आपके चरण कमलोंके समीप पहुँच गया इससे निर्भय होकर शयन करता है क्योंकि-इससे मृत्यु दूर रहता है ॥ २७ ॥ इस प्रकार देवकी स्तुति करके अब प्रस्तुत वार्त्ताकी प्रार्थना करती है, कि-हे देव ! वह तुम भक्तोंके संकटको दूर करने वाले हो इस कारण, घोर कर्म करने वाले इस कंससे भयभीत हुए जो हम तिन हमारी रक्षा करो और मुमुक्षु पुरुषोंके ध्यान करने योग्य जो यह आपका ईश्वरीय स्वरूप है तिसका मांसदृष्टि पुरुषोंको प्रत्यक्ष दर्शन न दीजिये२८ इसका कारण यह है, कि-हे मधुसूदन ! यह पापी कंस, मेरे गर्भसे आपका जन्म हुआ है ऐसा न जाने क्योंकि-इस कंसने मेरे बहुत पुत्र मार डाले हैं इस कारण मैं अधीर बुद्धि वाली तुम्हारे निमित्त इस कंससे अत्यन्त ही भयभीत हूँ ॥ २९ ॥ हे विश्वमूर्त्ति ! शंख चक्र गदा और पद्मकी शोभा करके सेवन करे हुए इस अपने अलौकिक चतुर्भुज स्वरूपको गुप्त करिये ॥ ३० ॥ यदि, कहो कि-इस स्वरूपको गुप्त क्यों करूँ ? ऐसे मुझ पुत्रसे तेरी बड़ी भारी प्रशंसा होयगी, सो हे भगवन् ! जो परम पुरुष तुम प्रलयके समय इस सम्पूर्ण जगत्‌को अपने शरीरके विषें निःसंकोचतासे धारण कर लेते हो वह ही तुम मेरे उदरमें जन्म धारण करनेको आए हो, ऐसा जो कहना है सो मनुष्योंमें असम्भवरूप प्रतीत होनेके कारण अत्यन्त हास्य कराने वाला होयगा इस कारण इस स्वरूपको गुप्त करिये ॥ ३१ ॥ यह सुन श्रीभगवान् बोले, कि-हे पतिव्रते ! देवकि ! तुम इससे पहिलेके तीसरे जन्ममें स्वायंभुवमन्वन्तरमें पृश्नि नामक स्त्री थीं, उस समय यह वसुदेवजी सुतपानामक प्रजापति थे और इनका आचरण परमशुद्ध था ॥ ३२ ॥ तदनन्तर जिस समय ब्रह्माजीने तुम्हें सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी उस समय तुम दोनोंने सम्पूर्ण इंद्रियोंका

रोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशांतेन चेतसा। मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम्। दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥ तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषाऽनघे। तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया। व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दंपती। न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया॥३९॥गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम्। ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्। अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ४१ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् उपेंद्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ४२ तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषा युवाम्। जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे। नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्य-

---

दमन करके परम उग्र तप करा ॥ ३३ ॥ वह ऐसा तप करा, कि-वर्षा, वायु, धूप, सर्दी, पञ्चाग्निसाधनसे प्राप्त हुई उष्णता और भिन्न २ ऋतुओंके धर्मोंका वारम्वार सहन करके प्राणायामके द्वारा अपने अन्तःकरणके मलको सर्वथा नष्ट कर दिया, तथा गिरे हुए पत्ते और वायुका भक्षण करते हुए, मुझसे मनोरथ पूर्ण करा लेनेकी इच्छा करने वाले तुम दोनोंने एकाग्रचित्तसे मेरा आराधन करा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मेरे विषैं अन्तःकरणकी वृत्तिको लगा कर अत्यन्त दुर्घट तीक्ष्ण तपस्या करने वाले तुम दोनोंको दिव्य बारह सहस्र वर्ष बीत गए ॥ ३६ ॥ हे पवित्रदेवकि ! उस समय तप, श्रद्धा और निश्चलभक्तिसे हृदयके विषैं चिन्तवन करा हुआ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर तुमको वर देनेकी इच्छासे इस चतुर्भुजरूपको धारण करे हुए ही तुम्हारे सन्मुख प्रकट हुआ और तदनन्तर जब मैंने तुमसे कहा कि-'वर माँगो' तब तुमने मेरी समान पुत्र ही वर माँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय पर्यन्त तुम दोनोंने विषयभोग (मैथुन आदि) का किंचिन्मात्र भी अनुभव नहीं किया था और तुमको सन्तानकी प्राप्ति भी नहीं हुई थी इस कारण तुमने देवमायासे मोहित होकर मुझसे मोक्ष नहीं माँगी ॥ ३९ ॥ जब 'तथास्तु' कह कर वरदान दे मैं चला गया तिसके अनन्तर तुम मेरी समान पुत्रको प्राप्त होकर पूर्णमनोरथ हुए और विषयभोगोंको भोगने लगे ॥ ४० ॥ तदनन्तर इस लोकमें स्वभाव उदारता और अन्यगुणों करके मेरी समान योग्यता वाला दूसरा कोई भी नहीं है ऐसा देख कर मैं ही पृश्निगर्भ इस नामसे प्रसिद्ध तुम्हारा पुत्र हुआ था ॥ ४१ ॥ फिर वह ही तुम दोनों अदिति कश्यपरूपसे उत्पन्न हुए तब जो कश्यपजीसे अदितिके विषैं उत्पन्न होकर 'उपेन्द्र' नाम करके प्रसिद्ध और छोटे शरीर वाला होनेके कारण 'वामन' इस नामसे प्रसिद्ध पुत्र हुआ वह भी फिर मैं ही हुआ था ॥ ४२ ॥ हे पतिव्रते देवकि ! अब तिन कश्यप अदितिरूप ही तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें पहिले दिखाए हुए तिस चतुर्भुज स्वरूपसे ही फिर उत्पन्न हुआ हूँ, इस प्रकार, तुम्हारे, मेरी समान पुत्र होयगा, ऐसा जो मैंने कहा था सो सत्य हुआ ॥ ४३ ॥ पहिले मेरा इस

लिगेन जायते ॥ ४४ ॥ युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् । चिंतयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥ ४५ ॥ यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय । मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥ ४६ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्त्वाऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया । पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥४७॥ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् । यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाजनि नंदजायया॥४८॥तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ । द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृंखलैः ४९ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यंत यथा तमो रवेः । ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ५० ॥ मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गंभीरतोयौघजवोर्मिफेनिला । भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियः पतेः५१

प्रकारका जन्म हुआ था, ऐसा स्मरण करानेके निमित्त यह चतुर्भुजरूप मैंने तुम्हें दिखाया है क्योंकि-उसके बिना मनुष्यकी समान शरीरसे मेरे स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, अब तुम्हारी इच्छासे मैं फिर बालकरूप होजाऊँगा ॥ ४४ ॥ यदि कहो कि जो तुम प्रसन्न होगए थे तो फिर हमारा वारम्वार जन्म किस कारण हुआ ? सो अब आगे को नहीं होयगा, अब तुम इस जन्ममें पुत्रभावसे अथवा ब्रह्मभावसे बारम्बार मेरा चिन्तवन अथवा मेरेमें प्रीति करो तब तुम अन्तमें परमसुन्दर मेरी मोक्षरूप गतिको प्राप्त होओगे ॥ ४५ ॥ सो हे वसुदेवजी ! यदि तुम कंससे भय मानते हो तो तुम मुझे गोकुलको पहुँचा दो और तहाँ यशोदाके गर्भमें मेरी माया उत्पन्न हुई है तिसको लेकर शीघ्र ही यहाँ चले आओ ॥ ४६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! इस प्रकार कह कर श्रीहरि मौन होगए और तिन माता पिताके देखते ही देखते तत्काल अपनी योगमायासे सांसारिक बालककी समान छोटासा रूप धारण कर लिया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार जब ही पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर जानेकी इच्छा करी उसी समय भगवान्‌की अजन्मा योग माया भी नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई ॥ ४८ ॥ जिस समय वसुदेवजी श्रीकृष्णको लेकर चले उस समय योगमायाने द्वारपालोंके ज्ञानकी साधनभूत इन्द्रियोंकी सम्पूर्ण वृत्तियोंको हर लिया अर्थात् जागते हुए भी द्वारपालोंको चित्रकी समान चेष्टा-रहित कर दिया और सम्पूर्ण नगरनिवासियोंको निद्रित कर दिया, तथा जो द्वार पहिले कंसने बड़े २ कपाट लोहेकी कीलें और शृंखलाओंसे बन्द कर दिए थे और किसीसे खुल नहीं सकते थे वह सब द्वार श्रीकृष्णको लेकर वसुदेवजीके आनेपर, जिस प्रकार सूर्य्यके आनेसे अन्धकार विदीर्ण होजाता है तिसी प्रकार अपने आप खुल गए मन्द २ गर्जने वाले मेघ मार्गमें पुरुषोंका विचरना बन्द करनेके निमित्त-वर्षा करने लगे और अपने फैलेहुए सहस्र फणोंसे वर्षाके जलको रोकते हुए शेषजी वसुदेवजीके पीछे२ चलने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उस समय इंद्रके बारम्वार वर्षा करनेके कारण यमुना नदी अगाधजलके प्रवाहके वेगसे उत्पन्न हुई तरङ्गोंके झागोंसे भर रही थी और

नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान् गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया । सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ ५२ ॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् । प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ॥ ५३ ॥ यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत । न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः । ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् । आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः । सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्द्धजः ॥ ३ ॥ तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती । स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥४॥ बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पाव-

---

सैंकडों भयानक भँवर पड रहे थे, तिस यमुना नदीने, जिस प्रकार पहिले सीतापति श्रीरामचन्द्रजीको समुद्रने मार्ग दिया था तिसी प्रकार श्रीकृष्णको लेजाने वाले वसुदेवजीको मार्ग दिया ॥ ५१ ॥ फिर वह वसुदेवजी, नन्दकी गोकुलमें जाकर, तहाँ निद्रारूप योग माया करके नन्दादिगोपोंको गाढ निद्रामें शयन करते हुए देख कर तिस पुत्रको यशोदाकी शय्यापर शयन करा दिया और तिसकी कन्याको लेकर अपने फिर निवासस्थानको लौट आए ॥ ५२ ॥ तदनन्तर तिन वसुदेवजीने देवकीकी शय्यापर तिस कन्याको शयन कराकर अपने चरणोंमें लोहेकी बेडियें बाँधलीं और पहिलेका समान बन्दीगृहमें स्थित होगए ॥५३॥ इधर गोकुलमें नन्दकी स्त्री जो यशोदा तिसने, 'मेरे कुछ सन्तति हुई है' केवल इतना ही जाना परन्तु कन्या हुई है या पुत्र हुआ है यह नहीं जाना, क्योंकि वह प्रसूति की पीडामें व्याकुल होगई थी और तिस पर भी योगनिद्राने बेसुध कर दिया था ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके पूर्वार्द्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ।

इस चौथे अध्यायके विषैं, हे मूढ ! मेरे मारनेसे क्या लाभ है ? तेरा मारने वाला शत्रु कहीं न कहीं उत्पन्न होगया है" ऐसे, तिस योगमायाके कथनको सुन कर कंस अति भयभीत होगया और उसने दुष्टमंत्रियोंके साथ संमति करके 'छोटे बालकोंका वध करना ही कल्याणकारक है' ऐसा निश्चय करा, यह कथा वर्णन करी है श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! वसुदेवजीके बन्दीगृहमें आजाने पर नगरके बाहर और भीतरके सब द्वार पहिलेकी समान बन्द होगए, तदनन्तर बालकका शब्द सुनकर बन्दीगृहके रखवाले जागउठे॥१॥ और उन्होंने बडी शीघ्रता से कंसके पास जाकर उस कंससे 'वह जिसकी, घबराहटसे वाट देखता था तिस' देवकीके आठवें गर्भके जन्मकी सूचना दी ॥ २ ॥ तिसको सुनकर, यह मेरा काल उत्पन्न हुआ है ऐसा जानकर व्याकुल हुआ वह कंस, शय्यासे घबडाके उठकर ठोकरें खाता हुआ, केश खुले हुए, जैसाका तैसा ही शीघ्रतासे सूतिकागृहमें चला गया ॥ ३ ॥ तहाँ तिस भ्रातासे देवमाता देवकी, दीनतापूर्वक इस प्रकार कहने लगी कि-हे कल्याणरूप कंस! यह कन्या तुझे स्नुषाकी समान पालन करने योग्य है

कोपमाः । त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो । दातुमर्हसि मंदाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच । उपगुह्यात्मजामेवं रुदन्त्या दीनदीनवत् । याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् । अपाथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥ ८ ॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यंबरं गता । अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९॥ दिव्यस्रगंबरालेपरत्नाभरणभूषिता । धनुःशूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः । उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मन्द जातः खलु तवांतकृत् । यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि । बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः । देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगि-

---

इस स्त्रीका वध करना तुझ शूरको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ हे भैय्या ! दैवके प्रेरणा करे हुए तूने मेरे अग्निकी समान तेजस्वी बहुतसे पुत्र मारडाले हैं अब इस एक कन्या को तो तू मुझे देदे ॥ ५ ॥ हे समर्थ कंस ! क्या मैं तेरी छोटी बहिन नहीं हूँ ? तैने मेरे पुत्र मारडाले इस कारण मैं अत्यन्त दीन होरही हूँ, सो मुझ हतभागिनीको इस अन्तकी एक पुत्रीके देनेकी तो कृपा करना चाहिये ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे, कि-हे राजन् ! इस प्रकार तिस देवकीके याचना करने पर भी तिस कंसने देवकीको ललकारकर,पुत्रीको चिपटाकर अत्यन्त दीनकी समान रोदन करती हुई तिस देवकीके हाथोंमेंसे तिस दुष्टने उस कन्याको खैंचकर छीनलिया ७ तदनन्तर अपने प्राण बचानेकी इच्छासे या स्वार्थकी ओर ध्यान देकर जिसने स्नेहरूप अङ्कुर को मनसे सर्वथा उखाड़ कर फेंक दिया है ऐसे तिस कंसने, तत्काल उत्पन्न हुई तिस बहिनकी कन्याको चरणोंसे दाब कर, आँगनमें स्नान करनेके निमित्त स्थापन करी हुई शिलापर देमारा ॥ ८ ॥ उस समय वह विष्णुकी छोटी बहिन शिला पर न गिर कर तिसके हाथोंमेंसे निकल उछल कर ऊपर आकाशमें चली गई और तहाँ तत्काल देवी होकर आयुध धारण करेहुए बड़ी२ आठ भुजाओंसे युक्त दीखने लगी ॥९॥ दिव्य पुष्पोंकी माला,सुन्दर वस्त्र,लेप और रत्नजटित भूषणोंसे शोभायमान, धनुष, शूल, बाण, ढाल, तलवार, शंख, चक्र और गदा इनको धारण करने वाली ॥ १० ॥ और बड़े २ उपहारोंको अर्पण करने वाले, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर,और नागों करके स्तुति करी हुई वह देवी, कंससे इसप्रकार कहने लगी ॥ ११ ॥ कि—रे मूर्ख कंस ! मुझे मार कर तैने क्या कर लिया ? तेरा अन्त करने वाला पूर्वजन्मका शत्रु अभी तेरे मारनेके निमित्त कहीं उत्पन्न होगया है अब और दीन बालकोंके व्यर्थ प्राण नष्ट मत कर ॥ १२ ॥ इसप्रकार वह भगवती,मायादेवी, तिस कंससे कह कर इस भूलोकमें अनेक क्षेत्रोंमें अनेकों नामोंसे प्रसिद्ध हो कर रही ॥ १३ ॥ तिस मायादेवीके कहनेको सुन कर वह कंस 'उलटी आकाशवाणी कैसे हुई' इस आश्चर्यमें पड़ गया और देवकी वसुदेवको कारागारमें रखना

न्यहो शाम मया वां बत पाप्मना । पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः । कांल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥१६॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् । यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून् ॥१७॥ मा शोचतं महाभागावात्मजान् स्वकृतं भुजः । जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनाः समासते ॥ १८ ॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयांति च । नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः । देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्त्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि । माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोऽस्मि हंताऽस्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् । तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकता-

व्यर्थ समझ कर उनको बन्धनसे छुटा दिया और नम्रतापूर्वक उनसे कहने लगा, कि-हे बहिन ! हे भगिनिपते ! मुझ पापीने राक्षसोंकी समान अपने ही बहुतसे बालक मार डाले यह बड़ा अनर्थ हुआ ॥ १४ ॥ १५ ॥ तुम्हारे पुत्रोंका मारने वाला, निर्दयी, अपने कार्य्यके निमित्त बांधव और मित्रोंको त्यागने वाला, खल और जीवित रह कर भी मृतककी समान मैं, ब्रह्महत्यारेकी समान नहीं जानता कौनसे नरकादि लोकमें जाऊँगा ? ॥ १६ ॥ बड़े आश्चर्यकी बात है, केवल मनुष्य ही नहीं किंतु देवता भी मिथ्या भाषण करते हैं, आकाशवाणीके ऊपर विश्वास रख कर मुझ दुष्टने, बहिनके बालक वृथा मार डाले ॥ १७ ॥ हे वसुदेव ! हे देवकि ! तुम बड़े भाग्यशाली हो, इस कारण तुम, अपने प्रारब्ध कर्मोंको भोगने वाले पुत्रों का शोक मत करो, सब ही प्राणी दैवाधीन होनेके कारण सदा जीवित नहीं रहते हैं और न एक स्थानमें रहते हैं किन्तु वियोगको प्राप्त होते रहते हैं ॥ १८ ॥ जिस प्रकार आधारभूत भूमिके विषैं घटादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं तिसी प्रकार आधारभूत आत्माके विषैं देह उत्पन्न होते हैं तथा नाशको प्राप्त होते हैं और घटादि पदार्थोंके भिन्न भिन्नरूप और विकारयुक्त होने पर भी जिसप्रकार भूमि विकारको नहीं प्राप्त होती है तिसीप्रकार जन्म मरणादिसे शरीर के विकारको प्राप्त होने पर भी आत्मामें विकार नहीं होता है किन्तु आत्मा एकरूप ही रहता है, ऐसे विचार करनेपर शोकादिको स्थान नहीं मिलता है॥१९॥ अज्ञान से तो कदापि संसारसे मुक्ति नहीं होती है, ऐसा वर्णन करतेहैं कि-आत्मा विकाररहित है ऐसा यथार्थ रीतिसे न जानने वाले प्राणीको, देहादिके विषैं आत्मबुद्धि होती है और ऐसा होने पर 'मैं अन्य हूँ, वह अन्य है' इत्यादि भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, फिर स्त्री पुत्रादि शरीरोंके विषैं संयोग वियोगका अनुभव होने लगता है इस कारण जन्म मरणादिरूप संसारसे मुक्ति नहीं होती है ॥२०॥ इसप्रकार विचार करनेसे तो यह तेरे पुत्र नहीं थे 'और मैंने मार डाले' ऐसा कहना भी नहीं बनता अब अज्ञानदृष्टिसे, तेरे पुत्रोंको मैंने मार डाला ऐसा यदि तेरे मनमें होय तथापि हे भद्रे देवकि ! सम्पूर्ण ही प्राणी कर्मके अधीन होकर अपने करे हुए कर्मोंके जन्ममरणादिरूप फलको भोगते हैं इस कारण यह सब चरित्र मेरे और उन पुत्रोंके

मियात् ॥२२॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः। इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥२३॥ मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा। देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षांतरोषा च देवकी। विसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥२५॥ एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम्। अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः। मिथो घ्नंतं न पश्यंति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच। कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः। देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद् गृहम्॥२८ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मंत्रिणः। तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥ २९ ॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः। देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया

कर्मके अनुसार हुआ ऐसा मनमें विचार कर, तू शोक मत कर ॥ २१ ॥ तो फिर ब्राह्मणादिकोंके मारनेवालेका और मरने वालेका प्रायश्चित्त कैसे सुननेमें आता है? तहाँ कहते हैं कि-वह अज्ञानमूलक ही है, क्योंकि-जिस समय तक यह देहाभिमानी पुरुष 'मैं मारा गया, अथवा मैं मारने वाला हूँ' ऐसे मानकर देहके विषैं होने वाले कर्तृत्वको आत्माके विषैं मानता है तब तक ही तिस मारने वाले आदिका अभिमान धारण करने वाले वह अज्ञानी पुरुष तिससेहुए पाप और दुःखोंको प्राप्त होता है, और कुछ नहीं है ॥ २२ ॥ तथा देहाभिमानसे 'मैंने पाप कर्म करके तुम्हें दुःख दिया है, ऐसा मानते हो तो-हे दीनवत्सल साधुओं! मेरे दुष्टपनेकी मुझे क्षमा करो, ऐसा कह कर, फिर मुख पर दुःखके आँसू बहा कर तिस कंसने देवकी वसुदेवके चरण पकड़ लिये ॥ २३ ॥ इस प्रकार हाथोंमेंसे छूट कर गई हुई कन्याके कथनसे, वसुदेव देवकी निर्दोष हैं, ऐसा विश्वास जिसको होगया है ऐसे तिस कंसने अपना प्रेम दिखातेहुए तिन देवकी वसुदेवको वेड़ियें दूर करके बन्दीगृहसे छुटा दिया ॥ २४ ॥ देवकीने भी भाईको पश्चात्ताप हुआ है ऐसा जान कर अपने क्रोधको शान्त करा और उसको अपने गृहको जानेको कहा, वसुदेवजीने भी अपना क्रोध शान्त करा और भगवन्मायाकी महिमाका मनमें विचार कर हँसते हुए तिस कंससे कहा कि-॥ २५ ॥ हे महाभाग कंस! तुम जैसा कहते हो ऐसा ही है अर्थात् सब प्राणियोंको आत्माके अज्ञानसे अहंबुद्धि उत्पन्न होती है और तिससे यह मेरा है, यह पराया है ऐसी भेददृष्टि उत्पन्न होती है ॥ २६ ॥ भेददृष्टिको धारण करने वाले वह पुरुष, शोक हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मद इन करके युक्त होते हुए देवदैत्यादि स्वरूपोंसे परस्पर मारने वाले देव दैत्यादिरूपी परमेश्वर को नहीं देखते हैं किन्तु हम ही मारने वाले और मरणको प्राप्त होने वाले मानते हैं२७श्रीशुकदेवजी बोले कि-हे राजन्! इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए देवकी और वसुदेवसे निष्कपटपनेसे भाषण करने वाला और गृहको जानेके लिये आज्ञा दिया हुआ वह कंस अपने घरको चला गया ॥ २८ ॥ तदनन्तर तिस रात्रिके बीत जाने पर दूसरे दिन प्रातःकालके समय कंसने सभामें मन्त्रियोंको बुला कर, योगनिद्राने जो कहा था सो सब उनको सुनाया ॥ २९ ॥ कंसके कथनको सुनकर दूर-

नातिकोविदः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु । अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥ ३१ ॥ किमुद्यमैः करिष्यंति देवा समरभीरवः । नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥ ३२ ॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समंततः । जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥ केचित्प्रांजलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः । मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥३४॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् । हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुद्ध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः । रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ३६ किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता । तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे । ततस्तन्मूलखनने नियुंक्ष्वास्माननुव्रतान् ॥३७॥ यथाऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् । यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्ध-

दृष्टिसे शून्य वह देवताओंके शत्रु दैत्य, देवताओंके विषयमें क्रोधका वेग दिखाते हुए तिस कंससे कहने लगे; कि-॥ ३० ॥ हे भोजेंद्र ! यदि ऐसा है तो आज ही, नगर, ग्राम, और गोकुल आदिके विषें दश दिनके भीतरके और दश दिन जिनको होगए हैं ऐसे सब बालकोंको हम मारे डालते हैं, अब हमें आप आज्ञा दीजिये और मानो कार्य होगया ॥३१॥ हे कंस! तुम्हारे धनुषके रोदेकी टंकारके शब्दसे निरंतर भयभीत होने वाले और युद्धसे घबरानेवाले देवता उद्योग करके क्या करसकते हैं उनसे कुछ भी नहीं होगा ३२ पहिले जो युद्ध हुआ था उसमें जब तुमने बाण छोड़े तब तुम्हारे बाणोंसे चारों ओर ताड़ित होकर 'बचनेकी इच्छा करनेवाले वह देवता' 'भागना ही बचनेका उपाय है' ऐसा विचार कर भाग गए थे ॥ ३३ ॥ कितने ही देवता हाथमेंसे शस्त्र छोड़कर दीनतापूर्वक आपके सामने हाथ जोड़कर खड़े होगए कितनों हीकी भागते २ धोती खुलगई, कोई कहने लगे कि-हम भयभीत हैं ॥ ३४ ॥ तुम्हारी तो ऐसी रीति है कि-शस्त्रास्त्रको भूले हुए, रथहीन हुए, भयभीत हुए, दूसरेके साथ युद्ध करते हुए, भागे हुए, जिनका धनुष टूट गया है और युद्ध न करने वाले शत्रुओंके ऊपर तुम प्रहार नहीं करते हो ॥ ३५ ॥ फिर निर्भय स्थान में शूर बनकर रहनेवाले तथा युद्धके सिवाय अन्यत्र अपनी वीरताको प्रसिद्ध करने वाले देवता इस समय भी उद्योग करके क्या कर सकते हैं ? यदि कहो कि-विष्णु या शिवसे मुझे भय है, सो संपूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें प्रवेश करके कहीं बाहर न रहने वाले ही अथवा जहाँ पुरुष किसी प्रकार नहीं जाते हैं ऐसे इलावृतनामक वनमें रहने वाले शिव क्या कर सकते हैं ? तिसी प्रकार अल्पपराक्रमी इन्द्र और तप करने वाले ब्रह्मा क्या कर सकते हैं ? ॥ ३६ ॥ तथापि देवताओंमें और हममें शत्रुता होनेके कारण हमें उनकी उपेक्षा (उनसे वेपरवाई) करना योग्य नहीं है किन्तु नीतिके अनुसार ही वर्त्ताव करना चाहिये, हमारी तो ऐसी सम्मति है, सो तुम्हारे आज्ञाकारी हमको उनकी जड़ उखाड़कर फैंक देनेकी आज्ञा दीजिये ३७ जिस प्रकार शरीरमें उत्पन्न हुए ज्वरादि रोगकी स्नान पानादि कुपथ्य करने वाले मनुष्योंके उपेक्षा करने पर वह रोग, शरीरमें व्याप्त होकर फिर और औषधिका

बलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः । तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः । तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्चाहन्मो हविर्दुघाः ॥४०॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः । श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विट् गुहाशयः । तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः । अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः । ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥ ४३ ॥ संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् । कामरूपधरान्दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः । सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥ आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च। हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥४६

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सेवन करनेसे भी दूर होने कठिन होजाते हैं तथा जिस प्रकार इंद्रियोंको पहिलेसे वशमें न करके उनको यथेष्ट वर्त्तने देनेसे फिर उनका वशमें करना अति कठिन होजाता है तिसी प्रकार शत्रु भी जब सेनाको इकट्ठी करके अधिक प्रबल होजाता है तो फिर उसको जीतना अति कठिन होजाता है ॥ ३८ ॥ सब देवताओंके मूल आधार विष्णु हैं वह तो जहाँ अनादिधर्मका वर्त्ताव होता है तहाँ रहते हैं और तिस धर्म के मूल, वेद, गौ, ब्राह्मण, तप और दक्षिणायुक्त यज्ञ यह हैं ॥ ३९ ॥ इस कारण हे राजन् ! हम सब प्रकारसे यत्न करके वेदके जानने वाले तपस्वी, यज्ञ करने वाले ब्राह्मण और दूध दही तथा घृत आदिको उत्पन्न करने वाली गौएँ इनको मारे डालते हैं ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, इन्द्रिय निग्रह, शांति, श्रद्धा, दया, सहनशीलता और यज्ञ यह विष्णुकी मूर्त्ति हैं ॥४१॥ और वह ही सब देवताओंका स्वामी सबका अन्तर्यामी और असुरोंका घात करने वाला है, शिव और ब्रह्मदेव सहित सब देवताओंको तिसका ही आधार है, सो उसके वध करनेका उपाय यही है कि—ऋषियोंको मार डालना चाहियें ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन् ! इस प्रकार, मृत्युके पाशोंसे बँधे हुए दुष्टबुद्धि तिस असुर कंसने दुष्ट मन्त्रियोंके साथ विचार करके 'ब्राह्मणोंकी हिंसा करना ही उत्तम हितकारक है' ऐसा निश्चय कर लिया ॥ ४३ ॥ तदनन्तर दूसरोंको दुःख देना ही जिनको प्रिय हैं ऐसे यथेष्टरूप धारण करने वाले तिन राक्षसोंको साधुजनोंको दुःख देनेके निमित्त दशों दिशाओंको जानेकी आज्ञा देकर कंस अपने गृहमें चला गया ॥ ४४ ॥ प्रथम तो जिनका स्वभाव ही रजोगुणी है, तिस पर भी तमोगुण अर्थात् क्रोधके आवेशसे जिनकी बुद्धि नष्ट होगई है और जिनका मरणकाल समीप आगया है ऐसे वह दैत्य कंसकी आज्ञासे साधु पुरुषोंके साथ द्वेष करने लगे ॥४५॥ हे राजन् ! साधुओंसे छल करनेसे केवल मरण ही नहीं होता है किन्तु ऐसा करनेसे पुरुषकी आयु, संपत्ति, यश धर्म, उत्तम लोककी प्राप्ति, महात्माओंके दिये हुए 'आयुष्मान् हो, पुत्रवान् हो' इत्यादि आशीर्वाद और सब प्रकारके कल्याणोंका नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ४

श्रीशुक उवाच । नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः । आहूय विप्रान् दैवज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ १ ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै । कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते । तिलाद्रीन्सप्तरत्नौघशातकौंभांबरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया । शुध्यंति दानैः संतुष्टया द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया । ४॥ सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधवंदिनः । गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥ ५ ॥ व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहांतरः । चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ॥६॥ गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः । विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकांचनमालिनः ७ महार्हवस्त्राभरणकंचुकोष्णीषभूषिताः । गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ।८। गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् । आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पांजना-

अब इस पाँचवें अध्यायमें बड़े उत्साहके साथ अपने पुत्रोंका जातकर्म संस्कार करके नन्दजी, 'कर' देनेके निमित्त मथुराको गए तहाँ वसुदेवजीसे भेंट होने पर उनको परम आनन्द हुआ, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि हे राजन् ! इधर गोकुलमें उदारचित्त नन्दजीने पुत्रके उत्पन्न होने पर आनन्दयुक्त हो ज्योतिषी ब्राह्मणोंको बुला कर अपने आप स्नानादिसे पवित्र होकर आभूषण धारण करे और तिन ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करा कर अपने पुत्रका जातकर्म नामक संस्कार शास्त्रोक्त विधिसे करवाया और पितरोंका तथा देवताओंका नान्दीमुख श्राद्ध आदि करके पूजन कराया ॥ १ ॥ २ ॥ तदनन्तर तिन नन्दजीने अलंकार आदिसे भूषित करी हुई दो लाख गौ ब्राह्मणोंको दीं, तथा रत्नसमूह और सुवर्णके तारसे शोभित वस्त्रोंसे ढके हुए तिलोंके सात पर्वत (ढेर) दिए ३ कालसे, अपवित्र हुए भूमि आदि पदार्थोंकी शुद्धि होती है, स्नानसे देहकी, धोनेसे अपवित्र पदार्थ लगे हुए वस्त्र पात्रादिकी, संस्कारोंसे गर्भादिकी, तपसे इन्द्रियादिकोंकी, यज्ञोंसे ब्राह्मणादिकोंकी, दानसे धान्यादि द्रव्योंकी, संतोषसे मनकी और ब्रह्मविद्यासे जीवात्माकी शुद्धि होती है ॥ ४ ॥ उस समय ब्राह्मण कल्याणकारक आशीर्वाद देने लगे, सूत मागध और वन्दीगण स्तुति पाठादि करने लगे, गवैये गान करने लगे, नफीरी और नगाड़े आदि बाजे बजने लगे ॥ ५ ॥ उस समय धूलि आदि दूर करके स्वच्छ करी हुई हैं गोशाला जिसमें तथा चन्दनादिसे छिड़काव करे हुए हैं द्वार आँगन और गृहके मध्यभाग जिसमें ऐसा व्रज, टाँगा हुई चित्रविचित्र प्रकारकी ध्वजा, जय पताका, माला, वस्त्रोंकी झालर और कोमल पत्तोंकी वन्दनवारों करके शोभायमान हुआ ॥ ६ ॥ हरिद्रा और तैल लगा कर शोभायमान करी हुई गौएँ बैल और छोटे २ बछड़े, गेरू आदि चित्रविचित्र धातु, मोरके पंख, पुष्पोंके हार वस्त्रोंकी झूलें और सुवर्णके पुष्पोंकी मालाओंसे शोभायमान हुए ॥ ७ ॥ उस समय गोप, बहुमूल्य वस्त्र, भूषण अंगरखे और पगड़ी धारण करके हाथोंमें नाना प्रकारके वस्त्र भूषणादिकी भेंटें लेकर नन्दजीके घर आने लगे ॥ ८ ॥ गोपियें भी 'यशोदाके पुत्र हुआ है' यह समाचार सुन कर

द्भिः । नवकुंकुमकिंजल्कमुखपंकजभूतयः । बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥ १० ॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्रांबराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः । नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥ ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके । हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥ १२ ॥ अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे । कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः । आसिंचन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥ १४ ॥ नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकारगोधनम् । सूतमागधवन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् । विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥ १६ ॥ रोहिणी च च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता । व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥

आनन्दित होती हुई अपने शरीरोंको वस्त्रभूषण और काजल आदिसे भूषित करने लगीं ॥ ९ ॥ नवीन केसर पीस कर तिसके लगानेके कारण जिनके मुख कमलपर शोभा आरही है और जिनके कटिपश्चाद्भाग भारी हैं ऐसी वह गोपियें गोद भरनेकी वस्तुएँ हाथोंमें लेकर शीघ्रतासे नन्दजीके घर गईं उस समय चलतेमें उनके स्तन हलते जाते थे ॥ १० ॥ नन्दजीके घर जाने वाला वह गोपियें अत्यन्त ही शोभाको प्राप्त हुई उनके कानोंमें उज्ज्वल करे हुए मणिजटित कुण्डल थे, उनके कण्ठोंमें सुवर्णकी माला पचलड़े आदि आभूषण थे, चित्र विचित्र वर्ण के वस्त्र पहिने हुए थीं, हाथोंमें जड़ाऊ कंकण धारण करे हुए थीं, उनकी वेणीमेंसे मार्गमें पुष्पोंकी वर्षा होती चली जाती थी, और हलते हुए कुण्डल, स्तन तथा हारोंसे उनकी परमशोभा होरही थी ॥ ११ ॥ वह गोपियें नन्दजीके घर जाकर बालकको तू गोकुलका राजा होकर चिरकाल पर्यन्त प्रजाकी रक्षा कर, इस प्रकार आशीर्वाद देकर हरिद्राका चूर्ण तेल और पानी आपसमें शरीरों पै डाल कर ऊँचे स्वरसे गीत गाने लगीं ॥ १२ ॥ जगत्के स्वामी अनन्त श्रीकृष्णजीके नन्दजीकी गोकुलमें जन्म धारण करके आने पर बड़ा भारी उत्साह हुआ और उस समय नानाप्रकारके बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥ परम हर्ष को प्राप्त हुए गोप भी परस्पर एकके ऊपर एक, दधि, दूध, घृत और पानी छिड़कते हुए एक एकके मुख पर दधि आदि मलतेहुए और नृत्य करतेमें दधि, दूध, घृत और पानीकी कींचमें एक एकको ढकेल कर गिराने लगे ॥ १४ ॥ उस समय उदारचित्त नन्दजीने, गोप गोपियोंको सूत मागध वन्दियोंको तथा जो गीतनृत्य आदि विद्याओंसे आजीविका करने वाले और अनाथ थे उनको वस्त्र, भूषण, गौ, धन और जो पदार्थ जिसको इच्छित था वह उनको विष्णुभगवान्के प्रसन्न होनेके अर्थ तथा अपने पुत्रका कल्याण होनेके अर्थ, उदारचित्तसे देकर योग्यताके अनुसार सबका सत्कार करा ॥ १५॥१६ ॥ उससमय महाभाग्यवती रोहिणीको भी नन्दजीने, 'तू यहाँ आई इस कारण तेरे चरणोंके प्रतापसे ही मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ, तू बड़ी भाग्यवती है इत्यादि वचनोंसे' अपना आनन्द दिखाकर प्रसन्न करा तब रोहिणीने उत्तमवस्त्र माला और कण्ठमें अनेकों

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्। हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः। नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥ वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्। ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम्। प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः। प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते। प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥ दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः। उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् २४ नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम्। ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥ २५ ॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम्। बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से

आभूषण धारण करके घरकी मालकनीकी समान, तिन श्रीकृष्णके जन्मोत्सवमें आईहुई सब स्त्रियोंका सत्कार करा॥१७॥हे राजन्! श्रीकृष्णके जन्मदिनसे वह नंदजीका गोकुल सब प्रकारकी समृद्धियोंसे युक्त और श्रीहरिके निवास करनेसे सब को प्रिय लगना आदि अपने गुणोंसे युक्त होकर लक्ष्मीके भी क्रीडा करनेका स्थान हुआ ॥ १८ ॥ हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णका जन्मोत्सव करके एक समय नन्दराजा गोकुलकी रक्षा करनेको गोपोंसे कहकर, कंसका वार्षिक कर देनेके निमित्त मथुरापुरीको गए ॥ १९ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने अपने भ्राताकी समान परममित्र नंदजीको आया हुआ सुनकर और उन्होंने राजा कंसको कर देदिया ऐसा जानकर उनके गाड़ोंको छोड़नेकी जगह (पड़ावमें) मिलनेके निमित्त गए ॥ २० ॥ आते हुए तिन अति प्रिय वसुदेवजीको देखकर, देहमें प्राण आने पर जिस प्रकार वह देह उठ बैठता है तिसी प्रकार नंदजी एकाएकी उठकर चित्तमें प्रसन्न और प्रेमसे विह्वल होगए और वसुदेवजीको दोनों भुजाओंसे हृदयसे लगालिया ॥२१॥ हे राजन्! तदनन्तर नन्दजीने पाद्य आसन आदिसे पूजा करी और कुशल प्रश्न करके आदर करा, तब आसन पे सुखसे बैठे हुए वसुदेवजी अपने रामकृष्ण दोनों पुत्रोंमें आसक्त चित्त होकर नंदजीसे इस प्रकार कहने लगे, कि-॥ २२ ॥ हे भैय्या नंद! वृद्धावस्थाको प्राप्त हुए, पुत्ररहित और पुत्र होनेकी आशा न रहने पर, हालमें ही मैंने सुना है कि-तुम्हारे पुत्र हुआ है यह बड़े आनंदकी वार्त्ता है ॥ २३ ॥ हे भैय्या नंद! जिस प्रकार भँवरमें पडे हुए पुरुषोंका बचना ही दुर्लभ होता है फिर उनमें एकको एकका दर्शन होना तो अत्यंत ही कठिन है यदि ऐसा होय तो दूसरे जन्मकी समान होता है, तिस प्रकार इस संसारचक्रमें पड़े हुए तुम, फिर जन्मको प्राप्त हुएसे आज मुझे मिले हो यह बड़े आनंदकी वार्त्ता है क्योंकि-प्रिय मित्रोंका दर्शन होना परमदुर्लभ है ॥ २४ ॥ जिस प्रकार जलके प्रवाहके वेगसे वह कर जानेवाले तृण काष्ठादिकी स्थिति एक स्थान पर नहीं रहसकती तिसी प्रकार चित्रविचित्र कर्म करने वाले प्रियमित्रोंका प्रियकारक समागम एक स्थान पर नहीं होता है२५जहाँ इष्टमित्रोंके साथ तुम हालमें रहते थे वह बड़ा वन इससमय

एवं सुहृद्वृतः ॥ २६ ॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे । तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः । न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥ २८ ॥ नन्द उवाच । अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः । एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ॥ २९ ॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः । अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥३०॥ वसुदेव उवाच । करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः । नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच । इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः । अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच । नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिंतयन् । हरिं जगाम

गौ आदि पशुओंको हितकारक है ना ? तथा दोषरहित और बहुतसा जल, गौत तथा बैलों आदिसे युक्त है ना ? २६ ॥ हे भैया ! मेरा पुत्र (बलराम) अपनी मैया सहित तुम्हारी गोकुलमें बसै है, वह तुम्हें पिताकी समान माने है और तुम दोनों उसका लालन पालन करो हो,वह प्रसन्न है ना ? ॥ २७ ॥ अब पुत्रके दर्शन न होने का क्लेश कहते हैं-जिस पुरुषका शास्त्रमें कहा हुआ धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग अपने इष्टमित्रोंको सुख मिलनेके निमित्त है, वह त्रिवर्ग, इष्टमित्रोंके क्लेशको प्राप्त होने पर सुखदायक नहीं होता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार वसुदेवजीके भाषणको सुन कर समझाते हुए कहने लगे कि—हे भैया वसुदेव ! तेरे देवकीके विषैं उत्पन्न हुए बहुतसे पुत्र कंसने मार डाले; यह बड़ी अनर्थकी वार्त्ता हुई,एक पिछली कन्या शेष रही थी वह भी स्वर्गको चली गई ॥ २९ ॥ वास्तवमें इस प्राणीकी सब स्थिति दैव के ऊपर निर्भर है; इस कारण जब इसका पुत्रादि सुख देनेवाला दैव क्षीण होजाता है तबही वह पुत्रादि नष्ट होजाते हैं और वह दैव ही जिसको सुख देनेवाला होता है यदि उसको पुत्रादिका वियोग हुआ होय तो भी वह दैव ही फिर उनका संयोग करा देता है इस प्रकार अपनेको सुखदुःखोंके प्राप्त होनेका कारण दैव ही है;ऐसा जो जानता है वह कदापि मोहको प्राप्त नहीं होता है, अर्थात् दैवयोगसे मरणको प्राप्त हुओंका भी कालान्तरमें दर्शन और वियोगको प्राप्त हुओंका भी कालान्तरमें संयोग होनेका सम्भव होनेसे तुम मनमें किसी प्रकारका दुःख न मानो ॥ ३० ॥ इस प्रकार नन्दजीके कथनको सुन कर दुःखको बिसारके नन्दजीसे वसुदेवजी कहने लगे कि-हे भैय्या नन्द ! तुमने, कंसको जो वार्षिक कर देना था सो दे दिया और हमारी तुम्हारी भेट भी होगई,अब आगेको यहाँ अधिक दिन न ठहरो,क्योंकि गोकुलमें उत्पात होते हैं इस कारण तुम शीघ्र ही लौट कर चले जाओ ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं; कि-इसप्रकार वसुदेवजीके कहनेपर वह नन्दादि गोप,उनकी आज्ञा लेकर गाड़ियोंमें बैल जोतकर गोकुलको चलदिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀

अब इस षष्ठ अध्यायमें, वसुदेवजीके कहनेसे नन्दजी, गोकुलको जातेमें मार्ग

शरणमुत्पातागमशंकितः ॥ १ ॥ कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी । शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥ न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु । कुर्वंति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ॥ ३ ॥ सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् । योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥ ४ ॥ तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् । सुवाससं कंपितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुंतलमंडिताननाम् ॥५॥ वल्गुस्मितापांगविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् । अमंसतांभोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेसदंतकम् । बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥ विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चरा-

के विषैं मरणको प्राप्त हुई राक्षसीको देखकर और उसकी मृत्युको सुनकर आश्चर्य में होगए यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन्! वसुदेवजीका कथन मिथ्या नहीं होसकता ऐसा विचार करते हुए नन्दजी, मेरे पुत्रको कोई न कोई भयंकर संकट प्राप्त हुआ होगा इस प्रकार मनमें शंकित होकर मार्गमें ही सबदु खोंको दूर करनेवाले श्रीहरिकी शरण गए॥१॥ इधर कंसने छोटे २ बालकों को मारनेके निमित्त भेजी हुई बालकोंका घात करने वाली पूतना नामक भयंकर राक्षसी, नगर, ग्राम और गोकुल आदिके विषैं बालकोंका वध करती हुई विचरने लगी॥२॥ हे राजन्! जिन नगर आदिकोंमें अपने २ कार्योंके करनेमें लगे हुए पुरुष, भक्तपालक श्रीकृष्णका; राक्षसोंका नाश करने वाला श्रवण कीर्त्तनादि नहीं करते हैं तहाँ ही वह राक्षसादि विघ्न करते हैं अर्थात् स्वधर्माचरणमें भगवान्का श्रवण कीर्त्तनादि करने वाले पुरुष जहाँ रहते हैं तहाँ भी राक्षसोंकी शक्ति नहीं चलती है फिर साक्षात् भगवान्से विषैं किस प्रकार चल सकती है ? ॥ ३ ॥ आकाशमें विचरने वाली यथेष्ट रूप धारण करने वाली वह राक्षसी पूतना, एकसमय अपनी मायासे, श्रेष्ठ स्त्रीका वेष धारण करके नन्दजीकी गोकुलमें जाय उनके घरमें घुस गई ॥ ४ ॥ तिस स्त्रीको, अपने पतिको देखनेके निमित्त हाथमें कमल लेकर आई हुई यह अतिरूपवती लक्ष्मी ही है ऐसा सब गोपियोंने जाना, उसकी वेणीमें मल्लिका के पुष्प गुँथे हुए थे, उसके स्थूल कटिपश्चाद्भाग करके और बड़े २ स्तनों करके दोनों ओरको खिचनेके कारण मानो उसका मध्य भाग (पेट) दुर्बल होरहा था, वह उत्तम वस्त्र पहिरे हुए थी, उसके हलतेहुए कर्णभूषणों (कर्णफूलों) की कांति से अधिक चमकनेवाले केशों करके उसका मुख शोभित होरहा था और वह सुंदर हास्ययुक्त कटाक्षोंको फेंक कर गोकुलवासी पुरुषोंके चित्तोंको खैंचे लेती थी इस कारण उन्होंने उसे रोका नहीं, गोपियोंको तो,लक्ष्मी ही आई है ऐसा विदित हुआ इसकारण अलग ही रहीं अर्थात् किसीकी भी न रोकीहुई वह पूतना नन्दजीके घर में चली गई ॥ ५ ॥ ६ ॥ और तहाँ छोटे २ बालकोंको ढूँढने वाली तिस पूतनाने, प्रारब्धयोगसे, शय्या पर सोए हुए, दुष्टोंका संहार करने वाले परन्तु राखसे ढके हुए अग्निकी समान जिन्होंने अपना प्रचण्ड तेज गुप्त कर रक्खा है ऐसे तिस श्री-

चरात्मा स निमीलितेक्षणः। अनंतमारोपयदंकमंतकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ८ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यांतरा कोशपरिच्छदासिवत्। वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥ तस्मिंस्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ। गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाऽखिलजीवमर्मणि। विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥११॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा। रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशंकया ॥ १२ ॥ निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि। प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र

कृष्णरूप बालकको देखा ॥ ७ ॥ तब चराचर जगत्के अंतरात्मा वह श्रीकृष्ण, तिस पूतनाको, यह छोटे २ बालकोंको मारने वाली पिशाची है, ऐसा जान अपने नेत्रों को मूँद कर सोते रहे; उस समय जैसे कोई अज्ञानी पुरुष, रज्जु समझ कर सोते हुए सर्पको उठा लेता है तिसी प्रकार श्रीकृष्णके स्वरूपको न जानने वाली तिस पूतना राक्षसीने दुष्टोंका नाश करने वाले तिन अनन्त भगवान्को, 'यह बालक है ऐसा समझ कर' उठा कर अपनी गोदीमें लेलिया॥८॥यदि कहो कि-यशोदा और रोहिणी दोनोंने उसे निषेध क्यों नहीं करा ? तहाँ कहते हैं कि-वह यशोदा रोहि० दोनों माता, बाहरसे कोमल सुन्दर और चित्र विचित्र दीखने वाले, म्यानके भीतर विराजमान तीक्ष्ण तलवारकी समान बाहरसे माताकी समान प्रेम करने वाली और मनोहर आचरण दिखाती हुई परन्तु भीतर क्रूर स्वभाव वाली तिस सुन्दर स्त्रीको एकाएकी घरमें देखकर उसके तेजसे चकाचौंधमें पड़ीहुई और 'इस बालककी माता यह है अथवा मैं हूँ' इस विषयमें मोहित होकर केवल उसकी ओरको देखती हुई खड़ीरहीं अर्थात् तैने बालकको क्यों उठा लिया है इतना भी उन दोनोंने उससे नहीं कहा॥९॥ तिस भयंकर पूतनाने तहाँ श्रीकृष्णको गोदीमें लेकर अति कठिनसे पचने योग्य विष जिसमें भरा हुआ है ऐसा अपना भयंकर स्तन दिया, तब तो क्रोधयुक्त हुए भगवान्ने दोनों हाथोंसे वह उसका स्तन जोरसे पकड़कर, वह प्रसूत नहीं हुई थी इस कारण उसके स्तनोंमें दूध कुछ भी नहीं था, केवल विष ही था सो भगवान्ने उसके प्राणों सहित विषको पीना प्रारंभ किया १० तब तो उसके जीवके सब मर्मस्थानोंमें पीड़ा होने लगी, सो छोड,छोड, बस ! इस प्रकार कहने वाली वह पूतना राक्षसी नेत्रोंको फाड़कर हाथ पैरोंको वारंवार पीटने लगी और उसके सब शरीरसे पसीना टपकने लगा तब तो वह बड़े शब्दसे रोने लगी ॥ ११ ॥ बड़े गंभीर वेगयुक्त उसके तिस शब्दसे पर्वतों सहित पृथिवी काँपने लगी,ग्रहों सहित अन्तरिक्ष लोक डगमगाने लगा, सात पाताल और आठों दिशाओं में वह शब्द गुञ्जारने लगा, क्या वज्रपात हुआ ? ऐसे भयसे प्राणी पृथ्वीपर गिरने लगे १२ इसप्रकार प्राणोंको खेंचकर भगवान् स्तनपान करनेलगे तब स्तनोंमें प्राणनाशक पीड़ा उत्पन्न होनेपर मरणकालमें मृत्युपीडासे व्याकुल हुई वह राक्षसी पूतना

इवारतन्नृप॥१३॥पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यंतरद्रुमान्। चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम्॥ १४ ॥ ईषमात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकंदरनासिकम्। गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्द्धजम्॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम्। बद्धसेतुभुजोर्वंघ्रिशून्यतोयह्रदोदरम्॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम्। पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडंतमकुतोभयम्। गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः। रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम्। रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक्। न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासम-

मायिक स्वरूप धारण करनेमें असमर्थ होगई तबतो उसने अपना वास्तविक (असली) स्वरूप धारण कर लिया और वह अपने मुखको फैला कर और केश तथा हाथ पैरोंको फैलाकर प्राणोंको त्यागती हुई वज्रसे ताडना करे हुए वृत्रासुरकी समान गोकुलमें गिरपडी १३ हे राजश्रेष्ठ! उसके देहने गिरते २ भी छः कोस पर्य्यंतकी भूमिपरके वृक्षोंका चूर्ण कर डाला, उस समय भी मनुष्यादिकोंको छोड कर केवल वृक्षों ही का चूर्ण हुआ यह एक बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ॥ १४ ॥ हे राजन्! जिस के मुखमें हलके अग्रभागकी समान भयंकर दाढें हैं, जिसकी नासिकाके छिद्र पवनकी गुहाकी समान हैं, जिसके ऊपर पर्वतसे गिरी हुई शिलाओंकी समान स्तन हैं और जो भयंकर तथा फैलेहुए लालवर्ण के केशों करके युक्त है१५ अंधेरिये कूपकी समान जिसके नेत्र हैं, जो नदीके कड़ारोंकी समान जङ्घाओंसे भयंकर है, जिसके फैले हुए हाथ घुटुए और पैर नदीके ऊपर बाँधे हुए पुलकी समान लम्बे हैं और जिसका पेट सूखे हुए तालावकी समान है॥ १६ ॥ ऐसे तिस भयंकर शरीर को देख कर पहिले तिसके बड़े भारी शब्दके साथ रुदन करने पर जिनके हृदय विदीर्ण होगए थे, कान शुम्भ होगए थे और शिरोंमें पीड़ा होने लगी थी वह सब गोप और गोपी, अत्यन्त भयभीत होगए॥ १७ ॥ और तिस पूतनाके वक्षःस्थलपर निर्भयपनेसे क्रीड़ा करने वाले (हाथ पैर आदि चलाने वाले) बालक कृष्णको देख कर जिनको परमस्नेहके कारण व्याकुलता होगई है ऐसी तिन गोपियोंने तत्काल उसके पास जाकर कृष्णको उठा कर गोदीमें लेलिया॥ १८ ॥ तदनन्तर तिन गोपियोंने यशोदा और रोहिणीके साथमें तिस बालकके सब अङ्गोंके विषैं गौकी पूँछ फिराना, उठावने उठाना इत्यादि करके तिसकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करी १९ प्रथम तिस बालकको गोमूत्रसे स्नान कराया फिर गौके चरणोंकी धूलि और गौके गोबरसे तिसके ललाट आदि बारह स्थानोंमें केशवादि बारह नामोंसे तिलक लगा कर रक्षा करी॥ २० ॥ इस प्रकार राक्षसीके वक्षःस्थल पर पड़े हुए तिस बालकको भूतबाधा होगई होयगी इस कारण प्रथम तो घबराहटमें अपने आप आचमन आदि विनाकरेही उसकी रक्षा करी और जब उनकी घबराहट दूर होकर कुछ एक धैर्य हुआ तब उन गोपियोंने अपने हाथ पैरोंको धोकर और आचमन करके प्रथम अपने

कुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः । हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् २२ चक्रयग्रतः सहगदो हरिस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च । कोणेषु शंख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥ इंद्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु । श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भश्च ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः । क्रीडंतं पातु गोविंदः शयानं पातु माधवः २५ व्रजंतमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः । भुंजानं यज्ञभुक् पातु सर्वग्रहभयंकरः । डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्मांडा येऽर्भकग्रहाः । भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः । उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेंद्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये । सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् । पाय-

हस्त आदिके विषैं भिन्न२ अजादि ग्यारह बीजोंका न्यास करके अर्थात् हस्तशुद्धि के विषैं तीन बीज और दोनों हाथोंकी सन्धियोंके विषैं चार चार बीज तथा फिर चरण आदि एक एक अवयवके विषैं अजादि एकएक बीज इसप्रकार अपने न्यास करके तिन गोपियोंने बालक श्रीकृष्णके अंगोंमें भी तिसी प्रकार बीजोंका न्यास करा ॥ २१ ॥ हे हमारी रक्षा करने वाले बालक ! तेरे चरणोंकी अज (जन्म रहित ईश्वर) रक्षा करें, तथा घुटनोंकी मणिमान् जानुओंकी यज्ञ, कमरकी अच्युत, उदर की हयग्रीव, हृदयकी केशव, तेरे वृक्षःस्थलकी ईश, कंठकी सूर्य, भुजाओंकी विष्णु और तेरे मस्तककी ईश्वर रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी हरि तेरे अग्रभागमें रहैं, गदाधारी हरि तेरे पृष्ठभागमें रहैं, धनुर्धारी मधुसूदन और खड्गधारी अजन (अजन्मा भगवान) यह दोनों तेरे दोनों पार्श्वमें रहैं, शंखधारी उरुगाय (अनेकों पुरुषों करके गान करे हुए भगवान्) तेरे चारों ओर रहैं, उपेन्द्र (वामनरूप भगवान) तेरे ऊर्ध्व भागमें रहैं, गरुड तेरे अधोभागमें रहैं, और हलधर बलरामजी तेरे सब ओर रहैं२३ इस प्रकार बाहरकी रक्षा करके अन्तरंग रक्षा करती हैं, कि-हृषीकेश तेरी इन्द्रियों की रक्षा करें, नारायण तेरे प्राणोंकी रक्षा करें, श्वेत द्वीतके स्वामी भगवान् तेरे चित्तकी और योगेश्वर तेरे मनकी रक्षा करें, ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी रक्षा करें, षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्न ईश्वर तेरे अहंकारकी रक्षा करें; क्रीडा करतेमें तेरी गोविंद रक्षा करें, शयन करतेमें तेरी माधव रक्षा करें ॥ २५ ॥ वैकुण्ठपति तेरी चलतेमें रक्षा करें, बैठे हुए तेरी लक्ष्मीपति रक्षा करें, सब पिशाचोंको भय देनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनकालमें तेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी (दुष्ट स्त्रियें), राक्षसी, कूष्मांड नामक रुद्र तथा जो बालग्रह हैं वह, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और जो विनायक (विघ्नकर्त्ता) हैं ॥ २७ ॥ कोटरा, रेवती ज्येष्ठा, पूतना, मातृका, आदि जो उन्माद हैं तथा जो देह, प्राण और इन्द्रियोंको दुःख देने वाले अपस्मार ग्रह हैं ॥ २८ ॥ तथा जो स्वप्नमें दीखने वाले बड़े २ उत्पात हैं और जो आगेको दुःखकी सूचना देने वाले ग्रह हैं तथा जो वृद्ध और

पिवा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥ ३० ॥ तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः । विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥ नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वासमास सः । स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुंदुभिः ॥ ३२ ॥ कलेवरं परशुभिश्छित्वा तत्ते व्रजौकसः । दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः । उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ३४ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना । जिघांसयाऽपि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ ३५॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने । यच्छन्प्रियतमं किंनु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥ ३६ ॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वंद्याभ्यां लोकवंदितैः । अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥३७॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननी-

---

बालकोंके ऊपर झपटा करने वाले ग्रह हैं वह सब ही विष्णुभगवान्‌के नामोंका उच्चारण करनेसे भयभीत होजाते हैं इस कारण वह सब पहिले कहे हुए नामोंके उच्चारण करनेसे नष्ट होजायँ ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले, कि–हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णके विषें परम प्रेम करने वालीं तिन गोपियोंने, जिसकी रक्षा विधि करी है ऐसे तिस बालकको यशोदा माताने दूध पिला कर शयन करा दिया ३० इतने ही में मथुरासे गोकुलमें आकर पहुँचे हुए नन्दादि गोप, तिस मरे पड़े हुए पूतनाके शरीरको देख कर बड़े आश्चर्यमें होगए ॥ ३१ ॥ और कहने लगे, कि–अहो! वसुदेवजी पूर्वजन्ममें बड़े तपस्वी ऋषि होंगे, वही यहाँ आकर जन्मे हैं, अथवा यह पूर्वजन्ममें बड़े ज्ञानी होंगे क्योंकि—तिन वसुदेवजीने जो 'गोकुलमें उत्पात होते हैं' ऐसा कहा था, वही देखो उत्पात हमारे दृष्टिगोचर होरहे हैं ॥ ३२ ॥ तदनन्तर गोकुलके रहने वाले तिन गोपोंने उस पूतनाके शरीरका कुल्हाड़ोंसे काट कर अलग २ टुकड़े कर दिये ॥ ३३ ॥ दूसरा एक आश्चर्य यह हुआ कि–श्रीकृष्णके स्तनपान करनेसे तत्काल पापरहित हुआ वह उस राक्षसीका शरीर, जब जलने लगा तब उसमेंसे अगरकी सुगंधिकी समान सुगन्धियुक्त धुआँ निकला ॥ ३४ ॥ पुरुषोंके बालकोंको मारने वाली और रक्त भक्षण करने वाली पूतनासी राक्षसी जब मारनेकी इच्छासे भी श्रीकृष्णको स्तनपान करा कर सद्गतिको प्राप्त होगई तो फिर माताओं × की समान गौ तथा गोपियोंकी समान तिन श्रीकृष्णजीके विषें परमप्रीतियुक्त होकर तिनको परमप्रिय करने वाला आस्तिक्य बुद्धि और प्रेमलक्षण भक्तिसे परमात्मा कृष्णको तुलसी आदि प्रिय वस्तुओंका समर्पण करने वाला भक्त, उत्तम गतिको क्यों न प्राप्त होगा ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ भगवान्‌ने, त्रिलोकीके वन्दनीय तथा ब्रह्मादि देवताओंके भी प्रणाम करने योग्य और भक्तोंके हृदयोंमें रहने वाले अपने चरणसे जिसके

× ब्रह्माजीने, गोपोंके बालक और बछड़ोंको चुरा लिया तब श्रीकृष्णने गोपोंके बालक और बछड़ोंका रूप धारण करा था इस कारण उस समय बछडे और गोप बालकरूप भगवान्‌की माता गौ और गोपी हुईं उसी अभिप्रायसे यहाँ 'माताओं' ऐसा बहुवचन दिया है ॥

गतिम् । कृष्णभुक्तस्तनक्षीरा किमु गावो नु मातरः ॥३८॥ पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् । भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९ ॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् । न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥४०॥ कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः । किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥४१॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् । श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रत्यागतमुदारधीः । मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥ ४३ ॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् । शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

राजोवाच । येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः । करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ।

शरीरको खूँदकर स्तनपान करा वह पूतना राक्षसी भी यदि देवकी और यशोदाको प्राप्त होने योग्य गतिको प्राप्त होगई तो जिनके स्तनोंका दूध श्रीकृष्णने पान करा वह गौ और यशोदादि गोपी उस गतिको प्राप्त होंगी इसमें कहना ही क्या है ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सो हे राजन् ! कैवल्य (मोक्ष) आदि सब पुरुषार्थोंको देने वाले देवकी पुत्र भगवान् श्रीकृष्णने, जिनके पुत्र स्नेहसे टपके हुए दूधोंको संतोषपूर्वक पिया, तिन श्रीकृष्णके विषैं निरन्तर पुत्रदृष्टिसे स्नेह करने वाली गौ और गोपियोंको, अज्ञानसे प्राप्त होने वाला संसार ही, फिर प्राप्त नहीं होसकता ॥ ३९ ॥ ४० ॥ पूतनाके मृतक शरीरको भस्म करा तब चितामेंसे निकले हुए धूमकी अगरकी समान सुगन्धिको, पूतना राक्षसीके आनेसे पहिलेसे ही गौ चरानेको दूर गए हुए गोकुलवासी पुरुष सूँघ कर, 'यह क्या आश्चर्य है ! कहाँसे यह सुगन्धि आती है !' ऐसे आपसमें कहते कहते गोकुलमें आकर पहुँचे ॥ ४१ ॥ और तहाँ गोपोंके कहे हुए पूतनाके आगमन, उसकी सुन्दरता, उसका कार्य तथा मरण और बालककी कुशल सुनकर वह गोप बड़े आश्चर्यमें हुए॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उदारबुद्धि नन्दजीने तो, मृत्युके मुखसे बचे हुए पुत्र श्रीकृष्णको गोदीमें लेकर मस्तकके विषैं चुम्बन करा और परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य, इस श्रीकृष्णके अद्भुत बालचरित्रको भक्तिपूर्वक श्रवण करता है उसको गोविन्द भगवान्के विषैं परम प्रीति प्राप्त होती है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ * छ

अब इस सातवें अध्यायमें श्रीकृष्णने शकटासुरको ऊपरको उड़ाकर तृणावर्त दैत्यको नीचे लुटाकर और माताके मुखमें जगत् दिखाकर क्रीड़ा करी यह कथा वर्णन करी है॥ * ॥श्रीकृष्णकी बाल लीलाको श्रवण करकै आनन्दको प्राप्त हुआ राजा फिर बही प्रश्न करनेके निमित्त बोला कि-हे समर्थ शुकदेवजी ! भगवान् श्रीहरि ईश्वर जिस २ मत्स्यादि अवतारको धारण करके जो २ वेदका उद्धार आदि कर्म करते हैं-वह वह संपूर्ण कर्म मेरे कानोंको मधुर लगनेवाले और मनको आनन्द देनेवाले

भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् । मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥३॥ श्रीशुक उवाच। कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् । वादित्रगीतद्विजमंत्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥४॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः । अन्नाद्यवासःस्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः । नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वंघ्रिहतं व्यवर्त्तत । विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ७ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि

हैं ॥ १ ॥ तथापि जिस चरित्रको श्रवण करनेवाले मनुष्यमात्रकी मनकी ग्लानि और तिस ग्लानिसे उत्पन्न होनेवाली नानाप्रकारकी तृष्णा तत्काल नष्ट होजाती है अन्तःकरण शुद्ध होजाता है श्रीहरिके विषैं भक्ति उत्पन्न होती है और भगवद्भक्तों की मित्रता होती है, वह ही श्रीहरिका चरित्र यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह करते हैं तो मेरे अर्थ वर्णन करिये ॥ २ ॥ तथा इस समय मनुष्य लोकमें प्राप्त होकर मनुष्य जातिका अनुकरण करनेवाले श्रीकृष्णके और बालचरित्र भी मेरे अर्थ वर्णन करिये ३ यह सुनकर श्रीशुकदेवजी बोले, कि-हे राजन् ! एक दिन श्रीकृष्णने करवट लिया इसकारण उसके कौतुकसे मङ्गलस्नान कराना था और उस ही दिन श्रीकृष्णका जन्मनक्षत्र (रोहिणी नक्षत्र) का योग आगया था इस कारण तिन दोनों उत्साहों के कारण गोकुलकी सब सौभाग्यवती स्त्रियें इकट्ठी हुई थीं, उस समय यशोदाने, बाजोंका शब्द, गोपियोंके गीत और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि कराकर श्रीकृष्णको उबटना करके मङ्गलस्नान कराया४तदनन्तर तिस नंदरानी यशोदाने, जिसके अङ्ग टोपी आदि वस्त्र पहिराना, गहने पहिराना, कस्तूरीकी सुगंधि लगाना, गोरोचनका तिलक लगाना, नेत्रोंमें काजल डालना इत्यादि कार्य्य करे हैं और अन्न, पात्र वस्त्र, माला, इच्छित पदार्थ और गौ देकर उत्तम सत्कार करेहुए ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करा कर जिसके रक्षाबंधनादि मङ्गल कार्य्य करे हैं ऐसे नींदमें आते हुए श्रीकृष्णको, छकड़ेके नीचे पालनेमें धीरे धीरे झोटे देकर गीत गाते २ सुलादिया. ॥ ५ ॥ तदनंतर वह औत्थानिक उत्सवके उत्साहको पूरा करनेमें उत्कण्ठित हुई उदारचित्त यशोदा, अपने घर आई हुई गोपी आदि व्रजकी स्त्रियोंका, हरिद्रा कुंकुम देना, गोद भरना, वस्त्र भूषणादि देना इत्यादिसे सत्कार करनेमें लगरही थी, सो उसने श्रीकृष्णका रोना किंचित् मात्र भी नहीं सुना, इधर दूध पीनेकी इच्छासे रोदन करनेवाले वह बालक श्रीकृष्ण, रोते २ अपने पैर ऊपरको चलाने लगे. ॥ ६ ॥ तब तो छकड़ेके नीचे सोते हुए तिस बालकके छोटे और नवीन पत्तेकी समान कोमल चरणसे ताड़ना कराहुआ वह गाडा जिसके ऊपरके चाँदी सोनेके सिवाय काँसी आदिके दूध दहीसे भरे हुए पात्र गिरपडे हैं, और जिसके पहिये तथा धुरे अस्तव्यस्त टूटे पडे हैं और जिसका नीचेका भाग सब टुकडे २ होगया है ऐसा होकर

याः समागताः । नंदादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् । इति ब्रुवन्तोऽतिविवादमोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रु रार्तवत् ॥ ८ ॥ ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः । रुदताऽनेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत । अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ १० ॥ रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशंकिता । कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् । विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशांबुभिः ॥१२॥ येऽसूयानृतदंभेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः । न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः । जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः । हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥१५॥ गावः सर्वगुणोपेता वासःस्रग्रुक्म-

---

नीचे उलटकर गिर पडा ॥ ७ ॥ तब उस उत्सवमें जो यशोदा आदि गोकुलकी स्त्रियें इकट्ठी हुई थीं उन्होंने और नंदादि गोपोंने उस गाड़ेको उलटा हुआ देखकर बड़ा आश्चर्य माना और सब घबड़ागए तथा गाडा आपसे आप कैसे उलटगयाऐसी वार्त्ता करते हुए उत्पात आदि अनेकों प्रकारकी शंका करने लगे और मोहमें पड़ेहुए वह सब तिस बालक और गाडेके चारों ओर इकट्ठे होगए और यह कोई उत्पात है अथवा अपने आपही गाडा गिर पड़ा है ! इसप्रकार संशयमें पड़ेहुए तिन गोप और गोपियोंसे तहाँ खेलते हुए बालकोंने ऐसा कहा कि-रोते हुए कृष्णने ही अपने पैर से इस गाडेको उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ ९ ॥ परन्तु उन नन्दादि गोपोंने, तिन बालकोंका कहना सत्य नहीं माना क्योंकि-वह श्रीकृष्ण बालकके अपरिमित बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥ और रोते हुए तिस बालकको गोदीमें लेकर, इसको कोई पिशाचबाधा होगई है, ऐसी मनमें शंकित हुई यशोदा ने ब्राह्मणोंसे,राक्षसोंका नाश करनेवाले वेदमन्त्रोंसे तिसके शरीरपर प्रोक्षण कराया और आशीर्वाद दिलाकर पीछेसे स्तनपान कराया ११ अब भगवान्‌की सामर्थ्यको न जाननेवाले ब्राह्मणोंका चरित्र कहते हैं कि-ब्राह्मणोंने बलवान् गोपोंसे उस गाडेको पहलेकी जगह रखवा कर सब पात्र उसमें रखवा दिये और श्रीकृष्णको भी पहिले की समान पालनेमें लिटा कर ग्रहोंकी शांतिके अर्थ नवग्रहोंका पूजन करके श्रीकृष्ण तथा गाड़ेके सब ओर आठों दिशाओंमें आठ दिक्पालोंको बलि दिया और दधि, अक्षत तथा कुशोदक आदिसे पूजन करा ॥ १२ ॥ जिनके चित्तको निश्चय है ऐसे नन्दगोपने भी, जो ब्राह्मण, गुणोंमें दोष लगाना, मिथ्या भाषण,पाखण्डीपन शान्तिके साथ न रहना, हिंसा और अभिमान इन दुर्गुणोंसे रहित होते हैं उन सत्यस्वभाव ब्राह्मणोंके दियेहुए आशीर्वाद निष्फल नहीं होते हैं,ऐसा मनमें विचार कर उस बालकको अपने पास लेकर, उन ब्राह्मणोंसे पुण्याहवाचन करा कर,अरिष्ट की शान्तिके निमित्त होम कराकर और सामवेद, ऋग्वेद, तथा यजुर्वेदसे संस्कार करे हुए और जिनमें पवित्र औषधि डाली हैं ऐसे जलोंसे अभिषेक करके उन ब्राह्मणोंको जिनमें छः रस हैं ऐसा अन्न अर्पण करा ॥ १३-१५ ॥ और उनको,अपने

मालिनीः। आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाशिषः। ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम्॥१७ एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती। गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता। महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु दैत्यो नाम्ना तृणावर्त्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः। चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनम र्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः। ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥ मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम्। सुतं यशोदा नापश्य त्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः। तृणा वर्त्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांशुवर्ष सुतपदवीम बलाऽविलक्ष्य माता। अतिकरुणमनुस्मरंत्यशोचद् भुवि पतिता मृतवत्सका यथा

पुत्रका कल्याण होनेके निमित्त, सुधापन आदि सकल गुणयुक्त और वस्त्रोंकी झूलें फूलोंकी माला तथा सुवर्णके फूलोंकी माला पहिरेहुए गौ दीं, उससमय उन ब्राह्मणो ने भी आशीर्वाद दिये ॥ १६ ॥ हे राजन्! जो ब्राह्मण मन्त्र जानने वाले और योगा भ्यासी हैं वह जो आशीर्वाद कहेंगे सो तैसे ही होंगे, निष्फल कभी नहीं होंगे,यह स्पष्ट है ॥ १७ ॥ एक समय वह पतिव्रता यशोदा,अपने सुतको गोदमें वैठाकर उस को लाड़ करती खिला रही थी सो अचानक पर्वतके शिखरकी समान भारी लगने वाले उन कृष्णका भार सहन न कर सकी ॥ १८ तव श्रीकृष्णके पेटमेंके प्राणियोंके भारसें पीड़ित होनेके कारण आश्चर्यमें हुई तिस यशोदाने, उस बालकको भूमिपर वैठा कर (तृणावर्त्त से अपनी मृत्यु बचानेके निमित्त, मुझे गोदमेंसे नीचे वैठाल देय इस इच्छासे कृष्णके ही करे हुए भारको न जान कर) उसने उत्पातकी शंकासे महापुरुष भगवान्का (हे परमेश्वर! अपने दियेहुए पुत्रकी तुमही रक्षा करो) ऐसा ध्यान करा और घरके संसारी काम करने लगी १९ इधर छोटे २ बालकोंका मारने के निमित्त कंसका भेजा हुआ, कंसका सेवक तृणावर्त्त नामवाला दैत्य, चक्रवात (आँधी) के स्वरूपसे गोकुलमें आया और उसने धूलिसे सव गोकुलको ढक कर सबके नेत्र धूलिसे अत्यन्त भरदिये और भयंकर वडेभारी शब्दसे पूर्व आदि दिशा तथा अग्नि आदि कोणोंको शब्दायमान करके आँगनके विषैं भूमिपर वैठेहुए कृष्ण को उठाकर आकाशमें लेगया ॥ २० ॥ २१ ॥ उससमय दो घड़ीपर्यंत सकल गोकुल धूलि और अन्धकारसे भर गया था, यशोदाने जहाँ अपने बालकको वैठाया था वहाँ वह उसने नहीं देखा ॥ २२ ॥ तृणावर्त्तकी उत्पन्न करी हुई धूलि आँखोंमें भर जानेसे घवड़ाये हुए सब गोकुलवासी ऐसे होगये कि-किसीने अपनेका तथा दूसरे को देखा नहीं ॥ २३ ॥ इस प्रकार भयंकर आँधीसे गोकुलमें धूलिकी वर्षा होनेलगी तव, बालकका मार्ग न देख कर उसको देखनेका उपाय करनेमें असमर्थ हुई वह माता यशोदा, वारम्वार तिस बालक कृष्णके गुणोंको स्मरण करती हुई, जैसे बच्चे के मर जाने पर गौ अतिदीनतासे रम्भाने लगती है तिसी प्रकार करुणस्वरसे शोक करने लगी और शोकसे व्याकुल होकर मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ी ॥२४॥

गौः ॥ २४ ॥ रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः। रुरुदुरनुपलभ्य नन्द सूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥ २५ ॥ तृणावर्त्तः शांतरयो वात्यारूपधरो हरन्। कृष्णं नभो गतो गन्तुं नाशक्नोद् भूरिभारभृत् ॥२६॥तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया। गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः। अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥ तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम्। पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लंबमानम्। तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्। गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः

तदनन्तर धूलिकी वर्षाका वेग कम होकर उस आँधीके झोकोंके भी कम होने पर; गोपियें,यशोदाका रोना सुनकर उसके समीप आईं और तहाँ श्रीकृष्णको न पाकर वह अत्यन्त दुःखितचित्त हो और मुख पर दुःखके आँसू बहा कर रुदन करने लगीं ॥ २५ ॥ इधर तृणावर्त्त भी आँधीका रूप धारण करके कृष्णको उठाय किसी प्रकार ऊपर आकाशमें गया, परन्तु भगवान् उसको मारनेके निमित्त फिर भारी होगए इसकारण वह कृष्णको लेकर आगेको(मथुराको) न जासका किन्तु कृष्णके भारसे उसके जानेका वेग रुक गया ।२६। तब उसने दैत्यरूप धारण करके कृष्णको मारनेका मनमें विचार करा तब कृष्णने उसका गला पकड़ लिया, उस समय गले में पकड़ाहुआ वह दैत्य,अपनेसे भी अधिक भारी तिस अद्भुत बालक (श्रीकृष्ण) को पर्वतसमान मानता हुआ उनको, गला छुड़ा कर दूर करनेको भी समर्थ नहीं हुआ २७ किन्तु गला पकड़नेसे ही निश्चेष्ट हुआ तथा जिसके नेत्र बाहर निकल पड़े हैं और शब्द बन्द होकर प्राणहीन हुआ वह दैत्य, बालकसहित गोकुलमें; गोपालोंने दुहने आदिकी सम्मति करनेको बैठनेके निमित्त एक बड़ी भारी शिला बिछा रक्खी थी तिस पर आगिरा ॥ २८ ॥ उस समय एक स्थानपर इकट्ठी होकर रोती हुई स्त्रियोंने, जैसे रुद्रके बाणसे विध कर त्रिपुरासुर नीचे गिरा था तैसे ही आकाशमेंसे, नीचे शिला पर पड़ेहुए और जिसके सकल अङ्ग टूटगए हैं ऐसे उस भयंकर दैत्यको देखा ॥ २९ ॥ और उसकी छाती पर लटके हुए श्रीकृष्णको देख कर, उन गोपियोंने उनको शीघ्रतासे उठा कर लेजाय उनकी माताको दिया और वह सब आश्चर्यमें होगईं, इस प्रकार आकाशमार्गसे राक्षसके लेगए हुए तथापि मृत्युके मुखमेंसे छूटकर कुशलपूर्वक आयेहुए तिन श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपी और नन्द आदि सकल गोप अतिहर्षको प्राप्त हुए ॥ ३० ॥ और परस्पर कहने लगे कि-अहो ! यह कैसा बड़ा भारी आश्चर्य है कि-हमने कहीं भी ऐसा न देखा न सुना है, यह बालक राक्षसके मार डालने पर भी फिर आप ही मिलगया इतने हीमें दूसरे कहनेलगे कि-अहो ! इसमें कौन आश्चर्य है ? यह ऐसा ही होना था, क्योंकि-यह दैत्य, क्रूर स्वभाव और हिंसक था इस कारण अपने ही पापसे

खलः साधु समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्त्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् । यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने । वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः एकदाऽर्भकमादाय स्वांकमारोप्य भामिनी । प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥ पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् । मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनांबुधींश्च । द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥३६॥सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः । संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ३७ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृणावर्त्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः । व्रजं जगाम नंदस्य

मरणको प्राप्त होगया, साधुकी सर्वत्र समदृष्टि होती है इस कारण वह भयसे छूट जाता है, हमने वा हमारे बालकने किसीकी हिंसा आदि नहीं करी इसकारण यह मृत्युसे भी छूट गया है ॥ ३१ ॥ अहो ! हमने पूर्वजन्ममें क्या कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तप करा था, वा भगवान्का पूजन करा था अथवा कोई कूप तालाव आदि वनवाया था,या विधि विधानसे पञ्चमहायज्ञ करे थे अथवा तुलादान आदि दान करा था, या सकल प्राणीमात्रका भगवान्की बुद्धिसे सत्कार करा था,यह हम कुछ नहीं जानते,जिसके पुण्यसे कि-मरणको प्राप्तहुआ भी यह बालक,अपने सब बांधवों को हर्षित करता हुआ फिर प्राप्त हुआ है सो वास्तवमें हमारा अहोभाग्य है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार तिस बृहद्वन नामक गोकुलमें अति आश्चर्यकारी चमत्कार देख कर विस्मित हुए नन्द गोपने 'गोकुलमें उत्पात होते हैं' ऐसा वसुदेवजीका वचन हा बारम्वार सत्य होता है, यह समझा ॥ ३३ ॥ अब तृणावर्त्त दैत्यके आनेके समय, अपना भारीपन देख कर सन्देहमें हुई माता यशोदाको, विदित करनेके निमित्त श्रीकृष्णजीने अपने मुखमें जम्भाईके समय ब्रह्माण्ड दिखाया सो वर्णन करते हैं— एक समय पुत्रके स्नेहमें भरी हुई परम सौभाग्यवती यशोदाने, खेलते हुए कृष्णको लेकर अपनी जङ्घापर बैठाया और उनको दूधसे टपकता हुआ स्तन पिलाया ३४ हे राजन् ! प्रायः पेट भरने योग्य दूध पी लेने पर तिन श्रीकृष्णके सुन्दर हास्ययुक्त मुखको, चूम कर लाड़ करती हुई तिस माता यशोदाने, अकस्मात् जम्भाई लेते हुए तिनके मुखमें इस बाहर दीखते हुए सकल विश्वको देखा ॥ ३५ ॥ आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, नक्षत्रमण्डल, दिशा, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, सात समुद्र, द्वीप, पर्वत और उन पर्वतोंसे उत्पन्न हुई नदी, वन और स्थावर जङ्गमरूप सकल प्राणी ॥ ३६ ॥ इस प्रकार यह सकल जगत् देख कर हे राजन् ! वह मृगशावाक्षी यशोदा, एक साथ भयभीत होकर थरथर काँपने लगी और नेत्र मूँद कर, मैंने यह क्या देखा ऐसा मान कर आश्चर्यमें होगई ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतमें दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ❀ छ

अब इस आठवें अध्यायमें गर्गाचार्यके करे हुए श्रीकृष्णजीके नामकरण और

वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृतांजलिः । आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥ सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् । नंदयित्वाऽब्रवीद् ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् । निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतींद्रियम् । प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥५॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि । बालयोरनयोर्नॄणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच । यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा । सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुंदुभेः । देवक्या अष्टमो गर्भो

बाललीलारूप कौतुकमें उनके ऊपर मट्टी खानेके दोष लगने पर उनके मुखमें यशोदाने विश्वरूपका दर्शन करा यह कथा वर्णन करी है, और माताने मेरा विश्वरूप देखा यह सुन कर मनमें सन्देह करने वाले पिता नन्दजीको भी श्रीकृष्णजीने नामकरण करने वाले गर्ग ऋषिके वाक्यसे अपना तत्व सूचित करा, यह भी वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! महातपस्वी जो गर्गमुनि, वह यादवोंके पुरोहित थे, इस कारण पुत्रोंका नामकरण करनेको वसुदेवजीने उनसे कहा तब वह एक समय नन्दजीकी गोकुलमें आये ॥ १ ॥ उनको देखते ही परमप्रसन्न हुए नन्दजीने, उठ कर खड़े रह कर हाथ जोड़े और यह मुनि साक्षात विष्णु ही हैं ऐसी बुद्धिसे नमस्कार करके उनकी पूजा करी ॥२॥ तदनन्तर आदर सत्कार करे हुए उन मुनिके स्वस्थतासे आसन पर विराजनेके अनन्तर उनको मधुरवाणीसे आनन्दित करते हुए नन्दजी कहने लगे कि-हे ब्रह्मन् ! जिसके सकल मनोरथ पूर्ण हैं ऐसे आपकी हम क्या शुश्रूषा करें ? ॥ ३ ॥ यदि कहो कि—पूर्ण मनोरथ था तो मैं तुम्हारे घर क्यों आया ? सो हे सर्वज्ञ ! आप समान महात्माओं का अपने आश्रमसे दूसरोंके घर जाना प्रायः नहीं होता है, यदि कदाचित् होय भी तो वह दीनचित्त गृहस्थियोंके कल्याणके निमित्त ही होता है इसके सिवाय अपने स्वार्थके निमित्त कभी नहीं होता है ॥ ४ ॥ अब उनसे बालकोंका नामकरण करनेको कहनेके निमित्त उनके ज्ञानकी अधिकता कहते हैं कि—हे गर्ग ऋषे ! इंद्रियोंसे न होने वाला ज्ञान जिससे मिलता है वह ज्योतिषशास्त्र तुमने आप ही रचा है, जिस ज्योतिषशास्त्रसे पुरुषको, बीते हुए और होनहारका ज्ञान होता है५ ऐसे तुम ज्योतिषी होकर मन्त्र जानने वालोंमें श्रेष्ठ हो, तिससे इन बालकोंके नामकरण आदि करनेकी कृपा करिये यदि कहोकि–यह तो गुरुका काम है सो हे ऋषे ! यह ब्राह्मण जन्म पाते ही सकल मनुष्योंका गुरु होता है ॥ ६ ॥ ऐसा कहकर अति उत्साहमें भरे हुए नन्दजीसे 'यह गुप्तरीतिसे करना चाहिये, ऐसे अभिप्रायसे' निषेध करते हुए गर्गजी कहने लगे कि—हे नन्द ! मैं सकल भूतल पर यादवोंका आचार्य प्रसिद्ध हूँ इस कारण मेरे संस्कार करे हुए तुम्हारे पुत्रको कंस अपने मनमें देवकीका ही पुत्र मानेगा ॥ ७ ॥ और यदि कहो कि–यादवोंका पुत्र है ऐसा जाने, परन्तु यह वसुदेवका ही उनकी देवकी स्त्रीके विषैं ही उत्पन्न हुआ है, यह कैसे

न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥ इति संचिंतयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः । अपि हंता-गताशंकस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥९॥ नन्द उवाच । अलक्षितोऽस्मिन् रहसि मामकैरपि गोव्रजे । कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच । एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् । चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः गर्ग उवाच । अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः । आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः । यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशंत्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१३॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि संति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते । गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमंज-

---

जानेगा ? सो हे नन्दजी ! वह पापबुद्धि कंस तेरा शत्रु कहीं उत्पन्न होगया है' ऐसे देवकीकी कन्याके कथनको सुन कर, देवकीका आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं होसकता, ऐसी मनमें निश्चय चिंता करके साधारणतया देवकीका पुत्र कहीं तो है यह जानता है, तिसमें तुम्हारी और वसुदेवजीकी मित्रता है ऐसा मनमें विचार कर, वही बालक तुम्हारे घर आया होगा, ऐसी तर्कना करता है, तिस पर मैं संस्कार करूँगा तो 'यह वही है' ऐसा निश्चय करके यदि तुम्हारे बालकको उसने मार डाला तो हमारा बड़ा भारी अन्याय होगा ॥ ८ ॥ ९ ॥ नन्दजीने कहा कि-हे ऋषिवर्य ! यदि ऐसा है तो, जिसमें मेरे समीपके पुरुष भी न देख सकें इसप्रकार तुम इस गोकुलके विषें एकान्त स्थानमें पुण्याहवाचन करके इन राम कृष्णका, जो कि-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन द्विजातियोंको आवश्यक है वह संस्कारमात्र कर दीजिये बहुत विस्तारका विधान न करिये ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार प्रार्थना करे हुए उन गर्ग मुनिने, गुप्तरीतिसे अपना इच्छित ही वह बालकों का नामकरण एकांत स्थानमें करा ॥ ११ ॥ गर्गजीने कहा कि-हे नन्दजी ! यह रोहिणीका पुत्र, अपने पालन पोषण आदि गुणोंसे सम्बन्धियोंको आनन्द देगा इस कारण यह आप ही 'राम' नामसे प्रसिद्ध होगा, लोकोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् होनेके कारण इसको 'बल' कहेंगे, तथा किन्हीं कारणोंसे यादवोंमें कलह उत्पन्न होने पर यह उनको सदुपदेश देकर एक करेंगे इस कारण लोक इनको संकर्षण कहेंगे ॥ १२ ॥ हे नन्दजी ! प्रति युगमें देह धारण करने वाले इस तुम्हारे बालकका श्वेत, लाल और पीला यह तीन तथा और भी वर्ण होते हैं, इस समय यह कृष्णवर्णको प्राप्त हुआ है इस कारण इसका 'कृष्ण' नाम होयगा ॥ १३ ॥ यह श्रीमान् तुम्हारा पुत्र, पहिले कभी तो वसुदेवजीका पुत्र हुआ था इस कारण इसका दूसरा 'वासुदेव' नाम होयगा ॥ १४ ॥ इस तुम्हारे पुत्रके गुणोंके अनुसार ईश्वर सर्वज्ञ आदि और कर्मोंके अनुसार गिरिवरधारी आदि बहुतसे नाम और रूप हैं उन सबको मैं ही जानता हूँ और लोक नहीं जानते हैं ॥ १५ ॥ गोप और गौओंके कुलको आनन्द देने वाला यह पुत्र तुम्हारा कल्याण करेगा, इसके द्वारा

स्तरिष्यथ ॥ १६ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः । अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ १८ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः । श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः॥१९॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते । नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥ २० ॥ कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ । जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥ तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु । तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥ २२ ॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् । दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥ यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे

तुम सकल संकटोंको अनायासमें ही तर जाओगे ॥ १६ ॥ हे गोकुलपति नन्दजी ! पहिले जब राजा वेनका मरण होगया था तब चोरोंसे पीडित हुए साधुपुरुषोंकी इसने पृथुरूपसे रक्षा करी थी इस कारण बढ़े हुए उन्होंने तिन चोरोंको जीत लिया ॥ १७ ॥ जो महाभाग पुरुष, इससे प्रीति करते हैं उनका शत्रु तिरस्कार नहीं कर सकते हैं जैसे कि-दैत्य, विष्णुके रक्षा करे हुए देवताओंका तिरस्कार नहीं कर सकते हैं ॥ १८ ॥ तिससे हे नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुणोंसे, ऐश्वर्यसे, कीर्तिसे और पराक्रमसे साक्षात् नारायणकी समान है, तुम इसकी सावधानीसे रक्षा करो ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार नन्दजीसे कहकर गर्गमुनि, अपने घरसे चले गए तब परमप्रसन्न हुए उन नन्दजीने अपनेको पूर्णमनोरथ माना ॥ २० ॥ अब बलराम सहित श्रीकृष्णजीने, गोकुलमें बालक्रीड़ाके मिषसे अनेकों प्रकारके चमत्कार करके नन्दजी और यशोदाको जो परम आनन्दित करा तिसका वर्णन करते हैं-नामकरण होकर थोड़ा सा ही काल बीतनेपर, राम और कृष्ण यह दोनों ही गोकुलमें हाथोंसे और घुटनोंसे चलते हुए विहार करने लगे ॥ २१ ॥ वह रामकृष्ण, फिर हाथ टेक कर चलतेमें दोनों पैरोंको सरकाते २ गोकुलमेंकी गोमूत्रादिकी कीचमें, कमर और पैरोंमें पहिरे हुए भूषणोंमें लगेहुए घूँघुरुओंके स्पष्ट शब्दके साथ मनोहरतासे विचरते हुए, तिन घूँघुरुओंकी झनकारसे जिनका मन हर्षित हुआ है ऐसे वह मनुष्यलोकके अनुसार किसी पर मनुष्यके दृष्टि पड़ते ही अनजानकी समान भयभीतसे होकर अपनी माताके समीपको लौटकर चले जाते थे॥२२॥ उससमय कृपासे जिनके स्तनोंमें दूध आकर टपकने लगा है ऐसी उनकी माता (यशोदा और रोहिणी), कीच लगजानेसे सुन्दर दीखनेवाले अपने पुत्रोंको भुजाओंसे चिपटाकर उनके मुखमें स्तन देकर, उनके स्तनको पीनेपर, मन्दहास्य सहित, छोटे २ दांतोंवाले मुखको देखकर परम आनन्द पाती थीं ॥२३॥ फिर वह रामकृष्ण ग्राममेंकी स्त्रियोंको बाललीला दिखाने योग्य बड़ेहुए, उस समय वह गोकुलके बछड़ोंकी पूँछको कसकर पकड़ लेते थे, फिर पूँछपकड़े हुए बछड़ोंसे जिधर तिधरको घसिटते हुए तिन रामकृष्णको

तद्‍बलाः प्रगृहीतपुच्छैः । वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥ शृङ्‌ग्यग्निदंष्ट्र्‌यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् । गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥ कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले । अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः । सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥२७॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् । शृण्वंत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥ वत्सान्मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः । मर्कान् भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भांडं भिनत्ति । द्रव्यालाभे,स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य

देखनेवालीं गोकुलकी, स्त्रियें अपने २ घरमेंके करने योग्य कार्योंको छोडकर यह चमत्कार देखकर अत्यन्त ही आनन्द पाती थीं ॥ २४ ॥ उन रामकृष्णकी माता (रोहिणी और यशोदा) जब गौ भैंस आदि सींगवाले पशुओंसे अग्निसे, कुत्ते वानर आदि दाढवाले पशुओंसे, तरवार कुल्हाड़ी आदि शस्त्रोंसे, काक गिद्ध आदि पक्षियोंसे और कीकड आदिके काँटोंसे, अति चपल और खिलाड़ी अपने बालकों को रोकनेमें और घरके काम छोडनेमें समर्थ नहीं होती थीं तब उनका मन चक्कर में पडजाता था, हे राजन् ! घरके सुखकी पराकाष्ठा यही है ॥ २५ ॥ हे राजर्षे ! फिर थोडे ही कालमें गोकुलमें राम और कृष्ण यह दोनों ही घुटनों चलना छोड कर बिना सहारेके ही सहजमें पैरों २ चलने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह भगवान् श्रीकृष्ण, बलराम सहित गोकुलमें,समान अवस्थाके बालकोंको साथ लेकर गोकुल की बसने वालीं स्त्रियोंको हर्षित करते हुए क्रीडा करने लगे ॥ २७ ॥ तिन कृष्णका कुमार अवस्थाका सुन्दर चपलपना (ढिठाई) देखकर अपने २ घरसे निकल इकट्ठी होकर नंदजीके घर आई हुईं गोपियें, उन कृष्णकी माता यशोदाको सुनाती हुईं इस प्रकार स्पष्ट कहने लगीं कि–॥ २८ ॥ अरी यशोदा ! तेरा बेटा, चाहे जब दूध दुहनेको समय न होय तो भी हमारे बछडानको खोलदेय है, सो वह बछडा सब दूध पीजायँ हैं यासों हमारी बड़ी हानि होय है और उन छोड़े हुए बछड़ोंको पकडनेको घरके लोग दौडिकै जायँ हैं तो रीते घरनमें घसिकै हमारे सम्हारिकै धरे हुए दही दूधको, हमारे बिनादिये ही चुरायके खाजाय है, अरी या कृष्णको ताड़ना करो, बाँध राखौ, ऐसो भय दिखायबेको चिल्लावैं हैं तो हँसन लागै है,भय नहीं मानै है, दही, दूध, माखन आदि पदार्थ ऊँचे पै रखैं हैं तो उन्हैं चुरायबे को उपाय करै है केवल आप ही नहीं खाय है किंतु अपने खायबेसे पहिले वह बानरोंको बाँट देय है, और तिन बानरनमें जो तृप्त हुआ कोई बानर दही दूध नहीं खाय है तो दही दूधके भरे हुए भाँड़नको फोरि डारै है तथा घरमें दही दूध आदि नहीं धरैं और याको नहीं मिलै तो, 'मैं इनके घरनको जलाय डारूँ हूँ' या प्रकार कहिकै क्रोधमें भरि पलिकान पै सोयहुए बालकनकौ नौचिकै रुवाय देय है, 'यह कदाचित् घरनमें आग नाहिं लगाय देय'या भय सों हमैं घरनमें दही आदि रखनौ

तोकान् ॥२९॥ हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभांडेषु तद्वित् । ध्वांतागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥ एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते । इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥ एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः । कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी । यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान् रहः । वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥ नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः । यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥ यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः । व्यादत्ता-

---

पडै है ॥२९॥ याके चोरी करिवेके यह उपाय हैं कि-कौनसे भाँडेमें कौन सौ अच्छौ पदार्थ रख्यौ है सो जानने वारो तेरौ बेटा दही आदि पदार्थ, ऊँचे छीकान पै धरे हुए होनके कारण हाथ नाहिं आवें हैं तो उनको नीचे गिरायवेको,तिनके नीचे पीढ़ा ओखली आदि रखिवेको उपाय करै है,तथापि जो वह भाँडे नीचे नहीं उतर सकें हैं तो लकुटी आदिसे वामें छेद करदेय है तब वामेंसे धार निकसि के ठीक बालकनके मुखमें पडै है, घरमें अँधेरो होय है तो अनेकों चमकते रत्ननको धारण करे अपने शरीरको ही पदार्थनको प्रकाशक करै है,जा समय गोपी अपने घरके कामन में आसक्तचित्त होय हैं वाही समय यह ऐसे ऊधम मचावै है ॥३०॥ और देवपूजा स्वयम्पाक आदि करिवेके निमित्त भली प्रकार झाड़े बुहारे हुए घरनमें मूत्र पुरीष (विष्ठा) कर देय है, ऐसी अनेकन ढिठाई करै है, या प्रकार चोरीके उपायन सौं विलक्षण काम करिकै भी तेरे ढिङ्ग आय सूधो सो होजाय है, इस प्रकार गोपियोंके कहनेसे भयभीत हुए नेत्रोंसे शोभायमान श्रीकृष्णजीके मुखको देखने वाली उन गोपियोंके उलाहिना देनेपर यशोदाके मुखमें हँसी आगई और उसने कृष्णको ललकारने आदिका मनमें विचार नहीं करा ॥३१॥ एक समय किसी अपराधके कारण कृष्णका ताड़ना चाहा था परन्तु उस समय तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ, वह यह कि खेलते हुए तिन बलराम आदि गोपोंके बालकोंने यशोदाके समीप आकर कृष्णके मट्टी खानका वृत्तान्त कहा ॥ ३२ ॥ तब उनके हितकी इच्छा करने वाली यशोदा ने कृष्णके हाथ पकड़ लिये और ललकार कर, भयसे घबड़ा कर देखने वाले नेत्रों करके युक्त तिन कृष्णसे कहने लगी कि-॥३३॥ अरे चपलशरीर कृष्ण ! तैने एकांत में जाकर मट्टी क्यों खाई है ? हित चाहने वाले यह बालक ही कह रहे हैं और देख ऐसे ही तेरा बड़ाभ्राता बलराम भी कह रहा है ॥ ३४ ॥ तब कृष्णने कहा कि-अरी मैया ! मैंने मट्टी नहीं खाई है, यह तो सब ही मिथ्या कहरहे हैं और यदि तुझे यह निश्चय होय कि-यह सत्य कह रहे हैं तो तू प्रत्यक्ष मेरे मुखको देखले ॥ ३५ ॥ अच्छा यदि ऐसा है तो अपना मुख खोल कर दिखा, ऐसा माताके कहनेपर क्रीड़ा करनेके निमित्त ही मनुष्य बालक हुए किन्तु अखण्डित ऐश्वर्यवान् तिन भगवान्

व्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सो तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः । साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च । वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् । सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शंकाम् ॥३९॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः । अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥४०॥ अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा । यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणताऽस्मि तत्पदम् ॥४१॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती । गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ४२ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः । वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् । प्रवृद्धस्नेहकलिलहृद-

श्रीकृष्णने, अपना मुख फैलाया ॥ ३६ ॥ तब यशोदाने उस फैलेहुए मुखमें विश्वको देखा-स्थावर, जङ्गम,ज्योतिश्चक्र (अन्तरिक्षलोक) दिशा,पर्वत,पुर्वादि द्वीप और समुद्रसहित भूलोक, प्रवह नामक वायु बिजलीरूप अग्नि, चन्द्रमा और तारोंसहित स्वर्गलोक, जल, तेज, वायु और आकाश, सात्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए देवता राजस अहंकारसे उत्पन्न हुई इन्द्रियें, तामस अहंकारसे उत्पन्नहुए शब्दादि विषय और तीन गुण, इस प्रकार पुत्रके छोटेसे शरीरमें तिसमें भी फैलेहुए छोटेसे मुखमें जीव, काल, स्वभाव, कर्म और अन्तःकरणके द्वारा स्थावर जङ्गम शरीरोंके भिन्न भिन्न भेदोंसे भरा हुआ यह विचित्र जगत् एक साथ देख कर; उसमें एक कोनेमें अपने सहित गोकुलको भी देख कर वह यशोदा, मनमें ऐसी शङ्का करने लगी कि-॥ ३७-३९ ॥ जो मैंने देखा यह क्या स्वप्न है ? तदनन्तर मैं जागती हूँ ऐसा समझ कर कहती है कि-यह भगवान्‌की माया है क्या ? या मेरी बुद्धिमें कुछ मोह उत्पन्न होगया है ? अथवा इस मेरे बालकका ही यह कोई अचिन्त्यनीय स्वाभाविक ऐश्वर्य है ? ॥४०॥ ऐसी अनेकों तर्कना कर अन्तका पक्ष स्वीकार करके कहती है-जिस परमेश्वरसे, चित्त, मन, कर्म और वाणीके द्वारा अनायासमें जिसकी तर्कना करना कठिन है ऐसा,जिसके आश्रयसे रहनेवाला यह जगत,जिसके द्वारा जिस बुद्धिकी वृत्तिसे प्रतीत होता है तिन परमेश्वरके परम अचिन्त्य चरणकी मैं शरण हूँ॥४१॥मैं यशोदा, इन नन्दजीके सब प्रकारके द्रव्योंकी रक्षा करने वाली स्त्री हूँ,यह नन्दजी मेरे पति हैं,यह कृष्ण मेरा पुत्र है,गोधनसहित सकल गोपी और गोप यह मेरे ही (परिवार) हैं इस प्रकारकी अनर्थकारिणी बुद्धि जिसकी मायाने मेरे में उत्पन्न करी है वह भगवान् ही मेरी गति (मायासे रक्षा करने वाले) होयँ ४२ इस प्रकार तिस यशोदा गोपीको तत्त्वज्ञान होने पर सर्वसमर्थ ईश्वर तिन श्रीकृष्ण ने उसके ऊपर पुत्र स्नेहरूप अपनी माया फैलाई ४३ तब तत्काल जिसका पहिलेका ज्ञान नष्ट होगया है ऐसी वह यशोदा पुत्रको गोदीमें लेकर जैसे पहिले चित्तमें बढ़े हुए स्नेहसे व्याप्तहुई थी तैसीही फिर होगई ४४ अब मायाबलकी अधिकता कहते हैं

यास यथा पुरा यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः। उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच । नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् । यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥ पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् । गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥ श्रीशुक उवाच । द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया । करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ । भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः । जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥५०॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने । दंपत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥५१॥ कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः । सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

कर्मकाण्डरूप ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद इनके द्वारा इन्द्रादिरूपसे, उपनिषद्भागों में ब्रह्मरूपसे, सांख्यशास्त्रोंमें पुरुषरूपसे, योगोंमें परमात्मारूपसे और पञ्चरात्र आदि वैष्णव तन्त्रोंमें भगवद्रूपसे जिनका माहात्म्य गाया है उन श्रीहरिको तिस यशोदा ने अपना पुत्र माना ॥ ४५॥ राजाने कहा कि हे ब्रह्मन् ! नन्दजीने भगवान्की बाल-लीलाका अनुभवरूप परम फल देने वाला जन्मान्तरमें कौनसा कल्याणका साधन करा था ? तथा जिसकी तृप्ति करनेको यज्ञ आदि भी समर्थ नहीं होते हैं तिन श्री-हरिने जिसका स्तन पिया है उस परमभाग्यवती यशोदाने भी कल्याणका कौनसा साधन करा था ? ॥ ४६ ॥ जिनके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान्ने अवतार धारण करा है उन देवकी वसुदेवको भी कृष्णके, जिस उदार बालचरित्रका अनुभव नहीं मिला, बड़े २ ज्ञानी जिसका अब भी गान करते हैं और जो श्रोता आदिकोंके पापों का नाश करने वाला है तिस बालचरित्रका जिस नन्द और यशोदाने अनुभव करा उन्होंने पहिले कौनसा पुण्य करा था ॥ ४७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! आठ वसुमें परम श्रेष्ठ जो द्रोण नामक वसु, वह अपनी धरा नाम वाली स्त्रीके सहित ब्रह्माजीका गोपाल आदि आज्ञाको स्वीकार करता हुआ उनसे कहने लगा कि-४८ हम दोनों तुम्हारी आज्ञाको मानते हैं परन्तु भूमिपर उत्पन्नहुए हम दोनोंको देवाधिदेव विश्वनियन्ता श्रीहरिके विषैं ऐसी उत्तम भक्ति प्राप्त होय कि—जिससे संसारी जन अनायासमें ही संसारदुःखको तर जाय (मुक्त होय) ॥ ४९ ॥ तद-नन्तर ब्रह्माजीने 'अच्छा ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहा तब वह द्रोण वसु, गोकुल में उत्पन्न हुआ, वही ऐश्वर्य आदि गुणयुक्त महायशस्वी 'नन्द' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसकी स्त्री जो धरा वह यशोदा हुई ॥ ५० ॥ हे राजन् ! उन ब्रह्माजीके आशीर्वादसे और गोप गोपियोंकी अपेक्षा तिन यशोदा नन्दकी, पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए जनार्दन भगवान्के विषैं परमप्रीति हुई ॥ ५१ ॥ प्रभु श्रीकृष्णने भी, ब्रह्माजी का वरदान सत्य करनेके निमित्त बलराम सहित गोकुलमें वास करके पुत्रभावके अनुसार अपनी लीलासे तिन नन्दादिकोंके हृदयमें प्रीति उत्पन्न करी ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ छ

श्रीशुक उवाच । एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी । कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममंथ स्वयं दधि ॥ १ ॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च । दधिनिर्मंथने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥ क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकंपं च सुभ्रूः । रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कंकणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममंथ ॥ ३ ॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नंतीं जननीं हरिः । गृहीत्वा दधिमंथानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥ तमंकमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् । अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमंथभाजनम् । भित्त्वा मृषाऽश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयंगवमंतरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् । भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥ ७ ॥ उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय

इस नवम अध्यायमें दूध उफनने लगा तब यशोदा माता उधर गई इस कारण श्रीकृष्णने क्रोधसे दहीका पात्र फोड़ कर मक्खनकी चोरी करी तब यह देख यशोदाने उनको डोरीसे बाँध दिया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! नन्दजीके घर बहुतसी दासी थीं, वह एक समय जिस तिस कार्यके करनेमें लगा दी थीं सो नन्दजीकी स्त्री यशोदा, आपकी दहीको मथने लगी ॥१॥ तब दहीको मथते समय उस प्रसिद्ध श्रीकृष्ण बालकके इस लोकमें पुराण आदिमें और गोकुलमें जो २ गान करे हुए जो २ चरित्र वह जानती थी उनको स्मरण करतीहुई गाने लगी ॥ २ ॥ और जिसकी भौं सुन्दर हैं और जिसकी चोटी मेंसे मालतीके फूल गिर रहे हैं वह यशोदा, पुष्ट कटितटमें तागड़ीसे लिपटी हुई रेशमी सांड़ी, पुत्रके स्नेहसे दूध टपकते हुए दोनों स्तन, डोरी खैंचनेसे थके हुए हाथोंमें चञ्चल कंकण; कानोंमें कुण्डल और पसीनेसे भीगे हुए मुखको धारण करती हुई वह यशोदा दही मथने लगी ॥ ३ ॥ उस दही मथती हुई माताके समीप, स्तनका दूध पीनेकी इच्छा करने वाले श्रीहरिने आकर, दही मथनेकी रईको पकड़ कर, माताकी प्रीतिकारक चेष्टा करते हुए मथनेसे रोक दिया ॥ ४ ॥ तब वह यशोदा, उनके हास्य युक्त मुखको देखती हुई, गोदीमें बैठे हुए उनके स्नेहसे टपकने वाला स्तन पिलाने लगी, इतने ही में चूल्हे पर रक्खा हुआ दूध अधिक अग्नि लगनेसे उफनने लगा तब तृप्त न हुए कृष्णको तैसा ही छोड़ कर वह झपटी हुई तिस दूधको उतारनेके निमित्त चली गई ॥ ५ ॥ तब माता पेट भरके बिना पिलाये ही छोड़ कर चली गई इस कारण क्रुद्ध हुए श्रीकृष्ण कोपसे काँपने वाले अपने लाल अधर ओठको दाँतोंसे चबा कर, पत्थरसे दहीका भाँडा फोड़ बनावटी रोनेसे नेत्रोंमें आँसू भर कर घरमें जा एकान्तमें माखन खाने लगे ॥ ६ ॥ इधर यशोदा, खूब औटा हुआ वह दूध उतार कर फिर मथनेके स्थान पर आई सो तहाँ फूटा हुआ दहीका भाँडा देख कर, यह काम मेरे पुत्रका ही है ऐसा जाना और उसको भी तहाँ न देखती हुई वह हँसने लगी ॥ ७ ॥ तदनन्तर

कामं ददतं शिचि स्थितम्। हैयंगवं चौर्यविशंकितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः॥ ८॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत्। गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः॥ ९॥ अन्वंचमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रांतगतिः सुमध्यमा। जवेन विस्रंसितकेशबंधनच्युतप्रसूनाऽनुगतिः परामृशत्॥ १०॥ कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषंतमंजन्मषिणी स्वपाणिना। उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत्॥ ११॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला। इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा॥ १२॥ न चांतर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्। पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥ १३॥ तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम्। गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ १४॥ तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः। द्व्यंगुलोनमभूत्तेन संदधे-

उसने उलटी करके डाली हुई ओखली पर चढ़ कर छींके पर रक्खा हुआ माखन अपनी इच्छानुसार वानरोंको देने वाले और जिसके नेत्र चोरीका काम करनेसे 'कहीं मय्या नहीं आजाय' इस भयसे घवड़ाये हुए होरहे हैं ऐसे उन कृष्णको दूरसे ही देख कर, फिर चलतेमें होने वाला चरणोंका शब्द जैसे उसको सुनाई न देय तिस प्रकार धीरे २ पीछे होकर उसके समीप गई॥ ८॥ तब जिसने हाथमें लकड़ी ली है ऐसी आने वाली उस माताको देख कर, शीघ्रतासे वह श्रीकृष्णजी तिस ओखली परसे नीचे उतर कर डरे हुएसे भागने लगे, उस समय एकाग्रतासे तदाकार हुए और प्रवेश करनेको समर्थ हुए योगियोंके मनको भी जिसकी प्राप्ति नहीं होती है ऐसे कृष्णके पकड़नेको यशोदा उनके पीछे २ दौड़ने लगी॥ ९॥ इस प्रकार कृष्णके पीछे दौड़ने वाली, जिसकी गति हिलते हुए नितम्बके भारसे रुक रही है, जिसकी कमर अति सुन्दर है और जिसके वेगसे खुले हुए केशपाशमेंसे बिखरे हुए पुष्प पीछे २ बिखरते जाते हैं ऐसी तिस यशोदाने कृष्णको पकड़ लिया॥ १०॥ और अपराध करने वाले, रोते हुए, जिनमें आँजा हुआ काजल चारों ओर फैल गया है ऐसे अपने नेत्रोंको हाथसे मलते हुए, पिटनेके भयसे ऊपरको देखते हुए और जिनके नेत्र भयसे कातर होरहे हैं ऐसे उन कृष्णको हाथसे पकड़ कर वह यशोदा उनसे अरे! रे! चोर!, मैं तुझे छड़ीसे पीटूँगी कि-जिससे तू फिर ऐसी ढिठाई नहीं करेगा ऐसे भय देती हुई ललकारने लगी॥ ११॥ तदनन्तर पुत्रके ऊपर प्रेम करने वाली परन्तु उसकी सामर्थ्यको न जानने वाली तिस यशोदाने, पुत्र पिटनेके भयसे डर रहा है ऐसा जान कर, हाथमें छड़ी फैंक कर, उनको डोरीसे बाँधनेका मनमें विचार करने लगी॥ १२॥ जिन कृष्णका भीतर भाग नहीं, बाहरी भाग नहीं, पूर्व भाग नहीं और पश्चिमादि भाग भी नहीं, और व्यापकसे व्याप्यका बन्धन होता है ऐसा देखने पर, जगत्का पूर्वभाग, पश्चिमभाग (आदि और अन्त), अन्तर्भाग और बहिर्भाग है, यह सब जो है और जो जगद्रूप है तिस अव्यक्त होकर मनुष्यरूप धारण करने वाले अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णको अपना पुत्र मान कर वह यशोदा, जैसे किसी साधारण बालकको उसकी माता

ऽन्यच्च गोपिका ॥ १५ ॥ यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे । तदपि द्व्यंगुलं न्यूनं यद्यदादत्त बंधनम् ॥ १६ ॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि । गोपीनामुत्स्मयंतीनां स्मयंती विस्मिताऽभवत् ॥१७॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः । दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबंधने ॥ १८ ॥ एवं संदर्शिता ह्यंग हरिणा भृत्यवश्यता । स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया । प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः । ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥२१ कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः । अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदा-

बाँधती है तैसे ऊखलसे बाँधने लगी ॥ १३ ॥ १४ ॥ तब माँडा फोड़ना आदि अपराध करने वाले तिस अपने बालकको वह गोपी बाँधने लगी तो वह डोरी दो अंगुल कम पड़ी तब उसने तिस डोरीमें और एक डोरी जोड़ी ॥ १५ ॥ तब दोनों डोरी जोड़ कर जो एक डोरी हुई वह भी दो अंगुल कम होने लगी तब उसमें तीसरी डोरी बाँधी तब वह भी दो अंकुल कम हुई, फिर चौथी पाँचवीं ऐसे जो २ डोरी जोड़ी वह २ ही दो अंगुल कम हुई ॥१६॥ इस प्रकार अपने घरकी सब डोरियोंको जोड़ कर भी वह यशोदा, दो अंगुल डोरी कम होनेके कारण जब कृष्णको बाँधने को समर्थ नहीं हुई तो अपना उद्योग निष्फल हुआ देख कर मन्द २ मुसकराने वाली सकल गोपियोंमें वह आप भी मुसकराती हुई बड़े आश्चर्यमें पड़ी ॥ १७ ॥ तब श्रीकृष्णजी, जिसके शरीरपर पसीना आरहा है, और जिसके केशोंके जूड़ेमेंसे पुष्पमाला खसक रही हैं ऐसी अपनी माताको, मेरे बाँधनेके निमित्त बड़ा श्रम हुआ है ऐसा देख कृपा करके वह आप ही बँध गये, उस समय नन्द और रोहिणी तहाँ नहीं थे, यदि होते तो यशोदाको निषेध करते ॥ १८ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मादि पालन करने वालों सहित यह सकल जगत् जिसके वशमें है, उन स्वतन्त्र और भक्तोंके संकट दूर करनेवाले श्रीकृष्णजीने, इस प्रकार माताके हाथसे बँधकर यह दिखाया कि-मैं भक्तोंके वशमें हूँ ॥ १९ ॥ अब, भगवान्‌का प्रसाद और भी भक्त पाते हैं परन्तु यह तो बड़ा ही आश्चर्य है ऐसा रोमाञ्च सहित होकर कहते हैं कि-ब्रह्माजी (पुत्र) महादेव (अपना आत्मा) और जिसने हृदयमें स्थान पाया है ऐसी लक्ष्मी (स्त्री) इन तीनों ही ने ईश्वर और कृपापात्र प्रसिद्ध होकर भी भगवान्‌से प्रसाद नहीं पाया ऐसा नहीं है किन्तु पाया ही, तथापि मुक्ति देने वाले भगवान्‌से, उनको ही बाँध कर मनोरथ पूर्ण करना, जैसा दुर्लभ प्रसाद, जाति आचार आदिसे हीन भी गोपीको प्राप्त हुआ ऐसा उन ब्रह्मादिकोंको भी प्राप्त नहीं हुआ ॥ २० ॥ सार यह है कि-यह यशोदानन्दन श्रीकृष्णजी, इस संसारमें भक्तिमान् पुरुषोंको जैसे सुलभ हैं तैसे देहाभिमानी तपस्वियोंको अथवा भगवान्‌के आत्मस्वरूप देहाभिमान रहित ज्ञानियोंको भी सुलभ नहीं हैं ॥ २१ ॥ अब भक्तोंके बाँधे हुए भी भगवान्‌की दूसरों को मुक्त करनेकी शक्ति कहते हैं-तिन प्रभु श्रीकृष्णजीने, माता यशोदाके अपनेको ओखलीसे बाँध कर घरके काममें आसक्त होने पर नन्दजी मुझे छुड़ा दें ऐसा,

त्मजौ ॥ २२ ॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् । नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियाऽन्वितौ ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ९

राजोवाच । कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् । यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ । कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ । स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि । चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः॥४॥यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव । अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशंकिताः । वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥ तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ । तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ७

मनमें विचार कर तिन नन्दजीको शीघ्र ही तहाँ बुलानेके निमित्त, तहाँसे समीप ही में अर्जुन नामक जुड़े हुए दो वृक्षोंको देखा, वह वृक्ष पहिले गुह्यक नामक देवयोनिमें उत्पन्न हुए और नलकूबर मणिग्रीव इन नामोंसे प्रसिद्ध थे, वह सम्पत्तिमान् होनेके कारण मदान्ध होगये, तब उनको नारदजीने शाप देकर वृक्षयोनिमें पहुँचा दिया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ * छ

इस दशवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णने, ओखलीको खचेड़तेहुए बीचमें जाकर, जुड़े हुए अर्जुन नामक वृक्षोंको गिराया तब उनमेंसे उत्पन्न हुए दो देवताओंने श्रीकृष्णजीकी स्तुति करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ राजाने कहा कि-हे भगवन् ! उन नलकूबर मणिग्रीवके शापका कारण जो ऐसा निन्दित कर्म था कि—जिससे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीको भी क्रोध आगया और उनको शाप दिया, सो मुझसे कहो ॥ १ ॥ ऐसा प्रश्न करने पर श्रीशुकदेवजीने कहा कि-कुबेर श्रीमहादेवजीका मित्र था, उसके पुत्र जो नलकूबर और मणिग्रीव वह भी महादेवजीके सेवक थे, बड़े घमण्डी और मदोन्मत्त होकर उन्होंने महादेवजीकी सेवा करना त्याग दिया और एक समय वह वरुणकी बनाई हुई, बुद्धिको भ्रष्ट करने वाली, मदिराको पीकर, जिनके नेत्र मदसे घूम रहे हैं ऐसे होकर गङ्गाके समीप कैलास पर्वत पर सुन्दर पुष्पवाटिकामें मिल कर गाने वालीं स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए विचरने लगे ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह कुबेरके पुत्र, स्त्रियोंके साथ, कमलोंके वनोंकी पंक्तियोंसे फूले हुए गङ्गाके मध्यमें घुस कर, जैसे हाथी हथनियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं तैसे क्रीड़ा करने लगे ॥ ४ ॥ हे राजन् ! तहाँ अचानक आये हुए भगवान् देवर्षि नारदजीने इन देवताओंको देखा और यह मत्त होरहे हैं ऐसा जाना५ क्योंकि-उस समय उनके साथ क्रीड़ा करनेवालीं अप्सरा नङ्गीं थीं, उन्होंने नारदजीको देखते ही लज्जित होकर 'यह कहीं शाप न दे दें' ऐसी शंकासे शीघ्रताके साथ अपने वस्त्र पहिन लिये, परन्तु नङ्गे वह दोनों गुह्यक बिना वस्त्र पहिने ही

नारद उवाच। न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः। श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः। मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्युनश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम्। भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥१०॥ देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च। मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥ ११ ॥ एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम्। को विद्वानात्मसात्कृत्वा हंति जंतूनृतेऽसतः ॥ १२ ॥ असतः श्रीमदांधस्य दारिद्र्यं परमांजनम्। आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥ यथा कंटक-

---

खड़े रहे ॥ ६ ॥ तब मदिराके पीनेसे मत्त और लक्ष्मीके मदसे अन्धे हुए उन कुबेरके पुत्रोंको देख कर नारद ऋषि, उनके मदको नाश कर श्रीकृष्णजीका दर्शनरूप अनुग्रह करनेके निमित्त शाप देते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥७॥ नारदजीने कहा कि-प्रिय विषयोंका सेवन करनेवाले पुरुषको जैसे लक्ष्मीका मद बुद्धिका भ्रष्ट करने वाला होता है तैसा सत्कुलमें जन्म और विद्या आदि अथवा रजोगुणके कार्य हर्ष आदि कोई भी मद बुद्धिको भ्रष्ट करनेवाला नहीं होता है, क्योंकि—जिस श्रीमदमें स्त्री-जुआ और मद्यपान आदि विषयोंका सम्बन्ध होता है ॥ ८ ॥ जिस लक्ष्मीके मदमें नाशवान् भी इस शरीरको, यह जरामरण रहित है ऐसा माननेवाले और मनको वशमें न रखनेवाले निर्दयी पुरुष (भक्षण करनेके निमित्त) पशुओंकी हिंसा करते हैं ॥९॥ देखो-यह शरीर जीतेमें नरदेव (राजा) भूदेव (ब्राह्मण) आदि नाम धारण करनेवाला होकर भी मरणके अनन्तर कुत्ते आदिकोंने खालिया तो विष्ठारूप होजाता है, पुत्र आदिकोंने जलादिया तो भस्मरूप होजाता है और वैसाही पडारहा तो कीडेरूप होजाता है, ऐसे शरीरके निमित्त जो पुरुष प्राणियोंसे द्रोह करता है क्या वह अपने स्वार्थको जानता है ? किन्तु नहीं जानता है, क्योंकि-जिस द्रोहसे नरककी पीडा प्राप्त होती है॥१०॥यह देह क्या स्वाधीनपनेसे प्रसिद्ध होनेके कारण अपना कहाजाय ? या अन्न देनेवालेके अन्नसे रक्षित होनेके कारण अन्नदाताका कहाजाय ? अथवा पिताके वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण पिताका कहाजाय?या माताके उदरमेंसे उत्पन्न होनेके कारण माताका कहाजाय? अथवा माताका पिता (नाना) 'इसके पुत्र होगा वह मेरा होगा' ऐसा ठहराकर कन्या देता है उसका कहाजाय ? अथवा आज्ञा चलानेवाले बलवान् पुरुषका है ऐसा कहजाय ? अथवा वेचनेवालेका कहाजाय ? या अग्निका अथवा कुत्तोंका कहाजाय ? ॥ ११ ॥ इस प्रकार साधारण और प्रकृतिसे उत्पन्न होकर उसमें ही लीन होजानेवाले देहको 'यह मेरा ही है, ऐसा मानकर उसके सुखके निमित्त, मूर्ख पुरुषके सिवाय कौनसा ज्ञानीपुरुष, प्राणियोंका प्राणान्त करेगा? अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥१२॥ इस प्रकार लक्ष्मीके मदका वर्त्ताव करके अब उसके उपायका निश्चय करते हैं-लक्ष्मीके मदसे अन्ध होनेके कारण 'यह करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये, ऐसी दृष्टि न रखनेवाले विवेकहीन पुरुषको दरिद्रता ही श्रेष्ठ अञ्जन है, क्योंकि-दरिद्री पुरुष ही, मेरी समान ही सकल प्राणी हैं, ऐसा देखता है अर्थात्

विद्धांगो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् । जीवसाम्यं गतो लिंगैर्न तथाऽविद्धकंटकः १४ दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह । कृच्छ्रं यदृच्छयाऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥ नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकांक्षिणः । इन्द्रियाण्यनुशुष्यंति हिंसाऽपि विनिवर्त्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यंते साधवः समदर्शिनः । सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुद्ध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् । उपेक्ष्यैः किं धनस्तंभैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥ १८ ॥ तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदांधयोः । तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमप्लुतौ । न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ २० अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः । स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते । वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो

दरिद्रताके कारण अनेकों दुःख भोगने वाला दरिद्री, ऐसे ही दुःख सबको प्राप्त होते होंगे, ऐसा निश्चय करके जानता है ॥ १३ ॥ इस विषयमें दृष्टान्त कहते हैं कि-जैसे शरीरमें काँटे चुभा हुआ पुरुष, मुखकी मलिनता आदि चिन्होंसे, सकल जीवोंको सुख दुःख समान होते हैं ऐसा जान कर, दूसरे प्राणीके काँटा चुभनेकी इच्छा नहीं करता है किन्तु उसके काँटेको दूर करनेकी इच्छा करता है,तैसेही जिस के कभी भी काँटा नहीं चुभा है वह दूसरेकी पीड़ाको नहीं जानता है और उसके दूर करनेकी भी इच्छा नहीं करता है॥१४॥और यह दारिद्र्य ही मोक्ष भी प्राप्त करा देता है, क्योंकि-इस संसारमें दरिद्री पुरुष हीं विद्या तप आदिके मदोंसे और अहंकारके उद्धतपनेसे रहित होकर प्रारब्धवश जो कुछ दुःख पाता है वही उसका परमतप होता ॥ १५ ॥ क्षुधासे दुर्बलशरीर होकर नित्य अन्नकी इच्छा करने वाले दरिद्रियोंकी इन्द्रियें प्रतिक्षण सूखती चली जाती हैं और नरकादि दुःखकी हेतुभूत हिंसा भी दूर होजाती है ॥ १६ ॥ और दरिद्रियोंको ही, सबोंमें ब्रह्मरूप देखनेवाले साधुओंकी सद्गति प्राप्त होती है, तदनन्तर उन साधुओंका समागम करके वह दरिद्री पुरुष, विषयवासनारूप तृष्णाका क्षय कर डालता है और वह फिर शीघ्रही जीवन्मुक्त होजाता है ॥१७॥ यदि कहो कि साधुओंको भी धनवान् ही प्रिय होता है दरिद्री प्रिय नहीं होता है, तहाँ कहते है कि-जिनका चित्त शत्रु मित्रादि-भाव से रहित है ऐसे मुकुन्द भगवान्के चरणकी इच्छा करने वाले साधुओंको, धनके घमण्डी, उपेक्षा करनेयोग्य, दुराचरणी पुरुषोंका साथ करने वाले दुर्जनोंसे क्या प्रयोजन है? अर्थात् कुछ प्रयोजन नहीं है॥१८॥इसकारण लक्ष्मीके मदसे अन्ध और वारुणी मदिरासे अन्ध होकर स्त्रियोंसे जीते हुए और मनको वशमें न करनेवाले इन नलकूबर और मणि ग्रीवोंका अज्ञानसे उत्पन्न हुआ सम्पत्तिका मद, मैं दूर करता हूँ, १९जो यह लोकपाल कुबेरके पुत्र होकर भी अज्ञानसे भरे हुए और अति खोटे मदसे युक्त होकर, नग्न हुए अपने शरीरको भी न जानने वाले होगए हैं इस से यह कुछ कालपर्यन्त वृक्षयोनिको प्राप्त होने योग्य हैं, जिससे कि-फिर ऐसे मद से अन्धे कभी नहीं होंगे और उस वृक्षयोनिमें भी मेरे अनुग्रहसे इनको अपने खोटे

लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच । एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् । नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः । जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ । तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यंतरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ । आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥२६॥ बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ । निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः । कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धांजली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः । व्यक्ताऽव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः

कर्मका स्मरण रहैगा ॥ २० ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवताओंके सौ वर्ष बीत जाने पर मेरे अनुग्रहसे श्रीकृष्णकी समीपताको पाकर यह नलकूबर और मणिग्रीव फिर देवयोनिको प्राप्त होंगे और इनको उन श्रीकृष्णजीकी भक्ति प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! उन देवर्षि नारदजीने ऐसे कह कर नरनारायणके आश्रम (बदरिकाश्रम) को गमन करा और नलकूबर मणिग्रीव यह गोकुल में यमलार्जुन वृक्ष होकर रहे ॥ २३ ॥ इसप्रकार राजाका बूझा हुआ शापका कारण कह कर अब प्रस्तुतविषयको कहते हैं कि—भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीका कथन सत्य करनेको ओखलीमें बँधे हुए श्रीकृष्णजी, जहाँ वह यमलार्जुन वृक्ष थे तहाँ धीरे २ पहुँच गये ॥ २४ ॥ इसका अभिप्राय यह है कि-क्योंकि-नारदजी मुझे अति प्रिय हैं और यह कुवेरके पुत्र देवता होकर वृक्षयोनिको प्राप्त होगये हैं इस कारण उन महात्मा नारदजीने देवताओंके सौ वर्षके अनन्तर श्रीकृष्णजीका दर्शन होनेपर यह शापसे छूटजायँगे' ऐसा जो कहा था उसको वैसे ही साधता हूँ ॥ २५ ॥ ऐसा मनमें विचार कर वह श्रीकृष्णजी जुड़े हुए उन अर्जुन नामक वृक्षोंके मध्यमें गये, सो श्रीकृष्णजीके प्रवेश करते ही वह उनका खचेड़ा हुआ ऊखल भी तिरछा होकर चलता गया२६उस समय पीछे २ तिरछे लुढ़कते जाने वाले और वृक्षोंमें अटकेहुए तिस ऊखलको वेगसे खैंचनेवाले और डोरीसे बँधेहुए उन श्रीकृष्ण बालकने,जिन की जड़ उखाड़ दी हैं और उन ही परमेश्वरके पराक्रमसे जिनके गुद्दे, पत्ते और डालियें अत्यन्त कम्पायमान होगई हैं ऐसे वह दोनों अर्जुनके वृक्ष बड़ा भयंकर कड़कड़ाहटका शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़े ॥ २७ ॥ और जैसे वृक्षोंमें होनेवाला अग्नि, उनमेंसे मूर्त्ति धारण करे हुए प्रकट होता है तैसे ही उन वृक्षोंमेंसे प्रकटहुए और परमकान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित करने वाले दोनों सिद्ध (नलकूबर और मणिग्रीव) श्रीकृष्णजीके समीप आये और संपत्तिके मदसे रहितहुए उन्होंने सकल लोकोंके नाथ श्रीकृष्णजीको मस्तकसे प्रणाम करके हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहा कि–॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अचिन्त्य प्रभाव ! तुम गोपके बालक नहीं हो किन्तु सकल जगत्के कारणभूत परमपुरुष हो, स्थूल सूक्ष्मरूप यह सकल जगत्,

सर्वभूतानां देहास्वात्मेंद्रियेश्वरः । त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजःसत्वतमोमयी । त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः । कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥ यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः । तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४ ॥ स भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च । अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५॥ नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल । वासुदेवाय शांताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूम-

तुम्हारा ही स्वरूप है ऐसा ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ॥ २९ ॥ जगत्के नियन्ता भी तुम ही हो, क्योंकि-सकल प्राणियोंके जो देह, प्राण, अहंकार और इन्द्रियें हैं उन सब की रक्षा करने वाले एक तुम ही हो यदि कहो कि—काल इस जगत्का निमित्तकारण है, प्रकृति उपादान कारण है,प्रकृतिसे उत्पन्नहुआ महत्तत्त्व जगत्के आकार रूपसे परिणामको प्राप्त होता है, इसका कर्त्ता और नियन्ता पुरुष है इसमें मैं क्या हूँ ? सो हे भगवन् ! अविनाशी, ईश्वर, विष्णु तुम ही हो इस कारण काल भी तुम ही हो अर्थात् काल तुम्हारी लीला है ॥ ३० ॥ महत्तत्त्व और रज,सत्त्व,तम इन तीन गुणोंसे युक्त प्रकृति नाम वाली सूक्ष्म शक्ति भी तुम ही हो, तुमही सर्वसाक्षी पुरुष हो और सबोंके शरीर, इंद्रियों तथा मनोंके रोग, राग, और प्रीति आदि विकारोंके जानने वाले तुम ही हो अतः सब कुछ तुम ही हो ॥ ३१ ॥ मैं ही यदि सब कुछ हूँ तो घट आदि पदार्थोंका ज्ञान होने पर मेरा ज्ञान क्यों नहीं होता है ? और यदि ऐसा होगा मानो तो सब पुरुष ब्रह्मज्ञानी होने चाहियें ? यदि ऐसा कहो तो हे भगवन् ! प्रकृतिके गुणकार्यरूप बुद्धि, अहंकार, इंद्रियें आदि जो दीखने वाले विकार उनसे सकल विश्वको देखने वाले आपको ग्रहण नहीं होता है, सो फिर प्रकृतिका कार्य न होनेके कारण जीव ही मेरे स्वरूपको जाने, ऐसा कहो तो हे भगवन् ! जीव आदिकी उत्पत्ति होनेसे पहिले ही अपने प्रकाशसे सिद्ध आपको, इस संसार में देहादिकोंसे लिपटा हुआ कौन जीव जाननेको समर्थ होगा, अर्थात् कोई नहीं होगा ॥ ३२ ॥ इस कारण षड्गुण ऐश्वर्यवान्, वसुदेवजीके पुत्र, प्रजाओंकी रक्षा करने वाले और आपसे प्रकाश पाने वाले सत्वादि गुणोंसे जिनकी महिमा, मेघों से सूर्यके प्रकाशके ढक जानेकी समान ढकी हुई है ऐसे ब्रह्मरूप आपको नमस्कार हो ॥३३॥ मैं ऐसा ईश्वर हूँ यह तुमने कैसे जाना ? यदि ऐसा कहो तो हे भगवन् ! देहधारी जीवोंसे भिन्न और जिनकी समान वा जिनसे अधिक किन्हींमें नहीं है ऐसे तुम्हारे पराक्रमोंसे, शरीर रहित भी जिन तुम्हारे अवतार प्राणियोंमें समझे जाते हैं ऐसे चारप्रकारके पुरुषार्थोंके स्वामी तुम,सकल लोकोंकी उन्नतिके निमित्त और मोक्षके निमित्त अपने परिपूर्ण स्वरूपसे इस समय अवतीर्ण हुए हो ३४॥३५ हे परमकल्याण ! तुम्हें नमस्कार हो, हे परम मङ्गल ! तुम्हें नमस्कार हो, सर्वान्तर्यामी और शान्त तुम यादवोंके पालकको नमस्कार हो ॥ ३६ ॥ हे व्यापक ! हम

स्तवानुचरकिंकरौ । दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः । स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः । दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ३९ श्रीभगवानुवाच । ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना । यच्छ्रीमदांधयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥ साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् । दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥४१॥ तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूवरसादनम् । सञ्जातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः॥४२॥श्रीशुक उवाच । इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः । बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः१०

श्रीशुक उवाच । गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् । तत्राजग्मुः कुरु-

---

तुम्हारे सेवक जो नारदजी तिनके दास हैं, हमें अपने स्थानको जानेकी आज्ञा दीजिये, हे भगवन् ! हमें आपका दर्शन, नारद ऋषिके अनुग्रहसे ही हुआ है ।३७। अपने स्थानको पहुँचने पर भी हमारा फिर पहिलेकी समान दुष्टस्वभाव न हो, किन्तु हमारी वाणी तुम्हारे गुणगान करनेमें तत्पर हो,हमारे कान तुम्हारी कथाओंके सुननेमें, हाथ तुम्हारी पूजा आदि कर्म करनेमें, मन—तुम्हारे चरणोंका स्मरण करनेमें, शिर—तुम्हारे निवासस्थान जगत्को नमस्कार करनेमें और दृष्टि—तुम्हारी मूर्त्तिरूप सत्पुरुषोंका दर्शन करनेमें तत्पर होय ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार उन नलकूवरोंके स्तुति करने पर, डोरीसे ऊखलमें बँधे हुए वह गोकुलपति भगवान् श्रीकृष्णजी, हँस कर उन नलकूवर और मणिग्रीवसे कहने लगे ॥ ३९ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे गुह्यको ! सम्पत्तिके मदसे अन्ध हुए तुम्हारे ऊपर दयालु हुए नारदऋषिने, वाणीके द्वारा लक्ष्मीका नाशरूप अनुग्रह करा है, यह मुझे पहिलेसे ही विदित है ॥ ४ ॥ और यह योग्य ही है, आश्चर्य नहीं है, क्योंकि–जैसे सूर्यके दर्शनसे दृष्टिको रोकने वाला अन्धकार दूर होजाता है तैसे ही आत्मज्ञानी साधुओंका उनमें भी विशेष करके मेरे विषैं चित्त लगाने वाले साधुओंका दर्शन करके बन्धन नहीं प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ इस कारण हे नलकूवर ! हे मणिग्रीव ! तुम मेरा ध्यान आदि करनेमें तत्पर होते हुए अपने स्थानको चले जाओ, तुमको मेरे विषैं इच्छा करा हुआ परमप्रेम प्राप्त हुआ ही है, यह ही संसार बन्धनको दूर करने वाला है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान्के आज्ञा करे हुए वह नलकूवर मणिग्रीव ऊखलसे बँधे हुए तिन श्रीकृष्णजीको वारम्वार प्रदक्षिणा और नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर उत्तर दिशाकी ओरको चले गये ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ

इस ग्यारहवें अध्यायके विषैं वृन्दावनमें आकर फिर बालकोंके साथ बछड़ोंकी रक्षा करने वाले श्रीकृष्णजीने, वत्सासुर और बकासुर इन दोनोंका ही वध करा

श्रेष्ठ निर्घातभयशंकिताः ॥ १ ॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ । बभ्रमुस्त-दविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् । कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥ बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूख-लम् । विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् । बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥५॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् । विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥ गोपीभिः स्तोभि-तोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् । उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् । बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमा-

---

यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे कुरुश्रेष्ठ राजन् ! नन्दादि गोप, गिरने वाले उन वृक्षोंका शब्द सुन कर वज्रपातके भयसे शंकित-चित्त होतेहुए तहाँ आये ॥ १ ॥ और उन्होंने तहाँ भूमिपर पड़े हुए वह यमलार्जुन वृक्ष देखे, परन्तु वह गिरनेका कारण प्रत्यक्ष होने पर भी उसको लक्ष्य (ध्यान) में न लाते हुए भ्रममें पड़ गये ॥ २ ॥ अर्थात् ओखलीको खचेड़ते हुए, डोरीसे बँधे हुए उन श्रीकृष्ण बालकको न जान कर, यह किसी राक्षसादिका काम है ? यह किस कारणसे हुआ है ! यह तो बड़ा आश्चर्य है ! यह क्या आने वाले दुःखकी सूचना देने वाला उत्पात है ? ऐसा कह कर भयसे व्याकुल होते हुए वह नन्दादि गोप भ्रममें पड़ गये अर्थात् वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सके ॥ ३ ॥ तब उनसे तहाँ खेलते हुए बालक कहने लगे कि-टेढ़े पड़े हुए ऊखलको खचेड़ने वाले और वृक्षोंके मध्यमेंको गये हुए इस कृष्णने ही वृक्षोंको गिराया है, यह हमने देखा है, केवल इतना ही नहीं किन्तु उन वृक्षोंमेंसे निकले हुए दो दिव्य पुरुष भी हमने देखे थे ॥ ४ ॥ तब तहाँ जो गोप केवल तर्कना ही करने वाले थे, उन्होंने उस बालकके हाथसे ऐसे बड़े वृक्षोंका उखड़ जाना सम्भव नहीं है, ऐसी तर्कनासे उन बालकों का कहना नहीं माना, कितनों हीने तो-पूतना, तृणावर्त्त आदिकोंका प्राणान्त प्रत्यक्ष देखा था इस कारण वह यह भी कृष्णका ही कार्य है या नहीं ? ऐसे सन्दिग्ध चित्तवाले होगये ॥ ५ ॥ डोरीमें बँधे ऊखलको खचेड़ते हुए अपने पुत्रको देखकर हँसनेवाले नन्दजीने उसको शीघ्र ही खोल दिया ॥ ६ ॥ फिर भगवान्ने 'मुझे लोक जान जायँगे' ऐसी शङ्कासे अत्यन्त ही बालभावके अनुकरण करे कि-जब गोपियोंने इस प्रकार प्रशंसा करी कि—तू बड़ा अच्छा नृत्य करे है तब भगवान् बालककी समान नृत्य करते थे, तैसे ही कभी गानेके निमित्त गोपियोंने उनकी प्रशंसा करी तो काठकी पुतलीकी समान उनके वशमें होकर अनजान बालककी समान जैसे उनको हर्ष आदि प्राप्त होय तैसे बड़े ऊँचे स्वरसे गान करते थे ॥ ७ ॥ कभी गोपियोंने, पीढ़ा, पसेरी और पादुका आदि लानेकी आज्ञा करी तो उन भारी वस्तुओंके लानेमें असमर्थ होकर भी केवल हाथोंसे उनको उठाते थे, कभी हमारे साथ युद्ध कर, ऐसा कहने पर अपने गोकुलवासी भक्तोंको और तिस चरित्रके देखने वालोंको हर्षित करते हुए दण्ड ठोकना आदि मल्ललीलाकी क्रीडा करते

वहन् ॥ ८ दर्शयन्स्तद्विदां लोके आत्मनो भृत्यवश्यताम् । व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः ॥९॥ गृह्णीहि भो फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः । फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १० ॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् । फलैरपूरयद्रत्नैः फलभांडमपूरि च ॥११॥ सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् । जन्मर्क्षमद्य भवतो विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १२ ॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् । त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १३ ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासंगेन पुत्रकौ । यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् १४इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप । हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १५ ॥ क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् । यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १६ ॥ कृष्ण कृष्णारविंदाक्ष तात एहि स्तनं पिब । अलं विहारैः क्षुत्क्षांतः क्रीडाश्रांतोसि पुत्रक ॥ १७ ॥ हे रामागच्छ ताताशु

थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार लोकमें जो उनके ऐश्वर्यको जाननेवाले ज्ञानी थे तिनको केवल अपना भक्तोंके वशमें होना दिखाते हुए वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, बालककी समान क्रीडा करके गोकुलवासियोंके चित्तमें हर्ष उत्पन्न करते थे ॥ ९ ॥ एक समय बेर आदि फल बेचनेवाली मालिनने अरे लोगों ! फल मोल लेओ, ऐसा कहा सो उसके शब्दको सुनकर सकल फल देनेवाले श्रीकृष्णजी, फल लेनेके निमित्त अन्न लेकर दौडते हुये उस मालिनके समीप आये ॥ १० ॥ तब दौडकर बाहर आनेवाले उन श्रीकृष्णजीके, जिनमेंसे मार्गमें कुछ अन्न बिखरता आया है ऐसे दोनों हाथ, फल बेचनेवाली मालिनने, फलोंसे भर दिये, श्रीकृष्णजीने, बिखरते २ हाथमें शेष रहे हुए अन्नके द्वारा उसका फलोंका पात्र (टोकरी) मोती आदि रत्नोंसे भर दिया ॥ ११ ॥ तदनन्तर एक दिन यमुनाजीके तटपर जाकर खेलते हुये अर्जुन वृक्षके तोडने वाले कृष्णको माताने पुकारा कि—अरे बेटा ! आज तेरा जन्मनक्षत्र है सो तू स्नानादिसे शुचि होकर ब्राह्मणोंको गौओंका दानकर ॥१२॥ अरे कृष्ण ! देख २ यह तेरी समान अवस्थाके बालक, माताके स्नान कराये हुये और आभूषण धारण करेहुये हैं, अरे ! तू भी स्नान करके भोजन करले, और आभूषण धारण करके आनन्दसे खेल ॥१३॥ अपने पुकारने पर वह रामकृष्ण, खेलमें मगन होनेके कारण जब नहीं आये तब उनको बुलानेके निमित्त रोहिणीने, पुत्र पर प्रेम करने वाली यशोदाको भेजा ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार स्नेहवश जिसकी बुद्धि श्रीकृष्णजीके विषैं अत्यन्त आसक्त होरही है ऐसी वह यशोदा ब्रह्मादिकोंके भी चूडामणि (परमपूजनीय) तिन अच्युत भगवान्को अपना पुत्र मान उनका बलराम सहित हाथ पकडके अपने घरको लेगई और उनको स्नान भोजन कराकर गहने पहराये फिर जन्म नक्षत्रका उत्सव करा ॥१५॥ फिर एक दिन पुत्रके स्नेहसे जिसके स्तनोंमेंसे दूध टपक रहा है ऐसी वह यशोदा, बहुत देरीसे बालकोंके साथ खेलनेवाले श्रीकृष्णजीको पुकारने लगी कि—॥ १७ ॥ हे कमलनयन ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! घरको आओ, बहुत खेलचुका, अरे बेटा ! तू खेलते २ बहुत थक गया है

सानुजः कुलनन्दन । प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १८ ॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः । एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ।१९। श्रीशुक उवाच । गोपवृद्धा महोत्पातानुभूय बृहद्वने । नन्दादयः समागम्य व्रज-कार्यममंत्रयन् ॥ २० ॥ तत्रोपनन्दनः प्राह गोपो ज्ञानवयोधिकः । देशकालार्थ-तत्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥ २१ ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितै-षिभिः । आयांत्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २२ ॥ मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ । हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २३ ॥ चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् । शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२४॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरंतरं प्राप्य बालकः । असावन्यतमो वाऽपि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२५॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः । तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २६ ॥ वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् । गोपगोपीगवां सेव्यं

और भूँखसे घबडा रहा है इस कारण स्तन पीले ॥१७॥ हे तात ! कुलनन्दन राम ! तू कृष्णके साथ शीघ्रतासे घरको आ, अरे ! तूने प्रातःकाल ही भोजन करा है सो तू अब शीघ्रतासे भोजन करले ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! भोजन करनेको उद्यत हुये गोकुलपति (नन्द) तेरी बाट देख रहे हैं इस कारण शीघ्र ही घरको आ, हम दोनों को आनन्दित कर, अरे बालकों ! तुम भी अपने अपने घरको जाओ ॥ १९ ॥ इस प्रकार बृहद्वनमें क्रीडा करके अब वृन्दावनमें जानेकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णजीके प्रेरणा करे हुये गोपोंकी सम्मतिका वर्णन करते हुये श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-नन्द आदि वृद्ध गोप, बृहद्वनमें पूतना आई,इत्यादि बडे२ उत्पातोंको भोगकर एक समय सब एक स्थानपर इकट्ठे हुये और गोकुलके हितकी सम्मति करने लगे २० उनमें उपनन्द नामवाला एक गोप, अधिक अवस्थावाला और सबसे बुद्धिमान् था तथा कौन समय कैसा बर्त्ताव करने पर अपना कार्य सिद्ध होता है इसके तत्वको जाननेवाला और रामकृष्णका प्रिय करनेवाला था, वह कहनेलगा कि-२१ गोकुल का हित चाहनेवाले हमको यहाँसे उठकर दूसरे स्थानपर चलाजाना चाहिये क्यों कि-यहाँ बालकोंके नाशके कारण बडे२ उत्पात प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ देखो—यह बालक श्रीकृष्ण, बालकोंके मारने वाली तिस पूतना राक्षसीसे दैववश ही छूटा है, तैसे ही निःसन्देह श्रीहरिकी कृपासे ही इसके ऊपर छकडा नहीं गिरा ॥२३॥ इस बालकको चक्रवातरूप (हवाकी चक्राकार गाँठरूप) दैत्य, पक्षियोंके विचरनेके स्थान आकाशमें लेगया था तहाँ और तहाँसे भी यह शिलापर आकर गिरा तबभी हमारे आराधना करेहुए देवताओंने ही इसकी रक्षा करी २४ उन दोनों यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें फँसकर यह कृष्ण वा दूसरा कोई भी बालक जो मरणको नहीं प्राप्त हुआ वह भी भगवान्ने ही रक्षा करी ॥ २५ ॥ इस कारण जबतक और उत्पातोंके कारणसे अनर्थ गोकुलको स्पर्श न करे तब तक (तिससे पहिले ही) बालकोंको लेकर गोधन और सेवकादिकोंको साथ ले हम यहाँसे और स्थानको जायँगे ।२६। एक वृन्दावन नाम वाला वन है, वह पशुओंका हितकारी, नये २ बागोंसे युक्त,

पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥२७॥ तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान् युङ्क्ष्व मा चिरम्। गोधनान्यग्रतो यांतु भवतां यदि रोचते ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः। व्रजान्स्वान् स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥२९॥ वृद्धान्बालान् स्त्रियो राजन् सर्वोपकरणानि च। अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ ३० ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः। तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः। गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुंकुमकांतयः। कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककंठ्यः सुवाससः ३२ तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते। रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३३ ॥ वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम्। तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३४॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च। वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप॥३५॥एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः। कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥३६॥ अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः। चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३७ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः

गोपाल गोपी और गौओंके सेवन करनेयोग्य तथा पवित्र पर्वत,तृण और लताओंसे युक्त है२७तहाँ जाना यदि तुम सबोंको रुचे तो आज ही चलेंगे, अपने २ छकड़ोंमें सामान भर कर बैल जोतो,देरी न करो,गोधनोंको आगे २ लेचलो२८ऐसा उपनन्द गोपका वचन सुनकर सब एकमति होकर बहुत अच्छी वार्त्ता है बहुत अच्छी वार्त्ता है ऐसा कहते हुए अपने २ छकडोंके समूहको जोडकर उनके ऊपर घरकी सामग्री (सामान) लादकर चलदिये ॥ २९ ॥ हे राजन्! वह गोपाल वृद्ध, बालक, स्त्रियें, और बर्त्तन भांडे आदि सब सामग्रीको गाड़िओं पर लाद आप कमर बाँध सावधानीके साथ हाथमें धनुष लेकर, गोधनको आगेकर चारों ओरको नरसिंहा बजाकर बाजोंका बडभारी शब्द करते हुए पुरोहित ब्राह्मणोंके साथ चलदिये ।३०।३१। उस समय जिनके कण्ठोंमें हमेलें हैं और सकल आभूषणोंसे शोभित हुई तथा स्तनों में लगाए हुए नवीन केशरसे जो शोभायमान होरही हैं और जिन्होंने उत्तम वस्त्र पहिने हैं ऐसी रथोंमें बैठीहुई गोपियें, बडे आनन्दके साथ कृष्णकी लीलाएँ गाने लगीं ॥ ३२॥ तथा उन कृष्ण और रामके चरित्रोंको सुननेमें उत्कण्ठित हुई यशोदा और रोहिणी उन ही कृष्ण और रामको लेकर एकरथमें बैठकर चलतेमें शोभाको प्राप्त हुई ॥ ३३ ॥ इस प्रकार नन्द आदि गोपोंने गरमी आदि सकल ही ऋतुओंमें सुख देनेवाले उस वृन्दावनमें प्रवेश करा और तहाँ उन्होंने अर्धचन्द्रके समान आकारसे छकडोंको खड़े करके गोकुलके वसनेका स्थान बनाया ॥३४॥ हे राजन्! कृष्ण और बलरामने भी वृन्दावन गोवर्द्धन और यमुनाकी कछारोंको देखकर, यह क्रीडा आदि करनेके योग्यस्थान हैं ऐसा मनमें विचारकर परम आनन्द माना ३५ इस प्रकार बालचरित्रोंसे और मधुर भाषणोंसे गोकुलवासी पुरुषोंको प्रसन्न करने वाले वह बलराम और श्रीकृष्णजी, कुछ कालमें बछडे चराने योग्य अवस्थाके हो गए ॥ ३६ ॥ गोकुलसे कुछ एक दूर स्थानमें गोपालोंके बालकोंके साथ मुरली, बेत आदि खेलनेकी सामग्री लेकर क्रीडा करनेवाले वह बलराम और श्रीकृष्ण बछड़ोंको

क्वचित् । क्वचित्पादैः किंकिणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥३८॥ वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् । अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥३९॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः । वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ४० ॥ तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः । दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥४१॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलांगूलमच्युतः । भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् । स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४२ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति । देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४३ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ । सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयंतौ विचेरतुः ॥ ४४ ॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यंत एकदा । गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पशून्जलम् ॥ ४५ ॥ ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् । तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४६ ॥ स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् । आगत्य सहसा

चराने लगे३७वह कभी मुरली बजाते थे, कभी गोफनोंसे पत्थर फैंकते थे, कभी पैरों में घूँघरू बाँधकर नृत्य करते थे, कभी कम्बलकी घोंघी आदि ओढ़कर बैलोंका स्वाँग बनाने वाले दूसरे गोपालोंके बालकोंके साथ आप भी तैसाही बैलोंका स्वाँग धर कर गर्जना करते हुए परस्पर युद्ध करते थे, कभी तिन २ जातियोंके शब्दोंसे हंस मोर आदिका अनुकरण (नकल) करके साधारण बालकोंकी समान क्रीडा करते थे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ एक समय यमुनाके तट पर अपने प्रेमी सखाओंके साथ बछड़े चराने वाले तिन बलराम और श्रीकृष्णजीको मारनेकी इच्छा करनेवाला एक दैत्य आया ॥ ४० ॥ बछड़ोंके समूहमें आये हुए उस बछड़ेका रूप धारण करनेवाले दैत्यको देख कर, भौंके संकेत (इशारे) से बलरामजीको दिखाते दिखाते, अनजानकी समान वह अच्युत श्रीकृष्णजी धीरे२ उसके पास आये ॥४१॥ और उन्होंने पूँछ सहित उसके पिछले पैरोंको पकड़कर घर २ घुमाया और घुमानेसे ही प्राणहीन हुए उसको एक कैथके पेड पर फेंक दिया ॥ ४२ ॥ तब अन्तकालमें मायाका स्वरूप न रहनेके कारण बड़ा शरीर धारण करने वाला वह दैत्य, गिराये हुए कैथके फलोंके साथ आप भी भूमि पर गिर पड़ा उस पड़े हुए दैत्यको देख कर आश्चर्य में हुए सब ही बालक 'हे कृष्ण ! तुमने बहुत अच्छा करा, बहुत अच्छा करा' इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी प्रशंसा करने लगे, उस समय परम प्रसन्न हुए देवताओं ने भी पुष्पोंकी वर्षा करी ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सकल लोकोंके मुख्य पालक वह बलराम और श्रीकृष्णजी बछड़ोंके पालक (रखवाले) होकर साथमें प्रातःकालका भोजन लेकर बछडोंको चराते हुए विचरने लगे ॥ ४४ ॥ एक समय बलराम कृष्ण आदि सब ही गोपोंके बालकोंने अपने अपने बछडोंके समूहको, पानी पिलानेके निमित्त यमुनाजीकी झील पर जाकर पानी पिलाया और आप भी पिया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उन बालकोंने यमुनाकी कछारमें, इन्द्रके वज्रसे टूट कर भूमि पर गिरे हुए पर्वतके शिखरकी समान बगलेके रूपका एक बड़ा भारी प्राणी देखा और वह भयभीत होगये ॥ ४६ ॥ वह तीखी चोंचका बगुलेका रूप धारण करने वाला बक

कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४७ ॥ कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः । बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४८ ॥ तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः । चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ४९ तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः । पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ५० ॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः । समीडिरे चानकशंखसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥ ५१ ॥ मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवेन्द्रियो गणः । स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥ ५२ ॥ श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः । प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ५३ अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् । अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५४ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः । जिघांसयैनमासाद्य नश्यं-

नाम वाला महाबली दैत्य था, उसने एक साथ श्रीकृष्णजीके शरीरपरको झपट कर उनको निगल लिया ४७ तब कृष्णको महाबकने निगल लिया यह देखकर बलरामजी के सिवाय सब ही गोपोंके बालक, जैसे प्राणोंके विना इन्द्रियें चेष्टारहित होजाती हैं तैसे मूर्छित होगये ॥४८॥ इधर बकने तालुएके मूलको अग्निकी समान जलाने वाले ब्रह्माजीके पिता परन्तु नन्दजीके बालक तिन श्रीकृष्णजीको, बिना कुछ पीडा हुए ही तत्काल वमन करके बाहरको उगल दिया और बड़े क्रोधमें भर कर चोंचसे उनको मारनेके निमित्त फिर उनके शरीरपरको झपटा ॥ ४९ ॥ तब भक्तोंके पालक और देवताओंको आनन्द देने वाले उन श्रीकृष्णजीने, वेगसे आते हुए उस बकासुरकी चोंचके 'नीचेका और ऊपरका' दोनों भागोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ कर सकल बालकोंके देखते हुए पतेलकी समान सहजमें चीर डाला ॥ ५० ॥ तब स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंने, नन्दनवनमेंके मल्लिका आदि फूलोंकी दकासुर के शत्रु (श्रीकृष्णजी) के ऊपर वर्षा करी नगाड़े तथा शंखके शब्दके साथ उत्तम उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करी, यह देख कर गोपोंके बालक आश्चर्यमें होगये ॥ ५१ ॥ तब बलराम आदि बालक बकासुरके मुखमेंसे छूटेहुए उन श्रीकृष्णको पाकर अपने बैठनेके स्थान पर आये हुए उनको आलिङ्गन करके, जैसे प्राणोंके विना व्याकुल हुआ इन्द्रियोंका समूह, फिर अपने स्थानमें आये हुए प्राणका संयोग पाकर आनंद पाता है तैसे ही आनन्दको प्राप्त हुए और सायंकालके समय सब बछड़ोंको इकट्ठा कर गोकुलमें आकर वह बकासुरका वध आदि कृष्णका चरित्र कहने लगे ॥५२॥ गोपोंके बालकोंके कहे हुए उस कृष्णचरित्रको सुन कर अति प्रीतिसे आनन्दयुक्त हुई गोपियें और, गोप मानो मरणको प्राप्त होकर फिर लौट कर आये हुए उन श्रीकृष्णजीकी ओरको तृप्त न हुए और अमृतसा पीते हुए नेत्र से देखने लगे ॥ ५३ ॥ और कहने लगे कि-अहो ! क्या कहा जाय ! इस बालकको अनेकों बार मृत्युके कारण (दैत्य आदि) प्राप्तहुए तथापि, उन्होंने पहिले दूसरोंको भय दिया इसकारण उनका ही नाश होगया ॥ ५४ ॥ यद्यपि वह (दैत्य) देखनेमें ही प्राण हरणसे कर

त्यग्नौ पतंगवत् ॥ ५५ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् । गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥५६॥ इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा । कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन् भववेदनाम् ॥ ५७ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

श्रीशुक उवाच । क्वचिद्वनाशाय मनो दधद् व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् । प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥ तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः । स्वान् स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्व-

लेते थे तथापि वह, इस बालकका जरा भी बाल बाँका करनेको समर्थ नहीं हुए, किन्तु मारनेकी इच्छासे इसके समीप आकर 'जैसे अग्निका नाश करनेको आयेहुए पतङ्गे आप ही नष्ट होजाते हैं तैसे ही, आप ही नाशको प्राप्त होगये ॥ ५५ ॥ अहो! ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंकी वाणी कभी भी मिथ्या नहीं होती है, क्योंकि—भगवान् गर्गऋषिने, 'हे नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र गुणोंमें नारायणकी समान ही है' इत्यादि जो जो कहा था सो तैसा ही हमारे अनुभवमें आया है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार कहने वाले नन्दादि गोपोंने, हर्षसे कृष्ण और बलरामकी कथा वर्णन करतेहुए और उनके साथमें आनन्दित होतेहुए संसारबंधनके तापको भी अनुसंधान नहीं रक्खा।५७ यह कहे हुए तथा और भी धाईविछौना खेलना, पुल बाँधना वानरोंकी समान कूदना इत्यादि छोटे बालकोंके खेल खेल कर उन श्रीकृष्णजीने गोकुलमें अपना बालपन बिताया ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ छ ॥ * ॥ छ

अब इस बारहवें अध्यायमें, अजगर सर्पका वेष धारण करने वाले और बछरों तथा बछड़ोंके रखवालोंको निगल जाने वाले अघासुरका, क्रोध में भरे हुए श्रीकृष्णजीने उसके गलेमें अपने शरीरको बढ़ा कर वध करा यह कथा वर्णन करी है पहिले बड़े भारी बकासुरके गलेमें केवल अपनी ही क्रीड़ा हुई यह कौतुककी बात नहीं है ऐसा दिखानेके निमित्त ही श्रीकृष्णजीने मानो अब अपने मित्रोंके साथ अघासुरके मुखमें प्रवेश करा ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! एक समय, वनमें ही पहिले भोजन करनेके निमित्त प्रातःकाल उठ कर मनोहर सींगके शब्दसे समान अवस्थाके गोप बालकोंको 'मैं वनमेंको जाता हूँ तुम सब भी शीघ्र ही आओ' ऐसा सूचित करने वाले श्रीकृष्णजी बछड़ोंको आगे करके गोकुल से चल दिये ॥ १ ॥ तब उन श्रीकृष्णजीके साथ ही उनके प्रेमी सहस्रों गोपोंके बालक, प्रातःकालके भोजनके सुन्दर छीके,बेत,सींग और मुरली यह सामग्री लेकर सहस्रोंसे भी अधिक संख्याके अपने२ बछड़ोंको आगे आगे चलातेहुए बड़े आनंदके साथ गोकुलके बाहर निकले।२।तदनन्तर वह बालक श्रीकृष्णजीके असंख्य बछड़ोंमें अपने बछड़ोंको मिलाकर चरातेहुए उन वनोंमें,छोटे बालकोंके अनेकों प्रकारके खेल

वत्सकान् । चारयंतोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः । काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥ मुष्णंतोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः । तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् । अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥६॥ केचिद्वेणून्वादयंतो ध्मांतः शृङ्गाणि केचन । केचिद् भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥७॥ विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधु हंसकैः । बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥८॥ विकर्षन्तः कीशबालानारोहंतश्च तैर्द्रुमान् । विकुर्वंतश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलंघंतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः । विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपंतश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन । मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

खेलने लगे ॥ ३ ॥ उनको, उनकी माताओंने, पहिले काँच (झूठे मोती आदि), गुञ्जा (चोंटली), रत्न और सुवर्ण आदिके गहनोंसे भूषित कर दिया था तथापि अति उत्सुकतासे उन्होंने फिर फलोंके गुच्छे, पल्लव, फूलोंके गुच्छे, मोरोंके पंख और गेरू आदि धातुओंसे भूषित करा ॥४॥ वह आपसमें एक दूसरे के छींके सींग आदि चुरा कर छुपा देते थे, और वह मेरे पास है ऐसा उसने जान लिया, यह समझते ही दूरको फेंक देते थे, तदनन्तर उसको पाकर दूसरे और भी दूरको फेंक देते थे, इस प्रकार जिसका छींका आदि फेंका जाता था उसके रोनेको होजाने पर, हँसते हुए छींका आदि लाकर देदेते थे ॥५॥ किसी समय श्रीकृष्णजी, यदि वनकी शोभा देखनेको दूर चले जाते थे तो उनको, 'मैं पहिले छूऊँगा, मैं पहिले छूऊँगा' ऐसी प्रतिज्ञा करके (बाजी बद कर) दौडतेर जाकर उनको स्पर्श और आलिङ्गन करके परम आनन्द पाते थे ॥ ६ ॥ कितने ही बालक मुरली बजाते हुए खेलते थे, कितने ही सींग बजाते थे, कितने ही भौंरोंके साथ गाते थे, कितने ही कोकिलाओंके साथ वैसा ही शब्द करते थे, कोई पक्षियोंकी छायाओंके साथ दौडने थे कोई हंसोंके साथ उनकी समान मनोहर गतिसे चलते थे, कितने ही बगलों के समीपमें उनकी समान ध्यान करते हुये बैठते थे, कोई मोरोंके साथ उनका सा नृत्य करते थे, कितने ही वृक्षोंकी शाखाओंमें नीचेको लटकती हुई पूँछोंको खैंचते हुए और उनको पकड कर आप वृक्षोंपर चढते थे, कोई वानरोंके साथ उनको दाँत निकाल कर दिखाते थे, कोई वानरोंके साथ वृक्षोंकी एक शाखासे दूसरी शाखापरको कूद कर जाते थे ॥ ७-९ ॥ कोई नदीकी कछारमें बहते हुए थोडसे जलमें गोता लगा कर मेंडकोंके साथ उनकी समान छलांग मार मारकर कूदते थे, कोई नदीके जलमें पडी हुई अपनी छायाओंको हँसते थे, कोई अपने ही शब्दकी प्रतिध्वनि (गुञ्जार) निकलने पर, यह कोई दूसरा मनुष्य बोल रहा है ऐसा समझ कर उसको 'अरे तू चोर है' इत्यादि गालियें देते थे ॥१०॥ इस प्रकार गोपोंकी क्रीडाका वर्णन करके विस्मयमें होते हुए उनकी प्रशंसा करते हैं—हे राजन् ! इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषोंको स्वप्रकाश परमस्वरूप, दासभाव रखने वाले भक्तोंको आत्मस्वरूप देने वाले उन भग

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यलभ्यः । स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः । नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥ दृष्ट्वाऽर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकी बकानुजः । अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोरथैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥ एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः । प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिंता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् । धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठो जलदोत्त-

वान् श्रीकृष्णजीके साथ, जिन्होंने बहुतसे पुण्य करे हैं तिन गोपोंके बालकोंने क्रीडा करी, इससे अधिक उनके भाग्यका क्या वर्णन करें ? ॥ ११ ॥ जिन भगवान्‌के चरणोंकी रज, अनेकों जन्मोंमें करे हुए तपसे और समाधि आदिके कष्टोंसे जिन्होंने अपने मनको वशमें कर लिया है उन योगियोंको भी दुर्लभ है, वही भगवान् आप ही जिनकी दृष्टिके सन्मुख आकर बस रहे हैं, उनके भाग्यका क्या वर्णन करें वह वाणीके और मनके भी अगोचर हैं ॥ १२ ॥ इस प्रकार बलराम और श्रीकृष्णजीके साथ गोपोंके बालकोंकी क्रीडा होनेपर, उस सुखसे होतीहुई क्रीड़ाको देखना जिसको सहन नहीं हुआ है ऐसा एक अघासुर नामवाला बड़ा भारी दैत्य, उस वृन्दावनमें अकस्मात् आगया, वह इतना बलवान् था कि—अमृत पीनेके कारण अमर हुए देवताओंने भी 'हम इसके हाथसे जीवित रहेंगे या नहीं' ऐसी शङ्का करके जीवित रहनेकी इच्छासे वह, यह दुष्ट दुरात्मा कब और कैसे मरेगा, ऐसी निरन्तर बाट देख रहे थे, अथवा इसका ही दूसरा अर्थ यह होता है कि—उन बलराम श्रीकृष्णजी आदिकोंकी क्रीड़ा ऐसी थी कि—अमृत पीकर अमर हुए भी देवता हमारे जीवित रहनेकी सफलता हो, ऐसा मनमें विचार कर जिनकी क्रीडाका मनमें चिन्तवन करते थे अर्थात् केवल अमृत पीनेसे ही जीवनका साफल्य नहीं होता है किन्तु भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करनेसे ही होता है इस कारण उनका ही निरन्तर ध्यान करते थे ॥ १३ ॥ इधर कंसका आज्ञा करा हुआ, पूतना और बकासुरका छोटा भ्राता वह अघासुर, जिनमें कृष्ण मुख्य हैं ऐसे बालकोंको देखकर, यह कृष्ण ही मेरे भाई बहिनका मारने वाला है इस कारण उन दोनों के स्थानमें (बदलेमें) इस कृष्णको बछड़े और गोपालेंके बालकों सहित मार डालूँगा ॥१४॥ यदि कहो कि—इसको मारने पर भी गोकुलमें गोप आदि शेष रहेंगे ? तहाँ कहते हैं कि—इन बलराम और श्रीकृष्ण आदि सब बछड़े और गोप बालकोंसे जब मेरे भाई बहिनकी तिलाञ्जली होजायगी तो गोकुलमेंके नन्द आदि सकल गोप मरे हुएसे होजायँगे—क्योंकि—प्राण चले जानेपर शरीरकी चिन्ता ही क्या ?, जितने भी प्राणी हैं उन सबके पुत्र ही प्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसा निश्चय करके वह दुष्ट अघासुर, बलराम कृष्ण आदिको निगल जानेकी इच्छासे, चार कोस लम्बे, बड़े पर्वतकी समान पुष्ट, गुफाकी समान फैले हुए मुखवाले, और आश्चर्यकारी एक बड़े भारी अजगर

रोष्ठो दर्यानननांतो गिरिशृंगदंष्ट्रः। ध्वांतांतरास्यो विततास्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः॥ १७॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृंदावनश्रियं। व्यात्ताजगरतुंडेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया॥१८॥ अहो मित्राणि गदत सत्वकूटं पुरः स्थितम्। अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा॥ १९॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम्। अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छतयाऽरुणम्॥ २०॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे। तुंगशृंगालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत॥ २१॥ आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति। एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यंतराननम्॥ २२॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत। तद्दग्धसत्त्वदुर्गंधोऽप्यंतरामिषगंधवत्॥२३॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनंक्ष्यति। क्षणादनेनेति बकायुशा-

का स्वरूप धारण करके उन बछड़े और बछड़ोंके रखवालोंके जानेके मार्गमें सो रहा॥ १६॥ उस समय, वह दैत्य जिसका नीचेका ओठ भूमिमें फैला हुआ है, ऊपरका ओठ मेघमण्डलमें पहुँच गया है, जिसके दोनों जावड़े पर्वतकी छोटी गुफाओंकी समान और दाढ़ें पर्वतके शिखरोंकी समान हैं, जिसके मुखमेंके भीतर का भाग अन्धकारसे भरा है और जीभ एक लम्बे चौड़े मार्गकी समान है, जिस की नाकमेंसे कठोर वायुकी समान श्वास चलनेके कारण जो वनकी अग्निकी समान भस्म करने वाली दृष्टिसे युक्त है॥१७॥ अजगरका रूप धारण करनेवाले उस दैत्य को देखकर, सब गोपबालक, यह एक प्रकारकी वृन्दावनकी शोभा ही है ऐसा मानकर, तिस अजगरके फैले हुए मुखके इकसारपनेकी कौतुकसे उत्प्रेक्षा करने लगे॥१८॥ वह कहने लगे कि–अरे मित्रो! आगे दीखता हुआ यह वन, एक प्राणी की समान दीख रहा है या नहीं? कहो तिसपर भी हमको निगलनेके निमित्त फैले हुए अजगर सर्पके मुखकी समान दीखता है या नहीं? यह बात बताओ तो!॥ १९॥ वास्तवमें ऐसा ही है, यह सूर्यकी किरणोंसे लाल हुआ मेघ, उसके ऊपरके ओठकी समान दीख रहा है देखो तैसे ही उस मेघकी पडनेवाली छायासे लाल वर्णका दीखने वाला यह नदीका तट उसके नीचेके ओठकी समान प्रतीत होरहा है॥२०॥ यह दाहिने और बायें ओरकी पर्वतोंकी गुफा, दोनों ओठोंके प्रान्तभाग (जावड़ों) का समान दीख रहीं हैं देखो! यह ऊँचे शिखरोंके स्थान भी उस अजगरकी दाढ़ोंकी समान दीख रहे हैं देखो!॥ २१॥ यह लम्बा और चौडा मार्ग, उसकी जिव्हाकी समान प्रतीत होरहा है, इन शिखरोंके भीतरका यह अंधकार भी उसके मुखमेंके मध्यभागकी समान प्रतीत होरहा है॥ २२॥ अहो! वन की दौंसे गरम हुआ यह प्रखर वायु उसके श्वासकी समान प्रतीत होता है देखो! उस दौंसे जले हुए प्राणियोंका जो यह दुर्गन्धि आ रहा है सो भी अजगरके पेटमें के माँसकी दुर्गन्धिकी समान प्रतीत होता है देखो!॥ २३॥ इतने ही में दूसरे बालक कहने लगे कि–ठीक यह सर्प ही है, तथापि हम इसमें भीतर चले जायँ तो यह हमको खा जायगा क्या? यदि ऐसा हुआ तो इन श्रीकृष्णजीके हाथसे यह भी बकासुरकी समान एकक्षणमें ही नाशको प्राप्त होजायगा, इसप्रकार परस्पर वार्ता-

न्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते । रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥ २५ ॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरांतरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः । प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकांतस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकराद्वच्युतान् । दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान् घृणाऽर्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥ कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् । द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धा हेति चुक्रुशुः । जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबांधवाः ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् । चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥ ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्ण

लाप करके वह सब ही बालक, बकासुरको मारनेवाले तिन श्रीकृष्णजीके सुन्दर मुखकी ओरको देखकर ठट्ठा मारकर हँसते हुये ताली बजाते २ बछड़ों सहित उसके मुखमें घुसगये ॥ २४ ॥ इधर सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीने 'यह अजगररूप राक्षस है' ऐसा न जाननेवाले उन बालकोंके इस प्रकार मिथ्या ही परस्पर हुये भाषणको सुनकर, 'वास्तवमें ही यह राक्षस है' ऐसा जाना और वह निःसन्देह राक्षस होकर इन बालकोंको अजगरकी समान वृन्दावनकी शोभा प्रतीत होरहा है ऐसा विचारकर अपने साथियोंको भीतर जानेको निषेध करने का मनमें विचार करा २५ त्यों ही तिन बछड़ों सहित सकल बालक, दैत्यके उदरमें घुसगये, परन्तु मरणको प्राप्त हुए पूतना और बक नामक अपनी बहिन भाईका स्मरण रखनेवाले और इस कारण ही बकारि (श्रीकृष्णजी) का भीतर कब प्रवेश होय ? ऐसी बाट देखनेवाले उसने मुखको बन्द करके निगला नहीं था क्योंकि-श्रीकृष्णके साथ सबको निगल जाऊँ, ऐसा उसके मनमें था ॥ २६ ॥ तब सबको अभय देने वाले श्रीकृष्णजी, प्रारब्धवश बने हुये अघासुरके मुखमें प्रवेश करनेसे दीन हुये, जिनका दूसरा कोई भी रक्षक नहीं है ऐसे, अपने हाथसे छूटे हुये और मृत्युरूप अघासुरकी जठराग्निको तृणकी समान हुये उन गोप बालकोंको देखकर विस्मित और दयासे आर्द्र हुये ॥ २७ ॥ और उन सबको देखने वाले श्रीहरिने विचार करा कि—इस दुष्ट दैत्यका प्राण न बचे और इन मेरे भक्तोंकी हिंसा न हो, यह दोनों बातें कैसे होंगी ? और इस विषयमें मुझे क्या कार्य करना चाहिये इसका विचार करके वह दोनों बातें होनेका उपाय समझकर उस अघासुरके मुखमें घुस गये ॥ २८ ॥ तब मेघोंकी आडमें रहने वाले देवता, भगवान्के प्रभावको भूलकर 'अब श्रीकृष्ण मरणको प्राप्त होजायँगे' ऐसा मनमें विचारकर और अघासुरके मरणसे निराश होकर हाय हाय शब्दका उच्चारण करके विलाप करनेलगे और उस अघासुरके बांधव तथा कंस आदि राक्षस हर्षको प्राप्त हुए ॥ २९ ॥ वह देवताओंका विलाप सुनकर नाशरहित भगवान् श्रीकृष्णजीने, बालक और बछड़ों सहित अपना चूर्ण करनेकी इच्छा करनेवाले उस दैत्यके कण्ठमें, उसके निगलने

दृष्टेश्च मतस्त्वितस्ततः । पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥ ३१ ॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् । दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुंदो भगवान्विनिर्ययौ ॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश । प्रतीक्ष्य खेवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥ ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः । गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् । श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद् दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ॥ ३५ ॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् । व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् । मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता

से पहिले ही अपना वेग बढाया ॥ ३० ॥ उस बढ़नेके कारण जिसका मार्गरूप कंठ रुकगया है, जिसके नेत्र बाहरको निकल पड़े हैं और जो छटपटाने लगा है तिस बड़ाभारी शरीर धारण करनेवाले अघासुरके शरीरमें रुका हुआ प्राणवायु, मस्तकमेंके ब्रह्मरंध्रको फोड़कर उसी द्वारसे बाहरको निकलगया ॥ ३१ ॥ उस प्राणवायुके साथ ही सब ही इन्द्रियोंके बाहर निकलजाने पर फिर छोटा स्वरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी, तिस अजगरके पेटमें घुसकर मरणको प्राप्त हुए मित्रोंको और बछडोंको अपनी अमृतकी वर्षा करनेवाली दृष्टिसे उठाकर, उनके साथ उस अघासुरके मुखमेंसे फिर बाहर निकले ॥ ३२ ॥ तब बड़े पुष्ट उस अजगरके शरीरमेंसे निकला हुआ आश्चर्यकारी, बडाभारी, शुद्ध, सत्त्वगुणी तेज, अपने प्रकाशसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करता, श्रीकृष्णजीके बाहर निकलनेकी बाट देखता हुआ आकाशमें स्थितरहा वह, श्रीकृष्णजीके बाहर निकलते ही उनमें, सब देवताओंके देखते २ प्रवेश करगया ॥३३॥ तदनन्तर अघासुरके बधसे अतिहर्षको प्राप्तहुए देवताओंने, अपना कार्य करनेवाले श्रीकृष्णजीका सत्कार करा, उनमें देवताओंने उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करी, अप्सराओंने नृत्य करा, गन्धर्व आदिकोंने गान करा, बाजा बजाने वाले विद्याधरादिकोंने बाजोंका शब्द करा, वसिष्ठ आदि ब्राह्मणोंने स्तुति करी और पार्षदोंने जयजयकारका शब्द करके सत्कार करा ॥ ३४ ॥ उन आश्चर्यकारी, स्तोत्र और उत्तम बाजोंका शब्द गान जय जयकारका शब्द आदि अनेकों उत्साहोंसे उत्पन्न हुए मांगलिक शब्दोंको ब्रह्माजी अपने सत्यलोकके समीप सुन कर तिस वृन्दावनमें आये और उन ईश्वर श्रीकृष्णजीकी महिमा देखकर आश्चर्यमें होगये ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! वह अद्भुत अजगरका चर्म वृन्दावनमें (फैलाया हुआ) सूखकर बहुतकालपर्यन्त गोकुलके पुरुषोंके क्रीडा करनेकी गुफा सा होगया था ॥३६॥ आश्चर्यमें हुए सकल बालकोंने, जो अपनेको श्रीकृष्णजीने, प्रसिद्ध मृत्युसे छुडाया था और सर्परूप अघासुरको उसके तेजका श्रीकृष्णजीके विषें प्रवेश होता हुआ दीखनेसे, जो संसाररूप मृत्युसे छुडाया था वह श्रीकृष्णजीका कुमार अवस्थामें (पाँचवें वर्षमें) करा हुआ कर्म

व्रजे॥३७॥नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः। अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥ सकृद्यदंगप्रतिमांऽतराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम्। स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोंऽतर्गतो हि किं पुनः ॥३९॥ सूत उवाच। इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम्। पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच। ब्रह्मन्कालांतरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत्। यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो। नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः। यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथाऽमृतम् ॥४३॥ सूत उवाच। इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-

उस ही समय देखकर, वह पौगण्ड अवस्था (छठे वर्ष) में आज ही हुआ है ऐसा गोकुलमें जाकर कहा ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जिनके स्पर्शसे सकल पातक धुल कर वह अघासुर (पापरूप दैत्य), असज्जनोंको अति दुर्लभ भगवान्के समानरूप को प्राप्त होगया, परन्तु वास्तवमें ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर पर्यंत सकल उत्तम अधम वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाले और मायासे मनुष्यके पुत्रभावको स्वीकार करनेवाले परमेश्वर श्रीकृष्णजीका, यह मृत्युसे बछड़े और गोपोंके बालकोंको छुटाना और अघासुरकी मुक्ति करना आश्चर्य क्या है ? ॥ ३८ ॥ क्योंकि-केवल मनमें चिन्तवन करी हुई और एक वार बड़े परिश्रमसे हृदयमें स्थापन करी हुई जिनकी मूर्त्तिकी प्रतिमाने भी प्रह्लाद आदि कितने ही भक्तोंको भगवत्स्वरूपकी प्राप्तिरूप मुक्ति दी है फिर नित्य निजानन्दके अनुभवसे मायाको दूर करने वाले वही साक्षात् परमेश्वर, आप ही जिसके शरीरमें घुसे उसको मुक्ति प्राप्तहुई तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ३९ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनकादि ऋषियो! इस प्रकार, श्रीकृष्णजीने रक्षा करके धर्मराज आदिको दिये हुए वह राजा परीक्षित्, अपनी रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णजीका आश्चर्यकारी चरित्र सुन कर, उस सुननेसे मनके और भी अति तत्पर होने पर भी उस ही पुण्यकारी श्रीकृष्णचरित्रको कहनेके विषयमें व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीसे कहने लगे ॥ ४० ॥ राजाने कहा कि-हे ब्रह्मन्! पाँच वर्षके भीतर की कौमार अवस्थामें श्रीहरिका करा हुआ अघासुरका वधरूप कर्म, दशवर्षके भीतर की पौगण्ड अवस्थामें बालकोंने गोकुलमें कहा यह जो तुमने मुझसे कहा है सो कालान्तर (कौमार अवस्था) का करा हुआ कर्म तत्कालीन (पौगण्ड अवस्थामें करा हुआ) कैसे होगया अर्थात् पाँचवें वर्षमें करा हुआ कर्म, छठे वर्षमें, आज ही करा है ऐसा उन बालकोंको कैसे प्रतीत हुआ ? ॥ ४१ ॥ सो हे त्रिकालका ज्ञान रखने वाले गुरो! मुझसे कहो, वह मुझे बड़ा कौतुक प्रतीत होरहा है, और यह निःसन्देह श्रीहरिकी माया ही होगी, इसके विना ऐसा होना सम्भव ही नहीं है४२ हे गुरो! हम ब्राह्मणोंका अपराध करने वाले होनेसे यद्यपि अधम क्षत्रिय हैं तो भी जो आपसे पवित्र कृष्णकथारूप अमृतका वारम्वार पान कररहे हैं तिस कारण इस मनुष्यलोकमें सबसे धन्य हैं ॥ ४३ ॥ सूतजीने कहा कि-हे भगवद्भक्तोंमें अतिउत्तम

स्तत्स्मारितानंतहृताखिलेंद्रियः । कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीशुक उवाच । साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम । यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि । प्रतिक्षणं न व्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥२॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते । ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ३ तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् । सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् । स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभि-

शौनकजी ! इस प्रकार राजा परीक्षित्के प्रश्न करने पर वह व्यासपुत्र शुकदेवजी, तिस प्रश्नसे स्मरण कराये हुए अनन्त भगवान्‌ने जिनकी सकल इन्द्रियोंको खैंचा है ऐसे एकाग्रचित्त होकर समाधिमें स्थित हुए तदनन्तर फिर जयजयकार आदि शब्दके सुननेसे जिनको बाहरी दृष्टि प्राप्तहुई ऐसे होकर वह राजासे कहने लगे ४४ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्धमें द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

अब इस तेरहवें अध्यायमें बछड़े और बछड़ोंके रखवालोंको ब्रह्माजीने चुरालिया तब श्रीकृष्णजीने अपनी मायासे उन सब बछड़े और गोपबालकोंका रूप धारण करके एक वर्ष पर्यंत पूर्ववत् बाललीला करी यह कथा वर्णन करी है ॥ ० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे महाभाग ! हे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ राजन् ! तुमने परम उत्तम प्रश्न करा है, क्योंकि—तुम ईश्वरकी कथाको वारम्वार श्रवण करते हुए भी फिर फिर प्रश्न करके उस कथाको नवीन नवीनसी कर देते हो ॥१॥ जैसे स्त्रीलम्पट पुरुषोंको स्त्रियोंके विलासोंकी वार्त्ता अनेकों वार अनुभव करी हुई भी प्रतिक्षण नवीन२ सी ही प्रतीत होती हैं तैसे ही भगवान्‌की वार्त्ता हो जिनकी वाणियोंका, कर्णोंका और अन्तःकरणोंका विषय है ऐसे सार ग्रहण करने वाले साधु पुरुषोंको, अच्युत भगवान्‌की कथा ही क्षण २ में नवीन २ सी प्रतीत होती है, यह उनका स्वभावही है ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो, तुम्हारा बूझा हुआ भगवान्‌का चरित्र यद्यपि गुप्त है तो भी मैं तुमसे कहता हूँ, क्योंकि—अपनेमें और भगवान्‌में स्नेह करने वाले शिष्यको गुरु, गुप्त वार्त्ता भी कहदेते हैं ॥ ३ ॥ पहिले वर्णन करने के अनुसार अघासुरके मुखरूप मृत्युसे भगवान्‌ने बछड़ोंकी और बालकोंकी रक्षा करी और उनको यमुना नदीके तट पर लिवा लाकर वह उनसे यह कहने लगे कि–॥ ४ ॥ अरे मित्रों ! यह यमुनाका तट बड़ा ही मनोहर है, यह हमारे क्रीडा करनेके साधनोंकी सम्पत्तिसे युक्त और चमकनीहुई स्वच्छ रेतीसे रम्य है, तथा फूले हुए कमलोंकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंकी और पक्षियोंकी जलमें होने वाली प्रतिध्वनि (गुंजार) से तटपरके शोभायमान वृक्षोंकी घनी पंक्तिसे व्याप्त होरहा है ५ दिन चढ़ आया, हमारे भोजनका समय होगया, इस कारण हम भूँखसे परमव्या-

दिवारूढं क्षुधाऽर्दिताः । वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥६॥ तथेति पाययित्वाऽर्भा वत्सानारुद्ध्य शाद्वले । मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥ कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः । सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाऽम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरंकुरैः फलैः । शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥ सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचं पृथक् । हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु । तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः । स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥ भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु । वत्सास्त्वंतर्वने दूरं विविशु-

कुल हो रहे हैं, सो आओ हम यहाँ ही भोजन करें, बछडे पानी पीकर समीप ही कोमल घासको धीरे २ चरें ॥ ६ ॥ ऐसा भगवान्का कथन सुन कर उन बालकोंने 'बहुत ठीक है' ऐसा कह कर बछडोंको पानी पिलाया और हरी २ घासकी भूमिमें उन सबको इकट्ठा करके अपनी भोजनकी पोटलियोंको खोल कर बडे हर्षसे भगवान्के साथ भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ तब उस वनमें श्रीकृष्णजीके चारों ओर एक के बाहर एक इस प्रकार बैठीं हुईं बहुतसी गोलाकार पंक्तिओंसे कृष्णकी ओरको मुख करके और कृष्णदर्शनसे-प्रफुल्लितनेत्र होकर, भीतरको छोटे २ और बाहरको बडे २ इस क्रमसे एकसे एक भिड कर बैठे हुए वह गोपालोंके बालक, जैसे कमलोंकी कर्णिकाके चारों ओर बाहर लगे हुए छोटे २ के अनन्तर बडे २ कमलके पत्ते शोभित होते हैं तैसे ही शोभित होने लगे उस समय चारों ओरके सब बालकोंको श्रीकृष्णजीका मुख अपने सन्मुख ही दीखता था ॥ ८ ॥ उनमेंसे कितने ही बालकोंने फूलोंके अपने भोजनके पात्र बनाए, कितनो हीने पत्तोंके, कितनो हीने कोपचोंके, अङ्कुरोंके, फलोंके, भोजन बाँधनेके वस्त्रोंके, वृक्षोंकी छालोंके और पत्थरोंके भोजन करनेके पात्र बनाए और भोजन करनेके पात्र बनाए और भोजन करनेलगे ॥ ९ ॥ कृष्ण सहित वह सबही बालक अपने २ घरोंसे लाए हुए भोजनके पदार्थोंका दूसरोंको भिन्न भिन्न प्रकारका स्वाद दिखाते हुए और 'भाई तुम्हारी माता बडी फूहड़ है, अच्छा भोजन आदि करना नहीं जानती है' इत्यादि नानाप्रकारके वाक्योंसे दूसरोंकी हँसी करते और अपनी हँसी कराते हुए भोजन करने लगे ॥ १० ॥ उस समय पहिरे हुए वस्त्रमें वा फेंटमें मुरली उरस कर, बाईं कोखमें सींग और बेंत दाबकर, बायें हाथकी हथेलीपर दही भातका ग्रास और उस ही हाथकी अंगुलियोंके पोरुओं पर निम्बू अदरख और चटनी आदि लेकर, सब बालकोंके सन्मुख मध्यमें खडे होकर और अपने चारों ओर बैठेहुए साथियोंको, अपने कहे हुए हास्यके वचनोंसे हँसाते हुए, उस समय बालकोंकी समान लीला करने वाले वह यज्ञभोक्ता भगवान् श्रीकृष्णजी भोजन करने लगे स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवता भी वह चमत्कार आश्चर्यके साथ देख रहे थे ॥ ११ ॥ हे राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्णजीमें जिनका मन मगन होरहा है ऐसे उन गोपबालकों

स्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् । मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् । विचिन्वन् भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मंजुमहित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् । नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात् खेवस्थितो यः पुरा । दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेपि च वत्सपान् । उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समंततः ॥ १६ ॥ क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् । सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥ ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणां च कस्य च । उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पक-

के भोजन करते समय, हरी घासमें चुगते हुए उनके बछडे तृणोंके लोभसे दूर वनमें चले गए ॥ १२ ॥ तब बछडोंके न दीखनेसे उन बालकोंको भयभीत हुए देखकर श्रीकृष्णजी कहने लगे कि-हे मित्रो ! भयके हेतु व्याघ्र आदिकोंसे बछडोंको भय प्राप्त होगा ऐसा तुम मनमें विचार न करो और भोजन न छोडो, मैं बछडोंको यहीं लाता हूँ ॥ १३ ॥ ऐसा कह कर पर्वत, पर्वतोंकी गुफा, लता झाडी आदिके कुञ्जवन और झाडियोंमें अपने और मित्रोंके बछडोंको ढूँढनेके निमित्त वह भगवान् श्रीकृष्णजी, हाथपर दही भातका ग्रास लिये हुए फिरने लगे ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उस समय जो (ब्रह्माजी) आकाशमें स्थित होकर श्रीकृष्णजीसे होने वाले अघासुरके मोक्षको देखकर परमविस्मयको प्राप्तहुए थे वह कमलसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माजी, अपनी इच्छासे बालकका रूप धारण करके, उन श्रीकृष्णजीकी और कोई भी मनको आनन्द देनेवाली महिमा देखनेके निमित्त 'श्रीकृष्णजी भोजनमें लगे और बछडोंको ढूँढनेके निमित्त वनमें गये, यह 'बछडोंको और गोपबालकोंको चुरानेका' अवसर पाकर, वनमेंसे उनके बछडोंको और भोजन करते हुए गोप बालकोंको दूसरे मायाशय नामक स्थानमें लेजाकर सुला दिया और आप अन्तर्धान होगये ॥ १५ ॥ इधर श्रीकृष्णजी, टीले कुञ्जवन आदिकोंमें कहीं भी बछडोंको न देखकर यमुनाकी रेतीमें आये और तहाँ गोप बालकोंको भी न देखकर, वनमें चारों ओर उनको ढूँढने लगे ॥ १६ ॥ वनमें कहीं भी बछडे और रेतीमें बालक नहीं हैं ऐसा देखकर उन विश्वको जानने वाले श्रीकृष्णजीने, तत्काल वह सब बछडे और गोप बालकोंका चुरालेना, ब्रह्माजीका काम है ऐसा जानलिया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन जगत्की रचना करनेवाले ईश्वर श्रीकृष्णजीने, मनमें विचारा कि—यदि मैं मौन रहूँगा तो बछडोंकी और गोपोंके बालकोंकी माताओंको (गौओंको और गोपियोंको) दुःख होयगा तथा ब्रह्माजीके चुराये हुए बछडे और गोपालोंको ही यदि लौटा लाऊँ तो ब्रह्माजीको मोह नहीं होगा और उनका उद्योग व्यर्थ होनेके कारण उलटा उनको केवल खेदही होगा अतः ऐसा न करके उन बछडे गोपालोंको तथा उनकी माताओंको आनन्द होनेके निमित्त अपनेको ही बछडे और गोपालरूपसे उत्पन्न करा ॥१८॥ गिनतीमें जितने बछडे और ग्वालोंके छोटे, बडे, काले, गोरे, कोमल आदि शरीर

वपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषांबरम्। यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं। सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ१९ स्वयमात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः। क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम्॥ २०॥ तत्तद्वत्सान् पृथङ् नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः। तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान्॥ २१॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम्। स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन्॥ २२॥ ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः। संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः॥ २३॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूय संगतान्। स्वकान् स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहंत्यः स्रवदौधसं पयः॥२४

थे, जितने लम्बेचौड़े हाथपैर आदि अङ्ग थे, जिस प्रकारके उनके पैने सींग मुरली पत्ते और छीके आदि थे, जैसे उनके भूषण, और वस्त्र थे, जैसे उनके स्वभाव, गुण आकार, अवस्था आदि थे और जैसा उनका चलना, बोलना, बुद्धि, स्मरण शक्ति आदि था, वैसे और उतने ही सकल स्वरूपोंसे वास्तवमें जन्म रहित भी भगवान् श्रीकृष्णजी, 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इस श्रुतिके स्वरूपकी समान शोभित हुए ।१९। और स्वयं आप ही पुकारने वाले बनकर, आत्मस्वरूप गौ बछडोंको, आत्मस्वरूप गोपालोंके द्वारा पीछेको लौटाकर, गेंद आदि आत्मस्वरूप खेलनेकी सामग्रियोंसे क्रीडा करते हुए सर्वात्मा भगवान् गोकुलमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥ और हे राजन्! जिधर २ को जिस २ गोप बालकके जानेको मार्ग फिरा था उधर २ को उस २ के ही बछडोंको अलग करके उस२ की ही गोशालामें लेजाकर घुसादिया और उस२ के ही स्वरूपसे उस२ के ही घरमें चलेगये, इस प्रकार तिन सबोंका भिन्न २ स्वरूप धारण करनेवाले वह श्रीकृष्णजी हुए ॥ २१ ॥ अब गोपियोंका मोह कहते हैं-उन गोपोंके बालकोंकी माताओंने मुरलीका शब्द सुनते ही शीघ्रतासे उठकर अपने २ पुत्रोंको आया जानकर, उनपर ब्रह्मरूप श्रीकृष्णजीको ही हाथोंसे ऊपरको उठाकर परम स्नेहके साथ छातीसे लगाया, और उनको अमृतकी समान मधुर तथा मद्य की समान मदकारी स्नेहसे टपकते हुए स्तनोंमेका दूध पिलाया ॥२२॥ हे राजन्! इस प्रकार, जिस २ समय जो जो क्रीडा होती थी वह २ करके दिनके चारों पहर बीतजाने पर सायंकालके समय मुरली बजाना आदि अपनी लीलाओंसे माताओं को आनन्दित करते हुए वह बालकरूपी श्रीकृष्णजी, उन २ के घरमें गये तब, उन माताओंने उनके शरीरको सुगन्धित तेल उबटन आदि लगाना, स्नान कराना, चन्दन आदि लगाना, वस्त्र पहिराना, भूषण पहिराना, रक्षाबन्धन करना; तिलक लगाना, भोजन कराना, और शय्यापर सुलाना इत्यादि लाड करा ॥ २३ ॥ अब गौओंका मोह कहते हैं-जो गौ चरनेके निमित्त वनको गई थीं वह गौएँ तहाँसे बडी शीघ्रताके साथ गोशालामें आकर हुंकार युक्त शब्दोंसे बुलानेपर समीप आए हुए, अपना २ स्तन पीना छोडने वाले भी पहिले बछडोंको बारम्बार चाटती हुई, थैन को फोडकर टपकता हुआ दूध पिलाने लगीं ॥ २४ ॥ उस समय गौओंका और

गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना । पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् । शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः । पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् । पञ्चषट्सु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥ ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् । गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥ दृष्ट्वाऽथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः । द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् । गिलन्त्य इव चांगानि लिहंत्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जो-

गोपियोंका इन पुत्ररूप हुए श्रीकृष्णजीके ऊपर लालन पालन आदि रूप मातृभाव, एक स्नेहके अधिकपनेको छोडकर पहिलेकी समान ही था केवल स्नेहकी वृद्धिही अधिक हुई तथा उन गौ और गोपियोंमें श्रीकृष्णजीका बालकपन भी एक मायाको छोड और सब पहिलेकी समान ही था, उनको-यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ ऐसा मायाकल्पित मोह ही नहीं था ॥ २५ ॥ जैसी गोकुलवासियोंकी, यशोदा पुत्र श्रीकृष्णजीके विषैं पहिले अपने पुत्रोंसे भी अधिक प्रीति थी वैसी ही अब अपने पुत्रोंके विषैं भी एक वर्ष पर्यन्त स्नेहलता पहिलेसे भी अधिक प्रतिदिन धीरे धीरे निःसीम (वेहद) बढ़ने लगी ॥ २६ ॥ इस प्रकार वह सर्वात्मा भगवान्, गोकुलमें बछडोंके रखवाले होकर, बछडोंके और उनके रक्षक बालकोंके मिषसे आप ही अपनी रक्षा करते हुए एकवर्ष पर्यन्त वनमें और गोकुलमें क्रीडा करने लगे २७ इतने समय पर्यन्त (कुछ कम वर्षभर पर्यन्त) बलरामजीको भी मोह ही था, फिर उन्होंने श्रीकृष्णजीके कहनेसे सब वृत्तान्त जाना ऐसा वर्णन करते हैं-एक समय वर्ष पूरा होनेमें पाँच छः रात्रि कम थीं, उस समय बलराम सहित श्रीकृष्णजी बछडों को चरानेके निमित्त वनमें गये तब गोवर्धन पर्वतके शिखरपर चरनेवाली गौओंने तहाँ दूर स्थानपर गोकुलके समीपकी घासमें चरनेवाले अपने बछडोंको देखा २८-२९ और देखकर तत्काल वह गौओंका समूह, उन बछडोंके स्नेहसे परवश होकर, जिनको देहका मान नहीं रहा है, जिन्होंने अपने पालक गोपालोंको भी कुछ न गिन कर काँटे खाही आदिके ऊँचे नीचे मार्गमेंको गमन करा है, जिन्होंने अपनी ग्रीवाको तिरछा करके कन्धेपरको लिया है, जिन्होंने मुख और पूँछ ऊपरको उठाई हैं, जो पैर उठाया छलाँग मारकर दौडती हुई जानेके कारण दोही पाँवसे दौडती हुईसी प्रतीत होती हैं और जिनका दूध पेनसे न समानेके कारण स्तनोंमेंसे जिधर तिधरको भूमिपर टपक रहा है ऐसी उन गौओंका समूह, हुङ्कार शब्द करता हुआ बड़े वेगसे बछड़ोंके समीपको चला गया ॥ ३० ॥ दूसरी वार प्रसूत हुई (व्याही हुई) भी वह गौएँ, गोवर्धनकी तलैठीमें चरते हुए पहिले बछडोंके समीप आकर मानों उनके अङ्गोंको निगल ही रही हैं इस प्रकार चाटती हुई उन पहिलेके बडे बछडों को ही अपने पेनोंमेका दूध पिलाने लगीं ॥ ३१ ॥ गोपोंने भी गौओंको रोकनेका

रुमन्युना। दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणप्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान्। उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्द्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोश्लेषसुनिर्वृताः । कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥३४॥ व्रजस्य रामः प्रेमर्द्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम्। मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविद्विचिन्तयत् ॥ ३५ ॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि। व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी। प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि। सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः॥३८ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि। सर्वं पृथक्त्वं निगमा-

---

परिश्रम निष्फल होनेके कारण लज्जाके साथ प्राप्त हुए बड़े क्रोधमें भरकर विकट मार्गमेंको होकर ही गोवर्धनसे नीचे आकर गौ और बछड़ोंके साथ आयेहुए अपने बालकोंको देखा ॥ ३२ ॥ यह बालक ही गौओंके सामने बछड़े लेआये हैं इस कारण गौओंने ऐसा झञ्झट करा अतः इन बालकोंको ही ताडना करना चाहिये; ऐसा विचार कर वह गोपाल आये थे परन्तु उन बालकोंको देखनेसे उत्पन्न हुए प्रेमरस में उनके अन्तःकरण निमग्न होगये और उनका क्रोध दूर होगया तथा उनके हृदय में उन बालकोंके ऊपर प्रीति उत्पन्न हुई तब उन गोपोंने तिन बालकोंको अपनी भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगाया और उनके मस्तकका चुम्बन करके परम आनन्दका अनुभव करा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर बालकोंको छातीसे लगानेसे परम तृप्त हुए वह वृद्ध गोप, तहाँसे बड़े कष्टके साथ धीरे धीरे फिर गोवर्धन पर्वत परको चले आये, परन्तु तहाँ भी उन बालकोंका बारम्बार स्मरण आकर उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आते थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जिनका स्तन पीना छूटा है ऐसे बछड़े और उनके रखवालोंमें गौ वृषभ रूप और गोपी गोपरूप गोकुल के प्रेमकी वृद्धिकी उत्कण्ठा देखकर, 'इसका क्या कारण है ?' सो न जानते हुए बलरामजी चिन्तवन करने लगे कि—॥ ३५ ॥ सर्वात्मा वासुदेव भगवान्में (श्रीकृष्णजीके विषैं) जैसा पहिले सबका प्रेम था, अब मुझ सहित सब गोकुलका इन बछड़े और वत्सपालों में भी अपूर्व प्रेम बढ़ रहा है, न जाने यह क्या आश्चर्य है ? ॥ ३६ ॥ इसको माया कहा जाय तब भी यह कौन है और कहाँसे आई है ? क्या यह देवताओंने फैलाई है ? अथवा मनुष्योंने वा असुरोंने फैलाई है ? परन्तु यह प्रायः मेरे स्वामी श्रीकृष्णजीकी ही माया होनी चाहिये, क्योंकि यह मुझको भी मोहित कर रही है इस कारण दूसरे किसीकी नहीं है ३७ वह बलरामजी इस प्रकार चिंता करके ज्ञानचक्षुसे देखनेलगे तो उनको सब बछड़े और समान अवस्थाके सकल बालक कृष्णरूप ही दीखने लगे ॥३८॥ तब वह बलरामजी श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि-हे कृष्ण ! आज पर्यन्त मैं ऐसा समझता था, कि-पालन करने योग्य जो सकल बछड़े हैं और पालन करनेवाले जो सकल बालक हैं वह देवताओंके अंश हैं अब तो वैसा नहीं है किंतु लौकिक दृष्टिसे यह बछड़े हैं,

स्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुटयनेहसा। पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥ यावंतो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि। मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥ इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे। तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मनि। सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥४३॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्। स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि। महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपाला पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात्। व्यदृश्यंत

यह बछड़ोंके रखवाले हैं इत्यादि भेद प्रतीत होरहा है तथापि तत्त्व दृष्टिसे यह ऋषि वा देवता कोई भी प्रतीत नहीं होते हैं, किंतु तुम ही प्रतीत होते हो इसकारण हे ईश्वर! यह सब कैसे हुआ है? सो तुम मुझसे स्पष्ट करके कहो, ऐसा प्रश्न करने पर प्रभु श्रीकृष्णजीने वह सब वृत्तांत संक्षेपसे कहा तब उतनेसे ही बलराम जीने जानलिया ३९ इतने ही में ब्रह्माजीने अपने प्रमाणसे त्रुटिमात्र कालमें शीघ्रता से आकर देखा तो सब बछड़े और उनके रखवालों सहित श्रीकृष्णजी पहिलेकी समान एक वर्ष पर्यन्त क्रीडा कररहे हैं ॥ ४० ॥ और वह विचार करनेलगे कि— गोकुलमें जितने बालक हैं उन सबको ही मैं बछडों सहित दूसरे स्थानमें लेगया हूँ, इसमें संदेह नहीं है कि मैंने मायाकल्पित स्थान में उनको शयन करा दिया है सो वह मोहित होकर अभीतक फिर उठे नहीं हैं ॥४१॥ और यहाँ मेरी मायासे मोहित होने वालोंके सिवाय दूसरे उतने ही एक वर्ष पर्यन्त श्रीकृष्णजीके साथ क्रीडा करने वाले यह बछड़े और बालक कहाँसे आगये हैं? ॥४२॥ इस प्रकार बछड़े और बालकों के दो २ भेद हो जाने पर बहुत देरी पर्यन्त विचार करनेवाले भी वह ब्रह्माजी, सत्य कौनसे हैं और मायासे रचे हुए कौनसे हैं (मेरे ले गये हुए सत्य हैं या यहाँके सत्य हैं) यह जाननेको किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हुए। ४३ ॥ इस प्रकार मोह रहित और जगत्को मोहित करनेवाले विष्णु भगवान्को मोहमें डालनेको प्रवृत्त हुए वह ब्रह्माजी भी अपनी ही मायासे आप ही मोहित होगये ॥४४॥ जैसे कुहरके छुटजाने से होनेवाला अन्धकार दिनमें लोकोंको दिशाओंका भ्रम आदि करनेवाला होता है परंतु वह रात्रिके अन्धकारमें अपनी कुछ शक्ति नहीं चला सकता है किंतु उसमें आप ही लुप्त होजाता है अथवा जैसे पटवीजनेकी चमक रात्रिके समय प्रकाशित होती हुई भी दिनमें वह मालूम भी नहीं होती है किंतु वह सूर्यके तेजमें लीन होकर अपने आश्रयरूप पटवीजने का ही निस्तेजपना दिखाती है तैसे ही बड़े पुरुषोंके ऊपर अपनी माया चलाने वाले नीच पुरुषकी वह नीच माया उनके ऊपर अपनी कुछ शक्ति चलानेको समर्थ न होकर अपने स्वामीकी ही कुछ शक्तिको नष्ट कर डालती है, तात्पर्य यह है कि—महामायावी श्रीकृष्णजीके ऊपर चलाई हुई ब्रह्माजीकी माया, उनके ऊपर अपनी कुछ शक्ति चलानेको समर्थ न होकर उलटी ब्रह्माजीको ही मोहमें डालनेका कारण हुई ॥ ४५ ॥ जब तक ब्रह्माजी बछड़े और

घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥४६॥ चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणयः । किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥४७॥ श्रीवत्सांगददोरत्नकंबुकंकणपाणयः । नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्रांगुलीयकैः ॥ ४८ ॥ अंघ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः । कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥४९॥ चंद्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापांगवीक्षितैः । स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥५०॥ आत्मादिस्तंबपर्यन्तैर्मूर्त्तिमद्भिश्चराचरैः । नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥५१॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः । चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ५२ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः।स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्त्तिमद्भिरुपासिताः॥ सत्यज्ञानानन्तानंदमात्रैकरसमूर्त्तयः । अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम्॥५४

बालकोंमें सत्य कौनसे हैं और मायाकल्पित कौनसे हैं, यह विचार कर रहे थे सो। इतनेहीमें उन ब्रह्माजीके देखतेहुए तत्काल बछड़े और उनके रखवाले बालक लकडी सींग आदि सब ही भगवान्‌के स्वरूप वाले दीखने लगे, वह सब मेघकी समान श्यामवर्ण, पीले रेशमी वस्त्र पहिने हुए,चतुर्भुज,शंख चक्र गदा और पद्मको धारण करने वाले, किरीट, कुण्डल, हार और वनमालाओंसे भूषित थे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उनकी भुजाओंमें श्रीवत्सचिह्नकी प्रभासे युक्त बाहुभूषण थे, उनके हाथोंमें शंखकी समान तीन धारों वाले रत्नजड़े कङ्कण थे, वह-नूपुर, कड़े, तोड़े, और अँगूठी इन भूषणोंसे शोभित थे ॥ ४८ ॥ तथा सकल अङ्गोंमें, अनेकों जन्मोंमें पुण्य प्राप्त करने वाले भक्तजनोंकी समर्पण करी हुई तुलसीकी कोमल नवीन मालाओंसे चरणोंसे मस्तक पर्यंत भरे हुए थे ॥ ४९ ॥ वह अपने लाल २ कटाक्षपातोंसे और चन्द्रमाके प्रकाशकी समान स्वच्छ मन्द मुसकुरानोंसे, क्रम करके रजोगुण और सत्वगुणके द्वारा अपने भक्तोंके मनोरथोंको पूरा करने वाले और मानो पालन करने वाले ही हैं ऐसे दीखते थे ॥ ५० ॥ अपनेसे (ब्रह्माजीसे) तृणपर्यंत मूर्त्तिमान् चराचर प्राणियोंसे, अपने२ अधिकारके अनुसार नृत्य गान आदि अनेकों प्रकारकी पूजाकी सामग्रियोंसे भिन्न २ प्रकारसे आराधना किये जारहे थे ॥ ५१ ॥ भगवान्‌की महिमासे जिनका स्वतन्त्रपना नष्ट होगया है ऐसे मूर्त्तिमान् अणिमा महिमा आदि ऐश्वर्योंसे, अजा अविद्या आदि शक्तियोंसे, जगत्‌के कारण महत् आदि चौबीस तत्त्वोंसे, और गुणोंको क्षोभित करनेवाला काल परिणामका कारण स्वभाव, वासनाका बोध कराने वाला संस्कार, भोगकी इच्छारूप काम, लौकिक वैदिकादि व्यापार रूपकर्म और सत्त्वादि गुणोंसे घिरे हुए उपासना किये जारहे थे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ब्रह्मादि और सर्वोंके मूर्त्तिमान् होने पर, भी उन बछड़े और बालक आदि उपासना करने-योग्य मूर्त्तियोंमें यह विशेषता थी कि-वह मूर्त्तियें-सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त और आनन्दरूप, आनन्दमात्र (विजातीय भेदरहित) निरन्तर एक रसरूप थीं इस कारण उनका बड़ा भारी माहात्म्य आत्मज्ञानरूप दृष्टिवाले पुरुषोंको भी निःसन्देह समझनेमें आना कठिन था ऐसी वह (वत्सवत्सपालादिरूप भगवान्‌की) मूर्त्तियें दीखने लगीं ॥ ५४ ॥ इस प्रकार उन ब्रह्माजीने, सब ही बछड़े और ग्वालबालोंको

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान्। यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम्॥ ५५॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्यस्तिमितैकादशेन्द्रियः। तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका॥ ५६॥ इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ। अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम्॥ ५७॥ ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः। कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना॥ ५८॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम्। वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम्॥ ५९॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः। मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम्॥ ६०॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम्। वत्सान्सखीनिव

एक साथ उन परब्रह्मके स्वरूप वाला देखा कि-जिनके तेजसे यह चराचर विश्व प्रकाशित होता है ॥ ५५ ॥ तदनन्तर अति आश्चर्यसे चकित होनेके कारण अपनी दृष्टिको अन्तर्मुख करके, उन भगवान्‌की मूर्त्तिके तेजसे जिनकी पाँचों ज्ञानेंद्रियें, पाँचों कर्मेन्द्रियें और मन यह ग्यारहों स्तब्ध (काम न देने वाली) होगई हैं ऐसे वह ब्रह्माजी, निश्चल खड़े होगए, उससमय वह ऐसे प्रतीत होते थे कि-मानो गोकुलग्रामकी अधिष्ठात्री देवताके सामने चार मुखकी पुतली खड़ी करदी है ५६ इस प्रकार वह सरस्वतीके पति ब्रह्माजी, जिसकी तर्कना न होसके ऐसी परम-महिमासे युक्त, स्वयंप्रकाश और सुखरूप, प्रकृतिसे पर, ब्रह्मसे अन्य जड पदार्थोंके त्यागसे उपनिषदोंके द्वारा जानने योग्य और ब्रह्मरूप अपने स्वरूपमें, यह क्या दीख रहा है' इस प्रकार मोहित होकर देखनेको भी समर्थ नहीं हुए तब श्रीकृष्णजीने, उनके मोह आदि क्लेशको जान कर तत्काल 'जिससे आश्चर्य दिखाया था, वह अपना मायारूप परदा दूर कर दिया, अथवा यह लोकाभिमानी ब्रह्माजी, मेरा ऐश्वर्य देखनेके योग्य नहीं हैं ऐसा जान कर उनके ऊपर मायाका परदा डाल दिया ५७ तदनन्तर जिनकी इन्द्रियें बाहरी विषयोंकी ओरको प्रवृत्त हुई हैं ऐसे वह ब्रह्माजी जैसे मरा हुआ पुरुष उठ बैठे तैसे, उठ कर बड़े संकटसे अपने नेत्रोंको खोल कर उन्होंने अपने शरीरसहित यह सकल जगत् देखा ॥५८॥ तदनन्तर तत्काल सकल दिशाओंकी ओरको देखने पर उन्होंने अपने आगे, जिसमें चारों ओर प्रिय पदार्थ हैं और जो लोकोंकी जीविका चलाने वाले वृक्षोंसे भरा हुआ था। ऐसे वृन्दावनको देखा ॥५९॥ तदनन्तर जहाँसे, श्रीकृष्णजीके निवासके कारण क्रोध, लोभ भय आदि दूर होगए हैं और जहाँ स्वभावसे ही परस्पर परम वैरभाव रखनेवाले मनुष्य व्याघ्र बिलाव और मूषक (चूहा) आदि प्राणी मित्रोंकी समान एक स्थानमें रहते हैं ऐसे उस वृन्दावनमें ब्रह्माजीने, पहिलेकी समान ही नन्दगोपके पुत्ररूपसे लीला करने वाले, तहाँ अद्वितीय (विजातीय भेदरहित) होकर भी विजातीय बछड़ोंको ढूँढने वाले, एक (सजातीय भेदरहित) होकर भी सखाओंको ढूँढनेवाले, अगाध ज्ञानस्वरूप होकर भी अनजानकी समान ढूँढने वाले, अनन्त होकर भी जिधर तिधर ढूँढने वाले, प्रकृतिसे पर होकर भी गोपबालकका रूप धारण करने वाले,

पुरा परितो विचिन्वदेकं स्वपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवातिपात्य । स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥६२॥ उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् । आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥ ६३ ॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः । कृताञ्जलिः प्रश्रयवान् समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ब्रह्मोवाच । नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय । वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥ १ ॥ अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि । नेशे महि त्ववसितुं मन-

और आकार तथा हस्तपादादि अङ्गोंसे रहित होकर हथेली पर दही भातका ग्रास लेकर फिरने वाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ ६० ॥ ६१ ॥ और देखकर शीघ्रतासे अपने हंसरूप वाहनसे (सवारीसे) नीचे उतर कर पृथ्वी पर सुवर्ण के दण्डेकी समान अपने शरीरको लिटाकर,चारों मुकटोंके अग्रभागोंसे उन श्रीकृष्णजीके दोनों चरणों को स्पर्श करके और नमस्कार करके आनन्दकी अश्रुधाराओंसे उनका अभिषेक करा ॥ ६२ ॥ तदनन्तर पहिले श्रीकृष्णजीकी महिमाको वारम्वार स्मरण करके और वारम्वार उठ कर उनको नमस्कार करते हुए अन्तमें चिरकालपर्यंत श्रीकृष्ण जीके चरणोंमें पड़े रहे ॥ ६३ ॥ तदनन्तर धीरे २ उठ कर, आनन्दके अश्रुओंसे भरे हुए अपने दोनों नेत्रोंको पूछ कर श्रीकृष्णजीकी ओरको देख कर लज्जासे गरदन नीचेको करके आदरके साथ हाथ जोड़े हुए, नम्रतासे युक्त और भयसे थर थर काँपते हुए वह ब्रह्माजी, एकाग्रचित्त होकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णजीकी स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥　छ　॥　*　॥　छ　॥

इस चौदहवें अध्यायमें भगवान्की आश्चर्यकारिणी लीला देख कर, पहिलेके बछडे और ग्वालवाल कौन थे और नये कौन थे, इसका निश्चय करनेको असमर्थ होकर मोहित हुए ब्रह्माजीने, श्रीकृष्णजीकी स्तुति करी यह कथा वर्णन करी है* अपने करे हुए अपराधके भयसे थर २ काँप कर भगवान्की महिमाके जाननेको असमर्थ हुए वह ब्रह्माजी, भगवान्के दीखते हुए ही स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं कि--हे स्तुतिके योग्य भगवन्! मैं तुम्हें प्रसन्न करनेके निमित्त तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ-तुम मेघकी समान श्यामसुन्दर मूर्त्ति, विजलीकी समान चमकीले पीले वस्त्र पहिनने वाले, कानोंमें पहिरेहुए गुञ्जाओंके कर्णभूषण और मस्तक पर धारण करेहुए मोरमुकुटसे शोभायमान मुखवाले,और कोमल चरणोंवाले नंदगोपके पुत्र हो,तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ अब स्तुति करता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा करके केवल देखेहुए स्वरूपका ही क्यों वर्णन करते हो? यदि कहो तो हे देव! भक्तो की इच्छाके अनुसार प्रकट हुए और मेरे ऊपर अनुग्रह करनेवाले इस तुम्हारे अति-

सांतरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्त्ताम्। स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये। तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया। विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥ तथाऽपि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः। अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो

सुलभ अवतारकी भी महिमाके जाननेको मैं ब्रह्मा वा दूसरा और कोई भी समर्थ नहीं है क्योंकि-यह अवतार अचिन्तनीय शुद्ध सतोगुणी है,इस अवतारकी महिमा ही यदि नहीं जानी जाती तो केवल आत्मसुखके अनुभवमात्र तुम्हारे गुणातीत स्वरूपकी महिमाको, एकाग्र करे हुए भी मनसे जाननेको समर्थ नहीं है इसका तो कहना ही क्या ? ॥ २ ॥ तो अज्ञानी पुरुष संसारको कैसे तरेंगे ? ऐसा कहो तो हे भगवन्! ज्ञानकी प्राप्तिमें कुछभी परिश्रम न करके केवल साधुओंके समीपमें अपने अपने स्थानपर बैठकर साधुओं करके स्वभावसे ही नित्य वर्णन करीहुई और आप ही कानोंमें आईहुई तुम्हारी कथाओंको जो पुरुष,तन मन वचनसे सत्कार करतेहुएही जीवित रहते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं उन पुरुषोंने हे अजेय परमेश्वर! तुम प्रायः त्रिलोकीमें औरोंसे यद्यपि नहीं जीते जाते हो तथापि तुम्हें जीत लिया है। अर्थात् तुम उनको प्राप्त होगये हो,फिर ज्ञानके निमित्त परिश्रम करके उनको क्या करना है ? कुछ नहीं ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! जैसे सरोवर अनेकों सोतोंसे बहने वाला होता है तैसे ही धर्म-अर्थ काम मोक्षरूप चार प्रकारके पुरुषार्थोंको देनेवाले तुम्हारी भक्तिको त्याग कर जो पुरुष, केवल ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त शास्त्रोंका अभ्यास आदि क्लेश करते हैं उनको, जैसे सूक्ष्म दीखने वाले कणयुक्त धान्योंको त्यागकर भीतरसे कणहीन और बाहरसे बडेभारी धान्यकी समान दीखनेवाले थोथले धान्य के कूटने वालोंको केवल क्लेश ही शेष रहता है तैसे ही, क्लेश ही शेष रहता है दूसरा कोई फल प्राप्त नहीं होता है ॥ ४ ॥ हे व्यापक अच्युत ! इसलोकमें पूर्वकाल के अनेकों योगी, योगके साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति न होनेके कारण अपना लौकिक व्यापार भी तुम्हें समर्पण करके तुम्हें समर्पण करे हुए उन कर्मोंसे ही चित्तकी शुद्धि होने पर प्राप्त हुई और कथा सुनने आदिसे बढ़ी हुई तुम्हारी प्रेमरूप भक्तिसे ही आत्मस्वरूपको जानकर अनायासमें ही तुम्हारी परमगति (मोक्ष) को प्राप्त हो गये हैं ॥५॥ इस प्रकार सगुण और निर्गुण इन दोनों स्वरूपोंका ज्ञान दुर्घट होनेके कारण तुम्हारी कथा आदि सुननेसे ही तुम्हारी प्राप्ति होती है और प्रकारसे नहीं होती है, ऐसा वर्णन करा,अब, यद्यपि दोनों स्वरूपोंका ज्ञान दुर्घट कहा है तथापि निर्गुण स्वरूपका ज्ञान कदाचित् होजाय परन्तु तुम अचिन्त्य और अनन्तगुण हो इस कारण तुम्हारे सगुण स्वरूपका ही ज्ञान नहीं होगा ऐसा वर्णन करते हैं-हे व्यापक ! यद्यपि तुम्हारी महिमा विषयासक्त पुरुषोंके जाननेमें आना कठिन है

ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य । कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥७॥ तत्तेऽनुकंपां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् । हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥८॥ पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि । मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः । अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकंप्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥ क्वाहं तमोमहदहंखचराग्नि-

तथापि इन्द्रियोंको वशमें कर लेनेवाले पुरुषोंको गुणातीत तुम्हारी महिमा इंद्रियों का विषय न होनेके कारण, उनकी प्रवर्त्तक होनेसे, विशेष आकार न होनेके कारण जगत्‌की अधिष्ठान होनेसे और आत्माकार हुए अन्तःकरणमें उसका साक्षात्कार होनेसे स्वप्रकाशरूपसे जाननेके योग्य होती है केवल विषयरूपसे ही जाननेमें नहीं आती है ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! जिन अतिचतुर पुरुषोंने, बहुतसे जन्मोंके समय करके पृथ्वीके रजोंके कणोंकी तथा अन्तरिक्षलोकमेंके तुषारोंके कणोंकी और स्वर्गमेंके चन्द्रमा सूर्यादिकी जो किरणें तिनके परमाणुओंकी गणना (गिनती) करी है ऐसे भी कौनसे पुरुष, इस जगत्‌का पालन करनेके निमित्त बहुतसे गुण प्रकट करके अवतार धारण करने वाले, गुणोंके अधिष्ठाता जो तुम परमेश्वर तिनके गुणोंकी (इतने हैं, ऐसी) गणना करनेको समर्थ होयँगे ? अर्थात् कोई भी गणना नहीं कर सकते ॥७॥ इस प्रकार तुम्हारा ज्ञान होना दुर्घट है इस कारण हे भगवन् ! तुम्हारी कृपा कब होयगी ? ऐसी वाट देखने वाला, अपने करे हुए कर्मोंका फल (सुख वा दुःख) आसक्त न होकर भोगने वाला और शरीर वाणी मनसे तुम्हारी वन्दन आदि भक्ति करने वाला जो पुरुष जीवित रहता है वह पुरुष, 'जैसे पिताकी सेवा करनवाला पुत्र पिताके धनका भागी होता है तैसे ही' मुक्तिफलका भागी होता है ॥८ इसप्रकार भगवान्‌की स्तुति करके अब क्षमा करानेके निमित्त अपना अपराध कहते हैं-हे ईश्वर ! मेरा यह मूढ़पना देखो कि-जिस मैंने, मायावी पुरुषोंको भी मोहित करनेवाले, सबके कारण, सबके नियन्ता और नाशरहित तुम्हारे ऊपर भी अपनी माया फैलाकर तुम्हारा ऐश्वर्य देखनेकी इच्छा करी, ऐसा करनेको मैं तुम्हारे सामने क्या हूँ ? अर्थात् कुछ नहीं हूँ । जैसे अग्निसे उत्पन्न हुई लपट, दूसरोंको जलाती है परन्तु वह अग्निके ऊपर अपना कुछ प्रभाव नहीं चला सकती है तैसे ही तुमसे उत्पन्नहुआ मैं, औरोंको मोहित करता हूँ परन्तु तुम्हारे ऊपर अपना कुछ भी प्रभाव चलानेको समर्थ नहीं हूँ ॥ ९ ॥ इस कारण हे अच्युत ! रजोगुणसे उत्पन्न हुआ, तुम्हारे प्रभावको न जानने वाला, तुमसे निराला मैं ही ईश्वर हूँ ऐसा अभिमान रखने वाला और मैं जगत्‌का कर्त्ता हूँ ऐसे गाढ़ अन्धकारसे जिसके नेत्र अन्ध हो रहे हैं ऐसे मेरे अपराधोंको, मैं इसका नाथ (रक्षक) होऊँगा तब ही इसकी रक्षा होयगी नहीं तो नहीं होयगी इसकारण इस सेवकके ऊपर मुझे कृपा करना चाहिये ऐसा समझ कर' क्षमा करो ॥१०॥ अब ब्रह्माण्डरूप धारण करने वाला तू भी ईश्व

वाभूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः। क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्॥ ११ ॥ उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोऽक्षजागसे। किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः १२ जगत्त्रयांतोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात्। विनिर्गतोऽजास्त्विति वाङ्न वै मृषा किं त्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥ नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी। नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव। किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥ अत्रैव

ही हैं, यदि ऐसा कहो तो हे देव! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी, इन आवरणोंसे लिपटा हुआ ब्रह्माण्ड घट ही जिसका 'अपने प्रमाणसे' सात विलस्तका शरीर है ऐसा मैं कहाँ? और ऐसे असंख्य ब्रह्माण्डरूप अणु परमाणुओंका यथेष्ट सञ्चार (जाना आना रूपगति) होने योग्य झरोखोंकी समान जिनके शरीरके रोमोंके छिद्र हैं ऐसे आपका प्रभाव कहाँ? इस कारण मुझ अतितुच्छके ऊपर कृपा करके तुम मेरे अपराध क्षमा करो॥११॥और हे अधोक्षज! गर्भमें स्थित बालकका पैरोंको ऊपरको उछलना (लात मारना) क्या माताके अपराधका कारण होता है? किन्तु नहीं होता है, फिर है और नहीं है इन शब्दोंसे उच्चारण करीहुई कोई भी वस्तु, थोडीसी भी क्या तुम्हारे उदरसे बाहर है! अर्थात कुछ नहीं है इस कारण सब ही जब तुम्हारे उदरमें है तो मैं भी उसके ही भीतर हूँ इस कारण तुम मेरे अपराधको माताकी समान सहन करो ॥ १२ ॥ और विशेष करके मेरा जन्म तुमसे ही प्रसिद्ध है, देखो त्रिलोकीका प्रलय होनेके समय सब समुद्रोंके मिलकर एक होजानेपर उस जलमें नारायणके उदरमें स्थित नाभिकमलमेंसे ब्रह्माजी निकले हैं ऐसी जो वाणी है सो वास्तवमें मिथ्या नहीं है, हे ईश्वर! तुम ही कहो, कि—मैं तुमसे उत्पन्न हुआ हूँ या नहीं! ॥ १३ ॥ मैं तुमसे बूझता हूँ कि-सकल जीवोंके समूहको जिसका आश्रय है वह नारायण × तुम ही नहीं हो क्या? किन्तु तुम ही हो, नरसे (ईश्वरसे) उत्पन्न हुआ जो जल सो नार कहाता है वह जिसके रहनेका स्थान है, ऐसे अर्थसे प्रसिद्ध जो नारायण वह भी तुम्हारी ही मूर्त्ति है, वह भी तुम्हारा नारायण स्वरूप सत् नहीं है किन्तु वह तुम्हारी माया ही है अर्थात् लीलाके निमित्त वह रूप तुमने दिखाया है वास्तवमें तुम व्यापक (सर्वत्र पुरे हुए) हो ॥ १४ ॥ हे अचिन्त्य ऐश्वर्यवान्! जगत्का आश्रय वह तुम्हारा जलमें रहने वाला शरीर सत्य था, यदि ऐसा कहो तो हे भगवन्! उस ही समय कमलकी दण्डीके मार्गसे जलमें प्रवेश करके सौ वर्ष पर्यन्त ढूँढने वाले भी मैंने, उसको तहाँ जलमें क्यों नहीं देखा? और हृदयमें भी वह मेरी दृष्टि क्यों नहीं पड़ा? और तप करनेके अनन्तर तत्काल ही फिर वह भली प्रकार दृष्टि क्यों नहीं पड़ा? इस

×नरसे (पुरुषसे) उत्पन्न हुए तत्त्वोंको विद्वान् 'नार' कहते हैं, वह तत्त्व नारायणके पहिले अयन (आश्रय वा रहनेका स्थान) थे इसकारण वह नारायण कहाते हैं।

मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिःस्फुटस्य । कृत्स्नस्य चांतर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा । तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥ १७ ॥ अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि । तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगंत्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते १८ अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् । सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥ सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य । जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय ।२०। को वेत्ति भूमन् भगवन्परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् । क्व वा कथं वा कति

कारण वह माया ही है अर्थात् तुम्हारी मूर्त्तिका जो देश परिच्छेद आदि भासना है सो सत्य नहीं है१५हे माया को दूर करनेवाले ईश्वर ! इस अवतारमें ही बाहर प्रत्यक्ष दीखनेवाले सकल प्रपञ्च को तुमने अपने उदरमें यशोदा माताको दिखाकर इसका असत्पना ही प्रकट करा है १६ प्रतिबिम्ब दीखनेका ऐसा नियम है कि-वह बिंब का प्रतिकृति दीखता है, दर्पणका प्रतिबिम्ब उस ही दर्पणमें नहीं दीखता है फिर यशोदाको यह सकल जगत् यहाँ (बाहर) जैसा भासता था तैसा ही वह सब तुम्हारे उदरमें भी तुम्हारे सहित भासमान हुआ, फिर तुम्हारे विषैं तुम सहित बाहरकी समान जगत्का भासना क्या मायाके बिना होसकता है ? अर्थात् कभी नहीं होसकता ॥ १७ ॥ हे देव ! तुम्हारे सिवाय इस सकल प्रपञ्चका मायाकल्पितपना तुमने क्या आज ही मुझे नहीं दिखाया है ? किन्तु दिखाया ही है मेरे बछड़े और ग्वालबाल हरनेसे पहिले तुम एक श्रीकृष्ण थे, तदनन्तर गोकुलके बालक, बछड़े, सींग आदि सब तुम ही होगये, तदनन्तर मेरे सहित सकल तत्त्वों करके सेवन करे हुए, गिनतीमें उतनी ही चतुर्भुज मूर्त्तिवाले तुम होगये, फिर उतने ही ब्रह्माण्डरूप होगये, उन प्रत्येक ब्रह्माण्डोंमें भी अस्मदादिकोंसे सेवन करे हुए थे अब अन्तमें पहिलेकी समान एक कृष्ण ही रहे हो, इस से अपरिमित परिपूर्ण एक ही तुम्हारा स्वरूप शेष रहता है ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारा स्वरूप न जाननेवाले पुरुषोंको ही अनात्मरूप प्रकृतिमें रहनेवाले आत्मा तुम, उनके ऊपर स्वाधीनतासे अपनी माया फैलाकर, जगत्की सृष्टि करनेके विषयमें मुझ ब्रह्माकी समान, पालन करनेके विषयमें इस अब दीखते हुए तुम विष्णुकी समान और संहारके विषयमें रुद्रकी समान भासते हो॥१९॥हे रक्षा करने वाले ! हे प्रभो ! हे ईश्वर ! असज्जनोंका दुष्टमद नष्ट करनेके निमित्त और साधुओं के ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त जन्मरहित भी तुम्हारे-देवताओंमें वामन आदि, ऋषियोंमें परशुराम आदि, मनुष्योंमें श्रीरामचन्द्र आदि, तिर्यक्योनियोंमें वराह आदि और जलचरोंमें मत्स्य आदि अवतार हुए हैं ॥ २० ॥ हे व्यापक ! हे भगवन् ! हे परमात्मन् ! हे योगेश्वर ! जब तुम अपनी योगमायाको फैलाकर क्रीड़ा करते हो तब तुम्हारी लीला,इस त्रिलोकीमें, कहाँ, कैसी, कितनी और कब होती हैं यह कौन

वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥ २१ ॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् । त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥ २२ ॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः । नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरंजनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥२३॥ एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते । गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥ आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपंचितम् । ज्ञानेन भूयोपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ २५ ॥ अज्ञानसंज्ञौ भवबंधमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् । अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥ त्वामात्मानं परं

जानता है ? अर्थात् कोई नहीं जानता है इस कारण तुम्हारी योगमायाका ऐश्वर्य अचिन्तनीय है ॥ २१॥ तिससे अनन्त और सत्यज्ञानानन्दरूप तुम्हारे विषैं प्रतीत होनेवाला यह सम्पूर्ण जगत्, स्वप्नकी समान मिथ्या, ज्ञानशून्य, अनेकों दुःखोंसे युक्त होनेके कारण उत्तरोत्तर दुःखरूप और मायासे उत्पन्न होकर नाशको प्राप्त होनेवाला होनेके कारण नश्वर है तथापि इसके अधिष्ठानभूत तुम्हारी सत्तासे यह मिथ्या होकर भी सत्यकी समान, अनित्य होकर भी नित्यकी समान, दुःखरूप होकर भी सुखकी समान और जड़ होकर भी चेतनकी समान भासता है २२ हे परमेश्वर ! तुम एक आत्मा (द्रष्टा) होनेके कारण परमार्थ सत्य हो, पुरातन और अन्तर्यामी होनेके कारण (प्रपंचसे पहिले भी होनेवाले) हो, नित्य होनेके कारण अस्तित्वरूपविकारसे रहित हो, पूर्ण, नित्यानन्दरूप, अक्षर और अमृत होनेसे वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाशसे रहित हो, अनन्त और अद्वय होनेसे देश आदिपरिच्छेदसे (इतने देशमें रहनेवाले ऐसी अवधिसे) रहित हो, तथा स्वप्रकाश, निर्मल और उपाधिरहित होनेके कारण उत्पत्ति, प्राप्ति, विकृति और संस्कारसे रहित हो ॥ २३ ॥ इसप्रकार सकल ही जीवोंके स्वरूपभूत तुम भगवान्को जो पुरुष, गुरुरूप सूर्यसे प्राप्त हुए उपनिषद्जनित ज्ञानरूप उत्तम नेत्रसे अपने अन्तर्यामीस्वरूप करके देखते हैं वह पुरुष, संसाररूप मिथ्यासमुद्रको तरे हुएसे होजाते हैं ॥२४॥ जो पुरुष आत्माको ही सत्यस्वरूपसे नहीं जानते हैं उनको तिस अज्ञान करके ही तिस आत्मामें अहन्ता ममता आदिरूप सकल प्रपञ्च प्राप्त हुआ है, वह प्रपञ्च फिर भी तिस आत्मस्वरूपके सत्यज्ञान करके ही, जैसे डोरीके अज्ञानसे डोरीमें भासनेवाला सर्पका शरीर फिर डोरीका सत्यज्ञान होनेसे ही नष्ट होता है तैसे ही नष्ट होजाता है ॥ २५ ॥ अब, ज्ञानसे तरही जाते हैं ऐसा होते हुए तरे हुएसे होजाते हैं, ऐसा क्यों कहा ? तहाँ कहते हैं कि-संसारसे जो बन्धन और मोक्ष यह दोनों ही वास्तवमें अज्ञानसे ही उन नामोंको प्राप्त हुए हैं जैसे सूर्यमें रात्रि और दिनरूपभेद हैं ही नहीं तैसे ही अखण्ड अनुभवरूप केवल शुद्ध आत्मा का विचार किया जाय तो तिस सत्य ज्ञानस्वरूपसे भिन्न कुछ भी नहीं है ॥२६॥ यदि कहो कि-परमार्थके ज्ञानसे अज्ञान करके उत्पन्न हुए बन्धनको दूर होने दो,

गत्वा परमात्मानमेव च । आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥ २७ ॥ अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः । असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥ २८ ॥ अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि । जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् । येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥ अहोतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा । यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ३१

परमात्माका स्वात्मस्वरूपसे ज्ञान होना चाहिये ऐसा ही आग्रह क्यों है ? सो-जहाँ देहाभिमानरूप भ्रमसे अपना सत्यस्वरूप नहीं भासता हुआसा होरहा है, तिस शरीरमें ही भ्रम दूर होकर आत्मज्ञान होना उचित है, यही ब्रह्माजी विस्मयमें होकर कहते हैं कि-हे प्रभो ! तुम परमात्माके विषैं देह आदिकोंका अध्यास करके और देहादिकोंमें आत्माका अध्यास करके (तादात्म्य मान कर) आत्मस्वरूपको न समझनेके कारण खोये हुए आत्माको फिर बाहर ढूँढे तब अज्ञानी प्राणियोंकी यह कितनी मूढ़ता है ? घरमें खोई हुई वस्तु कहीं वनमें खोजनेसे मिलती है ? किन्तु कभी नहीं ॥ २७ ॥ इससे हे अनन्त ! इस चैतन्यजड़रूप शरीरमें ही, जड़का त्याग करने वाले विवेकी पुरुष, तुमसे अपनेको अभिन्न समझ कर तुम्हें ही खोजते हैं, यदि कहो कि-सत्यरूपके ज्ञानसे ही कार्य सिद्धि होजायगी, जड़ पदार्थके त्यागका कौन प्रयोजन है ? तहाँ कहते हैं कि-समीपमें सर्पके न होनेपर भी सर्पका निषेध करे विना समीपमें स्थित भी रज्जुको क्या विवेकी पुरुष जानते हैं किन्तु नहीं जानते हैं इस कारण अन्तर्यामी आत्मासे अभेद मान कर तुम्हारा ज्ञान होने पर मुक्ति होती है नहीं तो नहीं होती है ॥ २८ ॥ तो फिर ऐसे ज्ञानसे ही प्राप्त होने वाले मोक्षके विषयमें भक्ति क्यों कही है ? ऐसा कहो तो हे देव ! यद्यपि ज्ञानको हाथसे प्राप्त होनेयोग्य कहा है तथापि तुम्हारे दोनों चरणकमलोंके प्रसादलेशने जिस के ऊपर अनुग्रह करा है ऐसा पुरुष ही, तुम भगवान्की महिमाके तत्त्वको जानता है, दूसरा (तुम्हारी भक्ति न करनेवाला) एक भी पुरुष एकान्तमें वास करके जड पदार्थोंके त्यागसे शास्त्रके बल करके चिरकालपर्यंत विचारकरे तब भी नहीं जानता है ॥२९॥ हे नाथ ! इस कारण इस ब्रह्मजन्ममें, अथवा कर्मवश पशु आदि योनियों में प्राप्त होने वाले जन्ममें मुझे वही परम भाग्य प्राप्त होय कि-जिस भाग्यसे, तुम्हारे भक्तजनोंमें कोई एकाद यत्किञ्चित् भक्त होकर, तुम्हारे चरणपल्लवकी परम सेवा करूँ ॥ ३० ॥ अब देवता आदिकोंके जन्मोंकी अपेक्षा कहीं तुम्हारी भक्तिसे युक्तही जन्म श्रेष्ठ है, ऐसी उत्कण्ठासे सात श्लोकों करके भक्तोंके जन्मकी प्रशंसा करते हैं कि-अहो ! इस गोकुलमेंकी गौ और गोपियें परम धन्य (कृतार्थ) हैं, क्योंकि-हे सर्वव्यापक ! जिन तुम्हें तृप्त करनेको सकल ही यज्ञ, अब भी समर्थ नहीं हैं ऐसे प्रतिक्षणमें तृप्त होते हुए तुमने बछड़ोंके और वत्सपालोंके स्वरूपसे जिन गौ और गोपियोंके स्तनोंका अमृतकी समान मधुर दूध परमहर्षसे पिया है ३१अहो ! नन्दगोप

अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः। एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते॥ ३३॥ तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम्। यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव॥ ३४॥ एषां घोषनिवासिनामुत भवान्किं देव रातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति। सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्व-

के गोकुलमें बसने वाले गौ गोपी आदि सबोंका कैसा परम (अकथनीय) भाग्य है! क्योंकि-जो परमानन्दरूप सनातन पूर्ण ब्रह्म है वह अपना मन वाणी आदि के अगोचरपनारूप स्वभाव त्यागकर जिनका मित्र हुआ है,उनके भाग्यका जितना वर्णन करें उतना थोड़ा ही है॥ ३२॥ हे अच्युत! इन गोकुलवासी लोगोंके भाग्य की महिमा तो अलग ही, उसका तो वर्णन ही कौन कर सकता है? परन्तु अहंकार, बुद्धि,मन और दश इन्द्रियें इन तेरहोंके अधिष्ठाता रुद्र आदि तेरह देवताओं में हम ग्यारह*ही देवता परमभाग्यवान् हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि-हम इन गोकुलवासियोंके इन्द्रियरूप पीनेके पात्र (कटोरों) करके चित्तके अधिष्ठाता तुम वासुदेवके अमृतसमान मधुर और आसवकी समान मदकारी चरणकमलके मकरन्दका बारम्बार पान करते हैं इससे जब प्रत्येक इन्द्रियके अभिमानी देवता हम, तुम्हारे कीर्त्ति,सुन्दरता सुगन्धि आदि एकर गुणका सेवन करनेसे ही कृतार्थ हैं तो सकल इंद्रियोंके गुणोंका सेवन करने वाले व्रजवासियोंके भाग्यका तो वर्णन ही क्या करें? ॥३३॥इस कारण पहिले मैंने जिसकी प्रार्थना करी है तिस परमभाग्य से युक्त, इस मनुष्यलोकमें, तिसमें भी वृन्दावनमें, तिसमें भी गोकुलमें कृमिकीट आदि कोईसा जन्म मुझे प्राप्त हो, जिससे कि-इन गोकुलवासी लोगोंमेंसे किसीके तो चरणकी रजका अभिषक मेरे ऊपर होयगा,यदि कहो कि-गोकुलवासी ही क्यों धन्य है? तो जिनके चरणकी रजको श्रुति भी अभी खोजती हैं ऐसे तुम भगवान् श्रीकृष्ण, जिन गोकुलवासियोंके स्त्री पुत्र गृह आदि सहित आयु भी हुए हो इस कारण वह कृतार्थ हैं॥ ३४॥ ऐसे इन गोकुलवासियोंकी कृतार्थताका कहाँ तक वर्णन करूँ! कि-जिनकी भक्तिसे षड्गुण ऐश्वर्यवान् तुम भी ऋणीकी समान हो कर रहते हो, यदि कहो कि-क्या मैं उनको चाहे सो देनेको समर्थ नहीं हूँ जो उन का ऋणी रहूँगा? सो-हे देव! चाहे जो कुछ देनेको समर्थ भी तुम, इन गोकुलवासियोंको सर्वफलरूप अपने स्वरूपसे अन्य दूसरा कौनसा फल दोगे? इस विषय में हमारा चित्त सब स्थानोंमें विचारके साथ विचरताहुआ भी मोहको प्राप्त होता है, यदि कहो कि मैं अपना स्वरूप ही देकर उनका अनृणी (वे कर्ज) होजाऊँगा

*दश इन्द्रियें, मन, बुद्धि और अहङ्कार इनके तेरह देवता हैं उनमेंसे वायु और उपस्थ इन दोनों इन्द्रियोंसे सेवामें लाभ न होनेके कारण उनके देवताओंको छोड़ कर मूलमें ग्यारह कहा है।

रक्षते ॥ ३५ ॥ तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् । तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥ ३६ ॥ प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले । प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥ जानंत एव जानन्तु किं बहूक्तया न मे प्रभो । मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् । त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्कर-

सो नहीं नहीं यह नहीं होसक्ता,क्योंकि-भक्तोंका वेष ही स्वीकार करनेसे पापिनी पूतना राक्षसी भी तुमने अपने स्वरूपको पहुँचादी है, फिर वही फल क्या उनकी भक्तिके योग्य होसकता है ? यदि कहो कि-इनके सम्बन्धी पुरुषोंको भी मैं आत्मस्वरूप देदूँगा सो उस पूतनाको अघासुर बकासुर आदि कुलसहित ही तुमने आत्म स्वरूप दिया है फिर इनको भी वही फल देना ठीक नहीं है,क्योंकि-जिन गोकुलवासियोंके घर, धन, मित्र, स्त्री पति आदि, देह, पुत्र, प्राण और अन्तःकरण यह सब तुम्हारे निमित्त ही हैं फिर ऐसे परमभक्तोंको क्या प्राणनाशक राक्षसोंको दिया हुआ ही फल देना चाहिये ? ॥ ३५ ॥ यदि कहो कि-वीतराग संन्यासियोंको भी मुझसे दूसरा फल ही नहीं है,फिर इनको वह ठीक क्यों नहीं होगा ? सो हे कृष्ण ! जब तक पुरुष, अनन्यभावसे तुम्हारी शरणमें न आवें तब तक हीं उनके विवेक धैर्य आदि धनको राग लोभ आदि चोर चुराते हैं, तब तक ही उनको यह घर कारागार (जेलखाने) की समान है और तब तक ही यह मोह उनको पैरमें डाली हुई बेड़ीकी समान रोकता है, तुम्हारे भक्तोंके तो रागमोह आदि शत्रु भी तुम्हारे भजनमें विशेष साधन होते हैं इस कारण इन गोकुलवासी वीतराग और संन्यासियोंमें कुछ भी भेद न होकर इनका भजनमात्र अधिक है ॥ ३६ ॥ यदि कहो कि इसकारण ही मैं इनका पुत्रादिरूप हुआ हूँ सो हे प्रभो ! प्रपञ्चसे पर भी तुम अपनी शरण आये हुए, लोकोंको उत्तरोत्तर आनन्द ही प्राप्त होता है ऐसा प्रसिद्ध करने के निमित्त इस भूतल पर पुत्रादिरूप प्रपञ्चका अनुकरण (नकल) करते हो सो कपटसे स्वीकार करे हुए पुत्ररूप आदि करके उनकी सच्ची निःसीम भक्तिका आनृण्य (वे कर्जपना) नहीं होता है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार प्रथमसे आरंभ करके 'अनन्तगुण होनेके कारण' भगवान्के स्वरूपको अपने जाननेमें न आना वर्णन करके अब जो कोई 'हम भगवान्को जानते हैं' ऐसा अभिमान करते हैं उनको हास्य सा करतेहुए कहते हैं कि-हे प्रभो ! तुम्हारी महिमाको 'हम जानते हैं' ऐसा कहने वाले जो हैं वही जानें उनकी अधिक निंदा करके क्या करना है ? मेरे तो मनको शरीरको और वाणीको तुम्हारे ऐश्वर्यका ज्ञान होता नहीं है अर्थात् तुम्हारे ऐश्वर्य का चिन्तवन आदि करना मेरे मन आदिके अधिकारसे बाहर हैं ३८ अब जगदीश्वरपने आदिके अभिमानको त्यागकर कहते हैं कि-हे कृष्ण! तुम सर्वसाक्षी होनेके कारण अपनी महिमा और अस्मदादिकोंकी ज्ञानबल आदि सबही सामर्थ्योंको जानते हो और अनंत ब्रह्मांडोंके स्वामी भी तुम ही हो इतना ही मैं समझता हूँ इस कारण ममताका स्थान यह जगत् और अहंभावका स्थान यह शरीर भी तुम्हें अर्पण करा

जोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन्। उद्धर्मशार्वरहर क्षितिराक्षसध्रुगा-कल्पमार्कमर्हन् भगवन्नमस्ते॥४०॥ श्रीशुक उवाच। इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परि-क्रम्य पादयोः। नत्वाभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत॥४१॥ ततोऽनुज्ञाप्य भग-वान् स्वभुवं प्रागवस्थितान्। वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम्॥४२॥ एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चांतरात्मनः। कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्द्धं मेनिरेऽर्भकाः॥४३॥ किं किं न विस्मरंतीह मायामोहितचेतसः। यन्मोहितं जगत्सर्व-मभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम्॥४४॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा। नैको-ऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम्॥४५॥ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहा-र्भकैः। दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्त्तत वनाद्व्रजम्॥४६॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रितांगः

है, अब मुझे सत्यलोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये ३९ इसप्रकार स्तुति करके जाते समय अति आदरसे बहुतसे संबोधन देकर नमस्कार करते हैं कि-यादवोंके कुलरूप कमल कोआनन्द देनेवाले हे सूर्यसमान! भूमि,देवता,ब्राह्मण और गौ आदि पशुरूप समुद्र को बढानेवाले हे चन्द्रसमान! पाखण्डधर्मरूप रात्रिके अन्धकारका नाश करनेवाले हे चन्द्रसूर्यसमान! और उदय होते ही पृथ्वी परके कंसादि राक्षसोंसे द्रोह करनेवाले हे सूर्य समान! और हे सूर्यपर्यन्त सबके ही पूजनीय भगवन् श्रीकृष्ण! आपको कल्पपर्यन्त नमस्कार हो॥४०॥ शुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! जगत्को रचने वाले ब्रह्माजी इसप्रकार सर्वव्यापक होकर भी जगत्का हित करनेके निमित्त मनुष्यरूपसे विराजमान श्रीकृष्णकी स्तुति करके, तीन प्रदक्षिणा कर और उनके चरणोंमें नमस्कार करके सब लोकोंके पूजनीय अपने सत्यलोकको चले गये॥४१॥ श्रीकृष्णजीने भी अपनेसे उत्पन्न हुए उन ब्रह्माजीको सत्यलोकको जानेकी आज्ञा देकर, तदनन्तर पहिले ही ब्रह्माजीके लाकर छोड़ देनेके कारण कोमल घासोंको चरते हुए बछड़ोंको पहिलेकी समान, अपने सखा जहाँ भोजन कर रहे थे तिस अपने क्रीड़ाकी सामग्री युक्त पुलिनस्थान पर ले आये॥४२॥ यदि कहो कि-वह ग्वालबाल इतने समय पर्यन्त तहाँ ही कैसे रहे और वह भूँख प्यासको कैसे भूल गये? सो हे राजन्! कृष्णकी मायासे मोहित हुए उन बालकोंने, अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय उन श्रीकृष्णजीके विना एक वर्ष बीत जाने पर भी उस समयको आधे क्षणकी समान जाना॥४३॥ हे राजन्! मायासे मोहित चित्त हुए पुरुष इस जगत्में क्या२ नहीं भूल जाते हैं? सब ही भूल जाते हैं, जिस मायासे मोहित हुआ यह जगत्, शास्त्र और आचार्योंके बोध कराने पर भी वारम्वार अपने स्वरूप को भूल जाता है॥४४॥ इस कारण ही वह मित्र श्रीकृष्णजीसे यह कहने लगे कि-हे कृष्ण! तुम बड़ी शीघ्रतासे लौट आये यह बड़ा अच्छा हुआ; हमने तो तुम्हारे विना अभी एक ग्रास भी नहीं खाया है अब अपने स्थान पर आकर बैठो और स्वस्थतासे भोजन करो॥४५॥ तदनन्तर सर्वान्तर्यामी वह श्रीकृष्णजी हँसते२ उन बालकोंके साथ भोजन करके उनको अघासुरके शरीरकी खाँकड़ दिखाते हुए वनसे गोकुलमें आनेके मार्गमेंको चल दिये॥४६॥ तदनन्तर मोरोंके पर, पुष्प,

प्रोद्दामवेणुदलश्रृङ्गरवोत्सवाढ्यः । वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥ अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना । हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः॥४८॥राजोवाच । ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत् । योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥ श्रीशुक उवाच । सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः । इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ॥ ५०॥ तद्राजेंद्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् । न तथा ममतालंबिपुत्रवित्तगृहादिषु देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम । यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥५२॥ देहोऽपि ममताभाक् चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः । यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥ ५३॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् । तदर्थ-

---

और गेरू पेवड़ी आदि नवीन धातुओंसे चित्र विचित्र दीखने वाले, सुन्दर मुरली पत्तोंके बनाये हुए बाजे और सींगोंके शब्दोंसे होने वाले उत्साह करके युक्त बछड़ों को अलग २ रक्खे हुए नामोंसे पुकारने वाले, साथके बालकोंने जिनकी पवित्र कीर्त्तिको गाया है और गोपियोंकी दृष्टियोंको जिनका दर्शन आनन्ददायक है ऐसे उन श्रीकृष्णजीने, गोकुलमें प्रवेश करा॥ ४७ ॥ गोकुलमें जाने पर तहाँ सब बालकोंने, यह कहा कि-यशोदानन्दके पुत्र इस श्रीकृष्णने, वृन्दावनमें आज एक बड़ा भारी अजगर सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी ॥ ४८ ॥ राजाने कहा कि-हे ब्रह्मन्! गोकुलवासियोंका एक वर्षपर्यंत पुत्ररूप हुए श्रीकृष्णजीके ऊपर अपने पुत्रोंसे भी अधिक अपूर्व प्रेम बढ़ा ऐसा जो तुमने कहा तिसमें यह शंका होती है कि-लोकोंमें तो दूसरोंके अति गुणवान् भी पुत्रोंकी अपेक्षा अपने गुणहीन पुत्रोंके ऊपर भी अधिक प्रेम होता है, ऐसा होने पर गोकुलवासियोंके अपनेसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके विषैं भी जो प्रेम पहिले नहीं हुआ था वह अकथनीय प्रेम दूसरेसे उत्पन्न हुए श्रीकृष्णके ऊपर कैसे हुआ ? इसका कारण कहिये ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन् ! सब ही प्राणीमात्रको अपना आत्मा ही परम प्रिय है और पुत्र धन आदि तो तिस आत्माके सुखके साधन होनेसे ही प्रिय हैं स्वतः प्रिय नहीं हैं५० इस कारण हे राजेन्द्र ! प्राणीमात्रको जैसे अपने २ अहङ्कारके स्थान देह आदिमें प्रीति होती है तैसी ममताके स्थान पुत्र, धन, घर आदिकोंमें नहीं होती है ।५१॥ हे राजश्रेष्ठ ! यह देह ही आत्मा है ऐसा कहनेवाले पुरुषोंको भी जैसे देह अति प्यारा है तैसे उस देहके अनुसार रहनेवाले पुत्र घर आदि अतिप्रिय नहीं है ॥५२॥ अब देहको देखो तो जड़ और अनात्मा होनेके कारण घर पुत्र आदिकोंकी समान ही ममताका स्थान है मैं आत्मा हूँ ऐसा कहनेवालेका विषय नहीं है, ऐसा यद्यपि देहातीत आत्मदृष्टिसे कहा है तथापि यह (ममताका स्थान) शरीर आत्माकी समान प्रिय नहीं है ऐसा ही सिद्ध होता है क्योंकि-यह शरीर मरणकालके अत्यन्त ही समीप होकर अब नहीं बचूँगा ऐसा निश्चय होने पर भी तहाँ आत्मा की जीवित रहनेकी आशा अतिबलवान् होती है अर्थात् उस शरीरमें जो प्रेम है यह उससे भिन्न आत्माका अंश है और वह देहसे अध्यास होनेके कारण मिल

मेव सकलं जगच्चैतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् । जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च । भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः । तस्यापि भगवान् कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः । भवांबुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । यत्कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं

रहा है इस कारण उसका देहके साथ होनेवाला अभाव किसीको भी प्रिय नहीं लगता है ॥ ५३ ॥ इस कारण सबही प्राणियोंको अपना २ आत्मा ही अतिप्रिय है और उसके सुखके निमित्त ही चर (स्त्री पुत्रादिक) अचर (घर क्षेत्र आदि) यह सब जगत् प्रिय होता है ॥ ५४ ॥ यदि कहो कि-आत्मा सबको प्रिय होय कृष्ण सबके प्रिय कैसे हुए ? सो हे राजन् ! इन कृष्णको 'सब प्राणिमात्रके आत्मा है' ऐसा जानो; तो इन्द्रियगोचर कैसे हुए, यदि ऐसा कहो तो-वह सर्वात्मा भी जगत् के हितके निमित्त अपनी मायासे इस गोकुलमें मनुष्यरूप करके विद्यमानसे प्रतीत होरहे हैं ॥ ५५ ॥ परन्तु परमार्थदृष्टिसे श्रीकृष्णजीको जाननेवाले पुरुषोंको, इस संसारमें स्थावर जंगमरूप सब ही जगत्, भगवद्रूप प्रतीत होता है उनसे भिन्न जगत्में और कुछ प्रतीत नहीं होता है ॥ ५६ ॥ यदि कहो कि क्यों ? तो सब ही वस्तुमात्रके परमार्थ प्रकृतिरूप कारणके विषें स्थित है और तिस कारणके भी कारण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हैं इस कारण कृष्णके सिवाय और क्या वस्तु है सो कहो ? ॥ ५७ ॥ श्रीकृष्ण ही परमार्थरूप हैं तिससे उनकी ही शरणमें जाने वालों को यत्नके विना मोक्ष प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं-सत्पुरुषोंके आश्रय, पवित्र कीर्त्ति श्रीकृष्णके चरणपल्लवरूप नौकाका जिन्होंने आश्रय करा है उनको संसार-समुद्र बछड़ेके चरणके चिन्हकी समान सहजमें तरने योग्य होजाता है, वैकुण्ठनामक स्थान प्राप्त होता है, दुःखोंका स्थान जो संसार, सो फिर कभी भी प्राप्त नहीं होता है अर्थात् उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! तुमने भगवान्की लीलाके विषयमें आश्चर्यसे जो कौमार अवस्थामें भगवान्का कराहुआ अघासुरका मोक्ष सो पौगण्ड अवस्थामें बालकों ने गोकुलमें कैसे वर्णन करा इस विषयमें जो मुझसे प्रश्न करा था तिसका उत्तर यह सब मैंने तुमसे कहा है ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! जो यह श्रीकृष्णका मित्रोंके साथ खेलनेका चरित्र अघासुरका मोक्ष, पुलिन पर सखाओंके साथ भोजन, जड़ प्रपञ्चसे भिन्न शुद्ध सत्वगुणी धारण कराहुआ बछड़े और ग्वालबालोंका स्वरूप तथा ब्रह्माजीकी करी हुई स्तुति इनको जो पुरुष सुनता है वा पढ़ता है वह पुरुष सब ही पुरुषार्थोंको पाता है ॥६०॥ इस कुमार अवस्थाके योग्य परस्पर एक दूसरे के छीके चुराना, आदि पहिले कहेहुए विहारोंसे और अन्य भी धाईमिचौना खेलना, सेतुके पुल बाँधना और बानरोंकी समान कूदना आदि विहारोंसे गोकुल

शाद्वलजेमनं च । व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ६०
एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः १४
श्रीशुक उवाच । ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ।
गाश्चारयंतौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः । पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥ तन्मंजुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःस्वच्छपयः-सरस्वता । वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान्मनो दधे ॥ ३ ॥ स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः । स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहो अमी देववरामरार्चितं पादांबुजं ते सुमनःफलार्हणम् । नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमो-

---

में उन बलराम और श्रीकृष्णजीने अपनी कुमार अवस्था बिताई ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धपूर्वार्द्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥　　　छ

इस पन्द्रहवें अध्यायमें श्रीकृष्णका गौओंकी रक्षा करना, धेनुकासुरका नाश और कालिय सर्पके विषसे गोपोंकी रक्षा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन्! कुमार अवस्था बीत जाने पर फिर जब उन बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड अवस्थाका आश्रय करा अर्थात् छः सात वर्षके हुए तब वह गौओंका पालन करना, बाँधना, छोड़ना आदि कामोंमें नन्द आदिके सम्मत हुए, तदनन्तर उन्होंने सखाओंके साथ गौएँ चराते हुए सब स्थानमें उभरे हुए अपने चरणोंके चिन्होंसे वृन्दावनको परम पवित्र करा ॥ १ ॥ एकदिन इस वृन्दावनमें क्रीड़ा करनेकी इच्छा करनेवाले श्रीकृष्णजीने मुरली बजातेश्अपना यश गानेवाले गोपोंके साथ और बलरामजीके साथ गौओंको आगे करके पशुओंके हितकारी और फूलोंकी खान ऐसे वृन्दावनमेंको प्रवेश करा ॥ २ ॥ तब मधुर शब्द करनेवाले भौंरे, हिरन और पक्षियोंसे भरे हुए जिसमें साधुओंके मनकी समान स्वच्छ जल है ऐसे सरोवरमेंसे कमलोंके सुगन्धको हर कर आये हुए पवन करके सेवन करे हुए तिस वृन्दावनको देखकर उन श्रीकृष्णजीने वहाँ क्रीड़ा करनेका मनमें विचार करा ॥ ३ ॥ और वह आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णजी, उस वनमेंके अनेकों स्थानोंपर लाल २ पत्तोंकी शोभायुक्तफल और फूलोंके अतिभारसे जिनकी शाखा चरणोंको स्पर्श कर रही हैं ऐसे वृक्षोंको देखकर, हर्षसे हँसते हुए बलरामजीसे कहनेलगे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि-हे देववर बलराम! देखो कैसा आश्चर्य है यह वृक्ष अपनी शाखाओंसे फूलफल आदि पूजाकी सामग्री तुम्हारे आगे रखकर, ब्रह्मादि देवताओंके भी पूजनीय तुम्हारे चरणकमलको, जिस अज्ञानसे अपनेको वृक्षका जन्म प्राप्त हुआ है तिस अज्ञानके नाशके निमित्त नमस्कार कर रहे हैं अथवा जिन तुम ईश्वरने, सबका उपकारी होनेवाला वृक्ष जन्म हमें दिया है ऐसे प्रशंसनीय अपने जन्ममें जो अज्ञानरूप अन्ध-

एहत्यै तदजन्म यत्कृतम् ॥ ५ ॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायंत आदिपुरुषानुपदं भजन्ते । प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ॥६॥ नृत्यंत्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वंति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन । सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥ धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः । नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥८॥ श्रीशुक उवाच। एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् । रेमे सञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद्गायति गायत्सु मदांधालिष्वनुव्रतैः । उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् । अभिनृत्यति नृत्यंतं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगा-

कार है उसके नाशके निमित्त तुम्हें नमस्कार कर रहे हैं ॥५॥ हे आदिपुरुष ! यह भौंरे लोकदृष्टिसे यद्यपि झंकार शब्द कररहे हैं ऐसा दीखता है तथापि वास्तवमें यह वक्ता और श्रोताओंको पवित्र करनेवाले तुम्हारे यशको गाकर पग२ पर तुम्हारी सेवा कररहे हैं हे पवित्र बलराम! प्रायः यह भौंरे तुम्हारे सेवकोंमें मुख्य ऋषियों के समूह ही हैं,यह, मनुष्यके वेषसे वनमें गुप्त रहनेवाले अपने देवता ऐसे तुम्हें त्यागते नहीं हैं अर्थात् तुम जब मनुष्य वेषसे गुप्त हुए तब यह ऋषि भी भ्रमरों के वेषसे गुप्त होकर तुम्हारी सेवा कर रहे हैं॥६॥हे स्तुतियोग्य बलराम ! यह मोर तुम्हारे आगे नृत्य कर रहे हैं; तैसे ही यह हिरनी भी गोपियोंकी समान प्रेमयुक्त होकर अपने घर (वनमें) आये हुए तुम्हारा कटाक्षोंसे प्रिय करती हैं तथा यह कोकिलाओंके समूह भी घर आये हुए तुम्हारा स्तोत्ररूप मधुर शब्दोंसे प्रिय करती हैं,इसकारण यह भ्रमर आदि सब अधम जातिके होकर भी कृतार्थ हैं, क्योंकि—अपने पास जो कुछ होय वह घर आये हुए सत्पुरुषको अर्पण करें यह ही सज्जनोंका स्वभाव इन्होंने स्वीकार करा है ॥ ७ ॥ हे राम ! तुम्हारे चरणके स्पर्शसे यह पृथ्वी धन्य है, तुम्हारे चरणोंको स्पर्श करनेवाले तृण और लता धन्य हैं, तुम्हारे हाथोंके नखोंके स्पर्श करे हुए वृक्ष और उनके समीपकी यह लता धन्य है,तुम्हारे दयायुक्त देखनेसे नदी, पर्वत, वृक्ष और मृग यह धन्य हैं तथा लक्ष्मी भी जिसके आलिङ्गनकी इच्छामात्र करती है उस तुम्हारे भुजाओंके मध्यभाग (वक्षःस्थल) का आलिंगन पाकर गोपी धन्य हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार शोभायुक्त वृंदावनकी प्रशंसा करके प्रसन्नचित्त हुए वह श्रीकृष्णजी, गोवर्द्धनके समीपकी भूमिके स्थानोंमें और यमुना नदीके कछारोंमें साथियों सहित गौओंको चराते हुए क्रीडा करनेलगे ॥ ९ ॥ कभी तो, साथी गोपोंने वा देवताओंने जिनका चरित्र गाया है ऐसे पुष्पोंकी माला पहिने बलराम सहित वह श्रीकृष्णजी, मदसे अन्ध हुए भौंरोंके गान करने पर आप भी गान करने लगते थे ॥ १० ॥ कभी राजहंसोके शब्दोंके पीछे आप भी तैसा ही शब्द करते थे, कभी अपने सखाओंको हँसाते हुए नाचते हुए मोरोंके समीपमें आप भी नृत्य करते थे ॥ ११ ॥ किसी समय

न्पशून् । क्वचिद्गायति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥ १२ ॥ चकोरक्रौंचचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः । अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥ क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्संगोपबर्हणम् । स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युद्ध्यतो मिथः । गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः । वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः । अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः । गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडंबयन् । रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रु-

गौओंको और गोपोंको प्रिय लगनेवाली मेघकी समान गंभीरवाणीसे धरे हुए नामों करके दूरगईहुई गौओंको प्रीतिके साथ समीपको बुलाते थे ॥ १२ ॥ कभी, चकोर, क्रौंच, चकवे, भारद्वाज, और मोर इन पक्षियोंके शब्दोंका अनुकरण करते थे, कभी अन्य प्राणी व्याघ्र सिंह आदिका शब्द सुन कर भयभीत हो भागतेहुए दूरको जाने लगते थे तो आप भी भयभीतसे होकर दूरको भाग जाते थे ॥ १३ ॥ कभी खेलते २ थककर गोपोंकी जङ्घाओंका तकिया करके सोयेहुए अपने बड़े भ्राता बलरामको, वह श्रीकृष्णजी आप ही चरण दवाना आदिसे श्रम (थकावट) रहित करते थे ॥१४॥ कभी परस्पर हाथ पकड कर खड़े हुए वह रामकृष्ण, एक दूसरेके साथ मिल कर नाचने वाले, गाने वाले और कुश्ती लड़ने वाले गोपोंकी तुम नृत्य करनेमें विद्याधरोंकी समान हो, गानेमें गन्धर्वोंकी समान हो और कुश्तीमें त्रिलोकीको जीतने वाले हो इस प्रकार हँसते २ प्रशंसा करते थे ॥ १५ ॥ कभी बाहुयुद्ध (कुश्ती) के श्रमसे थके हुए श्रीकृष्णजी, वृक्षके नीचे कोमल पत्तोंके बिछौने पर गोपकी जङ्घा पर शिर रखकर सोते थे ॥ १६ ॥ उस समय कितने ही गोप उन महात्मा श्रीकृष्ण जीकी चरणसेवा करते थे 'भगवान्के साथ क्रीड़ा करनेसे ही' निष्पाप हुए कितने ही गोप, पत्ते आदिके पंखोंसे उनकी बियार इचा करते थे ॥ १७ ॥ हे महाराज ! दूसरे कितने ही गोप, जिनकी बुद्धि स्नेहसे पसीजी है ऐसे होकर उन महात्मा श्रीकृष्णजीकी शयन आदि लीलाओंके योग्य और उनको सुखकारी गीत धीरे २ जैसे उनकी निद्रा न उछटे तिस रीतिसे' गाते थे १८ इसप्रकार, जिनके चरणपल्लवका लक्ष्मीने लालन करा है ऐसे उन भगवान्ने, अपनी मायासे अपने सत्यस्वरूपको ढक कर, अपने आचरणोंसे गोपके पुत्ररूपका अनुकरण करते हुए और बीच २ में ईश्वर की समान चरित्र करके दिखाते हुए ग्रामवासियोंके साथ ग्रामवासी गोपकी समान होकर क्रीडा करी ॥१९॥ अब उनका ईश्वरचरित्र दिखानेके निमित्त कहते हैं कि-बलराम और श्रीकृष्णजीका एक परममित्र श्रीदामा नाम वाला गोपाल था वह और सुबल, स्तोककृष्ण आदि गोप इन सबोंने बलराम और श्रीकृष्णजीके समीप आकर प्रेमसे यह कहा कि ॥२०॥ हे महापराक्रमी राम ! राम ! हे दुष्टनाशक कृष्ण !

वन् ॥ २० ॥ राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिवर्हण । इतो विदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥ २१ ॥ फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतंति च । सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् । आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् । न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥२४॥ विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च । एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् । वाञ्छाऽस्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥ एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया । प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥ २७ ॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकंपयन् । फलानि पातयामास मतंगज इवौजसा ॥२८॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः । अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकंपयन् ॥ समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली । निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥३०॥ पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः । चरणावपरौ राजन् बलाय

इस खेलनेके स्थानके समीप ही तालके वृक्षोंकी पंक्तियोंसे भरा हुआ एक बड़ा वन है ॥ २१ ॥ तहाँ बहुतसे तालके वृक्षोंके फल हैं, वह कितने ही नीचे पड़े हैं और कितने ही ऊपर पककर नीचे गिरते हैं परन्तु क्या करें ! दुष्टात्मा धेनुकासुरने उन को रोक रक्खा है ॥ २२ ॥ हे राम ! हे कृष्ण ! गर्दभका रूप धारण करने वाला वह महापराक्रमी असुर अपनी समान बलवान् और बहुतसे जाति वालोंसे घिरा हुआ है ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशक कृष्ण ! वह मनुष्योंको भक्षण करलेता था इसकारण उस से भयभीत हुए मनुष्य उस वनमें नहीं जाते हैं, वह वन गौ आदि पशुओंसे और पक्षियोंके समूहोंसे भी रहित होगया है ॥ २४ ॥ पहिले कभी भी भक्षण न करे हुए सुन्दर सुगंध वाले फल तहाँ हैं, यह देखो जिधर तिधर फैला हुआ सुन्दर गन्ध आरहा है ॥ २५ ॥ हे कृष्ण ! सुगन्धसे जिनका चित्त पानेका लोभी हुआ है ऐसे हमें वह फल देओ, उन फलोंको भक्षण करनेकी हमें बड़ी इच्छा होरही है परंतु हे राम ! यदि तुम्हें हमारा कहना रुचे तो फल लेनेको चलो ॥२६॥ इसप्रकार मित्र गोपोंका कहना सुन कर हँसते हुए उन मित्रोंका प्रिय करनेकी इच्छासे वह प्रभु राम कृष्ण, गोपोंसे घिर कर उस तालवनमेंको चले गये ॥ २७ ॥ बलरामने तो उस वनमें घुस कर अपनी भुजाओंके बलसे तालके वृक्षोंको, मदोन्मत्त हाथीकी समान कँपा कर उसके फल भूमि पर गिरा दिये ॥ २८ ॥ तब गर्दभका रूप धारण करने वाला वह धेनुकासुर गिरते हुए फलोंके शब्दको सुन कर वृक्ष पर्वतों सहित पृथ्वी तलको कँपाता हुआ बलरामको मारनेके निमित्त उनके सम्मुखको दौड़ा ॥ २९ ॥ और आकर पिछले दोनों पैरोंसे बड़े वेगसे बलरामजीके वक्षःस्थलपर प्रहार करके गर्दभ जातिका शब्द करता हुआ वह बलवान् खल धेनुकासुर, फिर प्रहार करनेके निमित्त बलरामजीके सामनेको भागने लगा ॥ ३० ॥ और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ वह धेनुकासुर, फिर बलरामजीके समीप आकर उनकी ओरको अपनी पूँछ करके खड़ा हुआ और हे राजन् ! वह बलरामजीको मारनेके निमित्त अपने पिछले पैर झाड़ने

प्राक्षिपद्द्रुमा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना । चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतो महातालो वेपमानो महाशिराः । पार्श्वस्थं कंपयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥३३॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः । तालाश्चकंपिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे । ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तंतुष्वंग यथा पटः ॥३५॥ ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये । क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन् सर्वे संरब्धा हतबांधवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया । गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥ फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः । रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशम्य विबुधादयः । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः । तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ४० कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्त्तनः । स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत्

लगा ॥ ३१ ॥ तब बलरामने उस दैत्यको एक ही हाथसे पिछले पैरोंके अग्रभागमें पकड़ कर बार २ घुमाया, घुमानेसे ही मरणको प्राप्त हुए तिसको एक तालके वृक्ष की जड़में फेंक दिया ॥ उस बलरामके फेंके हुए गर्दभके शरीरसे ताड़ित होनेके कारण काँपने वाला, बडे गुद्दों वाला वह महाताल, अपने समीपके दूसरे ताल वृक्ष को कँपाता हुआ उसके ऊपर ही टूट पडा, वह भी दूसरे तालको कँपाता हुआ उसी के ऊपर टूट पड़ा, वह भी और दूसरे तालके ऊपर टूट पड़ा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार बलरामने लीला करके फेंके हुए गर्दभके शरीरसे जो तालवृक्ष ताडित हुआ था उस से दूसरा और तिससे तीसरा इस प्रकार सब ही तालके वृक्ष बड़े वेगसे पवनके चलने पर जैसे कम्पित होते हैं तैसे कम्पायमान हुए ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! जिसमें यह जगत्, सीधे आड़े तन्तुओंसे बुने हुए वस्त्रकी समान ओत प्रोत रचा हुआ है ऐसे जगदीश्वर अनन्त भगवान्‌के विषें यह धेनुकासुरको घर २ घुमा कर मारना आदि आश्चर्य नहीं है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार धेनुकासुरके मरणको प्राप्त होनेके अनन्तर उसकी जातिके जो गर्दभ थे वह सब भी अपना बन्धु मारा जानेके कारण क्रुद्ध होकर, कृष्ण, बलराम और गोपोंको मारनेके निमित्त उनके शरीरोंके ऊपरको दौड़े ॥ ३६ ॥ तब हे राजन् ! श्रीकृष्ण और बलरामने ऊपरको दौड़ कर आने वाले उन गर्दभोंको स्वाभाविक लीलासे पिछले पैर पकड़ कर घर २ घुमा कर तालके वृक्षों पर फेंक दिया ॥ ३७ ॥ उस समय फलोंके समूहोंसे और टूटे हुए तालवृक्षों के गुद्दों सहित प्राणहीन होकर पडे हुए दैत्योंके देहोंसे भरा हुआ वह भूतल, जैसे मेघोंसे भरा आकाश शोभित होता है तैसे शोभित होने लगा ॥ ३८ ॥ औरोंको जिसका करना कठिन है ऐसे उस राम कृष्णके बड़े भारी कर्मको देख कर, देवता आदिकोंने पुष्पोंकी वर्षा आदि करी, उनमें देवताओंने फूलोंकी वर्षा करी, गन्धर्वों ने गानेके साथ बाजे बजाये और ऋषियोंने स्तुति करी ॥३९॥ तदनन्तर सब मनुष्य धेनुकासुरके मरजाने पर उस वनमें निर्भय होकर तालोंके फल खाने लगे और गौ भैंस आदि पशु भी तृण चरने लगे ॥ ४० ॥ फिर कमलदलनयन और श्रोता

तं गोरजश्छुरितकुंतलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम्। वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः॥ ४२॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि। तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपांगमोक्षम्॥ ४३॥ तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले। यथा कामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः॥ ४४॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः। नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ॥ ४५॥ जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ। संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे॥४६॥ एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित्। ययौ राममृते राजन्कालिंदीं सखिभिर्वृतः॥ ४७॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः। दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्त्ता विषदूषितम्॥४८॥ विषांभस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः। निपेतुर्व्यसवः सर्वे

वक्ताओंको जिनका श्रवण कीर्त्तन पुण्यकारी है ऐसे वह बलरामसहित श्रीकृष्णजी, देवता ऋषि आदिकोंसे तथा गोपोंसे स्तुति करे जाते हुए गोकुलमेंको लौट गये ४१ उस समय उनके दर्शनको जिनकी दृष्टि उकता रही है ऐसी गोपियें इकट्ठी होकर, वनमेंसे आने वाले, गोरजसे भरे हुए घुँघराले केशोंमे जिन्होंने मोरोंके पंख और वनके फूल धारण करे हैं, जिनका देखना मनको मोहित करने वाला है, जिनका हास्य मनोहर है, जिनकी कीर्त्तिको साथी गोप गारहे हैं ऐसे मुरली बजाने वाले उन श्रीकृष्णजीको देखनेके निमित्त सन्मुख गईं॥४२॥ उन गोपियोंने, [श्रीकृष्णजीके मुखका मधु, नेत्ररूप भ्रमरोंसे पीकर अर्थात् मुख की सुन्दरता नेत्रोंसे देख कर दिनमें जो श्रीकृष्णजीका विरह रहा था उसके तापको त्यागा श्रीकृष्णजीने भी, उन गोपियोंने लज्जायुक्त हास्यके साथ नम्रता दिखाकर अपनी ओरको जो कटाक्षोंसे देखा था उस ही सत्कारको स्वीकार करके गोकुलमें प्रवेश करा॥४३॥ तब वनमेंसे आये हुए उन रामकृष्ण नाम वाले पुत्रोंको, पुत्रवत्सल उन यशोदा और रोहिणीने उनकी इच्छाके अनुसार समय २ के योग्य भोजन वस्त्र आदि उत्तम भोग समर्पण करे॥ ४४॥ तब वह राम कृष्ण, उन नन्दजीके घरमें स्नान, सुगन्धित तेल आदि मलना, बाल काढ़ना आदिसे मार्गके श्रमको दूर करके सुन्दर वस्त्र पहिन दिव्य पुष्पोंकी मालाओंसे और चन्दन आदि उबटनोंसे भूषित हुए॥ ४५॥ तदनन्तर वह रामकृष्ण, माताओंके परोसे हुए स्वादयुक्त अन्न भोजन करके उन ही माताओंसे, ताम्बूल अर्पण करना पवन करना आदि करके लालित होते हुए पलँग आदि पर पुष्प आदि बिछाकर बनाई हुई उत्तम शय्या पर सुखसे सोये॥४६॥ हे राजन्! इस प्रकार वह भगवान् श्रीकृष्णजी, वृन्दावनमें गौएँ चराते हुए, एक दिन बलराम के बिना ही और गोपोंको साथ लेकर कालिन्दी नदीके तट पर जल पीनेको गये४७ सो इतने ही में धूपकी गरमीसे पीडित होकर पिलासे हुए कितने ही गौ और गोपोंने, पीछेसे आते हुए कृष्णकी बाट न देखकर शीघ्र ही आगेको जाकर कालिय सर्पके विषसे दुःखित हुआ वह यमुनाका जल पीलिया॥४८॥ हे राजन्! जिन्होंने जल नहीं पिया था उन्होंने भी उस विषैले जलमें स्नान वा आचमन कर लिया। इस

सलिलांते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । ईक्षयामृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥५०॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलांतिकात् । आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥ अन्वमंसत यद्राजन् गोविंदानुग्रहेक्षितम् । पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच । विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः । तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥१॥ राजोवाच । कथमंतर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् । स वै बहुयुगावासं यथाऽऽसीद्विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः । गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच । कालिंद्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना । श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतं-

कारण प्रारब्धवश मोहितचित्त हुए वह सब ही (गोप और गौएँ) प्राणहीन होकर जलमें गिर पड़े ॥ ४९ ॥ तब योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णजीने, मैं ही इनका रक्षक हूँ ऐसा समझकर प्राणहीन होकर पड़े हुए उन गौ और गोपोंको अमृत बर्षानेवाली दृष्टिसे देखकर जीवित करा ॥५०॥ तब तत्काल स्मरणको प्राप्त हुए वह सब ही गौ गोप जलके समीपसे उठकर एक दूसरेकी ओरको देखने लगे और बड़े आश्चर्यमें होगये ॥ ५१ ॥ और हे राजन् ! उन्होंने विष पीकर मरे हुए अपने शरीरोंका फिर उठाना उन श्रीकृष्णजीकी कृपादृष्टिसे देखनेके कारण है ऐसा माना ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ छ

इस सोलहवें अध्यायमें यमुनाके कुण्डमें श्रीकृष्णजीने, कालियसर्पको नाथा तब नागपत्नियोंने उनकी स्तुति करी और कृष्णने उस कालियके ऊपर अनुग्रह करा यह कथा वर्णन करी है । तथा गर्दभरूपी दैत्योंको मारकर और इच्छानुसार तालके फल खाकर सन्तुष्ट हुए उन सर्वकलानिधि भगवान् श्रीकृष्णने तिस कालिय सर्पके फणरूप रङ्गमण्डपमें नृत्य करा यह कथा वर्णन करी है ॥ॐ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! कालिय सर्पने यमुनानदी दूषित करदी ऐसा देखकर उसकी शुद्धता होनेकी इच्छा करनेवाले समर्थ भगवान् श्रीकृष्णने उस सर्पको तहाँसे निकाल दिया ॥१॥ राजाने कहा कि-हे विप्र ! † भगवान श्रीकृष्णजीने अथाह जलमें बहुत युगोंसे रहनेवाले तिस कालिय सर्पको किसप्रकार नाथा तथा रमणक द्वीपमें रहनेवाला वह कालियसर्प भी जलचरोंके न होते हुए उस जलमें आकर क्यों रहा ? सो मुझसे कहो ॥२॥ हे ब्रह्मन् ! अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले उन सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके, गोपालरूपसे करे हुए मोक्षदायक चरित्ररूप अमृतका सेवन करनेवाला भला कौनसा पुरुष तृप्त होगा ? इस कारण मुझसे कहो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! यमुना नदीके पात्रमें कालियके विषरूप अग्निसे जिसका जल अदहनकी समान औट रहा है, जिसमें ऊपर होकर

† जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणमिति । याज्ञवल्क्यः ।

न्युपरिगाः खगाः॥४॥विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः। म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥ तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः। कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥ सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः । पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्गवरवारणविक्रमस्य। आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम्। क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥ तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्त्ताः। कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभय-

जानेवाले पक्षी भी मरकर गिर जाते थे और जिसके विषैले जलकी तरङ्गोंसे जल के कण लेकर आये हुए पवनसे स्पर्श हुए तीरके वृक्ष और पशु पक्षी आदि प्राणी मर जाते थे ऐसा एक कालियसर्पका कुण्ड था ॥ ४ ॥ ५ ॥ तिस प्रचण्ड वेगयुक्त विषकी शक्तिसे बलवान् हुए कालियसर्पको और उसकी विषयुक्त करी हुई यमुना नदीको देखकर दुष्टोंका दमन करनेके निमित्त अवतार धारण करनेवाले श्रीकृष्णजी ने उसको निकालनेके निमित्त अपनी कमर वस्त्रसे दृढ़ बाँधकर और अति ऊँचे कदंब वृक्षके ऊपर चढ़कर हाथोंसे दण्ड ठोके और उस कदम्ब ÷ परसे नीचे विषैले जलसे भरे हुए उस कुण्डमेंको छलाँग मारी ॥६॥ उस समय जिसका जल,उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजीके कूदनेके वेगसे क्षोभित हुए भीतर रहनेवाले सर्पके विषसे युक्त होकर ऊपरको उछल रहा है और जिसकी तरंगे विषसे लाल पीले आदि वर्णोंकी भयंकर हुई हैं वह कालिय सर्पका कुण्ड; चारों ओरको फैलता फैलता चार सौ हाथ पर्यन्तका चौड़ा होगया, हे राजन्! अनन्तबली श्रीकृष्णजीके विषयमें यह कुछ आश्चर्य नहीं है ॥७॥ हे राजन्! तदनन्तर कुण्डमें बड़े भारी हाथीकी समान लीला करके विहार करनेवाले उन श्रीकृष्णजीके भुजदण्डोंसे ताड़ित हुए जलका शब्द सुनकर, इन कृष्णकी क्रीड़ासे मेरे घरका नाश होजायगा ऐसा देखकर उसको न सहनेवाला वह कालिय सर्प कृष्णके समीपको दौड़ कर आया ॥८॥ और उसने देखने योग्य सुकुमार, मेघकी समान श्यामवर्ण, श्रीवत्सलाञ्छन और पीला पीताम्बर धारण करनेवाले, मन्दमुसकरानसे मनोहर मुख दीखनेवाले, निर्भयपने से क्रीड़ा करनेवाले और कमलके गर्भकी समान कोमल चरणोंसे युक्त तिन श्रीकृष्णजीको क्रोधसे मर्मस्थानोंमें काट कर अपने देहसे लपेट लिया ॥ ९ ॥ तब सर्प के देहसे लिपटे हुए और हलना चलना रहित हुए उन कृष्णको देखकर, जिन्होंने अपना देह, मित्र, सम्पदा, स्त्री और इस लोक तथा परलोकके भोग

÷ इसके भाग्यमें श्रीकृष्णके चरणका स्पर्श होना था, इस कारण वह एक कदम्ब ही उस कुण्डके तट पर नहीं सूखा, क्योंकि अमृतको लाते हुए गरुड़जी उसके ऊपर बैठे थे, अतः वह बच रहा।

मूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥ गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः । कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः । उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नंदपुरोगमाः । विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः । तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः १४ आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः । निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः १५ तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः । प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः । भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥ ते तत्र तत्राब्जयवांकुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पतेः । मार्गे गवामन्यपदांतरांतरे निरीक्षमाणा ययुरंग सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्त-

श्रीकृष्णको अर्पण करे हैं और जिनको वह कृष्ण ही प्रिय हैं ऐसे उनके सखा गोप, अत्यन्त दुःखित और दुःखके अनन्तर अति बढे हुए शोक और भयसे जिनकी बुद्धि विचाररहित होगई है ऐसे हो मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १० ॥ तथा गौ, बैल, और खिरचरी यह सब भी श्रीकृष्णजीकी ओरको दृष्टि लगाकर, वह कृष्ण सर्प से लिपटजानेके कारण चेष्टारहित होगए हैं ऐसा देखकर अत्यन्त दुःखित और भयभीत हो हाहाकारके साथ रोते हुएसे खड़े होगये ॥ ११ ॥ उसी समय गोकुलमें, आगे शीघ्र ही भयको सूचित करनेवाले भूमि पर भूकम्प (हाला चाला) आदि, आकाशमें उल्कापात आदि और देहमें बायाँ नेत्र फड़कना आदि तीन प्रकारके अतिभयंकर उत्पात होने लगे ॥ १२ ॥ हे राजन ! उनको देखकर नन्द आदि सब गोप, बलरामके विना कृष्ण गौ चरानेको वनमें गया है ऐसा जानकर तदनन्तर उन होते हुए उत्पातोंसे कृष्णका मरण होगया ऐसा मनमें विचार भयसे व्याकुल हुए और (कृष्णके वियोगसे होनेवाले) दुःख (आगेको निर्वाह कैसे होयगा ऐसी चिन्तारूप) शोक और (अब कृष्णके वियोगसे हमारा मरण होजायगा ऐसे) भयसे वह अत्यन्त कातर होगये, क्योंकि-वह कृष्णके वास्तविक प्रभावको नहीं जानते थे और उनके प्राण और मन कृष्णमें लगे हुए थे ॥ १३ ॥ १४ ॥ तदनन्तर दीन और बछड़ोंसे छूटी हुई गौओंकी समान डकरानेवाले वह सब गोप, बाल, वृद्ध और स्त्रियें सहित कृष्णके देखनेको उत्कण्ठित होकर कृष्णको खोजनेके निमित्त गोकुलसे चल दिये ॥ १५ ॥ वह नन्द आदि गोप, ऐसे व्याकुल होरहे हैं, यह देखकर, मधुकुलमें उत्पन्न हुए और ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणोंसे पूर्ण तिन बलरामजीने हँसकर कुछ कहा नहीं, क्योंकि वह श्रीकृष्णके प्रभावको जानते थे अर्थात् श्रीकृष्णको कालियका भय नहीं है किन्तु उनके मनमें यह आया है कि-कालियमर्दन देखनेके निमित्त नन्द आदि यमुनाके तट पर आवें, यह जानते थे १६ वह नन्द आदि गोप, भगवान्‌को जतानेवाले लक्षणोंसे युक्त चरणके चिन्होंसे सूचित करे हुए मार्गसे प्रिय श्रीकृष्णको ढूँढते २ यमुनाके तट पर पहुँच गये ॥१७॥ अर्थात् हे राजन् ! उन गोपोंने, गौओंके जानेके मार्गमें जहाँ तहाँ और गोप आदिकोंके चरणोंके

ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयांते । गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रंदतः परमकश्मलमापुरार्त्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरंत्यः । ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवंत्यः । तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयंत्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥ कृष्णप्राणान्निर्विशतो नंदादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् । प्रत्यषेधत्स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् २२ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः । आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्त्तमानः स्थित्वा मुहूर्त्तमुदतिष्ठदुरंगबंधात् ॥२३॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः

चिन्हों के बीच २ में कमल, यव, अंकुश, वज्र, ध्वजा इन चिन्होंसे युक्त गोपाधिपति श्रीकृष्णजीके चरणमार्गमें उभरेहुए देखकर, बड़ी शीघ्रतासे यमुनाके तीर पर गमन करा१८और वह दूरसे ही कुण्डमें कालियसर्पके शरीरसे लिपट कर चेष्टाहीन हुए श्रीकृष्णको, तथा कुंडके तटपर मूर्छित होकर पड़े हुए गोपोंको और चारों ओरसे डकराते हुए गौ आदि पशुओंको देखकर, अतिदुःखित हो परममूर्छाको प्राप्त हुए१९ उस समय कृष्णके प्रेम, मंदहास्य, अवलोकन और प्रियवचनोंका स्मरण करनेवाली और तिन अनंत भगवान्में अनुरक्तचित्तहुई सकल गोपियें, प्रिय श्रीकृष्णको कालियसर्पसे लिपटा हुआ देखते ही परमदुःखसे संतप्त हुई तथा प्रियकृष्णसे रहित त्रिलोकीको शून्य देखनेलगीं ॥२०॥ और उस समय कृष्णकी माता (यशोदा) कृष्णके समीप जानेको कालियके कुण्डमें प्रवेश करनेलगी तब उसको हाथसे पकड़ कर उसकी समान ही दुःखमाननेवालीं और दुःखसे आँसू बहानेवाली वह गोपियें उसके समझानेके निमित्त गोकुलप्रिय श्रीकृष्णकी पूतनावध आदि अनेकों कथा कहती रहीं अन्तमें वह भी श्रीकृष्णके मुखकी ओर अपनी दृष्टि लगाकर शवसमान (मूर्छित) होगईं ॥ २१ ॥ ॥ उस समय जिनके पाँच प्राण, इन्द्रियें और अन्तःकरण कृष्णकी ओर लगे हैं ऐसे वह नंद आदि गोप भी, कालियके कुंडमें प्रवेश करने लगे ऐसा देखकर कृष्णके पराक्रमको जाननेवाले उन भगवान् बलरामने उनको 'अब ही कृष्णकालियका मर्दन करके बाहर आवेगा' तुम कुण्डमें न घुसो, ऐसा कहा ॥ २२ ॥ इस प्रकार मनुष्यलीलाका नाटक करनेवाले तिन श्रीकृष्णजीने दोघडी पर्यंत कालिय सर्पके लपेटनेमें रहकर अपने वियोगसे स्त्री बालकों पर्यन्त सकल गोकुल दुःखित हुआ यह देखकर और इनका रक्षक मैं ही हूँ दूसरा कोई नहीं है ऐसा जानकर कालियसर्पके करेहुए लपेटने रूप बंधनसे बाहर निकलनेके निमित्त अपने शरीरको फुलाया ॥ २३ ॥ तब उन श्रीकृष्णजीके बढ़ाये हुए शरीर से जिसके शरीरमें व्यथाहुई है ऐसा वह कालियसर्प, कृष्णको लिपटा हुआ अपना शरीर खोलकर लंबीं फुङ्कारें भरता हुआ क्रोधसे अपने फनको उठाकर, जिसकी नाकमें श्वासलेनेके साथ बाहर विष निकलरहा है, जिसके पथराये हुए नेत्र भाड़ के तपेहुए खिपड़ेकी समान लाल २ दीखरहे हैं और जिसके मुखमें घर २ घुमा

स्वफणान् भुजङ्गः । तस्थौ श्वसन् श्वसनरंध्रविषांबरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् । क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेंद्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥ एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरःस्वधिरूढ आद्यः । तन्मूर्द्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादांबुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त्त ॥ २६ ॥ तं नर्त्तमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः । प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ॥ २७ ॥ यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः । क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृक् नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः ॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः । नृत्यन्पदानुनमयन् दमयांबभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह

हुई मसालकी समान लहराती हुई जीभ हिलरही है ऐसा वह सर्प, कृष्णको देखता हुआ डटा हुआ खड़ा रहा ॥ २४ ॥ तब वह श्रीकृष्ण भी क्रीडा करते हुए हर एक मुखमें दो अगली जीभोंसे ओठोंके किनारोंको चाटनेवाले और अतिभयङ्कर विषैली अग्नियुक्त दृष्टि वाले तिस कालिय सर्पके चारों ओर उसके फनके ऊपरको छलाँग मारनेका अवसर पानेके निमित्त, गरुड़की समान निर्भय फिरने लगे और वह सर्प भी कृष्णको डसनेका अवसर पानेके लिये अपनेही चारों ओर घूर२ फिरनेलगा२५ इस प्रकार अपने चारों ओर फिरनेसे ही शक्तिहीन हुए परन्तु ऊपरको फन उठाने वाले उस कालियको नीचेको झुका कर उसके बड़े भारी फनके ऊपर चढ़हुए और नृत्य आदि चातुरीके आदिगुरु वह आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णजी, तहाँ नृत्य करने लगे उससमय उनके चरणकमल,स्वयं ही लाल२ थे और वह उस कालियके फणों परके रत्नोंके स्पर्शसे अधिक लाल २ चमकने लगे२६तब गंधर्व,सिद्ध,देवता, चारण और अप्सरा यह उनकी सेवकमण्डली, अपने स्वामी श्रीकृष्णको नृत्य करने के निमित्त उद्यत हुआ जानकर, शीघ्रतासे तहाँ (आकाशमें) आकर मृदङ्ग,नौबत नगाड़े आदि बाजे बजाना, गाना, पुष्पोंकी वर्षा, नैवेद्य और स्तुति करके उन की सेवा करने लगी ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उस समय खलोंको दण्ड देने वाले उन श्रीकृष्णजीने, जिसके सौ मुख्य मस्तक हैं और जो क्षीणबल होकर मरा हुआ सा होकर भी क्रोधके वशमें होनेके कारण वारम्वार घरघर फिररहा है,उस कालिय का जो २ मस्तक अपना ढीठपना छोड़ कर नहीं नमता था उस २ मस्तकको नृत्य के मिषसे चरणका प्रहार करके मर्दन करा, तब वह सर्प, मुखमेंसे और नाकके पुटोंमेंसे विषसे मिलाहुआ भयंकर रुधिर उगलताहुआ परम मूर्छाको प्राप्तहुआ २८ तथापि फिर क्रोधसे बड़ २ श्वास भरनेवाले और नेत्रोंमेंसे विषकी वमन करनेवाले तिस कालिय सर्पके मस्तकोंमेंसे जो२ मस्तक ऊपरको उठता था उस२को श्रीकृष्ण जीने अपने नृत्य करकेने चरणके प्रहारसे तिरछा करके दबादिया,इससमय हर्षको प्राप्त हुए गंधर्वादिकोंने,उन श्रीकृष्णजीको शेषशायी पुराणपुरुषकी समान (श्रीनारायण की समान) पुष्पोंसे पूजा अथवा गन्धर्वादिकोंसे पुष्पों करके पूजा करे हुए उन

पुमान्पुराणः ॥२९॥ तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः । स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥ ३० ॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रं दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबंधाः ॥३१॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः । साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्य ऊचुः । न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय । रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥ ३३ ॥ अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दंडोऽसतां ते खलु कल्मषापहः । यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥ ३४ ॥ तपः

श्रीकृष्णजीको गोपोंने शेषशायी श्रीनारायणकी समान देखा ॥२९॥ हे राजन् ! उन श्रीकृष्णजीके अलौकिक ताण्डव नृत्यसे जिसके छत्रकी समान बड़े २ फण टूट गये हैं और पहिले फूलने वाले तिन श्रीकृष्णजीके शरीरसे जिसके शरीरके हाड़ चूरा होकर खील २ होगये हैं वह कालिय सर्प, मुखसे बहुतसे रुधिरकी वमन करता हुआ तिन श्रीकृष्णजीको, यह चराचरके गुरु पुराण पुरुष भगवान् नारायण हैं ऐसा जान कर मनसे शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ उस समय, जिनके उदरमें अनन्त ब्रह्मांड हैं तिन श्रीकृष्णजीके अत्यन्त भारसे दबे हुए और उनकी एडियोंके प्रहारसे जिसके फणरूप छत्र चिर गये हैं ऐसे उस कालिय सर्पको देखकर, दुःखित हुईं उसकी स्त्रियें (नागपत्नी) शरण जानेकी शीघ्रतामें जिनके वस्त्र,भूषण और केशोंके बंधन ढीले पड गये हैं ऐसी होकर श्रीकृष्णजीके समीप पहुँचीं ॥ ३१ ॥ और अपने अपराधी पतिका छुटकारा होनेकी इच्छा करने वाली और अत्यन्त खिन्नचित्त हुईं वह पतिव्रता नागिनियें,अपने बच्चोंको आगे करके भूमिपर (तहाँ ही जलके नीचे) अपने शरीरको दण्डकी समान लुटा हाथ जोड़ कर, प्राणिमात्रके पालक और शरणागतोंको आश्रय देने वाले तिन श्रीकृष्णजीकी शरण गईं और उन्होंने उनको नमस्कार करा३२ और वह नागपत्नियें, पहिले कुपित हुए भगवान्को, दण्ड देनकी सराहना करके शांत करती हुईं कहने लगीं कि–हे देव! डसना और लपेटना आदि अपराध करने वाले इस सर्पके ऊपर तुम्हारा करा हुआ दण्ड योग्य ही है क्योंकि–शत्रुके ऊपर और पुत्रोंके ऊपर समान दृष्टि रखनेवाले तुम्हारा यह अवतार खलोंको दण्ड देनेके निमित्त और साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त है इससे तुम, 'दुष्टोंको पापनिवृत्ति आदि फल प्राप्त होगा' यह सूचित करते हुए ही दण्ड देते हो ॥ ३३ ॥ हे प्रभो ! तुमने जो हमारे ऊपर यह दण्ड करा है सो अनुग्रह ही करा है, क्योंकि–तुम्हारा करा हुआ दण्ड वास्तवमें दुष्टोंके सकल दोषोंको दूर करने वाला है, क्योंकि–देहधारी इस कालियको जन्मान्तरोंके पापोंसे यह सर्प योनिका प्राप्त होना दीख रहा है, तिससे इस सर्प योनिके कारणभूत पापको दूर करने वाला और क्रोधरूपसे प्रतीत होने वाला यह तुम्हारा दण्ड भी क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः, इत्यादि वाक्योंके प्रमाण होनेके कारण, अनुग्रह ही है ऐसा सत्पुरुषोंने माना है३४ हे देव !

सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन । धर्मोऽथवा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥ ३५ ॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः । यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् । न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछन्ति यत्पादरजःप्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः । संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥३८॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने । भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ४० कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे । विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ४१ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने । त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥

सबकी जीविका चलाने वाले तुम जिस तप अथवा धर्मसे सन्तुष्ट होते हो वह तप इसने पूर्वजन्ममें स्वयं मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करके क्या करा था? अथवा सकल प्राणियोंके ऊपर दया करके कोई धर्म करा था ? ३५ यह ब्रह्मादिक देवता भी तप आदि करके जिसके अनुग्रहकी इच्छा करते हैं तिस,सकल स्त्रियोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मीने भी जिस चरणरजके स्पर्श होनेका अधिकार पानेकी इच्छासे सकल भोगोंको त्याग कर और आहार नियम आदि अनेकों प्रकारके व्रत धारण करके बहुत कालपर्यंत निरन्तर तपस्या करी, तिन तुम्हारी चरणरजके स्पर्शका अधिकार इस नीच कालियको प्राप्त हुआ, यह इसके कौनसे तपका वा पुण्यका प्रभाव है ? सो हम नहीं जानती हैं३६जिन तुम्हारे चरणरजको प्राप्त हुए भक्तजन, स्वर्गस्थान, सकल भूमण्डलका राज्य,ब्रह्मपद,पातालादि रसातलोंका राज्य,अणिमादिक ऐश्वर्य अथवा मोक्षकी भी किञ्चिन्मात्र इच्छा नहीं करते हैं किन्तु इन सबको तुच्छ मानते हैं३७और जिस चरणरजके प्राप्त होनेकी इच्छा करके जन्ममरण आदि संसारचक्रमें घूमते हुए भी प्राणीको अपने आप इच्छित सम्पत्ति प्राप्त होती है, हे नाथ ! ऐसा लक्ष्मी आदिकोंको भी दुर्लभ तुम्हारा चरणरज, इस तमोगुणसे उत्पन्न हुए और क्रोधके वशीभूत रहने वाले भी मेरे पति नागराजने पाया, इससे इसके भाग्यका हम कहाँ तक वर्णन करें ? ॥ ३८ ॥ इस कारण अचिन्त्य ऐश्वर्य आदि गुणरूप, अन्तर्यामी, परिमाणरहित, पञ्चमहाभूतके आश्रय, तिनसे पहिले भी होने वाले और कारणरूप होकर कारणसे निराले, तुम कारणको हम नमस्कार करते हैं ३९ तुम अनन्त शक्तियोंसे युक्त, प्रकृतिके प्रवर्तक और चैतन्यशक्तिसे पूर्ण ईश्वर होनेसे कारणरूप हो और गुणरहित निर्विकार तथा ज्ञानपूर्ण ब्रह्मरूप होनेके कारणसे पर हो,ऐसे उभय स्वरूप तुम्हें नमस्कार हो ॥४०॥ अब अनन्त शक्ति होनेके कारण कालशक्तिसे, विश्वसृष्टि आदिरूप तिन भगवान्को नमस्कार करती हैं कालस्वरूप कालशक्तिके आश्रय, सृष्टिकाल प्रलयकाल आदि कालोंके साक्षी,जगद्रूप, जगत्के साक्षी, जगत्के कर्त्ता, जगत्के कारण, सूक्ष्मभूत, इन्द्रियें, प्राण, मन, बुद्धि और चित्तस्वरूप तथा त्रिगुणमय अभिमान करके जिन्होंने अपने अंशरूप जीवोंका स्वा-

नमोऽनंताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते । नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये । प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ मनोगुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च । गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥ अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये । हृषीकेश नमस्तेस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः । अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् । तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥४९॥ तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शांता अशांता उत

नुभव गुप्त रक्खा है ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अनन्त, सूक्ष्म, निर्विकार, सर्वज्ञ, अनेक प्रकारके अस्ति, नास्ति, सर्वज्ञ, किञ्चिज्ज्ञ, बद्ध, मुक्त, एक अनेक आदि वादोंको मायाके द्वारा अनुसरण करने वाले तथा नाम और नामोंके वाच्य इन शक्ति भेदोंसे नाना प्रकारके प्रतीत होने वाले तुम्हें नमस्कार हो ॥४३॥ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंके आधार (नेत्र आदि इंद्रियरूप),स्वतः सिद्ध ज्ञानवान्,वेद रूप श्वासोंवाले और अनेकों प्रकारके विधि निषेध दिखानेवाले वेदरूप तुम भगवान् को वारम्वार नमस्कार हो॥४४॥ हे प्रभो ! सङ्कर्षण, वासुदेव,प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, इन चार मूर्त्तियोंसे उपासकोंकातुमपालन करनेवाले कृष्णकोवारंवार नमस्कारहो॥४५॥मन बुद्धि,अहंकार और चित्त इन अन्तःकरणके चार भेदोंको प्रकाशित करनेवाले तिनही भेदोंसे उपासकोंको भिन्न२ फल प्राप्त होनेके निमित्त,गुणोंसे अपनेकोही ढककर नानाप्रकारसे प्रकाशमान होनेवाले,चित्त आदिकी चेतना निश्चयआदि वृत्तियोंसे प्रतीत होनेवाले उन वृत्तियोंके साक्षी और स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् अर्थात् चित्त आदि जिनकी खोज मात्र ही करते हैं परन्तु उनकी समझमें नहीं आते ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४६ ॥ हे इन्द्रियप्रवर्त्तक ! अनवद्य महिमासे युक्त, सब प्रकारके ज्ञानके मूल कारण, अपने स्वरूपमें मग्न रहने वाले और उसही स्वभाववाले आपको नमस्कार हो ॥ ४७ ॥ स्थूल और सूक्ष्म सकल तत्त्वोंकी गतिको जानने वाले, सबोंके अधिष्ठाता, जगत्‌के निषेधकी सीमा, जगत्‌के भासमान होनेके आधार, जगत्‌के अध्यास और अपवादके साक्षी तथा तिस जगत्‌का अध्यास और अपवाद होनेके अविद्या और विद्याके द्वारा कारण ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ ४८ ॥ इसप्रकार दण्ड देनेके अनुमोदनसे और नमस्कारोंसे भगवान्‌को प्रसन्न करके, अब तुम्हारे वशमें रहने वाले प्राणियोंका क्या अपराध है? इस आशयसे प्रार्थना करते हैं कि–हे प्रभो ! तुम वास्तवमें इच्छा रहित होकर भी, अनादि सिद्ध काल शक्तिको स्वीकार करके जीवोंको चार प्रकारके पुरुषार्थ देनेवाली सृष्टि आदि लीला करते हुए केवल देखने मात्र करके संस्काररूपसे रहनेवाले प्राणियोंके नाना प्रकारके, शान्त घोर आदि स्वभावोंको जगाते हुए गुणोंके द्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हो ॥४९॥ तिन तुम्हारी ही त्रिलोकीमें यह अनेक प्रकारकी कोई शान्त (सतोगुण)

मूढयोनयः। शांता प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ॥५० अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः। स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः। क्षंतुमर्हसि शांतात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ॥ ५२ ॥ विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया। यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच। इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान् समभिष्टुतः। मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥५४॥ प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम्। कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन् दीनः कृष्णं प्राह कृतांजलिः वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः। स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम्। नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥ वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः। कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो

कोई अशान्त (रजोगुणी) और कोई मूढ (तमोगुणी) मूर्त्ति है उनमें इस समय साधुओंके धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त अवतार धारण करनेवाले और वह (धर्मरक्षा) करते हुए तुम्हें शान्त (सतोगुणी) मूर्त्ति ही प्रिय है, और (रजोगुणी वा तमोगुणी) प्रिय नहीं हैं ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! यह जो कालिय सर्प प्राण छोड रहा है सो अब इसके ऊपर अनुग्रह करो और पराधीन होनेके कारण साधुओंके भी शोक करने योग्य हम स्त्रियोंको यह पतिरूप प्राण दीजिये ॥ ५१ ॥ अपनी प्रजाका करा हुआ अपराध स्वामीको एकवार सहना चाहिये, इस कारण हे शान्तचित्त कृष्ण ! तमोगुणी होनेके कारण तुम्हें न जानने वाले इस कालिय सर्पका अपराध तुम्हें क्षमा करना उचित है ॥ ५२ ॥ तुम्हारी आज्ञा पालने वाली हम दासियोंको, हम क्याकरें सो बताओ, क्योंकि-तुम्हारी आज्ञाका पालन करनेवाला पुरुष, नाना प्रकारके भय युक्त संसारसे छूट जाता है॥५३॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि-हे,राजन् ! इस प्रकार नागपत्नियोंसे स्तुति नमस्कार आदि करके प्रार्थना करेहुए तिन भगवान् श्रीकृष्णजीने, चरणोंके प्रहारोंसे फण फट जानेपर मूर्छित हुए उस कालिय सर्पको छोड दिया और उसके आगे आप खडे होगये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर धीरे २ इन्द्रियों और प्राणोंको प्राप्त हुआ वह दीन कालिय सर्प, बडे कष्टसे श्वास लेता हुआ हाथ जोडकर उन श्रीकृष्णजीसे कहने लगा ॥ ५५ ॥ कालियने कहा कि—हे देव ! हम जन्मसे ही दूसरोंको दुःख देनेवाले दुष्ट तामसी और दीर्घकोपी हैं, हे नाथ ! सकल प्राणियोंको अपना स्वभाव त्यागना बडा कठिन है, क्यों कि-उस स्वभावसे ही प्राणियोंको देह आदिमें अहन्ता ममतादिरूप दुराग्रह होता है ॥५६॥ हे सृष्टि करने वाले देव ! गुणोंके द्वारा नाना प्रकारका रचा हुआ यह जगत, तुमने ही उत्पन्न करा है, इसमें नाना प्रकारके शान्त, घोर आदि स्वभाव, देहशक्ति, इन्द्रिय शक्ति, मातृ शक्ति, पितृ शक्ति, वासना और स्वरूप हैं ॥ ५७ ॥ हे भगवन् ! उस सृष्टिमें हम जातिसे ही बडे क्रोधी सर्प हैं, इस कारण जिसको ब्रह्मादिक भी न जीत सकें ऐसी तुम्हारी दुर्जय मायाको, तिस मायासे ही मोहित हुए हम

जगदीश्वरः । अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥५९॥ श्रीशुक उवाच । इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः । नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् । स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ ६० ॥ य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् । कीर्तयन्नुभयोः संध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥६१॥ योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः । उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः । यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥६३॥ ऋषिरुवाच । एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥६४॥ दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः । दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥६५॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् । ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥६६॥ सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह ।

तुम्हारे अनुग्रहके बिना कैसे छोड़ें ॥ ५८ ॥ इस कारण उन शान्त घोर आदि स्वभावोंके उत्पन्न होनेके विषयमें तुम सर्वज्ञ जगदीश्वर ही कारण हो इस कारण हमारे ऊपर अनुग्रह करना या हमको दण्ड देना जो उचित हो सो करो ॥ ५९ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! ऐसा कालियका कथन सुनकर यमुनाकी शुद्धि और भक्तोंकी रक्षा आदि कार्य करनेके निमित्त मनुष्य अवतार धारण करने वाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी,उससे कहने लगे कि–हे सर्प! तू इस कुण्डमें न रह शीघ्र ही अपने जाति, बच्चे और स्त्रियों सहित समुद्रमेंके अपने रमणक द्वीपमें चलाजा यह यमुनानदी गौ और मनुष्योंके जल पीनेकी है इसको आजसे स्वच्छ जलवाली होनेदे ॥ ६० ॥ जो मनुष्य, तुझसे मेरी कही हुई इस आज्ञाका प्रातःकाल वा संध्याकालके समय स्मरण करेगा अथवा कीर्त्तन करेगा उसको तुम कभी भी भय मत दो ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य मेरे क्रीडा करेहुए इस कुण्डमें स्नान करके इसमेंके जलोंसे देवादिकोंका तर्पण करेगा और उपवास करके मेरा ध्यान पूर्वक पूजन करेगा वह सकल पापोंसे छूट जायगा॥६२॥हे कालिय ! तू जिस भयसे अपने रमणक द्वीपको त्यागकर इस कुंडका आश्रय करके रहता है वह गरुड तुझे अब कभी भी नहीं खायगा, क्योंकि–तेरे फणोंके ऊपर मेरे चरणोंके चिह्न होगये हैं ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा तब उस कालिय सर्पने, हर्षित हो आदरके साथ उन श्रीकृष्णजीकी, दिव्य वस्त्र, माला, मणि, बहुमूल्य भूषण, दिव्य चन्दनके उबटने और कमलोंकी बड़ी २ माला समर्पण करके पूजा करी तैसे ही नाग पत्नियोंने भी पूजा करी ॥६४-६५॥ इस प्रकार स्त्री, पुत्र, मित्रों सहित तिस कालिय सर्पने, जगन्नाथ गरुडध्वज श्रीकृष्णका पूजन करके उनको प्रसन्न करलिया तब उन्होंने प्रसन्नतासे 'जा' ऐसी आज्ञा करी तब वह कालिय, स्वयं सन्तुष्ट होकर उनको प्रदक्षिणा और नमस्कार कर समुद्रमेंके अपने रमणक द्वीपको चलागया, उसी समय वह यमुना, क्रीडा करनेके निमित्त मनुष्यरूपसे अवतार धारनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीके अनुग्रहसे

तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् । अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥६७॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः

राजोवाच । नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः । कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥१॥ श्रीशुक उवाच । उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः । वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥२॥ स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि । गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः । कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः । विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः । दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्दुदायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं तार्क्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमा-

---

विषके सम्बन्धसे रहित और अमृत समान मधुर जलवाली होगई ॥ ६६-६७ ॥
इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें षोडश अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

इस सत्रहवें अध्यायमें, उस कालिय सर्पको रमणक द्वीपमें भेज देनेके अनन्तर अपने दुःखसे श्रमको प्राप्त हुए और तहाँ ही सोये हुए नन्द आदि बान्धवोंको श्रीकृष्णने वनकी अग्निसे रक्षा करी, यह कथा वर्णन करी है॥ ॥राजाने कहा कि-हे शुकदेवजी ! कालिय सर्पने, रमणक द्वीप नामवाला अपना स्थान क्यों त्याग दिया था ? यदि कहो कि-गरुडके भयसे, सो-तिस एक कालिय सर्पने ही गरुड का कौनसा बिगाड करा था ? ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे महापराक्रमी राजन् ! गरुडके भोजनरूप सर्पोंने,अपनी बाधा दूर होनेके निमित्त रमणक द्वीपमें पहिले एक वृक्षके नीचे गरुडको जो एक बलि प्रतिमासकी अमावास्याके दिन अर्पण करनेका नियम * करा था, उसी प्रकार हर अमावास्याको सब सर्प अपनी रक्षाके निमित्त अपना अपना भाग महापराक्रमी गरुडको देते थे ॥ २—३ ॥ विष और पराक्रमके मदसे भरे हुए उस कद्रूके पुत्र कालिय सर्पने ही गरुडजीको तुच्छ मानकर उनको अपने बाँटका भाग कभी दिया ही नहीं और उलटा दूसरोंका दिया हुआ भी उनका बलि, उसने खालिया ॥ ४ ॥ हे राजन् ! यह वृत्तान्त सुनकर क्रोधमें भरे हुए भगवान्के प्यारे वाहन वह भगवान् गरुडजी, तिस कालियको मारनेकी इच्छा करके वेगके साथ उसके ऊपरको दौड़कर गये ॥ ५ ॥ तब वेगके साथ आनेवाले उन गरुडजीको देखकर, विष और दाँत ही जिसके शस्त्र हैं,जिसने अपने अनेकों फणोंको ऊपरको खड़ा करलिया है और जिसकी जीभ लक २ कर रही है जिसके नेत्र लाल २ और भयंकर हैं ऐसा वह कालिय सर्प भी बड़े वेगसे

---

* इस विषयमें ऐसी आख्यायिका है कि—गरुडजी माताके वैरको स्मरण करके सदा जो मिलते थे सब ही सर्पोंको खालेते थे और उदर भर जाने पर वृथा ही कितनोंको मारडालते थे तब वासुकि आदि सर्प भयभीत होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये तो ब्रह्माजीने गरुड़जीको बुला मेल कराकर नियमसे प्रत्येक अमावास्याको सर्पोंसे बलि बँधवादी थी ।

प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः । पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥ सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीवविह्वलः । ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् । निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥९॥ मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते । कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति । सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥११॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः । अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् । महामणिगणाकीर्णं जांबूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः । प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे १४ यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव । कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥ १५ ॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् । नगा गावो वृषा

गरुड़जीके ऊपरको युद्ध करनेके निमित्त दौड़ा और उसने अपने दाँतोंसे गरुड़जीको डसलिया ॥ ६ ॥ तब क्रोधमें भरेहुए, भगवान्के वाहन, उग्रपराक्रमी और महावेगवान् तिन गरुड़जीने, उस कालियको ललकारकर उसके ऊपर अपने सुवर्णकी समान कांतिवाले दाहिने पक्षका प्रहार करा ॥ ७ ॥ तब गरुड़जीके पक्षसे ताड़ित हुआ वह कालिय अत्यंत विह्वल होकर जहाँ गरुड़जी न जासकें ऐसे यमुनाके कुण्डमें घुसगया ॥ ८ ॥ उस यमुनाके कुण्डके तटपर एक समय सौभरि ऋषिके निषेध करने पर उन गरुड़जीने भूखे होनेके कारण अपनेको प्रियलगनेवाले एक बड़े मत्स्यको बलात्कारसे (जबरदस्ती) मारकर भक्षण कर लिया ॥ ९ ॥ तब उस मत्स्यराजके मारेजानेके कारण उसके कुटुम्बके सकल मत्स्य दीन और अत्यन्त दुःखित होरहे हैं ऐसा देखकर, कृपाकरके तहाँ रहने वाले मत्स्योंको निर्भयपना करते हुए वह सौभरि ऋषि कहने लगे कि–॥ १० ॥ इस यमुनाके कुण्डमें घुसकर आजसे वह गरुड़ मत्स्योंको भक्षण करेगा तो तत्काल प्राणहीन होजायगा, यह मैं सत्य ही कहता हूँ ॥ ११ ॥ ऐसे उस सौभरि ऋषिके शापको केवल कालिय सर्प ही जानता था और कोई नहीं जानता था इस कारण वह कालिय सर्प ही गरुड़जीसे भय मानकर तहाँ आकर रहा था, उसको श्रीकृष्णजीने निकाल दिया ॥१२॥ इस प्रकार प्रासङ्गिक कथा कहकर अब प्रस्तुत कथा कहते हैं–तदनन्तर कुण्डमेंसे बाहर निकले हुए, दिव्यमाला,चन्दन और वस्त्रधारण करनेवाले,बहुमूल्य रत्नोंके समूहों से सब अङ्गोंमें भूषित और जांबूनद नामक सुवर्णसे शोभित श्रीकृष्णजीको देखकर उठे हुए सकल गोप, जैसे हाथ पैर आदि इन्द्रियें प्राण चले जाने पर मूर्छित होजाती हैं और फिर प्राण प्राप्त होजाने पर अपने २ कार्य करने लगती हैं तैसे ही आनन्दसे पूर्णचित्त होकर प्रीतिसे चारों ओर उन श्रीकृष्णको आलिंगन करने लगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन् ! उस समय यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोपी और गोप यह सब ही श्रीकृष्णजीको पाकर मूर्छाको त्याग अपनी वास्तविक दशामें आये और पूर्णमनोरथ हुए ॥ १५ ॥ बलराम भी श्रीकृष्णको आलिंगन करके हँसनेलगे,

वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥ नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः। ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥१७॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे। नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥१८॥ यशोदाऽपि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती। परिष्वज्यांकमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९ ॥ तां रात्रिं तत्र राजेंद्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः। ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिंद्या उपकूलतः ॥ २० ॥ तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम्। सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥ तत उत्थाय संभ्रांता दह्यमाना व्रजौकसः। कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥२२॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम। एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥ २३ ॥ सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो। न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः। तमग्निमपिबत्तीव्रमनंतोऽनंतशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कालियदमनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

क्योंकि-वह उन श्रीकृष्णजीके प्रतापको जानते थे वृक्ष भी पहिले सूखगये थे वह तत्काल हरे होगये, गौ, बैल और बछड़े भी परम आनन्दको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ उस समय, जो स्त्रीसहित पुरोहित ब्राह्मण थे वह तहाँ आकर नन्दजीसे कहने लगे कि-हे नन्द! कालिय सर्पसे ग्रसा हुआ यह तुम्हारा पुत्र श्रीकृष्ण, छूट गया, यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता हुई ॥ ७॥ इसकारण इस कृष्णके छूटनेके आनन्दमें हम सपत्नीक ब्राह्मणोंको दान दो, तब हे राजन्! प्रसन्नचित्त हुए नन्दजीने उन ब्राह्मणोंको गौ और सुवर्णका दान दिया ॥ १८ ॥ उस समय जिसका खोया हुआ पुत्र फिर मिला है ऐसी उस महाभाग्यवती पतिव्रता यशोदाने भी ब्राह्मणोंको दान देकर श्रीकृष्णजीको छातीसे लगाया और गोदीमें बैठालकर वारंवार नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसू बहाने लगी ॥ १९ ॥ हे राजश्रेष्ठ! जिस दिन कालियमर्दन हुआ उस दिन भूख, प्यास, रोना और दौड़ना आदि परिश्रमसे व्याकुल हुए वह गोकुलवासी पुरुष और गौएँ उस रात्रिमें तिस यमुनाके तट पर ही रहे ॥ २० ॥ उस रात्रिमें आधीरातके समय ग्रीष्मऋतुमें वनसे उत्पन्न हुआ दौंका अग्नि, सोए हुए गौओं सहित गोलोकवासी पुरुषोंको एक साथ चारों ओरसे घेर कर जलाने लगा ॥ २१ ॥ तब जलते हुए वह गोलोकवासी पुरुष, उठ कर बड़े घवड़ा गये और वह, मायासे मनुष्यकी समान प्रतीत होने वाले परन्तु वास्तवमें साक्षात् ईश्वर तिन श्रीकृष्णजीकी शरण गये २२ हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे परमपराक्रमी बलराम! यह भयंकर अग्नि, तुम्हारे कहलानेवाले हमें भस्म करे देती है ॥२३॥ ॥ इसकारण हे सर्वसमर्थ प्रभो! अतिदुस्तर इस मृत्युरूप अग्निसे हम अपने मित्रोंकी रक्षा करो, हे देव! हम सकल भयोंको दूर करने वाले तुम्हारे चरणोंका त्याग करनेकी इच्छा नहीं करते हैं अर्थात् हमें मृत्युका भय नहीं है किन्तु तुम्हारे चरणोंका वियोग होजायगा यही बड़ा भारी भय है ॥ २४ ॥ इसप्रकार निज जनोंकी व्याकुलताको देखकर, उन सकल शक्ति धारण करने वाले जगदीश्वर अनन्त भगवान्ने, अतिदुःसह भी तिस अग्निको पी लिया ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें सप्तदश अध्याय समाप्त ॥

श्रीशुक उवाच । अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः । अनुगीयमानो न्यविशद् व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥ व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया । ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान् शरीरिणाम् ॥ २ ॥ स च वृन्दावनगुणैर्वसंत इव लक्षितः । यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् । शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कल्हारकंजोत्पलरेणुहारिणा । न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समंततः । न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् । गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान् बलसंयुतः । वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ८

इस अठारहवें अध्यायमें वसन्तऋतुके गुणोंसे युक्त ग्रीष्मऋतुके आनेपर श्रीकृष्णजीने सहजमें लीलामात्रसे ही बलरामजीके हाथसे प्रलंबासुरको मरवा दिया यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! तदनन्तर प्रातःकाल, होने पर कालियदमनसे और वनकी दौंसे अपनी रक्षा करनेके कारण सन्तुष्टचित्त हुए गोपोंसे घिरे हुए वह श्रीकृष्णजी, उनसे ही बारंबार गान करे जाते हुए, गौओंके समूहोंसे शोभायमान गोकुलमेंको चले गये ॥ १ ॥ इसप्रकार जिनमें गोपालरूप का बहाना है ऐसी मायासे, उन राम कृष्णके गोकुलमें क्रीड़ा करते हुए, प्राणीमात्र को अति प्रिय न लगनेवाला ग्रीष्म नामक ऋतु प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ परन्तु वह ग्रीष्म ऋतु भी, जिसमें साक्षात् बलराम सहित भगवान् श्रीकृष्णजी रहते हैं तिस वृन्दावनके (आगे कहेहुए) गुणोंसे वसन्तऋतुकी समान लोकोंकी दृष्टिको प्रतीत होने लगा ॥ ३ ॥ जिस ग्रीष्मऋतुमें भी वृन्दावनमें सर २ वहने वाली झरनोंकी नदियों से झिल्ली नाम वाले कीडोंकी कठोर ध्वनि सर्वथा लुप्त होगई थी, और उन ही झरनोंकी फुहारोंसे भीजे हुए वृक्षोंने उस वृन्दावनको शोभायमान करा ॥ ४ ॥ जिस वनमें रहने वाले पुरुषोंको, परम कोमल घाससे भरे हुए स्थानोंमें नदी और सरोवर और झरनोंकी तरङ्गोंसे गीले होकर आयेहुए और सन्ध्या काल रात्रि तथा दिनमें क्रमसे खिलने वाले कह्लार, कुमुद और उत्पल नामक कमलोंमेंसे उनके सुगन्धित परागको उड़ा कर लानेवाले पवनसे, ग्रीष्मऋतुमें अग्नि और सूर्यसे होने वाला ताप किञ्चिन्मात्र भी नहीं होताथा ॥ ५ ॥ जिस वृन्दावनमें अपरम्पार जल वाली नदियोंके तटों पर लहराने वाली तरङ्गोंसे पुलिनसहित चारों ओरकी सिक्त हुई भूमिका 'जिस पर कोमल घास है ऐसा गीलापन, विषकी समान अति प्रखर भी सूर्यकी किरणोंसे सूखा नहीं ॥ ६ ॥ और जहाँ शब्द करने वाले चित्र विचित्र मृग और पक्षी हैं, गान करने वाले मोर और भौंरे हैं, मनोहर शब्द करने वाली कोकिला और सारस पक्षी हैं, इस प्रफुल्लित वृक्षोंसे भरे हुए, शोभायुक्त, वृन्दावन में क्रीड़ा करनेकी इच्छा करने वाले भगवान् श्रीकृष्णने बलरामके साथ गोप और गौओंसे घिरकर मुरली बजातेहुए प्रवेश करा ॥७॥८॥ तदनन्तर बलराम कृष्ण आदि

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः । रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् । वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः । ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ११ भ्रामणैर्लंघनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः । चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् १२ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् । शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥ क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्वचामलकमुष्टिभिः । अस्पृश्यनेत्रबंधाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥१४॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः । कदाचित्स्पंदोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥ १५ ॥ एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने । नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः । गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७ ॥ तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः । अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिंतयन् ॥ १८ ॥ तत्रोपाहूय

गोपाल,अपने शरीरोंको गेरू पेवडी आदि धातुओंका रङ्ग लगाकर उसके ऊपर पत्ते मोरोंके पर, फूलोंके गुच्छे और मालारूप आभूषण धारण करके नृत्य, गान और परस्पर कुश्ती करने लगे ॥ ९ ॥ उस समय जब कृष्ण नाचने लगे तो कितने ही गोपाल भी गाने लगे, कोई मुरली, ताली और सींग आदि बाजे बजाने लगे और कोई दूसरे 'वाह, वाह, बहुत अच्छा' इस प्रकार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ हे राजन् ! गोपोंकी जातियोंमें छुप कर गोपालरूपसे अवतरे हुए देवता, उन श्रीकृष्णजीकी, 'जैसे खेल करनेके स्थानमें स्वाँग भर कर आये हुए नट दूसरे नटोंकी प्रशंसा करते हैं तैसे स्तुति करने लगे ॥ ११ ॥ घुँघराले केशों वाले वह राम कृष्ण, कभी एक एकको पकड कर घर २ घूमना, टीलों परसे कूदना,किसी वस्तुको फेंक कर उठा लाना, हाथोंसे दण्ड ठोकना, परस्पर खचेडना इत्यादि कुश्तीकी रीतियों से क्रीडा करते थे ॥१२॥ हे महाराज ! कभी तो वह बलराम और कृष्ण, जब दूसरे कोई गोप नाचने लगते थे तो आप भी गाने लगते थे,बाजे बजाते थे और 'वाह,धन्य बहुत उत्तम है' ऐसे कह कर उनकी प्रशंसा करने लगते थे ॥ १३ ॥ कभी वह बेल के फलोंसे, कभी कुंभके फलोंसे, कभी आमलोंकी मुट्ठियोंसे,कभी न छूनेके खेलसे और कभी नेत्र मूँद कर तथा कभी पशु पक्षियोंकी लीलाओंसे क्रीडा करते थे ।१४। कभी मेंडककी समान कूदकर कभी नानाप्रकारके उपहास करके, कभी वृक्षोंकी शाखाओंमें झूलकर और कभी राजा आदि बन कर क्रीडा करते थे ॥ १५ ॥ इस प्रकार लोकमें प्रसिद्ध खेल खेलते २ वह बलराम और कृष्ण, वृन्दावनमें और नदी, पर्वत दोनोंके समीप, पर्वतोंकी गुहा,कुञ्ज,बाग और सरोवरोंके विषें विचरते थे१६ एक समय उस बनमें गोपों सहित बलराम और कृष्ण गौएँ चरा रहे थे सो उन दोनोंको हर कर लेजानेकी इच्छासे, गोपका रूप धारण करे हुए कोई एक प्रलंब नाम वाला दैत्य तहाँ आया ॥ १७ ॥ तब दाशार्हकुलमें उत्पन्न हुए सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णजीने, उसको जानलिया तथापि मनमें उसका वध करनेका विचार करके उसके साथ मित्रता करनेकी गोपोंको सम्मति दी १८ और अनेकों चमत्कारी खेलों

गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् । हे गोपा विहरिष्यामो द्वंद्वीभूय यथायथम् ॥१९॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ । कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः । यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च परा-जिताः ॥२१॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयंतश्च गोधनम् । भांडीरकं वटं नाम जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः । क्रीडायां जयिन-स्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः । वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलंबो रोहिणीसुतम् ॥ २४ ॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानव-पुङ्गवः । वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥ तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः । स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडु-पतिवाडिवांबुदः ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमंबरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रु कुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।

को जानने वाले वह श्रीकृष्णजी, तहाँ गोपालोंको अपने समीप बुला कर कहने लगे कि–हे गोपो ! हम परस्पर बल और अवस्थाके अनुसार सबोंमे दो २ के जोड़े मिला कर खेलेंगे ॥ १९ ॥ तब गोपालोंने, हाँ हाँ अच्छी बात है ऐसा कह कर बल-राम और कृष्ण दोनोंको दोनों ओरका मुखिया बना लिया और कितने ही कृष्ण की ओर होगये और कितने ही बलरामकी ओर होगये फिर वह गोप, एक पीठपर बैठे और दूसरा उसको नियमित करेहुए स्थानपर्यंत चढ़ाकर लेजाय, ऐसा ठहराकर नानाप्रकारके खेल खेलनेलगे, जिस खेलमें जीतनेवाले चढ़ते हैं और हारनेवाले उठाते हैं२१इसप्रकार उठानेवाले और पीठपर बैठनेवाले वह कृष्ण आदि गोपाल, गौएँ चराते हुए भाण्डीरक नाम वाले बडके समीप जापहुँचे, वही बड, कन्धे परसे चढ़े हुओं के नीचे उतरनेकी अवधि था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! फिर जब खेलमें बलरामजीके पक्षके श्रीदामा वृषभ आदि गोपोंने, जय पाई तब उनको श्रीकृष्ण आदि अपने ऊपर चढ़ाने लगे ॥२३॥ तब पराजय पायेहुए भगवान् श्रीकृष्णजी, श्रीदामाको अपने ऊपर चढ़ानेलगे, भद्रसेन वृषभको और प्रलम्बासुर बलरामजीको अपने ऊपर चढ़ाने लगा ॥ २४ ॥ उस समय दानवश्रेष्ठ वह प्रलम्बासुर, मनमें, श्रीकृष्णजीको जीतना कठिन समझ कर उनकी दृष्टिसे बचनेके निमित्त बलरामको पीठपर चढ़ाकर ले जाते हुए उतारनेकी अवधिसे परली ओर अर्थात् उस भाण्डीर वृक्षके परली ओर बडी शीघ्रताके साथ लेजाने लगा ॥ २५ ॥ तब वह महाअसुर, मेरु पर्वतकी समान भारी प्रतीत होनेवाले उन बलदेवजीको शीघ्रतासे लेजाता हुआ जब वेगसे न चल सका तो 'गोपरूप शरीरसे उठाना कठिन है' ऐसा मनमें विचार कर उस दैत्यने अपना साक्षात् दैत्यरूप धार लिया तब सुवर्णके आभूषण धारण करने वाला वह दैत्य बिजलीकी कान्तियुक्त और चन्द्रमाको उठानेवाले मेघकी समान शोभित होने लगा ॥२६॥ जिस स्वरूपमें जलते हुए अग्निकी समान धक २ करते हुए नेत्र हैं, भौं पर्यन्त पहुँची हुई भयंकर दाढ़ें हैं, अग्निकी लपटोंकी समान केश हैं और जो कडे, किरीट तथा कुण्डलोंकी कान्तिसे आश्चर्यकारी दीखरहा है ऐसे, आकाश में अत्यंत ही ऊपरको बढते चले जाते हुए तिस दैत्यरूपको देखकर बलदेवजीको

ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७ ॥ अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहाय सार्थमिव हरंतमात्मनः । रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः । महारवं व्यसुरपतत्समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलंबं निहतं बलेन बलशालिना । गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥३०॥ आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् । प्रेत्यागतमिवालिंग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥ पापे प्रलंबे निहते देवाः परमनिर्वृताः । अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलंबवधो नामाष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः । स्वैरं चरंत्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशंत्यो वनाद्वनम् । इषी-

---

कुछ एक भय लगा ॥ २७ ॥ फिर तत्काल स्मरण आकर भय रहित हुए उन बलरामजीने, अपनी गोपालोंकी मण्डलीको छोडकर मर्यादाके परली ओरको अपनेको लेजाने वाले उस प्रलम्बासुर शत्रुके मस्तकमें वज्रकी समान बेगवाली कठोर मुट्ठी से, 'जैसे इन्द्र, वज्रसे पर्वतके ऊपर प्रहार करता है तैसे' क्रोधमें भरकर प्रहार करा ॥ २८ ॥ इस प्रकार प्रहार करा हुआ वह दैत्य तत्काल मस्तक फूट जानेके कारण, स्मृति रहित (बेहोश) होकर मुखमेंसे रुधिरकी वमन करता हुआ और बड़ा भयंकर शब्द उच्चारण करता हुआ प्राणहीन होकर, जैसे इन्द्रके वज्रसे प्रहार करा हुआ पर्वत खस पडता है तैसे भूमिपर गिर गया ॥ २९ ॥ तब महाबली बलरामजीके मारे हुए उस प्रलम्बासुरको देखकर बलरामजीसे 'बहुत अच्छा करा बहुत अच्छा करा' इस प्रकार कहते हुए वह गोप परम विस्मित हुए ॥ ३० ॥ और परलोकमें जाकर आये हुए की समान उन बलरामजीको हृदयसे लगा कर प्रेमसे विह्वलचित्त हुए वह गोप, 'हे राम ! तुम चिरंजीव रहो और इसी प्रकार निरन्तर हमारी रक्षा करते रहो' ऐसा आशीर्वाद देकर स्तुति करने योग्य उन बलरामजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार सबके विघ्नकारी तिस प्रलम्बासुरका बलरामजीने प्राणान्त कर दिया तब परम आनन्दको प्राप्त हुए देवताओंने बलरामजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करी और 'हे राम ! तुमने बहुत अच्छा करा, ठीक है' इस प्रकार प्रशंसा करी ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ छ छ छ

अब आगे उन्नीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने मूँजके वनमें घुसे हुए गोपोंकी और गौओंके समूहोंकी; वनकी अग्निको पीकर रक्षाकरी यह कथा वर्णनकरी है ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! प्रलम्बासुरको मारनेके अनन्तर, वह गोपाल खेलमें मग्न होगये, तब इच्छानुसार चरती २ दूर पहुँची हुई उनकी गौएँ चारेके लोभसे एक घोर वनमेंको चली गईं ॥ १ ॥ वह सब गौएँ, बकरियें, और भैंसें इस वनसे उस वनमें और उस वनसे दूसरे वनमें इसप्रकार जातीहुई ग्रीष्मऋतुके ताप

कारवीं विविशुः क्रंदन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २ ॥ तेऽपश्यन्तः पशून्गोपाः कृष्णरामादयस्तदा । जातानुतापा न विदुर्विचिन्वंतो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरंकितैर्गवाम् । मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् । संप्राप्य तृषिताः श्रांतास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा । स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥ ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत् क्षयकृद्वनौकसाम् । समीरितः सारथिनोल्वणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ७ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः । ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ॥ ८ ॥ कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम । दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥९॥ नूनं त्वद्बांधवाः कृष्ण न चार्हंत्यवसीदितुम् । वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच । वचो निशम्य कृपणं बंधूनां

से पिलोसी होकर डकराती २ अति ऊँचे एक घाससे भरेहुए सीकोंके वनमें चली गईं ॥ २ ॥ इधर श्रीकृष्ण और बलराम जिनमें मुखिया हैं ऐसे उन सकल गोपोंको जब पशु नहीं दीखे तब पश्चात्ताप करके ढूँढने लगे परन्तु ढूँढते हुए भी उनको बहुत देरी पर्यन्त गौओंका पता नहीं मिला, उस समय केवल कृष्ण बलरामको ही असह्य नहीं प्रतीत हुआ क्योंकि—वह जानते थे कि—गौएँ किधर गई हैं और आगे को क्या होनेवाला है ॥ ३ ॥ तदनन्तर आजीविकाकी साधन गौओंके खोजानेसे व्याकुल चित्तहुए वह सब गोपाल गौओंके चरणोंके चिन्हवाले स्थानोंसे और तिन गौओंके खुर तथा दाँतोंसे टूटे हुए तृणोंसे गौओंके जानेका मार्ग पहिचानते हुए चल दिये४जाते २ मूँजके वनमें, मार्ग भूलकर रम्भाते फिरते हुए अपने गोधनको पाकर, चलते २ थकगये और धूपके कारण प्याससे व्याकुल हुए वह गोप, गौओं को तहाँसे हाँककर पीछे को लौटे ॥५॥ उस समय भगवान्ने मेघकी समान गंभीर वाणीसे पुकारी हुईं वह गौएँ अपने २ कारी धौरी आदि नामोंका शब्द सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुईं और रम्भानेके शब्दसे श्रीकृष्णको पुकारने लगीं ॥ ६ ॥ सो इतने ही में उस वनमें, प्राणियोंके किसी दुर्भाग्यके कारण, वायुकी सहायतासे बढा हुआ और लोगोंके नाशका कारण बडा भारी वनका अग्नि (दौं) चारों ओर लग गया और वह अपनी भयंकर लपटोंसे स्थावर जङ्गम सबको जलाने लगा ॥ ७ ॥ तब चारों ओरसे जल कर अपने समीपको आते हुए उस वनके अग्निको देखकर गौ और गोपाल भयभीत हुए और वह जैसे मृत्युके भयसे घबडाये हुए पुरुष श्रीहरिकी शरण जाते हैं तैसे, बलराम सहित श्रीकृष्णजीकी शरण जाकर कहने लगे कि—॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! तुम महाशक्तिमान् हो, हे बलरामजी ! तुम्हारे पराक्रमका अन्त नहीं है तुम दोनों, वनकी अग्निसे जलते हुए और तुम्हारी शरणमें आये हुए हमारी रक्षा करनेको समर्थ हो ॥ ९ ॥ हे सर्वधर्मज्ञ कृष्ण ! तुम्हारे सम्बन्धी बन्धु बान्धव भी निःसन्देह दुःख भोगनेके योग्य नहीं हैं फिर हमारे तो तुम ही रक्षक हो और तुम्हारे ही आश्रयसे रहते हैं ॥ १० ॥ श्रीशुक-

भगवान् हरिः। निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥११॥ तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम्। पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥१२॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः। निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥ १३ ॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम्। दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥ गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः। वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥ १५ ॥ गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने। क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

श्रीशुक उवाच। तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः। गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलंबवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः। मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्त्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा।

देवजीने कहा कि-हे राजन्! इस प्रकार उन गोपालोंका दीन वचन सुनकर वह भगवान श्रीकृष्णजी उनसे कहने लगे कि-अरे गोपालों! तुम भय न मानो और नेत्र मूँदलो तो तुम्हारा कल्याण होयगा॥११॥तब 'बहुतअच्छा' ऐसा कहकर गोपालोंके नेत्र मूँद लेने पर, उन योगेश्वर भगवान्ने, उस भयंकर अग्निको मुखसे पीकर उन गोपालोंको मूँजके वनमें जाना,भूख, प्यास और परिश्रम आदिसे होनेवाले संकट से छुटाकर एक क्षणमें फिर भाण्डीरक बड़के समीप लाकर पहुँचा दिया तदनन्तर उन गोपोंने नेत्र उघाड़कर देखा तो अपनेको और गौओंको श्रीकृष्णजीने संकटसे छुटाया है ऐसा देख बड़े आश्चर्यमें हुए ॥ १२-१३ ॥ और योगमायासे रचे हुए वन के अग्निसे अपनेको छुटानारूप वह श्रीकृष्णजीका अपूर्व सामर्थ्य देख उन गोपोंने श्रीकृष्णजीको, यह मृत्युको भी दूर करदेने वाले परमेश्वर हैं ऐसा माना ॥ १४ ॥ तदनन्तर बलराम सहित गोपोंसे स्तुति करेहुए वह श्रीकृष्णजी, गौओंको पीछेको लौटाकर सायंकालके समय मुरली बजाते २ गोकुलमें चलेगये ॥ १५ ॥ तब, जिन को श्रीकृष्णके विना एक क्षणका समय भी सौ युगकी समान बडा प्रतीत होता है तिन यशोदादि गोपियोंको गोविन्दका दर्शन होनेपर परम आनन्द प्राप्त हुआ ।१६।

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

अब आगेके बीसवें अध्यायमें वर्षाऋतु और शरद ऋतुके वर्णनसे गोप और बलरामसहित श्रीकृष्णजीकी वनमें करी हुई वर्षा ऋतुमेंकी लीला वर्णन करी हैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! श्रीदामा आदि गोपोंने वनकी दौंसे अपने सबोंको छुटाना और प्रलम्बासुरका वध करना यह उन बलराम कृष्णके अद्भुत कर्म वृद्धगोपोंसे और यशोदा आदि स्त्रियोंसे कहे ॥ १ ॥ यह सुनकर अचरजमें हुए उन वृद्धगोपोंने और गोपियोंने, गोकुलमें अवतार धारनेवाले राम कृष्ण को, यह कोई देवताओंमें श्रेष्ठ देवता हैं ऐसा माना ॥ २ ॥ इस प्रकार ग्रीष्मऋतुके दिन बीत जानेके अनन्तर, सब जीवजन्तुओंकी उत्पत्ति करनेवाली सकलप्राणियों का जीवन चलानेवाली, चन्द्रमा सूर्यके चारों ओर चक्राकार परिधि डालनेवाली

विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥ ३ ॥ सांद्रनीलांबुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः । अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु । स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥ तडित्वंतो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः । प्राणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६ ॥ तपःकृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही । यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ७ निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भांति न ग्रहाः । यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः । तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्राह्मणा नियमात्यये ॥९॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः । पुंसो यथाऽस्वतंत्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता ।

और मेघके खण्डोंको जिधर तिधर फिराकर आकाशमंडलको क्षोभित करनेवाली वर्षाऋतु आई ३ उस समय बिजली और गर्जनासहित घिरकर आये हुए घने श्याम मेघोंसे आच्छादित हुआ और जिसमें सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह स्पष्ट नहीं दीखते हैं ऐसा आकाश सत्वादि गुणोंसे ढके हुए और जिसका स्वयंप्रकाशरूप स्पष्टरूपसे अनुभवमें न आवे ऐसे सगुण ब्रह्मकी समान शोभित होनेलगा ॥ ४ ॥ तब, जैसे राजे प्रजाओंसे कर लेकर धन इकट्ठा करते हैं परन्तु समय आने पर उस धनको उनके ही निमित्त व्यय (खर्च) करदेते हैं तैसे ही, सूर्य-आठमास पर्यन्त अपनी किरणोंसे सुखाकर लिया हुआ भूमिका जलरूप धन, वर्षाकाल आने पर फिर पृथ्वी पर छोड़नेलगा ॥५॥ जैसे दयालु पुरुष, भूख आदिसे दुःखित हुए प्राणियों को देखकर आर्द्रचित्त होकर उनको बचानेके निमित्त अपने जीवनके साधन भी अन्नआदिका दान करते हैं तैसे ही, बड़े २ मेघ भी, अपने बिजलीरूप नेत्रोंसे,तपे हुए जगत्को देखकर प्रचण्डवायुसे कम्पायमान होते हुए, इस जगत्की वृद्धि करने वाले और जीवनके साधन जलकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ उस समय ग्रीष्मऋतुसे सूखीहुई भूमि, फिर जलसे भीग जाने पर जैसे सकाम तप करनेवाले पुरुषका शरीर उस तपका फल (भोग) पाकर भोजनादि करके पुष्ट होता है तैसे ही पुष्ट हुई ॥७॥ जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके ग्रन्थ,अज्ञानसे होन वाले पाप करके प्रकाश पाने लगते हैं, वेद प्रकाश नहीं पाते हैं तैसे ही रात्रिके आरम्भमें पटबीजने, मेघों से होनेवाले अन्धकार करके प्रकाश पानेलगे गुरु शुक्र आदि ग्रह प्रकाशित नहीं हुए ॥ ८ ॥ जैसे पहिले गुरुके नित्यकर्मके समय समीपमें रहनेवाले शिष्य ब्राह्मण, गुरुका शब्द सुननेके अनन्तर पढने लगते हैं तैसे ही पहिले मौन होकर सोए हुए मेंडक मेघोंका शब्द सुनकर अपनी वाणी उच्चारण करनेलगे ॥ ९ ॥ जैसे जितेन्द्रिय पुरुषकी यौवन आदि शरीरकी संपदा और धन घर आदि द्रव्यसंपदा,पहिले शांतस्वभावकी होकर पीछेसे शास्त्रकी मर्यादाका उल्लंघन करके वर्त्ताव करने लगने पर, कुमार्गमेंको जाने लगती है तैसे ही पहिले सूखी हुई भी छोटी नदियें, वर्षा होने पर अपने २ पात्रोंसे बाहरको निकलकर इधर उधरके मार्गोंमेंको होकर बहने लगीं ॥ १० ॥ जैसे राजाओंकी सेनारूप सम्पदा किननों ही का हरा, कितनों ही

उच्छिलींध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥ ११ ॥ क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः । धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया । अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥ सरिद्भिः संगतः सिंधुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् । अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा १४ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः । अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥ मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः । नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव १६ ॥ लोकबंधुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः । स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ १७ ॥ धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् । व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥१८॥ न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्यो-

---

का लाल वेष और कितनोंके मस्तक पर धारण करे हुए श्वेत छत्रोंसे हरी लाल और श्वेत दीखती है तैसे ही भूमि, कहीं २ उगे हुए हरे तृणोंसे हरी, कहीं२ इन्द्रगोप (बीरवहुटी) नामक कीड़ोंसे लाल और कहीं २ उगे हुए छत्रोंसे ढकी हुई होनेके कारण श्वेत दीखने लगी ॥ ११ ॥ तैसे ही खेत, अच्छी वर्षा होकर सुन्दर दीखने वाले धान्योंसे किसानोंको आनन्द देने लगी और फिर वर्षा बन्द होनेके कारण सूखनेवाले वही खेत, वर्षा होना और न होना यह दैवके अधीन है ऐसा न जानने वाले उन खेतोंके स्वामी किसानोंको खेद भी देने लगी ॥ १२ ॥ जैसे भगवद्भक्त, श्रीहरिकी सेवासे साधक दशामें सुन्दररूप और सिद्ध दशामें परमानन्दस्वरूप धारण करते हैं तैसे ही जलमें रहने वाले मत्स्य आदि और भूमि पर रहने वाले वृक्ष आदि सकल प्राणी, नवीन जलके सेवनसे सुन्दररूप धारण करने लगे ॥ १३ ॥ उस समय जैसे जिसका योगसाधन पूर्ण नहीं हुआ है, ऐसे योगीका भोगवासना युक्त हुआ चित्त, विषयोंमें लगकर चञ्चल होजाता है तैसे ही नदियोंसे मिला हुआ और वायुसे जिसमें तरङ्गें उठ रही हैं ऐसा समुद्र क्षोभित होने लगा ॥ १४ ॥ जैसे परमेश्वरमें मग्नचित्त हुए पुरुष, आध्यात्मिक आदि तापोंसे कितनी ही पीड़ा पाने पर भी डिगते नहीं हैं तैसे ही गोवर्द्धन आदि पर्वत मेघोंकी धाराओंसे बहुत कुछ प्रहार करे हुए भी कुछ दुःखको नहीं प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ जैसे ब्राह्मणोंके पाठ करेहुए भी वेद, कुछ दिनों पर्यन्त आवृत्ति न करने पर काल गतिसे विस्मृतसे होकर अन्त में सन्दिग्ध होजाते हैं तैसे ही इस वर्षाऋतुमें घाससे ढके हुए और घासको दूर करके साफ न करेहुए मार्ग, उन मार्गोंमेंको वारम्वार जानेवाले पुरुषोंके भी जानने में नहीं आये ॥ १६ ॥ जैसे क्षणिक प्रेम करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियें देना आदि गुणोंसे युक्त भी पुरुषोंके पास नहीं रहती हैं तैसे ही सकल लोकोंके ऊपर उपकार करने वाले भी मेघोंमें बिजलियें स्थिरताके साथ नहीं रहीं ॥ १७ ॥ जैसे निर्गुण पुरुष, मायाके सत्त्व आदि तीनों गुणोंके मेलसे प्रकट हुए प्रपञ्चमें शोभित होता है तैसेही जिसमें डोरी हैही नहीं ऐसा इन्द्रका धनुष, गर्जना आदि गुणयुक्त आकाश में शोभित होने लगा ॥ १८ ॥ जैसे अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होने वाली अहं-बुद्धिसे ढकाहुआ जीवात्मा, 'मैं दाता हूँ, मैं शूर हूँ इत्यादि' गर्वसे फूलते ही शोभा

स्तनाराजितैर्घनैः । अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमो-त्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः । गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनागमे २० पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्त्तयः । प्राक् क्षामास्तपसा श्रांता यथा कामा-नुसेवया ॥ २१ ॥ सरस्स्वशांतरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः । गृहेष्वशांतकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥ जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे । पाखण्डिना-मसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥२३॥ व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः । यथाऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ॥२४॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूर-जम्बुमत् । गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा । ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः । जलधारागिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥

नहीं पाता है तैसे ही, अपनी ही कान्तिसे प्रकाशित होने वाले मेघोंसे ढका हुआ चन्द्रमा शोभायमान नहीं हुआ॥१९॥जैसे घरमें रहकर तीनों तापोंसे तपे हुए और विरक्त हुए पुरुष,भगवान्‌के भक्तका समागम होते ही आनन्द पाकर पूजास्तुति नमस्कार आदिसे उसका सत्कार करते हैं तैसे ही पहिले ग्रीष्मके तापसे तप कर खिन्न हुए मोर, मेघोंके आनेसे उत्साहयुक्त और हर्षित होकर अपना 'केका' शब्द और नृत्य आदि करके, उनका सत्कार करने लगे ॥ २० ॥ जैसे पहिले तपस्याके क्लेशोंसे दुर्बल और शिथिल इन्द्रिय हुए सकाम तपस्वी, पुण्यके प्रभावसे इच्छित विषय भोग पाकर, उन भोगोंके निरन्तर सेवनसे पुष्ट होते हैं तैसेही पहिले ग्रीष्म के तापसे सूखेहुए वृक्ष, अपनी जड़ोंसे जलको खेंचकर नये अङ्कुर, फूल फल आदि से पुष्ट हुए ॥ २१ ॥ हे राजन् ! जैसे खोटी बुद्धि वाले विषयवासनाओंसे बँधे हुए गृहस्थ, घोर कार्योंसे युक्त वा जिनमेंके कार्य कभी समाप्त ही नहीं होते ऐसे घरोंमें रहते हैं तैसे ही मत्स्य आदिका लोभ करने वाले चक्रवाक (चकवे) पक्षी, जिन के किनारे काँटे कीच आदिसे युक्त हैं ऐसे भी सरोवरोंमें रहने लगे ॥ २२ ॥ जैसे वेदोंमें कहे हुए वर्णाश्रमधर्मोंके मार्ग,पाखण्डी पुरुषोंकी कुतर्कोंसे कलियुगमें अस्त-व्यस्त होजाते हैं तैसे ही,इन्द्रके वर्षा करनेपर नदी और खेतोंके बाँध, जलके प्रवाह से टूटने लगे ॥ २३ ॥ जैसे पुरोहितोंके प्रेरणा करे हुए राजे, अथवा धनी पुरुष, समयर पर दुःखितहुए पुरुषोंको अन्न वस्त्र आदि उपभोगकी वस्तुओंका दान करते हैं तैसे ही वायुके प्रेरणा करे हुए मेघ, सकल प्राणियोंके जीवनरूप जलकी समयर पर वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ इस प्रकार वर्षा ऋतुकी सम्पदासे बढ़े हुए और पके हुए फलोंसे झुके खजूर और जामुनोंके वृक्षों वाले तिस वृन्दावनमें गौ और गोपालोंसे घिरे हुए वह बलराम सहित श्रीकृष्णजी, क्रीड़ा करनेके निमित्त गये ॥ २५ ॥ तहाँ बड़े ऐनके भारसे धीरे २ चलने वाली गौएँ, भगवान्‌ने अपने आप धरे हुए नामों से जब उनको बुलाया तो, प्रीतिके कारण स्तनोंमेंसे दूध टपकाती हुईं दौड़ती २ उनके समीप पहुँची ॥ २६ ॥ उस समय उस लीलाको देख कर आनन्द पानेवालीं उस वनमेंकी कितनी ही भीलनियें भगवान्‌के देखनेमें आईं, कभी वह कृष्ण पर-

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति । निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलांतिके । संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणाऽन्वितः ॥ २९ ॥ शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् । तृप्तान्वृषान्वत्सतरान् गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥ प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् । भगवान्पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे । शरत्समभवद्व्यभ्रा स्वच्छांब्वपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः । भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पंकमपां मलम् । शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥ सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः । यथा त्यक्तैषणाः शांता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् । यथा

त्मा, उस वनमें मद टपकाने वाले वनोंकी पंक्तियें; पर्वतसे नीचे गिरनेके कारण घू घू बजने वाली जलकी धारा और उनके समीपकी गुहाओंको देखते हुए तथा पक्षियोंके नानाप्रकारके शब्द सुनते फिरते थे ॥ २७ ॥ कभी, कन्दमूल और फलों का भक्षण करनेवाले वह भगवान्, वर्षा होनेपर वृक्षोंके झाड़ोंमें और गुहामें घुसकर तहाँ ही क्रीड़ा करते थे ॥ २८ ॥ कभी, बलरामसहित वह श्रीकृष्णजी, अपने साथ भोजन करनेके योग्य सखा गोपालोंके साथ, जलके समीप शिला पर बैठ कर घर से लाये हुए दही भातका भोजन करते थे ॥ २९ ॥ हरी घाससे भरे हुए स्थानोंपर बैठ कर जुँगाल करने वाले और नेत्र मूँद कर तृप्त हुए वृषभोंको, बछड़ोंको और अपने थनके भारसे थकी हुई गौओंको देख कर, तैसे ही अपने प्रभावसे बढ़ी हुई और सकल प्राणियोंको आनन्द देने वाली वर्षा ऋतुमेंकी तिस वृन्दावनकी शोभा को देख कर भगवान्ने सराहना करी ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए वह रामकृष्ण, गोकुलमें रहते थे सो-जिसमें मेघ नष्ट होगए हैं, जल स्वच्छ होगये हैं और वायु शांत होकर चलने लगा है ऐसा शरदृऋतु आगया ॥ ३२ ॥ उस समय जैसे कुसङ्गसे योग भ्रष्ट हुए पुरुषोंके अन्तःकरण, फिर प्राणायाम आदि योगसाधनों के सेवनसे ठीक होकर स्वच्छ होजाते हैं तैसेही बरसातमें गदलेहुए नदी आदिकों के जल, कमलोंको उत्पन्न करने वाली उस शरदृऋतुके आनेसे स्वच्छ और मधुर होगये ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्ण भगवान्के विषै होने वाली भक्ति, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी, इन चारों आश्रमोंके दुःखोंका नाश करती है तैसे ही शरदृऋतुने, आकाशमेंके मेघ, प्राणीमात्रकी संकीर्णता, पृथ्वीकी कीच और जलमेंके मलका नाश करा ॥ ३४ ॥ उस समय, जैसे पुत्रैषणा, वित्तैषणा, और लोकैषणा आदि सब इच्छाओंको त्याग कर पापोंसे छूटे हुए शान्तस्वभाव ऋषि शोभा पाते हैं तैसे ही अपना सकल जल पृथ्वी पर छोड़ कर श्वेत वर्णके हुए मेघ शोभा पाने लगे ॥ ३५ ॥ जैसे ज्ञानी पुरुष, मोक्षसाधनरूप ज्ञानामृतका किसी अधिकारी पुरुष को ही कृपा करके उपदेश करते हैं, कर्मविद्याका उपदेश करने वाले उपाध्यायोंकी समान चाहे जिसको देकर सर्वत्र नहीं फैलाते हैं तैसे ही पर्वत, अपनेमें विद्यमान

ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥३६॥ नैवाविदन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः। यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम्। यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैः शनैर्जहुः पंकं स्थलान्यामं च वीरुधः। यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३९॥ निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे। आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः। यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत्। देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम्। सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥ अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी। यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥ ४४ ॥ आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसून-

कल्याणकारी जल, कहीं ही छोड़ते थे सर्वत्र नहीं ॥ ३६ ॥ जैसे कुटुम्बका पोषण करनेमें आसक्त हुए मूढ़ पुरुष, प्रतिदिन क्षीण होते हुए अपने आयुको नहीं जानते हैं तैसे ही थोड़े जलमें रहनेवाले जलजन्तुओंने, उस शरदृऋतुमें अपने जीवनका हेतु जल आगेको बराबर क्षीण होरहा है ऐसा नहीं जाना ॥ ३७ ॥ जैसे इन्द्रियोंको वश में न रखने वाला दरिद्री और दीन कुटुम्बी पुरुष, संसारमें अनेकों प्रकारके दुःख पाता है तैसे ही थोड़े जलमें रहने वाले जलचर प्राणी, शरदृऋतुके सूर्यकी किरणों से होने वाले तापको पाने लगे ॥ ३८ ॥ जैसे धैर्यवान् ज्ञानी पुरुष, धीरे २ इस जड़ शरीर आदिमेंकी अहन्ता और ममताका त्याग करते हैं तैसे ही सब स्थान कीच का और लता अपकता (कच्चापन) का त्याग करने लगीं ॥ ३९ ॥ जैसे ध्यान करने वाला ऋषि मनको उपराम होनेपर वेदघोष आदि कर्ममार्ग को छोड़कर शांत होजाता है तैसेही शरदृऋतुके आनेपर समुद्र, गर्जना करना आदि छोड़कर निश्चल जल वाला हुआ ॥ ४० ॥ जैसे योगसाधन करने वाले पुरुष, क्षोभ पानेवाली अपनी द्वाररूप इन्द्रियोंमेंको स्रवने (क्षीण होने) वाले ज्ञानको, इंद्रियोंको रोककर (वश में करके) रक्षा करते हैं तैसे ही किसान लोग, अपने धान आदिके खेतोंमेंसे बाँध तोड़ कर जाने वाले जलोंको, उन बाँधों (मेंड़ों) को दृढ़तासे बाँध कर रोकते थे ॥ ४१ ॥ जैसे ज्ञान होनेपर वह ज्ञान, देहाभिमानसे होनेवाले तापका नाश करता है और जैसे श्रीकृष्णजी, गोकुलकी स्त्रियोंके अपने विरहसे उत्पन्न हुए तापका नाश करते थे तैसे ही, चन्द्रमा, प्राणियोंको शरद् ऋतुमें के सूर्यकी किरणोंसे होने वाले तापका नाश करने लगा ॥ ४२ ॥ जैसे सत्वगुणसे युक्त (शुद्ध) हुआ अन्तःकरण वेदब्रह्ममेंकी पूर्वोत्तम मीमांसामें निर्णय करेहुए अर्थोंको दिखाता हुआ शोभा पाता है तैसे ही मेघोंसे रहित हुआ आकाश, शरद् ऋतु करके तारागणोंको स्पष्ट दिखाता हुआ शोभा पाने लगा॥४३॥ जैसे यादवसमूहसे घिरेहुए यादवपति श्रीकृष्ण, पृथ्वी पर शोभा पाते थे तैसेही तारागणों सहित षोडश कलापूर्ण चन्द्रमा, आकाशमें शोभा पाने लगा॥४४॥ उस शरद् ऋतुमें सबोंने समशीतोष्ण (न अधिक शीतल न अधिक उष्ण) ऐसे, पुष्पोंके वनमेंसे आये हुए वायुको शरीरमें लगाकर सकल तापोंको त्याग

वनमाश्रितम् । जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥ ४५ ॥ गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् । अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीश क्रिया इव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना । राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ॥४७॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरिन्द्रियैश्च महोत्सवैः । बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥ ४८ ॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे । वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कंधे पूर्वार्धे शरद्वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः२०

श्रीशुक उवाच । इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना । न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्र-

---

परन्तु सकल गोपियें उस वायुके लगनेसे भी तापके त्यागनेको समर्थ नहीं हुईं क्योंकि उनके मन श्रीकृष्णजीने हर लिये थे ॥ ४५ ॥ जैसे ईश्वराधनरूप कर्मयोग, ईश्वरके सम्बन्धसे धर्मादि पुरुषार्थरूप फलोंसे युक्त होकर सकल भोगोंको उत्पन्न करने वाले होते हैं तैसे ही गौएँ, पक्षी और स्त्रियें, शरद् ऋतुके निमित्तसे अपने अपने पतियोंसे सम्बन्धको पाकर पुष्पवती (गर्भिणी) हुई ॥४६॥ हे राजन् ! जैसे चोरोंके सिवाय सकललोक, धार्मिक राजा करके निर्भय और हर्षयुक्त होते हैं तैसे ही चन्द्रमाके उदयमें खिलनेवाली कमलिनयोंके सिवाय सकल कमल सूर्योदयसे प्रफुल्लित हुए ॥ ४७ ॥ उस समय जिधर तिधर धान्य पककर सम्पन्न हुई भूमि, नगर और ग्रामोंमें सर्वत्र होनेवाले नवान्नप्राशन आदि वैदिक महोत्सवोंसे और दीपावली आदि इन्द्रियोंको प्रीति देनेवाले उत्सवोंसे शोभित होने लगी, तिस पर भी श्रीहरिके बलराम श्रीकृष्णरूप अवतारोंसे उनके दर्शन आदि उत्साहों से और भी अधिक शोभा पाने लगी ॥ ४८ ॥ यज्ञ आदिकर्म, योगसाधन, मन्त्र सिद्धि और भगवान्‌की भक्ति आदि साधनोंसे सिद्ध हुए पुरुष, जैसे प्रारब्धसे आयु शेष होय तब तक जीते रहकर उस प्रारब्धके समाप्त होते ही मृत्युकाल प्राप्त होने पर अपने यज्ञ आदिसे सम्पादन करे हुए देव आदि शरीरोंको पाते हैं तैसे ही वैश्य (व्यापारी) संन्यासी, राजे और ब्रह्मचारी, वर्षाऋतुमें जल पड़ना आदि कारणोंसे एक स्थानमें रहकर उस शरदृतुके आते ही अपने २ स्थानसे निकल कर अपने २ व्यापार, स्वच्छन्दता, दिग्विजय और विद्याका अभ्यास आदि कार्य करने लगे ४९ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें विंशतितम अध्याय समाप्त

अब आगे इक्कीसवें अध्यायमें शरदृतु करके सुन्दर हुए वृन्दावनमें श्रीकृष्णजीके जाने पर, उनके वेणुगीतके शब्दको सुनकर गोपियोंके गाये हुए गीत वर्णन करे हैं ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन् ! इस प्रकार शरदृतुके आनेसे जहाँ जल स्वच्छ होगया है और जहाँ कमलोंके समूहमेंको होकर आया हुआ वायु चल रहा है ऐसे तिस वृन्दावनमें एक दिन, गौ गोपालों सहित श्रीकृष्णजी गये ॥ १ ॥ जहाँ प्रफुल्लित हुई वनकी पंक्तियोंमें मत्त हुए भौंरोंके और पक्षियोंके समूहोंसे सरोवर नदियें और पर्वत गुञ्जार रहे हैं ऐसे उपवनमें गौ,

भ्रम् । मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥ तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् । काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥३॥ तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् । नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् । रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥ इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् । श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥६॥ गोप्य ऊचुः । अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः । वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ । मध्ये

गोपाल और बलरामजी सहित श्रीकृष्णजीने प्रवेश करके गौओंको चराते २ वंशी बजाई ॥ २ ॥ उस कामदेवको प्रदीप्त करनेवाले वेणुगीतको सुनकर तिस वनमें जाकर तहाँके वृत्तान्तका अनुभव करके आई हुई कितनी ही गोकुलकी स्त्रियें अपनी सखियोंसे वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उन्होंने, उन कृष्णचरित्रके वर्णनका प्रारम्भ करा परन्तु कृष्णकी मूर्त्ति ध्यानमें आते ही कामदेवके वेगसे व्याकुल चित्त हुई गोपियें, वर्णन करनेको समर्थ नहीं हुई ॥ ४ ॥ अब जिस प्रकार कृष्णका स्मरण उनके मनको क्षोभित करनेवाला हुआ सो कहते हैं—मस्तक पर मोरोंके परोंका शिरो भूषण, नटकी समान सुन्दर शरीर, कानोंमें कनेरके वृक्षके फूल, सुवर्णकी समान पीला जरीका पीताम्बर और वैजयन्ती (पाँच वर्णके सुगंधित फूलोंकी गूँथी हुई) मालाको धारण करनेवाले और गोपोंके समूहोंने जिनकी कीर्त्ति को गाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी वंशीके छिद्रोंको अधरामृत मुखकी वायुसे पूर्ण करते (बजाते) हुए, जहाँ तहाँ भूमि पर दीखते हुए अपने चरणोंके चिन्होंसे सबको रमणीय प्रतीत होनेवाले वृन्दावनमेंको गये ॥ ५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार स्मरण करनेवालीं वह गोकुलकी सकल स्त्रियें, सकल प्राणियोंका मन हर लेनेवाले वंशीके शब्दको सुनकर श्रीकृष्णजीके स्वरूपकी मधुरता आदिका वर्णन करती हुई पद २ पर, परमानन्द मूर्त्ति श्रीकृष्णजीको मनसे आलिंगन करने लगीं ॥ ६ ॥ गोपियोंने कहा कि-अरी सखियों ! नेत्रधारी पुरुषोंके नेत्रोंका यही मुख्य फल है और इससे दूसरे फलको हम नहीं जानतीं कि-समान अवस्थाके मित्रों सहित गौओंको एक वनमेंसे दूसरे वनमेंको लेजाने वाले नन्दनन्दन बलराम और श्रीकृष्णके वंशी बजानेवाले; और स्नेह युक्त कटाक्ष फेंकनेवाला मुख जिन्होंने पिया है अर्थात् नेत्ररूप भ्रमरोंसे उसकी मधुरताका अनुभव करा है उन्होंहीने नेत्रोंका फल पाया है दूसरे किसीने पाया है ॥ ७ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि-अरी ! आमके कोमल पत्ते, मोरोंके पर, फूलोंके गुच्छे और भूमि तथा जलमें उत्पन्न हुए कमल; इनकी चित्र विचित्र बनीहुई मालाओंसे बीच २ में लगे हुए नीले और पीले पीताम्बरोंसे जिनका वेष विचित्र दीख रहा है ऐसे वह रामकृष्ण, गोपालोंकी सभामें जब कभी गान करने लगते हैं तब जैसे रङ्गभूमि (खेल

विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रंगे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥ गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् । भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽर्याः ॥९॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदांबुजलब्धलक्ष्मि । गोविंदवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनंदनमुपात्तविचित्रवेषम् । आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् । देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्वि-

---

दिखानेके स्थान) में गानेवाले उत्तम नट शोभा पाते हैं तैसे शोभा पाने लगते हैं यह गोपोंका कैसा अहोभाग्य है ? ॥ ८ ॥ दूसरी कहने लगीं कि-अरी गोपियों ! न जाने इस वंशीने कौन पुण्य करा है ? क्योंकि-यह वंशी, गोपियोंके ही भोगने योग्य भी श्रीकृष्णजीकी अधरसुधाको स्वतःत्रताके साथ इच्छानुसार भोगती है और दूसरोंके बाँटेमें केवल अपने जूठ करे हुए रसका अंश छोड़ देती है, यदि कहो कि-यह कैसे जाना तो-उसके जतानेवाले चिन्ह कहते हैं कि-जैसे कुल वृद्ध पुरुष, हमारे वंशमें भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न होकर उसको भगवान्का प्रसाद मिला ऐसा सुनकर रोमाञ्चयुक्त हो आनन्दके आँसू बहाते हैं तैसे ही यह वंशी जिनके जलसे पुष्ट हुई है वह माताकी समान नदियें, अपनेमें खिले हुए कमलोंके समूहरूपसे रोमाञ्चयुक्त हुई दीखती हैं और तैसे ही यह वंशो जिनके कुलमें उत्पन्न हुई है वह वृक्ष भी, मदकी धाराओंके रूपसे आनन्दके आँसू बहाते हुएसे दीखते हैं ॥ ९ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि-हे सखियों ! यह वृन्दावन, भूमिकी कीर्ति स्वर्गसे भी अधिक फैला रहा है, क्योंकि-इस वृन्दावनने, जहाँ तहाँ उमड़े हुए श्रीकृष्णजीके चरण कमलोंसे शोभारूप सम्पदा पाई है, इसमें गोविंदकी वंशीका शब्द सुनते ही मत्त हुए मोर, उन गोविन्दको, यह मन्द२ गर्जनेवाला श्याममेघ ही है ऐसा मानकर आनन्दसे नृत्य करते हैं और उस नृत्यको देखकर, पर्वतकी गुहाओंमें फिरनेवाले सकल जङ्गली जीव समूहके समूह इकट्ठे होकर उस नृत्यको देखनेके निमित्त और मुरलीका शब्द सुननेके निमित्त चुपसे खड़े होजाते हैं, यह चमत्कार और लोकोंमें नहीं है इस कारण यह वृन्दावन भूमिकी कीर्तिको फैला रहा है ॥१०॥ दूसरी कहने लगीं-अरी सखियों ! तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होनेके कारण विवेकसे हीन भी यह हरिणियें कृतार्थ ही हैं, क्योंकि-जो वंशीके शब्दको सुनकर विचित्र वेष धारण करनेवाले नन्दकुमारकी प्रेमयुक्त कटाक्षोंसे रची हुई पूजा (सन्मान) करती हैं और तिस पर भी अपने पति कृष्णसार हरिणोंके साथ करती हैं, देखो हमारे पति तो हमें कृष्णकी ओरको देखते हुए भी देखकर क्रुद्ध होते हैं ! ॥ ११ ॥ दूसरी गोपी बोली-अरी सखियों ! हम एक आश्चर्य कहती है सुनो-जिनका रूप और स्वभाव स्त्रियोंके उत्साहको उत्पन्न करने वाला है तिन श्रीकृष्णजीको देखकर और उनकी बजाई हुई मुरलीके विचित्र गानको सुनकर विमानमें

नीव्यः ॥ १२ ॥ गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः । शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविंदमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः १३ प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् । आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालान् शृण्वन्ति मीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥ नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुंदगीतमावर्त्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः । आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयंतमनु वेणुमुदीरयंतम् । प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्व-

बैठकर जाती हुई देवाङ्गना, अपने अपने पतियोंकी गोदियोंमें बैठी हुई भी काम-देवके वेगसे धैर्य नष्ट होजानेके कारण मोहित होजाती हैं, तब व्याकुल और अस्तव्यस्त हुई उनकी चोटियोंमेंसे पुष्प गिरने लगते हैं तथा उनकी साडी शिथिल होजाती हैं, अर्थात् जब देवांगना भी देखकर मोहित होजाती हैं तो फिर हमारे मोहित होनेमें कौन आश्चर्य है ? ॥ १२ ॥ उस समय गौएँ भी, कृष्णके मुखमेंसे निकला हुआ वेणुगीतरूप अमृत नीचे न गिरपड़े इसकारण अपने ऊपर को खडे करेहुए कर्णरूप अञ्जलियोंसे उसको पीती हैं और श्रीकृष्णजीको नेत्रोंके द्वारा मनमेंको लेजाकर दृढ आलिङ्गन करती हैं और नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई चुपसी खड़ी रहती हैं तैसे ही छोटे २ बछड़े भी, दूध पीते हुए, कृष्ण की मुरलीका शब्द कानोंमें पडते ही देहके भानको विसारकर स्तनोंमेंसे खेंचकर लिये हुए दूधके ग्रास (घूँट) को गलफडोंमेंसे नीचेको टपकाते हुए निश्चेष्ट खड़े रहते हैं ॥ १३ ॥ एक गोपी कहने लगी कि—अरी ! इस वनमें जो पक्षी हैं वह प्रायः परम मनन करने वाले ऋषि ही हैं, क्योंकि—जैसे मननशील ऋषि श्रीकृष्णका दर्शन होय तिस रीतिसे वेदोक्त कर्म फलोंको त्याग कर, वेदरूप वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय करके और सुंदर पल्लवरूप कर्मोंको स्वीकार करके श्रीकृष्णकी कथाओंका गान और श्रवण करते हैं तैसे ही यह पक्षी भी जैसे श्रीकृष्ण का दर्शन होय तिस रीतिसे फलपुष्प आदिसे रहित और सुन्दर वृक्षोंके पत्तोंसे युक्त गुद्दों पर बैठकर कृष्णके प्रकट करे हुए मुरलीके मधुरगीतको, किसी अकथनीय सुखके साथ नेत्रोंको न मूँदकर और अपनी २ जातिके कलकलाहट शब्दको न करते हुए सुनते हैं ॥ १४ ॥ दूसरी गोपी कहनेलगी कि—अरी ! जीवित प्राणियों की बात तो अलगरही परन्तु यह निर्जीव नदियें भी, देह कृष्णकी मुरलीका गान सुनकर भँवरोंके रूपसे सूचित होनेवाले कामदेवने इसके प्रवाहके वेगको रोकदिया है और वह कृष्णको कमलरूपी भेट अर्पण करती हुई अपनी तरंगरूपी भुजाओंसे श्रीकृष्णजीके चरणयुगलको, जैसे दृढताके साथ आलिङ्गन होय तैसे ग्रहण करती हैं ॥ १५ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि—यह मेघ श्रीकृष्णजीको अपना मित्र मानता है और धूपमें बलराम तथा गोपों सहित गोकुलमेंकी गौओंको चरानेवाले और गौओंके पीछे जातेमें मुरली बजाते हुए उन श्रीकृष्णजीको देखकर पहिले उनके ऊपर आप प्रकट होता है और फिर प्रेमसे वृद्धिको प्राप्त होकर पुष्पोंकी वर्षा सहित अपने शरीर

वपुषाऽम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥ पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुंकुमेन दयितास्तनमंडितेन । तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिंपन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः । मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकंदमूलैः ॥१८॥ गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः । अस्पंदनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥१९॥ एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः । वर्णयंत्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंशतितमोऽध्यायः २१

श्रीशुक उवाच । हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः । चेरुर्हविष्यं भुंजानाः

का उस मित्र (श्रीकृष्ण) के ऊपर छत्र लगता है (छायाडालता) हैं यहाँ देवताओंकी करी हुई पुष्पवर्षा मेघोंने ही करी ऐसा वर्णन करा है१६ दूसरी अहंकारयुक्त गोपी कहने लगी कि अरी सहेलियो ! वनमें रहनेवाली भीलिनियें वास्तवमें कृतार्थ (धन्य) हैं जो भीलिनियें प्रथम श्रीकृष्णकी स्त्रियोंके स्तनोंमें लेपन करेहुए फिर श्रीकृष्णके चरणकमलोंको लगनेके कारण उनके चरणोंकी लालीसे विशेष शोभा को प्राप्त हुए और श्रीकृष्णजीके वनमें फिरनेसे तृणोंसे लगे हुए केशरको देखते ही उसके दर्शनसे कामपीडाको प्राप्त होकर वह (तृणको लगाहुआ) केशर लेकर,काम से तप्त हुए अपने मुख और स्तनोंके ऊपर लेपकर कामपीडाको दूरकरती हैं इस कारण वही धन्य हैं और जो वनमें नहीं जाती हैं तथा उस केशरको पाकर अपनी कामपीडाको शांत नहीं करती हैं ऐसी हम समान स्त्रियोंको धिक्कार है ॥ १७ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि-अरी गोपियो क्या कहूँ ! यह गोवर्धन पर्वत तो भगवद्भक्तों का शिरोमणि है, क्योंकि-यह बलराम और कृष्णके चरणोंका स्पर्श होनेसे आनन्द युक्त तथा उगे हुए तृणोंके रूपसे रोमाञ्चको धारण करता हुआ, गौ गोपालों सहित अपने ऊपर आये हुए उन बलराम और श्रीकृष्णका, जल, कोमल तृण, गुहा, कन्द तथा मूलके द्वारा सन्मान करता है ॥ १८ ॥ दूसरी कहने लगीं कि-अरी सखियो ! गोपालों सहित प्रत्येक वनमें गौओंको चराने वाले और दूध दुहते समय गौओंके पैर बाँधनेकी डोरी मस्तकको लपेट कर और मरखनी गौओंका दूध दुहनेके समय खैंचनेके निमित्त बनायी हुई फन्देदार डोरी कंधे पर रख कर श्रेष्ठ गोपोंकी शोभा से विराजमान होने वाले बलराम कृष्णके मधुर शब्दों वाली मुरलीकी ध्वनियोंसे, शरीरधारी गौ मोर आदि जङ्गम प्राणियोंमें जो चलना बन्द होकर स्थावरधर्म दीखता है और वृक्ष आदि निर्जीव प्राणियोंके शरीरोंपर रोमांच खड़े होकर उनमें जङ्गम प्राणियोंका धर्म दीखता है यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार वृन्दावनमें विचरनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों क्रीडाओंका वर्णन करने वालीं वह गोपियें, अन्तमें तन्मयताको प्राप्त हुईं ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें एकविंशतितम अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ छ ॥ ❀

अब आगे बाईसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजी, वस्त्रहरण रूपलीलासे गोपकन्याओं

कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्यांभसि कालिंद्या जलांते चोदितेऽरुणे । कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः । उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि । नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः । इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ ४ ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः । भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥५॥ उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः । कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिंद्यां स्नातुमन्वहम् ॥ ६ ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् । वासांसि कृष्णं गायंत्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥७॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । वयस्यैरागतस्तत्र वृतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ ८ ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः । हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥ ९ ॥ अत्रागत्याबलाः

को वर देकर यज्ञशालामें गये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! हेमन्तुऋतुमें तिसमें भी पहिले मार्गशीर्ष मासमें नन्दकी गोकुल मेंकी कन्याओंने, हविष्यान्न भोजन करनेका नियम धार कर, कात्यायनी देवीका पूजनरूप व्रत करा अर्थात् श्रीकृष्णजीकी प्राप्तिके निमित्त एकमास पर्यंत प्रतिदिन कात्यायनीदेवीका पूजन करनेका नियम करा ॥ १ ॥ हे राजन् ! उन कन्याओंने, अरुणोदयके समय यमुनाके जलमें स्नान करके,उस जलके तटपर बालूकी कात्यायनी देवीकी प्रतिमा बना कर उस देवीकी चन्दन, सुगन्धयुक्त पुष्प, पल्लव, फल तण्डुल, धूप, दीप, छोटे बड़े भक्ष्य आदिके नैवेद्य और दही भात आदि बलि समर्पण करके पूजा करी ॥ २ ॥ ३ ॥ हे कात्यायनि ! हे महामाये ! हे महायोगिनि ! हे सर्वेश्वरि ! हे देवि ! नन्दगोपका पुत्र जो श्रीकृष्ण उसको मेरा पति कर, तुझे नमस्कार हो, इस प्रकार प्रार्थना करके नमस्काररूपी मन्त्रका अपने २ मनमें जप करके उन कन्याओंने देवीकी पूजा करी ॥ ४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी ओरको चित्त लगाने वालीं उन कन्याओंने, एक महीने पर्यंत, हविष्यान्न व्रत करके, नन्दका पुत्र हमारा पति हो इस इच्छासे भद्रकाली नामक कात्यायनी देवीका पूजन करा५ प्रतिदिन उषःकालमें (पौफटनेके समय) वह कन्या उठ कर भिन्न २ नामसे दूसरी कन्याओंको जगा कर एक एकका हाथ पकड़े हुए यमुनामें स्नान करनेके निमित्त जाने लगीं और ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णजीका गीत गाने लगीं ॥ ६ ॥ वह कन्या एक दिन यमुनाजीके तटपर जाकर तहाँ अपने२ वस्त्र पहिलेकीसमान उतारके रखकर बड़े हर्षके साथ श्रीकृष्णका गान करती हुई जलमें 'एक दूसरीके ऊपरको जल उछाल कर' क्रीड़ा कर रही थीं ॥ ७ ॥ इतने हीमें योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी, वह उनका व्रत करना अपनी प्राप्तिके निमित्त है ऐसा जान कर उनके कर्मोंका फल देनेके निमित्त मित्रों सहित तहाँ आपहुँचे ॥ ८ ॥ और उनके वस्त्र उठा कर बड़ी शीघ्रतासे कदम्बके वृक्षके ऊपर चढ़ कर हँसने वाले बालकोंके साथ आप भी हँसते हुए वह कृष्ण हास्यमें उनसे कहने लगे कि-॥ ९ ॥ हे स्त्रियो ! यहाँ (कदम्बके वृक्षके नीचे) आकर यथेष्ट अपने २ वस्त्र लेजाओ, मैं यह सत्य कहता

कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् । सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ १० ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः । एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवेत सुमध्यमाः तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः । व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥१२॥ एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाक्षिप्तचेतसः । आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥ माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् । जानीमोऽग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितं । देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच । भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ । अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥१६॥ ततो जलाशयात्सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः । पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥ १७ ॥ भगवानाह ता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः । स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृत

हूँ उपहास नहीं है, क्योंकि-तुम व्रत करके श्रमको प्राप्त होरही हो इसकारण तुम्हारा उपहास करना योग्य नहीं है ॥ १० ॥ मैंने आजपर्यन्त कभी मिथ्या बोला ही नहीं, सो यह गोप जानते हैं, इससे हे सुन्दर कटिवालियों ! तुममेंसे एक २ यहाँ आकर वा सब साथ ही आकर अपने २ वस्त्र पहिन लो, एक २ को ही आना चाहिये यह मेरा आग्रह नहीं है ॥ ११ ॥ तब उस, उन श्रीकृष्णके वस्त्रहरण आदि रूप हास्यको देखकर प्रेममें भरीहुई और एक दूसरीकी ओरको देखकर लज्जासे हँसती हुई वह गोपियें जलमेंसे बाहर निकलीं १२ और श्रीकृष्णजीके ऐसा कहनेपर हास्यमें जिनके चित्त कृष्णकी ओरको खिचे हैं ऐसी शीतल जलमें कण्ठपर्यंत छुपी हुई और थर २ काँपतीहुई वह गोपियें, वस्त्र हरनेवाले उन श्रीकृष्णसे कहने लगीं १३ कि-हे कृष्ण! तुम अन्याय न करो, बहुतसे गोपोंके साथमें कुलीन स्त्रियोंको नग्न देखनेकी इच्छा करना तुम्हारा अन्याय है, तुम नन्दगोपके पुत्र, सबके प्यारे और गोकुलमें प्रशंसाके योग्य हो, यह हम जानती हैं, यदि अन्याय करोगे तो देखो गोकुलमें तुम्हारी अपकीर्त्ति होगी और हमको अप्रिय प्रतीत होगा इस कारण हमारे वस्त्र देदो, हम शीतके कारण बड़ी काँप रही हैं ॥ १४ ॥ दूसरी कहने लगी कि-हे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासी हैं इस कारण तुम्हारा सब कहना करती हैं, और दूसरी प्रौढ़ स्त्रियें कहने लगीं कि-हे धर्मज्ञ ! नग्न स्त्रीका देखना धर्म नहीं है यह तुम जानते हो इससे हमारे वस्त्र देदो, यदि नहीं दोगे तो यह तुम्हारी ढिठाई हम नंदराजासे कहैंगी १५ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे मन्दहास्य करने वाली स्त्रियों ! तुम मेरी दासी हो और मेरा कहना करनेको उद्यत हो तो और अधिक कुछ न कहकर यहाँ आय अपने२ वस्त्र लेजाओ ॥१६॥ तदनन्तर, भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन करना योग्य नहीं है ऐसा निश्चय करके शीतके कारण बाहरसे काँपने वाली और अन्तःकरणमें क्लेश पाने वालीं वह सब ही कन्या हाथोंसे योनियोंको ढक कर यमुनाके जलमेंसे बाहर निकलीं ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन्होंने प्रेमरूप भक्तिसे जिनको प्रसन्न करा है ऐसे सन्तुष्ट हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, ऋतु सम्पर्क न होनेकी अवस्थामें आईहुई उन

व्रता व्यगाहतैतदु देवहेलनम् । बध्वांजलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधोवसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् । तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥२०॥ तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः । वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः॥२१ दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः । वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन्प्रियसंगनिर्वृताः ॥२२॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः । गृहीतचित्ताः नो चेलुस्तस्मिन्लज्जायितेक्षणाः ॥२३॥ तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया । धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् । मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो

सकल कन्याओंको देख कर कदम्बके वृक्षके गुद्दों पर उनके वस्त्र रख कर मन्द २ हँसते हुए उनसे कहने लगे ॥ १८ ॥ कि-हे स्त्रियों ! तुमने व्रत धारण करने वालीं होकर भी जो नग्नपनेसे जलमें स्नान करा सो 'जलमें अग्नि और देवता रहते हैं इत्यादि अर्थकी श्रुति होनेके कारण' व्रत भङ्ग करने वाला देवताओंका अपराध ही हुआ है, सो उस पापको दूर करनेके निमित्त अपने मस्तकपर दोनों हाथोंको जोड़ कर नीचेको झुक कर नमस्कार करो और अपने वस्त्र लेलो१९इसप्रकार श्रीकृष्णजीके भाषणको कहे हुए सुन कर 'नग्न होकर करा हुआ स्नान व्रत भङ्ग करने वाला होता है ऐसा, मानकर तिस व्रतके पूर्ण होनेकी इच्छा करनेवालीं उन कन्याओंने, उस व्रतके तथा और भी सकल कर्मोंके फलभूत तिन श्रीकृष्णजीको नमस्कार करा, क्योंकि-वही सकल पापोंके दूर करने वाले हैं ॥ २० ॥ तब अपने कहनेके अनुसार नमस्कार करनेवालीं उन कन्याओंको देख कर उनके नमस्कार करनेसे प्रसन्न हुए उन करुणामूर्त्ति देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने उनको वस्त्र दिये २१ हे राजन् ! इसप्रकार श्रीकृष्णजीने, उन कन्याओंको यद्यपि, 'तुमने नँगी होकर जो स्नान करा इत्यादि कहकर' धोका दिया, 'यहाँ आकर ही अपने २ वस्त्र लो ऐसे आग्रहसे' उनकी लज्जा छुडाई, 'मैं सत्य ही बोलता हूँ, मिथ्या नहीं इत्यादि कहकर' उनका हास्यकरा, 'मस्तकपर हाथ रखकर नीचेको नमस्कार करके अपने२ वस्त्र लो ऐसा कहकर' खेलनेकी पुतलियोंकी समान लिखाई हुईं उनके वस्त्र हरण करे तथापि उन कन्याओंने इन श्रीकृष्णजीकी निन्दा वा उनकी ओरको दोष दृष्टिसे अवलोकन मात्र भी नहीं करा, क्योंकि-वह कन्या, उन प्रिय श्रीकृष्णके समागमसे ही आनन्द युक्त हुई थीं ॥ २२ ॥ फिर अपने २ वस्त्र पहिन कर उन प्रिय श्रीकृष्णके समागमसे, उनके वशमें हुई और उन्होंने जिनके चित्तको हरलिया है ऐसी वह कन्याएं, उन श्रीकृष्णकी ओरको लज्जा और विलास युक्त नेत्रोंसे देखतीं हुईं तहाँ ही चित्रलिखितसी खडी रहीं ॥ २३ ॥ तब, पतिभावसे अपने चरणस्पर्शकी इच्छा करके कात्यायनीके पूजनरूप व्रतको करने वालीं कन्याओंका संकल्प जानकर, वह भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसे कहने लगे कि-॥२४॥ अरी पतिव्रता स्त्रियो ! मेरी सेवा करनेका तुम्हारा मनोरथ है, यद्यपि वह तुम मुझसे लज्जाके

भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६॥ यातावला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः । यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः । ध्यायंत्यस्तत्पदांभोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः । वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ।२९। निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः । आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन । विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥ पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकांतजीविनः । वातवर्षातपहिमान् सहंतो वारयंति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् । सुजनस्येव येषां वै विमुखा यांति नार्थिनः ॥ ३३ ॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः । गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ॥ ३४ ॥ एतावज्जन्मसा-

---

कारण नहीं कहता हो तथापि मैंने जान लिया है और उसको मैंने स्वीकार भी करा है, वह मनोरथ कुछ सत्य होनेके योग्य है ॥ २५ ॥ क्योंकि-जैसे भुने हुए वा उबालेहुए धान्य प्रायः फिर अंकुर उत्पन्न होनेके योग्य नहीं रहते हैं, केवल भक्षण करनेकेही कार्यमें आते हैं तैसे ही जिन्होंने मेरे में अपनी बुद्धिको लगा दिया है उनका विषयभोगका संकल्प बारम्बार जन्म मरणरूप संसारमें विषय भाव करने वाला नहीं होता है किन्तु कुछ समय भोग भोगकर अन्तमें उनको मुक्ति देनेवाला होता है ॥ २६ ॥ इस कारण हे अबलाओं ! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ, अब गोकुलको जाओ, अरी सतियों ! तुमने जो संकल्प करके यह कात्यायनीका पूजनरूप व्रतकरा है सो तुम आगेको आनेवाली इस शरदृतुमेंकी रात्रिमें मेरे साथ क्रीडा करोगी ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌की आज्ञा करी हुई और वरदान मिलनेके कारण पूर्ण मनोरथ हुई वह कुमारिका, भगवान्‌को त्यागना कठिन होनेके कारण बडी कठिनतासे उनके चरणकमलोंका ध्यान करती तहाँसे गोकुलमेंको चली गई ॥ २८ ॥ इधर गोपोंसे घिरे हुए वह देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णजी, बलरामजीके साथ गौओंको चराते चराते वृन्दावनसे दूर चलेगये ॥ २९ ॥ तदनन्तर कठोर गरमीकी धूपमें अपनी छायाओंसे, अपने ऊपर छत्र समान हुए वृक्षोंको देखकर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, गोकुलवासी गोपोंसे कहने लगे कि-॥ ३० ॥ हे स्तोककृष्ण ! हे अंशो ! हे श्रीदामा! हे सुबल ! हे अर्जुन ! हे विशाल ! हे ऋषभ ! हे तेजस्विन् ! हे देवप्रस्थ ! हे वरूथप ! केवल दूसरोंके निमित्त ही जीनेवाले इन भाग्यशाली वृक्षोंको तुम देखो, यह आप वायु, वर्षा, गरमी और शीतको सह कर हमारे, वायु, वर्षा आदि सब दूर कर रहे हैं ॥३१-३२॥ अहो ! सकल प्राणियोंकी जीविका चलनेका साधन इन का जन्म, सत्पुरुषोंके जन्मकी समान श्रेष्ठ है, देखो-जिन वृक्षोंके पाससे याचक (समीप आये हुए प्राणी) कभी विमुख नहीं जाते हैं ॥ ३३ ॥ यह वृक्ष अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड, छाल, काठ, सुगन्ध, गोंद, भस्म, सार और पल्लव आदि

फल्यं देहिनामिह देहिषु । प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ॥३५॥ इति प्रवालस्तवकफलपुष्पदलोत्करैः । तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥ ३६ ॥ तत्र गाः पाययित्वापः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः । ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७ ॥ तस्या उपवने कामं चारयंतः पशून्नृप । कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

गोपा ऊचुः । राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण । एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छांतिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः । भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । सत्रमांगिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥३॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः । कीर्तयंतो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वायाचंत ते तथा । कृतांजलिपुटा विप्रान् दण्डवत्पतिता भुवि ॥५॥ हे भूमि-

---

अँकुरोंसे दूसरोंके मनोरथोंको पूर्ण करते हैं ॥ ३४ ॥ इस संसारमेंके प्राणियोंके जन्म की इतनी ही सफलता है कि-अपने प्राणोंसे, धन आदिसे, हितचिन्तनसे और हितके उपदेश आदिसे निरन्तर दूसरोंका कल्याण करते हैं ॥३५॥ इस प्रकार वृक्षों की प्रशंसा करते हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, पल्लव फूलोंके गुच्छे, फल, फूल, और पत्तोंके झड़ोंसे झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षोंके मध्यमेंको होकर यमुनाके तट परको चले गये ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! तहाँ उन सकल गोपोंने, स्वच्छ और आरोग्यकारी यमुनाका शीतल जल गौओंको पिलाकर फिर वह मधुर जल आप भी यथेच्छ पिया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस यमुनाके उपवनमें इच्छानुसार गौओं को चराने वाले परन्तु भूँखसे व्याकुल हुए वह गोप बलराम और श्रीकृष्णजीके समीप जाकर इस प्रकार कहने लगे ॥३८॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध में द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥ छ छ छ

अब आगे तेईसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने, गोपोंसे अन्नकी याचना करानेके मिष से यज्ञ करनेवालोंकी स्त्रियोंके ऊपर अनुग्रह करके उन यज्ञके दीक्षितोंको अनुताप युक्त करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ गोपोंने कहा कि-हे महापराक्रम राम ! हे राम ! हे दुष्टनाशक श्रीकृष्ण ! यह बडी भारी भूँख हमको पीडित कर रही है इस से तुम्हें उसको दूर करना योग्य है ॥१॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार गोपोंने, क्षुधाको दूर करनेके निमित्त जिनकी प्रार्थना करी है ऐसे वह देवकी पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनी भक्त ब्राह्मणकी स्त्रीके ऊपर प्रसन्न होते हुए कहने लगे कि-॥२॥ अरे गोपो ! यहाँसे समीप ही वेदके अर्थका उपदेश करने वाले ब्राह्मण, स्वर्ग पानेकी इच्छासे आङ्गिरस नामक सत्र कर रहे हैं ॥३॥ सो तहाँ जाकर उनसे भगवान् बलरामका और मेरा नाम लेकर, हमारे भेजे हुए तुम, हमारे निमित्त उनसे अन्न माँगो तब तुम्हारी भूँख दूर होगी ॥ ४ ॥ इस प्रकार भगवान् के आज्ञा करेहुए वह गोप, तहाँ जाकर उन ब्राह्मणोंके हाथ जोडकर पहिले भूमिमें

देवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः । प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥६॥ गाश्चारयंतावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ । तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥ ७ ॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः । अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥ इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः । क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥९॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥१०॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवंतमधोक्षजम् । मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे॥११॥न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परंतप । गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ॥१२॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः । व्याज-

दण्डके समान लेटे और फिर भगवान्के कहनेके अनुसार उनसे अन्नकी याचना करी ॥ ५ ॥ कहने लगे कि-हे ब्राह्मणों ! तुम्हारा कल्याण हो, हम विनय करते है, इधर ध्यान दो, श्रीकृष्णजीकी करी हुई आज्ञाको बजानेवाले और बलरामजीने, तुम्हारे पास भेजेहुए हम गोप हैं ऐसा तुम जानो ॥ ६ ॥ यहाँसे समीपमें ही गौओं को चराते २ आये हुए बलराम और श्रीकृष्ण भूँखसे बहुत व्याकुल होरहे हैं सो इस समय तुमसे अन्न मिले ऐसी इच्छा कर रहे हैं इस कारण हे धर्म जाननेवालों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! यदि तुम्हारे पास अन्न और उसके देनेकी श्रद्धा होय तो अन्न चाहने वाले उन बलराम कृष्णको अन्न देओ ॥ ७ ॥ यदि कहो कि-हमारे दीक्षित होनेके कारण हमारे पासके अन्नको भक्षण करने वाला दोषी होता है तो हे ब्राह्मणों ! सुनो पशुयाग दीक्षामें और सोमके उद्देशसे पशुका आलम्बन होनेसे पहिले उन दीक्षितोंका अन्नभक्षण करने वाला ही दोषी होता है और समय दीक्षितोंका अन्न भक्षण करने वाला पुरुष दोषी नहीं होता है यह शास्त्रमें प्रसिद्ध है ॥ ८ ॥ इस प्रकार गोपोंके मुखसे भगवान्की करी हुई याचनाको सुनकर भी उन ब्राह्मणों ने, मानों वह सुनी ही नहीं इस प्रकार उधरको चित्त नहीं दिया, क्योंकि-वह ब्राह्मण, स्वर्गादिके विषयमें ही आशा रखनेवाले, अनेकों क्लेशोंसे होने वाले कर्मों में श्रद्धा करनेवाले, अज्ञानी और हम ही ज्ञानियोंमें वृद्ध हैं ऐसा अभिमान करने वाले थे ।९। अब, कर्मोंके क्रमका उल्लँघन करके, देवताओंके उद्देशसे करा हुआ अन्न दूसरेको कैसे दें, ऐसा कहो तो-हे ब्राह्मणों ! देश, काल चरुपुरोडाश आदि भिन्न पदार्थ, मन्त्र, तन्त्र (प्रयोग), ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और फल उत्पन्न करने वाला धर्म यह सब जिनके स्वरूप हैं १० उन साक्षात् परब्रह्म, अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णका, मनुष्य शरीर पर 'हम ब्राह्मण बड़े हैं ऐसा अभिमान रखनेवाले उन दुर्बुद्धि दीक्षितोंने 'यह मनुष्य है ऐसी दृष्टिसे' आदर नहीं करा ११ हे राजन् ! जब उन ब्राह्मणोंने, अन्न देते हैं ऐसा अथवा नहीं देते ऐसा भी नहीं कहा तब अन्न मिलनेमें निराश हुए उन गोपोंने, बलराम और श्रीकृष्ण जीके समीप आकर सब वृत्तान्त कह सुनाया॥ १२ ॥ वह गोपोंका कहा हुआ ब्राह्मणोंका वर्त्ताव सुनकर वह जगदीश्वर भगवान्, हँसकर उन गोपोंसे कहनेलगे

हार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं गतिम् ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् । दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥ गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलंकृताः । नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः । इतो विदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः । बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥ १७ ॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायातं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः । तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः । अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बंधुभिः सुतैः । भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते । विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥ श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे । विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं

कि–कार्यार्थी पुरुषोंको खेद नहीं करना चाहिये, कौनसे याचकका अपमान नहीं होता है ? भक्तिहीन पण्डित भी मोहमें पडते हैं ऐसी लोकोंकी स्थिति है ॥ १३ ॥ हे गोपो ! अब तुम, मैं यहाँ आकर बलरामसहित भूँखा हूँ यह वृत्तांत उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंके पास जाकर कहो तब वह तुम्हें, जितना चाहोगे उतना अन्न देंगी, क्योंकि–वह देहमात्रसे तहाँ (यज्ञशालामें) रहती हैं परन्तु बुद्धिसे मेरे समीप रहकर मेरे ऊपर परम प्रेम करनेवाली हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर उन गोपोंने, फिर यज्ञमंडपमें जाकर तहाँ पत्नीशालामें बैठी हुई और आभूषण पहिने हुई ऋषिपत्नियोंको देखकर नमस्कार करके नम्रताके साथ कहा कि–॥ १५ ॥ हे विप्रपत्नियो ! तुम्हें हम (गोप) नमस्कार करते हैं, तुम हमारे कथनको सुनलो, यहाँसे समीप ही फिरते २ आए हुए श्रीकृष्णजीने, हमें यहाँ (तुम्हारे पास) भेजा है ॥ गोप और बलराम सहित वह श्रीकृष्णजी, गौएँ चराते २ घरसे बहुत दूर यहाँ आगए हैं, बनको भूँख लगरही है इससे हम गोपों सहित भूँखे हुए उनको तुम अन्न दो ॥ १७ ॥ तब श्रीकृष्णजी समीप ही आये हैं ऐसा सुनकर, उनको शीघ्र ही अन्न परोस कर लेजानेके काममें वह अत्यंत ही घबडाई हुई सी होगईं, क्योंकि–वह कृष्णकी कथाओंसे चित्त खिचनेके कारण नित्य उनके दर्शनके निमित्त उत्सुक रहती थीं ॥ १८ ॥ और बहुत कालसे यश सुननेके कारण उत्तमकीर्त्ति भगवान्के विषैं चित्त लगानेवालीं वह सब स्त्रियें, रससुगन्ध आदि अनेकों गुणोंसे युक्त, भक्ष्य भोज्य लेह्य और चोष्य ऐसा चार प्रकारका अन्न भिन्न २ पात्रोंमें लेकर पति, भ्राता, बंधु, और पुत्रोंके निषेध करने पर भी उनका कहा न मानकर, जैसे समुद्रकी ओरको नदियें जाती हैं तैसे श्रीकृष्णकी ओरको चलदीं ॥ १९ ॥ २० ॥ तिन स्त्रियोंने, अशोक वृक्षोंके नवीनपल्लवोंसे शोभायमान यमुनाके उपवनमें, गोपोंको साथमें लेकर बलराम सहित विचरनेवाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २१ ॥ वह श्रीकृष्णजी, मेघकी समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, कण्ठमें पहरी हुई पुष्पोंकी माला, मस्तक पर धारण करे हुए मोरके पंख, शरीर पर लगाई हुई धातु और कानोंमें उरसे हुए

कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायःश्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरंध्रैः। अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाऽभिमतयो विजहुर्नरेंद्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया । विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् । यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः । अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥ प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः । यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोऽन्वपरः प्रियः ॥ २७ ॥ तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः । स्वसत्रं पारयिष्यंति युष्माभिर्गृहमेधिनः॥ पत्न्य ऊचुः । मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् । प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलंघ्य समस्तबन्धून् ।२९।

कोमल पत्तोंसे नटकी समान वेष धारण करनेवाले, मित्रके कन्धे पर हाथ रक्खे हुए, दूसरे हाथसे कमलको नचाने वाले, कपोलों पर घुँघराली अलकें लटक रही थीं और मुखकमल मन्द मुसकरानसे युक्त था ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जो स्त्रियें, पहिले अनेकों समय सुने हुए प्रियतम कृष्णके उत्कर्षरूप, कानोंको कृतार्थ करनेवाले कर्णभूषणोंसे श्रीकृष्णके विषैं निमग्नचित्त होरही थीं, उन्होंने, इस समय उन ही श्रीकृष्णको नेत्रोंके द्वारा अन्तःकरणमें प्रवेश करके और चिरकालपर्यंत उनसे आलिंगन करके, जैसे अहङ्कारकी वृत्तियें सुषुप्तिके साक्षी प्राज्ञको आलिङ्गन करके (उसमें लय पाकर) तापको त्यागती हैं तैसे संसारके तापको त्यागा ॥ २३ ॥ उससमय घर पति आदि सबकी आशा छोड़ कर केवल अपने दर्शनकी इच्छासे तिस प्रकार प्राप्त हुई उन स्त्रियोंको, सकल बुद्धियोंके साक्षी उन भगवान्ने जानकर हास्ययुक्त मुखसे कहा कि-॥ २४ ॥ हे महाभाग्यवतियो ! तुम आई यह बड़ी सुन्दर बात्तहुई बैठो, हम तुम्हारा कौनसा कार्य करें ! क्योंकि-तुम्हारे आनेमें विघ्न होने पर भी उसका तिरस्कार करके तुम हमें देखनेकी इच्छासे आई हो, यह तुम्हें योग्य ही है२५ वास्तवमें ऐसा है कि-अपना पुरुषार्थ देखनेवाले विवेकी पुरुष, आत्मा और सबसे अधिकप्रिय मेरेविषैं स्वयंही फलकी इच्छासे रहित उत्तमप्रकारसे अखंड भक्ति करते हैं २६ जिस मेरे सम्पर्कसे ही प्राण, बुद्धि, मन, जाति, देह, स्त्री, पुत्र, धन आदि प्रिय हुए हैं ऐसे मुझसे दूसरा भला कौन प्रिय होगा ? ॥ २७ ॥ इस कारण मेरे दर्शनसे कृतार्थ हुई तुम अब लौट कर यज्ञशालामेंको ही चली जाओ, क्योंकि-तुम्हारे पति गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण हैं वह तुम तहाँ जाओगी तो तुम्हारे साथमें यज्ञकी समाप्ति करेंगे, इसकारण पतियोंके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त पीछेको ही लौटजाओ२८ इस प्रकार कहनेपर वह ब्राह्मणी कहने लगीं-हे विभो ! आपको ऐसा कठोर भाषण करना उचित नहीं है, किन्तु तुम अपने प्रतिज्ञारूप ('न मे भक्तः प्रणश्यति' मेरा भक्त नाशको नहीं प्राप्त है । 'न स पुनरावर्त्तते' उसका संसारमें पुनरागमन नहीं होता है, ऐसे अपने) वाक्यको सत्य करो हम तो पति पुत्रादि सकल बान्धवोंका तिरस्कार करके, तुम्हारी चरणसे अवज्ञाके साथ भी दी हुई तुलसीकी मालाको दब

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये । तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद् गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच । पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः । लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्यते ॥३१॥ न प्रीतयेऽनुरागाय ह्यंगसंगो नृणामिह । तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः । ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥३३॥ तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवंतं यथाश्रुतम् । हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥ ३४ ॥ भगवानपि गोविंदस्तेनैवान्नेन गोपकान् । चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३५ ॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् । रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ३६

सन्मानके साथ मस्तक पर धारण करनेके निमित्त (तुम्हारी दासी होनेके निमित्त) तुम्हारे चरणोंके समीप प्राप्त हुई हैं इसकारण अब हमें लौटकर जाना योग्य नहीं है२९ और अब, घरमेंसे उनका कहा न सुन कर चली आई हुई हमें हमारे पति, माता, पिता अथवा पुत्र भी घरमें नहीं घुसने देयँगे फिर भ्राता, जाति और मित्र आदि अपने घरोंमें हमें कहाँसे आने देयँगे ? अर्थात् कदापि नहीं आने देयँगे इस कारण हे कामलोभादिनाशक ! तुम्हारे चरणोंके आगे जिनका शरीर पडा है ऐसी हमें अब तुमसे भिन्न स्वर्गादि गति भी प्राप्त न हो इस प्रकार तुम हमें अपने दासभाव का ही उपदेश दो ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्रार्थना करने पर श्रीभगवान् फिर कहनेलगे कि-हे स्त्रियो ! मैंने भक्तरूपसे स्वीकार करके घर जानेको आज्ञा करी हुई तुम्हारी तुम्हारे पति, माता पिता, भ्राता, पुत्र, आदि तथा दूसरे जो सकल पुरुष हैं उनमें से कोई भी निन्दा नहीं करेंगे ऐसा कहकर और उनको प्रत्यक्ष देवताओंको दिखाकर कहने लगे कि-देखो यह देवता भी तुम्हें घर जानेकी सम्मति देरहे हैं ॥ ३१ ॥ हे यज्ञपत्नियो ! इस संसारमें जो मेरे अङ्गका सङ्ग होना है सो मनुष्योंके सुखके निमित्त वा अधिक स्नेहकी वृद्धिके निमित्त ही नहीं है इस कारण तुम शीघ्र मेरे विषें मनको स्थापन करनेका ही यत्न करो ॥ ३२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्की कही हुई वह यज्ञपत्नियें, फिर यज्ञशालामें वा चली गईं और उन ऋषियोंने भी स्त्रियोंके ऊपर कोई दोष न लगाकर अपनी २ स्त्रियोंकी सहायतासे यज्ञकी समाप्ति करी॥३३॥उस यज्ञशालामें,पहिले जब स्त्रियें अन्न लेकर निकल कर गई थीं तब एक स्त्रीको उसके पतिने पकड़ कर रोक रक्खा था उसने, पहिले भगवान्का जैसा स्वरूप सुना था उसके अनुसार मनमें ध्यान करे हुए उन भगवान्के साथ मनसे ही आलिंगन करके कर्मके अनुसार प्राप्त हुए शरीरको त्याग दिया अर्थात् वह अपना शरीर पतिके समीप ही छोड़कर अपने चैतन्य करके भगवत्स्वरूपमें जापहुँची (मुक्त होगई) ॥ ३४ ॥ इधर भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजीने भी, स्त्रियोंके लाकर दिये हुए उस चार प्रकारके अन्नका गोपोंको भोजन कराकर आप भी भोजन करा ॥ ३५ ॥ इस प्रकार लीलाके निमित्त मनुष्य शरीर धारने वाले वह श्रीकृष्णजी, मनुष्यलोकका अनुकरण करते हुए अपने स्वरूपकी सुन्दरतासे,

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः। यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम्। आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ॥३८॥ धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम्। धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ३९ ॥ नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी। यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४० ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ। दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥४१॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि। न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः४२ अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे। भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४३ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया। अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४४ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः। ईशितव्यैः

वाणीकी मधुरतासे और नानाप्रकारके चरित्रोंसे गौ, गोप तथा गोपियोंको क्रीड़ा करानेके निमित्त आप भी क्रीड़ा करने लगे ॥३६॥ इधर यज्ञमण्डपमेंके वह ब्राह्मण, हमने जो मनुष्यका अनुकरण करनेवाले विश्वेश्वर बलराम कृष्णकी आज्ञाको टाला है इस कारण हम अपराधी हैं ऐसा मनमें विचार कर पश्चात्ताप करने लगे ॥३७॥ उन्होंने, स्त्रियोंकी कृष्णमें अति उत्कट भक्ति देख कर और अपनेको उस भक्तिसे रहित जान कर पश्चात्ताप करके और अपनी ही निन्दा करतेहुए कहने लगे कि३८ जो हम अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णजीसे विमुख हैं ऐसे हमारे शौक्ल (उत्पत्तिसे हुए) सावित्र (गायत्रीके उपदेशसे हुए) और दैक्ष (यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेसे हुए) ऐसे तीन प्रकारके जन्मको और वेदविद्याको धिक्कार है, तथा ब्रह्मचर्यव्रतको धिक्कार है, बहुज्ञपने (बहुत कुछ जानने) को धिक्कार है, कुलको धिक्कार है और हमारी यज्ञोंकी चातुरीको भी धिक्कार है३९हम जो लोकोंको उपदेश करनेवाले, गुरु और ब्राह्मण होकर भी स्वार्थमें मोहित होरहे हैं इससे निःसन्देह प्रतीत होता है कि-भगवान्की माया योगियोंको भी मोहमें डालनेवाली है४०अहो ! स्त्रियोंको भी जगद्गुरु श्रीकृष्णजीके समीप जानेसे हमने रोका तो भी इनके ऊपर उनकी कैसी भक्ति है देखो-जिसने गृहनामक मृत्युपाशको तोड़डाला है४१इन स्त्रियोंको,ब्राह्मणोंका जैसा उपनयन आदि संस्कार नहीं है, गुरुकुलमें बस कर वेदाध्ययन आदि नहीं है, तप नहीं है, आत्मविचार नहीं है शुचिता नहीं है, तथा शुभकारी स्नान सन्ध्यादि कर्म नहीं है ॥ ४२ ॥ तथापि योगेश्वरोंके भी ईश्वर उत्तमकीर्ति श्रीकृष्ण भगवान्के विषें दृढ़ भक्ति है और वह भक्ति उपनयन आदि संस्कार युक्त होनेपर भी हममें नहीं है,देखो यह कैसे आश्चर्यकी बात है ? ॥४३॥ इसकारण ही साधुओंकी गतिरूप उन भगवान्ने, हम अपने स्वार्थको न जानने वाले और घरके कामोंमें निमग्न होनेके कारण विचार करनेमें असमर्थ हैं ऐसा गोपोंके वाक्योंसे हमें सूचित करा है यह उनका कितना अनुग्रह है ? ॥ ४४ ॥ नहीं तो चार प्रकारके पुरुषार्थको देनेवाले और स्वयं पूर्ण मनोरथ तिन श्रीकृष्णजीको आज्ञा करके हमसे उन्हें क्या करना था ? तथापि उन प्रभुका, यह अन्न माँगना आदि केवल हमारे

क्रिमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥४५॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् । आत्मदोषापवर्गेण यद्याञ्चा जनमोहिनी ॥४६॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मंत्रतंत्रर्त्विजोऽग्नयः । देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४७ ॥ स एष भगवान् साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः । जातो यदुष्वित्यशृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४८ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः । भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे । यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥ ५० ॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् । अविज्ञातानुभावानां क्षंतुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः । दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणंनाम त्रयोऽविंशोध्यायः ॥२३॥

श्रीभगवानुवाच । भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः । अपश्यन्निवसन् गोपा-

---

ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त मनुष्य लीलामात्र है ॥ ४५ ॥ देखो लक्ष्मी भी, दूसरे (सेवा करनेवाले) ब्रह्मादिकोंको त्यागकर तथा अपनी चञ्चलता गर्व आदि दोषों को छोड़ कर केवल चरणसेवाके मनोरथसे जिनकी बारम्बार सेवा करती है उन की जो दूसरोंसे अन्न माँगना सो केवल लोकोंको मोह करने वाला ही है ॥ ४६ ॥ देश, काल, भिन्न २ चरुपुरोडाश आदि द्रव्य मन्त्र, तन्त्र, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान यज्ञ और धर्म यह सब ही जिनकी मूर्त्ति हैं४७ वही यह योगेश्वर साक्षात् भगवान् विष्णु, यादवोंमें उत्पन्न हुए हैं, ऐसा यद्यपि हमने बहुत स्थानों पर सुना है तथापि मूर्ख होनेके कारण हमें उसका ध्यान नहीं रहता है ॥ ४८ ॥ इस प्रकार अपनी निन्दा करके अब भगवद्भक्त स्त्रियोंकी सङ्गतिसे अपनी कृतार्थता कहते हैं कि—अहो ! हम इसलोकमें परम धन्य हैं, क्योंकि-हमारी ऐसी स्त्रियें हैं कि-जिनकी भक्तिकी शक्तिसे हमारी भी श्रीहरिमें निश्चल बुद्धि हुई है४९ ऐसा कहकर भगवान्से क्षमा माँगते हैं कि-हे प्रभो ! जिनकी बुद्धि सर्वत्र अकुंठित है ऐसे अन्तर्यामी तुम श्रीकृष्ण भगवान्को नमस्कार हो, जिनकी मायासे बुद्धि मोहित होजानेके कारण हम कर्ममार्गमें भ्रम रहे हैं ॥ ५० ॥ वही सबके कारण, सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजी, आपकी मायासे मोहित चित्त होनेके कारण आपके प्रभाव को न जानने वाले हमारे अपराधको क्षमा करनेके योग्य हो ॥ ५१ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी अवज्ञा करने वाले वह दीक्षित ब्राह्मण, अपने अपराधको स्मरणकर के उन बलराम और श्रीकृष्णजीके दर्शनकी इच्छा करते थे परन्तु कंससे भय मान कर 'अर्थात् हम दर्शन करनेको जायँगे तो कंस, मेरा शत्रु विष्णु यहीं है ऐसा जान कर यदि कदाचित् गोकुलका नाश कर देगा तो हमारा दूसरा अपराध होजायगा ऐसा मनमें विचार कर' उनके दर्शन करनेको नहीं गये किन्तु अपने आश्रममें ही उनकी भक्ति करते रहे ॥५२॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें त्रयोविंश अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥ छ छ छ छ

अब आगे चौबीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने अनेक प्रकारके कारणोंसे इन्द्रका

निद्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥ तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः । प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः । किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः ॥ ३ ॥ एतद् ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः । न हि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥४॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् । उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति । विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किं विचारितः । अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच । पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः । तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्राणनं जीवनं पयः ८ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां

यज्ञ छोड़कर गोवर्द्धनके यज्ञका उत्साह चलाया, और भूमिपर ब्राह्मणोंके कर्मोंके गर्वको दूर करके स्वर्गपर देवताओंमें इन्द्रको हुए मदका नाश करनेके निमित्त श्रीकृष्णजीने उसका यज्ञ बन्द कर दिया यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! वह दीक्षित ब्राह्मण कंसके भयसे श्रीकृष्णजीका दर्शन करनेको न जाकर अपने आश्रममें ही भगवानकी भक्ति करते रहे, इधर बलदेवजी सहित भगवान् श्रीकृष्णजीने भी उस गोकुलमें बसते हुए एक समय इन्द्रका यज्ञ करनेके निमित्त उद्योग करते हुए गोपोंको देखा ॥१॥ और सर्वसाक्षी सर्वात्मा वह भगवान् श्रीकृष्णजी, इन्द्रके यज्ञके निमित्त यह उद्योग हो रहा है ऐसा जानकर भी नम्रतासे विनयके साथ नन्द आदि वृद्ध गोपोंसे बूझने लगे कि-॥ २ ॥ हे पितः! तुम्हारा यह बड़ी गड़बड़ीका बड़ा भारी कौनसा उत्सव आगया है! सो मुझसे कहो, यदि कहो कि-यह एक प्रकारका यज्ञ है तो इसका फल क्या है? किस देवताके निमित्तसे यह कर्म होरहा है? और कौन इस यज्ञको कर सकता है? ३ हे तात! मुझे यह सब सुननेकी बड़ी इच्छा होरही है इस कारण सुननेकी इच्छा करने वाले मुझसे यह सब कहो! यदि कहो कि-यह गोपनीय हैं तो, इस व्यवहारमें, जो सर्वत्र आत्मदृष्टि रखने वाले साधु हैं, जिनकी दृष्टिमें अपना और पराया नहीं है और जिनके मित्र, उदासीन तथा शत्रु नहीं हैं उन साधुओंका कोई भी कर्म गोपनीय नहीं होता है यदि कहो कि-साधुओंमें और हममें थोड़ासा भेद है तो विचारके काममें शत्रुकी समान उदासीनको भी त्याग देय परन्तु जो मित्र होय उसको अपनी समान ही मानना चाहिये ॥४-५॥ कोई भी काम हो मित्रोंके साथ विचार करके करे, दूसरोंकी देखा देखी न करे, क्योंकि-यह मनुष्य, जानकर और न जानकर भी कर्म करता है तिसमें जानकर करनेवालेको उस कर्मका जैसा फल मिलता है तैसा विनाजाने करनेवालेको नहीं मिलता है ॥६॥ सो यह तुम्हारा याग करनेका उद्योग मित्रोंके साथ शास्त्रके विचारसे करा हुआ है अथवा लोकके व्यवहारके अनुसार आगया है यह सब बूझनेवाले मुझसे विचारके साथ कहिये ७ यह सुनकर नन्दजीने कहा कि-हे कृष्ण! यह भगवान् इन्द्र वर्षाके स्वामी हैं, यह मेघ उनकी प्रिय मूर्त्ति हैं, वह मेघ सकल प्राणियोंकी तृप्ति करने वाले और जीवन

पतिमीश्वराम् । द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे । पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥ य एवं विसृजेद्धर्मं पारंपर्यागतं नरः । कामाल्लोभाद्भयाद् द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच । वचो निशम्य नन्दस्य तथाऽन्येषां व्रजौकसाम् । इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच । कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते । सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥ अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्य कर्मणाम् । कर्त्तारं भजते सोऽपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥ किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् । अनीशेनान्यथाकर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् १५ स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते । स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् १६ देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा । शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः

का साधन जो जल तिसकी वर्षा करने वाले हैं ॥ ८ ॥ इस कारण हे तात कृष्ण ! हम तथा और भी मनुष्य, उन मेघोंके पति इन्द्रकी, उनकी करी हुई वर्षासे उत्पन्न हुए अन्न आदि पदार्थोंके द्वारा यज्ञ करके आराधना करते हैं ॥ ९ ॥ और उस यज्ञ के होने पर शेष रहे अन्न आदिसे धर्म अर्थ कामकी सिद्धि होनेके निमित्त अपनी जीविकाको चलाते है,सब ही उद्योग करनेवाले पुरुषोंको इन्द्र ही वर्षाके द्वारा फल का सिद्धि करनेवाला है, वर्षाके विना कुछ भी सिद्ध नहीं होसकता ॥ १० ॥ इस कारण वृद्धपरम्परासे होते चले आये हुए धर्मरूप इस यागको जो पुरुष, कामसे लोभसे, भयसे वा द्वेषसे त्याग करेगा वह कदापि सुख नहीं पावेगा ॥११॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन्! ऐसे नन्दजीके तथा और भी गोकुलवासी गोपोंके वचन सुनकर इन्द्रको क्रोधित करनेके निमित्त अर्थात् क्रोध उत्पन्न करके इंद्रको गर्वरूप पर्वतसे नीचे उतारनेके निमित्त वह श्रीकृष्णजी पिता नन्दजीसे इसप्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे तात ! सकल प्राणी जन्मान्तरमें करे हुए कर्मसे उत्पन्न होते हैं, कर्मोंसे ही लीन होते हैं, सुख, दुःख, भय वा कल्याण इन सबको कर्म करके ही पाते हैं ॥१३॥ आप कर्मोंसे कल्पित और दूसरोंको कर्मों का फल देने वाला यदि कोई ईश्वर है तो वह–जो जिस कर्मको करता है उसको ही उस कर्मका फल देता है, कर्म न करनेवालेको नहीं देता है ॥ १४ ॥ इस कारण कर्मसे ही फलकी सिद्धि होती है और उसको अपने अधीन माननेवाला वह इन्द्र वकरीके गलेके स्तनकी समान है और पूर्व जन्मके संस्कारसे ही मनुष्योंसे होने वाले कर्म वा उनके सुख दुःख आदि फलोंको उलटनेमें समर्थ नहीं है, तिस इंद्रका यज्ञ करनेसे अपने २ कर्मके अनुसार फल पानेवाले लोकोंको कौन लाभ है ? ॥१५॥ यह सकल प्राणी पुरातन संस्कारोंके ही अधीन है वह अपने तिस स्वभावके ही अनुसार धर्म अधर्म आदि कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, इस प्रकार देवता, असुर और मनुष्यों सहित यह सकल जगत्, स्वभावमें ही रह रहा है ॥ १६ ॥ तिससे स्वभाव करके उत्पन्न होनेवाले कर्मसे ही यह प्राणी बड़े छोटे (देव मनुष्य आदि) शरीरों को पाकर कर्मकी समाप्ति होते ही उनको त्याग देता है और शत्रु, मित्र, उदासीन

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति । न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः । वैश्यस्तु वार्त्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते । वार्त्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥२१॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । रजसोत्पद्यते विश्वमन्योऽन्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यंबूनि सर्वतः । प्रजास्तैरेव सिद्ध्यन्ति महेंद्रः किं करिष्यति ॥२३॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् । नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥ तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः । य इन्द्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यंतां विविधाः पाकाः सूपांताः पायसादयः । संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥ हूयंतामग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । अन्नं बहु-

गुरु तथा ईश्वर यह सब कर्म योगसे ही होते है ॥ १७ ॥ इस कारण अपने अपने पुरातन संस्कारोंके अनुसार अपने २ वर्णाश्रम आदि कर्म करनेवाला पुरुष कर्मका ही सम्मान करे अथवा यह प्राणी जिससे सुखके साथ जीवित रहे वही इसका देवता है अर्थात् उसके ही उद्देशसे कर्म करे ॥ १८ ॥ जो पुरुष, एक देवताको, जीवनका उपाय मानकर सेवा करता है और फिर उनको न मानकर किसी दूसरे देवताकी सेवा करता है वह पुरुष उस देवतासे 'जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पतिको त्यागकर जार पुरुषसे कल्याण नहीं पाती है तैसे' कल्याण नहीं पाता है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण वेदाध्ययन आदि करके अपनी वृत्ति चलावे, राजा भूमिकी रक्षा करके, वैश्य (आगे कही हुई) वार्त्तावृत्ति करके और शूद्र द्विजोंकी सेवा करके अपनी वृत्ति चलावे ॥ २० ॥ उसमें वैश्यकी जो वार्त्तावृत्ति सो, खेती, व्यापार, गौओंकी रक्षा और चौथा व्याजको देनलेन करना यह चार प्रकारकी कही है, तिससे हम गोपाल निरन्तर गौओंकी सेवा करके वृत्तिको चलाने वाले हैं ॥ २१ ॥ सत्व रज और तम यह तीन गुण क्रमसे जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और लयके कारण हैं उन में रजोगुणसे स्त्री पुरुषका सम्भोग होकर यह नाना प्रकारका देव मनुष्य आदि जगत् उत्पन्न हुआ है ॥ २२ ॥ रजोगुणके ही प्रेरणा करे हुए मेघ, सर्वत्र नदी समुद्र आदिकोंमें भी जलकी वर्षा करते हैं उन जलोंसे ही प्रजाओंकी अन्नकी उत्पत्ति आदि कार्यसिद्धि होती है, इसमें इन्द्र क्या करता है ? कुछ भी नहीं २३ तथापि अपना योगक्षेम चलनेके निमित्त देवताकी अपेक्षा है, यदि ऐसा कहो तो हे तात ! जिनकी रक्षाके निमित्त इन्द्र देवना चाहिये वह हमारे नगर नहीं हैं, देश नहीं हैं, गाँव नहीं हैं और घर भी नहीं हैं फिर हम निरन्तर जङ्गलरूपका घरवाले होनेके कारण वनमें पर्वतों पर रहने वाले हैं ॥ २४ ॥ इस कारण तुम जीवनकी कारणरूप गौओंका और भूमिपरके प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मणोंका और कन्द मूल, जल तृण आदिके द्वारा निर्वाह चलानेवाले गोवर्द्धन पर्वतका यज्ञ आजसे प्रारम्भ करो, इन्द्रके यज्ञकी जो सामग्री हैं उनसे ही इस यज्ञको करो ॥ २५ ॥ खीरसे आदि ले मूँगकी दालपर्यंत नानाप्रकारके स्वच्छपाक करो, मोहनभोग, पूए, जलेबी और

विधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्चाश्वचांडालपतितेभ्यो यथाऽर्हतः। यवसं च गवां दत्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८॥ स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः। प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥२९॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते। अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः॥३०॥ श्रीशुक उवाच। कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता। प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥ ३१ ॥ तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः। वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥ उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम्। गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः। गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायंत्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः। शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमाददृबृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो व्रजजनैः सह चक्रे आत्मनात्मने। अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्य-

---

सकल गौओंको लेओ ॥२६॥ वेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे आहवनीय आदि अग्नियोंमें घृत आदिका हवन कराओ, तुम इन ब्राह्मणोंको छहों रसयुक्त अन्न देओ और धेनुसहित दक्षिणा देओ दूसरे भी श्वान, चाण्डाल, पतितपर्यंत सब दीनोंको योग्यताके अनुसार अन्न आदि दो, और गौओंको कोमल तृण देकर गोवर्द्धन पर्वतको पक्वान्न आदिका बहुतसा बलि (नैवेद्य) समर्पण करो ॥ २८ ॥ और तुम आभूषण पहिनकर, भोजन करके; शरीर पर उबटना आदि लगाकर तथा उत्तम वस्त्र पहिनकर गौ, ब्राह्मण; अग्नि तथा गोवर्द्धन पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥२९॥ हे तात! मेरी संमतिमें तो ऐसा कर्म करना चाहिये यदि तुम्हें रुचे तो करो, यह मेरा कहा हुआ यज्ञ, गौ, ब्राह्मण, पर्वत और मैं सबको प्रिय होगा ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इन्द्रका गर्व हरनेवाले कालरूप भगवान् श्रीकृष्णजीके कहे हुए वचनको सुनकर नन्द आदि गोपोंने उसको आदरके साथ स्वीकार करा ॥ ३१ ॥ और जैसा श्रीकृष्णजीने कहा था वैसा ही सब करा अर्थात्-ब्राह्मणोंसे बड़े आदरके साथ पुण्याहवाचन कराकर इंद्रयागके निमित्त इकट्ठी करी हुई पक्वान्न आदि सामग्रीसे गोवर्द्धन पर्वतको बलि देकर ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा और भी सबोंको अन्न देकर गौओंको यथेच्छ कोमल घास दी और ब्राह्मणोंके आशीर्वाद लेकर नंद आदि गोपोंने और अलंकार धारण करनेवाली कृष्णके चरित्र गाती हुई गोपियोंने सब गोधनको आगे करके बैल जुने हुए छकड़ोंके ऊपर बैठकर गोवर्द्धन पर्वतकी प्रदक्षिणा करी ॥ ३२-३४ ॥ श्रीकृष्णजी तो, गोपोंको, गोवर्द्धनमें 'यह देवता है ऐसा' विश्वास उत्पन्न करानेवाला दूसरा ही एक स्वरूप धारण करके, महत्स्वरूप होते हुए गोवर्धनके शिखर पर रहे और उन्होंने, मैं पर्वताभिमानी देवता हूँ ऐसा कहकर गोपोंको अर्पण करा हुआ बड़ाभारी बलि भक्षण करा ।३५। इधर श्रीकृष्णने गोपोंसे कहा कि-अरे! आश्चर्य देखो-तुमने बहुतबार इन्द्रकी पूजा करी परन्तु वह ऐसा मूर्त्तिमान् कभी देखनेमें नहीं आया, इस गोवर्द्धन पर्वतने तो अपना प्रत्यक्षरूप दिखा कर हमारे ऊपर अनुग्रह करा और हमारा दियाहुआ बलि

घात् ॥ ३६ ॥ पयोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः । हंति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥३७॥ इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः । यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीशुक उवाच । इंद्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप । गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्त्तकं नाम मेघानां चांतकारिणाम् । इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥ ३ ॥ यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नाम नौनिभैः । विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षंति भवार्णवम् ॥४॥ वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥ एषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् । धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् । मरुद्गणैर्महावीर्यै-

भक्षण करा यह पर्वत इच्छानुसार रूप धारण करके अपना तिरस्कार करने वाले वनमेंके मनुष्योंको सिंह व्याघ्र सर्प आदिके रूपसे मारता है इससे अपने और गौओं के कल्याणके निमित्त आओ हम इसको नमस्कार करें, ऐसा कह कर गोकुलवासी सब पुरुषोंके साथ उन कृष्णने आप ही तिस नवीन स्वरूप धारण करे हुए अपने को नमस्कार करा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीके प्रेरणा करे हुए वह नंद आदि गोप, गोवर्द्धन पर्वत, गौ और ब्राह्मणोंका यथाविधि यज्ञ करके श्रीकृष्णजी सहित गोकुलमें चले गये ॥३८॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ छ ॥ ॐ ॥ छ

अब आगे पचीसवें अध्यायमें गोकुलका नाश करनेके निमित्त इंद्र वर्षा करने लगा तब प्रभु श्रीकृष्णजीने, गोवर्द्धन पर्वतको उठा कर उस धाराओंकी वर्षासे गोकुलकी रक्षा करी यह कथा वर्णन करी है ॥ ॐ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! उससमय गोपोंने,मेरी पूजा त्यागदी ऐसा जानकर, देवताओंका राजा इंद्र श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं उन नन्दादि गोपों पर क्रुद्ध हुआ ॥ १ ॥ और क्रुद्ध हुए तथा मैं ही ईश्वर हूँ ऐसे अभिमानी तिस इंद्रने,प्रलयकारी सांवर्त्तक नामक मेघों के गणको गोकुलके नाशकी आज्ञा करी और यह वाक्य भी कहा कि-॥ २ ॥ अहो जङ्गलमें रहनेवाले गोपोंकी धन सम्पदाके गर्वका वैभव कैसा आश्चर्यकारी है,देखो इन गोपोंने मर्त्य (मरणधर्मयुक्त) कृष्णका आश्रय करके मुझ अमर देवताका तिरस्कार करा है ॥३॥ जैसे कोई अज्ञानी पुरुष,आत्माका स्मरण करानेवाली विद्या को त्याग कर, तारनेमें असमर्थ नाममात्रसे ही नौकाकी समान प्रतीत होने वाले कर्मरूप यज्ञोंसे संसारसमुद्रको तर जानेकी इच्छा करते हैं तैसे ही बहुत बोलने वाले,बालक,उद्धत और अज्ञानी होकर अपनेको ही पण्डित मानने वाले इस मनुष्य कृष्णका आश्रय करके गोपोंने मुझ देवताका अपमान करा है॥ ४ ॥५॥ इस सम्पत्ति से मत्त हुए और कृष्णने जिनके शरीर फुलाये हैं ऐसे गोपोंके सम्पत्तिके मदयुक्त

नंदगोष्ठजिघांसया ॥७॥ श्रीशुक उवाच । इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः । नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥८॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनंतः स्तनयित्नुभिः । तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः । जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः । गोपा गोप्यश्च शीतार्त्ता गोविंदं शरणं ययुः ॥११॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः१२ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो । त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् । निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेंद्रकृतं हरिः १४ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् । स्वयागे निहतेऽस्माभिरिंद्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये । लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥१६॥ न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः । मत्तोऽसतां

गर्वको तुम नष्ट करदो, इनके गौ आदि पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ भय मानने वाले उन मेघोंसे फिर कहा कि मैं भी ऐरावत हाथीके ऊपर बैठ कर परमपराक्रमी देवताओंके साथ नन्दकी गोकुलका नाश करनेके निमित्त गोकुलमें आता हूँ ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार इंद्रके आज्ञा करे हुए 'कहीं प्रलय नहीं कर डालें इस कारण पहिले जिन्हें बाँध रक्खा था वह, बन्धनसे छूटे हुए मेघ, नन्दकी गोकुलको धाराओंकी वर्षाओंसे बड़ी पीडा देने लगे ॥ ८ ॥ बिजलियोंसे प्रकाशित होने वाले, वज्रपातके साथ गर्जने वाले, बड़े तीव्र आवह प्रवह आदि प्रलयकारी और पवनोंके प्रेरणा करे हुए वह मेघ, जलके ओलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वह मेघ एक समान खम्भकी समान मोटी वर्षाकी धाराएँ छोड़ने लगे तब पानीके प्रवाहोंसे डूबी हुई भूमि ऊँची नीची कुछ नहीं दीखी ॥१०॥ उस समय,गौ आदि पशु गोप और गोपियें, अति वर्षासे;अति वायुसे,और अतिशीतसे थर २ काँपते हुए गोविन्दकी शरण गये ॥ ११ ॥ वर्षासे पीड़ित हुई और थर थर काँपने वालीं गौएँ तो अपने मस्तक और बछड़ोंको शरीरसे ढककर भगवान्के चरणके समीप पहुँची ॥ १२ ॥ गोप और गोपियें कहने लगीं कि–हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे प्रभो ! हे भक्तवत्सल ! जिनके नाथ तुम ही हो ऐसी गौओंके कुलोंकी और हमारी, क्रुद्ध हुए देवसे तुम्हें ही रक्षा करनी उचित है।१३।।तब प्रार्थना करने से पहिले ही ओलोंसहित वर्षाके पड़नेसे ताड़ित होनेके कारण गोकुलको अचेतनसा (बेहोशसा) हुआ जान कर भगवान् श्रीहरिने, 'यह क्रुद्ध हुए इंद्रका कार्य है' ऐसा जाना ॥ १४ ॥ यह समझा कि–वर्षाकाल न होते हुए अति भयङ्कर, बड़ी पवनसे युक्त और जिसमें पत्थर ही अधिक हैं ऐसी वर्षा, हमने भाग नहीं दिया इस कारण' गोकुलके नाशके निमित्त इन्द्र कर रहा है ॥ १५ ॥ अच्छा, अब इसका उपाय मैं अपनी शक्तिसे उत्तम प्रकार करता हूँ और मूर्खपनेसे लोकोंका स्वामी मैं ही हूँ ऐसा अभिमान रखने वाले इन्द्रादि लोकपालोंका श्रीमदरूप अभिमान दूर करता हूँ ॥ १६ ॥ सतोगुणी वा भक्तिमान् जो देवताओंको हम ही ईश्वर हैं ऐसा

मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम्। गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः॥१८॥इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम्। दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥ अथाह भगवान्गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः। यथोपजोषं विशत गिरिगर्त्तं सगोधनाः. ॥ २० ॥ न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने। वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः। यथाऽवकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥२२॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः। वीक्ष्यमाणो दधाविद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः। निस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम्। निशाम्योपरतम् गोपान् गोवर्द्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः। उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः २६

अभिमान होना योग्य नहीं है परन्तु इस समय वह दुष्ट होगए हैं इस कारण मुझ से उनका मान भङ्ग होने पर यह उनके ऊपर अनुग्रह ही होगा ॥ १७ ॥ इसकारण अपनी शक्तिसे, जिसका रक्षक मैं ही हूँ और जिसको मैंने अपना कहा है उस अपनी शरणमें आये हुए गोकुलकी रक्षा करता हूँ, अब मेरा यह ही संकल्प है ॥१८॥ ऐसा कहकर उन श्रीकृष्णजीने, स्वाभाविक लीलामें एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उठा कर जैसे छोटासा बालक छत्रकको धारण कर लेता है तैसे दाहिने हाथ पर धारण कर लिया ॥ १९ ॥ फिर वह भगवान् गोपोंसे कहने लगे कि—हे मातः ! हे पितः ! हे गोकुलवासियो ! तुम सब अपने२ गोधन सहित सुखके साथ कुछ न घबडा कर इस पर्वतकी खकोड़लमें घुस जाओ ॥२०॥ इस खकोड़लमें रहने वाले तुम मेरे हाथ परसे पर्वतके नीचे गिरनेकी मनमें कुछ शंका न करो, अब तुम पवन और वर्षासे भी मनमें भय मत मानो,क्योंकि-उससे तुम्हारी रक्षा मैंने करली है ॥ २१ ॥ ऐसा कहने पर मनमें विश्वासको प्राप्त हुए वह गोप, भगवान्के कहनेके अनुसार अपना २ सामान गाड़ियोंके ऊपर रख कर गोधनसहित और सेवक पुरोहित आदि सहित जैसे भिचपिच न होय तिस प्रकार पर्वतकी उस खकोड़लमें घुस गये ॥ २२ ॥ तदनन्तर कृष्णदर्शनके आनन्दसे, क्षुधा तृषाके दुःख और सुख की इच्छाको त्याग कर उन गोकुलवासी पुरुषोंके देखतेहुए वह श्रीकृष्णजी,पर्वतको धारण करे रहे और वह सात दिन पर्यंत उस स्थानसे हिले भी नहीं२३कृष्ण की ऐसी सामर्थ्य देख कर अतिविस्मित, गर्वरहित और जिसके मनका विचार भङ्ग हुआ है ऐसे इन्द्रने,अपने मेघोंको निषेध करा ॥ २४ ॥ तब आकाश मेघरहित सूर्य के उदयसे सहित हुआ और भयंकर पवन तथा वर्षा शान्त हुई, ऐसा देख कर गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णजीने सब गोपोंसे कहा कि-॥ २५ ॥ अरे गोपो ! अब पवन वर्षा शान्त होगई, नदियोंका जल भी बहुत थोडा होगया, इससे अब तुम अपने२ स्त्रियें, गोधन और बालकों सहित इस खकोड़लमेंसे बाहर निकलो, फिर भय प्राप्त होगा ऐसा मनमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह न करो ॥ २६ ॥ तदनन्तर वह सब गोप,

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् । शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः । पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरंभणादिभिः । गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥२९॥ यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः । कृष्णमालिंग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ३० दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः । तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥३१॥ शंखदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः । जगुर्गंधर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥ ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः । तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायंत्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच । एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते । अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ।

अपना २ समान गाड़ियों पर रख कर अपने २ गोधनको लेकर स्त्री, बालक और वृद्धों सहित धीरे २ बाहर निकले ॥ २७ ॥ तदनन्तर भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजीने भी सकल लोकोंके देखते हुए सहजमें ही उस पर्वतको उसी स्थानमें पहिलेकी समान रख दिया ॥२८॥ फिर उन रक्षा करनेवाले श्रीकृष्णजीको, प्रेमके वेगमें भरे हुए गोकुलवासी सकल लोक, यथोचित आलिङ्गन आदि करके मिले तथा गोपियें भी स्नेहयुक्त आनन्दसे दही, अक्षत और जलसे पूजन करके उत्तम आशीर्वाद देने लगीं॥२९॥यशोदा, रोहिणी, नंद और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजी यह सब,स्नेह से व्याकुल चित्त होते हुए श्रीकृष्णजीको हृदयसे लगा कर आशीर्वाद देने लगे ३० उस समय, श्रीकृष्णजीके, इन्द्रका निग्रह करके गोकुलकी रक्षा करने पर भी स्वर्ग लोकमें रहने वाले देवगण साध्य; सिद्ध, गन्धर्व और चारण खिन्न नहीं हुए किंतु मनमें सन्तुष्ट हुए और वाणीसे स्तुति करके शरीरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ३१ हे राजन्! उस समय स्वर्गमें देवताओंके बजाये हुए शंख और दुंदुभि बजने लगे, नारद तुम्बुरु आदि गन्धर्वोंके अधिपति गाने लगे ॥ ३२ ॥ हे राजन्! तदनन्तर प्रेमपूर्ण गोपोंसे घिरे हुए वह श्रीकृष्णजी, बलरामके साथ तहाँसे गोकुलमेंको चले गये, उस समय प्रेमभावसे श्रीकृष्णजीको मनमें प्रिय माननेवाली गोपियें भी, उन श्रीकृष्णजीके उस गोवर्द्धनको उठानेकी समान और भी चरित्रोंको गाती हुई आनंद के साथ गोकुलमेंको चली गईं ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ छ ॥ * ॥ छ

अब आगे छब्बीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णके अद्भुत कर्म देखकर विस्मित हुए गोपोंसे नन्दजीने गर्ग ऋषिका कथन कहकर श्रीकृष्णका ऐश्वर्य वर्णन करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इस गोवर्द्धनको उठानेकी समान और भी, श्रीकृष्णके अमानुष कर्म देखकर, उन श्रीकृष्णका प्रभाव न जाननेके कारण आश्चर्यमें हुए गोप, नन्दजीके पास जाकर कहने लगे कि-१

कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया। कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥३॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः। पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥ हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक्। अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ५ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा। दैत्येन यस्तृणावर्त्तमहन्कण्ठग्रहातुरम्. ॥ ६ ॥ क्वचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले। गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत ॥ ७ ॥ वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः। हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ८ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया। हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः। चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् १० प्रलंबं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना। अमोचयद्व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ११ आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात्। प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषो-

---

हे नन्दजी! इस कृष्ण बालकके यह सब ही कार्य आश्चर्यकारी हैं तिससे यह हम ग्रामीण गोपोंमें, अपनेको अनुचित जन्म पानेको कैसे योग्य होसकते हैं? ॥२॥ जो सात वर्षकी अवस्थाका बालक (कोई भी बड़ा कर्म करनेको असमर्थ) होकर जैसे गजराज सूँडसे कमल उखाड कर धारण करके खड़ा होजाता है तैसे एक हाथसे लीला करके गोवर्धन पर्वतको उखाड़ कर इसने कैसे धारण करा ॥ ३ ॥ नेत्रोंको मूँदेहुए (बहुत ही छोटे) इसने महाबलवाली पूतनाका स्तन, प्राणों सहित, जैसे काल शरीरके आयुको खच लेता है तिसीप्रकार कैसे पीलिया? ॥४॥ गाड़ेके नीचे सोकर ऊपरको चरण करनेवाले और तीन मासकी अवस्थावाले रोते हुए इस कृष्ण के चरणके अँगूठेसे ढकेला हुआ गाड़ा कैसे उलट पडा? ॥ ५ ॥ एक वर्षके, आँगन में बैठे हुए (चलनेमें भी असमर्थ) और तृणावर्त्त दैत्यके द्वारा आकाशमें गये हुए इन कृष्णने, गला दबानेसे घबडाए हुए उस दैत्यको कैसे मारा? ॥ ६ ॥ एक समय माखनकी चोरी करने पर क्रोधमें हुई यशोदा माताने इसे ऊखलमें बाँध दिया था तब हाथ और घुटुओंसे रेंगते २ अर्जुनके दो वृक्षोंके मध्यमें पहुँचे हुए इसने वह अर्जुनके वृक्ष न जाने कैसे उखाड़ डाले? ॥ ७ ॥ एक समय बलराम सहित और बालकोंसे घिरे हुए इसने वनमें बछड़ोंको चराते हुए, अपनेको चोंचसे मारने के निमित्त, बगुलेके वेषसे आये हुए शत्रु (दैत्य) की नीचे और ऊपरकी दोनों चञ्चुपुटोंको हाथोंसे पकड़ कर न जाने कैसे फाड डाली ॥ ८ ॥ तथा अपनेको मारने की इच्छासे, बछड़ोंमें बछडेके रूपसे घुस आने वाले वत्सासुरको सहज में ही मारकर, उसका शरीर कैथके वृक्ष पर फैंकके उससे कैथोंको न जाने कैसे गिराया?॥ ९ ॥ तथा बलराम सहित विचरते हुए इसने धेनुकासुरको और उसके बान्धवोंको मारकर पके हुए ताडके फलोंसे युक्त तालका वन औरोंके प्रवेश करने योग्य निर्भय कैसे करा? ॥१०॥ बल करके शोभायमान बलरामजीसे प्रलम्बा-सुरको मरवाकर अपने आप गोकुलके पशुओंको और गोपोंको जङ्गलमेंकी दौंकी अग्निसे कैसे बचाया? ॥ ११ ॥ और अतिक्रूर विषैले कालिय सर्पको बलात्कारसे

दृशाम् ॥ १२ ॥ दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो व्रजौकसाम् । नन्द ते तनये ऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकोमिथः ॥१३॥ क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् । ततो नो जायते शंका व्रजनाथ तवात्मजे ॥१४॥ नन्द उवाच । श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शंका च वोऽर्भके । एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते १७ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते । गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥ एष वः श्रेय आधास्यत् गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः । अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥२०॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वंति मानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥ २१ ॥ तस्मान्नन्दात्मजोयं ते नारा-

दण्ड देकर, गर्वरहित हुए उसको, यमुनाके कुण्डेमेंसे निकाल कर इस कृष्णने, यमुना नदी निर्विष जलवाली कैसी करी ? ॥ १२ ॥ हे नन्दजी ! पशुपक्षियों सहित हम सब गोकुलवासी पुरुषोंका इस तुम्हारे पुत्रमें बड़ा हुआ प्रेम छुटना बड़ा कठिन है तैसे ही इसका भी प्रेम हमारे ऊपर स्वाभाविक ही है, सो क्या यह हम सबों का आत्मा है ? ॥ १३ ॥ हे गोकुलराज ! कहाँ सातवर्षका यालक ! और कहाँ बड़े भारी पर्वतको उठाना ! इससे ईश्वरके विना इन कर्मोंका होना कठिन है सो तुम्हारे पुत्रमें हमें, यह परमेश्वर है, ऐसी शंका होती है ॥१४॥ ऐसे गोपोंके वचनसे सुन कर नन्दजी कहने लगे कि-हे गोपो ! मेरा वाक्य सुनो और उससे, मेरे बालकके विषयमें जो तुम्हें शंका होरही है तिसको दूर करो इस पुत्रके विषयमें गर्गजीने जो मुझसे कहा है वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १५ ॥ प्रत्येक युगमें अवतार धारनेवाले इस तुम्हारे पुत्रका श्वेत, लाल और पीला यह तीन वर्ण थे और अब यह कृष्णताको प्राप्त हुआ है ॥ १६ ॥ यह श्रीमान् तुम्हारा पुत्र, पहिले एक समय वसुदेवका पुत्र हुआ था इसकारण यह जाननेवाले सत्पुरुष इसको वासुदेव कहते हैं ॥ १७ ॥ हे नन्दजी ! तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुसार बहुतसे नाम और रूप हैं, उनको मैं जानता हूँ, साधारण पुरुष नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ यह पुत्र तुम्हें परलोकमें सुखदायक होगा और इस लोकमें भी तुम्हें, सकल गोपोंको और गौओंको यह आनन्द देनेवाला होगा इससे तुम, जिनको दूसरा दूर न कर सके ऐसे सकल दुःखोंको अनायासमें तर जाओगे ॥१९॥ हे गोकुलपते ! पहिले भूमि पर कोई राजा नहा रहा था तब चोरोंसे पीडित हुए और श्रीकृष्णजीके रक्षा करे हुए साधुओंने बल आदिके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होकर अनायासमें चोरोंको जीत लिया था ॥२०॥ जो अनेकों जन्मोंमें पुण्य करनेवाले महाभाग पुरुष, इसके ऊपर प्रीति करते हैं उनका तिरस्कार शत्रु, जैसे विष्णुके रक्षा करे हुए देवताओंका तिरस्कार दैत्य नहीं कर सकते हैं तैसे नहीं कर सकते हैं ॥ २१ ॥ इस कारण हे नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र, गुणोंसे सम्पत्तिसे कीर्तिसे और पराक्रमसे नारायणकी समान है

यणसमो गुणैः । श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते । मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥ इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः । दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः । मुदिता नंदमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः । देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वर्षाश्मपर्षानिलैः । सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकंप्युत्स्मयन् । उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेंद्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ।२५। इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच । गोवर्द्धने धृते शैले आसाराद्रक्षिते व्रजे । गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥ विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः । पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोस्य कृष्णस्यामिततेजसः । नष्टत्रिलोके-

नन्दजी कहते हैं-हे गोपों ! ऐसा गर्गजीने मुझसे कहा है इस कारण इसके कर्मोंमें आश्चर्य माननेकी बात नहीं है ॥२२॥ ऐसा मुझसे कहकर गर्ग ऋषि अपने स्थान को चले गये तबसे मैं वैसा ही मानता हूँ, परन्तु अब भक्तजनोंके दुःख दूर करने वाले इसको, यह साक्षात् नारायणका अंश है ऐसा मानता हूँ ॥ २३ ॥ इसप्रकार गर्गगीतरूप नन्दजीका कथन सुनकर, अचिन्त्यपराक्रमी उन श्रीकृष्णजीका प्रभाव जिन्होंने देखा और सुना है ऐसे वह गोप नन्दजीका और श्रीकृष्णजीका सत्कार करके आनन्दयुक्त और आश्चर्यरहित हुए ॥२४॥ अब श्रीकृष्णजीकी प्रीतिकी प्रार्थना करते हैं कि-मेरा यज्ञ बन्द कर दिया इस कारणसे क्रोध करकै गोकुलका नाश करनेके निमित्त इंद्रके वर्षा करने लगने पर, वज्रपात, ओलोंकी वर्षा और तीव्रवायु से जिसमेंके गोपाल, पशु और स्त्रियें दुःखित हुए हैं और जिनके रक्षक आप ही हैं ऐसे गोकुलको देखकर दयालु हुए और हँसकर गोवर्द्धनको उठानेकी छटा धारण करनेवाले जिन श्रीकृष्णजीने, एक हाथसे गोवर्द्धनपर्वतको उठाकर, जैसे छोटा सा बालक लीलामें छत्रकको उठाकर धारण करता है तैसे धारण करके गोकुलकी रक्षा करी वह इन्द्रका गर्व हरनेवाले और गौओंके इन्द्र (स्वामी) श्रीकृष्ण, हम वक्ता श्रोताओंके ऊपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें छब्बिस अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ छ छ छ

अब आगे सत्ताईसवें अध्यायमें श्रीकृष्णका बड़ाभारी प्रभाव देखकर कामधेनु और इन्द्रने श्रीकृष्णका गौओंके और गोकुलके आधिपत्यमें जो अभिषेक करा तिसके उत्सवका वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! श्रीकृष्णजीके गोवर्द्धन पर्वतको धारण करने पर और धाराओंकी वर्षासे गोकुलकी रक्षा करने पर स्वर्गसे इंद्र और गोलोकसे कामधेनु यह दोनों ही श्रीकृष्णजीके समीप आये।१। उनमें इन्द्रने, आकर क्या किया सो कहते हैं कि-अपराध करनेके कारण लज्जित हुए इन्द्रने, एकान्तमें श्रीकृष्णजीके समीप जाकर सूर्यकी समान तेजयुक्त अपने किरीटसे उन भगवान्के चरणोंको स्पर्श करके नमस्कार करा ।२। असीम तेजयुक्त श्रीकृष्णका गोवर्द्धनका उठाना आदि और पूतनाको मारना आदि प्रभाव जिसने

शमद इन्द्र आह कृतांजलिः ॥ ३ ॥ इंद्र उवाच । विशुद्धसत्त्वं तव धाम शांतं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् । मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेग्रहणानुबन्धः ॥ ४ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिंगभावाः । तथाऽपि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यैखलनिग्रहाय ॥ ५ ॥ पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः । हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ६ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् । हित्वार्यमार्गं प्रभजंत्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् । क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भूर्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ।

देखा और सुना है इसकारण 'मैं' ही त्रिलोकीका राजा हूँ ऐसा जिसका मद नष्ट होगया है वह इंद्र हाथ जोडकर बोला ३ इंद्रने कहा कि-हे देव! तुम्हारा स्वरूप एक सर्वज्ञ और जहाँ रजोगुण और तमोगुण नामको भी नहीं है ऐसा शुद्ध सतोगुणी है तुम्हें हमारी समान दीखनेवाला यह मायाका कार्यरूपअज्ञानसे उत्पन्न हुआ संसार नाम मात्रको भी नहीं है ४ जब तुम्हें अज्ञान और अज्ञानका कार्यरूप देहका संबंध ही नहीं है तो अज्ञानके करे हुए और फिर दूसरा देह उत्पन्न होनेके कारण और अज्ञानी पुरुषोंका आश्रय करके रहनेवाले लोभ मोह आदि कहाँसे होंगे ? तथापि हे ईश्वर ! ऐश्वर्य आदि गुणोंसे पूर्ण तुम, धर्मकी रक्षाके निमित्त और दुष्टोंको दंड देनेके निमित्त उनका मान भङ्ग करनारूप दण्डको धारण करते हो ॥५॥ यदि कहो कि–मुझ गोपके पुत्रमें तुझे दण्ड देनेकी शक्ति कहाँसे आई ? कारण क्या है, और मैंने दण्ड ही कौनसा धारण करा है?तो-हे प्रभो ! तुम सर्व जगत्को उत्पन्न करने वाले उपदेश देनेवाले गुरु और आज्ञा करने वाले हो इस कारण तुम्हें दण्ड धारण करनेका कारण है, तुम दुस्तर कालरूप हो इस कारण तुम दण्ड धारण करनेको समर्थ हो, सो तुम दण्ड धारण करके, जगदीश्वरपनेका अभिमान करनेवाले जो हम तिनका हित करनेके निमित्त अपने लीलावतारोंसे क्रीड़ा करते हो, तुम्हारी लीला ही मानभंग करके हमारा हित करती है ॥ ६ ॥ जो मेरी समान अज्ञानी होकर जगदीश्वरपनेका अभिमान रखते हैं वह भयके समय भी निर्भय रहनेवाले तुम्हें देख कर, तत्काल जगदीश्वरपनेके अभिमानको त्यागकर गर्वरहित होतेहुए तुम्हारी भक्तिरूप मार्गसे सेवा करते हैं, इससे तुम्हारी लीला दुष्टोंको भी दण्डरूप ही है ७ इस प्रकार भगवान्के स्वरूपका और अभिप्रायका वर्णन करके अब क्षमा करनेकी प्रार्थना करता है कि–हे प्रभो ! ऐसे जगत्प्रसिद्ध तुम, वर्षा करके अपराध करने वाले, ऐश्वर्यके मदमें भरकर तुम्हारे प्रभावको न जानने वाले और मूढचित्त जो मैं तिसके अपराधकी क्षमा करनेको समर्थ हो हे ईश्वर ! अब फिर ऐसी दुष्टबुद्धि मुझे कभी प्राप्त न होय ॥ ८ ॥ यदि कहो कि–ऐसा बडा अपराध कैसे सहा जाय ? तो–हे अधोक्षज देव ! इस भूमिपर हुआ यह तुम्हारा अवतार आप भार होकर बहुतसे भारोंको उत्पन्न करनेवाली सेनाओंके अधिपति राजाओंका नाश

चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने । वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये । सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः॥११॥मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः । चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥ त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो हतोद्यमः । ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः१३ श्रीशुक उवाच । एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् । मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच । मया तेऽकारि मघवन्मखभङ्गोऽनुगृह्णता । मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ॥१५॥ मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति । तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥१६॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् । स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः अथाह सुरभिः कृष्णमभिवाद्य मनस्विनी । स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्व-

करनेके निमित्त और तुम्हारे चरणकी सेवा करनेवाले साधुओंके कल्याणके निमित्त है इसकारण तुम, तुम्हारा सेवक होकर भी अत्यंत अपराध करनेवाले, मेरे अपराधको क्षमा करो ॥ ९ ॥ सर्वान्तर्यामी परिमाणरहित, वासुदेव और यादवोंके अधिपति तुम भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार हो ॥ १० ॥ यदि कहो कि मैं क्या यादव हूँ ? सो नहीं, किन्तु अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार देहको धारण करनेवाले, शुद्ध ज्ञान ही जिनका स्वरूप है ऐसे सर्वरूप सबके कारण, सकल प्राणियोंके आत्मा तुमको नमस्कार हो ॥११॥ अब इन्द्र अपना अपराध कहता है कि-हे भगवन् ! मेरे यज्ञको गोपोंने त्याग दिया तब अति क्रोधमें भरे हुए और अभिमानी मैंने, गोकुलका नाश करनेके निमित्त यह वृष्टिरूप न करने योग्य कार्य करा है१२ तथापि हे ईश्वर ! तुमने मेरे उद्योगको व्यर्थ करके और मेरे गर्वको नष्ट करके मेरे ऊपर अनुग्रह करा है, इस कारण अब मैं ईश्वर, गुरु और आत्मारूप आपकी शरण में आया हूँ ॥ १३ ॥ ऐसे इन्द्रके स्तुति करने पर भगवान् श्रीकृष्णजी, हँसते हुए मेघकी समान गम्भीर वाणी करके उससे कहने लगे ॥१४॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे इन्द्र ! तेरे ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छा करने वाले मैंने, देवताओंके राज्यसे निरन्तर अत्यन्त मत्त हुए तेरे यज्ञका भङ्ग करा है ॥ १५ ॥ मैं जिसके ऊपर अनुग्रह करनेकी इच्छा करता हूँ उसको सम्पत्तिसे भ्रष्ट कर देता हूँ, क्योंकि-स्वामीपनेके और सम्पदाके मदसे अन्ध (विवेकहीन) हुआ पुरुष दण्ड धारण करने वाले कालयमादिरूप मुझको देखता भी नहीं है ।१६। हे इन्द्र ! तुम स्वर्गको जाओ मेरी आज्ञाका पालन करो, इससे ही तुम्हारा कल्याण होगा, गर्वरहित और सावधान हुए वरुण आदि तुम सब अपने २ अधिकार पर रहो ॥ १७ ॥ तदनन्तर सन्तुष्ट चित्त हुई कामधेनु, अपनी सन्तानरूप गौओं सहित, गोपरूप उन श्रीकृष्णजीको वन्दना करके और हे कृष्ण ! तुमने हमारी भली प्रकार रक्षा करी है ऐसी प्रशंसा करके कहने लगी ।१८। कामधेनुने कहा कि-हे कृष्ण ! कृष्ण हे अचिन्त्यशक्तियुक्त ! हे विश्वको उत्पन्न करने वाले ! हे जगत्की मूर्तिरूप ! हे अच्युत !

रम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच । कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव । भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते । भवाय भव गोविप्र देवानां ये च साधवः ॥ २० ॥ इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् । अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥२१॥ श्रीशुक उवाच । एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः । जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः॥२२ इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः । अभ्यषिंचत दाशार्हं गोविंद इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुंबुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः । जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुरांगनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥२४॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः । लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥२५॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः । अकृष्टपच्यौषधयो गिरयो बिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ।

हे सकल लोकोंके नाथ ! इन्द्रके मारने पर भी आपने हमारी रक्षा करी है ॥१९॥ हे जगत्पते ! तुम हमारे सर्वोत्तम देवता हो, तिससे गौ, ब्राह्मण, देवता तथा और जो साधु हैं उन सबका कल्याण होनेके निमित्त तुम ही हमारे इन्द्र हो ॥ २० ॥ यदि कहो कि-तुम्हारा इन्द्र दूसरा है तो-तिस इन्द्रके इन्द्रपनेसे अब भरपायी, ब्रह्माजीके भेजे हुए हम, तुम्हें ही अपने इन्द्रपनेके अधिकारमें अभिषेक करते हैं, यदि कहो कि-देवता इन्द्र होता है मैं मनुष्य कैसे होऊँगा ? तो हे सर्वेश्वर ! तुमने भूमिका भार दूर करनेके निमित्त अवतार धारण करा है, तुम मनुष्य नहीं हो॥२१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार कामधेनुने श्रीकृष्णजीकी प्रार्थना करके अपने दूधसे उनका अभिषेक करा तैसे ही अदिति आदि देवमाताओंके भेजे हुए इन्द्रने भी, देवता और ऋषियोंके साथ, ऐरावत हाथीकी सूँडसे निकाले हुए आकाशगङ्गाके जलोंसे श्रीकृष्णजीका गौओंके अधिपति पनेमें अभिषेक करके उनका गोविन्द नाम रक्खा ॥२२-२३॥ उस समय तहाँ आयेहुए तुम्बुरु, नारद, गंधर्व विद्याधर, सिद्ध और चारण आदि देवता, तिन श्रीकृष्णजीका लोकोंके पापोंको नाश करने वाला यश गाने लगे हर्षसे युक्त हुईं रम्भा आदि अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ देवताओंमें जो मुख्य देवता थे वह श्रीकृष्णजीकी स्तुति करने लगे तथा नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षाओंसे उनको छानेलगे, त्रिलोकीमें सकल लोक परम आनन्दको प्राप्त हुए उस समय गौओंने अपने दूधसे पृथ्वीको भिजो डाला ॥ २५ ॥ नदियें सकल रसोंको बहाने लगीं, वृक्ष मद टपकानेवाले हुए ? धान आदि सकल औषधि, भूमिके जोते बिना ही पकने लगीं, तैसे ही पर्वत, अपने २ में गुप्त हुए रत्नोंको बाहर प्रकटरूपसे धारण करने लगे ॥ २६ ॥ हे तात कुरुनन्दन परीक्षित ! श्रीकृष्णका गौओंके इंद्रपदमें अभिषेक करने पर स्वभावसे ही क्रूर रहने वाले सर्प व्याघ्र आदि सकल प्राणी भी वैररहित हुए ॥ २७ ॥ इस प्रकार उस इन्द्रने, श्रीकृष्णजीको गौओंके और गोकुलके आधिपत्यमें अभिषेक करके तदनन्तर श्रीकृष्ण

निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥ इति गोगोकुलपतिं गोविंदमभिषिच्य सः । अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीशुक उवाच । एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् । स्नातुं नन्दस्तु कालिंद्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद् भृत्यो वरुणस्यासुरोऽतिकम् । अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥२ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यंतः कृष्ण रामेति गोपकाः । भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् । तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥३॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया । महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ वरुण उवाच । अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो । त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥५॥ नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने । न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवे-

जीके जाने निमित्त आज्ञा करने पर वह इन्द्र, देवादिकोंके साथ स्वर्गको चला गया ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें सप्तविंश अध्याय समाप्त।

अब आगे अट्ठाईसवें अध्यायमें श्रीकृष्ण, वरुणके घरमेंसे नन्दजीको छुड़ाकर लाये और गोपोंको वैकुण्ठलोक दिखाया यह कथा वर्णन करी है ॥*॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! एक समय एकादशीके दिन निराहार व्रत करने वाले नन्दजी जनार्दन भगवान्का पूजन करके दूसरे दिन कलामात्र द्वादशी शेष रहनेके कारण उतने ही समयमें पारण करनेके निमित्त एकादशीकी ही रात्रिमें राक्षसी वेलाको न जानकर अरुणोदय†से पहिले ही स्नान करनेके निमित्त यमुनाके जलमें घुसे, तब उनको वरुणका सेवक असुर पकड़कर वरुणके पास लेआया ॥ १-२ ॥ इधर नन्दजीको न देखते हुए सकल गोप, बड़ा हाहाकार करने लगे कि-हे कृष्ण! हे राम ! स्नान करनेको गये हुए नन्दजी कहीं भी नहीं दीखते हैं, यह सुनकर सर्वज्ञ और भक्तोंको अभय देनेवाले वह प्रभु श्रीकृष्णजी, नन्दजीको वरुण, दूतके द्वारा लेगया है यह जानकर उसके समीप गये ॥ ३ ॥ तब अपने पास आये हुए श्रीकृष्णजीको देखकर उनके दर्शनसे आनन्दयुक्त हुए तिस वरुणने, बड़ी सामग्रीसे श्रीकृष्णजीका पूजन करके कहा ॥४॥ वरुणने कहा कि-हे प्रभो ! आज तुम्हारा दर्शन हुआ इससे आज ही मेरे देहको धारण करनेकी सफलता हुई है और आज ही मुझे धन मिला है अर्थात् सकल रत्नोंकी खानियोंका स्वामी होकर भी आजसे पहिले मुझे ऐसा धन कभी भी नहीं मिला था, क्योंकि-तुम्हारे चरणकी सेवा करने वाले भक्तजन, जन्ममरणादिरूप संसार मार्गके अन्तको पागये हैं ॥ ५ ॥ इस कारण जिस तुम्हारे स्वरूपमें लोकसृष्टिकी नाना प्रकारकी रचना करने वाली माया सुननेमें भी नहीं आती है अर्थात् मानो है ही नहीं ऐसी रहती है ऐसे परमैश्वर्यवान्, पूर्ण और सकल जीवोंके नियन्ता आपको नमस्कार हो ॥६॥ हे देव !

† प्रतिदिन सूर्योदयसे मध्यान्हपर्यन्त करनेके सकल कर्म, अर्धकलामात्र द्वादशी होय तो मध्यरात्रिसे लेकर सूर्योदय पर्यन्त करे ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है।

देना। आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक्। गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥८॥ श्रीशुक उवाच। एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः। आदायागात्स्वपितरं बंधूनां चावहन्मुदम् ।९। नन्दस्त्वतींद्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम्। कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम्। अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम्। संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिंतयत् ॥ १२ ॥ जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः। उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥ इति संचिंत्य भगवान्महाकारुणिको हरिः। दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् १४ सत्यं ज्ञानमनन्तं यद् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्। यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये

करने योग्य कर्म और भगवद्धर्मको भी न जानने वाला यह मेरा मूर्ख सेवक, इन तुम्हारे पिताको यहाँ लेआया है, तिस सेवकके द्वारा हुए मेरे अपराधकी तुम क्षमा करनेको समर्थ हो ॥७॥ और हे कृष्ण! तुम सर्वसाक्षी होनेके कारण मेरे ऊपर भी अनुग्रह करनेको योग्य हो, हे पितृवत्सल गोविन्द! इन अपने पिता (नन्दजी) को लेजाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन्! इस प्रकार वरुणके प्रसन्न करेहुए और उन वरुण आदि लोकपालोंके भी ईश्वर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अपने पिता नन्दजीको लेकर व्रजवासी बान्धवोंको हर्षित करतेहुए गोकुलमें पहुँचगये ९ नन्दजी तो, कभी भी न देखा हुआ वह लोकपाल वरुणका ऐश्वर्य देखकर और उन वरुण आदिकोंकी श्रीकृष्णके विषयमें नम्रता देखकर विस्मयमें होगये और उन्होंने अपनी जातिके उपनन्द आदि सब गोपोंसे वह वरुणका ऐश्वर्य कहा ॥ १० ॥ हे राजन्! तदनन्तर उन कृष्णको ईश्वर मानकर, उनका अचिन्त्य ऐश्वर्य देखनेके निमित्त जिनकी बुद्धिमें उत्कण्ठा उत्पन्न हुई है ऐसे वह गोप, यह सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण, कभी भी न देखे हुए अपने ब्रह्मस्वरूपको और वैकुण्ठलोकको हमें पहुचावेंगे क्या? अथवा दिखावेंगे क्या? ऐसा संकल्प करने लगे ॥ ११ ॥ ऐसा अपने भक्तोंका अभिप्राय उन सर्वसाक्षी भगवान् श्रीकृष्णजीने, आप ही जानकर, उनके संकल्पकी सिद्धि होनेके निमित्त कृपा करके यह विचारा कि–॥ १२ ॥ इस संसारमें यह लोक, देहादिकोंमें अहंकार बुद्धि, शब्दस्पर्श आदि विषय भोगोंका अभिलाष और नाना प्रकारके कर्म करके देवता पशु पक्षी आदि उत्तम अधम योनियोंमें घूमतेहुए अपनी परमार्थगति (स्वरूप) को निःसन्देह नहीं जानते हैं१३ ऐसा विचार कर उन महादयालु भगवान् श्रीकृष्णजीने, अपना प्रकृतिसे पर ब्रह्मस्वरूप और वैकुण्ठ नामक लोक गोपोंको दिखाया ॥ १४ ॥ देहादिसे आच्छादित हुए गोपोंको, उसका दर्शन होना कठिन था इसकारण पहिले देहादिकोंसे निकला ही ब्रह्मस्वरूप दिखाया, वह ब्रह्मस्वरूप त्रिकालमें रहने वाला चैतन्यरूप, देशादि परिमाणसे रहित, स्वप्रकाश और निरन्तर सिद्ध था और जिसको एकाग्रचित्त तथा मनन करने वाले ज्ञानी सत्वादि तीनों गुणोंके दूर होनेपर देखते हैं वह कृपा

समाहिताः ॥१५॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः। ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तु तद्दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः। कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे महापुराणे पूर्वार्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

श्रीशुक उवाच। भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥ तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः। स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम्। वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं

करके दिखाया ॥ १५ ॥ तब वह सब गोप, ब्रह्मरूप सरोवरमें पहुँचने पर तहाँ ही निमग्न होगये, फिर तहाँसे श्रीकृष्णजीने बाहर निकाला तब समाधिसे उठे हुएसे होकर उन्होंने उसही ब्रह्मका वैकुण्ठनामक लोक देखा, यदि कहो कि-ब्रह्ममें निमग्न हुओंको फिर वैकुण्ठलोकको देखना अघटित है ? तो-जिन श्रीकृष्णजीके निमित्त से पहिले अक्रूरजीने भी वैकुंठलोक देखा÷था अर्थात् अचिन्त्य ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्ण को कुछ अशक्य नहीं है ॥ १६ ॥ वह नन्द आदि गोप तो वैकुंठलोकको देख कर और तहाँ मूर्त्तमान् वेदोंसे स्तुति करे हुए श्रीकृष्णजीको देख कर परम आनन्दमें भर गये और फिर श्रीकृष्णजीने तहाँसे बाहर करा तो निद्रासे जगे हुएकी समान विस्मयमें होगये ॥ १७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें अष्टाविंश अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ * ॥ छ ॥

अब आगे उन्तीसवें अध्यायमें रासलीला करनेके निमित्त श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ वार्त्तालाप और गोपियोंका श्रीकृष्णजीको उत्तर देना वर्णन करके रासक्रीड़ा में गोपियोंको गर्व हुआ तब श्रीकृष्णजीके अन्तर्धान होनेका कौतुक वर्णन करा है और इस अध्यायसे लेकर आगेके पाँच अध्यायोंमें रासक्रीड़ाके महोत्सवका वर्णन करा है तिनमें ब्रह्मादिकोंको जीतनेसे गर्वमें कामदेवका गर्व नष्ट करनेके निमित्त लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजी गोपियोंके रासमण्डलको शोभायमान करते हुए उत्कर्षको प्राप्त हुए यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन्! योगमायाका आश्रय करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीने भी शरदृतुके कारण जिनमें सुगन्धित पुष्प खिल रहे हैं और गोपकन्याओंसे कही हुई वह शरदृतुकी रात्रियें आगईं ऐसा देख कर क्रीड़ा करनेका मनमें विचार करा ॥ १ ॥ उसी समय उन श्रीकृष्णजीकी प्रीतिके निमित्त, जैसे बहुत दिनोंमें दर्शन देने वाला प्रियपति, विनोदके समय अपनी स्त्रीका मुख, लालवर्णके केशरसे लिप्त करता है तैसेही सब प्राणियोंके ताप और ग्लानिको दूर करने वाला वह प्रसिद्ध चन्द्रमा, अपनी अतिसुखकारिणी किरणरूप हाथोंसे उदयके रङ्ग करके, पूर्वदिशारूप स्त्रीका मुख लाल२ करता हुआ उदय हुआ ॥ २ ॥ तब श्रीकृष्णजीने, लक्ष्मीके मुखकी कान्तिकी समान कान्तिवाले, नवीन केशरकी समान लाल २ और कमलिनियोंको प्रफुल्लित करने

÷यह वार्त्ता शुकपरीक्षितके सम्वादसे पहिले होनेके कारण यहाँ भूतकाल कहा है।

जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनंगवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्ण-गृहीतमानसाः । आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुंडलाः ४ दुहंत्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः । पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयंत्यस्तद्धित्वा पाययंत्यः शिशून्पयः । शुश्रूषंत्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ६ लिंपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जंत्यः काश्च लोचने । व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७ ॥ ता वार्यमाणाः पतिभिःपितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः । गोविंदापहृतात्मानो न न्यवर्त्तंत मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः

वाले तिस पूर्ण चन्द्रमाको देख कर और उसकी सुखकारी किरणोंसे शोभायमान हुए वृन्दावनको देख कर स्त्रियोंके मनको हरने वाला मधुर गान करा ॥ ३ ॥ उस कामदेवकी वृद्धि करने वाले गानको सुन कर, जिनके मन कृष्णने खैंच लिये हैं और सापत्न्यभाव उत्पन्न न हो इस प्रकार जिन्होंने अपना कृष्णके समीप जानेका उद्योग परस्पर जताया नहीं है ऐसी वह गोकुलमेंकी स्त्रियें, जहाँ वह श्रीकृष्णजी थे तहाँ गानकी ध्वनिके मार्गसे चली गईं, उस समय जानेकी शीघ्रतासे उनके कानों के कुंडल हिलते थे ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजीको जताने वाले शब्दके सुननेसे श्रीकृष्णजी की ओरको चित्त लगाने वाले पुरुषोंके धर्म-अर्थ-कामके प्रतिपादन करनेवाले कर्मों की तत्काल निवृत्ति होती है, यह दिखानेके निमित्त गोपियें, आधा २ हुआ ही अपना कर्म छोड़ कर चली गईं यह वर्णन करते हैं-कितनी ही गोपियें गौओंका दूध दुहरही थीं, उन्होंने आधा दूध दुहा इतने हीमें श्रीकृष्णकी मुरलीका शब्द सुनाई दिया सो वह श्रीकृष्णजीको पानेमें उत्कण्ठित होकर वह दूधका पात्र तहाँ ही छोड़कर चली गईं कितनी ही गोपियें-दूधकी हाँडीमेंके दूधको चूल्हे पर चढ़ाकर वह औटगया या नहीं सो विना देखे तैसेही चली गईं,दूसरी कितनी ही गोपियें चूल्हेके ऊपर होती हुई लपसीको विना उतारे तैसे ही चली गईं ॥ ५ ॥ कितनी ही पति पुत्रोंको अन्न परोसरही थीं सो अधपरोसा ही छोड़कर चली गईं,कितनी ही-अपने बालकोंको स्तनोंका दूध पिला रही थीं सो तैसा ही छोड़ कर चलीगईं, कितनी ही-पतियोंकी सेवा कर रही थीं अधबीचमें ही छोड़ कर चली गईं, कितनी ही भोजन कर रही थीं वह वह भोजनको छोड कर चली गईं ॥ ६ ॥ कितनी ही-शरीरको चन्दन आदि मल रही थीं कितनी ही-शरीरको उबटना लगा रहीं थीं और दूसरी कोई नेत्रोंमें काजल आँज रहीं थीं, वह अपना काम आधा २ ही छोड़ कर उन श्रीकृष्णजीके समीपको चली गईं, कितनी ही वस्त्र आभूषण धारण कर रही थीं वह उलटे ही वस्त्र पहिन कर गलेके भूषण चरणोंमें पहिन कर चरणोंके भूषण गलेमें पहिन कर, नाककी नथ कानोंमें पहिन कर कानोंकी वाली नाकमें पहिन कर श्रीकृष्णजीके समीपको चली गईं ॥७॥ अब जिनके मन श्रीकृष्ण जीने खैंचे हैं उनको विघ्न नहीं होते हैं ऐसा वर्णन करते हैं—गोविन्दके चित्तको खचनेके कारण मोहित होकर श्रीकृष्णजीके समीपको जाननेवालीं वह स्त्रियें, पति माता, पिता और भाई बान्धवोंके निषेध करने पर भी पीछेको न लौटी किन्तु श्री-

काश्चिद्गृह्योऽलब्धविनिर्गमाः । कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥ ९ ॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः । ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः । जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबंधनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच । कृष्णं विदुः परं कांतं न तु ब्रह्मतया मुने । गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥ श्रीशुक उवाच । उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः । द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥ नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप । अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः १४

कृष्णजीके समीपको चली गईं ॥ ८ ॥ उस समय कितनी गोपियें तो-घरमें ही थीं उनको, उनके पति पुत्रादिकोंने, द्वारोंमें जञ्जीर ताले आदि लगाकर कृष्णके समीप आनेसे रोक लिया इसकारण उनको मार्ग नहीं मिला सो वह पहिले ही श्रीकृष्णका ध्यान करने वाली थीं परन्तु उस समय उन्होंने नेत्र मूँद कर एकाग्रतासे श्रीकृष्णजीका ध्यान करा ॥ ९ ॥ और वह अतिप्रिय श्रीकृष्णजीके दुःसह विरहसे होनेवाले तीव्र ताप करके, अनेक जन्मोंसे इकट्ठे हुए पापकर्मोंका फल (दुःख) एक साथ भोग कर शुद्धचित्त हुईं, तैसे ही ध्यानसे प्राप्त हुए श्रीकृष्णके आलिङ्गनके परम सुख करके अनेक जन्मोंके इकट्ठे हुए पुण्य कर्मोंका फल (सुख भी) भोगकर क्षीणपुण्य हुईं इस प्रकार तत्काल जिनके पुण्यपापरूप बन्धन सर्वथा दूर होगये हैं ऐसी वह गोपियें, जारबुद्धिसे भी इन परमात्मा श्रीकृष्णजीको प्राप्त होकर अपने गुणमय शरीरको त्याग सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुईं ॥ १० ॥ ११ ॥ यह सुन कर राजाने कहा कि-शुकदेवजी ! उन गोपियोंने, श्रीकृष्णजीको जारबुद्धिसे यह केवल सुन्दर पुरुष है ऐसा ही जाना, ब्रह्मस्वरूपसे नाममात्रको भी नहीं जाना फिर श्रीकृष्णके विषैं सुन्दरता आदि गुणोंकी बुद्धि रखनेवाली उन गोपियोंको,तिन श्रीकृष्णजीके ध्यानसे देह छूट कर सायुज्यमुक्ति कैसी प्राप्त हुई अर्थात् पति पुत्रादिक भी वास्तवमें ब्रह्मरूप हैं और उनकी सेवासे जैसे मोक्ष नहीं होती है तैसे ही ब्रह्मबुद्धि न होनेके कारण श्रीकृष्णजीके ध्यानसे भी उनकी मोक्ष न होनी चाहिये थी,सो कैसे हुई?१२ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इसका उत्तर तुमसे मैंने पहिले ही (सातवें स्कन्धमें) कहा है, उन इन्द्रियोंके नियन्ता श्रीकृष्णजीसे द्वेष करनेवाला शिशुपाल भी जब उत्तम प्रकारकी सिद्धि (सायुज्यमुक्ति) को प्राप्त हुआ फिर श्रीकृष्णका प्रिय करने वालीं और उनकी अत्यन्त प्रिय वह गोपियें, इनके ध्यानसे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हुईं इसमें क्या आश्चर्य है ? अर्थात् जीवोंमें ब्रह्मभाव अज्ञान आदिसे वेष्टित होता है इसकारण उनमें ज्ञानकी आवश्यकता होती है श्रीकृष्णजीका स्वरूप चैतन्य घन होनेके कारण तहाँ ब्रह्मभावमें ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥ यदि कहो कि-वह देहधारी कृष्ण अज्ञान आदिसे युक्त न हों यह कैसे होसकता है? तो सुनो—हे राजन् ! गुणोंके नियन्ता, विकारशून्य, निर्गुण और बुद्धिके अगोचर भगवान्का यह प्रकट होना, केवल मनुष्योंके मोक्षरूप कल्याणके निमित्त ही है इसकारण उनको देहधारी जीवोंकी समान नहीं कहाजासकता ॥ १४ ॥ इसकारण

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च । नित्यं हरौ विदधतो यांति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे । योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वांतिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः । अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचःपेशैर्विमोहयन् ॥१७॥ श्रीभगवानुवाच । स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः । व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥ रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता । प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः । विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् । यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः । क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः । आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते

उन श्रीहरिके विषैं गोपियोंकी समान काम, शिशुपालकी समान क्रोध, कंसकी समान भय, यशोदाकी समान स्नेह, ज्ञानियोंकी समान एकता, पाण्डवोंकी समान मित्रता और नारदादिकोंकी समान नित्य भक्ति करनेवाले जो पुरुष हैं वह सायुज्य मुक्तिको पाते हैं ॥ १५ ॥ अब भगवान्को यह बड़ा भार नहीं है ऐसा वर्णन करते हैं–हे राजन् ! उन योगेश्वरोंके ईश्वर और कर्मकी अधीनतामें होने वाले जन्मसे रहित भगवान् श्रीकृष्णजीके विषै मन लगानेवाली गोपियें मुक्त हुई, इसमें तुम आश्चर्य न मानो, क्योंकि–जिन श्रीकृष्णजीसे यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् भी, उनकी कृपा होते ही मुक्त होजायगा ॥ १६ ॥ मुरलीकी ध्वनिसे मोहित होकर अपने समीप आई हुई उन गोपियोंको देखकर, कहनेवालोंमें श्रेष्ठ वह भगवान् श्रीकृष्णजी अपनी वाणीकी छटाओंसे उनको मोहित करतेहुए कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे महाभाग्यवतियों ! तुम मेरे समीप आईं यह बड़ा सुन्दर हुआ, मैं तुम्हारा प्रिय कौनसा कार्य करूँ ? इतने ही में, सब गोपियें घबड़ाई हुईसी आई हैं ऐसा देखकर भयभीत हुएसे कहने लगे कि–हे गोपियो!मेरे प्रिय गोकुलका कल्याण तो है ? तुम्हारे आनेका क्या कारण है सो कहो ? ॥ १८ ॥ लज्जासे मन्द २ हँसती हुई गोपियोंको देखकर कहने लगे कि–अरी सुकुमारियों ! इस वनमें स्त्रियोंको रहना उचित नहीं है,इससे तुम लौटकर गोकुलको चलीजाओ, क्योंकि–यह रात्रि भयंकर है और इसमें व्याघ्र आदि भयंकर प्राणी फिरते हैं ॥१९॥ और तुम्हें न देखते हुए तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भ्राता और पति तुम्हें ढूँढते होंगे इससे उन बांधवों को अपने न मिलनेका कष्ट न दो ॥ २० ॥ तब वह थोडेसे प्रेमयुक्त कोपसे दूसरी ओरको देखने लगीं तब उनसे कहने लगे कि–तुमने, पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित हुए और यमुनाके जलको स्पर्श करके आनेवाले मन्द २ पवनसे कंपायमान होनेवाले वृक्षोंके पत्तोंसे शोभायमान दीखनेवाले और प्रफुल्लित हुए वृन्दावनको भी देखलिया ॥२१॥ इससे हे सतियो ! तुम अब गोकुलमेंको जाओ,विलंब न करो, पतियोंकी सेवा करो, तुम्हारे बालक भूँखे होकर रो रहे होंगे उनको दूध पिलाओ और गौओंके बछड़े रम्भाते होंगे उनको दूध पिलाकर गौओंको दुहो ।२२।

मयि जन्तवः ॥ २३ ॥ भर्त्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया । तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा । पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् । जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियः ॥ २६ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्त्तनात् । न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् २७ श्रीशुक उवाच । इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविंदभाषितम् । विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखंत्यः । अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुंकुमानि तस्थुर्मृजंत्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥ २९ ॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः । नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरंभगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ३०

फिर आवेशसे क्षुभित दृष्टि वाली गोपियोंसे कहनेलगे—अथवा मेरे स्नेहसे तुम, मेरे वशमें चित्त होजानेके कारण आई होओ तो यह तुम्हें योग्य ही है, क्योंकि—मुझमें सब ही प्राणी प्रीति करते हैं २३ ॥ हे कल्याणियो ! निष्कपटभावसे पतिकी सेवा करना और पतिके जो बन्धु आदि होयँ उनसे प्रेमभावके साथ यथायोग्य बर्त्ताव करना और बालकोंका पालन करना यह स्त्रियोंका उत्तम धर्म है ॥ २४ ॥ जुआ आदि खेलने वाले होनेके कारण दुष्ट स्वभाव वाले, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी और दरिद्री भी पतिको, पुण्यलोककी इच्छा करने वाली स्त्रियें न त्यागें, ब्रह्महत्यादि महापातकोंसे दूषित होय तब भी उसकी दूरसे ही सेवा करें, सम्पर्क न करें ॥ २५ ॥ कुलीन स्त्रीको, परपुरुषसे मिलने वाला जो सुख वह परलोकमें स्वर्ग का और इस लोकमें यशका नाश करने वाला, तुच्छ, दुःखदायक, भयकारी और लोकमें तथा स्त्रियोंमें भी निन्दित है ॥ २६ ॥ हे स्त्रियो ! मेरे विषैं जैसा सुननेसे, देखनेसे, ध्यानसे और मेरे गुणोंको वर्णन करनेसे स्नेह अधिक होता है तैसा अङ्ग के सङ्गसे नहीं होता है इस कारण तुम अपने २ घरको चली जाओ ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! ऐसा घर जानेके विषयका प्रिय न लगने वाला वह गोविन्दका वचन सुन कर, भगवान्‌के साथ क्रीड़ा करनेका सङ्कल्प भग्न होनेके कारण खिन्न होती हुई वह गोपियें, परम दुस्तर चिन्ताको प्राप्त हुईं ॥ २८ ॥ जिन को बड़ा दुःख है ऐसी वह गोपियें, शोकसे उत्पन्न हुए गरम श्वासोंके वायुसे, पकी हुई तन्दूरीसे जिनके अधर होठ सूख गये हैं ऐसे अपने मुख नीचेको करके पैरके अँगूठेसे 'मानो पृथ्वीसे अपनेको भीतर समा लेनेकी प्रार्थना करती हुईं" भूमिको कुरेदने लगीं और नेत्रोंमेंके काजलको बहाने वाले दुःखके आँसुओंसे स्तनों परके केशरको धोती हुई केवल चित्रलिखितसी खडी रहीं ॥ २९ ॥ तदनन्तर रोतेमें जल से भरे हुए नेत्रोंको पूछकर, कुछ एक कोपके आवेशसे जिनकी वाणी गद्गद होरही है और उन श्रीकृष्णको पानेके निमित्त ही जिन्होंने सकल विषयोंको छोड़दिया है तथा उनमें ही प्रेम करनेवाली वह गोपियें अतिप्रिय होकर अप्रियकी समान भाषण करने वाले उन श्रीकृष्णजीसे कहने लगीं ॥ ३० ॥ गोपियोंने कहा कि–हे स्वच्छन्द

गोप्य ऊचुः। मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्। भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ३१ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्। अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बंधुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वंति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्। तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिंद्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये। पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥ सिंचांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्। नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्य-

प्रभो कृष्ण! ऐसा निषेधरूप मर्मघाती स्पष्ट भाषण करना आपको योग्य नहीं है, किन्तु जैसे आदिपुरुष भगवान्, मोक्षकी इच्छा करने वालोंको अङ्गीकार करते हैं और उनकी इच्छाको पूर्ण करते हैं तैसेही सकल विषयोंको त्यागकर तुम्हारे चरणतलका सेवन करने वालीं हमें तुम अङ्गीकार करो, त्यागो मत ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण! अब पति पुत्र और उनके वन्धुओंकी शुश्रूषा आदि करना यह स्त्रियोंका स्वधर्म है ऐसा जो धर्मको जाननेवाले तुमने हमसे कहा सो सब, तुम सबके भोक्ता ईश्वर हो इस कारण उपदेशोंका विषय तुममें ही रहे अर्थात् सकल वन्धुओंमें जो कुछ करना है वह सब तुममें ही हो क्योंकि-तुम सब प्राणियोंके आत्मा और हितकारी होनेके कारण उनको परम प्रिय हो ॥ ३२ ॥ यह ही सदाचारके द्वारा कह कर दृढ़ करती हुईं प्रार्थना करती हैं कि-हे कमलनयन परमेश्वर! शास्त्रमें चतुर पुरुष, अपने नित्यप्रिय, अन्तर्यामी आत्मा रूप तुम्हारे विषैं ही प्रीति करते हैं क्योंकि-इस लोकमें संसारदुःख देने वाले पति पुत्रादिकोंसे क्या करना है? इस कारण तुम ही हमारे ऊपर प्रसन्न होओ, बहुत कालसे तुम्हारेमें लगाई हुई तुमसे मग्न होनेकी आशा को न तोड़ो ॥ ३३ ॥ और यह जो तुमने कहा कि-अपने घरको लौट कर जाओ, सो हमसे यह होना भी कठिन है, क्योंकि—जो हमारा चित्त, इतने समय पर्यन्त सुखसे घरके कार्यमें घुस रहा था उसको अब तुमने हर लिया है? जो हमारे हाथ घरके कामोंमें लगे हुए थे उनको तुमने चेष्टारहित करदिया है, अब यह हमारे पाँव भी तुम्हारे चरणतलके समीपसे दूसरे स्थानमें एक पग भर जानेको समर्थ नहीं हैं फिर हम गोकुलको कैसे जायँ? और तहाँ जाकर हम करेंगी भी क्या? ॥ ३४ ॥ इससे हे कृष्ण! तुम हमें अपने अधरामृतके प्रवाहसे और अपने हास्यसहित कटाक्ष से और अपने मधुर वेणुगीतसे उत्पन्न हुए कामाग्निको सींचो; अब यदि ऐसा नहीं करोगे तो-इस कामाग्निसे और विरहसे होने वाले दूसरे विरहाग्निसे हम अपने शरीरोंको भस्म करके तुम्हारे ध्यानसे योगियोंकी समान तुम्हारे चरणकी समीपता को पावेंगी अर्थात् प्राण छोड़ देंगी तब भी तुम्हें नहीं छोड़ेंगी ॥ ३५ ॥ यदि, कहो कि—अपने पतियोंके समीप जाओ वही तुम्हारी कामाग्निको सींचगे तो—सुनो हे

जनप्रियस्य । अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमंग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदांबुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् । यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ।३७। तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः । त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥३८॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् । दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः॥३९॥कास्त्र्यंग ते कलपदायतमूर्च्छितेन संमोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् । त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो

कमलनयन कृष्ण ! जिससमय गोकुलवासी लोग जिन्हें प्रिय हैं ऐसे तुम्हारे,लक्ष्मी को भी 'सब समय नहीं' किसी समय आनन्द देने वाले चरणको, हमने यमुनाके तट पर स्पर्श करा था और तहाँ तुमने हमें आनन्दित करा था उस दिनसे दूसरे पतिके सन्मुख खड़ी होनेकी भी हम इच्छा नहीं करती हैं अर्थात्-वह तुच्छ पति हमें प्रिय नहीं लगते हैं ॥ ३६ ॥ जो लक्ष्मी, कृपा करके हमारी ओरको देखे इस निमित्त ब्रह्मादिक देवताओंका तप आदि साधनोंके द्वारा उद्योग चल रहा है वह लक्ष्मी, उन ब्रह्मादिकोंका अनादर करके, तुम्हारे वक्षःस्थलमें सापत्न्यभावरहित स्थानको पाकर भी, अपनी सपत्नी (सौत) तुलसीके साथ भी, बहुतसे सेवकोंसे सेवन करे हुए तुम्हारे चरणकमलके रजकी ही जैसे इच्छा करती है तैसे हम भी, निःसन्देह उस चरणरजकी ही शरण आई हैं ॥ ३७ ॥ हे दुःखनाशक ! सुंदरताके समुद्र ! तुम्हारी सेवा करनेकी आशा रखनेवाली हम, पतिपुत्रादिकों सहित अपने घरोंको त्याग कर योगियोंकी ही समान तुम्हारे चरणके समीपमें प्राप्त हुई हैं तिससे तुम्हारी सुन्दर और मन्दहास्य शोभायमान छटाको देखनेसे उत्पन्न हुआ जो तीव्र काम तिससे जिनके चित्त तपरहे हैं ऐसीहमारे ऊपर तुम प्रसन्न होओ और अपना दासभाव दो ॥ ३८ ॥ यदि कहो कि-घरका स्वामीपना त्याग कर दासभावको क्यों माँगती हो ? तो सुनो-जिसमें कुण्डलकी कान्तिसे झलकने वाले कपोल हैं,अधरोष्ठ में अमृत है और हास्यसहित अवलोकन है ऐसे तुम्हारे घुँघराले केशोंसे लिपटेहुए मुखको देख कर और जिन्होंने भक्तोंको संसारसे अभय दिया है ऐसे तुम्हारे दोनों भुजदंडोंको देखकर तैसेही लक्ष्मीके अद्वितीय प्रीतिकारक तुम्हारे वक्षःस्थलको देख हम तुम्हारी दासी ही होती हैं ॥३९॥ यदि कहो कि-जारसे सम्बन्ध रखना स्त्रियों को परम निन्दित है तो सुनो-हे कृष्ण ! मधुरपदोंसे युक्त और स्वर आलाप आदि भेदोंके साथ जोरसे उच्चारण करा हुआ तुम्हारा वेणुगीत सुन कर तथा त्रिलोकी में परम सुंदरतासे युक्त तुम्हारा स्वरूप देखकर परममोहित हुई त्रिलोकीमेंकी कौन सी स्त्री, अपने धर्मसे चलायमान नहीं होगी ? क्योंकि-जिस वेणुगीतको सुनने से और स्वरूपको देखनेसे गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिणोंने भी अपने शरीर पर रोमाञ्च धारण करे हैं ॥ ४० ॥ हे आर्त्तबन्धो ! तुम केवल आदिपुरुष देव हो

देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता। तन्नो निधेहि करपंकजमार्त्तबंधो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच। इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः। उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणांक इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः। मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥४४॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्। रेमे तत्तरलानंदकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरंभकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः। क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयांचकार॥४६॥एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः। आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां

और तुम जैसे पहिले देवताओंकी रक्षा करनेके निमित्त वामन आदिरूपसे अवतीर्ण हुए थे तैसे ही अब गोकुलके भयको और दुःखको दूर करनेके निमित्त अवतरे हो यह निश्चय है, इस कारण तुम्हारी दासी हुई हमारे कामदेवके तापसे तप्त हुए स्तनों पर और मस्तकों पर सकल तापोंको दूर करने वाला अपना करकमल स्थापन करो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इस प्रकार उन गोपियों के परवशपनेके करे हुए भाषणको सुन कर, अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले होकर भी अनेकरूप धारण करके सबको रमण करानेमें समर्थ वह श्रीकृष्णजी पहिले उन का दुःख दूर करनेके निमित्त दयाभावके साथ हँसे और फिर उन गोपियोंसे क्रीड़ा कराई ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णजीके कृपापूर्वक देखनेसे जिनके मुख प्रफुल्लित हुए हैं ऐसी एक साथ इकट्ठी हुई उन गोपियोंसे घिरे हुए और जिनकी लीला गोपियोंका मनोरथ पूर्ण करने वाली है जिनके उदार हास्यमें तथा दाँतोंमें कुंदके पुष्पोंकी समान कान्ति झलक रही है ऐसे वह श्रीकृष्णजी, नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी समान शोभाको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ स्त्रियोंके समूहकी रक्षा करने वाले वह श्रीकृष्णजी, जब गोपियें ऊँचे स्वरसे उनका गान करने लगीं तब आप भी ऊँचे स्वरसे गान करने लगे और पाँच प्रकारके फूलोंकी गुथी हुई मालाको धारण करके उस वृन्दावनको शोभायमान करते हुए उसमें विचरने लगे ॥४४॥ तदनन्तर उन्होंने यमुनाकी रेतीके स्थानमें उन गोपियोंके साथ जाकर क्रीड़ा करी, वह स्थान उस यमुनाकी शीतलतासे आनन्ददायक और चन्द्रमाका उदय होने पर खिलने वाले कमलोंकी सुगन्धको लाने वाले वायुसे शीतल रेती वाला होरहा था ॥ ४५ ॥ दूर वालीको पकड़नेके निमित्त भुजा फैलाना, बलात्कारसे खैंचकर आलिङ्गन करना, हाथ, केश, जँघा, वस्त्रका बन्धन और स्तनोंका स्पर्श करना, हास्यकी वार्त्ता करना, नखोंके अग्रभागोंसे नोंचना, क्रीड़ाके साथ देखना और हँसना, इसप्रकार उन व्रज सुन्दरियोंके कामदेवको उद्दीपित करते हुए श्रीकृष्णजीने उनको क्रीडा कराई ॥ ४६ ॥ इस प्रकार विमुक्तचित्त भगवान् श्रीकृष्णजीसे मनोरथको प्राप्त हुईं उन गोपियोंने, भूतलपरकी सकल स्त्रियोंमें हम ही परम श्रेष्ठ हैं ऐसा मानकर गर्व करा ॥ ४७ ॥ उनका वह सुन्दरताका मद (होशमें न रहना) और गर्व देखकर ब्रह्माजी और

सानिन्योऽप्यधिकं शुचि ॥ ४७ ॥ तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशव । प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो बालचरित्रवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच । अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः । अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः । आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः । असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥ गायंत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् । पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥ दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः । नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः॥५

महादेवजीको भी वशमें करने वाले वह श्रीकृष्णजी, उनके गर्वका नाश करनेके निमित्त और फिर उनके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त उस रेतीके स्थानमें ही अन्तर्धान होगए ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ छ ॥ छ ॥ छ छ

अब आगे तीसवें अध्यायमें कृष्णके विरहसे दुःखित हुईं गोपियोंने, उन्मत्तकी समान अव्यवस्थितपनेसे वनमेंके प्रत्येक स्थानमें फिरकर श्रीकृष्णजीको ढूंढा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् अचानक अन्तर्धान होगए तब उनको न देखती हुईं तिन गोकुलकी स्त्रियोंने 'जैसे कामातुर हुई हथिनी गजराजको न देखती हुई पश्चात्ताप पाती है तैसे' पश्चात्ताप करा॥१॥और लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजीकी गतियोंसे प्रेमहास्य सहित विलासयुक्त कटाक्षोंसे, मनोहर वचनोंसे; क्रीडाओंसे तथा और भी नाना प्रकारके विलासोंसे चित्तके आकर्षित होनेसे तन्मय हुईं वह गोपियें उस समय श्रीकृष्णजीके तिन २ पूतनाका स्तन पीना आदि लीलाओंका अनुकरण (नकल) करके (तैसी २ लीलायें करके) क्रीड़ा करने लगीं ॥ २ ॥ उन प्रिय श्रीकृष्णकी गति, हास्य, देखना और भाषण आदिकी ओर ही उनका मन लगा हुआ था सो नहीं किन्तु देह भी एकताको प्राप्त होरहा था, और कृष्णकी समान ही जिनके क्रीड़ा विलासोंको प्रारम्भ होरहा था ऐसी उन कृष्णसे एकताको प्राप्त हुईं तिनकी ही प्रिय गोपियें, यह कृष्ण मैं ही हूँ, ऐसा परस्पर कहने लगीं ॥ ३ ॥ वह एक साथ मिलकर ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णका गान करती थीं और उन्मत्तकी समान एक वनसे दूसरे वनमें फिर तीसरेमें इस प्रकार फिरती हुईं श्रीकृष्णजीको ढूँढने लगीं और उस समय आकाशकी समान स्थावर जङ्गम प्राणीमात्रके भीतर और बाहर व्याप्त होकर रहने वाले तिन पुराण पुरुष श्रीकृष्णजीका पता वृक्षोंसे बूझने लगीं ॥ ४ ॥ तहाँ बड़े होनेके कारण इन्होंने श्रीकृष्णको देखा होयगा ऐसी आशासे वह गोपियें, पीपल आदिकोंसे कहने लगीं कि—हे पीपल हे पिलखन ! हे बड़ ! तुमने कहीं कृष्ण

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः । रामानुजो मानिनीनां गतो दर्पहरस्मितः
कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविंदचरणप्रिये । सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके । प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसासनकोविदारजंब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदंबनीपाः । येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसंतु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ९. किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवांघ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकितांगरुहैर्विभासि । अप्यंघ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरंभणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः । कांतांगसंगकुचकुंकुमरंजि-

को देखा है क्या ? वह प्रेमयुक्त हास्यविलाससहित नेत्रकटाक्षोंसे हमारा मन हर कर चोरकी समान न जाने कहाँ चला गया है ? ॥५॥ अब वड़े होकर अपने पुष्पों से अनेकोंके ऊपर उपकार करनेवाले वृक्षोंसे बूझती हैं कि–हे कुरबक ! हे अशोक! हे नाग ! हे पुन्नाग ! हे चम्पक ! इस मार्गसे जातेहुए कृष्ण तुमने देखे हैं क्या? वह मानिनी स्त्रियोंके गर्वको हरने वाले हास्यको करने वाले हैं अर्थात् उन्होंने अपने हास्यसे हमारे गर्वको चूर्ण २ कर डाला है ॥ ६ ॥ हे गोविन्दचरणप्रिये कल्याणी तुलसि ! भौंरोंके झुण्डके साथ तुझे धारण करने वाले श्रीकृष्ण तूने देखे हैं क्या ? क्योंकि–तुझे वह परमप्रिय हैं इस कारण तूने देखा होगा ? ॥ ७ ॥ उनसे उत्तर नहीं मिला तब परम गुणी और नम्र होनेके कारण इन लताओंने देखा होगा ऐसा मनमें विचार कर बूझती हैं कि–हे मालति ! हे मल्लिके ! हे जाई ! हे जुही ! तुम ने श्रीकृष्ण देखे हैं क्या ? वह फूल लेनेकी इच्छा करके हाथके स्पर्शसे तुम्हें प्रसन्न करते हुए कदाचित् गये होंगे ॥ ८ ॥ उनसे भी उत्तर न मिलने पर फल आदिसे प्राणियोंको तृप्त करनेवाले यह वृक्ष बतादेंगे इस कारण उनसे बूझता हैं–हे चूत ! हे प्रियाल ! हे पनस ! हे असन ! हे कोविदार ! हे जामुन । हे आक ! हे बिल्व ! हे बकुल ! हेआम्र ! हे कदम्ब ! हेनीप ! और दूसरोंके निमित्त उत्पन्न होकर यमुना के तटपर रहने वाले और भी हे सब वृक्षो ! तुम, कृष्णने चित्तको खैंच लिया है इससे चित्त शून्य हुई हमें कृष्णकी प्राप्तिका मार्ग बताओ ॥ ९ ॥ उनसे भी उत्तर न मिलने पर, कृष्ण कहीं नहीं हों परन्तु उनका पृथ्वीसे कभी वियोग नहीं होता है इस कारण इससे बूझें ऐसे आशयसे बूझती हैं कि–हे पृथिवी ! तैंने कौनसा तप करा है ? जो तू श्रीकृष्णजीके चरणके स्पर्शसे उत्साहयुक्त होकर और कोमल तृण आदिके रूपसे शरीर पर रोमाञ्चित होकर शोभा पारही है, यह तेरा उत्साह क्या इस समय हुए श्रीकृष्णके चरणके स्पर्शसे उत्पन्न हुआ है ? अथवा पहिले वामनरूप भगवान्ने अपने चरणसे तुझे नापा था इससे हुआ है ? अथवा उनसे भी पहिले होने वाले वराहरूप भगवान्के आलिङ्गनसे हुआ है ? तात्पर्य यह है कि तूने उनको अवश्य देखा होगा इससे हमें दिखा ॥ १० ॥ फिर हरिणियोंके डिबडिबातेहुए नेत्र देखकर उनको कृष्णका दर्शन हुआ है ऐसे अनुमानसे बूझती हैं-हे सखि हरिणकी स्त्रियो ! तुम्हारी दृष्टियोंको, अपने मनोहर मुख भुजा आदि अङ्गों

तायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः । अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेः । नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः । लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥१४॥ कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् । तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥१५॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् । रिंगयामास काप्यंघ्री कर्षती घोषनिःस्वनैः॥१६॥कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन । वत्सायतीं हंति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्ततीम् । वेणुं क्वणंतीं क्रीड-

से सुखी करने वाले श्रीकृष्णजी, प्रिया स्त्रीके साथ इस मार्गसे गये हैं क्या? क्यों कि-यहाँ स्त्रीके आलिङ्गनसे उसके स्तनोंके केशरसे लिपी हुई उन श्रीकृष्णजीकी कुन्दकी कलियोंकी मालाका सुगन्ध आरहा है ॥११॥ फिर फलोंके भारसे नमेहुए वृक्षोंसे, यह कृष्णको देखकर नम्र हुए हैं ऐसा मानकर स्त्रीसहित उनके गतिविलासको मनमें लातीहुई कहती हैं कि-हे वृक्षो! दाहिने हाथमें लीलाके निमित्त कमल धारण करने वाले और जिनके पीछे तुलसीके सुगन्धसे मदान्ध हुए भौंरोंके झुण्ड जारहे हैं ऐसे वह श्रीकृष्णजी, स्त्रीके कन्धेपर वाम बाहु रखकर यहाँ फिरते हुए, अपने प्रेमयुक्त कटाक्षोंसे तुम्हारे नमस्कारका धन्यवाद करते हैं क्या? ।१२। दूसरी गोपी कहने लगीं कि-अरी सखियो! इन लताओंसे बूझो, इन लताओंने अपने वृक्षरूप पतियोंका आलिङ्गन करा है तथापि यह निःसन्देह फूल तोड़नेको समीप आने वाले श्रीकृष्णके नखोंकी स्पर्श करी हुई हैं क्योंकि-यह शरीरों पर काँटे आदिके रूपसे रोमाञ्च धारण कररही हैं देखो इनका कैसा अहोभाग्य है? १३ इस प्रकार श्रीकृष्णके खोजनेमें अतिविह्वल और तन्मय होकर उन्मत्तोंकी समान भाषण करने वाली वह गोपियें, भगवान्‌की, पूतनाका स्तन पीना आदि लीलाओं का अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ पूतनाकी समान रूप धरने वाली एक गोपीका कृष्णकी समान आचरण करने वाली एक गोपी स्तन पीने लगी,छोटेसे बालककी समान आचरण करके रोने वाली दूसरी एक गोपीने शकटकी समान बनी हुई दूसरी एक गोपीका चरणसे प्रहार करा ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त्त दैत्यकी समान अपना रूप बनाकर कृष्णकी समान बालक बनने वाली दूसरीको हर कर लेगई, दूसरी एक गोपी पायटोंके शब्द युक्त अपने चरणोंको खचेड़ती हुई रींगने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियें कृष्ण और बलरामकी समान हुईं और कितनी ही गोपियें गोपोंके बालकोंके समान हुईं और बछड़ेकी समान बनने वाली एक गोपीको कृष्णकी समान बनने वाली गोपीने मारडाला, तथा दूसरी एक अपनेको ही कृष्ण माननेवाली गोपी, बकासुरकी समान बनीहुई गोपीको मारनेवाली हुई१७जैसे कृष्ण गौओंको बुलाते थे तैसेही दूर गईहुई गौओंको बुलाकर उन कृष्णका अनुकरण करके मुरली बजानेवाले और क्रीडा करनेवाली गोपीकी गोपबालकोंकी

न्तीमन्याः शंसति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलंत्याहापरा ननु । कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया । इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतंत्युन्निदधेऽम्बरम् ॥२०॥ आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप । दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक् २१तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् । चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥ बद्धाऽन्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले । भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् । व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः । लक्ष्यन्ते हि ध्वजांभोजवज्रांकुशयवादिभिः ॥२५॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः । वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना । अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥ अनया-

समान बनीहुई और गोपियें प्रशंसा करनेलगीं १८ कृष्णकी ओर मनकी लौ लगाने वाली एक गोपी,दूसरी गोपीके कन्धेपर अपना हाथ रखकर चलतीहुई कहनेलगी कि-हे सखाओं ! मैं कृष्ण हूँ मेरा चलना देखो ॥ १९ ॥ दूसरी एक गोपी—तुम पवन और मेघोंसे भय न मानो, उनसे तुम्हारी रक्षा करनेका उपाय मैंने करलिया है ऐसा कहकर गोवर्द्धन पर्वतको उठानेकी छटा बनाकर उसने एक हाथसे ओढने का वस्त्र फैलाकर ऊपरको उठाया ॥ २० ॥ हे राजन् ! कृष्णकी समान आचरण करनेवाली दूसरी एक गोपी कालिय सर्पकी समान बनी हुई दूसरी गोपीको चरण से दबाकर और उसके मस्तकपर चढकर कहने लगी कि—अरे दुष्टसर्प ! तू इस कुंडमेंसे निकलजा, मैं खलोंको दण्ड देनेके निमित्त उत्पन्न हुआ हूँ ॥ २१ ॥ उन गोपियोंमें कृष्णकी समान बननेवाली एक गोपी गोपोंकी समान बनी हुई दूसरी गोपियोंसे कहनेलगी कि—हे गोपो ! यह भयंकर आया हुआ वनका अग्नि देखो और शीघ्र ही अपने नेत्र मूँदो, तुमको मैं सहजमें ही निर्भय करूँगा ॥ २२ ॥ उन गोपियोंमें कृष्णकी समान बनी हुई एक सुकुमार गोपीको यशोदाकी समान वर्त्ताव करनेवाली दूसरी गोपीने फूलोंकी मालासे माखन चुरानेके कारण ऊखलसे बाँध दिया तब भयभीत हुई उसने, सुन्दर नेत्रोंसे युक्त अपना मुख हाथोंसे ढककर भय का अनुकरण करा ॥२३॥ इस प्रकार कृष्णलीलाका अनुकरण करनेवालीं और बारम्बार वृन्दावनमेंके लता और वृक्षोंसे प्रश्न करनेवालीं उन गोपियोंने एक वनमें पृथ्वीपर श्रीकृष्णजीके उभरे हुए चरणोंके चिन्ह देखे ॥ २४ ॥ और आपसमें कहने लगीं कि—निःसंदेह यह उदारचित्त श्रीकृष्णजीके चरणोंके चिह्न हैं क्योंकि—यह ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश और यव आदि चिह्नोंसे युक्त दीखरहे हैं ॥ २५ ॥ तदनन्तर उन चरणके चिह्नोंको जहाँ तहाँ खोजनेवालीं उन गोपियोंने आगे वह श्रीकृष्णजीके चरणोंके चिह्न एक स्त्रीके चरणोंके चिह्नोंसे मिले हुए देखे और दुःखित होकर कहने लगीं कि—॥ २६ ॥ हाथीके साथ जानेवालीं हथिनीकी समान श्रीकृष्ण के साथ गई हुई और जिसके कन्धेपर हाथ रक्खा है ऐसी यह कौनसी स्त्री है?२७

राधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः । यन्नो विहाय गोविंदः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दांघ्र्यब्जरेणवः । यान्ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वंत्युच्चैः पदानि यत् । यैकाऽपहृत्य गोपीनां रहो भुंक्तेऽच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यंते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणांकुरैः । खिद्यत्सुजातांघ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ अत्र प्रसूनावचयः प्रियाऽर्थे प्रेयसा कृतः । प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ३२ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् । तानि चूडयता कांतामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३३॥ रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः । कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥३४॥ इत्येवं दर्शयंत्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः । यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो

कृष्णके साथ गई हुई इस स्त्रीने ही (राधाने ही) वास्तवमें श्रीहरिका आराधन करा है क्योंकि-हम सब गोपियोंको त्यागकर, जिसकी आराधनासे सन्तुष्ट हुए गोविंद उसको एकांत स्थानमें लेगये हैं २८ दूसरी गोपीने कहा कि-अरी सखियो! अहो ! यह गोविन्दके चरणकमलोंकी धूलि परमधन्य है, जिनको सकल दोषोंके दूर होनेके निमित्त ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी देवी यह सब ही अपने मस्तक पर धारण करते हैं इस कारण इसका शरीर पर अभिषेक करनेसे (मलनेसे) हमें भी श्रीकृष्णकी प्राप्ति होयगी ॥ २९ ॥ दूसरी कहनेलगीं कि-ऐसा होय परन्तु सकल गोपियोंके सर्वस्व श्रीकृष्णजीको इकला ही हरकर एकांतमें उन अच्युतके अधरको भोग रही है उसके जो यह उभरे हुए चरणके चिन्ह सो हमारे मनको बडा ही क्षोभित कर रहे हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णको ढूँढ़ने वालीं वह गोपियें, आगे केवल श्रीकृष्णजीकी ही चरणरेणुओंको देखकर अत्यन्त सन्ताप पाकर कहनेलगीं कि--यहाँ उस स्त्रीके चरणके चिह्न नहीं दीखते हैं सो उस सुकुमारीके चरणोंके तलुओंको तिनकोंकी नोकें छिदजानेके कारण दुःख होने लगा होगा इसकारण उस प्रिया स्त्रीको, उठा कर प्रिय श्रीकृष्णने निःसन्देह कन्धे पर चढ़ाया होगा ॥ ३१ ॥ अरी सखियो ! ऊँचेपेड़के फूलोंको तोड़नेके निमित्त पैरोंके पञ्जोंसे भूमिमें गढ़ेहुए इस कारण ही आधे उभरे हुए यह श्रीकृष्णजीके चरणोंके चिह्न देखो, यहाँ प्रिय श्रीकृष्णने, उस प्रिय स्त्रीके केशोंमें लगानेके निमित्त फूल तोड़कर उनको इकट्ठा करा है ३२ दूसरी गोपी, कृष्णके घुटनोंके मध्यमें बैठी हुई स्त्रीके भूमि पर उभरे हुए चिन्ह देख कर कहने लगी कि-यहाँ उस कामी कृष्णने, कामिनी स्त्रीके केशोंको विचूर कर चोटी बाँधने आदिका काम करा है, क्योंकि-उनको तोड़े हुए फूल तिस स्त्रीके केशोंको शोभित करें तिस रीतिसे बाँधनेको श्रीकृष्ण निःसन्देह यहाँ बैठे होंगे ३३ हे राजन् ! इस प्रकार गोपियोंकी करी हुई भावनाके अनुसार ही आप भी सन्तुष्ट, आत्माराम और स्त्रियोंके विलासोंसे मोहित न होने वाले श्रीकृष्णजीने उस स्त्रीके साथ विषयासक्त पुरुषोंकी दीनता और स्त्रियोंकी दुष्टता दिखानेके निमित्त क्रीडा करी थी ॥ ३४ ॥ इस प्रकार निरर्थक भाषण करने वाली और उन्मत्तसी हुई वह गोपियें वनमें फिर रही थीं सो और स्त्रियोंको वनमें छोड़ कर जिस गोपीको श्री-

वने ॥ ३५॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् । हित्वा गोपीः कामयमाना मामसौ भजते प्रियः ॥३६॥ ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् । न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ॥३७॥ एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति । ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ॥ ३८ ॥ हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥३९॥ श्रीशुक उवाच । अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः । ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् । अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ॥४१॥ ततोऽविशन्वनं चंद्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते । तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः । तद्गुणानेव

कृष्णजी एकान्तमें लेगये थे उसने भी उस समय, कामातुर हुई सकल गोपियोंको छोड़कर यह प्रिय श्रीकृष्ण मेरे कहनेके अनुसार मेरा सेवन कररहे हैं इसकारण मैं ही सकल स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हू ऐसा माना ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ और श्रीकृष्णजीके साथ कुछ दूर पर्यंत वनमें जाकर वह गर्वमें भर श्रीकृष्णजीसे कहने लगी कि-हे कृष्ण ! यहाँ से आगेको मुझसे नहीं चला जाता इससे मुझे कन्धे पर चढ़ा कर जहाँ तुम्हारा मन चाहे तहाँ लेचलो ॥ ३७ ॥ इस प्रकार स्त्रियोंका उद्धतपना दिखा कर अब कामी पुरुषोंकी दीनता दिखाते हैं कि-उस गोपीके ऐसा कहने पर भगवान्ने, ऐसा है तो तू कन्धे पर चढ़जा इसप्रकार उस प्रिय स्त्रीसे कहा, अब भगवान्का अखण्डितपना वर्णन करते हैं कि-तदनन्तर उस स्त्रीके कन्धे पर चढ़नेको उद्यत होनेपर वह श्रीकृष्ण अचानक अन्तर्धान होगये तब वह स्त्री परमदुःखको प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ और कहने लगी कि-हा नाथ ! हा रमण ! हा अतिप्रिय ! हा महापराक्रमी ! हा सखे ! तुम कहाँ हो, कहाँ हो, तुम्हारे वियोगसे अति दीन हुई मुझ दासीको तुम अपनी समीपता दिखाओ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार प्रिय श्रीकृष्णके वियोगसे मोहित होकर दुःखित हुई सखीको, भगवान्का मार्ग खोजने वालीं उन गोपियोंने, समीपमें देखा ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसने उन गोपियोंसे, श्रीकृष्णसे, अपनेको सन्मान प्राप्त होना और अपने दुष्ट स्वभावके कारण (अन्तर्धान होकर अपना त्यागरूप) अपमानका प्राप्त होना कहा तब यह सुन कर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उसके साथ वह गोपियें, कृष्णको ढूँढनेके निमित्त जहाँ तक चन्द्रमाका प्रकाश पड रहा था तहाँ तक वनमें आगेको गईं, तदनन्तर घनी झाड़ीकी छायासे होने वाले अन्धकारसे भरे हुए उस वनको देख कर वहाँसे पीछेको लौटीं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार कृष्ण ही जिनके आत्मा हैं ऐसी उन गोपियोंने कृष्णके न मिलने पर भी कृष्णकी ओरको ही मन लगा कर, परस्पर कृष्णकी ही वार्त्ता करते हुए, कृष्णकी ही लीलाओंको करते हुए और कृष्णके ही गुणोंका गान करतेहुए अपने घरका भी स्मरण नहीं करा ॥ ४३ ॥ किन्तु कृष्णके आनेकी इच्छा करनेवालीं वह सब गोपियें एक स्थान पर इकट्ठी होकर जहाँ पहिले कृष्णके पास आई थीं उस ही यमुनाकी

गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥४३॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिंद्याः कृष्णभावनाः। समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकांक्षिताः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

गोप्य ऊचुः। जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि। दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा। सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात्। वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्। विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥ विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्। करसरोरुहं कांत

रेतीमें फिर आकर कृष्णका ध्यान करती हुई कृष्णका ही गान करने लगीं ४४ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें त्रिंशत्तम अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ

अब आगे इकतीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णका दर्शन होनेके विषयमें निराश होकर फिर यमुनाकी रेतीमें आईहुई गोपियोंने कृष्णका ही बारम्बार गान करतेहुए उनके आनेकी प्रार्थना करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ गोपियोंने कहा कि-हे प्राणप्रिय कृष्ण ! तुम्हारा जन्म होनेसे यह गोकुल, वैकुण्ठसे भी अधिक ही उन्नतिको प्राप्त होरहा है, यहाँ तुम्हारी दासी हम गोपियें तुम्हारी प्राप्तिके निमित्त ही किसी प्रकार प्राणोंको धारण करके दश दिशाओंमें तुम्हें खोजती फिर रही हैं इस कारण तुम हमें प्रत्यक्ष दर्शन दो ॥ १ ॥ यदि कहो कि-तुम खोजती फिरो मैं दर्शन किस कारण दूँ ? तो-हे इच्छित वर देनेवाले सुरतनाथ ! शरद ऋतुमेंके सरोवरमें उत्पन्न होकर खिले हुए कमलके भीतरके भागकी शोभाका तिरस्कार करने वाली तुम्हारी दृष्टिसे,हम बिना मूल्यकी दासीको मारते हुए तुम्हारा करा हुआ यह वध क्या इस लोकमें नहीं होता है ? अर्थात् क्या शस्त्रसे करा हुआ वध ही वध होता है ? क्या दृष्टिसे कराहुआ वध वध नहीं होता है ? किन्तु होता ही है, इसकारण दृष्टिसे हरे हुए प्राणोंको लौटा कर देनेके निमित्त तुम हमको दीखो ॥ २ ॥ हे सर्वोत्तम कालियके कुंडमेंके विषैले जलको पीन करके प्राप्त हुए मृत्युसे, अघासुर दैत्यसे, इन्द्रकी करी हुई वर्षासे, वायुसे और बिजली गिर कर उत्पन्न हुए अग्निसे,वृषभरूपी अरिष्टासुरसे, व्योमासुरसे तथा दूसरे भी सब प्रकारके भयोंसे, कालियदमन आदि करके तुमने बारम्बार हमारी रक्षा करी है और अब क्या कारण है कि-दृष्टिसे कामदेवको पठाकर हमारा वध करते हो ? ३ हे सखे ! तुम निःसन्देह यशोदाके पुत्र नहीं हो किन्तु सकल प्राणियोंकी बुद्धियोंके साक्षी साक्षात् परमेश्वर ही हो यदि कहो कि-फिर मनुष्योंकी समान परमात्मा कैसे दीखता है ? तहाँ कहती है कि-वही परमात्मा तुम, ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर जगत्की रक्षा करनेके निमित्त यादवोंके कुलमें अवतरे हो, इस कारण अब तुम्हें भक्तोंकी उपेक्षा करना अत्यन्त अनुचित है इससे तुम हमें दर्शन दो ॥ ४ ॥ और तुम्हारी भक्त जो हम तिनकी चार

कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥ व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजन-स्मयध्वंसनस्मित । भज सखे भवत्किंकरीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ ६ ॥ प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् । फणिफणार्पितं ते पदांबुजं कृणु कुचेषु नः कृंधि हृच्छयम् ॥ ७ ॥ मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण । विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ॥ ८ ॥ तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् । श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥ प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् । रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥ १० ॥ चलसि यद्व्रजाच्चार-

---

प्रार्थनाओंको पूर्ण करो,हे सुन्दर ! हे यादवोंमें श्रेष्ठ ! जन्म मरणरूप संसारसे भयभीत होकर अपने चरणोंकी शरण आये हुए भक्तोंको अभय देने वाले, ब्रह्मादिकोंके भी मनोरथ पूर्ण करनेवाले और साक्षात् लक्ष्मीके भी हाथको ग्रहण करनेवाले अपने करकमलको तुम हमारे मस्तक पर स्थापन करो ॥ ५ ॥ हे वीर ! तुम गोकुलवासी सकल पीडाओंको दूर करने वाले हो और तुम्हारा हास्य भक्तोंके गर्वको नष्ट करने वाला है इस कारण हे प्राणोंके सखा ! निःसन्देह तुम्हारी दासी हमें स्वीकार करो और हम स्त्रियोंको अपना कमलकी समान सुन्दर मुख दिखाओ ।६। हे कृष्ण ! अनन्यभावसे नम्र हुए प्राणियोंके पापका नाश करने वाले, गौ आदि पशुओंकी रक्षा करनेके निमित्त दया करके उनके पीछे चलने वाले, अति सुन्दर होनेके कारण लक्ष्मीके भी रहनेके अचल स्थान और अति पराक्रमी होनेके कारण कालिय सर्पके फणों पर रक्खे हुए अपने चरण कमलको हमारे स्तनों पर स्थापन करो और हमारे कामदेवका नाश करो ॥ ७ ॥ औरहे कमलनयन वीर ! ज्ञानियोंको भी प्रिय लगने वाले और मनोहर वाक्योंसे युक्त अपनी मधुर वाणीसे, मोहको प्राप्त हुई हम दासियोंको तुम अपना अधरामृत पिला कर सावधान करो ॥ ८ ॥ तुम्हारे विरहसे हमारा मरण तो हो ही गया था परन्तु वह मरण, तुम्हारी कथारूप अमृत पिलाने वाले पुण्यवान् पुरुषोंने इस समय पर्यन्त बचा रक्खा है इस कारण तीनों तापोंसे तपे हुए पुरुषोंको शान्त करने वाले, ब्रह्मादिकोंके स्तुति करने योग्य काम्य कर्मोंको दूर करने वाले, सुनने मात्रसे ही मङ्गलकारी और अत्यन्त शान्त तुम्हारे कथामृतको, विस्तारके साथ जो पुरुष इस भूमिपर गाते हैं वह बड़े ही दाता होते हैं अर्थात् जो केवल कथारूप अमृतका दान करते हैं वह भी यदि अतिधन्य हैं तो फिर जो तुम्हें देखते हैं वह अति धन्य होंगे इसका कहना ही क्या ? इससे हम प्रार्थना करती हैं कि–तुम हमें दर्शन दो ॥ ९ ॥ अब, मेरी कथाके सुनने से ही तुम सन्तुष्ट हो तो मेरे दर्शनका तुम्हें क्या करना है ? ऐसा कहो तो–हे नाथ ! तुम्हारे विलाससे जिनका चित्त क्षुभित हुआ है ऐसी जो हम तिनकी केवल तुम्हारी कथाको ही सुननेसे तृप्ति नहीं होती है, किन्तु तुम्हारी प्राप्ति ही चाहिये, क्योंकि–हे प्रिय ! ध्यानमात्रसे ही मङ्गलकारी तुम्हारा जो अति सुन्दर मन्दहास्य, प्रेमपूर्वक नेत्र कटाक्षोंसे करा हुआ अवलोकन और खेलना तैसे ही हृदयको प्रिय

चलयशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् । शिलतृणांकुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कांत गच्छति ॥ ११ ॥ दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् । घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि ॥ १२ ॥ प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि । चरणपंकजं शंतमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम । इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥१४॥ अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटियुगायते त्वामपश्यताम् । कुटिलकुंतलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबांधवानतिविलंघ्य तेऽत्यच्युतागताः । गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥ १६ ॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेम-

---

लगने वाले जो संकेतसे करे हुए विनोदके भाषण यह सब, हे कपटी ! हमारे मनको क्षोभित कर रहे हैं ॥ १० ॥ अब हम तुम्हारे ऊपर अति प्रेम होनेसे आर्द्रचित्त होरही हैं और तुम हमारे साथ न जाने क्यों कपट करते हो यह दो श्लोकों करके वर्णन करते हैं-हे नाथ ! हे सुन्दर ! जिस समय गौओंको चरानेवाले तुम, गोकुल से बाहर जाते हो उस समय तुम्हारे कमलकी समान चरण, कंकड़ी, तिनकोंकी नोक और कुशके अग्रभाग छिदकर क्लेश पाते होंगे इस कारण हमारा मन अस्वस्थताको प्राप्त होता है इस प्रकार हम तुम्हारे दुःखसे चित्तमें शंकित होती हैं ११ और हे वीर ! सायंकालके समय घुँघुराले केशोंमें ढका हुआ, गौओंके पैरोंसे उडी हुई घनी धूलिसे अटा हुआ अपना कमल समान मुख धारण करते हुए और हमें वारंवार दिखाते हुए तुम, हमारे मनमें केवल कामदेवको ही उत्पन्न करते हो और अपना दासभाव नहीं देते हो इससे तुम बड़े कपटी हो ।१२। इस कारण हे रमण! हे सन्तापहारक ! शरणागतोंके मनोरथ पूर्ण करने वाले ब्रह्माजीसे पूजित, पृथ्वी के भूषण, ध्यानमात्रसे ही आपत्तियोंको दूर करने वाले और सेवा करते समय भी परम आनन्द देनेवाले अपने चरणकमलको कामका सन्ताप दूर होनेके निमित्त हमारे स्तनोंपर रक्खो ॥ १३ ॥ और हे वीर ! सुरतकी वृद्धि करने वाला, शोकका नाश करने वाला, सुन्दर शब्द करने वाली मुरलीका उत्तम प्रकारसे चुम्बन करा हुआ और जिनको उसकी प्राप्ति होती है तिनको सार्वभौम आदि सुखोंका भी भुलाने वाला अपना अधरामृत तुम हमें अर्पण करो ॥ १४ ॥ हे कृष्ण ! जब तुम दिनके समय वनमें फिरते हो तब तुम्हें न देखने वाले प्राणियोंको त्रुटिमात्रका समय भी युगकी समान होजाता है अर्थात् उतने समय तक बड़ा दुःख होता है और जब सन्ध्याके समय तुम लौटकर आते हो तब घुँघुराले केशोंसे युक्त और अति सुन्दर तुम्हारे मुखको बड़े प्रेमके साथ देखने वाले प्राणियोंको, नेत्रोंके पलक बनाने वाला ब्रह्मा भी मूर्ख प्रतीत होने लगता है अर्थात दर्शनमें पलक लगानेमात्र का अन्तर भी नहीं सुहाता है तात्पर्य यह कि-तुम्हारे दर्शनसे परम सुख होता है१५इस कारण हे अच्युत ! गान आदि सकल गतियोंकी जाननेवाली हम,तुम्हारे मधुर गानसे मोहित होकर अपने पति, पुत्र,कुल, भ्राता, और बांधव इन सबोंको

वीक्षणम् । बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहं त्र्यलं विश्वमङ्गलम् । त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥ यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु । तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपीकृतकृष्णस्तुतिर्नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ३१

श्रीशुक उवाच । इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा । रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः । पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥ तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशो-

त्याग कर तुम्हारे समीप आई हैं इससे हे धूर्त्त! ऐसी रीतिसे आप ही रात्रिके समय चली आईहुई स्त्रियोंको तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन पुरुष त्यागेगा १६ इस कारण कामदेवको उत्पन्न करने वाले, तुम्हारे एकान्तमेंके भाषण, हास्ययुक्त मुख, प्रेमयुक्त अवलोकन और लक्ष्मीके रहनेके स्थान विशाल वक्षःस्थलको देखकर हमें आपकी समीपताकी बड़ी इच्छा होती है और मन मोहित होता है१७और हे कृष्ण! तुम्हारा अवतार गोकुलमें और वृन्दावनमें रहने वाले सकल प्राणियोंके दुःखोंको दूर करने वाला और सकल जगत्को मङ्गलरूप है इस कारण मनमें तुम्हारी प्राप्तिकी इच्छा करने वाली हमें, स्वजनोंके हृदयके रोगको नष्ट करने वाला जो अतिगुप्त औषध तिसको तुम जानते हो वह तुम कृपणपना न करके हमें दो ॥ १८ ॥ इस प्रकार कहकर अतिप्रेमसे व्याकुल हुई वह गोपियें, अन्तमें रोती हुई कहने लगीं कि–हे प्रिय ! हे सुन्दरकुलमें उत्पन्न हुए ! जिस तुम्हारे सुकुमार चरण कमलको हम, अपने कठिनस्तनोंके ऊपर डरती हुई धीरे २ धारण करती थीं उस चरण कमलसे ही तुम इससमय वनमें फिर रहे हो तो वह पदकमल, मार्गमेंकी कंकड़ी और काँटे आदि लगकर क्या क्लेश नहीं पाता होता ? इस प्रकार जिनकी आयु तुम ही हो ऐसी हमारी बुद्धि अब मोहित होती है, तुम मिलोगे इस आशासे अबतक हम जीवित रही थीं अब आगेको आशा नहीं अतः शीघ्र ही मिलो ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥

अब आगे बत्तीसवें अध्यायमें, गोपियोंके विरहके प्रलापोंसे गद्गदचित्त हुए उन श्रीकृष्णजीने, तहाँ प्रकट होकर उन गोपियोंको सन्मानके साथ धैर्य दिया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! श्रीकृष्णका दर्शन करनेमें अति उत्कण्ठित होकर ऐसे अनेकों प्रकारके गान करने वालीं और नाना प्रकारके प्रलाप करती हुई वह गोपियें, अन्तमें ऊँचे स्वरसे रोने लगीं ॥ १ ॥ तब उन गोपियोंमें जिनका मुख कमल हास्ययुक्त है ऐसे पीतांबरधारी, फूलोंकी माला धारण करे हुए और जगत्को मोहित करनेवाला जो कामदेव तिसको भी मोहित करने वाले श्रीकृष्णजी प्रकट हुए ॥ २ ॥ उन आये हुए प्रियतम श्रीकृष्णजीको देखकर प्रीतिसे जिनके नेत्रकमल प्रफुल्लित हुए हैं ऐसी वह सब गोपियें, जैसे अचे-

ऽबलाः । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥ काचित्करांबुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा । काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदंजलिनाऽगृह्णात्तन्वी तांबूलचर्वितम् । एका तदंघ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥ एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरंभविह्वला । घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखांबुजम् । आपीतमपि नातृप्यत्संतस्तच्चरणं यथा ॥ ७ ॥ तं काचिन्नेत्ररंध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च । पुलकांग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः । जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः । व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिंद्या निर्विश्य पुलिनं विभुः । विकसत्कुन्दमंदारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्त-

---

तन शरीरमें प्राण आते ही उसके हाथ पैर आदि अङ्ग एक साथ हिलना चलना आदि चेष्टा करने लगते हैं तैसे ही उठकर एक साथ खड़ी होगईं ॥ ३ ॥ एकने बड़े आनन्दसे श्रीकृष्णजीका करकमल अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया दूसरीने चंदन का उबटना लाकर भूपित करा हुआ उनका बाहु अपने कन्धे पर रक्खा ॥४॥ एक सुंदरीने, उनका चाबाहुआ तांबूल अपनी अञ्जलिमें लेलिया, उनके विरहसे दुःखित हुई एक गोपीने, उनका सुकुमार चरणकमल अपने स्तनपर रख लिया ॥ ५ ॥ प्रेम युक्त कोपके आवेशसे विह्वल हुई एक गोपी तो, अपना नीचेका ओठ चबाकर और भृकुटिको तिरछी करके नेत्रोंके कटाक्षोंके डालनेसे मानो श्रीकृष्णजीको प्रहार ही कररही है क्या, इसप्रकार उनकी ओरको टकटकी लगाकर देखनेलगी६ दूसरी एक गोपी अपने नेत्रोंके पलकोंको भी न हिलाती हुई, प्रेमके साथ देखेहुए भी उनके मुख को बार२ प्रीतिके साथ देखतीहुई जैसे सत्पुरुष बारंबार उनके चरणका सेवन करते हुए भी तृप्त नहीं होते हैं तैसे तृप्त नहीं हुई ॥ ७ ॥ किसी एकने तो-अपने नेत्रोंके छिद्रोंके द्वारा श्रीकृष्णजीको हृदयमें लेजाकर और उनको आलिङ्गन करके फिर वह बाहरको न निकलजायँ इसकारण नेत्र मूँदकर, जिसके शरीरपर रोमाञ्च खड़े हो गये हैं ऐसी वह गोपी, आनंदमें निमग्न होकर, योगीकी समान निश्चल बैठारही ८ इसप्रकार उन सब गोपियोंने, श्रीकृष्णजीके दर्शनरूप परम उत्साहसे आनन्दित हो कर, उनके विरहसे उत्पन्न हुए तापको, जैसे मोक्षकी इच्छा करने वाले पुरुष ईश्वर को पाकर संसारके तापको त्यागते हैं तैसे त्यागा ॥९॥ हे तात परीक्षित् ! श्रीकृष्ण का दर्शन आदि करके जिनका विरहजनित शोक दूर होगया है ऐसी उन गोपियों से घिरे हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, प्रकृति आदि उपाधियोंयुक्त अन्तर्यामी पुरुष की समान अधिक शोभाको प्राप्त हुए ॥१०॥ तदनन्तर उन गोपियोंको अपने साथ लेकर, जहाँ प्रफुल्लित हुए कुन्द और मन्दारके वृक्षों परसे आया हुआ सुगन्धित पवन चलनेके कारण उस गन्धके लोभी भौंरे उड़रहे हैं, जहाँ शरदऋतुके चन्द्रमा की किरणोंके समूहोंसे रात्रिका अन्धकार नष्ट हुआ है और जहाँ यमुना नदीकी हाथरूप तरङ्गोंसे अतिकोमल बालुका फैली हुई है ऐसे यमुनाके सुखकारी पुलिन

द्वेषातमः शिवम् । कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥ तद्दर्शनाह्लादवि-धूतहृद्रुजो मनोरथांतं श्रुतयो यथा ययुः । स्वैरुत्तरीयैः कुचकुंकुमांकितैरचीक्लृपन्ना-सनमात्मबंधवे ॥१३॥ तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरांतर्हृदि कल्पितासनः । चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥ सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा । संस्पर्शनेनांककृतांघ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः । भजतोऽनुभजंत्येक एक एतद्विपर्ययम् । नोभयांश्च भजंत्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच । मिथो भजंति ये सख्यः स्वार्थैकांतोद्यमा हि ते । न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा १७

में जाकर उन गोपियोंसे युक्त हुए प्रभु श्रीकृष्णजी अधिक शोभाको प्राप्तहुए ११।१२ तब, जैसे, श्रुति, कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देखते हुए काम्य फलोंका प्रतिपादन करती हुई अपूर्ण मनोरथवाली सी होती हैं और वही श्रुति, ज्ञानकाण्डमें ईश्वरको देखकर उसका प्रतिपादन करती हुई पूर्णमनोरथ होती हैं तैसे ही उन भगवान्का दर्शन होनेके आनन्दसे विरहजनित शोकरहित हुईं वह गोपियें मनोरथोंके अन्तको प्राप्त हुईं अर्थात् पूर्ण मनोरथ हुईं और उस दशामें ही उन्होंने प्रेमके साथ भगवान्की सेवाकरी उन गोपियोंने स्तनोंका केशर लगेहुए अपने ओढनेके वस्त्रोंसे सब जीवोंके अन्तर्यामी उन श्रीकृष्णजीको बैठनेके निमित्त आसन दिया ॥ १३ ॥ तब सिद्धयोगियोंके हृदयकमलमें जिनका आसन बना हुआ है वह ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी, गोपियोंकी सभामें उन ओढनेके वस्त्रोंके आसन पर बैठे, तब उन गोपियोंके प्रीतिके साथ पूजन करने पर उनको त्रिलोकीमें शोभाका अद्वितीय स्थान अपना शरीर दिखाते हुए शोभित होने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर हास्ययुक्त लीलाके अवलोकनसे कटाक्ष फैंकनेवाली भृकुटिसे युक्त वह गोपियें, मदनको प्रदीप्त करनेवाले तिन श्रीकृष्णका 'अपनी गोदमें रक्खे हुए उनके चरण और हाथोंको दाबनेसे' सत्कार करके और 'यह शरीर कितना सुन्दर और सुकुमार है' इत्यादि वचनोंसे उनकी प्रशंसा करके, वह अन्तर्धान होगये थे इसकारण कुछ एक कुपित हुईं वह गोपियें, उनका अपराध उनके ही मुखसे कहलानेके निमित्त कहने लगीं कि-॥१५॥ हे कृष्ण ! इस जगत्में कोई पुरुष, अपनी सेवा करने वालोंके ही अनुकूल होकर उनकी सेवाके अनुसार पलटेमें उनकी सेवा करते हैं, कितने ही पलटेमें अपनी सेवा होनेकी अपेक्षा न करके सेवा न करनेवालोंकी भी सेवा करते हैं और कितने ही तो प्रत्युपकार करनेवालोंकी अथवा न करनेवालोंकी भी किंचिन्मात्र भी सेवा नहीं करते हैं सो इन तीनोंमें किस २ को गुण दोषका कैसा २ फल मिलता है सो तुम स्पष्टताके साथ हमसे कहो ॥ १६ ॥ इस प्रकार प्रश्न करनेपर गोपियोंके अभिप्रायको जान भगवान् कहने लगे कि-हे सखियो ! जो पुरुष परस्परके उपकारकी इच्छासे परस्परकी सेवा करते हैं वह केवल स्वार्थके निमित्त ही, इस उद्योगको करनेवाले हैं अर्थात् उनका वह भजन केवल स्वार्थके निमित्त ही होता है दूसरोंके निमित्त नहीं इस कारण उनमें सच्चा प्रेम और उस प्रेमसे होने

भजंत्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा। धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः भजतोऽपि न वै केचिद्भजंत्यभजतः कुतः। आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः॥ १९॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जंतून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये। यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिंतयाऽन्यन्निभृतो न वेद॥ २०॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः। मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसू-

वाला सुख वा धर्म किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है॥ १७॥ हे सुमध्यमा स्त्रियो! और जो पुरुष, किसी प्रकारकी चाहना न करके अपना कोई भी उपकार न करने वालोंकी सेवा करते हैं वह दो प्रकारके होते हैं-एक दयालु (साधु) और दूसरे-जैसे माता पिता केवल स्नेहसे सन्तानोंकी रक्षा करते हैं तैसे ही स्नेही होते हैं, इन मे दयालु पुरुषोंको निरपेक्ष उपदेशादि करनेसे निर्विवाद धर्म प्राप्त होता है और दूसरे स्नेही पुरुषोंको सौहृद (प्रेम) वा उससे सुख प्राप्त होता है॥ १८॥ अब कितने ही तो पलटेमें सेवा करने वालोंकी भी सेवा नहीं करते हैं फिर पलटेमें न करने वालोंकी कहाँसे करेंगे? वह पुरुष, चार प्रकारके होते हैं एक अपने स्वरूप में रमण करनेवाले आत्माराम, दूसरे विषयोंको देखतेहुए भी पूर्णकाम होनेके कारण भोगकी इच्छा न करने वाले, तीसरे औरोंके करे हुए भी उपकारका ध्यान रखने वाले अकृतज्ञ (मूर्ख) और चौथे गुरुद्रोही अर्थात् जो अपने ऊपर उपकार करता है वह गुरुकी समान पूजनीय होता है उसका भी दुष्टचित्त होनेके कारण सत्कार न करके उलटा द्रोह करनेवाले (निर्दयी) होते हैं॥ १९॥ ऐसाभगवान्का वचन सुन कर, यह कृष्ण बहिर्दृष्टि होनेके कारण आत्माराम नहीं है, गानके द्वारा हमें बुलानेके कारण पूर्णकाम नहीं है और चतुर होनेके कारण करे हुए उपकारको न जानने वाला (मूर्ख) भी नहीं है किन्तु अन्तके पक्षका गुरुद्रोही (निर्दयी) है ऐसा मनमें विचार कर नेत्रके संकेतोंसे परस्पर गुप्तरीतिसे हँसने वाली उन गोपियोंको देख कर वह श्रीकृष्णजी कहने लगे कि-अरी सखियो! मैं तो इनमेंसे कोई भी नहीं किन्तु परम कारुणिक और परममित्र हूँ, क्योंकि-मैं, मेरी सेवा करने वाले प्राणियोंको 'उनको' निरन्तर मेरा ध्यान होय इस हेतुसे, सेवन नहीं करता हूँ, जैसे निर्धन पुरुष कदाचित् प्राप्त हुआ धन नष्ट होनेपर उसकी चिन्तासे अत्यन्त व्याप्त होकर भूँख प्यास आदि और कुछ नहीं जानता है तैसे ही मेरा भक्त भी किसी समय मुझे प्रत्यक्ष देख कर फिर मेरे गुप्त होजाने पर मेरी चिन्तामें निमग्न रह कर देहका भी अनुसन्धान नहीं रखता है किन्तु निरन्तर मेरा ही ध्यान करता है २० इसी प्रकार हे स्त्रियो! मुझे प्राप्त करनेके निमित्त जिन तुमने, योग्य अयोग्यका विचार, धर्म अधर्मका विचार और बान्धवोंका स्नेह यह सब त्याग करा है तिन तुम्हारी मेरेमें निश्चलवृत्ति रहे इसकारण तुम्हारा प्रेमका भाषण गुप्त रीतिसे सुनने वाला मैं अन्तर्धान होगया था, इससे हे प्रिय सखियो! तुम, तुम्हारा प्रिय करने वाले मेरे ऊपर दोष दृष्टि रखनेको योग्य नहीं हो॥ २१॥ निष्कपटभावसे मेरी सेवा करने वाली तुम्हारे सदाचरणका मैं अपने सदाचरणसे प्रत्युपकार करनेको

यितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥ न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः । या माऽभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥
श्रीशुक उवाच । इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः । जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥ रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः । योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः । प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् । दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः । जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् । सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥६॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः ।

देवताओंकी आयुसे भी समर्थ नहीं होऊँगा, क्योंकि–जो तुमने कठिनसे तोड़नेयोग्य गृहकी वेड़ियोंको तोड़कर मेरी सेवा करी है तिन तुम्हारे सत्कार्यका तुम्हारे सुन्दरस्वभावसे ही प्रत्युपकार होय; मेरा चित्त बहुतसे भक्तोंके ऊपर प्रेम करनेवाला होनेके कारण एकनिष्ठ नहीं है इस कारण मेरे हाथसे तुम्हारा प्रत्युपकार होना कठिन है ॥२२॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें द्वात्रिंश अध्याय

अब आगे तैंतीसवें अध्यायमें गोपियोंके मण्डलमें आये हुए श्रीकृष्णजीने, रासक्रीड़ा, जलक्रीडा और वनक्रीड़ासे उन गोपियोंको आनन्दित करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्की मनोहर वाणी सुनकर उनके कर चरण आदि अङ्गोंके स्पर्शसे पूर्ण मनोरथहुईं उन गोपियोंने, विरहसे उत्पन्न हुए अपने तापको त्यागा ॥ १ ॥ तिस यमुनाकी रेतीमें, दर्पयुक्त हुईं और अपने कहनेके अनुसार वर्त्ताव करनेवालीं और परस्पर एक दूसरीका हाथ पकड़ कर खडी हुईं तिन रत्नरूप स्त्रियोंके साथ श्रीकृष्णजीने, रासक्रीड़ा (बहुत सी स्त्रियोंके साथ नाचनेकी एक प्रकारकी नृत्यकी क्रीड़ा) का आरम्भ करा ॥२॥ मण्डल बाँध कर खड़ी हुईं उनको दो २ गोपियोंके बीचमें एक २ स्वरूपसे खड़े हुए, और जिन कृष्णको सब ही स्त्रियें मेरे ही समीप खड़े हैं ऐसा मानती थीं, ऐसे उन अचिन्त्यशक्ति श्रीकृष्णजीने, जिनके कण्ठमें गलबाहीं डाली है ऐसी गोपियोंके मण्डलसे शोभायमान रासके उत्सवका प्रारम्भ हुआ, सो उसी समय रासको देखनेकी उत्कण्ठासे व्याकुलचित्त हुए स्त्रियोंसहित देवताओंके सैंकड़ों विमानोंसे आकाश भर गया ॥ ३ ॥ ४ ॥ उस रासके आरम्भमें देवताओंकी वजाई हुई दुंदुभि बजने लगीं, उनकी करी हुई अनेकों प्रकारके पुष्पोंकी बहुतसी पुष्प वर्षा नीचे गिरने लगीं और विश्वावसु आदि श्रेष्ठ गन्धर्व स्त्रियोंसहित भगवान्का निर्मल यश गाने लगे ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णके साथ नृत्य करनेवालीं तिन गोपियोंके हाथोंमेंके कङ्कणोंका, पैरोंमेंकी पायलोंका और कमरकी पेटीमें लगे हुए घूँघरुओंका एक साथ मिल कर बड़ाभारी शब्द हुआ ॥ ६ ॥ उस रासमण्डलमें, जैसे सोनेके दोर दानोंके बीच

मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ॥ ७ ॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः। स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥८॥उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः। कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥ काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः। उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति। तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥ १० ॥ काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः। जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥ ११ ॥ तत्रैकांऽसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम्। चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥ १२ ॥ कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम्। गण्डं गण्डे संदधत्या आदत्तांबूलचर्वितम् ॥ १३॥

में नीलमणि विशेष शोभा पाता है तैसे ही सुवर्ण समान वर्ण वाली गलबाहीं डाले हुए उन दो २ गोपियोंके बीचमें श्यामवर्ण भगवान् श्रीकृष्णजी, अत्यन्त ही शोभित होने लगे ॥ ७ ॥ तैसे ही पैर आगे पीछे रखना, हाथ नचाना, मन्दहास्यके साथ भृकुटियोंको चलाना, कमरको लचकाना, वस्त्र और कुचोंका हिलना, और कपोलों पर वारम्वार कुण्डलोंका चमकना इन लक्षणों वालीं और जिनके मुखों पर पसीने की बिन्दु आगई हैं केशोंमें और कमरकी फेंटोंमें दृढ़ गाँठ लग रही है और कृष्ण को गानेवालीं वह गोपियें भी, जैसे मेघमण्डलमें चमकतीहुई बिजली शोभा पाती है तैसे कृष्णके साथमें शोभा पाने लगीं यहाँ अनेकों मूर्त्ति धारण करने वाले कृष्ण मेघ मण्डलकी समान, वह गोपियें अनेक बिजलियोंकी समान, पसीनेकी बूंदें फुहारकी समान और गाना गर्जनेकी समान जानना ॥ ८ ॥ उस समय नृत्य करने वालीं, कण्ठमेंसे नाना प्रकारके रागोंका उच्चारण करने वाली श्रीकृष्णके स्पर्शसे आनन्दित हुईं और कृष्णकी प्रीतिको ही प्रिय मानने वालीं वह गोपियें ऊँचे स्वरसे ऐसा गाने लगीं कि-उस गानेसे यह जगत् भर गया ॥ ९ ॥ कोई एक गोपी, श्रीकृष्णके साथ षड्ज आदि स्वरोंका आलाप करने पर, श्रीकृष्ण के चढ़ाये हुए आलापमें न मिलने वाले नवीन२ ही आलाप लेने लगी तब उसको सुन कर श्रीकृष्णने 'वाह वाह, वाह वाह' ऐसा कह कर उसका सत्कार करा तब उसने उस ही आलापको ध्रुव नामक तालके ऊपर ऊँचा चढ़ा दिया तब श्रीकृष्ण ने उसका बड़ा ही सन्मान करा ॥ १० ॥ इस प्रकार नृत्य गान आदिके द्वारा श्री कृष्णसे मान पाई हुई उन गोपियोंका अति प्रीतिसे ऐसा विलासयुक्त वर्त्ताव हुआ कि-किसी एक अति सुकुमार गोपीको रासक्रीड़ासे थकन चढ़ कर निर्बलता हुई सो उसके हाथोंमेंके कंकण और केशोंके जूड़ेमेंसे मल्लिकाके फूल गिरने लगे तब उसने अपने पास विराजमान श्रीकृष्णजीका कन्धा हाथोंसे कस कर पकड़लिया ११ उन गोपियोंमेंसे एक गोपीने तो-अपने कन्धे पर रक्खे हुए, जिसमेंसे कमलकेसी सुगन्ध आरही है ऐसे चन्दनका लेप लगेहुए श्रीकृष्णजीके बाहुको सूँघकर शरीरपर रोमांच धारण करे और उस बाहुका चुम्बन करने लगी ॥ १२ ॥ उस समय नृत्य करनेसे हलते हुए कुण्डलोंकी कान्तिसे शोभायमान अपना कपोल श्रीकृष्णजीके

नृत्यंती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला । पार्श्वस्थाऽच्युतहस्ताब्जं श्रांताधात्स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रिय एकांतवल्लभम् । गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायंत्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटंकपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः । गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥१६॥ एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः । रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिंबविभ्रमः ॥ १७ ॥ तदङ्गसंगप्रमुदाकुलेंद्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा । नांजः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः । कामार्दिताः शशांकश्च

कपोलसे मिलानेवाली एक दूसरी गोपीको श्रीकृष्णजीने अपना चबायाहुआ तांबूल दिया ॥ १३ ॥ जिसके पैरोंमें पायल और कमरकी पेटीके घूँघरू बज रहे हैं ऐसी नृत्य और गान करनेवाली एक गोपीने, अपने थकजानेपर उस थकावटको दूरकरके सुख देनेवाला, पासमें विराजमान श्रीकृष्णजीका करकमल अपने स्तनोंपर रक्खा १४ हे राजन् ! इसप्रकार लक्ष्मीके प्रियपति श्रीकृष्णजीको कान्त पाकर, उनकी भुजाओंसे कण्ठमें गलबाहीं डाली हुई उन सब गोपियोंने, उनका ही गान करते २ क्रीडा करी ॥ १५ ॥ उससमय बाजे बजानेवाले और गान करनेवाले गन्धर्व किन्नर आदि रसके आवेशसे मोहित होकर वह आप ही नाचने लगे तब दूसरी ही बाजे की सम्पत्ति हुई तिसको दिखाते हुए रासक्रीडाका सम्भ्रम वर्णन करते हैं कि— कानोंपर उरसे हुए कमल और घुँघराले केशोंसे शोभायमान कपोलोंसे और पसीनेके बिन्दुओंसे जिन गोपियोंके मुखपर शोभा आरही है और जिनके केशोंमें से फूलोंकी माला नीचे गिरी पडती हैं ऐसी गोपियें, हाथोंमेंके कंकण और पैरोंमें की पायलरूप बाजोंके शब्दके साथ, भ्रमर ही जहाँ गवैये हैं ऐसी रासकी सभामें भगवान्के साथ नृत्य करने लगीं ॥ १६ ॥ जैसे गोपियोंने अनेकों विलास करके भगवान्के साथ क्रीड़ा करी तैसेही श्रीकृष्णने भी, उन गोपियोंके साथ, जैसे छोटासा बालक दर्पणमें पडी हुई अपनी परछाहींके साथ क्रीडा करें तैसे हृदयसे लगाना हाथोंसे अङ्गोंको छूना, प्रेमके साथ देखना और भी अनेकों विलास करना तथा हास्य करना इत्यादिके द्वारा क्रीड़ा करी ॥ १७ ॥ हे राजन् ! उस समय उन भगवान्के अङ्गके सङ्गसे प्राप्त हुए परम हर्ष करके जिनकी इन्द्रियें परवश हुई हैं और जिनके शरीर परके माला और भूषण गिर पड़े हैं ऐसी वह गोकुलकी स्त्रियें, गाँठ खुलकर अस्तव्यस्त हुए अपने केशोंको, पहिरे हुए वस्त्रोंको और स्तनोंपरकी चोलियोंको पहिलेकी समान सहजमें ठीक २ धारण करनेको समर्थ नहीं हुईं १८ केवल वह गोपियें ही मोहित नहीं हुईं किन्तु-ऐसी श्रीकृष्णजीकी क्रीडाको देखकर कामसे पीडित हुईं देवताओंकी स्त्रियें भी मोहित (मूर्छित) होगईं तथा शुक्र मङ्गलादि ग्रहगणों सहित चन्द्रमा भी उस रास क्रीडाको देखकर आश्चर्यमें होगया इससे यह सूचित करा कि-आश्चर्यमें हुआ चन्द्रमा जब अपनी गतिको भूलगया तब, उसके पीछेके सब ही ग्रह जहाँके तहाँ ही रहगये, तिससे बहुत बड़ी रात्रि हो

सगणो विस्मितोऽभवत् ॥ १९ ॥ कृत्वा तावंतमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः । रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण श्रांतानां वदनानि सः । प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनांग पाणिना ॥ २१ ॥ गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विड्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन । मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्करुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंगघृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरंजितायाः । गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रांतो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसंतीभिरितस्ततोंग । वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥ ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे । चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदः करेणुभिः ॥ २५ ॥ एवं शशांकांशुविराजिता

जाने पर उस समय गोपियोंने सुखके साथ क्रीड़ा करी ॥ १९ ॥ और उन श्रीकृष्ण जीने, अपने स्वरूपमें रमण करने वाले आत्माराम होकर भी, पहिले कात्यायनीका व्रत करते समय गोपकन्याओंसे कह दिया था उसीके अनुसार सबका मनोरथ पूरा होनेके निमित्त जितनी गोप स्त्रियें थीं लीलासे उतने ही अपने स्वरूप धारण करके उनके साथ क्रीडा करी ॥ २० ॥ हे राजन् ! अतिविहार करनेसे थकी हुईं उन गोपियोंके पसीनेसे भीगे हुए मुखोंको तिन दयालु श्रीकृष्णने, परमसुखदायक अपने हाथसे प्रेमके साथ पूँछा ॥२१॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीके नखोंके स्पर्शसे अति हर्षको प्राप्त हुईं वह गोपियें, झलकते हुए सुवर्णके कुण्डलोंकी और घुँघराले केशों की कान्तिसे कपोलों पर प्राप्त हुई परम शोभासे और अमृत समान हास्यसहित अवलोकनसे तिन जगत्पति श्रीकृष्णजीका सत्कार करती हुईं उनके पवित्र चरित्रोंको गाने लगीं ॥ २२ ॥ तदनन्तर उन गोपियों सहित वह श्रीकृष्णजी, तिन गोपियोंके अङ्गके सङ्गसे मसली हुई और उनके स्तनोंका केशर लग कर रङ्गी हुई अपने गलेकी मालाके संबंधसे, गंधर्वपतियोंकी समान गाते (झङ्कार शब्द करते) हुए भौंरे जिनके पीछे २ आरहे हैं ऐसे होते हुए, विहार करनेसे प्राप्त हुई थकावट को दूर करनेके निमित्त 'जैसे नदीके किनारेमें टक्कर मार उसको तोड डालने वाला गजराज' उससे होने वाली थकावटको दूर करनेके निमित्त हथनियोंके साथ जलमें घुसता है तैसे ही उन्होंने जलमें प्रवेश करा ॥ २३ ॥ हे राजन् ! हास्य करने वालीं तरुणी स्त्रियोंने, जिनके ऊपरको चारों ओरसे अत्यन्त जल उछाला है और जिनको प्रेमके साथ देखा है तथा फूलोंकी वर्षा करने वाले देवताओंने जिनकी स्तुति करी है ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, स्वयं आत्माराम होकर भी गजराजकी समान लीला करते हुए जलमें स्त्रियोंके साथ क्रीडा करते रहे ॥ २४ ॥ फिर उन श्रीकृष्णजीने, जलके और स्थलके पुष्पोंकी सुगन्धिको उडाने वाले वायु से जहाँके सब ही दिशाओंमेंके स्थान व्याप्त होरहे हैं ऐसे यमुनाके उपवनमें भौंरोंके और गोपियोंके समूहोंसे घिरे हुए होकर, जैसे मद टपकाने वाला गजराज हथनियोंके समूहोंसे घिरकर क्रीडा करता हुआ वनमें विचरे तैसे क्रीड़ा करतेहुए

निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः । सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ॥२६॥ राजोवाच । संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च । अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥२७॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥२८॥ आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् । किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच । धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ३० नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् । तेषां यत्स्ववचो युक्तं

विचरे ॥२५॥ इस प्रकार प्रेम करनेवाली स्त्रियोंके समूहमें रहनेवाले, सत्य संकल्प और अपनेमें ही वीर्यको रोकने वाले (अस्खलितवीर्य) तिन श्रीकृष्णजीने, चंद्रमा की किरणों करके प्रकाश युक्त हुईं और शरदृऋतुमें होनेवाले तथा-काव्यमें कहेहुए रसोंकी आश्रय उन सकल रात्रियोंमें इस प्रकार क्रीड़ा करी ॥ २६ ॥ राजाने कहा; कि-हे शुकदेवजी ! धर्मकी भली प्रकार स्थापन करनेको और अधर्मको दूर करने को ही अपने अंशरूप बलरामजीके साथ जगदीश्वर भगवानने अवतार धारा था२७ फिर हे ब्रह्मन् ! उपदेश करके दूसरोंसे धर्मकी मर्यादाको प्रवृत्त करने वाले, आप आचरण करके दिखाने वाले और विरोधियोंका तिरस्कार करके सब प्रकारके धर्म की रक्षा करने वाले उन श्रीकृष्णजीने ही परस्त्रीका सम्भोगरूप यह बड़ा धर्मविरुद्ध कार्य कैसे किया ? यदि कहो कि-पूर्ण मनोरथोंको यह अधर्म नहीं होता है तो पूर्णकाम भी निन्दित कर्म नहीं करते हैं तब पूर्णमनोरथ श्रीकृष्णजीने, किस अभिप्रायसे यह परस्त्रीसम्भोगरूप निन्दित कर्म करा ? हे सदाचार ! इस हमारे सन्देहको तुम काटो ॥ २९ ॥ परमेश्वरको इसका दोष नहीं है यह सिद्ध करनेको सामान्यरूपसे महान् पुरुषोंका वर्त्ताव कहतेहुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! ब्रह्माजी, इंद्र, चन्द्रमा, विश्वामित्र इत्यादिकोंमें भी धर्ममर्यादाका उल्लंघन और हठ के साथ साहस भी देखनेमें आता है, परन्तु वह कर्म तेजस्वी पुरुषोंको जैसे सकल अमङ्गल पदार्थ जलानेवाले भी अग्निको वह कर्म दोष नहीं देसकता तैसे ही पाप नहीं लगा सकता ३० यदि कहो कि-और भी उनका कार्य देखकर वैसा ही करेंगे तो सुनो-देहादिके पराधीन होनेके कारण जो तेजस्वी नहीं है उनको कदापि ऐसे शास्त्रविरुद्ध कर्मको करनेका मनमें भी विचार भी नहीं करना चाहिये, यदि मूर्खतासे कोई ऐसा करेगा तो वह 'जैसे रुद्रभगवान्के सिवाय दूसरा पुरुष समुद्रमें के कालकूट विषको पिये तो वह नाशको प्राप्त होता है तैसे नष्ट होजायगा ॥३१॥ यदि कहो कि तब सदाचारका प्रमाण कैसे माना जायगा ? तो सुनो-ज्ञान वैराग्य आदिके वेगयुक्त तेजस्वी पुरुषोंका आज्ञारूप भाषण सत्य है इस कारण उन्होंने जैसा आचरण करा होय तैसा ही आचरण करे परन्तु कहीं उनका आचरण लौकिकव्यवहारके प्रतिकूल भी होता है इस कारण बुद्धिमान् पुरुष, जो उनका आचरण उतने उपदेशसे मिलता हो उतनेका ही आचरण करे अर्थात् केवल महान् पुरुषों

बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥ ३२ ॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते । विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥ किमुताखिलसत्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् । ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥ यत्पादपंकजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः । स्वैरं चरंति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥ ३५ ॥ गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् । योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥ अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः । भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ३७ नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया । मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान्दारान् व्रजौकसः ३८

का आचरण देखकर ही वैसा न करने लगे क्योंकि वह आचरण उनके ही स्वरूप और तेजके अनुसार है इससे महान् पुरुष जिस अपने आचरणका उपदेश दें उस को ही बुद्धिमान् स्वीकार करे ॥ ३२ ॥ यदि कहो कि-वह ऐसा साहस क्यों करते हैं ? तो सुनो-हे समर्थ राजन् ! उन निरहङ्कारी पुरुषोंको धर्माचरण करनेसे इस लोकमें वा परलोकमें किसी प्रकारका फल वा सुख नहीं मिलता है और अधर्म करनेसे अनर्थ वा दुःख भी नहीं मिलेगा, क्योंकि-उनका कर्म केवल प्रारब्ध कर्मों का क्षय होने पर्यन्त ही रहता है ॥ ३३ ॥ यों तो ईश्वरके सिवाय अन्य ज्ञानी पुरुषों वार्ता हुई; इससे यह कैसे सिद्ध होसकता है कि-आज्ञा करके वर्त्ताव कराने योग्य सर्प पक्षी आदि तिर्यक् योनि, और मनुष्य देवता आदि सकल प्राणियोंको अपनी आज्ञासे वर्त्ताव करानेवाले श्रीकृष्णको धर्माचरण करनेसे पुण्यका और अधर्माचरण से पापका सम्बन्ध नहीं होता है ॥३४॥ जिनके चरणकमलके परागकी सेवा करके तृप्त हुए भगवद्भक्त, वैसे ही जिनके ध्यानरूप योग शक्तिसे, सकल कर्मबन्धनोंसे छूटे हुए योगीजन और जिनकी एकताका चिन्तवन करनेवाले ज्ञानी भी किसी कर्मसे बन्धन न पाकर अपनी इच्छानुसार विचरते हैं, उन अपनी इच्छासे कृष्ण अवतार धारनेवाले भगवान्को लोकविरुद्ध आचरणसे कैसे बन्धन होसकता है ? ॥ ३५ ॥ इस प्रकार गोपियोंको परस्त्री मानकर उत्तर कहा, अब सर्वान्तर्यामी भगवान्का यह परस्त्रीसेवन किसी प्रकार भी नहीं है ऐसा कहते हैं-जो गोपियोंके उनके पतियोंके और सब ही प्राणियोंके भीतर बुद्धि आदिकोंके साक्षीरूपसे विराजमान रहते हैं वही भगवान् अपनी लीलासे यहाँ देहधारी हुए हैं जिनको देहसे दोष लगे हम तुमसे देहधारी वह नहीं हैं ॥ ३६ ॥ तो फिर उन पूर्णकाम भगवान्की निन्दित कर्ममें प्रवृत्ति क्यों हुई ? ऐसा कहो तो सुनो पूर्णकाम भी भगवान्ने प्राणीमात्रके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त मनुष्य शरीरको स्वीकार करके ऐसी क्रीडा करी कि-जिनको सुनकर शृङ्गार रससे जिसका चित्त खिंचा हुआ है ऐसा अत्यन्त बहिर्मुख भी पुरुष (भगवद्भक्तिमें) तत्परहोय ॥ ३७ ॥ यदि कहो कि-अब दूसरे भी आचारभ्रष्ट कोई पुरुष कहैंगे कि-हमारा भी आचरण ऐसा ही है तो सुनो-गोकुलमें रहनेवाली गोपियोंके पतियोंने श्रीकृष्णजीकी कुछ भी निन्दा नहीं करी, क्योंकि-वह उनकी मायासे मोहित होकर अपनी २ स्त्रियोंको अपने

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः । अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः । भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ४० इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३

श्रीशुक उवाच । एकदा देवयात्रायां गोपालाः जातकौतुकाः । अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥१॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् । आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृप तेऽम्बिकाम् ॥ २ ॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः । ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥३॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः । रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ ॥ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन्विपिनेऽतिबुभुक्षितः । यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् । सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय

समीप ही हैं ऐसा मानते थे, ऐसा प्रभाव विना हुए केवल कृष्णकी समान परस्त्रीसंभोग करनेवाले पुरुषोंको पापी जानो ॥ ३८ ॥ ब्रह्ममुहूर्त्त (पौ फटनेका समय) होने पर श्रीकृष्णजीने जिनको घर जानेकी आज्ञा दी है ऐसी वह भगवान्‌की प्रिय गोपियें, घरजानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे अपने २ घरोंको गईं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जो पुरुष, श्रद्धावान् होकर, गोकुलकी स्त्रियोंके साथ श्रीकृष्णजीकी इस क्रीड़ाको क्रमसे सुनेगा, अथवा पढ़ेगा वह, उन श्रीकृष्ण भगवान्‌में उत्तम भक्ति पाकर थोड़े ही कालमें जितेन्द्रिय होता हुआ, हृदयमें रहकर रोगकी समान अनर्थ करनेवाले कामका अत्यन्त तिरस्कार करेगा ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

अब आगे चौतीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने, अजगरके निगलेहुए नन्दजीको छुडाया और उस अजगररूपी सुदर्शन नामका विद्याधरको भी आंगिरस ऋषिके शापसे छुटाया तथा शंखचूड नामवाले यक्षका वध करा, यह कथा वर्णन करी है श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! एक समय महादेवजीकी यात्राको जानेके निमित्त जिनके मनमें कौतुक उत्पन्न हुआ है ऐसे नन्द आदि गोपाल, बैल जोड़ी हुई [illegible]ड़ियों पर बैठकर मथुरासे पश्चिमकी ओर सरस्वती नदीके तटपरके अंबिका वनमें पहुँचे ॥ १ ॥ हे राजन् ! तहाँ उन्होंने सरस्वती नदीमें स्नान करके गन्ध पुष्प आदि पूजाकी सामग्रियोंसे भक्तोंके मनोरथ पूरे करनेवाले रुद्रदेवकी और अंबिका देवीकी भक्तिके साथ पूजा करी॥२॥और वह महादेवजी हमारे ऊपर प्रसन्न हों इस इस हेतुसे उन सब गोपोंने, आदरके साथ गौ, सुवर्ण, वस्त्र और मधुसहित मधुर अन्न ब्राह्मणोंको समर्पण करे ॥ ३ ॥ फिर वह महाभाग नन्द सुनन्द आदि गोप, केवल जलमात्र पीकर निराहार व्रत और ब्रह्मचर्य आदि नियम धारण करते हुए उस रातको उस सरस्वतीके तटपर ही बसेरहे ॥ ४ ॥ उस जङ्गलमें कोई एक बड़ा भारी अजगर सर्प बहुत भूखा था वह रात्रिमें स्वाभाविक फिरता २ धीरे २ पेटके बल [illegible] आकर सोए हुए नन्दजीको निगलगया ॥ ५ ॥ तब सर्पने जिनको पैरोंकी

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः। ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रांताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः। तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतां पतिः ॥८॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः। भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम्। दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥ १० ॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः। कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच। अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः। श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरम् दिशः ॥ १२ ॥ ऋषीन्विरूपानंगिरसः प्राहसं रूपदर्पितः। तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः। यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥१४॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम्। आपृच्छे शाप-

ओरसे निगल लिया है ऐसे वह नन्दजी ऐसे हाहाकार करने लगे कि—हे कृष्ण! कृष्ण! यह बड़ा भारी अजगर सर्प मुझे निगले जाता है इसकारण शरणमें आये हुए मुझ को तुम इससे छुडाओ ॥ ६ ॥ ऐसा उनका दीन वचन और रोना सुनकर जागकर शीघ्रतासे उठे हुए वह गोपाल, नन्दजीको सर्पने निगल लिया ऐसा देख कर जलते हुए काठोंसे उस सर्पको मारने लगे ॥ ७ ॥ जलते हुए काठोंसे जिसका शरीर झुलसगया है ऐसे भी उस अजगर सर्पने जब नंदजीको नहीं छोड़ा तब भक्तरक्षक भगवान् श्रीकृष्णजीने तहाँ आकर सर्पको चरणसे ठुकराया ॥ ८ ॥ तब वह सर्प, भगवान्के भक्तोंके मनोरथोंको पूरा करने वाले चरणके स्पर्शसे जिसके शापरूप पातक नष्ट होगए हैं ऐसा होकर सर्पशरीरको त्यागकर विद्याधरोंसे पूजित अपने विद्याधरस्वरूपको प्राप्त हुआ ॥९॥ तब सुवर्णके पुष्पोंकी माला धारण करके चमकते हुए शरीरसे अपने आगे नमस्कार करके खड़े हुए उस पुरुषको देखकर सबके मनकी बात जानने वाले भी वह श्रीकृष्णजी, गोपोंमें अपना ऐश्वर्य प्रकट करनेके निमित्त अनजानकी समान उससे बूझने लगे कि-॥ १० ॥ जो अब अद्भुत दीखने वाला तू परम शोभासे प्रकाश पारहा है सो तू कौन है? तुझ उत्तमको पराधीनता प्राप्त हुए विना यह सर्पकी योनि नहीं प्राप्त हुई है सो तुझे इस निंदित सर्पकी योनिमें किसने कैसे डाला है? सो मुझे बता ॥ ११ ॥ तब सर्पने कहाकि-हे प्रभो! मैं सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध देवयोनिका एक विद्याधर हूँ सो मैं पहिले कान्तिसे और स्वरूपकी समृद्धिसे युक्त हो विमानमें बैठा दशों दिशाओंमें घूमा करता था ॥ १२ ॥ सो एक समय कुरूपवान् आङ्गिरस ऋषियोंको देखा और अपने रूपकी सुन्दरतासे गर्वमें होकर उनकी हँसी करी, तब मेरे उपहास करे हुए उन ऋषियोंने, मेरे अपराध करनेके कारण मुझे शाप देकर इस सर्प-योनिमें पहुँचादिया था ॥ १३ ॥ उन दयावान् ऋषियोंने मेरे ऊपर अनुग्रह करनेको ही यह अजगर योनिका शाप दिया था जिससे कि-अब तुम मुझे चरणसे स्पर्श करा और उसके प्रभावसे मैं शापसे छूट गया१४हे सकल पापनाशक! संसारसे भय मानकर तुम्हारी शरणमें आये हुए लोकोंका पाप दूर करने वाले तुम भगवान्से तुम्हारे चरणोंका

निर्मुक्तः पादस्पर्शाद्गमीवहन् ॥ १५ ॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन्महापुरुष सत्पते। अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥ ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात्। यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च। सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ १७ ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवंद्य च। सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः। समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाययुस्तत्कथयन्त आदृताः॥ कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः। विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥ उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः। स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विणौ विरजोऽम्बरौ ॥२१॥ निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम्। मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम्। तौ कल्पयन्तौ युगपत्स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप।

स्पर्श होनेके कारण शापसे छूटा हुआ मैं, अपने लोकको जानेकी आज्ञा माँगता हूँ ॥ १५ ॥ हे भक्तपालक ! महापुरुष ! हे सर्वलोकेश्वर ! महायोगिन् ! मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ इस कारण मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दो ॥१६॥ हे अच्युत ! तुम्हारे दर्शनसे मैं तत्काल ब्रह्मशापसे छूटा हूँ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्यों कि-जिन तुम्हारे नामको उच्चारण करने वाला पुरुष, सकल श्रोताओंको और अपनेको तत्काल पवित्र करता है, फिर तुम्हारे चरणका स्पर्श करा हुआ मैं पवित्र हुआ इसमें आश्चर्य ही क्या ! ॥ १७ ॥ इस प्रकार सुदर्शन नाम वाला विद्याधर श्रीकृष्णजीकी आज्ञा लेकर और उनको प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके स्वर्ग लोक को चलागया और श्रीकृष्णजीने नन्दजीको भी उस सर्पशरीरके मुखमेंसे निकाल कर संकटसे छुटाया ॥ १८ ॥ हे राजन् ! गोकुलवासी गोप, चरणके स्पर्शमात्रसे ही अजगर सर्पसे नन्दजीका और शापसे सुदर्शन विद्याधरका छूटनारूप वह श्रीकृष्ण जीका बड़ा भारी प्रभाव देखकर विस्मयमें होगये और उस अम्बिका वनमें करने का जो कुछ नियम था उसको समाप्त करके बड़े आदरके साथ उस ही श्रीकृष्णके प्रभावकी आपसमें बातें करतेहुए तिस अम्बिकावनसे फिर गोकुलको चलेआये१९ तदनन्तर एक समय श्रीकृष्णजी और महापराक्रमी बलराम यह दोनों, वनमें रात्रि के समय गोकुलकी स्त्रियोंमें आकर क्रीड़ा कर रहे थे ॥ २० ॥ उन प्रेम करनेवाली स्त्रियोंने भी उत्तम स्वरसे जिनको गाया है ऐसे, आभूषण पहिने, शरीरपर चंदन का लेपकरे, वन माला पहिने और निर्मल वस्त्र पहिने जिसमें चन्द्रमा और तारा-गणोंका उदय होरहा है मल्लिकाकी सुगन्धसे मत्त हुए भौंरे फिर रहे हैं और चन्द्रमाके उदयमें खिलने वाले कमलोंकी सुगन्धिको उड़ाने वाले पवनसे सेवन करे हुए रात्रिके प्रवेशकी प्रशंसा कर रहे थे ॥ २१-२२ ॥ वह बलराम और कृष्ण, दूसरोंको जिसका मनमें विचार करना भी कठिन है ऐसे अनेकों स्वरोंका एक साथ चढाव उतार करके आलाप करते हुए सुननेवाले सकललोकोंके मनोंको और कानोंको जैसे सुखदायक होय तैसे गाने लगे ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उनका वह गाना

स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥ एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् । शंखचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥२५॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् । क्रोशंतं कालयामास दिश्युदीच्यामशंकितः ॥ २६ ॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् । यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ । आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् । विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥ २९ ॥ तमन्वधावद्गोविंदो यत्र यत्र स धावति । जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ॥ ३० ॥ अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः । जहार मुष्टिनैवांग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥ शंखचूडं निहत्यैव मणिमादाय भास्वरम् । अग्रजायाददात्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

सुनकर मोहित हुई गोपियें, तिस मोहके होनेसे जिनके शरीरों परके वस्त्र खसक गये हैं और जिनके केशोंपरकी पुष्पमाला गिर पड़ी हैं ऐसी वह अपने देहोंकी सुध को भी भूल गई ॥२४॥ इस प्रकार इच्छानुसार परम मत्त हुएसे वह बलराम कृष्ण क्रीड़ा कर रहे थे सो इतने ही में शंखचूड नामसे प्रसिद्ध एक कुवेरका सेवक आया ॥ २५ ॥ और हे राजन् ! मनमें भयकी शंका भी न करने वाला वह शंखचूड उन बलराम कृष्णके देखतेहुए उनको कुछ न गिनकर, वही जिनके रक्षक हैं ऐसी चिल्लाती हुई स्त्रियोंके समूहको बलात्कारसे पकड़कर उत्तर दिशाकी ओरको चल दिया ॥ २६ ॥ तब बाघकी पकड़ी हुई गौएँ जैसे डकराती हैं तैसे हे राम ! हे कृष्ण ! ऐसा पुकारती हुई और अपनी करके मानी हुई उन गोपियोंको उससे छुड़ानेके निमित्त वह दोनों ही भ्राता दौड़े ॥ २७ ॥ और गोपियोंका भय दूर करने वाले 'डरोमत' ऐसा शब्द उच्चारण करते, हाथमें शालके वृक्ष उखाड़कर लिये हुए और बड़े वेगसे दौडने वाले वह बलराम कृष्ण, वेगसे शीघ्र ही गुह्यकोंमें अधम उस शंखचूडके पास जा पहुँचे ॥ २८ ॥ तब वह मूढ़ शंखचूड एक मूर्त्तिमान् मरण काल और एक मूर्त्तिमान् मृत्यु ऐसे भयंकर आये हुए उन बलराम कृष्णको देखकर डरगया और बचनेकी इच्छासे स्त्रियोंको छोड़कर भागने लगा॥२९॥उस समय वह जिधर२ को भागा तिधर२ श्रीकृष्णजी भी, उसके मस्तक परके मणिको हरनेकी इच्छासे दौडने लगे, इधर बलरामजी उन स्त्रियोंकी रक्षा करते हुए तहाँ ही रहे३० हे राजन् ! फिर प्रभु श्रीकृष्णजीने, समीपमें ही उसके सामने आकर केवल अपने घूँसेसे ही मस्तक परकी मणिसहित उस दुष्ट शंखचूडका मस्तक हरलिया॥३१॥ इस प्रकार शंखचूडको मारकर उसके मस्तक परका तेजसे दमकता हुआ मणि लेकर श्रीकृष्णजी, बलरामजीके पास आये और उन्होंने बडी प्रीतिसे वह मणि, सब स्त्रियोंके देखते हुए बलरामजीको देदिया ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ छ छ

श्रीशुक उवाच । गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः । कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः । वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् । कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥ २ ॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः । काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥३॥ हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् । नन्दसूनुरयमार्त्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् । दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तवकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः । कर्हिचित् सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥ तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् । स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमि-

अब आगे पैंतालवें अध्यायमें दिनके समय श्रीकृष्णजीके वनको चले जाने पर गोकुलमेंकी स्त्रियोंने दो २ श्लोकका एक २ ऐसे युग्मगीतोंसे दुःखमें दिन बिताये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! दिनमें श्रीकृष्णजीके वनको चलेजाने पर उनमें ही जिनका चित्त लगा है ऐसी वह गोपियें, कृष्णकी लीलाओंको ही उत्तमताके साथ गाती हुईं बड़े कष्टसे दिन बितातीं थीं १ कोई गोपी दूसरी गोपियोंसे कहनेलगीं कि-अरी गोपियो! बाईं भुजाकी मूलमें जिन्होंने अपना बायाँ कपोल टेका है और जिन्होंने अपनी भ्रुकुटिको नचाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी, अपने हाथकी कोमल अंगुलियोंसे जिसके सातोंस्वरोंके छिद्रोंका आश्रय करा है ऐसी अधर ओठपर रक्खी हुई वेणुको जब बजाते हैं।२तब विमानमें अपने पतियोंके साथ बैठीहुईं भी सिद्धोंकी स्त्रियें,उस वेणुगीतको सुनकर पहिले आश्चर्य में होती हैं फिर जिन्होंने अपनेचित्त कामदेवके बाणोंको अर्पणकरे हैं ऐसी (कामातुर) और लज्जायुक्त होकर इतनी मोहित होती हैं कि-जिनको कामपीडासे हुई उस तलाबेलीमें, नाड़े खुलकर गिरे हुए वस्त्रोंका भी भान नहीं रहता है, सो ऐसे कृष्ण का विरह हम कैसे सहैं ? ॥ ३ ॥ दूसरी बोलीं कि-हे गोपियो ! यह बड़ा आश्चर्य सुनो, जिनका हास्य हारकी समान स्वेत है और जिनके वक्षःस्थल पर बिजलीकी समान दमकती हुई लक्ष्मी स्थिर रहती है ऐसे यह नंदकुमार श्रीकृष्णजी अपने विरहसे दुःखित हुईं हम सखियोंको सुख देनेके निमित्त जब मुरली बजाते हैं ।४। तब गोकुलमेंके बैल, गौएँ और वनमेंके हिरनोंके झुण्डके झुण्ड, दूरसे ही वेणुका शब्द सुनकर जिनका चित्त हरा गया है ऐसे होतेहुए, दाँतोंसे तोड़ेहुए ग्रास विना चबाये ही मुखमें तैसे ही रख कर कान खडे करके नेत्र मूँद कर सोते हुएसे और लिखे हुए चित्रकी समान निश्चल होकर खड़े रहते हैं ॥ ५ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि--हे सखि ! मोरोंके परोंके, फूलके गेरु आदि धातु और कोमल पत्तोंसे मल्लोंकी समानरूप बनाने वाले बलराम और गोपों सहित वह श्रीकृष्णजी, जब कभी वेणुके शब्दसे गौओंको बुलाते हैं ॥ ६ ॥ तब उस वेणुके शब्दको सुन कर, जैसे हम (गोपियें) बहुतसा पुण्य न होनेके कारण, पवनके उड़ा कर लाये हुए

तापाः ॥ ७ ॥ अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः । वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥ ८ ॥ वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः । प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म ॥९॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः । अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि संधितवेणुः ॥१०॥ सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य । हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ॥११॥ सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः । हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥ १२ ॥ महदतिक्रमणशंकितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः । सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ॥ १३ ॥ विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणु-

उनके चरणकमलकी धूलिकी इच्छा करती हुईं कुण्ठित गति (चलनेकी शक्तिसे रहित) होकर खड़ी रहती हैं-और हमारी भुजा प्रेमसे काँपने लगती हैं तथा हमारे नेत्रोंमें जल निश्चल रूपसे भर जाता है तैसे ही नदियें भी आगेको जानेका वेग बंद होकर रुकजाती हैं उनके जल निश्चल होजाते हैं और उनकी तरङ्गरूप भुजा प्रेमसे काँपने लगती हैं ॥७॥ दूसरी गोपी कहनेलगीं कि अरी सखियों ! निश्चल सम्पत्ति वाले आदिपुरुष भगवान्की समान अनुचरोंने (सेवक देवताओंने वा गोपोंने) जिनका पराक्रम वर्णन करा है ऐसे वनमें फिरने वाले वह श्रीकृष्णजी, गोवर्द्धन पर्वतके चारों ओर फिरनेवाली गौओंको,जब उनके नामोंसे युक्त वेणुगीतमें बुलाते हैं-॥ ८ ॥ तब हममें विष्णुका प्रकाश है ऐसा सूचित करतीहुई मानो पुष्पोंसे और फलोंसे युक्त होकर जिनकी शाखा भारसे झुकी हुई हैं और जिनके अङ्ग पर प्रेमसे काँटेरूपी रोमाञ्च खड़े होगये हैं ऐसी वनमेंकीलता और ऐसे ही वृक्ष,अपनेमेंसे मद की धारा बहाते हैं ॥ ९ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि-सुन्दर पुरुषोंमें मुख्य और वनमालामेंके दिव्य गन्ध वाले तुलसीके मदसे मत्त हुए भौंरोंके समूहोंके ऊँचे स्वर से गाए हुए अनुकूल गानको आदरके साथ सुनने वाले वह श्रीकृष्ण जब वेणुका बजाने लगते हैं-॥ १० ॥ तब सरोवरोंमें रहने वाले सारस,राजहंस और दूसरे पक्षी उस सुन्दर गीतसे मोहित होकर एकाग्र चित्तपनेसे श्रीकृष्णजीके समीप आकर, मौन व्रत धारण करते हुए और सुननेमें सुख मिलनेसे नेत्रोंको मूँदते हुए श्रीहरि की उपासना करते हैं, यह कैसा आश्चर्य है ? ॥ ११ ॥ कोई गोपी कहनेलगीं कि हे गोपियो ! कानोंमें उरसे हुए पुष्पोंकी मालाओंके तोडोंसे शोभायमान होने वाले वह श्रीकृष्णजी, बलरामजीके साथ गोवर्द्धन पर्वतके चारों ओरकी भूमिमें फिरते हुए, आप हर्षयुक्त होकर जगत्को हर्षित करते हुए वेणुके शब्दसे जब वह जगत् को भर देते हैं-॥१२॥ तब पूजनीय श्रीकृष्णजीको, मेरी भारी गर्जना असह्य होगी ऐसी मनमें शंका करने वाला मेघ, श्रीकृष्णजीके पास नहीं आता है और गर्जता भी नहीं है, किन्तु दूरसे ही वेणुके शब्दके पीछे २ मन्द २ गर्जना करता है और जगत्का ताप दूर करनेकी तथा श्यामता आदि गुणोंकी समता होनेसे उन अपने सखा श्रीकृष्णजीके ऊपर छाया करके छत्र धारण करता हुआ पुष्पोंकी वर्षा करता

दाय इत्थं निजशिक्षाः । तव सुतः सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजातीः॥१४ सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः । कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाङ्कुशविचित्र-ललामैः । व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः । कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥ मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः । प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥१८॥ क्वणितवेणुरववञ्चित-चित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः । गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥१९॥ कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् । नन्द-

हैं यहाँ मेघोंकी आड़में रह कर देवताओंकी करी हुई पुष्पोंकी वर्षाकी हा मेघमें कल्पना करके, वह मेघ ही करता है ऐसा वर्णन करा है ॥ १३ ॥ दूसरी गोपी बड़ा आश्चर्य करती हुई कहने लगीं कि—हे पतिव्रता यशोदा ! नाना प्रकारकी गोप-क्रीड़ामें चतुर यह तेरा पुत्र श्रीकृष्ण पकी हुई सन्दूरीकी समान अपने लाल२ अधर ओठ पर वेणुको लगा कर, वेणु बजानेमें अनेकों प्रकारकी अपनी कल्पनाकी शिक्षा जिनमें हैं ऐसे निषाद,ऋषभ आदि स्वरोंके आलापोंके भेदोंको जब बजाकर दिखाते हैं-॥ १४ ॥ तब गानका तत्त्व जानने वाले इन्द्र, शिव और ब्रह्मादिक, देव-ताओंके अधिपति भी जिधरसे गानेका शब्द आता है उधरको अपनी गर्दन झुका कर और चित्त देकर मन्द, मध्यम और अति ऊँचा इन क्रमोंसे निश्चलता करके उस गानको सुन कर उसके तत्त्वको न समझनेके कारण मोहको प्राप्त होते हैं १५ हम अपने मोहित होनेकी तो बात ही क्या कहें ? हे यशोदा ! ध्वजा, कमल और अङ्कुश आदि अनेकों प्रकारके चिह्नोंसे युक्त अपने चरणरूप कमलके पत्तोंसे गोकुल की भूमिका गौओंके खुरोंसे खुदनेके कारण प्राप्त हुआ दुःख दूर करतेहुए गजराज की समान गति वाले वह कृष्ण, वेणुको बजाते हुए जब चलते हैं और विलासके साथ देखते हैं तब उनके चलनेके और विलासके साथ देखनेकी रीतिने जिनको कामदेवका वेग दिया है और वृक्षोंकी समान निश्चल दशाको पहुँचा दिया है ऐसी हम (गोपियें) मोहित होकर अपने पहनेहुए वस्त्रको और खुले हुए केशोंके जूड़े को भी नहीं जानती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ गौओंकी गिनती करनेके निमित्त मालामें पिरोयेहुए मणियोंको धारण करनेवाले तथा जिसका सुगन्ध प्यारा है ऐसी तुलसी की मालासे शोभायमान श्रीकृष्ण किसी स्थान पर मणियोंसे गौओंकी चारों ओर गणना करते हुए प्यारे मित्रके कन्धे पर अपनी बाहु रख कर जब वेणुको बजाते हैं-॥ १८ ॥ तब उस बजाई हुई वेणुके शब्दसे जिनके चित्तोंका आकर्षण हुआ है ऐसी काले हिरनोंकी स्त्रियें (हिरनियें), हम गोपियोंकी समान ही, घर द्वारोंकी आशा छोड़ कर, मधुरता आदि गुण समूहोंके समुद्ररूप श्रीकृष्णजीके चारों ओर निश्चल होकर खड़ी रहती हैं ॥ १९ ॥ दूसरी गोपियें कहने लगीं कि-अरी पवित्र यशोदा ! तेरा ढोटा, इतने हीमें दूसरी कहने लगीं कि-नन्दका पुत्र श्रीकृष्ण,वृन्दा-

सुनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥ २० ॥ मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन्मलयस्पर्शेन वंदिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥ वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः । कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनांते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥ २२ ॥ उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन्खुरजश्छुरितस्रक् । दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥ मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली । बदरपांडुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥ २४ ॥ यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनांते । मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥ श्रीशुक उवाच । एवं व्रजस्त्रियो

वनमें क्रीड़ा करके गोपियोंको आनन्द बाँटनेके निमित्त कुन्दके पुष्पोंकी मालाओंसे कौतुकी वेष धारण करके सायंकालके समय गोप और गौओं सहित यमुनामें,अपने ऊपर प्रेम करने वाले गोपोंको हर्षित करते हुए क्रीडा करते हैं-॥२०॥तब चंदनकी समान सुगन्धयुक्त शीतल स्पर्शसे तिन कृष्णका सत्कार करनेवाला मन्द, पवन, अनुकूलतासे चलने लगता है और उस समय स्तुति पढ़ने वालोंकी समान स्तुति आदि करनेवाले गन्धर्व आदि उपदेवताओंके समूह बजाना, गाना और पुष्पोंकी वर्षासे उनकी सेवा करते हैं२१तदनन्तर आनेवाले श्रीकृष्णको देखकर यह गोपियें हर्षसे आपसमें कहनेलगीं कि-हे सखियों! यह देखो देवकीके उदरमेंसे उत्पन्नहुआ कृष्णरूपी चन्द्रमा, हम सुहृदोंके मनोरथ पूरे करनेको आरहा है,यह सब गोकुलका और गौओंका हित करनेवाला है, क्योंकि-इसने गोवर्द्धन पर्वतको धारण करा था यह सायंकालके समय सब गौओंको इकट्ठा करके वेणु बजाता हुआ गोकुलमेंको लौटकर आने लगता है तब मार्गमें ब्रह्मादिक देवता भी इसके चरणोंको प्रणाम करते हैं, गोप इसकी कीर्त्तिका वर्णन करते हैं इसके गलेमेंकी माला गौओंके पैरोंसे उड़ी हुई धूलिसे मैली होरही हैं, यह थका हुआ भी अपने शरीरकी कान्तिसे हमारे नेत्रों को परमहर्षित करता हुआ आरहा है ॥ २२ ॥ २३ ॥ कितनी ही गोपियें, समीपमें आये हुए श्रीकृष्णको देख कर बडी घबड़ाकर कहने लगीं कि-अरी गोपियों! जिन के नेत्र थोड़ेसे मदसे विह्वल होरहे हैं, जिनका मुख पकते हुए बेरकी समान पांडुवर्ण दीख रहा है, जिन्होंने वनके पुष्पोंकी माला धारण करी है, जो अपने प्रेमी भक्तोंका सन्मान करनेवाले हैं, जिनका चलना गजराजकी समान है और जिनका मुख आनन्दयुक्त है ऐसे यह यदुपति श्रीकृष्ण, अपने सुवर्णके कुण्डलोंकी कान्तिसे अपने सुकुमार कपोलोंको शोभित करते हुए, जैसे दिनमें लोकोंकी होनेवाले ताप को दूर करनेके निमित्त सायंकालको चन्द्रमा उदय होता है तैसे ही गोकुलमेंकी गौओंका और हमारा दुर्निवार विरहका ताप दूर करतेहुए अत्यंत समीपको आरहे हैं देखो॥२४॥२५॥श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इसप्रकार जिनका निश्चयात्मक और संकल्प विकल्पात्मक मन श्रीकृष्णके विषें लौलीन होरहा है ऐसी उत्साह से भरी हुई गोपियें दिनके समयमें भी विरहके दुःखसे ही कृष्णलीलाओंको गाती

राजन् कृष्णलीला नु गायतीः । रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावनक्रीडायां गोपिकागीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

श्रीशुक उवाच । अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः । महीं महाककुत्कायः कंपयन् खुरविक्षताम् ॥१॥ रंभमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् । उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥ किंचित् किंचित् शकृन्मुञ्चन्मूत्रयन् स्तब्धलोचनः । यस्य निर्ह्रादितेनांग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै । निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशंकया ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः । पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः । भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥ मा भैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् । गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः

हुई अपने चित्तको आनन्दित करती थीं ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ ॥ ॥

अब आगे छत्तीसवें अध्यायमें,श्रीकृष्णने अरिष्टासुरको मारा और कंसने नारद जीके मुखसे, बलराम और श्रीकृष्ण यह वसुदेवके पुत्र हैं ऐसा जानकर, उनको मथुरासे लानेकी अक्रूरको आज्ञा करी यह कथा वर्णन करी है श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार देव गन्धर्व आदिकोंके करे हुए गान, नृत्य बाजा बजाना और पुष्पोंकी वर्षा आदिके साथ आये हुए श्रीकृष्णको देखकर गोकुलमें बड़ा उत्साह होनेलगा,तब,उसको न सहनेवाला, जिसका कन्धेका पुट्ठा और शरीर बहुत बड़ा है ऐसा एक बैलके आकारका अरिष्ट नामवाला दैत्य अपने खुरोंसे खोदी हुई भूमिको कंपायमान करता हुआ गोकुलमें आपहुँचा ॥ १ ॥ वह लोकोंको कठोर लगनेवाला बैलकी जातिका शब्द करता हुआ,पैरोंसे भूमिको खोदता हुआ पूँछ ऊपरको उठाकर सींगोकी नोकोंसे नदीके किनारोंको खोदडालता और थोडा २ गोबर करता हुआ, मूत्र करता हुआ नेत्रोंको फाडेहुए गोकुलमेंको आया था, हे राजन् ! जिसके भयंकर शब्दसे गौओंके और स्त्रियोंके गर्भोंका स्राव * और पात अकालमें ही होनेलगा, जिसके कन्धे पैके पुट्ठेपर 'मानो यह पर्वत ही है ऐसा समझकर' मेघ बैठते थे ॥ २-४ ॥ उस भयंकर सींगोंवाले वृषभको देखकर गोपी और गोप बहुत ही डरे,हे राजन् ! सब पशु भी उसको देखकर भयके कारण गोकुल को छोड़कर भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर वह गोप आदि सब ही हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! रक्षा करो, ऐसा कहते हुए गोविंदकी शरण गये तब भगवान् श्रीकृष्णजीने भय से व्याकुल हुए उस गोकुलको देख कर— ॥ ६ ॥ तुम मत डरो, ऐसी वाणीसे गोपोंको धीरज बँधाकर उस वृषभासुरको अपने सामने बुलाया और कहा कि—

* आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात् अर्थात् चार महीनेके भीतर गर्भ गिरे तो उसको गर्भस्राव और पाँचवे या छठे महीने गिरे तो उसको गर्भपात कहते हैं ॥

किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् । इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः । सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् । उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् । कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोशनिर्यथा ॥१०॥ गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं च अष्टादशपदानि सः । प्रत्यपोवाह भगवान् गजं प्रतिगजो यथा ॥११॥ सोपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः । आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्छितः ॥१२॥ तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले । निष्पीडयामास यथाऽऽर्द्रमंबरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादानमवस्थितेक्षणः । जगाम कृच्छ्रं निरृतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥ एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः । विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनो-

---

अरे मन्दबुद्धि दुष्ट! गोपालोंको और गौओंको भय देनेसे तुझे क्या फल मिलेगा?॥७॥ क्योंकि-तेरी समान दुर्बुद्धि दुष्टोंके बलसहित गर्वका नाश करने वाला मैं हूँ, तू मेरे समीप आ, ऐसा कहकर वह श्रीकृष्णजी, हाथोंकी हथेलियोंसे भुजदण्डोंको ठोककर तिस अरिष्टासुरको कोपयुक्त करते हुए ॥ ८ ॥ सखाके कन्धेपर सर्पके शरीरकी समान सुकुमार अपना हाथ फैलाकर श्रीहरि खड़े होगये, इस प्रकार कोपित करनेके कारण क्रोधमें भरा हुआ और जिसके नेत्र निश्चल एवं रुधिरकी समान लाल२ हैं और जिसने अपने सींगोंकी नोकें आगेको करली हैं जिसकी ऊपर को जाती हुई पूँछसे मेघ तितर बितर होगए हैं ऐसा वह अरिष्टासुर, अपने खुरोंसे भूमिको खोदता हुआ श्रीकृष्णकी ओरको तिरछी दृष्टिसे देख कर वेगके साथ इन्द्रके छोड़े हुए वज्रकी समान श्रीकृष्णके ऊपरको दौड़ कर आया ॥९॥१०॥ तब उन भगवान्ने, उसके सींगोंको पकडकर जैसे गजराज दूसरे हाथीको पीछेको ढकेल देता है तैसे उसको अठारह पैर पीछेको ढकेल दिया ॥ ११ ॥ उस समय भगवान्के पीछेको ढकेलनेके कारण भूमि पर पड़ा हुआ वह अरिष्टासुर, फिर उठ कर, जिसके शरीरमेंसे पसीना छूट निकला है और जिसको बड़ा क्रोध आया है ऐसा वह कृष्णके शरीरपरको झपटने लगा ॥१२॥ तब श्रीकृष्णजीने, ऊपरको आने वाले तिस अरिष्टासुरको सींगोंके स्थानमें पकड़कर भूमिपर गिरा कर चरणसे दबा कर 'जैसे गीले वस्त्रको पैरसे दबाकर हाथसे अमेठते हैं और उसमेंका जल निचोड़ कर बाहर निकालते हैं तैसे ही, उसको अमेठ कर उसके रोमोंके छिद्रोंमेंको रुधिर बाहर निकाला और उसका सींग उखाडकर उससे ही उसके ऊपर प्रहार करा तब वह भूमि पर गिर कर-१३ मुखमेंसे रुधिरकी वमन करता हुआ, गोबर तथा मूत्र करता हुआ और अपने पैरोंको तडफड़ाता हुआ, नेत्र फिरा कर बड़ी कष्टदशाको प्राप्त हुआ और अन्तमें मृत्युके घरको पहुँचा, तब सब देवताओंने, श्रीकृष्णजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करी ॥ १४ ॥ इस प्रकार फिर अरिष्टासुरको मार कर गोपोंसे स्तुति करे हुए और गोपियोंके नेत्रोंके मूर्त्तिमान् उत्सवरूप

रसवः ॥१५॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च । रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता । न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ १७ ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः । निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः । ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ १९ ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् । प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥२०॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् । अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥२१॥ भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ । नंदव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ॥ २२ ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः । भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ २३ ॥ मंचाः क्रियंतां विविधा

वह श्रीकृष्णजी बलरामजीके साथ गोकुलमेंको चले गये ॥ १५ ॥ इस प्रकार अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्णजीने अरिष्टासुरको मार डाला तब, जिनका दर्शन देवताओंकी समान है ऐसे भगवान् नारद ऋषि मथुरामें कंससे मिल कर कहने लगे कि–हे कंस ! देवकीके आठवें गर्भके नामसे प्रसिद्ध तेरे हाथसे छूटकर गई हुई जो कन्या थी वह, वह यशोदाकी कन्या थी और जो यशोदाका पुत्र कहकर प्रसिद्ध है वह कृष्ण देवकीका आठवाँ पुत्र है और रोहिणीका पुत्र जो बलराम वह देवकीका सातवाँ पुत्र है, यह दोनों वसुदेवके पुत्र हैं, और उनको, तुझसे भय मानने वाले वसुदेवजीने अपने मित्र नन्दजीके यहाँ गुप्तरूपसे रखदिया है, और उन बलराम कृष्ण ने ही तेरे पूतना आदि दैत्य मारे हैं १७ ऐसा नारदजीका भाषण सुनकर जिसकी इंद्रियें खलबला गई हैं ऐसे उस भोजपति कंसने वसुदेवजीको मारनेके निमित्त हाथ में तीखी धारकी तलवार उठाई १८ तब वसुदेवजीको मारडालेगा तो यह सुन कर बलरामकृष्ण गोकुलमेंसे भागजायँगे, फिर उन शत्रुओंका वध तेरे हाथसे नहीं होसकेगा इस कारण तू शीघ्रतासे वसुदेवजीका बंधन करके उन अपने शत्रुओंके मारनेका उपाय कर, ऐसी सम्मति देनेवाले नारदजीने उस कंसको रोका, तब वसुदेवके पुत्र बलराम कृष्ण मेरे मृत्युरूप हैं ऐसा जानकर उस कंसने, लोहेकी बेड़ियोंसे देवकी सहित वसुदेवजीको बाँधलिया ॥ १९ ॥ फिर नारद आदिके चले जाने पर कंस ने केशी दैत्यको बुलाकर, हे केशिन् ! तू गोकुलमें जाकर बलराम कृष्णका वध कर ऐसी आज्ञा देकर उसको गोकुलमें भेज दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर वह भोजराज कंस, मुष्टिक, चाणूर, शल तोशलक आदि मल्लोंको, महावतोंको और मंत्रियोंको बुलाकर कहने लगा कि—॥ २१ ॥ अरे ! रे वीरो ! हे चाणूर ! हे मुष्टिक ! तुम यह मेरा आज्ञारूप भाषण सुनो ! नन्दकी गोकुलमें निःसन्देह वसुदेवके पुत्र बलराम कृष्ण हैं, उनसे निःसन्देह मेरी मृत्यु होगी, ऐसा आकाशवाणीने कहा है इस कारण यहाँ आये हुए उनका तुम (चाणूर और मुष्टिक से) मल्ललीला करके मरवा डलवाओ ॥ २२ ॥ २३ ॥ अरे सेवको ! मल्लोंका युद्ध होनेके स्थानके चारों ओर एकसे एक सटा हुआ इसप्रकार बैठनेके निमित्त ऊँचे २

मल्लरङ्गपरिश्रिताः। पौरा जानपदाः सर्वे पश्यंतु स्वैरसंयुगम् ॥२४॥ महामात्र त्वया भद्र रंगद्वार्युपनीयताम्। द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि। विशसंतु पशून्मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥ इत्याज्ञाप्यार्थतंत्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम्। गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः। नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम्। यथेंद्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥२९॥ गच्छ नंदव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः। आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥ निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः। तावानय समं गोपैर्नंदाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना। यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥३२॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसु-

---

मञ्चान बनवाओ, जिससे कि पुरवासी और देशवासी सब पुरुष उनके ऊपर बैठकर यथेच्छ मल्लयुद्धको देखें ॥ २४ ॥ हे कल्याणकारक महावत ! तू कुवलयापीड नाम वाले हाथीको, रङ्गमण्डपके द्वार पर लेजाकर खड़ा रह, उससे आनेवाले मेरे शत्रु जो राम कृष्ण उनको मरवा देना ॥२५॥ अरे शिवभक्तों ! अब आनेवाली चतुर्दशी तिथिके दिन तुम, शैवशास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार धनुषयज्ञका (धनुषमें शिवजीका आवाहन करके पूजन करनेके यज्ञका) आरम्भ करो और उसमें भक्तोंका मनोरथ पूरा करनेवाले उन शिवजीको प्रसन्न करनेके निमित्त पवित्र पशुओंका वध करो ॥२६॥ इस प्रकार उपाय करनेके निमित्त पुरुषोंको आज्ञा देकर, अपने कार्यके सिद्धान्तको जाननेवाला वह कंस, यादवोंमें श्रेष्ठ अक्रूरजीको बुलवाकर, उनके सन्मानके निमित्त अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ कर बड़ा आनन्द दिखाता हुआ उनसे कहने लगा कि–॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूरजी ! तुम मेरा मित्रभावका कार्य करो, क्योंकि–इन भोज और वृष्णि नामक सकल देशोंमें आदरके साथ मेरा उत्तम हित करनेवाला तुमसे दूसरा कोई नहीं है ॥२८॥ इससे हे मेरा प्रिय कार्य करनेवाले अक्रूरजी ! जैसे अवस्थामें बड़े भी इंद्रने, अवस्थामें छोटे भी वामनरूप भगवान्का आश्रय करके, बलिराजाकी छीनी हुई भी त्रिलोकीकी सम्पदाको फिर पालिया था तैसे ही, मैंने भी अपना बड़ाभारी कार्य साधनेके लिये तुम्हारा आश्रय करा है ॥ २९ ॥ इस कारण तुम, नन्दजीकी गोकुलमें जाओ और तहाँ वसुदेवजीके पुत्र बलराम कृष्ण हैं उनको इस मेरे रथके ऊपर बैठाकर लिवा लाओ, इस काममें विलम्ब मत करो ॥ ३० ॥ विष्णु भगवान्का आश्रय करनेवाले देवताओंने, उन बलराम कृष्णसे मेरी मृत्यु होयगी ऐसा निश्चय कर रक्खा है, इस कारण उनको मारडालनेका मेरा अभिप्राय गुप्त रखकर 'धनुषयज्ञ देखनेके निमित्त तुम दूध दही आदि भेट लेकर राजाकी आज्ञासे चलो ऐसा कहकर' नन्द आदि गोपों सहित उन बलराम कृष्णको यहाँ लिवालाओ ॥ ३१ ॥ तब यहां आये हुए उनको मैं, मृत्युसमान कुवलयापीड हाथीसे मरवादूँगा, यदि कदाचित् उससे वह छूटगये तो वज्रकी समान दृढ़ शरीरवाले चाणूर मुष्टिक आदि मल्लोंसे मरवा

देवपुरोगमान् । तद्बन्धून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् । तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका । जरासंधो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः । तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥ एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ । धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच । राजन्मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् । सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥ मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि । युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मंत्रिणश्च विसृज्य सः । प्रविवेश गृहं कंसस्तथाऽक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

श्रीशुक उवाच । केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ।

दूँगा ॥ ३३ ॥ उनके मरणको प्राप्त होजाने पर शोकसे तप्त हुए उनके वसुदेव आदि बान्धवोंको और वृष्णि, भोज तथा दाशार्होंको मैं ही मारडालूँगा ॥ ३३ ॥ फिर बूढ़े होकर भी राज्यकी इच्छा करनेवाले उग्रसेन पिताको तथा उनके भ्राता देवकको और जो दूसरे मेरे शत्रु हैं तिन सबोंको मारडालूँगा ॥ ३४ ॥ हे मित्र ! फिर यह पृथिवी शत्रुरहित होजायगी, क्योंकि-जरासन्ध राजा ससुर होनेके कारण मेरा पूजनीय ही है, द्विविद नामक वानर मेरा मित्र है, शम्बरासुर, नरकासुर, और, बाणासुर इन्होंने मेरी ही मित्रता करी है, इससे अब उन जरासंध आदिकोंकी सहायतासे मैं देवताओंका पक्ष करनेवाले सकल राजाओंको मारकर पृथ्वीका राज्य करूँगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह मेरे मनकी बात जानकर तुम, धनुषयज्ञ देखनेके निमित्त और मथुरा नगरीकी शोभा देखनेके निमित्त राजाने तुम्हें बुलाया है ऐसा कहकर! शीघ्र ही उन बालक बलराम कृष्णको लिवालाओ ॥ ३७ ॥ अक्रूरजीने कहा कि-हे महाराज ! आपका यह विचार आपकी मृत्युको हटानेवाला होनेसे बड़ा सुन्दर है तथापि मनुष्यको, किसी भी कार्यमें आग्रह न करके फलकी सिद्धि वा असिद्धि के विषयमें मनकी समता रखना चाहिये, क्योंकि-फल उत्पन्न करनेवाला दैव (ईश्वर) है ॥ ३८ ॥ यह प्राणी, दैवके उलटे करेहुए भी मनोरथोंको करके उनकी सिद्धिके लिये परमयत्न करता है परन्तु उन मनोरथोंकी सिद्धि होगई तो हर्षसे, नहीं तो शोकसे युक्त होता है, ऐसा व्यवहार है तथापि मैं सेवक होनेके कारण तुम्हारी आज्ञाको पूरा करता हूँ अर्थात् राम कृष्णको लेनेके निमित्त गोकुलमें जाता हूँ ॥ ३९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार वह कंस, अक्रूरजीसे कहकर फिर सब मंत्रियोंको विदाकरके अपने राजमन्दिरमें चलागया, इधर अक्रूरजी भी अपने घरको चलेगये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें षट्त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥

अब आगे सैंतीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने केशी दैत्यका प्राणान्त करदिया तब नारदजीने आगेको होनेवाले कामकी सूचना करके उन श्रीकृष्णजीकी स्तुतिकरी

सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥ विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः । दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कंपयन् ॥२॥ तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम् । आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ ३ ॥ स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः । जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ४ ॥ तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः । सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतांतरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ५ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् । सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ६ ॥ दंता निपेतुर्भग-

फिर क्रीड़ा करनेवाले श्रीकृष्णजीने, व्योमासुरका वध करा यह कथा वर्णन करी है॥❀॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! कंसका भेजा हुआ केशी दैत्य तो, बड़े घोड़ेका स्वरूप धारण करके गरदनपरके केशोंकी झपेटसे इधर उधरको उड़ायेहुए मेघोंसे और देवताओंके विमानोंसे आकाशको घचाघच करता हुआ और खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ, जिसका वेग मनके वेगकी समान तीव्र है, जिसने अपने हिनहिनाहटके शब्दोंसे सकल जगत्‌को भयभीत करदिया है ॥ १ ॥ जिसके नेत्र विशाल हैं, जिसके मुखका आवड़ा भयंकर है, जिसका कण्ठ पुष्ट है, जो बड़ेभारी काले मेघमण्डलकी समान बड़ा है जिसका चित्त दुष्ट है, वह केशी दैत्य कंसका हित करनेकी इच्छा करके भूमिको डगमगाता हुआ नन्दजीके गोकुलमें पहुँचा ।२। तब अपनी गोकुलको घोड़ेकीसी हिनहिनाहटसे भय देनेवाले और पूँछके बालोंसे मेघोंको तितर बितर करदेनेवाले और युद्धके निमित्त अपनेको (कृष्णको) खोजते हुए केशी दैत्यको, आगे बढ़कर उन भगवान् श्रीकृष्णजीने, अपने सन्मुख बुलाया, तब उस दैत्यने, सिंहकी समान बड़ी भारी गर्जना करी ॥ ३ ॥ और दूसरे जिसका तिरस्कार न करसकें तथा जिसके आगे भी न आसकें ऐसा वह बड़े वेगवाला दैत्य, तिनको देखकर मानो मुखसे आकाशको पिये ही जाता है ऐसा होता हुआ, अपना मुख फैलाकर श्रीकृष्णजीके ऊपरको दौड़ा और उसने अपने पीछेके पैरोंसे उन कमलनयन श्रीकृष्णके ऊपर प्रहार करा ॥ ४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजीने, उसके प्रहार (वार) को बचाकर, और अपनेको मारनेके निमित्त क्रोधसे फैलाए हुए, उसके चरणोंको पकड़कर घर २ घुमा डाला और चार सौ हाथकी दूरी पर तिरस्कारके साथ फेंक दिया और जैसे गरुड़, सहजमें ही सर्पको फेंक कर निर्भय-पनेसे रहता है तैसे ही वह श्रीकृष्णजी निर्भय खड़े रहे ॥ ५ ॥ इस प्रकार भगवान् ने जिसको फेंक दिया है ऐसा वह केशी दैत्य, पहिले मूर्छित होगया और फिर सावधान होकर उठा तथा क्रोधसे अपना मुख फैलाकर वेगके साथ श्रीकृष्णजीको निगल डालनेके निमित्त उनके ऊपरको दौड़ा तब उन श्रीकृष्णजीने भी हँसते हँसते ही उसके मुखमें अपने बायें हाथको, 'जैसे चूहेको पकड़नेके निमित्त उसके भट्टे में सपेरा साँपको घुसाता है तैसे' घुसेड़ दिया ॥ ६ ॥ तब, जैसे तपाये हुए लोहेके

द्रुमस्पृशस्ते केशिनस्तसमयः स्पृशो यथा। बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथामयः संववृधे उपेक्षितः॥ ७॥ समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन्। प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन् क्षितौ व्यसुः॥ ८॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः। अविस्मितोऽयत्नहतारिः स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः॥ ९॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप। कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत॥१०॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर। वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो॥११॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम्। गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः॥ १२॥ आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान्। तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः॥ १३॥ स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम्। अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च॥ १४॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः। यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजंत्यनिमिषा

दुकड़ेसे छुए हुए दाँत गिर पडते हैं तैसे ही भगवान्‌के हाथसे छुए हुए उस केशी दैत्यके सब दाँत गिर पड़े और उसके शरीरमें घुसा हुआ भगवान्‌का हाथ, जैसे औषध सेवन न करनेसे जलोदर आदि रोग बढता है तैसे बढ़ने लगा॥ ७॥ उस समय अत्यन्त ही बढ़ते हुए श्रीकृष्णजीके हाथसे जिसका प्राण घुटने लगा है, शरीर पर पसीना छूट निकला है और जिसके नेत्र फिर गये हैं ऐसा वह केशी दैत्य, पैरोंको फैंकता हुआ और लीद करता हुआ मर कर भूमि पर गिर पडा॥ ८॥ तब प्राणहीन हुए उस केशी दैत्यके, पके हुए फूटके फलकी समान जहाँ तहाँ फटे हुए शरीरमेंसे उन महापराक्रमी श्रीकृष्णजीने, अपना हाथ निकाल लिया तब विना उद्योगके ही शत्रुको मारनेवाले और गर्व न करनेवाले उन श्रीकृष्णजीके ऊपर विस्मयमें हुए देवताओंने फूलोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करी॥९॥ हे राजन्! तदनन्तर एक समय, भगवान्‌के भक्तोंमें अति श्रेष्ठ नारद ऋषि प्रशंसाके योग्य कर्म करनेवाले उन श्रीकृष्णजीके समीप एकान्तमें आकर कहने लगे कि-॥ १०॥ हे कृष्ण! कृष्ण! हे अपरिच्छिन्नस्वरूप! हे योगेश! हे जगदीश्वर! हे वासुदेव! हे जगन्निवास! हे यादवोंमें श्रेष्ठ! हे प्रभो! तुम पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करनेके निमित्त भूमि पर अवतरे हो, इस कारण उस अवतारके योग्य कार्य करके जगत्‌की रक्षा करो; हे कृष्ण! जैसे अग्नि काठमें गुप्तरूपसे रहता है तैसे ही एक तुम ही सकल प्राणियोंकी बुद्धियोंके भीतर रहनेवाले, आत्मा साक्षी, महापुरुष, ईश्वर हो, इस कारण पराधीन जीवोंकी, तुम्हारी प्रेरणाके विना किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होसकती है, तुम स्वतन्त्र हो, इस कारण तुम्हें साधनकी आवश्यकता नहीं है; तुमने आप ही अपनी मायाशक्तिके द्वारा, सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंको उत्पन्न करा है और उन गुणोंके द्वारा, तुम सत्यसंकल्प ईश्वर, इस जगत्‌को उत्पन्न करते हो वही तुम अब राजाओंके रूपमें प्रकट हुए दैत्य, प्रमथ और राक्षसोंका नाश करनेके निमित्त और धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके निमित्त प्रकट हुए हो॥११-१४॥ इस घोड़ेका रूप धारण करनेवाले दैत्यको तुमने लीला

दिवम् ॥ १५ ॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् । कंसं च निहतं द्रक्ष्ये पश्वोऽहनि ते विभो ॥ १६ ॥ तस्यानु शंखयवनमुराणां नरकस्य च । पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् । नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥ १८ ॥ स्यमंतकस्य च मणेरादानं सह भार्यया । मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १९ ॥ पौंड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् । दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ॥२०॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् । कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २१ ॥ अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै । अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२२॥ विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवांछितम् । स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२३॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् । क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः । प्रणिपत्या-

---

से ही मार दिया है, इससे सबोंका कल्याण हुआ है, जिसके शब्दमात्रसे भयभीत हुए देवता, स्वर्गलोकको छोडकर भाग जाते थे॥१५॥ हे प्रभो ! आज ही यहाँ अक्रूर आवेंगे, कल तुम मथुराको जाओगे और परसोंको चाणूर, मुष्टिक तथा दूसरे भी मल्ल, कुवलयापीड हाथी और कंस इनको मारोगे, सो मैं देखूँगा ॥ १६ ॥ फिर पञ्चजनका पुत्र, शंखासुर, कालयवन, मुरदैत्य और नरकासुरका वध, पारिजात वृक्षका लाना, इन्द्रको हराना ॥ १७ ॥ और पराक्रम दिखाना, यह जिसके मूल्य आदि हैं ऐसी राजकन्याओंका विवाह और हे जगत्पते ! द्वारकामें बसते समय, ब्राह्मणकी गौका हरण करनेके कारण गिरगटयोनिको प्राप्त हुए राजा नृगको उस पापसे छुडाना, जाम्बवती सहित स्यमन्तक मणिको फेर कर लाना, मरणको प्राप्त हुए ब्राह्मणके पुत्रको महाकालपुरसे लौटाकर ला देना ॥ १८ ॥ १९ ॥ पौंड्रकका वध, काशीपुरीका जलाना, दन्तवक्त्रका वध और धर्मराजके राजसूय यज्ञमें शिशुपाल का वध ॥ २० ॥ यह तथा और भी, द्वारकामें बसनेवाले तुम, भूमि पर कवियोंके गाने योग्य जो दूसरे चरित्र करोगे वह सब मैं देखूँगा ॥ २१ ॥ फिर भूमिका भार दूर करनेकी इच्छा करनेवाले तुम, अर्जुनके सारथी होकर जो अक्षौहिणियों गिनतीकी सेनाओंका संहाररूप कर्म करोगे वह भी मैं देखूँगा ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! केवल शुद्धज्ञानमूर्त्ति, अपनी परमानन्दस्वरूप दशामें ही सकल मनोरथ पूर्ण हुए, सत्यसंकल्प और चैतन्यशक्तिसे रचाहुआ मायाका कार्यरूप संसारप्रवाह जिनसे सदा हटा हुआ है ऐसे परमैश्वर्यवान् तुम भगवान्की मैं शरण आया हूँ२३ ईश्वर, स्वतन्त्र, अपने वशमें रहनेवाली मायासे महत्तत्वादि सब प्रकारके विषयोंकी कल्पना करनेवाले परन्तु इस समय क्रीड़ाके निमित्त मनुज शरीर धारने वाले, यादव, वृष्णि और सात्वतोंमें आगे गिनने योग्य तुम भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके दर्शनसे आनन्दयुक्त वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारद ऋषि, यादवपति श्रीकृष्णजीको नमस्कार

ऽभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २५ ॥ भगवानपि गोविंदो हत्वा केशिनमाहवे । पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥ २६ ॥ एकदा ते पशून्पालांश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु । चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः २७ तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप । मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २८ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् । मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २९ ॥ गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः । शिलया पिदधे द्वारं चतुःपंचावशेषिताः ॥३०॥ तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् । गोपान्नयंतं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥३१॥ स निजं रूपमास्थाय गिरींद्रसदृशं बली । इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३२ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले । पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३३॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः । स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः

करके जानेके निमित्त उनके आज्ञा देने पर चले गये ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी भी, युद्धमें केशिदैत्यको मारकर गोकुलको सुखी करते हुए प्रसन्न हुये गोपालोंके साथ पशुओंकी रक्षा करने लगे ॥२६॥ एक समय वह बलराम कृष्ण आदि गोपाल, गोवर्द्धन पर्वतके चारों ओर गौओंको चराते हुए कहीं चोर कहीं रक्षक होकर, चुराकर छुरानेका खेल खेलने लगे ॥ २७ ॥ हे राजन्! उन गोपोंमें कितने ही चोर हुए और कितने ही (बलराम कृष्ण आदि) उनके रक्षक हुए और कितने ही मेंढे बने उनमें चोर मेंढोंको चुराकर छुराकर रक्खें और रखवाले उनको ढूँढ कर लावें, ऐसे सब गोपाल निर्भय होकर खेलने लगे ॥ २८ ॥ तब मयासुरका पुत्र बडा मायावी व्योमासुर, गोपालोंका वेष धारकर आप चोर बना और बारम्बार मेंढे बने गोपालोंको ले जाने लगा ॥ २९ ॥ वह महादैत्य, लेले जाकर गोपालोंको पर्वतकी गुफामें रखकर उसका द्वार शिलासे ढक देता था, ऐसा होते २ अन्तमें मेंढे बनेहुए गोपाल पाँच चार ही शेष रह गये ॥ ३० ॥ तब सत्पुरुषोंको आश्रय देनेवाले श्रीकृष्णजीने, उसके तिस कर्मको जानकर, गोपोंको लेजानेवाले तिस व्योमासुरको, जैसे सिंह बलसे भेडियेको पकडता है तैसे एकाएकी पकड लिया ॥३१॥ तब उस बलवान् दैत्यने, गोपके स्वरूपका त्याग कर महापर्वतकी समान अपना स्वरूप धारण कर लिया और अपनेको छुटानेके निमित्त बड़ा उद्योग करा, परन्तु श्रीकृष्णजीके पकड़ लेनेके कारण व्याकुल हुआ वह अपने छुटानेको समर्थ नहीं हुआ ॥ ३२ ॥ भगवानने उसको दोनों हाथोंसे पकडकर भूमि पर पटक दिया और आकाशमें खडे हुए सकल देवताओंके देखते हुए, जैसे यज्ञके पशुको मारते हैं तैसे श्वास घोट कर घूँसोंसे मार डाला ॥३३॥ फिर जिस शिलासे उसने गुफाका द्वार बन्द करा था वह शिला, फोड़ कर अलग करी तथा गोपोंको उस सङ्कटमेंसे छुटा कर, देवता और गोपोंके स्तुति करे हुए वह श्रीकृष्णजी, अपनी गोकुलमेंको चले गये ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त

श्रीशुक उवाच । अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः । उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नंदगोकुलम् ॥१॥ गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यंबुजेक्षणे । भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिंतयत्॥२॥ किं मया चरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः । किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् । विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् । ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामंगलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः । यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपंकजम् ॥६॥ कंसो बताऽद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येंघ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः । कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन्यन्नखमंडलत्विषा ॥७॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः

अब अड़तीसवें अध्यायमें अक्रूरजी जैसा ध्यान करते हुए गोकुलमें गये तैसे ही बलराम कृष्णने उनको घर लेजाकर उनका सत्कार करा यह कथा तथा चतुर्दशीके दिन होनेवाले धनुषयज्ञको देखनेके निमित्त एकादशीके दिन बलराम कृष्णको लानेके निमित्त अक्रूरजीको कंसकी आज्ञा हुई, द्वादशीके दिन प्रातःकाल केशिदैत्यका बध हुआ, फिर नारदऋषि श्रीकृष्णजीकी स्तुति करके चले गये तब तीसरे पहरको व्योमासुरका बध हुआ और सायङ्कालको अक्रूरजी गोकुलमें पहुँचे ऐसा कथाका क्रम वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! परमबुद्धिमान् वह अक्रूरजी भी, जिस रात्रिमें कंसने आज्ञा दी थी उस रात्रिको मथुरामें रह कर प्रातःकालके समय रथ पर बैठ कर नन्द राजाकी गोकुलको जानेके निमित्त चलदिये ॥ १ ॥ वह महाभाग अक्रूरजी, मार्गमें जातेहुए, कमलनेत्र भगवान्‌के विषैं परम भक्तिको प्राप्त हो मनमें ऐसा विचार करने लगे ॥ २ ॥ मैंने ऐसा कल्याणकारक कौनसा कर्म (यज्ञ आदि) करा था ? वा कौनसा परम तप (व्रत उपवास आदि) करा था अथवा सत्पात्र ब्राह्मणको कौनसा दान दिया था ? कि-जिसके कारणसे आज मुझे भगवान्‌का दर्शन होगया ॥ ३ ॥ मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि-शूद्रकी जातिमें उत्पन्न होने वाले पुरुषको जैसे वेदका पढ़ना आदि दुर्लभ है तैसे ही विषयोंमें फँसे हुए मुझको उत्तमकीर्त्ति भगवान्‌का दर्शन होना दुर्लभ है ४ अथवा ऐसा नहीं तो मुझ अधमको भी भगवान्‌का दर्शन होयगा ही, क्योंकि-जैसे नदीके प्रवाहसे बहते हुए तिनुके काठ आदि पदार्थोंमेंसे एकाद् पदार्थ, किसी समय तर कर पार लग ही जाता है तैसे ही कालरूप नदीके प्रवाहके बहाए हुए जीवोंमेसे भी कोई एकाद् जीव तरकर कर्मके बलसे पार लग ही जाता है ॥५॥ इस कारण आज इस गोकुलमें जानेका ध्यान होनेसे ही मेरे पाप निःसन्देह नष्ट होगए हैं और मेरा जन्म सफल हुआ है ऐसा निश्चय होता है, क्योंकि-आज मैं, योगियोंके ध्यान करने योग्य भगवान्‌के चरणकमलको नमस्कार करूँगा ६ अहो ! भगवान्‌के भक्तोंसे बैर करने वाले भी, कंसने आज मेरे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह करा है, क्योंकि-जिस का भेजा हुआ मैं अवतार धारण करनेवाले श्रीहरिके चरणकमलको देखूँगा, हृदय में ध्यान करे हुए जिस चरणकमलके नखोंकी कान्तिसे, पहिलेके ध्यान करने वाले

ससात्वतैः । गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुंकुमांकितम् ॥८॥ द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् । मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरंति वै मृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया । लावण्यधाम्नो भवितोपलंभनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः । स्वमाययात्मन् रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचोविमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः । प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् । यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥१३॥

अम्बरीष आदि भक्त, दुस्तर भी संसाररूप अन्धकारको तर गये हैं ॥ ७ ॥ और जिस चरणकमलकी, ब्रह्मा महादेव आदि देवता, लक्ष्मी देवी और भक्तों सहित ऋषि पूजा करते हैं, इससे जो परमैश्वर्यरूप, परम सौभाग्यरूप और परमपुरुषार्थरूप है प्रेमी भक्तोंको अति सुलभ है ॥ ८ ॥ अक्रूरजी और मनोरथ करते हैं कि— हरिण, मुझे दाहिनी ओर छोड़ कर जारहे इससे मैं आज भगवान्का मुख देखूँगा इसमें सन्देह नहीं है—जिस मुखमें सुन्दर कपोल और नासिका शोभायमान हैं, जिसमें लालकमलकी समान नेत्र हैं हास्यके साथ चितवन है और जो घुँघराले केशोंसे लिपटाहुआ है ॥९॥ और पृथ्वीका भार दूर करनेको अपनी इच्छासे मनुष्य कीसी लीला धारण करने वाले और परमसुन्दरताके आश्रय ऐसे विष्णुभगवान्का यदि मुझको दर्शन होयगा तो क्या सहजमें ही मेरे नेत्रोंकी सफलता नहीं होयगी किंतु होयगी ही१०जो ईश्वर,अपने देखनेमात्रसे ही कार्योंको नष्ट करनेवाले उत्पन्न करने वाले होकर भी अहङ्काररहित हैं और अपने तेजसे (सच्चिदानन्दस्वरूपके साक्षात्कारसे) अज्ञान भेद और भ्रम (जो आत्मा नहीं हैं उन वस्तुओंको आत्मा मानना) से रहित हैं तथापि वह ईश्वर अपने वशमें रहनेवाली मायाके द्वारा केवल अवलोकनमात्रसे ही, प्राण, इन्द्रियें और बुद्धि सहित अपनेमें रचेहुए जीवोंके साथ वृन्दावनमें और गोपियोंके घरोंमें लीलासे क्रीड़ा करतेहुए,कर्म करने वालेकी समान और आसक्त हुएसे प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जिन भगवान्की सब लोकोंके पापोंका नाश करने वाली और महामङ्गलरूप भक्तवत्सलता आदि गुणों करके, गोवर्द्धनको उठाना आदि कर्मों करके तथा बलराम कृष्ण आदि जन्मोंसे मिली हुई अर्थात् उन गुण आदिकोंका वर्णन करने वाली कथारूप वाणियें,कहने वाले सुनने वाले आदि सबोंके जन्मको सार्थक करती हैं,सज्जनोंकी सभाओंको शोभायमान करती हैं और जगत्को पवित्र करती हैं, तथा जो वाणी, भगवान्के गुणोंके वर्णनसे रहित हैं वह पदोंकी सुंदरता आदि अलंकारोंसे शोभायमान होयँ तोभी, वस्त्र आदिसे शोभायमान शवों (मुर्दों) की समान हैं ऐसा सज्जन मानते हैं ॥ १२ ॥ वही भगवान् ईश्वर, निःसन्देह अपने रचे हुए वर्णाश्रम धर्मोंकी मर्यादाका पालन करने वाले इन्द्रादि लोकोंको सुख देनेके निमित्त यादवोंके कुलमेंश्रीकृष्णरूपसे अवतार धारण

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम्। रूपं दधानं श्रिय-
ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथा-
त्प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये। धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च
सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यंघ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्त-
पंकजम्। दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ सम-
र्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम्। यद्वा विहारे व्रजयोषितां
श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य
दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक्। योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा
अप्यंघ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितयार्द्रया दृशा। सपद्यपध्वस्तसम-
स्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशंक ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ मां। आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मा-

करके यश फैलाते हुए गोकुलमें रहते है; जिनके सबका मङ्गल करने वाले यशको देवता गाते हैं ॥ १३ ॥ सत्पुरुषोंके गुरु और गतिरूप, त्रिलोकीमें सुन्दर, नेत्र वालों को परम आनन्द देने वाले और लक्ष्मीके भी प्रिय स्थान ऐसे स्वरूपको धारण करने वाले तिन श्रीकृष्ण भगवान्को आज मैं निःसन्देह देखूँगा, क्योंकि—आज मुझे उपःकाल (पौफटनेका समय) शुभसूचक शकुनोंका दिखानेवाला हुआ है १४ भगवान्का दर्शन होनेके अनन्तर तत्काल रथसे नीचे उतर कर मैं, तिन प्रधान पुरुष बलराम और श्रीकृष्णजीके चरणोंको; कि-जिनका योगियोंने भी साक्षात् दर्शन होनेके निमित्त केवल बुद्धिसे ध्यान करा है उनको साक्षात् नमस्कार करूँगा और उनके साथमें रहने वाले उनके सखा गोपोंको भी नमस्कार करूँगा ॥ १५ ॥ और उस समय चरणतलमें नमस्कार करके पड़े हुए मेरे मस्तक पर वह प्रभु श्रीकृष्णजी, अपना करकमल रक्खेंगे जो करकमल कालरूप सर्पके वेगसे अत्यन्त भय पाने वाले और शरण जाने वाले मनुष्योंको अभय देने वाला है ॥ १६ ॥ जिस करकमल पर इन्द्रने तथा राजा बलिने पूजन और दानका जल समर्पण करके त्रिलोकीका इन्द्रपद पाया है और सौगन्धिक नामक कमलकी समान सुगन्ध वाले जिस करकमलने, अपने स्पर्शसे रासक्रीडामें गोकुलकी स्त्रियोंका श्रम दूर करा है यह कितना आश्चर्य है ! ॥१७॥ यद्यपि मैं कंसका भेजा हुआ उसका दूत हूँ तथापि भगवान श्रीकृष्णजी, मेरे ऊपर यह शत्रुके पक्षका है ऐसी बुद्धि नहीं करेंगे, क्योंकि वह सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी होनेके कारण अपने निर्मल ज्ञान चक्षुसे मेरे मनके बाहरकी और भीतरकी सब चेष्टाओंको जानते हैं, क्योंकि-मैं यद्यपि बाहरसे कंस का पक्ष करता हूँ परन्तु भीतरसे उनका ही पक्ष करता हूँ यह उनको विदित है १८ और भी यदि वह भगवान्, चरणके समीपमें एकाग्रतासे हाथ जोड़कर खड़े हुए मेरी ओरको अपने हास्यसहित कृपामृतसे गीली दृष्टिसे देखेंगे तो, तत्काल मैं, सकल पापोंसे और पुनर्जन्म आदि आशंकाओंसे छूट कर परम आनन्द पाऊँगा ॥ १९ ॥ और दर्शन होनेके अनन्तर वह भगवान्, यदि अपनी भुजाओंको लम्बा करके

रमक उच्छ्वसिष्यतः ॥ २० ॥ लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः । तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥२१॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा । तथाऽपि भक्तान्भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः॥ २२ ॥ किं चाग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ । गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच । इति संचिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि । रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः । ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः॥२५ तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः । रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥ देहं भृतामियानर्थो हित्वा दम्भं

उनसे 'जिसका भगवान्के सिवाय दूसरा कोई भी इष्टदेव नहीं है ऐसा' अति स्नेही मुझ सम्बन्धीको आलिङ्गन करेंगे, तो उसी समय मेरा देह अति पवित्र होयगा और उस आलिङ्गनसे देहका कर्मरूप बन्धन शिथिल होजायगा ॥ २० ॥ तदनन्तर भगवान्के साथ आलिङ्गन पाये हुए और नमस्कार करके हाथ जोड़े खड़े हुए मुझे, वह महाकीर्तिमान् श्रीकृष्णजी, हे काका अक्रूर ! इत्यादि सम्बोधन करके वार्त्तालाप करने लगेंगे तो मेरे जन्मकी सफलता होयगी, सबके पूजनीय भगवान्ने जिसका कुछ भी आदर नहीं करा तिस पुरुषके जन्मको धिक्कार हो ॥ २१ ॥ यद्यपि उन भगवान्का कोई भी पुरुष प्रिय नहीं है, अप्रिय नहीं है, अत्यन्त मित्र नहीं है, दूर करने योग्य नहीं है और उदासीन भी नहीं है तथापि जैसे कल्पवृक्ष अपना आश्रय करने वालोंको ही फल देता है औरोंको नहीं देता है तैसे ही वह परमात्मा, भक्तोंका ही मनोरथ पूर्ण करने वाले होते हैं औरोंका मनोरथ पूर्ण करने वाले नहीं ॥ २२ ॥ यादवोंमें श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजीके बड़े भ्राता बलरामजी हर्षयुक्त होकर, नमस्कार करनेवाले मुझे,हृदयसे लगावेंगे और उस समय जो मैं अञ्जलि करूँगा सो मेरी अञ्जलिको ही पकड़ कर घरमें लिवा जायँगे और तहाँ अर्घ्य पात्र आदिसे मेरा सत्कार करके तदनन्तर मुझसे, कंसने जो उनके माता पिता आदि बान्धवोंको दुःख दिये हैं सो बूझेंगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी, मार्गमें श्रीकृष्णजीका चिन्तवन करते हुए, रथ में बैठकर गोकुलमें पहुँचे उसी समय सूर्यनारायण भी अस्ताचलको पहुँच गये २४ उस समय तिन अक्रूरजीने, जिनके चरणकी रेणुको, सकल लोकपालोंने, अपने किरीटोंमें धारण करा है तिन श्रीकृष्णजीके, पृथ्वीके आभूषणरूप और कमल, यव, अंकुश आदि चिन्होंसे शोभित धूलिमें उमड़े हुए चरणोंके चिन्ह देखे ॥ २५ ॥ तब उन चरणोंके चिन्होंके दर्शनसे होनेवाले आनन्द करके अत्यन्त व्याकुल हुए, प्रेमके कारण जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं और आनन्दसे प्राप्त हुए आँसुओंके कारण जिनके नेत्र भर गये ऐसे वह अक्रूरजी, अहो ! यह श्रीकृष्णजीके चरणोंकी रज ब्रह्मादिकोंको भी दुर्लभ है ऐसा मनमें विचार, रथसे नीचे कूद कर उस

मियं शुचम्। सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥ ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ। पीतनीलांबरधरौ शरदंबुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ। सुमुखौ सुंदरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥ ध्वजवज्रांकुशांभोजैश्चिन्हितैरंघ्रिभिर्व्रजम्। शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥ उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ। पुण्यगन्धानुलिप्तांगौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥ प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती। अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥ दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया। यथा मरकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥३३॥ रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः। पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः। पुलकाचितांग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथांगांकि-

चरणरजमें लोटने लगे ॥ २६ ॥ हे राजन्! कंसकी आज्ञा होनेसे लेकर यहाँ पर्यन्त जो यह श्रीहरिके चिन्होंके दर्शन आदिके द्वारा होनेवाला अक्रूरजीका प्रकार (ढंग) वर्णन करा, इतना ही यह पुरुषार्थ, देहधारी प्राणियोंको गुरुके उपदेशसे, पाखंडीपना, भय और शोकको त्यागकर, श्रीहरिकी मूर्त्तियोंके दर्शन श्रवण आदिसे प्राप्त होने योग्य है इससे अन्य और कुछ प्राप्त होने योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ तदनन्तर उन अक्रूरजीने, श्रीकृष्ण और बलरामको देखा वह बलराम-कृष्ण दुध दुहनेके स्थान में गये हुए थे, पीला और नीला पीताम्बर धारण करनेवाले शरद् ऋतुमेंके कमलकी समान नेत्रवाले, ॥ २८ ॥ ग्यारह वर्षकी अवस्थावाले श्याम और श्वेतवर्ण लक्ष्मीके आश्रयस्थान पुष्ट और लम्बी भुजावाले सुमुख अत्यन्त ही सुन्दर हाथीके पाठे की समान चाल चलनेवाले, २९ ध्वजा, वज्र अंकुश और कमलकी रेखाओं वाले अपने चरणोंसे गोकुलको शोभायमान करनेवाले, उदारचित्त, कृपाकी छटा और हास्ययुक्त अवलोकन करने वाले ३० वर्णन करनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंको इच्छित फल देने वाली मनोहर क्रीड़ा करने वाले, रत्न आदिकी और वनके पुष्पोंकी माला धारण करनेवाले, शरीरको सुगन्धयुक्त चन्दन वा लेपन करे हुए, स्नान करे, निर्मल वस्त्र पहिने, ॥ ३१ ॥ प्रधान पुरुष, सृष्टिसे पहिले भी होने वाले, जगत्के कारण, जगत् के पालक, जगत्की रक्षा करनेके निमित्त मूर्त्तिके भेदसे बलराम और कृष्ण अवतार धारण करनेवाले ॥ ३२ ॥ तथा हे राजन्! अपनी कान्तिसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, और जैसे सुवर्णसे मँढ़ेहुए मरकत मणिका और चाँदीका ऐसे दो पर्वत दीखें तैसे दीखते थे ॥ ३३ ॥ उस समय स्नेहसे विह्वल हुए वह अक्रूरजी, शीघ्रताके साथ रथसे नीचे उतर कर बलराम और श्रीकृष्णजीके चरणोंके समीपमें दण्डेकी समान पड़ गये ॥ ३४ ॥ हे राजन्! भगवान्के दर्शनसे होनेवाले आनन्द के कारण आये हुए आँसुओंसे जिनके नेत्र भर गये हैं और जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े हुए हैं ऐसे वह अक्रूरजी कण्ठ गद्गद होजानेके कारण, मैं अक्रूर नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहनेको भी समर्थ नहीं हुए ॥ ३५ ॥ उस समय शरणागतवत्सल भगवान्ने भी, हमें लिवानेको यह अक्रूर आये हैं, ऐसा जानकर, सन्तुष्ट

तपाणिना। परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥३६॥ संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः। गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाऽथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम्। प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रांतमादृतः। अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः॥३९॥ तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित्। मुखवासैर्गंधमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नंदः कथं स्थ निरनुग्रहे। कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥ योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशंत्या असुतृप्खलः। किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नंदेन सुसभाजितः। अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ छ छ

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे अक्रूरागमनं नाम अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच। सुखोपविष्टः पर्यंके रामकृष्णोरुमानितः। लेभे मनोरथान् सर्वान्

हो, हममें कंसको मारनेकी शक्ति है ऐसा दिखाते हुए ही मानों, चक्रके चिन्हसे चिन्हित अपने हाथसे उनको समीपमेंको उठाकर दृढताके साथ हृदयसे लगाया॥३६ तदनन्तर उदारचित्त, बलरामजी भी, नमस्कार करनेवाले उन अक्रूरजीको आलिङ्गन देकर अपने हाथसे उनके जोड़े हुए हाथोंको पकड़कर श्रीकृष्णजीके साथ उनको घरमें लेगये ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कुशलप्रश्न करके और श्रेष्ठ आसन देकर विधिके साथ अक्रूरजीके चरण धोये और मधुपर्कसे पूजा करी ॥ ३८ ॥ फिर बड़े आदरके साथ प्रभु बलरामजीने, उन अतिथि अक्रूरजीके सन्तोषके निमित्त गौ समर्पण करके और चरणोंकी सेवा आदिसे उनकी थकावट दूर करके बड़ी प्रीतिके साथ उनको शुद्ध और छहों रसों का भोजन कराया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर भोजन करे हुए उनको फिर, परमधर्मज्ञ उन बलरामजीने, ताम्बूल, चन्दन आदिको लेपन और सुगन्धित पुष्पोंकी माला देकर परम सन्तुष्ट करा ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार करे हुए उन अक्रूरजीसे नन्दराजाने बूझा कि-हे यादवोंमें श्रेष्ठ अक्रूर ! अतिक्रूर कंसके जीवित रहते जैसे वधिक ही जिनका रक्षक है ऐसी भेड़ोंको सुख मिलनेका तो नाम ही क्या किन्तु बचना ही कठिन होता है तैसे ही तुम कैसे जीवित रहते हो ? अर्थात् जिनका जीवित रहना भी दुर्लभ है उनसे दूसरा कुशलप्रश्न तो क्या किया जाय ? ॥४१॥ केवल प्राणोंकी तृप्ति करने वाले जिस दुष्ट कंसने विलाप करनेवाली अपनी बहिनके छोटे २ बालकोंकी हिंसा करी, उसकी प्रजा होकर रहनेवाले तुम्हारी क्या कुशल बूझें ? ॥ ४२ ॥ इस प्रकार पहिले अक्रूरजीने जिनसे कुशल बूझी है ऐसे नन्दजीने मधुर वाणीसे जिनका भली प्रकार सत्कार करा है ऐसे अक्रूरजीने, मार्गके सकल परिश्रम (थकावट आदि) को त्यागा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्धमें अष्टत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ छ

अब आगे उनतालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजी मथुराको जाने लगे तब गोपियोंने जो भाषण करा तिसको और यमुनामें अक्रूरजीने जो विष्णुलोक देखा तिसका

पथि यान्स चकार ह ॥१॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने । तथापि तत्परा राजन् न हि वाञ्छन्ति किंचन ॥ २ ॥ सायंतनाशनं कृत्वा भगवान्देवकीसुतः । सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच । तात सौम्यागतः कच्चित्स्वागतं भद्रमस्तु वः । अपि स्वज्ञातिबंधूनामनमीवमनामयम् ॥४॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये । कंसे मातुलनाम्न्यंग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५ ॥ अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः । यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बंधनं तयोः ॥ ६ ॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य कांक्षितम् । सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच । पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः । वैरानुबंधं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् । यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः

वर्णन करा है ॥ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! तदनन्तर पलँग पर सुख से बैठे हुए और बलराम श्रीकृष्णके द्वारा बहुत आदर सत्कार करे हुए उन अक्रूर जीके, उन्होंने मार्गमें जितने मनोरथ करे थे वह सब परिपूर्ण करे ॥ १ ॥ हे राजन् ! लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न होने पर, कौन पदार्थ दुर्लभ है ? तथापि जो भगवान्के भक्त हैं वह किसी पदार्थकी भी इच्छा नहीं करते हैं २ तब देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने,सायंकालके भोजन आदिसे निवटने पर स्वस्थताके साथ उन अक्रूरजी से, कंसका यादवोंके साथ कैसा वर्ताव है ? यह तथा और भी जो कुछ बूझना था सो सब बूझा ॥ ३ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे तात ! हे सौम्य ! तुम्हारा यहाँ आना निर्विघ्नताके साथ तो हुआ है ? क्योंकि-ऐसा ही हमारा इच्छित है, तुम्हारा कल्याण हो, हमारे मित्रोंका, ज्ञातिवालोंका और बान्धवोंका दुःखरहित आरोग्य तो है ? ॥४॥ हे अक्रूरजी ! इस समय ऐसा बूझना भी मुझे योग्य नहीं है, क्योंकि-नाममात्रका हमारा मामा परन्तु वास्तवमें हमारे कुलका रोगरूप जो कंस तिसके वृद्धिको प्राप्त होने पर, अपनी ज्ञातिवालोंकी और उनके बालबच्चोंकी क्या कुशल बूझें ? ॥ ५ ॥ यह बड़े दुःखकी बात है कि-हमारे निमित्तसे पूजनीय माता पिता देवकी वसुदेवको अत्यन्त दुःख हुआ, देखो हमारे निमित्तसे उनके पुत्रोंकी मृत्यु हुई और वह कारागार (जेलखाने) में पड़े ॥ ६ ॥ हे प्रिय अक्रूरजी ! मुझे, तुम अपनोंके दर्शनकी, 'तहाँके लोकोंका वृत्तान्त जाननेके निमित्त' बहुत दिनोंसे इच्छा थी सो आज दर्शन हुआ है, इससे मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ इसकारण हे तात ! तुम्हारे आनेका क्या कारण है सो विस्तारसे कहो ? ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के प्रश्न करने पर अक्रूरजीने, यादवों के ऊपर जो कंस वैरभाव रखता था और वसुदेवजीको मार डालनेका उद्योग करना आदि सब वर्णन करा ॥८॥ जो धनुषयज्ञ देखनेका उसका कपटका संदेशा था और जिस निमित्त (चाणूर आदिकोंसे मरवानेके निमित्त भेट सहित लिवा लानेको) अपनेसे दूतका काम करनेको कहकर कंसने भेजा था और जो नारदजीने वसुदेवजीसे इनका (श्रीकृष्णका) जन्म होना कंससे कहा था सो सब उन अक्रूर

कृष्णो बलश्च परवीरहा। प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान् समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः। उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥ ११ ॥ यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान्। द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यांति जानपदाः किल। एवमाघोषयत्क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम्। रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः। स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥१४॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः। नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरंत्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः। हृदि स्पृशश्चित्रपदाः गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम्। शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिंतयन्त्यो मुकुन्दस्य लीलाविरहका-

जाने श्रीकृष्णजीको वर्णन कर सुनाया ॥ ९ ॥ ऐसा अक्रूरजीका कथन, शत्रुरूप वीरोंको मारने वाले वह श्रीकृष्ण और बलराम सुनकर हँसे और अपनेको मारने का कंसका अभिप्राय गुप्त रखकर धनुष यज्ञ देखनेको हमें राजाने बुलवाया है ऐसा नन्द राजासे निवेदन करा ॥ १० ॥ तब उन नन्दगोपने भी अपने गोकुलमें व्रजकी रक्षा करनेमें नियुक्त करे हुए प्रधानके द्वारा ढँढोरा पिटवाकर सब गोपों को यह सूचना देदी कि—हे गोपो! तुम सब, राजा कंसको भेंट (नजराना) देने के निमित्त दही दूध आदि सब प्रकारका गोरस और सैंतकर रक्खे हुए उत्तम पदार्थोंको लेलो, छकड़ोंमें बैल जोतो कल प्रातःकाल हम सब मथुरापुरीको जाँयगे कंस राजाको गोरस समर्पण करेंगे, होनेवाला बड़ाभारी धनुष यज्ञका उत्सव देखेंगे यह उत्सव देखनेको सब देशोंके लोक चले आरहे हैं ॥ ११-१२ ॥ तब कृष्ण ही जिनका जीवन है ऐसी गोपियें, बलराम कृष्णको मथुरा नगरीमें लिवाजानेके निमित्त गोकुलमें अक्रूर आया है ऐसा समाचार सुनकर अत्यन्त दुःखित हुईं १३ कितनी ही गोपियोंकी तो—मुखकी कान्ति उस समाचारको सुनकर उत्पन्न हुए हृदयके तापसे प्रखर हुए श्वासोंके पवनोंसे मलीन होगई कितनी ही गोपियोंके दुःखसे दुर्बल होनेके कारण पहिरेहुए वस्त्र और हाथोंमेंके कंकण निकलकर गिरने लगे और चोटीके बन्धन खुलकर उनमेंके फूल खसकने लगे ॥ १४ ॥ उन भगवान् के निरन्तर ध्यानसे, दूसरी कितनी ही गोपियोंकी, चित्तकी सकल वृत्तियें हटकर जैसे मुक्त हुए पुरुषोंको अपने शरीरकी भी सुध नहीं रहती है तैसे उन गोपियों को शरीरकी भी सुध न रही ॥ १५ ॥ दूसरी कितनी ही गोपियें, प्रेम युक्त हास्य की प्रेरणा करी हुई मनोहर और चित्रविचित्र पदोंसे युक्त श्रीकृष्णकी बातोंको स्मरण करके मोहको प्राप्त होगईं ॥ १६ ॥ उस समय श्रीकृष्णकी अति सुन्दरगति, रासक्रीड़ा आदि चेष्टा, प्रेम युक्त हास्यके साथ देखना, शोक दूर करने वाली चौल की बातें और परम उदार गोवर्द्धनको उठाना आदि चरित्रोंका चिंतवन करनेवालीं यह सब बातें अब छूटजाँयगी इससे डरीहुईं, विरहसे व्याकुल हुईं, श्रीकृष्णजीकी ओरको चित्त लगाने वालीं और नेत्रोंमेंसे दुःखके आँसू बहाने वालीं कितनी ही गोपियें, ठट्टके ठट्ट इकट्ठी होकर कहने लगीं ॥ १७-१८ ॥ गोपियोंने कहा कि—अरे

तराः । समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः । अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः । तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुंतलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् । शोकापनोदस्मितलेशसुंदरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥ २१ ॥ न नन्दसूनुः क्षणभंगसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत । विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥२२॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् । याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपांगोत्कलितस्मितासवम् ॥ २३ ॥ तासां मुकुंदो मधुमंजुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि । कथं पुनर्नः प्रतिया-

ब्रह्मा ! तुझे किसी अंशमें भी दया नहीं है, क्योंकि-तू सकल प्राणियोंको मित्रभाव से और स्नेहसे इकट्ठा करके सुखका भोग प्राप्त होनेसे पहिले ही उनका परस्पर वियोग करडालता है,इससे यह तेरी लीला छोटे बालकके खेलकी समान निरर्थक है ॥१९॥ जो तू काले घुँघुराले केशोंसे ढकाहुआ,सुंदर कपोल और ऊँची नासिका से युक्त तथा शोक दूर करनेवाले गूढ हास्यसे सुन्दर भगवान्का मुख कमल, हमें दिखा कर फिर उसको हमारी दृष्टिसे अलग करता है इस कारण तेरा कर्म बड़ा निन्दित है ॥ २० ॥ तू जो अपने ही दिये हुए हमारे चक्षुको; विना कुछ विचारे मूर्खकी समान छीनता है इससे तू बडा क्रूर है, यदि कहे कि—तुम्हारा चक्षु तो अक्रूर हर कर लिये जाता है मुझे दोष क्यों देती हो ? तो सुन-जो क्रूर न होय वह अक्रूर होता है वह कभी भी ऐसा नहीं होसकता, इस कारण इस अक्रूर नामसे निःसन्देह तूही यहाँ आया है,यदि कहे कि-मैं कृष्णको लिये जाता हूँ तुम्हारे चक्षुको नहीं तो सुन—जिस तेरे दिये हुए चक्षुसे श्रीकृष्णके नेत्र मुख आदि चाहें जिस एक अङ्ग पर भी, तेरी सब सृष्टिकी चतुराई हम देखती थीं, बन श्रीकृष्णका वियोग होने पर दूसरी कोई वस्तु भी देखने योग्य न होनेके कारण, इन्होंने मेरी सब चतुराईका रहस्य जान लिया ऐसे क्रोधसे तू कृष्णका वियोग करके हमें अन्धा करदेता है ॥ २१ ॥ फिर आपसमें ही कहने लगीं कि–अरी ! श्रीकृष्ण ही एक क्षणमें स्नेहको तोड़ने वाले और नवीन २ स्त्रियोंको प्रिय मानने वाले हैं, देखो–हम घर, स्वजन, पुत्र और पति इन सबको त्याग कर साक्षात् उनकी ही दासी बननेको गईं और उनके करे हुए ही मन्दहास्य आदिसे परवश हुईं ऐसा होते हुए भी अब यह कृष्ण हमारी ओरको देखते भी नहीं हैं ॥२२॥ मथुरानगरीमेंकी स्त्रियोंको यह आनेवाली रात्रि बडी सुप्रभात (सुखसूचक शकुन होनेवाले प्रातःकालसे युक्त) होयगी और उनके मनोरथ भी निःसन्देह सत्य होंगे, क्योंकि-वह पुरवासिनी स्त्रियें,नगरमें प्रवेश करने वाले श्रीकृष्णके कटाक्ष देखनेसे बढ़े हुए हास्यरससे युक्त मुखको आदरके साथ देखेंगी ॥ २३ ॥ यदि कहो कि–दो तीन दिन ऐसा होय, परन्तु फिर हमारे स्नेहके खैंचे हुए और नन्द आदिकोंके पीछेको लौटाये हुए वह कृष्ण फिर

स्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजांधकवृष्णिसात्वताम् । महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यंति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥ मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः । योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥२६॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः । गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन्कुलवृद्धबांधवाः । मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्द्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥ यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलाऽवलोकपरिरंभणरासगोष्ठ्याम् । नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो

गोकुलको आजायँगे ? तो हे गोपियों ! सुनो-यह श्रीकृष्ण यद्यपि आप धीरजवान् हैं और नन्दादिकोंकी आज्ञामें भी हैं तथापि उन नगरकी स्त्रियोंकी मधुर (शहत) समान मीठे और मञ्जुल वार्तोसे चित्तके खिचनेसे और उनके लज्जायुक्त हास्योंसे तथा सुन्दर विलासोंसे उनमें ही आसक्त होजायँगे फिर ग्राममें रहने वाली (चतुराई रहित) हमारी ओरको कैसे आवेंगे ? अर्थात् नहीं आवेंगे ॥ २४ ॥ और अब हमारे उत्साहका सेवन करने वाले दूसरे ही होंगे, क्योंकि-आज उस मथुरापुरीमें, लक्ष्मीके पति और सुन्दरता आदि गुणोंके आश्रय ऐसे देवकीके पुत्रको जो देखेंगे उन-दाशार्ह, भोज, अन्धक, वृष्णि और सात्वत आदि यादवोंकी और मार्गमें जाने वाले तिन श्रीकृष्णको देखने वाले और लोकोंकी भी दृष्टियोंको आज अवश्य परम ही आनन्द प्राप्त होयगा ॥ २५ ॥ अब बड़बड़ाती हुईं अक्रूरजीसे कहती हैं कि-ऐसा दुष्ट कर्म करने वाले निर्दयी पुरुषका, 'अक्रूर' यह श्रेष्ठ नाम ही योग्य नहीं है, क्योंकि-यह तो बड़ा ही क्रूर है, देखो-जो यह अक्रूर, अत्यन्त दुःखित हुई हमें बिना समझाये ही, प्राणोंकी अपेक्षा भी अतिप्रिय श्रीकृष्णको, जहाँ हमारी दृष्टि न पड़ेगी ऐसे स्थानमें लिवाये जाता है ॥२६॥ अरे ! यह कठोरचित्त श्रीकृष्ण जानेके निमित्त रथ पर बैठे हैं और उनके पीछे यह मदोन्मत्त गोप भी छकड़ों पर बैठ कर जानेकी शीघ्रता कर रहे हैं,भला इनका अन्याय देखकर उपनन्द आदि बूढे गोप भी तो नहीं रोकते हैं, इससे प्रतीत होता है कि-हमारा दैव ही प्रतिकूल होकर यह ऐसे कार्य कर रहा है यदि हमारा दैव अनुकूल होता तो इनमेंसे एकादको तो कुछ विघ्न होता अथवा अचानक वज्र ही टूट पड़ता और ही कुछ अनिष्ट होजाता, सो कुछ भी नहीं होता है इस कारण जब दैव ही प्रतिकूल है तो हमारे जीवनको भी धिक्कार है ॥ २७ ॥ अब साहस करनेका निश्चय करती हैं कि-हम सब एकत्र इकट्ठी होकर कृष्णके समीप जाकर मथुरा जानेको उन्हें निषेध कर आवें, यदि कहो कि-ऐसा करनेसे वृद्ध पुरुषोंको कोप होयगा तो सुनो—आधे पलको भी जिसका त्यागना कठिन है ऐसे कृष्णके सङ्गसे प्रारब्धवश वियोग होनेके कारण दीनचित्तहुई हमारा कुलके वृद्ध पुरुष और बांधव क्या करेंगे ? इस दशाको पहुँचीहुई हमें तो इससमय मृत्युका भी भय नहीं है ॥ २८ ॥ हे गोपियों ! जिन कृष्णकी, स्नेहके साथ होने

दुरन्तम् ॥२९॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक्। वेणुं क्वणन्स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ३० श्रीशुक उवाच। एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः। विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविंद दामोदर माधवेति ॥३१॥ स्त्रीणामेवं रुदंतीनामुदिते सवितर्यथ। अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम्॥ ३२॥ गोपास्तमन्वसज्जन्त नंदाद्याः शकटैस्ततः। आदायोपायनं भूरि कुंभान् गोरससंभृतान् ३३ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरंजिताः। प्रत्यादेशं भगवतः कांक्षंत्यश्चावतस्थिरे३४ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः। सांत्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥३५॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च। अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने। विशोका अहनी

वाले सुंदर हास्य, मनोहर भाषण, लीलाके साथ कटाक्षसे देखना और आलिङ्गनसे युक्त रासक्रीडारूप सभामें,हमने बहुतसी रात्रियें एक क्षणकी समान बिताई हैं ऐसे इन श्रीकृष्णके विना अब दुःसह विरह दुःखको कैसे सहें ? वह तो सहन करना बड़ा कठिन है ॥२९॥ दुःख सहना दूर रहा परन्तु हमारा जीवित रहना भी कठिन है ऐसा वर्णन करते हैं कि—जो श्रीकृष्ण प्रतिदिन सायंकालके समय; बलरामके साथ गोपोंसे घिरे हुए और गौओंके खुरोंसे उड़ीहुई धूलिसे जिनके कण्ठकी माला और घुँघुराले केश मलिन होरहे हैं ऐसे होकर गोकुलमें प्रवेश करते हैं और मुरली बजाते हुए मन्द मुसकुरानके साथ हमारे चित्तको हरते हैं उन कृष्णके विना अब हम जीवित भी कैसे रहें ? ॥३०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार कहती हुईं, जिनके चित्त श्रीकृष्णके विषें अत्यन्त आसक्त होरहे हैं और आगेको होने वाले श्रीकृष्णजीके विरहसे घबड़ाई हुईं वह सब गोपियें, लज्जाको त्याग कर बड़े ऊँचे स्वरसे हे गोविन्द!हे दामोदर!हे माधव ! इस प्रकार पुकार पुकारकर रोने लगीं ॥३१॥ इस प्रकार स्त्रियोंके रोते हुए, सूर्योदय होने पर स्नान सन्ध्या आदि तिन नित्य कर्मसे निबटे हुए अक्रूरजीने, जिसके भीतर बलराम कृष्ण बैठे हैं ऐसा रथमथुराकी ओरको हाँक दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर राजा कंसके देने योग्य बहुतसी भेट (नजराने) और गोरससे मुँहपर्यन्त भरे हुए कलश लेकर नन्द आदि गोप, अपनी अपनी गाड़ियों पर बैठ कर उस रथके पीछे चल दिये ॥ ३३ ॥ उस समय सब ही गोपियें, तिन प्रिय श्रीकृष्णजीके पीछे चलने लगीं तब,उन्होंने रथमेंसे पीछे को फिर कर देखनेके कारण वह कुछ एक आनन्दको प्राप्त हुईं और अपनेको लौट जानेके विषयमें भगवान्की आज्ञा होनेकी बाट देखती हुईं तहाँ ही खडी रहीं ।३४। तब यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णजीने, अपने मथुराको जानेके कारण अत्यन्त दुःखको प्राप्त हुईं उन गोपियोंको देख कर 'मैं शीघ्र ही आऊँगा' ऐसा दूतसे कहलाकर भेजे हुए प्रेमयुक्त भाषणोंसे उनको समझाया ३५ तब जिन्होंने अपने मन श्रीकृष्णजीके साथ भेज दिये हैं ऐसी वह गोपियें,जब तक श्रीकृष्णजीके रथकी ध्वजा दीखती रही और तदनन्तर जब तक उस रथसे उड़ी हुई धूलि दीखती रही तब तक जैसे चित्रमें

निन्युर्गायंत्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप । रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् । वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥ अक्रूरस्तावुपामंत्र्य निवेश्य च रथोपरि । कालिंद्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन्सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् । तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः । तर्हि स्वित्स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः । न्यमज्जद्दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत्स्तूयमानमहर्निशम् । सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् । नीलाम्बरं विसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्संगे घनश्यामं पीतकौशेयवास-

बनाई हुई स्त्रियें निश्चल रहती हैं तैसे ही निश्चल रह कर-॥ ३६ ॥ तदनन्तर दूर गये हुए श्रीकृष्णके पीछेको फिरनेमें निराश हुई वह गोपियें,तहाँसे पीछेको लौटीं और प्रिय कृष्णके चरित्रोंको गाकर शोक रहित होतीहुईं एक २ रात्रि और एक २ दिन को विताने लगीं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इधर बलराम और अक्रूरजी सहित वह श्रीकृष्णजी भी,वायुकी समान वेग वाले रथके द्वारा पापोंका नाश करने वाली यमुनाके तटपर पहुँचे३८तहाँ वृक्षोंकी झाडीमें रथको खडा करके उसके ऊपरसे बलरामसहित श्रीकृष्णजी नीचे उतरे और उस यमुनाके निर्मल तथा इन्द्रनीलमणिकी समान श्यामवर्ण जलसे हाथ पैर और मुखको धोकर तथा जल पीकर फिर वृक्षोंकी झाडी में आकर वह बलरामसहित श्रीकृष्णजी रथ पर बैठ गये ॥ ३९ ॥ तब जिनको शत्रु से शंका हुई है ऐसे अक्रूरजी भी, बलराम कृष्णको रथ पर बैठा कर फिर उनसे आज्ञा लेकर मध्याह्न का कृत्य करनेके निमित्त यमुनाके गम्भीर जलमें घुसे और तहाँ उन्होंने विधिपूर्वक स्नान करनेका प्रारम्भ करा ॥ ४० ॥ और उस जलमें डुबकी मार कर सनातन ब्रह्मरूप प्रणवादि मन्त्रका जप करने लगे, इस समय उन अक्रूर जीने तहाँ एक स्थानमेंको बलराम कृष्णको भी देखा ॥ ४१ ॥ तब वह अक्रूरजी वह रथ पर बैठे हुए वसुदेवके पुत्र यहाँ कहाँसे आये ? यदि रथ परसे उतर कर यहाँ आये होंगे तो रथ पर नहीं होंगे, ऐसी तर्कना करके उन्होंने ऊपरको मस्तक उठा कर रथकी ओरको देखा ॥ ४२ ॥ सो तहाँ वह पहिलेकी समान बैठे हैं ऐसा उनकी दृष्टि पड़ा तब जलमें जो मुझे दर्शन हुआ वह झूठा है वा सच्चा, इसका निश्चय करनेके निमित्त अक्रूरजीने फिर जलमें डुबकी लगाई ॥ ४३ ॥ सो तहाँ भी फिर उन्होंने, शिर झुकाए हुए सिद्ध, चारण, गंधर्व और असुर जिनकी स्तुति कर रहे हैं, सहस्र मस्तकों वाले, सहस्र फणोंके ऊपर किरीट धारण करनेवाले, देदीप्यमान, काले वस्त्र धारण करने वाले, कमलके कंद (भँसीडेकी) समान श्वेतवर्ण और जैसे चाँदीका कैलास पर्वत सुवर्णके शिखरोंसे शोभायमान होता है तैसे फणोंके ऊपरके किरीटोंसे शोभायमान होनेवाले शेषजीको देखा ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उनके कुण्डलाकार करे हुए आधे शरीर पर शयन करे हुए मेघकी समान श्यामवर्ण,

सम् । पुरुषं चतुर्भुजं शांतं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् । सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥ प्रलंबपीवरभुजं तुंगांसोरःस्थलश्रियम् । कंबुकंठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् । चारुजानुयुगं चारुजंघायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥ तुंगगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् । नवांगुल्यंगुष्ठदलैर्विलसत्पादपंकजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकांगदैः । कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुंडलैः ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शंखचक्रगदाधरम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनंदनंदप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः । सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥५३॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः । स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥५४॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कांत्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया । विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुभृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः । हृष्यत्तनूरुहो

पीला रेशमी पीताम्बर पहिने चारभुजा वाले, शान्त, कमलके पत्रकी समान कुछ एक लाल नेत्रवाले ॥ ४६ ॥ सुन्दर और प्रसन्नमुख, सुन्दर हास्यके साथ देखने वाले, सुन्दर भ्रकुटि, ऊँची नासिका, सुन्दर कान, मनोहर कपोल और लाल २ अधर ओठ वाले ॥ ४७ ॥ घुटनोंपर्यंत लम्बी और पुष्ट भुजा, ऊँचे कंधे वाले और वक्षःस्थल पर लक्ष्मीको धारण करे हुए, शंखकी समान तीन रेखाओंसे युक्त कंठ, गहरी नाभि और त्रिवलीयुक्त पीपलके पत्तेकी समान पेटवाले ॥ ४८ ॥ विस्तारवाले कमरके पीछेके भागसे और हाथीकी सूँड़की समान सुन्दर दोनों ऊरुसे युत, सुन्दर दोनों जानुओंसे और मनोहर दोनों जंघाओंसे युक्त ॥ ४९ ॥ थोड़ीसी ऊँची जो एड़ी और लाल २ जो नखोंका समूह उसकी कान्तिसे युक्त, नवीन, अंगुलि और अँगूठे ही मानो जिनमें पंखड़ी हैं ऐसे चरणकमलोंसे युक्त ॥ ५० ॥ बहुत मोल के रत्नोंके समूहोंसे जड़े हुए किरीट, कड़े, तोड़े, बाजूबन्द, कमरकी जंजीर, यज्ञोपवीत, हार, नूपुर, और कुण्डलोंसे प्रकाशवान् दाहिने हाथमें कमल धारण करे और शेष तीन हाथोंमें शंख चक्र और गदाको धारण करनेवाले, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिन्ह, कण्ठमें कौस्तुभमणि और वनमाला पहिने ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ तथा निर्मलचित्त नन्द सुनन्द आदि पार्षदों करके 'अपने स्वामी हैं, इस बुद्धिसे, सनकादि ऋषियों करके ब्रह्मबुद्धिसे, ब्रह्मा रुद्र आदि देवेश्वरों करके महेश्वर बुद्धिसे, मरीचि आदि श्रेष्ठ नौ ब्राह्मणों करके प्रजापतिबुद्धिसे और प्रल्हाद, नारद, वसु आदि उत्तम भगवद्भक्तों करके 'भगवान् हैं' ऐसी बुद्धिसे अर्थात् सब भक्तोंसे भिन्न भिन्न अभिप्रायों करके स्तुति करे हुए ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या, अविद्या, शक्ति, और माया इन बारह शक्तियों करके सेवा करे हुए ॥ ५५ ॥ ऐसे देवको देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए, उत्तम भक्तिमान्, जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगए हैं और प्रीतिकी अधिकता से गद्गदचित्त होकर आनन्दके आँसुओंसे नेत्र भर आये हैं ऐसे वह अक्रूरजी, धीरे धीरे धीरजका आश्रय करके, मस्तकसे भगवान्को नमस्कार कर और हाथ जोड़

भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥ गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः । प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृतांजलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ छ छ

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरस्तियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९

अक्रूर उवाच । नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् । यन्नाभिजातादरविंदकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि । सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽगभूताः ॥२॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः । अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजंत्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् । साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः । यजंते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥५॥

कर एकाग्रचित्त होते हुए गद्गद हुई वाणीसे उन भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके पूर्वार्धमें एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त

अब आगे चालीसवें अध्यायमें अक्रूरजीने, यह श्रीकृष्ण ब्रह्मादिकोंके भी ईश्वर हैं ऐसा जान भक्तिके साथ नमस्कार करके उनकी सगुण निर्गुण भेदोंसे स्तुति करी, ऐसी कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ अक्रूरजीने कहा कि-हे कृष्ण ! सब कारणोंके कारण, आदि, पुरुष और अविनाशी ऐसे तुम नारायणको मैं नमस्कार करता हूँ, जिन तुम्हारी नाभिमेंसे प्रकट हुए कमलकोशमेंसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं और फिर उन ब्रह्माजीसे यह सृष्टिरूप सकल लोक प्रकट हुआ है ॥ १ ॥ पृथिवी; जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, माया पुरुष, मन, इन्द्रियें, विषय और देवता यह जितने जगत्‌के कारण हैं सो सब ही तुम्हारी श्रीमूर्तिसे उत्पन्न हुए हैं २ यह मायादिक सब ही पदार्थ, सबके आत्मा जो तुम तिनके स्वरूपको नहीं जानते हैं, क्योंकि-यह प्रत्यक्ष आदि कारणोंसे जड़रूपसे ग्रहण करे गये हैं, अब यह पदार्थ, जड़ होनेसे कारण मुझे न जानो परन्तु इन सबोंको और अपनेको भी जाननेवाला जो जीव वह तो मुझे जानता होगा, ऐसा कहो तो-उत्तम कोटिका जीव (ब्रह्मा) भी, मायाके गुणोंसे बँधाहुआ होनेके कारण, तिन गुणोंसे भी पर ऐसे तुम्हारे स्वरूपको नहीं जानता है फिर दूसरा जीव कहाँसे जानेगा ? अर्थात् कर्भी नहीं जान सकता ॥ ३ ॥ अब यदि कोई नहीं जान सकता तो जीवोंका संसारसे छुटकारा कैसे होयगा ऐसा कहोगे तो-साक्षात् अगोचर भी तुम्हारा किस मार्गसे भजन करनेवालोंको तुम प्राप्त होते हो, ऐसा वर्णन करते हैं-योगसाधन करनेवाले कितने ही योगी, साक्षात् महापुरुष और अन्तर्यामी ईश्वररूप तुम्हारी आराधना करते हैं दूसरे कितने ही आत्मज्ञानी पुरुष, शरीरके नेत्र हृदय आदि अङ्गोंके, सकल प्राणिमात्रके और सकल देवनओंके साक्षी ऐसे तुम्हारी आराधना करते हैं ॥ ४ ॥ कितने ही यज्ञ आदि करनेवाले ब्राह्मण, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें विस्तारके साथ कही हुई यज्ञ करनेकी रीतियोंके द्वारा इन्द्र, वरुण आदि अनेकों देवताओंके नामोंसे तुम्हारा ही पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ कितने ही ज्ञानी पुरुष, सकल कर्मों

एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः । ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजंति ज्ञानविग्रहम् ॥६॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते । यजंति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्त्तिकम् ॥ ७ ॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् । बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजंति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् । येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो । विशन्ति सर्वतः सिंधुं तद्वत्त्वां गतयोऽततः ॥१०॥ सत्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः । तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥ ११ ॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे । गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्त्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥ अग्निर्मुखं तेऽवनिरंघ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः । द्यौः कं सुरेंद्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥

को त्याग कर और शान्तभावका आश्रय करके समाधिके द्वारा तुम ज्ञानमूर्त्तिकी ही आराधना करते हैं ॥६॥ दूसरे जो पञ्चरात्रमें कही हुई विधिसे वैष्णवदीक्षाके संस्कारको प्राप्त हुए हैं वह तुम्हारे स्वरूप करके अपने आत्माका चिन्तवन करते हुए, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन भेदोंसे बहुत मूर्त्ति वाले और नारायणरूपसे एक मूर्त्तिवाले ऐसे तुम्हारी उपासना करते हैं॥७॥ हे भगवन्! दूसरेके कहेहुए पाशुपत आदि मार्गसे और अनेकों आचार्यों के कहेहुए उनमेंके नानाकितने ही उपासक शिवजी प्रकारके भेदोंसे शिवरूप तुम्हारी ही उपासना करते हैं८हेप्रभो! जो कोई दूसरे क्षुद्र देवताओंके भक्त हैं वह भी, यद्यपि तिन२ देवताओंमें परमेश्वर बुद्धि रखनवाले हों तथापि वह सब ही सकल देवताओंके अन्तर्यामी तुम परमेश्वर की हीउपासना करते हैं९हे प्रभो ! जैसे पर्वतोंमेंसे उत्पन्नहुई नदियें, मेघोंके जलसे भरते ही चारों ओरसे समुद्रमें ही प्रवेश करती हैं, तैसे ही नाना प्रकारके भजन करनेके मार्ग भी; तिन २ देवताओंके द्वारा अन्तमें तुम्हारी ही प्राप्ति करा देनेवाले होते हैं ॥१०॥ क्योंकि-सत्व, रज और तम, यह तुम्हारी शक्तिरूप प्रकृतिके गुण हैं अतः तिनमें ही प्रकृतिकार्योपाधिक ब्रह्मादि स्थावर पर्यंत सकल जीव, अपनी उपाधिके द्वारा ओतप्रोत हैं, वह गुण प्रकृतिमें तथा वह प्रकृति तुममें प्रविष्ट हो रही है इस कारण क्रमसे सब ही तुम्हारे विषैं प्रवेश करते हैं ११ यदि मुझेभी तुम्हारे कथनानुसार प्रकृतिका सम्बन्ध है तो प्रकृतिके कार्यरूप जीवोंमें और मुझमें अन्तर ही क्या रहा ? यदि ऐसा कहो तो हे प्रभो ! तुम्हारी बुद्धि गुणोंमें लिप्त नहीं होती है, तुम सबोंके आत्मा और सबोंकी बुद्धियोंके साक्षी हो, ऐसे तुम्हें प्राप्ति होनेके निमित्त मेरा नमस्कार हो, अविद्याका कराहुआ यह संसार तो देवता मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि देहाभिमानी जीवोंको ही प्राप्त होता है तुम्हैं नहीं प्राप्त होता है इस कारण उन जीवोंमें और तुममें बडा अन्तर है ॥ १२ ॥ हे देव ! जो यह अग्नि है सो तुम्हारा मुख है, सात पातालों सहित भूमि यह तुम्हारे कमरपर्यंत चरण हैं, सूर्य, चक्षु, आकाश नाभि और दिशा कान, सत्यलोक, मस्तक यह इंद्रादिक देवता तुम्हारे बाहु, समुद्र, कोख, वायु—प्राण तथा बल कल्पित है ॥ १३ ॥

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः। निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥१४॥ त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः। यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥१५॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि। तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च। हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे। क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्त्तये ॥ १८ ॥ नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह। वामनाय नमस्तुभ्यं क्रांतत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥ नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणांतकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय

वृक्ष और औषधि—तुम्हारे रोम—मेघ तुम्हारे मस्तक परके केश, पर्वत तुम परमेश्वरके नख और हाड हैं, रात्रि और दिन-तुम्हारा पलक लगाना और खोलना है ब्रह्माजी-तुम्हारी गुह्य इन्द्रिय हैं और वर्षा-तुम्हारा वीर्य है, ऐसा सर्वोने माना है ॥ १४ ॥ इतना ही नहीं किन्तु-बहुतसे जीवोंसे भरे हुए यह लोकपालों सहित लोक, अविनाशी और केवल मनसे ग्रहण करने योग्य तुम पुरुषरूपके विषैं कल्पित हैं और वह-जैसे जलमें मच्छी आदि जलके जीव जितना स्थान मिलता है उसमें विचरते हैं अथवा जैसे गूलरके वृक्षपर असंख्य फल होते हैं और उनमें परस्परकी बातको भी न जानने वाले सहस्रों भुनगे रहते हैं तैसे ही एक ही तुम्हारे विषैं अनन्त ब्रह्माण्ड हैं और उनके भीतर लोकोंमें परस्परकी बात भी न जानने वाले अनन्त जीव रहते हैं ॥१५॥ इस लोकमें क्रीडा करनेके निमित्त तुम,जो २ मत्स्यादि रूप धारण करते हो तिनके द्वारा, आध्यात्मिक आदि दुःखोंको नाश करने वाले तुम्हारे यशको जो जीव आनन्दके साथ गाते हैं वह तरजाते हैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रत राजाकी रक्षा और वेदोंका उद्धार करनेके निमित्त मत्स्यरूप धारण करके प्रलयकालके समुद्रमें विचरने वाले तुम्हें नमस्कार हो, मधुकैटभ नामक दैत्योंको मारनेके निमित्त हयग्रीव अवतार धारण करने वाले तुम्हें नमस्कार हो ॥ १७ ॥ मन्दराचल पर्वतको धारण करनेवाले महाकूर्मरूपी तुम्हें नमस्कार हो, पृथ्वीका उद्धार करनेके निमित्त क्रीडा करने वाले वराहावताररूप तुम्हें नमस्कार हो ॥ १८ ॥ हे साधु पुरुषोंका भय हरने वाले देव ! अद्भुत नृसिंहमूर्त्ति धारण करने वाले तुम्हें नमस्कार हो त्रिलोकीको व्याप्त करडालने वाले वामनरूप तुम भगवान्‌को नमस्कार हो ॥ १९ ॥ घमण्डी क्षत्रियकुलरूप वनको काटने वाले भृगुकुलके अधिपति तुम परशुरामको नमस्कार हो, रावणका नाश करने वाले तुम रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार हो ॥ २० ॥ भक्तोंका पालन करने वाले, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूह मूर्त्ति धारण करने वाले तुम श्रीकृष्णको वारम्वार नमस्कार हो ॥ २१ ॥ दैत्य और दानवोंको मोहित करने वाले परन्तु वास्तवमें शुद्धरूप तुम बुद्ध मूर्त्तिको नमस्कार हो, म्लेच्छरूप क्षत्रियोंका संहार

दैत्यदानवमोहिने । म्लेच्छप्रायःक्षत्रहंत्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥ भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया । अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु । भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् । द्वंद्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥२५॥ यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः । अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः । रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥ सोऽहं तवांघ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये । पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे । पुरु-

---

करनेवाले कल्किरूप तुम्हें नमस्कार हो ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह सब ही जीवलोक तुम्हारी मायासे मोहित होरहा है इस कारण तुच्छ देहादिकोंमें, मैं और मेरा ऐसा अभिमान रखकर कर्ममार्गमें घूमता रहता है ॥ २३ ॥ केवल लोक ही भ्रमण करता रहता हो ऐसा नहीं किन्तु, हे विभो ! मैं भी स्वप्नसमान-देह, पुत्र, घर, स्त्री, धन और स्वजनोंमें मूर्खतासे सत्यता की बुद्धि रखकर भ्रमण कररहा हूँ अर्थात् आसक्त होरहा हूँ ॥ २४ ॥ अनित्य कर्मोंके फलको नित्य माननेवाला, अनात्मरूप देहको आत्मा माननेवाला और दुःखरूप घर आदिको सुखरूप माननेवाला, सुखदुःखादि द्वन्द्वोंमें मग्न रहने वाला, और अज्ञानसे भरा हुआ मैं, अपने परमप्रेमके स्थान तुम्हें नहीं जानता हूँ ॥ २५ ॥ जैसे अज्ञानी पुरुष, जलसे ही उत्पन्न हुए शैवाल और तिनुकोंसे ढके हुए सच्चे जलको छोड़ कर, केवल प्रतीत ही होने वाले मृगतृष्णाके जलकी ओरको दौड़ता है तैसे ही मैं, परमानन्दरूप तुमसे पराङ्मुख होकर मृगतृष्णाके जलकी समान असत् विषयोंमें आसक्त होरहा हूँ ॥२६॥ ऐसा कृपण बुद्धि हुआ मैं, काम और कर्मोंसे क्षोभको प्राप्तहुए और अतिबली इन्द्रियोंसे तिन२ विषयोंकी ओरको खैंचेहुए अपने मनको वशमें करनेको समर्थ नहीं होता हूँ२७हे परमेश्वर ! हे पद्मनाभ ! ऐसा मैं, विषयासक्त पुरुषोंको जिसका पाना कठिन है ऐसे तुम्हारे चरणकी शरण आया हूँ, सो यह तुम्हारी शरण आना भी तुम्हारे अनुग्रहसे ही हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ, यदि कहो कि ऐसा साधुओंके समागमसे होजाता है तो सो भी-जब इस जीवके संसारकी समाप्ति होनेका समय तुम्हारी कृपासे आता है तब ही साधुओंकी सेवासे तुम्हारे विषैं बुद्धि लगती है, तुम्हारी कृपाके विना साधुओंका समागम नहीं मिलता है और साधु समागमके विना तुम्हारे विषैं बुद्धि नहीं लगती है और ऐसा हुए विना मुक्ति भी कभी नहीं प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ ऐसा कह कर पैरोंमें पड़ते हुए नमस्कार करते हैं-सकल ज्ञानोंके कारण, अपरोक्ष ज्ञानस्वरूप, सकल जीवोंको सुख दुःखादि देनेवाले काल-कर्म-स्वभाव आदिके ऊपर भी आज्ञा चलाने वाले, अनन्त शक्ति, तुम परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार हो ॥ २९ ॥ सकल प्राणियोंके निवासस्थान तुम वासुदेवको नमस्कार हो, विषयोंको ग्रहण करने वाली सकल इन्द्रियोंके प्रवर्त्तक तुम्हें नमस्कार हो, हे प्रभो ! शरण आये

षेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च। हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥ छ छ छ

इति श्रीभागवते म० दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४०

श्रीशुक उवाच । स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः । भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१॥ सोऽपि चांतर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्य सत्वरः । कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत ॥ २ ॥ तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिहाद्भुतम् । भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥ अक्रूर उवाच । अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले । त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥ यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले । तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा नोदयामास स्यन्दनं गांदिनीसुतः । मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥६॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रोपसंगताः। वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ॥ ७ ॥ तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयो-

---

हुए मेरी तुम रक्षा करो ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धपूर्वार्द्धमें चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ छ ॥ ❀ ॥ छ ॥

अब आगे इकतालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने मथुरा नगरीमें प्रवेश करते हुए रजकका वध करा और तन्तुवायक (दरजी) तथा सुदामा मालीके ऊपर प्रसन्न होकर इन दोनोंको वरदान दिये यह कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌ने अपना चतुर्भुज स्वरूप दिखा कर उन अक्रूरजीके स्तुति करते हुए, जैसे लोकोंको नाटक दिखाने वाला नट, देखनेवाले लोकोंके प्रशंसा करते हुए अपने नाट्यको समेट लेता है तैसे ही फिर वह अपना स्वरूप समेट लिया ॥ १ ॥ वह अक्रूरजी भी, भगवान्‌को अन्तर्धान हुआ देख कर तत्काल जलमेंसे बाहर निकले और अपना मध्याह्न कालका सब कर्म निबटा कर विस्मयमें होते हुए रथके समीप आये ॥ २ ॥ उनसे श्रीकृष्णजीने बूझा कि–हे अक्रूर ! इस समय तुम्हें भूमि पर, आकाशमें वा जलमें कोई आश्चर्यकारक वस्तु दृष्टि पडी ? क्या तुम्हारी आकृतिसे तो—कोई आश्चर्य देखा है ऐसा हमें अनुमान होता है ॥ ३ ॥ अक्रूरजीने कहा कि–हे कृष्ण ! इस भूमि पर क्या, आकाशमें क्या और जलमें क्या जितने चमत्कार हैं वह सब, विश्वरूप तुममें भरेहुए हैं, फिर तुम्हें देखनेवाले मैंने कौनसा आश्चर्य नहीं देखा अर्थात् सब ही आश्चर्य देख लिये हैं ४ हे ब्रह्मस्वरूप कृष्ण ! जिन तुम्हारे विषैं सब ही आश्चर्य भरे हुए हैं ऐसे तुम परमात्माको देखने वाला मैं भूमिपर आकाशमें वा जलमें तुम्हारे सिवाय दूसरा कौन आश्चर्य देखा है अर्थात् तुम ही आश्चर्यरूप दृष्टि पड़े हो ॥ ५ ॥ ऐसा उत्तर कह कर उन अक्रूरजीने रथ हाँका और दुपहर ढलनेपर राम कृष्णको लेकर मथुराके समीप जाकर पहुँचे ॥ ६ ॥ हे राजन् ! उस समय मार्गमें जहाँ तहाँ इकट्ठे हुए ग्रामके पुरुष तिन वसुदेवजीके पुत्र बलराम कृष्णको देखकर,अपनी दृष्टि पीछे लौटानेको समर्थ नहीं हुए अर्थात् उनको देखते ही रहे ॥ ७ ॥ अक्रूरजी तो स्नान संध्या आदि

ऽमतः । पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान्समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ॥९॥ भवान् प्रविशतामग्रो सहयानः पुरीं गृहम् । वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ॥ १० ॥ अक्रूर उवाच । नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो । त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥११॥ आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज । सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् । यच्छौचेनानुतृप्यंति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्यांघ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्महान् । ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकांतिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेंघ्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोऽपुनन् । शिरसाधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥१५॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्त्तन । यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोस्तु ते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच । आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः । यदुचक्रद्रुहं हत्वा

करनेमें विलम्ब लगा था इसकारण बलराम कृष्णके जानेसे पहिले ही आगे गयेहुए ब्रजवासी नन्दादि गोप, मथुराके समीपके बागमें पहुँच कर तहाँ बलराम कृष्णकी बाट देख रहे थे ॥ ८ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णजी, उनके समीप आकर पहुँचे तब अपने हाथसे अक्रूरजीका हाथ पकड़ कर हँसते हुएसे तिन नम्र अक्रूरजीसे कहने लगे कि-॥९॥ हे तात अक्रूरजी ! हमें ले आये यह समाचार कंससे कहनेके निमित्त आगे नगरीमें जाओ, रथसहित तुम जाओ और कंससे यह समाचार कह कर तत्काल अपने घरको जाओ,क्योंकि हमारे नगरीमें प्रवेश करनेके समय कुछ झगडा होजाना सम्भव है इस कारण हम अब अपना असबाब आदि उतार कर विश्राम लेकर फिर मथुरा नगरीकी शोभा देखेंगे ॥१०॥ अक्रूरजीने कहा कि-हे प्रभो ! तुम दोनोंसे रहित मैं इकला ही मथुरामें प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ, हे नाथ ! हे भक्तवत्सल ! तुम मुझ अपने भक्तको त्याग करनेका मनमें विचार न करो ।११। हे अधोक्षज ! हे परममित्र ! बलराम,गोपाल और मित्रोंके साथ तुम हमारे घरचलो हम सब इकट्ठे होकर आयँगे, तुम हमें सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणरजसे मुझ गृहस्थाश्रमीके घरको पवित्र करो, जिस तुम्हारे चरणको धोनेके जल (गङ्गाजल) से तर्पण करे हुए पितर, अग्नि और देवता क्षण २ में तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥ तुम्हारे दोनों चरणोंको धोकर राजा बलि, परमकीर्त्तिके विषयमें योग्य और गुणोंसे बडा हुआ तथा उसने इससमय सुतलमें और आगेको स्वर्गमें अतुल ऐश्वर्य पाया है और उसने निष्काम भक्तोंकी तुम्हारे स्वरूपकी प्राप्तिरूप उत्तम गति भी पाई है ॥ १४ ॥ तुम्हारे चरणको धोनेसे पवित्र हुए जलोंने, तीनों लोकोंको पवित्र करा है, क्योंकि जिन जलोंको, शिवजी धारण करते हैं और जिनके स्पर्शमात्रसे सगर राजाके पुत्र स्वर्गको चले गये हैं ॥ १५ ॥ हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! हे यदुवंशोत्तम ! हे उत्तमकीर्त्ते ! हे नारायण ! तुम्हें नमस्कार हो ॥ १६ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे अक्रूरजी ! मैं पहिले यादवकुलसे वैर करने वाले कंसको मार कर फिर बलराम सहित तुम्हारे घर आऊँगा और तुम्हारा ही प्रिय किन्तु सब ही

वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव। पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान् कृष्णः संकर्षणाऽन्वितः। मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥ ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम्। ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम्२० सौवर्णशृंगाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् । वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥ जुष्टेषु जालामुखरंध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् । संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्यांकुरलाजतण्डुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः। सवृन्तरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां संप्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना। द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥ काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगले-

सुहृदोंका प्रिय करूँगा ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इसप्रकार भगवान्के कहे हुए अक्रूरजी, कुछ खिन्नसे होकर, नगरीमेंको चले गये और बलराम कृष्णको लिवा लाया ऐसा, कंससे कहकर वह अपने घरको चले गये ॥ १८ ॥ तदनन्तर मथुरा नगरीको देखनेकी इच्छा करने वाले गोपोंसे घिरे हुए और बलरामसहित उन श्रीकृष्णजीने, तीसरे पहरके समय मथुरामें प्रवेश करके वह नगरी देखी ॥ १९ ॥ जिस नगरीमें स्फटिक मणियोंके नगरके द्वार और घरोंके द्वार थे, सुवर्णके बड़े २ किवाड और चौखट थीं, ताँबे और लोहेके अन्न आदि रखनेके कोठे थे, जो चारों ओर खाइयोंके होनेसे भीतर प्रवेश करनेको अशक्य और दूरके बागों तथा समीपके बगीचोंसे अति शोभायमान थी ॥ २० ॥ जो सुवर्णके चौराहे, साहूकारोंके घर और घरोंके योग्य बगीचोंसे तथा कारीगरोंकी दुकानों और घरोंसे शोभायमान थी, जो वैदूर्यमणी,हीरे,स्फटिक,नीलम, मूँगे और पुखराजोंसे बनाये हुए घरोंके छज्जोंपर, वेदियों पर, झरोखोंपर और बैठकोंपर बैठेहुए कबूतरोंके मोरोंके शब्दोंसे गुञ्जार रही थी, जिसमें राजमार्ग (आम सडकें),बाजारोंमेंकी गलियें, और मार्ग तथा चौक झाड़े बुहारे हुए थे और जहाँ तहाँ फूल, अंकुर तथा अक्षत बिखरे हुए थे ॥ २१ ॥ २२ ॥ तिस नगरीमें प्रत्येक घरके द्वारोंके दोनों ओर तंदुलके ऊपर दही और चन्दनसे सींचे हुए जलके भरे घट स्थापन करे हुए थे, उन घड़ोंके चारों ओर फूलोंकी माला और गलेमें दमकती हुई रेशमी वस्त्रकी पट्टियें, मुखमें आम आदिके पल्लव उनके ऊपर पात्रमें दीपोंकी पंक्तियें, फिर बहुतसे फलोंसे युक्त केले और सुपारीके खड़े हुए वृक्ष तथा टाँगी हुई ध्वजा और बाँधी हुई वन्दनवारें थीं ॥ २३ ॥ हे राजन्! इस प्रकारकी तिस नगरीमें अपने मित्रोंके साथ राजमार्गमें को जानेवाले तिन बलराम कृष्णको देखनेके निमित्त उत्कण्ठित होकर शीघ्रतामें भरी हुई नगरकी स्त्रियें अपने घरोंमेंसे निकलकर तिन बलराम कृष्णके सन्मुख आईं और जो घरोंमेंसे बाहर जानेके योग्य नहीं थीं वह कुलकी स्त्रियें, अपने २ घरोंकी अटारियों पर चढ़ गईं ॥ २४ ॥ कितनी ही स्त्रियोंने भड़भड़ीमें पैरोंके गहने

स्वथापराः । कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नांक्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नन्त्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः । स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविंदलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः । जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां दृदच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः । आनन्दमूर्त्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिंदमाधिम ॥२८॥ प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखांबुजाः । अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः । तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥ ३० ॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् । या ह्येतावनु-

हाथोंमें और हाथोंके गहने पैरोंमें पहिनकर, पहिरनेका वस्त्र ओढ़कर और ओढ़नेका वस्त्र पहिनकर तैसे ही चली गईं, कितनियों ही ने, कुण्डल और कङ्कन आदि जो दो २ भूषण कान और हाथ आदिमें धारण करनेके थे उनमेंसे एक २ भूलकर एक २ को ही धारण करके चली गईं, कोई दोनों कानोंमेंके कर्णफूल एक ही कानमें और दोनों पैरोंमेंकी पायजेवें एक ही पैरमें पहिन कर चली गईं कितने ही एक नेत्रमें काजल आंजकर दूसरेमें विना आँजे ही चली गईं ॥ २५ ॥ कितनी ही भोजन कर रही थीं वह भोजनको छोड़ कर तैसे ही चली गईं, कितनियों हीके शरीरको सखियोंने तेल मला था वह स्नान करे विना तैसे ही चली गईं, कितनी ही सो रही थीं वह 'भगवान् आये ऐसा' मार्गमेंके लोगोंका कलकलाहटका शब्द सुनकर गड़बड़ीमें तैसे ही उठकर चली गईं कितने ही माताएँ-बालकोंको दूध पिला रहीं थीं वह बालकोंको छोड़ कर तैसे ही चली गई ॥ २६ ॥ उस समय मतवाले हाथीकी समान चलनेवाले तिन कमलनेत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने, अपनी प्रौढ़ लीलाओंसे, हास्योंसे चितवनोंसे और लक्ष्मीको भी आनन्द देनेवाले शरीरसे उनकी दृष्टियोंको आनन्द देकर उनके मनोंको खैंच लिया ॥ २७ ॥ हे कामादि शत्रुओंको जीतनेवाले राजन् ! वह स्त्रियें कृष्णके गुण वारम्वार सुननेके कारण पहिले ही श्रीकृष्णके विषैं चित्त लगाए हुए थीं, अब वह कृष्णको प्रत्यक्ष देखकर उनकी चितवनसे और हास्यरूप अमृतके छिड़कनेसे सत्कार करी हुई होकर अपने खुले हुए नेत्ररूप द्वारसे अन्तःकरणमें प्रवेश कराए हुए उन आनन्दमूर्त्ति श्रीकृष्णको आलिंगन करके, और शरीर पर रोमाञ्च धारण करके पहिले उनके न मिलनेके कारण जो मनमें अनन्त दुःख था उसको त्यागा ॥ २८ ॥ उस समय जो स्त्रियें महलोंकी अटारियों पर चढ़ी हुई थीं वह श्रीकृष्णजीको देखकर आनन्दसे प्रफुल्लित मुखकमलवालीं होगईं और उन्होंने ढेरों पुष्प लाकर बलराम कृष्णके ऊपर फूलोंकी वर्षा करी ॥२९॥ उस समय हर्षको प्राप्त हुए ब्राह्मणोंने, मार्गमें जहाँ तहाँ तिलक करनेके निमित्त दही और अक्षत, चरण धोनेके निमित्त जलके पात्र, पूजन करनेको पुष्पोंकी माला, चन्दन, मिष्टान्न और फल आदि लेकर उन बलराम कृष्णकी पूजा करी ॥ ३० ॥ उस समय नगरकी स्त्रियें आपसमें कहने लगीं कि-अहो ! जो गोपियें, मनुष्यलोक

पश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कञ्चिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः । दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥३२॥ देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः । भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः । साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः । परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा । बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥३६॥ एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः । रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७ ॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै । दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा । शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् । विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥ नानाल-

को परम आनन्द देनेवाले इन बलराम कृष्णको क्षण २ में देखती हैं उन्होंने पहिले जन्मोंमें कौनसा बड़ा भारी तप करा होगा ? ॥ ३१ ॥ इस प्रकार लोकोंके बातचीत करते हुए श्रीकृष्णजीने, मार्गमें आते हुए, वस्त्र धोनेवाले और वस्त्रोंको रँगनेवाले भी एक रजकको देखा और उसके पास धुले हुए अति उत्तम वस्त्र थे वह माँगे ३२ कहा कि–हे रजक ! वस्त्रादि करके सत्कार करने योग्य हमें तू ये योग्य वस्त्र दे, निःसन्देह देनेवाले तेरा परमकल्याण होगा ३३ इसप्रकार सब पदार्थोंसे सब देशमें और सब कालमें परिपूर्ण उन भगवान्ने जिससे याचना करी है, ऐसा वह कंसका सेवक मदोन्मत्त रजक क्रोधमें होकर निन्दा करता हुआ कहने लगा कि–॥ ३४ ॥ अरे उद्धत पुरुषो ! तुम जो राजाके पहिरनेके वस्त्र माँगते हो सो अरे ! पर्वतों पर और वनोंमें फिरनेवाले तुमने आज पर्यन्त कभी ऐसे उत्तम वस्त्र पहिने भी हैं ? ३५ अरे मूर्खों ! यहाँसे तुम दूसरे स्थानको चले जाओ और अब आगेको तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा होय तो तुम अब ऐसे बढ़िया वस्त्र किसीसे भी न माँगना, क्योंकि-राजाके जो हरकारे हैं वह निःसन्देह तुमसे उद्धतपुरुषोंको बाँधके डाल देते हैं, मार डालते हैं और उनके पासके सब पदार्थ लूट लेते हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार अट्ट-सट्ट बातें करनेवाले उस रजक (धोबी) का शिर उन क्रोधमें हुए देवकीपुत्र श्री-कृष्णजीने, अपने नखोंसे ही देहसे अलग करके भूमि पर गिरा दिया ॥ ३७ ॥ तब उस रजकके सब सेवक वस्त्रोंकी गठरियोंको तहाँ ही छोडकर सब मार्गोंमेंको भागने लगे, फिर श्रीकृष्णजीने वह वस्त्र लेलिये ॥ ३८ ॥ उस समय श्रीकृष्णजीने और बलरामजीने, अपनेको अच्छे लगनेवाले पीले और नीले वस्त्र पहिन कर कितने ही वस्त्र गोपोंको दिये, जो शेष रहे सो भूमिमें डालकर तहाँसे आगेको चल दिये ॥ ३९ ॥ आगे एक प्रेमी तन्तुवाय (दरजी) ने, चित्रविचित्र वर्णके वस्त्रोंके बनाए हुए भूषणोंसे तिन बलराम कृष्णके यथायोग्य वेषकी रचना करदी ॥ ४० ॥ तब जैसे किसी उत्सवमें आभूषण पहिने हुए श्वेत और कृष्ण वर्णके दो हाथी शोभा पाते हैं तैसे, नाना प्रकारके वस्त्रके बने आभूषणोंसे भूषित हुए वह बल-

क्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरजेतुः । स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात्सारूप्यमात्मनः । श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः । तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥ तयोरासनमानीय पाद्यं चार्हणादिभिः । पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्तांबूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो । पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥ भवंतौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् । अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥४६॥ नहि वां विषमादृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः । समयोः सर्वभूतेषु भजंतं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् । पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ४८ इत्यभिप्रेत्य राजेंद्र सुदामा प्रीतमानसः । शस्तैः सुगंधैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥ ४९ ॥ ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौः । प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि । तद्भक्तेषु

राम कृष्ण अत्यन्त शोभायमान होने लगे ॥ ४१ ॥ तब उस तन्तुवाय (दरजी) के ऊपर प्रसन्न हुए भगवान्ने, उसको, देह छूटनेके अनन्तर अपनी समानरूपता (सारूप्यमुक्ति) देनेका संकल्प करा और इस लोकमें (जब तक जीवित रहे तब तक) उसको उत्तम सम्पत्ति, शरीरका बल ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और इन्द्रियोंकी पटुता (यथोचित कार्य करनेकी उत्तम शक्ति) दी ॥ ४२ ॥ तदनन्तर वह बलराम कृष्ण सुदामानामक मालीके घर गये; उनको देखते ही वह शीघ्रतासे उठा और उसने भूमि पर मस्तक नमाकार नमस्कार करा ॥ ४३ ॥ और उनको आसन देकर, पाद्य अर्पण करके तदनन्तर गोपोंसहित उन भगवान्की माला, ताम्बूल, चन्दनका लेपन तथा और पूजनकी सामग्रियें अर्पण करके पूजा करी ॥४४॥ और कहने लगा कि-हे प्रभो ! तुम मेरे घर आये तिससे मेरे ऊपर पितर, देवता और ऋषि प्रसन्न हुए हैं, तुमने मेरा कुल पवित्र करा इस कारण आज मेरा जन्म सफल हुआ है ॥ ४५ ॥ तुम निःसन्देह सकल जगत्के परम कारण हो और साधुओंका पालन करनेके निमित्त तथा उनकी उन्नति करनेके निमित्त मूर्त्तिभेदसे इस लोकमें अवतरे हो ॥ ४६ ॥ तुम जगत्के आत्मा, सबके मित्र, सब प्राणियों पर समानदृष्टि रखनेवाले और अपनी भक्ति करनेवालोंका सेवन करनेवाले हो, तुम्हारी कहीं भी भेददृष्टि नहीं है ॥ ४७ ॥ तुम जगत्के ईश्वर, मुझ दासको आज्ञा करो कि-तुम्हारा मैं कौनसा दासकार्य करूँ-क्योंकि-तुम अपना कहकर स्वीकार करे हुए पुरुषको जो आज्ञा करते हो सो तुम्हारा उसके ऊपर बडा ही अनुग्रह होता है ऐसा समझना चाहिये ४८ हे महाराज ! ऐसी प्रार्थना करके और एकाएकी श्रीकृष्णजीका अभिप्राय जानकर प्रसन्नचित्त हुए तिस सुदामा मालीने, सुगन्धित फूलोंकी गूँथी हुई माला तिन कृष्ण बलराम आदि सकल गोपोंको अर्पण करीं ४९ तब उन मालाओंसे गोपोंसहित भूषित और प्रसन्नचित्त हुए उन वरद मूर्त्ति बलराम कृष्णने, नम्रहुए तिस सुदामा मालीको, इच्छित वर माँगनेकी आज्ञा दी ५० सुदामा मालीने भी उन

च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥ इति तस्मै वरं दत्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम्। बलमायुर्यशःकांतिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥ छ

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे पुरप्रवेशो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच। अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीतांगविलेपभाजनाम्। विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यांतीं प्रहसन् रसप्रदः ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः। देह्यावयोरंगविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते न चिराद्भविष्यति ॥ २ ॥ सैरंध्र्युवाच। दास्यस्म्यहं सुंदर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि। मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः धर्षितात्मा ददौ सांद्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥ ततस्तावंगरागेण स्ववर्णेतरशोभिना। संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरंजितौ ॥ ५ ॥ प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम्। ऋज्वीं कर्त्तुं

सर्वात्मा श्रीकृष्णजीमें अचलभक्ति, उनके भक्तोंमें मित्रता और सकल प्राणिमात्रके ऊपर परमदया यह वरदान माँगलिये ५१ इस प्रकार उसके माँगे हुए वरदानोंको देकर तथा उसके बिना माँगे भी, वंशकी वृद्धियुक्त सम्पदा, बल, आयु, यश और कान्ति यह देकर वह श्रीकृष्णजी बलरामसहित तहाँसे आगेको गये॥५२॥इति श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध पूर्वार्धमें एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ छ छ

आगे बयालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने कुब्जाको सूधाकरा, धनुष तोडा और उसके रक्षकोंका वध करा तथा कंसके कुशकुन देखना और रंगभूमिका उत्साह यह कथा वर्णन करी है॥*॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! तदनन्तर राजमार्गमें को जाते हुए वह श्रीकृष्णजी, हाथमें चन्दन आदिके लेपनका पात्र लेकर, जानेवाली सुन्दरमुखी परन्तु तीन स्थानमें टेढी एक कुब्जा नामवाली तरुण स्त्रीको देख कर हँसे और उसको सुख देते हुए ऐसा कहनेलगे ॥१॥ हे श्रेष्ठ ऊरुवाली! इस नगरी में तू किसकी कौन है ? और यह शरीरको लगानेका लेपन तू किसके निमित्त लिये जारही है ? हे सुन्दरि! यह हमसे सत्य कह, तू किसीके भी निमित्त लेपन क्यों न लिये जाती हो परन्तु यह उत्तम लेपन तू हमें दे, ऐसा करेगी तो शीघ्र ही तेरा कल्याण होगा ॥ २ ॥ कुब्जाने कहा कि-हे सुन्दर! मैं त्रिवक्रा + नामवाली कंसकी, अङ्गको लेपन लगानेके काममें उसकी मानी हुई दासी हूँ, मेरे कुब्जा (कुबड़ी) होनेके कारण निर्बलतासे धीरे २ महीन घिसा हुआ चन्दन कंसको बहुत अच्छा लगता है, इस चन्दनके योग्य तुम्हें छोडकर दूसरा कौन है ? ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर भगवान्के रूप, सुकुमारता, रसिकता, हास्य, वार्त्तालाप और चितवनसे चित्तमें मोहित हुई तिस कुब्जाने, तिन बलराम कृष्णको वह गाढा चन्दनका लेपन दिया ॥ ४ ॥ तदनन्तर बलराम कृष्णके श्वेत और श्यामवर्णसे अन्य (लाल और पीले) वर्णोंसे अति शोभायमान और नाभिके ऊपर शरीर पर लगाए हुए उस

+ कंठ, वक्षःस्थल और कमर इन तीन स्थानोंमें टेढी होनेके कारण उसका त्रिवक्रा नाम था।

मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यंगुल्युत्तानपाणिना । प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥७। सा तदर्जुसमानांगी बृहच्छ्रोणिपयोधरा। मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥८॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् । उत्तरीयांतमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे । त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥१०॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः । मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रु पुंसामाधिविकर्शनम् । साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥ १२ ॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः । नानोपायनतांबूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥१३॥ तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः । विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥१४॥ ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः । तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥१५॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् । वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुरादरे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं

लेपनसे रँगेहुए वह बलराम कृष्ण शोभा पानेलगे ॥ ५ ॥ तब प्रसन्न हुए भगवान्ने अपने दर्शनका फल दिखानेके निमित्त तीन स्थानमें टेढ़ी तिस सुन्दरमुखी कुब्जा को सूधा करनेका मनमें विचार करा ॥ ६ ॥ और अपने दोनों पैरोंसे उसके पैरोंके पंजे दबाकर दो अंगुल ऊपरको उठाए हुए अपने हाथसे उसकी ठोडीको पकड़कर उसका देह ऊपरको उठाया ॥ ७ ॥ तब वह कुब्जा श्रीकृष्णजीके स्पर्श करनेसे ही सीधे हुए शरीरवाली और जिसके नितम्ब तथा स्तन स्थूल हैं ऐसी, स्त्रियोंमें उत्तम स्त्री हुई ॥ ८ ॥ और रूप गुण तथा उदारतासे युक्त और कामातुर होकर वह कुब्जा हँसती हुई, श्रीकृष्णजीके ओढनेके वस्त्रको पकड कर कहने लगी कि—॥ ९ ॥ हे वीर ! आओ घरको चलें, तुम्हें यहाँ त्यागनेको मेरा उत्साह नहीं होता है, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम्हारे निमित्त कामसे क्षुभितचित्त हुई मेरे ऊपर तुम प्रसन्न होओ ॥१०॥ ऐसे उस कुब्जा स्त्रीके प्रार्थना करने पर श्रीकृष्णजी बलरामजीके देखते हुए, गोपों के मुखकी ओरको देखकर मुसकुराये और उससे कहने लगे ॥ ११ ॥ कि—हे सुन्दर भ्रुकुटि वाली स्त्री ! मुझे कुछ कार्य करना है उसको करनेके अनन्तर, पुरुषोंके मन का सन्ताप दूर करने वाले तेरे घर आऊँगा, क्योंकि—हम बटोही पुरुषोंको तेरा ही बड़ा आश्रय है ॥ १२ ॥ इस प्रकारकी मधुर वाणीसे उसको छोड़ कर, आगेको बलरामजीके साथ जाने वाले तिन श्रीकृष्णजीकी, मार्गमें बड़े २ साहूकारोंने, अनेक प्रकारकी भेट, ताम्बूल, माला और चन्दन आदिका लेपन अर्पण करके पूजा करी१३ उन भगवान्के दर्शनसे उत्पन्न हुआ जो मदन तिसके क्षोभसे स्त्रियोंकी तो ऐसी दशा होगई कि—उनको अपने शरीरकी खुलेहुए वस्त्रकी, केशपाशकी, और कङ्कनों की भी सुध नहीं रही, वह केवल चित्रोंकी समान निश्चल होकर खडी होगईं १४ फिर भगवान्ने, पुरवासियोंसे धनुषका स्थान बूझते२ धनुषयज्ञकी शालामें जाकर, तहाँ इन्द्रके धनुषकी समान अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ वह बहुतसे पुरुषों से रक्षा कराहुआ, पूजन कराहुआ और सुवर्णके आभूषण आदिकी समृद्धिसे युक्त

च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् । नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥ १७ ॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः । पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥ १८ ॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः । ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां वध्यतामिति ॥ १९ ॥ अथ तान्दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ । क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥२०॥ बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः । निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥२१॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः । तेजःप्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् । कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् । संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥२४॥ अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् । ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् २५ कंसस्तु

था, उसको देख कर उसके रखवालोंके निषेध करनेपर भी श्रीकृष्णजीने बलात्कार से (जबरदस्ती) वह धनुष उठा लिया ॥ १६ ॥ और महापराक्रमी उन श्रीकृष्णजीने, बाएँ हाथसे सहजमें उठाया हुआ वह धनुष ठीक करके, सब लोगोंके देखते हुए एक निमेषमें ही खैंच कर, जैसे मदांध हुआ हाथी ईख (गन्ने) के दण्डेको तोड़ डालता है तैसे, बीचमेंसे तोड़ डाला ॥ १७ ॥ तब उस टूटते हुए धनुषके शब्दने आकाश, स्वर्ग भूमि और सब दिशाओंको भर दिया, उस शब्दको सुन कर कंस को बड़ा भय हुआ ॥ १८ ॥ तब उस धनुषके जो रखवाले थे उन्होंने अपने अनुचरों सहित क्रोधमें भर कर और शस्त्र धारण करके बलराम कृष्णको पकड़नेकी इच्छा करते हुए और पकड़ो, मारो ऐसा कहते हुए उनको चारों ओरसे घेरलिया ॥१९॥ उस समय मारनेकी इच्छा करने वाले उन धनुषके रखवालोंको देख कर, क्रुद्धहुए बलराम कृष्णने, धनुषके टुकड़े लेकर उनको मार डाला ॥ २० ॥ उस समय कंसकी भेजी हुई सेनाको भी मारकर, वह बलराम कृष्ण उस धनुषयज्ञकी शालामेंसे बाहर निकले और नगरमेंकी सम्पत्तिको देख कर हर्षित हो निर्भयपनेसे नगरमें फिरने लगे ॥ २१ ॥ उन बलराम कृष्णका वह धनुषको तोड़ना आदि आश्चर्यकारी कर्म सुन कर और तेज, प्रौढ़ता तथा सुन्दरता देख कर पुरवासी लोगोंने समझा कि-यह कोई देवताओंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार अपनी इच्छानुसार उनको नगरमें फिरते २ सूर्य अस्त होगया, तब गोपोंसे घिरेहुए वह बलराम कृष्ण, नगरमेंसे अपने ठहरनेके स्थानको लौटकर आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजीके गोकुलमेंसे जातेसमय उनके विरहसे व्याकुल हुई गोपियोंने, अब मथुरावासी लोगोंके सब मनोरथ पूरे होंगे ऐसा जो कथन करा था सो सब तहाँ श्रीकृष्णजीके शरीरकी शोभा देखने वाले लोगोंके सत्य हुए, क्योंकि-जो श्रीकृष्णजीका शरीर, लक्ष्मीने भी अपनी सेवा करने वाले ब्रह्मादि अन्य देवताओंको त्याग कर अपना आश्रय मान कर स्वीकार करा है ॥ २४ ॥ इधर बलरामजीने हाथ पैर धोकर दूध पूरी आदि अन्नका भोजन करा और कंसका कर्त्तव्य जान कर उस रातमें सुखसे शयन करा ॥ २५ ॥ इधर वह

धनुषो भंगं रक्षिणां स्वबलस्य च । वधं निशम्य गोविंदरामविक्रीडितं परम् ॥२६॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः । बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ॥ २७ ॥ अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि । असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ॥२८॥ छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः । स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वंगः खरयानं विषादनम् । यायान्नल-दमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥ ३० ॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च । पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिंतया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते । कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥ ३२ ॥ आनर्चुः पुरुषा रंगं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे । मंचाश्चालंकृताः स्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः । यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥३४॥ कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् । मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता

दुष्टबुद्धि कंस तो-धनुषका टूटना, धनुषके रखवालोंका मारा जाना और अपनी सेनाका नाश करना उन बलराम-कृष्णका केवल खेल होगया ऐसा सुन कर डर गया और उस सारी रात भर उसको नींद नहीं आई और उसने स्वप्नमें तथा जागतेमें मृत्युके सूचक बहुतसे अपशकुन देखे ॥ २६ ॥ २७ ॥ दर्पणमें वा जलमें अपनी परछाईमें अपना शिर नहीं दीखना,चन्द्रमा-दीपक आदि और नेत्रोंके मध्य में अंगुलि आदि कुछ रुकावट न होनेपर भी उन चन्द्रमा-दीपक आदिके दो२ रूप दीखना ॥ २८ ॥ परछाईमें चलनीकेसे छेद दीखना कानको बन्द करने पर जो धुं धुं शब्द सुनाई देता है उसको प्राणघोष कहते हैं उसका, कान बन्द करने पर सुनाई न देना. वृक्षोंमें सुवर्णकी समान पीला वर्ण दीखना; धूलि वा कीच आदि में उभरे हुए अपने चरणोंके चिन्ह न दीखना, यह कुशकुन उस कंसने जागते हुए ही देखे ॥ २९ ॥ और उसने स्वप्नमें प्रेतके साथ आलिङ्गन करना,गदहे पर चढ़कर जाना, विष खाना और जपाके फूलोंकी माला पहिन कर शरीरको तेल लगा कर नङ्गे होकर इकले ही जाना यह कुशकुन देखे ॥ ३० ॥ ऐसेही और भी स्वप्नमें तथा जागतेमें मरणके सूचक कुशकुन देख कर मरणसे भयभीत हुए उस कंसको चिंता से नींद नहीं आई ॥ ३१ ॥ बड़े कष्टसे उस रातके बीत जाने पर जब जलमेंसे सूर्य का उदय हुआ तब उस दिन भी उस कंसने मल्लोंकी क्रीड़ारूप (कुश्तीका) बड़ा उत्साह कराया ॥ ३२ ॥ कंसके सेवक, मल्लयुद्ध होनेके स्थान रङ्गमण्डपको झाड़ बुहार कर फूलोंकी माला आदिसे शोभायमान करने लगे, देखने वालोंके बैठनेके बड़े २ आसन माला, पताका, वस्त्र, बन्दनवार आदिसे भूषित हुए ॥३३॥और उनके ऊपर पुरवासी तथा देशवासी ब्राह्मण क्षत्रिय आदि लोग आकर बैठे और स्थान स्थान पर बिछाये हुए सिंहासनों पर राजे लोग भी सुखसे आकर बैठे ॥ ३४ ॥ राजा कंस तो अपने मन्त्रियोंकी मण्डलीके साथ माण्डलिक राजाओं के मध्यमें, कुशकुन देखनेके कारण हृदयमें काँपता हुआ मुख्य सिंहासन पर आकर बैठा ३५ तदनन्तर जिसमें मल्लोंकी ताल सबकी अपेक्षा अधिक सुनाई आती है ऐसे अनेकों

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च । मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥३६॥ चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च । त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥३७॥ नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः । निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मंच आविशन् ॥ ३८ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मल्लवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

श्रीशुक उवाच । अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप । मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् । अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥ २ ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् । उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठांबष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् । नो चेत्सकुंजरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् । चोदयामास कृष्णाय कालांतकयमोपमम् ॥ ५ ॥ करींद्रस्त-

---

बाजे बजने लगे तब बडे २ मल्ल अपने २ सिखाने वाले आचार्यों (उस्तादों) के साथ सजे हुए, बड़े गर्वके साथ उस मण्डपमें आने लगे ॥ ३६ ॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, आदि मल्ल, सुन्दर बाजोंका शब्द सुन कर उस मल्लभूमिमें (अखाड़ेमें) आने लगे ॥ ३७ ॥ तथा कंसके बुलाए हुए नन्दगोपादि गोप भी, लाई हुई भेंट (नजराने) कंसको अर्पण करके एक मचानपर बैठ गये ॥३८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धमें द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ छ

अब आगे तितालीसवें अध्यायमें बलराम कृष्णने कुवलयापीड हाथीको मार कर रङ्गमण्डपमें प्रवेश करा और फिर श्रीकृष्णजीकी चाणूरके साथ बातचीत हुई यह कथा वर्णन करी है ॥ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! नन्दादिकोंके रङ्गमण्डपमें चले जानेपर 'हमने, धनुष तोड़ना और धनुषके रखवालोंका वध करना आदि कर्म करके अपना ऐश्वर्य सूचित करा तब भी यह कंस हमारे माता-पिता को नहीं छोडता है और हमारे भी मारनेकी इच्छा करता है इस कारण अब इस मामाका भी वध करने पर हमें किसी प्रकारका भी दोष नहीं लगेगा, ऐसा पहिले दिन ही जिन्होंने अपने अपराधका परिहार कर लिया है वह 'बलराम-कृष्ण, शौचसे निवट मुख धोकर, मल्लोंकी तालोंका और दुंदुभियोंका शब्द सुनकर मल्लयुद्ध देखने के निमित्त चल दिये।१।श्रीकृष्णजी, रङ्गमंडपके द्वारके सामने आये सो उसी समय तहाँ आया हुआ कुवलयापीड नामक हाथी, महावतने अपने ऊपरको बड़े वेगसे चलाया है ऐसा देखा।२।तब श्रीकृष्णजीने कमर बाँधकर और बिखरेहुए घुंघुराले केशोंको पीछेको करके मेघकी गर्जनाकी समान गंभीर वाणीमें तिस महावतसे कहा कि३ अरे महावत ! अरे महावत ! हमें मार्ग दे मार्गमेंसे एक ओरको हट, विलंब न कर, तू मार्ग नहीं देगा तो आज ही तुझे यमके घर पहुँचाऊँगा ४ ऐसे ललकारनेपर क्रुद्ध हुए तिस महावतने, अंकुश आदि मारकर कोपित कराहुआ और अन्त करने वाला मृत्यु तिस मृत्युका निमित्त काल तथा तिस मृत्युका प्रेरक यम इन तीनोंका काम एक साथ करनेवाले तिस कुवलयापीड हाथीको श्रीकृष्णको मारनेके निमित्त उनके ऊपरको

प्रभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् । कराद्विगलितः सोमुं निहत्यांघ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् । परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् । विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ८ स पर्यावर्त्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः । बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ततोभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम् । प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः । तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोहनत्क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुंजरेंद्रोऽत्यमर्षितः । चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥ १२ ॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः । निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥ पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया । दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दंत-

लपकाया फिर उस हाथीने बड़े वेगसे श्रीकृष्णजीके सामने जाकर अपनी सूँडसे उनको पकड़ लिया तब वह श्रीकृष्णजी भी उस सूँडमेंसे नीचे गिरकर उस हाथीके शरीर पर घूँसा मारकर उसके पैरोंमें छुपगये॥६॥तब श्रीकृष्णके न दीखनेके कारण अत्यन्त क्रोधमें हुए नाकसे सूँघकर छुपीहुई वस्तु ढूँढनेवाले तिस हाथीने, अपनी सूँडसे श्रीकृष्णजीको ढूँढकर पकड लिया, फिर वह श्रीकृष्णजी, बलात्कारसे (जबरदस्ती) उसकी सूँडमेंसे छूटकर पीछेकी ओरको गये॥७॥ और उन्होंने अति बलवान् भी हाथीकी पूँछको पकड़कर जैसे गरुड़ सर्पको पकडकर खैंचता है तैसे सहजमें ही लीलासे पचीस धनुष (१०० हाथ) पीछेको खैंचा ॥ ८ ॥ फिर वह श्रीकृष्णजी, पूँछ पकड़ने वाले अपनेको पकड़नेके निमित्त जो वह हाथी दाहिनी ओरको लौटे सो उसको बांई ओरको खैंचते हुए और जो वह बांई ओरको लौटा तो उसको बलात्कारसे (जबरदस्ती) दाहिनी ओरको घुमाते थे, इस प्रकार बांई दांई ओरको घुमाए हुए तिस हाथीके साथ, जैसे पूँछ पकड कर फिरायेहुए गौके बछड़ेके साथ छोटासा बालक घूमता है तैसे घूमने लगे ॥ ९ ॥ फिर भगवान्ने उस हाथीकी पूँछको छोड़कर उसके सामने आ, अपने हाथका उसके ऊपर प्रहार करा और उसके चारों ओरको दौड़तेमें पग २ पर उसको अपना स्पर्श करने दिया, नीचे बैठकर उठकर अपनी दौडनेकी चातुरीसे उसको बारम्बार भूमिपर ढकेल कर गिराया ॥ १० ॥ तदनन्तर वह भगवान् दौडनेकी लीलासे हाथीको धोका देनेके निमित्त भूमिपर गिरकर, तत्काल उसको न दीखतेहुए उठकर एक ओरको होगए तब क्रोधमें भरे हुए उस हाथीने, श्रीकृष्ण भूमिपर गिरपड़े ऐसा जानकर उस भूमि पर आकर दाँतोंका प्रहार करा ॥ ११ ॥ तब अपना पराक्रम निरर्थक होनेपर अति-क्रोधमें भरा हुआ और तिस पर भी महावतके अंकुश मारनेसे खिसिआया हुआ वह हाथी वेगसे श्रीकृष्णके ऊपरको झपटा ॥ १२ ॥ मधुसूदन भगवान्ने उस हाथीको आते हुए देखकर उसकी सूँड हाथसे पकडली और उसको भूमि पर पटक दिया ॥ १३ ॥ और गिराये हुए उसके शरीरको चरणसे दबाकर, जैसे सिंह हाथीको दबाकर उसका दाँत उखाडता है तैसे सहजमें ही लीलासे उसका दाँत उखाड

पाणिः समाविशत् । अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिंदुभिरंकितः । विरूढस्वेदकणिकावदनांबुरुहो बभौ ॥ १५ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ । रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥१६॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः । मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ १७ ॥ हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ । कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप॥१८ तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ । यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥ निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप । प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥

कर उस दाँतसे ही उस हाथीको और महावतको मारडाला ॥ १४ ॥ फिर मरे हुए हाथीको छोडकर हाथमें दाँत लिये हुए वह भगवान् रङ्गमण्डपमेंको चल दिये, उस समय कंधेपर हाथीका दाँत रखने वाले तथा जिनके शरीर पर चारों ओर रुधिर की बूँदें छिडकी हुई हैं और जिनके मुख कमल पर पसीनेकी बूँदें छारही हैं ऐसे वह श्रीकृष्ण शोभायमान होने लगे ॥ १५ ॥ हे राजन ! उन इकले श्रीकृष्णजीने ही रङ्गमण्डपमें प्रवेश नहीं किया किन्तु-कितने ही गोपोंसे घिरे हुए वह दोनों भ्राता बलराम कृष्ण, हाथीके दाँतरूप श्रेष्ठ आयुधोंको धारण करके रङ्गमण्डपमें घुसे ॥ १६ ॥ उस समय मानो शृङ्गारादि सब रसोंकी मूर्त्ति ही हैं ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मण्डपमेंके सकल लोकोंको हरएककी इच्छाके अनुसार भिन्न २ रूपके प्रतीत हुए ऐसा वर्णन करते हैं कि-चाणूर मुष्टिक आदि मल्लोंको वज्रकी समान (रौद्ररसरूप), मनुष्योंको राजाकी समान (अद्भुत रसरूप), स्त्रियोंको मूर्त्तिमान् कामदेवकी समान (शृङ्गाररसरूप) नन्दादि गोपोंको स्वजन की समान (हास्यरसरूप) दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवालेकी समान (वीररसरूप) देवकी वसुदेवको बालककी समान (करुणारसरूप), कंसको मृत्युकी समान (भयानकरसरूप) उनका प्रभाव न जाननेवाले अनजान पुरुषोंको परम पराक्रम करने वालेकी समान (बीभत्सरसरूप) योगियोंको परम तत्वकी समान (शान्तरसरूप) और यादवोंको परम देवताकी समान (भक्तिरसरूप) प्रतीत हुए वह श्रीकृष्णजी बलरामजीके साथ रङ्गमण्डपमें गये ॥ १७ ॥ हे राजन् ! कुवलयापीड हाथी मारागया और उन बलराम कृष्णको भी जीतना कठिन है ऐसा देखकर उस समय धैर्यवान् भी वह कंस अत्यन्त भयभीत होगया ॥१८॥ तब विचित्र वेष,आभूषण, माला और उत्तम वस्त्र धारण करके रङ्गमण्डपमें आये हुए वह महापराक्रमी बलराम कृष्ण अपनी कान्तिसे देखने वाले लोकोंके चित्तोंको खैंचते हुए जैसे सभा में उत्तम वेष धारण करने वाले नट शोभा पाते हैं तैसे शोभा पानेलगे॥१९॥ हे राजन ! उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर, मञ्चानों पर बैठे हुए नगरवासी और देशवासी पुरुष,उत्तम हर्षके वेगसे जिनके नेत्र और मुख प्रफुल्लित हुए हैं ऐसे होकर अपने नेत्रोंसे उनके मुखको आदरके साथ पीतेहुए भी तृप्त नहीं हुए॥२०॥वह पुरुष

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया । जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥ २१ ॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् । तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि । अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥ एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् । कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥ पूतनाऽनेन नीताऽन्तं चक्रवातश्च दानवः। अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः । कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥ सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना । वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥ गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् । पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरंति स्माश्रमं मुदा २८ वदंत्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः । श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः । प्रलंबो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥३०॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च । कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥ हे नन्दसूनो हे राम भवंतौ वीरसंमतौ । नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा

नेत्रोंसे मानो राम कृष्णकी मूर्त्तियोंको पी ही रहे हैं, मानों जिव्हासे चाट ही रहे हैं नासिकाके नथुनोंसे मानो सूँघ ही रहे हैं और भुजाओंसे मानो आलिङ्गन ही कर रहे हैं ऐसे दिखाने लगे ॥२१॥ और वह पुरुष, दृष्टि पड़ेहुए, सुन्दरता आदि गुण, प्रेमयुक्त हास्य आदि मधुरता और प्रौढ़पनेसे उनके पराक्रमका स्मरण कराये हुएसे होकर देखी हुई और सुनी हुई उनकी लीलाओंका परस्पर वर्णन करने लगे २२ कहने लगे कि-यह बलराम कृष्ण, साक्षात् श्रीहरि नारायणके अंश हैं और यहाँ वसुदेवके घर अवतारूपसे प्रकट हुए हैं ॥२३॥ यह श्रीकृष्ण, देवकीके विषें उत्पन्न हुए हैं और इनको वसुदेवजीने गोकुलमें लेजाकर रखदिया, सो इतने समय पर्यंत दूसरे किसीके जाननेमें न आकर नन्दके घर बढ़ते रहे ॥ २४ ॥ इन्होंने ही पूतना राक्षसी मारी है, और चक्रवात दैत्य भी मारा है, यमलार्जुन वृक्ष गिराये हैं, शंखचूड, केशी, धेनुक, और तैसे ही दूसरे भी बहुतसे दैत्य मारे हैं ॥ २५ ॥ इन्होंने ही गोपों सहित गौएँ वनकी दौंसे बचाई हैं, कालिय सर्पका दमन करा और इन्द्रको भी गर्व-रहित करा है ॥ २६ ॥ इन कृष्णने, सात दिन पर्यन्त एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको धारण करके वर्षा, पवन और बिजुलीसे गोकुलकी रक्षा करी है ॥ २७ ॥ नित्य आनन्दयुक्त और सहास चितवन वाले इनके मुखको देखने वाली गोपियें, बिना परिश्रम ही अनेक प्रकारके तापोंको तरगई हैं ॥ २८ ॥ इनका रक्षा करा हुआ यह यदुराजाका वंश, बहुत प्रसिद्ध होकर, सम्पत्ति, कीर्त्ति और बड़ाईको पावेगा२९ और यह कमलनेत्र तथा परम सुन्दरतायुक्त बलरामजी, इन श्रीकृष्णके ही बड़े भ्राता हैं; इन्होंने प्रलम्बासुर, वत्सासुर और जो बक आदि दैत्य तिनको मारा है ॥३०॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन ! इस प्रकार लोकोंके आपसमें भाषण करते हुए, और बाजेके बजते हुए, उस लोकोंके भाषणको सहन न करने वाला चाणूर नामवाला मल्ल, कृष्ण और बलरामको पुकार कर यह वाक्य कहने लग

राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः । मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् । वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयंति गाः ॥३४॥ तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे । भूतानि नः प्रसीदंति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥ तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः । नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनंद्य च ॥ ३६ ॥ प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः । करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥ ३७ ॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् । भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः चाणूर उवाच । न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः । लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै । मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

कि-॥ ३१ ॥ हे नन्दपुत्र कृष्ण ! हे राम ! तुम दोनों ही वीर पुरुषोंके माननीय और मल्लयुद्धमें (कुश्ती लड़नेमें) चतुर हो, ऐसा सुनकर तुम्हारा मल्लयुद्ध देखनेकी इच्छा करनेवाले इन राजा कंसने तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥३२॥ मनसे, कर्मसे और वाणीसे राजाका प्रिय करने वाली प्रजा, राजासे पुरस्कार (इनाम) आदि पाकर कल्याण पाती हैं और वह प्रजा राजाकी इच्छाके प्रतिकूल वर्त्ताव करें तो राजासे बन्धन और मरण आदि उलटा फल भी पाती हैं ॥३३ ॥ यदि कहो कि-हम मल्लयुद्धमें प्रवीण नहीं है तो—वत्सोंका पालन करने वाले गोपोंके बालक और गौ चराने वाले गोप; आनन्दयुक्त होकर नित्य मल्लयुद्धसे क्रीडा करते हुए ही बछड़े और गौओंको चराते हैं ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है इस कारण तुम मल्लयुद्धमें प्रवीण हो इसमें सन्देह नहीं है ॥३४॥ इससे तुम और हम मिलकर राजाके प्रिय मल्लयुद्ध को करें, राजाके प्रसन्न होनेपर हमारे ऊपर सब लोक प्रसन्न होंगे, क्योंकि—राजा सर्वभूतमय है ॥ ३५ ॥ ऐसे यह चाणूरका वचन सुनकर, मल्लयुद्ध हमें मान्य है ऐसा समझकर श्रीकृष्णजीने उस कहनेका सत्कार करा और तिस स्थान तथा तिस कालके योग्य वचन कहा कि-॥३६॥ जङ्गलमें रहनेवाले हम और नगरमें रहनेवाले तुम सब, इन राजा कंसकी प्रजा हैं और निरन्तर इनका प्रिय करते हैं; इस कारण यह हमें जो आज्ञा करेंगे वह हमारे ऊपर परम अनुग्रह ही है ॥ ३७ ॥ तथापि हम बालक हैं इस कारण हमारी समान बलवाले बालकोंके साथ ही क्रीडा (कुश्ती) होना चाहिये,अधिकबली मल्लोंके साथ नहीं, ऐसा होनेसे ही यथायोग्य मल्लयुद्ध होयगा और मल्लोंकी सभामें बैठनेवाले सभासदोंको भी अधर्मका स्पर्श नहीं होयगा ॥ ३८ ॥ यह सुनकर चाणूर फिर कहनेलगा कि-कृष्ण ! जब तूने हजार हाथीके बलवाला हाथी सहजमें लीलासे ही मारडाला तब तू बालक वा किशोर नहीं है और बलराम भी बालक वा किशोर नहीं है किन्तु बलवानोंमें श्रेष्ठ है इस कारण तुम्हारे साथ बलवान् मल्लोंका ही युद्ध करना चाहिये, इसमें कुछ भी अन्याय नहीं है, इस कारण तू मेरे ऊपर अपना पराक्रम चला और मुष्टिक बलरामके साथ युद्ध करेगा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥

श्रीशुक उवाच । एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः । आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥१॥ हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः । विचकर्षतुरन्योऽन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥२॥ अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी । शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योऽन्यमभिजघ्नतुः ॥३॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरंभावपातनैः । उत्सर्पणापसर्पणैश्च अन्योऽन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥४॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि । परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः । ऊचुः परस्परं राजन् सानुकंपा वरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताधर्म एषां राजसभासदाम् । ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेंद्रसन्निभौ । क्व चातिसुकुमारांगौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् । यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हि-

अब आगे चौवालीसवें अध्यायमें बलराम कृष्णका कराहुआ मल्लोंका और कंस का मर्दन, कंसकी स्त्रियोंको समझाना और माता पिताका दर्शन करना वर्णन करा है ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार चाणूरादिकोंके वधका निश्चय करनेवाले भगवान् मधुसूदन श्रीकृष्णजी, चाणूरके साथ युद्ध करनेको सम्हले तथा बलरामजी भी मुष्टिकके साथ युद्ध करनेको उद्यत हुए ॥१॥ तब वह कृष्ण चाणूर और बल-मुष्टिक, हाथोंसे हाथोंको पकडकर और पैरोंसे पैरोंमें अलवेटें डालकर एक दूसरेको जीतनेके निमित्त बलात्कारसे एक दूसरेको खैंचने लगे ॥ २ ॥ अपनी दोनों कलाइयोंसे दूसरेकी दोनों कलाइयोंको घुटनेसे घुटनोंको मस्तकसे मस्तकको और छातीसे छातीको परस्परमें प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥ हाथमें पकड कर, चारों ओरको घुमाना, दूरको फैंक देना, भुजाओंसे जकड लेना, नीचे गिराना, दूसरेको पीछे छोडकर आप आगे जाना, इन रीतियोंसे वह कृष्ण—चाणूर और बलराम मुष्टिक परस्पर युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ पैर और रानोंको एक स्थानमें करके पडेहुए को ऊपर उठाना, हाथोंसे उठाकर लेजाना, गलेमें चिपटे हुएको दूरको ढकेल देना और हाथ पैरोंको एकत्र करके गाँठलेना, इसप्रकार जय मिलनेकी इच्छा करनेवाले वह दोनों एक दूसरेके शरीरको क्लेश देनेलगे ॥ ५ ॥ हे राजन् ! उस समय समूह के समूह जमकर खडी हुई और श्रीकृष्णके ऊपर दयालु हुई सब स्त्रियें, एक ओर बलवान् और दूसरी ओर बलहीन ऐसे उस युद्धको देखकर परस्पर कहने लगीं कि-॥ ६ ॥ इस राजाके सभासदोंका यह बडा अधर्म है, जिन सभासदोंने कम और अधिक बलोंसे युक्त होते हुए इस युद्धको राजा देखेगा तो निषेध करेगा, इस का कुछ ध्यान न करके, वह सभासद तिस युद्धको राजाके देखते हुए आप भी देखनेकी इच्छा कर रहे हैं ॥ ७ ॥ जिनके सब अङ्ग वज्रकी समान कठोर हैं ऐसे यह मेरु पर्वतकी समान बडे चाणूर और मुष्टिक मल्ल कहाँ ! और अतिसुकुमार अङ्गोंवाले तथा युवावस्थाको भी न प्राप्त हुए बलराम कृष्ण कहाँ ॥ ८ ॥ इसकारण इस सभाके हाथसे यह धर्मका उल्लंघन निःसन्देह होगा, जिस सभामें अधर्म होता है तहाँ चतुर पुरुषको कभी न ठहरना चाहिये ॥ ९ ॥ सभासदोंके दोषको

वित् ॥ ९ ॥ न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् । अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनांबुजम् । वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवांबुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् । मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरंभशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिंगगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः । गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयांऽचति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः ॥१३॥ गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् । दृग्भिः पिबंत्यनुसवाभिनवं दुरापमेकांतधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहननेमथनोपलेपप्रेंखेंखनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ । गायंति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः १५ प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ।

जानने वाले पुरुषको पहिले तो सभामें ही नहीं जाना चाहिये, क्योंकि-वह पुरुष यदि सभासदोंके दोषको जानकर भी नहीं बोलेगा अथवा सभासदोंके प्रसन्न करनेको धर्मके प्रतिकूल बोलेगा अथवा बूझने पर भी मैं नहीं जानता ऐसा कहेगा तो उसको पाप लगेगा ॥ १० ॥ दूसरी कहने लगीं कि-शत्रुके चारों ओर दौड़ने वाले श्रीकृष्णका मुख कमल, 'जैसे जलकी बूँदोंसे भरी कमलकी कली दीखती है तैसे' परिश्रमके पसीनेसे व्याप्त हुआ दीख रहा है देखो ! ॥११॥ दूसरी बोलीं कि-अहो ! थोड़े लाल हुए नेत्रोंवाला, मुष्टिकके ऊपर क्रोधित हुए परन्तु हास्यके कारण शोभायमान दीखने वाला वह बलरामका मुख, तुम्हारी दृष्टिमें नहीं पड़रहा है क्या ? ॥ १२ ॥ दूसरी कहने लगीं कि-इस सभाको धिक्कार हो, जिस सभामें इन श्रीकृष्णका तिरस्कार होता है, गोकुलकी भूमि धन्य है, जहाँ महादेव और लक्ष्मीने भी जिनके चरणोंका पूजन करा है, ऐसे यह श्रीकृष्णजी मनुष्य शरीरसे छिपेहुए साक्षात् पुराण पुरुष होकर भी, वनमें नाना प्रकारके रंगोंके फूल धारण करके बलराम सहित गौओंकी रक्षा करते हुए, मुरली बजाते हुए और नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते हुए फिरते हैं ॥ १३ ॥ यह बड़े दुःखकी बात है कि-हमने बहुत ही थोड़ा पुण्य करा है इस कारण इन कृष्णकी दुःखदशाके समय हमें इनका दर्शन हुआ,अहो ! उन गोपियोंने,न जाने पूर्वजन्मोंमें कौन पुण्य करा होगा ? कि-जिसके प्रभावसे इन कृष्णके-जिसकी समान और जिससे अधिक किसीकी भी सुन्दरता नहीं है ऐसे सुन्दरताके सार, स्वयं सिद्ध, यश, लक्ष्मी और ऐश्वर्यके एकान्तस्थान पुण्यवानोंके विना दूसरोंको देखनेको भी दुर्लभ और प्रतिदिन नवीनकी समान प्रतीत होने वाले स्वरूपको, नेत्रोंसे मानो पीही रही हैं ऐसे परम आसक्तिके साथ देखती हैं ॥ १४ ॥ जो गोपियें, गौओंका दूध दुहते समय धान आदि कूटते समय, दहीको मथनेमें, लीपनेमें, सोतेहुए बालकोंके झूलेको झोटा देतेमें, रोते हुए बालकोंको चुपातेमें और बुहारी देतेमें चित्तमें प्रेमयुक्त और गद्गदकण्ठ होकर इन कृष्णका गान करती हैं वह घरके सब काम करते हुए भी कृष्णकी ओर चित्त लगाने वालीं गोकुलकी स्त्रियें धन्य हैं ॥१५॥ जो गोपियें, गोपोंके साथ प्रातःकाल

निर्गम्य तूर्णमबला पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः। शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ१७ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ। पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम्१८ तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ। युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ १९ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः। चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह२० स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ। भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत २१ नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः। बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः२२ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम्। विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै। बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः। व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवां-

के समय वनको जानेवाले और सायंकालको मुरली बजाते हुए गोकुलमेंको आने वाले जिन श्रीकृष्णकी मुरलीके शब्दको सुनकर घरोंमेंसे शीघ्रताके साथ बाहर निकल कर मार्गमें इन श्रीकृष्णके दयादृष्टि युक्त और मन्दहास सहित मुखको देखती हैं वह परम पुण्यवती हैं ॥ १६ ॥ हे राजन्! इस प्रकार स्त्रियोंके बातें करते हुए, भक्तोंके दुःख दूर करने वाले उन भगवान् श्रीकृष्णजीने, मनमें शत्रुका बध करनेका विचार करा ॥ १७ ॥ तब, भय सहित उन स्त्रियोंकी बातोंको सुनकर,पुत्रों के बलको न जानने वाले देवकी-वसुदेव, पुत्रोंके स्नेहके कारण होने वाले शोकसे व्याकुल होकर दुःखको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ इस प्रकार, जैसे कृष्ण-चाणूर परस्पर नाना प्रकारकी घुमाना आदि युद्धकी रीतियोंसे युद्ध करते थे तैसे ही बलराम मुष्टिक भी परस्पर युद्ध करते थे ॥ १९ ॥ तब बज्रके लगनेकी समान असह्य जो भगवान्के अङ्गोंके प्रहार तिनसे जिसके अङ्ग चूर२ होगए हैं ऐसा वह चाणूर बार-म्बार घबड़ाने लगा ॥ २० ॥ उस समय क्रोधमें भरे हुए और श्येन (बाज) पक्षी की समान वेगवाले उस चाणूरने अपने दोनों हाथोंके घूँसे बनाकर एक साथ कुलाँच मारी और वासुदेव भगवान्के वक्षःस्थल पर प्रहार करा ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसके ताड़न करने पर भी उसके प्रहारसे वह श्रीकृष्णजी, जैसे फूलोंकी मालासे ताड़ना करा हुआ हाथी, हिलता भी नहीं है तैसे ही हिले भी नहीं, किन्तु उन्होंने शीघ्रतासे उस चाणूरकी भुजाओंको पकडकर बहुत देर पर्यन्त घर २ घुमाया फिर उस घुमानेसे ही क्षीणायु हुए तिसको भूमिपर पटक दिया तब वह चाणूर, शरीर परके भूषण और केश अस्तव्यस्त होकर,जैसे गौडदेशमें ध्वजा पताकाओंसे भूषित एक पुरुषके आकारका बड़ा भारी झण्डा खडा करते हैं वह किसी कारणसे एका-एकी गिर पड़ता है तैसे भूमि पर गिर पडा ॥ ॥ २२-२३ ॥ तिसी प्रकार मुष्टिक मल्ल भी, जिसने अपने घूँसेसे पहिले बलरामजीको ताडन करा था उसको, उन ही बली बलरामजीने हाथके चपेटेसे ताडना करा तब वह अत्यन्त पीडित और कम्पित होकर मुखमेंसे रुधिरकी वमन करता हुआ, जैसे प्रचण्डवायुसे उखाडा हुआ वृक्ष गिरता है तैसे भूमिपर प्राणहीन होकर गिर पडा ॥२४-२५॥ हे राजन्!

द्विपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः । अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥ तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः । द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते । शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रुः । वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ धृतनूपुरौ ॥ २९ ॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः । ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् । न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥ निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् । धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३२॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः । उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः । लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥ तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् । मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा

तदनन्तर शरीर परको आये हुए कूट नामक मल्लको, योधाओंमें श्रेष्ठ तिन बलरामजीने, तिरस्कारके साथ सहज लीलामें बाएँ हाथके घूँसेसे मारकर गिरा दिया ॥२६॥ उस समय श्रीकृष्णजीकी लातोंके प्रहारसे शल नामक मल्लका मस्तक फूटगया और तोशल मल्लके श्रीकृष्णजीने, चीरकर, दो टुकड़ेकर दिये, इसप्रकार वह दोनों ही मल्ल मरकर गिरपड़े ॥ २७ ॥ इस प्रकार चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, और तोशलक इन मुख्य मल्लोंके मरणको प्राप्त होने पर शेष रहे हुए सब मल्ल अपने प्राण बचानेकी इच्छासे भाग गए ॥२८॥ तदनन्तर वह बलराम–कृष्ण, समान अवस्था वाले गोपोंको तिस अखाड़ेमें बुलाकर, उनके हाथ पकड़े और उनको खैंचकर तथा आलिङ्गन आदि करके, जो बाजे बजरहे थे उनकी तालके साथ नृत्य आदि करके नूपुरोंका शब्द करते हुए उनके साथ मल्ल युद्धकी क्रीडा करने लगे ॥ २९ ॥ उस समय एक कंसको छोडकर और जो ब्राह्मणादि सब सज्जन पुरुष तहाँ थे वह, 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' ऐसा कहतेहुए उन रामकृष्णके तिस कर्मसे हर्षको प्राप्तहुए ॥३०॥ इसप्रकार मल्लोंमें मुख्य जो चाणूर मुष्टिक आदि उनके मरणको प्राप्त होनेपर जब शेष मल्ल भागगए तब, भोजराज कंसने, बजानेको आज्ञा करेहुए अपने बाजोंको बन्द कराकर अपने सेवकोंसे यह वाक्य कहा कि ३१ इन दुराचारी बलराम-कृष्णको नगरसे बाहर निकाल दो, गोपोंका धन छीनलो, मेरे वैरियोंको छुपाने वाले दुष्टबुद्धि नन्दको बाँधलो ॥ ३२ ॥ तथा पुत्रोंको चुरा कर दूसरे स्थानमें रखनेके कारण अतिदुष्ट और दुर्बुद्धि इस वसुदेवको, तुम शीघ्र ही मार डालो तथा शत्रुओंके पक्षपाती पिता उग्रसेनको भी अनुचरों--सहित मार डालो ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कंस बड़बड़ाने लगा तब, अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए अविनाशी वह श्रीकृष्णजी, लघिमा सिद्धिके बलसे कुलाँच मार कर शीघ्रतासे तिस ऊँचे मचानके ऊपर जा चढ़े ॥ ३४ ॥ उन चढ़ने वाले अपने मृत्युरूप श्रीकृष्णजीको देख कर उस धैर्यवान् कंसने, आसन परसे शीघ्र ही उठ कर हाथमें ढाल और

दक्षिणसव्यमम्बरे । समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुङ्गमञ्चात् । तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥ तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः । हा हेति शब्दः सुमहांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेंद्र ॥ ३८ ॥ स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपन् श्वसन् । ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतस्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कंकन्यग्रोधकादयः । अभ्यधावन्नतिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥ तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः । अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुंदुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः । पुष्पैः किरंतस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः । तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिंग्य शोचतीः । विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजंत्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथवत्सल । त्वया हतेन

तलवार उठाई ॥ ३५ ॥ उस समय असह्य और उग्रतेज वाले उन श्रीकृष्णजीने, हाथ में तलवार लेकर दाहीं ओर, वाहीं ओर और ऊपर आकाशमें श्येन (बाज) पक्षीकी समान शीघ्रतासे घूमने वाले उस कंसको, जैसे गरुड़ बलात्कारसे (जबरदस्ती) सर्पको पकड़ता है तैसे पकड़ लिया ॥ ३६ ॥ तब पकड़नेसे ही जिसका किरीट एक ओरको जा पडा है ऐसे उस कंसको केशोंके स्थानमें पकड कर, उस ऊँचे मचान परसे नीचे रङ्गमण्डपमें गिरा दिया और उसके ऊपर सकल जगत्के आश्रय और स्वतन्त्र वह भगवान् चढ़ बैठे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीने मरणको प्राप्त हुए कंसको, सब लोकोंके देखते हुए भूमि पर, जैसे सिंह हाथीको खेंचता है तैसे खेंचा, हे राजन् ! उससमय सब लोकोंका उच्चारण कराहुआ बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ ॥ ३८ ॥ वह कंस प्रतिदिन आठों पहर भयसे भरी हुई बुद्धिसे, उन ही चक्रधारी ईश्वरको, खातेमें, पीतेमें, बोलतेमें, चलतेमें, सोतेमें और श्वास लेतेमें अपने सामने खडा देखता था इस कारण अन्तमें उनके ही दुर्लभ स्वरूपको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ उस कंसके, कङ्क न्यग्रोध, आदि आठ छोटे भ्राता थे वह अतिक्रुद्ध होकर, भ्राता कंससे उऋण होनेके निमित्त श्रीकृष्णजीके ऊपरको दौडे ॥ ४० ॥ तब तैसे ही अतिवेगसे युद्ध करनेको उद्यत होकर आये हुए उन कंसके भ्राताओंको, बलरामजीने तहाँका ही एक परिघ उठा कर उससे, जैसे सिंह पशुओंको मारता है तैसे मारडाला ॥ ४१ ॥ उस समय स्वर्गलोकमें देवताओंके बजाएहुए नगाडे बजने लगे तथा ब्रह्मा-महादेव-आदि ईश्वरकी विभूतियें, प्रीतिसे श्रीकृष्णके ऊपर फूलों की वर्षा करके प्रशंसा करने लगी और अप्सरा नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! उन कंस आदिकोंकी स्त्रियें, अपने पतियोंके मरणसे दुःखित होकर अपने शिर पीटती हुई और नेत्रोंमेंसे दुःखके आँसू बहाती हुईं तहाँ पहुँचीं ॥ ४३ ॥ और वीर शय्या पर सोये हुए अपने पतियोंको आलिङ्गन करके शोक करने वालीं वह स्त्रियें वारम्वार दुःखके आँसू बहाती हुईं ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ हा

निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥४५॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ । न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् । तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक्को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः । गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥४८॥ श्रीशुक उवाच । राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः । यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥ ४९ ॥ मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बंधनात् । कृष्णरामौ ववंदाते शिरसा स्पृश्य पादयोः ॥५०॥ देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ । कृतसंवंदनौ पुत्रौ सस्वजाते न शंकितौ ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः । मा भूदिति निजां

नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हा दयालो ! हा अनाथवत्सल ! तुम मरणको प्राप्त हुए तिससे हम, घर और पुत्रोंसहित मरी हुईसी होगई हैं ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम पतिके बिना जैसे हम उत्साह और मङ्गलरहित हुई हैं तैसेही यह मथुरानगरी भी उत्साह और मङ्गलरहित होकर शोभाहीन होगई है ॥४६॥ हे प्राणप्रिय ! तुमने निरपराधी प्राणियोंसे बडा भयङ्कर द्रोह करा था तिससे ही ऐसी दशाको पहुँचे हो, प्राणिमात्रका द्रोह करने वाला कोई भी पुरुष क्या सुख पावेगा ? ॥ ४७ ॥ यह श्रीकृष्ण सकल प्राणीमात्रको उत्पन्न करने वाले उनका नाश करने वाले और रक्षा करने वाले हैं उनसे द्रोह करनेवाला पुरुष कहीं भी सुखसे वृद्धि नहीं पावेगा ४८ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार कहती हुई उन राजरानियोंको लोकोंका पालन करने वाले भगवान् श्रीकृष्णजीने धीरज बँधा कर, मरणको प्राप्त हुए तिन कंसादिकोंकी जो मरणके अनन्तरकी क्रिया कही हैं सो सब करवाई ४९ तदनन्तर उन बलराम-कृष्णने, देवकी माता और वसुदेव पिताको बंधनसे छुटा उनके चरणों पर मस्तक रख कर वन्दना करी ॥ ५० ॥ तब उन देवकी-वसुदेवने, वन्दना करने वाले उन बलराम-कृष्ण पुत्रोंको, पुत्रकी भ्रान्ति छोड़ यह जगदीश्वर हैं ऐसा माना और उनको आलिङ्गन नहीं करा किन्तु शंकायुक्त होकर उनके आगे वह दोनों हाथ जोड़ कर खडे होगये ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध पूर्वार्धमें चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ छ ॥ * ॥

अब आगे पैंतालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने देवकी, वसुदेव और नन्द आदि गोपोंको समझा कर, उग्रसेनको राज्याभिषेक करा, तथा गुरुके घर वास करके सब विद्याओंको पढ़कर फिर मथुरामें आगमन करा, यह कथा वर्णन करी है॥॥श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! पुरुषोत्तम भगवान्ने, देवकी, वसुदेवको, अपनेमें पुत्र बुद्धि होनेसे प्राप्त होने वाले सांसारिक परमसुखके भोगसे पहिले ही, हम दोनों सर्वेश्वर हैं ऐसा ज्ञान होगया यह देख कर, और मेरे प्रसन्न होने पर क्या ज्ञान इन को दुर्लभ होगा ? किन्तु नहीं, हाँ मेरेमें पुत्रभावसे प्रेम ही दुर्लभ है ऐसा जानकर अभी इनको ज्ञान न हो इस कारण सकल प्राणियोंको मोहित करने वाली अपनी

मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१॥ उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः । प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥२॥ नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कंठितयोरपि । बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥ न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदंतिके । यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥ सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः । न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च । वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥६॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् । गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः॥७॥तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः । मोघमेते व्यतिक्रांता दिवसा वामनर्चतोः ॥ ८ ॥ तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः । अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच । इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा । मोहितावंकमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥१०॥ सिंचन्तावश्रु-

माया उनके ऊपर फैलाई ॥१॥ बलरामसहित वह यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी, मोहित हुए उन देवकी-वसुदेवके समीप जाकर, विनयसे नम्र होकर बडे आदरके साथ हे मातः ! हे तात ! ऐसा सम्बोधन करके कहने लगे कि-॥२॥ हे तात ! तुम दोनों हम पुत्रोंके निमित्त निरन्तर उत्कण्ठित रहे तथापि तुम्हें हमसे बालकपन, पौगण्ड और किशोर अवस्थाओंमें प्राप्त होने वाले सुख किञ्चिन्मात्र भी प्राप्त नहीं हुए ३ केवल तुम्हारे ही सुखकी हानि नहीं हुई किन्तु हम प्रारब्ध हीनोंका भी तुम्हारे समीप वास नहीं हुआ, तिस कारण माता-पिताके घर रहनेवाले और उनके लालन पालन करे हुए बालक, जो आनन्द पाते हैं सो तुमसे हमें नहीं मिले और तुम्हारी शुश्रूषा नहीं बन सकी इस कारण हमारे धर्मकी हानि भी हुई है, क्योंकि-सकल पुरुषार्थोंको प्राप्त कराने वाला शरीर जिन्होंने उत्पन्न करा और पोषा है उन माता पिताओंका ऋण चुकाना इस मनुष्यके हाथसे सौ वर्षकी आयु होनेसे भी नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ तिस पर जो पुत्र, समर्थ होकर भी अपने शरीरसे और धनसे तिन माता पिताओंकी अन्न-वस्त्रादिसे आजीविका नहीं चलाता है तिस पुत्रको परलोकमें यमके दूत उसका अपना ही माँस खवाते हैं ॥ ६ ॥ और जो पुत्र, समर्थ होकर बूढे माता-पिताकी, पतिव्रता स्त्रीकी, बालक पुत्रोंकी गुरुकी ब्राह्मणोंकी और शरणागतोंकी रक्षा नहीं करता है वह जीता हुआ ही मरेके समान है ॥ ७ ॥ इस कारण तुम दोनोंका सत्कार न करने वाले हमारे, यह ग्यारह वर्ष के दिन वृथा ही बीते, इसका कारण यह है कि-आज पर्यन्त हम कंससे नित्य चित्तमें घबडाए हुए रहनेके कारण तुम्हारी रक्षा करनेको समर्थ नहीं हुए ॥ ८ ॥ हे पितः ! हे माता ! दुष्टबुद्धि कंसके दुःख दिये हुए और कारागारमें बन्द करके रक्खे हुए तुम्हारी सेवा करनेके समयमें भी सेवा न करने वाले हमारे अपराधको अब तुम 'माता पिता होनेके कारण' क्षमा करो ॥९॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! मायासे मनुष्य रूप परन्तु जगतके अन्तर्यामी श्रीकृष्णजीकी ऐसी वाणीसे मोहित हुए वह देवकी वसुदेव, तिन बलराम-कृष्णको गोदमें बैठा कर और छातीसे लगा कर आनन्दित

धाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ । न किंचिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः । मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् १२ आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने१३ मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः । बलि हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः सर्वान् स्वज्ञातिसंबंधान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् । यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् । न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ॥१६॥ कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः । गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनांबुजम् । नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥१८॥ तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः । पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखांबुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः । संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां

हुए ॥ १० ॥ और उससमय हे राजन् ! आँसुओंकी धाराओंसे उनको भिगोने वाले उनकी मायासे मोहित हुए, स्नेहरूप फाँसीसे बँधे हुए और गद्गद कण्ठ हुए तिन देवकी-वसुदेवने, कुछ भी नहीं कहा ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णजीने, देवकी-वसुदेवको समझा कर, फिर मातामह (नाना) उग्रसेनका यादवोंकी मुख्य गद्दी पर अभिषेक करा ॥ १२ ॥ और उनसे कहा कि-महाराज ! आप हम सेवकों को और सब प्रजाओंको आज्ञा करनेको समर्थ हो, यदि कहो, कि-तू ही प्रजाओं को आज्ञा कर तो सुनो-ययाति राजाके शापसे, यदुवंशियोंको राजाके आसन पर बैठना नहीं चाहिये, और तुम यादव हो तथापि मेरी आज्ञासे दोष नहीं है ॥१३॥ यदि कहो कि-मुझे ऐसी शक्ति नहीं है तो-सुनो-मुझ सेवकके आपकी सेवा करते हुए, देवता आदिक भी नम्र होकर तुम्हें पूजा समर्पण करेंगे फिर और राजे तो रहे ही क्या ? तदनन्तर, उन विश्वकर्त्ता भगवान्ने, कंसके भयसे व्याकुल होकर चारों दिशाओंमेंको भागकर गए हुए अपने—यादव, वृष्णि, अन्धक, मधु, दशार्ह और कुकुर आदि सब जातिवालोंको और संबन्धियोंको तिन२ दिशाओंसे बुलाकर परदेशमें बसनेके कारण दुर्बलहुए उनको धीरज बँधाकर, सत्कार करके और वस्त्र-पात्र द्रव्य आदिके दानसे सन्तुष्ट करके उनको अपने २ घरोंमें बसादिया १५॥१६ तब कृष्ण और बलरामकी भुजाओंके बलसे शत्रुओंसे रक्षा करे हुए, और बलराम कृष्णके ही प्रतापसे दुःख दूर होकर पूर्णमनोरथ हुए वह यादव, कृतार्थ होते हुए अपने २ घरोंमें मग्न रहनेलगे ॥ १७ ॥ उस मथुरामें रहनेवाले वृद्धपुरुष भी नित्य आनन्दमें भरे हुए शोभायुक्त और दयायुक्त हास्यसहितअवलोकनसे युक्त श्रीकृष्ण जीके मुखकमलको प्रतिदिन देखनेके कारण श्रीकृष्णजीके मुखकमलके अमृतका वारम्वार सेवन करते हुए तरुणकी समान अतिबलवान् और पराक्रमी हुए१८।१९ हे राजन् ! तदनन्तर देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी और बलरामजी यह दोनों नन्दजाके समीप आये और उनको आलिंगन करके कहने लगे ॥ २० ॥ हे तात ! प्रेम करनेवाले तुम दोनोंने, अपने देहसे भी अत्यन्त अधिक हमारा पोषण और

स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् । पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥२१॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् । शिशून्बंधुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् । ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम ॥ २३ ॥ एवं सांत्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः । वासोलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः । पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥ अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् । पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योदाद्दक्षिणां गावो रुक्ममाल्यः स्वलंकृताः । स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः॥२७॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः । ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ । गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ । नान्यसिद्धामलंज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः । काश्यं सांदीपनिं

लाड करा है और यह कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि—लोकमें माता पिताओंका पुत्रोंके ऊपर अपने शरीरसे भी अधिक प्रेम होता है, ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २१ ॥ और तुम देवकी-वसुदेवके पुत्र हो, हमारे नहीं हो ऐसा कदापि न कहो, क्योंकि पोषण करनेमें और रक्षा करनेमें असमर्थ माता पिताओंके त्यागे हुए हम छोटे २ पुत्रोंका जो तुमने (नन्द यशोदाने) अपने पुत्रोंकी समान पालन करा है इससे तुम निःसन्देह हमारे माता-पिता हो ॥२२॥ हे नन्दजी ! अब तुम सब गोप गोकुलको चलो, हम भी यहाँ रहने वाले अपने सब सुहृदोंको सुखी करके फिर हमारे स्नेहके कारण दुःखित हुए तुम ज्ञातियोंको देखनेके निमित्त आवेंगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार व्रजवासी गोपोंसहित नन्दजीको, भगवान् श्रीकृष्णजीने समझाया फिर वस्त्र आभूषण और सोने चाँदी आदिके पात्र देकर उनका बड़े आदरसे सत्कार करा २४ इस प्रकार श्रीकृष्णजीके कहने पर वह नन्द राजा स्नेहसे विह्वलहुए और उन बलराम-कृष्णको आलिङ्गन करके आँसुओंसे नेत्रोंको भरते हुए गोपों सहित गोकुलको चले गये ॥ २५ ॥ हे राजन् ! फिर वसुदेवजीने, अपने पुरोहित गर्गाचार्यसे और ब्राह्मणोंसे विधिपूर्वक बलराम-कृष्णका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया ॥ २६ ॥ और उन ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन उत्तम अलंकृत ब्राह्मणोंको दक्षिणा और सुवर्णके फूलोंका माला पहिने हुए, उत्तम भूषित और बहुमूल्य रेशमी वस्त्रोंकी झूलें ओढ़े हुए बछड़ों सहित गौएँ दान दीं ॥ २७ ॥ तैसे ही तिन महा बुद्धिमान् वसुदेवजीने, बलराम-कृष्णके जन्मनक्षत्रके समय जो गौएँ मनसे संकल्प करदी थीं, परन्तु कंसने अधर्मसे छीन ली थीं, उनका भी स्मरण करके दान करा ॥२८॥ इस प्रकार उपनयन संस्कारको प्राप्त होकर द्विजत्वको प्राप्त हुए और उत्तम नियम धारण करने वाले उन बलराम, कृष्णने, यदुकुलके आचार्य गर्ग ऋषिसे ब्रह्मचर्य व्रतको स्वीकार करा ॥ २९ ॥ यद्यपि वह दोनों ही जगदीश्वर, सकल विद्याओंके उत्पत्तिस्थान और सर्वज्ञ थे तथापि वह मनुष्यकी चेष्टाओंसे अपने स्वतः सिद्ध निर्मल ज्ञानको गुप्त

नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥३१॥ यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् । ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥३२॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः। प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥ सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा । तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥३४॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्त्तकौ । सकृन्निगदमात्रेण तौ सञ्जगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः । गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥३६॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नति मानुषीं मतिम् । संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥ ३७ ॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ । वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् । योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥ समुद्र उवाच । नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ।

रखते थे इसकारण लोकोंको शिक्षा देनेके निमित्त वह विद्या सीखनेको गुरुके घर बसनेकी इच्छा करके, काश्यगोत्रमें उत्पन्न हुए, अवन्ती नगरीमें रहने वाले सान्दीपनि नाम वाले गुरुके पास गये ॥ ३०-३१ ॥ उचित रीतिसे गुरुके समीप जाकर इन्द्रियोंको वशमें करके रहने वाले और गुरुके भी आदर करेहुए वह, गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करें इसकी, और लोकोंको शिक्षा देते हुए, देवताओंकी समान भक्तिके साथ गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ तब निष्कपट स्नेह करने वाले उनकी सेवा से उनके ऊपर प्रसन्न हुए, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उन सान्दीपनि गुरुने, बलराम-कृष्णको शिक्षा; कल्प (सूत्र) व्याकरण आदि वेदोंके छः अङ्ग और ईश, केन, कठ; प्रश्न आदि दश उपनिषदों सहित ऋग्वेदादि चारों वेद पढ़ाए ॥ ३३ ॥ मन्त्रोंके और देवताओंके ज्ञानसहित धनुर्वेद, मनु आदि धर्मशास्त्र तथा मीमांसा आदि न्यायमार्ग तर्क विद्या और सन्धि आदि छःप्रकारकी राजनीति पढ़ाई ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी श्रेष्ठ और सकल विद्याओंके प्रवर्त्तक तिन बलराम कृष्णने, गुरुके एक बार ही उपदेश करने पर उतने हीमें वह वेदादि सब सीख कर पढ़ लिये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उन दोनों जितेन्द्रियोंने, चौंसठ अहोरात्र (रात दिन) में गान करना, बाजे बजाना आदि चौंसठ कला सीखलीं और इच्छानुसार गुरुदक्षिणा माँगनेको गुरुसे प्रार्थना करी ॥ ३६ ॥ तब हे राजन् ! उन सान्दीपनि ब्राह्मणने, उन बलराम कृष्णकी वह अद्भुत महिमा और मनुष्योंमें असम्भव प्रतीत होने वाली बुद्धि देख कर अपनी स्त्रीसे सम्मति करी तब प्रभास क्षेत्रमें समुद्रमें डूब कर मरणको प्राप्त हुआ अपना पुत्र लाकर देनेकी गुरुदक्षिणा माँगी ॥ ३७ ॥ तब, बहुत अच्छा, ऐसा कह कर अपार-पराक्रमी महारथी वह दोनों बलराम-कृष्ण, रथमें बैठ कर प्रभासक्षेत्र पर पहुँचे और तहाँ समुद्रके तट पर जाकर क्षणभर बैठे रहे, तब यह परमेश्वर हैं, ऐसा उस समुद्रने जानकर, मनुष्यके रूपमें पूजाकी सामग्री लेकर उनके समीप आकर उनकी पूजा करी ॥ ३८ ॥ उस समय भगवान् उससे कहने लगे कि—हे समुद्र ! यहाँ बड़ी तरङ्गसे जो तूने बालक डुबा लिया है वह हमारे गुरुका पुत्र है,

अन्तर्जलचरः कृष्ण शंखरूपधरोऽसुरः ॥४०॥ आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः । जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् । तदङ्गप्रभवं शंखमादाय रथमागमत् ॥ ४१ ॥ ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् । गत्वा जनार्दनः शंखं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥ ४२ ॥ शंखनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः । तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ ४३ ॥ उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् । लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच । गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् । आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ । दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ४६ सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः । को नु युष्मद्विधगुरोः कामो नामावशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी । छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४८॥ गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा । आयातौ स्वपुरं तात

इसकारण तू शीघ्र ही लादे ॥ ३९ ॥ समुद्रने कहा-हे देव कृष्ण ! इस गुरुके पुत्रको मैंने हरण नहीं करा है, किन्तु मेरे जलमें रहनेवाला और शंखका रूप धारण करने वाला एक पञ्चजन नाम वाला बड़ा भारी दैत्य असुर है निःसन्देह तुम्हारे गुरुके पुत्रको वह लाया है, यह सुनकर सर्वसमर्थ श्रीकृष्णजीने, शीघ्र ही जलमें प्रवेश करके उसको मार पेट फाड़ कर देखने लगे तो श्रीकृष्णजीने वहाँ गुरुका पुत्र नहीं देखा, फिर उस पंचजनके शरीरसे उत्पन्न हुए पांचजन्य नामक शंखको लेकर वह रथ पर बैठके लौट आये ॥ ४० ॥४१॥ फिर उन श्रीकृष्णजीने, बलरामके साथ यमराज की प्रिय संयमनी नामक नगरीमें जाकर शंख बजाया ॥ ४२ ॥ तब शंखका शब्द सुन कर प्रजाओंको वशमें रखने वाले तिस यमने भक्तिके साथ बड़ी भारी पूजा करी ॥ ४३ ॥ और वह नम्र होकर सकल प्राणियोंके अन्तर्यामी तिन श्रीकृष्णजीसे कहने लगा कि-लीलाके निमित्त मनुष्यका शरीर धारण करने वाले हे विष्णो ! तुम्हारा कौनसा काम करें सो कहो ? ॥४४॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे महाराज यम अपने कर्मसे बन्धनको प्राप्त हुए गुरुपुत्रको, तुम्हारे दूत यहाँ ले आये हैं, उसको तुम मेरी आज्ञा मान, लाकर मुझे देदो, मेरी आज्ञासे लाकर देने वाले तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर बहुत अच्छा, ऐसा कह कर तिन यमराजके लाकर दिये हुए गुरुपुत्रको लेकर आयेहुए तिन बलराम-कृष्णने, वह अपने गुरुको समर्पण करा और फिर दूसरा वर माँगो, यह प्रार्थना करी ॥ ४६ ॥ तब गुरुने कहा कि-हे बेटा कृष्ण ! तुम दोनोंने मुझे उत्तम प्रकारकी गुरुदक्षिणा दी है, तुम समान पुरुषों का गुरु होकर मेरे मनोरथोंमेंसे कौनसा शेष रहसकता है ? अर्थात् कोई नहीं रह सकता, इस कारण अब मुझे कुछ माँगनेकी इच्छा नहीं है ॥ ४७ ॥ हे वीरों ! अब तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी कीर्त्ति लोकोंको पवित्र करने वाली है और तुम्हारे पढ़े हुए वेद इस लोकमें तथा परलोक सफल हों ॥४८॥ हे तात राजन् ! इसप्रकार गुरुके आज्ञा करने पर वह बलराम कृष्ण, वायुकी समान वेग और मेघकी समान शब्द वाले रथमें बैठ कर अपने नगरमें पहुँचे४९तब बहुत कालसे बलराम-कृष्णको

पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥ समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ । अपश्यंत्यो बहूहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥
श्रीशुक उवाच । वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा । शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥ तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह । गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥३॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः । ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥४॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः । स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥५॥ धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथञ्चन । प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः
श्रीशुक उवाच । इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुराहतः । आदाय रथमारुह्य प्रययौ

न देखने वालीं सब प्रजाएँ, उनको देखकर,जैसे जिनका धन खोया गया हो ऐसे पुरुष उस धनके फिर मिल जाने पर आनन्दित होते हैं तैसे ही अत्यंत आनंदित हुईं ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धपूर्वार्द्धमें पंचचत्वारिंश अध्याय समाप्त

अब आगे छियालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने, उद्धवजीको गोकुलमें भेज कर उनकी वाणीसे नन्द-यशोदाका शोक दूर कराया, यह कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहाकि-हे राजन् ! वृष्णियोंके वंशधरोंमें श्रेष्ठ साक्षात् बृहस्पतिजी के शिष्य अतिश्रेष्ठ बुद्धि वाले और श्रीकृष्णजीके परम प्यारे मित्र उद्धव नामवाले एक मुख्य मन्त्री थे ॥ १ ॥ शरणागतोंके दुःख दूर करने वाले भगवान् श्रीकृष्णजी ने, एक समय एकान्तमें अपने हाथसे अनन्यभक्त प्रिय उद्धवजीका हाथ पकड़ कर कहा कि—॥ २ ॥ हे सौम्य उद्धव ! तुम गोकुलमें जाओ और हमारे पिता—माता (यशोदा-नन्द) को हमारे वियोगसे दुःख होरहा है उसको दूर करके हर्ष उत्पन्न करो तथा गोपियोंके भी मेरे वियोगसे उत्पन्न हुए मनके दुःखको मेरा सन्देशा कह कर दूर करो ॥ ३ ॥ गोपियोंको विशेष संदेशा कहनेका कारण यह है कि—वह गोपियें, मुझमें मन लगाने वालीं, मेरे निमित्त ही प्राण धारण करने वालीं, और मेरी प्राप्ति होनेके निमित्त ही पति—पुत्रादिकोंका त्याग करने वालीं होकर दयावान् और मनसे मुझे प्राप्त होरहीं हैं, जो पुरुष, मेरे निमित्त इस लोकमें प्राप्त होने वाले सुखोंका और उनके साधनोंका त्याग कर रहते हैं उनका मैं पालन करता हूँ और उनको सुख देता हूँ ॥४॥ हे उद्धव ! प्यारे पदार्थोंसे भी अत्यन्त प्यारा लगने वाला मैं दूर रहता हूँ इस कारण वह गोकुलमेंकी स्त्रियें मेरा स्मरण करके विरहके कारण होनेवाली मेरी उत्कण्ठासे विह्वल होकर मोहित होजाती हैं ॥५॥ और प्रायः वह मेरी प्यारी ग्वालिनियें, मेरे गोकुलसे मथुराको आते समय 'मैं शीघ्र ही लौट कर आऊँगा ऐसा जो' मैंने कह दिया था तिससे मेरे ऊपर अपना अन्तर्यामी आत्मा रखकर बड़ी कठिनतासे प्राणोंको धारण कर रही हैं, तात्पर्य यह है कि—उनका आत्मा यदि उनके देहमें होता तो वह विरहके तापसे भस्म ही होगया होता, परंतु

नन्दगोकुलम् । प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ । छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥ ८ ॥ वासिताऽर्थेऽभियुद्धयद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः । धावंतीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥ इतस्ततो विलंघद्भिर्गोवत्सैर्मंडितं सितैः । गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥ गायंतीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः । स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥ ११ ॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः । धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥१२॥ सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् । हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मखण्डैश्च मण्डितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् । नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् । गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥ कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः । आस्ते

उनका वह आत्मा मुझमें होनेके कारण वह किसी प्रकार जीवन धारण कर रही हैं ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इस प्रकार कहकर भगवान्के सत्कार करे हुए वह उद्धवजी अपने स्वामी श्रीकृष्णजीका 'तुम्हारा और मेरा वियोग कभी नहीं होसकता' ऐसा संदेशा मस्तक पर धर कर रथमें बैठ नन्दजीकी गोकुलको चले गये ॥ ७ ॥ वह श्रीमान् उद्धवजी सूर्यास्त होनेके समय, आगे २ गोकुलमेंको जानेवाले पशुओंके खुरोंकी रजोंसे जिनका रथ ढक गया है ऐसे होकर नन्दजीकी गोकुलमें पहुँचे ॥ ८ ॥ वह गोकुल, गर्भधारणके समयको प्राप्त हुई गौओंके निमित्त परस्पर युद्ध करने वाले मदोन्मत्त बैलोंके रम्भाहट शब्दोंसे युक्त और थनोंके भारसे युक्त ऐसी अपने २ बछड़ोंकी ओरको दौड़ने वाली दूध देती हुई गौओंसे भूषित था ॥ ९ ॥ तथा जिधर तिधरको कुलाचें मारने वाले श्वेत-वर्णके बछड़ोंसे शोभायमान और गौओंके दूध दुहनेके शब्दोंके साथ 'बछड़ेको छोड़, मत छोड़, उसको लेजा, वह सा पात्र दे, यह ले इत्यादि' गोपोंके शब्दोंसे और मुरलियोंकी गुञ्जारसे शोभित था ॥ १० ॥ बलराम-कृष्णके पापनाशक-कर्मोंको गाने वाली और उत्तम आभूषण पहिननेवाली गोपियों तथा गोपोंसे अत्यन्त शोभायमान था ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितर और देवताओंकी पूजा जहाँ होती है ऐसे गोपोंके घरोंसे और जहाँ तहाँ स्थित धूप तथा दीपकोंसे युक्त था ॥१२॥ और वह गोकुल-हंस, कारण्डव, जलकाक आदिसे व्याप्त, ऐसे कमलोंके समूहोंसे शोभायमान सरोवरोंके तटों पर रहनेवाले पक्षियोंके और भ्रमरोंके शब्दोंसे युक्त ऐसे खिले हुए वनोंसे चारों ओर भूषित था ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णजीके प्यारे सेवक उद्धवजी आये हैं ऐसा सुनकर प्रसन्न हुए नन्दजीने, सन्मुख जाकर उन्हें छातीसे लगा वासुदेवबुद्धिसे (यह कृष्ण ही आये हैं ऐसी बुद्धिसे) उनका सत्कार करा१४ तदनन्तर खीर आदि उत्तम अन्नका भोजन करके, पलङ्गके ऊपर गद्दे के बिछौने पर सुखसे बैठे हुए और चरण दबाने आदिसे श्रमरहित हुए उन उद्धवजीसे नन्दजीने बूझा कि ॥ १५ ॥ हे मित्र ! हे महाभाग उद्धव ! हम गोकुलवासियोंके सखा वसुदेवजी बन्धनसे छूटकर बान्धव और मित्रोंसहित अपने पुत्रादिकोंके साथ सुखसे

कुशलयपत्याद्येषु को मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना। साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन्। गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम्। तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥१९॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः। दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलाऽपांगनिरीक्षितम्। हसितं भाषितं चांग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥ सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान्। आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥२२॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ। सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥ २३ ॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा। अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥२४॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट्। बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् २५प्रलम्बो

तो रहते हैं ? ॥ १६ ॥ पापी कंस अपने ही पापसे छोटे भ्राताओंसहित और चाणूर आदि मल्लों सहित मरणको प्राप्त हुआ, यह वार्ता बड़े ही आनन्दकी हुई; क्योंकि-वह धर्मात्मा और साधु यादवोंसे निरन्तर द्वेष रखता था ॥ १७ ॥ और श्रीकृष्ण कभी भी हम सुहृदोंका माता यशोदा, सखा गोप, आप ही जिसके रक्षक हैं ऐसी गोकुल, गौएँ, वृन्दावन और गोवर्द्धन पर्वतका स्मरण करते हैं क्या ? ॥१८॥ भला, श्रीकृष्णजी, स्वजनोंको देखनेके निमित्त एक बार भी इधरको आवेंगे क्या ? आवें तो सुन्दर नासिका और मन्दहासहित चितवनवाले उनके मुखको हम देखें॥१९॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीके करे हुए उपकारोंका स्मरण आदि करके परमआनन्दमें भर कर कहने लगे कि-हे उद्धव ! महात्मा श्रीकृष्णने वनकी दौं, आँधीसहित वर्षा, अरिष्टासुर और अघासुर इनसे तथा दूसरे भी अनेकों दुस्तर मृत्युसमान संकटोंसे हमारी रक्षा करी है ॥ २० ॥ हे मित्र ! श्रीकृष्णके गोवर्द्धनको उठाना आदि चरित्र, लीलायुक्त कटाक्षोंके साथ अवलोकन, हास्य और वार्त्तालापोंका स्मरण करते हुए हमारे सब ही कार्य शिथिल होगये हैं ॥२१॥ केवल शिथिल ही नहीं हुए हैं किन्तु कितने ही दिनोंसे कुछ भी हुए ही नहीं हैं, क्योंकि-जिसमें कालियदमन आदि क्रीड़ा करी थीं ऐसी यमुना नदी, श्रीकृष्णके चरणोंके चिन्होंसे भूषित गोवर्द्धन पर्वत, वनमेंके स्थान और उनके क्रीडा करनेके स्थानोंको देखतेमें हमारा मन निरन्तर कृष्णरूप होजाता है २२ मैं तो गर्गाचार्यके गम्भीर अर्थयुक्त भाषणसे ऐसा मानता हूँ कि-बलराम और कृष्ण यह दोनों, देवताओंमें श्रेष्ठ (वासुदेव और संकर्षण) हैं और देवताओंको, दैत्योंका वध आदि कार्य करनेको भूतल पर अवतरे हैं ॥ २३ ॥ अहो ! जिन्होंने, दश सहस्र हाथियोंकी समान बलवाले कंसको, गजराजको, चाणूर और मुष्टिक नामवाले महाबली मल्लोंको, जैसे छोटा भी सिंह बड़े भी हाथी आदि पशुओंको मार डालता है तैसे मार डाला ॥ २४ ॥ तैसे ही जिन कृष्णने तीन ताड (२०० हाथ) लम्बे और अत्यन्त दृढ धनुषको जैसे हाथी लाठीको तोड डालता है तैसे तोड डाला और सात दिन पर्यन्त एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको धारण

धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्त्तबकादयः । दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया॥ श्रीशुक उवाच । इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः । अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च । शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा २८ तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः । वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥२९॥ उद्धव उवाच । युवां श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद । नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् । अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिन् जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् । निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥ तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ । भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किंवाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः । प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥ हत्वा कंसं रंगमध्ये प्रतीपं

करा ॥ २५ ॥ तैसे ही गोकुलमें देव दैत्योंको जीतनेवाले-प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, तृणावर्त्त और बकासुर आदि दैत्योंको सहजमें लीलासे ही मार डाला ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णजीका बारंबार स्मरण करके श्रीकृष्णजीके विषें प्रेमबुद्धि रखनेवाले नन्दजी, प्रेमके प्रवाहसे व्याकुल होकर, कंठ रुक जानेसे चुप रहे आगेको कुछ नहीं कह सके ॥ २७ ॥ तब नन्द राजाके वर्णन करे हुए चरित्रोंको सुननेवाली यशोदा तो, जिसके स्तनोंमेंसे दूध टपक रहा है ऐसी होकर नेत्रोंमेंसे टप २ दुःखके आँसू बहाने लगी ॥२८॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णजीके विषें तिन नन्द-यशोदाकी परमप्रीति देखकर, बडे हर्षके साथ उद्धवजी नन्दजीसे कहने लगे ॥ २९ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे सन्मान करनेवाले नन्द ! तुम दोनों निःसन्देह इस लोकमेंके सकल प्राणियोंमें परम प्रशंसा करनेके योग्य हो, जिन तुमने सकल जगत्के गुरु नारायणरूप श्रीकृष्णजीके विषें ऐसी प्रेमयुक्त बुद्धि लगाई है ॥ ३० ॥ क्योंकि-यह बलराम-कृष्ण, दोनों ही सकल जगत्के पुरुष और प्रधानरूप बीजकारण हैं, और यही सकल प्राणियोंमें प्रवेश करके तिन प्राणियोंके और तिन २ उपाधियों करके भिन्न २ प्रतीत होनेवाले जीवों के नियन्ता पुराणपुरुष हैं३१हे नन्दजी ! जिनमें कोई भी प्राणी प्राणांतके समय क्षणमात्रको भी अपना शुद्ध करा हुआ मन स्थापन करके और उसके द्वारा कर्मवासनाओंको त्याग करके ब्रह्ममय और सूर्यकी समान प्रकाशवान् होता हुआ तत्काल परमगति पाता है उन सबके आत्मा, कारण और भूमिका भार हरनेके निमित्त मनुष्यावतार धारण करनेवाले परिपूर्ण नारायणके विषें तुम दोनों भक्ति करते हो फिर अब तुम्हें कौनसा शुभकर्म करना शेष रहा ? ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वह भक्तोंके पति भगवान् श्रीकृष्णजी थोडे ही समयमें गोकुलको आवेंगे और तुम मातापिताओंका दर्शन आदि मनोरथ पूर्ण करेंगे ॥ ३४ ॥ सकल यादवोंके शत्रु कंसको रंगमण्डपमें मार कर तदनंतर, श्रीकृष्णजीने तुम्हारे समीप आनेको जो तुमसे कह

सर्वसात्वताम् । यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥ मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके । अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ३६ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वास्त्यमानिनः । नोत्तमो नाधमो वाऽपि समानस्यासमोऽपि वा ॥३७॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः । नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु । क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् । क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ ४० ॥ यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते । चित्ते कर्त्तरि तत्रात्मा कर्त्तेवाहंधिया स्मृतः युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः । सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च । विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥ एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नंदस्य कृष्णानुचरस्य राजन् । गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून्समदिया है कि—'तुम गोकुलको चलो, हम यादवोंको सुख देकर फिर आवेंगे' उस को सत्य करेंगे ॥३५॥ हे महाभागो ! तुम खेद न करो, हमारे समीपमें ही कृष्ण हैं ऐसा देखो वह सब प्राणियों के हृदयोंमें रहते हैं परंतु जैसे काठमेंका अग्नि, काठ को मथना आदि उपायोंके विना नहीं दीखता है ऐसे ही सर्वत्र रहनेवाले भी वह भगवान् भक्तिके विना नहीं मिलते हैं ॥ ३६ ॥ अहंकाररहित और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले इन परमेश्वरको कोई प्रिय नहीं है, कोई अप्रिय भी नहीं है, कोई उत्तम नहीं है और कोई अधम वा विषम भी नहीं है ॥ ३७ ॥ इनके माता नहीं है, पिता नहीं है स्त्री नहीं है और पुत्रादि भी नहीं है, कोई अपना नहीं है और कोई पराया भी नहीं है, इनके देह नहीं है, जन्म नहीं है, और कर्म भी नहीं हैं; तथापि वह भगवान्, इस लोकमें साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त और क्रीडा करनेके निमित्त सात्त्विक, राजस और तामस ऐसी देव-तिर्यक्-मनुष्य आदि योनियोंमें अवतार धारते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वह वास्तवमें निर्गुण होकर भी अपनी क्रीडाके साधनरूपसे सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणोंको स्वीकार करते हैं और जन्मरहित तथा क्रीडारहित होकर भी अपनी इच्छासे क्रीडा करने लगते हैं तब गुणोंसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे आप ही चारों ओरको घर २ घूमनेवाले मनुष्यको, घूमती हुई दृष्टिसे; पृथ्वी चक्कर बाँधे हुए घूमरही है ऐसा प्रतीत होता है तैसे ही जब चित्त कर्म करने लगता है तब तिसमें अहंकारकी बुद्धि से भ्रमको प्राप्तहुए पुरुषका आत्मा भी कर्मोंके वशमें हुआसा प्रतीत होता है ॥४१॥ यह भगवान् हरि श्रीकृष्णजी, तुम दोनोंके ही पुत्र हों ऐसा नहीं है किन्तु सबोंके ही पुत्र आत्मा, पिता और माता वह ईश्वर ही हैं ॥ ४२ ॥ देखनेमें वा सुननेमें आनेवाला, जो भूत, भविष्य, वर्त्तमान, स्थावर, जङ्गम, छोटा वा बड़ा कोई भी पदार्थ उच्चारण करनेमें आता है वह भगवान् के विना कुछ भी नहीं है किंतु वह भगवान् ही सर्वरूप और सबोंके परमार्थरूप हैं ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—

कप्रवर्य दधीन्यमंथन् ॥४४॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जुर्विकर्षद्भुजकंकणस्रजः। चलन्नितंबस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुंकुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविंदलोचनं व्रजांगनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः । दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये व्रजद्वारि व्रजौकसः । दृष्ट्वा रथं शातकौंभं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किंवा यः कंसस्यार्थसाधकः । येन नीतो मधुरां कृष्णः कमललोचनः ॥ ४८ ॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् । इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नंदशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

श्रीशुक उवाच । तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलंबबाहुं नवकंजलोचनम् । पीतांबरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविंदं परिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥ शुचिस्मिताः कोऽय-

---

हे राजन् ! इस प्रकार उन उद्धव और नंदजीको आपसमें वार्त्तालाप करते हुए, वह सारी रात बीत गई, तब गोपियें, उठकर दीपक जलाकर, घरोंको झाड बुहार कर और चन्दनादिसे उनको पूजित करके दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ तब जिनके मथने को डोरीको खेंचने वाले हाथोंमें कङ्कण और पहुँची हैं, जिनके नितम्ब, स्तन और हार हलरहे हैं, जिनके कपोल कुण्डलोंसे चमक रहे हैं और जिन्होंने मुखपर लाली लिये हुए केशर लगाया है ऐसी वह गोपियें दीपकके तेजसे, दमकने वाले सायडी आदिके ऊपर जड़े हुए रत्नोंसे शोभायमान होने लगीं ॥ ४५ ॥ तब श्रीकृष्णजीका यश ऊँचे स्वरसे गाने वालीं गोपियोंका, दही मथनेके शब्दसे मिला हुआ वह बड़ा भारी शब्द स्वर्गपर्यन्त जा पहुँचा, जिस शब्दसे सकल दिशाओंके पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भगवान् सूर्यका उदय होनेपर, गोकुलकी स्त्रियोंने, नन्दजीके द्वारके आगे सुवर्णका रथ देखकर वह, यह रथ किसका है ऐसा कहने लगीं ॥ ४७ ॥ वह क्रोधके साथ कहने लगीं कि-अहो ! जो कमलनयन श्रीकृष्णको मथुराको लेगया था वह कंसका कार्य साधने वाला अक्रूर तो कहीं नहीं आया है ? ॥ ४८ ॥ कंसको मरवाकर फिर काहेको आवेगा ? ऐसा सन्देह करके परस्पर कहने लगीं कि-करे हुए कार्यसे प्रसन्न हुए अपने स्वामी (कंस) का प्रेतकर्म, अब हमें लेजाकर सावेगा क्या ? अर्थात् हमारे मांसके पिण्ड बनाकर उसको देगा क्या? ऐसे वह स्त्रियें कहरही थीं, इतने ही में यमुना पर स्नान संध्या आदि कर्म समाप्त करके उद्धवजी तहाँ आगए ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्धमें षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ छ छ छ छ

अब आगे सैंतालीसवें अध्यायमें, उद्धवजीने श्रीकृष्णजीकी आज्ञाके अनुसार गोकुलकी गोपियोंसे श्रीकृष्णका सन्देशा कहकर तत्त्वका बोध कराया फिर नंदादि सबोंकी आज्ञा लेकर मथुराको लौट आये यह कथा वर्णन करी है ॥ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! जिनकी भुजा घुटनोंपर्यन्त लम्बी हैं, जिनके नेत्र नवीन कमलकी समान सुन्दर हैं, जिन्होंने पीताम्बर और कमलोंकी माला धारण करी है, जिनका मुखकमल शोभायमान है और जिनके कुण्डल मणियोंसे जड़े

मपीव्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः । इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् । भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥४॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे । स्नेहानुबंधो बंधूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् । पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥६॥ निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः । अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥ खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् । दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥८॥ इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः । कृष्ण-

दमक रहे हैं ऐसे उन श्रीकृष्णके सेवक उद्धवजीको देखकर पवित्र हास्य करने वाली गोकुलकी सब स्त्रियें, स्त्रियोंको अत्यन्त ही मनोहर दीखने वाला और श्रीकृष्णकी समान ही पीताम्बर आदि वेष तथा आभूषण धारण करनेवाला यह किस का कौन है ? कौनसे देशसे यहाँ आया है ? ऐसा तर्क करने वाली तथा उनको जाननेके निमित्त उत्कंठित हुई वह सब गोपियें, उत्तम कीर्त्ति भगवान्के चरण कमलका आश्रय करने वाले उन उद्धवजीके चारों ओर जमकर खडी होगई १-२ फिर, श्रीकृष्णका संदेशा लेकर आया है, ऐसा जानकर गोपियोंने उनको एकान्त में बुलाया और लज्जा तथा हास्यके साथ अवलोकन और मधुर भाषण आदिसे उनका सत्कार करके आसन पर बैठाये हुए उनको नमस्कार करा और नम्रताके साथ बूझने लगीं कि—॥ ३ ॥ हम तुम्हें, 'तुम श्रीकृष्णके सेवक यहाँ आये हो ऐसा' जानती हैं, श्रीकृष्णने अपने माता पिताका (नन्द यशोदाका) प्रिय करनेकी इच्छा से तुम्हें यहाँ भेजा होगा ! ॥ ४ ॥ क्योंकि-माता पिता आदि बान्धवोंके स्नेहका सम्बन्ध छोडदेना, मुनि और ऋषियोंको भी कठिन है, नहीं तो कंसको मारकर यश पानेवाले उन श्रीकृष्णको गोकुलमें स्मरण करने योग्य हम कुछभी नहीं देखती हैं ॥ ५ ॥ बान्धवोंको छोडकर दूसरोंके ऊपर जो प्रीति होती है वह केवल अपना कार्य साधनेकी समाप्ति तक ही होती है और वह प्रीति मित्रताका अनुकरण मात्र (नकल) होती है, सच्ची नहीं होती है, वह ऐसी-जैसे पुरुषोंकी स्त्रियोंमें कामदेवके कारण होती है वह कामदेवकी निवृत्ति होते ही दूर होजाती है अथवा जैसे भौंरोंकी फूलोंपर उनके परागके कारण करी हुई मित्रता, पराग दूर होते ही दूर होजाती है तस हो समझनी चाहिये ॥ ६ ॥ जैसे वेश्या निर्धन हुए पुरुषको त्याग देती हैं, या प्रजा पालन पोषण आदि करनेमें असमर्थ हुए राजाको, जैसे विद्या पढे हुए शिष्य गुरुको, जैसे, ऋत्विज् दक्षिणा दे चुकने वाले यजमानको, जैसे पक्षी फलहीन हुए वृक्षको, जैसे अतिथि भोजन करनेके अनन्तर गृहस्थीके घरको और जैसे हिरन वनकी दौसे जलते हुए जङ्गलको त्याग देते हैं तैसे ही जार पुरुष, प्रीतिसे रतहुई स्त्रीको भोग होनेपर तत्काल ही त्याग देते हैं ॥ ७-८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके दूत वह उद्धवजी, गोकुलमें गये

दूने व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः । तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् । प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥११॥ गोप्युवाच । मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुंकुमश्मश्रुभिर्नः । वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ।१२। सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् । परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् । विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।

तब लोकव्यवहारको छोड़ कर श्रीकृष्णकी ओर शरीर, वाणी और मन लगाने वालीं वह गोपियें, प्यारे श्रीकृष्णके किशोर और बाल अवस्थामें करेहुए कर्मोंको वारम्वार स्मरण कर करके गाती हुईं और निर्लज्जताके साथ रोती हुईं उद्धवजी से बूझने लगीं कि—॥९-१०॥ उनमेंसे कोई एक गोपी, श्रीकृष्णके समागमका ध्यान करतेमें एक भौंरेको देखकर उसके ऊपर, यह श्रीकृष्णजीने हमारी प्रसन्नता करनेको दूत भेजा है ऐसी कल्पना करके इसप्रकार कहने लगी११गोपीने कहा कि—अरे भौंरे! अरे कपटीके मित्र ! तू हमारे चरणोंको स्पर्श करके नमस्कारसे हमारी प्रार्थना मत कर, तेरी मूछें, सौतके स्तनोंसे मसली हुई भगवान्‌की वनमालाके केशरसे रङ्गी हुई हैं, जिनका तू ऐसा (मूछें रङ्गाहुआ) दूत है वह यादवपति श्रीकृष्णजी, यादवों की सभामें निन्दा होनेके योग्य उन मानवती नगरवासिनी स्त्रियोंकी ही प्रसन्नता करें ॥ १२ ॥ जैसे तू दुष्टचित्त है तैसे ही तेरे स्वामी श्रीकृष्ण भी हैं, जैसे तू फूलों की सुगन्ध लेकर तत्काल ही उनको त्याग देता है तैसे ही श्रीकृष्णजीने भी मोहित करने वाला अपना अधरामृत एकबार ही पिलाकर हमें तत्काल त्याग दिया है, अहो ! लक्ष्मी तो उन कृतघ्नीके चरण कमलकी सेवा न जाने कैसे करती है ? मेरी समझमें तो उत्तम कीर्ति भगवान्‌की बनावटी बातोंसे ही उस लक्ष्मीका मन आकर्षित होगया है परन्तु हम उस लक्ष्मीकी समान अनजान नहीं हैं ॥१३॥ तदनन्तर अनेकों प्रकारके गुञ्जार शब्द करनेवाले उस भौंरेको यह हमारी प्रसन्नताके निमित्त कृष्णका गानकर रहा है ऐसा मानकर कहने लगी कि—अरे भौंरे ! तू यहाँ हम वनचरी स्त्रियोंके आगे तिन पुराण पुरुष यादवपति श्रीकृष्णजीका अधिक गान काहेके निमित्त करता है ? इस समय श्रीकृष्णजीकी जो सखियें हैं उनके आगे ही उनकी कथाका गानकर क्योंकि—जिनका काम ज्वर श्रीकृष्णने शान्त करा है, वह श्रीकृष्णजीकी प्रिय स्त्रियें ही तुझे जो चाहेगा सो देंगी ॥ १४ ॥ मातः ! ऐसा न कहो, तुम्हें स्मरण करके कामदेवसे विह्वल हुए श्रीकृष्णने, तुम्हें प्रसन्न करनेको मुझे यहाँ भेजा है ऐसा कहे तो अरे कपटी भौंरे ! सुन्दर हास्य युक्त भौं चलाने वाले उन कृष्णको स्वर्ग, भूमि और पातालमें जितनी स्त्रियें हैं उनमेंसे भला

पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् । भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद् दुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ । भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः । ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना । एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः । न बद्ध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् । अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ।

करने वाले और नम्रतायुक्त वह अक्रूरजी, कृष्ण-बलरामसे कहने लगे कि-१५॥१६ तुमने मल्ल आदिकों सहित पापी कंसको मारा यह बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई, यह तुम्हारा कुल, तुमने अपार दुःखसे बाहर निकाला इस कारण वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ तुम जगत्के कारण और जगन्मय प्रकृति-पुरुषरूप हो, तुम्हारे सिवाय दूसरा कारण वा कार्य कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मस्वरूप ! अपनी रजोगुण आदि शक्तियोंसे आप ही उत्पन्न करे हुए इस जगत्में तुम कारणरूपसे होनेके कारण प्रविष्ट न होकर भी प्रवेश करे हुएसे प्रतीत होकर, देखनेमें और सुननेमें आने वाले पदार्थोंके स्वरूपसे नाना प्रकारके भासते हो ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारण, रूपान्तरसे अपने ही प्रकट होनेके स्थान चराचर प्राणीमात्रमें कारणरूपसे पहिले होकर भी तदनन्तर प्रविष्ट हुएसे होकर कार्यरूपसे अनेक प्रकारके भासते हैं तैसे, ही स्वतन्त्र आत्मा तुम, आप ही कारण हुए सकल भूतभौतिक कार्योंमें तिस २ स्वरूपसे भासते हो ॥ २० ॥ तुम ही अपना शक्तिरूप रजःसत्त्वतमोगुणोंसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हो तथापि उन गुणोंसे और कर्मोंसे बँधते नहीं हो, क्योंकि-ज्ञानरूप तुममें बन्धनकी कारण होने वाली अविद्या कहाँ है ? ॥२१॥ तुम्हें बन्धन होनेकी शंका भी नहीं यह तो अलग रहा परन्तु अविद्योपाधिक जीवात्मा को भी वास्तवमें जन्म और जन्मके कारण भेद-भाव यह दोनों किंचिन्मात्र भी नहीं हैं, क्योंकि-देहादिक उपाधियोंका किसी भी प्रकारसे निरूपण करनेमें नहीं आता, अब बन्धन नहीं है ऐसा कहने वाला तू मोक्ष को स्वीकार करता है क्या ? ऐसा कहो तो सुनो—बन्धनके बिना मोक्ष कैसा ? तब क्या बन्धन प्राप्त होना ही चाहिये ? ऐसा कहो तो सुनो—आपको अविद्या न होनेके कारण बन्धन वा मोक्ष दोनों ही नहीं हैं, यदि कहो कि-तूने तो मुझे ऊखलमें बँधा हुआ सुना है और यमुनाके कुण्डमेंसे मुक्त होते हुए भी देखा है फिर बन्ध मोक्ष नहीं हैं ऐसा क्यों कहता है यदि ऐसा कहो तो सुनो-हमारी समझमें तुम्हें बन्ध-मोक्ष हैं ऐसा प्रतीत होता है परन्तु वह केवल हमारा अज्ञान ही है ॥ २२ ॥ तो मेरे अवतार और चरित्र सब ही कल्पित हैं क्या ? नहीं २ वह तो तुम्हारी लीला है, क्योंकि-जगत्के हितके निमित्त तुम्हारा कहा

न्यःहृतं श्रद्धाना: कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः। दद्दशुरसकृदेतत्तन्नख-स्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता॥ १९॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग। नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यज-द्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते॥२०॥ अपि बत मधुपुर्यामार्य-पुत्रोऽधुनास्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान्। क्वचिदपि स कथा नः किंकरीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु॥ २१॥ श्रीशुक उवाच। अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः। सान्त्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत॥२२ उद्धव उवाच। अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः। वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः॥ २३॥ दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः। श्रेयोभिर्विवि-

---

धर्मका आचरण करते हैं इसकारण श्रीकृष्णकी कथारूप अर्थ परमपुरुषार्थरूप होने से छूटना कठिन है॥ १८॥ अच्छा जब तुम ऐसी चतुर हो तो-पहिले श्रीकृष्णके साथ मित्रता करके उनके वशमें कैसे होगई थीं? यदि ऐसा कहे तो सुन-जैसेकाले हिरनकी भोली हिरनियें, व्याधेका मधुर गान सुन कर उसको सत्य मानती हुई उसके समीप जाकर बाणोंसे बिधते ही दुःखको भोगती हैं, तैसे ही हम अनजान स्त्रियें उन ही कपटी श्रीकृष्णके 'मैंने कभी भी मिथ्या भाषण नहीं करा इत्यादि' वार्त्तालापको सत्य मानती हुई, उन श्रीकृष्णके नखोंके स्पर्शसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुए कामदेवकी पीडासे युक्त होकर वारम्वार इस दुःखको देख चुकी हैं, इससे हे दूत! स्मरण करनेमात्रसे ही मनमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाली उन कृष्णकी कथाको रहने दे, तू और कोई दूसरी ही कथा वर्णन कर॥ १९॥ दूर जाकर फिर लौट कर आये हुए उस भौंरेसे कहने लगी कि-हे प्राणसखाके मित्र! श्रीकृष्णका भेजा हुआ तू फिर आया है क्या? हे दूत! तू मेरा पूजनीय है, तुझे क्या चाहिये? जो चाहिये सो माँगले यदि कहै कि- मैं तुम्हें कृष्णके समीप लेजाऊँगा तो सुन-जिनके समागमको छोडना परम कठिन है उन श्रीकृष्णके समीप, यहाँ रहने वाली हमें तू कैसे लेजायगा? यदि कहे कि-लेजानेमें कौन कठिनता है तो सुन-हे सौम्य! जिन के वक्षःस्थलमें ही लक्ष्मी नामक स्त्री निरन्तर वास करती है उनको हमें कौन आवश्यकता है?॥ २०॥ उसके कुछ गुप्त भाषण करने पर वह गोपी उससे फिर कहने लगी कि-हे सौम्य! मैं तुझसे यह बूझती हूँ कि-नन्द राजाके पुत्र श्रीकृष्ण, यज्ञोपवीत होने पर विद्या सीखनेको गुरुके घर गये थे, वह तहाँसे आकर अब मथुरामें आनन्द तो हैं? और वह यशोदा-नन्द सहित अपना घरका और बांधव गोपोंका स्मरण करते हैं क्या? वह कभी हम दासियोंकी वातचीत करते हैं क्या? कभी अगरकी समान सुगन्धयुक्त अपना हाथ हमारे मस्तकपर रक्खेंगे क्या? २१ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके दर्शनके विषयमें उत्कण्ठित हुई उन गोपियोंको देख कर वह उद्धवजी, प्रिय श्रीकृष्णके सन्देशोंसे उनको समझाते हुए ऐसा कहने लगे॥ २२॥ उद्धवजीने कहा कि-अरी गोपियों! तुम कृतार्थ हो और सब लोकोंकी पूजनीय हो, क्योंकि-जिन तुम्हारा मन, भग-

धैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिः प्रवर्त्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान्पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च । हित्वाऽवृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ।२७। श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां सुखावहः । यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः २८ श्रीभगवानुवाच । भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् । यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही । तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ।२९॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये । आत्ममायाऽनुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ।३०। आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोगुणान्वयः । सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥ येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः । तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः

वान् वासुदेव श्रीकृष्णके विषैं ऐसा अर्पित और स्थिर होरहा है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, मन्त्रादिकोंका जप, वेद पाठ इन्द्रियोंको वशमें करना तथा नाना प्रकार के दूसरे भी कल्याणके साधनोंसे श्रीकृष्णजीके विषैं भक्ति ही साधी जाती हैं २४ हे गोपियो ! तुमने उत्तम श्लोक भगवान्के विषैं जो प्रेमलक्षणा एकान्त भक्ति प्राप्त करी, यह बड़ी ही सुन्दर वार्त्ता हुई, क्योंकि-यह भक्ति मनन करने वाले ऋषियों को भी परम दुर्लभ है ॥ २५ ॥ और तुमने, अपने पुत्र' पति, देह, स्वजन तथा घर द्वारको छोड़ कर जो श्रीकृष्ण नामक परमपुरुषको स्वीकार करा, यह भी बड़ी सुंदर वार्त्ता हुई ॥२६॥ हे महाभागो! तुम्हें विरहसे भगवान् श्रीकृष्णके विषैं जो प्रेमलक्षण एकान्त भक्ति प्राप्त हुई, सो तुमने मुझे सहजमें ही दिखादी, ऐसा करके तुमने मेरे ऊपर भी बड़ा अनुग्रह करा है अर्थात् उसको देख कर मैं भी कृतार्थ हुआ हूँ ॥२७॥ इससे हे कल्याणियो ! मैं श्रीकृष्णका गुप्त कार्य करने वाला दूत हूँ, सो मैं उन प्रिय श्रीकृष्णका तुम्हें सुख देने वाला जो सन्देशा कहनेको लाया हूँ उसको अब कहता हूँ सुनो ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्ने तुमसे यह कहा है कि-तुम्हारा और मेरा किसी भी देशमें वा किसी भी कालमें वियोग कुछ भी नहीं है क्योंकि-मैं सबका आत्मा हूँ, जैसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथवी यह पञ्चमहाभूत स्थावर जङ्गमरूप सब पदार्थोंमें रहते हैं तैसे ही मैं भी, मन, प्राण, भूत, इन्द्रियें और गुणोंके अधिष्ठानरूपसे सबोंमें व्याप रहा हूँ ॥ २९ ॥ और मैं अपनी मायाके प्रभावसे अपने ही स्वरूपमें, भूत, इन्द्रिय और गुण इनके रूपसे आप ही अपनेको उत्पन्न करता हूँ, संहार करता हूँ और पालन करता हूँ ॥ ३० ॥ क्योंकि—आत्मा शुद्ध और गुणोंमें न मिला हुआ होनेके कारण गुणोंसे भिन्न ज्ञानरूप है वह मायाके कार्य मनकी सुषुप्ति स्वप्न और जाग्रतरूप वृत्तियोंके कारण विश्व-तैजस-प्राज्ञरूपोंसे प्रतीत होता है स्वयं प्रतीत नहीं होता है ॥ ३१ ॥ जैसे जगा हुआ पुरुष, स्वप्नमें देखे हुए पदार्थ मिथ्या हैं ऐसा मानता है तैसे ही ज्ञानी पुरुष, जिनको मिथ्या मानते हैं तिन शब्दादि विषयोंका जिस मनसे चिन्तवन होता है और चिन्तवन होतेमें जिस मनसे इन्द्रियोंको और इन्द्रियुक्त देहको

प्रत्ययग्रहः ॥ ३२ ॥ एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम्। त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ॥ ३३ ॥ यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम्। मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते। स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत्। अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३६ ॥ या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः। अलब्धरासाः कल्याण्यो मापुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥३७॥ श्रीशुक उवाच। एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः। ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशागतस्मृतीः ॥ ३८ ॥ गोप्य ऊचुः। दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत्। दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ ३९ ॥

अभ्याससे यह सब इन्द्रियादि मैं ही हूँ ऐसा प्राणी मानता है, उस मनका निरोध (वशमें करना) आलसको छोड कर करना चाहिये ॥ ३२ ॥ वेद (वेदमें कहेहुए साधनोंका समूह) अष्टांग योग, विचारवान् पुरुषोंका आत्मानात्मविवेक, संन्यास स्वधर्म, इन्द्रियोंको जीतना और सत्य यह सब ही रीतियें, जैसे सब नदियें अन्त को समुद्रमें ही जाकर मिल जाती हैं तैसे ही मनको वशमें करनेमें ही समाप्ति पाती हैं अर्थात् अंतका फल सबका मनको वशमें करना ही है ॥ ३३ ॥ अब, हे कृष्ण ! तुम और भक्तोंकी समान हमें भी आत्मज्ञानका उपदेश देकर लालचमें लाते हो क्या ? हम तो सर्वोमें सुन्दर और सब गुणोंके समूहसे भूषित जो तुम तिनके विरहको नहीं सह सकती हैं, ऐसा कहो तो अरी गोपियो ! तुम्हारा परम प्यारा मैं, जो तुम्हारी दृष्टिसे दूर रहता हूँ उसका कारण यह है—कि-तुम्हें वारम्वार मेरा ध्यान होय और तुम अपना मन मुझमें लगाए रहो ॥ ३४ ॥ जैसे स्त्रियोंका तथा और भी प्रेमियोंका मन, परदेशमें रहने वाले पति और मित्रादिकोंमें पहुँच कर निश्चलभावसे लगा रहता है तैसे, समीप (नेत्रोंके सामने) आने पर निश्चल नहीं रहता है ॥ ३५ ॥ इस कारण तुम, सकल व्यपारोंसे छुटा हुआ अपना मन, पूर्ण रीतिसे मेरे विषें स्थिर करके प्रतिक्षण मेरा ही चिन्तवन करो तब शीघ्र ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाओगी ॥ ३६ ॥ इस मेरे कहनेको केवल मधुरस प्रतीत होने वाला ही न समझो, क्योंकि—हे कल्याणियो ! इस वृन्दावनमें रात्रिके समय क्रीड़ा करनेवाले मेरे साथ जो रासक्रीड़ा नहीं करसकीं वह पतियोंके रोकलेनेके कारण गोकुलमें रहीहुईं, गोपियें, मेरी लीलाओंका चिन्तवन करके ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होगई हैं इस कारण तुम भी मेरे चिन्तवनसे ही निःसंदेह मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाओगी ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार श्रीकृष्णजी का कहा हुआ संदेशा सुनकर जिनको कृष्णकी लीलाओंका स्मरण आया है ऐसी वह तृप्त हुई गोपियें, उद्धवजीसे कहनेलगीं ॥ ३८ ॥ गोपियोंने कहा कि-हे उद्धव जी ! यादवोंको दुःख देनेवाला कृष्णका शत्रु कंस, अपने भ्राताओं सहित जो मरण को प्राप्त हुआ तिससे हमें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और पहिलेकी समान धन आदि सकल संपत्तियोंको प्राप्त हुए वसुदेव आदि अपने संबन्धियोंके साथ श्रीकृष्णजी

कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् । प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥ ४० ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् । नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४१ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् । गोष्ठमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४२ ॥ ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये । रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥ ४३ ॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा । सञ्जीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४४ ॥ कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः । नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥ ४५ ॥ किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः । श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥ ४६ ॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला । तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुर-

---

अब आनन्दमङ्गल हैं यह वार्त्ता भी बड़े आनन्दकी हुई ॥ ३९ ॥ अच्छा हे सौम्य उद्धवजी ! हम तुमसे यह बूझती हैं कि–हमारे पहिले स्नेह युक्त और लज्जासहित हास्यसे तथा उदार चितवनसे सत्कार करे हुए भगवान् श्रीकृष्णजी, हमारे ऊपर करनेयोग्य प्रीति, इस समय मथुराकी स्त्रियोंके ऊपर करते हैं क्या ? ॥ ४० ॥ दूसरी कहने लगी कि–अरी यह क्या बूझा हो ! रतिसुखके सकल प्रकारोंको जाननेवाले उत्तम स्त्रियोंके प्रिय और तिन उत्तम स्त्रियें करके अपने भाषणोंसे तथा नानाप्रकारके विलासोंसे सत्कार करे हुए वह श्रीकृष्ण, उनमें भला क्यों न आसक्त होंगे ? ४१ फिर और गोपी कहने लगीं कि–इस चिन्तासे हमें क्या करना है ? हे साधो ! पुरवासिनी स्त्रियोंकी सभामें यथेष्ट क्रीड़ा करनेकी वार्त्ता चलने पर वह श्रीकृष्ण, हम भोली ग्वालिनियोंका कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ ४२ ॥ दूसरी कहने लगी कि–गोकुलमें रहते समय, चन्द्रमाका उदय होने पर खिलने वाले कमल, कुंदके पुष्प और चन्द्रमाके कारण सुन्दर प्रतीत होने वाले वृन्दावनमें चरणोंमेंके नूपुरोंकी झनकारयुक्त रासकी सभामें हम स्त्रियोंके साथ भगवान्ने, जिन रात्रियोंमें क्रीड़ा करी थी और हमने उनकी मनोहर कथाओंकी स्तुति करी उन रात्रियोंको कृष्ण कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ ४३ ॥ जैसे इन्द्र मेघोंमेंसे वर्षा करके सूखे हुए वनको सजीव करता है तैसे ही अपने मुख हाथ आदि अङ्गोंके दर्शन स्पर्श आदिसे, अपनी विरहाग्निसे तपी हुई हमें सजीव करते हुए वह श्रीकृष्ण अब इस गोकुलमें कभी आवेंगे क्या ? ॥ ४४ ॥ दूसरी बोली कि–कृष्ण यहाँ क्यों आवेंगे ? पहिले वेवश होनेके कारण वह यहाँ रहते थे, अब उन्होंने राज्य पालिया, शत्रुओंका संहार कर लिया, अब वह राजाओंकी कन्याओंको वरकर स्त्रियोंसे युक्त और पिता–पुत्र आदि सकल सुहृदोंसे घिरे हुए हैं ॥ ४५ ॥ तब कितनी ही गोपियें तो परमार्थ वर्णन करती हुई कहनेलगीं कि-लक्ष्मीके पति पूर्णमनोरथ और निरन्तर पूर्णरूप तिन महात्मा भगवान्का जङ्गलमें रहने वाली हमसे वा राजकन्याओंसे कौनसा काम सधेगा ? ॥ ४६ ॥ जारकर्म करने वाली पिंगला नामक वेश्याने भी ऐसा कहा है कि-आशा न करना ही परमसुख है और आशा करना ही परम दुःख है, देखो-

त्यया ॥ ४७ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् । अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरंगान्न च्यवते क्वचित् ४८सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे । संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ॥ ४९ ॥ पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत । श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५० ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलाऽवलोकनैः । माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥५१॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन । मग्नमुद्धर गोविंद गोकुलं वृजिनार्णवे ॥५२॥ श्रीशुक उवाच । ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः । उद्धवं पूजयांचक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः । कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥ ५४ ॥ यावंत्यहानि नंदस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः । व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्त्तया ॥५५॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान्द्रुमान् । कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णावेशात्म-

---

यह बात हम जानती हैं तथापि इन कृष्णमें हमारी दुर्निवार आशा लगरही है ४७ इसका कारण यह है कि उन उत्तम श्लोक भगवान्‌की एकान्तमेंकी वार्त्ताको छोड़ देनेको कौन पुरुष समर्थ होगा ? अर्थात् कोई नहीं होसकता, देखो वह भगवान् लक्ष्मीकी कुछ भी इच्छा नहीं करते हैं तथापि उनके वक्षःस्थलरूप अङ्गसे वह लक्ष्मी कभी भी अलग नहीं होती है ॥ ४८ ॥ और कृष्णका विस्मरण होजाय तो हमें कुछ भी दुःख न हो परन्तु वह विस्मरण ही तो नहीं होता है, क्योंकि-हे प्रभो उद्धव ! बलराम सहित श्रीकृष्णजीके सेवन करे हुए और सुन्दरतारूप सम्पत्तिके आश्रय स्थान ऐसे श्रीकृष्णजीके चरणोंसे चिह्नित हुए यह-नदी, पर्वत और वनके स्थान तथा गौ और मुरलीके शब्द बारम्बार हमें उन नन्दकुमारका स्मरण कराते हैं इस कारण उन कृष्णको भूलनेकी हममें शक्ति नहीं है ॥ ४९ ॥ ५० ॥ श्रीकृष्णजीका सुन्दर चलना, उदार हास्य, लीलाके साथ देखना और मधुर बोलना इनसे बुद्धिके खिंचनेके कारण हम भला उनको कैसे भूलें? ॥५१॥ ऐसा कहकर भगवान्‌के विरहसे होनेवाले दुःखके दूर करनेको भगवान् ही समर्थ हैं ऐसा निश्चय करके कहने लगीं कि-हे नाथ ! रमानाथ ! हे व्रजनाथ ! हे दुःखनाशक ! हे गोविन्द ! दुःखके समुद्र में डूबे हुए इस गोकुलका तुम ही उद्धार करो ॥ ५२ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! तदनंतर उनसे उद्धवजीने फिर पहिले कहाहुआ ही श्रीकृष्णजीका संदेशा कहा तब, यह श्रीकृष्ण हमारा आत्मा है ऐसा जानकर, विरहसे उत्पन्न हुआ संताप जिनका दूर होगया है ऐसी उन गोपियोंने, उद्धवजीकी गुरुबुद्धिसे पूजा करी ५३ फिर वह उद्धवजी गोपियोंका शोक दूर करनेके निमित्त कितनेही महीनेपर्यंत गोकुल में रहे, तब तक उन्होंने कृष्णकी लीलायुक्त कथाओंका गान करके सकल गोकुलको आनन्दित करा ॥ ५४ ॥ वह उद्धवजी जितने दिनों नन्दजीकी गोकुलमें रहे थे, गोकुलवासियोंके उतनेदिन, श्रीकृष्णजीकी कथाके कारण क्षणकी समान होगए५५ उन भगवद्भक्त उद्धवजीने, नदी, वन, पर्वत, पर्वतोंकी गुफा और फूले हुए वृक्षोंको देख कर तहाँ २ कृष्णकी लीलाओंके प्रश्न करके गोकुलवासी लोकोंको कृष्णका

विक्लवम्। उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५७ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः। वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनंतकथारसस्य ॥ ५८ ॥ क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः। नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ५९ ॥ नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः। रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६० ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि

स्मरण करा कर आप भी आनन्दका अनुभव करो ॥ ५६ ॥ पहिले कहनेके अनुसार कृष्णके विषैं मनका लय होनेके कारण गोपियोंको विह्वलता प्राप्त हुई देखकर परमप्रसन्न हुए वह उद्धवजी, उन गोपियोंको नमस्कार करते हुए उनकी बड़ाईका इस प्रकार गान करने लगे ॥ ५७ ॥ कि—अहो ! इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियोंने ही अपने जन्मकी सफलता करली है, क्योंकि-यह गोपियें सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णजीके विषैं ही परमप्रेम करने वाली हुई हैं, जिस परमप्रेमको संसारसे डरने वाले मुमुक्षु,मुक्त और हम भी चाहते हैं,क्योंकि-भगवान्‌की कथामें प्रेम रखनेवाले प्राणी की अपेक्षा ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेसे,गायत्रीके उपदेशसे और यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेसे प्राप्त होनेवाले शौक्र, सावित्र और याज्ञिक नामवाले तीनों प्रकारके जन्मों में अथवा ब्रह्माके जन्ममें भी कौन विशेषता है ? अर्थात् किसी भी जातिका हो भगवान्‌की भक्ति करने वाला ही श्रेष्ठ है ॥५८॥ और ईश्वरकी प्रसन्नता होना ही बड़ाई का कारण है और वह प्रसन्नता तो जाति, आचार वा ज्ञानसे नहीं होती है किन्तु केवल भजनसे ही होती है, देखो जङ्गलमें फिरने वाली और व्यभिचारके दोषसे दूषित हुईं वह ग्वालिनियें कहाँ ? और परमात्मा श्रीकृष्णमें जड़ा हुआ यह निश्चल प्रेम कहाँ ? इससे ऐसा सिद्ध होता है कि-जैसे अमृत, सेवन करने पर वह अपना प्रभाव न जाननेवाले भी प्राणीको अमर करता है तैसेही सब कुछ करनेको समर्थ प्रभु ईश्वर भी,अपना निरन्तर भजन करनेवाले अज्ञानी पुरुषोंका आप ही कल्याण करते हैं अर्थात् उनको सर्वोत्तम फल देते हैं ॥ ५९ ॥ और यह गोपियोंके ऊपर हुआ भगवान्‌का अनुग्रह तो अत्यन्त ही अपूर्व है, क्योंकि--रासक्रीड़ामें इन श्रीकृष्णके भुजदण्डोंसे कण्ठमें आलिङ्गन होनेके कारण पूर्णमनोरथ हुईं इन गोपियोंको जो यह भगवान्‌का, प्रसाद मिला है सो, कमलकी समान सुगन्ध और कान्ति वाली उर्वशी आदि अप्सराओंको भी नहीं मिला; अधिक तो क्या परन्तु, वक्षःस्थलमें अनन्यभावसे रमण करने वाली लक्ष्मीको भी प्राप्त नहीं हुआ, फिर दूसरी स्त्रियें नहीं पासकतीं इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ६० ॥ अहो ! उन गोपियोंका भाग्य तो रहने दो, परन्तु मेरी उन प्रभुसे यह प्रार्थना है कि-इन गोपियोंके चरणोंकी रेणु को सेवन करनेवाली वृन्दावनमें उत्पन्न हुईं लता और औषधियोंमेंसे कोई मैं होऊँ

रासगोष्ठ्याम् । कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः । यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ६३
श्रीशुक उवाच।अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नंदमेव च । गोपानामंत्र्य दाशार्हो यास्य-न्नारुरुहे रथम् ॥६४॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः । नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ ६५ ॥ मनसो वृत्तयो न स्युः कृष्णपादांबुजाश्रयाः । वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ ६६ ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया । मंगलाचरितैर्दानैर्रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६७ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप । उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६८ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् । वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥६९॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

क्योंकि-जिन गोपियोंने, जिनका त्यागना कठिन है ऐसे अपने स्वजन और धर्म-मार्गको त्याग कर, श्रुतियोंको भी जिसका मिलना दुर्लभ है ऐसा श्रीकृष्णजीकी प्राप्तिका मार्ग स्वीकार करा है अर्थात् भगवत्परायण हुई हैं और जिन्होंने, लक्ष्मी का भी पूजन करा हुआ तथा ब्रह्माजीका और पूर्णमनोरथ योगीश्वरोंका भी अपने हृदयमें चिन्तवन करा हुआ जो भगवान्का चरणकमल उसको रासमण्डलमें अपने स्तनोंपर रखकर और उसको आलिङ्गन करके अपना ताप दूर करलिया है ६१।६२ जिन गोपियोंका कथाओंका गाना, त्रिलोकीको पवित्र करता है उन नन्दके गोकुलमेंकी स्त्रियोंके चरणरेणु को मैं वारम्वार नमस्कार करता हूँ ६३श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! तदनन्तर वह उद्धवजी, गोपियोंकी, यशोदाकी, नन्दजीकी और गोपोंकी आज्ञा लेकर मथुराको जानेको रथ पर बैठे ॥ ६४ ॥ तब उनको जाने को उद्यत हुआ देख कर, नन्द आदि सकल गोप, बलरामकृष्णके अर्पण करनेके निमित्त नानाप्रकारकी भेंट हाथमें लेकर बड़े प्रेमके साथ नेत्रोंमेंसे आँसू बहाते हुए कहने लगे कि-॥ ६५ ॥ हे उद्धव ! तुम हमारे कृष्णतत्त्वको उपदेश करने वाले गुरु हो इस कारण तुमसे हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि-हमारे मनकी वृत्ति निरन्तर श्रीकृष्णके चरणकमलका आश्रय करने वाली हों, हमारी वाणियें कृष्णके नामोंका उच्चारण करनेवाली हों और हमारा शरीर कृष्णको नमस्कार आदि करनेमें प्रवृत्त हो ॥ ६६ ॥ ईश्वरकी इच्छासे कर्मवश देव मनुष्यादि किसी भी योनियोंमें भ्रमण करें परन्तु हमारे अन्य जन्मोंमें वा इस जन्ममें करे हुए मङ्गल कारक कर्मोंके वा दानके प्रभावसे कृष्णरूप ईश्वरमें हमारी प्रीति हो ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! ऐसे श्रीकृष्ण की भक्तिसे गोकुलवासी लोकोंके पूजा करे हुए वह उद्धवजी, फिर श्रीकृष्णजीकी रक्षा करी हुई मथुरा नगरीको लौट गए ॥ ६८ ॥ फिर श्रीकृष्ण, वसुदेव, बलराम और उग्रसेनको यथायोग्य नमस्कार करके उन्होंने, उनसे गोकुलवासी पुरुषोंकी भक्तिके आधिक्यका वर्णन करा और नन्द आदिकी दीहुई सब भेंट अर्पण करी ६९
इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

श्रीशुक उवाच । अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः । सैरंध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ १ ॥ महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् । मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः । धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मंडितम् ॥ २ ॥ गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा । यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् । कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४ ॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः । प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलास्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥ आहूय कांतां नवसंगमह्रिया विशंकितां कंकणभूषिते करे । प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ साऽनंगतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनंत चरणेन

अब आगे अडतालीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने कुब्जाके साथ क्रीडा करी और अक्रूरजीके घर जाकर उनको हस्तिनापुर भेजा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! तदनन्तर सर्वात्मा और सर्वदर्शी उन भगवान् श्रीकृष्णजीने, कामतप्त हुई कुब्जाका काम सन्ताप जान कर, उसका प्रिय करनेके निमित्त उसके घर गमन करा ॥ १ ॥ वह उसका घर—बहुत मूल्यके पात्र आदिकोंसे युक्त, कामशास्त्रमें कहे हुए कामोद्दीपक पदार्थोंसे बढ़ा हुआ और मोतियोंकी माला—ध्वजा—कपडछत-शय्या—कोमल आसन अगरके धूप-मणियोंके दीपक—फूलोंकी माला और चन्दनके लेप आदिसे शोभित था ॥ २ ॥ घर आने वाले उन श्रीकृष्णजीको देखते ही घबडाई हुई वह कुब्जा, आसन परसे उठ कर; सखियोंके साथ यथायोग्य रीतिसे सन्मुख जाकर उसने श्रीकृष्णजीकी, उत्तम प्रकारसे आसन, पाद्य आदि सामग्री समर्पण करके पूजा करी ॥ ३ ॥ तैसे ही उद्धवजीका भी उसने उत्तम प्रकारसे पूजन करा सो वह आसनको स्पर्श करके भूमि पर ही बैठ गये, तदनन्तर लोकरीतिका वर्त्ताव करने वाले श्रीकृष्णजीने भी, नवीन (जिसके ऊपर पहिले किसीने भी शयन नहीं करा ऐसे) बहुत मूल्यके पलँग पर प्रवेश करा ॥ ४ ॥ तब वह कुब्जा भी स्नान करना, अङ्गको उबटन लगाना, उत्तम वस्त्र पहिरना, भूषण और माला धारण करना, ताम्बूल और अमृतकी समान मधुर मदकारी वस्तुका सेवन करना इत्यादि प्रकारोंसे भगवान्के साथ क्रीडा करनेको अपने शरीरको सम्हाल कर, लज्जायुक्त मन्दहास्य और विलासके साथ देखती हुई श्रीकृष्णजीके समीप आई ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजीके नवीन समागमके कारण लज्जासे स्वयं समीप आनेमें लज्जायुक्त हुई तिस कुब्जाको श्रीकृष्णजीने अपने समीप बुला कर उसके कङ्कणोंसे भूषित हाथको पकड़ कर शय्या पर बैठाया और उसके साथ क्रीड़ा करी, चन्दनका लेपन करनेके सिवाय जिसका दूसरा कोई भी पुण्य नहीं था, उस कुब्जाका देखो कितना भाग्य है ! ६ तदनन्तर अनन्तशक्ति श्रीकृष्णजीके चरणोंकी सुगन्ध ही सूँघती है मानो, ऐसी तिस कुब्जाने, मदनसे तप्त हुए अपने स्तन, वक्षःस्थल और नेत्रोंमें उनके चरणोंको

रुजो मृजन्ती। दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानंदमूर्त्तिमजहाद्तिदीर्घतापम् ॥७॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम्। अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया। रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं संगं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥ तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः। सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्। यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः। किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥ स तान्नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबांधवान्। प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः। पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप। अर्हणेनांबरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसानम्य पादावंकगतौ मृजन्। प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥१६॥ दिष्ट्या

रख कर तिससे अपने स्तनादिकी कामपीडा दूर करके, स्तनोंके मध्यभागमें प्राप्त हुए उन आनन्दमूर्त्ति अतिप्रिय श्रीकृष्णजीके भुजाओंसे आलिङ्गन करके अपना बहुत दिनोंका ताप दूरकरा ॥ ७ ॥ अहो! इसप्रकार चन्दनका लेपन अर्पण करनेसे ही उन दुष्प्राप्य भी, मोक्षके स्वामी श्रीकृष्णजीको पाकर भाग्यहीन भी वह कुब्जा उनसे यह याचना करने लगी कि-॥ ८ ॥ हे अतिप्रिय कमलनयन! तुम्हारा सङ्ग छोड़नेको मैं उत्साह नहीं कर सकती हूँ इस कारण कुछ दिनों पर्यन्त तुम मेरे साथ क्रीड़ा करो और इस मेरे घरमें ही रहो ॥ ९ ॥ इस प्रकार याचना करे हुए भक्तोंका सम्मान करने वाले वह सर्वेश्वर श्रीकृष्णजी, उसको इच्छित वर देकर और कुछ दिनों पर्यन्त उसके घर रहकर, वस्त्र भूषण आदि देनेसे उसका मनोरथ पूरा करके फिर उद्धवजीके साथ सकल सम्पदायुक्त अपने घरको लौट आये १० उस कुब्जाकी तो बात ही क्या? परन्तु और भी जो कोई पुरुष, भक्तिके विना सहस्रों उपायोंसे भी आराधना करनेमें कठिन और ब्रह्मादिकोंके भी ईश्वर तिन सर्वेश्वर विष्णु भगवान्की आराधना करके उनसे मिथ्याभूत और तुच्छ विषय सुखको माँगता है उसको कुबुद्धि समझना चाहिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर एक दिन अक्रूरजीको हस्तिनापुरमें भेजनेके निमित्त और अक्रूरजीका भी प्रिय करनेके निमित्त वह श्रीकृष्णजी बलराम और उद्धवजीके साथ अक्रूरजीके घर गये ॥ १२ ॥ तब श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी श्रेष्ठ आये हुए अपने २ बान्धवरूप बलराम कृष्णको दूरसे ही देख कर हर्ष युक्त हुए उन अक्रूरजीने, बड़ी शीघ्रतासे उठ कर उनको आलिङ्गन करा और उनके आनेका धन्यवाद करके उन बलराम कृष्णको प्रणाम करा, तदनन्तर उन तीनोंने भी पलटेमें उन अक्रूरजीको अभिवन्दन करा तब उन अक्रूरजीने आसन पर बैठाए हुए उनकी विधिपूर्वक पूजा करी ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे राजन्! तदनन्तर उनके चरणोंकी धोवनका जल मस्तक पर धारण करने वाले, उन अक्रूरजीने उनका अर्घ्य आदि सामग्री, दिव्य वस्त्र, माला और उत्तम आभूषणोंसे पूजन करके तथा मस्तकसे नमस्कार करके गोदीमें रक्खे हुए उनके चरणकी सेवा

पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् । भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद् दुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ । भवद्भ्यां न विना किंचित्परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः । ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भांति नाना । एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्माऽऽत्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥ सृजस्यथो लुंपसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः । न बद्ध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदात्मनः स्यात् । अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ।

करने वाले और नम्रतायुक्त वह अक्रूरजी, कृष्ण-बलरामसे कहने लगे कि-१५॥१६ तुमने मल्ल आदिकों सहित पापी कंसको मारा यह बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई, यह तुम्हारा कुल, तुमने अपार दुःखसे बाहर निकाला इस कारण वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ तुम जगत्के कारण और जगन्मय प्रकृति-पुरुषरूप हो, तुम्हारे सिवाय दूसरा कारण वा कार्य कुछ नहीं है ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मस्वरूप ! अपनी रजोगुण आदि शक्तियोंसे आप ही उत्पन्न करे हुए इस जगत्में तुम कारणरूपसे होनेके कारण प्रविष्ट न होकर भी प्रवेश करे हुएसे प्रतीत होकर, देखनेमें और सुननेमें आने वाले पदार्थोंके स्वरूपसे नाना प्रकारके भासते हो ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारण, रूपान्तरसे अपने ही प्रकट होनेके स्थान चराचर प्राणीमात्रमें कारणरूपसे पहिले होकर भी तदनन्तर प्रविष्ट हुएसे होकर कार्यरूपसे अनेक प्रकारके भासते हैं तैसे, ही स्वतन्त्र आत्मा तुम, आप ही कारण हुए सकल भूतभौतिक कार्योंमें तिस २ स्वरूपसे भासते हो ॥ २० ॥ तुम ही अपना शक्तिरूप रजःसत्त्वतमोगुणोंसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार करते हो तथापि उन गुणोंसे और कर्मोंसे बँधते नहीं हो, क्योंकि-ज्ञानरूप तुममें बन्धनकी कारण होने वाली अविद्या कहाँ है ? ॥२१॥ तुम्हें बन्धन होनेकी शंका भी नहीं यह तो अलग रहा परन्तु अविद्योपाधिक जीवात्मा को भी वास्तवमें जन्म और जन्मके कारण भेद-भाव यह दोनों किंचिन्मात्र भी नहीं हैं, क्योंकि-देहादिक उपाधियोंका किसी भी प्रकारसे निरूपण करनेमें नहीं आता, अब बन्धन नहीं है ऐसा कहने वाला तू मोक्ष को स्वीकार करता है क्या ? ऐसा कहो तो सुनो—बन्धनके विना मोक्ष कैसा ? तब क्या बन्धन प्राप्त होना ही चाहिये ? ऐसा कहो तो सुनो— आपको अविद्या न होनेके कारण बन्धन वा मोक्ष दोनों ही नहीं हैं, यदि कहो कि-तूने तो मुझे ऊखलमें बँधा हुआ सुना है और यमुनाके कुण्डमेंसे मुक्त होते हुए भी देखा है फिर बन्ध मोक्ष नहीं हैं ऐसा क्यों कहता है यदि ऐसा कहो तो सुनो-हमारी समझमें तुम्हें बन्ध-मोक्ष हैं ऐसा प्रतीत होता है परन्तु वह केवल हमारा अज्ञान ही है ॥ २२ ॥ तो मेरे अवतार और चरित्र सब ही कल्पित हैं क्या ? नहीं २ वह तो तुम्हारी लीला है, क्योंकि-जगत्के हितके निमित्त तुम्हारा कहा

बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्त्ति ॥२३॥ स त्वं प्रभोद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः । अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥२४॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्त्तिः । यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥ कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् । सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः । छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान् हरिः । अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा । वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकंप्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या

हुआ जो यह पुरातन वेदमार्ग है सो जब २ दुष्ट पाखंड मार्गोंसे पीडित होता है तब २ तुम अपना शुद्ध सतोगुणी अवतार धारण करते हो ॥ २३ ॥ हे प्रभो ! वही तुम अब दैत्योंके अंशभूत कंसादि राजाओंकी सैंकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंके वधसे भूमिका भार दूर करनेके निमित्त और यादवकुलके यशको फैलानेके निमित्त इस भूलोकमें वसुदेवजीके घर अपने अंशभूत बलरामजीके साथ अवतरे हो ॥ २४ ॥ हे अधोक्षज ईश्वर ! जो तुम पंचमहायज्ञके देवता, पितर, भूत और राजाओंके रूपसे बने हो और जिनके चरणको धोनेका जल (गङ्गा) त्रिलोकीको पवित्र करता है ऐसे जगद्गुरु तुमने जिनमें प्रवेश करा है वह हमारे घर आज तपोवनोंसे भी अधिक भाग्यवान् हैं अर्थात् अत्यन्त पवित्र हुए हैं ॥ २५ ॥ अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ ऐसा सन्तोष मानते हुए कहते हैं कि-हे प्रभो ! भक्तप्रिय, सत्यवक्ता, सबोंके हितकर्त्ता और भक्तोंकी करी हुई भक्तिको जानने वाले तुम्हें छोड़ कर बुद्धिमान् पुरुष दूसरे किसकी शरण जायगा ? क्योंकि-तुम, भक्ति करने वाले भक्तको उसकी इच्छानुसार सब ही पुरुषार्थ देते हो, अधिक तो क्या परन्तु तुम अपनेको भी उनके वशमें करते हो, ऐसा करनेका कारण यह है कि-तुम्हारी उन्नति अवनति कुछ नहीं होती है ॥ २६ ॥ हे जनार्दन ! सनकादिक योगेश्वरोंको और इन्द्रादिक देवेश्वरोंको भी जिनके स्वरूपका ज्ञान दुर्लभ है ऐसे तुम, मुझ अविवेकीके घर प्रत्यक्ष आकर प्राप्त हुए हो, इस कारण मुझे बड़ा आनन्द हुआ, अब, पुत्र, स्त्री, धन, माता-पिता, घर और देह आदिके ऊपर मेरी यह मोहपाशरूप तुम्हारी माया है तिसको तुम शीघ्र नष्ट करो ॥ २७ ॥ इस प्रकार भक्त अक्रूरजीके पूजा करेहुए और स्तुति करे हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मन्दहास्यके साथ वार्त्तालापोंसे अक्रूरजीको मोहित करते हुएसे कहने लगे ॥२८॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-तुम हमारे निरंतर हित करनेवाले और काका होनेके कारण हमारे प्रशंसा करने योग्य हो, हम तो तुम्हारे बालक हैं इस कारण तुम करके, शत्रु आदिकोंसे रक्षा करनेको, पोषण करनेको और दया करनेको योग्य हैं ॥ २९ ॥ तुम्हारी समान

अर्हत्तमाः । श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया । जिज्ञासार्थं पांडवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः । आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥ ३३ ॥ तेषु राजांऽबिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः । समो न वर्त्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा । विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥ इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः । संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

श्रीशुक उवाच । स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेंद्रयशोऽङ्कितम् । ददर्श तत्रांबिकेयं

महाभाग जो अत्युत्तम पुरुष हैं वही कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके सेवा करने योग्य हैं यदि कहो कि-मनुष्योंको तो देवताओंकी सेवा करना प्रसिद्ध है तो सुनो-देवता स्वार्थी होनेके कारण साधु नहीं हैं, साधु तो केवल दूसरोंके ऊपर अनुग्रह करनेवाले ही हैं,परमार्थदृष्टिसे देखाजाय तो साधु ही यथार्थ देवता हैं उन की ही सेवा करे ॥ ३० ॥ तो क्या पाषाण आदिकी मूर्त्तियोंके अधिष्ठात्री देवता ही नहीं हैं ? यदि ऐसा कहो तो सुनो जलमय तीर्थ न हों ऐसा नहीं है और मृत्तिका पाषाणमय देवता न हो ऐसा भी नहीं है निःसंदेह वह तीर्थ तथा वह देवता हैं परन्तु उनमें और साधुओंमें बडा अन्तर है-वह तीर्थ और वह देवता तो बहुत समय पर्यन्त सेवा करनेसे पवित्र करते हैं और साधुपुरुष दर्शनमात्रसे ही पवित्र करदेते हैं ॥ ३१ ॥ सो तुम वैसे साधु और हमारे सब ही सुहृदोंमें श्रेष्ठ हो, इस कारण पांडवोंका कल्याण करनेकी इच्छासे उनका वृत्तान्त जाननेके निमित्त तुम हस्तिनापुरको हो आओ ॥३२॥ पिता (राजा पांडु) के मरणको प्राप्त होने पर वह युधिष्ठिर आदि बालक, राजा धृतराष्ट्रके अपने हस्तिनापुरमें लाये हुए तहाँ अपनी कुन्ती माताके साथ अतिदुःखसे रहते हैं ऐसा हमने सुना है ॥ ३३ ॥ क्योंकि-वह धृतराष्ट्र अन्ध , कृपणबुद्धि और अपने दुर्योधन आदि कुपुत्रोंके वशमें होनेके कारण उन पाण्डवोंमें अपने पुत्रोंकासा ठीक वर्त्ताव नहीं रखता है इसकारण तुम हस्तिनापुरमें जाकर इस समय उस धृतराष्ट्रका पांडवोंके विषयमें वर्त्ताव उत्तम रीतिका है वा दुष्टभावका है यह जानकर चले आओ तब समझकर जैसे उन सुहृदोंको सुख मिलेगा सो किया जायगा३५इस प्रकार वह भगवान् ईश्वर श्रीकृष्णजी अक्रूरजीको आज्ञा देकर फिर उद्धव और बलरामजीके साथ अपने घरको चलेगये ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्द्धमें अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

अब आगे उनञ्चासवें अध्यायमें अक्रूरजी हस्तिनापुरको जाकर धृतराष्ट्रकी अपने भ्राताके पुत्रोंमें भेदबुद्धि है ऐसा देखकर फिर मथुरापुरीमें लौटकर आगये यह कथा वर्णन करी है ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! तदनन्तर वह अक्रूरजी, कुरुकुलमें श्रेष्ठ राजाओंके यशोंसे अर्थात् उनके बनवाये हुए देवताओंके

समीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् । कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पांडवान् सुहृदोऽपरान् ॥ २ ॥ यथावदुपसंगम्य बंधुभिर्गांदिनीसुतः । संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया । दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्त्तिनः ॥ ४ ॥ तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् । प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्त्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् । आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥ पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् । उवाच जन्मनिलयं स्मरंत्यश्रुकलेक्षणा ॥७॥ स्मरंति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे । भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः । पैतृष्वस्रेयान् स्मरति रामश्चांबुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचंतीं वृकाणां हरिणीमिव । सांत्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥१०॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन्विश्वभावन । प्रपन्नां

और ब्राह्मणोंके गृहादिकोंसे चिह्नित तिस हस्तिनापुरमें जाकर, तहाँ धृतराष्ट्र, भीष्मजी, विदुर और कुन्तीसे मिले ॥ १ ॥ तैसे ही बाह्लीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डव और दूसरे भी सुहृदोंसे यथायोग्य रीतिसे मिल कर तिन बान्धवोंने अपने बन्धुओंका (यादवोंका) कुशलक्षेम बूझा तब उन अक्रूरजीने भी उनसे आरोग्य आदि कुशलक्षेम बूझा ॥ २ ॥ ३ ॥ तदनन्तर उस हस्तिनापुरमें वह अक्रूरजी, धृतराष्ट्रका वर्त्ताव जाननेकी इच्छासे कई मास पर्यंत रहे, क्योंकि-वह धृतराष्ट्र, दुष्टपुत्र वाला, मन्दबुद्धि और कर्ण आदि दुष्टोंकी इच्छानुसार वर्त्ताव करने वाला था ॥ ४ ॥ अक्रूर जो तहाँ बहुत दिनों पर्यन्त रहे सो तहाँ पाण्डवोंकी शत्रुओंको जीतनेकी शक्ति, इन्द्रियोंकी शक्ति, शरीरका बल, शूरता और नम्रता आदि उत्तम गुणोंको तथा उनके ऊपर जो प्रजाका प्रेम था तिसको न सहनेवाले दुर्योधनादिकोंने जो विष देना आदि दुष्टकर्म करा था और उनके मनमें जो लाखके स्थानमें बन्द करके मार डालनेका विचार था सो सब ही उन अक्रूरजीसे कुन्तीने और विदुरजीने स्पष्टरूपसे कहा ॥ ५ ॥ ६ ॥ इस कहनेसे पहिलेका कुंतीका यह वृत्तांत है कि-मेरे भ्राता अक्रूर आये हैं ऐसा सुन कर कुंती, उनके समीप गई और अपनी जन्मभूमिका स्मरण करती हुई नेत्रोंमें दुःखके आँसू भर कर कहने लगी कि-॥ ७ ॥ हे सौम्य अक्रूर ! मेरी माता, पिता, भ्राता, बहिन, भाईके पुत्र, कुलकी स्त्रियें औरसखियें यह सब मुझे स्मरण करती हैं क्या ? ॥ ८ ॥ तथा भक्तोंके ऊपर दया करने वाले और शरण जानेयोग्य मेरे भ्राताके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण और कमलनेत्र बलराम, यह दोनों अपनी बुआके पुत्र धर्मराज आदिका स्मरण करें हैं क्या ? ॥ ९ ॥ मैं तो, जैसे भेड़ियोंमें पड़ी हुई हिरनी शोकाकुल होती है तैसे इन शत्रुओंमें पड़ी हुई शोकमें डूबी रहती हूँ, इस कारण वह श्रीकृष्ण, मुझे और इन पिताहीन हुए बालकोंको धीरज बँधावेंगे क्या? १०इस प्रकार अक्रूरजीसे कहकर,प्रेमके वेगसे भगवान् मेरे समीप ही हैं ऐसा मानकर उनकी प्रार्थना करती है कि-हे कृष्ण! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे जगदात्मन् ! हे जगत्पालक ! हे

पाहि गोविंद शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदांभोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् । बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने । योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् । प्रारुदद् दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः । सांत्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् । अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच । भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्त्तिवर्द्धन । भ्रातर्युपरते पांडावधुनासनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् । वर्त्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्त्तिमवाप्स्यसि १८ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः । तस्मात्समत्वे वर्त्तस्व पांडवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥ नेह चात्यंतसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह । राजन् स्वेनापि देहेन किमु

गोविन्द ! बालकों सहित क्लेश पाने वाली और तुम्हारी शरणमें आई हुई मेरी तुम रक्षा करो ॥११॥ हे प्रभो ! मृत्यु संसारसे डरने वाले प्राणियोंको मोक्ष देनेवाले तुम ईश्वरके चरणकमलके सिवाय दूसरा रक्षा करने वाला कोई भी मैं नहीं देखती हूँ ॥ १२ ॥ इसकारण धर्ममूर्त्ति, अपरिच्छिन्नरूपी, जीवोंके सखा, अणिमादि संपत्तियुक्त और ज्ञानात्मा तुम कृष्णको नमस्कार करती हुई मैं शरण आई हूँ ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार स्वजनोंका और जगदीश्वर कृष्णका स्मरण करके उनके वियोग आदिसे दुःखित हुई वह तुम्हारी परदादी कुंती, अन्त में रुदन करने लगी ॥ १४ ॥ तब उस कुंतीकी समान ही जिनका दुःख और सुख है ऐसे अक्रूरजी और महायशस्वी विदुरजी इन दोनोंने, तेरे और माद्रीके यह पुत्र धर्म, वायु, इंद्र और अश्विनीकुमारोंसे उत्पन्न हुए हैं से। महापराक्रमी हैं इसकारण तू कुछ खेद मत कर; ऐसा कह कर उस कुंतीको समझाया ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन अक्रूरजीने, मथुराको जाते समय, भीष्म आदि बन्धुओंकी सभामें बैठे हुए और अपने पुत्रोंके ऊपर ही प्रेम बुद्धि रख कर पाण्डवोंमें भेदबुद्धि रखने वाले उन राजा धृतराष्ट्रके समीप जाकर, उनसे कृष्ण बलराम आदि बान्धवोंने जो प्रेमके साथ कह दिया था सो कह सुनाया ॥ १६ ॥ अक्रूरजीने कहा कि–हे कौरवोंकी कीर्त्ति बढ़ाने वाले विचित्रवीर्यनन्दन धृतराष्ट्र ! तुम पाण्डुराजाके (भ्राताके) मरणको प्राप्त होने पर पुत्रोंके विद्यमान होते हुए भी इस सिंहासन पर बैठे हो ॥ १७ ॥ सो तुम, धर्मसे पृथ्वीका पालन करतेहुए और अपनी सुशीलतासे प्रजाओंको आनंदित करते हुए, पाण्डुके पुत्र और अपने पुत्रोंमें समानभावसे वर्त्ताव रक्खोगे तो कल्याण और कीर्त्ति पाओगे ॥ १८ ॥ नहीं तो (इसके विपरीत वर्त्ताव करोगे तो) इसलोक में मनुष्य तुम्हारी निन्दा करेंगे और परलोकमें नरकको जाओगे इस कारण तुम पाण्डवके और अपने पुत्रोंमें एक समान वर्त्ताव रक्खो ॥ १९ ॥ यदि कहो कि– अपने पुत्रोंके ऊपर और दूसरेके पुत्रोंके ऊपर समभाव कैसे होसकता है ? तो सुनो–हे राजन् ! इस लोकमें किसी भी जीवात्माका किसी भी पुत्र आदिके साथ

जायात्मजादिभिः ॥२०॥ एकः प्रसूयते जंतुरेक एव प्रलीयते । एकोऽनुभुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरंत्यन्येऽल्पमेधसः । संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् । तेऽकृतार्थं प्रहिन्वंति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः । असिद्धार्थो विशत्यंधं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥ तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् । वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच । यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् । तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥२६॥ तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले । पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा

निरन्तर एक स्थान पर सहवास नहीं होसकता, अपने इस परमप्यारे देहके साथ भी 'निरन्तर सहवास' नहीं रहसकता, फिर स्त्री पुत्रादिकोंके साथ रहनेका तो पता ही क्या ? ॥ २० ॥ देखो यह जीव इकला ही जन्म लेता है, स्त्री पुत्रादिकोंके साथ जन्म नहीं लेता है, और इकला ही मरता है, स्त्री पुत्रादिकोंके साथ नहीं मरता है, तैसे ही पुण्यका फल सुख इकला ही भोगता है और पापका फल दुःख भी इकला ही भोगता है ॥ २१ ॥ और जिस समय स्त्री पुत्रादि इसके साथ होते हैं उस समय भी विचार करने पर, वह स्त्री-पुत्र-आदि शत्रु ही हैं, क्योंकि-यह हम पोषण करने योग्य हैं ऐसा बहाना दिखा कर इस मूढ़बुद्धि पुरुषका अधर्मसे पाया हुआ धन, जैसे मच्छके जीवित रहनेके साधन जलको उसके स्त्री-पुत्रादि हर लेते हैं तैसे ही हर लेते हैं ॥ २२ ॥ और यह अपने हैं ऐसा मान कर, जिनका अधर्म करके पोषण करता है ऐसे यह प्राण, धन और पुत्र स्त्री आदि भी पूर्णमनोरथ न हुए तिसको, (मरणको प्राप्त होने पर वा जीवित दशामें ही) छोड़ कर चले जाते हैं ॥ २३ ॥ फिर स्वार्थ के विषयमें मूढ़, अपने धर्मसे भ्रष्ट और मनोरथ पूर्ण होनेसे पहिले ही स्त्री-पुत्रादिकोंका त्यागा हुआ वह पुरुष, आपही उनके पोषणके निमित्त करेहुए पापमात्रको लेकर अन्धतामिस्र आदि नरकोंमें जाता है ॥ २४ ॥ इसकारण हे प्रभो राजन् ! यह पुत्रादिकोंके ऊपर आसक्ति होना अनर्थका कारण है,इसकारण धन-पुत्रादि सहित यह लोक, स्वप्न माया वा मनोरथकी समान अनित्य है ऐसा देखकर अपनी बुद्धिसे ही अपने मनको वशमें करके तुम शांत और सबमें समान भाव रखने वाले रहो ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रने कहा कि-हे दानपते अक्रूरजी ! तुम जो कल्याणकारी वचन कहते हो उन तुम्हारे वचनोंसे, जैसे मरने वाला प्राणी, अमृत भोजन करके भी तृप्त नहीं होता है तैसे ही मैं भी तृप्त नहीं होता हूँ अर्थात् तुम्हारे इस कथनको पर्याप्त नहीं मानता हूँ॥२६॥तथापि हे सौम्य ! यह तुम्हारी मधुर और हितकारक वाणी पुत्रोंके प्रेमसे भेदभावयुक्त होकर चञ्चल हुए मेरे हृदयमें, जसे स्फटिकमय सुदामा पर्वत पर चमकने वाली बिजली स्थिर नहीं रहती है किन्तु तत्काल नष्ट होजाती है तैसे ही स्थिर न होकर व्यर्थ होती है॥ २७ ॥ अच्छा ऐसा जानते हुए भी तुझे ऐसा मोह क्यों होरहा है ? यदि ऐसा कहो तो सुनो—ईश्वरके

पुमान् । भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निज-मायेदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः । तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसार-चक्रगतये परमेश्वराय ॥२९॥ श्रीशुक उवाच । इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः । सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥३०॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टि-तम् । पांडवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

❋ दशमस्कन्धोत्तरार्द्धप्रारम्भः ❋

श्रीशुक उवाच।अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ । मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासंघाय दुःखिते । वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥ २ ॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप । अयादवीं

मनमें जो करना होगा उसके पलटनेको कौन पुरुष समर्थ होसकता है ? कोई नहीं जो ईश्वर भूमिका भार उतारनेके निमित्त यदुके कुलमें श्रीकृष्णरूपसे अवतरे हैं२८ जो अपनी अतर्क्य मायासे इस सकल जगतको उत्पन्न करके उसमें अन्तर्यामिरूपसे प्रविष्ट होते हुए सकल प्राणियोंको कर्म और उन कर्मोंके भिन्न भिन्न फल देते हैं और समझनेमें न आने वाली अपनी क्रीडासे ही उत्पन्न हुए संसारचक्रको फिराते हैं तिन परमेश्वरको नमस्कार हो ॥२९॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उन अक्रूरजीने, राजा धृतराष्ट्रका अभिप्राय जान कर पाण्डवोंके मथुराको जानेकी आज्ञा देने पर फिर मथुरापुरीको गमन करा ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तदनन्तर जिसके निमित्त (धृतराष्ट्रका वर्त्ताव जाननेके निमित्त) भगवान्‌ने स्वयं उन अक्रूरजी को भेजा था वह पाण्डवोंके विषयमें धृतराष्ट्रका विष देना आदि सब वृत्तांत, उन्होंने बलराम कृष्णसे कहा ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध पूर्वार्धमें एकोन-पंचाश अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ छ छ छ ॥

दशमस्कन्धे पूर्वार्धं समाप्तिमगमत् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । अब आगे पंचासवें अध्यायमें, जरासन्धके भयसे ही मानो श्रीकृष्णजीने समुद्रमें द्वारका नगरी बनवाकर उसमें अपने सब यादवोंको पहुँचा दिया यह कथा वर्णन करी है ॥ ❋ ॥ श्रीशुकदेवजीने पूतना केशी आदि कपटी दैत्योंको कपटसे अनायासमें ही जीत लिया, यह वृत्तान्त पूर्वार्द्धमें कह कर अब अपनेको धर्मात्मा कहने वाले जरासन्धको धर्मसे ही जीता यह कथा वर्णन करनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे भरतकुलमें श्रेष्ठ राजन् ! अस्ति और प्राप्ति नामवाली कंसकी दो स्त्रियें थीं, वह पति (कंस) के मरणको प्राप्त होनेपर दुःखसे पीडित हो पिता (जरासन्ध) के घर चलीं गई ॥ १ ॥ और दुःखित, हुई उन दोनोंने, अपना पिता मगध देशका राजा जो जरासन्ध उसको अपने विधवा होनेका कारण (कृष्णचरित्र) आदिसे अन्त पर्यन्त कह सुनाया ॥२॥ हे राजन् !

महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः। यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम्। स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥ ५ ॥ चिंतयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः। तद् देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम्। मागधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७ ॥ अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः। मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ८ एतदर्थोऽवतारोयं भूभारहरणाय मे। संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ९। अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया। विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविंद आकाशात्सूर्यवर्चसौ। रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया। दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां

उसने तिस अप्रिय वार्त्ताको सुनकर,कंसके विषयमें शोक और श्रीकृष्णके विषयमें क्रोधके आवेशसे युक्त होकर, पृथ्वीको यादवोंसे रहित करनेका बड़ा भारी उद्योग करा ३ उद्योगसे मिली हुई बीस अक्षौहिणी और अपनी तीन अक्षौहिणी इस प्रकार सब तेईस अक्षौणी सेना लेकर उसने यादवोंकी राजधानी जो मथुरा तिसको चारों ओरसे घेर लिया४उस समय श्रीकृष्णजीने, मर्यादाको लाँघनेवाले समुद्रकी समान जिधर तिधरको फैली हुई उसकी सेनाको देखकर और उसके नगरको घेरलेनेके कारण भयभीत हुए अपने कुटुम्बियोंको देखकर-॥ ५ ॥ भूमिका भार उतारनेको मनुष्य हुए तिन भगवान् श्रीहरिने, इस देशमें और इस कालमें उचित मेरे अवतार का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् इस सेनाका वध करके जरासन्धको छोड दूँ अथवा जरासन्धको मारकर सेनाको अपने हाथमें करलूँ अथवा जरासन्ध सहित सब सेनाको मारडालूँ इस विषयका चिन्तवन करके निश्चय करा कि-॥ ६ ॥ पृथ्वी का भाररूप इस सेनाका ही वध करूँगा, क्यों कि-जरासन्ध, अपने अधीन सब राजाओंके सिपाही, घोड़े, रथ और हाथियोंकी तेईस अक्षौणी सेनाको इकट्ठा करके यहाँ लाया है, जरासन्धको तो मारूँ नहीं, छोड दूँ तो वह फिर दुष्टोंकी सेना इकट्ठी करनेका उद्योग करेगा ॥ ७-८ ॥ इस निमित्त ही अर्थात्-भूमिका भार हरने के निमित्त, साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त तथा दुष्टोंका वध करनेके निमित्त मैंने यह अवतार धारण करा है ॥ ९ ॥ केवल यही अवतार धारण नहीं करा है किन्तु और भी शरीर (अवतार) धर्मकी रक्षाके निमित्त और किसी समय वृद्धि को प्राप्त हुए अधर्मको दूर करनेके निमित्त मुझे धारण करने पडते हैं ॥ १० ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके विचार करते हुए उसी समय सारथी सहित और ध्वजा-कवज आदि सामग्री सहित, सूर्यकी समान तेजवाले दो रथ आकाशमेंसे नीचे उतरकर बलराम कृष्णके समीप आ पहुँचे ॥ ११ ॥ तथा पुरातनके चक्र-गदा आदि दिव्य शस्त्र अकस्मात् उन रथोंके साथ ही स्वयं तहाँ आ पहुँचे, तब उनको देखकर श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजीसे कहने लगे ॥१२॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे आर्य प्रभो!

प्रभो । एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर । एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु । एवं संमंत्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥ निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ । शंखं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः । तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया । गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बंधुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युद्धस्व धैर्यमुद्वह । हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच । न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयंत्येव पौरुषम् । न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः श्रीशुक उवाच । जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसावृणोत् । ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वज-

---

तुम जिनके रक्षक हो उन यादवोंको, जरासन्धने अपनी सेनासे घेर लिया है इससे यह कैसा दुःख आ पडा है, देखो यह तुम्हारे निमित्त रथ आया है तथा तुम्हें प्रिय लगने वाले यह हल-मूसल आदि आयुध भी आये हैं ॥ १३ ॥ इससे इस रथ पर बैठकर इस सेनाको मार डालो, और अपने यादवोंका संकटसे उद्धार करो। इस निमित्त ही हम दोनोंका जन्म होकर वह दुष्टोंका दमन करके साधुओंको सुख देनेवाला है ॥ १४ ॥ सो यह तेईस अक्षौहिणी सेनारूप भूमिका भार दूर करो, इस प्रकार परस्पर सम्मति करके वह बलराम-कृष्ण कवच धारण कर रथपर चढ़ और शंखचक्र आदि अपने आयुधोंसे युक्त तथा थोडीसी चतुरङ्ग सेनाको चारों ओर लेकर उस मथुरा नगरीसे बाहर निकले तब जिनका दारुक नामवाला सारथी है ऐसे श्रीकृष्णजीने, नगरसे बाहर निकलते ही पाञ्चजन्य नामक शंख बजाया१५-१६ उस शंखके शब्दसे जरासन्धकी सेनाके हृदयमें भयके मारे कपकपी उत्पन्न होगई, तब उन बलराम-कृष्णको देखकर जरासन्ध कहने लगा कि-हे कृष्ण! हे पुरुपाधम! तुझ इकले बालकके साथ मैं लज्जाके कारण युद्ध करनेकी इच्छा नहीं करता हूँ, हे मन्दबुद्धे! हे मामाका वध करने वाले! स्वजनोंकी केवल प्रेमसे ही रक्षा करने योग्य तेरे साथ मैं युद्ध करता ही नहीं इस कारण तू पीछेको लौटजा॥ १७-१८ ॥ ऐसा कृष्णसे कहकर बलरामजीसे कहने लगा कि-हे राम! तुझे यदि मेरे साथ युद्ध करनेकी श्रद्धा होय तो युद्धकर परन्तु धीरज धर, मेरे बाणोंसे छिन्न—भिन्न हुए शरीरको त्याग कर स्वर्गको जा अथवा बलवान् होय तो मेरा वध कर ॥१९॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे राजन् शूर! पुरुष अपनी प्रशंसा नहीं करते हैं किन्तु स्तुतिका कारण अपना पराक्रम ही दिखाते हैं, तू जो सन्निपात वाय आयेहुए पुरुष की समान आतुर होरहा है तिससे यह तेरा अपनी प्रशंसाका भाषण हम नहीं ग्रहण करते हैं॥२०॥श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस प्रकार कहे हुए उस जरासन्धने, सेना, रथ, ध्वजा, घोडे और सारथियोंके साथ आये हुए उन बलराम कृष्णके समीपमें आकर अपनी बलवती बडीभारी सेनाके समूहसे उनको, जैसे

न्विह्नौ रथावलक्ष्यंतो हरिरामयोर्मृधे । स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥ हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् । स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ।२३। गृह्णन्निषंगादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुञ्चन् शितबाणपूगान् । निघ्नन्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः । रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः २५ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामंगप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः । भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥ २६ ॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरंगायुधगुल्मसंकुलाः । अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ।२७। प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् । विनिघ्नतारीन्मुसलेन दुर्मदान् संकर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥ २८ ॥ बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मग-

वायु, मेघ और धूलिसे सूर्य और अग्निको ढक देता है तैसे ढक दिया ॥ २१ ॥ उस समय नगरमेंकी ऊपरकी अटारी महल और बाहरके द्वारोंपर बैठी हुई स्त्रियें, युद्धकी भूमिमें गरुडध्वज और तालध्वज इन चिन्होंसे युक्त बलराम-कृष्णके रथोंको न देखनके कारण शोकसे व्याप्त होकर मूर्छित होगईं ॥ २२ ॥ तब श्रीकृष्णजीने, शत्रुकी सेनारूप मेघोंकी बारम्बार होनेवाली बाणरूप अति भयानक वर्षासे पीडित हुई अपनी सेनाको देखकर, देव दैत्यों करके श्रेष्ठ मानकर सन्मान करे हुए अपने शार्ङ्ग नामवाले श्रेष्ठ धनुषका टंकार शब्द करा ॥२३॥ तदनन्तर तरकसमेंसे बाणोंको लेते हुए और उनको रोदेपर चढाते हुए तथा रोदेको खेंच कर उन तीखे बाणोंके समूहको छोडते हुए और उन बाणोंसे, रथ, हाथी, घोडे, तथा पैदलोंको मारते हुए श्रीकृष्णजीने, जैसे जलते हुए काठको घुमाने पर वह चक्राकार होजाता है तैसे उस धनुषको एक समान अपने हाथमें घुमाया ॥ २४ ॥ उस समय गण्डस्थल कटकर गिरे हुए अनेकों हाथी, और बाणोंसे गरदन कटे हुए अनेकों घोडे मरकर गिर पडे, तथा जिनके घोडे, ध्वजा, सारथी और स्वामी नष्ट होगए हैं ऐसे अनेकों रथ छिन्न-भिन्न होकर गिर पडे तथा जिनकी भुजा, जंघा और कंठ कट गए हैं ऐसे अनेकों सिपाही मरकर गिरगए ॥ २५ ॥ उस समय भगवान्‌के बाणोंसे कटेहुए जो सिपाही, हाथी और घोडे उनके शरीरोंमेंसे निकले हुए रुधिरकी सैकडों नदियें बहने लगीं कि-जिनमें कटीहुई भुजा ही सर्प और पुरुषके मस्तक ही कछुए हैं जो मरणको प्राप्त हुए हाथीरूप द्वीपों (टापुओं) से और घोडेरूप नाकेंसे भरी हुई हैं ॥२६॥ जिनमें कटेहुए हाथ और जंघा ही मत्स्य और मनुष्योंके केश ही सिवार है, जो धनुषरूप तरङ्गोंसे और आयुधरूप गुल्मोंसे भरीहुई तथा चक्ररूप भँवरोंसे भयंकर हैं, जिनमें महामणियोंके समूह ही पाषाण और भूषण ही बालु हैं ॥ २७ ॥ जो डरपोंकोंको भय देने वाली और वीरोंको परस्पर हर्ष उत्पन्न करने वाली हैं, ऐसी नदी बहने लगीं, इस प्रकार श्रीकृष्णजीका कराहुआ सेनाका नाश कहकर अब बलरामजीने जो किया सो कहते हैं-जिनका शत्रुओंका तिर-

धेन्द्रपालितम् । क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवांतं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया । न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथाऽपि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासंधं महाबलम् । हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः । वारयामास गोविंदस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः । तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥ ३३ ॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि । स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा । उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ॥ ३५ ॥ मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः । विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः । उपगीयमानविजयः सूतमागधबंदिभिः ३७

स्कार करने वाला प्रभाव अपरिमित है ऐसे और दुर्मद शत्रुओंको मूसलसे कुचल डालने वाले उन बलरामजीने भी, अन्यपार रहित और समुद्रकी समान प्रवेश करनेको अशक्य तिस भयंकर जरासन्धकी रक्षा करीहुई सेना नाशको प्राप्त करदी हे राजन् ! इस प्रकार जो बलराम कृष्णके कर्म कहे सो उन जगदीश्वरका खेल ही था, उन्होंने पराक्रम नहीं किया था ॥ २८ ॥ २९ ॥ और यह आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि-जो अनंतगुण भगवान्,अपने संकल्पमात्रसे ही त्रिलोकीकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं उनका शत्रुकी सेनाको दमन करना आश्चर्य नहीं है तथापि मनुष्यका अनुकरण (नकल) करनेवाले उनका यह कर्म आश्चर्यकी समान वर्णन करा है ॥ ३० ॥ तदनन्तर जिसकी सेना मारीगई है और जिसका प्राणमात्र शेष रहा है ऐसे तिस रथहीन हुए महाबली जरासन्धको, बलरामजीने, जैसे सिंह सिंहको पकड़ता है तैसे पराक्रमसे पकड़लिया ॥ ३१ ॥ और जिसने पहिले बहुतसे शत्रु मारे हैं तिस महाबली जरासन्धको बलरामजी, वरुणकी पाशोंसे और मनुष्यों की पाशोंसे बाँधने लगे तब, श्रीकृष्णजीने, उसके द्वारा दुष्टदमनरूप कार्य करनेकी इच्छासे उसको बाँधनेका निषेध करदिया ॥ ३२ ॥ तब बलराम-कृष्णका छोड़ा हुआ और वीरोंका माननीय वह जरासंध,लज्जित हुआ और तप करनेका संकल्प करके वनमेंको जानेलगा तब मार्गमें शिशुपाल आदि राजाओंने, धर्मोपदेशके शब्दोंसे युक्त, नीतिके तथा 'तुच्छ यादवोंसे तुझ बलवान्का यह तिरस्कार केवल कर्मवश हुआ है इस कारण तू लज्जित न हो ऐसे' लौकिक उपदेशयुक्त वाक्योंसे समझाकर उसको रोका ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ इस प्रकार सब सेनाओंके मरणको प्राप्त होने पर भगवान्का उपेक्षा करा हुआ वह राजा जरासन्ध, खिन्न होकर मगधदेशोंको लौट गया॥३५॥ इधर जिनकी सेनाके घाव भी नहीं आया है और जिन्होंने अनायासमें ही शत्रुकी सेनारूप समुद्रका पार पाया है ऐसे उन श्रीकृष्णजीको भी, देवताओंने 'बहुत अच्छा किया बहुत अच्छा किया' ऐसा धन्यवाद देकर उनको फूलोंसे छादिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर दुःखरहित और प्रसन्नचित्त होकर सन्मुख आये हुए मथुरावासी लोकोंसे मिलकर सूत, मागध और बन्दियोंने जिनके यशको

शंखदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः । वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ।३८। सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् । निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षतांकुरैः । निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् । यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणीबलः । युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥ अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा । हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ अष्टादशमे संग्राम आगामिनि तदन्तरा । नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः । नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् । अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥ यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः । मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥४७॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः । बन्धून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते

आया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी, नगरीमेंको चल दिये ॥ ३७ ॥ उन प्रभुके नगरीमें प्रवेश करते समय, शंख, दुंदुभि, नौवत, डंके, वीणा, मुरली, मृदङ्ग आदि अनेकों बाजे बजने लगे ॥३८॥ वह नगरी चंदन आदिसे जिसके मार्ग छिड़के गये हैं ऐसी हर्षको प्राप्त हुए प्राणियोंसे युक्त, पताका आदिसे अलंकृत, वेदध्वनिसे गुञ्जारती हुई और उत्सवोंके कारण जिसमें वन्दनवार बँधे हैं ऐसी थी ॥३९॥ स्त्रियोंने, फूल, दही, अक्षत और दुर्वांकुर आदिकी जिनके ऊपर वर्षा करी है ऐसे और जिनके नेत्र प्रीतिसे प्रफुल्लित होरहे हैं ऐसे नगरके पुरुष करके बड़े प्रेमके साथ देखे हुए वह श्रीकृष्णजी तिस नगरीमेंको गये ॥ ४० ॥ तहाँ उन प्रभुने, युद्धभूमिमें पड़े हुए वीरोंका भूषणरूप जो असंख्यात धन लाये थे सो सब राजा उग्रसेनको समर्पण करा ॥ ४१ ॥ इसप्रकार तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर राजा जरासन्धने, श्रीकृष्णजीके रक्षा करे हुए यादवोंके साथ सत्रह वार युद्ध करा ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्णजीके तेजसे युक्त तिन यादवोंने, वह उस जरासन्धकी सब सेना मार डाली; इसी प्रकार अपनी सकल सेनाके मरणको प्राप्त होने पर बलराम कृष्णका उपेक्षा करा हुआ वह राजा जरासन्ध अपने नगरको लौट आया ॥ ४३ ॥ फिर अठारहवाँ संग्राम होने वाला था सो तिससे पहिले ही नारदजीका भेजा हुआ कालयवन नाम वाला वीर मथुराके समीप आपहुँचा, तब उसको मथुराके पुरुषोंने देखा ॥ ४४ ॥ वह मनुष्यलोकमें, जिसकी बराबरका दूसरा योधा है ही नहीं ऐसा था, उसने नारदजीसे, मेरी बराबरके योधा यादव हैं ऐसा सुनकर उनके साथ युद्ध करनेके निमित्त तीन करोड़ म्लेच्छोंके साथ मथुरापुरीके समीप आकर उसने तिसको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४५ ॥ तिस कालयवनको देखकर बलरामजीके साथ श्रीकृष्णजी सम्मति करने लगे कि-अहो! यादवोंको दोनों ओरसे (कालयवनसे और जरासन्धसे) बड़ाही दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ आज तो यह महाबली कालयवन हमें रोकरहा है और आज, कल, वा परसों जरासन्ध भी आपहुँचेगा ॥ ४७ ॥ इस कालयवनके

द्रवपुरं बली ॥४८॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम्। तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥ ४९ ॥ इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम्। अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाऽद्भुतमचीकरत् ॥ ५० ॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम्। रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥ सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम्। हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजतारकूटैः कोष्ठैर्हेमकुम्भैरलंकृतैः। रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम्। चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः। यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥ श्यामैककर्णान्वरुणो हयाञ्छुक्लान्मनोजवान्। अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो

साथ हम दोनोंके युद्ध करनेमें लग जाने पर यदि जरासन्ध आगया तो वह बलवान् होनेके कारण हमारे बान्धवोंको मारडालेगा अथवा अपने नगरमें लेजायगा॥४८ इस कारण जहाँ मनुष्य न जासकें ऐसे समुद्रमें किला और उसमें एक नगर बनवाकर तहाँ जाति बांधवोंको रखकर इस यवनको मारेंगे ॥४९॥ इसप्रकार भगवान्ने, बलरामजीके साथ सम्मति करके समुद्रमें किला और उसमें सकल आश्चर्योंसे युक्त बारह योजन लम्बा द्वारका नाम वाला नगर विश्वकर्मासे बनवाया ॥ ५० ॥ जिस नगरमें विश्वकर्माके ज्ञानको सूचित करने वाला क्रिया कौशल दीख रहा है, और जिसके प्रत्येक घरकी अगली ओर राजमार्ग (आमसड़क) पीछेकी ओर गलियें, दोनों ओर आँगन है, उनके भीतर कोठे, उनके भीतर सुवर्णके घर; उनके ऊपर चौवारे, उनके ऊपर सोनेके कलश ऐसी बहुतसी मञ्जिलोंके बनानेकी यथोचित रीतिके अनुसार बने हुए थे ॥ ५१ ॥ जिनमें कल्पवृक्ष और कल्पलता हैं ऐसे बागोंसे और चित्रविचित्र वाटिकाओंसे युक्त था, जिसके शिखर सुवर्णके हैं ऐसे अति ऊँचे स्फटिकमणियोंके चौवारे और बाहरी द्वारोंसे बना हुआ था ॥ ५२ ॥ चाँदी और पीतलकी बनी हुई, सुवर्णके शिखरोंसे भूषित घुड़साल और अन्नके भण्डारोंसे युक्त था तथा पद्मरागमणिके शिखरोंसे और बहुमूल्य मरकत मणिकी भूमियोंसे युक्त ऐसे सुवर्णके मन्दिरोंसे युक्त था ॥ ५३ ॥ जहाँ तहाँ नगरमें और घरोंमें बनाएहुए देवमन्दिरोंसे और चन्द्रशालाओंसे युक्त था और ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लोकोंसे भराहुआ और यादवश्रेष्ठोंके राजमन्दिरोंसे अतिशोभायमान था ५४ उस नगरमें श्रीकृष्णजीको महेन्द्रने, सुधर्मा नाम वाली सभा पारिजातक कल्पवृक्ष यह दोनों भेज दिये जिस सुधर्मा सभामें बैठा हुआ मनुष्य, भूख, प्यास, शोक, मोह आदि मनुष्यके धर्मोंसे युक्त नहीं होता है॥५५॥वरुणने जिनका एक कर्ण श्यामवर्ण है ऐसे सब शरीरमें स्वेत वर्ण और मनकी समान वेग वाले घोड़े भेज दिये तथा लोकपालक कुवेरने पद्म महापद्म आदि आठ निधि भेज दिये, दूसरे भी लोकपालोंने अपने २ ऐश्वर्य भेज दिये ॥ ५६ ॥ हे राजन्! श्रीहरिके भूमि पर आकर प्राप्त होने पर सब माण्डलिक राजाओंने और सिद्ध आदि देवताओंने भी, भगवान्ने जो २ ऐश्वर्य अपनको दिये थे वह २ सब अपने २ अधिकारकी निश्चल सिद्धि होनेके

निर्जोद्यान् ॥५७॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये । सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥ तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः । प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमंत्रितः । निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥
इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०

श्रीशुक उवाच । तं विलोक्य विनिष्क्रांतमुज्जिहानमिवोडुपम् । दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षःसंभ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् । मुखारविंदं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥३॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः । चतुर्भुजोऽरविंदाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति । निरायुधश्चलन्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवंतं पराङ्मुखम् । अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥ हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे । नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ७

निमित्त तिन श्रीहरिको अर्पण करे ।५७। तिस द्वारकामें श्रीहरिने 'जैसे कालयवन की और सकल लोकोंकी समझमें न आवे तैसे योग्यशक्तिसे' सबको लेजाकर और 'तुम यहाँ रहकर प्रजाकी रक्षा करो मैं कालयवनको मारनेके निमित्त धावा करता करता हूँ' ऐसी बलरामजीके साथ सम्मति करके कमलोंकी माला धारण करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, कोई आयुध धारण न करते हुए नगरके द्वारसे बाहर निकले ५८
इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें पञ्चासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

अब आगे इक्यावनवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजीने, मुचुकुन्दकी दृष्टिसे कालयवन का प्राणान्त करवाया, तदनन्तर मुचुकुन्दके स्तुति करने पर उसके ऊपर अनुग्रह करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ ॐ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! नगरके द्वारसे बाहर निकले हुएतिन श्रीकृष्णजीको कालयवनने देखा, वह श्रीकृष्णजी ऐसे थे कि-उदय होतेहुए चन्द्रमाकी समान देखनेमें परमसुन्दर श्यामवर्ण,पीला रेशमी पीताम्बर पहिरे हुए ॥ १ ॥ वक्षःस्थलमें श्रीवत्सलाञ्छनसे युक्त, जिनका कण्ठ देदीप्यमान कौस्तुभमणिसे शोभित है, जिनकी चारों भुजा पुष्ट और घोटूंपर्यंत लम्बी हैं, जिनके नेत्र नवीन कमलकी समान कुछ २ लाल हैं ॥ २ ॥ नित्य आनन्दयुक्त, शोभायुक्त सुन्दर कपोलों वाले, और शुद्ध हास्ययुक्त तथा जिसमें मकराकृति कुंडल दमक रहे हैं ऐसे मुखकमलको धारण करनेवाले ॥३॥ ऐसे श्रीकृष्णजीको देखकर नारदजीके कहे हुए लक्षणोंसे पुराणपुरुष, श्रीवत्सलांछन, चतुर्भुज, कमलनयन, वनमाली और अतिसुन्दर ऐसे यह ही वासुदेव होसकते हैं, दूसरा कोई नहीं हो सकता, परन्तु यह विना शस्त्रके ही पैदल आरहे हैं इस कारण मैं भी विना शस्त्रके ही पैरोंसे चलने वाला होकर इनके साथ युद्ध करूँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके वह कालयवन, अपनी ओरको पीठ करके भागनेवाले, योगियोंको भी दुर्लभ तिन श्रीकृष्णजीको पकड़नेके निमित्त उनके पीछे २ दौड़ने लगा ॥ ६ ॥ तब हरएक पग पर अपनेको हाथमें आया हुआसा दिखाने वाले श्रीहरि उस यवनोंके स्वामी

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् । इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ८ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् । सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् । इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥१०॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने । दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत । देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच । को नाम स पुमान्ब्रह्मन्कस्य किं वीर्य एव च । कस्माद् गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच । स इक्ष्वाकुकुले जातो मांधातृतनयो महान् । मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः ॥ १४ ॥ स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे । असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् । राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहत-

को दूर एक पर्वतकी गुफामें लेगए ॥ ७ ॥ उस समय, यदुकुलमें उत्पन्न हुए तुम्हें यह भागना उचित नहीं है, ऐसी निन्दा करतेहुए पीछे २ भागनेवाले परन्तु जिस के कर्म क्षीण नहीं हुए हैं ऐसे उस कालयवनको श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ ८ ॥ इस प्रकार कालयवनके निन्दा करने पर भी उन भगवान् श्रीकृष्णने; उससे मुचुकुंद को जगवानेके निमित्त और मुचुकुन्दकी दृष्टिसे उसको भस्म करानेके निमित्त पर्वतकी गुहामें प्रवेश करा, उस कालयवनने भी तिस पर्वतकी गुफामें घुसकर तहाँ सोये हुए दूसरे किसी एक पुरुषको देखा ॥ ९ ॥ और यह वासुदेव मुझे इतनी दूर लाकरयहाँ साधुपुरुषकी समान सोरहा है, ऐसी बुद्धिसे उस सोये हुए पुरुषको ही वासुदेव मानकर उस मूढने, अपने पैरकी ठोकरसे ताडना करा ॥ १० ॥ वह बहुत समय पर्यंत सोया हुआ पुरुष, ठोकर लगनेसे जग कर उठ बैठा और धीरे २ अपने नेत्र उघाड़ कर सब दिशाओंमेंको देखने लगा सो उसने अपने समीप एक ओर खड़े हुए तिस कालयवनको देखा ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इतनेहीमें ही वह कालयवन निद्राभङ्ग होनेके कारण क्रोधमें हुए उस पुरुषकी दृष्टि पडनेसे प्रदीप्त हुए उसके देहमेंके अग्निसे ही जल कर तत्काल भस्म होगया ॥ १२ ॥ राजाने कहा कि—हे ब्रह्मन् ! उस पुरुषका नाम क्या था ? वह किसके कुलका था ? किसका पुत्र था ? और कैसे पराक्रमवाला था कि जिसने दृष्टिमात्रसे ही कालयवनको भस्म करदिया और वह पुरुष, किस कारणसे गुहामें घुसकर सोरहा था ?१३ श्रीशुकदेवजीने कहा कि हे राजन् ! वह इक्ष्वाकु राजाके कुलमें उत्पन्न हुआ, मांधाताका पुत्र, गुणोंसे बडा, ब्राह्मणोंका भक्त और धर्मयुद्ध करनेवाला मुचुकुंद इस नामसे प्रसिद्ध था१४ पहिले दैत्योंसे भय मानेहुए इंद्रादिक देवगणोंने, अपनी रक्षाके निमित्त उसकी प्रार्थनाकरी तब उसने बहुत कालपर्यंत उनकी रक्षा करी थी १५ तदनन्तर उनको स्वर्गकी रक्षा करने वाले सेनापति स्वामिकार्त्तिकेय मिलगये तब उन्होंने, मुचुकुन्दसे कहा कि—हे राजन् ! हमारी रक्षारूप कष्टसे अब तुम विश्राम लो ॥ १६ ॥ हे वीर ! मनुष्य लोकमेंके अपने शत्रुसहित राज्यको छोडकर केवल हमारी रक्षा करने वाले तुम्हारे

कण्टकम् । अस्मात्पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः॥१७॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोमात्यमंत्रिणः । प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना संति कालिताः ॥१८॥ कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः । प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः । एक एवेश्वरस्तस्य भगवान् विष्णुरव्ययः॥२० एवमुक्तः स वै देवानभिवंद्य महायशाः । "निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः यः कश्चिन्मम निद्राया भंगं कुर्यात्सुरोत्तमाः । स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरै-स्तदा ।" अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥२२॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः । स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः । आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २४ ॥ तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयंत्या च मालया । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् । अपीच्यवयसं मत्त-

---

सब ही विषय भोग छूटगये हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्र,स्त्री, जाति, अमात्य मंत्री और तुम्हारे राज्य करते समयकी सकल प्रजा कालसे चलायमान होनेके कारण अब नहीं रही हैं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! यह काल, सब बलवानोंमें भी बलवान् है और अविनाशी भगवान् ईश्वर है, यह क्रीड़ा करते समय, जैसे पशुओंकी रक्षा करने वाला पुरुष, पशुओंको इधर उधर लेजाता है तैसे ही प्रजाओंको इधर उधर करता रहता है ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो,तुम अब एक मोक्षके सिवाय जो इच्छा हो वह वरदान हमसे माँगलो, मोक्ष देनेवाले एक अविनाशी भगवान् ही हैं दूसरा कोई नहीं है ॥ २० ॥ इस प्रकार देवताओंके कहे हुए वह महायशस्वी राजा मुचुकुन्द, देवताओंको वन्दना करके, बहुत दिनों पर्यन्त जागनेके कारण श्रमको प्राप्त होगए थे इस कारण उन्होंने देवताओंसे निद्रा ही माँग ली ॥ २१ ॥ कहा कि-हे श्रेष्ठ देवताओं ! जो कोई पुरुष;मेरी निद्राका भङ्ग करे वह तत्काल भस्म हो,ऐसा वर माँगा तब उस समय देवताओंनें कहा कि—जो तुम्हें न जानने वाला पुरुष, तुम्हारे अपने आप उठनेसे पहिले तुम्हें जगायेगा उसकी ओरको तुम्हारे देखते ही वह तत्काल भस्मरूप होजायगा, ऐसा वर मिलने पर वह मुचुकुन्द, तिस गुहामें घुसकर देवताओंकी दी हुई निद्रासे सोरहे ॥ २२-२३ ॥ इस प्रकार यवनके भस्म होजाने पर, भक्तपालक भगवान् श्रीकृष्णजीने, उस बुद्धिमान् मुचुकुन्दको अपना स्वरूप दिखाया ॥ २४ ॥ तब मुचुकुन्दने मेघकी समान श्यामवर्ण, पीला रेशमी पीताम्बर पहिने, वक्षःस्थल पर दक्षिणावर्त्त रोमरेखामें सुवर्णकी रेखाकी समान चिन्हसे युक्त, देदीप्यमान कौस्तुभमणिसे विराजमान ॥२५॥ चतुर्भुज, अनेकों वर्णके फूलोंकी बनाई हुई मालासे शोभायमान, जिनका मुख सुन्दर और प्रसन्न है, जिनके कानोंमें मकराकृति कुण्डल झलक रहे हैं ॥ २६ ॥ जो मनुष्यलोकके देखने योग्य हैं, जिनका मन्दहास्य और चितवन प्रेमयुक्त है, जिनकी अवस्था तरुण और अति मनोहर है, जो मत्त गजराजकी समान गतिसे और उदार पराक्रमसे युक्त हैं

मृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः । शंकितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा॥२८॥मुचुकुन्द उवाच। को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे । पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २९ ॥ किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः । सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोपरोपि वा ॥ ३० ॥ मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् । यद्बाधसे गुहाध्वांतं प्रदीपः प्रभया यथा३१ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव । स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते३२ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐश्वाकाः क्षत्रबन्धवः । मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३३ ॥ चिरप्रजागरश्रांतो निद्रयापहतेंद्रियः । शयेऽस्मिन्विजने कामं केना-प्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना । अनन्तरं भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरिद्रष्टुं न शक्नुमः । हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३६॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः । प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानु-

---

और जो अपने तेजके कारण दूसरेसे तिरस्कार पानेको अशक्य हैं ऐसे उन श्रीकृष्ण जीको देखकर, 'यह अतितेजस्वी कौन है ?' ऐसी शंकासे युक्त और उनके तेजसे चौंधाए हुएसे वह महाबुद्धिमान् राजा मुचुकुन्द, धीरे २ बूझने लगे ॥ २७—२८ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि–यहाँ आये हुए तुम कौन हो ? इस वनमें तिसपर भी पर्वतके प्रवेश करनेको अशक्य स्थानमें तिसमें भी अनेकों काँटोंसे भरे हुए प्रदेशमें, कमल के पत्रकी समान कोमल चरणोंसे तुम कौन विचर रहे हो ? ॥ २९ ॥ तुम तेजस्वी पुरुषोंके मूर्त्तिमान् तेज ही हो क्या ? अथवा भगवान् अग्नि हो ? वा सूर्य, चन्द्रमा; इन्द्र किंवा कोई दूसरे लोकपाल हो ? ॥३०॥ जो तुम, अपनी कान्तिसे 'जैसे दिन अन्धकारका नाश करता है तैसे' पर्वतकी गुहामेंके अन्धकारका नाश कर रहे हो तिससे इन्द्रादि देवताओंमें भी श्रेष्ठ जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवता तिन तीनोंमें भी पुरुषोत्तम विष्णु भगवान् तुम ही हो, ऐसा मैं समझता हूँ ॥ ३१ ॥ हे पुरुषोत्तम ! सुननेकी इच्छा करने वाले हमें निष्कपटभावसे अपना जन्म, कर्म और गोत्र यदि कहने योग्य हो तो कहिये ? ॥ ३२ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! हम तो इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय हैं, तिनमें भी हे प्रभो ! मैं मुचुकुन्द नामवाला राजा यौवनाश्वका पुत्र हू ॥ ३३ ॥ सो मैं, देवताओंकी प्रार्थनासे उनकी रक्षा करते समय बहुत कालपर्यंत होनेवाले जागरणसे श्रमको प्राप्त हुआ और मेरी इन्द्रियें निद्रासे व्याकुल होगईं इस कारण इस एकान्त स्थानमें अपनी इच्छानुसार सो रहा था, अब किसीने मुझे उठाया है ॥ ३४ ॥ जिस किसीने मुझे उठाया वह भी अपने ही पापसे भस्मरूप हो गया है, तदनन्तर शत्रुका नाश करनेवाले और श्रीमान् तुम मेरी दृष्टि पडे हो।३५ हे महाभाग ! हम तो सहन न होनेवाले तुम्हारे तेजसे, चकित होकर बहुत समय पर्यन्त तुम्हारी ओरको देखनेको भी समर्थ नहीं होते हैं तथापि मेरी समान देह धारियोंके तुम सेवन करने योग्य हो॥३६॥इस प्रकार उस राजा मुचुकुन्दके सत्कार-पूर्वक प्रश्न करने पर, वह भक्तपालक भगवान् हँसकर, मेघकी गर्जनाकी समान-

वाच । जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽग सहस्रशः । न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयाऽपि हि ॥ ३८ ॥ क्वचिद्रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः । गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप । अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम । विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराऽहं धर्मगुप्तये । भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४१ ॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः । वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलंबाद्याश्च सद्द्विषः । अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥४३॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः । प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥४४॥ वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते । मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुंदो मुदान्वितः । ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥

गम्भीर वाणी करके उस राजासे कहने लगे, ३७ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे राजन् ! मेरे जन्म, कर्म और नाम सहस्रों हैं सो वह अनन्त होनेके कारण मुझसे भी नहीं गिने जासकते ॥ ३८ ॥ कदाचित् कोई सूक्ष्मदर्शी पुरुष बहुतसे जन्मोंमें पृथिवीके रजोंके कणोंकी भी गणना करलेय परन्तु वह भी मेरे गुण कर्म नाम और जन्मोंकी गणना कभी भी नहीं कर सकेगा ॥ ३९ ॥ बडे २ ऋषि भी भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालके मेरे जन्मोंका और कर्मोंका क्रमसे वर्णन करते हुए अभीतक वह अन्तको नहीं प्राप्त होते हैं ॥४०॥ तथापि हे राजन् ! इस समयके अपने जन्म आदि तुझसे कहता हूँ उनको तू मुझसे सुन, धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त और पृथ्वीके भाररूप हुए असुरोंका नाश करनेके निमित्त ब्रह्माजीने पहिले मेरी प्रार्थना करी थी इस कारण मैं यदुकुलमें वसुदेवजीके घर अवतीर्ण हुआ हूँ, मैं वसुदेवका पुत्र हूँ इससे मुझे 'वासुदेव' कहते हैं॥४१-४२॥ कंसरूपसे उत्पन्न हुआ कालनेमिनामक असुर मैंने मारा है तथा धार्मिक पुरुषोंसे द्वेष करने वाले प्रलम्ब बकासुर आदि दैत्य भी मारे हैं, हे राजन् ! यह कालयवन तेरी तीक्ष्ण दृष्टिके निमित्तसे मैंने ही भस्म करडाला है ॥ ४३ ॥ सो मैं, तेरे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त इस गुहामें आया हूँ, पहिले बहुत बार तूने मुझ भक्तवत्सलकी आराधना करी थी इस कारण हे राजर्षे ! तू मुझसे इच्छित वर माँगले, मैं तुझे सब विषय देता हूँ, क्योंकि-मेरी शरण आया हुआ कोई भी जन, फिर शोक करनेके योग्य नहीं होता है अर्थात् औरोंके दिये हुए वरदानोंके नष्ट होने पर जैसे शोक करता है तैसे मेरी शरण आया हुआ पुरुष शोक नहीं करता है, क्यों कि-मेरे दिये हुए वरदान अक्षय होते हैं ॥ ४४-४५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-इस प्रकार श्रीभगवान्‌के कहनेपर, उस कहनेसे ही 'अट्ठाईसवें युगमें भगवान् वसुदेवके घर अवतार धारण करेंगे ऐसे वृद्ध-गर्गके कहनेका जिसको स्मरण आया है ऐसा वह मुचुकुन्द, उन श्रीकृष्णको, यह नारायणदेव हैं ऐसा जानकर, हर्षसे भरगया और उनको नमस्कार करके कहने लगा ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्दने कहा कि—हे ईश्वर ! स्त्री और पुरुष इन दोनों प्रकारका

मुचुकुंद उवाच । विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् । सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ॥४७॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ । पादारविंदं न भजत्यसन्मतिर्गृहांधकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः । मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरंतचिंतया ॥ ४९ ॥ कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसंनिभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् । वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिंतया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् । त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमंतकः ५१ पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतंगजैर्वा नरदेवसंज्ञितः । स एव कालेन दुरत्ययेन ते

ही यह जन, तुम्हारी मायासे मोहित होरहा है इस कारण यह संसारमें सत्यताकी दृष्टि रखकर, परमार्थ स्वरूप तुम्हारी सेवा नहीं करता है, किन्तु परस्पर धोखा खाकर सुखकी इच्छासे दुःखोंको ही उत्पन्न करनेवाले घरोंमें आसक्त होता है४७ विषय सुख तो सूकरादि योनियोंमें भी मिल सकता है, भगवानकी सेवा मनुष्यजन्मके सिवाय नहीं होसकती इस कारण मनुष्यजन्म प्राप्त होनेपर जो तुम्हारी भक्ति नहीं करता है वह अतिमूढ है ऐसा वर्णन करते हैं-हे पवित्र ! तुम्हारे अनुग्रहसे अनायासमें सकल अङ्गयुक्त और इस भरतखण्डरूप कर्मभूमिमें दुर्लभ इस मनुष्य शरीरके प्राप्त होनेपर जो पुरुष,तुम्हारे चरणारविन्दका भजन नहीं करता है वह विषय सुखोंमें आसक्तचित्त होकर, जैसे पशु तृणके लोभसे अंधेरिये कूपमें जा पडता है तैसेही घररूप अंधेरिये कूपमें पडता है ॥४८॥ यह केवल लोकोंकी गति है ऐसा ही नहीं किंतु मेरी भी तैसी ही गति है ऐसा वर्णन करते हैं हे अजित ! मरणधर्मयुक्त देहमें आत्मबुद्धि रखनेवाला, भूपति, राजसम्पदासे मदांध और पुत्र, स्त्री, भण्डार घर तथा भूमिके विषें अपार चिन्तासे आसक्त हुए मेरा यह (आज पर्यन्तका) समय निष्फल बीत गया ॥ ४९ ॥ अब अपना मदोन्मत्तपना कहते हैं कि-घडे और भीत (दीवार) की समान दीखनेवाले तथा जड इस शरीरमें 'मैं राजा हूँ' ऐसा अभिमान रखनेवाला मैं, कालरूप तुम्हारी ओरको कुछ ध्यान न, देकर, रथ, हाथी, घोडे और पैदलोंकी सेनाके स्वामियोंसे युक्त होकर भूमि पर विचरता हुआ, अत्यन्त दुष्टमदसे युक्त हुआ हूँ इस कारण मेरा समय निष्फल गया ॥ ५० ॥ यह २ कार्य ऐसे २ करना चाहिये, इस प्रकारकी चिन्तासे अत्यंत मत्त हुआ, विषयोंमें 'अमुक पदार्थ न जाने कब मिलेगा ऐसी' आशा रखने वाला और कदाचित् वह विषय प्राप्त हुआ तो उसमें अति तृष्णायुक्त हुए प्राणीको, सावधान रहनेवाले कालरूप तुम जैसे अपने मट्टेमें अन्न इकट्ठा करने वाले मूषकको क्षुधासे, जावडोंको चाटनेवाला सर्प, अकस्मात् निगल जाता है तैसे ही एकाएकी आक्रमण करते हो ॥ ५१ ॥ और कालरूप तुम्हारा जकडा हुआ शरीर, ऐसा होता है कि-पहिले जीवित अवस्थामें सुवर्णके भूषणोंसे भूषित रथोंमें अथवा मदोन्मत्त हाथियोंके ऊपर बैठकर फिरते हुए जिस शरीरको 'राजा' यह नाम प्राप्त था वही

कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ॥ ५२ ॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवंदितः । गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ५३ ॥ करोति कर्माणि तपःसु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् । पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥५४॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः । सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबंधापगमो यदृच्छया । यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥५६॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो । आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबंधनम्

शरीर, अटल कालरूप तुम्हारे आक्रमण करने पर श्वान काक आदिने भक्षण कर लिया तो विष्टा, उन्होंने भक्षण न करा तो कीड़े और जला दिया गया तो भस्म इन नामोंको पाता है ॥ ५२ ॥ और मरणसे पहिले ही दिङ्मण्डलको जीतकर जिस का किसीके साथ भी युद्ध नहीं है ऐसा और सिंहासन पै बैठने पर जिसके समता वाले पहिले राजे वन्दना करते हैं ऐसा भी वह पुरुष, हे ईश्वर ! मैथुन ही जिसमें सुख है ऐसी स्त्रियोंके मन्दिरोंमें स्त्रियोंसे वानरकी समान जिधर तिधरको नचाया जाता है ॥ ५३ ॥ और उस राज्यपर स्थित होनेके समय भी उन राजादि शरीरको धारण करने वाला वह पुरुष, फिर भी जन्मान्तरमें मैं इन्द्र होऊँ अथवा ऐसा ही चक्रवर्त्ती राजा होऊँ ऐसी भोगकी प्रबल इच्छा धारण करके, उन इन्द्रपद आदिको प्राप्त करनेके निमित्त विषयभोग छोड़देता है और भूमिमेंसोना ब्रह्मचर्य व्रत धारना आदि तपके साधनोंमें स्थित होकर, चक्रवर्त्तीपद आदिके साधनरूप कर्मोंको करता है, इस प्रकार सुख भोगनेको समर्थ नहीं होता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार आठ श्लोकोंमें भगवान्से विमुख रहने वाले पुरुषोंके संसारको स्पष्टरूपसे कह कर अब भक्ति करके उस संसारके दूर होनेका क्रम कहते हैं कि-हे अच्युत ! संसार पाने वाले जनके बन्धनका जब तुम्हारे अनुग्रहसे नाश होनेका समय आता है, तब ही उसको तुम्हारे भक्तोंका समागम होता है और जब साधुसमागम होता है तब ही उनके उपदेश आदिसे साधुओंको प्राप्त होने योग्य और कार्यकारणोंके नियन्ता तुम्हारे विषें उसकी प्रेमरूप भक्ति उत्पन्न होती है और फिर वह मुक्त होजाता है ॥५५॥ हे ईश्वर ! मुझे तो साधुसमागमके पहिले अनायासमें ही जो राज्य आदि सम्बन्धका विछोह हुआ सो तुमने मेरे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह करा है, ऐसा मैं मानता हूँ,क्योंकि जिस राज्यके सम्बन्धसे विलग होनेके निमित्त,इकलेही विचरते हुए तप करनेके निमित्त वनमें जानेकी इच्छा करनेवाले और विचारवान् चक्रवर्त्ती राजे भी तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार विषयसेवनका और भगवत्सेवाका मार्ग कह कर अब, यह जो कहा था कि-वर माँगले तिसका उत्तर राजा कहता है कि-हे विभो ! हे हरे ! अभिमानसे छूटे हुए भी पुरुषोंके प्रार्थना करने योग्य, तुम्हारी चरणसेवासे दूसरे वरको मैं इच्छा नहीं करता हूँ, क्योंकि—मोक्ष देने वाले तुम्हें प्रसन्न करके, भला कौनसा विवेकी पुरुष, इससे अपनेको बन्धनमें

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः । निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥ ५८ ॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशांतिः कथञ्चित् । शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश॥५९॥श्रीभगवानुवाच। सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता । वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् । न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ६१ ॥ युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः । अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६२॥ विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः । अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥ क्षात्रधर्मे स्थितो जंतून्न्यवधीर्मृगयादिभिः । समाहितस्त-

---

डालने वाले विषयभोगको माँगेगा ? ॥ ५७ ॥ तिससे हे ईश्वर ! रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुणसे प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य आदि, शत्रुमारण आदि और धर्म आदि सकल विषयोंका त्याग करके, ज्ञानस्वरूप, निर्गुण, निरञ्जन और अद्वय तुम परम ईश्वरकी मैं शरण आया हूँ ॥ ५८ ॥ अरे ! पहिले विषयोंको भोग, मोक्ष तो हाथमें ही है, इस प्रकार फिर वरदानका लोभ देने वाले श्रीकृष्णजीका चरण पकड़ कर राजा प्रार्थना करता है कि-हे शरण देनेवाले परमात्मन् ईश्वर ! इस संसारमें कर्मफलरूप पापोंसे पीड़ित, उन पापोंकी वासनारूप तापोंसे तपा हुआ जिसके इन्द्रियरूप छः शत्रु निराश नहीं हुए हैं ऐसा मैं किसी प्रकार दैवयोगसे,सत्य-अभय और शोकरहित तुम्हारे चरणकमलकी शरण आया हूँ इस कारण तिस आपत्तियोंसे घिरेहुए मेरी तुम संसारदुःखसे रक्षा करो ॥ ५९॥ श्रीभगवानने कहा कि-हे सार्वभौम ! हे महाराज ! मेरे वरदानोंसे लोभयुक्त करने पर भी जो तेरी बुद्धि, विषयों से नहीं खिची तिससे तेरी बुद्धि राग लोभ आदि मलरहित होकर परमार्थका दर्शन करनेके विषयमें योग्य होगई है ॥ ६० ॥ मैंने जो तुझे वरदानोंका लोभ दिया सो-लोकमें भक्तोंकी बुद्धि विषयोंमें आसक्त नहीं होती है' यह दिखानेके निमित्त ही ऐसा किया था, ऐसा जान, क्योंकि--मेरेमें अनन्यभक्ति करने वाले पुरुषोंकी बुद्धि, विषयभोग प्राप्त होने पर भी, मुझे छोडकर उन विषयोंमें आसक्त नहीं होती हैं ॥६१॥ और हे राजन् ! प्राणायाम आदिसे रोकनेका यत्न करनेवाले भी अभक्तोंका मन, वासनाओंके नाशको प्राप्त हुआ न होनेके कारण फिर उठकर विषयोंकी ओरको झुकता हुआ देखनेमें आता है ॥ ६२ ॥ तेरी तो मुझमें सदा अनन्यभक्ति है इस कारण तू अपना चित्त मेरे विषैं स्थापन करके अपनी इच्छानुसार पृथ्वी पर विचर ॥ ६३ ॥ तू राज्य पर था उस समय तूने, लोकोंकी रक्षाके उपयोगी न होने वाले मृगया (शिकार) आदिसे प्राणियोंका वध करा है इस कारण अब तपस्याके द्वारा, जितेन्द्रिय और मेरा ही आश्रय करनेवाला होकर तिस पापका नाश कर६४ हे राजन् ! तू, अब ऐसा करेगा तो अगले जन्ममें सकल प्राणियोंका परममित्र श्रेष्ठ

तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः॥६४॥जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः । भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः५१

श्रीशुक उवाच । इत्थं सोऽनुगृहीतोऽग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः । तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥ स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् । मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः । समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गंधमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् । सर्वद्वंद्वसहः शांतस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् । हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः । आजगाम जरासंधस्त्रयोविंशत्यनीकपः ६ विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ । मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥७॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् । पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण होकर परमानन्दरूप मुझको प्राप्त होजायगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकपंचाश अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ छ छ

अब आगे बावनवें अध्यायमें मानो जरासन्धके भयसे ही भागने वाले भगवान् श्रीकृष्णजीने, द्वारकामें आकर फिर सुदेव ब्राह्मणके वर्णन करे हुए रुक्मिणीके सन्देशेको स्वीकार करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-इस प्रकार इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए उस मुचुकुन्द राजाके ऊपर श्रीकृष्णजीने अनुग्रह करा तब वह राजा, श्रीकृष्णजीको प्रदक्षिणा और नमस्कार करके गुहाके द्वारमेंसे बाहर निकला ॥ १ ॥ फिर वह छोटे २ उत्पन्न हुए मनुष्य, पशु, लता और वृक्षोंको देख कलियुगको आया जानकर तप करनेके निमित्त उत्तर दिशाकी ओरको चला गया ॥ २ ॥ तप करनेमें श्रद्धावान्, धैर्यवान्, किसीमें भी आसक्ति न रखने वाला और संशयरहित वह राजा, श्रीकृष्णजीके विषें अपने मनको स्थिर करके गन्धमादन पर्वत परको चला गया ॥ ३ ॥ तहाँ भी वह बदरिकाश्रममें नर-नारायणके स्थानको पहुँच कर, सुख दुःख, सरदी-गरमी आदि सकल द्वन्द्वोंको सह कर और काम-क्रोध आदिसे रहित होकर तप करके श्रीहरिकी आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्णजी, यवनोंकी घेरी मथुरा नगरीमें फिर आकर, म्लेच्छोंकी सकल सेनाको मार कर, उनका भूषण आदि धन द्वारकापुरीको लेजानेके निमित्त उद्यत हुए ॥ ५ ॥ सो श्रीकृष्णजीके आज्ञा करेहुए मनुष्य और उन मनुष्योंने जिनकी पीठ पर गौंदें लादी हैं ऐसे बैल, धनको लेजाने लगे तबही तेईस अक्षौहिणी सेनाका स्वामी जरासन्ध आया ॥ ६ ॥ उस समय हे राजन् ! शत्रुकी सेनाका अत्यन्त वेग देख कर, मनुष्यलीला करने वाले वह बलराम-कृष्ण, अतिशीघ्रतासे भागने लगे ॥ ७ ॥ और लिये जातेहुए यवनसेनाके बहुतसे धनको भी तहाँ ही छोड कर, वह वास्तवमें निर्भय थे तथापि डरपोकोंसे भी अधिक भय मान कर कमलपत्रकी समान अपने चरणोंसे बहुत योजन पर्यंत भागते चले गये८

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली । अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ९ प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुंगमारुहतां गिरिम् । प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति १० गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप । ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ । दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ । स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप १३ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ । बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४ ॥ आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतो रैवतीं सुताम् । ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम ॥ १५ ॥ भगवानपि गोविंद उपयेमे कुरूद्वह । वैदर्भी भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयम्वरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् । पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच । भगवान् भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् । राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवन्श्रोतुमिच्छामः कृष्णस्यामिततेजसः । यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्यामुपा-

---

ईश्वरके प्रमाण (अमर्याद प्रभाव) को न जाननेवाला जरासन्ध भी, उनको भागते हुए देख कर, हास्य करता उनको पकडनेके निमित्त रथोंकी सेना सहित उनके पीछे भागने लगा ॥ ९॥ वह बलराम कृष्ण, दूरपर्यंत भागकर थक गये और ग्यारह योजन ऊँचे एक प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ गये, जिस पर्वत पर भगवान् इन्द्र बारहों महीने वर्षा करते हैं ॥ १० ॥ हे राजन्! तब जरासन्धने,वह पर्वतपर दुबक रहे ऐसा जानकर उनको ढूँढनेहुए भी उनके दुबकनेका स्थान न मिलनेके कारण उनको जलानेके निमित्त पर्वतको चारों ओर काठोंसे घेरदिया और अग्नि जलाकर पर्वतको भस्म कर दिया ॥ ११ ॥ उस समय जिसका तट जलने लगा है ऐसे ग्यारह योजन ऊंचे उस पर्वत परसे, बलराम-कृष्ण, वेगके साथ कूद कर, जरासन्धके घेरे हुए स्थानके परली ओर भूमि पर नीचे उतरे ॥ १२ ॥ हे राजन्! तब सेनासहित शत्रु जरासन्धके न देखे हुए वह बलराम--कृष्ण, समुद्र ही जिसकी खाई है ऐसी अपनी द्वारका नगरीमें फिर आगए ॥ १३ ॥ वह जरासंध भी व्यर्थ ही 'बलराम-कृष्ण भस्म होगये, ऐसा मानता हुआ, अपनी बड़ी भारी सेनाको लेकर मगधदेशोंको लौट गया ॥१४॥ अब श्रीकृष्णजीका विवाह वर्णन करनेके निमित्त नवम स्कन्धमें कहे हुए बलदेवजीके विरहका स्मरण कराते हैं-आनर्त्त देशोंके स्वामी श्रीमान् राजा रैवतने, ब्रह्माजीकी आज्ञासे अपनी रेवती नाम वाली कन्या बलदेवजीको अर्पण की, ऐसा पहिले नवम स्कन्धमें तुमसे कहा है ॥ १५ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्णजीने भी सब लोगोंके देखते हुए, शिशुपालका पक्षपात करके आये हुए शाल्व आदि राजाओंका तिरस्कार करके, विदर्भदेशमें उत्पन्न हुई लक्ष्मी की कला जो भीष्मक राजाकी रुक्मिणी नामवाली कन्या उसको, जैसे गरुडजीने देवताओंका तिरस्कार करके अमृतका हरण करा था तैसे हरण कर लिया १६॥१७ राजा कहा कि-हे भगवन्! राजा भीष्मककी रुक्मिणी नामवाली सुमुखी कन्याको, श्रीकृष्ण भगवान्ने युद्धमें हरण करनेकी राक्षसविधिसे वरा ऐसा मैंने सुना है॥१८॥

हरत् ॥१९॥ ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः । को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच । राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् । तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना॥२१॥ रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः । रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः । गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् । कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे॥२४ बंधूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप । ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥ तदवेत्यासितापांगी वैदर्भी दुर्मना भृशम् । विचिंत्याप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः । अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं कांचनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ।

सो हे सर्वज्ञ ! जैसे श्रीकृष्णजीने जरासन्ध शाल्व आदिकोंको जीतकर रुक्मिणीका हरण करा हो वह महापराक्रमी श्रीकृष्णजीका चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ इस कारण वह मुझसे कहिये ॥१९॥ हे ब्रह्मन् ! सुनने और पढ़नेवालोंको पवित्र करने वालीं, कानोंको मधुर लगनेवाली, लोकोंके पापोंको दूर करनेवालीं और क्षण २ में आश्चर्यकी समान प्रतीत होकर नई २ सी प्रतीत होनेवालीं तिन श्रीकृष्णजीकी कथाओंके सुननेके सारको जाननेवाला भला कौनसा श्रोता तृप्त होगा ? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! विदर्भदेशोंका स्वामी, गुणोंसे बड़ा एक भीष्मक नाम वाला राजा था, उसके पाँच पुत्र और सर्वाङ्गसुन्दरी एक कन्या थी ॥ २१ ॥ उनके नाम-सबमें बड़ा तो रुक्मी, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली और इनकी बहिन श्रेष्ठगुणवती रुक्मिणी, यह थे ॥ २२ ॥ उस रुक्मिणी ने, अपने घर आये हुए लोकोंके वर्णन करे हुए श्रीकृष्णजीके सुन्दरता, पराक्रम, गम्भीरता, उदारता आदि गुण और सम्पत्तिको सुनकर, उन श्रीकृष्णजीको ही अपने योग्य पति माना ॥ २३ ॥ इधर द्वारकामें श्रीकृष्णजीने भी, अपने घर आये हुए लोकोंके मुखसे, उस रुक्मिणीको बुद्धि, लक्षण, उदारता, स्वरूप और सुशीलताका आश्रय सुनकर और यही अपने योग्य स्त्री है ऐसा मानकर उसको वरनेका मनमें विचार करा ॥ २४ ॥ ऐसा होने पर और दूसरे भ्राताओंके तिस रुक्मिणीको श्रीकृष्णजीके अर्थ देनेकी इच्छा करने पर भी हे राजन् ! उनको निवारण (मना) करके रुक्मीने, उसको, शिशुपालके अर्थ देनेका निश्चय करा ॥ २५ ॥ यह भ्राता का निश्चय जानकर, जिसके श्यामवर्ण नेत्रों के कोये हैं ऐसी तिस रुक्मिणीने, चित्तमें अत्यन्त दुःखित होकर श्रीकृष्णजीको पानेके उपायका विचार करा और तहाँ आयेहुए किसी एक सुशील ब्राह्मणको पत्र देकर, उसको शीघ्रतासे श्रीकृष्णजी को लिवालानेके निमित्त भेजा ॥ २६ ॥ तदनन्तर, उस ब्राह्मणने द्वारकामें पहुँचकर तहाँ द्वारपालोंके भीतर भवनमें प्रवेश कराने पर, सुवर्णके सिंहासन पर बैठे हुए जगत्के कारण पुराणपुरुष श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २७ ॥ इधर ब्राह्मणोंके हितकारी श्रीकृष्णदेवने, उस ब्राह्मणको देखते ही अपने आसन परसे नीचे उतर कर, उस

उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवंतं विश्रांतमुपगम्य सतां गतिः । पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥ कच्चिद् द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः । वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥ संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् । अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥३१॥ असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः । अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून् भूतसुहृत्तमान् । निरहंकारिणः शांतान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥३३॥ कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः । सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥ यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया । सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना । लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच । श्रुत्वा गुणान् भुवन-

ब्राह्मणको तिस आसन पर बैठाया और जैसे देवता अपनी (श्रीकृष्णजीकी) पूजा करते हैं तैसे पूजा करी ॥ २८ ॥ उसके मार्गमेंके परिश्रमको दूर करनेके निमित्त थोड़ी देर विश्राम लेकर भोजन करनेके अनन्तर एकान्त स्थानमें सुखपूर्वक आसन पर बैठे हुए उस ब्राह्मणके पास भक्तपालक श्रीकृष्णने जाकर अपने हाथसे उसके चरणको धीरे २ दबाते हुए स्वस्थताके साथ बूझा कि—॥२९ ॥ हे द्विजवर श्रेष्ठ ! सन्तुष्टचित्त तुम्हारा वृद्ध पुरुषोंका माननीय धर्म, अनायासमें निरन्तर चला तो जाता है, वह मुझे परम प्रिय है ॥३०॥ जब विना यत्नके ही प्राप्त हुए देहधारणकी पूर्त्तिके योग्य धान्य आदिसे सन्तुष्ट रहनेवाला ब्राह्मण अपने वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट न होकर उत्तम रीतिसे वर्त्ताव करने लगता है तब ही उसका वह सन्तोषके साथ आचरण करा हुआ धर्म, उसके सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है ॥ ३१ ॥ इंद्र होकर भी यदि असन्तोषी होय तो वह इस लोकसे तिस लोकमें और तिस लोकसे अन्य लोकमें सुखकी प्राप्तिके निमित्त फिरता हुआ एक स्थानमें स्वस्थताके साथ नहीं रहता है और यदि संतुष्ट होय तो वह, भोजन वस्त्र आदिकी पूर्त्तिके योग्य धन आदिसे रहित होय तो भी वाणी हाथ आदि अंगोंमें तापरहित होता हुआ सुखसे रहता है ॥ ३२ ॥ इस कारण दैववश पाये हुए अन्नवस्त्रादिसे सन्तुष्ट, साधु (आचारवान्), प्राणीमात्रके मित्र, निरभिमानी और शान्त ब्राह्मणोंको मैं वारंवार अपना मस्तक नमाकर नमस्कार करता हूँ३३इससे हे ब्राह्मण ! तुम्हारी राजासे तो कुशल है ? जिस राजाके देशमें रक्षा करी हुई प्रजा सुखसे रहती हैं वह राजा मुझे प्रिय होता है ॥ ३४ ॥ इस कारण जिस स्थानसे जिस कार्यकी इच्छा करके, दुर्गम समुद्रको तरकर इस द्वारका नगरीमें तुम आये हो, वह गुप्त न होय तो हमसे सब कहो और हम तुम्हारा कौनसा कार्य करें सो कहो ॥ ३५ ॥ इस प्रकार लीला करनेके निमित्त मनुष्यावतार धारण करनेवाले तिन परमेश्वर श्रीकृष्णजीने, जिससे बूझने योग्य प्रयोजन बूझा है ऐसे तिस ब्राह्मणने, तिन श्रीकृष्णजीसे, वन्धुओंके मनमें रुक्मिणी तुम्हें देनेकी है और बड़े भ्राता रुक्मीने शिशुपालको देनेका निश्चय करा है इत्यादि सब वर्णन करा ॥३६॥

सुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्। रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम्। धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि। मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥ पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः। आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः। निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरां-

(रुक्मिण्या स्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम् ॥ मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिन्हामदर्शयत् ॥ अर्थात्-रुक्मिणीकी अपने आप एकान्तमें लिखकर दीहुई पत्रिका, उस ब्राह्मणने उत्तम वस्त्रकी थैलीमेंसे बाहर निकाली और रुक्मिणीने जिसके ऊपर प्रेमकी मुद्रा (मोहर) लगाई है ऐसी वह पत्रिका श्रीकृष्णजीको दिखाई फिर वह ब्राह्मण ही श्रीकृष्णकी आज्ञासे पत्रिकाको बाँचता है) रुक्मिणी कहती है कि-हे त्रिभुवनमें सुन्दर अच्युत ! सुननेवाले पुरुषोंके कानोंके छिद्रोंमेंको हृदयके भीतर प्रवेश करके आध्यात्मिक आदि तापोंको दूर करनेवाले तुम्हारे गुणोंको सुनकर तथा नेत्र वाले पुरुषोंके नेत्रोंको देखने योग्य सकल विषयोंका लाभ करा देनेवाले तुम्हारे स्वरूपको सुनकर निर्लज्ज हुआ मेरा चित्त तुम्हारे विषैं आसक्त हुआ है ३७ यदि कहो कि-तुझ कुलीन कन्याको ऐसा उद्धतपना योग्य नहीं है तो सुनो-यह सन्देह मनमें न लाओ क्योंकि-हे मुक्तिदातः ! मनुष्यश्रेष्ठ ! कुलीन, गुणों करके उदार धीरजवती कौनसी कन्या, सत्कुलमें जन्म, सुंदरस्वभाव, सुन्दररूप, चौदह विद्या और चौंसठकला, तरुणाई, धनका सञ्चय और तेज करके अनूपम तथा मनुष्यलोकके मनको आनन्द देनेवाले तुम्हें, विवाहके योग्य समयमें पतिरूपसे न वरेगी ? अर्थात् सब ही वरेंगी ३८ इसकारण हे विभो ! मैंने तुम्हें पति वर लिया है और अपना आत्मा भी तुम्हें अर्पण कर दिया है इसकारण तुम यहाँ आकर मुझे अपनी भार्या करके लेजाओ, हे कमलनयन ! जैसे सिंहके भागको शृगाल (गीदड़) स्पर्श नहीं करता है तैसे ही तुम वीरका भाग जो मैं तिसको शिशुपाल शीघ्र आकर स्पर्श न करे !, तुम नहीं आये अथवा विलम्ब लगा तो-तैसा होना संभव है ३९ मैंने, जन्मान्तर में पूर्त्त (बावडी कुआ आदि), इष्ट (अग्निहोत्र आदि) दान (सुवर्णदान आदि) नियम (तीर्थयात्रा आदि) और व्रत (कृच्छ्रचान्द्रायण आदि) इन करके तथा देवता ब्राह्मण, गुरु आदिकी पूजा आदि करके, ब्रह्मादिकोंके नियन्ता भगवान्की यदि यथा शक्ति आराधना करी हो तो उससे प्रसन्न हुए वह भगवान् श्रीकृष्ण ही आकर मेरा पाणिग्रहण करें, दूसरे शिशुपाल आदि न करें ॥४०॥ यदि कहो कि-तेरे बान्धवोंने तू शिशुपालको देदी है फिर हम तहाँ आकर क्या करेंगे? तो सुनो-हे अजित ! दूसरे दिन विवाह होने पर तुम एक दिन पहिले गुप्तरूपसे

तस्स्वरीमनिहत्य वधूं त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम्। पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्यांघ्रिपंकजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै। यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच। इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः। विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच। वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः। प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच। तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि। वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य

विदर्भ देशोंमें आकर फिर सेनापतियोंसे घिर कर और शिशुपालजरासंध आदि राजाओंकी सेनाओंका तिरस्कार करके बलात्कार करके (जबरदस्ती) राक्षसविधिसे, पराक्रम दिखाना ही जिसका मूल्य है ऐसी मुझको वरकर लेजाओ ४१ कहो कि-रणवासमें रहने वाली तुझको हरनेमें तेरे बन्धुओंका वध करनेका अवसर आजायगा, उनको विना मारे तुझे कैसे वरूँगा तो सुनो-इस कुलमें विवाहसे पहिले दिन कुलदेवीके दर्शनकी बड़ी भारी यात्रा है, जिस यात्रामें नवीन वधू नगरके बाहरकी गिरिजा देवीका दर्शन करनेके निमित्त जाती है, सो अम्बिकाके मंदिरमेंसे ही मेरा हरण करना सुलभ है ॥४२॥ इस प्रकार अपनेको स्वीकार करने की भगवानसे प्रार्थना करके, ऐसा नहीं हुआ तो अपना निश्चय कहती है कि-हे कमलनेत्र! महादेव तथा उनकी समान दूसरे ब्रह्मादिक भी अपने अज्ञानके दूर होनेके निमित्त जिस, तुम्हारे चरणरजके कणोंसे स्नान करनेकी इच्छा करते हैं ऐसे तुम्हारा, स्वीकार करनारूप प्रसाद मैं नहीं पाऊँगी तो,उपवास आदि व्रतोंसे देहको सुखाकर व्याकुल हुए प्राणों को त्यागदूँगी, ऐसा ही वारम्वार करूँगी तब किसी जन्ममें तो तुम्हारा प्रसाद होगा ही ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणने कहा कि-हे यादवोंमें श्रेष्ठ! ऐसा यह रुक्मिणीका गुप्त संदेशा मैं लाया हूँ, इस विषयमें अब तुम्हें जो कुछ करना होय उसका विचार करके शीघ्र करो ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें द्विपञ्चाशत् अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥

अब आगे तरेपनवें अध्यायमें, अद्भुतलीला धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीने, विदर्भदेशमें जाकर, सब शत्रुओंके देखते हुए बलात्कारसे रुक्मिणीका हरण करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! उन श्रीकृष्णजीने, रुक्मिणीका संदेशा सुनकर अपने हाथसे उस ब्राह्मणका हाथ पकड़ कर हँसते २ कहा ॥१॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! जैसे वह विदर्भकुमारी व्याकुलचित्त होरही है तैसे ही मुझे भी व्याकुल होनेके कारण रात्रिमें निद्रा भी नहीं आती है, क्योंकि-मेरे द्वेषसे ही रुक्मीने मेरे विवाहका निषेध करा है, यह मैं तुम्हारे विना कहे भी जानता हूँ ॥ २ ॥ इस कारण राजाओंमें अधम उन शिशुपाल आदिकोंका युद्धमें तिरस्कार करके जिसको मैं ही पतिरूपसे माननीय हूँ उस

उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे। मत्परामनवद्यांगीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच। उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः। रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः। युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः। आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥ राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः। शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम्। चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम्। स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोऽम्बरभूषितैः। जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप। भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम्। अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः। पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशांतये ॥ १२ ॥ हिरण्य-

सर्वाङ्गसुन्दरी रुक्मिणीको मैं, जैसे वायु जलते हुए काठमेंसे अग्निकी ज्वालाको हरण करता है तैसे हरण करूँगा ॥ ३ ॥ ऐसा कह कर फिर उन श्रीकृष्णजीने रुक्मिणीके विवाहका नक्षत्र 'परसोंके दिनकी रात्रि है ऐसा जानकर, हे दारुक! शीघ्र ही रथमें घोड़े जोड़कर ले आ, ऐसा सारथीसे कहा ॥ ४ ॥ वह दारुक भी, शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक नामवाले चार घोड़ोंसे जुता हुआ रथ श्रीकृष्णजीके समीप लाकर हाथ जोडकर आगे खड़ा होगया ॥ ५ ॥ फिर श्रीकृष्णजीने, उस ब्राह्मणको रथ पर वैठाकर और आप भी चढ़कर शीघ्र चलनेवाले उन घोड़ों के द्वारा आनर्त्त देशोंसे चलकर एक रात्रिमें ही विदर्भदेशोंमें गमन करा ॥६॥ इधर विदर्भदेशोंका स्वामी, पुत्रके स्नेहसे उसकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव करने वाला वह राजा भीष्मक, अपनी कन्या रुक्मिणी शिशुपालको देनेके निमित्त, नगरको सजवाना और देवताओंकी पूजा प्रारम्भ कराना आदि कार्योंको करने लगा ॥ ७ ॥ उस समय, जिसमें, झाड़े हुए और छिड़के हुए मार्ग, गली और चौहाटे हैं ऐसा वह नगर, चित्र विचित्र ध्वजाओंमें बाँधी हुई पताकाओं करके और स्थान २ पर बाँधी हुई वन्दनवारों करके उत्तम रीतिसे सजाया गया था ॥ ८ ॥ तथा माला,गंध पुष्प,भूषण और स्वच्छ वस्त्रोंसे भूषित स्त्री पुरुषों करके सेवन कराहुआ और अगर से सुगन्धित हुए स्थानोंसे युक्त था ॥ ९ ॥ हे राजन्! राजा भीष्मकने, पितर देवता और ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन करके तैसे ही ब्राह्मणोंको उत्तम प्रकारसे भोजन करवाकर उन ब्राह्मणोंसे कन्याका पुण्याहवाचन करवाया ॥ १० ॥ तैसे ही विवाहसूत्र (कँगना) बाँध कर जिसका मङ्गल करा है और जिसको उत्तम प्रकार से स्नान करवाया है ऐसी उस सुन्दर दाँतोंवाली कन्याको कोरे वस्त्र उढ़ाकर और दूसरे पहिरा कर उत्तम गहनोंसे भूषित करा ॥ ११ ॥ और उस समय उसको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने, सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदके मंत्रोंसे अभिमन्त्रण करा हुआ भस्म लगा कर उस कन्याकी रक्षाविधि करी, अथर्ववेदमेंके शान्तिरूपको जानने वाले पुरोहितने, प्रतिकूल ग्रहोंकी शांतिके निमित्त अग्निमें ग्रह याग करा ॥ १२ ॥ उस

रूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदांवरः॥१३॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै। कारयामास मंत्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥ मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः। पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च। निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासंधो दंतवक्त्रो विदूरथः। आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौंड्काद्याः सहस्रशः॥ १७ ॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम्। यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः। आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः॥१९॥ श्रुत्वैतद्भगवान् रामो विपक्षीयनृपोद्यमम्। कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशंकितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः। त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥ भीष्मकन्या वरारोहा कांक्षंत्यागमनं हरेः। प्रत्यापत्तिमपश्यंती द्विजस्याचिंतयत्तदा।

समय शास्त्रमें कहीहुई रीतियोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ तिस राजा भीष्मकने ब्राह्मणों को, सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र और गुड मिले हुए तिल तथा गौओंका दान दिया ॥१३॥ ऐसे ही चेदिदेशोंका स्वामी जो दमघोष नामक राजा तिसने अपना पुत्र जो शिशुपाल तिसके भी विवाहके विषयमें उचित जो कर्म सो सब मन्त्र जानने वाले ब्राह्मणोंसे करवाये ॥ १४ ॥ तदनन्तर सुवर्णके फूलोंकी माला धारण करने वाले और जिनके मद टपक रहा है ऐसे हाथियोंके समूहोंसे, रथोंसे, पैदलोंसे, और घुडसवारोंसे भरी हुई सेनाओंसे घिराहुआ वह शिशुपाल, अपने नगरसे कुण्डिनपुरको चल दिया ॥ १५ ॥ फिर उसको अपने नगरके समीप आया हुआ सुनकर विदर्भ देशोंके स्वामी राजा भीष्मकने, उस शिशुपालकी अगवानीमें जाकर और उसकी सीमान्त पूजा करके, घरके ठहरनेके योग्य जो दूसरा स्थान नियत कर रक्खा था उसमें ठहरवाया ॥ १६ ॥ उस कुण्डिनपुरमें शिशुपालके पक्षपाती, बलराम-कृष्णसे द्वेष करने वाले शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि सहस्रों राजे, 'यदि बलराम आदि यादवोंसे युक्त श्रीकृष्ण, आकर कन्याका हरण करेगा तो हम सब मिलकर उसके साथ युद्ध करेंगे' ऐसा मनमें निश्चय करके सावधानीके साथ अपनी २ सकल सेना और वाहनोंसे युक्त हो, शिशुपाल को कन्या दिलवानेके निमित्त आये थे ॥१७-१९॥ इधर द्वारकामें भगवान् बलराम जीने, शत्रुका पक्ष करने वाले राजाओंका यह उद्योग सुनकर, तथा सहायकोंके विना इकले ही श्रीकृष्णको कन्या हरण करनेके निमित्त गया हुआ सुनकर और तहाँ श्रीकृष्णका और तिन राजाओंका कलह होगा मनमें ऐसा सन्देह करके; भ्राता श्रीकृष्णजीके ऊपर जो स्नेह तिससे व्याप्त होते हुए वह हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे युक्त बडीभारी सेनाके साथ कुण्डिनपुरको चल दिये ॥ २०—२१ ॥ इधर जिसका कटिस्थान सुन्दर है ऐसी रुक्मिणी सूर्योदयसे पहिले ही श्रीहरिके आनेकी इच्छा करती हुई, अभी तक ब्राह्मणका लौटकर आना क्यों नहीं हुआ ऐसा जानकर उस समय मनमें चिन्ता करने लगी कि-॥ २२ ॥ अहो! मुझ मन्द-

अहो त्रियामांतरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः । नागच्छत्यरविंदाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २४ ॥ सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः । अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् । मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २५ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः । देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती २५ एवं चिंतयती बाला गोविन्दहृतमानसा । न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले २६ एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविंदागमनं नृप । वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रियभाषिणः अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः । अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह २८ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती । आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥ तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् । उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा । न पश्यन्ती ब्राह्म-

---

भागिनीका विवाह होनेके मध्यमें एक ही रात्रि रही है, अब भी भगवान् श्रीकृष्ण जी क्यों नहीं आये इसका क्या कारण है ? सो मैं नहीं जानती हूँ ॥ २३ ॥ और मेरा सन्देशा लेकर गयाहुआ वह ब्राह्मण भी अभी नहीं आया, इससे यह अनुमान होता है कि-स्तुति योग्य स्वरूप वाले उन भगवान्ने, पहिले इधर आनेका उद्योग करा था इस कारण उस ब्राह्मणको भी लौटा कर नहीं भेजा, फिर प्रस्थानके समय श्रीकृष्णजीने मेरा कोई उद्धतपनेका दोष मनमें विचार कर मेरा पाणिग्रहण करने को आगमन नहीं किया है और ब्राह्मणको लौटा दिया होगा इसकारण उसको भी आनेमें विलम्ब लगा है ॥२४॥ ऐसी भाग्यहीन मेरे विधाता और महादेव भी अनुकूल (कार्यसाधक) नहीं हैं तथा हिमालयकी कन्या पतिव्रता रुद्राणी गौरीदेवी भी मेरे प्रतिकूल हुई है ॥ २५ ॥ वह बाला रुक्मिणी इस प्रकार चिन्ता कररही थी और अब भी श्रीकृष्णजीके आनेका समय नहीं हुआ ऐसा मानकर, जिसका चित्त गोविन्दने हर लिया है ऐसी वह दुःखके आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंको मूँदकर बैठ गई ॥ २६ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार गोविन्दके आनेकी बाट देखने वाली तिस रुक्मिणीको शुभसूचना देनेवाले बाई भुजा और बायाँ नेत्र यह उसके अङ्ग फड़कने लगे ॥ २७ ॥ फिर श्रीकृष्णजीने, मैं आगया ऐसी रुक्मिणीको सूचना दो, यह कहकर भेजेहुए तिस ही श्रेष्ठ ब्राह्मणने, रणवासमें रहने वाली तिस रुक्मिणी देवी को देखा ॥ २८ ॥ तब वह रुक्मिणी, जिसके शरीरकी दशा घवड़ाई हुई न होकर शान्त है ऐसे हर्षयुक्त मुखवाले तिस ब्राह्मणको देखकर, भगवत्परायणा और कार्य सिद्ध करने वाले दूतके लक्षण जानने वाली पवित्र हास्ययुक्त वह, 'कार्य करके आये ?' ऐसा कहकर बूझने लगी ॥ २९ ॥ तब उस रुक्मिणीको तिस ब्राह्मणने 'श्रीकृष्ण आगये हैं' ऐसी सूचना (खबर) दी और उसके समीप श्रीकृष्णजीकी प्रशंसा भी करी, तथा रुक्मिणीको लेजानेके विषयमें, 'युद्धमें दुष्ट राजाओंको जीत कर उसको मैं लाता हूँ ऐसा' जो भगवान्ने सत्य कहा था वह भी तिस ब्राह्मणने सुनाया ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णजी आये हैं ऐसा जानकर जिसका मन हर्षयुक्त हुआ है ऐसी तिस रुक्मिणीके, परमानन्दरूप श्रीकृष्णजीको लाकर समर्पण करने वाले इस

नाय प्रियमन्यमन्नाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ । अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि च । उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः । ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः । यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः । आगत्य नेत्रांजलिभिः पपुस्तन्मुखपंकजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा । असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥३७॥ किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् । अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः । कन्या चांतःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् । सा चानुध्यायती सम्यङ् मुकुन्दचरणांबुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं

ब्राह्मणको क्या भेट दूँ ? ऐसा विचार करते हुए इस कार्यके बदलेमें नमस्कारके सिवाय यदि सर्वस्व देदूँ तो भी वह पूरा न होकर कम ही है ऐसा देखती हुई उसने तिस समय उसे केवल नमस्कार ही करा और फिर बहुतसा द्रव्य भी दिया ॥ ३१ ॥ उस समय, मेरी कन्याका विवाह देखनेको उत्कण्ठित हुए बलराम कृष्ण आये हैं ऐसा सुनकर राजा भीष्मक, गाजेबाजे और पूजाकी सामग्री सहित उनकी अगवानीको गया ॥३२॥ फिर,उस भीष्मकने उनको मधुपर्क नवीन बढ़िया वस्त्र और प्रिय उत्तम २ वस्तुओंकी भेट अर्पण करके, वह बुद्धिमान् था इस कारण श्रीकृष्ण निःसन्देह कन्याको वरनेके निमित्त ही आये हैं ऐसा जानकर उसने, वर-पूजाकी विधिसे उनका पूजन करा और सेना सहित तथा सेवकादिकों सहित तिन बलराम-कृष्णको, भोगकी सामग्री आदि सम्पदासे युक्त, ठहरनेका स्थान निवेदन करके उनका उत्तम रीतिसे सत्कार करा ॥ ३३-३४॥ इस प्रकार और भी सब आये हुए राजाओंको उनका जैसा पराक्रम, जैसी अवस्था, जैसा बल और जैसा ऐश्वर्य था उसके अनुसार सकल भोग अर्पण करके राजा भीष्मकने उनका सत्कार करा ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी आगये हैं,ऐसा सुनकर उस विदर्भपुरमेंके लोगों ने जिधर तिधरसे श्रीकृष्णजीके समीप आकर अपने नेत्ररूप अञ्जुलियोंसे, उनके मुखकमलके अमृतको पिया ॥ ३६ ॥ और आपसमें ही ऐसा कहने लगे कि-इन श्रीकृष्णजीकी स्त्री होनेको तो रुक्मिणी ही योग्य है,दूसरी कोई नहीं,और रुक्मिणी के भी, प्रशंसनीय शरीर वाले यह श्रीकृष्णजी पति होनेके योग्य हैं ॥ ३६ ॥ इस से हमारा जन्मान्तरमें कहा हुआ यदि कुछ पुण्य होय तो उससे यह त्रिलोकीनाथ भगवान् श्रीकृष्णजी, प्रसन्न होकर हमारे ऊपर अनुग्रह करें और रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ ३८ ॥ इस प्रकार प्रेमके अंशसे बँधे हुए पुरवासी लोक कहने लगे, इधर वह कन्या, रणवासमेंसे शूर पुरुषोंसे रक्षा करी हुई अम्बिका देवीके मठ में जानेको चल दी ॥ ३९ ॥ वह उत्तम प्रकारसे श्रीकृष्णजीके चरणकमलका बारंबार ध्यान करती हुई पैदल चलकर ही भवानी देवीके चरणपल्लव देखनेके

सखीभिः परिवारिता। गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः। मृदङ्गशंखपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः। स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥ गायंतश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः। परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकरांबुजा। उपस्पृश्य शुचिः शांता प्रविवेशांबिकांतिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः। भवानीं वन्दयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥ ४५ ॥ नमस्ये त्वांबिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम्। भूयात्पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥ अद्भिर्गंधाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः। नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत्। लवणापूपतांबूलकंठसूत्रफलेक्षुभिः ४८ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः शेषां युयुजुराशिषः। ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामांबिकागृहात्। प्रगृह्य पाणिना भृत्यां

निमित्त चलीं ॥४०॥ वह मौनव्रत धारण करने वाली और धाइयोंसे तथा सखियों से घिरी हुई थी, कवच (बखतर) धारण करने वाले और शस्त्र ऊपरको उठाकर धारण करने वाले शूर योधाओंसे रक्षा करी हुई थी ॥ ४१ ॥ उस समय मृदङ्ग,शंख पणव, डंके, और दुन्दुभि नामवाले बाजे बजने लगे, नाना प्रकारकी पूजाकी सामग्री, पकान्न आदि नैवेद्य, और फलोंके थाल भरकर लेजाने वालीं सहस्रों श्रेष्ठ स्त्रियें, माला, गन्ध, वस्त्र और भूषणोंसे सजी हुई ब्राह्मणोंकी स्त्रियें, गाने वाले गवैये और बाजे बजाने वाले बजवैये तथा स्तुति आदि करनेवाले सूत,मागध और वन्दी यह सब, उस कन्याको चारों ओरसे घेरकर चल दिये ॥ ४२—४३ ॥ वह रुक्मिणी, देवीके मन्दिरके समीप पहुँची तहाँ उसने कर-चरण-कमलों को धोया और जलका आचमन करके पवित्र तथा शान्त हो अम्बिका देवीके समीप गई ४४ उस समय अवस्थामें वृद्ध और देवीके पूजनकी रीतिको जानने वालीं सौभाग्यवती पुरोहितके घरकी स्त्रियोंने,महादेवजीकी अर्द्धाङ्गिनी भवानीदेवीको तिस रुक्मिणी से दण्डवत करवाई ॥ ४५ ॥ उस समय रुक्मिणीको अपने आप इस प्रकार मन्त्रका अर्थ स्फुरण हुआ कि—हे अम्बिके ! अपनी गणेश आदि सन्तानयुक्त और मङ्गलरूप तुझे मैं वारम्वार नमस्कार करती हूँ, भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पति हों,इस विषय में तू अनुग्रह कर ४६ इस प्रकार नमस्कारपूर्वक वरकी प्रार्थना करके फिर शुद्ध जल,गन्ध,अक्षत,धूप, वस्त्र, फूलोंकी माला, पुष्प, भूषण, नानाप्रकारके नैवेद्य और अन्य भी नारियल पूजाकी सामग्री तथा आरती आदि भिन्न२ पदार्थ समर्पण करके रुक्मिणीने देवीका पूजन करा ॥ ४७ ॥ तिन ही पदार्थोंसे तथा लवण, पुए,तांबूल कण्ठसूत्र,फल और ईख (गन्ने) से युक्त बायने समर्पण करके सौभाग्यवती ब्राह्मणों की स्त्रियोंका पूजन करा॥४८॥ फिर, उन स्त्रियोंने तिस रुक्मिणीको, देवीका नैवेद्य आदि प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये-रुक्मिणीने, देवीको और उन सौभाग्यवतियों को नमस्कार करके तिस नैवेद्य आदिके प्रसादको ग्रहण करा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर मौन व्रतको त्याग कर रत्नजड़ी अंगूठियोंसे शोभायमान अपने हाथसे सखीका

रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् । श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशंकितेक्षणाम् ॥ शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् । पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥ ५२ ॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥ यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः । पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥ सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा । उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥५५॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् । रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः । ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥५६॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंध-

हाथ पकड़ कर वह रुक्मिणी, तिस अम्बिकाके मठमेंसे बाहर निकली ॥ ५० ॥ तब उसको देख कर तहाँ आये हुए वह यशस्वी वीर, तिस रुक्मिणीके दर्शनसे उत्पन्न हुए कामदेवसे पीडित होकर मोहको प्राप्त होगये, मानो देव (भगवान्) की माया ही है ऐसी वीरोंको मोह उत्पन्न करनेवाली, जिसकी कटि (कमर) पतली है, जिस का मुख कानोंमेंके कुंडलोंसे अतिशोभायमान है, जिसको रजोदर्शनका समय नहीं प्राप्त हुआ है, जिसकी कमरमें रत्नजड़ी मेखला है, जिसके तरुणाईके सूचक स्तन प्रकट हुए हैं जिसके नेत्र घुँघुराले केशोंसे शंका मान कर ही मानो चंचल होरहे हैं५१जिसका हास्य पवित्र है, जिसके दाँत पकीहुई तन्दूरीकी समान अधर ओठकी कान्तिसे लाल२ होकर कुन्दकी कलीकी समान दमकरहे हैं, जो राजहंसकी समान चलनेवाली हैं और शब्द करनेवाले शोभायुक्त नूपुरोंकी कांतिसे शोभायमान चरणोंसे चलरहीहै ऐसी तिस रुक्मिणीको देखकर वह वीर मोहित होगये५२॥५३वह केवल मोहित ही नहीं हुए किन्तु सवारियों परसे नीचे भी गिर पड़े ऐसा वर्णन करते हैं कि—तहाँ आये हुए श्रीहरिको जानेके मिषसे अपनी शोभा दिखाने वाली तिस रुक्मिणीको देख कर, हाथी, रथ और घोड़ोंके ऊपर चढ़े हुए वह जरासन्ध आदि राजे, उसके सुखदायक हास्यसे लज्जायुक्त चितवनसे जिनके चित्त आकर्षित हुए हैं ऐसे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े ॥ ५४ ॥ इस प्रकार वह रुक्मिणी, भगवान् कब मिलेंगे ऐसी बाट देखती हुई, कमलकी कलियोंकी समान अपने चरण धीरे२ धरतीहुई और दाहिने हाथके नखोंसे अपने बिखरे केश पीछेको सम्हालकर, आये हुए राजाओंकी ओरको लज्जासे देखने वाली उसने, अकस्मात् श्रीकृष्णजी को देखा और उनके रथकी ओर जानेको उद्यत हुई ॥ ५५ ॥ तब श्रीकृष्णजीने; रथ पर चढनेको इच्छा करने वाली तिस राजकन्याको, शिशुपाल आदि सब शत्रुओंके देखते हुए, रथ खड़ा करके उसको हाथ पकड़ा कर अपने गरुडध्वज आदि चिह्न युक्त रथ परको खैंच लिया और सकल राजमण्डलीको कुछ न गिन कर, जिनमें बलराम अग्रणी हैं ऐसे यादवोंके साथ, जैसे सिंह गीदड़ोंके समूहमेंसे अपने भाग

यशा न सेहिरे । अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्विनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ५७
इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः
श्रीशुक उवाच । इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः । स्वैः स्वैर्बलैः परि-
क्रांता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः॥१॥तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः । तस्थुस्त-
त्संमुखा राजन् विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते२अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः ।
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३ ॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सु-
मध्यमा । सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥४॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वा-
मलोचने । विनंक्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गद-
संकर्षणादयः । अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान् रथान् ॥६॥ पेतुः शिरांसि रथि-
नामश्विनां गजिनां भुवि । सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥ ७ ॥
हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः । अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि

को निर्भयपनेसे धीरे २ उठा कर लेजाता है तैसे ही श्रीकृष्णजी धीरे २ लेकर चल
दिये ॥ ५६ ॥ तब दुरभिमान धारण करने वाले और जरासन्धके अधीन रहनेवाले
शत्रुओंने, कन्या हरणके द्वारा अपना तिरस्कार और अपने यशका नाश हुआ मान
कर उसको सहन नहीं करा और चिल्लाने लगे कि-अहो! कैसा आश्चर्य है जो हम
धनुषधारियोंका भी यश;जैसे सिंहोंका यश हिरन हरलें तैसेही गोपोंने हरलिया५७
इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥

अब आगे चौअनवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजीने शत्रुके पक्षपाती राजाओंको जीत
कर और रुक्मीको विरूप करके द्वारकामें रुक्मिणीका पाणिग्रहण करा यह कथा
वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! ऐसा भाषण करनेवाले
वह सब राजे, अत्यन्त क्रोधमें भर गये और कवच पहिनकर, धनुष धारण करके
तथा अपने २ वाहनों पर चढ़ कर अपनी २ सेनाओंको चारों ओर लेकर श्रीकृष्ण-
जीके पीछे भागने लगे ॥ १ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! वह शत्रु पीछेसे आरहे हैं ऐसा
देखकर यादवसेनाके अधिपति,अपनेर धनुषोंका टङ्कार शब्द करके उनके सन्मुख
खडे हुए ॥ २ ॥ तब युद्धमें चतुर वह जरासन्ध आदि वीर, घोड़ेकी पीठपर हाथी
के कन्धे पर और रथके आगेके भागमें बैठ कर जैसे मेघ पर्वत पर जलकी धारा
छोडते हैं तैसे बाणोंकी वर्षा करनेलगे॥३॥तब कोमल चित्तवाली वह रुक्मिणी,पति
(श्रीकृष्णजी) की सेना, बाणोंकी वर्षाओंसे ढक गई ऐसा देख कर जिसके नेत्र
भयसे विह्वल हुए हैं ऐसी होकर लज्जाके साथ उन श्रीकृष्णजीके मुखकी ओरको
देखने लगी ॥ ४ ॥ तब भगवान्ने हँस कर कहा कि-हे सुन्दरनयने ! तू भय न कर
तेरी सेनामेंके पुरुषोंसे शत्रुओंकी यह सेना अब ही नाशको प्राप्त होजायँगी ॥ ५ ॥
सो इतने हीमें जरासन्ध आदिके उस पराक्रमको न सहने वाले गद संकर्षण आदि
वीर, अपने बाणोंसे उनके घोडे,हाथी और रथोंका संहार करने लगे॥६॥उस समय
रथियोंके घोड़ोंके सवारोंके और महावतोंके कुण्डलकिरीटों सहित तथा मण्डलीक
और पगडी आदि शिरके वेष्टनोंसहित करोडों मस्तक बाणोंसे कटकर गिरने लगे७

च ॥ ८ ॥ हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकांक्षिभिः । राजानो विमुखा जग्मुर्जरासंधपुरःसराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् । नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥१०॥ भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज । न प्रियाप्रिययो राजन् निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया । एवमीश्वरतन्त्रोयमीहते सुखदुःखयोः ॥१२॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः । त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्ये एकमहं परम् १३ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् । कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥ अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः । पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥१५॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि । तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥१६॥ एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् । हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः । पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्ण-

तरवार गदा और धनुषोंसहित हाथ,हाथोंके पञ्जे,जङ्घा और पैर कट कर गिर पड़े, तथा घोड़े,खिच्चर,हाथी,ऊँट, गदहे और वीरोंके मस्तक कट २ कर गिरने लगे ८ उससमय जयकी इच्छा करनेवाले यादवोंने, जिनकी सेनाका समूह मार डाला है ऐसे वह जरासन्ध आदि राजे युद्धको पीठ देकर भागगये ९ वह राजे, मानो स्त्री ही हरी गई है इस कारण व्याकुल हुए, तेजरहित, उत्साहशून्य और जिसका मुख सूख गया है ऐसे शिशुपालके पास जाकर कहने लगे कि-॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! अपना विवाह रुकजानेसे प्राप्त हुए इस खेदको तुम त्यागो,क्योंकि-हे राजन् ! सुख और दुःख प्राणियोंमें स्थिररूपसे कभी भी देखनेमें नहीं आता है ॥ ११ ॥ जैसे काठकी पुतली नचानेवाले की इच्छाके अनुसार नाचती है तैसे ही ईश्वरके अधीन हुआ यह जीव भी अपने सुख दुःखकी खटपट करता है सो परवश होनेके कारण सुख पानेका यत्न करता हुआ भी कभी दुःख पाता है॥१२॥ जरासन्धने कहा कि-सत्रहवार युद्धमें तेईस २ अक्षौहिणी सेनाको साथमें लेकर युद्ध करनेवाला भी मैं श्रीकृष्णसे तिरस्कारको प्राप्त हुआ परन्तु अगला अठारहवाँ एक युद्ध मैंने जीता है अर्थात् उस समय श्रीकृष्णको मैंने भगाया है ॥१३॥ तो भी (हार वा जीत होने पर भी) परमेश्वरके प्रेरणा करे हुए कालसे सकल जगत्को उलट पुलट करा हुआ जानकर मैं कभी भी शोक वा हर्ष नहीं करता हूँ इस समय वीरोंके जो समूहों के समूह तिनके अधिपति भी हम सब थोडी सी सेनावाले श्रीकृष्णके रक्षा करे हुए यादवोंसे तिरस्कारको प्राप्त हुए हैं१५सो शत्रुओंने, समय अपने अनुकूल होने पर इस समय हमें जीतलिया है परन्तु जब समय हमारे अनुकूल होगा तो हम भी इन को जीतडालेंगे ॥ १६ ॥ इस प्रकार जरासंध आदि मित्रोंने समझाया तब शिशुपाल, मरनेसे शेष रहे हुए अपने सेवक आदिकोंके साथ नगरमेंको चला आया और युद्धमें शेष रहे हुए वह जरासंध आदि राजे भी फिर अपने २ नगरको लौटगये १७ इधर, बलवान् और कृष्णसे द्वेष करनेवाला रुक्मी तो अपनी बहिनको श्रीकृष्णजी का राक्षसविधिसे हरण करना न सहता हुआ एक अक्षौहिणी सेना अपने चारों

मक्षौहिण्या वृतो बली । रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् । प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् । कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः । नोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः । नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता । विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् । रथेनैकेन गोविंदं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् २३ धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः । आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥ कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वांक्षवद्धविः । हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् । स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः । स

ओर लेकर श्रीकृष्णजीके पीछे उनको जीतनेको दौडा ॥१८॥ तिस दौडनेसे पहिले रुक्मिणीका हरण सह्य न होनेके कारण अतिक्रोधमें भरे कवच पहिरे और धनुष धारण करे हुए तिस महाबली रुक्मीने, सब राजाओंके सुनतेहुए यह प्रतिज्ञा करी कि-॥ १९ ॥ हे राजाओ ! मैं युद्धमें श्रीकृष्णको मारेबिना और अपनी छोटी बहिन रुक्मिणीको पीछेको लौटाकर लाये बिना, अपने कुण्डिनपुरमें ही नहीं घुसूँगा, यह तुमसे सत्य कहता हूँ॥२०॥ऐसा कह कर वह रथपर बैठा और शीघ्रतामें भराहुआ सारथीसे कहने लगा कि-जहाँ श्रीकृष्ण हैं तहाँको शीघ्र ही घोडे हाँक जिससे कि उस कृष्णके साथ मेरा युद्ध हो ॥ २१ ॥ आज मैं तीखे बाणोंसे, जिसने मेरी बहिन का बलात्कारसे हरण करा है तिस दुष्टबुद्धि+गोपाल × की (कृष्णकी) वीरताका मद उतारूँगा ॥ २२ ॥ ऐसी बड़बड करने वाला, दुष्टबुद्धि और तिन श्रीकृष्णके दल आदिकी इयत्ता (हद) को न जानने वाला वह रुक्मी, एक ही रथसे श्रीकृष्णजी के पीछे भागता हुआ 'खडा रह २' ऐसा कह कर उन गोविन्दको पुकारने लगा२३ उसने अपने अतिदृढ धनुषको खैंच कर उस पर बाण चढ़, तीन बाणोंसे श्रीकृष्णजीके ऊपर प्रहार करा और वह कहने लगा कि-हे यादवोंके कुलपांसन * (कुलदूषण ! तू मेरे आगे क्षणभरको खडा रह ॥ २४ ॥ हे मन्द ! †जैसे ध्वांक्ष ×(कौआ) यज्ञमें होमके द्रव्यको लेजाता है तैसे मेरी बहिनको चुरा कर तू कहाँको चल दिया तुझ कपट युद्ध करने वाले और मायावीका गर्व मैं अब ढाये देता हूँ ॥ २५ ॥ जब तक मेरे बाणोंसे ताड़ित होकर भूमिपर मरकर नहीं गिरे तब तक कन्या रुक्मिणी को तू छोड दे, तब तो श्रीकृष्णजीने भी हँस कर उसका धनुष तोड़कर उस रुक्मी

+वास्तविक अर्थ यह है कि-दुष्टोंके ऊपर जिसकी बुद्धि उत्तम (दयायुक्त) है।
× गो कहिये वेदवाणी तिसका पालक।
*यहाँ कुलप और अंसन दोपद हैं सो कुलप कहिये कुलकी रक्षा करनेवाला और अंसन कहिये शत्रुओंका घात करने वाला ऐसा अर्थ करना।
† हे स्थिर ऐसा अर्थ करना।
× यहाँ अध्वांक्षवत् ऐसा पद निकाल कर उसका अर्थ इन्द्रकी समान, यह करना

चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः । पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः ॥२८॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ । यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥२९॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया । कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतंग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः । छित्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हंतुमुद्यतः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला । पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ३२ योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते । हंतुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ३३ श्रीशुक उवाच । तया परित्रासविकंपितांगया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया । कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४ ॥ चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् । तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥ कृष्णांतिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् । तथाभूतं हतप्रायं

को छः बाणोंसे वेध डाला ॥ २६ ॥ आठ बाणोंसे चार घोड़े मारे, दो बाणोंसे सारथीको मारा, और तीन बाणोंसे ध्वजा तोडी तब उस रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर पाँच बाणोंसे श्रीकृष्णको वेधा ॥ २७ ॥ तब पाँच बाणोंसे ताडन करे हुए भी उन श्रीकृष्णजीने,उस धनुषको भी काट दिया,तब उसने फिर दूसरा धनुष लिया उसको भी श्रीकृष्णजीने काट डाला ॥२८॥ फिर उस रुक्मीने श्रीकृष्णको मारनेके निमित्त-परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तरवार, शक्ति, तोमर आदि जो २ शस्त्र ग्रहण करे उन २ सबको तत्काल श्रीकृष्णजीने काट डाला ॥२९॥ फिर क्रोधमें भरा हुआ वह रुक्मी, रथके नीचे कुलाँच मार कर हाथमें तरवार लेकर श्रीकृष्णजीको मारने के निमित्त उनके ऊपरको जैसे पतङ्ग कीडा,अग्निका नाश करनेके निमित्त उसके ऊपरको दौडता है तैसे दौड़ा ॥ ३० ॥ तब दौड कर आने वाले रुक्मीकी तरवारके और ढालके तिल २ की समान टुकडे करके वह श्रीकृष्णजी, अपने हाथमें तीखी तरवार लेकर उस रुक्मीके मारनेको उद्यत हुए ॥३१॥ तब अपने भ्राताके मारे जाने का उद्योग देखकर भयसे विह्वल हुई वह सती रुक्मिणी, पतिके चरणों पर पड कर बडी करुणाके साथ कहने लगी कि-॥ ३२ ॥ हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयस्वरूप ! हे देव देव ! हे जगत्पते ! हे कल्याण ! और हे महापराक्रमी ! तुम मेरे भ्राताको मारनेके योग्य नहीं हो अर्थात् इसके प्राणोंकी मुझे भिक्षा दो ॥३३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार कहकर अत्यन्त भयसे जिसके हाथ पैर आदि अङ्ग थर२ काँप रहे हैं, जिसका मुख शोकसे सूखा जाता है, जिसका कण्ठ भर आया है और विह्वल होनेके कारण नमस्कार करते समय जिसके कण्ठमेंकी सुवर्णके फूलोंकी माला नीचे निकलपडी है ऐसी तिस रुक्मिणीने जिनके चरण पकड लिये हैं ऐसे वह श्रीकृष्णजी उस रुक्मीको मारनेसे रुके ॥३४॥ तदनन्तर खोटा कर्म करने वाले तिस रुक्मीको श्रीकृष्णजीने, उसके ही वस्त्रसे बाँधकर,कहीं कहीं दाढी मूछें और केश शेष रहें ऐसी रीतिसे उसही तलवारसे मुण्डन करके उसको कुरूप कर दिया इतने हीमें हाथी घोडे आदिकोंसे अद्भुत तिस शत्रुकी सेनाको, वीरयादवोंने, जैसे

दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः । विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् । वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ३७ मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिंतया । सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ बंधुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति । त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥ ३९ ॥ क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥४०॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः । मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदांधाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् । यन्मन्यसे सदाभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेव कल्प्यते देवमायया । सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ४३

हाथी कमलिनियोंको मसले तैसे मसल डाला ॥ ३५ ॥ और उन्होंने कृष्णके पास आकर तहाँ कुरूप करनेके कारण मृतकसमान हुए तिस रुक्मीको देखा, और बलरामजीने भी बाँधे हुए और तिस प्रकार मुण्डन करनेसे मृतसमान हुए तिस रुक्मी को देख कर वन्धनसे छुटाया और वह प्रभु दयालु भगवान् वलराम श्रीकृष्णजीसे बोले कि-॥३६॥ हे कृष्ण ! रुक्मीकी दाढ़ी मूछ और केश जो मूँडे सो यह अच्छा कार्य नहीं करा,क्योंकि-ऐसा करना हमको बडा निन्दनीय है और संबन्धी पुरुषों की दाढ़ी मूछ तथा केश मूँडकर जो कुरूप करना सो उनका वध करनेकी समान ही है ॥ ३७ ॥ ऐसा कह कर रुक्मिणीको समझाते हैं कि-हे सुशीला रुक्मिणी ! भ्राताका रूप कुरूप हुआ ऐसा मनमें विचार कर तू हमारे ऊपर दोष न लगा, क्योंकि-पुरुषको दुःख वा सुख देने वाला दूसरा कोई नहीं है किन्तु वह पुरुष ही अपने करे हुए कर्मोंसे ही सुख दुःखोंको भोगता है ॥ ३८ ॥ फिर श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि-वध करनेके योग्य दोष करने वाला भी बन्धु, अपने बन्धुसे वध पानेके योग्य नहीं होता है किन्तु वह छोड देनेके ही योग्य होता है, क्योंकि-अपने करे हुए दोषसे ही जो मृतकसमान होगया उसको फिर मारे ही क्या ! छिः छिः उसको मारनेसे केवल अपजस ही होता है३९फिर रुक्मिणीसे कहने लगे कि-जिस धर्मसे युद्धमें भाई भी अपने भाईको मारता है तिसकारण यहक्षत्रियोंका धर्म ब्रह्माजीने अतिदारुण रचा है इससे उसमें हमारा कौन अपराध है ? अर्थात् कोई अपराध नहीं हैं ॥ ४० ॥ फिर श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि-हे कृष्ण ! सम्पदाके घमंड से अन्धा (विवेकहीन) हुआ प्राणीमात्र, राज्यके, भूमिके, द्रव्यके, स्त्रीके, प्रतिष्ठा के, तेजके अथवा और भी किसी वस्तुके निमित्तसे अपने बन्धुओंका तिरस्कार करते हैं परन्तु हमें वैसा करना योग्य नहीं है ॥ ४१ ॥ फिर रुक्मिणीसे बोले कि-सकल प्राणियोंका अहित (बुरा) करने वाले अपने भ्राताका जो तू अनजान पुरुष की समान निरन्तर कल्याण चाहती है सो यह तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, क्योंकि-इसमें उन बन्धु आदिकोंका ही अमंगल है ॥ ४२ ॥ क्यों कि-देह ही आत्मा है ऐसा अभिमान रखने वाले पुरुषोंको, मित्र, शत्रु और उदासीन इस प्रकारका बुद्धिका मोह होरहा है सो भगवान्की मायाका रचा हुआ है ॥४३॥ अर्थात् सबही प्राणियों

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् । नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः । आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्च सतः सति । तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् । कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७ ॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च । अनुभुंक्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् । तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥ श्रीशुक उवाच। एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता । वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे

का आत्मा एक और देह आदिसे अलग है तथा उसको, वह मायासे मूढ़ हुए पुरुष शत्रु मित्रादि भावसे शत्रु-मित्र आदि नाना प्रकारका मानते हैं,जैसे अज्ञानी पुरुष जलमें प्रतिबिम्बित हुए चन्द्रमा आदिकोंके तेजको अथवा घट मठ आदिकोंमेंके आकाशको नाना प्रकारका मानते हैं तैसे ही ४५ आत्मस्वरूपमें अविद्यासे कल्पना करा हुआ यह अधिभूत, अध्यात्म और अधिदेवरूप आदि अन्तवाला देहाभिमान ही, संसार रहित भी प्राणीको संसारमें डालता है अर्थात् उसका शुद्धस्वरूप प्रतीति में न आता हुआ सा होजाता है४५हे पतिव्रते ! सद्भाव रहित, दूसरे अधिभूतादिकों से आत्माका संयोग वा वियोग कुछ भी नहीं है,उन भूत इन्द्रियादिकोंकी उत्पत्ति और प्रकाशका कारण आत्मा ही होनेसे जैसे-प्रकाश्य और प्रकाशक रूपसे प्रसिद्ध भी चक्षु इन्द्रियादिकी और रूपकी प्रसिद्धि सूर्यसे ही होती है और उस इन्द्रियको तथा रूपको राजसत्व होनेसे उनका परस्पर अभेद होता है तैसे ही प्रकाश्य और प्रकाशक भावसे परस्पर प्रसिद्ध भी देह इन्द्रियादिकोंका प्रकाश चैतन्यके अधीन है और वह देह इन्द्रियादि चैतन्यके कार्य होनेके कारण तिस चैतन्य के बिना उनका असत्व है४६अब आत्माको देहका सम्बंध न होनेके कारण जन्म आदिक भी नहीं हैं ऐसा कहनेके निमित्त, यह जन्मादिक देहके धर्म हैं ऐसा वर्णन करते हैं कि-यह जन्म आदि विकार देहके ही हैं, देहमें स्थित रहनेवाले भी आत्माके नहीं हैं, फिर मैं उत्पन्न हुआ, मैं बालक हूँ, इसप्रकार आत्मामें जन्म आदिकी प्रतीति कैसे होती है ? ऐसा कहे तो सुन-देहका जन्मादि होनेसे ही ऐसा होता है, जैसे कलाओंकी उत्पत्ति वृद्धि आदिसे ही चन्द्रमाके जन्म आदिका व्यवहार होता है परन्तु वह पृथक् जन्म आदि चन्द्रमाके नहीं हैं तैसे ही देहके जन्म आदिसे आत्माको जन्मादि का भी व्यवहार होता है परन्तु वह जन्मादि उस आत्माको वास्तवमें नहीं प्राप्त होते हैं तैसे ही इस जीवात्माका मरण भी जैसे—अमावस्याके दिन चन्द्रमाकी कलाओंका नाश होने पर चन्द्रमाका ही क्षय हुआ ऐसा कहते हैं तिसी प्रकार देह का नाश होनेपर जीवात्माका ही नाश हुआ ऐसा कहते हैं परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं होता है ॥ ४७ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष देहादि सम्बन्धरूप अर्थके न होने पर भी देहादिरूपी भोक्ता बनेहुए अपनेको, शब्दादि विषयोंका और फलका भोगरूप अनुभव लेता है तैसे ही अज्ञानी जीवात्मा जन्मादिरूप संसारको पाता है ४८

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः । स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ५१ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् । कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसं-द्रुषा ॥५२॥ भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् । पुरमानीय विधिवदुप-येमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे । अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः । पारिबर्हमुपा-जह्रु र्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥ सा वृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्यांबर-रत्नतोरणैः । बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमंगलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्त-मार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् । गजैर्द्वास्सु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः । मिथो मुमुदिरे तस्मिन् संभ्रमात्परिधावताम् ५८

इस कारण हे पवित्र हास्य वाली रुक्मिणि ! अपनेको सुखाने वाले और विशेष करके मोह उत्पन्न करने वाले इस अज्ञान मूलक शोकको तत्त्वज्ञानसे दूर करके तू स्वस्थचित्त हो ॥४९॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान् बलरामजीकी समझाई हुई तिस सुकुमाराङ्गी रुक्मिणीने, रुक्मीको विरूप करनेके कारणसे होनेवाले शोकका त्यागकरा और विचाररूप बुद्धिसे अपने मनको समझा लिया ॥ ५० ॥ ऐसा सुनने वाले भी रुक्मीका अज्ञान दूर नहीं हुआ यह दिखाते हुए कहते कि-श्रीकृष्ण आदि शत्रुओंने जिसकी सेना और तेजको नष्ट करडाला है जिसके प्राणमात्र शेष रहे हैं ऐसा वशमें करके छोडा हुआ वह रुक्मी, अपने मनोरथकी पूर्णताको न पाता हुआ श्रीकृष्णजीकी करी हुई अपनी कुरूपदशाको स्मरण करता 'दुर्मति कृष्णको विना मारे और रुक्मिणीको लौटा कर विना लाये कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा ऐसी करी हुई अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके निमित्त' जहाँ विरूप किया गया था क्रोधित होकर तहाँ ही रहा इस कारण फिर तहाँ भोजकट नामवाला बडा भारी नगर बसा ॥५१-५२॥ हे राजन् ! भगवान् श्री-कृष्णने इस प्रकार युद्धमें राजाओंको जीतकर और भीष्मककी कन्या जो रुक्मिणी तिसको अपनी द्वारका नगरीमें लाकर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह करलिया५३ उस दिन हे राजन् ! उस द्वारकामें यादवपति श्रीकृष्णसे विना प्रयोजनके ही प्रेम करने वाले लोकोंके घरघर बडाभारी उत्साह हुआ ॥ ५४ ॥ उस समय निर्मल मणि जटित कुण्डल धारण करके आनन्द युक्त हुए पुरुष और स्त्रियें, विचित्र वस्त्र पहिरने वाले उन वरवधूको, विवाहके समय देने योग्य आभूषण आदि भेट सम-र्पण करने लगे ॥ ५५ ॥ तब वह द्वारका नगरी खडी करी हुई ऊँची ध्वजाओंसे अनेकों रङ्गोंके फूल वस्त्र और रत्नोंकी बनी वन्दनवारोंसे और हरएक घरके द्वार पर स्थापन करे हुए मङ्गलकारी खीलें-दुर्वाकुर-फूल-भरे हुए घड़े-अगरकी धूप और दीपकोंसे शोभित होने लगी ॥५६॥ तैसे ही जिसमें मार्ग छिड़के हुए हैं ऐसी वह नगरी, उत्सव देखनेको बुलाये हुए अतिप्रिय राजाओंके मद टपकाने वाले हाथियोंसे और द्वारोंपर खड़े करे हुए केलोंके खंभोंसे और पूगी फलोंसे भूषित हुई थी ॥ ५७ ॥ उस नगरीमें चावसे जिधर तिधर दौड़ते हुए बन्धुओंमें कुरु सृञ्जय,

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः । राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥ द्वारकायामभूद्राजन् महामोदः पुरौकसाम् । रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४

श्रीशुक उवाच । कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना । देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः । प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥ तं शंबरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् । स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद् गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह । वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ४ तं शंबराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् । सूदा महानसं नीत्वाऽवद्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदु-

---

कैकेय, विदर्भ, यादव और कुंति परस्पर मिलकर आनन्दको प्राप्त हुए ॥५८॥ जहाँ तहाँ देशोंमें सूत मागध और वन्दियोंके गाये हुए इस रुक्मिणीके हरणरूप भगवान् के चरित्रको सुनकर राजे और राजकन्याएँ परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥ ५९ ॥ हे राजन् ! उस द्वारकामें लक्ष्मीका अवताररूप तिस रुक्मिणीके साथ श्रीकृष्णको देखकर पुरवासियोंको बडा आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें चतुःपंचाशत्तम अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ छ छ

अब आगे पचपनवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीसे प्रद्युम्नके उत्पन्न होनेपर उनको शंबरासुरने चुरालिया,फिर उन्होंने तिस शम्बरासुरको मारकर स्त्री सहित द्वारकामें आगमन करा तथा शम्बरासुरके प्रद्युम्नको लेजानेके कारण हुई जो हानि तथा फिर उनके आनेसे हुआ जो लाभ इत्यादिके द्वारा श्रीकृष्णजीने, कुटुम्बियोंको सन्तान आदिसे सुख दुःखादि कैसे प्राप्त होते हैं सो दिखाया यह कथा वर्णन करी है॥ॐ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! चित्तसे उत्पन्न होनेके कारण और सृष्टिका कारण होनेसे वासुदेवका अंश जो काम वह, पहिले जन्ममें महादेवजीके क्रोधसे भस्म होगया था सो वही फिर देह प्राप्त होनेके निमित्त तिन वासुदेव श्रीकृष्णके अन्तरात्मामें प्रविष्ट होकर रहा॥१॥वह ही काम,श्रीकृष्णजीके वीर्यमें स्थित होता हुआ रुक्मिणीके गर्भमें उत्पन्न होकर प्रद्युम्न इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह सुंदरता आकार और भाषण आदि सब गुणोंमें श्रीकृष्णजीकी समान ही था २ तब, कामदेवके शत्रुरूपसे प्रसिद्ध शम्बरासुरने उसप्रद्युम्नको 'यह मेरा शत्रु कामदेव है ऐसा' नारदजीके मुखसे सुनकर गुप्तरूपसे उस बालकको दश दिनका होनेसे पहिले ही चुरा लिया और समुद्रमें डालकर वह शम्बरासुर अपने घरको चला गया ॥ ३ ॥ उस बालकको किसी एक बलवान् मत्स्यने निगल लिया, फिर मत्स्य मारकर जीविका चलाने वाले कहारोंने दूसरे मत्स्योंके साथ बडेभारी जालसे उस मत्स्यको भी फाँसकर पकड लिया ॥ ४ ॥ फिर उन कहारोंने वह बडाभारी मत्स्य शम्बरासुरको भेटरूपसे अर्पण करा,फिर रसोइयोंने उस अद्भुत मत्स्यको रसोईके घरमें लेजाकर अपने शस्त्रसे चीरा ॥ ५ ॥ तब उसके उदरमें अद्भुत बालक देख कर

ददौ बालं मायावत्यै न्यवेदयत् । नारदोऽकथयत् सर्वं तस्याः शंकितचेतसः । बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥६॥ सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी । पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शंबरेण सा सूपौदनसाधने । कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः । जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् । सव्रीडहासोत्तभितभ्रु वेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा । मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच । भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् । अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो॥१२॥ एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः । मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥ तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः । मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥१४॥

उन्होंने वह मायावतीको सौंप दिया, तब यह बालक कौन है ? ऐसा मनमें सन्देह करने वाली उस मायावतीको, तिस बालकका कामदेव स्वरूप होना, श्रीकृष्णसे रुक्मिणीके विषैं उत्पन्न होना, शम्बरासुरका उसको चुराना और मत्स्य के उदरमें जाना यह सब कह सुनाया ॥ ६ ॥ वह मायावती निःसन्देह कामदेवकी रतिनामवाली स्त्री थी और रुद्रभगवान्ने क्रोधसे जिसका देह भस्म होगया है ऐसे अपने पतिका शरीर उत्पन्न होनेकी बाट देखनेवाली पतिव्रता थी ॥ ७ ॥ उसको शम्बरासुरने रसोई करनेके काममें लगाया था उसने नारदजीसे वह बालक कामदेव है ऐसा जानकर उसमें स्नेह करा ॥ ८ ॥ फिर थोड़े ही समयमें वह श्रीकृष्णका पुत्र तरुण अवस्थाको प्राप्त हुआ और अपने सुन्दरता आदि गुणोंसे अपनी ओरको देखनेवाली स्त्रियोंको अत्यन्त मोहित करने लगा ॥ ९ ॥ तब हे राजन् ! जिसके नेत्र कमलके पत्रकी समान विशाल हैं, जिसकी भुजा जानुपर्यन्त लम्बी हैं और जो मनुष्यलोकमें सुन्दर है ऐसे तिस अपने पतिको लज्जायुक्त हास्यसे, कटाक्षयुक्त तिरछी दृष्टिसे देखनेवाली वह मायावती नामवाली रति, सुरतके अभिप्रायोंसे उन का सेवन करने लगी ॥ १० ॥ तब वह भगवान् कृष्णपुत्र, उससे कहने लगे कि-हे मातः ! तेरी बुद्धि उलटी दीखती है, अर्थात् तू इस समय अपना माताका धर्म त्यागकर कामातुर स्त्रीकी समान वर्त्ताव करती है, यह क्या ? ॥ ११ ॥ तब रतिने कहा कि-तुम नारायण (श्रीकृष्ण) के पुत्र हो और शम्बरासुर उनके घरसे तुम्हें ले आया है, हे प्रभो ! मैं तुम्हारी अधिकारसे प्राप्त स्त्री रति हूँ और तुम मेरे पति कामदेव हो ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! इस शंबर दैत्यने, तुम्हें जन्म लेकर दश दिनका होने से पहिले ही लेजाकर समुद्रमें डाल दिया था, तहाँ तुम्हें एक मत्स्यने निगललिया और मत्स्यको कहारोंने मारकर यहाँ शम्बरासुरको भेंटमें लाकर दिया था, उसके पेटमेंसे तुम यहाँ आये हो १३ इस कारण सैंकड़ों माया जाननेवाले और तिरस्कार करनेको कठिन इस अपने दुर्जय शत्रुको, अपनी मोहन आदि मायाओंसे मोहित करके मार डालो १४ इसमें कुछ विलम्ब न करो क्योंकि-तुम्हारी माता रुक्मिणी,

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा । पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५ ॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने । मायावती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥ स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् । अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम् ॥ १७ ॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः । निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने । प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥१९॥ तामापतन्तीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् । अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥ स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् । मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥ २१ ॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः । सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् २२ ततो गौह्यकगांधर्वपैशाचोरगराक्षसीः । प्रायुङ्क्त शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् । शंबरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वोजसाहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः । भार्यया-

पुत्र नष्ट होजानेके कारण दीन और पुत्र स्नेहसे व्याकुल होकर, बछड़ा नष्ट होने से शोकातुर हुई गौकी समान और कुररीकी समान डकराती हुई रोरही है ॥१५॥ ऐसा कहकर उस मायावतीने, महापराक्रमी भी तिस प्रद्युम्नको शत्रुकी सकल मायाओंका नाश करनेवाली अपनी महामाया नामवाली विद्या दी ॥ १६ ॥ तब वह प्रद्युम्न भी शम्बरासुरके समीप जाकर, जिनका सहना कठिन है ऐसे तिरस्कारके वचनोंसे उसको ललकार कर कलह उत्पन्न करते हुए युद्ध करनेके निमित्त उससे कहने लगे ॥ १७ ॥ उस समय दुर्वचनोंसे निन्दा करा हुआ वह शम्बरासुर, पाँव से दवाये हुए सर्पकी समान क्रोधसे नेत्र लाल २ करके और हाथमें गदा लेकर युद्ध करनेके निमित्त घरमेंसे बाहर निकला ॥ १८ ॥ और वेगसे गदा घुमा कर महात्मा प्रद्युम्नको मारनेके निमित्त वह गसके ऊपरको फेंकी और वज्रपात होने पर जैसे बड़ा भारी शब्द होता है तैसे उसने बड़े जोरसे गर्जना करी ॥१९॥ भगवान् प्रद्युम्न ने भी आतीहुई तिस गदाको, अपनी गदासे चूरा करके हे राजन् ! क्रोधमें भरेहुए उन्होंने शम्बरासुरको मारनेके निमित्त अपनी गदा फेंकी ॥ २० ॥ उस शम्बरासुर ने भी मयासुरकी उपदेश करी हुई अन्तर्धान होजानारूप विद्याका आश्रय करके, आकाशमें स्थित हो, प्रद्युम्नके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करी ॥ २१ ॥ तब शस्त्रोंकी वर्षा से पीडाको प्राप्त हुए भी वह रुक्मिणीके पुत्र महारथी प्रद्युम्न, सकल दैत्यमायाओं का नाश करने वाली अपने सत्त्वगुणी महाविद्याका प्रयोग करने लगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर फिर उस दैत्यने, गुह्यकोंकी, गन्धर्वोंकी, पिशाचोंकी, सर्पोंकी और राक्षसों की सैंकडों माया प्रद्युम्नजीके ऊपर चलाई, सो उन कृष्णपुत्र प्रद्युम्नजीने, उन सब मायाओंका नाश करा फिर उन प्रद्युम्नजीने, तीखी तलवार उठा कर उससे, जिस में लाल २ दाढ़ी मूछें हैं ऐसा वह किरीट सहित और कुंडलोंसहित शम्बरासुरका शिर, बलात्कारसे काटडाला ॥ २४ ॥ तब स्तुति करनेवाले देवताओं करके पुष्पांजलियोंसे छाये हुए उन प्रद्युम्न पतिको लेकर, आकाशमार्गमें अपने आप जानेवाली

वरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरं राजन्ललनाशतसंकुलम् । विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । प्रलंबबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखांभोजं नीलवक्रालकालिभिः । कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥ २८ ॥ अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः । उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापांगी वैदर्भी वल्गुभाषिणी । अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः । धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥ मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् । एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः । आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥ ३३ ॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः । अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः । देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञाता-

और दूसरेको भी लेजाने वाली वह मायावती स्त्री आकाशमार्गसे द्वारकामें लेगई२५ तब हे राजन् ! मानो बिजलीसहित काला मेघ ही आकाशमेंसे नीचे उतरा क्या ? ऐसे वह प्रद्युम्न, स्त्रीसहित नीचे उतर कर सैंकडों उत्तम स्त्रियोंसे भरेहुए श्रीकृष्णजीके श्रेष्ठ रणवासमें चलेगये ॥२६॥ तब उन मेघकी समान श्यामवर्ण, पीले जरीके रेशमी वस्त्र धारण करने वाले, आजानुबाहु, आरक्तनेत्र, मन्दहास्ययुक्त, सुन्दरमुख और जिनका मुखकमल काले घुँघुराले केश स्वरूप भौंरोंसे उत्तम शोभायमान है ऐसे उन प्रद्युम्नको देख कर, यह श्रीकृष्ण ही हैं ऐसा मान कर लज्जित हुई स्त्रियें जहाँ तहाँ ओटमेंको होने लगीं ॥ २७ ॥ २८ ॥ तदनन्तर वह स्त्रियें, धीरे २ श्रीकृष्णजीकी अपेक्षा कुछ भेदसे अर्थात् इनमें श्रीवत्स कौस्तुभ आदि नहीं हैं इस कारण यह कृष्ण नहीं हैं ऐसा निश्चय करके हर्षयुक्त और विस्मित होती हुई श्रेष्ठ स्त्रीसहित आये हुए उन प्रद्युम्नके समीप आईं ॥ २९ ॥ फिर उनके देखने पर तिस रणवासमें, नीले कटाक्ष और मधुर भाषण वाली रुक्मिणी, स्नेहसे स्तनोंमें धार छुटनेके कारण अपने पुत्रका स्मरण करने लगी ॥ ३० ॥ और कहने लगी कि-यह कमलनयन मनुष्योंमें श्रेष्ठ न जाने कौन है ? किसका पुत्र है ? कौनसी माताने इसको अपने उदरमें धारण करा है ? और इसको मिलीहुई यह स्त्री भी कौन है३१ मेरा भी जो पुत्र, सौवरके घरमेंसे किसीके चुरा कर लेजानेके कारण नष्ट होगया है वह यदि कहीं जीवित होयगा तो इसके समान ही अवस्था और रूपमें होगा॥३२ इसने, सूरत, अङ्ग, चाल, स्वर, हँसना और चितवनसे श्रीकृष्णजीकी समानता न जाने कैसे पाई है ? ॥ ३३ ॥ निःसन्देह जो बालक मैंने गर्भमें धारण करा था यह वही होगा और इसमें मेरा प्रेम बढ़ता है तथा मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है३४ इस प्रकार रुक्मिणीके तर्क करतेहुए, देवकी वसुदेवके साथ पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णजी भी तहाँ आपहुँचे॥३५॥तब,प्रद्युम्नको शम्बरासुर लेगया था इत्यादि वृत्तांतको जानते हुए भी वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मौन ही रहे, उसी समय आये हुए नारदजीने,

थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः । नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥३६॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः । अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ॥३७ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः । दंपती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः । अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ॥ ३९ ॥ यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रह रूढभावाः । चित्रं न तत् खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

श्रीशुक उवाच । सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः । स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥१॥ राजोवाच । सत्राजितः किमकरोद् ब्रह्मन्कृष्णस्य

प्रद्युम्नको शम्बरासुर लेगया था इत्यादि सब वृत्तांत उन वसुदेवादिकोंसे कहा ३६ वह नारदजीका कहा हुआ बड़ा भारी आश्चर्य सुन कर श्रीकृष्णजीके रणवासमेंकी स्त्रियें,बहुत वर्षोंका नष्ट हुआ होनेसे मानो मरणको प्राप्त होकर ही फिर मिला ऐसे प्रद्युम्नको देख कर आनन्दको प्राप्त हुईं ॥ ३७ ॥ और देवकी, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, रुक्मिणी और स्त्रियें यह सब, तिन प्रद्युम्न रतिरूप दम्पतीको आलिङ्गन करके आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ३८ ॥ द्वारकावासियोंने, नष्ट हुए प्रद्युम्न फिर आगये हैं ऐसा समाचार सुन कर, अहो ! जैसे कोई मरणको प्राप्त होकर फिर आजाय तैसे प्रद्युम्न आये यह बडे आनन्दकी वार्त्ता हुई ऐसा भाषण करा ॥ ३९ ॥ स्वरूपसे सब प्रकार श्रीकृष्णजीकी समान जिस प्रद्युम्नमें यह ही मेरे भर्त्ता हैं ऐसी वारंवार भावना करने वाली उनकी माता (श्रीकृष्णजीकी स्त्री) भी एकान्तमें उनके सेवनको मनमें विचारती थीं अथवा कामातुर हुईं अर्थात् कामातुर होकर एकान्तमें दुवक जाती थीं, ऐसा जो हुआ सो कुछ स्मरणमात्रसे ही क्षोभ उत्पन्न करने वाले और तिसपर भी श्रीकृष्णजीकी श्रीमूर्त्तिके प्रतिबिम्ब (पुत्र) प्रत्यक्ष दीखने वाले उन कामरूप प्रद्युम्नमें निःसन्देह आश्चर्य नहीं है,जब उनकी माताकी यह दशा हुई तो और स्त्रियें उनको देख कर मोहित होंगी इसका तो कहना ही क्या ? ४०

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥५५॥

अब आगे छप्पनवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजी, अपने ऊपर मिथ्या दोष लगने पर उसको दूर करनेके निमित्त जाम्बवन्तसे स्यमन्तक मणि लाये और उसी अवसरमें श्रीकृष्णजीको जाम्बवान्की जांबवती नाम वाली कन्या और सत्राजित्की कन्या सत्यभामा यह दो स्त्रियें प्राप्त हुईं यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! श्रीकृष्णका अपराध करने वाले सत्राजित्ने, उस अपराध की शान्तिके निमित्त आपही उद्योग करके स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्णजीको अर्पण करी ॥ १ ॥ राजाने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! सत्राजित्ने श्रीकृष्णजीका कौनसा अपराध करा था ? उसको स्यमन्तकमणि कहाँसे मिली

*बिम्बकी समान ही प्रतिबिम्बमें बुद्धि होती है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ।

किल्विषम् । स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच । आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा । प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥ स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः । प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥ ४ ॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टयः । दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशंकिताः ॥५॥ नारायण नमस्तेऽस्तु शंखचक्रगदाधर । दामोदरारविंदाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते । मुष्णन् गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः । ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥ श्रीशुक उवाच । निशम्य बालवचनं प्रहस्यांबुजलोचनः । प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् । प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो । दुर्भिक्ष-

थी ? और उसने किस कारणसे श्रीकृष्णजीको कन्या दी सो मुझसे कहो ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–सत्राजितने वनमें जाकर सूर्यकी भक्ति करी, तिससे उसके पूज्य और स्वामी भी वह सूर्य उसके मित्रकी समान ही होगये, उन सूर्यने तिस सत्राजितकी भक्तिसे प्रसन्न और उसके ऊपर स्नेहयुक्त होकर उसको स्यमंतक नाम वाली एक मणि दी ॥ ३ ॥ तब हे राजन्! वह सत्राजित् तिस मणिको कंठमें धारण करके, उसके तेजसे सूर्यकी समान प्रकाशवान् होनेके कारण कोई भी 'यह सत्राजित् है ऐसा' नहीं जानता था इस प्रकार द्वारकामें गया ॥ ४ ॥ उस सत्राजितको द्वारकावासियोंने दूरसे ही देखकर दृष्टि चौंधा जानेसे यह सूर्य है ऐसी शङ्का करी और फाँसोंसे खेलते हुए श्रीकृष्ण भगवान्के पास जाकर कहने लगे कि–॥ ५ ॥ हे नारायण! हे शंखचक्र-गदाधर! हे दामोदर! हे कमलनेत्र! हे गोविन्द! हे यादवोंके आनन्दकारक! तुम्हें नमस्कार हो॥६॥हे जगत्पते! तुम्हें देखनेकी इच्छा करनेवाला यह तीखी किरणों वाला सूर्य, अपनी किरणोंके समूहसे मनुष्योंके नेत्रों को चौंधाता हुआ आरहा है ॥ ७ ॥ यह कुछ असम्भव नहीं है; क्योंकि–निसंदेह ब्रह्मादिक श्रेष्ठ देवता भी त्रिलोकीमें तुम्हारे मार्गको ढूँढते हैं इस कारण इस समय यादवोंमें मनुष्यावतार धारण करनेवाले तुम्हें जानकर हे प्रभो! सूर्य तुम्हारे दर्शन करनेको आरहा है ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन्! वह आने वाला कौन है इस तत्त्वको न जानने वाले अनजान पुरुषोंका वह कथन सुनकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि–यह सूर्य नहीं है किन्तु स्यमन्तकमणिसे प्रकाशवान् होने वाला सत्राजित् है ॥ ९ ॥ इधर सत्राजितने कौतुकसे, जहाँ वन्दनवार बाँधना आदि मङ्गल करे हैं ऐसे शोभायमान करेहुए अपने घरमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंसे उस मणि की देवमन्दिरमें स्थापना करवाई ॥ १० ॥ हे राजन्! वह मणि प्रतिदिन सोनेके आठ भार + उत्पन्न करता था और जहाँ पूजा करा हुआ वह मणि हो तहाँ दुर्भिक्ष

+ भारकी तोल 'चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुंजं गुंजा पञ्च पणं पणान् । अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षाणांश्चतुरः पलम् ॥ तुलां पलशतं प्राहुर्भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥' अर्थात् चार

मार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः । न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा । नैवार्थकामुकः प्रादाद्याञ्चाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् । प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी । गिरिं विशन् जांबवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥ सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले । अपश्यन् भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥ १५ ॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः । भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपन् जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि । मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने । तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसा वृतम् । एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः

(महँगी), महामारी, ग्रहपीड़ा, सर्पका भय, मनका दुःख रोग और मायावी दैत्य आदि दुःखोंके कारण, नहीं रहते हैं ॥ ११ ॥ एक समय श्रीकृष्णजीने, ऐसी प्रभावशाली मणि राजाके पास होनी चाहिये ऐसा मनमें विचार कर, राजा उग्रसेनके निमित्त सत्राजित्से उस मणिकी प्रार्थना करी तब, उस द्रव्यके लोभीने, भगवान्की आज्ञा टलती है इसका मनमें विचार न करके मणि नहीं दिया, इससे यह सूचित करा कि-भगवान्को बिना अर्पण करे स्वयं ही भोगी हुई सकल अनिष्टोंको दूर करने वाली भी वस्तु अनिष्टका कारण होती है ॥ १२ ॥ यह ही दिखानेके निमित्त कहते हैं कि—बड़ी कान्ति वाले तिस मणिको, एक समय सत्राजित्का भ्राता जो प्रसेन था वह अपने कंठमें बाँध घोड़ेपर बैठके वनमें मृगया (शिकार) करनेको गया ॥ १३ ॥ तब एक सिंहने घोड़े सहित उस प्रसेनको मारकर मणि लेली, सो वह उस मणिको लिये पर्वत पर फिर रहा था तब उस मणिकी इच्छा करने वाले जाम्बवान्ने उस सिंहको मार डाला ॥ १४ ॥ उस जाम्बवान्ने भी अपने रहनेके स्थान पर्वतकी गुफामें उस मणिको अपने कुमारके खेलनेका खिलौना कर दिया, इधर सत्राजित् अपने भ्राताको न देखता हुआ दुःखित होकर कहने लगा कि-॥ १५ ॥ मेरा भ्राता प्रसेन कंठमें मणि धारण करके वनमें गया था, उसको प्रायः मणिके लोभसे श्रीकृष्णने ही मारा है, क्यों कि-पहिले श्रीकृष्णजीके मणिको माँगने पर वह मैंने नहीं दी थी इस कारण उनको यह अवसर मिला है, इस प्रकारका कथन सुनकर द्वारकावासी पुरुष भी, एक दूसरेके कानमें धीरे २ यही कहने लगे ॥ १६ ॥ फिर भगवान्ने भी वह वचन सुनकर, अपने ऊपर लगा हुआ अपजस दूर करनेके निमित्त नगरवासी लोगोंके साथ प्रसेनके मार्गका पता लगानेके निमित्त वनमें गमन करा ॥ १७ ॥ तब वनमें सिंहके मारेहुए प्रसेनको और घोड़ेको देखकर उस सिंहको भी पर्वतके ऊपर जाम्बवान्का मारा हुआ सब लोकोंने

जौकी एक गुंजा, पाँच गुंजका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलका एक तुला और बीस तुलाका एक भार होता है ऐसे आठ भार कई मन हुए ।

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम्। हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकांतिके॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत्। तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जांबवान्बलिनां वरः॥ २१ ॥ स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः। पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित्॥२२॥ द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः। आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः। वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम्॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टांगोरुबन्धनः। क्षीणसत्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः॥ २५॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम्। विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम्॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृष्टानामपि यच्च सत्। कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम्॥२७॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिंगिलोऽब्धिः। सेतुः कृतः

देखा॥१८॥ फिर भट्टके द्वारके बाहर सब लोगोंको खडा करके, इकले ही भगवान् अन्धकारसे भरी हुई और भयंकर तिस जाम्बवान्की गुफामें चले गये॥१९॥ और उस बिलमें बालकका खिलोना करा हुआ स्यमन्तक नामवाला श्रेष्ठ मणि देखकर उसको छीननेकी इच्छासे उस बालकके समीप जाकर खड़े होगये॥ २० ॥ तब, पहिले कभी भी न देखे हुए मनुष्यरूप श्रीकृष्णको देखकर उस बालककी माता भयभीत हुईसी चिल्लाई, उसको सुनकर क्रोधमें भराहुआ जाम्बवान् तहाँ आया २१ भगवान्का प्रभाव न जानने वाले तिस जाम्बवान्ने उनको साधारण पुरुष मानकर और क्रुद्ध होकर पहिले (रामावतारमें) अपने स्वामी होनेवाले तिन श्रीकृष्ण भगवान्के साथ ही युद्ध करा॥२२॥ परस्पर जीतनेकी इच्छा करनेवाले उन दोनोंका, उस मणिके निमित्त गदा आदि आयुधोंसे, पत्थरोंसे भुजाओंसे और वज्रपातकी समान कठोर परस्पर घूँसोंके प्रहारोंसे अति भयानक द्वन्द्वयुद्ध हुआ वह युद्ध,जैसे माँसके निमित्त दो बाज पक्षियोंका होता है तैसे रात दिन बराबर अट्ठाईस दिन तक एक समान होता रहा॥ २३-२४ ॥ तब, श्रीकृष्णजीके घूँसे लगनेसे जिसके हाथ पैर आदि अङ्ग और शरीरके जोड़ चूरा२ होगए हैं, जिसका धीरज और बल क्षीण होगया है और जिसके शरीरमेंसे पसीना छूट निकला है ऐसा वह जाम्बवान् लोकोंमें यह मुझसे अधिक बलवान् न जाने कौन है? ऐसा मानकर आश्चर्य में हो तिन श्रीकृष्णजीसे बोला कि-॥ २५ ॥ सकल प्राणियोंका जो प्राण तिसमें जो इन्द्रियबल, अन्तःकरण बल और शरीरबल सो सब तुम ही हो, ऐसा मुझे प्रतीत होता है, क्यों कि-विष्णु, पुराणपुरुष, पराक्रमी और सबोंके नियन्ता तुम ही हो॥ २६॥ तुम ही विश्वस्रष्टा ब्रह्मादिकोंके निमित्त हो और महत्तत्व आदि रचने योग्य पदार्थोंके उपादान कारण भी तुम ही हो, नाश करने वाले सबके नियन्ता काल तैसे ही सकल जीवोंके परमात्मा तुम हो॥ २७ ॥ तुम जो इस प्रकारके हो तिससे मेरे इष्टदेवता अर्थात् जिनके कुछ एक भडकेहुए क्रोधसे फेंकेहुए कटाक्षों करके जिसमें नाके और बड़े २ मच्छ खलबला गये हैं ऐसे समुद्रने लंकामें जानेको मार्ग दिया तब भी उसके ऊपर जिन तुमने अपना यशोरूप सेतु बाँधा और लंका

स्वयश उज्ज्वलिता च लंका रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि २८ इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः । व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥ २९ ॥ अभिमृश्यारविंदाक्षः पाणिना शंकरेण तम् । कृपया परया भक्तं प्रेमगंभीरया गिरो ३० मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते विलम् । मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनाऽमुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जांबवतीं मुदा । अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य विलं जनाः । प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः । सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन् विलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥ सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः । उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च । प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ३६ उपलभ्य हृषीकेशं मृत्वा पुनरिवागतम् । सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ । प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्य-

---

भस्म करडाली और जिनके बाणोंसे कटेहुए रावणके शिर भूमिपर गिरे वह रामचन्द्र तुम हो ऐसा मैं जानता हूँ ॥ २८ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार अपना स्वरूप जिसने जाना है ऐसे तिस जाम्बवान्को, देवकीपुत्र भगवान् कमलनेत्र श्रीकृष्ण पहिले उसकी पीडा दूर करनेके निमित्त सुखदायक अपने हाथसे स्पर्श करके, परमकृपालु होते हुए मेघकी गर्जनाकी समान गंभीर वाणीसे कहने लगेकि-२९-३० हे रिच्छराज ! हम बहुतसे यादव, इस स्यमन्तकमणिके निमित्त विलके द्वारके समीप आये हैं, उनमेंसे, अपनेको लगा हुआ मिथ्या दोष इस मणिके द्वारा दूर करनेके निमित्त मैं यहा आया हूँ ॥ ३१ ॥ ऐसे कहने पर हर्षमें भरेहुए तिस जाम्बवान्ने, भगवान्का पूजन करनेके निमित्त मणिके साथ अपनी जांबवती नामक कन्या श्रीकृष्णजीको अर्पण करी ॥३२॥ इधर विलके वाहर रहेहुए पुरुष बारह दिन पर्यन्त वाट देखकर भी, विलमें गयेहुए श्रीकृष्णजी लौटकर नहीं आये ऐसा देख कर दुःखित होतेहुए अपनी द्वारका नगरीमेंको चलेगये ॥३३॥ उनके मुखसे, आज भी श्रीकृष्ण विलसे वाहर नहीं आये ऐसा सुनकर, देवकी, देवी रुक्मिणी, वसुदेव जी, मित्रगण और सब यादव शोक करने लगे, ॥ ३४ ॥ और दुःखको प्राप्तहुए वह द्वारकावासी पुरुष, सत्राजित्को दुर्वाक्य कहकर शाप देते हुए श्रीकृष्णकी प्राप्तिके निमित्त भगवान्की शक्तिरूप चन्द्रभागा नामवाली दुर्गादेवीकी स्तोत्र नमस्कार और महापूजा आदिसे आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ उन आराधना करने वाले द्वारकावासी पुरुषोंको, देवीने प्रसन्न होकर, यह आशीर्वाद दिया कि-तुम शीघ्र ही कृष्णको देखोगे ! सो उसी समय स्यमन्तक मणिको पायेहुए और सबोंको हर्षित करने वाले वह श्रीकृष्णजी, जांबवती सहित द्वारकामें आगये ॥ ३६ ॥ उस समय, द्वारकावासी सब लोग, जैसे लोकमें मरेहुए बन्धुको फिर पाकर आनन्दयुक्त होते हैं तैसे स्त्री सहित आयेहुए और जिनके कण्ठमें स्यमन्तकमणि है ऐसे श्रीकृष्णजीसे मिलकर, बड़े उत्साहयुक्त हुए ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजीने, सभामें

वेदयत् ॥ ३८ ॥ स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः । अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥३९॥ सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः । कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥ किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा । अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ४१दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च । उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् । मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥ तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि । बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥ भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप । तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

श्रीशुक उवाच । विज्ञातार्थोऽपि गोविंदो दग्धानाकर्ण्य पांडवान् । कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥ १ ॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गांधारीं द्रोणमेव च ।

उग्रसेन राजाके सामने उस सत्राजितको बुलवाकर और उससे उस मणिके पाने का वृत्तान्त कहकर वह मणि समर्पण कर दी ॥ ३८ ॥ तब वह सत्राजित् भी श्रीकृष्णजीको मिथ्या दोष लगानेके कारण लज्जित होकर नीचेको मुख करे हुए पश्चात्ताप करता हुआ उस सभामेंसे मणि लेकर अपने घरको चला गया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर बलवान् श्रीकृष्णजीके साथ विरोध होजानेसे व्याकुल हुआ वह सत्राजित्, उस अपने करेहुए अपराधका चिन्तवन करता हुआ तथा, अब मैं अपने अपराधको कैसे दूर करूँ ? श्रीकृष्ण मेरे ऊपर कैसे प्रसन्न होंगे ? क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा ? आगे पीछेका विचार न करने वाले, कृपण, मन्दबुद्धि और धनका लोभ करने वाला जो मैं तिसकी जिस प्रकार लोक निन्दा न करे ऐसा कौनसा उपाय करूँ ॥ ४०-४१ ॥ ऐसा विचार कर उसने यह निश्चय करा कि-मैं उन श्रीकृष्णजी को, स्त्रियोंमें रत्नरूप अपनी कन्या देता हूँ और फिर दहेजमें वह मणि भी देता हूँ यह ही विरोधके शांत होनेका उत्तम उपाय है, ऐसा करे विना उस विरोधकी शांति नहीं होगी ॥ ४२ ॥ इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके उस सत्राजितने, शुभ लक्षणों वाली अपनी कन्या सत्यभामा और स्यमन्तक मणि, आप ही उद्योग करके श्रीकृष्णजीको दी ॥ ४३ ॥ कृतवर्मा, शतधन्वा आदि बहुतसोंकी याचना करी हुई और श्रेष्ठ स्वभाव, सुन्दरता, उदारतारूप गुणोंसे युक्त तिस सत्यभामाको भगवान् ने विवाहकी विधिसे वरलिया ॥ ४४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णजी सत्राजितसे बोले कि-हम मणिको नहीं लेंगे, तुम सूर्यके भक्त हो इस कारण यह मणि अपने पास ही रहने दो, तुम्हारे पुत्रहीन होनेके कारण पीछेसे धन आदिके अधिकारी हम ही हैं ॥४५॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें षट्पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥

अब आगे सत्तावनवें अध्यायमें, शतधन्वाके वधसे फिर प्राप्त हुआ अपयश, श्रीकृष्णजीने, अक्रूरजीकी लाई हुई मणिके द्वारा दूर करा यह कथा वर्णन करी है ॥ अब सत्राजित्के श्रीकृष्णकी आज्ञा भङ्ग करनेका फल स्पष्ट कहनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! एक समय पाण्डव, लाखाघरमेंसे विदुरजीके

तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥ २ ॥ लब्ध्वैनदंतरं राजन् शतधन्वा-नमूचतुः । अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः । कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद् भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः । शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ५ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रंदंतीनामनाथवत् । हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥ सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता । व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् । कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् । अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् । शतधन्वानमारेभे हंतुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया । साहाय्ये कृतवर्माण-

---

रक्खे हुए बिल (सुरङ्ग) के द्वारसे बाहर निकल गये, भस्म नहीं हुए, यह वृत्तांत जानने वाले भी श्रीकृष्णजी, लोकोंके मुखसे पांडवोंका और कुन्तीका लाखाघरमें भस्म होना सुनकर, कुलके योग्य (खबर सुधलाना) व्यवहारके निमित्त कुरु-देशमेंके हस्तिनापुरको बलरामजीके साथ गये ।१॥ तहाँ भीष्मजी कृपाचार्य, विदुर गांधारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके ही दुःखकी समान जिनको दुःख हुआ है ऐसे वह बलराम कृष्ण, उनसे कहने लगे कि-यह बड़े दुःखकी बात हुई है ।२। हे राजन् ! इधर द्वारकामें इस समय यहाँ कृष्ण नहीं हैं इससे सत्राजित्का वध सहजमें ही किया जासकता है ऐसा अवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों शतधन्वासे कहने लगे कि-तू सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेता है ? ॥ ३ ॥ जिस सत्राजित्ने हमको कन्यारत्न देनेकी प्रतिज्ञा करके फिर हमारा अनादर कर वह कन्या श्रीकृष्णजीको देदी, वह सत्राजित् अपने प्रसेन भ्राताकी समान मरण को क्यों न प्राप्त हो ? अर्थात् उसको मारडालो इस प्रकार उन अक्रूर और कृत-वर्माके बहकाये हुए तिस क्षीणायु, पापी, दुष्ट शतधन्वाने, मणिके लोभसे तिस सोते हुए सत्राजितको मारडाला ॥ ५ ॥ उसने, जैसे वधिक पशुओंको मारता है तैसे सोते हुए सत्राजित्को मारकर, उसकी स्त्रियोंके रोते हुए अनाथकी समान विलाप करते हुए, वह स्यमन्तकमणिको लेकर चला गया॥६॥ उस समय सत्यभामा भी, मरे पिताको शतधन्वाने मारडाला ऐसा देखकर शोकसे व्याप्त और बारम्बार मूर्छाको प्राप्त होती हुई, हे तात ! हे तात ! मैं मारीगई ऐसा कहकर विलाप करने लगी ॥७॥ तदनन्तर मरे हुए पिताको तेलके कुंडमें रखकर वह सत्यभामा हस्तिना-पुरको चली गई और दुःखित हुई तिसने, सर्वज्ञ भी श्रीकृष्णसे अपने पिताके मारे जानेका समाचार कहा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तिस सत्राजित्के मरणको सुनकर ईश्वर होकर भी वह बलराम कृष्ण मनुष्यलीलाके अनुसार नेत्रोंमें जल लाकर 'अहो क्या कहें हमें बड़ा दुःख प्राप्त हुआ ऐसा कहकर विलाप करने लगे ॥ ९ ॥ फिर सत्य-भामाके साथ बलरामजी सहित श्रीकृष्णजी, तिस हस्तिनापुरसे द्वारकाको आकर,

मयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः । को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया । जरासंधः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत । सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥ य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च । चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताजया य: सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना । दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे । अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् । तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ । अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् । पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्ति-

---

शतधन्वासे मणि छीननेके निमित्त तिसके मारनेको उद्यत हुए ॥ १० ॥ उस शतधन्वाने भी अपने मारनेके विषयमें श्रीकृष्णजीका उद्योग जान कर, प्राणोंकी रक्षा करनेकी इच्छासे कृतवर्मासे सहायता करनेके विषयमें प्रार्थना करी तब वह कृतवर्मा कहने लगा कि—॥ ११ ॥ मैं ईश्वररूप बलराम-कृष्णके प्रतिकूल कार्य नहीं करूँगा, क्योंकि—उनका अपराध करने वाला भला कौनसा पुरुष, कल्याण पानेके योग्य होगा ? ॥ १२ ॥ जिन कृष्णके द्वेषसे सेवक और बाँधवोंसहित कंस, राज्यसम्पदासे भ्रष्ट होकर नाशको प्राप्त हुआ, तैसेही जरासन्ध भी सत्रहवार युद्धमेंसे रथहीन होकर (शरीरमात्र शेष रह कर) चला गया ॥ १३ ॥ इस प्रकार कृतवर्माके सहायता करनेका निषेध करनेपर उस शतधन्वाने अक्रूरजीसे सहायता देनेके विषयमें याचना करी तब वह कहने लगे कि-ईश्वररूप बलराम कृष्णके बलको जानने वाला कौनसा पुरुष भला उनके साथ विरोध करेगा ? ॥१४॥ जो भगवान् लीलामें संकल्प मात्रसे ही इस जगत्को उत्पन्न करते हैं,पालते हैं और संहार करते हैं,उनकी चेष्टाको उनकी मायासे मोहित हुए विश्वके रचने वाले ब्रह्मादिक भी नहीं जानते हैं १५ सात वर्षके बालक थे तब ही जिन्होंने एक ही हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको उखाड़कर छत्रककी समान सहजमें ही हाथपर रख लिया ॥ १६ ॥ उन अद्भुत कर्म करनेवाले अनन्त सर्वकारण, निर्विकार, आत्मरूप, भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ१७ इस प्रकार उन अक्रूरजीका भी निराश करा हुआ वह शतधन्वा तिस महामणिको तिन अक्रूरजीके पास ही रख कर, एक दिनमें सौ योजन जाने वाले घोड़े पर चढ़ कर भाग गया ॥ १८ ॥ उस समय हे राजन् ! बलराम कृष्ण भी अपने गरुड़ध्वज रथ पर बैठ कर बड़े वेगसे चलने वाले घोड़ोंके द्वारा श्वशुरको मारने वाले तिस शतधन्वाके पीछे चल दिये ॥ १९ ॥ सौ योजन ही जानेवाला होनेके कारण,उसके आगे जानेको असमर्थ और मिथिलानगरीके बागमें गिर पड़ने वाले घोड़ेको छोड कर अत्यन्त भयभीत हुआ वह शतधन्वा पैदल ही भागने लगा तब श्रीकृष्णजी भी क्रोधसे उसके पीछे होलिये ॥ २० ॥ तब पैदल चलने वाले भगवान्, पैदल भागने

मनेमिना । चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजांतिकम् । वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना । कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥ अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम । इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः । अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः२५ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः । ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः । मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना॥२६॥केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः । अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै । साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः सांपरायिकाः ।२८। अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् । व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् । शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविक-

वाले उस शतधन्वाका मस्तक तीखी धार वाले चक्रसे काट कर उसके पहिरे और ओढ़े हुए वस्त्रमें मणिको ढूँढ़ने लगे अर्थात् अक्रूरजीके पास मणि है यह सर्वज्ञ होनेके कारण जानते थे तथापि बलरामजीको वञ्चन करनेके निमित्त उन्होंने ढूँढ़ा ॥२१॥ तब जिनको मणि नहीं मिली ऐसे वह श्रीकृष्णजी, बलरामजीके पास जाकर कहने लगे कि-मैंने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा,उसके पास स्यमन्तक मणि नहीं है ॥ २२ ॥ फिर बलरामजीने,यह सर्वज्ञ कृष्णका इस प्रकार करना मुझे धोखा देनेके निमित्त है ऐसा जान कर क्रोधको गुप्त रखकर श्रीकृष्णजीसे कहा कि-शतधन्वाने वह मणि किसीके पास रखदी है सो ढूँढ़नेके निमित्त तुम द्वारकाको चलो ॥ २३ ॥ मैं तो,अपने अत्यन्त प्रियमित्र राजा जनकको देखनेकी इच्छा करता हूँ,हे राजन् ! इसप्रकार बलरामजीने श्रीकृष्णजीसे कह कर मिथिला नगरीमें प्रवेश करा ॥ २४ ॥ उन बलरामजीको देख कर प्रसन्नचित्त हुए राजा जनकने, शीघ्रता से उठ कर पूजा करनेके योग्य तिन बलरामजीकी पाद्य, अर्घ्य, माला, चन्दन आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजा करी ॥ २५ ॥ फिर प्रीतियुक्त और उदारचित्त उन राजा जनकके सत्कार करे हुए वह बलरामजी,उस मिथिला नगरीमें कई वर्षपर्यंत रहे तब अवसर मिलनेके कारण उन बलरामजीसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने गदा-युद्ध सीख लिया ॥ २६ ॥ इधर सत्यभामाका प्रिय करने वाले उन प्रभु श्रीकृष्णजी ने द्वारकामें आकर सत्यभामासे कहा कि--हमने शतधन्वाको मार डाला परन्तु उसके पास मणि नहीं मिली ॥ २७ ॥ फिर उन श्रीकृष्णजीने, जो जो क्रिया मरण को प्राप्त हुएको परलोकमें हितकारक होती हैं वह२ सब अपने श्वशुर सत्राजित्की क्रियाएँ उसके सुहृदोंसे करवाईं ॥ २८ ॥ अक्रूर और कृतवर्मा यह दोनों, शतधन्वा का वध सुन कर, उन्होंने प्राण लेनेमें शतधन्वाको उकसाया था इस कारण भय से अति डरकर द्वारकासे दूसरे स्थानको भागगये ॥ २९ ॥ फिर वाराणसी (बनारस) में, मणिको हाथमें करे हुए अक्रूरजी, दानपति नामसे प्रसिद्ध होकर सुवर्ण की वेदियें बना कर बड़े २ यज्ञोंसे भगवान्का आराधन करते थे, सो यह समाचार

भौतिकाः ॥ ३० ॥ इत्यंगोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् । मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै । स्वसुतां गांदिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह । देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥ इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् । इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाऽभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः । विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना । स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः॥३६॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद् गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः । दायं निनीयापः पिंडा-

---

पाकर लोग कानोंकान ही कहने लगे कि—श्रीकृष्णजीने ही अक्रूरजीको बनारस भेज दिया है और सत्यभामा बलरामको भी यही विश्वास होगया तब लोकापवाद को दूर करनेके निमित्त भगवान्ने अक्रूरजीको बुला कर वह वृत्तांत ललकार कर बूझा, भगवान्का यह मत गुप्त रख कर कितने ही ऋषि, अक्रूरजीको बुलानेका दूसरा ही कारण वर्णन करते हैं उनके मतका दूषण करनेके निमित्त अनुवाद करते हैं कि—अक्रूरजीके द्वारकामेंसे निकल कर चले जानेके कारण द्वारकावासी लोकों को दुःख प्राप्त हुए, शरीरके भय व्याघ्र आदि, मनके चिन्ता आदि, दैवी अवर्षा आदि और भौतिक सर्पका डस लेना आदि तापोंको वारम्वार भोगने लगे ॥ ३० ॥ इस मतका दूषण करते हैं कि—हे राजन् ! मैंने जो पहिले श्रीकृष्णजीका माहात्म्य कहा उसको भूल कर कितने ही इस प्रकारका उपदेश करते हैं, उस द्वारकामें श्रीकृष्णजीका निवास होते हुए केवल अक्रूरजीके चले जानेसे दुःखोंका दर्शन कैसे होसकता था ? अर्थात् भगवान्की इच्छाके विना तहाँ दुःखोका आना कदापि नहीं होसकता था॥३१ फिर उनके मतका ही वर्णन करते हैं कि—पूर्वकालमें काशिदेशोंमें इन्द्रने वर्षा नहीं करी तब काशिदेशोंके स्वामीने, तहाँ आये हुए श्वफल्कको अपनी गान्दिनी नाम वाली कन्या दी तिसके अनन्तर काशिदेशोंमें इन्द्र वर्षा करने लगा ऐसा प्रसिद्ध है ॥३२॥ तिस श्वफल्कके पुत्र यह अक्रूरजीभी उस श्वफल्ककी समान ही प्रभावशाली थे इस कारण यह जहाँ २ वास करते हैं तहाँ २ इंद्र वर्षा करता है और शरीरके दुःख आदि तथा महामारी आदि उपद्रव भी नहीं होते हैं इस कारण अक्रूरजीके परदेश चलेजानेसे ही ऐसे उत्पात होते हैं ॥ ३३ ॥ इस प्रकारकी अक्रूरजीकी महिमा वर्णन करने वाले वृद्ध होनेके अभिमानी, पुरुषोंके वाक्य सुन कर—ऐसा ठीक है परन्तु इतना ही कारण नहीं है किंतु मणि चला गया यह भी कारण है ऐसा समझ कर दूतोंसे अक्रूरजीको बुलवाकर श्रीकृष्णजी उनसे कहने लगे ३४ अर्थात् आयेहुए अक्रूरजीकी पहिले पूजा करके तथा और नानाप्रकारकी प्रिय बातें कह कर, सर्वज्ञ होनेके कारण अक्रूरजीके चित्तको जानने वाले भगवान् इन, महाभागको मेरे दिये हुए भी मणिकी चाहना नहीं है क्योंकि—मेरे बुलवाने पर यह मणि सहित ही चले आये हैं ऐसा जान कर हँसते हुए कहने लगे कि—॥ ३५ ॥ हे दानपते ! शतधन्वाका रक्खा हुआ सुन्दर स्यमन्तक मणि तुम्हारे पास है सो हमें

न्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः । किं तु मामग्रजः सम्यङ् न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥ दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शांतिमावह । अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् । आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः । विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ४१ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च । आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७

श्रीशुक उवाच । एकदा पांडवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः । इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥ दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् । उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥२॥ परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसंगहतैनसः । सानु-

---

पहिलेसे ही मालूम है ॥ ३६ ॥ सत्राजित्के पुत्रहीन होनेके कारण उसकी कन्या (सत्यभामा) के पुत्र, सत्राजित्को तिलोदक और पिण्डदान देकर और जो कुछ ऋण होय उसको चुका कर शेष रहे हुए धनको ग्रहण करने वाले हैं ॥ ३७ ॥ सो वह मणि उनके लेनेका है तथापि दूसरे पुरुषोंको उसे वर्त्तावमें लाना कठिन है इसकारण आचारवान् तुम अपने पास ही रहने दो,परन्तु बलरामजी मणिके विषय में मेरे ऊपर विश्वास नहीं रखते हैं अर्थात् मनमें समझते हैं कि–इसनेही मणि छुपा लिया है ॥ ३८ ॥ इससे हे महाभाग ! तुम मणि दिखाओ और बन्धुओंके चित्तको शांत करो,मणि नहीं है ऐसा न कहो,क्योंकि–सुवर्णकी वेदी बनायेहुए यज्ञ तुम्हारे निरन्तर प्रारम्भ होरहे हैं इस कारण तुम्हारे पास ही मणि होनेका अनुमान होता है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार साम (समझाने) की रीतियोंसे समझाये हुए अक्रूरजीने, वस्त्रमें लपेट कर रक्खाहुआ सूर्यकी समान कांतिमान् वह श्रीकृष्णजीको दिया४० तब प्रभु श्रीकृष्णजीने, बलराम आदि बांधवोंको मणि दिखलाकर उस मणिके द्वारा अपनेको लगा हुआ मिथ्यादोष दूर करके फिर, इस मणिको व्यवहारमें लाना दूसरोंको अशक्य है इस मिषसे, अक्रूरजीको ही फिर देदिया ॥ १४ ॥ जो पुरुष, भगवान् ईश्वर विष्णुके प्रभावसे युक्त पातकोंका नाश करने वाले और पुण्यदायक इस आख्यानको पढ़ता है, सुनता है, तथा स्मरण करता है वह पुरुष, अपनी दुष्कीर्त्ति तथा दुष्कीर्त्तिके कारण पापको दूर करके मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त ॥५७॥

अब आगे अट्ठावनवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा इन पाँच स्त्रियोंके साथ विवाह करा यह कथा वर्णन करी है ॥ ॐ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! एक समय, नष्ट होगए ऐसा सुने हुए परन्तु फिर द्रुपदके घर सबोंके देखे हुए पाण्डवोंको देखनेके निमित्त श्रीमान् श्रीकृष्णजीने, सात्यकि आदि यादवोंके साथ इन्द्रप्रस्थ (देहली) को गमन करा ॥ १ ॥ तब वह शूर पाण्डव, तिन आये हुए सर्वनियन्ता श्रीकृष्णजीको देख कर, जैसे मूर्छित

रागस्मितं चक्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥३॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवंदनम्। फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥४॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिंदिता। नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याऽभ्यवन्दत ॥५॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवंदितः। निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरम्भितः। आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषा पितृष्वसारं परिपृष्टबांधवः॥ ७ ॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना। स्मरन्ती तान्बहून् क्लेशान् क्लेशापायात्मदर्शनम्॥८॥तदैव कुशलं नोभूत्सनाथास्ते कृता वयम्। ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रांतिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः। तथापि स्मरतां शश्वत् क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः॥१० युधिष्ठिर उवाच। किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर। योगेश्वराणां दुर्दर्शो

हुई इन्द्रियें, प्राण अपान आदि पाँच प्रकारके भेद वाले मुख्य प्राणके आजाने पर एक साथ चेष्टायुक्त होजाती हैं तैसे ही एक साथ उठ कर खड़े होगए ॥ २ ॥ और उन धर्मराज आदिकोंने, श्रीकृष्णजीको आलिङ्गन करके और उनके अङ्गके संगसे पाप रहित होकर उनके प्रेमयुक्त मन्दहास्य वाले मुखको देखा और आनन्दको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ उस समय श्रीकृष्णजीने बड़े धर्मराज और भीमसेनके चरणोंको वन्दना करके समान अवस्था वाले अर्जुनको हृदयसे लगाया तदनन्तर छोटे नकुल सहदेवने उन श्रीकृष्णजीको प्रणाम करा ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह श्रीकृष्णजी उत्तम सिंहासन पर बैठे तब पाँचकी स्त्री होकर भी अनिन्दित और तब ही विवाह होकर आनेके कारण कुछ एक लज्जित हुई द्रौपदीने धीरे २ श्रीकृष्णके समीप आकर उनको वन्दना करी ॥ ५ ॥ जैसे पाण्डवोंने श्रीकृष्णजी की पूजा करी तैसे ही सात्यकिने भी पूजा करके उनको प्रणाम करा फिर वह भी आसन पर बैठा तैसे ही और भी यादव पाण्डवोंसे पूजित होते हुए श्रीकृष्णजीके चारों ओर बैठे ६ फिर श्रीकृष्णजीने कुन्तीके पास जाकर उसको प्रणाम करा तब अतिस्नेहसे जिसके नेत्र जलसे भर आये हैं ऐसी तिस कुन्तीने, श्रीकृष्णको छातीसे लगा कर वसुदेव आदि बाँधवोंका कुशल बूझा और श्रीकृष्णजीने भी पुत्रवधू सहित तिस पिताकी बहिन (बुआ कुन्ती) से कुशल बूझा तब-॥ ७ ॥ प्रेमके कारण जो व्याकुलता तिससे जिसका कण्ठ गद्गद होगया है और जिसके नेत्रोंमें दुःखके आँसू आगये हैं ऐसी वह कुन्ती, पहिले भोगे हुए बहुतसे क्लेशोंको स्मरण करती हुई, भक्तोंके क्लेश दूर करनेके निमित्त अपना स्वरूप दिखाने वाले तिन श्रीकृष्णजीसे कहने लगी कि-॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! जब हम बन्धुओंका स्मरण करने वाले तुमने, हमारा वृत्तान्त जाननेके निमित्त, मेरे भ्राता अक्रूरको भेजा था तब ही हमारा कुशल हो गया, तथा तुमने भी हम अनाथोंको सनाथ करा है ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! जगत्के मित्र और आत्मा तुमको 'यह अपना है और यह पराया है इस प्रकारकी' भ्रान्ति नहीं है तथापि स्मरण करने वाले भक्तोंके हृदयमें तुम निरन्तर रह कर उनके क्लेशोंका नाश करते हो ॥ १० ॥ धर्मराजने कहाकि-हे सर्वेश्वर ! योगेश्वरोंको भी कठिनता

यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥ इति वै वार्षिकान्मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम्। जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम्। गांडीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन सन्नद्धो विहर्तुं गहनं वनम्। बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४ ॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान् रुरून्। शरभान् गवयान् खड्गान्हरिणान् शशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किंकरा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते। तृट्परीतः परिश्रांतो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ। कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥ तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम्। पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि। मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥१९॥ कालिंद्युवाच। अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती। विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम्। तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथ-

से दर्शन देने वाले तुम जो, हम विषयासक्त पुरुषोंके दृष्टिगोचर हुए हो सो हमने कौन पुण्य करा था, यह मैं नहीं जानता ॥ ११ ॥ इस प्रकार धर्मराजने जिनकी स्तुति पूजा आदि करके प्रार्थना करी है ऐसे वह भगवान् श्रीकृष्णजी, इन्द्रप्रस्थमें रहने वाले लोकोंके नेत्रोंको आनन्द देते हुए चार मास पर्यन्त सुखके साथ तहाँ रहे ॥ १२ ॥ एक समय शत्रुओंका नाश करने वाले अर्जुनने श्रीकृष्णजीके साथ, जिसकी ध्वजा पर हनुमान्जीकी मूर्त्ति है ऐसे रथ पर बैठ कर, गाण्डीव नामक धनुष, जिसमें कभी बाण कम नहीं होते ऐसे तरकस लेकर और कवच पहिनकर मृगया (शिकार) करनेको, बहुतसे अजगर और हिरनोंसे भरे हुए भयंकर वनमें गमन करा ॥ १३ ॥ १४ ॥ और तिस वनमें बाणोंसे बाघ, सूकर, महिष, काले हिरन, शरभ, गवय, गैंडे, हरिण, खरगोश, और सेई इनका वध करा ॥ १५ ॥ उनमेंसे श्राद्ध आदि कर्मके योग्य कितने ही मृग, पर्व युक्त अष्टकाश्राद्ध आदि कर्म आने पर धर्मराजके पास सेवकोंसे पहुँचवा दिये फिर पियाससे व्याकुल और थके हुए अर्जुन यमुनाके तट पर गये ॥ १६ ॥ तहाँ उन महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुनने, यमुनामें स्नान करके और उसका निर्मल जल पीकर उस यमुनाके तट पर विचरती हुई सुन्दर स्वरूप वाली एक कन्या देखी ॥ १७ ॥ तब सखा श्रीकृष्णजीके भेजे हुए अर्जुनने, जिसकी जंघा सुन्दर हैं, जिसके दाँत उत्तम हैं और जिसका मुख सुन्दर है ऐसी उस श्रेष्ठ स्त्रीके समीप जाकर बूझा कि—॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि ! तू कौन है ? किसकी है ? तू यहाँ कहाँसे आई है ? और यहाँ आकर तू क्या करनेकी इच्छा कर रही है ? मैं तो तुझे पतिकी इच्छा करने वाली है ऐसा समझता हूँ इससे हे शोभने ! तू यह सब मुझे बता ॥ १९ ॥ कालिन्दी बोली कि— मैं सूर्यदेवकी कन्या हूँ, इच्छित वर देने वाले श्रेष्ठ विष्णु भगवान् मुझे वर मिलें ऐसी इच्छा करके यहाँ परम तप करती रहती हूँ ॥२०॥ हे वीर अर्जुन ! लक्ष्मीके भी आश्रय स्थान तिन विष्णु भगवान्से दूसरे पतिको मैं नहीं वरूँगी, वह अनाथों

संश्रयः ॥ २१ ॥ कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले । निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद् गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् । रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् । कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन् स्वानां प्रियचिकीर्षया । अग्नये खांडवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान् श्वेतान् रथं नृप । अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् । यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥ स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः । आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ २८ ॥ अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते । वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विंदानुविंदावावंत्यौ दुर्योधनवशानुगौ । स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां

के आश्रय मुकुन्द भगवान् ही मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१ ॥ कालिन्दी नामसे प्रसिद्ध मैं, जब श्रीकृष्णजीका दर्शन नहीं होगा तब तकके लिये इस यमुनाके जलमें पिता (सूर्यदेव) के रचना करे हुए घरमें बसती हूँ ॥ २२ ॥ फिर अर्जुनने श्रीकृष्णजीके पास आकर जैसे कालिन्दीने कहा था तैसे ही वह वृत्तान्त श्रीकृष्णजीसे कह दिया, वह श्रीकृष्णजी भी, मेरी प्राप्तिके निमित्त यह तप कर रही है ऐसा पहिले से ही जाननेके कारण उसको रथ पर बैठाल कर हस्तिनापुरमें धर्मराजके समीप लाये ॥ २३ ॥ हमारे रहनेको नगर नहीं है सो बनवाओ ऐसी पाण्डवोंने जब श्रीकृष्णजीकी प्रार्थना करी तब उन पाण्डवोंके रहनेके निमित्त विश्वकर्मासे, परम आश्चर्यकारी और नानाप्रकारकी शिल्परचनाओंसे शोभायमान नगर उत्पन्न करवाया ॥ २४ ॥ और तहाँ अपने पाण्डवोंका प्रिय करनेकी इच्छासे रहने वाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, एक समय अर्जुनको धनुष आदि प्राप्त करानेके निमित्त तथा अग्निको इन्द्रका खाण्डवनामक वन देनेके निमित्त अर्जुनके सारथी हुए २५ हे राजन् ! फिर खाण्डव वनको जलाने वाला वह अग्नि प्रसन्न हुआ और उसने अर्जुनको विजयी रथ, गाण्डीव धनुष, श्वेत घोड़े, अक्षय तर्कस और जिसको शस्त्रधारी न वेध सकें ऐसा कवच दिया ॥ २६ ॥ और उस समय खाण्डव वनको जलाने वाले अग्निसे जिसकी रक्षा करी है ऐसे मयासुरने भी अर्जुनको एक बड़ी भारी सभा रच कर दी, जिस सभामें दुर्योधनको जलमें स्थलकी बुद्धि और स्थलमें जलकी बुद्धिरूप दृष्टिका भ्रम होता था ॥ २७ ॥ फिर तिस अर्जुनने आज्ञा दी और युधिष्ठिर आदि सुहृदोंने भी स्वीकार कर लिया तब वह श्रीकृष्णजी, सात्यकि आदि यादवोंके साथ फिर द्वारकाको आगये ॥ २८ ॥ फिर विवाहके योग्य ऋतु और नक्षत्रके होनेपर ग्रहबलादियुक्त मुहूर्त्तमें यादवोंको परममंगलकारी परमानन्द उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्णजीने, तिस कालिन्दीके साथ विवाह कर लिया ॥ २९ ॥ अवन्तीदेशके राजे विन्द और अनुविन्द दुर्योधनके वशमें रहते थे इस कारण उसकी ही संमतिसे कार्य करते थे, उन्होंने स्वयम्वरमें श्रीकृष्णजीको

पितृष्वसुः । प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन् राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौशल्य आसीद्राजाऽतिधार्मिकः । तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ३२ न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् । तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान् वीर्यगंधासहान् खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतां पतिः । जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः । अर्हणेनापि गुरुणापूजयत्प्रतिनन्दितः ॥३५॥ वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेंद्रकन्या चकमे रमापतिम् । भूयादयं मे पतिराशिषोऽमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः । लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते । आत्मानंदेन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच । तमाह भगवान् हृष्टः कृतासनपरिग्रहः । मेघगम्भीरया वाचा

वरनेके निमित्त उद्यतहुई अपनी बहिनको निषेध करा ॥३०॥ तदनन्तर हे राजन् ! पिताकी बहिन राजाधिदेवीकी कन्या तिस मित्रविन्दाको सब राजाओंके देखते हुए ही बलात्कारसे श्रीकृष्णजीने हर लिया ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! कोसल देशोंका स्वामी, अयोध्यामें रहने वाला नग्नजित् नाम वाला परमधर्मात्मा राजा था, उसके ही नामसे नाग्नजिती नामसे प्रसिद्ध, कान्तियुक्त सत्या नाम वाली उसकी कन्या थी ॥ ३२ ॥ उसको वरनेके विषयमें, तीखे सींगों वाले, वीरोंकी गन्धको भी न सहने वाले, मरखने और जिनको वशमें करना कठिन था ऐसे सात मस्त वृषभोंको जीते विना कोई भी राजे (कन्या लेजानेको) समर्थ नहीं हुए ॥ ३३ ॥ तब उन वृषभोंको जीतनेवाले पुरुषको ही वह कन्या मिलेगी ऐसा सुनकर यादवों के पति श्रीकृष्णजी, बड़ीभारी सेनाको साथ लेकर कोसलदेशोंके विषैं तिस अयोध्या नगरीमें गये ॥ ३४ ॥ तब वह कोसलपति राजा नग्नजित् तिन श्रीकृष्णजी को आया हुआ देखकर उठकर अगवानीको सामने गया और आसन पाद्य आदि बड़ा भारी सामग्रीसे उनका पूजन करके, आपका शुभागमन हुआ इत्यादि वाणीसे भी उनका सत्कार करा ॥ ३५ ॥ तब राजकन्याने उन आये हुए अपने मनमाने लक्ष्मीपति वरको देखकर, उनकी इच्छा करी और कहने लगी कि-यदि मैंने व्रतादि नियमोंसे इनका मनमें चिन्तवन करा होय तो यह मेरे पति होयँ और मनोरथोंको सफल करें ॥ ३६ ॥ जिनके चरणकमलकी धूलि, लक्ष्मी, शिव और लोकपालों सहित ब्रह्माजी मस्तकपर धारण करते हैं वह अपनी करी हुई मर्यादाकी रक्षा करनेकी इच्छासे, धर्मका लोप होनेके समय लीलावतार धारण करने वाले भगवान् ईश्वर, मेरे ऊपर कैसे प्रसन्न होंगे ? वह केवल कृपा करके ही मुझे स्वीकार करें३७ इधर पूजा करे हुए तिन भगवान्से राजा नग्नजित् कहने लगा कि—हे नारायण ! हे जगत्पते ! आत्मानन्दसे ही परिपूर्ण ऐसे तुम्हारा, छोटासा मैं कौनसा कार्य करूँ? अर्थात् किस कार्यसे तुम्हारी प्रसन्नता होगी सो आज्ञा करिये ॥३८॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! उस समय जिन्होंने आसन आदि ग्रहण करा है ऐसे वह

सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच । नरेन्द्र याञ्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः । तथाऽपि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां न हि शुल्कदा वयम् ॥ ४० ॥ राजोवाच । कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः । गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किन्त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ । पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥ सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः । एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४३ ॥ यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन । वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ॥ ४४ ॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः । आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ४५ बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः । व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः । तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् । लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शंखभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः । नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दश धेनुसहस्राणि पारि-

भगवान् श्रीकृष्णजी, हर्षयुक्त होकर मेघकी गर्जनाकी समान गम्भीर वाणीमें मन्द-हास्यके साथ कहने लगे कि-॥ ३९ ॥ हे राजेन्द्र ! अपने धर्मसे बर्त्ताव करने वाले क्षत्रियको याचना करना, यद्यपि कवियोंने लोक और शास्त्रसे निषेध करा है तथापि तुम्हारा बन्धुत्वसे स्नेह होय इससे तुम्हारी कन्याकी हम तुम्हारे समीप याचना करते हैं ॥४०॥ राजाने कहा कि-हे नाथ ! तुमसे अधिक उत्तम इस लोक में कन्याका इच्छित दूसरा वर कौन है ? गुणोंके एक ही स्थान जिन तुम्हारे वक्षःस्थलमें लक्ष्मी निरन्तर वास करती है ॥ ४१ ॥ परन्तु हे यादवश्रेष्ठ ! वरको कन्या देय ऐसा उचित है इस कारण कन्याको तैसा वर प्राप्त होनेकी इच्छासे, पुरुषोंके बल आदिकी परीक्षा होनेके निमित्त हमने पहिले एक प्रतिज्ञा करली है ॥ ४२ ॥ हे वीर ! यह सात वृषभ बिना सिखाये हुए और दूसरोंके वशमें न होने वाले हैं, इन्होंने तो बहुतसे राजपुत्रोंका तिरस्कार करा है और उनके अङ्ग घायल कर डाले हैं ॥ ४३ ॥ इससे हे यदुनन्दन ! यदि तुम इनको वशमें करके नाथ डाल दो तो हे लक्ष्मीपते ! तुम ही मेरी कन्याके माननीय वर हो ॥ ४४ ॥ ऐसी प्रतिज्ञा सुन दुपट्टा कमरसे बाँध कर तिन प्रभु श्रीकृष्णजीने, लीलासे ही, अपने सात स्वरूप करके उन सात वृषभोंके एक साथ नाथ डाल दी ॥ ४५ ॥ और जिनका बल नष्ट तथा घमण्ड दूर हुआ है ऐसे उन वृषभोंको रस्सीसे बाँध कर, उन बँधे हुओंको श्रीकृष्णजीने, जैसे काठके बैलोंको बालक खैंचते हैं तैसे खैंचा ॥ ४६ ॥ फिर आश्चर्ययुक्त और प्रसन्न चित्त हुए तिस नग्नजित् राजाने, श्रीकृष्णजीको अपनी कन्या समर्पण करी तब अपने योग्य तिस सत्याको भगवान् श्रीकृष्णजीने विवाहकी रीतिसे स्वीकार करा ॥ ४७ ॥ उस समय राजरानियें भी, कन्याको प्रियपति श्रीकृष्णजी प्राप्त हुए ऐसा देख कर परमानन्दको प्राप्त हुईं और उस समय बड़ा भारी उत्साह हुआ ४८ शंख नगाडे और चौघडे बजने लगे, गान सहित बाजोंका प्रारम्भ हुआ, ब्राह्मणोंको

बर्हणद्विभुः । युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥ नव नागसहस्राणि नागाच्छतगुणान् रथान् । रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ॥ दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ । स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ५२ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् । भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा तान्स्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः । गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया । रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः । कैकयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥ ५६ ॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् । स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन् सहस्रशः । भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आशीर्वाद प्रारम्भ हुए, नगरमेंके पुरुष और स्त्रियोंने आनन्दयुक्त होकर वस्त्र, माला और आभूषण धारण करे ॥ ४९ ॥ उस समय देनेको समर्थ तिस राजा नग्नजित्ने दश सहस्र गौएँ दहेजमें दीं, तैसे ही जिनके कण्ठमें कठले पड़े हैं और जिन्होंने बहुमूल्यके वस्त्र पहिने हैं ऐसी तीन सहस्र दासियें दीं ५० नौ सहस्र हाथी और उनके सौगुणे (नौ लाख) रथ, उनके सौ गुणे (नौ करोड़) घोड़े और उनके सौ गुणे (नौ पद्म) सेवक दिये ॥ ५१ ॥ फिर जिसका हृदय स्नेहसे आर्द्र हुआ है ऐसे उस कोसलदेशके स्वामी राजा नग्नजित्ने, उस सत्या और श्रीकृष्ण इन दोनोंको, रथ पर बैठा कर बड़ी सेनाके साथ विदा करके भेज दिया ॥ ५२ ॥ यह श्रीकृष्णजीकी यात्रा सुन कर, यादवोंके और उन सात वृषभोंके पहिले पराजय करे हुए तथा उस पराजयको और श्रीकृष्णजीके उस कन्याके वरनेको न सहने वाले कितने ही राजाओंने कन्याको लेकर जाने वाले श्रीकृष्णजीको मार्गमें घेर लिया ॥ ५३ ॥ तब बाणोंके समूह छोडतेहुए उन राजाओंको, श्रीकृष्णजीका प्रिय करनेवाले गाण्डीवधारी अर्जुनसे तीखे बाण छुडवाकर जर्जर (बेहाल) करके जैसे साधारण हिरनोंको सिंह भगाता है तैसे भगा दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजी श्वसुरके दियेहुए उस सब दहेजको लेकर उस सत्याके सहित द्वारकामें आ, आनंदको प्राप्त हुए ॥ ५५ ॥ श्रुतकीर्त्ति नाम वाली जो पिताकी बहिन उसकी केकयदेशमें उत्पन्न हुई भद्रा नामवाली कन्या थी, उसको उसके संतर्दन आदि बांधवोंके देने पर श्रीकृष्णजीने वर लिया ॥ ५६ ॥ हे राजन् ! जैसे ही मद्रदेशके स्वामीकी शुभ-लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणा नाम वाली कन्या थी, जैसे इन्द्रादि देवताओंका तिरस्कार करके गरुडजीने सुधा (अमृत) हरण करी थी तैसे ही इकले ही श्रीकृष्णजीने, स्वयंवरमें सब राजाओंका तिरस्कार करके हरण करी ॥ ५७ ॥ इसप्रकार रुक्मिणी जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा इन आठ पटरानियोंका विवाह कहकर अब और भी स्त्रियोंका विवाह कहते हैं कि–हे राजन् ! और भी ऐसी ही श्रीकृष्णजीकी नरकासुरको मारकर उसके बन्दीघरमेंसे तिन श्रीकृष्णजीको ही लाईहुई सहस्रों सुन्दर स्त्रियें थीं ॥ ५८ ॥

राजोवाच । यथा हतो भगवता भौमो येन च ता स्त्रियः । निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । इन्द्रेण हृतछत्रेण हृतकुण्डलबन्धुना । हृतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् । सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ २ गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् । मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ३ गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः । चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथाऽसिना ॥ ४ ॥ शंखनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् । प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥ ५ ॥ पांचजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगांताशनिभीषणम् । मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगांतसूर्यानल-

अब आगे उनसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने भौमासुरको मारकर उसकी लाकर रक्खी हुई सहस्रों कन्या वरीं और स्वर्गसे पारिजातक वृक्ष लाये, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ राजाने कहा कि–जिस भौमासुरने वह स्त्रियें रोक रक्खी थीं उस भौमासुरको भगवान्‌ने जिस कारणसे और जिस प्रकार मारा हो वह शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णजीका चरित्र मुझसे कहो॥१॥श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन्! पहले भौमासुरने, वरुणका छत्र, इन्द्रकी माता अदितिके कुण्डल और मेरुपर्वतके ऊपरका इंद्रका मणिपर्वत नाम वाला स्थान यह सब बलात्कारसे छीन लिये थे इस कारण वह भौमासुरका दुष्ट वर्त्ताव सत्यभामाके घर आकर भगवान्से इंद्रने कहा तब उस सत्यभामाको कौतुक दिखानेके निमित्त श्रीकृष्णजीने उसके साथ+गरुडजीके ऊपर बैठ कर भौमासुरके प्राग्ज्योतिष नाम वाले नगर पर चढ़ाई करी ॥ २ ॥ गरुडजी के ऊपर बैठ कर जानेका कारण यह था कि–वह नगर सब ओरसे पर्वतोंके दुर्गों (किलों) से, शस्त्रोंसे किलोंके और जल, अग्नि तथा वायुके कारण प्रवेश करनेको कठिन था और आने वाले शत्रुओंको खेंचने वाले तथा जिनका काटना कठिन है ऐसे सहस्रों पाशोंसे चारों ओर घिरा हुआ था ॥३॥ भगवान्‌ने तहाँ जाकर गदासे पर्वतोंका चूरा २ कर दिया, बाण छोड कर शस्त्रोंके किलेको तोड डाला, चक्रसे अग्नि, जल और वायुको नष्ट प्राय कर दिया तथा तरवारसे मुर दैत्यका पाश तोड डाला ॥ ४ ॥ शंखके नादसे प्रवेश करतेमें रोकने वाले यंत्रोंको और मुरदैत्य आदि शूरोंके हृदयोंको विदीर्ण करा और उन गदाधारी श्रीकृष्णजीने, बडी भारी गदासे चारदीवारीको तोड डाला ॥ ५ ॥ इसप्रमय प्रलयकालके वज्रपातके शब्दकी समान भयङ्कर उस पाँचजन्य शंखके शब्दको, गढ़हेमेंके जलमें सोया हुआ पाँच शिरवाला वह मुरदैत्य तहाँसे उठा ॥ ६ ॥ और प्रलयकालके सूर्याग्निकी समान कांतिवान्

+भौमासुर भूमिका पुत्र था, और तेरी आज्ञासे ही तेरे पुत्रको मारूँगा ऐसा वरदान देदिया था,उसके सत्य करनेके निमित्त सत्यभामा भी भूमिका अंश थी इसकारण उसको साथ लेकर श्रीकृष्णजीने गमन करा, अथवा नारदजीका लाया हुआ पारिजातका फूल रुक्मिणीको देनेपर रूठी हुई सत्यभामाको समझानेके निमित्त श्रीकृष्णजीने कहा कि–तुझे पारिजातक वृक्ष ही लाये देता हूँ सो पारिजातक वृक्षभी लानेके निमित्त उसको साथ लेगये।

रोचिरुल्बणः। ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥ आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पंचभिः। सरोदसी सर्वदिशो ऽम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥८॥ तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा। मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा। उद्यम्य बाहूनभि धावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोद्रिरिवेन्द्रतेजसा। तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः। पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन् धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः। तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥ तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः। स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरा-

---

भयंकर और कठिनतासे देखने योग्य तिस दैत्यने, त्रिशूल उठा कर अपने पाँच मुखोंसे मानो त्रिलोकीको निगले ही लेता है ऐसे अपने मुखोंको फैला कर, जैसे सर्प गरुडको मारनेके निमित्त दौड़ता है तैसे उन श्रीकृष्णजीके मारनेको दौड़ा ।७। और उसने अपने त्रिशूलको घर २ घुमाकर वेगके साथ गरुडजीके ऊपर फेंका और अपने पाँचों मुखोंसे गर्ज कर तिस शब्दके द्वारा स्वर्ग, भूमि, आकाश और सब दिशाओंको भर कर ब्रह्मकटाहको भी व्याप्त कर दिया ॥ ८ ॥ वह त्रिशूल गरुडजी के मारनेके निमित्त आरहा है ऐसा देख कर श्रीकृष्णजीने, दो बाणोंसे उसके तीन टुकड़े कर डाले और उस मुरदैत्यके भी पाँचों मुखोंमें पाँच बाणोंसे प्रहार करा तब तिस मुरदैत्यने भी क्रोधसे श्रीकृष्णजीके ऊपर गदा छोडी ॥ ९ ॥ युद्धमें वह उस मुरदैत्यकी गदाके आने पर श्रीकृष्णजीने अपनी गदासे उसके सहस्रों टुकड़े कर-डाले फिर भुजा फैला कर सामनेको भाग कर आने वाले उस मुरदैत्यके पाँचों ही शिर श्रीकृष्णजीने लीला करके चक्रसे काट गिराये ॥ १० ॥ तब शिर कट जानेके कारण प्राणहीन हुआ वह मुरदैत्य, जैसे इंद्रके वज्रसे जिसके शिखर टूट गये हैं ऐसा पर्वत भूमि पर गिर पडता है तैसे ही गढ़ईमेंके जलमें गिरपडा फिर उसके सात पुत्र पिताके वधसे दुःखित और बदला लेनेके निमित्त क्रोध युक्त होकर युद्ध करनेको उद्यत हुए ॥ ११ ॥ उनके नाम-ताम्र, अन्तरिक्ष, पवन, विभावसु, वसु, नभस्वान्, और सातवाँ अरुण यह थे, वह भौमासुरके आज्ञा दिये हुए, आयुध लेकर युद्धमें पीठ नामक सेनापतिको आगे करके नगरसे निकले ॥ १२ ॥ उन प्रधानोंने संमुख आकर श्रीकृष्णजीके ऊपर बाण, तरवार, गदा, शक्ति, रिष्टि और शूल यह आयुध छोड़े तब अमोघपराक्रमी श्रीकृष्णजीने, अपने बाणोंसे उनके शस्त्रोंके समूहोंको काटकर तिलकी समान टुकड़े२ करदिये ॥ १३ ॥ और मस्तक, जंघा, हाथ, पैर तथा जिनके कवच तोड़ डाले हैं ऐसे उन पीठ आदि दैत्योंको यमलोक भेज दिया तब मेरे सेनापति श्रीकृष्णजीके चक्रसे और बाणोंसे मरणको

सुतः । निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा । कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः १५ तद्भौमसैन्यं भगवान् गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः । निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६ ॥ यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह । हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् । गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्त्ता नरको युध्ययुध्यत । दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः । नाकंपत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥ शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः । तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः । अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ २१ ॥ सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समु-

प्राप्त होगये ऐसा देख कर, इस दशाको न सहने वाला भूमिका पुत्र नरकासुर, गण्डस्थलमेंसे मद टपकाने वाले और ऐरावतके कुलमें उत्पन्न हुए हाथियोंको साथमें लेकर युद्ध करनेको चला ॥ १४ ॥ तब उस भौमासुरने, जैसे सूर्यके ऊपर बिजली सहित काला मेघ दीखे तैसे गरुड़जीके ऊपर सत्यभामा सहित बैठे हुए श्रीकृष्णजीको देख कर उनके ऊपर शतघ्नी नाम वाली शक्ति छोड़ी, तैसे ही उस भौमासुरके योधाओंने भी अपने २ आयुधोंसे श्रीकृष्णजीके ऊपर एक साथ प्रहार करा ॥ १५ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णजीने, चित्र विचित्र परों वाले तीखे बाणोंसे उस भौमासुरकी सेनाको, जिसके भुजा, जंघा, कंठ, और देह कट गये हैं तथा जिसमें हाथी और घोड़े मरणको प्राप्त हुए हैं ऐसी करा ॥ १६ ॥ हे राजन्! उस सेनाके मारे जानेसे पहिले ही जिन योधाओंने शस्त्र अस्त्र छोड़ दिये थे वह, श्रीकृष्णजीने, तीन २ तीखे बाणोंसे एक २ इस प्रकार सब ही काट डाले अर्थात् उनके छोड़ेहुए शस्त्र अस्त्रोंके आकर पहुँचनेसे पहिले ही उस सब सेनाको मारकर फिर वह शस्त्र अस्त्र, एक २ के ऊपर तीन २ बाण छोड़ कर काट डाले यह आश्चर्य है ॥ १७ ॥ वह भगवान्, अपने पंखोंसे हाथियोंको मारने वाले गरुड़जीके ऊपर स्थित थे सो उस युद्धके समय गरुड़जीने, अपनी चोंच पंख और नखोंसे प्रहार करा तो कितने ही हाथी, अतिपीडित होनेके कारण नगरमेंको भाग गये; उससमय इकला नरकासुर ही रणभूमिमें युद्ध करने लगा, तिस भौमासुरने गरुड़जीने पीडित करके मेरी सेनाको भगा दिया है ऐसा देख कर जिस शक्तिसे वज्रको भी पीछेको लौटा दिया था उस शक्तिसे गरुड़जीके ऊपर प्रहार करा उससे ताडन करे हुए वह गरुड़जी, जैसे मालासे ताडना करा हुआ हाथी हिलता भी नहीं है तैसे हिले भी नहीं ॥ १८-२० ॥ इस प्रकार गरुड़जीके ऊपर जिसका उद्योग व्यर्थ हुआ है तिस भौमासुरने श्रीकृष्णजीको मारनेके निमित्त त्रिशूल हाथमें लिया, उसका प्रहार करनेसे पहिले ही श्रीहरिने, तीखी धार वाले चक्रसे हाथी पर बैठे हुए तिस नरकासुरका शिर काट दिया ॥ २१ ॥ तब कुण्डलों सहित, सुन्दर किरीट और

ज्ज्वलत् । हा हेति साध्विति ऋषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे । सवैजयन्त्या वनमालयाऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् । प्रांजलिः प्रणता राजन् भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच । नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर । भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पंकजनाभाय नमः पंकजमालिने । नमः पंकजनेत्राय नमस्ते पंकजांघ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे । पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः॥२७ अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । परावरात्मन् भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः । स्थानाय

भूषणोंसे युक्त दमकता हुआ वह नरकासुरका शिर, भूमि पर गिरने पर शोभित होने लगा, उस समय नरकासुरके सम्बन्धी पुरुषोंने, हाहाकार शब्दका उच्चारण करा, ऋषियोंने 'साधु साधु' इस शब्दका उच्चारण करा, श्रेष्ठ देवता तो श्रीकृष्णजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर नरकासुरकी माता मूर्त्ति-धारिणी भूमिने श्रीकृष्णजीके समीप आकर उनको, रत्न मिले उत्तम फूलोंसे गुथी हुई वनमाला सहित, तपाए हुए सुवर्ण पर कुन्दन करके बैठाए हुए रत्नोंसे दमकते हुए अदितिके कुण्डल, वरुणका छत्र और मेरु पर्वत परके मणिपर्वतरूप स्थानका अधिकार यह सब अर्पण करे ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! हाथ जोड़ कर मस्तक नमाये हुए वह भूमि, भक्तिसे एकाग्र हुई बुद्धि करके, ब्रह्मादिकोंसे पूजित तिन श्रीकृष्णजीकी स्तुति करने लगी ॥ २४ ॥ भूमिने कहा कि–हे देवदेवेश ! हे शंखचक्रगदाधर ! तुम्हें नमस्कार हो, हे परमात्मन् ! भक्तोंकी इच्छाके अनुसार स्वरूप धारण करने वाले तुम्हें नमस्कार हो ॥ २५ ॥ अब जिस मन्त्रसे पहिले कुन्तीके ऊपर श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए थे तिस मन्त्रसे नमस्कार करती है–जिनकी नाभिमें जगत्का कारणरूप कमल है उनको नमस्कार हो, जिनके कण्ठमें सत्कीर्त्तिमय कमलोंकी माला है उनको नमस्कार हो, जिनके नेत्र कमलकी समान तापको शान्त करने वाले हैं तिनको नमस्कार हो, जिनके चरण कमलकी समान सुखसे सेवन करने योग्य हैं ऐसे तुम्हें नमस्कार हो ॥ २६ ॥ परम ऐश्वर्यसे युक्त, सकल प्राणियोंके आश्रय और व्यापक तुम कारणको नमस्कार हो, जगद्रूप, सर्व कार्योंसे पहिले ही विद्यमान, जगत्की कारण जो माया तिसके भी कारण और पूर्णज्ञानरूप तुम कारणको नमस्कार हो ॥ २७ ॥ स्वयं जन्मरहित होकर भी जगत्को उत्पन्न करने वाले, ब्रह्मरूप और अनन्तशक्ति तुम कारणको नमस्कार हो; हे स्थावर जङ्गमोंके उत्पन्न करने वाले ! हे पृथिवी आदि पंचभूतोंको उत्पन्न करने वाले ! हे परमात्मन् ! तुम्हें नमस्कार हो ॥ २८ ॥ जगत्की उत्पत्ति आदिके कारण जो गुण, तिनका कारण जो प्रधान (प्रकृति) तिसका क्षोभित करने वाला जो पुरुष और तहाँ निमित्त काल प्रसिद्ध है मैं इसमें कौन हूँ ? ऐसा कहो तो हे प्रभो ! जगत्पते ! तुम ही सृष्टि करनेकी इच्छा करते हो तब सृष्टि करनेमें उन्मुख हुए

सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥ २९ ॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि । कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपंकजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः । तत्पालयैनं कुरु हस्तपंकजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच । इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान् भक्तिनम्रया । दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥ तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् । भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः । मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् । इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥ ताः प्राहिणोद् द्वारवतीं सुमृष्टविरजोम्बराः । नरयानैर्महाकोशान् रथाश्वान् द्रविणं महत् ३६ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः । पांडुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ।३७।

रजोगुणको धारण करते हो अर्थात् रजोगुण प्रधान ब्रह्मारूप होकर सृष्टिको उत्पन्न करते हो तथा जगत्का नाश करनेमें उत्कट तमोगुणको धारण करते हो तब तमोगुणप्रधान रुद्ररूप होकर संहार करते हो तैसे ही जगत्का पालन करनेके निमित्त उत्कट सत्त्वगुणको स्वीकार करते हो तब सत्त्वगुणप्रधान विष्णु आदिरूप होकर पालन करते हो, इतना करके भी तुम उन गुणोंसे लिप्त नहीं होते हो, तैसे ही तुम काल, प्रधान और पुरुषरूप होकर भी वास्तवमें उनसे पृथक् ही हो ॥ २९ ॥ हे भगवन् ! मैं भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द-स्पर्श रूप-रस-गन्ध, इंद्रियोंके देवता, मन, चक्षु आदि इंद्रियें, अहंकार और महत्तत्त्व (बुद्धि) इस प्रकारका जो चराचर जगत्, अद्वितीय ब्रह्मरूप तुम्हारे विषैं प्रतीत होता है सो यह प्राणियोंका भ्रम (बुद्धिमोह ही) है ॥ ३० ॥ हे शरणागतोंके दुःखोंका नाश करने वाले ! यह भगदत्त नाम वाला तिस भौमासुरका पुत्र, मैंने तुम्हारे चरणोंमें डाला है परन्तु यह भय मान रहा है इस कारण तुम इसकी रक्षा करो और सकल दोषोंको दूर करने वाला अपना कर कमल इसके मस्तक पर स्थापन करो ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भक्तिसे नम्र हुई भूमिकी वाणियोंसे प्रार्थना करेहुए भगवान् श्रीकृष्णजी भगदत्तको अभय देकर सकल भोगसम्पदाओंसे युक्त तिस भौमासुरके घरमें प्रवेश करा ॥ ३२ ॥ तहाँ पराक्रम करके, भौमासुरकी राजाओंके यहाँसे और देवता सिद्ध आदिकोंके यहाँसे लाई हुई सोलह सहस्र एक सौ कन्या थीं उनको भगवान्ने देखा ॥ ३३ ॥ तब दैवने अपने समीप पहुँचाये हुए और घरमें आये हुए मनुष्यश्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजीको देख कर अत्यन्त मोहित हुईं उन स्त्रियोंने, अतिप्रिय तिन पतिको मनसे वर लिया ॥ ३४ ॥ यह मेरे निमित्त पति हों, ऐसी मेरी इच्छाको ब्रह्माजी सत्य करें ऐसे अभिप्रायसे तिन सब कन्याओंने श्रीकृष्णजीमें अपना हृदय स्थापन करा ॥३५॥ तदनन्तर स्नान करी हुई और स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवालीं उन कन्याओंको भगवान्ने पालकियोंमें बिठवा कर द्वारकाको भेज दिया ॥ ३६ ॥ और श्रीकृष्णजीने, जिनके चार २ दाँत हैं और

गत्वा सुरेंद्रभवनं दत्वाऽदित्यै च कुण्डले। पूजितस्त्रिदशेंद्रेण सहेंद्राण्या च सप्रियः नोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति। आरोप्य सेंद्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥३९॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः। अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गंधासवलंपटाः ॥ ४० ॥ ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम्। सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमोधिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥ अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः। यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः॥४२ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः। रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ ॥ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम्। भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासाव-

जो अतिवेगवान् श्वेतवर्णके चार दांतवाले और ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए हैं ऐसे चौंसठ हाथी भेजे॥३७॥ तदनन्तर भी कृष्णजीने, इन्द्रके घर जाकर अदितिको कुण्डल दिये तब इन्द्राणी सहित इंद्रने, सत्यभामा सहित तिन श्रीकृष्णजीकी पूजा करी ॥ ३८ ॥ फिर लौटकर आतेमें सत्यभामाके स्मरण दिलाने पर श्रीकृष्णजीने तहाँके पारिजातक नामवाले वृक्षको उखाडकर गरुड़जीके ऊपर रख लिया और इन्द्रसहित सकल देवताओंको जीतकर वह वृक्ष द्वारकामें लाये ॥३९॥ सत्यभामाके मन्दिरके समीपके बागको अतिशोभा देनेवाला वह पारिजातक वृक्ष उस बाग में ही लगादिया, उसकी सुगन्धके मदके लोभी भौंरे स्वर्गसे उसके पीछे २ ही द्वारकामें आये ॥ ४० ॥ 'इन्द्रसहित सब देवताओंको जीतकर' ऐसा जो कहा तिस से इन्द्रका और श्रीकृष्णजीका संग्राम होना प्रतीत होता है, सो अपना मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णजीके साथ इंद्रका संग्राम कैसे होगया ? इस शंकाको दूर करनेके निमित्त कहते हैं कि-जिस इंद्रने पहिले अपना मस्तक नमाकर किरीटके अग्रभागोंसे चरणोंको स्पर्श करके भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले तिन श्रीकृष्णजी की प्रार्थना करी पीछे अपना कार्यसिद्ध होजाने पर वही इंद्र इन दुःसाध्य कर्म करनेवाले स्वामीके साथ विरोध करता है, अहो ! देवताओंको भी ऐसा बडा क्रोध तब तो धनवान्पनेको धिक्कार है ॥ ४१ ॥ फिर द्वारकामें जानेके अनन्तर एक ही मुहूर्त्तमें, जितनी (१६१००) जो स्त्रियें थीं उतने ही घरोंमें उतने ही रूप धारण करने वाले और उतने ही देवकी आदि बान्धवोंसे युक्त श्रीकृष्णजीने उन स्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विवाह करलिया॥४२॥ भोगके पदार्थोंकी संपदासे जिनके समान वा जिनसे अधिक उत्तम दूसरे किसीके भी घर नहीं हैं ऐसी उन सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियोंके घरोंमें निरन्तर रहनेवाले, अतर्क्य कार्य करने वाले और निजानन्दसे परिपूर्ण वह श्रीकृष्णजी, जैसे कोई साधारण पुरुष, गृहस्थ धर्मोंको करता हुआ स्त्रियोंसे रमण करता है तैसे लक्ष्मीकी अंशरूप तिन स्त्रियोंके साथ रमण करने लगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार, ब्रह्मादिक, देवता भी जिनकी प्राप्ति होनेका मार्ग नहीं जानते हैं वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी, विवाहके सम्बन्धसे पति प्राप्त होनेपर प्रेमहास्य सहित चितवनके साथ जो नया २ समागम तिसमें जो विनोद

लोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमण-वीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पारिजातकहरणो नरकवधो नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

श्रीशुक उवाच॥कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् । पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥१॥ यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः। स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलंबिना। विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते । जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥४॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना । धूपैरगुरुजै राजन् जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यंके

के भाषण उनमें जिनको लज्जा प्राप्त होरही है ऐसी वह स्त्रियें, निरन्तर बढ़ने वाली प्रीतिसे उनका सेवन करने लगीं ॥ ४४ ॥ जिनकी सैंकड़ों दासियें हैं ऐसी वह स्त्रियें, बाहरसे आये हुए श्रीकृष्णजीको देख कर सन्मुख जाना आसन देना, अर्घ्य आदिसे पूजन करना, चरण धोना, ताम्बूल देना, चरणोंकी सेवा करके श्रम दूर करना, चँवर पंखे आदिसे वायु करना, गन्ध पुष्प आदि अर्पण करना, केशों को सुगन्धित तेल लगा कर काढ़ना,शय्या स्नानका जल और भक्ष्यभोज्यके पदार्थ समर्पण करना इत्यादि प्रकारोंसे उन प्रभु पतिका आप ही दासकार्य करती थीं४५ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकोनषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥

अब आगे साठवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने प्रेमके कलहमें विनोदके वाक्योंसे रुक्मिणीको क्रोधित करके फिर उसको समझाया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! एक समय मन्दिरमें अपने पलङ्ग पर सुखसे बैठेहुए जगद्गुरु श्रीकृष्ण पतिकी, सखियोंसे घिरीहुई रुक्मिणी पंखेसे पवन करके सेवा करने लगी ॥ १ ॥ अब उस रुक्मिणीका श्रीकृष्णजीके विषैं परम प्रेम कहने के निमित्त सत्य स्वरूपका स्मरण कराते हैं कि-जो ईश्वर लीलामात्रसे इस जगत् को उत्पन्न करता है, पालन करता है और संहार करता है वही आप जन्म रहित होकर भी अपनी रची धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेके निमित्त यादवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥ २ ॥ वह श्रीकृष्णजीका मन्दिर चमकीले मोतियोंके गुच्छे लगी हुई झालरोंकी कपडछत्तसे शोभायमान और रत्नमय दीपकोंसे प्रकाशवान् था ॥ ३ ॥ मल्लिका की मालाओंसे तथा और भी अनेकों प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त और भ्रमरोंके झुण्डसे गुञ्जारहा था,झरोखोंके छिद्रोंमेंको भीतर आईहुई चंद्रमाकी स्वच्छ किरणों से शोभायमान था ॥ ४ ॥ आरामबागमें शोभायमान पारिजातक वृक्षसे आये हुए सुगन्धकारी वायुसे तैसे ही झरोखोंमेंको बाहर जाने वाले भीतरके अगरके धुआँसे शोभायमान था ॥ ५ ॥ हे राजन् ! ऐसे उन प्रसिद्ध घरके भीतर पलङ्ग पर बिछाये हुए दूधके झागोंकी समान कोमल और स्वेतउत्तम गद्दीपर आनन्दसे बैठेहुए जगद्

कशिपूत्तमे। उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादाय रत्नदंडं सखीकरात्। तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता। वस्त्रान्तगूढकुचकुंकुमशोणहारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकांच्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा। प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥९॥ श्रीभगवानुवाच। राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः। महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥ १० ॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन् स्मरदुर्मदान्। दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥११॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रु: समुद्रं शरणं गतान्। बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम्। आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचन-

के नियन्ता पतिकी रुक्मिणी सेवा करने लगी ॥ ६ ॥ अपनी सखीके हाथमेंसे रत्न जड़े दण्डे वाली चौंरी लेकर तिससे जगत्पालक अपने पतिकी पवन करके सेवा करने लगी ॥ ७ ॥ श्रीकृष्णजीके समीपमें जिसके हाथके पहुँचेमें कंकण, रत्न जड़ी मुद्रिका और चँवरी है, जिसके चरणोंमें मणिमय पायलोंकी झनकार होरही है और जो आपही अत्यन्त प्रकाशवान् होरही है ऐसी वह रुक्मिणी; मणिजड़े नूपुरोंसे और मोहरोंके कण्ठोंसे ढके हुए स्तनों पर लगे हुए केसरसे लाल २ हुए हारकी कान्तिसे और कमरमें धारण करी हुई बहुत मूल्यकी मेखलासे विशेष शोभायमान होने लगी ॥ ८ ॥ जो लक्ष्मी ही मनुष्यावतार धारण करनेवाले भगवानके योग्य अपना स्वरूप धारण करती है, जो कभी भी भगवान्से वियोगको नहीं प्राप्त होती और पीठपर बिखरेहुए केश, दोनों ओर कानोंमें मकराकृति–कुण्डल आगे कण्ठमें धारण करे हुए पचलड़ा आदि आभूषण, इस प्रकार चारों ओरसे शोभायमान, जिसके मुख पर मन्दहास्यरूप अमृत विलास कर रहा है ऐसी उस मूर्त्तिधारिणी लक्ष्मी को देख कर प्रसन्न हुए भगवान् श्रीकृष्णजी कुछ हँस कर बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् कहने लगे कि—हे राजपुत्रि ! लोकपालोंकी समान ऐश्वर्योंसे युक्त महापराक्रमी, धनवान् और सुंदरता, उदारता तथा बलसे उत्तम होनेके कारण वरनेयोग्य राजाओं ने पहिले तेरी इच्छा करी है और तेरे भ्राता तथा पिताने भी उनको ही तू देदी है इस कारण याचना करने वाले और कामदेवसे दुर्मद हुए (कामातुर पुरुष, स्त्रियों के सकल मनोरथोंको पूर्ण करते हैं) और अपनेआप आयेहुए उन शिशुपाल आदि राजाओंको छोड़ कर हम अयोग्योंको भला तैने काहेको वरा ? ॥ १० ॥ ११ ॥ हे सुन्दर भ्रुकुटी वाली ! हम तो प्रायः जरासन्ध आदि राजाओंसे डरने वाले, समुद्र की शरण गये हुए (समुद्रके टापूमें रहने वाले) बलवान् राजाओंसे वैर बाँधलेने वाले और ययातिके शापसे राज्यके अधिकारसे रहितहैं ॥ १२ ॥ हे सुभ्रु ! जिन का आचार स्पष्ट रीतिसे समझमें नहीं आता ऐसे और स्त्रियोंकी इच्छाके अनुसार वर्त्ताव न करने वाले पुरुषोंके मार्गको प्राप्त हुई स्त्रियें प्रायः क्लेश पाती हैं ॥ १३ ॥

जनप्रियाः। तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४ ॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः। तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया। वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥ अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम्। येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासंधदन्तवक्त्रादयो नृपाः। मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदांधानां दृप्तानां स्मयनुत्तये। आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः। आत्मलब्ध्यास्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच। एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव। मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम्। आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखा-

हम निरन्तर धन आदि सम्पदारहित और दरिद्री पुरुषोंको प्रिय अथवा दरिद्री पुरुषोंसे प्रेम रखनेवाले हैं इसकारण हे सुमध्यमे! धनादि सम्पदायुक्त पुरुष,प्रायः मेरी सेवा नहीं करते हैं यह निश्चय है ॥१४॥ जिन दोनों पुरुषोंका परस्परके योग्य जाति,कुल,ऐश्वर्य,स्वरुप,सुन्दरता और धनकी प्राप्ति यह समान होते हैं उनका ही परस्पर विवाह और मित्रता योग्य होते हैं,उत्तम और अधमोंके परस्पर विवाह और मित्रता कभी भी योग्य नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ हे रुक्मिणि! इस कही हुई हमारी अयोग्यताको न जान कर दूरका विचार न करने वाली तूने, नारदादि भिक्षुकोंसे व्यर्थ स्तुति करे हुए परन्तु गुणहीन हमें व्यर्थ वर लिया है ॥ १६ ॥ इसकारण अब भी, जिसका सेवन करके इसलोकमें और परलोकमें तू अपने इच्छित पदार्थोंको पावेगी तिस अपने योग्य किसी क्षत्रियको स्वीकार कर ॥ १७ ॥ यदि कहे कि— तुम मुझे क्यों लाये थे? तो सुन-शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र आदि राजे, तथा तेरा बड़ा भ्राता रुक्मी यह सब मुझसे द्वेष करते हैं ॥ १८ ॥ इसकारण पराक्रमसे मदांध और घमण्डी उन शिशुपाल आदिकोंका गर्व दूर करनेके निमित्त दुष्टोंका तेज हरने वाला मैं तुझे लाया हूँ ॥ १९ ॥ परन्तु हम, निजानन्दका अनुभव मिलनेसे पूर्णमनोरथ होनेके कारण स्त्री, पुत्र और सम्पत्तियोंकी इच्छा नहीं करते हैं, किन्तु जैसे उत्तम दीपककी ज्योति केवल प्रकाश करके साक्षीमात्र होती है तैसे ही हम साक्षिमात्र होकर सकल क्रियाओंसे रहित तथा देह और घरोंमें भी निरं-तर आसक्तिरहित रहते हैं ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इसप्रकार, वियोग न होनेके कारण, मैं ही प्रिय स्त्री हूँ ऐसा मान कर घमण्डमें हुई तिस रुक्मिणीसे, उसका गर्व दूर करने वाले भगवान् ऐसा कह कर मौन होगये ॥ २१ ॥ ब्रह्मादिकों के पालक अपने पतिके इस प्रकारके पहिले कभी भी न सुनेहुए तिस अप्रियवचन को सुन कर 'भगवान् मुझे त्याग देंगे' ऐसी चिन्तासे डरी हुई इस कारण ही जिस के हृदयमें कपकपी उत्पन्न हुई है और रोनेवाली वह रुक्मिणीदेवी उससमय अपार चिन्ताको प्राप्त हुई ॥ २२ ॥ अब चिन्ताके लक्षण कहते हैं कि-उस समय, जिसकी

रुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः । आसिञ्चती कुंकुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥ तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात । देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन् रंभेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥ तद् दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् । हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकंपत ॥ २५ ॥ पर्यंकादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः । केशान् समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा । आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥ सांत्वयामास सांत्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः । हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् । त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥ मुखं च प्रेमसंरंभस्फुरिताधरमीक्षितुम् । कटाक्षेपारुणापांग सुन्दर-

---

कांति नखोंके कारण लाली लिये हुए है ऐसे अपने कमलसमान परमकोमल चरणसे (बायें चरणके अँगूठेसे) भूमिको कुरेदने वाली तथा काजलसे काले हुए दुःखके आँसुओंसे केशर लगे हुए स्तनोंको सींचने वाली और अतिदुःखसे जिसका कण्ठ रुक गया है ऐसी वह रुक्मिणी, नीचेको मुख करके मौन होरही ॥ २३ ॥ तब अप्रिय भाषणको सुननेसे होने वाले अतिदुःख, त्यागनेकी सम्भावनासे उत्पन्न हुए भय और अब आनेको कैसे होयगी ! ऐसे प्राप्त हुए शोकके कारण जिसकी बुद्धि नष्ट हुई है ऐसी तिस रुक्मिणीके, उस समयके दुःखसे होने वाली दुर्बलताके कारण जिसमेंसे कङ्कन नीचे निकल पड़ा है ऐसे हाथमेंसे चँवरी गिर पडी और विकलबुद्धि हुई तिसका शरीर भी एकाएकी मूर्छित होकर, जैसे पवनका उखाड़ा हुआ केलेका खम्भ गिर पडता है तैसे ही केशोंका जूड़ा खुलनेके कारण उसमेंके केश अस्तव्यस्त होकर भूमिपर गिर पड़ा ॥ २४ ॥ तब उस गिरनेको, और विनोद (चौल) की गम्भीरताको न जानने वाली रुक्मिणीका अपनेमें प्रेमबन्धन देख कर करुणायुक्त हुए तिन भगवान् श्रीकृष्णजीने, उसके ऊपर कृपा करी ॥ २५ ॥ उसको उठाना, आलिङ्गन करना, और मुख पूछना आदि कार्य एक साथ करनेके निमित्त चतुर्भुज रूप हुए भगवान् श्रीकृष्णजीने, शीघ्रतासे पलङ्गपरसे नीचे उतरकर पड़ी हुई उसको उठाया और उसके केशोंको बाँध कर कमलकी समान कोमल हाथसे उसका मुख पूछा ॥ २६ ॥ तदनन्तर आँसुओंकी बूँदोंसे शोभायमान उसके नेत्र पोंछ कर तथा शोकके आँसुओंसे भीगे हुए उसके स्तनोंको पोंछ कर, बाहुसे उसको आलिंगन करके हे राजन् ! समझानेका उपाय जानने वाले तिन भक्तपालक प्रभु श्रीकृष्णजीने, हास्यकी बातोंसे चित्तमें भ्रमको तथा दीनदशाको प्राप्त हुई और हास्य करनेके अयोग्य तिस दूसरेका ध्यान न करने वाली पतिव्रता रुक्मिणीको कृपा करके समझाया ॥ २७ ॥ २८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे रुक्मिणि ! तू मेरे ऊपर, 'बिना कारण दुःख दिया ऐसा' दोष न लगा, क्योंकि–तू मेरे ही आश्रयसे रहने वाली है ऐसा मैं जानता हूँ तथापि हे सुन्दरि ! मेरी बातोंसे रूठी हुई तू क्या कहेगी, तिसको सुननेकी इच्छा करने वाले मैंने हास्यमें यह ऐसा भाषण करा है,

भ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् । यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच । सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसांत्विता । ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् । सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापांगेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच । नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः । क्व स्वेमहिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलंभनमात्र आत्मा । नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽधम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां

सत्य नहीं ॥ २९ ॥ और जहाँ तेरा अधर ओठ प्रेमके कोपसे फड़क रहा है, जहाँ तेरे तिरछी दृष्टिसे युक्त और लाल २ हुए नेत्र हैं तथा जहाँ सुन्दर (तिरछा) भ्रुकुटिका तट है ऐसा तेरा मुख देखनेके निमित्त मैंने यह भाषण करा है ॥ ३० ॥ यदि कहे कि-कलहमें क्या कौतुक वा सुख है ? तो-हे डरपोक स्त्रि ! स्त्रीके साथ हास्य चौलके भाषणोंसे समय बिताना ही दुःखरूप घरमें रहने वाले गृहस्थोंको परमलाभ (सुखरूप फल देनेवाला) है शेष सब दुःख ही है ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्की समझाई हुई उस रुक्मिणीने, यह भगवान्का विनोदसे करा हुआ भाषण है ऐसा जान कर, 'मुझे पति जाने त्याग देंगे क्या !' ऐसे हृदयके भयको त्याग दिया ॥ ३२ ॥ और हे राजन् ! फिर लज्जा युक्त हास्यके कारण सुन्दर प्रेमयुक्त कटाक्षसे भगवान्के ऐश्वर्य युक्त मुखको देखने वाली वह रुक्मिणी, पुरुषोंमें श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजीसे कहने लगी ॥ ३३ ॥ तिसमें श्रीकृष्णजीने जो कहा था कि-समान भावरहित हमें तूने क्यों वरा ? सो समानता न होना ठीक ही है ऐसा दिखानेको कहती है कि-हे कमलनेत्र ! व्यापक और ऐश्वर्य आदि गुणोंसे परिपूर्ण तुम्हारे समान मैं नहीं हूँ ऐसा जो तुमने कहा सो सर्वथा सत्य है, देखो-निजानन्दस्वरूपमें रमण करने वाले वैराग्य आदि गुणोंसे पूर्ण और ब्रह्मादिकोंके नियन्ता तुम कहाँ ? और सत्वरजतमोगुणका स्वभाववाली और सकाम पुरुषोंसे आराधना करी हुई मैं कहाँ ? अर्थात् तुममें और मुझमें बहुत ही अन्तर है ॥३४॥ अब, 'राजाओंसे डरनेवाले और समुद्रकी शरण गये हुए हैं' ऐसा जो कहा तिसके विषयमें कहती है कि-हे उरुक्रम ! (अपने चरणसे त्रिलोकीको व्याप्त करने वाले), शब्दादि गुण ही, प्रकाश पाने वाले होनेके कारण राजे हुए उनसे भयभीत होनेके कारण ही मानो समुद्रकी समान अथाह हृदयके भीतर चैतन्यघनरूप आत्मा तुम शयन करते हो (निश्चलता करके प्रकाश पाते हो) अब, बलवान् पुरुषोंके साथ वैर बाँध लेनेवाले हम हैं' ऐसा जो कहा सो भी सत्य ही है, क्योंकि-बहिर्मुख हुई इन्द्रियोंके समूहके साथ अथवा जिनकी इन्द्रियोंका समूह विषयोंमें आसक्त है तिनके साथ तुम सदा कलह करने वाले हो अर्थात् उनमें तुम्हारी प्रीति नहीं होती है, अब, 'हम राज्यासनको त्यागे हुए हैं' ऐसा जो कहा सो भी योग्य ही है, क्योंकि-राजाका आसन अविवेकयुक्त होनेके कारण गाढ़

वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् । यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवे-हितमथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥ निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः । न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतांधा प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥३७॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वांछया सुमतयो विसृजंति कृत्स्नम् । तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥३८॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि । हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ता-

अन्धकारयुक्त ही है उसको तुम्हारे सेवकोंने ही त्याग दिया है तो फिर तुमने त्याग दिया इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ३५ ॥ अब, 'जिनका मार्ग स्पष्ट नहीं और लोकमार्गके अनुसार वर्त्ताव न करने वाले' ऐसा जो कहा सो भी ठीक ही है, क्यों कि-तुम्हारे चरणकमलके मकरन्दका (परमानन्दरूपरसका) सेवन करने वाले मुनियोंका भी मार्ग स्पष्टरूपसे समझमें नहीं आता है और वह मनुष्यके आकार वाले पशुओंको वास्तवमें तर्कना करनेको भी अशक्य है इस कारण तुम्हारा मार्ग स्पष्ट नहीं समझा जाता इसका तो कहना ही क्या ? और हे व्यापक ! जो तुम्हारे अनुगामी (भक्त) पुरुष हैं उनका ही करना अलौकिक सा है फिर तुम ईश्वरका करना अलौकिक है इसका क्या कहना ? ॥३६॥ अब, 'हमारे निष्किञ्चन(दरिद्री) होने और निधनोंको प्रिय लगने वाले होने अथवा निर्धनोंसे प्रेम रखने वाले होनेके कारण धनी पुरुष हमारी सेवा नहीं करते हैं' ऐसा जो कहा तिसका परिहार करती हैं कि-हे प्रभो ! जिनसे कुछ दुर्लभ नहीं ऐसे तुम निष्किञ्चन (सकल ऐश्वर्यवान्) हो, क्योंकि-दूसरोंसे पूजित होने वाले ब्रह्मादिक भी जिन तुम्हें पूजा अर्पण करते हैं ऐसे तुम परमेश्वरमें दूसरे दरिद्रीपनेका निष्किञ्चनपना बन ही नहीं सकता, दूसरोंसे पूजा ग्रहण करने वाले ब्रह्मादिक लोकेश्वरोंको तुम प्रिय हो और वह भी तुम्हें प्रिय हैं, धनादि सम्पदाके अभिमानसे अन्धे (विवेकहीन)हुए पुरुष, आयु हरने वाले कालरूप तुम्हें नहीं जानते हैं इस कारण वह केवल अपने प्राणमात्रकी ही तृप्ति करते हैं तुम्हारी सेवा नहीं करते हैं ॥ ३७ ॥ अब, 'जिन दोनोंका समान बल होता है' इत्यादिसे कहे हुए अयोग्यपनेका परिहार करती है कि-तुम धर्म आदि सकल पुरुषार्थमय और परमानन्दरूप हो, तुम्हारी प्राप्ति होनेकी इच्छासे श्रेष्ठ बुद्धि वाले पुरुष, सब प्रकारके व्यवहारोंका त्याग करते हैं हे विभो ! उन विवेकी पुरुषोंको ही तुम्हारा सेव्यसेवकभावरूप सम्बन्ध प्यारा है, पुरुष और स्त्री मिल कर परस्पर रमण करने वाले और उससे प्राप्त हुए सुखदुःखोंसे व्याकुल होने वाले तिन स्त्री-पुरुषोंको तुम्हारा सम्बन्ध प्यारा नहीं लगता है ॥ ३८ ॥ 'नारदादि भिक्षुकोंसे व्यर्थ स्तुति करे हुए' ऐसा जो कहा तिसका परिहार करती है कि-जिन्होंने प्राणियोंको पीडा देनारूप दण्ड त्याग दिया है ऐसे मुनियोंने जिनका प्रभाव वर्णन करा है ऐसे तुम सकल जगत्के आत्मा और भक्तोंको आत्मस्वरूप देने वाले हो, ऐसा जान कर ही मैंने तुम्हें वरा है, इसके द्वारा 'तूने दूर

शिषोऽज्जभवनाकरतीः कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥ जाड्यं न चरतव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् । सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥४०॥ यद्वांछया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायंतनाहुषगयादय ऐकपत्यम् । राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमंबुजाक्ष सीदन्ति ते नु पदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥ काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् । लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वाऽनुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् । स्यान्मे तवांघ्रिरणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥ तस्याः

दृष्टि न रख कर मुझे वरा है, ऐसा जो कहा था तिसका भी परिहार करा अब, जो मैंने तुम्हें वरा है सो तो-तुम्हारी भृकुटिके चलाने मात्रसे उत्पन्न हुए कालके वेगसे जिनके विषय भोग नष्ट होजाते हैं तिन ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिकोंका भी त्याग करके तुम्हें जान कर ही वरा है फिर दूसरे तुच्छ पुरुषों को त्याग कर वरा इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ३९ ॥ इस प्रकार अपने अज्ञानका परिहार करके अब दूसरे पुरुषोंके वर्णनसे प्रदीप्त हुए कोपके आवेशसे भगवान्के ऊपर ही अज्ञान की स्थापना करती है कि-हे गदाग्रज ! हे ईश्वर ! जैसे सिंह महिषादि पशुओंको भगा कर अपना भाग हरण कर लेता है तैसे ही जिन तुमने शार्ङ्गधनुषके शब्दसे ही जरासन्ध आदि राजाओंको भगा कर अपना भागरूप मेरा हरण करा है ऐसे तुम्हारा, तिन राजाओंके भयसे समुद्रकी शरण गया; इस प्रकारका जो कहना सो केवल जाड्य (अनन्वित) है अर्थात् ऐसा नहीं होसकता ॥ ४० ॥ अब, और भी दूसरा जो-'जिनका मार्ग स्पष्ट नहीं है ऐसे पुरुषोंकी अनुगामिनी स्त्रियें दुःख पाती हैं' ऐसा जो कहा सो भी ठीक नहीं है ऐसा वर्णन करती है कि-हे कमलनेत्र ! जिन तुम्हारी प्राप्तिकी इच्छासे अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति, और गय आदि राजाओंके शिखामणि, जिसमें एक ही स्वामी है ऐसे अपने राज्यको त्याग कर तुम्हें पानेका साधन जो तुम्हारी आराधना तिसको करनेके निमित्त वनमें चले गये, वह तुम्हारे मार्गका आश्रय करने वाले राजे, इस संसारमें और पुरुषोंकी समान क्लेश पाते हैं क्या ? क्लेश नहीं पाते किन्तु तुम्हारे स्वरूपको ही प्राप्त हुए हैं ॥४१॥ अब, 'अपने योग्य दूसरा पति वर' ऐसा जो कहा था तिसका उत्तर कहती है कि-अपने भले बुरेका विचार करनेमें कुशल और मरणधर्मसे युक्त ऐसी स्वयंवर करने वाली भला कौनसी चतुर स्त्री तुम्हारे,जन समूहको मोक्ष देने वाले लक्ष्मीके स्थान और सत्पुरुषों करके वर्णन करेहुए चरण कमलका सुगन्ध लेकर (एक बार चरण कमलका प्रभाव सुनकर) और फिर इसका अनादर करके, जिस को निरन्तर अधिक ही भय है ऐसे तुमसे अन्य पुरुषका सेवन करेगी ? कोई नहीं करेगी? ४२॥इसकारण जगत्के अधिपति सबके आत्मा और इस लोकमें तथा परलोक में सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले तुम योग्य वरको मैंने वरा है इस कारण संसारकी निवृत्ति करनेवाले तुम, भक्तको आत्मस्वरूपी करते हो ऐसे तुम भगवान्का चरण

स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः । यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् । जीवच्छवं भजति कांतमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरंदमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वंबुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन् रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः । यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदुह नः परमाऽनुकंपा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन । अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥ व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या

देवता तिर्यक् आदि जन्मोंके द्वारा भ्रमती हुई मुझे सेवन करने योग्य होकर आश्रय हो॥४३ अब, राजाओंके जो बहुतसे गुण कहे थे उनके विषयमें ईर्षासे शाप देती हुई और अंगूठा मोडती हुई कहती है कि-हे अच्युत ! हे शत्रुनाशक ! महादेवजी और ब्रह्माजी करके अनेकों सभाओंमें वर्णन करी हुई तुम्हारी कथा जिसके कानोंके मार्ग में कुछ भी न पहुँची हो ऐसे भाग्यहीन स्त्रीके,तुमने जिनके गुण वर्णन करके कहा है ऐसे पति स्त्रियोंके घरोंमें गर्दभोंकी समान उनका बोझा उठाने वाले, वृषभोंकी समान सदा क्लेश पाने वाले श्वानोंकी समान तिरस्कार पानेवाले और घर आदि की रक्षा करनेमें तत्पर,बिलारोंकी समान कृपणऔर हिंसक तथा सेवकोंकी समान किंकर राजे पति हों, मेरे वरनेके योग्य तो वह नहीं हैं ॥४४॥ जिस स्त्रीने, तुम्हारे चरण कमलके मकरन्दका सुगन्ध कभी ग्रहण नहीं करा है अर्थात् तुम्हारे चरणका माहात्म्य कथामें कुछ भी नहीं सुना है वह ही स्त्री, यह पुरुष सुन्दर है ऐसा मानकर अत्यन्त मोहित होती हुई, बाहरके त्वचा,दाढी, मूछ, रोम,नख और केशों से ढके हुए और भीतर, मांस हड्डी, रुधिर, कीडे, विष्ठा, कफ, पित्त और वातसे भरे हुए ऐसे जीवित ही मृतक (मुरदे) की समान पुरुषको सेवन करती है ४५ 'अब, हम उदासीन हैं' इत्यादि जो कहा तिसका उत्तर कहती है कि—हे कमलनयन ! निजानन्दस्वरूप में रमण करनेके कारण मुझमें आसक्तदृष्टि न रखनेवाले भी तुम्हारे चरणमें मुझे प्रीति प्राप्त हो,यदि कहो कि-उस प्रीतिसे तुझे कौन लाभ होगा ? तो सुनो-जिस समय इस जगत्की वृद्धिके निमित्त रजोगुणकी उत्कण्ठा को स्वीकार करने वाले तुम मेरी ओर (मायाकी ओर) को देखते हो वह तुम्हारा देखना ही हम सब शक्तियोंके ऊपर तुम्हारी परम कृपा है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीके सब कथनका उलटा व्याख्यान करके प्रसन्न चित्त होती हुई सम्मतिका उपदेश करती हुई कहती है कि-हे मधुसूदन ! तुम्हारा कथन मिथ्या है ऐसा मैं नहीं मानती हूँ क्योंकि-इस लोकमें जैसी काशीराजकी अम्बा । अम्बालिका और अम्बिका नामोंवाली तीन कन्याओंमें अम्बाकी बाल्यावस्थामें ही शाल्व राजामें प्रीति होगई थी तैसे प्रायः किसी ही कन्याको किसी ही पुरुषमें प्रीति उत्पन्न होती है ॥ ४७ ॥ तैसे ही जिसका विवाह होगया है ऐसी भी जारिणीका मन नवीन २ पुरुषकी ओरको जाता है ऐसा व्यवहार होते हुए विवेकी पुरुष जारिणी स्त्रीको स्वीकार न करे, जारिणीका पोषण करने वाला पुरुष इस लोकसे और परलोकसे

मनोऽभ्येति नवं नवम्। बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥ श्रीभगवानुवाच। साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलंभिता। मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥४९॥ यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि। संति ह्येकांतभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥ उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे। यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजन्ति दांपत्ये तपसा व्रतचर्यया। कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वांछन्ति ये संपद एव तत्पतिम्। ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५३ ॥ दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृताऽनुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः। सुदुष्कराऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुम्भराय निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्व-

भ्रष्ट होता है अर्थात् उसको कहीं भी सुख नहीं होता है ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे साध्वि ! हे राजकन्ये ! यह तेरा भाषण ही सुननेकी इच्छा करने वाले मैंने तेरा उपहास करा है, मेरे भाषणका जो तैने व्याख्यान करा है सो सब ठीकही है ॥४९॥ हे भामिनी ! हे कल्याणि ! 'विषयवासना छूटनेके निमित्त तुम्हारे चरण मेरी शरण हों। तुम्हारे चरणमें मेरी प्रीति हो' इत्यादि जोर मनोरथ मुझसे प्राप्त होने की इच्छा करती है सो सबही अनन्यभक्त तुझे सब कालमें हैं ही इस कारण उनकी तुझे प्रार्थना करना पड़े और मुझे वह देना पड़े ऐसा नहीं है५०हे दोषरहित रुक्मिणी! मेरे वाक्योंके द्वारा चलायमान करी हुई तेरी बुद्धि जो मेरेमें न्यूनता देख कर दूसरे स्थान परको कुछ भी चलायमान नहीं हुई तिससे मुझ पतिपर तेरा परम प्रेम और पातिव्रत्य मैंने देखा है॥५१॥इसप्रकार उसकी अनन्यभक्तिकी प्रशंसा करके अब उस कोही दृढ़ करनेके निमित्त सकाम भक्तोंकी निंदा करते हैं कि जो पुरुष विषयोंकी कामना करते हुए, पञ्चाग्नि साधन आदि तपके द्वारा और एकादशी आदि व्रतोंके द्वारा मोक्ष देनेवाले भी मेरी,स्त्री पुरुषोंके मिलकर भोग करने योग्य सुखके निमित्त सेवा करते हैं उनको मेरी मायासे मोहित हुआ जानो५२क्योंकि-हे भामिनि ! जिस मुझसे मोक्ष और सम्पत्ति प्राप्त होती हैं तिस मोक्ष और सम्पत्तियोंके पति मुझको प्रसन्न करके जो केवल सम्पत्ति ही प्राप्त होनेकी इच्छा करते हैं मेरी प्राप्तिकी इच्छा नहीं करते हैं वह मन्दभाग्य ही होते हैं, जो मनुष्योंके विषय, नरकसमान श्वान शूकर आदि योनियोंमें भी सुलभ हैं वह ही,यदि मोक्षके साधन मेरे भजनका अधिकारवाले पुरुष इच्छा करें तो उन पुरुषोंको विषयात्मा होनेके कारण नरक भी श्रेष्ठ प्रतीत होगा इसकारण आपही अपना अनर्थ करने वाले वह पुरुष मन्दभाग्य होते हैं ॥ ५३ ॥ इससे हे घरकी स्वामिनि ! तूने जो मेरी वारम्बार निष्काम सेवा करी है यह बहुत अच्छा हुआ, इससे मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई, इस निष्काम सेवाको खल पुरुष दुःख झेल कर भी नहीं कर सकते और दुष्ट वासना धारण करनेवाली केवल इंद्रियोंकी तृप्तिके निमित्त तत्पर रहने वाली और दूसरोंको धोखा देने वाली स्त्रीको तो अत्यन्त ही दुष्कर है ॥ ५४ ॥ मेरे ऊपर निष्काम प्रेम करके वर्त्ताव

विवाहकाले। प्रास्तान्नृपानवगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ५५ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम्। दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥ दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत्। मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥ श्रीशुक उवाच। एवं सौरतसंलापैर्भगवान् जगदीश्वरः। स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथाऽन्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव। आस्थितो गृहमेधीयान् धर्माँल्लोकगुरुर्हरिः इति श्रीमागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ६०

श्रीशुक उवाच। एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः। अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥ गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम्। प्रेष्ठं न्य-

करने वाली बहुतसी स्त्री हैं परन्तु तेरी समान स्त्रीको मैं कहीं भी नहीं देखता हूँ ऐसा कह कर उसकी भक्तिकी प्रशंसा करते हैं कि-हे भामिनि! जिस तूने, अपने विवाहके समय अपनेको वरनेके निमित्त आये हुए राजाओंका तिरस्कार करके जिसकी श्रेष्ठ कथा सुनी है ऐसे मेरे पास गुप्त सन्देशा पहुँचाने वाला ब्राह्मण भेजा ऐसी तेरी समान प्रणवती दूसरी स्त्री इस गृहस्थाश्रममें मैं नहीं देखता हूँ।५५॥और युद्धमें मेरे जीते हुए रुक्मी भ्राताका कुरूप करना, तथा अनिरुद्धके विवाहोत्सवके समय द्यूतसभामें हुआ उसका वध,इससे उत्पन्नहुए दुःखको हमारे साथसे वियोग होनेके भयके कारण तूने सहन करा है, उसके विषयमें तूने कोई कठोर भाषण नहीं करा इस सहनशीलतासे तूने बलराम आदि हम सबोंको वशमें करा है ॥ ५६ ॥ और मेरी प्राप्तिके निमित्त, निश्चय करा हुआ संदेशा कह कर तूने मेरे पास दूत भेजा है और करे हुए संकेतपर्यंत मेरे प्राप्त न होने पर इस जगत्को शून्य मान कर दूसरे किसीके भी योग्य नहीं ऐसे इस अपने शरीरका त्याग करनेकी इच्छा करती हैं, ऐसा जो निश्चय करा यह तेरा हृदय तुझमें ही रहे हम तो उसके उत्तर दाता होनेको असमर्थ हैं और केवल यह तुझको सूचित करके हर्ष ही उत्पन्न करते हैं५७ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-इस प्रकार उपहासकी वार्त्ता कह कर अपने स्वरूपमें मग्न रहनेवाले भी तिन भगवान् श्रीकृष्णजीने, मनुष्यलोकके अनुसार वर्त्ताव करनेवाली लक्ष्मीका अवतार जो रुक्मिणी तिसके साथ क्रीडा करी ॥ ५८ ॥ इसीप्रकार दूसरी भी स्त्रियोंके घरोंमें उतने उतने ही रूप धारण करके रहने वाले सब लोकोंके गुरु श्रीहरिने, गृहस्थाश्रमीकी समान, गृहस्थाश्रमके योग्य धर्मोंका आचरण करते हुए तिन स्त्रियोंके साथ क्रीडा करी ॥५९॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें षष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ छ ॥ छ ॥

अब आगे इकसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीकी पुत्र पौत्र आदि संतान कही है।*। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! पहिले कहीहुई तिन श्रीकृष्णजीकी रुक्मिणी आदि स्त्रियोंमेंसे प्रत्येकके स्वरूप सुन्दरतादि सब सम्पदासे श्रीकृष्णजीकी ही समान दश २ पुत्र हुए ॥ १ ॥ उन प्रत्येक स्त्रियोंने, अपने २ घरमेंसे कभी भी दूसरे स्थान

मंसत रघं स्वं न तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः । संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः । पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ४ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् । भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयानुरागहासावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः । केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैः दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥ तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः । अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन् गृणामि ते ॥७॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान् । सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥८॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः । प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥

को न जाकर सर्वदा घरमें ही रहने वाले और सम्भोग आदिमें तत्पर श्रीकृष्णजी को देख कर, अपना २ शरीर ही श्रीकृष्णजीको अत्यन्त प्यारा माना, क्योंकि—वह स्त्रियें इस तत्त्वको नहीं जानती थीं कि—श्रीकृष्णजी आत्माराम हैं ॥ २ ॥ भगवान्का कमलकी कलीकी समान सुन्दर जो मुख, लम्बी भुजा और विशाल नेत्र, प्रेमके साथ हास्यरसयुक्त देखना और मनोहर भाषणोंसे अत्यन्त मोहित हुईं वह स्त्रियें, अपने अनेकों विलासोंसे, तिन निजानन्द पूर्ण श्रीकृष्णजीका मन वशमें करनेको समर्थ नहीं हुईं ॥३॥ मुसकान हास्यके साथ कटाक्षके द्वारा देखनेसे सूचित हुआ जो अभिप्राय जिससे मन हरने वाले भ्रुकुटिमण्डल करके फेंके हुए और सुरत की सम्मतियोंमें चतुर तथा कामशास्त्रमें प्रसिद्ध अनेकों प्रकारके कामदेवके बाणों से जिनका मन चलायमान करनेको सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियें भी समर्थ नहीं हुईं ॥४॥इसप्रकार, ब्रह्मादिक देवता भी जिनकी प्राप्ति होनेका मार्ग नहीं जानते हैं वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णरूप, पतिके प्राप्त होने पर निरंतर बढ़ी हुई प्रीतिसे तिन स्त्रियोंने,जिसमें प्रेमपूर्वक हास्य,देखना और नवीन समागममें उत्सुकता यह मुख्य हैं ऐसे अनेकों विलासोंका यद्यपि सेवन करा तथापि इनका मन वशमें करनेको समर्थ नहीं हुईं॥५॥ सैंकड़ों दासियोंसे युक्त, भी वह स्त्रियें बाहरसे आये हुए श्रीकृष्णजीको देख कर सम्मुख जाना, आसन देना, अर्घ्य दान आदि करके पूजा करना, चरण धुलाना, ताम्बूल देना, चरणोंकी सेवा आदि करके थकावट दूर करना, चौरी पंखे आदिसे पवन करना, गन्ध पुष्प आदि देना, केशोंको सुगन्धित तेल लगा कर काढ़ना,शय्या बिछाना,स्नान कराना और भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थ अर्पण करना इत्यादि प्रकारोंसे वह अपने आप प्रभु पतिका दासकार्य करती थीं ॥ ६ ॥ दश २ पुत्र वाली श्रीकृष्णजीकी उन सब स्त्रियोंमें पहिले कही हुईं रुक्मिणी आदि आठ पटरानियोंके प्रद्युम्नआदि पुत्र मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥७॥ श्रीकृष्णजीके रुक्मिणी के विषें प्रद्युम्न है मुख्य जिनमें ऐसे चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त भद्रचारु, तैसे ही चारुचन्द्र, विचारु और दशवाँ चारु ऐसे पराक्रमी पुत्र हुए, वह

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा । चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश । सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः । जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः । आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः । शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च । महांशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् । जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः । प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे । एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप । मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच । कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि । कृष्णेन

शूरता आदि गुणोंमें पिता (श्रीकृष्णजी) की समान थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ भानु, सुभानु स्वर्भानु, प्रभानु तैसे ही भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु तैसे ही आठवाँ अतिभानु,-॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश सत्यभामाके पुत्र हुए, साम्ब, सुमित्र पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु यह दश जाम्बवतीके पुत्र हुए यह सांब आदि दश भी पराक्रम आदि करके पिताके मान्य थे ११।१२ वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष आम, शंकु; वसु और तेजसे युक्त कुंति यह दश नाग्नजिति (सत्या) के पुत्र हुए १३ श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास, और सबमें छोटा सोमक यह दश कालिन्दीके पुत्र हुए प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज, और अपराजित यह दश लक्ष्मणाके पुत्र हुए १५ वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि, और क्षुधि यह दश मित्रविन्दाके पुत्र हुए १६ संग्रामजित् बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश भद्राके पुत्र हुए १७ दीप्तिमान् और ताम्रतप्त इत्यादि दश रोहिणीके पुत्र हुए इसी प्रकार औरभी सब स्त्रियोंके पुत्र हुए, हे राजन्! प्रद्युम्नसे रुक्मवती स्त्रीके विषैं महाबली अनिरुद्ध नामवाला पुत्र हुआ, वह रुक्मवती भोजकट नामक नगरमें रहनेवाले रुक्मीकी कन्या थी, दूसरे भी श्रीकृष्णजीके पुत्रोंकी सैंकड़ों स्त्रियोंके विषैं करोड़ों पुत्र और पौत्र हुए, क्योंकि-जब श्रीकृष्णजीके पुत्रोंकी माता ही सोलह सहस्र एकसौ आठ थीं तो फिर उनकी सन्तान बहुतसी होगी इसका तो कहना ही क्या ? १८॥१९ राजाने कहा कि-हे शुकदेवजी ! तिस रुक्मीने, शत्रु (श्रीकृष्ण) के पुत्रको (प्रद्युम्नको) अपनी कन्या कैसे दी ? क्योंकि-उस रुक्मीके साथ होने वाले युद्धमें श्रीकृष्णजीका तिरस्कार करा हुआ वह रुक्मी, उन श्रीकृष्णजीको मारनेका अवसर देखता था, इस कारण उससे कन्या मिलना असम्भव था इस प्रकार परस्पर द्वेष

परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते। एतद्‌ाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः २० अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्। विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यंति योगिनः श्रीशुक उवाच। वृतः स्वयंवरे साक्षादनंगोऽगयुतस्तया। राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥ यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः। व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन् स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली। उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥२४॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः। रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया। जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबंधनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ। पुरं भोजकटं जग्मुः सांबप्रद्युम्नकादयः २६ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिंगप्रमुखा नृपाः। दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत्।

करने वाले उन श्रीकृष्ण और रुक्मीके यहाँका परस्पर विवाह सम्बन्ध कैसे हुआ? यह मुझे सुनाओ ॥ २० ॥ आपसे योगी, आगेको होने वाले, पीछे बीते हुए और वर्त्तमान कालमें इन्द्रियोंसे न दीखने वाले दूरके और मध्यमें भीत आदि व्यवधान वाली सकल वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखते हैं, इस कारण ऐसा कुछ नहीं है जिसको तुम न जानते होओ अतः कहिये ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! उस रुक्मवतीने स्वयम्वरमें साक्षात् मूर्त्तिमान् कामदेव ही ऐसे प्रद्युम्नको जब वर लिया तब तहाँ कन्या मिलनेके लोभसे आये हुए और बलात्कारसे (जबरदस्ती) कन्याको छीन लेनेके निमित्त युद्ध करनेको उद्यत हुए सब ही राजाओंको, तिस इकले रथी प्रद्युम्नने जीत कर उसको हरण करा ॥ २२ ॥ उस समय यद्यपि रुक्मी, श्रीकृष्णजीका अपमान करा हुआ और उनके वैरको वारम्वार स्मरण करने वाला था तथापि अपनी बहिन रुक्मिणीका प्रिय करते हुए उसने, बहिनके पुत्र प्रद्युम्न को कन्या दी ॥ २३ ॥ अब, श्रीकृष्णजीकी सब ही स्त्रियोंके एक २ कन्या हुई और उनके विवाह हुए यह सूचित करनेके निमित्त बड़ी कन्याका विवाह कहते हैं कि-हे राजन्! कृतवर्माके बली नामवाले पुत्रने, नेत्रादिकी सुन्दरतायुक्त चारुमती नाम वाली रुक्मिणीकी कन्याको वरा ॥ २४ ॥ फिर उस रुक्मीने, 'शत्रुका अन्न भक्षण न करे और शत्रुको भोजन न करावे' इत्यादि रीतिसे लोकविरुद्ध शत्रुके साथ विवाह सम्बन्धरूप अधर्म को जानने वाले भी और श्रीकृष्णजीके साथ वैरभाव रखते हुए भी अपनी बहिन रुक्मिणीका प्रिय करनेकी इच्छासे स्नेह रूप पाशीमें बँध कर, अपनी कन्याके पुत्र और श्रीकृष्णजीके पोते अनिरुद्धको ही रोचना नाम वाली अपनी पोती दी ॥ २५ ॥ अब उस लोकविरुद्ध कार्य करनेका फल कहनेके निमित्त कहते हैं कि-हे राजन्! वह अनिरुद्धके विवाहका उत्सवरूप निमित्त प्राप्त होने पर, रुक्मिणी, बलराम, श्रीकृष्ण, साम्ब, प्रद्युम्न आदि पुरुष भोजकट नाम वाले नगरमें गये थे ॥ २६ ॥ उस विवाहके उत्सवका प्रारम्भ होने पर उस उत्सवमें जो कालिङ्ग आदि राजे आये थे, वह घमण्डमें भरकर एक दिन रुक्मीसे कहने लगे कि-तेरे मनमें यदि यादवोंको जीतनेकी है तो तू द्यूत (जुए)के साधन

इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् । तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिंगः प्राहसद्बलम् । दन्तान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥ ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णात् ग्लहं तत्राजयद्बलः । जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्र इव पर्वणि । जात्यारुणाक्षोऽतिरुषान्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान् रामो धर्मेण छलमाश्रितः । रुक्मी जितं मयात्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः । धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः । संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालनोदितः ॥ ३४ ॥ नवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः । अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः । क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिंगराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे । दंतानपात-

---

फाँसोंसे बलरामको जीत ॥२७॥ क्योंकि-हे राजन् ! यह बलराम द्यूतकी चतुराईको नहीं जानते हैं तो भी इनको द्यूत खेलनेका बड़ा भारी व्यसन है, ऐसा राजाओंके कहने पर रुक्मी बलरामजीको बुलवा कर उनके साथ फासोंसे खेलने लगा २८ उस जुएमें पहिलें बलरामजीने, सुवर्णकी सौ मुद्राओंका, तदनन्तर सहस्र मुद्राओं का, फिर दश सहस्र मुद्राओंका पण (दाँव) लगाया, वह तीनों संख्याका पण (दाँव), रुक्मीने चतुराईसे फाँसे फेंक कर जीत लिया तब कालिङ्ग राजाने अपने दाँत दिखा कर बलरामजीकी बहुत ठट्ठा मार कर हँसी करी, उस हँसनेको बलरामजीने सहन नहीं करा ॥ २९ ॥ फिर रुक्मीने, सुवर्णकी लाख मुद्राओंका दाँव लगाया तिस समय वह दाँव बलरामजीने जीत लिया तब कपटका आश्रय करने वाले तिस रुक्मीने, कहा कि-यह दाँव मैंने ही जीता है और उस दाँवके धनको लेलिया ॥ ३० ॥ तब, धनसे परिपूर्ण और स्वभावसे ही लाल २ नेत्र वाले उन बलरामजीने, जैसे समुद्र पूर्णिमाके दिन उभर उठता है तैसे ही झूठा वचन सुनने पर क्रोधमें भरकर क्रोधके आवेशसे दशकरोड़ सुवर्णकी मुद्राओंका पण लगाया ३१ वह भी दाँव फाँसे धर्मसे डालते २ बलरामजीने ही जीता, तब कपटका आश्रय करने वाले रुक्मीने, यह धन मैंने ही जीता है, इस विषयमें यह समीप बैठे हुए कालिंग आदि राजे साक्षी देंगे, ऐसा कहा ॥ ३२ ॥ उस समय आकाशवाणी हुई कि-यह दाँव फाँसे डालनेके धर्मसे बलरामजीने ही जीता है, रुक्मी तो वचनमात्र से ही 'मैंने जीता है ऐसा' मिथ्या वचन कह रहा है ॥ ३३ ॥ तिस आकाशवाणी का अनादर करके, मृत्युकालका प्रेरणा करा हुआ और कालिंग आदि दुष्ट राजाओं का लमसाया हुआ वह रुक्मी, उन बलरामजीका हास्य करता हुआ कहने लगा कि-॥ ३४ ॥ तुम फाँसोंसे जुआ खेलनेमें चतुर न होकर जङ्गलमें रहनेवाले गोपाल हो, मुझसे राजे ही फाँसोंसे क्रीड़ा और बाणोंसे युद्ध करते हैं, तुमसे पशुओंके रख वाले नहा करते हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे वचनोंसे रुक्मीके तिरस्कार करे हुए और कालिंग आदि राजाओंके हास्य करे हुए उन बलरामजीने क्रोधमें भर कर, एक लोहेका

यत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥ अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः । राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा । रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् । रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्भागवते म० दश०उ० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ६१

राजोवाच । बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः । तत्र युद्धमभूद् घोरं हरिशंकरयोर्महत् । एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः । येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा । मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसंधो

दण्ड उठा उससे तिस माङ्गलिक सभामें ही उस रुक्मीका वध करा ॥ ३६ ॥ और जो दाँत निकाल कर बलरामके ऊपर हँसा था उस, शीघ्रतासे भागनेवाले कालिंग राजाको दशवें पग पर ही पकड़ कर क्रोधमें भरे हुए बलरामजीने उसके दाँत तोड़ गिराये ॥ ३७ ॥ और भी जो रुक्मीके पक्षके राजे थे उनको भी बलरामजीने तिस ही परिघसे ताडना करा तब जिनकी भुजा, जङ्घा और मस्तक छिन्न भिन्न होगये हैं ऐसे वह रुधिरमें भीग कर और भयभीत होकर भाग गये ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार बलरामजीके, साले रुक्मीका वध करने पर श्रीकृष्णजीने; रुक्मिणी और बलरामजीके स्नेहका भङ्ग होनेके भयसे भला वा बुरा कुछ नहीं कहा अर्थात् अच्छा कहनेसे रुक्मिणीको बुरा लगेगा और बुरा कहूँगा तो बलरामजीको बुरा लगेगा इस कारण कुछ भी नहीं कहा ॥ ३९ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीका आश्रय वाले, और जिनका अनिरुद्धका विवाह तथा शत्रुका वध आदि कार्य सिद्ध हुआ है ऐसे वह बलराम आदि सब यादव, नई वरी हुई चारुमती नाम वाली स्त्री सहित अनिरुद्धको श्रेष्ठ रथमें बैठाल कर तिस भोजकट नामक नगरसे द्वारकाको चले गये ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ छ ❀ छ

अब आगे बासठवें अध्यायमें सहस्र भुजा वाले बाणासुरने, अपनी कन्याके साथ रमण करनेवाले अनिरुद्धको बन्धनमें रक्खा, यह कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ राजाने कहा कि–हे महायोगिन् ! यादवोंमें श्रेष्ठ अनिरुद्धने, बाणासुरकी ऊषा नाम वाली कन्याको वरा, इसके विषयमें श्रीहरि और श्रीशंकरका परस्पर भयंकर युद्ध हुआ यह हमने सुना है सो सब चरित्र विस्तारके साथ कहनेको तुम समर्थ हो इस कारण कहनेकी कृपा करिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि–हे राजन् ! जिसने वामनरूप धारण करने वाले श्रीहरिको भूमिका दान दिया तिस महात्मा राजा बलिका सौ पुत्रोंमें बड़ा बाणासुर नाम वाला पुत्र था ॥ २ ॥ बलिका औरस ÷ पुत्र

÷ दत्तक, पालनकरा हुआ विक्रतेमें मोल लियाहुआ इत्यादि पुत्र होते हैं, उनकी शंका न हो इस निमित्त यहाँ 'औरस' शब्द कहा है ।

दृढव्रतः ॥ ३ ॥ शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा । तस्य शंभोः प्रसादेन किंकरा इव तेऽमराः । सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥४॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः । वरेणच्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥ ५ ॥ स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः । किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् । पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् । त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् । आद्यायां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा । त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥ इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप । प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥ ११ ॥ तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने

वह बाणासुर, निरन्तर शिवकी भक्तिमें तत्पर, लोकोंमें सन्मान पानेके योग्य, अति उदारचित्त, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला और श्रीशंकरको उपासनाका दृढ़ व्रत धारण करने वाला था ॥ ३ ॥ वह पहिले शोणितपुर नाम वाले नगरमें राज्य करता था, उसको श्रीमहादेवजीसे वर प्राप्त होनेके कारण, लोकमें आराधना करनेके योग्य सब देवता भी उसके किंकरकी समान होकर रहते थे, क्योंकि सहस्र भुजा होनेके कारण जिसने एक समय शिवजीके ताण्डव नृत्य करतेमें अपनी सहस्र भुजाओंसे एक साथ बहुतसे बाजे बजा कर उनको प्रसन्न करा ॥ ४ ॥ तब सकल भूतोंके स्वामी, शरण जानेयोग्य और भक्तवत्सल तिन भगवान् शंकरने, उससे कहा कि–इच्छित वर मांग तब, उसने उन श्रीशंकरसे 'तुम निरन्तर मेरी नगरीकी रक्षा करते रहो' ऐसा वर मांग लिया और उन्होंने भी वह उसको दिया ॥ ५ ॥ एक समय पराक्रमसे दुर्मद हुए तिस बाणासुर ने, अपने समीपमें विद्यमान तिन शंकरके चरणकमलको सूर्यकी समान वर्ण के अपने किरीटसे स्पर्श करके कहा कि–॥ ६ ॥ हे महादेव ! सकल प्राणिमात्रके गुरु और अपूर्ण मनोरथ पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण करने वाले कल्पवृक्षरूप तुम ईश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ ॥७॥ तुमने वरदानरूपसे जो मुझे सहस्र भुजा दी हैं वह केवल मुझे भार (बोझा) रूप ही हुई हैं, क्योंकि सहस्र भुजा धारण करना युद्धके निमित्त हैं और उस युद्धके विषयमें तो तुम्हारे सिवाय दूसरा मेरे साथ युद्ध करने वाला और बलमें मेरी समान योधा त्रिलोकी भरमें मुझे नहीं मिला है॥८॥हे आद्य परमेश्वर ! युद्ध करनेकी इच्छा करने वाला मैं, खुजलीसे भरी हुई बाहुओंसे पर्वतोंका चूरा करते २ दिग्गजोंके समीप गया था; परन्तु मुझे देखते ही भयभीत हुए वह भी दूरको भागगये ॥ ९ ॥ यह बाणासुरका भाषण सुनकर क्रुद्ध हुए भगवान् शंकर कहने लगे कि–अरे मूढ ! जब तेरी ध्वजा अपने आप टूटपड़ेगी तब तेरे गर्वको नाश करने वाले मेरी समान योधाके साथ तेरा युद्ध होयगा ॥ १० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार श्रीशंकरके कहने पर वह कुबुद्धि (बाणासुर) हर्षयुक्त होकर, महादेवजीके कहे हुए मेरे पराक्रमका नाश करने वाले ध्वजका टूटना कब होयगा ऐसी

प्राद्युम्निना रतिम् । कन्याऽलभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥ १२ ॥ सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी । सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता । सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः । हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच । दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः। पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः ॥ १६ ॥ तमहं मृगये कांतं पाययित्वाऽधरं मधु । क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥१७॥ चित्रलेखोवाच । व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते । तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥ इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् । दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथालिखत् मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् । व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥२०॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषावाङ्मुखी ह्रिया । सोऽसावसाविति

बाद देखता हुआ अपने घरमेंको चला गया ॥ ११ ॥ उसकी ऊषा नाम वाली कन्या थी, उसको विवाह होनेसे पहिले ही, जिसको कभी भी न देखा था न सुना था ऐसे सुन्दर अनिरुद्धके साथ स्वप्नमें रतिसुखका लाभ हुआ ॥१२॥ फिर वह ऊषा, उस स्वप्नमें अनिरुद्धको न देखती हुई विह्वल होकर, हे कान्त ! तुम कहाँ गये ? ऐसा कहती हुई सखियोंके मध्यमें जाग कर उठ खड़ी हुई और अत्यन्त लज्जित हुई १३ बाणासुरका कुंभाण्ड नामवाला मंत्री था और उसकी चित्रलेखा नामवाली कन्या ऊषाकी सखी थी, वह आश्चर्यसे युक्त होकर उस अपनी सखीसे बूझनेलगी कि-॥ १४ ॥ हे सुभ्रु ! हे राजकुमारी ! तेरा पाणिग्रहण करने वाला पति मैंने अभी तक नहीं देखा, ऐसा होनेपर भी तू यहाँ 'हे कान्त' ऐसा कहकर किसको ढूँढ़ती है ? और तेरा मनोरथ कैसा है ? ॥१५॥ तब ऊषाने कहा कि-हे सखि चित्रलेखे ! मैंने स्वप्नमें श्यामवर्ण कमलनयन, पीताम्बरधारी, पराक्रमसे शोभायमान भुजाओं से युत और स्त्रियोंके मनको अतिप्रिय लगने वाला कोई एक पुरुष देखा ॥ १६ ॥ वह मुझे अधरका अमृत एक बार पिला कर फिर उसकी इच्छा करनेवाली मुझको विरह समुद्रमें धक्का देकर न जाने कहाँ चलागया है ? उस सुन्दर पतिकी मैं खोज कर रही हूँ ॥ १७ ॥ तब चित्रलेखाने कहा कि-हे सखि ऊषे ! तेरा दुःख मैं दूर करूँगी, परन्तु वह पुरुष त्रिलोकीमें होना चाहिये; तो मैं उस पुरुषको तेरे समीप ले आऊँगी, मैं चित्र खैंचती हूँ, उनमें तूने स्वप्नमें देखाहुआ, तेरे मनको हरनेवाला पुरुष कौनसा है सो मुझे तू उसको बतादे; सो जान काम सिद्ध होगया ॥ १८ ॥ ऐसा कह कर उसने देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग दैत्य, विद्याधर, यक्ष मनुष्य इन सबोंके साक्षात् चित्र बनाए ॥ १९ ॥ और उसने मनुष्योंमें यादवोंके, उनमें शूरोंके, वसुदेवके और बलराम-कृष्णके चित्र बनाए और प्रद्युम्नका चित्र बनाते ही उसको देख कर, यह श्वशुर हैं इस दृष्टिसे लज्जित हुई ॥२०॥ तदनन्तर लिखे हुए अनिरुद्धको देखकर, हे राजन् ! तिस ऊषाने लज्जासे नीचेको मुख कर लिया और प्रेमसे मुखको हास्ययुक्त करके कहा कि-जो मैंने स्वप्नमें देखा था वह

प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी । ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता । गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ या च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना । दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥ परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः । पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयाऽर्चितः २५ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया । नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः २६ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् । हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः २७ भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् । विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो । कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥ २९ ॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः । त्वरितः कन्यकाऽगारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गांबरमंबुजे-

---

यही है ॥ २१ ॥ हे राजन्! चित्रलेखाने, ऊषाके बताये हुए उसको श्रीकृष्णका पौत्र (पोता-नाती) जान लिया और वह योगिनी बन कर उसको लानेके निमित्त आकाशमार्गसे श्रीकृष्णजीकी रक्षा करीहुई द्वारकाको चली गई ॥ २२ ॥ तहाँ सुंदर पलङ्ग पर सोये हुए अनिरुद्धको योगसिद्धिके प्रभावसे लेकर फिर शोणितनगरमें आगई और उसने ऊषा सखीको उसका प्रियपति दिखाया ॥ २३ ॥ उस ऊषाने भी अतिसुन्दर तिस अनिरुद्धको देख हर्षितमुखी होकर, जिसको कोई देख भी न सके ऐसे अपने घरमें उसके साथ क्रीड़ा करने लगी ॥ २४ ॥ नित्य जिसका स्नेह बढ़ रहा है ऐसी तिस ऊषाने, उसको कन्याभवनमें गुप्त रख कर अमोलक वस्त्र, माला, सुगन्धका लेपन, धूप, दीप, आसन, नानाप्रकारके सरबत, पक्वान्नोंके भोजन और अनेकोंप्रकारके भक्ष्य अर्पणकरके मधुरभाषणके साथ शुश्रूषासे उसका सत्कार करा तब मोहितचित्त हुए तिस अनिरुद्धने, मुझे यहाँ बहुतसे दिन बीत गये, यह कुछ न जाना ॥२५॥२६॥ अनिरुद्ध करके तिस प्रकार गुप्तरूपसे भोगीहुई, अत्यंत प्रसन्न हुई और छुपानेको कठिन ऐसे गर्भ धारण आदि हेतुओंसे, पुरुषका सम्पर्क जिसमें नहीं ऐसा कन्यापनका व्रत जिसका नष्ट होगया है ऐसी तिस ऊषाको द्वारपालोंने देखा ॥२७॥ और उन्होंने वह समाचार राजा बाणासुरको सुनाया कि-हे राजन्! तुम्हारी अविवाहिता कन्याका कुलको दूषण लगाने वाला परपुरुषका सम्भोग रूप दुराचरण हमारे देखनेमें आया है ॥ २८ ॥ हे राजन्! दूसरे किसी स्थान पर भी न जाती हुई और घरमें जिसकी सावधानीके साथ हमने रक्षा करी है तथा परपुरुषको देखनेको भी कठिन ऐसी तुम्हारी कन्याका परपुरुषसे दुराचरण कैसे हुआ सो हम नहीं जानते ॥ २९ ॥ जिसने पुत्रीका दुराचरण सुना है ऐसा परम-दुःखित हुआ वह बाणासुर तिस स्थानसे शीघ्रताके साथ कन्याके घरमें गया तहाँ उसने अनिरुद्धको देखा ॥ ३० ॥ वह कामका अवताररूप प्रद्युम्नका पुत्र, सकल भुवनमें एक ही सुन्दर, श्यामवर्ण पीताम्बरधारी कमलनयन, बलयुक्त भुजाओं वाला, कुण्डल और केशोंकी कान्तिसे तथा मन्दहास्ययुक्त अवलोकनसे जिसका

क्षणम् । बृहद्भुजं कुण्डलकुंतलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाऽभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुंकुमस्रजम् । बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२ ॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः । उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दण्डधरो जिघांसया ॥ ३३ ॥ जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् । ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्द्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ॥ ३४ ॥ तं नागपाशैर्बलिनंदनो बली घ्नतं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह । ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धबंधो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२

श्रीशुक उवाच । अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत । चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥ नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च । प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सांबोऽथ सारणः ।

मुख शोभायमान है ऐसा, सौभाग्यके चिन्ह और बहुमूल्यके आभूषण आदि धारण करके सब प्रकारसे दमकतीहुई तिस प्रिया ऊषाके साथ पासोंसे क्रीड़ा करने वाला अङ्ग सङ्गके समय उसके स्तनोंका केशर लगी मल्लिकाके फूलोंकी बडीभारी माला वक्षःस्थल पर धारण करने वाला ऐसे उस ऊषाके सामने बैठे हुए तिस अनिरुद्ध को देख कर वह बाणासुर विस्मयमें होगया ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ तब शस्त्र ऊपरको उठा कर धारण करने वाले वीरोंसे घिरे हुए अपने समीपको आने वाले तिस बाणासुर को देख कर, उस अनिरुद्धने, लोहेका मोटासा परिघ लेकर मारनेकी इच्छासे, जैसे दण्ड धारण करने वाला यम खडा रहता है तैसे उसके सामने खड़ा रहा ॥ ३३ ॥ और पकड़नेकी इच्छासे अपने चारों ओर आने वाले उन शस्त्रधारी वीरोंको जैसे सूकरोंका राजा, अपने पकडनेको आने वाले कुत्तोंको मारता है तैसे ताडना करने लगा तब ताड़ित हुए और मस्तक, जङ्घा तथा बाहु टूटे हुए वह वीर, उस घरमेंसे बाहर निकल कर अपने प्राण लेकर भाग गये ॥ ३४ ॥ तब कोपमें भरे हुए तिस महाबली बाणासुरने; अपनी सेनाको मारने वाले उस अनिरुद्धको नागपाशोंसे बाँध लिया तब बँधे हुए अनिरुद्धको देख कर शोक और खेदसे विह्वल हुई ऊषा, नेत्रोंमें आँसू लाकर, रोने लगी ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में द्विषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ छ ॥ छ

अब आगे तरेसठवें अध्यायमें बाणासुर और यादवोंके युद्धमें बाणासुरकी भुजाओंको काटनेवाले श्रीकृष्णकी, ज्वरने और श्रीरुद्रने स्तुति करी यह कथा कही है श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! इधर द्वारकामें अनिरुद्धको न देखनेवाले और निरन्तर उसका शोक करने वाले उसके बान्धवोंको (यादवोंको) आषाढ़, श्रावण भादों और आश्विन यह चार मास बीत गए ॥ १ ॥ फिर, नारदजीसे, बाणासुरके बाँधे हुए तिस अनिरुद्धका समाचार और उसका युद्धादिरूप कर्म (चित्रलेखाका उसको शोणितपुरमें लेजाना, उसका ऊषाके साथ क्रीडा करना और ऊषाका गर्भ-

नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् । रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् । प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥ बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः । आरुह्य नंदिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥ ६ ॥ आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । कृष्णशंकरयो राजन् प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥ कुंभांडकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः । सांबस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः । गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शंकरानुचरान् शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् । डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्मांडान्ब्रह्मराक्षसान् । द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुंक्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे । प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् । आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च ॥ १३ ॥ मोह-

---

वती होना आदि) सुन कर उसको छुटा कर लानेके निमित्त, बलराम और कृष्ण जिनमें मुख्य हैं और कृष्ण ही जिनके देवता हैं ऐसे प्रद्युम्न, युयुधान, गद, साम्ब सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि यादव बारह अक्षौहिणी सेना साथ लेकर शोणित नामक नगरकी ओरको गये और उन श्रेष्ठ यादवोंने, बाहरसे सब दिशाओं में उस बाणासुरकी नगरीको घेर लिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब शत्रुओंके तोड़े हुए बगीचे और फोड़े हुए बुर्जोंसे, अटारियोंसे और नगरके द्वारोंसे विध्वंस हुए अपने नगर को देख कर क्रोधमें भराहुआ वह बाणासुर, बारह ही अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करनेके निमित्त नगरसे बाहर निकला ॥ ५ ॥ बाणासुरकी सहायता करनेको स्कंद आदि पुत्रों सहित, और प्रमथ आदि गणों सहित रुद्रभगवान्, नन्दिकेश्वरके ऊपर बैठ कर बलराम-कृष्णके साथ युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥ उस समय श्रीकृष्णका और रुद्रभगवान्का आश्चर्यकारी, देखने वालोंके शरीरों पर रोमांच खड़े करने वाला और निरन्तर शस्त्र चलनेके कारण भयंकर युद्ध हुआ तैसे ही प्रद्युम्न और स्कन्द का, कुंभाण्ड और कूपकर्ण नाम वाले बाणासुरके दो मन्त्रियोंका बलरामके साथ युद्ध हुआ, साम्बका बाणासुरके पुत्रके साथ और सात्यकिका बाणासुरके साथ युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस समय देवताओंके स्वामी ब्रह्मादिक, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा और यक्ष यह सब ही विमानोंमें बैठ कर तिस युद्धको देखनेके निमित्त आये ॥ ९ ॥ तब श्रीकृष्णजीके, शार्ङ्ग धनुषमेंसे, छोड़े हुए तीखी नोकवाले बाणोंसे भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, राक्षस, वेताल, विनायक, प्रेत, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षस नामवाले शिवजीके सेवकोंको भगा दिया १०।११ तब पिनाकपाणी शंकरने, शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णजीके ऊपर नानाप्रकारके अस्त्र छोड़े तब, विस्मय न माननेवाले श्रीकृष्णजीने प्रत्यस्त्रोंसे अर्थात् उन अस्त्रोंको, उनके प्रतिकूल अस्त्रोंसे शांत करा १२ ब्रह्मास्त्रके ऊपर ब्रह्मास्त्र, वायव्यस्त्रके ऊपर पर्वतास्त्र, आग्नेयास्त्रके ऊपर पर्जन्यास्त्र, और पाशुपतास्त्रके ऊपर नारायणास्त्र छोड़ा ॥ १३ ॥

पित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् । बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदे-षुभिः ॥ १४ ॥ स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः । असृग्विमुञ्चन् गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥१५॥ कुम्भांडः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ । दुद्रुवुस्तद्-नीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः । कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्च-शतानि वै । एकैकस्मिन् शरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥१८॥ तानि चिच्छेद भग-वान् धनूंषि युगपद्धरिः । सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शंखमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा । पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥ २० ॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन् गदाग्रजः । बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्-पुरम् ॥२१॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् । अभ्यधावत दाशार्हं दहन्-निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् । माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥ माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः । अल-

---

तदनन्तर श्रीकृष्णजीने जृम्भणास्त्र छोड़कर शिवजीको जँभाई लेते हुए बैठने योग्य मोहित करके खड्ग, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करा ॥ १३ ॥ इधर स्कन्द (स्वामि कार्त्तिकेय),प्रद्युम्नके बाणोंके समूहों करकेचारोंओरसे पीडित हुए तब, अपने हाथ पैर आदि अङ्गोंसे रुधिर टपकाते हुए अपने वाहन (सवारी) मोरके ऊपर चढ़कर युद्ध भूमिसे भाग गये ॥ १५ ॥ बलरामजीके मूसलसे ताड़ना करे हुए कुम्भाण्ड और कूपकर्ण यह दोनों ही मन्त्री मरणको प्राप्त होगये तब मारे गये हैं स्वामी जिसके ऐसी उनकी सेना सब ओरको भागने लगी ॥ १६ ॥ इस प्रकार अपनी सेनाको जिधर तिधरको भागते हुए देखकर अतिक्रोधमें भरा हुआ बाणासुर, समरभूमिमेंसे अपने साथ युद्ध करनेवाले सात्यकिको छोड़कर श्री-कृष्णजीके शरीर परको दौड़ने लगा ॥ १७ ॥ और युद्ध करनेमें अति घमण्डी उस बाणासुरने, एक साथ अपने पाँच सौ हाथोंसे, पाँच सौ धनुष लेकर, दूसरे पाँच सौ हाथोंसे प्रत्येक धनुष पर दो २ इस प्रकार सहस्र बाण चढाये ॥१८॥ उन बाणोंको छोड़नेसे पहिले ही श्रीकृष्णजीने, वह सब धनुष तोड़ डाले और सारथि, रथ तथा घोड़ोंको मारकर अपना शंख बजाया ॥ १९ ॥ उस समय, बाणासुरकी जो कोटरा नामवाली माता थी वह उस पुत्रके प्राणोंकी रक्षा करनेकी इच्छासे अपने केशोंके जूड़ेको खोलकर और नंगी होकर श्रीकृष्णजीके सामने खड़ी हो गई ॥ २० ॥ तब श्रीकृष्णजीने, उस नंगी स्त्रीको न देख दूसरी ओरको मुख फेर लिया सो इतने ही में रथहीन हुआ और जिसका धनुष टूट गया है ऐसा वह बाणासुर अपने शोणितनगरमेंको चला गया ॥ २१ ॥ इधर श्रीकृष्णजीने, शिवजीके भूतगणोंको भगा दिया तब, तीन मस्तक और तीन चरणवाला माहेश्वर ज्वर, अपने तापसे दशों दिशाओंको जलाता हुआ युद्ध करनेके निमित्त श्रीकृष्णजीके ऊपरको दौड़कर आया ॥ २२ ॥ फिर नारायणदेव (श्रीकृष्णजी) ने, उसको देख कर उसके ऊपर अपना शीतज्वर छोड़ा तब माहेश्वर और वैष्णव दोनों ज्वर युद्ध

स्त्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः । शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयतांजलिः॥२४॥ ज्वर उवाच । नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् । विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशांतम् ॥ २५ ॥ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः । तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधून्लोकसेतून्बिभर्षि । हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शांतोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण । तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्॥

करने लगे ॥ २३ ॥ उनमें वैष्णव ज्वर करके बलात्कारसे पीड़ित करा हुआ माहेश्वर ज्वर, बड़ा विलाप करता हुआ, जब श्रीकृष्णजीसे दूसरा अभय देनेवाला स्थान नहीं मिला तब भयभीत और रक्षाकी इच्छा करनेवाला वह (माहेश्वर ज्वर) हाथ जोड़कर श्रीकृष्णजीकी स्तुति करने लगा ॥ २४ ॥ वह अपने आपको ही परम शक्तिमान् मानकर श्रीकृष्णजीको ताप देनेके निमित्त प्रवृत्त होने पर जब आप ही तापको प्राप्त हुआ तो उन श्रीकृष्णजीको परमेश्वर जानकर स्तुति करता हुआ कहने लगा ज्वरने कहा कि-हे प्रभो! ब्रह्मादिकोंके नियंता, सकल प्राणीमात्रको अन्तर्यामी रूपसे प्रकाश करने वाले, शुद्ध, चैतन्यघन, अनन्तशक्ति तुम परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूँ, जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-संहारके विषयमें कारण और वेदोंने तात्पर्यवृत्तिसे जिनको प्रकाशित करा है ऐसे सकल क्रियाओंसे रहित जो ब्रह्म सो तुम ही हो ॥ २५ ॥ अब, जितने साकार पदार्थ हैं उनमें हम पराक्रम चलाते हैं परन्तु निराकार तुम्हारे विषैं किसीकी भी प्रभुता नहीं चलती किन्तु तुम ही सबके प्रभु हो ऐसे स्पष्ट करता हुआ स्तुति करता है कि-गुणोंका क्षोभ करनेवाला काल, उसका निमित्त कर्म, वही फल देनेको उद्यत होकर प्रकट होने पर दैव, उस का संस्कार जो स्वभाव, उससे युक्त होनेके कारण सुख और दुःखोंका भोक्ता जीव, शब्दादि सूक्ष्मभूतरूप द्रव्य, शरीर, प्राण, अहङ्कार, ग्यारह इन्द्रियें और पञ्च-महाभूत मिलकर सोलह प्रकारका विकार, उन पृथिवी आदिकोंका समूहरूप लिङ्ग-शरीर और तिस लिङ्गशरीरका बीज अंकुरकी समान प्रवाह अर्थात् जैसे बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है और अंकुरसे फिर बीज उत्पन्न होता है तैसेही देहसे कर्म और कर्मसे फिर देह होता है, यह सब प्रकारकी तुम्हारी माया ही है तिस मायाका निषेध (तिरस्कार) जिस स्वरूपमें बन सकता है ऐसे तुम परमात्माकी मैं शरण आया हूँ॥२६॥ यदि कहो कि-मुझ देवकीपुत्रकी ऐसी सामर्थ्य कहाँसे होसकती है तो सुनो-सकल उपाधियोंसे रहित भी तुम, जैसे लीला करके धारण करे हुए मत्स्य आदि अनेकों प्रकारके अवतारोंसे देवताओंका पालन करते हो, उनके निमित्त ही वर्णाश्रमधर्मकी रक्षा करते हो और उनके निमित्त ही उन धर्मोंका आचरण करने वाले साधुओंकी और उसका अङ्ग होनेके कारण, धर्ममार्गको छोड़ हिंसामार्गका अवलम्बन करनेवाले दैत्य आदिकोंका संहार करते हो, इसी प्रकार यह भी तुम्हारा अवतार भूमिका भार दूर करनेके निमित्त है, तुम किसीके पुत्र नहीं हो ॥ २७ ॥

यदाशानुबद्धाः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् । यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥२९॥ इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः । बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः । मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥ तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना । चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान् भवः । भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच । त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये । यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी । चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः । प्रजापतिर्हृदयं यस्य

हे प्रभो ! प्रथम शान्त और पीछेसे असह्य प्रतीत होनेवाले, तुम्हारे तेजःस्वरूप अतिभयंकर ज्वरसे मैं सन्तापको प्राप्त होरहा हूँ, हे भगवन ! प्राणियोंको तब तक ही ताप होते हैं कि-जब तक वह आशाओंमें बँधे हुए तुम्हारे चरणतलको सेवन नहीं करते हैं॥२८॥श्रीभगवान्ने कहा कि-हे तीन शिरवाले ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, मेरे ज्वरसे जो तुझे भय प्राप्त होरहा है सो दूर हो, और जो कोई हम दोनोंके (तेरे और मेरे) इस सम्वादको स्मरण करें उनको तुझसे भय न हो ॥ २९ ॥ इसप्रकार भगवान्का कहा हुआ वह माहेश्वर ज्वर अच्युत भगवान् श्रीकृष्णजीको मस्तक नमा प्रणाम करके तहाँसे चला गया, इधर बाणासुर रथ पर चढ़कर युद्ध करनेकी इच्छा करता हुआ जनार्दन श्रीकृष्ण भगवान्के समीप पहुँचा॥३०॥ हे राजन् ! तदनन्तर परम क्रोधमें भरा हुआ सहस्रों भुजाओंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करे हुए वह बाणासुर चक्रधारी श्रीकृष्णजीके ऊपर बाणोंको छोड़ने लगा ३१ निरन्तर अस्त्रोंको छोडते हुए तिस बाणासुरकी भुजाओंको भगवान्ने चक्रसे वनस्पति (वृक्ष) की शाखाओंकी समान काट डाला ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बाणासुरके बाहु काट डालने पर, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले भगवान् शंकर, समीप जाकर उन चक्रधारी श्रीकृष्णजीसे ऐसा कहने लगे ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र भगवान्ने कहा कि-हे श्रीकृष्ण ! तुम्हें न जानकर यह तुम्हारे साथ युद्ध करता है, यह कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि-जो शब्दरूप वेदमें वाणीका अगोचर वर्णन करा हुआ और सूर्य आदिका प्रकाशक ब्रह्म है वह ही तुम हो, जिन तुमको शुद्धचित्त हुए पुरुष, आकाशकी समान व्याप्त होकर रहनेवाले और सर्वदोषरहित देखते हैं ॥३४॥ अब, तुम निर्गुणका ज्ञान तो अलग रहे परन्तु तुम्हारे लीलासे स्वीकार करे हुए इस ब्रह्माण्ड देहका भी ज्ञान नहीं होता है ऐसे कहनेके निमित्त विराट्स्वरूपकी स्तुति करते हैं कि—जिन तुम्हारी नाभि आकाश है, मुख अग्नि है, वीर्य जल है, मस्तक स्वर्ग है, कान दिशा हैं, चरण भूमि है, मन चन्द्रमा है, दृष्टि सूर्य है, अहङ्कार मैं शिव हूँ, पेट समुद्र है और बाहु इन्द्र है ॥ ३५ ॥ जिनके रोम औषधि हैं,केश मेघ हैं बुद्धि ब्रह्माजी हैं, शिश्न प्रजापति हैं और जिनका हृदय धर्म

धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥ ३६ ॥ सवावतारोऽयमकुण्ठधामन् धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय । वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ३७ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः । प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८ ॥ यथैव सूर्यः पिहितः स्वच्छायया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति । एवंगुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥ देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः । यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥४१॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् । विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः । सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥४३॥ तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं

है, ऐसे तुम सब लोकों करके वर्णन करे हुए विराट्रूप हो ॥ ३६ ॥ अब, सात बिलस्तके देहवाले मेरे नाभि आदि अङ्ग आकाश आदिरूप कैसे होसकते हैं ? ऐसा कहो तो-हे अच्युतस्वरूप ! यह तुम्हारा श्रीकृष्णावतार, धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त, जगत्के कल्याणके निमित्त, जगत्की उन्नतिके निमित्त, और हमारे ऊपर भी अनुग्रह करनेके निमित्त हुआ है, क्योंकि-हम सब ही लोकपाल, तुम हमारी रक्षा करो तब ही भूलोकादि भुवनोंकी रक्षा करते हैं, नहीं तो स्वतन्त्र नहीं हैं ३७ स्वतन्त्र ईश्वर तो तुम ही हो, क्योंकि-तुम ही एक जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीन अवस्थाओंवाले जीवोंके प्रकृतिभूत पुरुष, शुद्ध, स्वप्रकाशज्ञानरूप, अद्वितीय, सबके कारण और वास्तवमें कारणरहित ईश्वर हो तथापि सब विषयोंका प्रकाश होनेके निमित्त अपनी मायासे देव-तिर्यक् मनुष्य आदि स्वरूपवाले प्रतीत होते हो ॥ ३८ ॥ तो क्या फिर मैं संसारी हूँ ऐसा कहते हो ? नहीं नहीं हे व्यापक ! जैसे सूर्य अपनी मेघरूप छायासे लोकदृष्टिमें ढका हुआसा दीखता है परन्तु वह उस मेघको और मेघकी आड़में हुए घटादि पदार्थोंको प्रकाशित करता है, इसी प्रकार जीवोंको ढकने वाले कार्यरूप अहंकारसे जीवोंकी दृष्टि में आच्छादित हुएसे दीखनेवाले भी, तुम, स्वप्रकाश होनेके कारण उन देह इन्द्रियादि गुणोंको और उन गुणोंसे युक्त जीवोंको प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ जिन तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि हुए पुरुष, पुत्र स्त्री, घर आदिकोंमें आसक्त होकर दुःखसागरके बिषैं कभी तो देवता आदि योनियोंमें और कभी स्थावर आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥ इससे कर्मोंके अध्यक्ष जो तुम तिन तुम्हारा दिया हुआ यह मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर भी, रात दिन विषयोंमें आसक्त हुआ जो पुरुष, तुम्हारे चरणकी सेवा नहीं करता है वह अपनेको ही धोखा देनेवाला होने के कारण शोचनीय है ॥ ४१ ॥ क्योंकि-जो मनुष्य तुमसे भिन्न पुत्रादि विषयोंके निमित्त, आत्मा प्रिय तुम प्रभुको त्याग देता है (सेवा नहीं करता है) उस पुरुष को ऐसा समझना चाहिये जैसे अमृतको छोड़कर विष खाता है ॥४२॥ इस कारण मैं, ब्रह्माजी, अन्य देवता और शुद्धचित्त हुए सब ऋषि, यह सब ही हम, अपने

प्रशांतं सुहृदात्मदैवम्। अनन्यमेकं जगदात्मकेतुं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥४४॥ अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव। संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच। यदात्थ भगवंस्त्वन्नः करवाम प्रियं तव। भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥ अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः। प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥४७॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया। सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥ चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यत्यजरामरः। पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥४९॥ इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः। प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ॥ ५० ॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलंकृतम्। सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥ स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षित-

---

आत्मा अतिप्रिय तुम ईश्वरकी सब प्रकार शरण हैं ॥ ४३ ॥ और संसारका नाश होनेके निमित्त, जगत्की, उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण, सबोंमें समान, अत्यन्त शांत, समानादि भेदरहित, एक, जगत्के और जीवोंके अधिष्ठान, बुद्धिके प्रेरणा करनेवाले, सर्वात्मा और ईश्वर ऐसे आपकी ही सेवा करते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार आप ही भक्त रहनेकी प्रार्थना करके अब अपने भक्त (बाणासुर) का कल्याण होनेकी इच्छा करते हैं-यह बाणासुर मेरा सेवक होनेके कारण मुझे प्रिय और प्रेम करनेवाला है इस कारण हे देव ! मैंने इसको अभय दिया है, सो जैसे तुमने प्रह्लादके ऊपर अनुग्रह करा है तैसे ही इसके ऊपर भी तुम अपना अनुग्रह करो अर्थात् इसको मने जो अभयवचन दिया है सो सत्य करो४५इसप्रकार प्रार्थना करने पर प्रसन्न हुए श्रीभगवान् कहनेलगे कि-हे भगवन् ! (शंकर)मुझसे जो तुमने कहा सो तैसे ही तुम्हारा प्रिय कार्य मैं करता हूँ, अब बाहु काटीं यह भी, 'निश्चय मुझसमानके साथ तेरा घमण्ड दूर करने वाला युद्ध होयगा ऐसा' जो कहा था उस का ही मैंने, तिसी प्रकार उत्तमतासे समर्थन करा है इसमें तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं हुआ ॥ ४६ ॥ राजा बलि मेरा भक्त था इस कारण उसके पुत्र इस असुरको, मुझे भी मारना उचित नहीं है; क्योंकि मैंने प्रह्लादको यह वरदान दिया था कि-तेरे वंशके पुरुषोंका वध नहीं करूँगा ॥ ४७ ॥ दर्प दूर करनेके निमित्त मैंने इसकी भुजा काटी हैं और पृथ्वीका भाररूप जो बहुतसी सेना थी उसको भी मैंने मार डाला है ॥ ४८ ॥अब इसकी चार भुजा शेष रहा हैं सो अजर अमर होंगी, तैसे ही यह दैत्य होकर भी जो तुम्हें प्रिय हुआ है इस कारण यह तुम्हारे पार्षदोंमें मुख्य होगा और कहीं भी जिसको भय नहीं ऐसा (निर्भय) होयगा ॥ ४९ ॥ इस प्रकार भगवान्के वचनसे अभय प्राप्त होने पर, वह बाणासुर, मस्तकसे श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके,ऊषा स्त्रीसहित अनिरुद्धको रथ पर बैठाल कर तहाँ लाया ॥ ५० ॥ फिर श्रीरुद्रभगवान्ने द्वारकामें जानेके निमित्त जिनको अनुमति दी है ऐसे श्री-कृष्णजी, दहेजमें दीहुई एक अक्षौहिणी सेनाको चारों ओर लेकर और उत्तम वस्त्र आदिकोंसे भूषित तिस स्त्रीसहित अनिरुद्धको आगे करके चलदिये ॥ ५१ ॥ तद्-

मार्गचत्वराम् । विवेश शंखानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ५२ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् । संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

श्रीशुक उवाच । एकदोपवनं राजन् जग्मुर्यदुकुमारकाः । विहर्तुं सांबप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वंतः पिपासिताः । जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् २ कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः । तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥ चर्मजैस्तांतवैः पाशैर्बध्वा पतितमर्भकाः । नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविंदाक्षो भगवान्विश्वभावनः । वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥ स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् । संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणांबरस्रक् ॥६॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।

नन्तर द्वारकामेंके पुरुषोंने,मित्र और ब्राह्मणोंके साथ सन्मुख आकर जिनका सत्कार करा है ऐसे तिन श्रीकृष्णजीने, शंख, नगाड़े दुंदुभि आदि बाजोंके शब्दके साथ, वन्दनवारों सहित झण्डियोंसे शोभायमान और जिसमें मार्ग और आँगनोंको छिड़का गया है ऐसी उस अपनी द्वारका राजधानीमें प्रवेश करा ॥५२॥ हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णजीके विजयका और शंकर भगवान्के साथ हुए युद्धका जो पुरुष प्रातःकालके समय उठकर स्मरण करेगा, शत्रुओंसे उसकी पराजय कभी भी नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ छ ❀ छ

अब आगे इस चौंसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने राजा नृगको पापसे छुड़ाया, और घमण्डी राजाओंको ब्राह्मणोंके धन हरनेका दोष वर्णन करके शिक्षा करी यह कथा वर्णन करी है ॥ ❀ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! एकसमय प्रद्युम्न चारु,भानु,गद आदि यादवकुमार क्रीड़ा करनेके निमित्त बगीचेमें गये।१। और उस बगीचेमें बहुत समयतक क्रीडा करके पियाससे घबड़ाये हुए उन्होंने जलको ढूंढ़ते हुए एक जलहीन कुएमें रहनेवाला एक अद्भुत प्राणी देखा॥२॥उस पर्वतकी समान बड़े घिरघटको देख कर विस्मित चित्त और कृपायुक्त हुए वह कुमार, उसको कुए मेंसे बाहर निकालनेका उद्योग करने लगे ॥ ३ ॥ वह बालक कुएमें पड़े हुए घिरघटको चमड़ेकी और सूतकी डोरियोंसे बाँध कर बाहरको निकालने लगे परन्तु उसको कुएमेंसे बाहर निकालनेको वह समर्थ नहीं हुए तब उसको बाहर निकालने के विषयमें उत्कण्ठित हुए तिन बालकोंने वह समाचार श्रीकृष्णजीसे सुनाया ४ तब विश्वपालक वह भगवान् श्रीकृष्णजी, तहाँ आये और उसको देख कर उन्होंने बायें हाथसे ही अनायासमें कुएके बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥ तब उत्तम श्लोक भगवान्के हाथसे स्पर्श करा हुआ वह प्राणी, तत्काल घिरघटके स्वरूपको त्यागकर जिसका वर्ण तपाये हुए सुवर्णकी समान सुन्दर है, जो अद्भुत आभूषण वस्त्र और माला धारण करे हुए हैं ऐसा देवतारूप होगया ॥ ६ ॥ उसका घिरघटका जन्म

कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र। आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ८ श्रीशुक उवाच । इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्त्तिना। माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृग उवाच । नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो । दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम ॥ १० ॥ किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः। कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ११ यावन्त्यः सिकता भूमेर्यावन्त्यो दिवि तारकाः । यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥१२॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः। न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः। तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः । वासांसि रत्नानि परिच्छदान् रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥

होनेके कारणको जाननेवाले भी श्रीकृष्णजीने उसको लोकमें प्रसिद्ध करनेके निमित्त उससे बूझा कि हे महाभाग ! अतिसुंदर स्वरूप तू कौन है ? मैं तो तुझे श्रेष्ठ देवता समझता हूँ ॥ ७ ॥ हे कल्याणमूर्त्ते ! इस गिरगटकी योनिको प्राप्त न होने योग्य भी तू इस दशाको किस कर्मसे प्राप्त हुआ है ? तथा पहिले तू कौन था ? यह सब तेरे मुखसे सुननेकी इच्छा करने वाले हमें, यदि तुझे हमसे कहनेके योग्य प्रतीत होता होय तो तू अपना वृत्तान्त हमसे कथन कर ८ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार अनन्तमूर्त्ति श्रीकृष्णजीसे प्रश्न करा हुआ वह राजा नृग, सूर्यकी समान वर्णके किरीटको धारण करेहुए अपने मस्तकसे श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके कहने लगा कि-॥ ९ ॥ राजा नृगने कहा कि-हे प्रभो ! मैं इक्ष्वाकु राजाका पुत्र नृग नाम वाला राजा हूँ; दान करने वाले पुरुषोंका वृत्तांत चलते समय, मेरी वार्त्ता भी आप के कानोंमें कभी तो पहुँची होगी ! ॥ १० ॥ हे नाथ ! सकल प्राणियोंकी बुद्धियोंके साक्षी और जिनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता ऐसे तुमको न समझा हुआ क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं है तथापि आपने बूझा इस कारण मैं आपके प्रश्नका उत्तर कहता हूँ ॥ ११ ॥ भूमिमें जितने बालुके कण हैं, अथवा आकाशमें जितने तारे हैं अथवा वर्षा होते समय जितनी जलकी धारा गिरती हैं उतनी ही गौएं मैंने दान दी हैं ॥ १२ ॥ वह गौएँ, बहुतसा दूध देने वालीं, पहलौन ब्याही हुई, सुन्दर स्वभाव और सुन्दर रूपवालीं, बहुतसा घी उत्पन्न होनेके गुणसे युक्त, कपिल वर्ण, सींगोंमें सुवर्णसे मँढ़ी हुईं, न्यायसे पाई हुईं, चाँदीसे खुर मँढ़ी हुईं; झूलें, सुवर्णके फूलों की माला और भूषण धारण करे हुए बछड़ों सहित मैंने दी हैं ॥ १३ ॥ और वह भी तो वैराग्य आदि गुणोंसे तथा शांति आदि स्वभावोंसे युक्त, कुटुंबवत्सल, सदाचार, तपस्यासे प्रसिद्ध शिष्योंको वेद पढ़ानेमें अतिउदार, समचित्त तरुण और अलंकारोंसे पूजित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दी हैं ॥ १४ ॥ केवल गौ ही नहीं दी हैं किन्तु भूमि, सुवर्ण, घर, घोडे, हाथी, दासियों सहित कन्या, तिलोंके पर्वत, चाँदी, शय्या

कस्यचिद् द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने । संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् । ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥ विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ । भवान् दाताऽपहर्त्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद् भ्रमः ॥१८॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै । गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवंताऽनुगृह्णीतां किंकरस्याविजानतः । समुद्धरत मां कृच्छ्रात्पतंतं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् । नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् । यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते २२-

वस्त्र, रत्न, पात्र और रथ भी दिये हैं, अग्निष्टोम आदि यज्ञ किये, बावड़ी, कुए, तालाब, और देवमन्दिर बनवाये तैसे ही अन्नके सत्र भी लगाए हैं ॥ १५ ॥ ऐसा होते २ मुझे एक यह संकट प्राप्त हुआ कि-प्रतिग्रह न लेनेवाले किसी एक ब्राह्मण की गौ, जहाँ बँधी थी उस स्थानसे बछड़े सहित खुल कर मेरी गौओंमें आमिली और वह, यह ब्राह्मणकी है ऐसा न जानने वाले मैंने दूसरे ब्राह्मणको देदी ॥ १६ ॥ उस दीहुई गौको ब्राह्मणके लेजातेमें उसके स्वामीने देख कर उस ब्राह्मणसे कहा कि-यह गौ मेरी है और उस दानरूपसे गौको लेजाने वाले ब्राह्मणने भी कहा कि-यह गौ मेरी है और मुझे अब ही राजा नृगने दी है ॥१७॥ इस प्रकार परस्पर विवाद करने वाले और स्वार्थसाधक (मेरे मुखसे निर्णय होजाने पर गौको लेजानेको उत्कण्ठित) वह दोनों ही ब्राह्मण, मेरे समीप आकर मुझसे कहने लगे, उनमेंसे प्रतिग्रह लेने वालेने कहा कि-हे राजन् ! तुमने अभी मुझे यह गौ दी है इस कारण यह मेरी है, ऐसा होते हुए यह ब्राह्मण मेरी है ऐसा कहता है, गौके स्वामीने कहा कि-'यह गौ मेरी है ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है, वह तुमने अपहार करके ब्राह्मणको दी है, उन दोनोंका भाषण सुनकर मैं व्याकुल हुआ१८और दूसरेकी गौ दूसरेको देना यह अपहार कहाता है,अब जिसकी तिसको दिलवाऊँ तो प्रतिग्रह लेनेवालेसे अपहार होता है,इसप्रकार दोनों ओरसे धर्मसंकटमें पड़ेहुए मैंने उन दोनों ब्राह्मणोंसे प्रार्थना करी कि-दूसरी उत्तम लाख गौएँ तुम दोनोंमेंसे एकको देता हूँ,वह यह गौ दूसरेको (स्वामी दान लेनेवालेको अथवा दान लेनावाला स्वामीको) देदेय॥१९॥तुम दोनों, न जाननेवाले मुझ सेवकके ऊपर अनुग्रह करो गौके अपहाररूप दोषसे अमङ्गलरूप नरकमें पड़नेवाले मेरा, इस परिवर्त्तनमें लाख गौ लेने रूप अनुग्रहसे उद्धार करो ॥ २० ॥ तब गौका स्वामी कहने लगा कि-हे राजन् ! तुम लाख गौ देनेको समर्थ हो तथापि गौका वेचना निषिद्ध है इस कारण मैं बदलेमें दी हुई तुम्हारी लाख गौओंकी भी इच्छा नहीं करता हूँ ऐसा कहकर वह अपनी गौ लेकर चला गया और प्रतिग्राही (दान लेने वाला) भी 'हे राजन् ! लक्ष तो क्या परन्तु तिसके ऊपर यदि और भी दशसहस्र गौएँ देय तो भी इस गौके विना मैं उनकी इच्छा नहीं रखता हूँ' ऐसा कहकर वह भी चलागया ॥ २१ ॥ धर्ममें इतना अन्तर पड़नेके कारण मरणको प्राप्त होने पर मुझे यमके दूत यमलोकमें ले गये, हे देवदेव ! हे

पूर्वं त्वमशुभं भुंक्षे उताहो नृपते शुभम् । नांतं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः
पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः । तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो २४
ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव । स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्श-
नार्थिनः ॥२५॥ स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्वि-
भाव्यः । साक्षादधोक्षज उरुव्यसनांधबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवाऽपवर्गः २६
देवदेव जगन्नाथ गोविंद पुरुषोत्तम । नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय २७
अनुजानीहि मां कृष्ण यांतं देवगतिं प्रभो । यत्र क्वापि गतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदा-
स्पदम् ॥२८॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । कृष्णाय वासुदेवाय योगानां
पतये नमः ॥२९॥ इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना । अनुज्ञातो विमा-

जगत्पते ! तहाँ मुझसे यमने बूझा कि-॥ २२ ॥ हे राजन् ! पहिले तू क्या पापका फल भोगेगा ? अथवा पुण्यकर्मोंका फल भोगता है ? तेरे दानपुण्योंका, धर्मपुण्यों का और स्वर्गादिलोक प्राप्तिके प्रकाशित होनेवाले पुण्यफलोंका मैं अन्त नहीं देखता हूँ ॥ २३ ॥ तब मैंने कहा कि-हे धर्मराज ! मैं पहिले पापकर्मका फल भोगता हूँ तब उन यमराजने कहा कि-जा तू नीच योनिमें, हे प्रभो ! इतने ही में नीचयोनि में जानेवाले अपनेको मैंने गिरगटरूप देखा ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणोंका भक्त, दानशूर, तुम्हारा दास और तुम्हारे दर्शनसे ही पापरहित हुआ ऐसे मेरी स्मरण-शक्ति अब भी नष्ट नहीं हुई है ॥ २५ ॥ अब दुर्घट श्रीकृष्णजीके दर्शनसे विस्मित होकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करता है कि-हे विभो ! जो तुम, योगीश्वरोंको भी उपनिषद्रूप दृष्टिसे, निर्मल हृदयमें केवल ध्यान करनेके योग्य ऐसे साक्षात् अधोक्षज परमात्मा हो ऐसे, तुम अनेकों व्यसनोंसे अन्ध बुद्धि हुए मेरी दृष्टिके सामने किस भाग्यके उदयसे हुए हो ! क्योंकि-इस संसारमें जिन पुरुषोंके संसार की समाप्ति होय उनको ही तुम प्रत्यक्ष दर्शन देते हो औरोंको नहीं ॥२६॥ अब भक्ति के वशीभूत होकर बहुतसे सम्बोधन देते हुए कहते हैं कि-हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे गोविन्द ! हे पुरुषोत्तम ! हे नारायण ! हे हृषीकेश ! हे पुण्यकीर्ते ! हे अच्युत ! हे अविनाशिस्वरूप ! हे प्रभो ! हे कृष्ण ! अब स्वर्गलोकको जानेवाले मुझको जाने की आज्ञा दीजिये, कर्मके वशमें होकर कहीं भी होनेवाले मेरा चित्त तुम्हारे चरण ही जिसका विषय (स्मरण करनेके योग्य आश्रय) हैं ऐसा हो ॥ २७ ॥ २८ ॥ जातेमें नमस्कार करता है कि-जिनके द्वारा सर्व जगत्की उत्पत्ति हुई है, जो कर्त्ता होकर भी निर्विकार हैं, जिनकी माया नामक शक्ति अनन्त है, जो सकल प्राणियोंके आश्रय हैं और जो इष्टापूर्त ÷ आदि कर्मोंका फल देनेवाले हैं ऐसे तुम कृष्ण (सदानन्दरूप) को नमस्कार हो ॥२९॥ इस प्रकार कहकर उन श्रीकृष्णजी की प्रदक्षिणा करके अपने मस्तकसे उनके चरणोंको स्पर्श करते हुए नमस्कार करके, उनके आज्ञा देने पर सकल मनुष्योंके देखते हुए वह आये हुए श्रेष्ठ विमान

÷ इससे यह जताया कि-परमानन्दरूप तुम्हें छोड़कर जानेकी इच्छा करनेवाला भी मैं, तुम्हारे दिये हुए कर्मफलको भोगने जाता हूँ ॥

नामग्रमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥३०॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः। ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि। तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया। ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥ हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति। कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम्। प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्यांधा नात्मपातं विचक्षते। निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रंदतामश्रुबिन्दवः। विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरंकुशाः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥३८॥ स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः। षष्टिर्वर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्-

---

में चढ़ा ॥ ३० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणोंके हितकारी देव, धर्मात्मा, भगवान् श्रीकृष्णजी, राजाओंको शिक्षा देते हुए तहाँ आये हुए लोकोंसे कहने लगे कि-॥ ३१ ॥ अरे लोगो ! क्या आश्चर्य कहूँ ! थोड़ेसे भी ब्राह्मणके धनका भोग करने पर वह ब्रह्मधन, अग्निकी समान तेजस्वी पुरुषसे भी किसी प्रकार जीर्ण (हजम) करनेमें नहीं आता फिर हम समर्थ हैं ऐसा व्यर्थ अभिमान रखनेवाले राजाओंसे जीर्ण (हजम) किया जायगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥ ३२ ॥ मैं तो, जिसके दूर करनेका उपाय है ऐसे लोकोंको जलानेवाले हालाहल नामक विषको भी विष नहीं मानता हूँ, किन्तु ब्राह्मणोंके धनको ही विष मानता हूँ, क्योंकि-जिसको हटानेका उपाय है ही नहीं ॥३३॥ अब विष और अग्निसे भी ब्राह्मणका धन भयंकर है ऐसा कहते हैं-विष एक भक्षण करनेवालेको ही मार डालता हैं, दूसरोंको नहीं मारता है, अग्नि जलोंसे शान्त होजाता है, कदाचित् वह वन आदिको जला भी डाले तो उसकी मूल (जड़ें) शेष रह जाती हैं परन्तु ब्राह्मणके धनरूप अरणिकाठसे उत्पन्न हुआ अग्नि तो कुलको समूल भस्म कर डालता है ॥ ३४ ॥ धरोहड रक्खे हुए ब्राह्मणका धन, स्वामीकी आज्ञाके विना भोगने पर वह तीन पुरुष पर्यन्त कुलको अधोगतिमें पहुँचाता है, और बलसे हठ करके भोगा हुआ द्रव्य हरण करनेवालेके पहिले दश और आगेके दश तथा इक्कीसवाँ आप, इतनोंको अधोगतिमें पहुँचाता है ॥ ३५ ॥ इस कारण राजलक्ष्मीसे अन्धे हुए जो मूर्ख राजे, नरकमें पहुँचानेवाले, ब्राह्मणके धनकी इच्छा करते हैं वह यह नहीं देखते कि-हमारा नरकपात होगा।३६ वेदोंका दान, (पढ़ाना) करनेवाले, कुटुम्बवत्सल और आजीवकाका हरण होनेसे रोनेवाले ब्राह्मणोंके नेत्रोंमेंसे गिरी हुई आँसुओंकी बूंदें जितनी पृथिवीकी धूलिके कणोंको भिगोती है उतने वर्षों तक उन ब्राह्मणोंकी आजीविका छीननेवाले निरंकुश राजे तथा उस राजकुलका आश्रय करनेवाले मन्त्री आदि कुंभीपाक नरकमें क्लेशोंको भोगते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ अपनी दी हुई वा दूसरेकी दी हुई ब्राह्मणकी आजीविकाका जो पुरुष हरण करता है वह, साठ सहस्र वर्षों तक विष्ठामें कीड़ा

गृह्णाऽल्पायुषो नृपाः । पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः । तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः । अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः । पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

श्रीशुक उवाच । बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः । सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च । रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥ चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः । इत्या-

---

होता है ॥ ३९ ॥ इस कारण मुझको ब्राह्मणका द्रव्य हरण करनेकी इच्छा कभी न हो, जिस धनकी इच्छा करनेवाले पुरुष, थोड़ी आयुवाले, और राज्यसे भ्रष्ट हो जाते हैं तथा मरणके अनन्तर वह दूसरोंको भय देनेवाले सर्प होते हैं ॥ ४० ॥ इससे हे लोगो ! तुम मेरे हो इस कारण तुमसे कहता हूँ सुनो अपराध करनेवाले, बहुत शाप आदि देने वाले अथवा किसी अवसर पर ताड़ना भी करनेवाले ब्राह्मणोंसे तुम कभी भी द्रोह न करो, किन्तु उनको नित्य नमस्कार ही करो ॥ ४१ ॥ जैसे मैं प्रातःकाल मध्याह्न और सायंकालके समय तथा और दूसरे किसी भी समय एकाग्रचित्तसे ब्राह्मणोंको नमस्कार करता हूँ तैसे ही तुम भी नमस्कार करो, इस प्रकार जो नहीं करेगा वह मुझसे दण्ड पावेगा ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणका धन हरने पर वह धन उस हरनेवालेको नरकमें डालता है, यह केवल भय दिखाना ही नहीं है किन्तु प्रत्यक्ष है देखो-उस ब्राह्मणकी गौ, न जाननेवाले भी इस महादानी राजा नृगके, अधोयोनिमें पडनेको कारण हुई फिर जान बूझ कर हरण करा हुआ ब्राह्मणका धन, उस हरण करनेवालेके अधःपातका कारण होगा इसका तो कहना ही क्या ! ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सब लोकोंको पवित्र करनेवाले और मुक्ति देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजी, द्वारकावासी लोकोंको धर्मका रहस्य सुनाकर फिर अपने स्थानको चलेगये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ छ छ छ छ

अब पैंसठवें अध्यायमें गोकुलको आयेहुए बलरामजीने, गोपियोंके साथ क्रीडा करतेहुए यमुना नदीका आकर्षण करा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी ने कहा कि-हे राजन् ! एक समय, नन्द आदि बान्धवोंको देखनेकी इच्छा करने वाले और उनमें प्रेम करनेवाले भगवान् बलरामजी, रथ पर बैठकर नन्दजीकी गोकुलको गये १ तब बहुत कालपर्यन्त दर्शन आदिकी इच्छा करनेवाले गोपोंने और गोपियोंने उनको हृदयसे लगाया और उन बलरामजीने यशोदा और नन्द इन दोनों माता पिताओंको प्रणामकरा तब उन्होंने आशीर्वाद देकर इनका अभिनन्दन करा २ कि-हे बलराम ! तुम जगदीश्वर हो इससे तुम श्रीकृष्णसहित चिरकालपर्यन्त

दोर्भ्यांगमालिंग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥३॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवंदितः । यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः । विश्रांतं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥५॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा । कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बांधवा राम सर्वे कुशलमासते । कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥७॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः । निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामं संदर्शनादृताः । कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः । अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति । अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन् पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि । यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः । कथं

हमारी रक्षा करो, ऐसा कहकर उन यशोदा नन्दने, उनको गोदीमें बैठाकर हृदयसे लगाकर आनन्दके आँसुओंसे भिगोदिया३फिर उन्होंने वृद्ध गोपोंको भी यथाविधि प्रणाम करा तब छोटी अवस्थावाले गोपोंने उनको प्रणाम करा, फिर जैसी अपनी मित्रभाव और सम्बंध था उसके अनुसार वह सब गोपोंसे, हास्य हाथ पकड़ना इत्यादिसे मिलकर सुखसे आसन पर बैठ श्रमरहित होने पर उनके चारों ओर आकर बैठे हुए, उनके कुशल बूझे हुए और कमलदलनयन श्रीकृष्णजीकी प्राप्तिके निमित्त सकल विषयोंका त्याग करनेवाले सब गोप उनसे प्रेमके कारण गद्गद हुई वाणीसे यादवोंका कुशल बूझने लगे४-६हे राम ! वसुदेव आदि हमारे सब बांधव आनन्द तो हैं?और हे राम ! अब स्त्री और पुत्रोंसे युक्त हुए तुम कभी हमारा स्मरण करते हो क्या ? ७दुराचारी कंस मरणको प्राप्त हुआ यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता हुई और हमारे वसुदेव आदि मित्रजन भी उसके उपद्रवसे छूटे यह भी अच्छा हुआ तथा कालयवनको और जरासन्ध आदि शत्रुओंको मारकर तथा जीतकर तुम द्वारकारूप किलेमें जाकर रहे यह भी बहुत अच्छा हुआ ॥ ८ ॥ उस समय बलराम जीके प्रेमके साथ देखनेसे आदरको प्राप्त हुई गोपियें, आनन्दके साथ हँसती हुई उनसे बूझने लगीं कि-अब नगरमेंकी स्त्रियोंको प्रेम करने वाले वह श्रीकृष्ण द्वारकामें सुखसे तो रहते हैं ? ॥ ९ ॥ और वह अपने गोप बांधवोंका, पिता नन्द जीका और माता यशोदाका भी कभी स्मरण करते हैं क्या? और वह अपनी माता को देखनेके निमित्त एकाधवार आवेंगे क्या ? और वह महापराक्रमी श्रीकृष्णजी, हमारी, तत्पर होकर करी हुई सेवाका कभी स्मरण करते हैं क्या ? ॥ १० ॥ हे दाशार्ह प्रभो ! त्यागनेको कठिन ऐसे माता, पिता, भ्राता, पति, पुत्र, बहिन आदि स्वजनोंको, जिनकी प्रीतिके लिये हमने त्याग दिया था वह हमें तत्काल त्यागकर, प्रेम बन्धनको अत्यंत तोडकर चले गये, यदि कहो कि—तुमने जाते समय उनको रोक क्यों नहीं लिया तो सुनो-'मैं तुम्हारे उपकारका पलटा करने को कभी समर्थ नहीं होऊँगा' इत्यादि उन मनोहर भाषणोंका स्त्रियें भला कैसे

नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥१२॥ कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः। गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः। यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम्। गतिं प्रेमपरिष्वंगं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥ संकर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः। सांत्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च। रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना। यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८ ॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात्। पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगंधेनाध्यवासयत् १९ तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः। आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ २०

विश्वास न करें? किन्तु विश्वास करना ही पड़ता है सो उन्होंने हमें विश्वास देकर धोखा दिया है ॥ ११ ॥ दूसरी गोपी कहने लगीं कि-हम तो चित्त ठिकाने न होने के कारण चतुर नहीं हैं परन्तु अब नगरकी चतुर स्त्रियें, चञ्चल प्रेमयुक्त और कृतघ्नी उन कृष्णकी बातोंको विश्वाससे कैसे ग्रहण करती होंगी? दूसरी कहने लगीं कि-हमारी समान ही उनकी चित्रविचित्र कथाओंके सुननेसे मोहित होकर और उन के सुन्दरहास्ययुक्त अवलोकनसे उद्दीपितहुए कामदेवके वशमें होकर उनकी बातों को ग्रहण करलेती होंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ दूसरी कहने लगीं कि-अरी गोपियों! इन कृष्णकी कथासे हमें कौन फल प्राप्त होता है? उनके स्मरणसे केवल दुःख ही पड़ता है, इससे दूसरेकी कथा वर्णन करो और उनका हमारे विना समय बीतता है तो उनके विना हमारा भी बीतही जाता है परन्तु विशेषता इतनी है कि-उनका सुखसे बीतता है और हमारा दुःखसे ॥ १४ ॥ इसप्रकार कहनेवालीं और उन श्रीकृष्णके-हास्य, भाषण, सुन्दर अवलोकन, चलना और प्रेमयुक्त आलिंगनका स्मरण करती हुईं वह स्त्रियें रोने लगीं ॥ १५ ॥ उस समय नानाप्रकारकी समझानेकी रीतियोंमें चतुर तिन भगवान् बलरामजीने, मनोहर और विश्वासकारी श्रीकृष्णके सन्देशे कह कर उन गोपियोंको समझाया ॥ १६ ॥ तदनन्तर वह भगवान् बलरामजी, गोपियोंको रतिसुख देते हुए चैत्र और वैशाख इन दो महीनेपर्यंत तिस गोकुलमें रहे ॥ १७ ॥ तब, पूर्णचन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशवान् और चन्द्रमाके उदय होने पर खिलने वालीं कमलिनियोंके सुगन्धयुक्त वायु से सेवन करी हुई यमुनाके तटकी वाटिकामें स्त्रियोंसे घिरे हुए उन बलरामजीने क्रीडा करी ॥ १८ ॥ बलरामजीकी सेवा करनेके निमित्त वरुणकी भेजी हुई, अमृत के साथ उत्पन्न हुई वारुणी नामक मदिरा, वृक्षोंकी खोकलोंमेंसे नीचेको टपककर अपनी गन्धसे उस सब वनको सुगन्धित करने लगी॥१९॥तब वायुने अपनी घ्राण इन्द्रिय (नासिका) के समीप पहुँचायेहुए मधुधाराके उस सुगन्धको ग्रहण करके बलरामजीने तहाँ जाकर स्त्रियोंके साथ उस मदिराका पान करा ॥ २० ॥ और देव

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः । वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः २१
स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया । बिभ्रत्स्मितमुखांभोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः । निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः । अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥२३॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मया हुता । नेष्ये त्वां लांगलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥२४॥
एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् । उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥२५॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् । यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् । मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन् प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान् बलः । विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासितांबरे । भूषणानि महार्हाणि ददौ कांतिः शुभां स्रजम् ॥ २९ ॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य कांचनीम् । रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ ३० ॥

गन्धर्वादिकोंने जिनका चरित्र गाया है ऐसे मत्त और मदसे जिनके नेत्र विह्वल हुए हैं ऐसे वह बलरामजी, स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते हुए वनमें विचरने लगे २१ कण्ठमें पुष्पोंकी माला और एक ही कानमें कुंडल धारण करने वाले, स्वभावसे ही मत्तकी समान दीखनेवाले, नौरत्नोंसे जडी और पैरों पर्यन्त लटकती हुई वैजयंती नामवाली मालासे शोभायमान, पसीनारूप तुषारके कणोंसे भूषित और हास्ययुक्त मुखकमलको धारण करने वाले वह प्रभु बलरामजी, जहाँ आप थे तहाँ ही क्रीड़ा करनेके निमित्त यमुना नदीको बुलाने लगे, तब यह मत्त हैं ऐसा जान कर, अपने वाक्यका अनादर करके तहाँ न आनेवाली यमुनाको उन्होंने कोपमें भरकर, हलकी नोकसे खेंच लिया ॥२२॥२३॥ और कहने लगे कि–अरी दुष्टे ! मेरे बुलाने पर भी जो मेरा अनादर करके तू नहीं आती है तिससे तू जैसे मेरी इच्छानुसार जायगी तैसे तुझे हलकी नोकसे सैंकड़ों प्रवाहोंसे लेजाऊँ ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार ललकारनेके कारण डर कर चकित हुई वह यमुनानदी, देवतारूपसे चरणोंमें गिर कर उन बलरामजीसे ऐसा कहने लगी ॥२५॥ कि–हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! मैं तुम्हारे पराक्रमको भूल गई हूँ, हे जगत्पते ! जिन तुम्हारे सहस्र मस्तकोंमेंसे एक मस्तकने ही यह पृथ्वी धारण करी है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! हे विश्वात्मन् ! हे भक्त वत्सल ! तुम भगवान्की परमसामर्थ्यको न जाननेवाली परन्तु अब शरण आई हुई मुझको 'अज्ञानसे करे हुए अपराधको सह कर' तुम छोड़ देनेकी कृपा करो२७ इसप्रकार प्रार्थना करेहुए उन भगवान् बलरामजीने यमुनाको छोड़ दिया फिर उन्होंने स्त्रियोंके साथ उसके जलमें घुसकर, जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है तैसे, क्रीड़ा करी२८यथेष्टक्रीड़ा करके जलसे बाहर निकलनेवाले उन बलरामजीको, नीलवर्णके वस्त्र, बहुत मूल्यके भूषण और सुवर्णके कमलोंकी माला यह साक्षात् लक्ष्मीने तहाँ प्रकट होकर दिये ॥२९॥ तब नीले वस्त्र पहिनकर और नीले कमलों की माला गलेमें डालकर दूसरे भी आभूषणोंसे शोभायमान और चंदनादिका लेपन

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुना कृष्टवर्त्मना । बलस्यानंतवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१
एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे । रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥
इतिश्रीमद्भागवते म० दश०उ० बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । नंदव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप । वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥१॥ त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः । इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥२॥ दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने । द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥३॥ दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् । कृष्णं कमलपत्राक्षं राजसन्देशमब्रवीत् ॥ ४ ॥ वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः । भूतानामनुकंपार्थं त्वं तु मिथ्याऽभिधां त्यज ॥ ५ ॥ यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत । त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥ ६ ॥
श्रीशुक उवाच । कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौंड्रकस्याल्पमेधसः । उग्रसेनादयः सभ्या उच्च-

लगाये हुए वह बलरामजी इन्द्रके ऐरावत हाथीकी समान शोभायमान होनेलगे३० हे राजन् ! अनन्तपराक्रमी बलरामजीकी सामर्थ्यको प्रकट करने वाली वह यमुना नदी अब भी हलसे खोदे हुए मार्गमेंको बहती हुई निःसन्देह दीखती है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार गोकुलकी स्त्रियोंके विलासोंसे जिनका चित्त, रतिक्रीडामें तत्पर हुआ है ऐसे गोकुलमें क्रीडा करने वाले तिन बलरामजीको चैत्र और वैशाख इन दो महीनोंकी सब रात्रियें एक रात्रिकी समान बीत गई ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ * *

अब आगे छासठवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने, काशीमें जाकर पौंड्रकका और उस के मित्र काशिराजाका वध करा फिर सुदर्शनके द्वारा वध आदि चरित हुआ यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार बलरामजीके नन्दजीकी गोकुलमें जाने पर इधर द्वारकामें, करूपदेशोंके स्वामी अज्ञानी राजा पौंड्रकने, वासुदेव मैं हूँ ऐसा मान कर श्रीकृष्णजीके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ इसको ही स्पष्टरूपसे कहते हैं कि-जगत्का पालन करने वाला भगवान् वासुदेव तू ही प्रकट हुआ है इस प्रकार अज्ञानी पुरुषोंके प्रशंसा करे हुए तिस पौंड्रकने, मैं ऐश्वर्यादि गुणपूर्ण भगवान् वासुदेव हूँ ऐसा माना ॥२॥ और जैसे किसी अज्ञानी बालकको खेलतेमें दूसरे बालक राजा बनालेते हैं तब वह अपनेको ही राजा मानता है तिसी प्रकार मैं ही वासुदेव हूँ ऐसा माननेवाले उस मन्दबुद्धि पौंड्रकने, जिनका माहात्म्य विदित नहीं है ऐसे श्रीकृष्णजीके पास द्वारकामें दूत भेजा ३वह दूत द्वारका में जाकर सुधर्मा सभामें बैठेहुए कमलदलनयन प्रभु श्रीकृष्णजीसे पौंड्रकका संदेशा कहनेलगा४पौंड्रकका वचन दूत कहता है कि-भगवान् वासुदेव एक मैं ही हूँ और प्राणियोंके ऊपर दया करके निमित्त उत्तीर्ण हुआ हूँ, दूसरा कोई वासुदेव नहीं है तू तो झूँठा वासुदेव नाम धारण करता है, इसकारण तू इस नामका त्यागकर५और हे कृष्ण ! तू मूढ़तासे मेरे शंख चक्र आदि चिन्ह धारण करता है उनको त्यागकर मेरी शरण आ, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करनेको उद्यत (तयार) हो ॥ ६ ॥ श्रीशुक-

कैर्जहसुस्तदा ॥ ७ ॥ उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु । उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥ ८ ॥ मुखं तदपिधायाज्ञ कंकगृध्रवटैर्वृतः । शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥९॥ इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् । कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥ १० ॥ पौंडकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः । अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥११॥ तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप । अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौंड्रकं हरिः ॥ १२ ॥ शंखार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् । बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम् ॥ १३ ॥ कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् । अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् । यथा नटं रंगगतं विजहास भृशं हरिः१५ शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः । असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो

देवजीने कहा कि–हे राजन् ! मन्दभाग्य पाडूकके दूतका कहा हुआ वह दुर्वचन सुन कर, उस समय सभामें बैठे हुए उग्रसेन आदि सभ्य बड़े शब्दके साथ हँसने लगे ॥ ७ ॥ फिर सभामें बहुत देरपर्यंत उस पाडूकका हास्य होते रहने पर भगवान् श्रीकृष्णजीने दूतसे कहा कि–तू पौंड्रकसे मेरा वाक्य इसप्रकार कहना कि–हे मूर्ख! जिन धारण करे हुए बनावटी चिन्होंसे तू अपनी प्रशंसा करता है वह चिह्न मैं तुझसे छुटवाता हूँ अथवा वह मैं अपने चक्रादि चिन्ह युद्धमें तेरे ऊपर और तू जिन के साथ अपनी प्रशंसा करता है उन चिन्होंके ऊपर छोड़ता हूँ॥८॥ मेरी शरण आ, ऐसा जो कहा तिसका उत्तर यह है कि–अरे मूढ़ ! जिस मुखसे तू ऐसी बड २ करता है, सो तू मेरे हाथसे मारे जाने पर उस मुखको फैला कर, कंक गिज्ज और वट नाम वाले पक्षियोंसे घिरता हुआ जब रणभूमिमें शयन करेगा तब तहाँ फिरने वाले श्वानादिकोंकी शरणमें जायगा अर्थात् वह तुझे तोड़ २ कर खायँगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार भगवान्के कहेहुए निंदाके वचनोंको सुनकर वह दूत अपने स्वामी पौंड्रकके पास गया और वह सब वृत्तांत सुनाया उस समय वह राजा पौंड्रक अपने मित्रकी काशीनामक नगरीमें था इसकारण श्रीकृष्णजीने भी रथमें बैठकर उस काशीनगरी पर चढ़ाई करी ॥ १० ॥ महारथी पौंड्रक भी, श्रीकृष्णजीका युद्ध करनेका उद्योग देख कर दो अक्षौहिणी सेना साथमें लेकर युद्ध करनेके निमित्त शीघ्र ही नगरमेंसे बाहर निकला ॥ ११ ॥ हे राजन् ! काशिराजा उस पौंड्रकका मित्र था इस कारण वह उसका सहायक होनेके निमित्त अपनी तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसकी सहायता करनेको गया तब श्रीकृष्णजीने पौंड्रकको देखा ॥ १२ ॥ शंख, चक्र, खड्ग,शार्ङ्ग और श्रीवत्स आदि चिन्होंसे प्रतीत होनेवाला,कौस्तुभमणि धारण करे हुए, वनमालासे भूषित, रेशमी पीताम्बर पहिने, बनावटी गरुड़ पर चढ़े हुए, अमूल्य किरीट तथा और भी आभूषणोंको धारण करनेवाला तथा जिसके कानोंमें मकराकार कुण्डल झलक रहे हैं ऐसा था ॥ १३ ॥ १४ ॥ और जैसे नृत्यके स्थानमें राजा आदिका वेष धारण करनेवाला नट होता है तैसे ही, बनावटी, अपनी समान वेष धारण करनेवाले उस पौंड्रकको देखकर श्रीकृष्णजीने बहुत ही हास्य

हरिम् ॥ १६ ॥ कृष्णस्तु तत्पौंड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् । गदासिचक्रेषुभिरार्दयद् भृशं यथा युगांते हुतभुक् पृथक् प्रजाः ॥ १७ ॥ आयोधनं तद्रथवाजिकुंजरद्विपत्खरोष्ट्रैरिणावखण्डितैः । बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥ अथाह पौंड्रकं शौरिर्भो भो पौंड्रक यद्भवान् । दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥१९॥ त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयाज्ञ मृषा धृतम् । व्रजामि शरणं तेद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥ २० ॥ इति क्षिप्त्वाशितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौंड्रकम् । शिरोऽवृश्चद्रथांगेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥ २१ ॥ तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः । न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥ २२ ॥ एवं मत्सरिणं हत्वा पौंड्रकं ससखं हरिः । द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः २३ स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः । बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥ शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् । किमिदं कस्य वा वक्त्र-

---

करा ॥१५॥ तदनन्तर वह शत्रु शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास तोमर, खड्ग, पट्टिश और बाणोंसे श्रीकृष्णजीके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजीने तो, हाथी, रथ, घोड़े और पैदलोंसे युक्त उन पौंड्रक और काशिराजकी सेनाको, गदा, खड्ग, चक्र और बाणोंसे, जैसे प्रलयकालमें अग्नि जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंको पीड़ित करता है तैसे ही पीड़ित करके मार डाला ॥ १७ ॥ उस समय चक्रसे चूरा कर डाले हुए रथ, घोड़े हाथी, सिपाही, गर्दभ और ऊँटोंसे भराहुआ वह युद्धका स्थान, शूर पुरुषोंको हर्षित करता हुआ, प्रलयकालके भयंकर श्रीरुद्र भगवान्‌के क्रीडास्थानकी समान शोभा पाने लगा ॥१८॥ फिर श्रीकृष्णजी पौंड्रकसे कहने लगे कि-अरे रे ! पौंड्रक ! 'जो हमारे चिन्ह धारण करता है उनको त्यागदे ऐसा' जो तूने दूतके द्वारा मुझसे कहला कर भेजा था वह अस्त्र तेरा वध करनेके निमित्त आज तेरे ऊपर छोड़ता हूँ ॥ १९ ॥ और अरे मूर्ख ! वासुदेव जो मेरा नाम मिथ्या ही तू धारण करता है तिसको मैं तुझसे छुटवाता हूँ और यदि युद्धकी इच्छा नहीं होयगी अर्थात् युद्धसे भय मानूँगा तो अब तेरी शरण आऊँगा ॥२०॥ इस प्रकार भाषणसे उसको धिक्कार करके, श्रीकृष्णजीने उस पौंड्रकको तीखे बाणोंसे रथहीन कर दिया और जैसे इन्द्रवज्रसे पर्वतके शिखर तोड़ता है तैसे चक्रसे उनके मस्तक काट डाले ॥ २१ ॥ तैसे ही उसका मित्र जो काशिराजा था उसका शिर बाणोंसे शरीर परसे काट कर उसको, जैसे पवन कमलोंकी कलियों को तोड कर दूर लेजाकर डाल देता है तैसे ही काशीनगरीमें लेजाकर डाल दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार काशिराजा सहित पौंड्रकको मारकर, जिनकी कथारूप अमृतको सिद्धोंने गाया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी द्वारकाको लौट गये ॥ २३ ॥ हे राजन् ! फिर वैरबुद्धिसे, भी करे हुए भगवान्‌के ध्यानसे जिसके कर्मवासनारूप बन्धन नष्ट होगये हैं ऐसा वह पौंड्रक, श्रीहरिकी समान रूप धारण करके अन्तमें तन्मय होगया ॥ २४ ॥ इधर काशीमें राजाके द्वारके समीप कुण्डलों सहित पडा हुआ वह मस्तक देखकर सब लोग, पहिले 'यह क्या है' ऐसा कहकर तदनन्तर

मिति संशयिरे जनाः ॥ २५ ॥ राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः । पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥ २६ ॥ सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः । निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥ २७ ॥ इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् । सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना ॥२८॥ प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्विभुः । पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥ २९ ॥ दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् । अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥ ३० ॥ साधयिष्यति संकल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः । इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥ ३१ ॥ ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥ ३२ ॥ दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया । आलिहन् सृक्विणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥ ३३ ॥ पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कंपयन्नवनीतलम् । सोऽभ्यधावद् वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ॥ ३४ ॥ तमाभि-

कुण्डलसहित मस्तक है, ऐसा जानकर 'किसका मस्तक है' ऐसा, सन्देह करने लगे ॥ २५ ॥ फिर काशिपतिराजाका ही यह मस्तक है ऐसा निश्चय करके, उस की स्त्रियें, पुत्र, भ्राता और पुरवासी लोग, हे राजन् ! हे नाथ ! हे नाथ ! तुम्हारे मरणको प्राप्त होनेसे तुम्हारे अनुयायी हम सब भी मरणको प्राप्त हुएसे होगये हैं, ऐसा कहते हुए रोने लगे ॥ २६ ॥ उस काशिराजाका सुदक्षिण नामवाला पुत्र था, उसने पिताकी अन्तक्रिया करके, अपने पिताको मारनेवाले श्रीकृष्णजीको मारकर मैं पिताके ऋणसे छूटूँगा ऐसा, अपनी बुद्धिसे निश्चय करके, उपाध्यायके साथ वह अतिउदार सुदक्षिण चित्तकी एकाग्रताके साथ अविमुक्तक्षेत्रमें श्रीरुद्रभगवान् की आराधना करने लगा ॥ २७ ॥ २८ ॥ तदनन्तर भगवान् रुद्रने प्रसन्न होकर उससे कहा कि-वर माँग,तब उस सुदक्षिणने, अपना इच्छित, पिताको मारनेवाले के वधका उपायरूप वरदान माँगलिया ॥ २९ ॥ तब श्रीरुद्रने कहा कि-तू ब्राह्मणोंके साथ, शत्रुको मारनेके निमित्त कही हुई विधिसे अपनेमें हवन करनेवालेकी इच्छा के अनुसार बर्त्ताव करनेवाले दक्षिणाग्निकी आराधना कर, तब वह अग्नि, ब्राह्मणों की भक्ति न करनेवाले पुरुषके ऊपर चालाया जायगा तो मेरे प्रमथगणोंसे युक्त होकर तेरे संकल्पको पूरा करेगा (इससे ब्राह्मणोंके भक्त श्रीकृष्णजीके ऊपर चलावेगा तो निरर्थक होगा यह सूचित करा) इस प्रकार आज्ञा करा हुआ वह सुदक्षिण, अभिचारकर्म (मारणका विधान) करता हुआ, भोजन आदिका नियम धारण करके अग्निकी आराधना करने लगा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ तदनन्तर कुण्डमेंसे अतिभयानक अग्नि उत्पन्न हुआ, जिसकी शिखा और दाढ़ी-मूछ तपे हुए ताँबेकी समान हैं, जिसके नेत्र अँगारे उगलनेवाले हैं ॥ ३२ ॥ जिसका मुख दाढोंसे और उग्र भ्रुकुटिदण्डोंसे क्रूर दीख रहा है, जो अपनी जिव्हासे नीचेके और ऊपरके ओठोंके जावड़ों को चाट रहा है और जो नंगा होकर हाथमें तीन नोकवाले त्रिशूलको घुमा रहा है ॥ ३३ ॥ ऐसा वह अभिचारका अग्नि भूत प्रमथ आदि गणोंसे घिरकर दशों दिशाओंको जलता हुआ तालके वृक्षकी समान अपने चरणोंसे भूमण्डलको कँपाता

चारदहनमायान्तं द्वारकौकसः । विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ॥ ३५ ॥ अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः । त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् । शरण्यः संप्रहस्याह माभैष्टेत्यवितास्म्यहम् ॥ ३७ ॥ सर्वस्यांतर्बहिः साक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः । विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ॥ ३८ ॥ तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् । स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥ ३९ ॥ कृत्यानलः प्रतिहतः स रथांगपाणेरस्त्रौजसा स नृप भग्नमुखो निवृत्तः । वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥ ४० ॥ चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् । सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥ ४१ ॥ दग्ध्वा वाराणसीं

कँपाता द्वारका पर चढ़कर गया ॥३४॥ उस आनेवाले अभिचारके अग्निको देखकर द्वारकावासी पुरुष, वनको जलाने पर जैसे हिरन डर कर भाग जाते हैं तैसे ही सब भाग गये ॥३५॥ और सभामें फाँसोंसे क्रीडा करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णजीसे, भयसे घबड़ाए हुए वह द्वारकावासी पुरुष, हे त्रिलोकीनाथ ! इस द्वारकानगरीको जलाते हुए आनेवाले इस अग्निसे तुम हमारी रक्षा करो, रक्षा करो ऐसी प्रार्थना करने लगे ॥ ३६ ॥ वह पुरुषोंकी व्याकुलता सुनकर तैसे ही तिन अपने भक्तोंका दुःख देखकर, रक्षा करनेवाले वह भगवान्, हँसकर कहने लगे कि-तुम कुछ भय न मानो मैं तुम्हारी रक्षा करनेवाला हूँ ॥३७॥ फिर सब जगत्के भीतर और बाहर के भागको प्रत्यक्ष देखनेवाले उन प्रभु श्रीकृष्णजीने, उसको माहेश्वरी कृत्या जान कर, उस कृत्यारूप अग्निका नाश करनेके निमित्त अपने समीपमें वर्त्तमान सुदर्शन चक्रको आज्ञा करी ॥ ३८ ॥ तब करोड़ों सूर्यकी समान देदीप्यमान प्रलयकालके अग्निकी समान जाज्वल्यमान और अपने तेजसे आकाश दिशा, स्वर्ग और भूमि को प्रकाशित करनेवाला वह सुदर्शन नामवाला विष्णु भगवान्का चक्र, तिस अग्निको पीडित करने लगा ॥३९॥ तब हे राजन् ! वह कृत्यारूप अग्नि, श्रीकृष्णजी के चक्रके तेजसे ताडित होनेके कारण मुखमर्दन होने पर पीछेको लौटा और सुदक्षिणके आप ही उत्पन्न करे हुए उस अभिचाररूप अग्निने वाराणसीमें आकर, ऋत्विज और अन्य लोकों सहित तिस सुदक्षिणको जला डाला ॥ ४० ॥ और उस कृत्या अग्निके पीछे २ वाराणसीमें आया हुआ वह विष्णुभगवान्का सुदर्शन चक्र, मच्चान, सभा, घर, बाजार, नगरद्वार और उनके ऊपरके शिखर तथा अन्न भरने के कोठे इनसे भरी हुई और धनके भण्डार, हाथीखाने, घुड़शाल, रथशाला और अन्नशालाओंसे युक्त उस सब वाराणसीको जलाकर फिर वह विष्णुभगवान्का सुदर्शनचक्र, उदारचरित्र उन श्रीकृष्णजीके समीप आगया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो पुरुष, यह उत्तम श्लोक भगवान्का पराक्रम, एकाग्रचित्त होकर श्रोताओंको सुनावेगा

सर्वा विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् । भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४२ ॥ य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् । समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ४३ इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पौंड्रकादिवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६

राजोवाच । भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः । अनंतस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । नरकस्य सखा कश्चिद् द्विविदो नाम वानरः । सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैंदस्य वीर्यवान् ॥ २ ॥ सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम् । पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् । क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत् । आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्तेऽमित्रहा हरिः ।४। क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् । देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानमज्जयत् ॥ ५ ॥ आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् । अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान् खलः ॥ ६ ॥ पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः । निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम् ॥७॥ एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः ।

अथवा आप सुनेगा वह सकल पापोंसे छूट जायगा ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध में षट्षष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ छ छ

अब आगे सड़सठवें अध्यायमें बलरामजीने रैवतक पर्वत पर जाकर तहाँ मद से स्त्रियाके साथ यथेष्ट क्रीड़ा करते हुए, द्विविद नामवाले दुष्ट वानरको वधकरा यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीकृष्णचरित्र सुनकर फिर रामचरित्र सुननेके निमित्त राजाने कहा कि-हे शुकदेवजी ! जिनका प्रमाण (अन्दाज) न होसके ऐसे अनन्त और अद्भुत कर्म करनेवाले बलरामजीका चरित्र सुननेकी मैं फिर इच्छा करता हूँ, सो सब कुछ करनेको समर्थ बलरामजीने, जो और कर्म करे हों वह मुझ से कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन ! द्विविद नामवाला कोई एक वानर था, वह नरकासुरका मित्र (अर्थात् श्रीकृष्णजीका बैरी), सुग्रीवका मंत्री, मैंद वानरका भ्राता और स्वयं पराक्रमी था२ वह द्विविद वानर, मरणको प्राप्त हुए अपने नरकासुर मित्रका ऋण दूर करनेके निमित्त, देशोंका नाश होजाय तिस प्रकार अग्नि लगाकर,नगर,गाँव,खान, ग्वालोंकी मँडइयें सबोंको जलाने लगा३एक समय वह द्विविद वानर, शिलाएँ उखाड़कर उनसे देशोंका चूरा करता था उसी बीच में जहाँ नरकासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णजी रहते थे उस द्वारकाके समीपके आनर्त्त देशोंमें आकर उनको तो विशेषरूपसे चूरा करने लगा ॥ ४ ॥ दश सहस्र हाथीके बलवाला वह वानर, कभी तो समुद्रमें घुसकर अपनी भुजाओंसे उसके जलको उछालकर उससे समुद्रके तटपरके देशोंको डुबाता था ॥ ५ ॥ वह दुष्टात्मा वानर, बड़े २ ऋषियोंके आश्रमोंमेंके वृक्षोंको उखाड़ कर, उनके यज्ञके आहवनीय आदि अग्निमें मूत्र विष्टा करके दूषित करता था ॥६॥ वह दुष्ट वानर पर्वतकी गुहाओं में, पुरुष और स्त्रियोंको डालकर उन गुहाओंके मुख, शिलाओंसे,ऐसे बन्द करदेता था जैसे भृङ्गीनाम वाला कीडा किसी कीड़ेको अपने भट्टमें डालकर उसका मुख बन्द करदेता है ॥ ७ ॥ इस प्रकार देशोंको पीड़ा देनेवाला और कुलीन स्त्रियोंको

श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् । सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥ ९ ॥ गायंतं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् । विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥ दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् । चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥ ११ ॥ तस्य धार्ष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः । हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः १२ ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः । दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षितः ॥ १३ ॥ तं ग्राव्णा प्राहरत् क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः । स वंचयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः । गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन् हसन् ॥ १४ ॥ निर्भिद्य कलशं धृष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम् । कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः ॥१५॥ तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् । क्रुद्धो मुसलमादत्त हलं चारिजिघांसया द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना । अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् ॥ १७ ॥ तं तु संकर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा । प्रतिजग्राह बलवान् सुनन्दे-

दूषित करनेवाला वह द्विविद्वानर, बलरामजीके करे हुए मधुरगानको सुन कर रैवतक पर्वत पर गया ॥ ८ ॥ तिस रैवतकके बगीचेमें यादवोंके अधिपति बलराम जीको उसने देखा, वह बलरामजो कमलोंकी माला धारण करनेवाले तथा जिनके सकल अङ्ग देखने योग्य हैं ऐसे और स्त्रियोंके समूहमें प्रवेश करे हुए,वारुणी मदिरा पीकर गान करने वाले, मदिराके मदसे विह्वल नेत्र वाले और मदोन्मत्त हाथीकी समान अपने शरीरसे प्रकाशवान् थे ॥ ९ ॥ १० ॥ वह दुष्ट वानर वृक्षोंके ऊपर चढ़कर वृक्षोंको हिलाता हिलाता आप ही, बलरामजी और स्त्रियोंकी दृष्टिके सामने पड़ता हुआ वानर जातिका किल किल शब्द करने लगा ॥११॥ उस वानर का उद्धतपना देखकर, स्वभावसे ही चञ्चल और जिनका हास्य प्यारा है तथा जिनको बलदेवजीका आश्रय है ऐसी वह तरुण स्त्रियें, हास्य करने लगीं ॥ १२ ॥ तब वह द्विविद वानर, बलरामजीके देखते हुए उनका अनादर करके भ्रुकुटि चलाना, शरीर परको झपट कर जाना दाँत दिखाना इत्यादि करके उनको अपनी गुदा दिखाता हुआ तिन स्त्रियोंका तिरस्कार करने लगा ॥ १३ ॥ तब प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ तिन बलरामजीने, क्रोधमें भर कर उसके एक पत्थर फेंक कर मारा तब उस धूर्त्त वानरने भी, बलरामजीको क्रोध दिलानेके निमित्त उनके फेंके हुए पत्थरको बचा दियाऔरउनके मद्यके कलशको लेकर भाग गया तथा उनका तिरस्कार करा ॥ १४ ॥ तदनन्तर तिस उद्धत वानरने, कलश फोड़ कर स्त्रियोंके वस्त्र खेंच कर फाड़ डाले, इस प्रकार मदसे ज्ञानहीन हुए तिस वानरने, बलरामजीको तुच्छ मान कर ऐसा अपराध करा ॥ १५ ॥ उस वानरका वह दुष्टपना और उस के दुःखित करे हुए देशोंको देख कर क्रोधमें भरे हुए बलरामजीने उस शत्रुको मारनेके निमित्त हल और मूसल उठाया ॥ १६ ॥ तब उस महापराक्रमी द्विविदने भी, हाथसे सालका वृक्ष उखाड़ कर वेगसे आ, उस शालके वृक्षसे बलरामजीके मस्तक पर प्रहार करा ॥ १७ ॥ मस्तक पर गिरने वाले उस शालके वृक्षको, पर्वत

लाहनच्च तम् ॥१८॥ मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया । गिरिर्यथा गैरिकया प्रहारं नानुचिंतयन् ॥ १९ ॥ पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा । तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ २१ ॥ एवं युद्धयन् भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः । आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥ २२ ॥ ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः । तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥२३॥ स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः । आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २४ ॥ यादवेंद्रोपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललांगले । जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २५ ॥ चकम्पे तेन पतता सटंकः सवनस्पतिः । पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवांभसि ॥ २६ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चांबरे । सुरसिद्धमुनींद्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ।२७।

की समान निश्चल तिन बलरामजीने, हाथसे पकड लिया, और तिन बलवान् संकर्षणने, सुनन्द नाम वाले मूसलसे उसके ऊपर प्रहार करा ॥ १८ ॥ उस समय मूसलकी चोटसे जिसका मस्तक फट गया है ऐसा वह वानर, मस्तकमेंसे वहने वाली रुधिरकी धारासे, जैसे लाल २ गेरुआ बहते हुए प्रवाहसे पर्वत शोभा पाता है तैसे शोभायमान होने लगा, तदनन्तर उस प्रहारको कुछ न गिन कर क्रोधमें भरे हुए तिस वानरने फिर दूसरा शालका वृक्ष उखाड़ कर और उसके पत्ते अलग करके उससे बड़े वेगके साथ बलरामजीके ऊपर प्रहार करा, उस शालकेवृक्षके भी बलरामजीने सैंकड़ों टुकड़े कर डाले ॥ १९ ॥ २० ॥ तदनन्तर उस वानरने, दूसरे शालके वृक्षसे क्रोधमें भर कर बलरामजीके ऊपर प्रहार करा,उसके भी बलरामजी ने सैंकडों टुकड़े करडाले ॥ २१ ॥ इसप्रकार भगवान् बलरामजीके साथ युद्ध करने वाले तिस वानरने, वारम्वार शालके वृक्ष फेंके और वह टुकड़े २ होगये तव सब वृक्षोंको उखाड कर वह वन वृक्षहीन करदिया ॥२२॥ तदनन्तर क्रोधमें भरा हुआ वह वानर, बलरामजीके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, वह सव पत्थरोंकी वर्षा, मूसलरूप शस्त्र धारण करने वाले तिन बलरामजीने, अनायासमें ही चूरा २ कर डाली ॥ २३ ॥ तब उस वानरराजने शालके वृक्षकी समान मोटे अपने हाथोंके घूँसे बनाकर, बलरामजीके समीप जा उन दोनों घूँसोंका उनके वक्षःस्थल पर प्रहार करा ॥ २४ ॥ बलरामजीने भी मूसल और हलको छोड़ कर अपने हाथोंसे उस वानरके कण्ठ और भुजाओं के पुट्ठों पर प्रहार करा तव वह वानर रुधिरकी वमन करता हुआ भूमि पर गिर कर मर गया ॥ २५ ॥ हे राजन् ! गिरने वाले तिस वानरसे, पानीसे भरे हुए बिलों सहित और वृक्षों सहित वह रैवतक पर्वत, जैसे पवनसे जलमें नौका कम्पायमान होती है तैसे कम्पायमान हुआ ॥ २६ ॥ तव बलरामजी के ऊपर फूलोंकी वर्षा करने वाले सिद्ध और ऋषीश्वरोंका, आकाशमें यथायोग्य जयजयकार शब्द, नमोनमः शब्द और बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ।इसप्रकारका शब्द होने लगा॥२७॥इसप्रकार जगत्का नाश करनेवाले द्विविद वानरका वध करके जनोंसे स्तुति करेहुए वह भगवान् बलरामजी, अपनी द्वारका

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम्। संस्तूयमानो भगवान् जनैः स्वपुरमाविशत्॥ २८॥

इति श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

श्रीशुक उवाच। दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिंजयः। स्वयंवरस्थामहरत्सांबो जांबवतीसुतः॥ १॥ कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः। कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात्॥ २॥ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः। येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम्॥३॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यंतीह वृष्णयः। भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः॥ ४॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः। साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः॥ ५॥ दृष्ट्वानुधावतः सांबो धार्तराष्ट्रान्महारथः। प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः॥ ६॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः। आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन्॥ ७॥ सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः। नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंह

नगरीमेंको चले गये॥ २८॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त॥ ६७॥ छ छ छ

अब आगे अड़सठवें अध्यायमें कौरवोंने युद्धमें कृष्णपुत्र साम्बको घेर लिया तब उसको छुटानेके लिये बलरामजीने, हस्तिनापुरका आकर्षण करा यह कथा वर्णन करी है॥ ॥ बलरामजीका दूसरा चरित्र वर्णन करनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! शत्रुओंको जीतनेवाले जाम्बवतीके पुत्र सांबने, स्वयंवरमें दुर्योधनकी लक्ष्मणा नाम वाली कन्याका हरण करा॥ १॥ तब भीष्म आदि कौरव क्रोधमें भर कर कहने लगे कि-यह बालक सांब उद्धत है, जिसने हमें तुच्छ समझ कर इच्छा न करने वाली कन्याका बलात्कारसे हरण करा है॥ २॥ इस कारण इस उद्धत सांबको बाँध लो, उग्रसेन आदि यादव हमारा क्या करेंगे? यदि वह क्रोध भी करें तो हमारा कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि-जो हमारे पराक्रमसे बढ़े हुए और हमारी दीहुई सम्पत्तिको भोगते हैं वह कोई राजे नहीं हैं॥ ३॥ अब, यदि कदाचित्, हमने साम्बको बाँध रक्खा है यह सुन कर वह यादव युद्ध करनेको यहाँ आवेंगे तो घमण्ड नष्ट होने पर, प्राणायाम आदि करके वशमें करी हुई इन्द्रियोंकी समान शांत होजायँगे॥४॥ ऐसा निश्चय करके कर्ण, शल, भूरि, यज्ञकेतु और दुर्योधन यह भीष्मजीके सम्मति देने पर उन भीष्मजीके सहित छहों जने साम्बको बाँधनेके निमित्त उद्यत हुए॥ ५॥ तब उस महारथी साम्बने, अपने पीछे दौड़ने वाले उन धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदिकोंको देखा और, सुन्दर धनुष लेकर वह सिंहकी समान इकला ही खड़ा रहा॥६॥ अब जिनमें कर्ण मुख्य है ऐसे, क्रुद्ध हुए और उसको पकड़नेकी इच्छा करने वाले, तथा उससे 'खड़ा रह, खड़ा रह' ऐसा कहने वाले वह धनुषधारी छहों वीर, उसके समीप आये और उन्होंने बाणोंसे उसको छादिया॥ ७॥ हे कुरुश्रेष्ठ! कौरवोंने चारों ओरसे जिसके ऊपर प्रहार करे हैं परन्तु अचिन्त्य पराक्रमी भगवान्के पुत्र साम्बने, यह उनका ताडन, जैसे

क्षुद्रमृगैरिव ॥८॥ विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः । कर्णादीन् षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥९॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् । रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् । एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि । कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥१२॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः । कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सान्त्वयित्वा तु तान् रामः सन्नद्धान् वृष्णिपुङ्गवान् । नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥ ॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा । ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः । उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् । दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥ तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं

तुच्छ मृगोंसे ताड़ना करा हुआ सिंह उस ताडनाको सहन नहीं करता है तैसे सहन नहीं करा ॥ ८ ॥ किन्तु उस वीरने सुन्दर धनुषका टङ्कार शब्द करके उन सब कर्ण आदि छहों रथियोंको एक साथ निराले निराले छः छः बाण मार कर प्रत्येकको वेध डाला ॥ ९ ॥ वह छः २ बाण इस प्रकार मारे कि—प्रत्येक रथीके चार २ घोडोंको चार २ बाणोंसे, एक २ सारथिको एक २ बाणसे, और एक २ रथीको एक २ बाणसे वेधा तब बड़े भारी धनुषधारी भी कर्ण आदिकोंने साम्बके उस कर्मकी प्रशंसा करी॥१०॥उन कर्ण आदिकोंने तो सबने ही मिलकर तिस इकले साम्बको रथहीन करा, वह इस प्रकार कि-चारने चार घोड़े मारे,एकने सारथीको मारा और छटेने धनुष तोडा ॥ ११ ॥ इस प्रकार युद्धमें उस साम्बको अतिकठिनतासे रथहीन करके और बाँध कर जयको प्राप्त हुए वह कौरव, तिस कुमार और अपने दुर्योधनकी कन्याको लेकर हस्तिनापुरमें चले गये ॥१२॥ इधर द्वारकामें नारदजीके वाक्यसे वह साम्बका बन्धनरूप वृत्तांत सुनकर बडे क्रोधमें भरे हुए और राजा उग्रसेनके आज्ञा करे हुए यादवोंने, कौरवोंके साथ युद्ध करनेका उद्योग करा ॥१३॥ तब कौरवोंमें और यादवोंमें कलह न होय ऐसी इच्छा करनेवाले और कलहके मलको दूर करने वाले बलरामजीने, युद्ध करनेके निमित्त जानेको उद्यत हुए तिन वीर यादवोंको समझाया और, शुक्र आदि ग्रहोंसे युक्त चन्द्रमाकी समान ब्राह्मण और कुलवृद्ध मन्त्रियों सहित वह बलरामजी,सूर्यकी समान दमकते हुए रथमें बैठ कर हस्तिनापुरको गये ॥ १४ ॥ १५ ॥ और शत्रुके नगरमें प्रवेश न करे,इस नीतिके अनुसार हस्तिनापुरके समीप जाकर बाहरके बगीचेमें ठहर गये और उन्होंने कौरवोंका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीको भेजा १६ तब उन उद्धवजीने,सभामें जाकर धृतराष्ट्र,भीष्म,द्रोण,वाह्लिक और दुर्योधनको यथाविधि प्रणाम करके कहा कि-तुम्हारे बगीचेमें बलरामजी आये हुए हैं१७ उस समय परममित्र बलरामजी आये हैं यह सुनकर आनन्दको प्राप्तहुए उन भीष्म आदिकोंने,पहिले उन उद्धवजीका अर्घ्य पाद्य आदिसे पूजन सत्कार करके फिर हाथमें

सुहृत्तमम् । तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ॥ १८ ॥ तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् । तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ॥१९॥ बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् । परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥२०॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः । तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलंबितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् । अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः । कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया । आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः । वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥ चामरव्यजने शंखमातपत्रं च पांडुरम् । किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥ २६ ॥ अलं यदूनां नरदेव-

---

मंगलकारक भेट (नजराना) लेकर वह सब ही बलरामजीके समीप गए १८ तदनन्तर अपनी अवस्था और सम्बन्ध आदि योग्यताके अनुसार तिन बलरामजीसे मिल भेंटकर उनको गौ और पूजनकी सामग्री अर्पण करी, उनमें जो उनके बलका प्रभाव जानने वाले थे उन्होंने बलरामजीको मस्तकसे नमस्कार करा ॥ १९ ॥ तदनन्तर बलरामजीने और उन्होंने परस्पर कुशल मङ्गल बूझा और सब बान्धव आनन्द हैं ऐसा सुननेके अनन्तर बलरामजीने दीनतारहित होकर ऐसा भाषण करा कि-॥ २० ॥ सब राजाओंके स्वामी और समर्थ उग्रसेन राजाने, तुमको जो आज्ञा करी है सो तुम एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुन कर शीघ्र ही उसके अनुसार वर्त्ताव करो ॥ २१ ॥ जो तुम बहुतसोंने मिल कर, धर्मयुद्ध करनेवाले इकले साम्ब को, अधर्मसे जीत कर बाँध लिया है सो वह तुम्हारा अपराध मैंने, हम-तुम बान्धवोंमें एकता रहे इस इच्छासे सह लिया है किन्तु अब शीघ्र ही उस साम्बको लाकर समर्पण करो ॥ २२ ॥ इस प्रकार पराक्रम उत्साह और शरीरकी सामर्थ्यसे उच्छृंखल और अपनी ईश्वरीय शक्तिके योग्य बलरामजीका भाषण सुन कर, उस भाषणसे अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए कौरव कहने लगे कि-॥ २३ ॥ अहो ! जिसको दूर करना कठिन है ऐसी कालगतिसे यह कैसा बड़ा आश्चर्य हुआ है कि-इससमय चर्मपादुका (जूती) किरीट करके सेवन करे हुए मस्तक पर चढ़नेकी इच्छा करती है अर्थात् चर्मपादुकाकी समान यह यादव, किरीटसे शोभायमान मस्तककी समान जो हम तिनको आज्ञा करते हैं यह बड़े आश्चर्यकी बात है ! ॥ २४ ॥ यह यादव, कुन्तीका विवाह होनेके समयसे हमसे मिले हैं, इसकारण हमने इनको, साथ सोना, बैठना, भोजन करना आदिसे अपनी समानताको पहुँचा दिया है और हमने ही इनको राजसिंहासन दिया है ॥ २५ ॥ चँवर, मोरछल, शंख, श्वेत छत्र, किरीट, सिंहासन और शय्याको हमारी उपेक्षासे ही भोगते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु जैसे सर्पकी रक्षा करनेके निमित्त पिलाया हुआ दूध, पिलाने वालेको ही दुःखदायक होता है तैसे ही देने वालेके ही प्रतिकूल हुए इन यादवोंके राजचिह्न बस अब पूरे होलिये, अब आगेको यह चिह्न छीन लेने चाहिये, क्योंकि-जो यादव

लांछनैर्द्रतुः प्रदीपैः फणिनामिवामृतम् । येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयंत्यद्य गतत्रपा बत ॥ २७ ॥ कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः । अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवोरणः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच । जन्मबंधुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ । आश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥ दृष्ट्वा कुरूणां दौःशील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः । अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहुः ॥३०॥ नूनं नानामदोन्नद्धाः शांतिं नेच्छंत्यसाधवः । तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः । सांत्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ॥ ३२ ॥ त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः । तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ॥ ३३ ॥ नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥ ३४ ॥ सुधर्माक्रम्यते येन पारिजातोमरांघ्रिपः । आनीय भुज्यते सोसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥ ३५ ॥ यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी । स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥ ३६ ॥ यस्यांघ्रि-

---

हमारी प्रसन्नतासे बढ़े हैं वही अब निर्लज्जतासे हमको स्पष्ट आज्ञा करते हैं, यह कैसा आश्चर्य है ! ॥ २७ ॥ जैसे सिंहकी स्वीकार करीहुई वस्तु, उसके दिये विना मेढ़े को नहीं मिल सकती तैसे ही, भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदिकोंकी न दी हुई वस्तु को इन्द्र भी क्या बलात्कारसे (जबरदस्ती) ले सकेगा ? ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे भरतकुलश्रेष्ठ ! श्रेष्ठकुलमें हुआ जन्म, बान्धव और सम्पदासे जिन को अत्यन्त मद हुआ है ऐसे उन असभ्य कौरवोंने, इस प्रकार बलरामजीको कठोर भाषण सुना कर, हस्तिनापुरमें प्रवेश करा ॥ २९ ॥ कौरवोंकी दुष्टता देख कर और अवाच्य कथन सुन कर कोपसे खलबला कर भयंकरस्वरूप हुए वह बलरामजी वारम्बार हँसते हुए कहने लगे कि-॥ ३० ॥ धन, कुटुम्ब, भूमि आदि मदोंसे उच्छृंखल हुए जो दुर्जन हैं वह शान्तिकी इच्छा नहीं करते हैं, जैसे गधे-बैल आदि पशुओंको दण्ड ही ढँग पर लाता है तैसे ही दुष्ट कौरवोंको दण्ड ही शान्त करेगा, शान्तिसे कार्य नहीं होसकता ॥ ३१ ॥ अहो ! अति क्रोधमें भरेहुए यादवों को और श्रीकृष्णजीको धीरे २ समझा कर, इनको समझानेकी इच्छासे मैं यहाँ आया हूँ ॥ ३२ ॥ सो मन्दबुद्धि, वृथा अभिमान करनेवाले, दुर्जन, दुष्ट और कलह करनेमें तत्पर इन कौरवोंने तिस उपकार करने वाले भी मेरा तिरस्कार करके वारम्वार दुर्वचन कहे ॥ ३३ ॥ इन्द्रादिक लोकपाल भी जिनकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करते हैं, वह भोज, वृष्णि और अन्धकों के स्वामी राजा उग्रसेन, क्या केवल भूमि परके भी राजाओंको आज्ञा करनेमें समर्थ नहीं हैं ? ॥ ३४ ॥ जिनसे सुधर्मा नामक देवसभा पैरोंसे कुचलीजाती है, जिनसे देवताओंका कल्पवृक्ष (पारिजातक) लाकर उपभोग किया जाता है वह श्रीकृष्णजी भी मनुष्य राजाओंके सिंहासनके योग्य नहीं हैं क्या ? ॥ ३५ ॥ सकल सम्पदा देनेवाली लक्ष्मी, प्रत्यक्ष जिनके दोनों चरणोंकी उपासना करती है वह लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी, राजाओंके छत्र चँवर आदि चिन्होंके योग्य नहीं हैं क्या ? ॥ ३६ ॥ सबकी सेवन करी हुई गङ्गाको भी

पंकजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम्। ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥ ३७ ॥ भुंजते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल। उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ॥ ३८ ॥ अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम्। असम्बद्धा गिरो रुक्षाः कः सहेतानुशासिता अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः। गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥ लांगलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम्। विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ॥ ४१ ॥ जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत्। आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥ ४२ ॥ तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः। सलक्ष्मणं पुरस्कृत्य साम्बं प्रांजलयः प्रभुम् ॥ ४३ ॥ राम रामाखिलाधार प्रभावं न विद्याम ते। मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥ ४४ ॥ स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः। लोकान् क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥ ४५ ॥ त्वमेव मूर्ध्नीदमनंत लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन्। अन्ते च यः स्वात्मनि

तीर्थपना मिलनेके कारण ऐसे जिनके चरणकमलके रजको, सब लोकपालोंने अपने किरीटयुक्त मस्तक पर धारण करा है तथा ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और मैं (शेष) जिनके अंशके अंशसे उत्पन्न होकर, जिनके चरणकमलके रजको मस्तक पर चिरकालसे धारण करते हैं ऐसे श्रीकृष्णजीको सिंहासनका अधिकार नहीं है क्या? ॥३७॥ कौरवोंका दिया हुआ टुकड़ा यादव भोगते हैं क्या? हम चर्मपादुका हैं क्या? और यह कौरव स्वयं मस्तक हैं क्या? ॥ ३८ ॥ अहो! मद्य आदिसे मत्त हुएकी समान ऐश्वर्यसे मत्त हुए अभिमानी पुरुषोंकी कठोर और असङ्गत वाणीको, उनको शिक्षा देनेवाला कौन पुरुष सहेगा? ॥ ३९ ॥ इससे आज पृथ्वीको कौरवहीन कर दूँगा, ऐसा निश्चय करके मानो त्रिलोकीको जलाए ही देते हैं ऐसे अतिक्रोधमें भरे हुए वह बलरामजी, हाथमें हल लेकर खड़े हुए ॥ ४० ॥ और क्रुद्ध हुए तिन बलरामजीने, हस्तिनापुरको उखाड़कर गङ्गामें उलट देनेके निमित्त, उसकी दाहिनी ओरसे तटके नीचे लगाएहुए हलके अग्रभागसे खेंचा ॥ ४१ ॥ तब खैंचनेके कारण जलमेंके डोंगेकी समान डगमगाने वाले और गङ्गामेंको गिरते हुए उस हस्तिनापुरको देख कर जिनको घबड़ाहट हुई है ऐसे बचनेकी इच्छा करने वाले वह कौरव, लक्ष्मणा सहित साम्बको आगे करके, कुटुम्बके साथ हाथ जोड़े हुए तिन ही प्रभु बलरामजीकी शरण गये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ और स्तुति करने लगे कि-हे राम! हे राम! हे जगत्के आधार! हम तुम्हारी सामर्थ्यको नहीं जानते हैं इस कारण अज्ञानसे मोहित होनेसे कुबुद्धि हुए जो हम तिनके अपराधोंकी क्षमा करनेको तुम समर्थ हो ॥ ४४ ॥ हे ईश्वर! तुम वास्तवमें आश्रयरहित हो, और इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहारके एक ही कारण हो, इस कारण यह सब लोक, क्रीड़ा करने वाले तुम्हारे खेलकी सामग्री हैं ऐसा ऋषि वर्णन करते हैं ४५ हे सहस्र मस्तक वाले अनन्त! तुम ही इस भूमण्डलको अनायासमें मस्तक पर धारण करते हो और प्रलयकालके समय अपने स्वरूपमें सकल जगत्का उपसंहार

रुद्धविश्वः शेषेद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥ ४६ ॥ कोपस्तेखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् । बिभ्रतो भगवन्सत्वं स्थितिपालनतत्परः ॥ ४७ ॥ नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय । विश्वकर्मन्नमस्तेस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥ ४८ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः । प्रसादितः सुप्रसन्नो माभैष्टेत्यभयं ददौ ॥ ४९ ॥ दुर्योधनः पारिबर्हं कुंजरान् षष्टिहायनान् । ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ॥ ५० ॥ रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् । दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ॥५१॥ प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः । ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः । शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्येसभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् । समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनुदृश्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दश० उत्त० हास्तिनपुरकर्षणसंकर्षणविजयो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः

(समाप्ति) करके शेषशय्या पर शयन करने वाले अथवा शेष रहने वाले जो अद्वितीय नारायण सो ही तुम हो ॥ ४६ ॥ अब, हमारे ऊपर कोप करना आपको योग्य नहीं है ऐसा वर्णन करते हैं कि–हे भगवन् ! सत्त्वगुण धारण करने वाले तुम्हारा, सकल जगत्का पालन करनेमें तत्पर यह कोप, कुमार्गसे चलने वाले सकल प्राणियोंको शिक्षा देनेके निमित्त है, द्वेषसे वा डाहसे नहीं है ॥ ४७ ॥ हे सर्वभूतात्मरूप ! हे सर्वशक्तिधर ! हे अविनाशिन् ! तुम्हें नमस्कार हो, यह जगत् जिनकी रचना है ऐसे हे विश्वकर्मन् ! तुम्हें नमस्कार हो, हम तुम्हारी शरण आये हैं ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार जिनका नगर काँप रहा है ऐसे अत्यन्त भयभीत होकर शरणमें आये हुए तिन कौरवोंके प्रार्थना करने पर अति प्रसन्न हुए तिन बलरामजीने, भय न मानो ऐसा कह कर अभयवचन दिया ॥ ४९ ॥ तब कन्याके ऊपर प्रेम करने वाले दुर्योधनने, तिस लक्ष्मणाके साथ साम्बको साठवर्षकी अवस्थाके बारह सौ हाथी, एक लाख बीस सहस्र घोड़े, सुवर्णसे मढेहुए सूर्यकी समान चमकतेहुए तेजके समूहरूप छःसहस्र रथ और जिनके कण्ठोंमें मोहरें पड़ी हैं ऐसी सहस्र दासियें दहेजमें दीं ॥५०॥५१॥ वह दुर्योधनका दियाहुआ सब दहेज लेकर यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् बलरामजी, साम्ब पुत्रसहित और पुत्रवधू लक्ष्मणाको साथमें लेकर, यादवोंसे सत्कारको पाये हुए होकर द्वारका नगरीको चलेगये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर वह बलरामजी, अपने नगरमें जाकर, जिनका चित्त प्रेमयुक्त है ऐसे बांधवों (यादवों) से मिले और उन्होंने श्रेष्ठ यादवोंकी सभामें जाकर, कुरुदेशोंमें जो अपना (नगरको उखाड़कर उलटना आदि) चरित हुआ था सो सब कहा ॥ ५३ ॥ अब भी यह हस्तिनापुर, बलराम जीके पराक्रमको सूचित करता हुआ, दक्षिणकी ओरको ऊँचा और गंगाकी ओर को झुका हुआ देखनेमें आरहा है ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवत दशमस्कंध उत्तरार्ध में अष्टषष्टितम अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

श्रीशुक उवाच।नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम्। कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥ १ ॥ चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक्। गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥२॥ इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत्। पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥३॥ उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः। छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥४॥ प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः। विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः। संसिक्तमार्गां गणवीथिदेहलीं पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ।६। तस्यामन्तःपुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः। हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन दर्शितम् ॥७॥ तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम्। विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ॥ ८ ॥ विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः। इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥ ९ ॥ वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः। दान्तैरासनै-

---

अब आगे उनहत्तरवें अध्यायमें,नारदजीने प्रत्येक मन्दिरमें होताहुआ श्रीकृष्णजीका गृहस्थधर्म देखा और उनकी स्तुति करके चलेगये, यह कथा वर्णन करी है श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन्! श्रीकृष्णजीने नरकासुरको मारा और उन इकले ही श्रीकृष्णजीके साथ बहुतसी स्त्रियोंका विवाह हुआ, यह समाचार सुनकर नारदजीने, श्रीकृष्णजीका उन स्त्रियोंके साथ गृहस्थाश्रमका धर्म कैसा चलरहा है यह जाननेकी इच्छा करी ॥ १ ॥ जो एक भगवान् एक स्वरूपसे अवतीर्ण हुए, उन्होंने एक ही कालमें पृथक् २ मन्दिरोंमें सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियोंसे विवाह करलिया यह बड़े आश्चर्यकी बात है, सो देखना चाहिये ॥ २ ॥ ऐसे उत्साहसे युक्त वह नारदजी, उन श्रीकृष्णजीको देखनेके निमित्त द्वारकामें आपहुँचे; वह द्वारका-खिले हुए आरामबागोंमें और दूसरे भी बगीचोंमेंके पक्षियोंके समूहोंके शब्दोंसे गुञ्जार रहा थी ॥३॥ खिलेहुए इन्दीवर, अम्भोज, कह्लार, कुमुद और उत्पल नाम वाले कमलोंसे भरे हुए सरोवरोंमें हंस और सारसपक्षियोंसे शब्दायमान करी जारही थी ॥ ४ ॥ सुवर्णके और रत्नोंके जिसमें पात्र भाण्ड आदि हैं ऐसे बहुमूल्य मरकतमणियोंसे प्रकाशित होने वाले स्फटिकके और चाँदीके बड़े २ नौलाख राजमन्दिरोंसे युक्त थी ॥ ५ ॥ भिन्न २ गलियें, राजमार्ग (सड़कें), चौहट्टे, बाजार, भोजनस्थान, सभास्थान और देवमन्दिरोंसे सुन्दर थी, छिड़के हुए मार्ग, चौहट्ट, गलियें और देहलोंसे युक्त थी तथा फहराती हुई पताकाओंसे और ध्वजाओंसे जिस में धूप दूर करी गई है ऐसी थी ॥६॥ उस द्वारकामें जहाँ विश्वकर्माने, अपनी पूर्णरीतिसे चतुराई दिखाई है और जो इन्द्रादि सब लोकपालोंसे पूजित हैं ऐसे सोलह सहस्र एक सौ आठ मन्दिरोंसे शोभायमान और भोगकी सामग्रियोंकी सम्पदासे युक्त है ऐसे श्रीहरिके रणवासमें आकर, तहाँ श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंके घरोंमेंसे एक बड़े (रुक्मिणीके) घरमें गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ उस घरका वर्णन करते हैं कि-वह घर मूँगों के खंभोंसे और वैदूर्यमणियोंकी बडी २ चौखटोंसे बना हुआ था, इन्द्रनीलमणिकी भीतोंसे और जिनकी कान्ति सूर्यादिकी कान्तिसे भी कम नहीं होती है ऐसी इन्द्र-

पर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः १० दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् । पुम्भिः सकंचुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥ ११ ॥ रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वांतं विचित्रवलभीषु,शिखण्डिनोऽग। नृत्यति यत्र विहितागरुधूपमक्षैर्निर्यातमीक्ष्य घन-बुद्धय उन्नदन्तः ॥ १२ ॥ तस्मिन् समानगुणरूपवयःसुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या । विप्रो ददर्श चमरव्यंजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या १३ तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यंकतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः । आनम्य पादयुगुलं शिरसा किरीटजुष्टेन सांजलिरवीविशदासने स्वे ॥ १४ ॥ तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना बिभ्रज्जगद्गुरुतरोपि सतां पतिर्हि । ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुण-नाम युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥१५॥ संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन । वाण्याभिभाष्य मितयामृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवामहे किम् ॥ १६ ॥ नारद उवाच । नैवाऽद्भुतं तव विभोऽखिल-

---

नीलमणिकी ही भूमिसे शोभायमान था ॥ ९ ॥ विश्वकर्माकी रचीहुई,और मोतियों की लड़ोंकी झालरें जिनमें लटक रही हैं ऐसी कपड़छत्तोंसे शोभायमान था, उत्तम मणियोंसे भूषित हाथीदाँतकी चौकियोंसे और शय्याओंसे शोभायमान था ॥१०॥ कण्ठोंमें कण्ठे पहिरे और उत्तम वस्त्र धारण करने वाली दासियोंसे तथा सुन्दर अङ्गरखे, शिरमें बाँधनेके वस्त्र और मणिजड़े कुण्डलोंको धारण करनेवाले सेवकों से शोभायमान था ॥ ११ ॥ रत्नोंके दीपकोंके समूहोंकी कान्तियोंसे जिसमेंका अन्धकार नष्ट होगया है और जहाँ छज्जोंके अग्रभागों पर बैठेहुए मोरपक्षी,झरोखों मेंको बाहर निकलने वाले, भीतरके अगरके धुएँको,यह मेघकी श्यामघटा है क्या ? ऐसी बुद्धिसे शब्द करते हुए नृत्य कर रहे थे ॥ १२ ॥ उन घरोंमें सब समय,अपनी समान ही जिनके गुण, रूप, अवस्था और आभूषण हैं ऐसी सहस्र दासियोंसे युक्त और सुवर्णकी दण्डीकी चौरी हाथमें लेकर उससे स्वयं वायु करने वाली रुक्मिणी सहित विद्यमान यादवपति श्रीकृष्णजीको नारदजीने देखा ॥ १३ ॥ उन नारदजी को देखकर सकल धर्मके पालन करनेवालोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजीने, रुक्मिणी के पलङ्ग परसे शीघ्रताके साथ उठ कर, किरीटसे सेवित (युक्त) अपने मस्तकसे उनके दोनों चरणोंको नमस्कार करके हाथ जोड कर उनको अपने आसन पर बैठाया ॥ १४ ॥ जिनके चरणको धोनेका गङ्गारूप जल,सकल जगत्को पवित्र करने वाला है वह भगवान् स्वयं ब्रह्मादिकोंमें श्रेष्ठ होकर भी धर्माचरण करने वाले पुरुषों के पालक होनेके कारण उन्होंने सबोंको शिक्षा देनेके निमित्त उन नारदजीके चरणों को धोकर वह जल मस्तक पर धारण करा, इस कारण ही ब्राह्मणोंके हितकारी देव ऐसा गुणके अनुसार नाम उनको प्राप्त हुआ है ॥ १५ ॥ इसप्रकार नरके सखा जो पुरातन ऋषि नारायण उन्होंने शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार देवता और ऋषियोंमें श्रेष्ठ नारदजीका पूजन करके और अमृतकी समान मधुर तथा मित-वाणीसे सत्कार करके, हे प्रभो नारदजी ! निजानन्दसे परिपूर्ण तुम्हारी हम क्या शुश्रूषा करें ? ॥१६॥ इस प्रकार कहने पर नारदजी बोले कि–हे सकल लोकनाथ !

लोकनाथ मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम्। निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ॥ १७ ॥ दृष्टं तवांघ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः। संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥१८॥ ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्याः स नारदः। योगेश्वरेश्वरस्यांग योगमायाविवित्सया॥१९॥ दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च। पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ २० ॥ पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति। क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥ २१ ॥ अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मन् जन्मैतच्छोभनं कुरु। स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद् गृहम् ॥ २२ ॥ तत्राप्याचष्ट गोविंदं लालयंतं सुतान् शिशून्। ततोऽन्यस्मिन् गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥ २३ ॥ जुह्वन्तं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः। भोजयन्तं द्विजान् क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥ २४ ॥ क्वापि संध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम्।

हे वेदमें गान करे हुए! सकल साधु पुरुषोंमें मित्रभाव करना और दूसरोंको पीडा देने वाले दुष्टोंको दण्ड देना यह तुम्हारेमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि-जगतकी रक्षा और धारणके द्वारा सबोंको धर्म आदि चार प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धि होनेके निमित्त तुम्हारा यह अपना इच्छाके अनुसार अवतार है ऐसा हम भली प्रकार जानते हैं ॥१७॥ हे प्रभो! संसाररूप कूपमें पड़ेहुए पुरुषोंको, उसमेंसे बाहर निकलनेके निमित्त आश्रय करने योग्य, अगाधज्ञानी ब्रह्मादिकोंने भी केवल जिनका हृदयमें चिन्तवन ही करा है ऐसे सब लोकोंको मोक्ष फल देने वाले दोनों चरण मैंने देखे, सो यद्यपि इनके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ होगया हूँ तथापि जिस प्रकार मुझे निरन्तर उन चरणोंकी स्मृति रहे तैसा मेरे ऊपर अनुग्रह करो जिससे कि उनका ही ध्यान करता हुआ मैं विचरूँ ॥ १८ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! तदनन्तर उस घरमेंसे निकल कर नारदजी, योगेश्वरोंके भी ईश्वर तिन श्रीकृष्णजीकी अचिन्त्यशक्तिको देखनेकी इच्छासे, दूसरी एक श्रीकृष्णजीकी स्त्रीके घरमें चले गये ॥१९॥ उस घरमें भी प्रियाके साथ और उद्धवजीके साथ श्रीकृष्णजीको फाँसोंसे खेलतेहुए देखा तहाँभी श्रीकृष्णजीने उठकर सन्मुख जाना आसन देना इत्यादि करके उन नारदजीकी परम भक्तिके साथ पूजा करी ॥ २० ॥ और अनजानकी समान उनसे बूझा कि-आप द्वारकामें कब आये? धन--पुत्र आदिकोंमें आसक्त रहने वाले हम समानोंके हाथसे पूर्ण मनोरथ आपका कौनसा कार्य होसकता है २१ तथापि हे ब्रह्मन्! कुछ तो कार्य हमसे कह कर हमारे इस जन्मको सफल करो, ऐसी हमारी प्रार्थना है, तब नारदजीने अचम्भेमें होकर कुछ उत्तर न दिया और उठ कर दूसरे घरमेंको चले गये ॥ २२ ॥ तहाँ भी उन्होंने छोटे २ बालकोंको लाड़ करतेहुए श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २३ ॥ तिससे भी दूसरे घरमें स्नान करनेको उद्यत हुए श्रीकृष्णजीको देखा और दूसरे घरमें आहवनीय अग्निके विषें हवन करने वाले श्रीकृष्णजीको देखा, कहीं पञ्चयज्ञोंसे देवादिकोंका आराधन करनेवाले श्रीकृष्णजीको देखा, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन करातेहुए और कहीं ब्राह्मणोंके भोजन करलेने पर

एकत्र चासितचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥ २५ ॥ अश्वैर्गजैः रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् । क्वचिच्छयानं पर्यंके स्तूयमानं च वन्दिभिः ॥२६॥ मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः । जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याबलावृतम् ॥ २७ ॥ कुत्रचिद् द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः । इतिहासपुराणानि शृण्वंतं मङ्गलानि च ॥ २८ ॥ हसंतं हास्यकथया कदाचित्प्रियया गृहे । क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥ २९ ॥ ध्यायंतमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् । शुश्रूषंतं गुरून् क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥ ३० ॥ कुर्वंतं विग्रहं कैश्चित्संधिं चान्यत्र केशवम् । कुत्रापि सह रामेण चिंतयंतं सतां शिवम् ॥ ३१ ॥ पुत्राणां च दुहितॄणां काले विध्युपयापनम् । दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयंतं विभूतिभिः ॥ ३२ ॥ प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् । वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥ ३३ ॥ यजन्तं सकलान्देवान् क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः । पूर्तयंतं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥ ३४ ॥

शेष रहे अन्नको भोजन करते हुए ॥२४॥ कहीं सन्ध्या करनेको बैठेहुए कहीं मौनव्रत धारण करके गायत्रीमन्त्रको जपते हुए, और कहीं हाथमें ढाल-तलवार लेकर तलवार चलानेके प्रकार दिखाते हुए ॥ २५ ॥ कहीं घोड़ा पर, हाथियों पर और और रथोंमें बैठ कर जाने वाले, कहीं पलङ्ग पर सोये हुए और सूतमागधोंसे स्तुति करे हुए श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २६ ॥ कहीं उद्धव आदि मन्त्रियोंके साथ प्रजाओंके कल्याणकी सम्मति करने वाले, कहीं मुख्य २ श्रेष्ठ स्त्रियोंसे घिर कर जलक्रीडा करनेमें तत्पर हुए और कहीं मुख्य ब्राह्मणोंको भूषित गौएँ दान करनेवाले और कहीं मङ्गलकारी इतिहास पुराणोंको सुनने वाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २७ ॥ २८ ॥ किसी घरमें अपनी स्त्रीके साथ हँसीकी वार्त्ताओंसे हास्य करने वाले, कहीं धर्मका सेवन करने वाले और कहीं अर्थ तथा कामका सेवन करने वाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ २९ ॥ कहीं एकान्तमें बैठ कर, प्रकृतिसे पर पुरुषोत्तम एक आत्माका ध्यान करने वाले, कहीं पूजनकी सामग्री और वस्त्र भूषणादि विषय भोग समर्पण करके अपने गुरुओंकी सेवा करने वाले, कहीं किन्हीं के साथ कलह करनेवाले और दूसरे स्थानमें किन्हीं के साथ संधि (मेल) करने वाले और कहीं बलरामजीके साथ साधुओंके कल्याणकी सम्मति करने वाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ ३० ॥ ३१ ॥ कहीं समय २ पर पुत्रोंका उनके योग्य स्त्रियोंके साथ और कन्याओंका उनके योग्य वरों के साथ शास्त्रोक्त रीतिसे विवाह करनेको ठहराने वाले, और विवाह होने पर ऐश्वर्य आदि देकर संपन्न करने वाले, कहीं कन्याओंको सुसरालमें भेजना और जामाताओंको घर बुलाना यह करने वाले और कहीं बालकोंके जात कर्म आदि संस्कारका परम उत्सव करने वाले श्रीकृष्णजीको देखा, योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णजीके जिन बालकोंके महोत्सवोंको देख कर सब ही लोक विस्मयको प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कहीं अपने ही अंश जो देवता तिनको बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे आराधन करने वाले, कहीं कुए बनवाना, (आराम)बाग लगवाना और मठ आदि बनवाना इत्यादिसे पूर्त्त नाम वाले स्मार्त्तधर्मका आचरण करने वाले, कहीं

चरंतं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैंधवम्। घ्नन्तं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥ ३५ ॥ अव्यक्तलिंगं प्रकृतिष्वंतःपुरगृहादिषु। क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ३६ अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव। योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ३७ विद्राम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम्। योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान्। पर्यटामि तवोद्गायन् लीलां भुवनपावनीम् ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच। ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताऽहं कर्ता तदनुमोदिता। तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिद ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच। इत्याचरंतं सद्धर्मान्पावनान् गृहमेधिनाम्। तमेव सर्वगेहेषु संतमेकं ददर्श ह ।४१। कृष्णस्यानंतवीर्यस्य योगमायामहोदयम्। मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना। सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥ ४३ ॥ एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः।

श्रेष्ठ २ यादवोंके साथ सिन्धुदेशके घोड़ों पर सवार होकर मृगया करने वाले और उस मृगयामें श्राद्ध आदिके योग्य पशुओंका वध करने वाले श्रीकृष्णजीको देखा ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कहीं मंत्रियोंका और रणवासमें रहने वाले तिन २ पुरुषोंका अभिप्राय जाननेकी इच्छासे दूसरे वेषसे अपने चिह्नोंको ढक कर विचरने वाले तिन योगेश्वर श्रीकृष्णजीको देखा ॥ ३६ ॥ इस प्रकार मनुष्योंकी आकृति ग्रहण करने वाले भगवान्की अचिन्त्य शक्तिके ऐश्वर्यको देखकर वह नारदजी हँसते हुए उन श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि-॥ ३७ ॥ हे योगेश्वर ! हे आत्मस्वरूप ! तुम्हारी योगमायाको प्रत्यक्षरूपसे देखना माया करने वाले ब्रह्मादिकोंको भी कठिन है, यह ठीक है परन्तु तुम्हारे चरणोंकी सेवाके प्रभावसे, तुम्हारे स्वरूपमें ही स्फुरित होती है यह हम जानते हैं तुम्हारे वास्तविक स्वरूपको हम कुछ नहीं समझते हैं ३८ हे देव ! ब्रह्माण्डको पवित्र करने वाली तुम्हारी लीलाओंका गान करता हुआ तुम्हारे यशसे व्याप्त हुए लोकोंमें मैं जैसे विचरूँ तैसे तुम मुझको आज्ञा दो ॥ ३९ ॥ ऐसा नारदजीका भाषण सुन कर श्रीभगवान्ने कहा कि-हे नारदऋषे ! मैं शास्त्रके द्वारा धर्मका उपदेश करने वाला, स्वयं उसका आचरण करने वाला और दूसरेको सम्मति देने वाला हूँ, इससे लोकोंको शिक्षा मिलनेके निमित्त ही मैं यह धर्मका आचरण करता हूँ, सो हे पुत्र नारद ! मेरा उलटा भगवान्ने चरण धोना आदि करा ऐसा मनमें लाकर खेद न कर ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार अनुग्रह करे हुए वह नारदजी, गृहस्थाश्रमियोंको पवित्र करने वाले और श्रेष्ठ धर्मका आचरण करके दिखाने वाले तिन श्रीकृष्णजीको यह सब घरमें एक ही हैं ऐसा देखने लगे ॥ ४१ ॥ और उस समय अनन्तपराक्रमी श्रीकृष्णजीकी अचिन्त्य शक्तिके बलका प्रभाव बारम्बार देख कर वह नारद ऋषि, कौतुकयुक्त और विस्मययुक्त हुए ॥ ४२ ॥ इसप्रकार धर्म, अर्थ और काममें जिनका चित्त श्रद्धावान् है ऐसे श्रीकृष्णजीके उत्तम सत्कार करनेके कारण सन्तुष्ट हुए वह नारदजी, तिन श्रीकृष्णजीका ही बारम्बार स्मरण करते हुए चले गए ॥ ४३ ॥ हे राजन् !

रेमे१ऽग षोडशसहस्रवरांगनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥ ४४ ॥ यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार। यस्त्वंग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते दश० उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनंनाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन्। गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥ वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीव बन्दिनः। गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥ २ ॥ मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम्। परिरंभणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गता ॥ ३ ॥ ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः। दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥ ४ ॥ एकं स्वयंज्योतिरनन्य-

---

इस प्रकार मनुष्यकी रीतिसे बर्त्ताव करने वाले और सकल प्राणीमात्रकी उन्नतिके निमित्त नाना प्रकारकी शक्ति ग्रहण करने वाले वह नारायण श्रीकृष्णजी, सोलह सहस्र एक सौ आठ सुन्दर स्त्रियोंके लज्जायुक्त प्रेमके साथ अवलोकनसे और हास्यसे सेवित होते हुए उनके साथ रमण करने वाले हुए ॥ ४४ ॥ हे राजन्! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण भगवान् श्रीहरिने, इस श्रीकृष्ण अवतारमें, जिनको और पुरुष न कर सकें ऐसे कर्म करे हैं, उनको जो पुरुष गाता है, सुनता है वा दूसरोंके गान पर उनकी प्रशंसा करता है तिस पुरुषको, मोक्ष देने वाले तिन भगवान्के विषें भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकोनसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ६९ ॥ *

अब इस सत्तरवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजीके आह्निक (प्रतिदिनके) कर्मोंका क्रमसे वर्णन होकर, राजदूतके और नारदजीके सूचित करे हुए कार्यको सिद्ध करनेके निमित्त श्रीकृष्णजीने विचार करा, यह कथा वर्णनकरी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! अब श्रीकृष्णजीके आह्निक कर्मकी रीति कहते हैं सुनो-प्रातःकाल समीप आने पर, अनेकों कृष्णमूर्त्तियोंसे कण्ठमें आलिङ्गन करी हुई श्रीकृष्ण जीकी स्त्रियें, आगे होने वाले कृष्णके विरहसे दुःखित होती हुईं, प्रभातकालको जताने वाले शब्दको सुन कर, सोये हुए श्रीकृष्णजीको जगाने वाले कुक्कुटों (मुरगों) को 'तुम शीघ्र ही मर क्यों न जाओ' ऐसा शाप देने लगीं ॥ १ ॥ उस समय मन्दारवनके पवनोंसे पुष्पोंका रस ग्रहण करनेमें आसक्त हुए भौंरे, गुञ्जारशब्द करने लगे, तब जगे हुए पक्षी, स्तुति पढ़ने वालोंकी समान, सोये हुए श्रीकृष्णजीको जगाते हुए अत्यन्त शब्द करने लगे ॥ २ ॥ उस समय प्रिय श्रीकृष्ण जीकी भुजाओंमें विद्यमान (श्रीकृष्णजीकी आलिङ्गन करी हुई) रुक्मिणी आदि सब स्त्रियोंने, आलिङ्गनका वियोग होनेके कारण स्नानपूजनादिके योग्य अतिपवित्र भी तिस ब्राह्ममुहूर्त्तको अच्छा नहीं माना ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजीने तो उस ब्राह्ममुहूर्त्तके समय उठकर हाथ पैर आदि धो, जलका आचमन करके, प्रसन्न इंद्रियोंसे युक्त होकर प्रकृतिसे पर आत्माका ध्यान करा ॥ ४ ॥ अखण्ड, स्वप्रकाश, निरुपाधिक, नित्य, जिसमें निरन्तर अविद्यादि दोष स्वरूपस्थितिसे दूर हुए हैं ऐसे

मव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् । ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥५॥ अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी । चकार संध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ६ ॥ उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः । देवानृषीन्पितॄन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ७ ॥ धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम् । पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥ ८ ॥ ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह । अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने ॥ ९ ॥ गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः । नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥ १० ॥ आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् । वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ ११ ॥ अवेक्ष्याज्यं तथादर्शं गोवृषद्विजदेवताः । कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् । प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ॥ १२ ॥ संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः । सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥१३॥ तावत्सूत उपानीय स्यन्दनं

और जिसके सत्ता और आनन्द यह धर्म, इस जगत्की उत्पत्ति, नाशके कारण रजःसत्त्वादि गुणरूप शक्तियोंसे समझनेमें आते हैं ऐसे ब्रह्मनामक अपने स्वरूपका ध्यान करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ तिन श्रीकृष्णजीने, शुद्ध जलमें स्नान करके और वस्त्र पहिन कर सन्ध्योपासन आदि सकल कर्मोंको शास्त्रमें कही हुई विधिसे करा, तिसमें श्रीकृष्णजीकी कण्व शाखा होनेके कारण उन्होंने, सूर्योदयसे पहिले ही अग्निमें हवन करके मौनव्रतसे गायत्रीके मंत्रका जप करा ॥ ६ ॥ फिर उदय हुए सूर्यका उपस्थान करके, अपने ही अंशरूप देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करके, स्वरूपसाक्षात्कारसे युक्त उन्होंने, वृद्धोंका और ब्राह्मणोंका पूजन करा और जिनको आभूषण अर्पण करे हैं ऐसे उन ब्राह्मणोंको, जिनके सींग सुवर्णसे मढ़े हुए हैं, जिनके कण्ठोंमें मोतियोंकी माला पड़ी हुई हैं, जिनके ऊपर उत्तम वस्त्रोंकी झूलें पड़ीहुई हैं और जिनके खुर चाँदीसे मँढ़ेहुए हैं ऐसी बहुतसी दूध देने वालीं, सूधे स्वभावकी, पहलौन व्याही बछड़ों सहित गौएँ एक एक बद्व १३०८४ प्रतिदिन प्रत्येक घरमें रेशमी पाटम्बर, कृष्णमृगछाला और तिलों सहित दान करीं ॥ ७-९ ॥ फिर उन्होंने अपनी विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सकल प्राणियोंको नमस्कार करके कपिला गौ आदि मंगलवस्तुओंका स्पर्श करा ॥ १० ॥ फिर मनुष्यलोकके विशेष करके भूषणरूप अपने शरीरको पीताम्बर आदि वस्त्रोंसे कौस्तुभ आदि भूषणोंसे और दिव्य मालाओंसे तथा अनुलेपनोंसे भूषित करा ॥ ११ ॥ तदनन्तर मङ्गलके निमित्त घृतमें, और दर्पणमें अपना मुख देख कर तैसे ही गौ, वृषभ, ब्राह्मण और देवताओंका दर्शन करके नगरमें रहने वाले सब वर्णोंको और रणवासमेंके सब जनोंको इच्छित पदार्थ देकर और मंत्री आदिकोंको इच्छित पदार्थोंसे प्रसन्न करके आनन्दको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजीने, पहिले ब्राह्मण, मित्र मंत्री और स्त्रियोंको माला, ताम्बूल और लेपन आदि भोगके पदार्थ बाँट कर फिर उनको भोग करनेके निमित्त आप भी स्वीकार

परमाद्भुतम् । सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्याग्रवस्थितोऽग्रतः ॥ १४ ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् । सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥ १५ ॥ ईक्षितोऽन्तःपुरस्त्रीणां सव्रीडप्रेमवीक्षितैः । कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगाज्जातहासो हरन्मनः ॥ १६ ॥ सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः । प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यंग षडूर्मयः ॥१७॥ तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् । वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ॥ १८ ॥ तत्रोपमंत्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् । उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्तांडवैः पृथक् ॥१९॥ मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः । ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधवंदिनः ॥ २० ॥ तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः । पूर्वेषां पुण्यशसां राज्ञां चाकथयन् कथाः तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः । विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः २२

करा ॥ १३ ॥ इतने ही में दारुक सारथीने, सुग्रीव आदि नाम वाले घोड़ोंसे जुता हुआ परम आश्चर्यकारी रथ समीप लाकर खड़ा करा और आप आगे प्रणाम करके खड़ा होगया तब ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णजी, अपने हाथसे उसके जोड़े हुए हाथ पकड़ कर सात्यकि और उद्धवके साथ उस रथके ऊपर जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य चढ़ता है तैसे चढ़े ॥ १५ ॥ उस समय लज्जा और प्रेम सहित रणवासमेंकी स्त्रियोंकी दृष्टियोंसे अवलोकन करे जाते हुए, क्षणभर धीरे २ चलाए हुए रथमें बैठ कर फिर उन स्त्रियोंके भी अवलोकनके द्वारा बड़े दुःखसे जानेकी आज्ञा देने पर, कुछ हँस कर उनका मन हरते हुए चले गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार सब घरोंमेंसे भिन्न २ रूपसे निकलकर फिर एक ही रूपसे,सब यादवों से घिरे हुए होकर उन श्रीकृष्णजीने सुधर्मानामक देवसभामें प्रवेशकरा हे राजन्! जिस सभामें प्रवेश करनेवालोंको भूँख, प्यास, शोक, मोह बुढापा और मृत्यु यह छः विकार नहीं होते हैं ॥ १७ ॥ उस सभामें उत्तम आसन पर बैठे हुए मनुष्योंमें श्रेष्ठ, यादवोंसे घिरे हुए वह प्रभु भगवान् श्रीकृष्णजी, अपनी कांतिसे दिशाओंको प्रकाशयुक्त करते हुए,जैसे आकाशमें तारागणोंसे घिरा हुआ चन्द्रमा,सब दिशाओं को प्रकाशयुक्त करता हुआ शोभायमान होता है तैसे, शोभित हुए ॥ १८ ॥ हे राजन्! उस सभामें आनन्दके साथ हास्यरसयुक्त भाषण करनेवाले पुरुष नाना प्रकारकी हास्यकी बातोंसे तिन प्रभु श्रीकृष्णजीको प्रसन्न करने लगे, तैसे ही नटों के आचार्य (उस्ताद) मृदङ्ग, वीणा, तबले, सारङ्गी, मुरली, झाँज और शंखोंके शब्दोंके साथ अलग २ अपने २ समूहोंसे ताण्डव नृत्यके द्वारा तिन भगवान्की सेवा करने लगे, तैसे ही नृत्य और गान करनेवालीं वारांगना, अपने २ समूहोंसे, मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ नृत्य और गान करने लगीं तैसे सूत, मागध और वंदी भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ १९ ॥ २० ॥ उस सभामें बैठे हुए कितने ही ब्राह्मण वेदमंत्रोंका व्याख्यान करने लगे कितने ही बोलनेमें चतुर पुराणोंके वक्ता,पुण्य यश वाले पहिले राजाओंकी कथा कहने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार प्रति दिन व्यवहार चलते हुए हे राजन्! एक दिन कभी भी किसीका न देखा हुआ एक पुरुष,सभा

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः। राज्ञामावेदयद् दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥ २३ ॥ ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः। प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥ २४ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन। वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥२५॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे। यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ २६ ॥ लोके भवाञ्जगदिनः कलयाऽवतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः। कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किंवा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ॥ २७ ॥ स्वप्नायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः। हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ॥२८॥ तन्नो

के द्वार पर आकर प्राप्त हुआ तब द्वारपालोंने, भगवान्को सूचना देकर उनकी आज्ञासे तिस पुरुषको सभामें प्रवेश कराया ॥२२॥ तब उसने हाथ जोडकर काल-कर्मोके भी नियन्ता श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके, हाथ जोडे हुए, जरासन्धने कारागार (जेलखाने) में बन्द करलिया तिससे राजाओंको जो दुःख प्राप्त हुआ था सो कहा ॥ २३ ॥ अर्थात् उस जरासंधके दिग्विजयके समय जो राजे नम्र नहीं हुए थे उन वीस सहस्र आठ सौ राजाओंको गिरिव्रज नाम वाले दुर्ग (किले) में तिस जरासन्धने बलात्कारसे रोक रक्खा था उनका दुःख निवेदन करा ॥ २४ ॥ कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयस्वरूप ! हे शरणागत भयनाशक ! जन्ममरणादिरूप संसारसे डरे हुए और भेदबुद्धि धारने वाले हम तुम्हारी शरण हैं ॥ २५ ॥ इस संसारमें का यह प्राणी, जब तक काम्य और निषिद्ध कर्मोंमें रमकर तुम्हारे करेहुए तुम्हारे पूजनरूप अपने कल्याणकारी धर्ममें सावधान नहीं रहता है तब तक जो कालरूप बलवान् तुम, इसके जीवित रहनेकी आशाको ही तत्काल तोड डालते हो ऐसे निरन्तर सावधान रहने वाले कालरूप तुम भगवान्को नमस्कार हो ॥ २६ ॥ यह तो लोकोंकी गति हुई, हम तो तुम्हारे भक्त हैं फिर हमें यह दुःख क्यों भोगना पड़ता है ? यह आश्चर्य प्रतीत होता है, क्योंकि—हे ईश्वर ! अपने भक्तोंकी रक्षा करनेके निमित्त और दुष्टोंको दण्ड देनेके निमित्त, अपने संकर्षणरूप अंशसहित तुम जगदीश्वर उत्पन्न हुए हो ऐसा होते हुए, दूसरे कोई एक (जरासन्ध आदि) यदि हमें दुःख देते हैं तो क्या ! 'मेरा भक्त नाशको नहीं प्राप्त होता है, मैं भक्तोंका योगक्षेम चलाता हूँ इत्यादि' तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है अथवा तुम्हारा रक्षा करा हुआ भी हम समान प्राणी अपने कर्मसे ही उत्पन्न हुए अपने दुःखको भोगता है ? सो हम नहीं जानते अर्थात् यह दोनों ही बातें हमें योग्य नहीं प्रतीत होतीं ॥ २७ ॥ हे ईश्वर ! तुम्हारे अनुग्रहसे निष्काम पुरुषोंको मिलाने वाले और अपने हीमें जो स्वरूपसुख तिसको त्याग कर, हम स्वप्नमेंके सुखकी समान और स्त्री पुत्रादिकोंके वशमें होने वाले राजसुखको पानेकी इच्छा करते हैं और उसके निमित्त जहाँ निरन्तर भय है ऐसे प्रेतकी समान शरीरसे केवल पुत्र स्त्री आदिकी चिन्ताको ही धारण करते हैं, इसी प्रकार इस संसारमें तुम्हारी मायासे अतिदीन

भवान्प्रपन्नशोकहरांघ्रियुग्मो बद्धान्वियुंक्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्। यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥ २९ ॥ यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम्। जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥३०॥ दूत उवाच। इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकांक्षिणः। प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच। राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः। बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः। ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ॥ ३३ ॥ सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम्। बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ॥३४॥ अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम्। ननु भूयान् भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ॥३५॥ न हि तेऽविदितं किञ्चिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु। अथ पृच्छामहे युष्मान्पाण्डवानां चिकीर्षितम् ॥ ३६ ॥ श्रीनारद उवाच।

(विषयासक्त) होकर क्लेश पाते हैं॥२८॥इस कारण तुम्हारी मायाके करे हुए कर्मबन्धनको तुम ही दूर करो,क्योंकि-तुम्हारे चरण, शरणागतोंके शोक दूर करनेवाले हैं इस कारण तुम ही जराधन्धरूप कर्मपाशसे बँधे हुए हमको उससे छुटाओ यदि कहो कि-तुम ही पराक्रम करके तहाँसे छूट जाओ तो हे भगवन्! दश सहस्र मदोन्मत्त हाथियोंका बल धारण करनेवाले जिस इकले जरासन्धने, हम राजाओंको, जैसे सिंह मेढोंको घेर लेता है तैसे घेर रक्खा है इसकारणही हम प्रयत्न करके उस से नहीं छूटसकते हैं२९हे अजित! हे चक्रको उठा कर धारण करने वाले देव! जो जरासन्ध, अठारह वार तुम्हारे साथ युद्ध हुआ उसमें सत्तरह वार युद्धमें तुमने वास्तवमें उसका तिरस्कार करा तथापि अठारहवीं वार मनुष्यचेष्टासे लीला करने वाले अनन्त पराक्रमी तुम भगवान्को एक वार जीत कर घमण्डमें होगया है सो हम तुम्हारे हैं इस संबंधसे हमें बहुत ही दुःख देता है इस कारण उसके विषयमें जो योग्य होय सो करिये ॥ ३० ॥ राजाओंके दूतने कहा कि-हे प्रभो! इस प्रकार जरासन्धके बन्धनमें डाले हुए और तुम्हारे दर्शनकी इच्छा करने वाले राजे,तुम्हारे चरणतलकी शरण आये हैं इस कारण उन दीनोंको सुख होय तैसा उपाय करो३१ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस प्रकार राजाओंके दूतके कहते हुएमें,तहाँ सूर्यकी समान परमकांतिसे युक्त और पीलेवर्णकी जटा धारण करने वाले नारद ऋषि अकस्मात् (अचानक) आगये ॥ ३२ ॥ उनको देखते ही, ब्रह्मादिक सब लोकेश्वरोंके भी पालक तिन भगवान् श्रीकृष्णजीने, बड़ी शीघ्रतासे सभासदोंके साथ और सेवकोंके साथ उठ कर हर्षके साथ मस्तकसे प्रणाम करा ॥ ३३ ॥ फिर शास्त्रकी रीतिके अनुसार उनका पूजन करके आसनको ग्रहण करने वाले उन नारदजीको, श्रद्धासे और मधुर भाषणसे सन्तुष्ट करते हुए कहने लगे कि-॥३४॥ हे नारदजी! इस समय तीनों लोकोंको किसीसे भय तो नहीं है ? अहो! लोकोंमें विचरने वाले आपसे हमको सब लोकोंका वृत्तांत मिलता है, यह बड़ा ही लाभ है ॥ ३५ ॥ क्योंकि-जिनका कर्ता ईश्वर है ऐसे तीनों लोकोंमें तुम्हारा न जाना

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः । भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ॥ ३७ ॥ तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः । यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ॥ ३८ ॥ जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः । लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ३९ ॥ अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् । राज्ञः पैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ॥ ४० ॥ यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः । पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ॥ ४१ ॥ तस्मिन्देव क्रतुवरे भवंतं वै सुरादयः । दिदृक्षवः समेष्यंति राजानश्च यशस्विनः ॥ ४२ ॥ श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयन्तेऽन्तेवसायिनः । तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाऽभिमर्शिनः ॥ यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् । मन्दा-

---

हुआ कुछ भी नहीं है, इस कारण, इस समय पाण्डवोंके मनमें क्या है सो तुमसे हम बूझते हैं ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सर्वज्ञके भी अनजानकी समान, जरासंधके वध के निमित्त पाण्डवोंका अभिप्राय बूझने पर नारदजी, 'यह देवमाया है' ऐसा जान कर कहने लगे कि-हे प्रभो ! सर्वव्यापक ! विश्व रचने वाले जो ब्रह्माजी तिनको भी मोहित करने वाले, अपनी विद्या आदि शक्तियोंसे प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे रहने वाले और राखसे ढके हुए अग्निकी समान अपनी शक्तियोंसे ही अपने तेज को ढक कर रहनेवाले तुम भगवान्‌की, जिनका उल्लङ्घन न होसके और जो जानी न जायँ ऐसी बहुत सी माया मैंने देखी हैं, इस कारण तुम सर्वज्ञ होकर जो मनुष्य लीलासे अनजानकी समान प्रश्न करते हो, यह मुझे आश्चर्य नहीं प्रतीत होता है ३७ हे देव ! मिथ्याभूत यह जगत्, जिन तुम्हारी मायासे सब सत्य है ऐसा प्रतीत होता है, ऐसे अपनी इच्छाके अनुसार जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले और संहार करने वाले तुम्हारे मनमेंके अभिप्रायको भली प्रकारसे जाननेको कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई समर्थ नहीं है इस कारण अचिन्त्यरूप तुम भगवान्‌को केवल नमस्कार ही है ॥ ३८ ॥ अज्ञानरूप अन्धकारसे घिरनेके कारण, दुःखदायक शरीरसे संसार पाने वाले और तिस ही अज्ञान करके उस शरीरसे मोक्षका उपाय न जानने वाले जीव को, श्रवण आदिसे मोक्ष प्राप्त होनेके निमित्त, जिन तुमने, लीलावतारोंसे अपना यशःस्वरूप दीपक प्रज्वलित कर रक्खा है ऐसे तुम भगवान्‌को मैं शरण आया हूँ ३९ अथ, सबके साक्षी आपका न जानाहुआ यद्यपि कुछ भी नहीं है तथापि मनुष्यलोक के अनुसार तुम्हें, तुम्हारी बुआके पुत्र और भक्त धर्मराजके मनका मनोरथ सुनाता हूँ ॥ ४० ॥ चक्रवर्तीपना प्राप्त होनेकी इच्छा करने वाले वह पांडुके पुत्र धर्मराज, यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा तुम्हारा आराधन करनेकी इच्छा करते हैं, उनको आप सम्मति और आज्ञा दें ॥ ४१ ॥ और यहाँ बैठे ही बैठे ऐसा न करिये किन्तु तहाँ जाइये भी, क्योंकि-हे देव ! तिस श्रेष्ठ यज्ञमें तुम्हारे दर्शनकी इच्छा करने वाले इंद्रादिक देवता और यशस्वी राजे, अवश्य आवेंगे ॥ ४२ ॥ और वह सब ही तुम्हारे दर्शनसे पवित्र होयँगे, क्योंकि-हे ईश्वर ! मनुष्याकार ब्रह्मरूप तुम्हारी कथाको सुनने

किनीति दिवि भोगवतीति चाधो गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया । वाचःपेशैः स्मयन्भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच । त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् । तथाऽत्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ॥ ४६ ॥ इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् । निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ७०

श्रीशुक उवाच । इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् । सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच । यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया । कार्यं पैतृष्वस्रेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥ २ ॥ यष्टव्यं राजसूयेन दिक्-

---

से कीर्त्तन करनेसे और ध्यान करनेसे चांडाल भी पवित्र होते हैं फिर दर्शन और स्पर्श आदि करने वाले पुरुष, दर्शन स्पर्श आदि करके पवित्र होंगे इसका क्या कहना ? ॥ ४३ ॥ हे सब भुवनोंके मङ्गलरूप ! जिन तुम्हारा, सब दिशाओंका छत्र समान भूषणरूप और निर्मल यश, स्वर्ग, पाताल और भूमिमें प्रसिद्ध होकर जगत् को पवित्र करता है, तैसे ही जिन तुम्हारे चरणका जल, स्वर्ग पर मन्दाकिनीरूप से, पातालमें भोगवतीरूपसे और इस भूलोकमें गङ्गारूपसे प्रसिद्ध होताहुआ त्रिलोकी को पवित्र करता है, तिन तुम्हारे प्रत्यक्ष आनेसे सब मङ्गल और पवित्र होगा इस का क्या कहना ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! तिस सभामें नारद जीके कहे हुए धर्मराजकी ओरके वृत्तांतको सुनने वाले यादव, जरासंधको जीतने की इच्छासे, हस्तिनापुरको जानेके विषयमें नारदजीके कथनको मान्यरूपसे ग्रहण नहीं करते थे तब, श्रीकृष्णजीने कुछ हँस कर, मधुरी वाणीमें अपने भक्त उद्धवजी से कहा ॥ ४५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धव ! क्योंकि—तुम हमारे उत्तम चक्षु इन्द्रियकी समान पदार्थोंके प्रकाशक होकर विचारसे साधने योग्य फलोंका तत्त्व जानने वाले मित्र हो, तिससे इस समय नारदजीकी और इनकी बनाई हुई दोनों बातोंमें जो हमको करना उचित हो सो कहो, उस तुम्हारे कहनेपर ही हम विश्वास करेंगे और तैसा ही करेंगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सर्वज्ञ भी भगवान्के अनजानकी समान सम्मतिके निमित्त प्रेरणा करे हुए उद्धवजी, भगवान्की आज्ञाको मस्तक पर धारण करके उत्तर देने लगे ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध उत्तरार्धमें सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७० ॥ छ ॥ * ॥ छ

अब आगे इकहत्तरवें अध्यायमें उद्धवजीकी कही हुई सम्मतिके अनुसार श्रीकृष्णजीने इन्द्रप्रस्थको गमन करा तब पाण्डवोंको परमानन्द हुआ, यह कथा वर्णन करी है, राजसूययज्ञका निमित्त करके भीम और दुर्योधन आदिकोंमें कलह उत्पन्न करके उसके द्वारा प्रभुने भूमिका भार हरा ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! पहिले कथनके अनुसार राजसूययज्ञके निमित्त जाना चाहिये ऐसा नारदजीका मत, जरासन्धको जीत कर राजाओंकी रक्षा करें ऐसा सभासदोंका मत और दोनों कार्य करें ऐसा श्रीकृष्णजीका मत जान कर वह महाबुद्धिमान्

यक्कजयिना विभो । अतो जरासुतवध उभयार्थो मतो मम ॥ ३ ॥ अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति । यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥ ४ ॥ स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले । बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥५॥ द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः । ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः । हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव सन्निधौ ॥ ७ ॥ निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः । हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ॥ ८ ॥ गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च । गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो

उद्धवजी कहने लगे कि-हे देव ! यज्ञ करने वाले फुफेरे भ्राता धर्मराजकी सहायता करें ऐसा जो नारदजीने कहा है सो आप करें और तैसे ही शरण आये हुए राजाओंकी रक्षा भी करें ॥ १ ॥ २ ॥ इसमें पहिले राजसूययज्ञके निमित्त चलें फिर राजाओंकी रक्षा करना उचित है ऐसा कहते हैं कि-सब दिशाओंको जीतने वाला पुरुष, राजसूय यज्ञके द्वारा यजन करे ऐसी विधि होनेके कारण दिग्विजयके प्रसङ्गसे होनेवाला जो जरासन्धका जय सो राजसूयके निमित्त और शरणागतोंकी रक्षा करनेके निमित्त भी होयगा ऐसा मेरे विचारमें आता है ॥ ३ ॥ इस जरासन्धके वधसे हमारा भी बड़ा भारी निर्भयरूप कार्य सिद्ध होयगा और हे गोविन्द ! बन्धनमें पड़े हुए राजाओंको छुड़ाने वाले तुम्हारा यश भी प्रसिद्ध होयगा ॥ ४ ॥ अब, अति उत्कण्ठितपनेसे शीघ्र ही जरासन्धको मारनेकी इच्छा करने वाले यादवोंसे कहने लगे कि-वह प्रसिद्ध राजा जरासन्ध, बलमें दशसहस्र हाथियोंकी समान है, सो उसकी समान ही बलधारी भीमसेनके विना, दूसरे उससे अधिक बलधारियोंको भी, बड़ी कठिनतासे भी उसको जीतना अशक्य है, क्योंकि-भीमसेनसे ही उसका मरण होना कहा है ॥ ५ ॥ उस जरासन्धको द्वन्द्वयुद्धमें ही जीतना चाहिये, सैंकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंसे घेरकर भी जीतनेका कार्य नहीं है, यदि कहो कि-वह अपनी सेनाको युद्ध करनेके निमित्त भेजेगा तो फिर उसके साथ द्वन्द्वयुद्ध कैसे होयगा तो सुनो-वह ब्राह्मणोंका भक्त है इस कारण ब्राह्मणोंके याचना करने पर वह उनको कभी भी निषेध नहीं करेगा ॥ ६ ॥ इस कारण भीमसेन ब्राह्मणका वेष धारण करे हुए उसके समीप जाकर द्वन्द्वयुद्धकी भिक्षा माँगे, तब वह भीमसेन, समान बली होने पर भी तुम्हारे समीपमें उसको मार डालेगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ यदि कहो कि-मेरे समीपमें क्या होगा तो सुनो-रूप रहित कालरूप तुम ईश्वरके, जैसे ब्रह्मा और शिव, जगत्की उत्पत्ति और संहारके विषयमें केवल निमित्तमात्र हैं, वास्तवमें सबके कर्त्ता तुम ही हो, तैसे ही यहाँ तुम ही समीप होने मात्रसे मारने वाले होओगे और भीमसेन केवल निमित्तमात्र होगा ॥ ८ ॥ सो इस उपायसे तुम उसको शीघ्र ही मार डालोगे, तो जरासन्धके बन्धनमें डाले हुए राजाओंकी स्त्रियें, अपने घरोंमें बालकोंको बहलानेके समय 'हे बेटा ! रोवे मत, श्रीकृष्णजी अब ऐसा करेंगे ! इस प्रकार कह कर' अपने शत्रु

वयं च ॥ ९ ॥ जरासंधवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते । प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच । इत्युद्धववचो राजन् सर्वतो भद्रमच्युतम् । देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ॥ ११ ॥ अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः । भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ॥ १२ ॥ निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान् सपरिच्छदान् । संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् । सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ॥ १३ ॥ ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया । मृदङ्गभेर्यानकशंखगोमुखैः प्रघोषघोषितककुभो निराक्रमत् ॥१४॥ नृवाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः । वरांबराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥१५॥ नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनः करेणुभिः

(जरासन्ध) का वध और प्राणप्रिय पतिका छुटाना इस तुम्हारे कीर्त्तिकारी कर्मको गाती हैं, वह भी तो-जैसे गोपियें, शंखचूडनामक तुम्हारे शत्रुके वधका और उससे अपने छुटानेका गान करती हैं, अथवा तुम्हारा आश्रय पाये हुए ऋषि, जैसे तुम्हारे पहिले अवतारोंमें होने वाले नक्रवध और गजेन्द्रमोक्ष तथा रावणके वध और सीताके मोक्षका गान करते हैं, अथवा हम यादव, जैसे कंसके वधका और देवकी वसुदेवके छूटनेका गान करते हैं, तैसे ही गान करती हैं, सो सब सत्य होयगा ॥ ९ ॥ और हे श्रीकृष्णजी ! यह जरासन्धका वध, शरणागतोंकी रक्षा, राजसूय यज्ञ, तुम्हारी श्रेष्ठ कीर्त्ति और भूमिके भारका दूर होना इत्यादि बहुतसे कार्योंके सिद्ध होनेका साधन होयगा और ऐसा होनेसे आगेको शिशुपाल आदिका वध करना भी सुखसाध्य होजायगा और कर्मफलके परिपाकसे अर्थात् राजाओंके पुण्यके फलसे और जरासन्धके पापके फलसे तुम्हें भी यह प्रिय ही है, सो तुम राजसूय यज्ञमें जाओगे तो यह सब कार्य सिद्ध होजायँगे ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते कि-हे राजन् ! ऐसा, सब प्रकारसे कल्याणकारी और युक्तियोंसे दृढ़ यह उद्धवजीका कथन, नारदजी, यादवोंमें वृद्ध पुरुष और श्रीकृष्णजी इन सबोंने अत्यन्त प्रिय माना ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णजीने, वसुदेवादि गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर और बलरामजी तथा उग्रसेनकी भी आज्ञा लेकर, दारुक आदि विजयी सेवकोंको राजसूय यज्ञमें जानेको ठीक ठाक करनेकी आज्ञा करी और पुत्रों सहित तथा सामग्री (सामान) सहित अपनी स्त्रियोंको भी भिजवा कर फिर वह गरुडध्वज श्रीकृष्णजी, सारथीके लाए हुए अपने रथ पर चढ़े ॥ १२॥१३ ॥ फिर रथ, हाथी, पैदल और घुड़सवारोंसे भयंकर अपनी सेनासे घिरे हुए वह श्रीकृष्णजी, मृदङ्ग, नौबत, डंके, शंख और नफीरी इन बाजोंके शब्दोंसे गूँजती हुई तिस पश्चिम दिशाकी ओरको गये ॥ १४ ॥ तब उन श्रीकृष्ण-पतिके पीछे, अपने पुत्रों सहित, श्रेष्ठ वस्त्र, भूषण, लेपन और मालाओंको धारण करने वालीं; हाथमें तलवार ढाल लेने वाले मनुष्योंसे रक्षा करी हुई वह पतिव्रता रुक्मिणी आदि श्रीकृष्णजीकी स्त्रियें, म्याने और रथोंमें तथा सुवर्णसे मँढी हुई पालकियोंमें बैठ कर गईं ॥ १५ ॥ उस समय, जिनकी झोपड़ियें, खस आदिके

परिजनवारयोषितः । स्वलंकृताः कटकुटिकंबलांबराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥ बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः । दिवांऽशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथाऽर्णवः क्षुभिततिमिंगिलोर्मिभिः ॥ १७ ॥ अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा । निशम्य तद्व्यवसितमाहृतार्हणो मुकुन्दसंदर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥ १८ ॥ राजदूतमुवाचेदं भगवान् प्रीणयन् गिरा । मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥ १९ ॥ इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् । तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्य मुमुक्षवः ॥ २० ॥ आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः । गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ॥२१॥ ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् । पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ॥ २२ ॥ तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दर्शनं नृणाम् । अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ॥२३॥ गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः॥२४

तृणोंकी हैं और जिनकी सामग्री (सामान) कम्बल हैं उन सेवकोंकी स्त्रियें और वारांगना, अपनी २ सब सामग्री (सामान) बैल आदिकोंके ऊपर चारों ओरसे दृढ़ताके साथ बाँध कर और स्वयं अलंकार धारण करके डोलियें, ऊँट, बैल, भैंसे, गदहे, खिच्चर, गाड़ी और हाथियों पर बैठ कर चल दिये ॥ १६ ॥ तब रथोंकी घरघराहट और घोड़ोंकी हिनहिनाहट आदिके भयानक शब्दोंसे युक्त वह सेना, बड़े २ झण्डे, पताका, छत्र, चँवर, उत्तम प्रकारके आयुध, भूषण, किरीट और कवचोंसे, जैसे समुद्र दिनके समय, सूर्यकी किरणोंसे और खलबलाये हुए मगर नाके आदिकोंसे तथा तरङ्गोंसे शोभा पाता है तैसे ही शोभित हुई ॥ १७ ॥ इस प्रकार चल देनेके अनन्तर श्रीकृष्णजीने जिनको सत्कार करके पूजा समर्पण करी है और श्रीकृष्णजीके दर्शनसे जिनकी सब इंद्रियें तृप्त हुई हैं ऐसे वह नारदमुनि, उन श्रीकृष्णजीका राजसूय यज्ञमें जानेका निश्चय जानकर उनको नमस्कार करके उनको ही हृदयमें धारण करते हुए आकाशमार्गसे चले गये ॥ १८ ॥ तदनन्तर भगवान्, मधुरवाणीसे राजदूतको प्रसन्न करते हुए कहने लगे कि-तू राजाओंसे यह समाचार दे कि-तुम भय न करो, तुम्हारा कल्याण होगा, मैं जरासन्धको शीघ्र ही मारता हूँ ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्के कहने पर उस दूतने, तहाँसे आकर राजाओंको, भगवान्के कहनेके अनुसार सब समाचार सुनाया, वह राजे भी जरासन्धसे छूटनेकी इच्छा करते हुए, भगवान्का दर्शन होनेकी बाट देखते रहे ॥ २० ॥ इधर श्रीकृष्णजीने, आनर्त, सौवीर और मारवाड़ इन देशोंको और कुरुक्षेत्रको लाँघ कर, कितनी ही नदियोंके पार होकर, पर्वत, नगर, गाँव वालोंके झोंपड़े और बड़ी २ खानोंका उल्लंघन करा ॥ २१ ॥ फिर दृषद्वती और सरस्वती नदीके पार होकर आगे पाँचाल देश तथा मत्स्यदेशको उल्लंघन करके इंद्रप्रस्थ (देहली) में गमन करा ॥ २२ ॥ तब जिनका दर्शन मनुष्योंको दुर्लभ है ऐसे वह श्रीकृष्णजी समीप आये यह सुन कर, प्रसन्नचित्त हुए धर्मराज, उपाध्याय (पाधा) और मित्रमण्डली सहित, उनको लानेके निमित्त नगरसे बाहर सम्मुख गये ॥२३॥

दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पांडवः। चिराद् दृष्टं प्रियतमं सस्वजेथ पुनः पुनः ॥२५॥ दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः। लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः॥२६॥ तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेन्द्रियः। यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥ २७ ॥ अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥२८॥ मानितो मानयामास कुरुसृञ्जयकैकयान्। सूतमागधगंधर्वा वंदिनश्चोपमंत्रिणः ॥ २९ ॥ मृदङ्गशंखपटहवीणापणवगोमुखैः। ब्राह्मणाश्चारविंदाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥ ३० ॥ एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः। संस्तूयमानो भगवान्विवेशालंकृतं पुरम् ॥ ३१ ॥ संसिक्तवर्त्मकरिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः। मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥ ३२ ॥ उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यात-

वह गानोंके और बाजोंके शब्दसहित हृषीकेश भगवान्को, जैसे इन्द्रियें बड़े आदरके साथ मुख्य प्राणके सन्मुख जाती हैं तैसे ही, सन्मुख गये ॥ २४ ॥ फिर स्नेहसे आर्द्रचित्त हुए उन धर्मराजने, बहुत समयमें दृष्टि पड़े हुए परमप्रिय श्रीकृष्णजीको देखकर बारम्बार हृदयसे लगाया ॥ २५ ॥ लक्ष्मीके निर्मल स्थान श्रीकृष्णजीके शरीरको, भुजाओंसे आलिंगन करके जिनके पाप नष्ट होगये हैं, जिनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये हैं, जिनके शरीर पर रोमांच खड़े होगये हैं और जिनको लोकव्यवहारकी भी सुध नहीं रही है ऐसे वह धर्मराज परम संतोषको प्राप्तहुए २६ तैसे ही भीम, मामाके पुत्र तिन श्रीकृष्णजीको आलिंगन करके हास्य करते हुए प्रेमके वेगसे नेत्रोंको आनन्दके आँसुओंसे भरकर परम आनन्दमें निमग्न हुए, तैसे ही नकुल, सहदेव और अर्जुनने भी, नेत्रोंको आनन्दके आँसुओंसे भरकर परम मित्र श्रीकृष्णजीको आलिंगन करा ॥ २७ ॥ उनमें समान अवस्थावाले होनेके कारण अर्जुनने, उनका केवल आलिंगन करा, नकुल सहदेवने आलिंगनके साथ प्रणाम करा और श्रीकृष्णजीने भी ब्राह्मणोंको प्रणाम करके अवस्थामें अपनेसे बड़े धर्मराज आदिकों यथा योग्य प्रणाम करा ॥ २८ ॥ उनके सन्मान करे हुए श्रीकृष्णजीने, सन्मुख आये हुए कुरु सृञ्जय और कैकय इनका भी सन्मान करा, तदनन्तर सूत मागध, गन्धर्व, वंदीजन, पासमें बैठनेवाले पुरुष और ब्राह्मण यह सब एक साथ मृदङ्ग, शंख, पटह, वीणा, पणव, गोमुख आदि बाजोंके शब्दके साथ श्रीकृष्णजीकी स्तुति और गान करनेलगे और वारांगना नृत्य करने लगीं ॥२९॥३०॥ इस प्रकार पांडवोंसे मिले हुए वह पुण्यश्लोकशिखामणि भगवान् श्रीकृष्णजीने, पांडवोंसे घिरे हुए और सूतादिकोंसे स्तुति करे हुए होकर अलंकृत (सजाये हुए) हस्तिनापुरमें प्रवेश करा ॥ ३१ ॥ वह नगर, हाथियोंके मदकी गन्धवाले जलोंसे मार्ग छिड़का हुआ था, तथा चित्रविचित्र ध्वजाओंसे, सुवर्णके फूलोंकी वन्दनवारोंसे, तैसे ही जलसे मुखपर्यन्त भरे हुए और फूलोंकी मालाओंसे शोभित करे हुए कलशोंसे, स्नान आदि करके नवीन वस्त्र, भूषण, माला और चन्दनादिके लेपन

धूपरुचिरं विलसत्पताकम् । मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥ ३३ ॥ प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः । सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ३४ तस्मिन् सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः । नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥ ३५ ॥ ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यमूभिः । यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलाऽवलोककलयोत्सवमातनोति ॥ ३६ ॥ तत्र तत्रोपसंगम्य पौरा मङ्गलपाणयः । चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ॥ ३७ ॥ अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः । ससंभ्रमैरभ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् । प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः । पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ४०

को धारण करने वाले पुरुषोंसे तथा स्त्रियोंसे सुशोभित था ॥ ३२ ॥ प्रत्येक घरमें लाकर रक्खे हुए उत्तम दीपकोंसे और तोडकर स्थापन करे हुए पुष्पफलादि पदार्थोंसे युक्त था, झरोखोंमेंसे बाहरको निकलनेवाले अगरके धूएँसे और झलकने वाली पताकाओंसे युक्त तथा जिनके शिर पर सुवर्णके कलश हैं ऐसे चाँदीके बड़े २ शिखरोंसे शोभायमान घरोंसे घचापच भरा हुआ था, ऐसे उस धर्मराज के नगरको भगवान्ने देखा ॥३३॥ तब पुरुषोंके नेत्रोंके आदर पूर्वक देखनेके पात्र ऐसे वह श्रीकृष्णजी, आये हैं ऐसा सुन कर उत्कण्ठासे दौड़तेमें जिनके केशोंकी और पहिरे वस्त्रोंकी गाँठ ढीली होगई है ऐसी तरुण स्त्रियें, तत्काल घरके कामोंको पलङ्ग पर सोये हुए पतियोंको छोड़ कर राजमार्ग (आमसड़क) से जाने वाले श्रीकृष्णजीको देखनेके निमित्त चली गईं ॥ ३४ ॥ तदनन्तर घरोंके ऊपरकी छतों पर चढी हुई उन स्त्रियोंने, हाथी, घोडे, रथ और सिपाही इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेनासे अत्यन्त भर गये हुए तिस राजमार्गमें स्त्रियों सहित आये हुए उन श्रीकृष्ण जीको देखकर, उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करी और मनसे उनको आलिङ्गन करके आनन्दके साथ देखनेसे ही उनका स्वागत करा ॥ ३५ ॥ उससमय, चन्द्रमाके साथ स्थित तारागणोंकी समान, श्रीकृष्णजीके साथ स्थित उनकी स्त्रियोंको मार्गमें देख कर स्त्रियें कहने लगीं कि-जिनके नेत्रोंको सकल मनोरथ पूर्ण करने वाले यह पुरुषोत्तम, उदारहास्ययुक्त लीलाके साथ अवलोकनके लेशसे सुख देते हैं ऐसी इन श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंने जन्मान्तरमें न जाने कौन पुण्य करा होगा ॥३६॥ उससमय, जहाँ तहाँ मार्गमें नगरवासी बड़े २ सेठ-साहूकार पुरुष, गन्ध, पुष्प-तांबूल आदि शुभ वस्तु हाथमें लेकर श्रीकृष्णजीके सन्मुख आकर उनकी पूजा करके निष्पाप हुए ॥ ३७ ॥ फिर घबराहटमें हुए और प्रफुल्लित नेत्र ऐसे रणवासमेंके पुरुषोंने, बडी प्रीतिके साथ आगे आकर जिनका सत्कार करा है ऐसे उन श्रीकृष्णजीने राजभवन में प्रवेश करा ॥३८॥ तब, अपने भ्राताके पुत्र त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णजी आए हैं ऐसा सुन कर प्रसन्न चित्त हुई कुन्तीने, पलङ्ग परसे उठ कर, द्रौपदी सहित आगे आकर

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम्। स्वयं च कृष्णया राजन् भगिन्या चाभिवन्दितः ॥ ४१ ॥ श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः। आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जांबवतीं तथा ॥ ४२ ॥ कालिंदीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम्। अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रङ्मण्डनादिभिः ॥ ४३ ॥ सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम्। ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ४४ तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः। मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञः प्रियचिकीर्षया। विहरन् रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ॥ ४६ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० द० उ० कृष्णस्येंद्रप्रस्थगमनमेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥ आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबंधिबान्धवैः। शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ क्रतुराजेन गोविंद

उनको हृदयसे लगाया ॥३९॥ तब आदरयुक्त उन धर्मराजने, देवदेवोंके भी नियंता तिन श्रीकृष्णजीके अपने घर आने पर, परम आनन्दमें भरे हुए उन धर्मराजको, श्रीकृष्णजीकी पूजा करनेके क्रमका भी स्मरण न रहा ॥ ४० ॥ उस समय श्रीकृष्णजीने, पिताकी बहिन कुन्तीको और बड़ी स्त्रियोंको प्रणाम करा, और उनको भी द्रौपदी तथा सुभद्राने प्रणाम करा ॥ ४१ ॥ तब कुंतीकी प्रेरणा करी हुई द्रौपदीने, पतिव्रता-रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा एवं नाग्नजितीका तथा और भी जो श्रीकृष्णजीकी स्त्रियें आई थीं उन सबोंका वस्त्र माला और कुंकुम आदि सौभाग्यके पदार्थोंसे पूजन करा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ तदनन्तर, धर्मराजने सेना, सेवक और मन्त्रियों सहित तथा स्त्रियों सहित श्रीकृष्णजीको, प्रतिदिन नये २ सत्कारोंसे, उनको जैसे सुख प्राप्त हो तैसे ठहरा दिया ॥ ४४ ॥ एकसमय अर्जुनके साथ और अर्जुनके सहायकहुए जिन्होंने इन्द्रके खाण्डव नाम वाले वनसे अग्निको तृप्त करके उसमें जलते हुए मयासुरको छुड़ाया, फिर उस मयासुरने धर्मराजको, एक दिव्य सभा बनादी श्रीकृष्णजी धर्मराजका प्रिय करने की इच्छासे, अर्जुनके साथ रथ पर बैठ कर और साथमें कुछ योधाओंको लेकर विचरते हुए कितने ही महीने पर्यंत उस हस्तिनापुरमें रहे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७१ ॥

अब आगे बहत्तरवें अध्यायमें धर्मराजने श्रीकृष्णजीको राजसूययज्ञका कार्य निवेदन करा तब, जरासंधको जीतना कठिन है ऐसा जान कर तिन श्रीकृष्णजीने, भीमसेनसे उस जरासन्धका वध करवाया यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! एकसमय सभामें सिंहासन पर बैठेहुए और ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भीमसेन आदि भ्राता, आचार्य, कुलके वृद्ध, जाति, संबन्धी और कुटुम्बियोंसे घिरे हुए धर्मराज उन ऋषि आदि सबोंके सुनते हुए-हे कृष्ण! हे भक्तवत्सल! ऐसा सम्बोधन देकर श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ १ ॥ २ ॥

राजसूयेन पावनीः । यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥ ३ ॥ त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरंति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणंति ।। विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥४॥ तद्देवदेव भवतश्चरणारविंद- सेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः । ये त्वां भजंति न भजंत्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥ ५ ॥ न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः । संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवाऽनुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन । कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ७ ॥ ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो । सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥ ८ ॥ विजित्य नृपतीन्सर्वान् कृत्वा च जगतीं वशे । संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥ ९ ॥ एते ते भ्रातरो

युधिष्ठिरने कहा कि-हे गोविन्द ! हे प्रभो ! यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञके द्वारा,तुम्हारी ही पवित्र विभूति ऐसे इन्द्रादि देवताओंकी आराधना करनेकी मैं इच्छा करता हूँ उस मेरे मनके कार्यको सिद्ध करदेनेकी आप कृपा करें ॥ ३ ॥ यदि कहो कि-यह चक्रवर्त्ती राजाओंका मनोरथ तू क्यों करता है तो सुनो हे कमलनयन ईश्वर ! जो पुरुष तुम्हारी पापनाशक पादुकाओंका अपने शरीरसे निरन्तर सेवन करते हैं,मन से ध्यान करते हैं और वाणीसे उनका प्रभाव वर्णन करते हैं वही पुरुष शुद्धचित्त होकर संसारके नाशक मोक्ष पदको पाते हैं और वही यदि विषयभोगकी इच्छा करें तो उनको वह विषय भी प्राप्त होते हैं जो दूसरे चक्रवर्त्ती राजाओंको भी नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ तिससे हे प्रभो ! हे देवदेव ! इस संसारमेंका यह प्राणियोंका समूह तुम्हारे चरणकमलकी सेवाके प्रभावको प्रत्यक्ष देख लेय, कर्म आदिको ही मुख्य मानने वाले कितने ही कौरव और सृञ्जय हैं वह भगवद्भक्तिका बहुत सन्मान नहीं करते हैं उनका मोह दूर होनेके निमित्त तुम, जो तुम्हारी सेवा करते हैं और जो सेवा नहीं करते हैं उन दोनों प्रकारके ही पुरुषोंकी निष्ठा (फल) दिखाओ ॥५॥ यदि कहो कि-रागद्वेषादिरहित मुझमें यह भेदभाव कैसे होयगा तो सुनो-समदृष्टि सर्वात्मा, और अपने आनन्दका अनुभव करने वाले तुम निरुपाधिक ब्रह्मरूपको, यद्यपि; यह अपना है, यह पराया है इस प्रकारकी भेदबुद्धि नहीं है तथापि जैसे सबमें समभाव रखने वाले कल्पवृक्षकी सेवा करने वालोंको ही उससे फल मिलता है तैसे ही सेवा करने वाले पुरुषोंको ही, तुमसे,सेवाकी न्यूनता.अधिकताका फल मिलता है, इसमें तुममें भेदभाव वा निर्दयीपना आदि दोष नहीं आता है ॥ ६ ॥ श्री-भगवान्ने कहा कि-हे शत्रुनाशक राजन् ! तुमने बहुत अच्छा निश्चय करा है जिस राजसूयनामक यज्ञको करके तुम्हारी पुण्यकारिणी कीर्त्ति सब लोकोंमें फैलेगी ॥७॥ हे प्रभो ! ऋषियोंको,देवताओंको,सकल प्राणीमात्रको और हम मित्रोंको भी यह श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ इच्छित है उसमें मुझे वा दूसरे किसीको क्या करना है ? किन्तु यह राजसूय सहजमें होनेवाला है, इससे सब राजाओंको जीतकर,सब पृथ्वीको वशमें करके और यज्ञकी सब सामग्री इकट्ठी करके राजसूय यज्ञका अनुष्ठान करो ॥ ९ ॥

राजन् लोकपालांशसम्भवाः । जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः १०
न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया । विभूतिभिर्वाऽभिभवेद् देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखांबुजः । भ्रातृन्दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥ १२ ॥ सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सह सृंजयैः ॥ दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम । प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः कैकयैः सह मद्रकैः ॥ १३ ॥ ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा । अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ॥ १४ ॥ श्रुत्वाऽजितं जरासंधं नृपतेर्ध्यायतो हरिः । आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ॥ १५ ॥ भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिंगधरास्त्रयः । जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः । ॥ १६ ॥ ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् । ब्रह्मण्यं समयाचेरन् राजन्या ब्रह्मलिंगिनः ॥ १७ ॥

यदि कहो कि-सब राजाओंको कैसे जीतेंगे तो सुनो हे राजन् ! यह तुम्हारे भ्राता वायु इंद्र आदि लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं इस कारण इनके द्वारा ही तुम्हें सब राजाओंका जीतना सुखसाध्य है और इंद्रियोंको वशमें न करनेवाले पुरुषोंसे कठिनतासे भी वशमें करनेको अशक्य ऐसे मुझे, जितेन्द्रिय तुमने वशमें करलिया है इसकारण तुम्हें कुछ भी दुःसाध्य नहीं है ॥ १० ॥ अब तुम्हारी तो बात दूर रहै परन्तु अतिदीन ऐसे भी मेरे भक्तका तिरस्कार करनेको कोई भी समर्थ नहीं होना है ऐसा कहते हैं कि-मैं ही जिनका परम उपासनीय देवता हूँ उनका तिरस्कार करनेको इस लोकमें कोई देवता भी अपने पराक्रमसे, यशसे, सम्पदासे और सेना आदि सामग्रियोंसे समर्थ नहीं होसकता फिर राजा (मनुष्य) समर्थ नहीं होगा इसका तो कहना ही क्या ? ॥११॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के कहे हुए भाषणको सुनकर प्रसन्न और प्रफुल्ल मुखकमलहुए उन धर्मराजने,श्रीकृष्णजीके तेजसे बढ़े हुए अपने भीम आदि भ्राताओंको दिग्विजय करनेके कार्यमेंलगाया१२सहदेवको सृञ्जयदेशके राजाकी सहायता देकर दक्षिणदिशाकी ओर नियत करा,नकुलको मत्स्यदेशके राजाके साथ पश्चिम दिशाकी ओर भेजा, अर्जुनको केकय राजाके साथ उत्तर दिशाको भेजा और भीमको मद्रक राजाओंके साथ पूर्वदिशाकी ओर भेजा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! उन भीम आदि वीरोंने, अपने पराक्रमसे राजाओंको जीतकर यज्ञ करनेवाले धर्मराजको बहुतसा धन लाकर समर्पण करा ॥ १४ ॥ तब जरासन्ध राजा जीतनेमें नहीं आसकता ऐसा सुनकर, उसको कैसे जीतें इस प्रकार की चिन्ता करनेवाले धर्मराजसे सबके कारण श्रीकृष्णजीने अपनेसे उद्धवजीने जो 'भीमसेन, द्वन्द्वयुद्धमें उसको मारडाले ऐसा' जो उपाय कहा था वह बताया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! फिर भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजी यह तीनों ब्राह्मणका वेष धारकर, जहाँ जरासन्ध था तिस गिरिव्रज नामक स्थानमें चले गये ॥ १६ ॥ और ब्राह्मणका वेष धारण करनेवाले वह तीनों ही राजे, दान करनेके समय उसके घर जाकर गृहस्थाश्रमी और ब्राह्मणभक्त तिस जरासन्धसे याचना करने लगे ॥ १७ ॥ कि-हे राजन् ! हम तीनों ही बहुत दूरसे

राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् । तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥ १८ ॥ किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः । किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥ १९ ॥ योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् । नाचिनोति स्वयंकल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः ॥ २० ॥ हरिश्चन्द्रो रंतिदेव उंछवृत्तिः शिविर्बलिः । व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वरैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्याहतैरपि । राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् २२ राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिंगानि बिभ्रति । ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि

आये हुए याचक अतिथि हैं, ऐसा तुम जानो, और जिसकी हम इच्छा करते हैं सो हमको समर्पण करो ॥ १८ ॥ यदि कहो कि-जो तुम चाहते हो सो बताओ, नहीं तो भला पुत्रादि वा राज किरीट आदि माँग लिये तो वह कैसे देदूँगा ? सो हे राजन् ! जैसे विषयासक्त पुरुषोंको न करने योग्य कुछ नहीं है तैसे ही सहनशील पुरुषोंको कुछ भी दुःसह नहीं है, अति उदार पुरुषोंको न देने योग्य कुछ नहीं है और सर्वत्र समान ब्रह्म है ऐसा देखनेवालोंको पराया कोई नहीं है इस कारण हमको अमुक पदार्थ चाहिये इसके कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥१९॥ और जो प्राणी स्वयं समर्थ होकर भी अपने अनित्य शरीरसे, साधुओंके गान करने योग्य सदा रहनेवाले यशको नहीं प्राप्त करता है वह निन्दनीय और 'क्या यह उसका भाग्यहीनपना है इसप्रकार' शोक करनेके योग्य होता है ॥ २० ॥ हे राजन् ! हरिश्चन्द्र विश्वामित्रका ऋण चुकानेके निमित्त स्त्री पुत्र आदि सब वेचकर, अपने आप चांडालपनेको प्राप्त होने पर भी खिन्न नहीं हुए इस कारण अयोध्यावासी पुरुषोंसहित स्वर्गको गये रन्तिदेवने, कुटुम्बसहित अपनेको अडतालीस दिन पर्यन्त जल भी प्राप्त न होने तदनन्तर प्राप्तहुआ अन्न जल आदि याचकोंको देकर ब्रह्मलोकको गमन करा मुद्गल ब्राह्मण छः मास पर्यंत कुटुम्ब सहित उपवास (निराहार) व्रत करके भी प्राप्तहुआ अन्न आदि, अतिथिको देकर ब्रह्मलोकको गया राजा शिवि, शरण आये हुए कबूतरकी रक्षा करनेके निमित्त अपना मांस श्येन (बाज) पक्षीको देकर स्वर्गको गया राजा बलिने ब्राह्मणका वेष धारण करनेवाले श्रीहरिको सर्वस्व देकर उनको ही द्वारपाल बनालिया कपोतने, व्याधरूप अतिथि को कपोती स्त्रीसहित अपना मांस देकर विमानमें बैठ स्वर्गको गमन करा व्याध ने, उन दोनोंका धैर्य देखकर स्वयं विरक्त होकर महाप्रस्थानमें वनमेंकी अग्निमें देहको जलानेके कारण निष्पाप होकर स्वर्गगति पाई इसी प्रकार और भी बहुतसे पुरुष, नाशवान् शरीरके द्वारा अविनाशीलोकको प्राप्त होगये ॥२१॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार कहा हुआ वह जरासन्ध, स्वरोंसे, शरीरके अङ्गोंकी गठनसे और धनुषकी डोरीके घट्टे पड़े हुए हाथोंके पहुँचोंसे उन भीम आदिकोंको यह कोई राजे हैं और इनको पहिले मैंने कहीं (द्रौपदीस्वयंवर आदि में) देखा है ऐसा अनुमान करके विचारने लगा कि-॥ २२ ॥ यह निःसन्देह राजाओं के कुलमें उत्पन्न हुए और भयसे ब्राह्मणोंके चिन्ह धारण करे हुए हैं इस कारण

दुस्त्यजम् ॥ २३ ॥ बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्विततो दिक्ष्वकल्मषा । ऐश्वर्याद् भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥ २४ ॥ श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे । जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराट् ॥ २५ ॥ जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना । देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥ २६ ॥ इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् । हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ युद्धं नो देहि राजेन्द्र द्वन्द्वशो यदि मन्यसे । युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकाङ्क्षिणः ॥ २८ ॥ असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् । अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥ २९ ॥ एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः । आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥ ३० ॥ न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा । मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥ ३१ ॥ अयं तु वयसा तुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः । अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥ ३२ ॥

इन्हें, कठिनसे त्यागने योग्य अपने शरीरको भी (इनके माँगने पर) देता हूँ२३क्योंकि इन्द्रकी संपत्ति 'बलिसे' हरण करनेकी इच्छा करनेवाले और कपटसे ब्राह्मणका वेष धारण करने वाले विष्णुके ऐश्वर्यसे भ्रष्ट करे हुए भी राजा बलिकी, पवित्र और दशों दिशाओंमें फैली हुई कीर्त्ति निःसन्देह सुननेमें आती है, क्या उस बलिके धैर्यका वर्णन होसकता है ? शुक्राचार्यके निषेध करने पर भी और 'यह विष्णु मेरा सर्वस्व हर लेंगे ऐसा' जानकर भी उस दैत्यराज बलिने, ब्राह्मणस्वरूप विष्णुको पृथिवीका दान दिया ॥ २४ ॥ २५ ॥ प्रतिक्षण क्षीण होनेवाले और ब्राह्मणके कार्यके निमित्त बड़ाभारी यश प्राप्त न करके जीवित रहनेवाले इस क्षत्रिय शरीरसे कौन प्रयोजन सिद्ध होता है ? कोई नहीं ॥२६॥ इस प्रकार विचार कर वह उदारबुद्धि जरासन्ध, श्रीकृष्ण अर्जुन और भीमसेनसे कहने लगा कि-हे ब्राह्मणो ! जो तुम्हें अच्छा होय सो माँगलो, मैं अपना मस्तक भी, तुम्हें अच्छा लगेगा तो दूँगा॥२७ तब श्रीभगवानने कहा कि-हे राजेन्द्र ! यदि तू जो इच्छित है सो देनेकी इच्छा करता है तो तू हमें द्वन्द्वयुद्ध (दो पुरुषों करके ही करने योग्य युद्ध) दे हम युद्धकी इच्छा करनेवाले राजे, यहाँ आये हैं, हम अन्नकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण नहीं है ॥ २८ ॥ यह कुंतीनन्दन भीम है, यह इसका भ्राता अर्जुन है और इन दोनोंके मामाका पुत्र मैं तेरा शत्रु कृष्ण हूँ, ऐसा जान ॥२९॥ इस प्रकार भगवान्का जताया हुआ वह राजा जरासन्ध ऊँचे स्वरसे हँसने लगा और क्रुद्ध होकर बोला कि-अरे मूढो ! यदि तुम्हें युद्ध ही इच्छित है तो वह देता हूँ ॥ ३० ॥ परन्तु डरपोक और युद्धमें विह्वलचित्त होजाने वाला जो तू तिसके साथ तो मैं युद्ध करूँगा नहीं, क्योंकि-तू भयसे अपनी मथुरा नगरीको त्याग कर समुद्रकी शरण गया है ॥३१॥ यह अर्जुन तो मेरे साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं है, क्योंकि-यह अवस्थामें मेरी समान न होकर बलमें भी अधिक नहीं है और शरीरमें भी मेरी समान पुष्ट नहीं है फिर इसके साथ द्वन्द्वयुद्ध (दूपरदूयुद्ध) करना, लज्जाकारक, निन्दाकारक और अपयशकारक है, केवल भीम ही मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदां । द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥ ३३ ॥ ततः समेखले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ । जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥ ३४ ॥ मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च । चरतोः शुशुभे युद्धं नटयोरिव रंगिणोः ॥ ३५ ॥ ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः । गदयोः क्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥ ३६ ॥ ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योऽन्यतोऽसकटिपादकरोरुजत्रून् । चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्व्योः ॥ ३७ ॥ इत्थं तयोः प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरयःस्पर्शैरपिष्टाम् । शब्दस्तयोः प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थः ॥ ३८ ॥ तयोरेवं प्रहरतोः समशिक्षाबलौजसोः । निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ॥ ३९ ॥ एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः । दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ॥ ४० ॥ एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः ।

करेगा, क्योंकि-वह मेरे समान बलधारी है ॥३२॥ ऐसा कहकर जरासन्ध अपनी ही एक बड़ीभारी गदा भीमसेनको देकर और तैसी ही दूसरी गदा आप लेकर नगरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर ऊँची नीची नहीं और बालुका डालकर कोमल करी हुई युद्धकी भूमिमें युद्ध करनेमें दुर्मद वह जरासंध और भीम दोनों वीर, परस्पर भिड़कर समान गदाओंका परस्पर प्रहार करने लगे ॥३४॥ दाहिने और बायें जैसे होय तैसे चित्रविचित्र मण्डल (पैंतरे) करने वाले उन दोनोंका युद्ध रंगभूमिमें आये हुए नटोंकी समान शोभा पाने लगा ॥ ३५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! एकने दूसरेके ऊपर छोडी हुई गदाओंके पडनेसे उत्पन्न हुआ चटचट शब्द, युद्ध करनेवाले मदसे अंधे हुए हाथियोंके दाँतोंके शब्दकी समान और वज्र गिरनेके शब्दकी समान अतिभयंकर होने लगा ॥ ३६ ॥ परस्परके शरीर पर मारी हुई वह गदा, एक दूसरेके कंधे, कमर, पैर, हाथ, जंघा और भुजाओंके पुट्ठों पर पडकर, जैसे अतिक्रोधमें भरकर आकके वृक्षोंकी शाखाओंसे परस्पर युद्ध करनेवाले हाथियोंके कन्धे आदि अंगों पर उनकी मारी हुई वह (आककी) शाखा चूर्ण होजाती हैं तैसे ही चूर्ण होगई ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उन दोनोंकी ही गदाओंके टूट जाने पर, क्रोधमें भरे हुए वह दोनों मनुष्यश्रेष्ठ भीमसेन और जरासंध लोहेके घनकी समान लगनेवाली अपनी दृढ मुट्ठियों (घूँसों) से परस्पर ताडना करने लगे तब हाथीकी समान परस्पर प्रहार करनेवाले उनके हाथोंके चपटोंसे उत्पन्न हुआ शब्द, मेघके विना होनेवाले वज्रपातके शब्दकी समान भयानक प्रतीत होने लगा ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार जिनका अभ्यास, शरीरका बल और इन्द्रियोंकी शक्ति भी समान हैं ऐसे क्षीणबल न होकर प्रहार करनेवाले उन भीम और जरासंधका अनुपम युद्ध हुआ ॥ ३९ ॥ हे महाराज ! इस प्रकार युद्ध करनेवाले और रात्रिके समय तिस जरासन्धके घर मित्रकी समान रहनेवाले उन भीमसेन और जरासंधको सत्ताईस दिन बीत गये ॥ ४० ॥ हे राजन् ! एक समय भीमसेन, अपने मामाके पुत्र श्रीकृष्णजीसे कहने लगे कि-हे माधव ! युद्धमें जरासन्धको

न शक्तोऽहं जरासंधं निर्जेतुं युधि माधव: ॥ ४१ ॥ शत्रोर्जन्ममृती विद्वान् जीवितं च जराकृतम् । पार्थमाप्याययत्स्वेन तेजसाचिंतयद्धरिः ॥ ४२ ॥ सञ्चिंत्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः । दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ॥ ४३ ॥ तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः । गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ॥ ४४ ॥ एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः । गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ४५ एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके । एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे । पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ४७ सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूतभावनः । अभ्यषिंचदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः । मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० दशमस्कन्धे उ० जरासंधवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२

श्रीशुक उवाच ॥ अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः । ते निर्गता

जीतनेको मैं समर्थ नहीं हूँ, सो अब क्या करूँ? ॥ ४१ ॥ तब उस जरासन्धका जन्म दो टुकड़ोंसे हुआ है और मरण भी तैसे दो टुकड़े होने पर होयगा यह जानने वाले और जरानाम वाली राक्षसीने उन दोनों टुकड़ोंको मिला कर करे हुए जीवनको भी जानने वाले वह हरि श्रीकृष्णजी, अपने तेजसे भीमका बल बढ़ाते हुए 'फिर इसके टुकड़े कैसे होयँगे' यह चिन्तवन करने लगे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सफलकार्मा श्रीकृष्णजीने, उसका उपाय जान कर, एक वृक्षकी शाखाको चीरकर दिखाते हुए 'जैसे मैं शाखाको चीरता हूँ ऐसे तू इस जरासन्धको चीरडाल, ऐसे' संकेतसे भीमसेनको शत्रुके वधका उपाय दिखाया ॥ ४३ ॥ तब महाबली और प्रहार करने वालोंमें श्रेष्ठ तिस भीमसेनने, भगवान्के संकेत करे हुए उपायको जान कर शत्रुके पैर पकड़ कर भूमि पर पटका ॥ ४४ ॥ और उसका एक पैर अपने पैरसे दबाकर तथा दूसरा पैर हाथोंसे पकड़ कर उन भीमसेनने, जैसे बड़ा भारी हाथी अनायासमें ही शाखाको फाड़ डालता है तैसे उसको गुदाके द्वारसे लेकर मस्तक पर्यन्त फाड़ डाला ॥४५॥ उससमय तहाँकी प्रजाओंने, उसके-चरण, जंघा, अण्डकोष, कमर, पीठ, स्तन, कन्धे, बाहु, नेत्र, भ्रकुटि और कर्ण वाले दो टुकड़े हुए देखे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार जरासन्धके मरणको प्राप्त होने पर उसकी प्रजाओंका बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ, उस समय अर्जुन और श्रीकृष्ण इन दोनोंने भीमसेनको हृदयसे लगा कर प्रशंसा करके सत्कार करा ॥ ४७ ॥ अब दुष्ट चरित्र होनेके कारण ही इस जरासन्धको मारा राज्यके लोभसे नहीं मारा यह दिखाते हुए कहते हैं कि-अप्रमेयस्वरूप, भूतपालक, प्रभु भगवान्ने, तिस जरासन्धके सहदेव नामक पुत्रको राज्याभिषेक करके मगध देशोंका स्वामी कर दिया और उस जरासन्धने जो रोक रक्खे थे उनको तहाँसे छुटाया ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें द्विसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७२ ॥

अब आगे तिहत्तरवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने राजाओंको छुटा कर और उनको राजयोग्य भोग अर्पण करके उनको अपने २ देशमें भेज दिया और आप भीमसेन

गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः॥ १ ॥ क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः। ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ २ ॥ श्रीवत्सांकं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम्। चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ पद्महस्तं गदाशंखरथांगैरुपलक्षितम्। किरीटहारकटककटिसूत्रांगदांचितम् ॥ ४ ॥ भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया। पिबंत इव चक्षुर्भ्यां लिहंत इव जिह्वया ॥ ५ ॥ जिघ्रंत इव नासाभ्यां रंभंत इव बाहुभिः। प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ॥ ६ ॥ कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः। प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्रांजलयो नृपाः ॥ ७ ॥ राजान ऊचुः ॥ नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय। प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ८ नैनं नाथानसूयामो मागधं मधुसूदन। अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ९ राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विंदते नृपः। त्वन्मायामोहितो नित्या मन्यते संपदोऽ-

तथा अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थको चले गये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! जो बीस सहस्र आठ सौ राजे, जरासन्धने युद्धमें सहजमें ही जीत कर गिरिद्रोणी नामक कारागारमें बन्द कर रक्खे थे, वह बन्द करनेके कारण क्लेशको पाये हुए, मलिनमुख, क्षुधासे निर्बल, मलिन वस्त्र धारण करेहुए और शरीरपर मैल थुपेहुए राजे तहाँसे निकाले तब, उन्होंने श्रीकृष्णजीको देखा, वह श्रीकृष्णजी मेघकी समान श्यामवर्ण और पीताम्बर धारण करे थे ।१।२। श्रीवत्सलांछन धारण करने वाले, चार भुजाओंसे युक्त, कमलकी गोभकी समान लाल २ नेत्र वाले, सुन्दर और प्रसन्नमुखसे युक्त दमकते हुए मकराकार कुण्डलों से शोभायमान ॥३॥ हाथमें कमल लिये,शंख-चक्र-गदासे सुशोभित और मस्तक पर किरीट, गलेमें हार, हाथोंमें कड़े तोड़े, कमरमें जञ्जीर और भुजाओंमें बाजूबन्दों से सजे हुए थे ॥ ४ ॥ तैसे ही जो कण्ठमें श्रेष्ठ कौस्तुभमणिसे झलकते हुए और गलेसे पैरों पर्यंत लटकती हुई वनमालासे लिपटे हुए थे तिन भगवान्को नेत्रोंसे पीते हुएसे, जीभसे चाटते हुएसे, नासिकाके पुटोंसे सूँघते हुएसे और भुजाओंसे आलिङ्गन करते हुएसे तथा उनके दर्शनसे पापरहित हुए तिन राजाओंने, श्रीहरि के चरण पर अपना २ मस्तक रख कर नमस्कार करा ॥ ५ ॥ ६ ॥ और श्रीकृष्णजी का दर्शन करनेसे प्राप्त हुए आनन्दसे जिनका कारागारमें पड़नेका खेद दूर होगया है ऐसे वह राजे, हाथ जोड़ कर उन श्रीकृष्ण भगवान्की वाणियोंसे प्रशंसा करने लगे ॥ ७ ॥ राजाओंने कहा कि-हे देवदेवोंके स्वामिन्! हे शरणागतोंके दुःख दूर करने वाले! हे अखण्डस्वरूप श्रीकृष्ण! तुम्हें नमस्कार हो, तुम्हारे कारागारमेंसे छुड़ाये हुए और दुःखका अनुभव करके सकल विषयोंमें विरक्त होकर तुम्हारी शरण आये हुए हमें इस भयानक संसारसे छुटाओ ॥ ८ ॥ हे नाथ! हे मधुसूदन! इस जरासन्धने हमें बाँध कर डाल लिया इस हेतुसे हम इसकी ओरको बारम्बार दोषदृष्टिसे नहीं देखते हैं, क्योंकि-हे विभो! जरासन्धसे हम राजाओंका जो राज्य छुटा सो तुम्हारा अनुग्रह ही है ऐसा हम समझते हैं ॥ ९ ॥ क्योंकि-राज्य और ऐश्वर्यसे होने वाले मद करके उच्छृंखल हुआ राजा, तुम्हारी मायासे मोहित

चला: ॥ १० ॥ मृगतृष्णां यथा बाला मन्यंत उदकाशयम् । एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥ ११ ॥ वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयास्या इतरेतरस्पृधः । घ्नंतः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणाः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाविगणय्य दुर्मदाः ॥ १२ ॥ त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः । कालेन तन्वा भवतोनुकंपया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥१३॥ अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा । उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥ १४ ॥ तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः । स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह१५ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविंदाय नमो नमः १६ श्रीशुक उवाच । संस्तूयमानो भगवान् राजभिर्मुक्तबन्धनैः । तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे । सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ॥ १८ ॥ दिष्ट्या व्यवसितं

होकर, अनित्य सम्पत्तियोंको यह नित्य हैं ऐसा मानता है और उनसे कल्याण नहीं पाता है ॥१०॥ जैसे अज्ञानी बालक, मृगतृष्णाके जलको यह तालाब या नदी है ऐसा मानते हैं तैसे ही अज्ञानी पुरुष, सृष्टिमें माला, चन्दन स्त्री आदि अनेकों विकारोंसे परिणामको प्राप्त हुई मायाको ही यह परमपुरुषार्थ है ऐसा मानते हैं ११ हे प्रभो ! जो हम पहिले राज्य करते समय, लक्ष्मीके मदसे अन्धे होकर इस पृथ्वी को जीतनेकी इच्छासे परस्पर डाह करते थे, वह आगेको होने वाले मृत्युरूप तुम्हें कुछ न गिनते हुए दुष्ट मदसे युक्त होकर अति निर्दयीपनेसे अपनी ही प्रजाओंको धन आदिके निमित्त मारते थे ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! वही हम इस समय गम्भीर (न दीखने वाले) वेगसे युक्त और जिसको हटाना कठिन है ऐसे बलवान् तुम शरीर रूपी कालसे, सम्पत्तियोंसे भ्रष्ट होनेके कारण गर्वरहित होकर तुम्हारी कृपासे ही तुम्हारे चरणका स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥ इस कारण अब आगेको वह हम प्रतिक्षण में क्षीण होते जानेवाले और रोगोंकी उत्पत्तिके स्थान ऐसे अपने शरीर करके सेवन करने योग्य और मृगतृष्णाके जलकी समान शीघ्र नाशको प्राप्त होने वाले राज्य की कुछ इच्छा नहीं करते हैं, तैसे ही हे विभो ! स्वर्गादि परलोकमें जाकर सेवन करनेका और केवल कानोंको ही प्रिय लगने वाला जो क्रियाफल (सुख) उसकी भी इच्छा नहीं करते हैं१४इसकारण हे विभो ! इस संसारमें अनेकों योनियोंके विषैं भ्रमण पाने वाले भी हमें, तुम्हारे चरण कमलोंका स्मरण जिस उपायसे छुप्त न होय वह उपाय तुम हमसे कहो१५वासुदेव, हरि, परमात्मा और शरणागतोंके क्लेश नष्ट करने वाले तथा गोविन्द तुम कृष्णको बारम्बार नमस्कार हो ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेव कहते हैं कि-हे तात राजन् ! जरासन्धके करे हुए बन्धनसे छूटने वाले राजाओंने इस प्रकार स्तुति करी तब, शरणागतवत्सल और दयालु वह भगवान् श्रीकृष्णजी, मधुर वाणीमें उनसे कहने लगे ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे राजाओं ! तुमने जैसी प्रार्थना करी है सो सब मैंने स्वीकार करा है, आजसे तुम्हें, सबोंके ईश्वर आत्मा मेरे विषै दृढ़भक्ति उत्पन्न होय ॥ १८ ॥ हे राजाओं ! तुमने जो मेरा स्मरण

भूपा भवन्त ऋतभाषिणः । श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥ १९ ॥ हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे । श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥ भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् । मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ २१ संतन्वन्तः प्रजातन्तून्सुखं दुःखं भवाभवौ । प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥ २२ ॥ उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः । मय्यावेश्य मनः सम्यङ् मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान् भुवनेश्वरः । तेषां न्ययुंक्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥ २४ ॥ सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत । नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥ २५ ॥ भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् । भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्तांबूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥ २६ ॥ ते

ही करनेका निश्चय करा है सो आनन्दकारी है, तुम सत्य बोलने वाले हो, सम्पदा और ऐश्वर्यके मदसे अपना स्वेच्छाचाररूप जो उद्धतपना सो मनुष्योंको बड़ा उन्मत्त करने वाला है, ऐसा मेरे देखनेमें आया है॥१९॥देखो-सहस्रबाहु सार्वभौम राजा हुआ तो भी उसने, जमदग्निकी कामधेनुका हरण करा इस कारण पुत्रोंसहित उसको परशुरामजीने मार डाला, राजा नहुष देवेन्द्रपनेको प्राप्त हुआ तब भी, इन्द्राणीके संभोगके निमित्त ब्राह्मणोंसे पालकी उठवानेके कारण वह उन ब्राह्मणोंके शापसे इन्द्रपदसे भ्रष्ट होकर अजगर योनिको प्राप्त हुआ, राजा वेन भी उन्मत्त होकर ब्राह्मणोंकी निन्दा करने लगा इस कारण उसको ब्राह्मणोंने हुंकारसे ही मार डाला, रावण राक्षसोंका स्वामी था तब भी उसने सीताको हरा इसकारण उसको श्रीरामचन्द्रजीने मार डाला, नरकासुरने दैत्योंका स्वामी होकर अदितिके कुंडल हरण करे इस कारण उसको मैंने ही मारा है, और भी बहुतसे देवताओंके, दैत्योंके तथा मनुष्योंके अधिपति राजे, लक्ष्मीके मदके कारण अपने स्थानसे भ्रष्ट होगये२० इस कारण तुम, इस उत्पन्न होने वाले देहादिको अनित्य जान कर सावधान चित्त रहो तथा यज्ञयागादिके द्वारा मेरा पूजन करके धर्मके साथ प्रजाओंकी रक्षा करो२१ और पुत्रादिक सन्तानका विस्तार करके तथा सुख, दुःख, लाभ, हानि आदि जो जो प्राप्त होय उस २ को समानभावसे सेवन करके और मेरे विषें चित्तको लगा कर काल व्यतीत करो ॥ २२ ॥ और देह, धन तथा पुत्रादिके विषें उदासीन, आत्मस्वरूपमें रमे हुए और पूजा नमस्कार आदिका नियम धारण करने वाले होकर एकाग्र करे हुए मनको मेरे स्वरूपमें स्थापन करके रहो तो अन्तमें ब्रह्मरूप मुझको प्राप्त होओगे ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णजीने राजाओंको आज्ञा करके उनका उबटना स्नान आदि कार्य करनेमें सेवक पुरुषोंको और स्त्रियोंको नियुक्त करा ॥ २४ ॥ हे राजन् ! जरासन्ध का पुत्र जो सहदेव नाम वाला था उससे तिन राजाओंको, राजयोग्य वस्त्र, भूषण माला और चन्दनादिका अनुलेपन इत्यादि दिलवा कर सत्कार करवाया ॥ २५ ॥ इस प्रकार उत्तम स्नान करे हुए और आभूषण धारण करे हुए उन राजाओंको श्रेष्ठ अन्नका भोजन करवा कर फिर उनको और भी राजाओंके योग्य नानाप्रकारके

पूजिता मुकुटैन राजानो मृष्टकुंडलाः। विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडंते यथा ग्रहाः॥२७ रथान्सदश्वानारोप्य मणिकांचनभूषितान्। प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्याय-यत्॥ २८ ॥ त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना। ययुस्तमेव ध्यायंतः कृतानि च जगत्पतेः॥ २९ ॥ जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम्। यथाऽन्वशा-सद्भगवांस्तथा चक्रुरतंद्रिताः॥ ३० ॥ जरासंधं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः। पार्थाभ्यां संयुतः प्रायात्सहदेवेन पूजितः॥ ३१ ॥ गत्वा ते खांडवप्रस्थं शंखान्द-ध्मुर्जितारयः। हर्षयंतः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः॥ ३२ ॥ तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिनः। मेनिरे मागधं शांतं राजा चाप्तमनोरथः॥ ३३ ॥ अभिवंद्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दनाः। सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम्॥३४॥ निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकंपितम्। आनन्दाश्रुकलां मुंचन्प्रेम्णा नोवाच किंचन॥३५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उ० कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३

श्रीशुक उवाच। एवं युधिष्ठिरो राजा जरासंधवधं विभोः। कृष्णस्य चानुभावं

तांबूल आदि भोग अर्पण करे॥ २६॥ तब श्रीकृष्णजीने जिनको क्लेशसे छुटाया है और सत्कार करा है ऐसे वह राजे, स्वच्छ कुंडल धारण करके जैसे शरद् ऋतु के अन्तमें चन्द्रमा आदि ग्रह शोभा पाते हैं तैसे शोभित होने लगे॥ २७॥ तद-नन्तर मणियोंसे जड़े सुवर्ण आदिके आभूषणोंसे भूषित तिन राजाओंको, मधुर भाषणोंसे हर्षयुक्त करके और उत्तम घोड़े जुते हुए रथपर बैठालकर उन २ के देशों को भेज दिया।२८। इसप्रकार अति उदारचित्त श्रीकृष्णजीके संकटसे छुटायेहुए वह राजे, उन ही जगत्पति श्रीकृष्णजीका ध्यान और उनके ही कर्मको स्मरण करते हुए अपने अपने देशको चले गये॥ २९॥ फिर उन्होंने वह जरासन्धका मारना आदि श्रीकृष्णजीका कार्य अपने मन्त्रियोंसे वर्णन करा और जैसे भगवान् ने, आज्ञा करी थी उसके अनुसार सावधान रह कर राज्य करने लगे॥ ३०॥ इस प्रकार भीमसेनसे जरासन्धको मरवाकर उसके सहदेव पुत्रसे पूजन करे हुए वह भगवान् श्रीकृष्णजी भीमसेन और अर्जुनके साथ इंद्रप्रस्थको चल दिये॥ ३१॥ तदनन्तर शत्रुओंको जीते हुए वह भीमसेन अर्जुन और श्रीकृष्णजी, इंद्रप्रस्थमें पहुँचे और तहाँ उन्होंने, अपने मित्रोंको हर्षित करनेके निमित्त और शत्रुओंको खिन्न करनेके निमित्त अपना २ शंख बजाया॥३२॥ तब वह शंखोंका शब्द सुन कर प्रसन्नचित्त हुए इंद्रप्रस्थमेंके रहनेवाले पुरुषोंने, जरासंध मरणको प्राप्त होगया ऐसा समझा और धर्मराज भी पूर्णमनोरथ हुए॥ ३३॥ तदनन्तर उन भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णजीने, धर्मराजको वन्दना करके अपने करे हुए सब कार्य उन को सुनाये॥ ३४॥ तब श्रीकृष्णजीने कृपा करके वह जरासंधको मारनारूप कार्य सिद्ध करा ऐसा सुनकर, धर्मराज, नेत्रोंमेंसे आनन्दाश्रुओंके बिन्दु बहाते हुए प्रेम से गद्गद होकर कुछ समय पर्यंत कुछ भी कहनेको समर्थ नहीं हुए मौन बैठे रहे॥३५॥इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें त्रिसप्ततितम अध्याय समाप्त

अब आगे चौहत्तरवें अध्यायमें धर्मराजने जो ब्राह्मणोंसे राजसूययज्ञ कराया

तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच । ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः । वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥ २ ॥ स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम् । धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३ ॥ नह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवेः ॥ ४ ॥ न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव । त्वं तवेति च नानाधीः पशूनामिव वैकृता ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ ६ ॥ द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः । वशिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः । पैलः पराशरो गर्गो वैशंपायन एव च ॥८॥ अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः । वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥ ९ ॥ उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः । धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः १०

तिसका और आगे पूजा होनेके प्रसङ्गमें हुए शिशुपालके वधका वर्णन करा है॥*॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार धर्मराज, जरासन्धका वध और प्रभु श्रीकृष्णजीका वह प्रभाव सुनकर सन्तुष्टचित्त होते हुए श्रीकृष्णजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ युधिष्ठिरने कहा कि-जो त्रिलोकीको सन्मार्गका उपदेश करने वाले ब्रह्मादिक हैं और जो सब लोकोंके पालक इन्द्रादिक हैं वह सब, जिन तुम्हारे आज्ञाके वचनको, दुर्लभ और अपने अहोभाग्यसे मिलाहुआ मानकर बड़े सन्मान के साथ पालन करते हैं ॥ २ ॥ हे व्यापक ! ऐसे कमलनयन तुम, स्वयं दीन होकर राजा होनेका व्यर्थ अभिमान करनेवाले जो हम, तिनके आज्ञाके वचनको धारण करते हो सो केवल मनुष्यचेष्टाका अनुकरण है वास्तवमें आपके योग्य नहीं है ।३। अथवा जैसे सूर्यका तेज, उदयसे, अस्तसे वा ऊँच नीच सम्बन्धोंसे बढता घटता नहीं है तैसे ही एक, अद्वितीय, ब्रह्म, परमात्मा जो तुम तिन तुम्हारा तेज, दूसरों को आज्ञा करनेसे वा दूसरोंकी आज्ञाका पालन करने बढता घटता नहीं है अर्थात् आपकी कृपासे ही यह सब बातें होती हैं ॥ ४ ॥ हे अजित माधव ! तुम्हारे भक्तों को भी देह और पुत्रादिकोंके ऊपर 'मैं और मेरा इस प्रकारकी' तथा औरोंके ऊपर, 'तू और तेरा इस प्रकारकी' पशुओंकी समान शरीरोंके विषयमें भेदबुद्धि नहीं होती हैं फिर तुम्हें कहाँसे होयगी ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार कहकर, जिनको श्रीकृष्णजीने यज्ञ करनेके विषयमें सम्मति दी है ऐसे उन धर्मराजने, यज्ञके योग्य समयमें ब्रह्मज्ञानी योग्य ब्राह्मणोंको होता, अध्वर्यु आदि ऋत्विज वरा ॥ ६ ॥ उनके नाम-वेदव्यास, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित ॥ ७ ॥ विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन ॥८॥ अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण यह थे ॥ ९ ॥ हे राजन् ! तैसे ही भीष्म, द्रोण, कृपादिक राजे, पुत्रों सहित धृतराष्ट्र, परमबुद्धिमान् विदुर और दूसरे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बुलाये गये थे, वह सब राजे

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्रा यज्ञदिदृक्षवः । तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ॥ ११ ॥ ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलांगलैः । कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ॥ १२ ॥ हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा । इन्द्रादयो लोकपाला विरिंचभवसंयुताः ॥ १३ ॥ सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ॥ १४ ॥ राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः । राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै । मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः १५ अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः । राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः १६ सौत्येऽहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान् यथावत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥ सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः । नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥ १८ ॥ अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतां पतिः । एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥ १९ ॥ यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः । अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ॥ २० ॥ एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् । आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ २१ ॥ विविधा-

और उनके मन्त्री आदि सब लोग यज्ञ देखनेको उत्सुक होकर तहाँ आये थे ॥ १०।११ ॥ तदनन्तर उन ब्राह्मणोंने, यज्ञभूमिको सुवर्णके हलोंसे खोदकर, शुद्ध करके तहाँ विधिपूर्वक धर्मराजको यज्ञकी दीक्षा धारण करवाई ॥ १२ ॥ जैसे पहिले वरुणके राजसूययज्ञमें, सुवर्णके पात्र आदि थे तैसे ही सब उपकरण (सामान) इस यज्ञमें भी थे, ब्रह्मा-रुद्रसहित इन्द्रादि लोकपाल, गणोंसहित सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, बड़े २ नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, राजे और राजरानियें यह सब राजाके बुलवानेसे सब स्थानोंसे, पाण्डुपुत्र धर्मराजके राजसूय यज्ञमें आये और उन्होंने कृष्णभक्त उन धर्मराजका वह राजसूय यज्ञ विस्मय न मानकर सब प्रकारसे ठीक माना ॥ १३-१५ ॥ उस समय देवताओंकी समान तेजस्वी ऋत्विजोंने, जैसे पहिले देवताओंने वरुणसे यजन करवाया था तैसे राजसूय यज्ञकी विधिके अनुसार उन धर्मराजसे यजन करवाया ॥ १६ ॥ तदनन्तर एकाग्रचित्त तिन राजाने सोमवल्लीसे रस निकालनेके दिन महाभाग ऋत्विजोंका और सभापतिका विधिपूर्वक पूजन करनेका प्रारम्भ करा ॥ १७ ॥ उस समय, सभासदोंमें पहिले पूजा करने योग्य कौन है ? इसका विचार करनेवाले सभासदोंसे, बहुतसे योग्यपुरुषोंके होनेके कारण जब एक का निश्चय करनेमें नहीं आया तब सहदेवने कहा कि-॥ १८ ॥ हे सभासदो ! यादवोंके पति भगवान् श्रीकृष्ण ही, सर्वदेवतारूप और देशकालधनादिरूप हैं ॥ १९ ॥ और सब यज्ञ तथा यहसब जगत् जिनका स्वरूप है, अग्नि, आहुति, मंत्र, ज्ञान और उपासना यह जिनकी प्राप्तिके साधन हैं ॥ २० ॥ वह यह सृष्टिके पहिले सजातीय आदि भेदरहित एक ही थे, तदनन्तर उत्पन्न हुआ यह जगत् इनका ही स्वरूप है, क्योंकि-हे सभासदो ! यह दूसरेकी अपेक्षा न करके स्वयं जन्मरहित होकर भी अपने ही द्वारा इस जगत्को उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं ॥ २१ ॥ और, क्योंकि यह सब ही

नीह कर्माणि जनयन् यदवेक्षया । ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २२ ॥ तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् । एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत्॥२३ सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने । देयं शांताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता॥२४ इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभावविद् । तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्द्द सभासदाम् । समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ॥ २६ ॥ तत्पादाववनिज्यापः शिरसा लोकपावनीः । सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुंबोवहन्मुदा ॥ २७ ॥ वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः । अर्हयित्वाऽश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ॥ २८ ॥ इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रांजलयो जनाः । नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ २९ ॥ इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः । उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन् भगवते परुषाण्यभीतः ॥ ३० ॥ ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः । वृद्धानामपि यद् बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ॥ ३१ ॥ यूयं

लोक जिनके अनुग्रहसे तप योग आदि नानाप्रकारके सत्कर्म करके धर्म आदि पुरुषार्थको सिद्ध करते हैं ॥ २२ ॥ तिससे इन महात्मा श्रीकृष्णजीकी पूजा पहिले करना चाहिये, ऐसा करने पर मानो सकल जीवोंकी और आत्माकी भी पूजा करी हुई होजायगी ॥ २३ ॥ इससे दिये हुएका अनन्तफल मिले ऐसी इच्छा करनेवाला पुरुष, सब जीवोंके अन्तर्यामी, भेदभावरहित, शांत और पूर्णरूप श्रीकृष्णजीका ही पहिले पूजन करे ॥२४॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजीके प्रभावको जाननेवाले वह सहदेव, मौन हो बैठे, इसको सुन कर सब ही श्रेष्ठ ब्राह्मण 'बहुत ठीक कहा, बहुत ठीक कहा' इस प्रकार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २५ ॥ ब्राह्मणों का वचन सुनकर और सभासदोंका अभिप्राय जान कर संतुष्ट और प्रेमसे विह्वल हुए तिन धर्मराजने, श्रीकृष्णजीकी पहिले पूजा करी ॥ २६ ॥ उनके चरणोंको धोकर लोकोंको पवित्र करनेवाला वह जल, स्त्री-बंधु-मंत्री और कुटुम्बसहित प्रेमके साथ मस्तक पर धारण करा ॥ २७ ॥ पीले रेशमी वस्त्रोंसे और बहुत मूल्यके भूषणोंसे श्रीकृष्णजीकी पूजा करके, आनन्दके अश्रुओंसे नेत्र भर जानेके कारण वह अच्छी प्रकार देखनेको भी समर्थ नहीं हुए ॥ २८ ॥ इस प्रकार पूजा करे हुए भगवान्‌को देखकर सब लोकोंने हाथ जोडकर 'नमो जय' ऐसा कहते हुए तिन श्रीकृष्णजीको वन्दना करी उस समय, श्रीकृष्णजीके ऊपर आकाशमेंसे पुष्पोंकी वर्षा गिरी ॥२९॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीके गुणोंका वर्णन सुनकर दमघोषका पुत्र शिशुपाल, अपने आसन परसे उठकर, भगवान्‌के गुणोंका वर्णन सहन न होनेके कारण क्रोधित हो, सभामें अपना हाथ ऊपरको उठाकर भगवान्‌को कठोर वचन सुनाता हुआ इस प्रकार कहने लगा कि-॥ ३० ॥ यह समय सब कुछ करनेको समर्थ है और उसको उल्लँघन करनेको कोई समर्थ नहीं है, ऐसा कालका माहात्म्य कहनेवाली जो श्रुति है वह यथार्थ है, क्योंकि-कालके प्रभावसे ही ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध पुरुषोंकी बुद्धि भी बालकके वाक्योंसे भ्रममें पड़ जाती है ॥ ३१ ॥ हे सभापतियो !

पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्यध्वं बालभाषितम्। सदस्यपतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे॥ ३२॥ तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान्। परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान्॥ ३३॥ सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः। यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति॥ ३४॥ वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः। स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति॥ ३५॥ ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम्। वृथा पानरतं शश्वत्सपर्यां कथमर्हति॥ ३६॥ ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान् हित्वैते ब्रह्मवर्चसम्। समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधंते दस्यवः प्रजाः॥ ३७॥ एवमा-

तुम सब ही पूजाके पात्र (योग्य) को जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हो, इस कारण पूजाके विषयमें श्रीकृष्ण संमत (सब प्रकार योग्य) है ऐसा जो बालक (सहदेव) का कहना है उसको ठीक न मानो॥ ३२॥ क्योंकि—तप, विद्या और व्रत धारण करनेवाले, ज्ञानके प्रतापसे पापरहित हुए, ब्रह्मज्ञान और लोकपालों करके पूजन करने योग्य बड़े २ सभापति ऋषियोंका अनादर करके, गोपाल † और क्षत्रियकुलमें दूषणरूप, यह कृष्ण पूजाके विषयमें कैसे योग्य होसकता है? किन्तु जैसे कौआ देवताओंके पुरोडाशके योग्य नहीं होसकता है तैसे ही योग्य नहीं है॥ ३३॥ ३४॥ वर्ण ÷ आश्रम और कुलसे भ्रष्ट, सकल धर्मोंसे निकला हुआ, यथेष्ट आचरण करने वाला और गुणहीन यह कृष्ण पूजाके योग्य कैसे होसकता है?॥ ३५॥ ययाति + राजाने इसके कुलको शाप दिया है इस कारण यह कुल सत्पुरुषोंमेंसे बाहर करा हुआ है और निरन्तर वह कुल व्यर्थ मद्यपान करनेमें तत्पर है, वह पूजाके योग्य कैसे होसकता है॥ ३६॥ यह चोर * यादव ब्रह्मर्षियोंके सेवन करे हुए मथुरादि देशोंका त्याग करके, वेदपाठके तेजसे रहित और दुर्गम समुद्रका

† इसका ही वास्तविक अर्थ-गो कहिये वेदादि वाणीका पाल कहिये रक्षा करने वाला और कुलपांसन कहिये कुलप जो पाखंडी तिनका पांसन कहिये नाश करनेवाला इत्यादि समझना।

* यह यादव, ब्रह्मर्षियों करके सेवन करे हुए मथुरा आदि देशोंका आश्रय करके वेदविरुद्ध और कठिनसे जानने योग्य पाखण्डके चिन्ह धारण करने वाले लोकोंको, उनसे वह चिन्ह छुटवा कर दण्ड देते हैं और चोरी करने वाले प्रजारूप दुष्टोंको दण्ड देते हैं, फिर यादवोंसे दूसरा कौन धर्मात्मा है? कोई भी नहीं है।

+ इनके कुलको ययाति राजाने शाप दिया इस कारण वह साधुओंसे बहिष्कृत करे हुए हैं क्या? नहीं, किन्तु शिरसे वन्दना करने योग्य हैं, और अस्मदादिकेकुलों की समान यह व्यर्थ मद्यपान करने वाले हैं क्या? नहीं, किन्तु सदाचार सम्पन्न हैं।

÷ यह कृष्ण ब्रह्मरूप होनेके कारण वर्ण आश्रम और कुलोंसे रहित, अनधिकारी होनेके कारण सर्वधर्मबहिष्कृत, स्वच्छन्द होनेके कारण यथेच्छाचारी और तम आदि गुणोंसे रहित होनेके कारण निर्गुण हैं इस कारण ही केवल जीवोंके योग्य जो पूजा तिसके योग्य कैसे होसकते हैं?।

दीन्यभद्राणि वभाषे नष्टमङ्गलः । नोवाच किंचिद्भगवान् यथा सिंहः शिवारुतम् ॥३८॥ भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः । कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ॥ ३९ ॥ निंदां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा । ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ॥ ४० ॥ ततः पांडुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृंजयाः । उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ॥ ४१ ॥ ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रांतो जगृहे खड्गचर्मणी । भर्त्सयन् कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ॥ ४२ ॥ तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा । शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ॥ ४३ ॥ शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् । तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ॥४४॥ चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् । पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ॥ ४५ ॥ जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया । ध्यायंस्तन्मयतां

(उसमें भी द्वारका नगरीका) आश्रय करके प्रजाओंको पीड़ा देते हैं ॥३७॥ हे राजन्! इत्यादि दूसरे बहुतसे अमङ्गल वचन, क्षीण पुण्य हुआ वह शिशुपाल कहने लगा तब, गीदड़के अमङ्गल रुदनको सुन कर भी जैसे सिंह कुछ नहीं बोलता है तैसे भगवान् श्रीकृष्णजीने कुछ भी नहीं कहा ॥ ३८ ॥ तब भगवान्‌की वह दुःसह निन्दा सुन कर सभासद् पुरुष, क्रोधसे शिशुपालको 'हा दुष्ट दुरात्मा मर क्यों न जाय ? ऐसा शाप देते हुए' अपना २ कान बन्द करके उस सभामेंसे उठ कर चले गये ॥३९॥ क्योंकि-भगवान्‌की वा भगवान्‌के भक्तोंकी निन्दा सुन कर जो मनुष्य, तहाँसे नहीं उठ जाता है वह पुण्यसे रहित होकर नरकमें जाकर पड़ता है ॥४०॥ सभासदोंके उठ जानेपर पाण्डव, मत्स्य, कैकय, और सृंजय यह राजे क्रोधित हो हाथमें शस्त्र लेकर शिशुपालको मारनेकी इच्छा करते हुए उठ कर खड़े हुए ॥४१॥ हे राजन्! तदनन्तर, वह निर्भय शिशुपाल भी कृष्णकी ओरके तिन धर्मराज आदिकों को ललकारता हुआ, उनको मारनेके निमित्त हाथमें ढाल-तलवार लेकर खड़ा हुआ ॥ ४२ ॥ इतनेहीमें भगवान्‌ने विचार करा कि-यह मेरा पार्षद मेरी समान बलवान् है, यदि इसको मैं नहीं मारूँगा तो यह इन सबोंको मार डालेगा, ऐसा विचार कर आप ही आसनपरसे उठकर अपने उन पाण्डवादिकोंको निषेध करके क्रोधसे, छुरेकी समान धार वाले चक्रसे, अपने ही शरीर परको झपट कर आने वाले तिस शत्रुका मस्तक काट दिया ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शिशुपालको मारने पर, तहाँ बड़ा कलकलाहटका शब्द होने लगा और उसके पक्षपाती राजे भी अपने प्राणों को बचानेकी इच्छा करके जिधर तिधरको भाग गये ॥ ४४ ॥ उससमय शिशुपाल के देहमेंसे निकलाहुआ जो जीवरूपी तेज सो, सब लोकोंके देखतेहुए, जैसे आकाश मेंसे नीचे गिरा हुआ उल्कारूप तेज, भूमिमें घुस जाता है तैसे श्रीकृष्णजीके देहमें प्रविष्ट होगया अर्थात् उनकी सायुज्यताको प्राप्त हुआ ॥४५ ॥ अब, ऐसे निन्दकका वासुदेव भगवान्‌के विषें कैसे प्रवेश हुआ ? ऐसा कोई कहे तो हिरण्यकशिपु, रावण और शिशुपाल इन तीन जन्मोंमें बढ़े हुए द्वेषसे घबड़ाई हुई बुद्धिके द्वारा भगवान् का ध्यान करने वाला वह शिशुपाल, तन्मयताको प्राप्त हुआ अर्थात् फिर वैकुण्ठमें

यातो भावो हि भवकारणम् ॥४६॥ ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात्। सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ॥ ४७ ॥ साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः। उवास कतिचिन्मासान् सुहृद्भिरभियाचितः ॥ ४८ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः। ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ॥ ४९ ॥ वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम्। वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ॥ ५० ॥ राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः। ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥ ५१ ॥ राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः। कृष्णं क्रतुं च शंसंतः स्वधामानि ययुर्मुदा ॥ ५२ ॥ दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम्। यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पांडुसुतस्य ताम् ॥ ५३ ॥ य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम्। राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० दशमस्कन्धे उ० शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ७४

राजोवाच। अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम्। सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा

भगवान्‌का पार्षद होकर रहा इस प्रकार निरन्तर चिन्तवन होना ही ध्येयरूप (भगवद्रूप) का आकार होनेमें कारण हुआ था ॥ ४६ ॥ तदनन्तर चक्रवर्ती राजा तिन युधिष्ठिरने, सभासदोंसहित ऋत्विजोंको बहुत दक्षिणा दी और पूजा करनेके योग्य दूसरे सबोंका भी पूजन करके विधिपूर्वक यज्ञके अन्तका स्नान करा ॥४७॥ इस प्रकार धर्मराजका राजसूययज्ञ सिद्ध करके,कुन्ती और पाण्डवोंने जिनसे रहने की प्रार्थना करी है ऐसे वह योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णजी, कितने ही महीने पर्यंत तहाँ रहे थे ॥ ४८ ॥ फिर, अपने जानेकी इच्छा न करने वाले भी धर्मराजसे बूझ कर वह देवकी-पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी, स्त्रियोंसहित और मन्त्रियोंसहित अपनी द्वारकाको चले गये ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! वैकुण्ठवासी जयविजयोंका सनकादिकोंके शापसे वारम्वार जो जन्म आदि हुआ उसके विषयका यह कथानक मैंने तुमसे बहुत विस्तारके साथ कहा है॥५०॥राजसूय यज्ञका अवभृथ स्नान करे हुए वह धर्मराज,ब्राह्मणोंसे और क्षत्रियोंसे युक्त सभामें इंद्रकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ५१ ॥ धर्मराजके पूजन करेहुए सब ही देवता,मनुष्य और प्रमथआदि गण, श्रीकृष्णजीकी और यज्ञकी प्रशंसा करतेहुए अपने अपने स्थानको चलेगये५२ उससमय जिसने सबको आनन्द देने वालीऔर बढ़ीहुई वह युधिष्ठिरकी सम्पत्ति देख कर सहन नहीं करी, तिस एक कलियुगके अंशरूप,पापाचारी और कुरुकुलनाशक दुर्योधनके सिवाय सबोंको वह यज्ञ देख कर आनन्द हुआ ॥ ५३ ॥ जो पुरुष, इस शिशुपालवध आदि विष्णुभगवानके कर्म, जरासन्धने बन्धनमें डालकर रक्खे हुए राजाओं के मोक्ष और यज्ञके बड़े भारी उत्साहका कीर्त्तन, श्रवण और स्मरण करेगा वह सब पापोंसे छूट जायगा ॥५४॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें चतुःसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७४ ॥ ॥ ॥

अब आगे इस पिछत्तरवें अध्यायमें राजसूय यज्ञके अवभृथ स्नानका उत्सव और दृष्टिमें भ्रम होने पर भी, सह्य न होनेके कारण दुर्योधनका मानभङ्ग वर्णन

थे समागताः ॥ १ ॥ दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः । इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥२॥ ऋषिरुवाच । पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः । बांधवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबंधनाः ॥ ३ ॥ भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः । सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥ ४ ॥ गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने । परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥ ५ ॥ युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः । बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सन्तर्दनादयः ॥ ६ ॥ निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा । प्रवर्तते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥ ७ ॥ ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः । चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥ ८ ॥ मृदङ्गशंखपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥ ९ ॥ नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः । वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥१०॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः । स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥११॥

करा है ॥ * ॥ एक दुर्योधनको ही दुःख होनेका कारण बूझनेके निमित्त राजाने कहा कि-हे ब्रह्मन् ! शुकदेवजी ! एक दुर्योधनको छोड़ कर, जो तहाँ श्रेष्ठ मनुष्य राजे और देवता आये थे वह सबही धर्मराजका राजसूय महोत्सव देखकर आनंद को प्राप्त हुए, ऐसा मैंने तुमसे सुना सो उनमें एक दुर्योधनकी ही अप्रसन्नता होने का कारण क्या है सो कहिये ॥ १ ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! तुम्हारे दादा जो महात्मा युधिष्ठिर उनके राजसूय यज्ञमें प्रेमसे बँधे हुए उनके सब ही बांधव, यज्ञके नानाप्रकारके कार्य करते थे ॥३॥ भीमसेन पाकशाला (रसोईघर) का अध्यक्ष था, सुयोधन (दुर्योधन) धनका अध्यक्ष (खजांची) था सहदेव तिस उत्सवमें आने वालोंका पूजा सत्कार करने वाला था, नकुल अनेकों प्रकारकी वस्तुओंको इकट्ठा करने वाला था ॥ ४ ॥ पूजनीय लोकोंकी चन्दनके लेपन आदि से शुश्रूषा करनेमें अर्जुन था, श्रीकृष्णजी चरण धुलानेके काम पर थे, भक्ष्यभोज्य आदि पदार्थोंके परोसने पर द्रोपदी थी, अति उदारचित्त कर्ण दानाध्यक्ष था ॥५॥ तैसे ही हे राजेंद्र ! सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर आदि, वाह्लीक राजाके पुत्र भूरि आदि तथा सन्तर्दन आदि बान्धव वह सब ही उस महायज्ञमें अनेक कार्योंके करनेमें नियुक्त करे थे, सो वह धर्मराजका प्रिय करनेकी इच्छासे पूर्वोक्त अपने २ कार्यको करते थे ॥ ६॥७ ॥ ऋत्विज्, सभासद्, बड़े २ ज्ञानी और मित्र आदिकोंका मधुर भाषण, भूषण और दक्षिणा आदिसे सत्कार होने पर, तथा शिशुपालकेभी भक्तपालक श्रीकृष्णजीके चरण प्रवेश करने पर सबोंने भागीरथीमें अवभृथ स्नान करा ॥ ८ ॥ उस अवभृथ (यज्ञके अन्तके) स्नानके उत्सवमें मृदङ्ग, शंख, पणव, नौबत, नगाड़े, नफीरी आदि नानाप्रकारके चित्र विचित्र बाजे बजने लगे ॥ ९ ॥ उस समय हर्षको प्राप्त हुई वाराङ्गना नृत्य करने लगीं, गवैयोंके समूह गाने लगे, इस समय उन वीणा, मुरली और घण्टोंके बड़े भारी शब्दसे आकाश गूँज उठा ॥१० उस समय सुवर्णके पुष्पोंकी माला धारण करने वाले राजे, जिनकी ध्वजाओंके

यदुसृञ्जयकांबोजकुरुकैकयकोसलाः । कम्पयंतो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥ १२ ॥ सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः१३ स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्रग्भूषणांबरैः । विलिंपंत्योऽभिषिंचन्त्यो विजह्रु विविधै रसैः ॥ १४ ॥ तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासांद्रकुंकमैः । पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिपंत्यो विजह्रु वारयोषितः ॥ १५ ॥ गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैः नृदेव्यः । ता मातुलेयसखिभिः परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नांबरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः । औत्सुक्यमुक्तकवराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ॥ १७ ॥ स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् । व्यरोचत स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव१८ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः । आचांतं स्नापयांचक्रुर्गंगायां सह

और पताकाओंके अग्रभाग चित्र-विचित्र रङ्गोंके हैं ऐसे अपने हाथी, रथ, घोड़े और उत्तम आभूषण धारण करे हुए सिपाही ऐसी चतुरङ्गिणी सेनाओंसे घिर कर नगरके बाहर निकले ॥ ११ ॥ तथा, यदु,सृञ्जय,काम्बोज,कुरु, केकय और कोसल वंशोंके क्षत्रिय, यह सब धर्मराजको आगे करके सेनाओंसे पृथ्वीको डगमगातेहुए चले ॥ १२ ॥ तैसे सदस्य, ऋत्वज् तथा दूसरे भी श्रेष्ठ ब्राह्मण बड़ा भारी वेदघोष करते हुए चले, उस समय देवता ऋषि, पितर और गन्धर्व पुष्पोंकी वर्षा करतेहुए स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥ नगरमेंके पुरुष और स्त्रियें,चन्दनका लेपन,पुष्पोंकी माला भूषण और वस्त्रोंसे उत्तम सज धज कर अनेकों प्रकारके रङ्गरसोंसे परस्पर लेपन करते हुए और भिगोते हुए, क्रीड़ा करने लगे ॥ १४ ॥ उस समय, तेल, गोरस, सुगन्धित जल,हलदी और गाढे केशर आदिसे पुरुषोंके द्वारा लेपन करीहुई वारांगना, पलटेमें उन पुरुषोंको लेपन करती हुई क्रीडा करने लगीं ॥ १५ ॥ उससमय तिस उत्साहको देखनेके निमित्त, जैसे देवाङ्गना उत्तम विमानोंमें बैठ कर आई थीं तैसे ही देवताओंकी स्त्रियें भी,योधाओंसे उत्तम रक्षा करी हुईं अवभृथ स्नान करनेको रथ आदिमें बैठ कर नगरसे बाहर भागीरथीके तीर पर आईं, वह युधिष्ठिर आदिके ममेरे भाई और उनकी स्त्रियोंसे जलऔर गोरसादि करके भिगोई हुईं लज्जायुत हास्यसे प्रफुल्लित मुख होकर शोभा पाने लगीं ॥ १६ ॥ वह राजरानियें जब जल उछालनेके चमड़ेके यंत्रोंसे (फुवारोंसे) और पिचकारियोंसे अपने देवरों के और उनकी स्त्रियोंके ऊपरको जल उड़ाने लगीं तब उनके सूक्ष्म वस्त्र, अत्यन्त भीग गये थे, इस कारण उनके शरीर, कुच, जङ्घा और पेट प्रकट दीखते थे और उनकी तिस जलक्रीडाकी परमउत्कंठासे बंधन खुलेहुए केशोंके जूड़ोंमेंसे फूल गिरते थे,इसप्रकारके सुन्दर विहारोंसे वह राजरानियें,कामीजनोंके कामवासनायुक्त मन को चलायमान करनेलगीं१७उससमय वह सार्वभौम राजा युधिष्ठिर,सुवर्णके पुष्पों की मालाओंसे युक्त और उत्तम घोड़े जुतेहुए अपने रथों पर स्त्रियोंके साथ चढे तब, वह प्रयाज अनुयाज आदि अङ्ग क्रियाओं सहित मूर्त्तिमान् प्रकट हुआ राजसूययज्ञ ही है क्या ? इस प्रकार शोभायमान होने लगे ॥ १८ ॥ तिन ऋत्विजोंने,पत्नीसंयाज

कृष्णया ॥ १९ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुंदुभिभिः समम् । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ॥ २० ॥ सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः । महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ॥ २१ ॥ अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः । ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणांबरैः ॥ २२ ॥ बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः । अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ॥ २३ ॥ सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्रगुष्णीषकंचुकदुकूलमहार्घ्यहाराः । नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ॥ २४ ॥ अथर्त्विजो महाशीलाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ॥ २५ ॥ देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः । पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ॥ २६ ॥ हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् । नैवातृप्यन्प्रशंसंतः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ॥ २७ ॥ ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबंधिबांधवान् । प्रेम्णा निवारयामास कृष्णं च त्यागकातरः २८

नाम वाला याग, और अवभृथके सम्बन्धी कर्म करके आचमन करे हुए द्रौपदी सहित, तिन धर्मराजको गङ्गामें बड़े उत्साहके साथ स्नान करवाया ॥ १९ ॥ उस समय मनुष्योंकी दुंदुभियोंके साथ देवताओंकी भी दुंदुभी बजने लगीं और देवता, ऋषि, पितर तथा मनुष्य, तिन युधिष्ठिरके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ इस प्रकार यजमानका स्नान होने पर ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके और ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रमोंके सब पुरुषोंने तिस गङ्गामें स्नान करा, क्योंकि-यह अवभृथ स्नान होने पर, ब्रह्महत्यादि महापातक करने वाला भी पुरुष तिन पापोंसे तत्काल छूट जाता है ॥ २१ ॥ तदनन्तर उन धर्मराजने, नवीन रेशमी वस्त्र पहिन कर और भी अलंकार धारण करे और भूषण वस्त्र आदि देकर ऋत्विज, सभासद तथा ब्राह्मणोंका सत्कार करा ॥ २२ ॥ वह युधिष्ठिर नारायणमें तत्पर थे इस कारण उन सर्वात्मा नारायणकी प्रीतिके अर्थ उन्होंने, बन्धु, जाति, राजे मित्र और सुहृदोंका तैसे ही और भी सब लोकोंका वारम्वार सत्कार करा ॥ २३ ॥ उस समय, सब पुरुष, मणि जड़े कुण्डल, माला, पगड़ी, अंगरखे, दुपट्टे और बहुत मूल्यके हार धारण करके देवताओंकी समान दमक उठे तैसे ही सब स्त्रियें भी, दोनों कानोंमेंके कुण्डलोंसे और अलकोंके समूहसे मुख पर तेजयुक्त होती हुई, कमरमें धारण करी हुई सुवर्णकी मेखलासे शोभायमान होने लगीं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर सुशील ऋत्विज, ब्रह्मज्ञानी सभासद, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और तहाँ जो राजे आये थे वह ॥ २५ ॥ तैसे ही, देवता, ऋषि, पितर, भूत और अनुचरों सहित लोकपाल यह सब, दानमानके द्वारा धर्मराजसे सत्कारको प्राप्त होते हुए अपने २ स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ हरिभक्त राजर्षि युधिष्ठिरके तिस राजसूयके बड़े भारी उत्साहकी प्रशंसा करने वाले पुरुष, जैसे अमृतको पीने वाला मनुष्य तृप्त नहीं होता है तैसे तृप्त नहीं हुए ॥ २७ ॥ उस समय वियोगको न सहने वाले धर्मराजने, अपने मित्र, सम्बन्धी, बान्धव और श्रीकृष्णजीको प्रेमके कारण टिका लिया ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उन धर्मराजका प्रिय करने वाले भगवान्

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत्सुहृत्प्रियंकरः। प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च सांबादींश्च कुशस्थलीम् ॥ २९ ॥ इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम । सुदुस्तरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ॥ ३० ॥ एकदांतःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् । अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ॥ ३१ ॥ यस्मिन्नरेंद्रदितिजेंद्रसुरेंद्रलक्ष्मीर्नाना विभांति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः । ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ॥ ३२ ॥ यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् । मध्ये सुचारुकुचकुंकुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुंतलाढ्यम् सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् । वृतोऽनुजैर्बंधुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥ ३४ ॥ आसीनः कांचने साक्षादासने मघवानिव । पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च वंदिभिः ॥ ३५ ॥ तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप । किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ॥३६॥ स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रांतं जलं मत्वा स्थले-

---

श्रीकृष्णजीने भी, साम्ब आदि यादव वीरोंको द्वारकाको भेज दिया, आप वहाँ ही रहे ॥ २९ ॥ इस प्रकार धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, औरोंको दुस्तर ऐसे भी राजसूय यज्ञकी समाप्तिकी इच्छारूप महासमुद्रको श्रीकृष्णरूप मल्लाहके आश्रयसे तर कर निश्चिन्त हुए ॥ ३० ॥ एक समय, भगवद्भक्त उन राजा युधिष्ठिरके रणवासमें सम्पदा तथा राजसूय यज्ञका गौरव देख कर अपनेको वह प्राप्त न होनेके कारण दुर्योधन मनमें सन्तापयुक्त हुआ ॥ ३१ ॥ क्योंकि-हे राजन् ! धर्मराजके जिस रणवासमें मयासुरकी रची हुई नरपति दैत्यपति और देवपतियोंकी अनेकों प्रकारकी सम्पदा शोभायमान थीं उनके साथ द्रौपदी अपने युधिष्ठिर आदि पतियोंकी सेवा कर रही थी उस सम्पत्तियुक्त द्रौपदीके ऊपर आसक्तचित्त हुआ वह दुर्योधन अपने मनमें सन्ताप पाता था ॥ ३२ ॥ और जिस रणवासमें उस समय (दुर्योधनका हास्य करते समय) नितम्बके भारसे धीरे चलनेके कारण भूषणोंके द्वारा शब्द करते हुए चरणोंसे शोभायमान कुचोंके केसरसे लाल २ हारको धारण करने वाली, हलते हुए कुण्डलोंसे, और केशपाशसे शोभायमान मुख वालीं और दुर्बल कमरवालीं श्रीकृष्णजीकी सहस्रों स्त्रियें शोभायमान थीं ॥३३ उस रणवासमें मयासुरकी रचना करी हुई सभाके विषैं एक समय अपने छोटे भ्राताओं सहित और हित अहित जताने वाले श्रीकृष्णजीके साथ वह सार्वभौम धर्मराज सुवर्णके सिंहासन पर साक्षात् इन्द्रकी समान विराजमान होकर छत्र-चामरादि शोभासे सेवा किये जारहे थे तब, बन्दिजनोंने उनकी स्तुति करना प्रारम्भ करी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! तिस समय उस सभामें, अभिमानी दुर्योधन, अपने दुःशासन आदि भ्राताओं सहित, हाथमें तरवार मस्तक पर किरीट और कण्ठमें माला धारण करके, क्रोधसे द्वारपालोंको धमकी देता हुआ प्रविष्ट हुआ ॥ ३६ ॥ फिर उसने मयासुरकी मायासे मोहित होकर स्थलमें 'यह जल है' ऐसा मान कर पहिरे हुए वस्त्रका जो भाग नीचेको लटक रहा था वह ऊपरको उठा कर पकड़ लिया, तैसे ही वह, जलमें 'यह थल है' ऐसे भ्रमसे एकाएकी

पतत् । जले च स्थलवद्भ्रांत्या मयमायाविमोहितः ॥ ३७ ॥ जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे । निवार्यमाणा अप्यंग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ॥ ३८ ॥ स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् । हा हेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् । बभूव तूष्णीं भगवान् भुवो भारं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ॥ ३९ ॥ एतत्तेऽभिहितं राजन् यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते म० द० उ० दुर्योधनमानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ७५

श्रीशुक उवाच । अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप । क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥१॥ शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः । यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासंधादयस्तथा ॥२॥ शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् । अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥ ३ ॥ इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् । आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद् ग्रसन् ॥४॥ संवत्सरांते भगवानाशुतोष

फिसल कर गिर पड़ा ॥३७॥ उसको देखकर भीमसेन हँसा तैसे ही स्त्रियें और दूसरे राजे भी, धर्मराजके निषेध करने पर भी श्रीकृष्णजीकी कटाक्षसे (इशारेसे) अनुमति होनेके कारण हँसने लगे ॥३८॥ तब वह दुर्योधन, तिस हास्यसे लज्जित हुआ और नीचेको मुख करके क्रोधाग्निसे भस्म होता हुआ अपने घरको जानेके विषयमें राजासे आज्ञा विना लिये ही सभामेंसे उठ कर हस्तिनापुरमेंके अपने घरको चला गया उस समय सत्पुरुषोंमें आगेको होने वाले अनर्थका सूचक बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ और धर्मराज भी खिन्नसे होगये, तैसे ही जिनकी दृष्टिमात्रसे दुर्योधन, भ्रान्तिको प्राप्त हुआ, वह पृथ्वीका भार हरनेकी इच्छा करने वाले भगवान् श्रीकृष्णजी भी मौन ही रहे ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! तुमने जो मुझसे, इस राजसूय महायज्ञमें दुर्योधनकी अप्रसन्नताका कारण बूझा था सो यह दुर्योधन का दुष्टचित्तपना मैंने तुम्हारे अर्थ वर्णन करा है ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें पञ्चसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७५ ॥ *

अब आगे छिहत्तरवें अध्यायमें, यादवोंके और शाल्वके महासंग्राममें, शाल्वके द्युमान् नाम वाले मन्त्रीकी गदाके प्रहारसे युद्धमेंसे प्रद्युम्न निकल कर चले गये, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! अब, क्रीडा करनेके निमित्त मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीका दूसरा भी अद्भुत कर्म सुनो कि-जिस प्रकार उन्होंने शाल्वका वध करा ॥ १ ॥ शिशुपालका मित्र शाल्व, रुक्मिणीके विवाहमें आया था, तब यादवोंके साथ जो युद्ध हुआ उसमें वह शाल्व तथा जरासन्धादिक दूसरे भी राजोंको यादवोंने जीत लिया था ॥ २ ॥ उस समय, सब राजाओंके सुनते हुए शाल्वने प्रतिज्ञा करी थी कि-हे राजाओं ! मैं इस पृथ्वीको यदुकुलरहित कर दूँगा, मेरा पराक्रम देखो ॥ ३ ॥ हे राजन् ! वह मूढ शाल्व, इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, प्रतिदिन एकबार मुट्ठी भर धूलि खाकर, प्रभु, देव शंकर भगवान्की आराधना करने लगा ॥ ४ ॥ श्रीशङ्कर भगवान् शीघ्र

उमापतिः । वरेण छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥ देवासुरमनुष्याणां गंधर्वोरगरक्षसाम् । अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥ तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरञ्जयः । पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥७॥ स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् । ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥ ८ ॥ निरुद्ध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ । पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः । विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥ १० ॥ शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः । प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥ ११ ॥ इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् । नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥ १२ ॥ प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः । मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥ १३ ॥ सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः । हार्दिक्यो भानुविंदश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥

ही प्रसन्न होने वाले हैं तथापि उन्होंने, श्रीकृष्णका द्वेष करने वाले शाल्वके पास मेरा वरदान व्यर्थ होगा ऐसा मानकर पहिले उसकी उपेक्षा करी फिर एक वर्षके अनन्तर, शरणमें आये हुए तिस शाल्वसे, तू वर माँग ले ऐसा कहा ॥ ५ ॥ तब उस शाल्वने, देवता दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और राक्षस, यह जिसको न भेद सकें ऐसी अपनी इच्छाके अनुसार जाने वाला, और यादवोंको भय देने वाला एक विमान माँग लिया ॥ ६ ॥ तब तथास्तु ऐसा कह कर श्रीशंकरने, शत्रुओंके नगर जीतनेवाले मयासुरको आज्ञा करी और उससे केवल फौलादका सौभनामक विमान बनवा कर शाल्वको दे दिया ॥ ७ ॥ तब वह शाल्व, अन्धकारके स्थान जिसको शत्रु न ले सकें ऐसे और अपनी इच्छानुसार चलने वाले विमानके मिलने पर, उसमें बैठ कर यादवोंके करे हुए वैरका स्मरण करता हुआ, उनकी द्वारका नगरीके ऊपर चढ़ाई करनेको चल दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! वह शाल्व अपनी बड़ी भारी सेनासे द्वारका नगरीको चारों ओरसे घेर कर, फलोंके बाग और फूलोंके बगीचे सब तोड़ने लगा ॥ ९ ॥ तथा नगरके द्वार, घरोंके द्वार, राजमंदिर, अटारियें और उनसे भी ऊपरको उठी हुई भीतोंको तथा क्रीडाके स्थानोंको तोड़ने लगा और उस श्रेष्ठ सौभ नामक विमानमेंसे शस्त्रोंकी वर्षा भी पड़ने लगीं ॥ १० ॥ शिला, वृक्ष, वज्रपात, सर्प, जलकी धारा और बालूकी वर्षा होनेलगी, प्रचण्ड आँधीका पवन चलने लगा, सब दिशा धूलिसे ढकगईं ११ हे राजन् इस प्रकार सौभ विमानसे अत्यन्त पीडित हुई वह श्रीकृष्णजीकी द्वारका नगरी, जैसे त्रिपुरासुरकी पीडित करी हुई पृथ्वी सुखहीन हुई थी तैसे ही सुखको न प्राप्त हुई ॥१२॥ उस समय भगवान् प्रद्युम्नने, अपनी सब प्रजाको पीडित हुई देखकर, सबोंसे कहा कि-डरो मत, और वह यशस्वी प्रद्युम्न रथ पर चढ़कर युद्धके स्थानमें गये १३ तैसे ही दूसरे भी बड़े २ धनुषधारी रथोंके समूहोंके स्वामियोंके स्वामी सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, छोटे भ्राताओं सहित अक्रूर, हार्दिक्य, भानुविंद, गद, शुक और सारण, यह सब ही रथ हाथी; घोड़े और पैदल रूप चतुरङ्गिणी

अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः । निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥ ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह । यथासुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥ ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः । क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥ १७॥ विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः । शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१८॥ शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् । दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १९ ॥ तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः । दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥ २० ॥ बहुरूपैकरूपं तद् दृश्यते न च दृश्यते । मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥ २१ ॥ क्वचिद् भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् । अलातचक्रवद् भ्राम्यत्सौभं तद् दुरवस्थितम् ॥२२॥ यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः । शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चन् शरान् सात्वतयूथपाः ॥ २३ ॥ शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः । पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥२४॥ शाल्वानीकपशस्त्रौघैर्वृष्णिवीरा भृशार्दिताः । न तत्यजू रणं

सेनासे रक्षित होतेहुए, कवच(बख्तर)पहिनकर युद्ध करनेको बाहर निकले१४।१५ तदनन्तर शाल्वके पुरुषोंका यादवोंके साथ,जैसे पहिले असुरोंका देवताओंके साथ युद्ध हुआ था तैसे भयंकर और सुनने तथा देखनेवाले पुरुषोंके शरीर रोमाञ्च खड़े करनेवाला युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ १६ ॥ तब प्रद्युम्नने अपने दिव्य अस्त्रोंसे शाल्वकी वह शस्त्रोंकी वर्षारूप माया एक क्षणमें जैसे सूर्य रात्रिके अन्धकारका नाश करता है तैसे नष्ट करडाली ॥ १७ ॥ और शाल्वका जो सेनापति था उसको, सुवर्णके पर और लोहेके अग्रभागवाले और जिनकी गाँठें नीची हैं ऐसे पचीस बाणोंसे वेधडाला ॥ १८ ॥ फिर सौ बाणोंसे शाल्वको, एक २ बाणसे उसके योधाओंको; दश २ बाणोंसे सारथियोंको और तीन२ बाणोंसे उसके हाथी घोड़े रथ आदिकोंको ताडन करा ॥ १९ ॥ महात्मा प्रद्युम्नका वह बड़ा अद्भुत कर्म देखकर यादवोंकी और शाल्वकी सेनामेंके सब वीरोंने उन प्रद्युम्नकी प्रशंसा करी ॥ २० ॥ मयासुरका रचा हुआ वह मायामय सौभ विमान, कभी तो बहुत रूपोंसे, कभी एक रूपसे दीखता था और कभी दीखता ही नहीं था ऐसा वह सौभ शत्रुओंको तर्कना करनेको भी अशक्य हुआ॥२१॥कभी तो पृथ्वी पर,कभी आकाशमें, कभी पर्वतके शिखर पर, और कभी जलमें फिरने वाला वह सौभ विमान, जली हुई लकड़ीके चक्र (बनैटी) की समान एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता था ॥ २२ ॥ इसकारण उस विमान और सेनाके पुरुषोंके साथ वह शाल्व, जहाँ २ दीखता था तहाँ २ यादवोंके प्रद्युम्न आदि सेनापति बाण छोड़ते थे ॥२३॥ जिनका स्पर्श अग्निकी समान भस्म करने वाला और सूर्यके प्रकाशकी समान सर्वव्यापक है और जो सर्पकी समान एक स्थानमें स्पर्श होते-ही मार डालने वाले हैं ऐसे यादवोंके छोड़े हुए दुःसह बाणोंसे जिसका सौभ विमान और सेना पीडित हुए हैं ऐसा वह शाल्व घबड़ा गया ॥ २४ ॥ शाल्वके सेनापतिके अस्त्रोंके समूहोंसे अत्यन्त पीडित हुए भी यादव वीरोंने, इस लोकमें यश और परलोकमें सुखके मिलनेकी इच्छा करके अपने

स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥ शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नं प्राक् प्रपीडितः। आसाद्य गदया मौर्व्यं व्याहत्य व्यनदद्बली ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्षःस्थल-मरिंदमम्। अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मजः ॥ २७ ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत् । अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ॥ २८ ॥ न यदूनां कुले जातः श्रूयते रणविच्युतः। विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बि-षात् ॥२९॥ किं नु वक्ष्येऽभिसंगम्य पितरौ रामकेशवौ । युद्धात्सम्यगपक्रांतः पृष्ट-स्तत्रात्मनः क्षमम् ॥३०॥ व्यक्तं मे कथयिष्यंति हसंत्यो भ्रातृजामयः । क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे ॥ ३१ ॥ सारथिरुवाच । धर्मं विजानतायुष्मन्कृत-मेतन्मया विभो । सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥ ३२ ॥ एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् । उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥
श्रीशुक उवाच । स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः । नय मां द्युमतः

अपने युद्धका स्थान नहीं छोड़ा ॥ २५ ॥ शाल्वका द्युमान् नाम वाला मंत्री था, 'जिसको पहिले प्रद्युम्नने पीड़ित करा था' उस बलवान् मन्त्रीने, प्रद्युम्नके समीप आकर उसको लोहेकी गदासे ताड़न करा और 'जीत लिया रे जीत लिया' ऐसा कहकर,बड़ा भारी शब्द करा२६तब शत्रुओंको दबानेवाले परन्तु जिनका वक्षःस्थल गदासे घायल होगया है ऐसे उन प्रद्युम्नको दारुक (श्रीकृष्णके सारथी) के पुत्र धर्मवेत्ता सारथिने, शीघ्रही युद्धकी भूमिसे बाहर निकाललिया ॥२७॥ वह प्रद्युम्न पहिले मूर्छित होगये थे फिर दो घड़ीमें सावधान होकर सारथीसे कहने लगे कि-हे सूत ! तू जो मुझे युद्धभूमिमेंसे एक ओरको निकाल लाया यह तूने बड़ा बुरा कार्य करा ॥२८॥ क्योंकि-नपुंसक (अधीर) की समान चित्तवाले तुझ सारथि के द्वारा अपयश पाये हुए एक मुझे छोड़ कर दूसरा यादवोंके कुलमें उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष, युद्धमेंसे भागा हुआ सुननेमें नहीं आता है ॥ २९ ॥ सो अब युद्धमें से प्रसिद्ध रूपसे भागा हुआ मैं, बलराम कृष्ण पिताके समीप जाकर उनके बूझने पर तहाँ अपने योग्य क्या उत्तर कहूँगा ? ॥ ३० ॥ और मेरी भौजाइयें हँसती हुई मुझसे स्पष्ट कहेंगी कि-हे वीर ! रणमें शत्रुओंके साथ युद्ध करतेमें तुझे व्याकुलता कैसे २ हुई ? कि-जिससे तू भाग गया सो बता ॥ ३१ ॥ सारथिने कहा कि—हे चिरञ्जीव प्रभो ! मैंने तो अपना धर्म जान कर यह कार्य करा है, क्योंकि-सारथी को संकटमें पड़े हुए रथीकी रक्षा करना चाहिये और रथी सारथीकी रक्षा करे ३२ यह जान कर ही मैं आपको युद्धमेंसे एक ओरको लेगया, क्योंकि-शत्रुने गदाका प्रहार करा था इस कारण मूर्छाको प्राप्त होकर आपके ऊपर प्राणसंकट आपहुँचा था ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें षट्सप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७६ ॥ छ ॥ छ ॥

अब इस सततरवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजीने हस्तिनापुरसे आकर अनेकों माया जाननेवाले शाल्वको मारा और उसके सौभ विमानको भी चूर्ण करा यह कथा

पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥ विधमंतं स्वसैन्यानि द्युमंतं रुक्मिणीसुतः । प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ॥२॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् । द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ॥ ३ ॥ गदसात्यकिसांबाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् । पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकंधराः ॥ ४ ॥ एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतम् । युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ॥ ५ ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना । राजसूयेथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ॥ ६ ॥ कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् । निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ॥ ७ ॥ आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसंगतः । राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥८॥ वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् । सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥९॥ रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यांतिकमाशु वै । संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम्॥१०॥इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः । विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥ ११ ॥ शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्राय-

---

वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! तिस प्रद्युम्नने जलका आचमन करके कवच धारण करा तथा हाथमें धनुष लिया और सारथीसे यह कहा कि-तू मुझे उस द्युमान् वीरके समीप लेचल ॥ १ ॥ फिर तहाँ पहुँचायेहुए रुक्मिणीकुमार प्रद्युम्नने, अपनी सेनाका नाश करने वाले उस द्युमान्को रोक कर हँसते २ आठ बाणोंसे वेधा॥२॥चार बाणोंसे चार घोड़ोंको,और एक बाणसे सारथिको मार कर दो बाणोंसे धनुष और ध्वजा तोड़ डाले और एक बाणसे मस्तकको(ड़ दिया३ तैसे ही गद, सात्यकि-और साम्ब आदि यादव भी शाल्वकी उस सेनाको मारने लगे तब सौभ विमानमें रहने वाले सब ही वीर, मस्तक कट कर समुद्रमें गिरपड़े४ इस प्रकार यादव और शाल्वके वीरोंके परस्पर युद्ध करने पर, वह उनका युद्ध, सत्ताईस दिन पर्यंत अचापच और भयानक हुआ ॥ ५ ॥ अब दूसरे ऋषियोंका मत कहते हैं कि-धर्मराजके बुलानेके कारण इंद्रप्रस्थमें गये हुए श्रीकृष्णजी, राजसूय यज्ञ होजानेपर और शिशुपालके भी मरणको प्राप्त होजानेपर कुछ दिनों पर्यंत तहाँ रहे थे ॥ ६ ॥ इन्होंने तहाँ अति भयानक कुशकुन देख कर, बलरामजीके साथ मैं यहाँ आया हूँ सो शिशुपालके पक्षपाती राजाओंने, मेरी द्वारका नगरीका निःसंदेह नाश करा होगा, ऐसा मनमें विचार कर भीष्म आदि कुरुवंशके वृद्धोंकी, पुत्रों-सहित कुंतीकी और सकल ऋषियोंकी आज्ञा लेकर द्वारकाको चले गये ॥ ७ ॥८॥ और तहाँ जाकर उन श्रीकृष्णजीने अपनी प्रजाओंकी,शाल्वकी दीहुई उस पीड़ाको देख कर तैसे ही सौभ विमान और शाल्व राजाको देख कर नगरकी रक्षा करनेके विषयमें बलरामजीको नियुक्त करा और दारुकसे कहा कि- ॥ ९ ॥ हे सारथी ! मेरा रथ; शाल्वके समीप शीघ्र ही पहुँचा,यह शाल्व राजा बड़ा मायावी है तथापि तू मनमें किसी प्रकारका भय मत कर ॥ १० ॥ इसप्रकार आज्ञा करेहुए उस दारुकने रथ पर बैठ कर घोड़े चलाये,तब यादवोंकी और शाल्वकी सेनामेंके वीरोंने,युद्धमें प्रवेश करने वाले श्रीकृष्णजीकी ध्वजा परके गरुड़जीको देखा ॥ ११ ॥ तब प्राय:

बलेश्वरः। प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥ तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा। भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाच्छिनत् ॥ १३ ॥ तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत्। अविध्यच्छरसंदोहैः खं सूर्य इव रश्मिभिः॥ १४॥ शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः। बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥१५॥ हाहाकारो महानासीद् भूतानां तत्र पश्यताम्। विनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥ १६॥ यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम्। प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥ तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम्। नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः॥ १८॥ श्रीभगवानुवाच। वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम्। पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः॥ १९॥ इत्युक्त्वा भगवान् शाल्वं गदया भीमवेगया। तताड जत्रौ संरब्धः स चकम्पे वमन्नसृक् ॥ २०॥ गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत। ततो मुहूर्तमागत्य पुरुषः शिरसाऽच्युतम्। देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा

जिसकी सेनाके अधिपति मर गये हैं ऐसे तिस शाल्वने, युद्धमें श्रीकृष्णजीको देख कर उनके सारथीके ऊपर भयंकर शब्द करनेवाली शक्ति छोड़ी ॥१२॥ तब आकाश में उत्पन्न हुई उल्काकी समान सब दिशाओंको प्रकाशित करती हुई वेगके साथ आनेवाली तिस शक्तिके, श्रीकृष्णजीने बाणोंसे सैंकड़ों टुकड़े कर डाले ॥१३॥ और तिस शाल्वको सोलह बाणोंसे वेधकर, आकाशमें घूमनेवाले उसके सौभ विमानको भी बाणोंके समूहोंसे, जैसे सूर्य किरणोंसे आकाशको सहजमें ही वेध लेता है तैसे वेध डाला ॥१४॥ शाल्वने भी, शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्णजीके शार्ङ्ग धनुष सहित बाएँ हाथको बाणसे वेध दिया तब उन श्रीकृष्णजीके हाथमेंसे शार्ङ्ग धनुष नीचे गिर पड़ा, यह बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥ तहाँ उस आश्चर्यको देखनेवाले सब लोकोंमें बड़ा हाहाकार शब्द हुआ तब, सौभ विमानमें बैठकर शोभायमान होनेवाला शाल्व राजा, बडी गर्जना करके श्रीकृष्णजीसे ऐसे कहने लगा कि -॥ १६ ॥ अरे मूढ़ ! जो तूने मेरे देखते हुए मेरे सखा शिशुपालकी स्त्री (रुक्मिणी) को हरण करा है तैसे ही वह सावधान होकर न आया हुआ हमारा सखा (शिशुपाल) सभाके विषें तूने मारडाला है,तिस, मुझे कोई जीतनेवाला ही नहीं है ऐसे तुझको,यदि मेरे आगे थोडे समय खड़ा रहेगा तो अब ही तीखे बाणोंसे मरणदशाको पहुँचाऊँगा॥१७।१८। ऐसा कहने पर भगवान् श्रीकृष्णजीने कहा कि-अरे मूर्ख ! तू वृथा ही बड़बड़ कर रहा है, समीप आये हुए अपने मृत्युको नहीं देखता है, जो शूर होते हैं वह युद्धमें बहुतसी बातें नहीं बनाते हैं किन्तु पराक्रम ही दिखाते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्ने कहकर और क्रोधमें भरकर भयंकर वेगसे युक्त गदाके द्वारा उस शाल्वके कन्धे पर प्रहार करा, तब वह रुधिर डालता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ फिर गदा के पीछेको जाने पर वह शाल्व अचानक अन्तर्धान होगया, तदनन्तर दो घड़ीमें (शाल्वके भेजे हुए) एक पुरुषने आकर, श्रीकृष्णजीको मस्तकसे प्रणाम करके रोते २ 'मुझे देवकीने भेजा है' ऐसा वाक्य कहा ॥ २१ ॥ कि-हे कृष्ण ! हे कृष्ण !

प्राह वचो रुदन् ॥ २१ ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल । बद्ध्वाऽपनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ॥२२॥ निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः । विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ॥ २३ ॥ कथं राममसंभ्रांतं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः । शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः ॥ २४ ॥ इति ब्रुवाणे गोविंदे सौभराट् प्रत्युपस्थितः । वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥ एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि । वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥ एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः । उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥ २७ ॥ ततो मुहूर्तं प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषंगतः । महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्वप्रसृतां मयोदिताम् ॥ २८ ॥ न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः । स्वाप्नं यथा चांबरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥ २९ ॥ एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः के च नान्विताः ।

हे पिता पर प्रेम करनेवाले ! जैसे सौनिक (कसाई) पशुको मारनेके निमित्त बाँध कर लेजाता है तैसे ही शाल्व, तुम्हारे पिता वसुदेवजीको बाँध कर लेगया ॥ २२ ॥ यह उसका अप्रिय भाषण सुनकर, मनुष्यके स्वभावके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले वह श्रीकृष्णजी, साधारण संसारी पुरुषकी समान वसुदेवजीके विषयमें स्नेह और दयायुक्त तथा खिन्नचित्त होकर कहने लगे कि—॥ २३ ॥ देवता और दैत्यों करके भी जीतनेको अशक्य, नगरकी रक्षा करनेमें नियत (मुकर्रिर) करे हुए और सावधान रहनेवाले बलरामजीको जीतकर अति तुच्छ शाल्व मेरे पिता वसुदेवजी को कैसे लेगया? अहो ! दैव बड़ा बलवान् है ॥ २४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजी भाषण कर रहे थे सो इतने ही में तहाँ, वसुदेवजीके आकारके एक (मायारचित) पुरुष को लेकर शाल्व आया और वह श्रीकृष्णजीसे कहने लगा कि—॥ २५ ॥ अरे मूर्ख कृष्ण ! जिसके निमित्त इस संसारमें तू जी रहा है, वह यह तेरा उत्पन्न करनेवाला पिता है, देख अब तेरे देखते हुए मैं इसका वध करता हूँ, यदि तू समर्थ होय तो इसकी रक्षा कर ॥ २६ ॥ इस प्रकार मायावी शाल्वने, श्रीकृष्णजीको ललकार कर, उन (मायिक) वसुदेवजीका मस्तक तरवारसे काटा और उनको लेकर आकाश मेंके सौभ विमानमें चढ़ा ॥ २७ ॥ उस समय, स्वयंसिद्ध ज्ञानवान् भी वह भगवान् श्रीकृष्णजी, वसुदेवरूप स्वजनके सम्बन्धसे दो घडी पर्यन्त मनुष्यके स्वभावके अनुसार शोकमें निमग्न होकर, फिर उन्होंने यह जान लिया कि—यह वसुदेवजी का दीखना, शिर कटना आदि सब ही मयासुरकी सिखाई हुई और शाल्वकी फैलाई हुई माया है ॥ २८ ॥ अब, जैसे जागा हुआ पुरुष स्वप्नमें देखे हुए पदार्थों को नहीं देखता है तैसे ही युद्धमें श्रीकृष्णजीने उस दूतको नहीं देखा और वसु देवजीका शरीर भी नहीं देखा, किन्तु केवल, सौभ विमानमें बैठकर आकाशमें फिरनेवाले शत्रु (शाल्व) को देखा और वह श्रीकृष्णजी उसको मारनेको उद्यत हुए ॥ २९ ॥ इस प्रकार करे हुए परमतका अब खण्डन करते हैं कि-हे राजर्षे ! इस प्रकार कितने ही आगे पीछेका विचार न करनेवाले ऋषि कहते हैं परन्तु यह

यत्त्ववाचो विरुद्ध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥ ३० ॥ क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः । क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥ ३१ ॥ यत्पादसेवोर्जितयात्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् । लभन्त आत्मानमनन्तमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥३२॥ तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः । विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ३३ तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा । विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद् द्रुतम् ॥ ३४ ॥ आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाऽथ रथाङ्गमद्भुतम् । वधाय शाल्वस्य लयार्कसन्निभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥ ३५ ॥ जहार तेनैव शिरः सकुंडलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः । वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हा हेति वचस्तदा नृणाम् ॥३८॥ तस्मि-

---

कहना उनके अपने ही विरुद्ध होता है ऐसा वह स्मरण नहीं रखते हैं अर्थात् पूर्व के वचनमें श्रीकृष्णजी राजसूययज्ञमें बलरामजीके साथ गये ही नहीं थे, किन्तु बलरामजीकी आज्ञा लेकर गये थे ऐसा है, और यहाँ श्रीकृष्णजीने बलरामजीके साथ इन्द्रप्रस्थसे आकर उनसे नगरकी रक्षा करनेको कहा, इस प्रकार उनके वचनमें विरोध आता है ॥ ३० ॥ और यह कहना सम्भव भी नहीं होसकता, क्योंकि-अज्ञानी पुरुषोंमें होनेवाले-शोक, मोह, भय, स्नेह कहाँ और जिनका ज्ञान विज्ञान तथा ऐश्वर्य कभी खण्डित नहीं होता ऐसे पूर्णानन्दरूप भगवान् कहाँ ? ३१ और जिनकी चरणसेवासे वृद्धिको प्राप्त हुई आत्मसाक्षात्काररूप विद्याके द्वारा सत्पुरुष, अनादिकालसे होनेवाली देहात्मबुद्धि (देह आदिको आत्मा मानना ऐसी बुद्धि) को त्याग कर अनन्त आत्मस्वरूप ईश्वरका पद पाते हैं, तिन सर्वोत्तम और सत्पुरुषोंकी गतिरूप भगवान्को मोह कहाँसे होगा ? अर्थात् कभी नहीं होसकता इस कारण वह उनका कहना ठीक नहीं है ३२ किन्तु ठीक इतना ही है कि-अनेकों शस्त्रोंसे प्रहार करनेवाले उस शाल्वको उन अमोघ पराक्रमी श्रीकृष्णजीने, वेगसे छोड़े हुए बाणोंके द्वारा वेधकर, उसका कवच, धनुष और मस्तक परकी मणि यह छिन्नभिन्न कर दिये और शत्रुके सौभ नामक विमानको भी गदासे तोड फोड डाला ३३ श्रीकृष्णजीके हाथसे फेंकी हुई गदा करके सहस्रों टुकड़े होकरचूरा हुआ वह सौभ विमान समुद्रके जलमें गिर पडा तब शाल्व उस सौभ विमानको छोड कर भूमि पर उतरा और गदा उठाकर बड़े वेगसे श्रीकृष्णके ऊपरको झपटा ॥३४॥ तब श्रीकृष्णजीने, अपने शरीर परको झपट कर आनेवाले उस शाल्वकी गदासहित भुजा बाणसे काट कर गिरा दी फिर उसका वध करनेको प्रलयकालके सूर्यकी समान अद्भुत चक्र धारण करा तब उस समय वह श्रीकृष्णजी, जैसे सूर्य सहित उदयाचल पर्वत शोभायमान होता है तैसे शोभायमान होने लगे ३५ तदनन्तर उस ही चक्रसे श्रीकृष्णजीने, बहुत माया जाननेवाले उस शाल्वका कुंडल किरीट सहित मस्तक, जैसे पहिले इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका मस्तक काट गिराया था तैसे काट गिराया, उस कृत्यको देखनेवाले शाल्वके पक्षके मनुष्योंका बडा हाहाकार

न्निपतिते पापे सौभे च गदया हते। नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः। सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्रो रुषाऽभ्ययात् ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते म० दश० उत्तरार्द्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्रीशुक उवाच। शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः। परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥१॥ एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकंपयन्। पद्भ्यामिमां महाराज महासत्वो व्यदृश्यत ॥२॥ तं तथायांतमालोक्य गदामादाय सत्वरः। अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिंधुं वेलेव प्रत्यधात् ॥ ३ ॥ गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः। दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥ ४ ॥ त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ् मां जिघांससि। अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥ ५ ॥ तथा-

शब्द हुआ २६ हे राजन्! उस पापी शाल्वके मरणको प्राप्त होने पर और उस सौभ नामक विमानका भी गदासे चूरा होजाने पर, स्वर्गमें हर्षके साथ देवताओंकी बजाई हुई दुन्दुभि बजने लगीं, तब मरणको प्राप्त हुए शाल्व आदि मित्रोंके उपकार का उनके पीछे पलटा देनेके निमित्त क्रोधमें भराहुआ दन्तवक्त्र, श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेको आया ३७ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें सप्तसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७७ ॥ छ छ छ छ

अब आगे अठत्तरवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजी, दन्तवक्त्र-विदूरथका वध करके द्वारका नगरीमें आनन्दके साथ रहे और बलरामजीने सूत (रोमहर्षण) का वध करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे महाराज! परलोकमें गये हुए शिशुपाल, शाल्व, और पौंड्रक इनके पीछे करने योग्य मित्रका कार्य करनेके निमित्त, इकला, पैदल, महाबली, हाथमें गदा लेकर चलतेमें पैरोंसे इस पृथ्वीको डगमगाने वाला और अत्यन्त क्रुद्ध हुआ वह दुष्टबुद्धि दन्तवक्त्र, श्रीकृष्णजीके साथ युद्ध करनेको आया ॥ १ ॥ २ ॥ उस, तैसे क्रोधसे आने वाले दन्तवक्त्रको देख कर, श्रीकृष्णजीने, आप भी हाथमें गदा लेकर शीघ्रतासे रथसे नीचेको कुलाँच मारी और मर्यादा (हद) जैसे समुद्रको रोकती है तैसे उसको रोका ३ उस समय, मदसे उन्मत्त हुए तिस दन्तवक्त्रने, हाथमेंकी गदा ऊपरको उठाकर श्रीकृष्णजीसे कहा कि–तू आज मेरी दृष्टिके मार्गमें (सामने) आया यह बड़े आनन्दकी वार्त्ता हुई॥४॥ हे कृष्ण! यद्यपि तू हमारे मामाका पुत्र होनेके कारण मारनेके योग्य नहीं है तथापि जो तूने हमारे शिशुपाल आदि मित्रोंका वध करा है और मुझे मारनेकी इच्छा करता है तिससे हे मन्द! † इस समय मैं इस वज्रकल्प × कहिये वज्रसमान गदासे तुझे मारता हूँ ॥ ५ ॥ हे अज्ञ! § देह में ÷ विच-

†हे अमन्द! (सब सहनेको समर्थ)।

× 'अवज्रकल्पया' ऐसा पदच्छेद करना (कमलोंकी मालाकी समान परमकोमल)

§ हे अज्ञ! (न विद्यते ज्ञः यस्मात् अर्थात् जिससे दूसरा कोई जानने वाला नहीं है ऐसे हे सर्वज्ञ)।

÷ देहमें अन्तर्यामीरूपसे रहने वाले।

ऋण्यमुपैत्यथ मित्राणां मित्रवत्सलः। बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥६॥ एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम्। गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥७॥ गदयाऽभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः। कृष्णोऽपि तमहन् गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥८॥ गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात्। प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन् धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ॥९॥ ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम्। पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ॥१०॥ विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः। आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ॥११॥ तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना। शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ॥१२॥ एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम्। हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ॥१३॥ मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः। अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥१४

रनेवाले व्याधि ¶ को (हत्वा) नाश करके जैसे पितर आदिकोंके अनृणत्व (बेकर्जपने) को प्राप्त होते हैं तैसे ही मित्रोंके ऊपर प्रेम करनेवाला मैं, तुझ बन्धुरूप शत्रु को (हत्वा) * मारकर मित्रोंके ऋणसे छूटूँगा ॥ ६ ॥ इसप्रकार, जैसे अंकुश आदिसे हाथीको पीडित करते हैं तैसे कठोर वचनोंसे श्रीकृष्णजीको पीडित करके उनके मस्तक पर गदासे प्रहार करा और वह सिंहकी समान गरजा भी ॥ ७ ॥ गदासे ताडना करे हुए भी वह यादवोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी, युद्धमें हले तक भी नहीं किंतु उन्होंने अपनी बड़ीभारी कौमोदकी गदासे उस दन्तवक्त्रके हृदय पर प्रहार करा ॥ ८ ॥ तब गदाके प्रहारसे जिसका हृदय घायल होगया है ऐसा वह दन्तवक्त्र, मुखसे रुधिरकी वमन करता हुआ केश और हाथपैर फैलाकर प्राणहीन हो भूमिपर गिरपड़ा ॥ ९ ॥ हे राजन्! जैसे पहिले शिशुपालके वधके समय उसका तेज भगवान्के स्वरूपमें प्रविष्ट होगया था तैसे ही दन्तवक्त्रके शरीरमेंसे भी बाहर निकला हुआ आश्चर्यकारी अतिसूक्ष्म जीवरूप तेज भी सब लोकोंके देखते हुए श्रीकृष्णजीके स्वरूपमें प्रविष्ट होगया ॥ १० ॥ तदनन्तर उस दन्तवक्त्रका भ्राता विदूरथ, भाईके शोकमें भरकर, उन श्रीकृष्णजीको मारनेकी इच्छासे हाथमें ढाल तलवार लेकर क्रोधसे सुसकारियें छोडता हुआ श्रीकृष्णजीके ऊपरको झपटा ११ हे राजेन्द्र! वह आरहा था, इतने ही में श्रीकृष्णजीने, छुरेकी समान धारवाले अपने चक्रसे उसका किरीट कुंडलोंसहित मस्तक काटडाला ॥ १२ ॥ इस प्रकार दूसरोंके जीतनेमें न आनेवाले सौभ विमान, शाल्व राजा, दन्तवक्त्र और उसके भ्राता विदूरथको मारकर, देवता और मनुष्योंसे स्तुति करे हुए, मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरा, पितर, यक्ष, किन्नर, तथा चारणोंने जिनका विजय वर्णन करा है ऐसे और पुष्पोंकी वर्षासे छाये हुए वह श्रीकृष्णजी, श्रेष्ठ

¶ विशेषेण आधीयते मनसि चिन्त्यते इति व्याधिः विशेष करके चिन्तवन करने के योग्य ईश्वरको।

* क्षात्रधर्मेण आराध्य अर्थात् ब्राह्मणके शापसे शत्रुरूप प्रतीत होनेवाले तुम्हारी क्षत्रिय धर्मसे आराधना करके।

उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः । वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् १५ एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः । ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ॥१६॥ श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पांडवैः । तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ॥ १७ ॥ स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् । सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ॥ १८ ॥ पृथूदकं बिंदुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् । विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम् ॥ १९ ॥ यमुनामनु यान्येव गंगामनु च भारत । जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ॥ २० ॥ तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः । अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥ २१ ॥ सोऽर्चितः सपरीवारः कृतासनपरिग्रहः । रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥ २२ ॥ अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणांजलिम् । अध्यासीनं च तान् विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य

यादवोंसे घिर कर, ध्वजा-पताका आदि लगे करके सजाई हुई द्वारका नगरीमें गये ॥ १३-१५ ॥ इस प्रकार, योगेश्वर और जगदीश्वर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अनायासमें ही महाबलियोंको भी निरन्तर जीतते ही हैं तथापि अविचारी पुरुषों को कभी, जरासन्ध आदिने उनको जीत लिया ऐसे प्रतीत होते हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीने, पूतना राक्षसीसे लेकर विदूरथ पर्यंत, दानवकुलका संहार करके, फिर वह युद्धके कार्यसे उपराम (छुटकारा) पागए, अब कुछ बलरामजी का चरित्र कहते हैं कि—बलरामजीने, कौरवोंका पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेका उद्योग चलता हुआ सुनकर 'हम द्वारकामें रहेंगे तो किसीका तो पक्षपात स्वीकार करना पड़ेगा' उसको स्वीकार करनेका मनमें विचार न करके वह तीर्थयात्राके मिष करके द्वारकानगरीमेंसे चलेगए ॥ १७ ॥ उन्होंने अपने साथ ब्राह्मणोंको लेकर प्रभासतीर्थमें स्नान करके तहाँ तर्पण और ब्राह्मणोंको भोजन कराना आदि करके, देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त करा तथा वह सरस्वती नदीके सोते आने वाली दिशाको चल दिये ॥ १८ ॥ उन्होंने, पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ चक्रतीर्थऔर पश्चिमवाहिनी सरस्वती इनकी यात्रा करी १९ फिर हे राजन् ! यमुनाके तटपर और गङ्गाके तटपर जो तीर्थ हैं उनकी यात्रा करके फिर वह, जहाँ शौनक आदि ऋषि सत्र कर रहे थे उस नैमिषारण्यमें गए ॥ २० ॥ तिन बलरामजीको आया हुआ जान कर सहस्र सम्वत्सरमें समाप्त होने वाले सत्रका अनुष्ठान करने वाले उन शौनकादि ऋषियोंने, आसन परसे उठ कर आगे जाकर उनको नमस्कार करा और 'और आपका आगमन, यह बड़ी सुन्दर वार्ता हुई ऐसे' अभिनन्दन करके यथाविधि उनका पूजन करा ॥ २१ ॥ तब परिवारसहित पूजा करे हुए और आसन पर जाकर बैठे हुए उन बलरामजीने, तहाँ बैठे हुए व्यासजी के शिष्य रोमहर्षणको देखा ॥ २२ ॥ और जिन्होंने अपनेको अभ्युत्थान नहीं दिया (उठ कर शिष्टाचार नहीं किया), झुक कर नमस्कार नहीं किया और हाथ भी नहीं जोड़े तथा जो प्रतिलोमज होकर भी उन सब ब्राह्मणोंकी अपेक्षा ऊँचे आसन पर बैठे थे ऐसे उन सूतजीको देख कर वह बलरामजी क्रोधमें भर गये ॥ २३ ॥

माधवः ॥ २३ ॥ कस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः । धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ॥ २४ ॥ ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च । सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ २५ ॥ अदान्तस्याविनीतस्य वृथापंडितमानिनः । न गुणाय भवंति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥ २६ ॥ एतदर्थो हि लोकेस्मिन्नवतारो मया कृतः।वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः॥२७ एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि । भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ॥ २८ ॥ हा हेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः । ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ॥ २९ ॥ अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन । आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ॥ ३० ॥ अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा । योगेश्वरस्य भवतो नाम्ना योपि नियामकः ॥३१॥ यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन । चरिष्यति भवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ॥ ३२ ॥ श्रीभगवानुवाच ।

और अपनेसे ही ऐसा कहनेलगे कि-यह सूत प्रतिलोमज होकर भी इन सब ब्राह्मणों की अपेक्षा और धर्मरक्षक हमारी भी अपेक्षा ऊँचे आसन पर काहेसे बैठा है !! इस अपराधके कारण यह दुर्बुद्धि वध करनेके योग्य है ॥ २४ ॥ यह भगवान् वेदव्यासका शिष्य होकर उनसे इतिहासों सहित बहुतसे पुराण पढ़ कर तैसे ही सब धर्मशास्त्र भी पढ़ कर ऊँचे आसन पर बैठा है ॥ २५ ॥ सत्य है कि-बहुरूपियेकी समान दूसरोंको धोखा देनेके निमित्त, प्रतिष्ठितोंका वेष धारण करने वाला,अजितेन्द्रिय, अवशचित्त;विनयरहित और व्यर्थ पण्डितपनेका अभिमानी होता है उस को वह शास्त्रादिका अभ्यास भी गुणकारी नहीं होता है ॥ २६ ॥ इस कारण ऐसे लोकोंका वध करनेके निमित्त ही इस लोकमें मैंने अवतार धारण करा है, इससे उत्तम वेष धारण करके धार्मिकपना दिखाने वाले और वास्तवमें धर्मकी मर्यादाओंको तोड़ने वाले जो पुरुष हैं वह मुझसे वध पानेके योग्य हैं, क्योंकि-वह अधर्मियोंकी अपेक्षा भी प्रसिद्धरूपसे अधिक पाप करने वाले हैं ॥ २७ ॥ उन प्रभु बलरामजीने ऐसा भाषण करके, दुष्टों के वधसे निवृत्त होगये थे तो भी 'अवश्य होनहार बातके अटल होनेसे' उन रोमहर्षणके ऊपर हाथमेंके दर्भसेही प्रहारकरा२८ उस समय हाहाकार उच्चारने वाले और खिन्नचित्त हुए वह सब ही ऋषि, उन सङ्कर्षणदेव (बलराम) से ऐसा कहने लगे कि-हे प्रभो ! तुमने यह अधर्म करा है ॥ २९ ॥ यदि कहो कि-अधार्मिक प्रतिलोमजका वध करा इसमें अधर्म ही क्या है ? तो सुनो-हे यदुनन्दन ! जब तक यह (सहस्रसम्वत्सरात्मक) सत्र समाप्त होयगा तब तकको, हमारे अर्थ पुराण कथा सुनानेके निमित्त इस रोमहर्षणको हमने ही ब्रह्मासन दिया था और इसके शरीरको क्लेश न हो ऐसा आयु भी दिया था ॥ ३० ॥ इस कारण, यह सब न जानने वाले ही तुमने, ब्रह्मवधकी समान इस का वध करा है, हे लोकपावन ! हे योगेश्वर ! तुम्हें, 'ब्राह्मणका वध न करे ऐसा' वेदमें यद्यपि प्रायश्चित्त देनेको समर्थ नहीं है तथापि तुम दूसरेके बिना कहे अपने आप ही यदि इस ब्रह्महत्याके पापका प्रायश्चित्त करोगे तो लोकोंको प्रायश्चित्तके

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया । नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥ ३३ ॥ दीर्घमायुर्वतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च । आशासितं यत्तद् ब्रूत साधये योगमायया ॥ ३४ ॥ ऋषय ऊचुः । अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च । यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच । आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् । तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥ ३६ ॥ किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ । अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥ ३७ ॥ ऋषय ऊचुः । इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः । स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ॥ ३८ ॥ तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् ।

विषयमें प्रवृत्ति होयगी, नहीं तो नहीं होयगी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान् बलरामने कहा कि-हे ऋषियो ! लोकवर्त्तावकी इच्छासे मैं इस होने वाले पापका प्रायश्चित्त करता हूँ इसकारण जो सबसे मुख्य पक्षका प्रायश्चित्त होय वह तुम मुझसे कहो।३३ और हे ऋषियो ! इस रोमहर्षणको-दीर्घ आयु, बल, इन्द्रियोंकी शक्ति और दूसरा जो कुछ तुम्हें अपेक्षित हो सो सब मुझसे कहो, मैं अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे वह सब ठीक करदूँगा ॥ ३४ ॥ यह सुन कर ऋषि कहने लगे कि-हे बलराम ! तुम्हारे छोड़ेहुए शस्त्रकी, तुम्हारे पराक्रमकी और रोमहर्षणके मरणकी जिसप्रकार सत्यता होय और 'जब पर्यंत यह सत्र है तब पर्यंत तुम दीर्घायु और पुराणवक्ता हो ऐसा' (रोमहर्षणसे) हमारा कहा हुआ वचन भी जैसे सत्य होय तैसा करो ३५ श्रीभगवान् बलरामने कहा कि-पिताका आत्मा ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है ऐसा वेदका कथन ÷ है इस कारण इस रोमहर्षणका पुत्र जो उग्रश्रवा है वह यहही है ऐसा समझो, वह ही तुम्हें पुराण सुनाने वाला होगा और आयु, इन्द्रियोंकी शक्ति तथा शरीरके बल आदिसे यह युक्त होयगा, तात्पर्य यह कि-उसके साक्षात् जीवित न रहनेसे मेरे अस्त्रकी मृत्युकी और आयु आदिकी सिद्धिसे तुम्हारे वचनकी भी सत्यता होयगी ॥ ३६ ॥ हे श्रेष्ठ ऋषियो ! तुम्हारा दूसरा कौनसा मनोरथ है वह मुझसे कहो तो मैं उसको पूर्ण करूँ तदनन्तर मुझसे ब्रह्मदण्ड लेकर सूतहत्या के प्रायश्चित्तको न जानने वाले मुझे, तुम सर्वज्ञ हो इस कारण, जो प्रायश्चित्त यथा योग्य होय वह विचार कर बताओ॥३७॥ऋषियोंने कहा कि-इल्वलका पुत्र बल्वल नामवाला एक बड़ा भयंकर दानव है वह प्रतिपूर्णिमाको आकर हमारे सत्र (यज्ञ) को दूषित करता है ॥३८॥ हे बलराम ! उस पापी दानवको तुम मारडालो, अर्थात् यही हमारी उत्तम शुश्रूषा होयगी, क्योंकि-वह हमारे यज्ञके स्थानमें आकर पीव, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मद्य और मांसकी चारों ओरसे वर्षा करता है ॥ ३९ ॥ तदनन्तर तुम एक वर्ष (बारह मास पर्यन्त) एकाग्रचित्तसे भरतखण्डकी प्रदक्षिणा करके, तीर्थोंका स्नान करते हुए कृच्छ्रों×का सेवन करोगे तो सूतका वध करनेके

÷ 'अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे । आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्' इत्यादि वेदका वचन है।

× प्रायश्चित्तके साधकव्रत विशेषोंको कृच्छ्र कहते हैं।

पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ॥ ३९ ॥ ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः । चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुद्ध्यसे ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भा० म० द० श० उ० बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच । ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः । भीमो वायुरभूद्राजन् पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥ ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् । अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यत शूलधृक् ॥ २ ॥ तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नांजनचयोपमम् । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥३॥ सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् । हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥ ४ ॥ तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् । मुसलेनाहनत् क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥ ५ ॥ सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृगुत्सृजन् । मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥६॥ संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः । अभ्यषिंचन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥७॥ वैजयंतीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपंकजाम् । रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥ ८ ॥ अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः । स्नात्वा सरोवरमगा-

---

पापसे छूट जाओगे ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें अष्टसप्ततितम अध्याय समाप्त ॥ ७८ ॥ छ ॥ ॥ ॥ छ

अब आगे उनासीवें अध्यायमें बलरामजीने, ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके निमित्त बल्वल नामक दानवका वध करके तीर्थस्नान आदिसे सूतकी हत्याका प्रायश्चित्त करा, यह कथा वर्णन करी है ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते कि हे राजन्! फिर पूर्णिमाका पर्व आनेपर उसदिन धूलिकी वर्षा करनेवाला प्रचंड और भयंकर पवन चलने लगा और जिधर तिधर पीवका दुर्गंध फैलनेलगा १ फिर बल्वलकी रचना करी हुई विष्ठा मूत्र आदिकी अमङ्गल वर्षा यज्ञशालामें होने लगी, तदनन्तर शूल धारण करनेवाला वह बल्वल नामवाला दैत्य दीखने लगा २ तब, फटे हुए काजलके पर्वतकी समान काला, बड़ेभारी शरीरवाला, तपाये हुए ताँबेकी समान लाल २ शिखा और दाढ़ी-मूछ धारण करनेवाला, दाढ़ोंसे भयंकर और भ्रुकुटि चढ़ायेहुए मुखवाले तिस बल्वलको देखकर बलरामजीने, शत्रुसेनाका विदारण करने वाले मूसल और दैत्योंका दमन करनेवाले अपने हलका स्मरण करा सो वह तत्काल आकर प्राप्त हो गये ॥ ३-४ ॥ तब बलरामजीने, क्रुद्ध होकर आकाशमें विद्यमान तिस ब्रह्मद्रोही बल्वलको हलके अग्रभागसे खैंचकर मूसलसे उसके मस्तक पर प्रहार करा ॥ ५ ॥ तब शिर फूटा हुआ वह बल्वल, रुधिरकी उलटी करता हुआ और पीडित होनेके कारण हाय २ करता हुआ, जैसे इन्द्रके वज्रसे फूटा हुआ और गेरूसे लाल लाल हुआ पर्वत गिरता है तैसे भूमिपर गिरपड़ा ॥ ६ ॥ इस प्रकार उसका वध करने पर प्रसन्न हुए उन महाभाग ऋषियोंने, बलरामजीकी स्तुति करके और सफल आशीर्वाद देकर उनका, जैसे वृत्रासुरके वधसे प्रसन्न हुए देवताओंने इन्द्रका अभिषेक करा था तैसे अभिषेक करा ॥७॥ और उन्होंने तिन बलरामजीको दिव्य वस्त्र, दिव्य भूषण और शोभाकी स्थान कभी भी न कुमलाने वाली कमलोंकी

धुतः सरयुरास्रवत् ॥ ९ ॥ अनुस्रोतेन सरयुं प्रयागमुपगम्य सः। स्नात्वा संतर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥ १० ॥ गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः। गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गंगासागरसंगमे ॥ ११ ॥ उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च। सप्तगोदावरीं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥ १२ ॥ स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम्। द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेंकटं प्रभुः ॥ १३ ॥ कामकोष्णीं पुरीं कांची कावेरीं च सरिद्वराम्। श्रीरंगाख्यं महापुण्यं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ १४ ॥ ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा। सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः। कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥ १६ ॥ तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च। योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम्। दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥ ततः फाल्गुनमासाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम्। विष्णुः सन्निहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥१८॥ ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान्। गोकर्णाख्यं

वैजयन्ती माला अर्पण करी ॥ ८ ॥ फिर उन ऋषियोंके आज्ञा करेहुए वह बलराम जी, ब्राह्मणोंके साथ कौशकी नदी पर जाकर तहाँ स्नान करके फिर जहाँसे सरयू नदी उत्पन्न हुई है तिस सरोवर पर आये ॥ ९ ॥ फिर वह बलरामजी, सरयूके किनारे २ प्रयागको जाकर तहाँ स्नान और देवादिकोंका तर्पण करके फिर हरिद्वारको गये ॥ १० ॥ फिर उन्होंने, गोमती, गंडकी और विपाशा इन नदियोंमें स्नान करके शोण नामवाले नदमें स्नान करा फिर गयामें जाकर तहाँ पितरोंकी 'पिताके जीवित होनेके कारण' ब्राह्मण भोजन आदिसे आराधना करके फिर गङ्गा और समुद्रके संगममें स्नान करा ॥ ११ ॥ फिर महेन्द्र पर्वत पर परशुरामका दर्शन करके और उनको नमस्कार करके आगे सप्त गोदावरी, वेणा, पंपा और भीमरथी इन नदियोंमें स्नान करा ॥ १२ ॥ फिर, उन बलरामजीने, स्वामिकार्त्तिकेयका दर्शन करके शंकरके समान श्रीशैल पर्वतपर गमन करा, तहाँसे उन प्रभुने द्रविड देशोंमेंके महापवित्र वेंकट पर्वतका दर्शन करके काम कोष्णी नदीमें स्नान कर काँची नगरीमें गमन करा तदनन्तर नदियोंमें श्रेष्ठ जो कावेरी तिसमें स्नान करके आगे जहाँ श्रीहरि समीप रहते हैं ऐसे परम पवित्र श्रीरङ्गक्षेत्रमें गमन करा ॥ १३-१४ ॥ तदनन्तर श्रीहरिके क्षेत्र ऋषभ पर्वतकी तैसे ही दक्षिण मथुरा की यात्रा करके महापातकोंका नाश करनेवाले समुद्रके सेतुबन्धपर गमन करा१५ तहाँ उन बलरामजीने, ब्राह्मणोंको दश सहस्र गौ दान दीं, फिर उन्होंने कृतमाला और ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करके कुलाचल मलयपर्वत पर गमन करा ॥ १६ ॥ तहाँके अगस्त्य ऋषिको उन्होंने नमस्कार करके उनकी पूजा करने पर उन ऋषि ने आशीर्वाद देकर जानेकी आज्ञा दी तब, दक्षिण समुद्रके तटपर गमन करा, तहाँ उन्होंने कन्या नामक दुर्गादेवीका दर्शन करा ॥१७॥ तदनन्तर अनन्तपुरमें जाकर फिर पञ्चाप्सरस नामवाले सरोवर पर गमन करा, जहाँ विष्णु भगवान्की समीपता रहती है ऐसे तिस सरोवरमें स्नान करके ब्राह्मणोंको दश सहस्र गौ दीं १८

शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ॥ १९ ॥ आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः । तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ॥२०॥ प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी । मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे । सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ॥२२॥ स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युद्धयतोर्मृधे । वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि । अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः॥२४ गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ । मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन् हे वृकोदर । एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥ तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः । न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥२७॥ न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् । अनुस्मरन्तावन्योऽन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥ २८ ॥ दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ ।

फिर वह भगवान् बलरामजी, केरल देश और त्रिगर्त्त देशमें जाकर जहाँ शिवजी की समीपता है ऐसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्रमें गये ॥ १९ ॥ फिर, द्वीप (टापू) का आश्रय करके रहने वाली आर्यादेवीका दर्शन करके वह बलरामजी शूर्पारक नामवाले देशको गये, फिर तापी, पयोष्णी, और निर्विन्ध्या नदीमें स्नान करके, दण्डकारण्यमें जाकर, जिसके तटपर माहिष्मती नामक नगरी है तिस नर्मदा नदी के समीप गये, तहाँ स्नान करके फिर मुनि तीर्थमें स्नान करके, फिर प्रभासक्षेत्र में पहुँचे ॥ २०-२१ ॥ तहाँ ब्राह्मणोंके कहनेसे, कौरव पाण्डवोंके युद्धमें सब राजे मरणको प्राप्त होगये ऐसा सुनकर उन्होंने 'पृथिवीका भार उतर गया' ऐसा माना ॥ २२ ॥ फिर वह बलरामजी, संग्राममें भीमसेन और दुर्योधन गदाओंसे परस्पर युद्ध कररहे हैं ऐसा सुनकर, उनको निषेध करनेके निमित्त कुरुक्षेत्रमें गये ॥ २३ ॥ तब, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनको देख कर, नमस्कार करा और यह बलरामजी क्या कहनेके निमित्त यहाँ आये हैं ऐसा विचारते हुए मौन ही खड़े रहे ॥ २४ ॥ वह बलरामजी, क्रोधमें भरे हुए जयकी इच्छा करने वाले और हाथमें गदा लेकर चित्र विचित्र पैंतरोंसे फिरने वाले उन दोनों भीमसेन और दुर्योधनको देखकर ऐसा कहने लगे कि-॥ २५ ॥ हे राजा दुर्योधन ! हे वृकोदर भीमसेन ! तुम दोनों समान बलधारी वीर हो, तुममें एक को (भीमको) यह 'दुर्योधनकी अपेक्षा' बलमें अधिक है ऐसा मैं समझता हूँ और एकको (दुर्योधनको) 'भीमसेनकी अपेक्षा' यह गदा छोडनेकी शिक्षाकी चतुराई में अधिक है ऐसा समझता हूँ॥२६॥इस कारण समान बलधारी तुम दोनोंमेंसे एक का इस युद्धमें जय वा पराजय होयगा, ऐसा नहीं दीखता इस कारण यह तुम्हारा निष्फल युद्ध बन्द होय ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यद्यपि वह बलरामजीका वाक्य दोनों के ही क्लेशको दूर करने वाला था तथापि उन्होंने माना नहीं, क्यों कि-वह दोनों परस्परके दुर्वचन और दुष्कर्मोंको वारम्वार स्मरण करके बद्धवैर होगये थे ॥२८॥ तब बलरामजी, यह मेरा वाक्य इन्होंने माना नहीं ऐसा जानकर उनका दैव ही

उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥ २९ ॥ तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा । क्रत्वंगं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥ ३० ॥ तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः । येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥ ३१ ॥ स्वपत्न्याऽवभृथस्नातो ज्ञातिबंधुसुहृद्वृतः । रेजे स्वज्योत्स्नयेवेंदुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः । अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ॥ ३३ ॥ योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः । सायं प्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

राजोवाच । भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥ को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः । विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥ २ ॥ सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च

ऐसा है यह समझ कर फिर द्वारकाको चले गये तब प्रसन्न हुए उग्रसेन आदि ज्ञातिके यादव, सन्मुख आकर उनसे मिले ॥ २९ ॥ इस प्रकार तीर्थ स्नान आदि करके सूतहत्याके दोषको दूर करके फिर नैमिषारण्यमें आयेहुए उन यज्ञमूर्त्ति बलरामजीसे ऋषियोंने आनन्दके साथ सब प्रकारके यज्ञ करवाकर परमेश्वरका यजन करवाया ॥ ३० ॥ तब, उन प्रभु बलरामजीने, उन ऋषियोंको, संशय विपर्यय आदि रहित शुद्ध ज्ञान सुनाया कि-जिसके द्वारा उन ऋषियोंने आत्मामें यह जगत् विद्यमान है और जगत्में आत्मा व्याप रहा है ऐसा साक्षात् अनुभवसे जान लिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर अपनी रेवती नामवाली स्त्रीके साथ यज्ञान्त स्नान करा, उत्तम वस्त्र पहिन कर उत्तम आभूषण धारण करेहुए और ज्ञाति, बन्धु तथा मित्रजनोंसे युक्त वह बलरामजी, जैसे चाँदनी सहित चन्द्रमा शोभायमान होता है तैसे शोभित होनेलगे ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! महाबली, अनन्त अप्रमेय, और मायासे मनुष्यरूपी तिन बलरामजीके इस प्रकारके और भी अनन्त चरित्र हैं ॥ ३३ ॥ आश्चर्यकारी कर्म करने वाले, शेषावताररूप बलरामजीके कर्मोंको जो पुरुष, सायंकाल और प्रातःकालके समय स्मरण करेगा वह विष्णु भगवान्को परम प्रिय होगा ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकोनाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ७९ ॥ छ छ छ छ छ छ

अब आगे अस्सीवें अध्यायमें श्रीकृष्णजीने,द्रव्यकी इच्छा करके अपने घर आयेहुए सुदामा देवकी पूजा करके उससे, गुरुके घर उसके और अपने रहते समयकी बातें बूझी यह कथा वर्णन करी है॥ * ॥ बलरामजीके चरित्र सुनकर फिर श्रीकृष्णजीके ही चरित्र सुननेके निमित्त राजा कहनेलगा कि-हे भगवन् ! प्रभो शुकदेवजी मोक्ष देनेवाले अनन्तपराक्रमी महात्मा श्रीकृष्णजीके जो और चरित्र हों उनको सुननेकी हम इच्छा करते हैं॥१हे भगवन् ! उत्तमकीर्त्ति श्रीकृष्णजीकी मनोहर कथा एक बारभी सुनकर सारग्रहण करनेवाला और विषयोंकी खोज करते२ खेदको प्राप्तहुआ कौनसा पुरुष तृप्त होगा! कोई नहीं होसकता२ जिस वाणीसे तिन भगवान्के ऐश्वर्य

तत्कर्मकरौ मनश्च । स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ।शि शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत्तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः । अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥४॥ सूत उवाच । विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः । वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥५॥ श्रीशुक उवाच । कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः । विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशांतात्मा जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी । तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥ ७ ॥ पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा । दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाऽभिगम्य च ॥ ८ ॥ ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षात् श्रियः पतिः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥ ९ ॥ तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् । दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥ १० ॥ आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥ ११ ॥ किं

आदि गुणोंका पुरुष वर्णन करता है वही वाणी सफल है, जो भगवान्की सेवारूप कर्म करते हैं वही हाथ सफल हैं,जो स्थावर जङ्गममें रहने वाले भगवान्का स्मरण करे वही मन सफल है, जो उनकी पवित्र कथाओंको सुनें वही कान सफल हैं जो स्थावर जङ्गमरूप भगवान्की मूर्त्तिको नमस्कार करता है वही मस्तक सफल है, जो भगवान्का दर्शन करते हैं वही नेत्र सफल हैं, जो भगवान्के अथवा भगवद्भक्तोंके चरणोदकका नित्य सेवन करते हैं वही अङ्ग सफल होते हैं ॥४॥ सूतजीने, कहा कि-इस प्रकार परीक्षित राजाके प्रश्न करने पर भगवान् शुकदेवजीने, भगवान् वासुदेवके विषें निमग्नचित्त होकर कहा ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि-हे राजन् ! कोई एक ब्राह्मण श्रीकृष्णजीका मित्र था, वह बड़ाब्रह्मज्ञानी,विषयों से विरक्त, अत्यन्तशांतचित्त और जितेन्द्रिय था ॥ ६ ॥ वह प्रारब्धवश प्राप्तहुए अन्न आदिसे आजीविका चलाकर गृहस्थधर्मका आचरण करता था, तिस मलिन वस्त्र धारण करनेवाले ब्राह्मणकी स्त्री भी,मलिन वस्त्र धारण करनेवाली पतिव्रता और क्षुधासे दुर्बल हुए तिस पतिको जो कुछ अन्न आदि मिले सो खिलाकर आप क्षुधासे जीर्ण होरही थी ॥ ७ ॥ एक समय, दरिद्रसे पीड़ित, पतिको भोग प्राप्त करानेको अशक्त होनेके कारण दुःखपाने वाली और भयसे काँपने वाली वह पतिव्रता स्त्री, पतिके समीप आकर सूखे हुए मुखसे कहने लगी कि-॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! वैराग्य आदि गुणवान् भी तुम्हारे,साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणोंके हितकारी शरणागतवत्सल और यादवोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णजी, सखा हैं ऐसा मुझे मालूम है ॥ ९ ॥ इससे हे महाभाग ! साधुओंकी परमगति तिन श्रीकृष्णजीसे मिलनेको तुम जाओ तब दरिद्रभावसे क्लेश पानेवाले और कुटुम्बवत्सल तुम्हें, वह बहुतसा धन देंगे ॥ १० ॥ भोजोंके, वृष्णियोंके और अन्धकोंके स्वामी वह श्रीकृष्णजी इस समय द्वारकामें हैं-उनके तुम्हारा सत्कार करने पर वह भोजादिक भी तुम्हें द्रव्य देंगे, वह भगवान् द्रव्य देंगे या नहीं ? इस विषयमें तुम सन्देह न करो, क्योंकि-वह चरणकमलका स्मरण करने वाले अपना स्वरूपानन्द भी देदेते

स्वर्थकामान्भजते नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ॥ स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु । अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥१२॥ इति संचिंत्य मनसा गमनाय मतिं दधे । अप्यस्त्युपायनं किंचिद् गृहे कल्याणि दीयताम् ॥१३॥ याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान् पृथुकतण्डुलान् । चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ॥ १४ ॥ स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल । कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिंतयन् ॥ १५ ॥ त्रीणि गुल्मान्यतीयाय तिस्रः कक्षाश्च स द्विजः । विप्रोऽगम्यांधकवृष्णीनां गृहेष्वच्युतधर्मिणाम् ॥ १६ ॥ गृहं द्व्यष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः । विवेशैकतमं श्रीमद् ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥ तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः । सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥ १८ ॥ सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगातिनिर्वृतः । प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥ १९ ॥ अथोपवेश्य पर्यंके स्वयं सख्युः समर्हणम् । उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः २० अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः । व्यलिंपद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ॥ २१ ॥ धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा । अर्चित्वावेद्य तांबूलं गां च

हैं ॥ ११ ॥ फिर वह जगद्गुरु, अपनी भक्ति करनेवाले पुरुषको अतिप्रिय न लगने वाले अर्थ काम देते हैं इसका तो कहना ही क्या ? इस प्रकार स्त्रीने ब्राह्मणकी अति कोमलतासे वारम्वार प्रार्थना करी तब उसने, उत्तमकीर्त्ति भगवान्का दर्शन होयगा यह ही बड़ा लाभ है ॥१२ ॥ ऐसा मनमें विचार कर कृष्णदर्शनके निमित्त जानेका निश्चय करा और स्त्रीसे कहने लगा कि-हे कल्याणि ! घरमें कुछ श्रीकृष्णको भेट लेजानेके योग्य पदार्थ होय तो दे॥१३॥तव उस स्त्रीने, ब्राह्मणोंके घरोंसे चार मुट्ठी च्यूड़ोंके चावल माँगके लाकर, वस्त्रके चीथड़ेमें उनकी पोटली बाँध कर वह भर्त्ता को भेट दी ॥ १४ ॥ तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण (सुदामा) उन चौलोंको लेकर द्वारका को चल दिया, और मुझे श्रीकृष्णका दर्शन कैसे होयगा ? ऐसा विचार करता २ द्वारकाकी रक्षाके निमित्त सेनाकी स्थापन करीहुई तीन छावनियोंको और उनके आगे लगाई हुई चौकियोंको उल्लंघन करके और ब्राह्मणोंके साथ वह ब्राह्मण, श्रीकृष्णकी भक्ति न करनेवाले पुरुषोंके प्रवेश करनेको अशक्य,अन्धक और वृष्णियों के घरोंमेंके श्रीकृष्णजीके सोलह सहस्र एक सौ आठ घरोंमेंके एक शोभायमान घरमें घुसा तब वह ब्राह्मण ब्रह्मानन्दको प्राप्तहुएकी समान आनन्दित हुआ१५-१७ उस ब्राह्मणको दूरसे ही देख कर प्रियाके पलङ्ग पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णजीने, शीघ्रतासे उठ कर और सन्मुख जाकर हर्षके साथ आलिङ्गन करा ॥ १८ ॥ तब, अपने मित्र तिन विप्रर्षिके अङ्गके स्पर्शसे अति आनन्दयुक्त और तृप्त हुए तिन कमलनयन भगवान्ने, अपने नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसू बहाये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर उस प्रिय और मित्र ब्राह्मणको पलङ्गपर बैठाकर आपही पूजाकी सामग्री लाकर, उस सखाके चरण धोकर, वह जल श्रीकृष्णजीने, अपने आप लोकको पवित्र करने वाले होकर भी मस्तक पर धारण करा और दिव्य, गन्ध, चन्दन, अगर तथा केसरसे उनके अङ्गको लेपन करा ॥ २० ॥ २१ ॥ फिर सुगन्धयुक्त धूप

स्वागतमब्रवीत् ॥ २२ ॥ कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम् । देवी पर्यचरच्छैव्या चामरव्यजनेन वै ॥२३॥ अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना । विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥ २४ ॥ किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा । श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ॥२५॥ योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः । पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥ २६ ॥ कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः । आत्मनो ललिता राजन् करौ गृह्य परस्परम् ॥ २७ ॥ श्रीभगवानुवाच । अपि ब्रह्मन् गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् । समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ॥ २८ ॥ प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा । नैवातिप्रीयसे विद्वन् धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥ केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः । त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥३०॥ कच्चिद् गुरुकुले वासं ब्रह्मन् स्मरसि नौ यतः । द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥३१॥ स वै सत्कर्मणां साक्षाद्

और दीपकोंकी पंक्ति (आरती) से तिस मित्रका पूजन करके तथा तन्दुल और गौ अर्पण करके स्वागत प्रश्न करा (कुशलमङ्गल बूझा) ॥ २२ ॥ उससमय पुराने वस्त्र धारण करने वाले, मलिन, दुबले और रगोंसे घिरे तिस ब्राह्मणको, साक्षात् रुक्मिणी देवीने, चँवरी और पंखेसे पवन करके शुश्रूषा करी ॥ २३ ॥ तब, निर्मल है कीर्त्ति जिनकी ऐसे श्रीकृष्णजीने, उस मलीन ब्राह्मणका अति प्रीतिके साथ सत्कार करा ऐसा देख कर रणवासमेंके पुरुष अचरज करने लगे ॥ २४ ॥ निर्धन निन्दित और अधम इस अवधूत भिक्षुकने, इस लोकमें ऐसा क्या पुण्य करा था कि-॥ २५ ॥ जिससे लक्ष्मीनिवास और त्रिलोकीके गुरु श्रीकृष्णजीने, पलङ्ग पर विद्यमान लक्ष्मीको भी त्याग कर इसको बड़े भ्राताकी समान हृदयसे लगाया और इसका उत्तम सन्मान करा ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! वह सुदामा और कृष्ण दोनों परस्पर एक दूसरेका हाथ पकड़ कर पहिले गुरुके घर रहते समयकी अपनी मनोहर कथा कहने लगे ॥ २७ ॥ श्रीभगवान्ने, कहा कि-हे धर्मज्ञ ब्राह्मण ! गुरुको गुरुदक्षिणा देकर गुरुके यहाँसे घरको आकर समावर्त्तन करने वाले तुमने, अपने योग्य स्त्री वरी या नहीं ? ॥ २८ ॥ हे विद्वन् ! तुम्हारा चित्त, और लोगोंके चित्तकी समान बहुधा घरमें तैसे ही गौ, भूमि, सुवर्ण आदि धनमें, विषयोंसे अपनी ओरको खैंचा हुआ नहीं दीखता है, इस कारण तुम विषयोंमें अधिक लम्पट नहीं हो, ऐसा मैंने पहिले ही समझ लिया है ऐसा तुम विद्वान्को योग्य ही है ॥ २९ ॥ ईश्वरकी मायासे रचे हुए विषयोंका त्याग करने वाले कितने ही पुरुष, विषयोंमें आसक्त न होकर भी, जैसे मैं लोकशिक्षाके निमित्त कर्म करता हूँ तैसेही लोककी मर्यादाके निमित्त कर्म करते हैं ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! तुम्हारा और मेरा गुरुके घर एक स्थान पर रहना हुआ था उसको तुम स्मरण करते हो क्या ? जिस गुरुसे परमात्मतत्त्वको जानने वाला ब्राह्मण, संसारका अन्त पाजाता है ॥ ३१ ॥ तिसमें आत्मज्ञान देने वाले गुरुकी अतिपूजनीयता कहनेके निमित्त पुरुषके तीन गुरु हैं ऐसा वर्णन करते हैं—हे ब्राह्मण ! इस संसारमें पुरुषको जिससे उत्पत्ति हुई वह

द्विजातेरिह संभवः । आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाऽहं ज्ञानदो गुरुः ॥ ३२ ॥ नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह । ये मया गुरुणा वाचा तरंत्यंजो भवार्णवम् ॥ ३३ ॥ नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च । तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ ३४ ॥ अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन् वृत्तं निवसतां गुरौ । गुरुदारैश्चोदितानामिंधनानयने क्वचित् ॥ ३५ ॥ प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद् द्विज । वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥ ३६ ॥ सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्तमसा चावृता दिशः । निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥ ३७ ॥ वयं भृशं तत्र महानिलांबुभिर्निहन्यमाना मुहुरंबुसंप्लवे । दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥ ३८ ॥ एतद्विदित्वा उदिते रवौ सांदीपनिर्गुरुः । अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥ ३९ ॥ अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः । आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥ ४० ॥ एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् । यद्वै विशुद्ध-

---

'पिता' पहिला गुरु है तदनन्तर द्विजत्वको प्राप्त हुए पुरुपको जिससे सत्कर्मोंकी प्राप्ति होती है अर्थात् जो उपनयन संस्कार करके वेदाध्ययन कराता है वह दूसरा गुरु है; वह उसको मुझ ईश्वरकी समान पहिले गुरुकी अपेक्षा भी पूजनीय है और सब ही आश्रमवालोंको जो ज्ञान देने वाला वह तीसरा गुरु है सो साक्षात् मैं ही हूँ ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मण ! इस मनुष्य जन्ममें वर्णाश्रम वालोंमें जो पुरुष, साक्षात् मेरा स्वरूप ऐसे ज्ञानका देने वाले गुरुके उपदेशसे अनायाससे ही संसारसमुद्रको तर जाते हैं वही अपना कार्य सिद्ध करनेमें बड़े बुद्धिमान् हैं ॥ ३३ ॥ सकल भूतोंमें रहने वाला आत्मा भी मैं, जैसा गुरुकी सेवासे प्रसन्न होता हूँ तैसा ब्रह्मचर्य, यज्ञ आदि गृहस्थधर्म, तप आदि वानप्रस्थधर्म और शांति आदि संन्यासधर्मसे भी प्रसन्न नहीं होता हूँ इस कारण गुरुकी सेवासे बड़ा दूसरा धर्म ही नहीं है ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! अपने गुरुके घर रहते थे तब, एक समय गुरुकी स्त्रीके ईंधन लानेके निमित्त वनमें भेजे हुए हमारे ऊपर दैवगतिसे जो अवसर आकर पड़ा था उसका तुम्हें स्मरण है क्या ? ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मण ! उस समय बड़े भारी वनमें चले जाने पर, असमयमें एक साथ बड़ाभारी बादल छाकर मूसलधार जल पड़ा और भयंकर गर्जना होकर बिजली गिरने लगी ३६ इतने हीमें सूर्य अस्त होकर दिशा अन्धकार में ढक गई, उस समय सब स्थल जलमय होकर, नीचा तथा ऊँचा कुछ समझमें नहीं आता था ॥ ३७ ॥ उस जलमय हुए वनमें अत्यन्त पवनसे और वर्षासे परम पीड़ित हुए और दिशाओंको भी न जानने वाले हम, व्याकुलचित्त होकर, एक दूसरेका परस्पर हाथ पकड़कर और मस्तकपर ईंधनका बोझा लेकर जिधर तिधर को भटकने फिरते थे ॥ ३८ ॥ सूर्यका उदय होने पर सांदीपन गुरुजी हमको ईंधन लाने को गया हुआ जान कर, हम शिष्योंको ढूँढ़ते २ हमारे समीप आये और उन्होंने हमें शीतसे जकड़े हुए देख कर यह कहा ॥ ३९ ॥ अरे पुत्रों ! तुमने हमारे कारण बड़ा दुःख उठाया, प्राणियोंको यह देह सबसे अधिक प्रिय है परन्तु तुमने उस देह का भी अनादर करके मेरी सेवा करी ॥ ४० ॥ उत्तम शिष्योंको गुरुका प्रत्युपकार

भावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥ ४१ ॥ तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः संतु मनोरथाः। छन्दांस्ययातयामानि भवंत्विह परत्र च ॥ ४२ ॥ इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु । गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशांतये ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण उवाच । किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो । भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ॥४४॥ यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो । श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥४५

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे श्रीदामचरिते अशीतितमोऽध्यायः ॥८०

श्रीशुक उवाच । स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् हरिः । सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥ ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् । प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु सतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच । किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् । अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् । भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं

(उपकारके पलटेका उपकार) यह ही करना चाहिये, कि-जिससे सब पुरुषार्थ मिलते हैं उस शरीरको भी शुद्ध भक्तिसे गुरुके अर्पण कर देना ॥ ४१ ॥ हे द्विजोंमें श्रेष्ठो ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूँ, तुम्हारा मनोरथ सफल होय, तुम्हारा पढ़ा हुआ वेद इस लोकमें और परलोकमें तुम्हें इच्छित फल देय ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मण ! हम गुरुके घर थे तब ऐसे बहुतसे वृत्तान्त हुए उनका तुम्हें स्मरण है क्या ? गुरुके अनुग्रहसे ही मनुष्य पूर्णमनोरथ होकर उत्तम प्रकारके शान्तभावको पाने के योग्य होता है ॥४३॥ ब्राह्मणने कहा कि-हे देवदेव ! हे जगद्गुरो ! सत्य संकल्प वाले तुम्हारे साथ जिन हमारा गुरुके घर वास हुआ ऐसे हमको भला कौनसा फल नहीं मिला ? सब ही फल मिल गये हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! कल्याणके उत्पन्न होनेका खेत जो वेदमय ब्रह्म सो तुम्हारा शरीर है;ऐसे तुम्हारा जो गुरुके घर वास सो और लोकोंको शिक्षा देनेके निमित्त अत्यन्त अनुकरणमात्र (मनुष्यचरित्र की नकल) है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें अशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८० ॥ छ छ ॥

अब आगे इक्यासीवें अध्यायमें, श्रीकृष्णजीने, सखा सुदामाके चौले भक्षण करके उसके आश्रममें इन्द्रको भी न मिल सके ऐसी सम्पदा रची, यह कथा वर्णन करी है ॥ ❁ ॥ इसप्रकार वह श्रीहरि, तिस श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदामाके साथ सुखदायक बातें करते हुए, सब प्राणियोंके मनके साक्षी होनेके कारण 'स्त्रीके कहनेसे यह धन माँगनेके निमित्त आया है, इसने मेरे निमित्त चौले लाकर मुझे लज्जाके कारण वह नहीं दिये हैं, ऐसा जानकर' ब्राह्मणोंके हितकारी और साधुओंके गति वह भगवान् श्रीकृष्णजी तिस प्रिय ब्राह्मणकी ओरको प्रेमयुक्त दृष्टिसे देखते देखते और बड़े आनन्दमे बारम्बार हास्य करते हुए उस ब्राह्मणसे ऐसा कहने लगे ॥१॥२॥ श्रीभगवान्ने कहाकि हे ब्राह्मण ! तुम मेरे निमित्त अपने घरसे क्या भेट लाये हो ? भक्तोंकी प्रेमके साथ अर्पण करी हुई अत्यन्त थोड़ी सी भी वस्तु होय तो वह मुझे बहुत होती है और जो भक्ति नहीं करते हैं ऐसे अभक्तोंकी दी हुई बहुत सी होय

भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥ इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः । पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥ सर्वभूतात्मदृक्साक्षात्तस्यागमनकारणम् । विज्ञायाचिंतयन्नायं श्रीकामो माऽभजत्पुरा ॥ ६ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया । प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥ इत्थं विचिंत्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः । स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतंडुलान् ॥ ८ ॥ नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे । तर्पयंत्यंग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥ इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे । तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये । अस्मिल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे । भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥ श्वोभूते विश्व-

---

तो भी वह मुझे सन्तोषदायक नहीं होती है ॥ ३ ॥ जो पुरुष मुझे, पत्र हो, पुष्प हो, फल हो या जल हो भक्तिके साथ अर्पण करता है वह, तिस शान्तचित्त पुरुषका भक्तिसे अर्पण करा हुआ पत्र आदि भी मैं भक्षण करता हूँ ॥ ४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌के कहने पर भी, उस सुदामा ब्राह्मणने लज्जित होकर और नीचेको मुख करके वह सब, मुट्ठी भर लाये हुए च्यौले लक्ष्मीपति भगवान्‌को नहीं दिये ५ तब सकल प्राणियोंके मनमेंकी बात जानने वाले तिन साक्षात् भगवान्‌ने, उसके आनेका कारण जानकर, आप जो कुछ करना था उसका चिन्तवन करा कि-इसने पहिले सम्पदाकी कामना करके मेरा सेवन नहीं करा है, इस कारण च्यौले लाकर भी यह नहीं देता है और मुझसे कुछ नहीं माँगता है ॥ ६ ॥ यह मेरा सखा अपनी पतिव्रता स्त्रीका इच्छित करने निमित्त मेरे पास आया है, इस कारण मैं इसको, जो देवताओंको भी दुर्लभ हैं ऐसी भोगकी सम्पत्ति देता हूँ ॥ ७ ॥ ऐसा विचार कर, श्रीकृष्णजीने, इस ब्राह्मणके वस्त्रमें बँधे हुए जो च्यौलोंके चावल थे उनको, 'यह क्या है ?' ऐसा कह कर आप ही खैंच लिया ॥ ८ ॥ और बड़े आदरके साथ कहा कि-हे मित्र ! मैं सत्य २ कहता हूँ कि-यह लाई हुई च्यौलोंकी भेट, मुझे अत्यन्त प्यारी और तृप्त करने वाली है, हे मित्र ! यह च्यौलोंके चावल मुझे और मेरे आश्रयसे रहने वाले सब जगत्‌को भी तृप्त करेंगे ॥ ९ ॥ ऐसा कह कर श्रीकृष्ण जीने, उसमेंसे एक मुट्ठी खाकर दूसरी मुट्ठी खानेको उठाई, सो उसको खानेसे पहिले ही, भगवत्परायण लक्ष्मीकी अंश रुक्मिणीने, उन परमात्मा श्रीकृष्णजीका हाथ पकड़ लिया और वह कहने लगीं कि-॥ १० ॥ हे परमात्मन् ! एक मुट्ठी खाई, यही इस ब्राह्मणको इस लोकमें तथा परलोकमेंकी मेरे कटाक्षका विलासरूप सकल सम्पदाओंकी प्राप्तिके अर्थ तुम्हारी प्रसन्नताका बहुत कुछ कारण होगया, अब दूसरी मुट्ठी खाकर मुझे भी इसके अधीन न करो ॥ ११ ॥ इधर ब्राह्मणने तो, उस रात्रिमें श्रीकृष्णजीके घर रह कर, स्वादयुक्त अन्नका भोजन करके और स्वादयुक्त पीनेके जल सरबत आदि पीकर बड़े सुखके साथ ऐसा माना कि-मानो मैं स्वर्गके भी ऊपर हूँ ॥ १२ ॥ हे राजन् ! दूसरे दिन सूर्यका उदय होने पर जगत्‌के पालक

भावेन स्वसुखेनाभिवंदितः । जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दिनः ॥ १३ ॥ स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् । स्वगृहान् व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥ अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया । यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥ क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः । ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरंभितः ॥ १६ ॥ निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यंके भ्रातरो यथा । महिष्या वीजितः श्रांतो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥ शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः । पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥ स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् । सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥ अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् । इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥ इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् । सूर्यानलेन्दुसंकाशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥ विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः । प्रोत्फुल्लकुमुदा-

और निजानन्द मूर्त्ति श्रीकृष्णजीने, जिसकी वन्दना करे हैं ऐसा और मार्गमें दूर पर्यन्त पहुँचानेको जाकर 'अब जाइये फिर कृपा करके शीघ्र ही पधारना' ऐसा विनयके साथ प्रिय भाषण करके विदा करा हुआ वह सुदामा ब्राह्मण, अपने घर पहुँचनेको चल दिया ॥ १३ ॥ तब श्रीकृष्णजीसे धन न मिलनेपर भी अपने मनके कृपणपनेके कारण लज्जित होकर उस ब्राह्मणने, अपने आप श्रीकृष्णजीसे कुछ नहीं माँगा किन्तु भगवान्के दर्शनसे ही आनन्दयुक्त होकर अपने घरको चला गया ॥१४॥ जाते समय आनन्दसे मनमें विचार करने लगा कि-अहो ! ब्राह्मणोंके हितकारी भगवान्की ब्राह्मणभक्ति मैंने आज देखी, देखो वक्षःस्थल पर लक्ष्मीको धारण करने वाले भी उन श्रीकृष्णजीने, मुझ महादरिद्रीको कैसी दृढ़तासे हृदय लगाया ॥ १५ ॥ मैं पापी दरिद्री कहाँ ? और लक्ष्मीके आश्रय श्रीकृष्णजी कहाँ ? तथापि यह जातिका ब्राह्मण है ऐसा जान कर मुझे कौलिया भर कर छातीसे लगाया ॥ १६ ॥ और प्रियाके सेवन करे हुए पलँगके ऊपर भ्राताकी समान मुझे बैठाया, मार्गमें मुझे परिश्रम हुआ था इस कारण उन श्रीकृष्णजीकी पटरानीने कोमल चँवर लेकर मेरी पवन करी ॥ १७ ॥ फिर उत्तम प्रकारसे चरणसेवा और और चन्दन आदिके उबटन आदिसे, ब्राह्मणको ही देवता मानने वाले परन्तु स्वयं देवताओंके भी देव तिन श्रीकृष्णजीने मेरी पूजा करी ॥ १८ ॥ अब श्रीकृष्णजीने अपनेको धन नहीं दिया तिसके कारणको मनमें विचारता है कि-यद्यपि सकल पुरुषोंको, उन भगवान्की चरणपूजा ही, पातालमें और भूतल परकी सकल सम्पदाओंकी, अणिमादि सिद्धियोंकी, स्वर्ग प्राप्तिकी और मोक्षकी भी कारण है ॥ १९ ॥ तथापि परमदयालु तिन श्रीकृष्णजीने, यह दरिद्री सुदामा ब्राह्मण, धन पाने पर गर्वमें होकर मेरा स्मरण नहीं करेगा, ऐसा मनमें विचार कर, मुझे बहुत सा वा थोड़ा सा भी धन नहीं दिया ॥ २० ॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह ब्राह्मण, अपने घरके समीपको गया, तो वह स्थान उसको-सूर्य अग्नि और चन्द्रमाके समान प्रकाशित होने वाले विमानोंसे चारों ओर घिरा हुआ ॥ २१ ॥

नोत्पलसुगन्धिभिः ॥२२॥ जुष्टं स्वलंकृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः । किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥ एवं मीमांसमानं तं नरा-नार्योऽमरप्रभाः । प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥ पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षाऽतिसंभ्रमा । निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥ २५ ॥ पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाऽश्रुलोचना । मीलिताक्ष्यनमद् बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥ २६ ॥ पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव । दासीनां निष्क-कण्ठानां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥ प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निज-मन्दिरम् । मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥२८॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । पर्यंका हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥ आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च । मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥ ३० ॥

शब्द करने वाले पक्षियोंके समूहोंसे भरे हुए चित्र विचित्र बाग बगीचोंसे और जहाँ सूर्यके उदयमें खिलने वाले और चन्द्रमाके उदयमें खिलने वाले लाल, श्वेत और नीले कमल खिल रहे हैं ऐसे तलावोंमेंके जलोंसे युक्त ॥ २२ ॥ और आभूषण धारण करे हुए पुरुषोंसे तथा हरिणीकी समान नेत्र वाली स्त्रियोंसे युक्त दीखा, उस ऐश्वर्य को देख कर वह सुदामा ब्राह्मण, अरे! यह तेजका समूह क्या दीख रहा है? फिर विमानोंको देख कर अरे! यह किसका स्थान है? फिर उस स्थानको अपना ही जान कर, अरे! वह ऐसा यह कैसे होगया? इत्यादि तर्कना करने लगा ॥ २३ ॥ इस प्रकार विचार करने वाले तिस महाभाग सुदामाको, देव-ताओंकी समान कान्ति वाले पुरुष और स्त्रियें, हाथमें भेट लेकर, ऊँचे स्वरके गीत बाजोंके साथ उसके सम्मुख गये ॥ २४ ॥ पति आये हैं, ऐसा समाचार सुन कर हर्षित हो पतिका दर्शन करनेमें आदरयुक्त हुई उसकी स्त्री जैसे अपने स्थान (कमलोंके वन) से लक्ष्मी बाहर निकलती है तैसे ही अपने घरमेंसे शीघ्रताके साथ बाहर निकली भगवान् जहाँ सकल स्वर्गकी सम्पदाओंको ही लाये थे इस कारण उन दोनोंका शरीर भी देवताओंकी समान दिव्य हुआ ॥ २५ ॥ वह पति-व्रता स्त्री पतिको देख कर, जिसके नेत्रोंमें प्रेमके कारण और उत्कण्ठासे आनन्दके आँसू आगये हैं ऐसी होकर, उसने अपने नेत्र मूँद कर प्रेम भावसे उन पतिको नमस्कार करके मनसे आलिङ्गन करा ॥ २६ ॥ उस समय वह ब्राह्मण, विमानमें बैठी हुई देवाङ्गनाकी समान दमकती हुई और कठले आदि आभूषण कण्ठमें धारण करनेवाली दासियोंके मध्यमें झलकने वाली उस अपनी स्त्रीको देख कर विस्मित हुआ ॥ २७ ॥ और प्रसन्न हुआ वह ब्राह्मण, उस स्त्रीके साथ स्वयं अपने घरमें प्रविष्ट हुआ, वह घर मणिमय सैंकड़ों खम्भोंसे युक्त और इन्द्रस्थानकी समान शोभायमान था ॥ २८ ॥ तहाँ दूधके झागोंकी समान गद्दे, सुवर्णकी पट्टी आदि लगे हुए हाथीदाँतके पलँग, सुवर्णकी दण्डी वाले चँवरी और पंखे थे ॥ २९ ॥ तैसे ही कोमल बिछौने बिछायेहुए सुवर्ण के आसन (चौकी आदि), और जिनमें मोतियोंकी झालर लटक रही थीं ऐसी चमकती हुई कपडछतें थीं ॥३०॥ स्फटिक

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा । चंद्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश । सांबः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान् द्रविडः क्रतुः । जांबवत्याः सुता ह्येते सांबाद्याः पितृसंमताः ॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः । आमः शंकुर्वसुः श्रीमान् कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥ श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः । शांतिर्दर्शः पूर्णमासः कालिंद्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान् सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥ वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च । महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् । जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ १७ ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः । प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ १८ ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे । एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप । मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच । कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद् दुहितरं युधि । कृष्णेन

शूरता आदि गुणोंमें पिता (श्रीकृष्णजी) की समान थे ॥ ८ ॥ ९ ॥ भानु, सुभानु स्वर्भानु, प्रभानु तैसे ही भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु तैसे ही आठवाँ अतिभानु,-॥ १० ॥ श्रीभानु और प्रतिभानु यह दश सत्यभामाके पुत्र हुए, साम्ब, सुमित्र पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु यह दश जाम्बवतीके पुत्र हुए यह सांब आदि दश भी पराक्रम आदि करके पिताके मान्य थे११।१२वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष आम, शंकु; वसु और तेजसे युक्त कुंति यह दश नाग्नजिति (सत्या) के पुत्र हुए१३श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुवाहु, भद्र, एकल, शान्ति, दर्श, पूर्णमास, और सबमें छोटा सोमक यह दश कालिन्दीके पुत्र हुए प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज, और अपराजित यह दश लक्ष्मणाके पुत्र हुए१५वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि, और क्षुधि यह दश मित्रविन्दाके पुत्र हुए१६संग्रामजित् बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक यह दश भद्राके पुत्र हुए १७ दीप्तिमान् और ताम्रतप्त इत्यादि दश रोहिणीके पुत्र हुए इसी प्रकार औरभी सब स्त्रियोंके पुत्र हुए, हे राजन्! प्रद्युम्नसे रुक्मवती स्त्रीके विषैं महाबली अनिरुद्ध नामवाला पुत्र हुआ, वह रुक्मवती भोजकट नामक नगरमें रहनेवाले रुक्मीकी कन्या थी, दूसरे भी श्रीकृष्णजीके पुत्रोंकी सैंकड़ों स्त्रियोंके विषैं करोड़ों पुत्र और पौत्रहुए, क्योंकि-जब श्रीकृष्णजीके पुत्रोंकी माता ही सोलह सहस्र एकसौ आठ थीं तो फिर उनकी सन्तान बहुतसी होगी इसका तो कहना ही क्या? १८॥१९ राजाने कहा कि-हे शुकदेवजी! तिस रुक्मीने, शत्रु (श्रीकृष्ण) के पुत्रको (प्रद्युम्नको) अपनी कन्या कैसे दी? क्योंकि-उस रुक्मीके साथ होने वाले युद्धमें श्रीकृष्णजीका तिरस्कार करा हुआ वह रुक्मी, उन श्रीकृष्णजीको मारनेका अवसर देखता था, इस कारण उससे कन्या मिलना असम्भव था इस प्रकार परस्पर द्वेष

विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥ इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने । विषयान् जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलंपटः ॥ ३८ ॥ तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः । ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥ एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् । तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥ एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः । लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

श्रीशुक उवाच । अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः । सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥१॥ तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः । स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥ निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः । नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥ ३ ॥ ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि

ऐश्वर्य, पुत्र पौत्र आदि समृद्धि और राज्य, यह कुछ भी नहीं देते हैं किन्तु दृढभक्ति नहीं देते हैं, मुझ अज्ञानीको तो भक्ति न होनेसे यह सम्पदा मिली इस कारण अब वह भक्ति ही प्राप्त होय ॥ ३७ ॥ भगवान्का परमभक्त वह ब्राह्मण तो, इस प्रकार बुद्धिसे निश्चय करके, तिन विषयोंको धीरे २ त्यागता हुआ, अति आसक्त न होकर स्त्रीके साथ विषयोंका सेवन करने लगा ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजीमें इस प्रकारकी ब्राह्मणभक्ति होना आश्चर्य नहीं है, क्योंकि-देवताओंके देवता, यज्ञपति तिन प्रभु श्रीहरिके, ब्राह्मण ही प्रभु और इष्टदेवता हैं, उनको तिन ब्राह्मणोंसे परमश्रेष्ठ दूसरा कुछ नहीं है ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वह भगवान्का मित्र ब्राह्मण, उन सम्पदाओंके भोगके समयमें भी, किसीके न जीते हुए भगवान्को भक्तोंने अपने वशमें कर लिया है, ऐसा जान कर उनके ही तीव्र ध्यानसे अपने अविद्यारूप बन्धनको तोड़ कर (देहाभिमानको छोड़ कर) थोड़े ही कालमें, ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंको प्राप्त होने वाले उनके स्वरूपको प्राप्त होगया ॥ ४० ॥ हे राजन् ! यह ब्राह्मणोंकी कथा और इसमेंके ब्राह्मणोंके हितकारी श्रीकृष्णजीकी ब्राह्मण भक्तिको जो पुरुष सुनता है वह, भगवान्के विषें भक्ति पाकर कर्मबन्धनसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८१ ॥ *

अब आगे बयासीवें अध्यायमें, सूर्यग्रहणके समय चारों ओरसे इकट्ठे हुए राजाओंने यादवोंको देख कर उनके साथ आनन्दपूर्वक कृष्ण कथा वार्त्ता करी यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! फिर वह बलराम कृष्ण द्वारकामें रहते रहे, एक समय, जैसे प्रलयकालमें सूर्यका लय होकर अन्धकार छाजाता है तैसे ही सर्वग्राससे अन्धकार छाने वाले बहुत ही बड़े सूर्य ग्रहणके पर्व आये ॥ १ ॥ हे राजन् ! ज्योतिषियोंके बताए हुए उन सूर्यग्रहणोंका समय आनेसे पहिले ही, उनको सुन कर सब देशोंके मनुष्य, पुण्य प्राप्त करनेकी इच्छासे स्यमन्तपञ्चक नामवाले कुरुक्षेत्रको चले गये ॥ २ ॥ जिस कुरुक्षेत्रमें, शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने, पृथिवीको क्षत्रियहीन करते समय, राजाओंके रुधिरके

कर्मणा । लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योघापनुत्तये ॥४॥ महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रा-गन् भारतीः प्रजाः । वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥ ५ ॥ ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः । गदप्रद्युम्नसांबाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः । आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥ ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः । गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥ व्यरोचन्त महातेजाः पथि कांचनमालिनः । दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥ तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः । ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥ रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः । ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥१०॥ स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः । भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायांघ्रिपांघ्रिषु ॥ ११ ॥ तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबंधिनो नृपान् । मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ॥ १२ ॥ कांबोजकैकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् । अन्यांश्चै-

प्रवाहसे बड़े भारी नौ तालाव उत्पन्न कर दिये थे ॥ ३ ॥ और जहाँ राजाओंके वधके पापसे अलिप्त भी उन भगवान् प्रभु परशुरामजीने, लोकोंको ऐसा करना चाहिये, ऐसी उनको शिक्षा देनेके निमित्त, जैसे साधारण पुरुष, अपने पाप दूर करनेके निमित्त प्रायश्चित्त आदि करता है तैसे बहुतसे यज्ञ करके भगवानका आराधन करा ॥ ४ ॥ अति पुण्यकारक तिस तीर्थयात्रामें तिस कुरुक्षेत्रके विषें भरतखण्डमेंकी बहुतसी प्रजा गई थी, तैसे ही हे राजन् ! अक्रूर, वसुदेव, आहुक, गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि यादव भी अपने पाप दूर करनेकी इच्छा करके उस कुरुक्षेत्रमें गए थे, उस समय अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा यह दोनों, सुचन्द्र, शुक और सारणके साथ द्वारकाकी रक्षा करनेके निमित्त रहे थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब कण्ठमें सुवर्णके पुष्पोंकी माला धारण करने वाले, दिव्य माला, वस्त्र, कवच, कुण्डल आदि पहिने और स्त्रियोंके साथ यात्राको निकले हुए वह महातेजस्वी यादव, मार्गमें विमानोंकी समान रथोंसे तरङ्गोंकी समान चञ्चल चाल वाले घोड़ोंसे, गरजनेवाले मेघोंकी समान हाथियोंसे और विद्याधरोंकी समान तेजस्वी सिपाही आदि मनुष्योंसे, देवांगनाके साथ विमानमें बैठकर जानेवाले देवताओंकी समान शोभायमान होने लगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ उन महाभाग यादवोंने, एकाग्रचित्तपनेसे उस तीर्थमें स्नान करके निराहार व्रत करा और ब्राह्मणोंको वस्त्र तथा माला देकर सुवर्णके पुष्पोंकी माला धारण करी हुई गौ भी दान दीं ॥ ९ ॥ तदनन्तर उन्होंने परशुरामजीके रचना करेहुए तालावोंमें विधिके साथ मोक्षस्नान करके, श्रीकृष्णके विषें हमें भक्ति हो इस अभिप्रायसे ब्राह्मणोंको उत्तम अन्नका भोजन कराया ॥१०॥ तदनन्तर जिनके देवता श्रीकृष्ण हैं तिन यादवोंने, ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर आप भी भोजन करने पर घने और शीतल छाया वाले वृक्षोंके नीचे अपनी इच्छानुसार डेरे आदि लगा कर, कुछ दिनों तहाँ ही रहनेके ढंगसे ठहरे ॥११॥ फिर हे राजन् ! उन यादवोंने, तहाँ आये हुए मित्र सम्बन्धी राजाओंको देखा, तैसे ही मत्स्य, उशीनर, कौसल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ती, आनर्त,

पारमपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ॥ १३ ॥ नन्दादीन्सुहृदो गोपान् गोपीश्चोत्कण्ठितांश्चिरम् ॥ १४ ॥ अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः । आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १५ ॥ स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापांगदृशोभिरेभिरे । स्तनैः स्तनान्कुंकुमपंकरूषितानिहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥१६॥ ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः । स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथां मिथः ॥ १७ ॥ पृथा भ्रातॄन् स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि । भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ॥१८॥ कुंत्युवाच । आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् । यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १९ ॥ सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि । नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ २० ॥ वसुदेव उवाच । अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् । ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥ २१ ॥ कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशो दिशः । एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २२ ॥ श्रीशुक

और केरल देशोंमें रहने वाले पुरुषोंको तथा दूसरे भी अपने पक्षके और शत्रुपक्षके सैंकड़ों पुरुषोंको देख कर परमस्नेही नन्दादि गोपोंको और दर्शनकी बहुत दिनोंसे उत्कण्ठा रखने वालीं गोपियोंको भी देखा ॥ १२-१४ ॥ तब परस्परके दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दके वेग करके अत्यन्त उमड़े हुए हृदयोंसे और मुख कमलोंसे जिनके ऊपर शोभा आरही है; जिनके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसू बह रहे हैं, जिनकी वाणी प्रेमसे गद्गद् होरही हैं और जिनके शरीरों पर अधिक हर्षसे रोमाञ्च खड़े होगये हैं ऐसे वह सब लोक, परस्पर दृढ़ आलिङ्गन करके आनन्दमें निमग्न हुए १५ तैसे ही सकल स्त्रियें भी परस्पर एक दूसरीको देख कर अतिप्रेमसे जिनकी दृष्टि मन्दहास्य युक्त और निर्मल कटाक्षयुक्त हुई हैं तथा जिनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आगये हैं ऐसी होकर केसरसे लेपन करे हुए स्तनोंको, तैसे ही अपने स्तनोंसे दबाकर आलिंगन करने लगीं ॥ १६ ॥ तदनन्तर छोटी अवस्थाके लोकोंसे, प्रणाम करेहुए वह सब लोक, अधिक अवस्था वाले वृद्धोंको प्रणाम करके और स्वागतका तथा कुशलका प्रश्न करके आपसमें कृष्णकी कथा वर्णन करने लगे ॥ १७ ॥ कुंती तो-अपने भ्राता, बहिन, उनके पुत्र, माता, पिता, भावज, और श्रीकृष्णजीको देख कर उनके साथ प्रेमकी बातें करने पर सब दुःखोंको भूल गई ॥ १८ ॥ वह कुन्ती वसुदेवजीसे कहने लगी कि-हे आर्य भ्रातः ! मैं तो, अपने मनोरथ पूर्ण नहीं हुए ऐसा मानती हूँ, क्योंकि-तुमने समर्थ होकर भी, मेरे ऊपर आपत्ति आनेके समय मेरा स्मरण भी नहीं करा ॥ १९ ॥ मित्र हों, जाति वाले हों, पुत्र हों अथवा माता पिता भी हों वह, जिसका दैव प्रतिकूल हो उस स्वजनका भी स्मरण नहीं करते हैं ॥ २० ॥ तब वसुदेवजीने कहा कि-हे बहिन ! दैवके खिलौनेरूप हम मनुष्योंको तू कुछ दोष मत देय, क्योंकि-सब लोग ईश्वरके वशमें हैं, वह उसकी प्रेरणासे ही नानाप्रकारके कार्य करते हैं अथवा दूसरोंसे कराते हैं ॥ २१ ॥ हे बहिन ! पहिले कंसके अत्यन्त दुःख दिये हुए हम सब, दिशा २ में को भाग

उवाच । वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः । आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्द-निर्वृताः ॥ २३ ॥ भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गांधारी ससुता तथा । सदाराः पांडवाः कुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः ॥२४॥ कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् । पुरुजिद् द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट् ॥ २५ ॥ दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ । युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥२६॥ राजानो ये च राजेंद्र युधिष्ठिरमनुव्रताः । श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २७ ॥ अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः । प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन् कृष्णपरिग्रहान् ॥२८॥ अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह । यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २९ ॥ यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् । भूः कालभर्जितभगाऽपि यदंघ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ ३० ॥ तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिंडबन्धः । येषां

गये थे, सो अब ही फिर दैव करके अपने स्थानोंको प्राप्त हुए हैं ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! उन आये हुए कुरु–मत्स्य आदि राजाओंका, वसुदेव उग्रसेन आदि यादवोंने, सत्कार करा तब, वह परमानन्दमूर्त्ति श्रीकृष्णजीके दर्शनके आनन्दसे अत्यन्त सुखको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, तैसे ही पुत्रों सहित गान्धारी, स्त्री सहित पाण्डव, कुंती, सृंजय, विदुर, कृपाचार्य २४ कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज ॥ २५ ॥ दमघोष, विशालाक्ष, मिथिला नगरीका राजा, मद्रदेशोंका राजा, केकय देशोंका राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, और पुत्रों सहित बाह्लीक आदि जो राजे तहाँ आये थे, तैसे ही हे राजेन्द्र ! राजसूय यज्ञमें जीते हुए होनेके कारण युधिष्ठिरके पक्षमें होकर जो राजे तहाँ आये थे वह, लक्ष्मीके और शोभाके रहनेके स्थान श्रीकृष्णजीके शरीर और उनकी स्त्रियोंको देख कर उनकी सुन्दरताकी अधिकतासे विस्मयमें होगये ॥ २६ ॥ २७ ॥ तदनन्तर बलराम कृष्ण करके उत्तम सत्कार करे हुए राजे, हर्षयुक्त होकर, भगवान्के अङ्गीकार करे हुए यादवोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ २८ ॥ कि–हे भोजपते उग्रसेन राजन् ! इस मनुष्य लोकमें तुमने ही अपने जन्मकी सफलता करली है, क्योंकि–जिनका दर्शन योगीजनोंको भी दुर्लभ है ऐसे भगवान् श्रीकृष्णजीको तुम निरन्तर देखते हो ॥ २९ ॥ केवल उनका दर्शन ही तुम्हें होता है ऐसा नहीं किन्तु अत्यन्त दुर्लभ और भी बहुतसे लाभ होते हैं, जिनकी वेदोंमें वर्णन करी हुई कीर्त्ति, जिनके चरणकी धोवनका जल (गङ्गाजल) और जिनके वचनरूप शास्त्र (वेदादि), इस सकल जगत्को अत्यन्त पवित्र करते हैं, और कालकी गतिसे भाग्यहीन हुई भूमि जिनके चरणारविन्दके स्पर्शसे उत्तम शक्ति पाकर हमें सकल पदार्थ जिधर तिधर से देती है ॥ ३० ॥ उन भगवान्के साथ, दर्शन, स्पर्श, पीछे २ फिरना, वार्त्तालाप, सोना, बैठना, भोजन, विवाहसम्बन्ध और गोत्रसम्बन्ध जिनके हैं ऐसे तुम, यद्यपि नरकके मार्गरूप घरोंमें रहते हो तथापि तुम्हारे घरोंमें स्वर्गकी और मोक्षकी

गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच । नन्दस्तत्र यदून्प्राप्तान् ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् । यत्रागमद् वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३२ ॥ तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३३ ॥ वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः । स्मरन् कंसकृतान्क्लेशान् पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३४ ॥ कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च । न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥ ३५ ॥ तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च । यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३६ ॥ रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् । स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३७ ॥ का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि । अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३८ ॥ एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि । प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः

भी इच्छाको दूर करनेवाले भगवान् विष्णु स्वयं प्रगट हुए हैं, इस कारण तुम्हारा जन्म सफल है॥३१॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! नन्दराजा तो तहाँ श्रीकृष्ण आदि यादव आये हैं ऐसा सुनकर कृष्ण आदिकोंके दर्शनकी इच्छासे, गोपों के साथ उन यादवोंके समीप ही ठहरनेकी इच्छासे छकड़ों पर लादे हुए सामान आदि सहित ही तहाँ आगये ॥३२॥ उन नन्दजीको देखकर हर्षको प्राप्त हुए यादव, जैसे प्राणके आने पर इन्द्रियें उठकर उसके सन्मुख जाती हैं तैसे सन्मुख जाकर, बहुत समयमें दर्शन होनेके कारण मिलनेमें शीघ्रता करने वाले उन्होंने, उन नन्दजी को दृढ़ताके साथ हृदयसे लगाया ॥३३॥ वसुदेवजी तो नन्दजीको आलिंगन कर प्रसन्न होकर, कंसके दिये हुए क्लेशोंका और अपने पुत्र गोकुलमें रख दिये थे उनका स्मरण करते हुए, प्रेमसे अत्यन्त विह्वल हुए ॥ ३४ ॥ हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलराम तो अपने माता पिता तिन यशोदानन्दको नमस्कार और आलिङ्गन करके,प्रेमसे कण्ठ भर आनेके कारण कुछ भी बोलनेको समर्थ नहीं हुए किंतु मौन ही रहे ॥ ३५ ॥ तब राजा नन्दने और महाभाग्यवती यशोदाने उन दोनों पुत्रोंको अपनी गोदमें बैठाकर उनको भुजाओंसे कौलिया भर लिया और विरहशोकको त्यागकर नेत्रोंमेंसे आनंदके आँसू बहाये॥३६॥तदनन्तर रोहिणी और देवकी यह दोनों, यशोदासे मिलकर तिस यशोदाके करे हुए पुत्रोंको लाड़ करना आदि मित्रभाव का स्मरण करके गद्गदकण्ठ हुई कहने लगा ॥ ३७ ॥ कि-हे व्रजेश्वरि! हे यशोदे! छूटनेका कारण होने पर भी न छूटनेवाले तुम दोनोंके मित्रभावको भला कौन भूलनेवाला है? क्योंकि-इन्द्रके ऐश्वर्य प्राप्त होने पर भी इस लोकमें जिस मित्रभावका पलटा नहीं होसकेगा ॥ ३८ ॥ हे यशोदे! जिन्होंने मातापिताको देखा भी नहीं ऐसे इन हमारे बलराम कृष्ण पुत्रोंको तुम्हारे समीप रखने पर,जैसे पलक नेत्रों की रक्षा करते हैं तैसे ही तुमने इनकी रक्षा करी है, यह तुम माता-पितासे ही इच्छाके अनुसार खाना, खेलना, उत्साह, लाड़, और पालन (स्नान, भोजन, पीना आदि) होकर निर्भयपनेसे गोकुलमें रहे हैं सत्य है कि-सत्पुरुषोंको, 'यह

स्व: ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच । गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति । दृग्भिर्हृदि कृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ४० ॥ भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसंगतः । आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया । गतांश्चिरायितान् शत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४२॥ अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशंकया । नूनं भूतानि भगवान् युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४३ ॥ वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च । संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४४ ॥ मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते । दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४५ ॥ अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः । भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरंगनाः ॥४६॥ एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः । उभयं मय्यथ परे पश्य-

अपना और यह पराया इस प्रकारकी' भेद बुद्धि किञ्चिन्मात्र भी नहीं होती है ३९ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! जो गोपियें, श्रीकृष्णजीको देखनेमें प्रवृत्त हुई अपनी दृष्टियोंको रोकनेवाले पलकोंको रचनेवाले ब्रह्माजीकी निन्दा करती थीं वह सब गोपियें भी बहुत कालके अनन्तर मिले हुए प्रिय श्रीकृष्णजीको देखकर नेत्रों के द्वारा हृदयमें पहुँचाए हुए उनको दृढ़ आलिंगन करके, नित्य चित्तको एकाग्र करनेवाले योगियोंको भी दुर्लभ भगवद्रूपताको प्राप्त हुईं ॥४०॥ भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी, आत्मभावको प्राप्त हुई उन गोपियोंसे एक ओर मिलकर और दृढ़ आलिंगन करके तथा कुशल बूझकर हँसते हुए इस प्रकार कहा कि-॥ ४१ ॥ हे सखियों ! अपने माता-पिता आदिका कार्य करनेकी इच्छासे गोकुलमेंसे मथुरामें गये हुए और तहाँ शत्रुपक्षका नाश करनेके विषयमें अपने चित्तको लगाकर बहुत दिनों पर्यन्त रहनेवाले हमारा तुम स्मरण करती हो क्या ? ॥ ४२ ॥ क्या, हम अकृतज्ञ (करे हुए उपकारको स्मरण न करनेवाले) हैं ऐसी कुछ शङ्का मनमें लाकर तुम हमारी निन्दा तो नहीं करती हो ? क्या करें ! भगवान् प्राणीमात्रके संयोग और वियोग करते हैं यह वार्त्ता सत्य है ॥ ४३ ॥ जैसे वायु, मेघकी घटा, तृण, रुई और धूलि, इनका एक स्थान पर संयोग करके तत्काल ही वियोग कर देता है, तैसे ही ईश्वर प्राणीमात्रके संयोग वियोग करता है ॥४४॥ ऐसी दशामें तुम्हें मेरे वियोग से मेरा अत्यन्त प्रेम उत्पन्न हुआ यह एक बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई, क्योंकि—मेरे विषयकी केवल भक्ति ही उत्पन्न होजाय तो, वह-प्राणियोंको मोक्ष देसकती हैं फिर मेरी प्राप्ति कर देनेवाला मेरा स्नेह तुम्हें प्राप्त हुआ यह तो कितने अहोभाग्य की वार्ता है ? ॥ ४५ ॥ हे स्त्रियों ! जैसे पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पाँच महाभूत, घटपट आदि पदार्थोंके आदि अन्तमें, बाहर और भीतर सब रूपोंसे हैं, तैसे ही मैं भी सकल पदार्थोंके आदि, अन्तमें, बाहर और भीतर सकल रूपों से हूँ ॥ ४६ ॥ जैसे घट आदि कार्य पृथ्वी आदि रूप ही हैं तैसे ही जरायुज (झिल्लीमें लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले) स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न होने वाले) अण्डज (अण्डेमें उत्पन्न होने वाले) और उद्भिज्ज (पृथ्वी आदिको

साभातमक्षरे ॥४७॥ श्रीशुक उवाच । अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः । तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४८ ॥ आहुश्च ते नलिननाभ पदारविंदं योगेश्वरैर्हृदि विचिंत्यमगाधबोधैः । संसारकूपपतितोत्तरणावलंबं गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भाग० म० दश० उ० वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

श्रीशुक उवाच । तथानुगृह्य भगवान् गोपीनां स गुरुर्गतिः । युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥ त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः । प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥२॥ कुतोऽशिवं त्वच्चरणांबुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् । पिबंति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ॥ हित्वात्मधाम विधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुंठबोधम् । कालोप-

---

फोड़कर उत्पन्न होनेवाले) यह चारों प्रकारके शरीर अपने कारणरूप पञ्चमहाभूतोंमें ही रहते हैं, भोक्ता आत्माके विषय नहीं रहते हैं आत्मा तिन पञ्चमहाभूतोंमें केवल भोक्तारूपसे व्याप रहा है, कारणरूपसे नहीं, तिससे भूतभौतिकरूप भोग्य और भोक्ता आत्मा यह दोनों मुझ परिपूर्ण ब्रह्मके विषैं भासते हैं, सत्य नहीं हैं ऐसा तुम देखो ॥४७॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णजीसे, आत्मतत्त्वका उपदेश करके समझाई हुई वह गोपियें, आत्मतत्त्वका वारम्वार चिन्तवन करके लिङ्गशरीरका नाश होने पर तिन श्रीकृष्णजीके स्वरूपको ही प्राप्त होगई ॥ ४८ ॥ और कहने लगीं कि-हे कमलनाभ ! अगाध बोधवाले योगेश्वरों करके भी हृदयमें चिन्तवन करा हुआ और संसाररूप कूपमें पड़े हुए पुरुषोंको उसमेंसे निकलनेमें अवलम्बन रूप तुम्हारा चरणकमल, घरद्वारका सेवन करनेवालीं भी हमारे मनमें निरन्तर प्रकट रहे अर्थात् तुम्हारी कृपासे हमें प्राप्त हुआ यह तुम्हारा साक्षात् दर्शन फिर घरके झगड़ोंसे कभी दूर न हो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें द्व्यशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८२ ॥

अब आगे तिरासीवें अध्यायमें, स्त्रियोंमें श्रीकृष्णजीकी कथाका उत्साह चलनेपर श्रीकृष्णजीकी स्त्रियोंने, द्रौपदीसे अपना२ विवाह कहा, यह कथा वर्णन करी है। * । श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! गोपियोंके आत्मतत्त्वका उपदेश करनेवाले गुरु और उनकी गति ऐसे उन श्रीकृष्णजीने, उनकी प्रार्थना करनेको 'तथास्तु' कहकर उनके ऊपर अनुग्रह करा और फिर उन्होंने धर्मराज आदि सब ही सुहृदोंसे कुशलमंगल बूझा ॥ १ ॥ इस प्रकार लोकनाथ श्रीकृष्णजीके प्रश्न करने पर वह पांडव आदि, उनके चरणके दर्शनसे निष्पाप और हर्षितचित्त होकर उन श्रीकृष्णजीसे कहनेलगे कि-२ हे प्रभो ! देहधारियोंको अभिमान उत्पन्न करनेवाली अविद्याका नाश करनेवाली और व्यास आदि सत्पुरुषोंके मनमेंसे मुखके द्वारा बाहर प्रकट हुई तुम्हारे चरणकमलसे संबंध रहनेवाली, कथारूप अमृतको किसी समय भी जो पुरुष, अपने कर्णरूप पात्रोंसे इच्छानुसार पीते हैं उनको अमङ्गल भला कैसे होयगा? अर्थात् कभी नहीं होगा ३ इसकारण अपने स्वरूपके प्रकाशसे जहाँ बुद्धिसे करीं हुई जाग्रत्

सुप्तनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच । इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः । समेत्य गोविंदकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ॥५॥ द्रौपद्युवाच । हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जांबवति कौसले । हे सत्यभामे कालिंदि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ॥ ६ ॥ हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान स्वयम् । उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन् स्वमायया ॥७॥ रुक्मिण्युवाच । चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितांघ्रिरेणुः । निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥८॥ सत्यभामोवाच । यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार । जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥ ९ ॥ जांबवत्युवाच । प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाऽभ्य-

---

स्वप्न और सुषुप्तिरूप तीनों अवस्था नष्ट होगई हैं ऐसे सकल आनन्दोंके समूहरूप, अपरिच्छिन्न, कुंठित न होनेवाली चैतन्यशक्तिसे युक्त, कालवश नष्ट होते हुए वेदों की रक्षा करनेके निमित्त योगमायासे मनुष्यावतार धारण करनेवाले और परमहंसों की गति ऐसे तुम्हें हम नमस्कार करते हैं ४ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! इस प्रकार पवित्र कीर्त्ति पुरुषोंके मुकुटमणि तिन श्रीकृष्णजीकी लोकों के स्तुति करने पर, उस समय यादवोंकी और कौरवोंकी स्त्रियें इकट्ठी होकर, त्रिलोकीमें वर्णन करी हुई श्रीकृष्णजीकी कथाएँ परस्पर कहने लगीं वह, मैं तुम्हें सुनाता हूँ सुनो५द्रौपदीने कहा कि-हे रुक्मिणि! हे भद्रे! हे जाम्बवति ! हे कौसले! हे सत्यभामे ! हे कालिंदि ! हे मित्रविंदे ! हे रोहिणि ! हे लक्ष्मणे ! हे कृष्णपत्नियों ! तुम मुझे यह बताओ कि-अपनी मायासे लोकोंका अनुकरण करनेवाले अच्युत भगवान् श्रीकृष्णजीने अपने आप तुम्हारा पाणिग्रहण (विवाह) कैसे करलिया? ॥६॥७॥तब रुक्मिणी बोली कि-मुझे, शिशुपालको प्राप्त करानेके निमित्त जरासन्ध आदि राजे, हाथमें धनुषधारण करनेको उद्यत हुए तब, जीतनेमें न आनेवाले वीरोंके मस्तकों परके मुकुटमणिकी समान जिनके चरणकी धूलिका कण है अर्थात् जिन्होंने उन के मस्तक पर चरण रक्खा है ऐसे श्रीकृष्णजी,जैसे सिंह बकरी और भेडोंके समूह मेंसे अपना भाग लेआता है तैसे अपना भागरूप मुझे ले आये, तिन भगवान्के चरणकी पूजा मैं निरन्तर करती रहूँ ।८॥ सत्यभामा कहने लगी कि-अपने भ्राता प्रसेनका वध होनेसे दुःखित चित्तहुए मेरे पिता सत्राजित्के दोप देने पर, अपने ऊपर लगे अपयशको दूर करनेके निमित्त जब श्रीकृष्णजीने, जाम्बवन्तको जीतकर स्यमन्तक रत्न लाकर दिया तब इनके ऊपर खोटा दोप लगानेके अपराधसे डरेहुए उन मेरे पिताने, दूसरेको देनेके निमित्त कही हुई भी मुझे, इन प्रभु श्रीकृष्णजीको अर्पण करा है ॥ ९ ॥ जांबवती कहने लगी कि-मेरे पिता जांबवान्ने, यह प्रभु श्रीकृष्ण, अपने स्वामी और कुलदेवता राम ही हैं ऐसा न जानकर इनके साथ सत्ताईस दिन पर्यन्त युद्ध करा, तदनन्तर परीक्षा करने पर उन्होंने, यह राम ही हैं ऐसा जानकर इनके चरण धोये और इनको प्रसन्न करके मणिसहित मुझे पूजन

गुह्यत् । ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाहममुष्य दासी १० कालिन्द्युवाच । तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया । सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥ ११ ॥ मित्रविन्दोवाच । यो मां स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान् निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः । भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्यास्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम् ॥ १२ ॥ सत्योवाच । सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्ण-शृङ्गान् पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय । तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥ १३ ॥ य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम् । पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥ १४ ॥ भद्रोवाच । पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान् । कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥ १५ ॥ अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि । कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥ १६ ॥ लक्ष्मणोवाच । ममापि राज्ञ्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह । चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥ १७ ॥

रूपसे अर्पण करा है इस प्रकार मैं इनकी दासी हुई हूँ ॥ १० ॥ कालिन्दी कहने लगी कि-मेरे चरणके स्पर्शकी इच्छासे यह तप कर रही है ऐसा मुझे, जान कर, जिन्होंने अपने मित्र अर्जुनके साथ मेरे समीप आकर मेरा पाणिग्रहण करा तिन भगवान्‌के घरमेंके कूड़ेको निकालने वाली दासी मैं हूँ ॥ ११ ॥ मित्रविन्दा कहने लगी कि-जो लक्ष्मीनिवास भगवान्, मेरे स्वयम्वरमें आकर राजाओंको तैसे ही अपराध करने वाले मेरे भ्राताओंको जीत कर, जैसे सिंह श्वानोंके झुण्डमेंसे अपना भाग ले जाता है तैसे ही मुझे अपनी द्वारका नगरीमें ले आये, तिन भगवान्‌के चरण धोनेका कार्य मुझे जन्म जन्ममें मिले ॥ १२ ॥ सत्याने कहा कि-मेरे पिताने राजाओंके बलकी परीक्षा करनेके निमित्त, अतिबली, पराक्रमी और तीखे सींग धारण करने वाले तथा वीर पुरुषोंका खोटा घमण्ड दूर करने वाले जो सात बैल नियत करे थे, उनको इन भगवान्‌ने बड़ी शीघ्रतासे नाथकर, जैसे बालक बकरीके बच्चोंको बाँध कर डाल देते हैं तैसे बाँध कर डाल दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकार पराक्रम दिखाना ही जिसका मूल्य है ऐसी मुझे, जो भगवान्, मेरे पिताके दिये हुए दहेजरूप दासियों सहित चतुरङ्गिणी सेनाको लेकर और मार्गमें रोकने वाले राजाओंको जीत कर द्वारकामें लाये उन भगवान्‌का दासभाव मुझे प्राप्त हो ॥ १४ ॥ भद्रा कहने लगी कि-मेरे पिताने, मेरे चित्तको श्रीकृष्णजीके विषैं आसक्त जानकर अपने मामाके पुत्र इन श्रीकृष्णजीको, आप ही बुला कर, अक्षौहिणी सेना और सखियोंके साथ मुझे इनके अर्पणकर दिया ॥ १५ ॥ कर्मोंके द्वारा किसी भी शरीरमें भ्रमण करने वाली मुझे जन्म २ में इन भगवान्‌की चरणसेवा ही प्राप्त हो, क्योंकि-जन्ममें आयेहुए जीवात्माके कल्याण होनेका यही मुख्य साधन है ॥ १६ ॥ लक्ष्मणा कहने लगी कि-हे द्रौपदि ! नारदजीके वारम्वार गान करे हुए श्रीकृष्णजीके जन्म और कर्मको सुन कर, अहो ! लक्ष्मीने भी इन्द्रादि लोकपालोंको छोड़ कर, भगवान्‌को ही वरा है, ऐसा बहुत विचार करके, इस लक्ष्मीकी समान मेरा भी चित्त

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः। बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥ १८ ॥ यथा स्वयम्वरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः। अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम्। सर्वास्त्रशास्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥ २० ॥ पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः। आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥ २१ ॥ आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः। आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥ २२ ॥ सज्यं कृत्वा परे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः। भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् ॥ २३ ॥ मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम्। पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥२४॥ राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु। भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाऽथ लीलया ॥ २५ ॥ तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य

श्रीकृष्णजीके विषें आसक्त हुआ था ॥ १७ ॥ हे साध्वि ! तब कन्याके ऊपर दया करने वाले मेरे पिता बृहत्सेनने, मेरा अभिप्राय जान कर श्रीकृष्णजीकी प्राप्ति होनेके निमित्त उपाय करा ॥ १८ ॥ हे द्रौपदि ! जैसे तेरे स्वयम्वरमें, तेरे पिताने तुझे, अर्जुनको देनेकी इच्छासे मत्स्य करा था, परन्तु तुम्हारा मत्स्य केवल बाहरसे ही ढका हुआ था, भीतरसे नहीं था, इस कारण खम्भेके समीपके ऊपरको दृष्टि करनेसे दीखता था और यह हमारा मत्स्य तो तैसा न होकर खम्भकी मूलमें रक्खे हुए केवल कलशमेंके जलमें ही दीखता था इस कारण नीचेको दृष्टि और ऊपर लक्ष्य (निशाना) होनेसे श्रीकृष्णजीको छोड़ कर दूसरे किसीके भी भेदन करनेमें नहीं आसकता था ॥ १९ ॥ ऐसी मत्स्यके यन्त्रकी रचनाको सुन कर; सब शास्त्र अस्त्रोंके तत्त्वको जानने वाले सहस्रों राजे, अपने उपाध्यायों (गुरुओं) के साथ, सब दिशाओंसे मेरे पिताके नगरमें आये थे ॥ २० ॥ उन सबोंका, उनके पराक्रम और उनकी योग्यताके अनुसार मेरे पिताने सत्कार करा तब, मेरे ऊपर चित्त लगाने वाले उन्होंने, सभामें मत्स्ययन्त्रको भेदनके निमित्त बाणोंके सहित धनुष उठाया ॥ २१ ॥ उनमेंसे कितनों ही ने हाथमें धनुष लेकर उसको चढ़ानेमें असमर्थ होनेके कारण वह ज्यों का त्यों ही छोड़ दिया, कितने ही तो धनुषको चढ़ा कर और उसकी डोरी पहुँचे पर्यन्त खैंच करके भी आगेको शक्ति न होनेके कारण हाथमेंसे निकले हुए तिस ही धनुषसे ताड़ित होते हुए नीचे गिर पड़े २२ दूसरे, जरासन्ध, अम्बष्ठ, शिशुपाल, भीम, दुर्योधन और कर्ण इन वीरोंने, धनुषको उठा कर उसका रोदा चढ़ाया परन्तु उस लक्ष्यकी स्थिति (निशानेकी जगह) उनकी समझमें नहीं आई इस कारण उनका उद्योग निष्फल गया ॥ २३ ॥ यत्न करने वाले अर्जुनने तो, जलमें पड़ते हुए मत्स्यकी परछाँहीको देख कर उसकी स्थिति और स्थानको जानकर बाण भी छोड़ा परन्तु उस बाणसे उसका वेध नहीं करा, केवल उसको स्पर्श ही करा ॥ २४ ॥ इस प्रकार यह अभिमानी सब राजे, मानभङ्ग (अप्रतिष्ठा) पाकर यन्त्रका वेध करनेसे हट गये तब, भगवान् श्रीकृष्णजीने धनुष लेकर उसका रोदा चढ़ा कर, फिर सहजमें ही उसमें बाण चढ़ा कर,

सकृज्जले। छित्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥२६॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि। देवाश्च कुसुमासारान् मुमुचुर्हर्षविह्वलाः॥ २७॥ तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्ज्वलरत्नमालाम्। नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कवरीधृतस्रक्॥ २८॥ उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः। राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम्॥ २९॥ तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः। निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः॥ ३०॥ एवं वृते भगवति मयेशे नृपयूथपाः। न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः॥३१॥ मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम्। शार्ङ्गमुद्यम्य सन्नद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः॥३२॥ दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम्। मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव॥ ३३॥ तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन। संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा

सूर्यके मध्याह्नकालमें आने पर, सकल प्रयोजनोंको सिद्ध करने वाले अभिजित् मुहूर्तमें, जलमें प्रतिबिम्बित होते हुए मत्स्यको एक बार देख कर, बाणसे उस यन्त्रको तोड़ कर गिरा दिया॥ २५॥ २६॥ उस समय स्वर्गमें और भूमि पर दुंदुभी बजने लगीं; जयजयकार शब्द करने वाले और हर्षसे विह्वल हुए देवता भूमि पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २७॥ उस समय नवीन जरीके रेशमी उत्तम दो वस्त्र एक उढ़ा कर और एक पहिरा कर वेणी (चोटी)में पुष्पोंकी माला बाँधी हुई और लज्जा सहित हास्ययुक्त मुख वाली मैं, सुवर्णसे चमकती हुई रत्नोंकी मालाको हाथमें लेकर मधुर शब्द करने वालीं पायजेवोंसे भूषितचरणोंसे चलती हुई तिस रङ्ग सभाके स्थानमें प्रविष्ट हुई॥ २८॥ और श्रीकृष्णजीके विषैं आसक्त चित्त हुई तिस मैंने, जिसमें उत्तम केशपाश और कुण्डलोंकी कान्तिसे युक्त कपोल चमक रहे हैं ऐसा अपना मुख ऊपरको करके, सन्ताप दूर करने वाले हास्ययुक्त कटाक्षपातोंसे चारों ओर बैठे हुए राजाओंकी ओरको अवकाशके साथ देखती २ श्रीकृष्णजीके समीप जाकर अपने हाथमेंकी माला तिन श्रीकृष्णजीके गलेमें डाली २९ सो इतने ही में मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी और चौघड़े आदि बाजे बजने लगे, नट और नटनियें नृत्य करने लगे और गवैये गाने लगे॥ ३०॥ हे द्रौपदि! इस प्रकार भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजीको मैंने वरा तब, कामातुर हुए और श्रीकृष्णजीसे से स्पर्धा (हिसं) करने वाले बड़े बड़े राजाओंने, उसको सहन नहीं करा॥ ३१॥ इतने ही में भगवान्, उत्तम चार घोड़े जुते हुए रथ पर मुझे बैठाल कर, अपने आप कवच आदि धारण करें और चतुर्भुज होकर दो हाथोंसे मुझे आलिङ्गन करके और दूसरे दोनों हाथोंसे धनुष बाण उठा कर युद्ध करनेको उद्यत हुए॥ ३२॥ हे द्रौपदि! उस समय सुवर्णसे मँढा हुआ वह रथ, दारुक सारथीने चलाया तब, जैसे हिरनोंके देखते हुए सिंह अपना भाग लेजाता है तैसे ही सब राजाओंके देखते हुए श्रीकृष्णजी मुझे लेकर चल दिये॥ ३३॥ तब धनुष उठाकर युद्ध करनेको उद्यत हुए वह कितने ही राजे, जैसे व्याघ्र सिंहको रोकनेके निमित्त

हरिम् ॥ ३४ ॥ ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकंधराः । निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥ ३५ ॥ ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् । कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥३६॥ पिता मे पूजयामास सुहृत्संबंधिबांधवान् । महार्हवासोलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः । आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥ आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः । सर्वसंगनिवृत्त्याऽद्धा तपसा च बभूविम ॥ ३९ ॥ महिष्य ऊचुः । भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः । निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥ न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत । वैराज्यं पारमेष्ठ्यं च आनन्त्यं वा हरेः पदम् ॥ ४१ ॥ कामयामह एतस्य

उसके पीछे भागते हैं तैसे मार्गमें श्रीकृष्णजीको रोकनेके निमित्त उनके पीछे दौड़ने लगे ॥ ३४ ॥ उनमेंसे कितने ही राजे, युद्धमें श्रीकृष्णजीके शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए बाणोंके समूहोंसे हाथ, पैर और कण्ठ कट कर मर कर ही गिर पड़े, शेष कितने ही एक, युद्ध करनेका त्याग करके भाग गये ॥ ३५ ॥ फिर जैसे सूर्य अस्ताचलको जाता है तैसे श्रीकृष्णजी द्वारकाको चले गये, वह द्वारका सूर्यको ढकने वाली ध्वजा खड़ी करके और नाना प्रकारकी बन्दरवारें बाँध कर अत्यन्त सजाई गई थी तथा सकल पृथ्वीपर और स्वर्गमें प्रशंसा करीहुई थी ॥ ३६ ॥ मेरे पिताने, अमूल्य, वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन और पात्र आदि सामग्री देकर, मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंका सत्कार करा ॥ ३७ ॥ और पूर्णकाम भी तिन भगवान्‌को दासी, सकल सम्पदा, हाथी, घोड़े, रथ, सिपाही और नानाप्रकारके शस्त्र भक्तिके साथ समर्पण करे ॥ ३८ ॥ हे द्रौपदि ! इस रुक्मिणी आदि हम आठोंने, पूर्वके जन्मोंमें सकल संगोंका त्याग, वैराग्य और तप करे थे, इस कारण इस जन्ममें हम, तिन आत्माराम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णजीके घरकी दासी हुई हैं ॥ ३९ ॥ सोलह सहस्र एक सौ स्त्रियें कहने लगीं कि-भौमासुरने, दिग्विजयके समय जीते हुए राजाओंकी हम कन्याओंको बन्धनमें डालकर रक्खा है, ऐसा जानकर, पूर्णकाम भी जिन श्रीकृष्णजीने, उस भौमासुरको सेना सहित युद्धमें मारकर हमको बन्दीवासमेंसे छुड़ाया और संसारसे मुक्त करने वाले अपने चरण कमलका बारम्बार स्मरण करने वालीं तिन हमारा पाणिग्रहण करा ॥ ४० ॥ हे साध्वि ! हम सार्वभौमपद, इन्द्रपद, तिन दोनों पदोंके भोगके ऐश्वर्य, अणिमादि सिद्धि, ब्रह्मपद, मोक्ष वा सलोकता आदि मुक्तिकी भी किञ्चिन्मात्र इच्छा नहीं करती हैं किन्तु उन भगवान्‌के, ब्रह्मादिकोंके सेवन करने योग्य, लक्ष्मीके स्तनोंके केशरसे सुगन्धयुक्त हुए सर्वोत्तम चरणरजको मस्तक पर धारण करनेकी इच्छा करती हैं ॥४१-४२॥ यदि कहो कि-उस परम दुर्लभ चरण रजकी इच्छा क्यों करती हो ? तो भक्तवत्सलता के कारण गौ चराने वाले उन महात्मा भगवान्‌के चरण रजको और चरणके स्पर्श करनेको, जैसे गोप, गोपी, भीलिनी, तृण और लता भी इच्छा करती हैं तैसे ही

श्रीमत्पादरजः श्रियः । कुचकुंकुमगन्धाढ्यं मूर्ध्नो वोढुं गदाभृतः ॥४२॥ व्रजस्त्रियो यद्वांछन्ति पुलिंद्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

श्रीशुक उवाच । श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः । कृष्णेखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकला-कुलाक्ष्यः ॥ १ ॥ इति संभाष्यमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु । आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥ २ ॥ द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः । विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ।३। रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः । पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः ॥ ४ ॥ द्वितस्त्रितश्चैव तथा ब्रह्मपुत्र-स्तथाऽङ्गिराः । अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ॥ ५ ॥ तान् दृष्ट्वा सह-सोत्थाय प्रागासीना नृपादयः । पांडवा कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववंदितान् ॥ ६ ॥ तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् । स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानु-लेपनैः ॥ ७ ॥ उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः । सदसस्तस्य महतो यतवा-

हम भी इच्छा करती हैं, इससे यह सूचित करा कि—भगवत्परायणोंको वह चरण परम सुलभ है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें त्र्यशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८३ ॥ छ छ छ छ छ

अब आगे चौरासीवें अध्यायमें, ऋषियोंका समागम होने पर वसुदेवजीके यज्ञ का उत्साह और सम्बन्धियोंको विदा करने आदिकी कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा तैसे ही राजाओंकी स्त्रियें और कृष्णकी भक्त गोपियोंने रुक्मिणी आदि कृष्णकी स्त्रियोंका, सर्वात्मा हरि श्रीकृष्णजीके विषैं प्रेमसे परवश हुआ भाषण सुनकर, सबोंने ही आनन्दके अश्रुओंसे नेत्रोंको भरकर विस्मय माना ॥ १ ॥ इस प्रकार स्त्रियोंके साथ स्त्रियें और पुरुषोंके साथ पुरुष भाषण कर रहे थे उसी समय, तिस कुरुक्षेत्रमें बलरामकृष्णको देखनेकी इच्छासे ऋषि आपहुँचे ॥ २ ॥ उनके नाम–वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम३ शिष्योंसहित, भगवान् परशुराम, वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, ॥४॥ द्वित, एकतत्रित, सनकादिक ब्रह्मपुत्र, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य, तैसे ही वामदेवादि और भी, यह ऋषि थे ॥ ५ ॥ उन ऋषियोंको देखते ही पाण्डव श्रीकृष्ण, बलराम और जो तहाँ पहिले बैठे हुए राजे आदि थे उन सबों ने ही एक साथ उठकर जगत्के वन्दनीय तिन ऋषियोंको नमस्कार करा ॥ ६ ॥ उस समय पाण्डव आदि सब राजाओंने, उनका स्वागत बूझना, आसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, धूप और चन्दनके लेपन आदिसे पूजन करा तैसे ही बलरामसहित श्रीकृष्णजीने भी उनका यथायोग्य पूजन करा ॥ ७ ॥ तदनन्तर सुखसे बैठे हुए उन व्यास आदि मुनियोंसे, धर्मकी रक्षाके निमित्त अवतार आदि धारण करने वाले वह श्रीकृष्णजी, तिस बड़ी भारी सभाके मौन होकर सुनतेमें कहने लगे ॥८॥

चोऽनुशृण्वतः ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् । देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥९॥ किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् । दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥ १० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ११ ॥ नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः । उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥ १२ ॥ यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः । यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच । निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः ।

श्रीभगवान् कहने लगे-अहो! आज हम, सफल जन्मवाले हुए हैं क्योंकि-इस जन्मका फल पूर्णरूपसे हमें मिला है, जो कि-देवताओंको भी दुर्लभ तुम योगेश्वरों का दर्शन हमें मिला है ॥ ९ ॥ केवल दर्शन ही नहीं किन्तु स्पर्श भी प्राप्त हुआ है अहो! केवल तीर्थ स्नान करनेको ही तीर्थ माननेवाले अर्थात् साधु और शास्त्र आदि तीर्थोंके द्वारा भीतरी शुद्धि न करके केवल ऊपरसे स्नानमात्र ही करके अपनेको तीर्थसेवी माननेवाले, तथा केवल प्रतिमामात्रमें ही देवता बुद्धि रखनेवाले अर्थात् देवताओं दिव्य विग्रह और दिव्य चरित्रोंकी ओर दृष्टि न करके स्थूलभावसे उनने पाषाण वा मृत्तिका आदिके स्थूल विग्रहको ही देवता माननेवाले मनुष्योंको, क्या? आपका दर्शन, स्पर्श; स्वागत बूझना, नमस्कार और चरणपूजा आदि करना बन सकता है? कदापि नहीं होसकता, क्योंकि—वह स्थूल दृष्टि होनेके कारण दिव्य उपदेश करनेवाले तुम्हारे अनुगामी कैसे होसकते हैं ॥ १० ॥ जलमयतीर्थ तीर्थ नहीं है ऐसा नहीं है और मृत्तिका पाषाणमय देवता देवता नहीं है ऐसा भी नहीं है किन्तु वह तीर्थ और देवता हैं सत्य है परन्तु उनमें और साधुओं में बड़ा अन्तर है वह तीर्थ और देवता बहुत समय पर्यन्त सेवा करने पर पवित्र करते हैं और साधु दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं ॥ ११ ॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, भूमि, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन इनके अभिमानी देवताओंकी उपासना करने पर भी वह 'तू तेरा और मैं मेरा इस प्रकार की' भेदबुद्धि धारण करनेवाले पुरुषके पापमूलक अज्ञानको नष्ट नहीं करते हैं और ज्ञानी पुरुष तो मुहूर्त मात्र सेवा करनेसे ही भक्ति ज्ञान आदिका उपदेश करके उस अज्ञानको नष्ट कर देते हैं॥ १२ ॥ इस कारण जिस पुरुषको, वात-पित्त कफरूप तीन धातुओंसे युक्त शवसमान जड़ शरीरमें ही 'यह मैं हूँ ऐसी' आत्मबुद्धि है, स्त्रीपुत्रादिकोंके ऊपर ही 'यह मेरे हैं ऐसी' अपनेपनेकी बुद्धि है, ईश्वर और देवताओंके दिव्य विग्रह को छोड़ कर केवल मृत्तिका पाषाण आदिकी स्थूल मूर्त्तियों ही पूजनीय बुद्धि है और तीर्थवाली साधुओंको तथा शास्त्ररूप तीर्थोंको छोड़कर केवल जलमें ही तीर्थबुद्धि है और तीर्थरूप साधुओंमें वह सर्वरूपबुद्धि नहीं है, वह गौओंके तृण आदिको उठानेवाले गर्दभकी समान (पशुतुल्य) है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन्! इस प्रकारके अकुण्ठितबुद्धि भगवान् श्रीकृष्णजीके दीनपनेके भाषणको सुन

वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन् भ्रमद्धियः ॥ १४ ॥ चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् । जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयंतस्तं जगद्गुरुम् ॥ १५ ॥ यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः । यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ॥ १६ ॥ अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा । भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहोविभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ १७ ॥ अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय । स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥ १८ ॥ ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः । यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥ १९ ॥ तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः । सभाजयसि सद्धाम

कर, वह ब्राह्मण उस भाषणका आशय न समझनेके कारण चकितबुद्धि होकर चुप (निरुत्तर) होगए ॥ १४ ॥ तदनन्तर उन ऋषियोंने बहुत ही देरी पर्यन्त विचार करके हँसते हुए तिन जगद्गुरु श्रीकृष्णजीसे कहा कि-हे कृष्ण ! तुम ईश्वर होकर 'मैं तुम्हारी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाला हूँ' ऐसा जो कहते हो सो केवल जनसंग्रहके निमित्त अर्थात् सब लोक ऐसा वर्त्ताव करें, यह दिखानेके निमित्त है ॥ १५ ॥ ऋषियोंने कहा कि-हे प्रभो ! जिन तुम्हारी मायासे विश्वस्रष्टाओंके स्वामी मरीचि आदि ऋषि और तत्त्वज्ञानियोंमें उत्तम हम भी अत्यंत मोहित हुए हैं अर्थात् तुम्हारा अभिप्राय क्या है सो नहीं जानते हैं, क्योंकि-जो तुम मनुष्य लीलासे गुप्त होकर, स्वयं ईश्वर होनेपर भी दूसरोंके सेवकोंकी समान वर्त्ताव करते हो तिन तुम भगवान्के चरित्र बड़े आश्चर्यकारी (बड़ी कठिनतासे जानने योग्य) हैं ॥ १६ ॥ जो तुम आसक्तिरहित और एक होकर भी, जैसे भूमि वास्तवमें एक होकर भी अपने कार्यरूप घट आदि पदार्थोंसे बहुतसे नाम और रूप धारण करनेवाली होती है तैसे ही तुम भी, अपने स्वरूपमात्र करके ही इस जगत्को बहुतसे प्रकारोंसे उत्पन्न करते हो, रक्षा करते हो और संहार करते हो, तथापि 'मेरा करा हुआ यह मेरा इस प्रकारके' अहङ्कारसे बँधते नहीं हो, ऐसा तुम परिपूर्णका, मनुष्यभाव स्वीकार करके ब्राह्मणोंका सन्मान आदि करनेका चरित्र केवल अनुकरण करके दिखाया है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! यद्यपि तुम, वास्तवमें प्रकृतिसे पर पुरुषोत्तम हो और तुम्हें जन्मादि विकार नहीं प्राप्त होते हैं तथापि तुम, भक्तोंकी रक्षा करनेको और दुष्टोंको दण्ड देनेके निमित्त समय २ पर अपना शुद्ध सत्त्वगुणी स्वरूप धारण करते हो और वर्णाश्रम धर्मके अभिमानसे युक्त होते हुए, लोकोंको शिक्षा देनेके निमित्त अपने आचरणसे सनातन वेदमार्गकी रक्षा करते हो ॥ १८ ॥ वेद तुम्हारा शुद्ध हृदयस्वरूप है, जिस वेदमें तप, स्वाध्याय और इन्द्रियोंको वशमें करनेके द्वारा कार्यरूप, कारणरूप और उन दोनोंसे निराला केवल सत् रूप ब्रह्म प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ तिससे हे ब्रह्मरूप कृष्ण ! तुम्हारे हृदयरूप वेदको प्रवृत्त करनेवाला जो ब्राह्मणकुल उसको तुम, वेदके उत्पत्तिस्थान अपनी प्राप्तिका स्थान जानकर उसका सन्मान करते हो इस कारण ही तुम, ब्राह्मणोंके भक्तोंमें श्रेष्ठ गिने

तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥ २० ॥ अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः । त्वया संगम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ॥ २१ ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे । स्वयोगमायया च्छन्नमहिम्ने परमात्मने ॥ २२ ॥ न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः । मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ॥ २३ ॥ यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् । नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ॥ २४ ॥ एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया । मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ॥ २५ ॥ तस्याद्य ते ददृशिमांघ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः । उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यनुज्ञाप्य दाशार्ह धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम् । राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥ २७ ॥ तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः । प्रणम्य चोपसंगृह्य

गये हो ॥ २० ॥ सत्पुरुषोंकी गतिरूप तुम्हारे साथ समागमको प्राप्त होकर आज हमारी विद्याकी, तपकी, ज्ञानकी और जन्मकी सफलता हुई है, क्योंकि-तुम सकल कल्याणोंके परम अवधि (हद) हो, अर्थात् तुम्हारे प्राप्त होने पर फिर कोई कल्याण प्राप्त होनेको शेष नहीं रहता है ॥ २१ ॥ ऐसे भगवान्, अकुण्ठितबुद्धि, और योगमायासे महिमाको ढके हुए तुम परमात्मा श्रीकृष्णको नमस्कार हो ॥ २२ ॥ सबों के आत्मा, सृष्टि आदिके कारण, सबोंके नियंता और मायारूप परदेसे ढके हुए तुम्हें, यह यहाँ विद्यमान राजे, और तुम्हारे साथ एक स्थान पर भोजन शयन आदि करने वाले यादव भी नहीं जानते हैं ॥ २३ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नमें, स्वप्नमेंके देखे हुए पदार्थोंको सत्य मानता है और मिथ्याभूत इंद्रिय (मन) से भासने वाले सिंहादि स्वरूपको भी 'वह मैं हूँ' ऐसा मानता है, परंतु उससे रहित दूसरे जागते समयमें के देवदत्तादिरूप अपनेको नहीं जानता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार जाग्रत् अवस्थामें भी शब्दादि विषयोंमें इंद्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायाके द्वारा आत्मस्वरूपके स्मरणका नाश होनेके कारण भ्रांतचित्त हुआ पुरुष स्वप्नादिके पदार्थोंकी समान मिथ्याभूत देह आदिके विषें विद्यमान भी तुम अपने आत्माको नहीं जानता है किंतु देहको ही आत्मा जानता है ॥ २५ ॥ 'पापोंके समूहोंका नाश करने वाली गङ्गाका भी आश्रय और योगसिद्धिको प्राप्त हुए योगिजनों करके भी हृदयमें केवल चितवन ही करे हुए परन्तु दर्शन न करे हुए तुम्हारे चरणको आज हमने, बहुतसे पुण्योंके प्रभावसे देखा है इस कारण अब तुम हमें भक्त बनाकर हमारे ऊपर अनुग्रह करो, यदि कहो कि-भक्ति का क्या करना है तुम पहिलेकी समान तप ही करो तो सुनिये बढ़ी हुई भक्तिसे ही जिनका अन्तःकरणरूप जीवकोश (लिंगशरीर) दूर होगया है वही पूर्वकालके पुरुष तुम्हारी गतिको प्राप्त हुए हैं दूसरे नहीं प्राप्त हुए २६ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उन ऋषियोंने स्तुति करके, श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे जानेकी आज्ञा लेकर अपने आश्रमको चलनेका मनमें विचार करा ॥ २७ ॥ सो ऋषियोंका जानेका विचार देखकर महायशस्वी वसुदेवजीने, उनके समीप जाकर उनको

यथावेदं सुयन्त्रितः ॥ २८ ॥ वसुदेव उवाच । नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ । कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥ २९ ॥ श्रीनारद उवाच । नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया । कृष्णं मत्वाऽर्भकं यन्नः पृच्छति श्रेय आत्मनः ॥ ३० ॥ सन्निकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम् । गाङ्गं हित्वा यथाऽन्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥ ३१ ॥ यस्यानुभूतिः कालेन लयोत्पत्यादिनाऽस्य वै । स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥ ३२ ॥ तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवमीश्वरमद्वितीयम् । प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ॥३३॥ अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् । सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ॥३४॥ कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः । यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ॥ ३५ ॥ चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा । दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥ ३६ ॥ अयं स्वस्त्ययनः

नमस्कार करके और हाथोंसे उनके चरण पकड़कर एकाग्रचित्तसे उनसे कहा॥२८ वसुदेवजी कहनेलगे कि-हे ऋषियो ! सकल देवताओंके रहनेके स्थान तुमको नमस्कार हो, आपको मेरा वचन सुनना योग्य है, जिस किसी, विधिपूर्वक करे हुए कर्मके द्वारा मोक्षको रोकनेवाले कर्म दूर होते हैं वह कर्म वर्णन करिये ॥ २९ ॥ इस प्रकार वसुदेवजीके प्रश्न करने पर, सर्वज्ञ श्रीकृष्णजीको छोडकर यह हमसे प्रश्न करते हैं ऐसा मनमें विचार कर विस्मयमें हुए उन ऋषियोंसे नारदजी कहने लगे कि-हे विप्रो ! अपने पुत्र श्रीकृष्णको बालक (अज्ञानी) मानकर उनको छोड कर यह वसुदेवजी, अपने कल्याणका साधन जाननेकी इच्छासे जो हमसे बूझरहे हैं सो कुछ बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है ॥३०॥ क्योंकि-इस जगत्में निरन्तर सहवास होना, मनुष्योंके अविश्वासका कारण होता है; देखो-गङ्गाजीके तटपर रहने वाला पुरुष, गङ्गाजलको छोड़कर अपनी शुद्धि होनेके निमित्त दूसरे तीर्थके जल की ओरको जाता है ॥ ३१ ॥ जिनका ज्ञान, कालसे तैसे ही इस जगत्के उत्पत्ति स्थिति संहारोंसे, अपनेसे, दूसरेसे और रूपान्तर आदि होनेसे भी कभी नाशको नहीं प्राप्त होता है ॥३२॥ तिन, विषयोंमें आसक्ति,कर्म,सुख, दुःख और सत्वादि गुणोंके वारम्वार प्रकट होनेसे जिनका ज्ञानस्वरूप खण्डित नहीं हुआ है ऐसे अद्वितीय ईश्वरको यह संसारी जन, जैसे सूर्यको मेघ कुहर और राहुसे ढका हुआ मानता है तैसे ही तिन ईश्वरके कार्यरूप प्राण, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरण आदि करके वह ईश्वर ढकाहुआ है ऐसा मानता है, इसमें कुछ आश्चर्य माननेकी बात नहीं है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! नारदजीके इस प्रकार कहने पर वह ऋषि, वसुदेवजी को सम्बोधन करके तहाँ इकट्ठे हुए सब राजे और बलराम कृष्णके सुनते हुए इस प्रकार कहने लगे कि-॥ ३४ ॥ जो श्रद्धासे यज्ञ करके, सब यज्ञोंका फल देनेवाले विष्णु भगवान्का आराधन करना है, यह ही कर्मके द्वारा कर्मोंको निवृत्त करने की उत्तम रीति कही है ॥ ३५ ॥ विद्वान् पुरुषोंने शास्त्ररूप दृष्टिसे, अन्तःकरणकी शान्तिका और मोक्षका सुलभ उपाय यही दिखाया, तैसे ही क्षत्रियोंके मनको हर्ष

पंथा द्विजातेर्गृहमेधिनः । यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥ वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् । आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः । ग्रामे त्यक्तै- षणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥३८॥ ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितॄणां प्रभो । यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ॥ ३९ ॥ त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषि- पित्रोर्महामते । यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निरृणो शरणो भव ॥ ४० ॥ वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् । जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच । इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः । तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नानम्य प्रसाद्य च ॥ ४२ ॥ त एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् । तस्मिन्नयाजयन् क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥ ४३ ॥ तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः । स्नाताः सुवा- ससो राजन् राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥ ४४ ॥ तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः

उत्पन्न करनेवाला आवश्यकधर्म भी यही कहा है॥३६॥शुद्ध, न्यायसे प्राप्त हुए द्रव्य से श्रद्धापूर्वक जो पुरुषोत्तम भगवान्का यजन करना, यह ही गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्योंका कल्याणकारी मार्ग है ॥ ३७ ॥ हे वसुदेवजी ! कर्मके अत्यन्त दूर होनेमें प्राणीकी सकल इच्छा छूटनी चाहियें, उसके छूटनेकी यह रीति है कि- विचारवान् पुरुष, धनके फल यज्ञों करके और दानों करके धनकी इच्छाको छोड़ें, गृहस्थाश्रमके योग्य विषय भोगों करके स्त्री-पुत्रादिकोंकी इच्छाको त्यागे और देह के मरणको प्राप्त होनेपर अपनेको स्वर्गादिलोक प्राप्त होनेकी जो इच्छा होती है उस को, देवताओंको भी मारने वाला जो काल वह मेरे भी सुखका नाश करेगा ऐसा मनमें विचार कर छोड़देय, इस कारण ही पूर्वकालके धैर्यवान् पुरुष, गाँवमें रहते हुए सकल इच्छाओंको त्यागकर फिर तपोवनमें गये ॥ ३८ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यरूपी जो द्विज वह, देवता, ऋषि और पितरोंके तीन ऋणों सहित उत्पन्न होता है इस कारण यदि वह यज्ञ, वेदादि पढना और पुत्रोत्पत्ति करके उन ऋणों को दूर करे बिना संसारका त्याग करता है तो पतित होता है ॥ ३९ ॥ हे परम बुद्धिमान् वसुदेवजी ! तुम तो, वेदाध्ययन और पुत्र उत्पन्न करनेके कारण ऋषि और पितर दोनोंके ऋणसे छूटगये हो, अब यज्ञके द्वारा देवताओंका ऋण चुकाकर ऋण रहित होतेहुए संन्यस्त होकर घरसे निकल जाओ ॥ ४० ॥ यह क्रम तो जिन का चित्त शुद्ध न हो उन लोगोंका है, हे वसुदेवजी ! तुम तो कृतार्थ ही हो, क्यों कि-तुमने, जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीहरिका प्रेमरूप भक्तिके साथ पूजन करा है इस कारण वह भगवान् तुम दोनोंके पुत्ररूपको प्राप्त हुए हैं ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उन ऋषियोंका कथन सुनकर तिन उदारचित्त वसुदेवजीने, उन ही ऋषियोंको मस्तकसे प्रणाम करके और प्रसन्न करके ऋत्विज बना लिया ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! फिर धर्मसे वरेहुए उन ऋत्विजोंने, उस समन्तप- ञ्चक क्षेत्रमें मंत्र, तन्त्र और हविर्भाग आदि सब उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञ करके उन वसुदेवजीसे यजन करवाया ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! जब उस यज्ञकी दीक्षा वसु- देवजीने ग्रहण करी तब, स्नान करेहुए, उत्तम वस्त्र धारण करेहुए और उत्तम

सुवाससः । दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥ नेदुर्मृदङ्गपटहशंखभेर्यानकादयः । ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः । जगुः सुकंठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ॥ ४६ ॥ तमभ्यषिंचन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः । पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ॥४७॥ ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः । स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ॥ ४८ ॥ तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः । ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ॥ ४९ ॥ तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ । रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥ ५० ॥ ईजेनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः । प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥५१॥ अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः । स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो गोभूकन्या महाधनाः ॥५२॥ पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः । सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरःसराः॥५३ स्नातोऽलंकारवासांसि वंदिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः । ततः स्वलंकृतो वर्णानाश्वभ्यो-

आभूषण पहिरे हुए यादव और सकल राजे उस यज्ञको देखनेके निमित्त यज्ञशाला में आये तैसे ही बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए और कण्ठे आदि आभूषण धारण करके हर्षयुक्त हुई वसुदेवजीकी स्त्रियें भी हाथमें पूजन आदिके पदार्थ लेकर दीक्षाकी शालामें पहुँची ॥ ४३-४५ ॥ उस समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी, आनक आदि बाजे बजने लगे, नट और नटनियें नृत्य करने लगे, सूत और मागध स्तुति पढ़ने लगे, उत्तम कण्ठ वाली गन्धर्वोंकी स्त्रियें अपने पतियोंके साथ सुंदर गीत गाने लगा ॥ ४६ ॥ उस यज्ञमें अभिषेकके समय देवकी आदि अठारह स्त्रियों सहित नेत्रोंमें अञ्जन लगाये हुए और शरीरको तेल, हलदी, माखन आदि लगाये हुए उन वसुदेवजीका, ऋत्विजोंने, महाभिषेककी विधिसे, जैसे पहिले नक्षत्रों सहित चन्द्रमाका अभिषेक करा था तैसे अभिषेक करा ॥४७॥ उस समय, यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करके कृष्ण मृगछाला ओढ़े हुए वह वसुदेवजी, पाटाम्बर पहिन कर, हाथों में सुवर्णके कंकण, कण्ठमें हार, पैरोंमें नूपुर, कानोंमें कुण्डल और दूसरे भी आभूषण धारण करनेवालीं अपनी स्त्रियोंके साथ अत्यन्त शोभायमान होने लगे ॥४८॥ हे राजन् ! रत्नोंके आभूपण और पीताम्बर वस्त्र धारण करने वाले वह उन वसुदेवजीके ऋत्विज्, जैसे पहिले इन्द्रके यज्ञमें शोभित हुए थे तैसे शोभायमान होने लगे ॥ ४९ ॥ उस समय सकल प्राणियोंके स्वामी वह बलराम कृष्ण, अपने अपने बन्धुओंसे और अपने २ अंशभूत पुत्रोंसे तथा स्त्रियोंसे युक्त होते हुए शोभायमान हुए ॥ ५० ॥ तब वसुदेवजीने प्रत्येक यज्ञमें विधिके साथ अग्निहोत्रादिरूप सकल अङ्गोंसे और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंसे तथा सौर सत्र आदि वैकृतयज्ञोंसे, चरुपुरोडाश आदि द्रव्य तथा मंत्र और कर्मस्वरूप ईश्वरका यजन करा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन वसुदेवजीने, दक्षिणा देनेके समय अलंकार धारण करने वाले ऋत्विजों को, आप भी अलंकार धारण करके बहुतसे द्रव्यकी दक्षिणा और गौ, भूमि तथा कन्या भी दीं ॥ ५२ ॥ फिर पत्नीसंयाज और आवभृथ्य नामक याग करके, उन महाऋत्विज् ब्राह्मणोंने यजमानको आगे करके परशुरामजीके रचेहुए सरोवरमें

ऽन्नेन पूजयत् ॥ ५४ ॥ बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा । विदर्भकोसल-कुरूङ्काशिकेकयसृञ्जयान् ॥ ५५ ॥ सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् । श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ॥५६॥ धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ । नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्संबन्धिबांधवाः ॥ ५७ ॥ बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाक्लिन्नचेतसः । ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ॥५८॥ नंदस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः । कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ॥ ५९ ॥ वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् । सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ॥६० वसुदेव उवाच । भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः । तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ॥ ६१ ॥ अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताज्ञेषु सत्तमैः । मैत्र्यर्पिताफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ॥६२॥ प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम

स्नान करा ॥ ५३ ॥ वह अवभृथस्नान होनेपर उत्तम अलंकार धारण करने वाले उन वसुदेवजीने और उनकी स्त्रियोंने, स्तुतिपाठ करने वाले पुरुषोंको अलंकार और वस्त्र अर्पण करे तैसे ही सकल वर्णोंको और श्वान पर्यन्त सकल जीवोंको अन्नदानसे तृप्त करा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बन्धु, उनकी स्त्रियें, उनके पुत्र, सभासद ऋत्विज्, देवताओंके समूह, मनुष्य, भूत, पितर, चारण तैसे ही विदर्भ, कोसल, कुरु, काशि, केकय और सृञ्जय इन देशोंमेंके राजे इन सबोंको सन्मानके निमित्त बड़े २ सामान दिये, तब वह सदस्य आदि सब ही लोक, लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजीकी आज्ञा लेकर यज्ञकी और उन भगवान्की प्रशंसा करते हुए अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५५—५६ ॥ उस समय, धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, कुंती, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यास, तैसे ही मित्र, संबंधी और बान्धव, यह अपने बान्धव, यादवोंको आलिङ्गन करके स्नेहसे गद्गदचित्त होकर विरहके दुःख सहन न करते हुए अपने देशको चलेगये ॥ ५७—५८ ॥ उस समय, श्रीकृष्ण, बलराम और उग्रसेन आदि यादवोंसे, वस्त्रादिके द्वारा बड़ा सत्कार करेहुए नन्द गोप, यादवोंके ऊपर प्रेमभाव होनेके कारण गोपालों सहित कितने ही दिनों पर्यन्त तहाँ ही रहे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी तो यज्ञ विषयक मनोरथ रूपी महासमुद्रको अनायास में ही तरकर सन्तुष्टचित्त और संबन्धियोंसे घिरे हुए, नन्दजीका हाथ पकड़कर उनसे कहनेलगे ॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा कि-हे भय्या नन्द ! स्नेह नामक जो मनुष्योंकी फाँसी है वह ईश्वर की ही रची हुई होनेके कारण, शूरोंसे उनके बल करके और योगिजनोंसे उनके ज्ञान करके भी टूटना बड़ी कठिन है ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ६१ ॥ क्योंकि-करेहुए उपकारको न जाननेवाले भी हमारे ऊपर अतिश्रेष्ठ तुमने यह जो अनूपम मित्रता करी है तिस का पलटा यद्यपि हमसे कभी नहीं होसकेगा तथापि वह मित्रता अब भी वैसी ही है, कम नहीं होती है, इससे प्रतीत होता है कि यह स्नेहपाश ईश्वरका ही रचा हुआ है ॥६२॥ हे भैया नन्द ! हम पहिले बन्दीघरमें थे तब असमर्थ होनेके कारण तुम्हारा कुछ भी प्रिय कार्य नहीं करा अब तो लक्ष्मीके मदसे अन्ध नेत्रवाले हुए

हि । अधुना श्रीमदांधाक्षा न पश्याम पुरः सतः ॥ ६३ ॥ मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद । स्वजनानुत बन्धून्वा न पश्यति यथांऽधदृक् ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः । रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ॥ ६५ ॥ नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविंदरामयोः । अद्य श्व इति मासांस्त्रीन् यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥६६॥ ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबांधवः । परार्ध्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥ ६७ ॥ वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः । दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥ ६८ ॥ नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविंदचरणांबुजे । मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥ ६९ ॥ बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः । वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥ जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् । यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भाग० म० दश० उ० तीर्थयात्रावर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

हम, आगे विद्यमान भी तुम्हें नहीं देखते हैं ॥ ६३ ॥ हे सन्मान देनेवाले ! कल्याण की इच्छा करनेवाले पुरुषको, राज्यलक्ष्मी ही प्राप्त न होय, क्योंकि इसके द्वारा अन्धा (विवेकहीन) हुआ वह पुरुष, अपने आश्रित पुरुषोंको बान्धवोंको भी नहीं देखता है (उनका उपकार नहीं करता है) ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! प्रेमकी अधिकतासे गद्गदचित्त हुए वह वसुदेवजी, नन्दजीकी करी हुई पुत्रोंको लाड करना आदि मित्रताको स्मरण करते हुए नेत्रोंमें आँसू लाकर रोने लगे ॥ ६५ ॥ वह नन्दराजा तो सखा वसुदेवजीके और बलराम कृष्णके प्रेमसे उनका प्रिय करनेके निमित्त, तीन मासपर्यन्त तहाँ ही रहे, वह प्रातःकाल में चलनेको उद्यत हुए तो आज ही दुपहरको चलेजाना और दुपहरको जानेको उद्यत हुए तो कल चले जाना इसप्रकार यादवोंने उनको सत्कारके साथ रोक रक्खा था ॥ ६६ ॥ तदनन्तर, वसुदेव, उग्रसेन, कृष्ण और बलराम आदिकों करके बहुमूल्यके आभूषण, रेशमी वस्त्र और अनेकों प्रकारके पात्र आदि देकर गोपों सहित तृप्त करे हुए और साथमें बहुतसी सेना देकर भेजे हुए वह नन्दजी, उनके दिये हुए उस सब पारितोषिक (बकसीस) को लेकर अपने छकड़े आदि सामान सहित चलदिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ उस समय श्रीकृष्णजीके चरण कमलोंमें लगे हुए चित्तको फिर तहाँसे पीछेको हटानेमें असमर्थ और संसारसे विरक्त हुए नन्दजी, गोप और गोपियें, यह सब ही, अपने गोकुलमें जाकर निरन्तर भगवान्‌की समीपता जहाँ रहती है ऐसी मथुरामें ही जारहे ॥ ६९ ॥ इस प्रकार सकल बन्धुओंके अपने २ स्थानको चले जानेपर, कृष्ण ही जिनके देवता है ऐसे वह यादव, वर्षा ऋतुको समीप आया जानकर, श्रीकृष्णजीकी आज्ञासे फिर द्वारकाको चलेगये ७० तदनन्तर उन्होंने, तहाँके लोकोंको तीर्थयात्रामें होनेवाला वसुदेवजीके यज्ञका बड़ा भारी उत्साह और सम्बन्धी पुरुषोंका दर्शन आदि जो कुछ वृत्तान्त हुआ था सो सब वर्णन कर सुनाया ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें चतुरशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८४ ॥ छ छ छ छ

श्रीबादरायणिरुवाच । अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ । वसुदेवोभिनंद्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥ १ ॥ मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् । तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥२॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन । जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥ ३ ॥ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा । स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥ एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज । आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यज: ॥ ५॥ प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः । पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद् द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ॥ ६ ॥ कांतिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् । यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमे-

---

अब आगे पचासीवें अध्यायमें, वसुदेवजीने, बलराम कृष्ण पुत्रोंकी प्रार्थना करी तब उन्होंने उन पिताको ज्ञान और देवकी माताको, पहिले मरणको प्राप्त हुए पुत्र लाकर दिये यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! तदनन्तर एक समय वसुदेवजी, अपने समीप आकर चरणोंमें वन्दना करने वाले तिन बलराम कृष्ण पुत्रोंको, प्रीतिके साथ आशीर्वादोंसे प्रशंसा करके कहने लगे ॥ १ ॥ वह, पुत्रोंके परमेश्वरपनेको सूचित करने वाला ऋषियोंका भाषण सुनकर, उनके देखेहुए और सुनेहुए पराक्रमोंसे 'यह ईश्वर हैं, ऐसा विश्वास करके बलराम कृष्णको सम्बोधन करके कहने लगे॥२॥वसुदेवजी कहने लगे कि-हे कृष्ण! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे सङ्कर्षण ! हे सनातन ! तुम दोनोंको, इस जगत् के साक्षात् स्वरूपभूत कारण जो प्रकृति पुरुष और उनके भी कारणरूप परमेश्वर तुम हो, ऐसा मैं जानता हूँ ॥ ३ ॥ जिस स्वरूपमें, जिस कर्त्तासे, जिस साधन करके, जिससे, जिसके सम्बन्धका, जिसके निमित्त, जो २ जैसा, जब यह जगत् उत्पन्न होता है वह भोगने योग्य प्रकृतिके और भोक्ता पुरुषके भी ईश्वर भगवान तुम ही हो ॥४॥ हे अधोक्षज ! हे आत्मस्वरूप ! अपने ही उत्पन्न करे हुए इस देव मनुष्यादिरूप नाना प्रकारके जगत्में तुम ही अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके स्वयं जन्मादि विकार रहित होकर भी, क्रियाशक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप जीव होकर इसको धारण और पोषण करते हो ॥ ५ ॥ जगत्को उत्पन्न करने वाले प्राणादिकोंकी जो शक्तियें हैं वह'उन प्राणादिकोंकी पराधीनता होनेके कारण'उन प्राणादिकोंके परम कारण ईश्वरकी ही हैं अर्थात् जैसे लक्ष्य (निशाने) को वेधने की शक्ति बाणकी है ऐसी प्रतीत होती है परन्तु वह बाण, परतन्त्र हैं इस कारण वह शक्ति उनकी नहीं है किन्तु पुरुषकी है तैसे ही समझना, उन प्राणादिकोंके अचेतन और ईश्वरके चेतन होनेके कारण, अचेतनका चेतनके वशमें होना योग्य है, जैसे वायुकी शक्तिसे तृणादिकोंका आना जाना होता है परन्तु उन तृणोंकी वह शक्ति नहीं है अथवा जैसे पुरुषकी शक्तिसे बाणोंमें वेग उत्पन्न होता है परंतु वह वेग बाणोंकी शक्ति नहीं है तैसे ही प्राणादिकोंकी चेष्टारूपजो शक्तियें हैं वह उनकी नहीं हैं किन्तु एक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी हैं॥ ६ ॥ चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निकी तेज, सूर्यकी प्रभा, तारागण और बिजलीका चमकना, पर्वतोंकी

वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥ ७ ॥ तर्पणं प्राणनमपां देवत्वं ताश्च तद्रसः । ओजः सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥ ८ ॥ दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः । नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः ॥ ९ ॥ इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः । अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥ १० ॥ भूतानामसि भूतादिरिंद्रियाणां च तैजसः । वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् । यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥ १२ ॥ सत्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः । त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥ १३ ॥ तस्मान्न संत्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः । त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदा व्यावहारिकः ॥ १४ ॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः । गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरंतीह कर्मभिः ॥ १५ ॥ यदृच्छयानृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् । स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥ १६ ॥ असावहं

स्थिरता और पृथ्वीका प्राणियोंका आधाररूप होनेका स्वभाव और गन्धगुण यह सब वास्तवमें तुम्हारी ही शक्ति हैं ॥ ७ ॥ हे ईश्वर ! जलकी तृप्त करनेकी शक्ति, जीवित रखनेकी शक्ति, देवपना, जलपना, और उनका रस यह सब तुम ही हो, तैसे ही वायुकी जो इन्द्रियशक्ति, अन्तःकरणशक्ति, शरीरशक्ति, शरीरव्यापार और गति यह सब तुम्हारी ही शक्ति, हैं ॥ ८ ॥ दिशाओंका अवकाश और दिशा तुम हो, आकाश और आकाशका आश्रय शब्द तन्मात्रा, परा पश्यन्ती ॐकार (मध्यमा) और वर्णपद आदिकोंको पृथक् करने वाली वैखरी तुम ही हो ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंकी जो विषयोंकी प्रकाशक शक्ति, और उनके जो अधिष्ठात्री देवता और उनकी जो प्रेरणा करनेकी शक्ति सो तुम ही हो, तैसे ही बुद्धिकी जो निश्चयरूप शक्ति, और अन्तःकरणकी जो अनुसन्धान (विचार) शक्ति सो तुम ही हो ॥ १० ॥ पञ्चमहाभूतोंका कारण तामस अहंकार; इंद्रियोंका कारण राजस अहंकार, इंद्रियोंके देवताओंका कारण सात्विक अहंकार और जीवोंके संसारका कारण माया यह सब तुम ही हो ॥ ११ ॥ जैसे नाशवान् घड़े कुण्डल आदि पदार्थोंमें मृत्तिका सुवर्ण आदि पदार्थमात्र अविनाशी हैं तैसे ही यहाँ के सकल नाशवान् पदार्थोंमें जो शेष रहने वाला तत्व है सो तुम ही हो ॥ १२ ॥ सत्व, रज और तम यह तीन गुण और उन का परिणामरूप जो महत्तत्व आदि पदार्थ वह साक्षात् परब्रह्मरूप तुम्हारे विषैं योगमायासे कल्पना करेहुए हैं ॥ १३ ॥ इस कारण यह पदार्थ वास्तवमें तुमसे निराले नहीं हैं, जिस समय यह पदार्थ तुम्हारे स्वरूपमें मायासे कल्पित हुए प्रतीत होते हैं उस समय ही तुम इनमें कारणरूपसे पुरेहुए हो ऐसा भासता है, नहीं तो निर्विकल्परूपसे तुम ही शेष रहते हो ॥ १४ ॥ इस गुणोंके प्रवाहरूप संसारमें तुम सर्वात्माकी प्रपञ्चमें की सूक्ष्मगतिको न जानने वाले अज्ञानी पुरुष, देहाभिमानसे करेहुए कर्मोंके द्वारा इस लोकमें जन्ममरणरूप संसार पाते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार उनके तत्वका निरूपण करके वह प्राप्त नहीं हुए इस कारण शोक करते हैं कि-हे ईश्वर ! देवयोगसे इस लोकमें दुर्लभ और इंद्रियादि करके कुशल मनुष्य शरीरके

ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु । स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥ १७ ॥ युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरौ । भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह॥१८ तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविंदमापन्नसंसृतिभयापहमार्त्तबन्धो । एतावतालमलमिंद्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ॥ १९ ॥ सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै । नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमायाम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच । आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः । प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच । वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रान् समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ॥ २२ ॥ अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः । सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ॥ २३ ॥ आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो

प्राप्त होने पर भी तुम्हारी मायासे मोहित होकर अपने स्वार्थमें असावधान रहने वाले मेरा यह आयु व्यर्थ ही निकल गया है ॥ १६ ॥ देहके विषैं यह मैं हूँ, ऐसे और इस देहके सम्बन्धसे होनेवाले, पुत्रादिकोंके विषयमें यह मेरे हैं इस प्रकारके अभिमानरूप स्नेहपाशसे तुम, इस सब ही जगत्को मोहित कर देते हो ॥ १७ ॥ इससे तुम दोनों हमारे पुत्र नहीं हो किन्तु साक्षात् प्रधान पुरुषोंके ईश्वर होकर पृथ्वीके भारभूत क्षत्रियोंका संहार करनेके निमित्त अवतीर्ण हुए हो, ऐसाही तुमने स्वयं भी पहिले मुझसे कहा है ॥ १८ ॥ इस कारण हे दीनबन्धो ! शरणागतोंके संसाररूप भयको नष्ट करने वाले तुम्हारे चरण कमलकी आज मैं शरण हुआ हूँ, अब तक जो कुछ विषयोंमें आसक्ति हुई इतनी हीसे भरपाया, क्यों कि-जिस विषयाशक्तिसे मुझे, शरीरके ऊपर आत्मबुद्धि और तुम परमेश्वरके ऊपर पुत्रबुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! तुमने मुझसे सूतिकागृह (सोवर) में पहिले ऐसा कहा था कि-जब तुम दोनों ही सुतपा और पृश्नि नामवाले थे तैसे ही जब कश्यप और अदिति थे तथा अब वसुदेव और देवकी हो, इन तीनों समय तुमसे जन्म रहित भी मैं, अपनी चलाई हुई धर्ममर्यादाकी रक्षा करके निमित्त अवतीर्ण हुआ हूँ इस कारण हे भगवन् ! आकाशकी समान असङ्ग भी तुम, नाना प्रकारके अवतार धारण करते हो और छोड़देते हो, हे वेदमें वर्णन करेहुए प्रभो ! तुम सर्वव्यापककी विभूतिरूप मायाको कौन पुरुष जानता है ? कोई नहीं जानता ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार यादवोंमें श्रेष्ठ और विनयसे नम्र भगवान्ने, पिताका भाषण सुनकर, हँसते हुए मधुरवाणीसे कहा ॥ २१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे तात ! तुमने जो हम पुत्रोंको, उद्देश करके सकल तत्त्वोंका उत्तम प्रकारसे निरूपण करा है इस कारण यह तुम्हारा कथन यथार्थ है ऐसा हम मानते हैं ॥ २२ ॥ हे यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ तात ! मैं, तुम, यह बलराम और यह द्वारकावासी सब पुरुष, अधिक क्या कहूँ चराचर सब ही प्राणी, मेरी समान (परब्रह्मस्वरूप) ही हैं ऐसा तुम विचार बुद्धिसे जानो ॥ २३ ॥ जैसे-आकाश, वायु, तेज, जल और भूमि यह पञ्चमहाभूत अपनेसे उत्पन्न हुए घट आदि कार्योंमें उपा-

गुणैः । आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ॥२४॥ खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् । आविस्तिरोऽल्पभूर्यं को नानात्वं यात्यसावपि ॥२५॥ श्रीशुक उवाच । एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः । श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ॥ २६ ॥ अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता । श्रुत्वानीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ॥ २७ ॥ कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् । स्मरंती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ॥ २८ ॥ देवक्युवाच । राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर । वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ॥२९॥ कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् । भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥ ३० ॥ यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः । भवंति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥३१ चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल चोदितौ । आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥ ३२ ॥ तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ । भोजराजहतान्पुत्रान् कामये

धियोंके धर्मोंसे प्रकट होना, नाशपना, थोड़ापना, बहुतपना आदि, धर्मोंका प्राप्तहुएसे प्रतीत होते हैं तैसेही यह आत्मा भी अपने उत्पन्न करे हुए गुणोंके परिणामरूप महत् आदि कारणोंसे रचे हुए देव मनुष्य आदि शरीरमें, उपाधिके धर्मोंसे मनुष्य आदिकोंके विषै ज्ञानके प्रकट होनेसे, वृक्षादिकोंमें ज्ञानके गुप्त होनेसे, मच्छर आदि शरीरोंमें छोटेपनसे और हाथी आदिके शरीरोंमें बड़ेपनसे नाना प्रकारका भासता है, परन्तु यह वास्तवमें तैसा नहीं है किन्तु-यह आत्मा एक होने पर भी अनेक रूपोंसे, स्वयम्प्रकाश होने पर भी दृश्यरूपसे, नित्य होने पर भी अनित्यरूपसे, अनन्य होने पर भी अन्यभावसे, निर्गुण होने पर भी सगुणरूपसे और व्यापक होने पर भी परिच्छिन्नरूपसे भासता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्के बोध कराये हुए वह वसुदेवजी, उस आत्माकी एकताको सुन कर भेदबुद्धिरहित और सन्तुष्टचित्त होते हुए मौन ही रहे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर तहाँ सकल देवतारूप देवकी, मेरे बलरामकृष्ण पुत्रोंने, सान्दीपनि गुरुका मरणको प्राप्त हुआ पुत्र जीवित करके लादिया, यह सुन कर विस्मय में हुई और कंसके मारे हुए अपने पुत्रोंका स्मरण करके शोकसे नेत्रोंमें आँसू भरती हुई, श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंको संबोधन करकेदीनताके साथ कहनेलगी२७।२८ देवकीने कहा कि-हे अचिंत्यस्वरूप बलराम ! हे बलराम ! हे योगेश्वरेश्वर कृष्ण ! तुम दोनों, विश्वरचयिता प्रजापतियोंके ईश्वर आदिपुरुष हो ऐसा मैं जानती हूँ२९ तुम दोनों, कालके प्रभावसे, जिनके विवेक धैर्य आदि नष्ट होगये हैं ऐसे शास्त्रकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले और भूमिके भाररूप राजाओंका नाश करनेके निमित्त मेरे गर्भमें अवतीर्ण हुए हो ॥ ३० ॥ हे विश्वात्मन् ! हे आद्य ! जिन तुम्हारे पुरुषरूप अंशके मायारूप अंशसे उत्पन्न हुए गुणोंके अंशसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं ऐसा प्रसिद्ध है, तिन तुम्हारी मैं आज शरण आई हूँ ॥ ३१ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वरो ! मरणको प्राप्त होकर बहुत वर्ष बीते हुए पुत्रको लाकर देनेके निमित्त सान्दीपनि गुरुके आज्ञा दिये हुए तुम, यमराजके यहाँसे उसको लाये और

द्रष्टुमाहृतान् ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच । एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत । सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ॥ ३४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्यराड् विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः । तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ॥ ३५ ॥ तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः । दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृन्द आब्रह्मपुनद्यदंबु ह ॥ ३६ ॥ समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः । तांबूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ॥ ३७ ॥ स इन्द्रसेनो भगवत्पदांबुजं बिभ्रन्मुहुः प्रेमविभिन्नया धिया । उवाच ह्यानन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ॥ ३८ ॥ बलिरुवाच ॥ नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे । सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ ३९ ॥ दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् । रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ॥ ४० ॥ दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याध्रचारणाः ।

गुरुको दक्षिणा दी, ऐसा प्रसिद्ध है, तिसी प्रकार मेरे भी मनोरथको तुम पूरा करो यदि कंसके मारे हुए मेरे पुत्रोंको तुम लाओ तो उनको देखनेकी मैं इच्छा करती हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार माताके प्रार्थना करेहुए उन बलरामकृष्णने, अपनी अचिन्त्यशक्ति योगमायाका आश्रय करके सुतल में प्रवेश करा ॥ ३४ ॥ जगत्के आत्मा और परमदेवता तथा अपने परमइष्टदेव, पातालमें प्रवेश करनेवाले उन दोनों बलरामकृष्ण बन्धुओंको देखकर, उनके दर्शन के आनन्दसे आर्द्रचित्त हुए राजा बलिने, तत्काल परिवारसहित उठ कर उनको नमस्कार करा ॥ ३५ ॥ और इन महात्मा बलरामकृष्णको प्रीतिके साथ श्रेष्ठ आसन समर्पण करके, उसपर बैठे हुए उनके, जिसके धोवनका जल ब्रह्माजी पर्यंत सकल जगत्को पवित्र करता है तिस चरणको धोकर वह जल, परिवारसहित अपने मस्तकःपर धारण करा ॥ ३६ ॥ और उन बलरामकृष्णका उत्तम वस्त्र, भूषण, लेपन ताम्बूल, दीपक और अमृतकी समान भोजनके द्वारा तैसे ही अपने पुत्र पौत्रादि कुल, धन और देहको समर्पण करके पूजन करा ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर वह राजा बलि, प्रेमसे पिघली हुई आनो बुद्धिसे भगवान्के चरणकमलको धारण करता हुआ, जिसके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे भरआये हैं, जिसके शरीरपर रोमांच खड़े होगये हैं और जिसका कण्ठ गद्गद होगया है ऐसा होकर कहने लगा ॥ ३८ ॥ बलिने कहा कि–हे देव ! फणके एक भागमें जगत्को धारण करनेवाले शेषरूप तुम बलरामजीको नमस्कार हो, और जगत्को उत्पन्न करनेवाले तुम कृष्णको नमस्कार हो; सांख्यशास्त्र और योगशास्त्रको चलाने वाले ब्रह्मरूप और परमात्मा ऐसे एकरूप तुम दोनोंको नमस्कार हो ॥ ३९ ॥ जो, योगेश्वरोंके भी दृष्टि न पड़ने वाले तुम, अपनी इच्छासे रजोगुण और तमोगुणके स्वभावों करके युक्त ऐसे हमको दृष्टि पड़े हो, तिससे तुम्हारा दर्शन बहुतसे जीवोंको दुर्लभ होकर भी तुम्हारी कृपासे किन्हीं जीवोंको सुलभ होजाता है, यह निश्चय करा हुआ है ॥ ४० ॥ दैत्य दानव आदि हम और गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथोंके

यक्षरक्षःपिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ॥ ४१ ॥ विशुद्धसत्त्वधाम्न्यद्धा त्वयि शास्त्रशरीरिणि । नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ॥ ४२ ॥ केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः । न तथा सत्त्वसंरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः ॥ ४३ ॥ इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर । न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ४४ तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविंदधिषणान्यगृहांधकूपात् । निष्क्रम्य विश्वशरणांघ्र्युपलब्धवृत्तिः शांतो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ॥ ४५ ॥ शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो । पुमान् यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ॥ ४६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे । देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ॥ ४७ ॥ तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा । हिरण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥ ४८ ॥ देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः । सा तान् शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥ ४९ ॥ इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये । ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यंति

स्वामी, इत्यादि हमारी समान दूसरे भी जो कितने ही प्राणी हैं वह साक्षात् शुद्ध सत्त्वगुणी और वेदमूर्त्ति तुमसे निरन्तर वैरभाव रखते हैं, उनमेंसे कितने ही (शिशुपाल आदि) परम वैरभावकी भक्तिसे और कितने ही (गोपी आदि) काम भक्तिसे तुम्हारे स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, तिस प्रकार सत्त्वगुणी देवता भी तुम्हारे स्वरूपको नहीं प्राप्त हुए ॥ ४१ ॥ ४३ ॥ हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! प्रायः योगेश्वर भी तुम्हारी योगमायाको, 'यह ऐसे स्वरूप वाली वा इस प्रकारकी है' यह नहीं जानते हैं फिर हम तो जान ही क्या सकते हैं ? ॥ ४४ ॥ हे देव ! निष्काम पुरुषोंके भी खोजने योग्य, तुम्हारे चरणकमलके आश्रयसे भिन्न घररूप अन्धकारयुक्त कूपमें से निकल कर मैं शान्तभावसे, जगत्की रक्षा करने वाले वृक्षोंके नीचे अपने आप गिरे हुए फल आदिसे निर्वाह करता हुआ जैसे इकला ही विचरूँ अथवा सबोंके मित्र साधुओंके साथ विचरूँ तैसा तुम मेरे ऊपर अनुग्रह करो ॥ ४५ ॥ हे प्रभो ! हे सकल जीवोंके ईश्वर ! जिस तुम्हारे कहे हुए आचरणको करने वाला पुरुष, विधिनिषेध रूप बन्धनसे मुक्त (जीवन्मुक्त) होता है वह अपना दासभाव तुम हमसे कहो और हमें निष्पाप करो ॥ ४६ ॥ इस प्रकार प्रार्थना करे हुए श्रीभगवान् कहने लगे कि-स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचि नाम वाले प्रजापतिकी ऊर्णा (कला) नाम वाली स्त्रीके विषैं छः पुत्र देवता उत्पन्न हुए थे, वह, कन्या सरस्वतीके साथ सङ्गमके निमित्त उद्यत हुए ब्रह्माजीको देख कर हँसे ॥ ४७ ॥ उस परिहासरूप दुष्कर्मसे (ब्रह्माजीके शापसे) वह तत्काल दैत्ययोनिको प्राप्त होकर हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए थे, यद्यपि हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद आदि कहे हैं तथापि इस कथन से वह भी उसके पुत्र हुए थे, ऐसा जानना, तहाँसे वह योगमाया करके देवकीके उदरमें लेजाने पर तहाँसे वह जन्म लेते ही कंस करके मारे गये, हे बलि राजन् ! अब वह देवकी उन अपने मरेहुए पुत्रोंका शोक कररही है वह छहों तुम्हारे समीप हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ हम इनको इस स्थानसे माताका शोक दूर करनेके निमित्त लिये

विज्वराः ॥ ५० ॥ स्मरोद्गीथः परिष्वंग पतंगः क्षुद्रभृद् घृणी । षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥ ५१ ॥ इत्युक्त्वा तान्समादाय इंद्रसेनेन पूजितौ । पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥५२॥ तान्दृष्ट्वा बालकान् देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी । परिष्वज्यांकमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥ ५३ ॥ अपाययत् स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता । मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्त्तते ॥ ५४ ॥ पीत्वामृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः । नारायणांगसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥ ५५ ॥ ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् । मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धाम दिवौकसाम् ॥ ५६ ॥ तद् दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् । मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥ ५७ ॥ एवं विधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनंतानि भारत ॥ ५८ ॥ सूत उवाच ॥ य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः । जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० द० उ० मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

जाते हैं, माताका शोक दूर होने पर यह शापसे (दैत्ययोनिसे) छूट कर सुखी होते हुए देवलोकको गमन करेंगे ॥ ५० ॥ स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणी इन नामों वाले यह छः पुत्र मेरे अनुग्रहसे फिर सद्गतिको पावेंगे ॥५१॥ ऐसा कह कर उन पुत्रोंको लेकर, राजाबलिके पूजा करे हुए उन बलरामकृष्णने फिर द्वारकामें आकर माताको वह पुत्र समर्पण करे ॥ ५२ ॥ उन बालकोंको देखते ही पुत्रोंके स्नेहसे स्तनोंमेसे दूध टपकाती वह देवकी,उनको आलिङ्गन करके और गोदीमें बैठा कर बारम्बार उनका मस्तक चूमने लगी ॥ ५३ ॥ तदनन्तर, जिससे सृष्टि चलती है उस, विष्णुकी मायासे मोहित होनेके कारण सन्तुष्ट और पुत्रोंके स्पर्शसे आनन्दित हुई तिस देवकीने, उन पुत्रोंको स्तनपान कराया ५४ वह पुत्रभी श्रीकृष्णजीके पीनेसे×शेष रहेहुए तिस देवकीकेअमृतसमान दूधको पीकर,श्रीकृष्णजीके अङ्गके स्पर्शसे जिनको,हम देवता हैं ऐसा ज्ञान होगया है ऐसे होकर वह, श्रीकृष्ण, देवकी, वसुदेव और बलरामजीको नमस्कार करके सब लोकोंके देखते हुए देवताओंके स्थान स्वर्गको चले गये ॥५५॥५६॥ हे राजन् ! उन मरेहुए पुत्रोंका आना और जाना देखकर अत्यन्त विस्मयमें हुई देवी देवकीने, यह अहन्ताममतारूप रची हुई श्रीकृष्णजीकी माया ही है ऐसा जाना ॥ ५७ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार के अनन्त शक्ति परमात्मा श्रीकृष्णजीके अद्भुत चरित्र अनन्त हैं ॥ ५८ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनकादि ऋषियो ! शुकदेवजीके वर्णन करे हुए, जगत्के पाप नष्ट करनेवाले और भगवद्भक्तोंके कानोंको उत्तम आनन्द देने वाले इस अमृतकीर्त्ति भगवान्के चरित्रको, जो मनुष्य भगवान्की ओरको अपना चित्त लगाकर श्रवण करेगा वा दूसरोंको सुनावेगा वह मनुष्य, उन भगवान्के निर्भयस्थानको पावेगा ५९

× सूतिकाघरमें श्रीकृष्ण साधारण बालक बने ऐसा कहा है,इसकारण उस समय भगवान्ने देवकीका दूधपिया ऐसा तहाँ यद्यपि कहा नहीं है तथापि इस कथनसे तैसा समझना

राजोवाच ॥ ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः । यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः । गतः प्रभासमश्रुणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥ २ ॥ दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे । तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥ ३ ॥ तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः । पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥ ४ ॥ एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् । श्रद्धयोपाहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ॥ ५ ॥ सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् । प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ॥ ६ ॥ साऽपि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् । हसन्ती व्रीडितापांगी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ ७ ॥ तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः । न लेभे शं भ्रमच्चित्तः कामेनातिबलीयसा ॥ ८ ॥ महत्यां देवयात्रायां

अब आगे छयालीवें अध्यायमें अर्जुनने, दाम्भिकपनेसे सुभद्राका हरण करा और श्रीकृष्णजीने मिथिला नगरीमें जाकर राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव ब्राह्मणको आनन्दित करा यह कथा वर्णन करी है॥ *॥ जैसे देवकीको मरेहुए पुत्रोंका मिलना कठिन था तैसे ही अर्जुनको सुभद्राका मिलना; बलदेवजीके प्रतिकूल होनेके कारण दुर्लभ था,ऐसा माननेवाला राजा प्रसङ्गसे प्रश्न करता है कि-हे शुकदेवजी! बलराम कृष्णकी बहिन जो मेरी दादी थी उस सुभद्राको अर्जुनने, जिस प्रकार वरा हो वह विवाहकी रीति हम आपसे सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! जय पानेमें समर्थ अर्जुन, तीर्थयात्राके निमित्तसे पृथ्वी पर विचरतेमें, प्रभास तीर्थ पर जो पहुँचे, तहाँ उन्होंने अपने मामा (वसुदेव) की कन्या जो सुभद्रा तिसको बलराम, दुर्योधनको देंगे और अन्य वसुदेव आदि उसको दुर्योधनके निमित्त देनेकी इच्छा नहीं करते हैं ऐसा सुना तब उसका हरण करनेकी इच्छा करनेवाले वह अर्जुन, बलरामजीको धोखा देनेके निमित्त, अतिपूजनीय त्रिदण्डी यतिका वेष धारण करके द्वारकामें गये ॥ २ ॥ ३ ॥ और अपने प्रयोजनको साधनेवाले वह अर्जुन, तहाँ वर्षाकालके चार मास पर्यन्त रहे तब कपटवेषको न जाननेवाले पुरवासी लोकोंने और बलरामजीने भी उनका बारंबार सत्कार करा ॥४॥ एक समय बलरामजीने, उस अर्जुनको, अतिथिरूपसे निमंत्रण करके और घर लाकर श्रद्धाके साथ अन्न परोसा तब उसने वह भोजन करा ॥५॥ तहाँ उन्होंने वीर पुरुषोंके मनको हरनेवाली और तरुण अवस्थामें आई हुई एक बड़ी कन्या देखी, तिस करके प्रीतिसे प्रफुल्लित नेत्र हुए अर्जुनने उसके ऊपर रतिसुखकी इच्छासे क्षोभित हुआ अपना मन लगाया ॥ ६ ॥ और वह सुभद्रा भी स्त्रियोंके मनको प्रिय लगनेवाले तिस अर्जुनको देखकर उनमें ही मन और दृष्टि लगाकर लज्जायुक्त नेत्र कटाक्षोंसे उनकी ओरको देखकर हँसती हुई, यही मेरे पति हों ऐसी इच्छा करने लगी ॥ ७ ॥ तब केवल उस कन्याका ध्यान करते हुए, उसको हरण करनेका अवसर मिलनेकी इच्छा करनेवाले वह अर्जुन, अति बलवान् कामदेवसे चित्तके भ्रममें पड़ जानेके कारण बलरामजीके करे हुए सत्कारसे भी

रथस्थां दुर्गनिर्गताम् । अज्ञारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥ ९ ॥ रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुंधतो भटान् । विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव १० तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः । गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥ ११ ॥ प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः । महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कृष्णस्यासीद् द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः । कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शांतः कविरलंपटः ॥ १३ ॥ स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी । अनीहयागताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥ १४ ॥ यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत । नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥ १५ ॥ तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः । मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥ १६ ॥ तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् । आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ

कुछ सुखीसे नहीं हुए ॥ ८ ॥ तदनन्तर एक समय उस कन्याके माता पिताओंने (देवकी वसुदेवने) और श्रीकृष्णजीने जिनको अनुमिति दी है ऐसे उन अर्जुनने, बड़ीभारी देवयात्राके निमित्तसे रथ पर बैठकर द्वारकासे बाहर निकली हुई उस कन्याको रथ पर बैठाल कर, अपने गांडीव धनुष धारण करके और चारों ओरसे रोकनेवाले शत्रुओंको भगाकर उन यादवोंके हाहाकार करते हुए, जैसे सिंह अपना भाग हरण करता है तैसे उन्होंने उस सुभद्राका हरण करा ॥ ९ ॥ १० ॥ यह सुन कर, जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र खलबलाता है तैसे बलरामजी खलबला उठे, परंतु श्रीकृष्णजीने तथा दूसरे भी यादवोंने चरण पकड़कर उनको समझाया तब वह शान्त हुए ११ और तदनन्तर हर्षयुक्त हुए उन बलरामजीने, उन सुभद्रा और अर्जुनरूपी वधूवरोंको प्रीतिके साथ देने योग्य बहुतसे पदार्थ तैसे ही बहुमूल्यके आभूषण धारण करे हुए हाथी, रथ, घोड़े, सेवक और दासियें, यह सब भेज दिये, उस समय यादव और पाण्डव सब ही प्रीतिसे प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ अब भक्तवात्सलतायुक्त भगवान् का दूसरा चरित्र कहते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! श्रुतदेवनामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीकृष्णजीका भक्त था, वह श्रीकृष्णजीकी अनन्यभक्तिसे पूर्णमनोरथ, शान्त, विषयासक्तिरहित और विचारवान् था १३ वह विदेह देशमेंकी मिथिलानगरीमें रहता था, वह गृहस्थाश्रमी होकर भी उद्योगके बिना जो अन्नादि मिल जाय उससे ही अपना भोजनादि सब निर्वाह चलाता था १४ उसके प्रारब्धसे उसको प्रतिदिन शरीर आदिके निर्वाहकी पूर्त्तिके योग्य ही अन्न आदि प्राप्त होता था, खटपट करने पर भी अधिक नहीं मिलता था, इस कारण जितना प्राप्त होय उतनेसे ही संतुष्ट रहकर वह अपने नित्य नैमित्तिक कर्मोंको पूरे विधि विधानसे करता था ॥ १५ ॥ हे राजन् ! उस देशका स्वामी बहुलाश्वनामसे प्रसिद्ध एक राजा था, वह जनकके वंशमें उत्पन्न हुआ था और देह आदिमें अभिमानरहित तथा श्रुतदेवकी समान ही भगवद्भक्त था, इस कारण वह दोनों ही भगवान्‌को प्रिय थे ॥ १६ ॥ उनके ऊपर प्रसन्न हुए भगवान् प्रभु श्रीकृष्णजी, एक समय दारुकके लाये हुए रथ पर बैठकर ऋषियोंके साथ विदेहदेशमें गये ॥ १७ ॥ वह ऋषि नारद,

प्रभुः ॥ १७ ॥ नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः । अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ॥१८॥ तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप । उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ॥ १९ ॥ आनर्तधन्वकुरुजांगलकंकमत्स्यपांचालकुंतिमधुकैकयकोसलार्णाः । अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्षणं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ॥ २० ॥ तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् । शृण्वन् दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ॥ २१ ॥ तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप । अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः । कैर्धृतांजलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीन् ॥ २३ ॥ स्वानुग्रहाय सम्प्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम् । मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥ २४ ॥ न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः । मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहतांजली ॥ २५ ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया । उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः २६

वामदेव, अत्रि, व्यास, परशुराम, असित, अरुणि, मैं (शुकदेव) बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदि थे ॥ १८ ॥ तब विदेहदेशमें जाते समय मार्गमें जहाँ तहाँ के स्थानों पर पहुँचे हुए तिन भगवान्का, हाथमें पूजाकी सामग्री लेनेवाले पुरवासी और देशवासी लोगोंने, जैसे गुरुशुक्रादि ग्रहोंसहित उदयको प्राप्त हुए सूर्य का पूजन करते हैं तैसे पूजन करा ॥ १९ ॥ और हे राजन् ! उस समय आनर्त, धन्व, कुरु, जांगल, कंक, मत्स्य, पाञ्चाल, कुंति, मधु कैकय, कोसल और अर्ण देशोंमें रहनेवाले लोकोंने, तथा दूसरे भी देशों के पुरुष और स्त्रियोंने; अपनी दृष्टियोंसे उदारहास्य और स्नेहके साथ देखनेवाले तिन श्रीकृष्णजीके मुखकमल को आदरके साथ देखा ॥ २० ॥ तब अपने दर्शनसे जिनका अज्ञान नष्ट हुआ है ऐसे उन लोकोंको, कृपादृष्टिसे अभय और तत्त्वज्ञान देनेवाले वह त्रिलोकीके पूजनीय भगवान् श्रीकृष्णजी, दशों ही दिशाओंमें व्यापे हुए देवता और मनुष्योंसे गान करे हुए, शुद्ध और पापनाशक अपने यशको सुनाते हुए धीरे २ विदेह देशमें जा पहुँचे ॥२१॥ हे राजन् ! तब वह विदेह देशमेंके पुरवासी और देशवासी लोग, श्रीकृष्णजीको आया हुआ सुनकर हर्षित हो और हाथमें पूजाकी सामग्री लेकर उन भगवान्के सन्मुख गये ॥ २२ ॥ और उन उत्तमकीर्त्ति भगवान्को तथा पहिले ही जिनके नाम सुने थे ऐसे नारद वामदेव आदि ऋषियोंको देखकर जिनके नेत्र और हृदय प्रफुल्लित हुये हैं ऐसे उन पुरुषोंने, उनको अपने मस्तक पर हाथ जोड़ कर प्रणाम करा ॥ २३ ॥ अपने ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त वह जगद्गुरु आये हैं ऐसा माननेवाले वह बहुलाश्व राजा और श्रुतदेव ब्राह्मण यह दोनों भगवान्के चरणों पर गिरे ॥ २४ ॥ और उस बहुलाश्व राजाने तथा श्रुतदेव ब्राह्मणने, ब्राह्मणों सहित उन श्रीकृष्णजीको एक साथ हाथ जोड़ कर अपने घर पूजा ग्रहण करनेके निमित्त आनेकी प्रार्थना करी ॥ २५ ॥ उन दोनोंकी प्रार्थनाको स्वीकार करके दोनोंका प्रिय करनेके निमित्त, उन दोनोंने ही यह मेरे घरसे दूसरेके घर जाते

श्रोतुमप्यसतां दूराज्जनकः स्वगृहागतान्। आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामनाः ॥ २७ ॥ प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः । नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥ २८ ॥ सकुटुंबो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् । गंधमाल्यांबराकल्पधूपदीपार्घ्यगोवृषैः ॥ २९ ॥ वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् । पादावंकगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो । अथ नस्त्वत्पदांभोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥ स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् । यदात्थैकांतभक्तान्मे नानंतः श्रीरजः प्रियः॥३२॥ को नु त्वच्चरणांभोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् । निष्किंचनानां शांतानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥ ३३ ॥ योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह । यशो वितेने तच्छांत्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥ ३४ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुंठमेधसे । नारायणाय ऋषये सुशांतं तप ईयुषे ॥ ३५ ॥ दिनानि कतिचिद्भूमन् गृहान्नो निवसद्विजैः । समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥ ३६ ॥ इत्युपामंत्रितो राज्ञा

है ऐसा जाननेमें न आये हुए वह भगवान् श्रीकृष्ण जी, ब्राह्मणों सहित दोरूप धारण करके दोनोंके घर गये ॥ २६ ॥ तब बढी हुई भक्तिसे हर्षितचित्त हुए और आनन्दके अश्रुओंसे जिसके नेत्र भर आये हैं ऐसे उस बहुलाश्व राजाने, दुराचारी पुरुषोंको जिनका नाम सुनना भी दूर है ऐसे परन्तु कृपा करके अपने घर आये हुए और अपने दिये हुए उत्तम आसनके ऊपर सुखसे बैठे हुए तिन ऋषियोंको प्रणाम करके और उनके चरण धोकर लोकोंको पवित्र करनेवाला वह चरणोंकी धोवनका जल, कुटुम्बसहित अपने मस्तक पर धारण करा और प्रभु की गन्ध, पुष्प, वस्त्र, अलङ्कार, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ और वृषभ अर्पण करके पूजा करी ॥ २७-२९ ॥ तदनन्तर उत्तम अन्नसे तृप्त हुए उन ब्राह्मणोंको, राजा मधुर वाणीसे प्रसन्न करता हुआ अपनी जंघा पर रक्खे हुए श्रीकृष्णजीके चरणको धीरे धीरे दबाता हुआ हर्षसे ऐसा कहने लगा ॥ ३० ॥ राजाने कहा कि-हे विभो ! तुम सब जीवोंके आत्मा, साक्षी और स्वप्रकाश हो, इसकारण तुम, अपने चरणकमल का स्मरण करनेवाले हमको दृष्टि पड़े हो ॥ ३१ ॥ अनन्य भक्तकी अपेक्षा मुझे बलराम भ्राता भी, लक्ष्मी स्त्री भी और ब्रह्मादेव पुत्र भी प्रिय नहीं है, ऐसा जो वचन तुमने कहा है, उसको सत्य करनेके निमित्त तुम हमारे दृष्टिगोचर हुए हो ॥ ३२ ॥ इससे यह वार्ता जानने वाला कौनसा पुरुष, तुम्हारे चरणकमलका त्याग करेगा ? जो तुम निष्किञ्चन और शान्त ऋषियोंको अपना स्वरूपपर्यन्त देते हो ॥ ३३ ॥ और जो तुम राजा यदुके वंशमें अवतार धारण करके इस संसारमें देवमनुष्यादि योनियोंके विषैं उत्पन्न होकर तीन तापोंको अनुभव करनेवाले जीवोंके, उन तीनों तापोंकी शान्ति होनेके निमित्त त्रिलोकीमें सब लोकोंका पाप दूर करनेवाले अपने यशको फैलाते हो ॥३४॥ ऐसे आप अकुण्ठबुद्धि, अतिशान्त, तप करनेवाले ऋषिरूप नारायण भगवान् श्रीकृष्णजीको नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ हे व्यापक प्रभो ! तुम कुछ दिनों पर्यन्त इन सब ऋषियोंसहित हमारे घर रहकर अपने चरणरजसे इस

भगवाँल्लोकभावनः । उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥ ३७ ॥ श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनको यथा । नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥३८ तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः । स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ॥ ३९ ॥ तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् । स्नापयाञ्चक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ॥ ४० ॥ फलार्हणोशीरशिवामृताम्भसा मृदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः । आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ॥ ४१ ॥ स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद् गृहान्धकूपे पतितस्य सङ्गमः । यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ॥ ४२ ॥ सूपविष्टान्कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः । सभार्यः स्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ॥ ४३ ॥ श्रुतदेव उवाच । नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः । यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ॥ ४४ ॥ यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया । सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥४५॥

निमि राजाके कुलको पवित्र करो ॥ ३६ ॥ इसप्रकार राजा बहुलाश्वके प्रार्थना करे हुए लोकपालक भगवान् श्रीकृष्णजी, मिथिलानगरीमेंके पुरुषोंका और स्त्रियों का कल्याण करते हुए कुछ दिनों पर्यन्त तहाँ ही रहे ॥३७॥ इधर श्रुतदेव ब्राह्मण भी जनक राजाकी समान,अपने घर आए हुए श्रीकृष्णजीको और ऋषियोंको नमस्कार करके अत्यन्त हर्षित हुआ और वस्त्रसे पवन करता हुआ नाचने लगा।३८ तदनन्तर लाये हुए कुशाके आसन और पिराल पर बैठाल कर तथा स्वागत प्रश्नसे उनका अभिनन्दन करके स्त्रीसहित उसने बड़े हर्षके साथ उनके चरणोंको धोया ॥ ३९ ॥ और उस महाभाग श्रुतदेवने घर तथा कुटुम्बसहित आप, उस जलसे स्नान करा तिससे और भगवान्के चरणके स्पर्श आदिसे वह अत्यन्त हर्षित हुआ और उसके सकल मनोरथ पूर्ण हुए ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसने, फल, गन्ध पुष्प आदि पूजाके पदार्थ, खसके बसाये हुए अमृतसमान मधुर जल, सुगन्धयुक्त मृत्तिका (कस्तूरी) तुलसी, कुश, कमल और सत्त्वगुणको बढ़ाने वाले अन्नके द्वारा अनायासमें ही ठीक हुई पूजाके द्वारा उन ऋषियोंका पूजन सत्कार करा ॥ ४१ ॥ फिर वह श्रुतदेव मनमें तर्कना करने लगा कि-घररूप अँधेरिये कुएमें पड़े हुए मुझको, श्रीकृष्णजीका और जिनका चरणरज सकल तीर्थोंके भी दोष दूर करनेवाला है और जो श्रीकृष्णजीकी मूर्त्तिका निवासरूप हैं ऐसे ब्राह्मणोंका समागम न जाने कौनसे पुण्यके प्रभावसे हुआ है ? ॥ ४२ ॥ ऐसा उत्तम प्रकारसे सत्कार करे हुए और आसन पर सुखसे बैठे हुए उन ऋषियोंके सन्मुख पोषण करने योग्य पुत्र और स्वजनोंसहित प्राप्त हुआ वह श्रुतदेव, श्रीकृष्णजीके चरणको स्पर्श करता हुआ ऐसा कहने लगा ॥ ४३ ॥ श्रुतदेवने कहा कि-तुम पुरुषोत्तम आज ही मेरे समीप आये हो ऐसा नहीं है किन्तु जब अपनी सत्त्व आदि शक्तियोंसे इस जगत्को उत्पन्न करके इसमें अपनी सत्तासे प्रविष्ट हुए हो उसीसमय प्राप्तहुए हो परन्तु आपका दर्शन केवल आज ही हुआ ॥ ४४ ॥ जैसे सोता हुआ इकला ही पुरुष, अपनी अविद्यासे स्वप्नमें मनसे ही देवता मनुष्यादिरूप दूसरे शरीरको उत्पन्न करके और उसमें प्रवेश करके

मूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसंगैः ॥ ६५ ॥ समहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् । द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ॥ ६६ ॥ उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजंगमालयाय । भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ॥ ६७ ॥ स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् । व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥ ६८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच । यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वंति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषद्भिर्गायंति यं सामगाः । ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यंति यं योगिनो यस्यांतं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ १ ॥ पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पांतु वः । यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनांभसाम् यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥ २ ॥

करनेवाले सर्वेश्वर श्रीहरिका वारंवार गान नहीं करा है और इस भागवत शास्त्रमें तो कथाओंके प्रसङ्गसे पद २में अखिलमूर्त्ति भगवान्का वारंवार वर्णन करा है ६५ जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयरूप रजोगुण आदि जिनकी शक्तियें हैं, ब्रह्मा, इन्द्र और शिव आदि देवता जिनकी स्तुति करना नहीं जानते हैं और जो जन्मरहित होनेके कारण अन्तरहित हैं तिन आत्मस्वरूप अच्युत भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६६ ॥ जिन्होंने बढ़ी हुई प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा इन नौ शक्तियोंसे अपने ही स्वरूपमें स्थावर जङ्गमरूप जगत्को रचा ऐसे ज्ञानस्वरूप सनातन श्रेष्ठदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६७ ॥ जिनका चित्त आत्मानन्दमें निमग्न होरहा था इस कारण दूसरे स्थान पर ध्यान नहीं जाता था ऐसे होकर भी जिनकी, आत्मसुखसे प्राप्त हुई स्थिरता भगवान्की सुन्दर लीलाओं से खिच गई थी इस कारण सब लोकोंके ऊपर कृपा करके सकल पातकोंका नाश करने वाले इस परमार्थ प्रकाशक श्रीमद्भागवतनामक पुराणको रचा उन व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६८॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ छ ॥ छ

सूतजी कहते कि-हे ऋषियो ! ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, शङ्कर और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रोंसे तथा अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदों सहित वेदोंसे जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गाने वाले पुरुष जिनका गान करते हैं, योगीजन ध्यानसे निश्चल करे हुए और उनमें ही लगाए हुए मनसे जिनका दर्शन करते हैं और देवदैत्योंके गण जिनका अन्त नहीं जानते हैं ऐसे देवको नमस्कार हो ॥ १ ॥ पीठ पर घूमते हुए अति भारी मन्दराचलके पत्थरोंकी नोकोंसे जिनका अङ्ग खुजलाया जानेसे सुख प्राप्त होकर जो निद्राको प्राप्त हुए थे उन कूर्मरूपी भगवान् विष्णुके श्वासोंके वायु तुम्हारी रक्षा करें, कि-जिनके संस्कारलेशके अनुवर्त्तनसे (श्वास छोड़नेसे और ऊपरको चढ़ानेसे) समुद्रके जलोंका एक समान ऊपरको आना और भीतरको

पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने । दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥ ३ ॥ ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥ ४ ॥ दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशति । मार्कण्डेयं नवान्हं तु दश पञ्च चतुःशतम् ॥ ५ ॥ चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिंगमेकादशैव तु ॥ ६ ॥ चतुर्विंशति वाराहमेकाशीति सहस्रकम् । स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥ ७ ॥ कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश । एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्मांडं द्वादशैव तु ॥ ८ ॥ एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः । तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥ इदं भगवता पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे । स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥१०॥ आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् । हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ११ सर्ववेदांतसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥१२॥ प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् । ददाति यो भागवतं स याति

जाता चल रहा था और अब भी बन्द नहीं होता है अर्थात् ज्वारभाटेके बहानेसे पहिलेकी समान ही चल रहा है ॥ २ ॥ अब पुराणोंकी संख्या, उनकी सम्भूति और समाहार, इस श्रीमद्भागवतका विषय, प्रयोजन, दान, दानका माहात्म्य तथा पाठ आदिका भी महात्म्य यह कहे हैं सो सुनो ॥ ३ ॥ ब्रह्मपुराण (श्लोकसंख्या) दश सहस्र (१००००), पद्मपुराण पचपन सहस्र (५५०००), श्रीविष्णु पुराण तेईस सहस्र (२३०००) और शिवपुराण चौवीस सहस्र (२४०००) है ॥ ४ ॥ श्रीमद्भागवत अठारह सहस्र (१८०००), नारदपुराण पचीस सहस्र (२५०००), मार्कण्डेयपुराण नौसहस्र (९०००) अग्निपुराण पन्द्रहसहस्र चारसौ (१५४००), ॥५॥ भविष्यपुराण चौदहसहस्र पाँचसौ (१४५००) ब्रह्मवैवर्त्त अठारहसहस्र (१८०००) लिङ्गपुराण ग्यारहसहस्र (११०००) ॥ ६ ॥ वराहपुराण चौवीससहस्र (२४०००), स्कन्धपुराण इक्यासीसहस्र एकसौ (८११००) वामनपुराण दशसहस्र (१००००) कहा है ॥ ७ ॥ कूर्म पुराण सत्रह सहस्र (१७०००), मत्स्यपुराण चौदह सहस्र (१४०००), गरुड़ पुराण उन्नीस सहस्र (१९०००) और ब्रह्माण्डपुराण (श्लोक संख्या) बाईससहस्र (२२०००) है ॥ ८ ॥ ऐसा यह पुराणों (१)का समूह सब चार लाख श्लोकोंमें कहा है, तिसमें श्रीमद्भागवत पुराण ।अठारह सहस्र है ऐसा कहते हैं ॥ ९ ॥ पहिले यह श्रीमद्भागवत, विष्णु भगवान्ने अपनी नाभिमेंके कमल पर बैठे हुए और संसारसे भयभीत हुए ब्रह्माजीसे बड़ी दया करके कहा है ॥१०॥ यह श्रीमद्भागवत आदि, मध्य और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथाओंसे युक्त और श्रीहरिकी लीला तथा कथाओंके समूहरूप अमृतसे साधु और देवता आदिकोंको आनन्दित करने वाला है ॥ ११ ॥ इसमें सब वेदोंमेंका सार है और ईश्वर तथा जीवकी एकता होनेका लक्षण जो अद्वितीय वस्तु (परब्रह्म) वह इस

१ महाभारत इतिहास है और बाल्मीकीय रामायण ऋषि प्रणीत काव्य है, यह दोनों पुराण नहीं है इस कारण पुराण संख्यामें इनकी गणना नहीं करी है ।

परमां गतिम् ॥१३॥ राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे। यावद्भागवतं नैव श्रूयतेऽमृतसागरम् ॥ १४ ॥सर्ववेदांतसारं हि श्रीभागवतमिष्यते। तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ॥ १५ ॥ निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा। वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ॥ १६ ॥ क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा। तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ॥ १७ ॥ श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते। तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन्विपठन्विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥१८॥ कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा। योगींद्राय तदात्मनाऽथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ १९ ॥ नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे। य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥ २० ॥ योगींद्राय नमस्तस्मै

का विषय है, मोक्षकी प्राप्ति ही इसका प्रयोजन है ॥ १२ ॥ जो पुरुष भाद्रमासमें पूर्णिमाके दिन श्रीमद्भागवत सुवर्णके सिंहासन पर रख कर दान देता है वह उत्तम गतिको (मोक्षको) प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जब तक यह अमृतका सागररूप श्रीमद्भागवत नहीं सुनीजाती है तब तक ही और पुराण साधुओंकी सभामें शोभा पाते हैं ॥ १४ ॥ यह श्रीमद्भागवत सकल वेदान्तका सार मानी जाती है, इस श्रीमद्भागवतके रसामृतको पीकर तृप्त हुए पुरुषकी दूसरे किसीमें भी प्रीति नहीं होगी ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गङ्गा, जैसे देवताओंमें विष्णु और जैसे विष्णुभक्तोंमें शिव श्रेष्ठ हैं तैसे ही सब पुराणोंमें यह श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ हे द्विजो ! जैसे सब ही क्षेत्रोंमें काशी अति उत्तम है तैसे ही यह श्रीमद्भागवत सब पुराण समूहोंमें उत्तम है ॥ १७ ॥ जो अमल और वैष्णवोंको अति प्रिय है, जिसमें परमहंसोंके प्राप्त करने योग्य और निर्मल उत्तम ज्ञान वर्णन करा है और तिसमें ज्ञान वैराग्य-भक्ति सहित सब कर्मोंमें उपरति प्रकट करी है ऐसे इस श्रीमद्भागवतको मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनकर वा पढ़ कर मनन करे तो वह 'जन्ममरणरूप संसारसे' छूट जायगा ॥ १८ ॥ हे ऋषियो ! जिन परमात्माने, यह अनुपम श्रीमद्भागवतरूप ज्ञानदीपक कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्माजीको प्रकाशित (उपदेश) करा, उन ब्रह्माजीके रूपसे नारदजीको प्रकाशित (उपदेश) करा, उन नारदजीके रूपसे श्रीव्यासमुनिको प्रकाशित करा और तिसके अनन्तर श्रीशुकमुनिके रूपसे बड़ी करुणा करके राजा परीक्षितको प्रकाशित करा उन शोक रहित निर्मल, शुद्ध और जन्ममरणादि रहित, सत्यस्वरूप श्रीनारायण नामक परम तत्त्वका हम ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ अब उनको ही देवतारूपसे और गुरुरूपसे प्रणाम करते हैं-जिन्होंने यह (श्रीमद्भागवतरूप पुराण) मोक्षकी इच्छा करने वाले ब्रह्माजीसे व्याख्यान करके कहा उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेवको नमस्कार हो ॥ २० ॥ और जिन्होंने संसाररूप सर्पसे डसे हुए राजा परीक्षितको 'श्रीमद्भागवतकी कथारूप अमृत पिलाकर तिस दुःखमेंसे, छुटाया उन ब्रह्मरूप योगिराज श्रीशुकदेवजीको नमस्कार हो ॥ २१ ॥

शुकाय ब्रह्मरूपिणे । संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥ २१ ॥ भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते । तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥ २२ ॥ नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् । प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हे देवेश ! क्योंकि–तुम हमारे नाथ हो तिससे हे प्रभो ! जन्म जन्ममें हमें जैसे तुम्हारे चरणोंमें भक्ति उत्पन्न होय तैसा करो ॥ २२ ॥ जिनके नामका कीर्त्तन सकल पापोंका नाश करने वाला है और जिनको प्रणाम करना सकल दुःखोंको शान्त करने वाला है उन सर्वोत्तम श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धमें त्रयोदश अध्याय समाप्त॥ १३॥ पाठकानां शुभमस्तु

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य,पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र–गौड़वंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थ–राजकीय-प्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतंत्रस्वतंत्र महामहोपाध्याय–सत्संप्रदाया-चार्य–पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोप-नामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेन भाषानुवादेन सहितो द्वादशस्कन्धः समाप्तः ॥

रामगङ्गातटे रम्ये मुरादाबादपत्तने ।
भारद्वाजऋषेर्गोत्रे गौड़वंशे शुभोदये ॥ १ ॥
जातः सत्तमश्रीमद्भोलानाथात्मजोऽन्तिमः ।
तेनेयं संहिता स्फीता श्रीमद्भागवताभिधा ॥ २ ॥
ग्रहभूनांकभूवर्षे माधवस्य सिते दले ।
पञ्चम्यां सूर्यवारे च सोमे हि मिथुनस्थिते ॥ ३ ॥
समापितामयत्नेन नृगिराऽभीप्सितां मुदे ।
श्रोतृणां वाचकानाञ्च शुभदास्तु पुनः पुनः ॥ ४ ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः ।

मिलने का पता–
सनातनधर्म यन्त्रालय,
मुरादाबाद।

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाऽभिवन्दताम् । नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥ ४६ ॥ हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् । आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे । सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये ॥ ४८ ॥ स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे । एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षगोचरः ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥ ५० ॥ श्रीभगवानुवाच । ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् । संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥ ५१ ॥ देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः । शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ।५२।

नाना प्रकारका प्रतीत होता हैं तैसे ही तुम भी इस जगत्‌को रच कर उसमें प्रवेश करेहुएसे होकर नानाप्रकारके भासते हो ॥ ४५ ॥ और जो मनुष्य निरन्तर तुम्हारा श्रवण, कीर्त्तन, पूजन, वन्दन और परस्पर सम्वाद करते हैं उन शुद्धचित्त पुरुषों के भी हृदयमें तुम केवल प्रकाशको ही प्राप्त होते हो और मुझे तो दृष्टिगोचर भी हुए हो इस कारण मेरा अहोभाग्य है ॥ ४६ ॥ यद्यपि तुम सबके हृदयोंमें हो तथापि लौकिक वैदिक अनेकों कर्मोंसे विक्षिप्तचित्त हुए पुरुषोंसे तुम बहुत ही दूर हो और यद्यपि अहंकारादि आत्मशक्तियोंसे तुम्हारा ग्रहण नहीं होता है तथापि जिनके अन्तःकरणमें तुम्हारे श्रवण कीर्त्तन आदिका संस्कार है उनके तुम बहुत ही समीप हो ॥ ४७ ॥ इस कारण देहाभिमानसे रहित हुए पुरुषोंको मोक्ष देनेवाले, देहाभिमानी जीवोंको आत्मासे भिन्न संसार देने वाले, महत्तत्त्व आदि कार्य और उसकी कारण प्रकृति इन दोनों उपाधियोंके नियन्ता, अपनी मायासे जिनका ऐश्वर्य लुप्त नहीं हुआ है और अपनी माया करके दूसरोंके ज्ञानको ढकने वाले तुम कारणको नमस्कार हो ॥ ४८ ॥ हे देव ! वह परमेश्वर तुम, अपने दास इन हमको आज्ञा करिये, कि-हम आपका कौनसा दासकार्य करें ? जब तक तुम्हारा दर्शन न हो तब तक ही मनुष्योंको संसारका क्लेश होता है,दर्शन होनेपर फिर क्लेशका नाश ही होजाता है ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि- हे राजन् ! ऐसा उस श्रुतदेवका कहा हुआ भाषण सुन कर, भक्तोंके दुःख हरनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी,अपमा अधिक और ब्राह्मणोंका कम आदर देख कर लोकशिक्षाके निमित्त, तू ब्राह्मणोंमें मुझसे भी अधिक श्रद्धा कर ऐसा उससे कहनेके अर्थ, अपने हाथसे उसका हाथ पकड़ कर हँसते हुए उससे कहने लगे ॥ ५० ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि—हे ब्राह्मण ! तेरे ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त यह ऋषि यहाँ आये हैं ऐसा तू जान, क्योंकि— यह ऋषि हृदयमें रहने वाले मेरे द्वारा अपनी चरणरजसे लोकोंको पवित्र करतेहुए विचरते रहते हैं ॥ ५१ ॥ और देवता आदिकोंकी अपेक्षा भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं क्योंकि देवताओंकी मूर्त्ति, अयोध्या आदि क्षेत्र और गङ्गा आदि तीर्थ यह दर्शन, स्पर्श और पूजनके द्वारा धीरे धीरे बहुत कालमें पवित्र करते हैं, वही पवित्रता सत्पुरुषों के दर्शनसे तत्काल होजाती है ॥ ५२ ॥ इस संसारमें सब ही प्राणियोंमें ब्राह्मण जन्म

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह। तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥ ५३ ॥ न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम्। सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥ ५४ ॥ दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः। गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥५५॥ चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः। मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ॥ ५६ ॥ तस्माद् ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयाऽर्चय। एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच। स इत्थं प्रभुणादिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान्। आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम्॥५८ एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान्। उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्भाग० म० दश० उ० श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अथ वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

परीक्षिदुवाच। ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः। कथं चरन्ति श्रुतयः

से ही श्रेष्ठ है फिर जो यदि तप, विद्या, सन्तोष और मेरी उपासना इन गुणोंसे युक्त होय तब तो उसकी श्रेष्ठताका कहना ही क्या ? ॥ ५३ ॥ यह चतुर्भुजस्वरूप भी मुझे ब्राह्मणोंसे अधिक प्रिय नहीं है, क्योंकि-ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्व देवमय हूँ, देवताओंकी सिद्धता वेदके अधीन होनेके कारण देवमय मुझसे भी वेदमय ब्राह्मण श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥ यह मेरा मत न जान कर ही गुणोंमें दोष लगाने वाले और साधुमहात्मा आदि सबको छोड़ कर एक प्रतिमाकार पाषाणको ही पूजनीय मानने वाले दुर्बुद्धि पुरुष गुरुरूप, आत्मरूप और मेरे स्वरूप इन ब्राह्मणोंका अपमान करते हैं ॥ ५५ ॥ और ब्राह्मण ही, सर्वत्र ईश्वर हैं ऐसी भावना करके, यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् और इसके कारण महत्तत्त्व आदि पदार्थ हैं वह सब ही मेरे रूप हैं ऐसा अपने मनमें धारण करता है॥ ५६ ॥ इस कारण हे ब्राह्मण ! तू इन सब ऋषियोंका, यह मेरे ही स्वरूप हैं ऐसी बुद्धिसे पूजन कर, इस प्रकार यदि इनका पूजन करेगा तो मैं ही साक्षात् पूजा करा हुआसा होऊँगा, ऐसा करे विना बहुतसी सामग्रियोंसे पूजन करा हुआ भी मैं पूजन करा हुआसा नहीं होता हूँ५७ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार प्रभु श्रीकृष्णजी करके आज्ञा करा हुआ वह श्रुतदेव ब्राह्मण, और राजा बहुलाश्व यह, श्रीकृष्णजीके साथ उन सब द्विजोत्तमोंको अभेद दृष्टिसे आराधना करके भगवान्के स्वरूपको प्राप्त हुआ ।५८। हे राजन् ! इस प्रकार भक्तोंकी प्रीतिके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले वह भगवान् श्रीकृष्णजी, कुछ दिनोंपर्यंत उस मिथिला नगरीमें रह कर अपने भक्त श्रुतदेव और राजा बहुलाश्वको वेदोंकी प्रवृत्तिकी रीति और ब्रह्मज्ञानका उपदेश सुनाकर द्वारका को लौट गये ॥ ५९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें षडशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८६ ॥ छ छ छ छ छ

अब इस सत्तासीवें अध्यायमें, नारायण और नारदजीके सम्वादके द्वारा, वेदोंने, ईश्वरकी, गुणोंके आश्रयसे निर्गुण ब्रह्मपर जो स्तुति करी है तिसका वर्णन करा

साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच । बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्

है ॥ ॐ ॥ इससे पहिले अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णजी; श्रुतदेव ब्राह्मण और बहुलाश्व राजा इन अपने भक्तोंको स्वतः प्रमाण (जिसमें किसीका प्रमाण न दिया जाय ऐसे) वेदका ब्रह्मपरत्व वर्णन करके फिर द्वारकाको चले गये, ऐसा शुकदेवजीने कहा था तिसको सुन कर, शब्दरूप वेदोंका ब्रह्मपरत्व होना कठिन है ऐसा मानने वाले राजाने प्रश्न करा कि–हे शुकदेवजी ! सगुण पदार्थोंका वर्णन करने वाली श्रुतियें, किसी प्रकार भी जिसका दिखाना न बन सके ऐसे निर्गुण और कार्य कारणोंसे पर (असङ्ग) ब्रह्मके विषें, प्रत्यक्ष कैसे प्रवृत्त होती हैं ? इस कहने का तात्पर्य यह है कि–श्रुति तो शब्द होती हैं, उन शब्दोंकी प्रवृत्ति मुख्या १लक्षणा २ और गौणी ३ यह तीन प्रकारकी है, उनमेंसे मुख्याके रूढ़ि और यौगी दो भेद हैं तिनमें रूढ़ि वृत्ति–ठिगना, ऊँचा इत्यादि स्वरूपोंसे, गौ ब्राह्मण इत्यादि जातियों से अथवा श्वेत, काला इत्यादि गुणोंसे दिखानेके योग्य वस्तुके ऊपर, यह उस वस्तु का नाम है और यह वह वस्तु है इस प्रकार संकेतसे प्रवृत्त होती है जैसे यह ठूँठ है, यह गौ है, यह श्वेत है इत्यादि स्थल पर प्रवृत्त होती है तैसे वह रूढ़िवृत्ति–अनिर्देश्य (जिसको किसी संकेतसे बताया न जासके ऐसे) और निर्गुण (जिस में कोई गुण नहीं ऐसे) ब्रह्मके विषें 'उसके अपना विषय न होनेके कारण कैसे प्रवृत्त होती है ? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती, दूसरी लक्षणावृत्ति-पहिले कहे हुए संज्ञासंज्ञिके (नाम और नाम वालेके) संकेतसे ही 'जैसे गङ्गा पर मल्लाहका घर है इत्यादि स्थलमें गङ्गाके तटका सम्बंध लेकर तहाँ मल्लाहका घर है ऐसा समझता है तिस प्रकार' कहेहुए पदार्थके संबंधसे प्रवृत्त होती है, वह-परब्रह्मके सकल संबंधों से रहित होनेके कारण तहाँ कैसे प्रवृत्त होसकती है ? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती तीसरी गौणी (गुणवृत्ति) है वह–'जैसे यह देवदत्त सिंह है, इत्यादि स्थलपर सिंह शब्दसे उस सिंहके शूरता आदि गुणोंको लेकर, उन गुणोंसे युक्त देवदत्त है ऐसा अर्थ लिया जाता है तैसे' कहेहुए पदार्थों पर होनेवाले गुणोंसे युक्त उसकी समान दूसरे पदार्थ पर प्रवृत्त होती है, वह परब्रह्मके निर्गुण होनेके कारण तहाँ कैसे प्रवृत्त होसकती है ! अर्थात् प्रवृत्त नहीं होती, चौथी यौगी (मुख्याका दूसरा भेद योगवृत्ति) है वह भी ऊपर कही हुई तीन प्रकारकी शब्दवृत्तियोंसे वर्णन करे हुए पद और अर्थके अथवा प्रकृति और प्रत्ययके द्वारा 'जैसे पङ्कात् (कीचसे) जायते (उत्पन्न होता है सो) पङ्कज (कमल)' (उपगोः) उपगुसंज्ञिका अपत्यम् (सन्तान अर्थात् उनसे उत्पन्न होनेवाला) औपगव (उनका पुत्र) इत्यादि स्थल पर उन पङ्कज औपगव आदि शब्दों पर प्रवृत्त होती है, वह भी कार्य कारणकी अपेक्षासे पर और असङ्ग ब्रह्मके विषें कैसे प्रवृत्त होसकती है ? अर्थात् कभी प्रवृत्त नहीं होती, इससे 'ब्रह्मको' पदार्थत्वका योग न होनेके कारण और अपदार्थको वाक्यार्थत्वका योग न होनेके कारण, ब्रह्मको श्रुतिगोचरता नहीं होसकती, सो सगुण वस्तुका प्रतिपादन करने वाली श्रुति निर्गुण ब्रह्मके विषें कैसे प्रवृत्त होती

प्रभुः। मात्राऽर्थं च भवार्थं च आत्मने कल्पनाय च ॥ २ ॥ सैषा ह्युपनिषद् ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता। श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥ ३ ॥ अत्र ते वर्ण-

हैं ॥ १ ॥ इस प्रकार प्रश्न करने पर श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! सब कुछ करनेको समर्थ और नित्यमुक्त ईश्वरने, प्रलयकालमें अपनेमें लीन हुए जीवोंको फिर इस लोकमें विषयभोग और जन्म आदि कर्म प्राप्त होनेके निमित्त तथा पर-लोकमें स्वर्गादि लोकोंका उपभोग और मुक्ति मिलनेके निमित्त (अर्थात् जीवोंको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्त होनेके निमित्त) बुद्धि, इन्द्रियें, मन और प्राण यह उत्पन्न करे हैं, यदि बुद्धि, इन्द्रियें, मन और प्राण (लिङ्गशरीर) यह उत्पन्न न करे होते तो जीवोंको, साधन न होनेके कारण अर्थ धर्म आदि प्राप्त करनेमें नहीं आते, तैसे ही स्वरूपविचार न होसकनेके कारण मोक्ष भी प्राप्त नहीं होसकता इस कारण यह बुद्धि आदि ईश्वरने उत्पन्न करे हैं, अब निर्गुण ब्रह्मके विषैं श्रुतियें कैसे प्रवृत्त होती हैं ? इसप्रश्नका उत्तर, ईश्वरने बुद्धि आदिकी उत्पत्ति करी, यह कहनेका आशय यह है कि-सकल श्रुतियें, ईश्वरकी और ईश्वरसे उत्पन्न हुए जीवोंके चार प्रकारके पुरुषार्थोंका वर्णन करके, तात्पर्य आदि वृत्तियोंसे ब्रह्मपर हैं, तिनमें कितनी ही श्रुतियें, सगुण होकर भी गुणोंसे तिरस्कारको प्राप्त न होने वाले ईश्वरके 'सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वोपास्य, सर्व कर्म फल दाता, सर्वकल्याणकारी गुणोंके निधान, सच्चिदानन्दरूप आदि' धर्मोंका वर्णन करती हैं, दूसरी कितनी ही श्रुतिमें-जीवके किञ्चिज्ज्ञत्व (कुछ एक जानतापन) आदि धर्म कह कर उनका संसार (आवागमन) दूर होनेके निमित्त उनको 'उस ईश्वरका स्वरूप तू है ऐसा' उपदेश करती हैं, उसमें तत्पदका और त्वंपदका सामानाधिकरण्य (एक स्थान पर घटना), दूसरे प्रकारोंसे न होसकनेके कारण, जहद्जहल्लक्षणा करके ब्रह्मके विषैं ही पर्यवसान पाता है, इस कारण उन जीव और ईश्वरकी एकताका प्रतिपादन करने वालीं श्रुतियें, तात्पर्यवृत्तिसे ब्रह्म पर ही हैं, अस्थूल (स्थूलतारहित), अनणु (सूक्ष्मतारहित) इत्यादि निषेध करनेवालीं श्रुतियें भी, तत्पदार्थके शोधनके विषयमें उपयोगी हैं इस कारण उनका निर्गुणके ही विषैं पर्यवसान है, उपासनाका निरूपण करनेवालीं श्रुतियें भी, अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञानके साधनोंका उपदेश करती हैं इस कारण उनका पर्यवसान ज्ञानके द्वारा परम्परासम्बन्धसे ब्रह्मके विषैं ही है, सृष्टि, स्थिति और प्रलयका प्रतिपादन करने वालीं श्रुतियें भी सृष्टि आदिके कथनके द्वारा ज्ञान वैराग्यकी साधन हैं इस कारण उनका पर्यवसान भी परम्परासम्बन्धसे ब्रह्मके विषैं ही है, इस कारण ईश्वरसे सृष्टि आदिके द्वारा जीवोंके चार प्रकारके पुरुषार्थोंका वर्णन करने वाला सब श्रुतियोंका परम्परा आदि सम्बंधसे, निषेधादिमुख करके अथवा भागलक्षणा करके ब्रह्मके विषैं ही पर्यवसान है ॥ २ ॥ इस विषयमें अनादिसिद्ध परम्परा चली आती है इस कारण सन्देह करना उचित नहीं है ऐसा कहनेके अभिप्रायसे कहते हैं कि-सो यह श्रुतियोंकी ब्रह्मपरताका वर्णन करने वाला रहस्य

यिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् । नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥ ४ ॥ एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ५ यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् । धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थित-स्तपः ॥६॥ तत्रोपविष्टमृषिभिः । कलापग्रामवासिभिः परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥७॥ तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् । यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जन-लोकनिवासिनाम् ॥८॥ श्रीभगवानुवाच । स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा । तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् । ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते । तत्र ह्ययमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनु-पृच्छसि ॥१०॥ तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः । अपि चक्रुः प्रवचनमेकं

(गुप्त रखने योग्य) निर्णय, पूर्वपुरुषाओंके भी पूर्वपुरुष ऐसे सनकादिकोंने मनमें धारण करा है, जो पुरुष सूखे तर्कोंका आग्रह न करके उनको श्रवण आदि करके धारण करेगा वह देह आदि सब उपाधियोंको दूर करके परमानन्दस्वरूपको पावेगा ॥ ३ ॥ इस विषयको ही सब श्रुतियोंके अर्थके निरूपणके द्वारा विस्तारके साथ कहनेको इतिहास कहते हैं कि-हे राजन् ! इस विषयमें तुमसे, जहाँ नारा-यण ही कहने वाले हैं ऐसा बदरीनाथ नारायणका और नारदऋषिका सम्वादरूप इतिहास वर्णन करता हूँ ॥ ४ ॥ एक समय लोकोंमें विचरने वाले भगवद्भक्त नारदजी, पुरातनऋषि नारायणका दर्शन करनेके निमित्त उनके बदरिकाश्रमको गये थे ॥ ५ ॥ जो नारायण इस भरतखण्डमें मनुष्योंका कल्याण करनेके निमित्त और मुक्ति करनेको कल्पके प्रारम्भसे धर्म, ज्ञान और शान्तिसे युक्त तप कर रहे हैं ॥६॥ हे राजन् ! जो नारायण, उस आश्रममें 'तहाँसे समीपके ही' कलापनामक ग्राममें रहने वाले ऋषियोंसे घिर कर सुखके साथ वैठे सो तब ही नारदऋषिने प्रणाम करके, 'ब्रह्मके विषैं श्रुतियें कैसे प्रवृत्त होती हैं ?' यही प्रश्न उनसे करा ॥७॥ तब भगवान् नारायणने उन नारदजीसे सब ऋषियोंके सुनते हुए जो पहिलेके परमवृद्ध जनलोकवासी सनकादिकोंका प्रश्नोत्तरोंसे निर्णयरूप सम्वाद हुआ था वह कहा ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे ब्रह्मपुत्र ! पहिले जनलोकमें तहाँ रहने वाले, ब्रह्माजीके मानसिक पुत्र सनकादि ऋषियोंका ब्रह्मसत्र × हुआ ॥ ९ ॥ यदि कहो कि-उस समय मैं कहाँ गया था ? तो-श्वेतद्वीपका स्वामी जो अनिरुद्ध नाम वाला मैं तिस मेरा दर्शन करनेके निमित्त जब तुम तहाँ गये थे तव, तुमने जो प्रश्न अब मुझसे करा है यही प्रश्न उस जनलोकमें हुआ था और तदनन्तर तहाँ ऐसा उत्तम ब्रह्मविचार हुआ कि-जिसमें सब श्रुतियें तात्पर्यवृत्तिसे आगई हैं ॥१०॥ यदि कहो कि-वह सब सर्वज्ञ थे तो उनमें वक्ता कौन हुआ और प्रश्न करने वाला कौन हुआ ? तो-यद्यपि-वह चारों ही सनकादि ऋषि, शास्त्राभ्यास, तपस्या और स्वभावमें समान थे और मित्र, शत्रु तथा उदासीनोंमें समता रखने वाले थे इस

× जहाँ सब ही समान अधिकारी हों उनमें संशयरहित ब्रह्मज्ञानके निमित्त एक वक्ता और शेष श्रोता होकर ब्रह्मका विचार करते हैं उसको ब्रह्मसत्र कहते हैं ।

शुश्रूषवोऽपरे ॥११॥ सनन्दन उवाच । स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः । तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ॥ १२ ॥ यथा शयानं संम्राजं वंदिनस्तत्पराक्रमैः । प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयंत्यनुजीविनः ॥ १३ ॥ श्रुतय ऊचुः । जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः । अग-

कारण सब ही वक्ता बन सकते थे तथापि कुछ एक कौतुकसे उन्होंने, एक सनन्दनको वक्ता बनाया और शेष श्रोता बने और प्रश्न करा ॥ ११ ॥ तब सनन्दनने कहा कि-हे सनकादिको ! जब परमेश्वर अपने रचे हुए इस जगत्को, अपनी ही शक्तियोंसे प्रलयकालमें अपने स्वरूपमें लीन करके योगनिद्राके द्वारा सोये हुएसे होते हैं, तब उस निद्राके अन्तमें और सृष्टिके आरम्भमें उनके प्रथम श्वासोच्छ्वासोंसे प्रकट हुई श्रुतियें उन ही परमेश्वरका प्रतिपादन करने वाले वाक्योंसे उनको जगाने लगीं ॥ १२ ॥ जैसे सोये हुए चक्रवर्ती राजाके समीप प्रातःकालके समय, उसकी स्तुति पढ़ने वाले सेवक आकर, सुन्दरकीर्त्तियुक्त पराक्रमके वर्णनोंसे उसको जगाते हैं तैसे ही श्रुतियें भी ईश्वरका प्रतिपादन करने वाले वाक्योंके द्वारा उनको जगाने लगीं ॥ १३ ॥ श्रुति कहने लगी कि-(अजित !) जिनको किसीने नहीं जीता ऐसे हे परमेश्वर ! (जय, जय) अपने उत्कर्षको वारम्वार प्रकट करो ! यदि कहो कि-किस प्रकार मैं अपने उत्कर्षको प्रकट करूँ तो-(अगजगदोकसाम्) अग; कहिये एक स्थान पर ही रहने वाले स्थावर और जगत् कहिये चलने फिरने वाले जङ्गम हैं ओक कहिये शरीर जिनके ऐसे जीवोंके । (* दोषगृभीतगुणाम्) आनन्द आदि गुणोंको ढकनेके निमित्त सत्व आदि गुणोंको ग्रहण करने वाली । (अजाम्) अविद्याको । (जहि) नष्ट करो । अर्थात् जैसे व्यभिचारिणी स्त्री दूसरे पुरुषोंको धोखा देनेके निमित्त हावभाव आदि गुणोंको ग्रहण करती है तैसे प्रकार यह अविद्या जीवोंको मोहित करनेके निमित्त सत्व आदि गुणोंको ग्रहण करती है, इस कारण इसका नाश करो । यदि कहो कि-यह अविद्या तो मुझमें भी अपना दोष चिपटावेगी सो मुझमें इसका नाश करनेकी शक्ति कहाँसे आई ? तो—(यत्) क्योंकि । (त्वम्) तुम । 'मायाको वशमें कर रखनेके कारण' (आत्मना) अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही । (समवरुद्धसमस्तभगः) प्राप्त हैं सकल ऐश्वर्य जिनको ऐसे । (असि) हो । यदि कहो कि-यह जीव ही ज्ञानवैराग्य आदि साधनोंसे क्यों नहीं करते ? तो-(अखिलशक्त्यवबोधक !) हे सकल शक्तियोंके प्रकाशक ! इस संबोधनसे यह सूचित करा कि—तुम ही उन जीवोंके अन्तर्यामी सब शक्तियोंके प्रवर्त्तक हो इसकारण वह जीव, ज्ञान वैराग्य आदि साधनोंके विषयमें स्वाधीन नहीं हैं । यदि कहो कि-मैं अखण्डित ज्ञान ऐश्वर्य आदि गुणोंसे युक्त होकर जीवोंकी कर्मज्ञान आदि शक्तियोंकी प्रेरणा करके उनकी अविद्याका नाश करनेवाला हूँ इस विषयमें

*'हृ ग्रहोर्भश्छन्दसि' इस सूत्रसे 'ह' के स्थानमें 'भ' होने पर गृभीत शब्द बना है

जगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः १४
बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदि वाविकृतात्। अत
ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवंति भुवि दत्तपदानि नृणाम् १५

प्रमाण क्या है? तो-(निगमः) × मैं वेद ही प्रमाण हूँ। यदि कहो कि—मेरे स्वरूपमें वेदोंकी प्रवृत्ति कैसे होतीहै? तो-(क्वचित्) कभी सृष्टि आदिके प्रसंगमें (अजया) मायाके साथ। (रतः) क्रीड़ा करनेवाले (च) और (आत्मना) निरन्तर सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द, एकरसरूपसे। (चरतः) रहनेवाले। (ते) तुम्हारा। (निगमः) वेद। (अनुचरेत्) प्रतिपादन करता है। श्रीधरजीकी अनुकृति "जय जयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपजामुपनीतमृषागुणाम्। नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥' अर्थात्-हे अजित ईश्वर! तुम्हारी सदा जय हो, मिथ्यागुण दिखलाकर इन स्थावर जङ्गम प्राणियोंको ढकने वाली इस अविद्याको नष्ट करो, तुम्हारे बिना यह जीव कुछ नहीं कर सकते हैं, और तुम्हारी गुणसागरता वेद शास्त्रोंमें गान करी हुई ॥१४॥ वेद § में इन्द्र, अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओंका प्रतिपादन करा है ऐसा देखनेमें आता है, तहाँ मेरा वर्णन कहाँ है? ऐसा कहो तो—(एतत्) यह। (उपलब्धम्) दीखनेवाला, इन्द्र अग्नि आदि स्थावरजङ्गमरूप सकल जगत्। (बृहत्) ब्रह्मरूप तुम ही हो, ऐसा। (अवयन्ति) विद्वान् पुरुष जानते हैं। यदि कहो कि-कैसे? तो (अवशेषतया) प्रलयकालमें सबका नाश होने पर भी तुम ही शेष रहते हो इससे। इसका कारण यह है कि-(यतः) जिन तुम (अविकृतात्) ¶ अविकारी ब्रह्मसे (मृदि वा) ÷ जैसे मृत्तिकामेंसे घड़े आदि पदार्थोंकी उत्पत्ति और नाश होते हैं, परन्तु अन्तमें वह मृत्तिका ही सत्य रहती + है, तिसी प्रकार (विकृतेः) विकारको प्राप्त होने वाले जगत्के (उदयास्तमयौ) उत्पत्ति और नाश। (स्तः) होते हैं। सो तुम जगतरूप विवर्त ‡ के अधिष्ठान निर्विकार होकर उपादान † कारण भी हो, इस

× यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये। य आत्मनि तिष्ठन् ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ॥ यः सर्वज्ञः स सर्ववित् ॥

§ 'इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा' इत्यादि। तथा 'अग्निर्मूर्द्धा दिव' इत्यादि।

¶ चिन्तामणि, मन्त्र, कामधेनु आदि विकारको न पानेवाले पदार्थोंसे दूसरे विकारी इच्छित पदार्थोंके उत्पत्ति नाश होते हैं, ऐसा प्रसिद्ध ही है।

÷ यहाँ 'वा' शब्द उपमा अर्थवाला है।

+ 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'।

‡ अतत्त्वतोऽन्यथाभावो विवर्त्तः। अर्थात् अतत्स्वरूपसे अन्यथाभावकी प्रतीति को विवर्त्त कहते हैं, जैसे सीपीमें चाँदीकी प्रतीति होना।

† कार्यजननार्थमुपादीयमानं कार्यान्वितं कारणम्। अर्थात् कार्य उत्पन्न करनेको ग्रहण किया जाता हुआ कार्ययुक्त कारण उपादानकारण कहाता है। जैसे मृत्तिका घट

इति तत्र सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथाऽमृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः। किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानु-

कारण इन्द्रादिकोंका प्रतिपादन करनेवाली जो श्रुति हैं वह भी वास्तवमें तुम्हारा ही प्रतिपादन करती हैं, क्योंकि—इन्द्रादि देवता तुमसे भिन्न नहीं * हैं। (अतः) इस कारण (ऋषयः) मन्त्रोंने, मन्त्रोंको तपोबलसे देखनेवाले ऋषियोंने (मनोवचनाचरितम्) मनमें लाये हुए वा वचनसे उच्चारण करे हुए, इन्द्रादिक नाम (त्वयि) तुम्हारे विषैं। (दधुः) धारण करे हैं अर्थात् निराले २ वज्रहस्त आदि विकारों पर धारण नहीं करे हैं। इस विषयमें यह दृष्टान्त है कि-(नृणाम्) भूमि पर रहने वाले मनुष्यों करके। (दत्तपदानि) कहीं भी रक्खे हुए चरण। (कथम्) कैसे। (अयथा) भूमि पर न रक्खे हुए। (भवन्ति) होसकते हैं? अर्थात् मट्टी, पत्थर, ईंट आदि किसी भी पदार्थ पर रक्खे हुए मनुष्योंके चरण जैसे भूमिका आधार छोड़ कर नहीं रहते हैं तैसे ही इस सृष्टिमेंके किसी भी विकारका वर्णन करने वाले वेद, परमार्थरूप और सबके कारण ऐसे तुम्हारा ही प्रतिपादन करते हैं श्रीधरजीकी अनुकृति-'द्रुहिणवह्निरवीन्दुमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्। बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्त्तिरतो विनिगद्यसे॥' अर्थात्-ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि देवता ही क्या यह उत्पन्न हुआ सकल जगत् तुमसे भिन्न नहीं है, इस कारण अनेकों प्रकारके देवताओंका वर्णन करनेवाले भी वेदके मन्त्रोंसे अनेकों मूर्त्ति(१)वाले तुम अजन्मा परब्रह्म ही वर्णन करेजाते हो॥१५॥ अब; तुम ही सकल श्रुतियोंके गोचर हो ऐसा साधुओंकी प्रवृत्तिसे दृढ़ करते हैं कि-(त्र्यधिपते!) हे त्रिगुण मायारूप हरिणीको नचाने वाले। (परम!) हे सबोंके कारण परमेश्वर! (इति) तुमही सबका कारण होनेसे परमार्थरूप हो ऐसा जान कर। (सूरयः) विवेकी पुरुषोंने (तत्र) तुम्हारी (अखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिम्) सकल लोकोंके पापोंको दूर करने वाली तुम्हारी कथाओंरूप अमृतके समुद्रको। (अवगाह्य) अवगाहन अर्थात् सेवन करके। (तपांसि) पाप वा दुखोंको (जहुः) त्यागन करा है। अर्थात् जब तुम्हारी कथाओंको सुनने आदिसे ही सकल संताप दूर होते हैं तो-(ये) जो। (पुनः) फिर। (स्वधामविधुताशयकालगुणाः) तुम्हारे स्वरूपके स्फुरणसे ही अपने अन्तःकरणोंमेंके राग आदि धर्मोंका और काल के वृद्धावस्था आदि धर्मोंका त्याग करके। (अजस्रसुखानुभवम्) अखण्ड आनंद के अनुभवरूप। (परम्) तुम्हारे स्वरूपको (भजन्ति) सेवन करते हैं (ते+) उन्होंने। (तपांसि+) सकल सन्तापोंको। (जहुः+) त्यागना(२)। (किमुत)

आदिके और सुवर्ण आभूषण आदिके रचनेको ग्रहण करेजाते हैं, वह सदा कार्योंमें अनुगत (युक्त) रहते हैं।

* सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन॥

१ तदैक्षत एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।

२ 'तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते। न

भवम् ॥ १९ ॥ दृतय इव श्वसंत्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन् यदनुग्रहतः । पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदे-

इसका कहना ही क्या ? ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रताः । त्वयि सुभद्र गुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः । अर्थात् हे परम कल्याणकारी परमेश्वर ! सकल वेदादिकोंमें तुम्हारे सद्गुणोंका वर्णन है इस कारण सकल बुद्धिमान् साधुपुरुषोंने तुम्हारे विषैं चित्त लगाया और वह तुम्हारे गुणोंका श्रवण आदि करनेसे तथा तुम्हारे चरणकमलका स्मरण करनेसे सांसारिक दुःखोंसे छूट गये ॥१९॥ अब, कितनी ही वेदकी श्रुतियें(१) ऊपरके दो श्लोकोंमें कहे हुए सेवनको न करनेकी निन्दा करती हैं, सोई कहते हैं कि—(देव ! +) हे देव ! (असुभृतः) प्राणधारी । (यदि) जो । (ते) तुम्हारे (अनुविधाः) अनुगामी भक्त हैं । (तर्हि +) तब तो । (श्वसन्ति) जीते हैं, अर्थात् सफल जीवनवाले हैं । (इतरथा +) नहीं तो । (दृतयः-इव) लुहारकी धौंकनियोंकी समान (श्वसन्ति+) श्वासलेते हैं अर्थात् लुहारकी धौंकनीके वायुकी समान उनके श्वास माता पिता आदिको सन्ताप देने वाले व्यर्थ ही हैं । यदि कहो कि-भक्ति न करने वालोंको भी जीवनका काम आदि फल है तो-(महदहमादयः) महत्तत्त्व और अहंकारआदि तत्त्वोंने भी । (यदनुग्रहतः) जिनके अनुग्रहसे, अर्थात् जिन तुम्हारे रचनाके अनन्तर उनमें प्रवेश करनेसे सामर्थ्ययुक्त होकर । (अंडम्) समष्टिशरीररूप ब्रह्माण्डको (असृजन्) उत्पन्न करा है । अर्थात् ऐसे परम अनुग्रह करनेवाले भी तुम्हारा भजन न करने वालोंको उलटा कृतघ्नपनारूप दोष प्राप्त होकर वह विषय भोग आदि फल भी नहीं मिलता है । यदि कहो कि—किस प्रकारका मैं उपासना करने योग्य हूँ ? तो-(यः) जो । (अन्नमयादिषु) अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय इन पाँच कोशोंमें । (पुरुषविधः) तिन तिन अन्नमय आदि कोशोंकी समान आकारवाला, अर्थात् देह, प्राण मन, बुद्धि, और ज्ञान इन स्वरूपोंसे उच्चारण कराजाता है सो तुम हो । यदि कहो कि-चैतन्यस्वरूप रहने वाले मुझे तिन २ अन्नमयादि कोशोंका आकार कैसे प्राप्त होता है ? तो-(अत्र) इन कोशोंमें । (अन्वयः) तुम्हारा अन्वय है अर्थात् जैसे काठमें अग्निका अन्वय होता है तैसे अन्वय(२) है इस कारण तिस २ का आकार प्राप्त होता है । यदि कहो कि-तो फिर मैं सत्य और असङ्ग कैसे होसकता हूँ ? तो (चरमः) अन्तिम अवधिरूप हो अर्थात् अन्नमयादि कोशोंका वर्णन चलने पर

कर्मणा लिप्यते पापकेन ॥ तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुते ॥ एतं ह वाव न तपति ॥ किमहं साधु नाकरवं । किमहं पापमकरवम् ।' इत्यादि श्रुतिप्रमाण हैं ।

१ असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ तथा ॥ न चेदवेदीन्महती विनष्टिः ॥ ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवोपयन्ति ॥ इत्यादि श्रुतियें ॥

२ स वा एष पुरुषोऽन्नमयस्तस्येदमेव शिरः इत्यादि प्रमाणसे ।

ष्यवशेषमृतम् ॥ १७ ॥ उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृशः परिसरपद्धतिं हृदय-मारुणयो दहरम् । तत उदगादनन्त तव धाम शिरः परमं पुनरिह यत्समेत्य न

पुच्छभाव(१)से अवधि मान कर वर्णन करा हुआ जो सो तुम हो । अच्छा तो भी अन्नमयादि कोशोंमें अन्वय होनेके कारण असङ्गपनेकी हानि ही होयगी ? ऐसा कहो तो-(सदसतः) स्थूलसूक्ष्मरूप अन्नमय प्राणमय आदि कोशोंसे । (परम्) व्यतिरिक्त, अर्थात् अन्नमयादि कोशोंका साक्षी । (एषु) इनमें । (अवशेषम्) अवशेष रहनेवाला,अर्थात् तिन अन्नमयादि कोशोंका 'नेति नेति' इत्यादि श्रुतियों से अपवाद होनेपर शेष रहनेवाला,(अथ) और । (ऋतम्) सत्यस्वरूप ।(यत्) जो ब्रह्म ! (तत् +) सो । (त्वम्) तुम । (असि +) हो । यदि कहो कि—जो मैं ऐसा सत्यस्वरूप ब्रह्म हूँ तो उन अन्नमय आदि कोशोंमें मेरा अन्वय कैसे कहा? तो—तुम्हारे शुद्ध स्वरूपका निरूपण करनेके निमित्त शाखाचन्द्रन्यायसे अन्वय कहा है, अर्थात् जैसे किसीकी दृष्टि चन्द्रमा पर पहुँचानेके निमित्त कहते हैं कि-देखो यह वृक्षकी शाखा पर चन्द्रमा है,तो क्या शाखा पर चंद्रमा होता है ? नहीं, किन्तु चन्द्रमाका निरूपण करनेको ऐसा कहते हैं तिसी प्रकार तुम्हारे शुद्ध स्वरूप का निरूपण करनेकेनिमित्त ही अन्नमयादि कोशोंमें तुम्हारा अन्वय कहा है वास्तव में तुम सत्यस्वरूप असङ्ग हो ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति- नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः ॥ नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥ अर्थात् हे भक्त के संकट दूर करनेके निमित्त नृसिंहावतार धारने वाले परमात्मन् ! यदि मानवशरीरको पाकर,श्रवण वर्णन और भली प्रकार स्मरण आदि करके तुम्हारा भजन नहीं करते हैं तो यह मनुष्योंका श्वास लेकर जीना लुहारकी धोंकनीके वायुकी समान है तिससे निरर्थक है ॥ १७ ॥ अब 'उदरं(२) ब्रह्मेत्यादि' श्रुति, ईश्वरके विषैं मनका प्रवेश होनेके निमित्त उपासनाओंके भेद कहती हैं कि-(अनन्त !) हे अनन्त ! । (ऋषिवर्त्मसु) ऋषियोंके संप्रदायमार्गों में । (ये) जो । (कूर्पदृशः(३)) स्थूलदृष्टि पुरुष । (सन्ति+) हैं (ते +) वह । (उदरम्(४)) उदरमेंके मणिपूरचक्रमें रहनेवाले ब्रह्मको । (उपासते) ध्यानके द्वारा उपासना करते हैं । (आरुणयः) अरुणके वंशमें उत्पन्न हुए ऋषि (परिसर(५) पद्ध-

१ ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा इत्यादि वेदमें कहा हुआ ।

२ उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षा उपासते, हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो, ब्रह्मा हैवैना इत ऊर्ध्वं त्वेवोदसर्पत्तच्छिरोऽश्रयत, यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः ॥ इत्यादि ॥

३ कूर्पं शर्करारजो विद्यते दृक्ष्वक्षिषु येषां ते तथा रजः पिहितदृष्टयः स्थूलदृष्टय इति यावत् ।

४ उदरालम्बनं मणिपूरकस्थं ब्रह्म ।

५ परितः सरन्ति प्रसर्पन्तीति परिसरा नाड्यस्तासां पद्धतिं मार्गं प्रसरणस्थानमित्यर्थः ।

पतन्ति कृतांतमुखे ॥ १८ ॥ स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्च-काश्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः । अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरज-धियोऽन्वयंत्यभिविपण्यव एकरसम् ॥ १९ ॥ स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं

तिम्) सर्वत्र नाड़ियें फैलनेके मार्ग ऐसे । (हृदयम्) हृदयमें स्थित (दहरम्) सूक्ष्म रूपको । (उपासते+) ध्यान करते हैं । क्योंकि-(ततः) तिस सूक्ष्मसे (परमम्) सर्वोत्तम अर्थात् ज्योतिर्मय । (तव) तुम्हारा । (धाम) प्राप्तिस्थान अर्थात् सुषुम्नानाड़ीरूप स्थान । (शिरः) मस्तकपर्यंत (उद्गात्) ऊपरको गयाहुआ है । अर्थात् मूलाधार (१) चक्रसे हृदयके मध्यमेंको होकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त ऊपरको गया हुआ है, उसकी ऐसी महिमा है कि-(यत्) जिस सुषुम्नानाड़ीरूप स्थानको । (समेत्य) प्राप्त होकर । (पुनः) फिर । (इह) यहाँ । (कृतान्तमुखे) मृत्युके मुखरूप संसारमें । (न) नहीं । (पतन्ति) पड़ते हैं ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'उदरादिषु यः पुंसां चिंतितो मुनिवर्त्मभिः । हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ।' अर्थात्—मुनियोंके प्रचार करे हुए मार्गोंके द्वारा, मणिपूरकचक्र आदिके विषें ध्यान करे हुए जो दिव्यरूप भगवान् पुरुषोंके मृत्युके भयरूप संसार अर्थात् आवागमनको दूर करते हैं [मुक्ति देते हैं] उन हृदयमें विद्यमान सर्वान्तर्यामी जगदीश्वरकी हम उपासना करते हैं ॥ १८ ॥ अब, यदि ईश्वरको भी जीवात्माकी समान उदर आदिका संबन्ध है तो कौनसी विशेषता है जो उनकी उपासना करें ? इस शंकाको दूर करने वाली 'एकोदेव (२) इत्यादि' श्रुति स्तुति करती हैं कि-(प्रभो +) हे प्रभो ! (त्वम् +) तुम । (स्वकृतविचित्रयोनिषु) अपनी ही रची हुई उत्तम-नीच मध्यमरूप देवता-तिर्यक्-और मनुष्यकी योनियोंमें अर्थात् प्रकट होनेके स्थानरूप कार्योंमें । (हेतु-तया) कारणरूपसे । (विशन् इव) प्रवेश करते हुए से । अर्थात् उपादानकारण(३) रूपसे पहिले ही विद्यमान होकर भी तदनन्तर प्रवेश करे हुए से होकर । (स्व-कृतानुकृतिः) अपनी ही रचीहुई तिन २ देवता आदि योनियोंका अनुकरण करते हुए । (तरतमतः) उत्तम अधम आदि न्यूनाधिकभावसे । (अनलवत्) अग्निकी समान । अर्थात्—जैसे अग्नि स्वयं तारतम्य (छोटा बड़ापन) रहित होकर भी काठके अनुसार बड़े-छोटे—मोटे आदि रूपवाला प्रतीत होता है तैसे, (चकास्सि) भासते हो । (अथ) इसकारण । (अभिविपण्यवः(४)) इस लोक और परलोकमें भोगनेयोग्य कर्मोंके फलोंसे रहित हुए । (विरजधियः) निर्मलबुद्धिपुरुष । (वित-

१शतञ्चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्व-मेति विष्वगन्या उत्क्रमणे भवन्तीति ।

२ एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूता-धिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।

३ तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्–इति श्रुतिः ।

४ अभि-वि-उपसर्गपूर्वकस्य पण व्यवहार इत्यस्य धातो रूपं पण्युरिति, तस्य बहुवचने अभिविपण्यवः, अभितो विगतव्यवहाराः, ऐहिकामुष्मिककर्मफलरहिता इत्यर्थः ।

तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोऽशकृतम्। इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥ २० ॥ दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय

थाम्) मिथ्याभूत। (अमृषु) इन देव मनुष्य आदि योनियोंमें। (अवितथम्)सत्य (समम्) समान (एकरसम्) एकरसरूप। (तव) तुम्हारे। (धाम) स्वरूपको (अन्वयन्ति) जानते हैं। अर्थात्—अखण्डैश्वर्यरूप तुम भगवान्को, उपाधिका करा हुआ न्यूनाधिकभाव न होनेके कारण तुम ही उपासना करने योग्य हो ऐसा जानते हैं॥ श्रीधरजीकी अनुकृति—'स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम्। सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तमुपास्महे॥' अर्थात् अपने रचेहुए कार्य कहिये देव-मनुष्यादि शरीरोंमें, न्यूनाधिकभावरहित, सर्वव्यापी, सत्स्वरूप भगवान्की हम उपासना करते हैं॥ १९॥ अब स यश्चेत्यादि,(१) श्रुति, यह जीव वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही है, ऐसा बोधन करती हुई अवतार धारण करनेवाले भगवान्के भजन का प्रकार कहती हैं—(देव +) हे देव! (अमीषु) इन। (स्वकृतपुरेषु) अपने कर्मोंसे करे हुए मनुष्यादि शरीरोंमें। (भोक्तृत्वेन +) भोक्तापनेसे।(विद्यमानम्+) विद्यमान। (परम् +) परन्तु। (अबहिरन्तरसंवरणम् (२)) कार्यकारणरूप आवरणोंसे रहित। (पुरुषम्) जीवको। (अखिलशक्तिधृतः) सकलशक्तियोंके आश्रय पूर्णरूप। (तव) तुम्हारे। (अंशकृतम् (३)) अंशकी समान और करे हुए की समान अर्थात् अंशरूप और रचाहुआसा प्रतीत होता है और वास्तवमें त्वद्रूप ही है ऐसा। (वदन्ति) तत्त्वज्ञानीपुरुष कहते हैं। (इति) इसप्रकार अर्थात् जीवके तत्त्वका निर्णय करे विना परब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होगी इसकारण (नृगतिम्) जीवके तत्त्वको। (विविच्य) विचारकर। (कवयः) तत्त्वज्ञानी पुरुष। (विश्वसिताः +) विश्वासयुक्त होते हुए अर्थात् भगवान्के चरणकी शरण लेनेसे ही संसारका दुःख दूर होगा; अन्यथा नहीं, ऐसा विश्वास रखते हुए। (निगमावपनम्(४)) शास्त्रमें कहेहुए सकल कर्म अर्पण करनेके खेतरूप अर्थात् जहाँ अर्पण करे हुए सकल कर्म मुक्तिरूप फल देनेवाले होते हैं ऐसे। (अभवम्) संसारको दूर करनेवाले। (ते) तुम्हारे। (अंघ्रिम्) चरणको। (भुवि) इस भूलोकमें। (उपासते) पूजनवन्दनादि करके सेवन करते हैं (यही इस भूलोकमें उचित है॥ श्रीधरजीकी अनुकृति 'त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्। त्वदंघ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय॥' अर्थात्—हे परमानन्दस्वरूप ईश्वर! तुम्हारे अंशरूप मेरे, तुम्हारी मायाके करे हुए बन्धनको, तुम अपने चरणकी सेवाका उपदेश देकर दूर करदो॥ २०॥ यदि कोई भक्तिको छोटा साधन कहे तो उचित नहीं, ऐसा माननेवालों कितनी ही श्रुतियें भक्तिका महत्त्व वर्णन करती हैं कि (ईश्वर)

१ स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः तत्त्वमसि।

२ बहिः कार्यम्, अन्तरं कारणम्, तयोः संवरणेन रहितम्।

३ अंश इव अंशः, कृत इव कृतः, तम्।

४ निगमोक्तकर्मणामावपनमासमन्तादुप्यतेऽस्मिन्नित्यावपनं क्षेत्रम्।

तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः । न परिलषंति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ॥ २१ ॥ त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च । न वत रमन्त्यहो अस-

हे ईश्वर ! (दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय) दुर्बोध आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेके निमित्त आत्ततनोः (अवतार धारण करने वाले । (तव) तुम्हारे । (चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः) चरित्ररूप महासमुद्रमें स्नान करके श्रमरहित हुए । (केचित्) कोई । अर्थात् विरले ही भक्तिरसिकपुरुष । (ते) तुम्हारे । (चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः) चरणकमलके विषैं हंसकी समान रमण करनेवाले भक्तजनोंके कुलोंसे होनेवाली संगति करके घरद्वार आदिका करा है त्याग जिन्होंने ऐसे । (सन्तः +) होते हुए । अर्थात् भक्तोंके संगसे घर आदिको छोड़कर श्रवणकीर्त्तन आदिमें निमग्न होते हुए तिस ही सुखसे तृप्त हुए वह । (अपवर्गम्—अपि) मोक्षको भी (न) नहीं । (परिलषन्ति) चाहते हैं । अर्थात् जब मोक्षको नहीं चाहते तो फिर दूसरे इन्द्रपद आदिकी इच्छा क्या करेंगे ? अर्थात् कदापि नहीं करेंगे । इस कारण तुम्हारी भक्ति—मुक्तिसे भी अधिक(१) है । श्रीधरजीकी अनुकृति—'त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः । कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥' अर्थात्—हे भगवन् ! कोई विद्वान् तुम्हारी कथारूप अमृतके समुद्रमें विहार करते हुए, परम आनन्दसे युक्त होकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्गको तृणकी समान समझते हैं ॥ २१ ॥ अब 'आराममस्य पश्यन्ति इत्यादि, इत्यादि श्रुतियें(२) वारम्वार ऊँचे स्वरसे परमात्मा ईश्वरके ऊपर प्रेम करनेका उपदेश करती हैं कि-(त्वदनुपथम्) तुम्हारी सेवामें उपयोगी होनेवाला । (इदम्) यह । (कुलायम्) शरीर । (आत्मसुहृत्प्रियवत्) आत्मा, सुहृद् और प्रियकी समान । (चरति) स्वाधीनतासे वर्ताव करता है । (तथा) तथापि । (आत्मनि) आत्मा । (प्रिये) प्रिय ! (हिते) हित । (च) और (उन्मुखे) संसारसे तारनेके विषयमें सन्मुख खड़े । अर्थात् ऐसे सब प्रकार सुखसे सेवन करने योग्य भी (त्वयि) तुम्हारे विषैं । (जीवाः +) प्राणी । (न) नहीं । (रमन्ति) 'श्रवणकीर्त्तन सखाभाव आदिके द्वारा' रमण करते हैं । (वत) यह बड़े दुःखकी वार्त्ता है । केवल रमण ही करते नहीं इतना ही नहीं किन्तु—(असदुपासनया) देह आदिकोंके लालन पालन आदि करके । (आत्महनः) आत्मघात कर लेते हैं । वह आत्मघात ऐसा है कि—(यदनुशयाः) जिन देहादिकोंके लालनपालन आदिकी वासनाको धारण करनेवाले वह जीव । [कुशरीरभृतः] श्वान सूकर आदिकी निन्दित योनियोंको धारण करते हुए । [उरुभये] अनेकों भयोंसे युक्त संसारमें

१ यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्चेति श्रुतिः । व्याख्यातश्च सर्वज्ञैर्भाष्यकृद्भिः-मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्त इति ।

२ आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन । न तं विदाथ य इमाजजानान्यद्युष्माकम तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

दुपासनयात्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ॥ २२ ॥ निभृतमरुन्मनोऽक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् । स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ॥ २३ ॥ क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये । तर्हि न

[भ्रमन्ति] भ्रमते हैं । इस कारण ही उनको आत्मघाती समझना चाहिये । श्रीधरजीकी अनुकृति-त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह। कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति ॥' अर्थात् हे भगवन् ! इस संसारमें मेरा ऐसा मानुष जन्म कब होगा कि जब जगन्नाथ आत्मस्वरूप तुम्हारे विषैं मेरा मन रमेगा ॥२२॥ अब, आत्मा वारे द्रष्टव्य इत्यादि' (१)श्रुतियें, भक्तिके अङ्गरूपसे ध्यानका उपदेश करती हैं कि-(प्रभो +) हे प्रभो ! (निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुजः) जिन्होंने अपने प्राण, मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया है ऐसे दृढ़ योग करनेवाले । (मुनयः) ऋषि । (हृदि) हृदयमें । (यत्) जिस तुम्हारे तत्त्वको । [उपासते] ध्यान करते हैं [तत्] उस ही तुम्हारे तत्त्वको । [अरयः] शत्रु (अपि) भी । (तव) । तुम्हारे । (स्मरणात्) स्मरणसे । (ययुः) प्राप्त हुए हैं और (उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः) शेषजीके शरीरकी समान कोमल भुजदण्डपर आसक्तचित्त हुईं । (स्त्रियः) स्त्री गोपियें । (तथा +) तैसे ही । (अंघ्रिसरोजसुधाः) तुम्हारे चरणकमलका उत्तम प्रकारसे चिन्तवन करनेवालीं (समदृशः) समता कहिये देश-काल-वस्तु परिच्छेदरहितपनेसे देखनेवालीं (वयम्) हम श्रुतियोंकी अभिमानिनी देवता अथवा गोपीरूपताको(२) प्राप्त हुईं हम श्रुतियें। (अपि) भी । (ते) तुम्हें । (समाः) समान हैं । इस प्रकार तुम्हें सब ही समान हैं अर्थात् तुम्हारे स्मरणकी ऐसी ही महिमा है कि-जो योगी तुम्हारी हृदयमें उपासना करते हैं, जो शत्रु द्वेषसे तुम्हारे परिच्छिन्नरूपको चिन्तवन करते हैं, जो स्त्रियें कामातुर होकर तुम्हारे परिच्छिन्नरूपका ध्यान करती हैं और हम तुम्हें अपरिच्छिन्नरूपसे देखती हैं, इन सबोंको वह तुम्हारा ध्यान समानरूपकी प्राप्ति करा देता है। श्रीधरजीकी अनुकृति-'चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम् । यथा कथञ्चिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम्' अर्थात् हे देव ! परमदुर्लभ जो, प्रेमके साथ तुम्हारा स्मरण सो, हे नृहरे ! जिस किसी प्रकार भी मुझे रात्रि-दिन हो॥२३॥ अब 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते इत्यादि श्रुतियें,(३)

---

१ आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । इत्यादिः

२ श्रुतीनां गोपीरूपत्वमुक्तं बृहद्वामने 'तुष्टोऽस्मि ब्रूत भो विज्ञा वरं यन्मनसेप्सितम् ।' इति भगवदुक्ताः श्रुतय ऊचुः 'यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतत्त्वेन गोपिकाः । भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनिनस्तथा ॥' इति प्रार्थितो भगवानुवाच 'भ्रजे गोप्यो भविष्यथेति ॥'

३ यतो वचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् ॥ कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ॥ अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥ अनेजदेकं मनसो जवीयो नैतद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत् ॥ तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ इत्यादि ॥

सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

भगवान्के तत्त्वको जानना कठिन है, ऐसा कहती हुई भक्तिको ही स्वीकार करके स्तुति करती हैं कि-(बत) अहो!भगवन्!(इह) इस जगत्में। (अग्रसरम्) पहिलेसे ही होनेवाले (त्वाम्+) तुमको (अवरजन्मलया) इधरका उत्पत्ति और नाशसे युक्त (कः-नु) कौन पुरुष? (वेद) जानता है, कोई नहीं जानता अर्थात्-पहिले होनेवाला पुरुष, पीछे होनेवाले पुरुषके वृत्तांतको जानता है, पीछे होनेवाला पुरुष, पहिलेके पुरुषका वृत्तान्त नहीं जानता है, जैसे पिता, पुत्रके जन्म आदिका वृत्तांत जानता है परन्तु पुत्र, पिताके जन्म आदिका वृत्तान्त नहीं जानता है तैसे ही पूर्वसिद्ध तुम ही केवल अनन्तर उत्पन्न हुए जीवोंके सब वृत्तान्तको जानते हो, वह जीव तुम्हारे वृत्तान्तको नहीं जानते हैं अब ईश्वर पूर्वसिद्ध और जीव अर्वाचीन है इस विषयमें प्रमाण कहनेवाली श्रुतियें, जीवोंको ज्ञान न होनेका कारण कहती हैं कि-(यतः) जिन तुमसे (ऋषिः) ब्रह्माजी। (उद्गात्) उत्पन्न(१) हुए। [यम्-अनु] जिन ब्रह्माजीके अनन्तर। [उभये] दो प्रकारके अर्थात् आध्यात्मिक और आधिभौतिक, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंके अधिष्ठाता अथवा निवृत्तिनिष्ठ सनकादिक और प्रवृत्तिनिष्ठ मरीचि आदि यह दो प्रकारके। [देव-गणाः] देवगण। (उत्पन्नाः ×) उत्पन्न हुए। आगेके और जीव उनके भी पीछेके हैं। और [यदा] जब। [अवकृष्य] सकल जगत्को अपनेमें समेट कर। [शयीत] शयन करते हो। [तर्हि] तब। अर्थात् तुम्हारे पीछे शयन करनेवाले जीवोंको ज्ञान प्राप्त होनेका साधन ही नहीं होता है, क्योंकि-इस समय (सत्) आकाश आदि स्थूल पदार्थ। [न] नहीं। [असत्] महत्तत्व आदि सूक्ष्म पदार्थ। [न] नहीं [उभयम्] स्थूलसूक्ष्मात्मक शरीर। [च+] भी। [न+] नहीं [च] और [कालजवः] उसका निमित्तभूत, कालका वेग। [न] नहीं]। तैसे ही-[तत्र] तिस समय [किमपि] इन्द्रिय, प्राण, मन आदि कुछ भी। तथा [शास्त्रम्] उनका बोध करनेवाले वेद पुराण आदि शास्त्र। [न] नहीं। इस कारण उस समय भी जीवोंको तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है। इस सबका अभिप्राय यह है कि-इरली ओरकी सृष्टिमें उत्पन्न होकर देह आदि उपाधिके कारण तुमसे बहुत पृथक् हुए और कालवश करके मलिनान्तःकरण हुए जीवोंको ज्ञान प्राप्त करनेकी शक्ति नहीं है। और जब प्रलयकालके समय तुममें और इसमें बहुतसा अन्तर नहीं होता है तब ज्ञानका साधन न होनेके कारण, इनको तुम्हारा ज्ञान नहीं होता है इस कारण इन जीवोंमें, अनन्य शरणागत होकर तुम्हारी भक्ति करी है॥ श्रीधरजी की अनुकृति-क्वाहं बुद्ध्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव। दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश॥ अर्थात् हे दीनबन्धो! हे दयासिन्धो! हे नृहरे! कहाँ मैं बुद्धि आदिसे बँधा हुआ? और कहाँ तुम्हारा तेज? इस कारण हे भूमन्! मुझे भक्ति दो ॥२४॥

१ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्, इति।

जनिमसतः सतो मृतिमुतात्मनि ये च भिदां विपणमृतं स्मरन्त्युपदिशन्ति त आरूपितैः । त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयि न ततः परत्र स भवेदवबोधरसे ॥ २५ ॥ सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशंत्यशेषमिद-

अब 'सदेव सौम्येदमित्यादि' श्रुतियें(१),उपदेश करनेवाले लोकोंके भी मतभेद होने के कारण अनेकों भ्रम हैं इस कारण उनसे तत्त्वज्ञान होना कठिन है ऐसा कहती हैं-(असतः) सृष्टिके पहिले न होनेवाले इस जगत्की (जनिम) उत्पत्तिको । (ये +) जो वैशेषिक(२) (स्मरंति) कहते हैं । अथवा ऐसा अर्थ करना कि- (असतः) जीवमें पहिले न होनेवाले ब्रह्मत्वकी । योगसाधनके द्वारा । (जनिम) उत्पत्तिको । (ये +) जो पातञ्जल(३) (स्मरन्ति) कहते हैं (सतः) सत् कहिये पञ्च-ज्ञानेन्द्रियें और मन यह छः ६ इंद्रियें, इनके छः ६ विषय, और छः ६ ज्ञान, एक शरीर, एक सुख तथा एक दुःख ऐसे इक्कीस प्रकारके दुःखोंके (मृतिम्) नाश-रूप मोक्षको (ये +) जो गौतम मतवाले नैयायिक । (स्मरंति +) कहते हैं । (उत) और भी । (आत्मनि) जीवात्मा और परमात्मामें । (भिदाम्) घटा-काश और मठाकाशकी समान भेदको (ये) जो सांख्य आदि । (स्मरन्ति +) कहते हैं । और । (विपणम्) कर्मफलको । (ऋतम्) सत्य(४) । (ये +) जो मीमांसक (स्मरन्ति) कहते हैं । (ते) वह निराला २ उपदेश करनेवाले सब ही मत-वादी । (आरूपितैः) आरोप करे हुए भ्रमोंसे ही । (उपदिशन्ति) उपदेश करते हैं । अर्थात् वह तत्त्वदृष्टिसे उपदेश नहीं करते हैं, क्योंकि—यह सब मत हमारे अद्वैत मतसे विरुद्ध हैं । हाँ यह अन्तर्यामी आत्मा यदि वास्तवमें त्रिगुणमय होता तो इनका कहना होसकता । परन्तु [पुमान्] पुराणपुरुष आत्मा । [त्रिगुणमयः] त्रिगुणमय है । [इति] इस कारणसे जो [भिदा] भेद आदि मानना है सो । [यत्] क्योंकि । [त्वयि] तुम्हारे विषें । [अबोधकृता] अज्ञान करके उत्पन्न है । तिस से [सः] वह भेद । (ततः) तिस अज्ञानसे । [परत्र] परली ओरके । [अवबो-धरसे] ज्ञानघनरूप तुम्हारे विषें । [न] नहीं [भवेत्] होसकता । श्रीधरजी की अनुकृति-'मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादांधकारान्तरभ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहि-

१ सदेव सौम्येदमग्र आसीत् । असद्वा इदमग्र आसीत् । ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति । अनीशया शोचति मुह्यमानाः अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः । स्वयंधीराः पण्डितं मन्य-मानाः । जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म । एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते वहुचन्द्र-वत् । इत्यादि श्रुतिविरोधात् ।

२ सप्तपदार्थवादी नवीन तार्किक जिनको 'काणाद' कहते हैं वह वैशेषिक होते हैं ।

३ योगशास्त्र रचने वाले, इनका यह आशय है कि-जैसे ताँबा आदि धातु पहिले सुवर्णरूप न होकर सुवर्णकारक औषधिका पुट देने पर सुवर्ण होजाता है तैसे ही पहिलेसे ब्रह्मरूप न होने वाला भी जीव, योगशक्तिसे ब्रह्मरूप होजाता है

४ अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति

मात्मतयात्मविदः । नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्ट-
मिदमात्मतयाऽवसितम् ॥ २६ ॥ तव परि ये चरंत्यखिलसत्वनिकेततया त उत

मस्त्वज्ञानदस्मोऽस्फुटम् । श्रीमन्माधव ! वामन ! त्रिनयन ! श्रीशंकर ! श्रीपते !
गोविन्देति ! मुदा वदन्मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥' अर्थात् हे प्रभावशालिन् !
मिथ्या तर्कोंसे परमकर्कश पुरुषोंके कहे हुए वादरूप अन्धकारमें भ्रमने वाले मन्द-
मति पुरुषको, तुम्हारा ज्ञानमार्ग दुर्गम है । हे श्रीमन् ! हे माधव ! हे वामन ! हे
त्रिनेत्र ! हे शंकर ! हे श्रीपते ! हे गोविन्द ! हे मधुपते ! इसप्रकार आनन्दके साथ
कहता हुआ मैं, कब मुक्त होऊँगा ? ॥ २५ ॥ अब, यदि असत् वस्तु उत्पन्न नहीं
होती है, और पुरुष त्रिगुणमय नहीं है, ऐसा होय तो यह सब प्रपञ्च, और पुरुष
भिन्न नहीं हैं ऐसा होयगा, परन्तु उनके भेदकी प्रतीति तो अनुभवमें आती है, ऐसा
कैसे होता है ? ऐसा कोई कहे तो-'असतोऽधिमन इत्यादि' श्रुतियें(१) कहती हैं-
(मनः) मनके द्वाराही विलसित होनेवाला । (इदम्) यह । (त्रिवृत्) त्रिगुणो-
त्मक जगत् । (आमनुजात) अन्तर्यामी पुरुषपर्यन्त । (असत्) मिथ्याभूत होकर
(सत्-इव) अधिष्ठानरूप आत्माकी सत्यतासे सत्यसा । (विभाति) प्रतीत होता
है । अत्र आत्मज्ञानी पुरुषोंको भी यह जगत् सत्य ही है ऐसा भासता है, फिर उस
को खोटा कैसे कहा जासकता है ? ऐसा कोई कहे तो-(आत्मविदः) आत्मज्ञानी
पुरुष । [इदम्] भोक्ताभोग्यरूप इस । (अशेषम्) सकल जगत्को । [आत्मतया]
आत्मता करके अर्थात् अधिष्ठानरूप आत्माकी सत्ता करके । [सत्] यह सत्य है
ऐसा (अभिमृशन्ति) जानते हैं । आत्मासे भिन्न सत्यरूप नहीं जानते हैं, इसविषय
में लोकाचार दिखाते हैं कि-(कनकार्थिनः +) सुवर्ण लेनेकी इच्छा करने वाले
पुरुष । [कनकस्य] सुवर्णके । [विकृतिम्] विकाररूप कुण्डलादिक पदार्थोंको
[नहि] नहीं । [त्यजन्ति] त्यागते हैं । [परम+] किंतु । (तदात्मतया) सुवर्ण
रूपता करके ही । [गृह्णन्ति +] ग्रहण करते हैं । तैसे ही-[स्वकृतम्] आत्मा
करके स्वयं उपादान कारण होकर करा हुआ । और (अनुप्रविष्टम) तिस पुरुष-
रूप आत्मा करके भीतर प्रवेश करा हुआ । इदम्) यह भोक्तृभोग्यात्मक जगत् ।
(आत्मतया) आत्मारूप ही है ऐसा (अवसितम्) आत्मज्ञानी पुरुषोंने जाना है॥
श्रीधरजीकी अनुकृति 'यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत्स्वतः । सदाभासमसत्य-
स्मिन्भगवन्तं भजामतम् ॥' अर्थात्-स्वयं असत्स्वरूप यह जगत्, जिनकी सत्तासे
सत् प्रतीत होता है ऐसे इस असतरूप जगत्में सतरूपसे भासने वाले तिन भग-
वान्का हम भजन करते हैं ॥ २६ ॥ अब 'सत्यं ज्ञानमित्यादि' (२) श्रुतियें, भक्ति
करके ही ज्ञान सुलभ होता है ऐसा वर्णन करती हैं-(प्रभो+) हे प्रभो ! (अखिल
सत्त्वनिकेततया) तुम सकल प्राणियोंके आश्रयस्थान हो ऐसा जान कर । (ये)

१ असतोधिमनोसृजत् मनः प्रजापतिमसृजत् प्रजापतिः प्रजा असृजत्
२ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह
नानेव पश्यति ।

पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः । परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनंति न ये विमुखाः ॥ २७ ॥ त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहंति समदंत्यजयाऽनिमिषाः । वर्षभुजोऽखिलक्षिति-

जो पुरुष । (तव) (१) तुमको, (परिचरन्ति) (२) सेवन करते हैं । (ते) वह । (उत) ही । (अविगणय्य) तिरस्कार करके । (निर्ऋतेः) मृत्युके (शिरः) शिरको । (पदा) चरणसे । (आक्रमन्ति) दबाते हैं । अर्थात् मृत्युको जीत कर मोक्ष पाते हैं, उनके कृतार्थ होनेमें कोई सन्देह नहीं है । (त्वयि) तुम्हारे विषैं । (कृतसौहृदाः) किया है प्रेम जिन्होंने ऐसे । (ते) वह पुरुष । (खलु) निःसंदेह (पुनन्ति) पवित्र करते हैं अर्थात् अपनेको तो पवित्र करते हैं सो करते ही हैं परन्तु दूसरों (३) को भी भक्तिमार्गका उपदेश कर पवित्र करके तारदेते हैं । (ये) जो । (विमुखाः) तुमसे विमुख कहिये अभक्त हैं । (ते +) वह । (न +) नहीं। (पुनन्ति) पवित्र करते हैं । अर्थात् वह अपनेको भी पवित्र नहीं करते फिर दूसरोंको कहाँसे पवित्र करेंगे ? क्योंकि-(विबुधान्) विद्वान् । (अपि) भी । (तान्) तिन अभक्तोंको । [त्वम् +] तुम । [गिरा] वेदरूप वाणीके द्वारा । [पशून्-इव] पशुओंकी समान अर्थात् जैसे रज्जुसे वृषभ आदि पशुओंको बाँधते हैं तैसे तिन २ कर्मोंके अधिकारके अनुसार । [परिवयसे] बाँधते हो । इसकारण तुम्हारे भक्तोंको ही ज्ञान और मोक्ष सुलभ (४) है, दूसरोंको नहीं ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठंतु चागमान् । यजंतु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरंति ॥' अर्थात् मनुष्य, पञ्चाग्निके तापोंसे तपैं पर्वतों परसे गिरें, तीर्थोंकी यात्रा करते फिरें, शास्त्रोंको पढ़ें, दर्श पौर्णमास आदि यागोंसे यजन करें और नाना प्रकारके वादोंसे विवाद भी करें परन्तु श्रीहरिका आश्रय लिये बिना मृत्युको नहीं तरसकते ॥ २७ ॥ अब 'अपाणिपाद इत्यादि' (५) श्रुतियें भगवान् ही सुन्दर सेवन करने योग्य हैं ऐसा वर्णन करती हैं-(प्रभो +) हे प्रभो ! । (त्वम्) तुम । (अकरणः) स्वयं इंद्रियोंके सम्बंधसे रहित । और (अखिलकारकशक्तिधरः) सब प्राणियोंकी इंद्रियोंकी शक्तियोंके प्रवर्त्तक । (स्वराट्) स्वतः सिद्धज्ञानवान् । (असि +) हो । इसकारण (अनिमिषाः) इंद्रादिक देवता । [विश्वसृजः] ब्रह्मादिक । [अजया] अविद्यासहित । [तव] तुम्हारे । [बलिम्] पूजनके उपहारको । [उद्वहंति] समर्पण करते हैं । और [समदन्ति]

१ अत्र कर्मणि षष्ठी ।

२ छन्दसि व्यवहिताश्चेति यच्छब्देन व्यवधानमदोषः ।

३ तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि । तस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्

४ देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः । यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरावित्यादिः ।

५ अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।

पतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥ २८ ॥ स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः । नहि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवापदस्य तव शून्यतुलां दधतः ॥ २९ ॥

भक्षण करते हैं। [च] भी अर्थात् जैसे सेवक पुरुष, अपनी स्त्रियोंसहित, स्वामी की सेवा करते हैं तैसे ही इंद्रादिक देवता और उनके भी पूजनीय ब्रह्मादिक भी, अपनी अविद्यासे युक्त होतेहुए तुम्हें बलि समर्पण करते हैं अर्थात् तुम्हारी सेवा करते हैं और मनुष्योंके दिये हुए हव्य कव्यादिरूप बलिको आप भी भक्षण करते हैं इसमें दृष्टांत-[वर्षभुजः] किसी खण्डके स्वामी राजे। [अखिलक्षितिपतेः-इव] चक्रवर्त्ती राजाको जैसे। अर्थात् जैसे थोड़े २ देशोंके स्वामी राजे, अपने प्रजाओंके दिये हुए कर भेट आदिको ग्रहण करके, चक्रवर्त्ती राजाको स्वयं कर भेटरूप से समर्पण करते हैं । तैसे ही ब्रह्मादिक देवता भी समर्पण करते हैं यदि कोई कहे कि-क्यों तो-[भवतः] कालरूप तुमसे । [चकिताः] प्राप्त हुआ है भय (१) जिनको ऐसे । [(संतः+] होतेहुए । (यत्र) जिस सृष्टि रचने आदि कर्मके ऊपर (ये) जो ब्रह्मादिक । (तु) तो । (अधिकृताः) नियुक्त करे हुए हैं । (ते +) वह । (तत् +) उस कर्मको । विदधति) करते हैं । अर्थात् आपकी आज्ञाका पालन करना यही उनका बलि समर्पण करना है ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिधृक् । सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम् ॥' अर्थात् जो देव इंद्रिय आदिरूप उपाधियोंसे रहित होकर भी सकल इन्द्रियोंकी शक्तियोंको धारण करने वाले, सर्वज्ञ और सबके कर्त्ता हैं उन सबके सेवन करनेयोग्य परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ २८ इसप्रकार इंद्रियोंके प्रवर्तक ईश्वरका, इंद्रियोंके वशीभूत मनुष्य सेवन करते हैं, ऐसा कहा, अब 'यथाग्नेरित्यादि' (२) दूसरी श्रुतियें, इतने ही कारणसे प्राणी ईश्वरका सेवन करते हैं ऐसा नहीं है किंतु उनसे स्वयं उत्पन्न हुए हैं इसकारण उनका सेवन करते हैं, ऐसा वर्णन करनेके निमित्त कहती हैं कि-(विमुक्त) हे नित्यमुक्त ईश्वर ! (ततः) मायासे । (परस्य) पर, अर्थात् मायाके भी प्रेरक । (तव) तुम्हारी । (यदि) जब । (अजया) मायाके साथ । (उदीक्षया) केवल अवलोकनमात्रसे ही । (विहरः) क्रीड़ा (भवति+) होती है (तदा+) तब (उत्थनिमित्तयुजः) 'तुम्हारे अवलोकनमात्रसे' जिनके कर्म और कर्मयुक्त लिङ्गशरीर प्रकट हुए हैं ऐसे (स्थिरचरजातयः) स्थावर और जङ्गम जातिके जीव । (स्युः) उत्पन्न होते हैं । इससे तुम्हारे विषै कोई विषमता नहीं आती है । क्योंकि-[परमस्य] परमदयालु । [वियत इव] आकाशकी समान सम । [शून्यतुलाम्] शून्यकी समताको । [दधतः] स्वीकार करनेवाले ।

१ भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ॥

२ यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एव आत्मनो व्युच्चरन्ति । इत्यादि ॥

अपरिमिता ध्रु वास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रु व नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियंतृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ॥३०॥

और । [अपदस्य] (१) वाणी तथा मनके अगोचर [तव ×] तुम्हें । [कश्चित्] उन जीवोंमेंसे कोई । [अपरः] अपना । अथवा [परः] पराया । (च) भी । [नहि] नहीं । [भवेत्] होता । इस कारण उन जीवोंको तुम्हारा समानभावसे सेवन करना ही उचित है । श्रीधरजीकी अनुकृति-'त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः । जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ॥, अर्थात्-हे नृहरे ! हे पितः ! तुम्हारे अवलोकनमात्रसे क्षोभको प्राप्त हुई माया करके जागृत होने वाले कर्मा करके उत्पन्न हुए और जन्म मरणरूप संसारको प्राप्त तथा खिन्न होने वाले हमारी तुम रक्षा करो ॥ २९ ॥ इस प्रकार परमात्मासे अविद्योपाधिक जीव होते हैं और वह उन परमात्माकी सेवा करते हैं ऐसा कहा । अब, यदि उनकी अविद्या एक है तब तो उससे बँधेहुए जीवके भी एक होनेसे एककी मुक्ति होने पर सबकी मुक्ति होनेका दोष आवेगा और यदि अविद्याओंको नाना (बहुतसी) मानें और जीवात्मा एक माने तो एक अंशमें अविद्या दूर होने पर भी उस ही जीवात्माका अन्य अंशमें संसार दूर न होनेके कारण किसीकी मोक्षही नहीं होगी इससे अविद्या एक और जीवात्मा (अनेक) माना है । वह जीवात्मा यदि अत्यन्त सूक्ष्म हैं तो देहव्यापि चैतन्य नहीं बन सकेगा और देहकी समान परिमाण वाले जीवात्मा हैं ऐसा मानेंगे तो उनको सावयव होनेके कारण अनित्यता प्राप्त होगी और ऐसा होने पर परलोकके साधनोंकी भी व्यर्थता होयगी इस कारण वह जीव वास्तवमें सर्वगत और नित्य है ऐसा कितने ही नैयायिक आदि मानते हैं, उनके मतका दूषण करनेवाली कितनी ही एक श्रुतियें कहती हैं-(ध्रु व) हे नित्यस्वरूप प्रभो ! [जीवाः] जीव । [यदि] जो । [अपरिमिताः] वास्तवमें असंख्यात । [ध्रु वाः] नित्य । (च) और । [सर्वगताः] सर्वव्यापक । (स्युः) हों । [तर्हि] तो । [तेषाम् +] उनका । 'तुम्हारी समानता होनेके कारण, [शास्यता] शिक्षा पानेके योग्यपना । [न] नहीं होसकेगा । [इति] इस कारण (भवता +) तुम्हारे द्वारा । (नियमः) उनका नियमन । [न] नहीं । (स्यात्) होगा । [इतरथा] और तैसा न होने पर । [नियमः +] तुमसे उनका नियमन (घटते +) घट सकता है । क्योंकि-(यन्मयम्-च) जिस बिम्बरूप ब्रह्मसे अविद्या आदि उपाधिके कारण विकाररूप (जीवाख्यम् +) जीवनामक प्रतिबिम्ब । (अजनि) उत्पन्न हुआ है । (तत्) वह बिम्बरूप ब्रह्म । (अविमुच्य) 'अपने प्रतिबिम्बरूप जीव विकारका । कारणरूपसे उसका त्याग न करके । (नियन्तृ) नियमन करने वाला । (भवेत्) होयगा । यदि कहो कि-वह कौनसा है ? तो-(समम्) जो सर्वत्र अनुस्यूत कहिये पुरा हुआ है । यदि कोई कहे कि-'जो, वह' ऐसे संकुचित शब्दोंसे क्यों कहते हो ? यदि समझा होय तो स्पष्टरूपसे उसका वर्णन करो,

१ न पद्यत इत्यपदस्तस्य वाङ्मनसयोरगोचरस्येत्यर्थः ॥

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवंत्यसुभृतो जलबुदबुदवत् । त्वयि

तो-(मतदुष्टतया) जाननेमें आई हुई वस्तुको दोष होनेके कारण । [अनुजानताम्] हम जानते हैं ऐसा कहने वालोंको । [यत्] जो । [अमतम्] प्रायः समझनेमें (१) नहीं आया है । वह यत् तत् [जो, वह] शब्दोंसे प्रकाशित न होने वाला, अतर्क्य और सकल पदार्थोंमें व्याप्त होकर रहने वाला वस्तु ही जीवोंका नियामक होयगा । श्रीधरजाकी अनुकृति-'अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः ॥यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे॥' अर्थात् जिनको श्रुतिने और युक्तिने सकल लोकोंका अन्तर्यामी वर्णन करा है और जो ऐसा ही निश्चय करने योग्य हैं तथा जो सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् हैं उन श्रीमान् नृसिंह भगवान्को ही मैं चित्तसे आश्रय करता हूँ ॥ ३० ॥ अब, चिन्मरूपी परमात्मासे जीव होते हैं इस कारण परमात्मा जीवोंका नियन्ता और जीव नियम्य हैं, यदि ऐसा कहा जाय तो-जीवोंको अनित्यपना प्राप्त होनेसे प्रतिदिन करे हुए कर्मादिकोंका नाश और न करे हुओंकी प्राप्ति होनेका प्रसङ्ग होयगा और मोक्ष नामसे जीवके स्वरूपका नाश ही होजायगा । और सिद्धान्ती तो—स्वप्रकाश आनन्दमय जीवात्माके अविद्याके करे हुए अनर्थोंके दूर होनेको ही मोक्ष कहता है । इस कारण यह विरोध हुआ, ऐसी कोई शङ्का करे तो—अन्तःकरण आदि उपाधियोंके जन्मसे ही जीवोंके जन्म होते हैं, वास्तवमें नहीं होते हैं, ऐसा कहनेके निमित्त शङ्का करते हैं कि-जीवरूपसे उत्पत्ति प्रकृतिकी होती है वा पुरुषकी होती है ? अथवा दोनोंकी होती है ? यदि कहो प्रकृतिकी जीवरूपसे उत्पत्ति होती है तो-जीवोंको जड़ता प्राप्त होयगी, यदि कहोगे कि-पुरुषकी जीवरूपसे उत्पत्ति होती है तो-पुरुषको विकारीपना प्राप्त होयगा, इस कारण ही दोनोंकी भी जीवरूपसे उत्पत्ति नहीं होती है ऐसा कहते हैं कि-(अजयोः) 'अजामेकामित्यादि'(२) श्रुतिमें अजत्व कहिये जन्म रहित वर्णन करे हुए । (प्रकृतिपूरुषयोः) प्रकृतिपुरुषकी अर्थात् केवल प्रकृतिकी वा केवल पुरुषकी । (उद्भवः) जीवरूपसे उत्पत्ति । (न) नहीं । (घटते) होसकती है । (उभययुजा) प्रकृति और पुरुष इन दोनोंमें एकका दूसरेके ऊपर अध्यास होने पर तिससे । (असुभृतः) प्राण आदि उपाधियोंसे युक्तजीव । (जलबुद्बुदवत्) जलके बुलबुलोंकी समान अर्थात् जैसे केवल वायुसे और केवल जलसे बुलबुले नहीं होते हैं किन्तु वह वायु और जल दोनों एकत्र मिलें तो तब ही उत्पन्न होते हैं तिसी प्रकार (भवन्ति) उत्पन्न होते हैं । अर्थात् जैसे बुलबुले उत्पन्न होनेमें वायु निमित्त कारण है और जल

१ यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् । अवचनेनैव प्रोवाच स ह तूष्णीं बभूव यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेषु ॥

२ अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।

त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥३१॥

उपादान कारण है तैसे ही जीवोंकी उत्पत्ति होनेमें प्रकृति निमित्त कारण है और पुरुष उपादान कारण है। तात्पर्य यह है कि-प्रकृति और पुरुषकी एकतासे जीवोंकी उत्पत्ति होती है और 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियोंके बलसे और उत्पत्तिके श्रवण करके जीवका जन्म औपाधिक है, वास्तविक नहीं है ऐसा सिद्ध होता है। अब जीवोंके लयका प्रकार कहते हैं कि—(ततः) वास्तवमें जन्म नहीं है इस कारणसे। (ते) वह। (इमे) यह जीव। (विविधनामगुणैः) नाम गुण आदि अपने नानाप्रकारके कार्योपाधियोंके साथ। (परमे) उपाधिशून्य। (त्वयि) तुम्हारे विषें। 'सुषुप्ति और प्रलयके समय'। (मधुनि) शहदमें। (अशेषरसा इव) सकल फूलोंके रसोंकी समान। अर्थात् जैसे शहदमें (१) सब ही फूलोंके रस, विशेष करके भिन्न २ पहिचाननेमें नहीं आते हैं तथापि सामान्यरूपसे समझमें आजाते हैं तैसे ही सुषुप्ति और प्रलयकालमें तुम्हारे विषें लयको प्राप्त हुए जीव, यद्यपि विशेषरूपसे समझनेमें नहीं आते हैं तथापि उनका कारण लिङ्गशरीर रहनेके कारण सामान्यरूपसे समझे जाते हैं और मुक्तिके समय तो-(अर्णवे) समुद्रमें। (सरितः इव) जैसे नदियें 'अपने (२) नामरूपोंको त्यागकर एकीभावसे लयको प्राप्त होजाती हैं तैसे ही सकल जीव निरुपाधिक तुम्हारे विषें अपने जीवभावको छोड़ कर (लिल्युः) एकीभावसे लयको प्राप्त हुए हैं ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति— 'यस्मिन्नुद्यद्विलयमपि यद्भाति विश्वं लयादौ जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्माव-बोधे। अत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये मध्ये चित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम्॥' अर्थात्-जीवोंसहित यह विश्व जिनके विषें कर्मानुसार प्रकट होकर फिर प्रलय आदिके समय लीन होताहुआ भासता है और गुरुकी कृपा होनेसे केवल आत्मज्ञान प्राप्त होनेपर, जैसे समुद्रमें नदियें नामरूपको छोड़तीहुई लीनहोतीहैं तैसे ही एक साथ जिनके विषें अत्यन्त अन्तको अर्थात् एकीभावरूप मोक्षको प्राप्त होता है तिन त्रिलोकीके गुरु नृसिंह भगवान्को मैं चित्तके मध्यमें ध्यान करता हूँ ३१ इस प्रकार परमेश्वरसे जीव उत्पन्न होते हैं और परमेश्वरके वशीभूत होकर कर्म करते हैं तथा फिर तिस परमेश्वरके विषें ही लयको प्राप्त होजातेहैं ऐसा संसारचक्रमें परिभ्रमण कहा। अब उस संसारके दूर होनेके निमित्त 'परीत्य भूतानीत्यादि(३)' श्रुतियें भगवद्भावका वर्णन करती हैं-(अमीषु) इन। (नृषु) संसारी जीवोंमें (तव)

१ यथा सौम्य मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणां रसान्समवहारमेकतां संगमयन्ति ते यथा तत्र न विवेकं लभन्ते अमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोस्मीत्येव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति सम्पद्यामह इति

२ यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय तथा विद्वान्नाम-रूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

३ परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च। उपस्थाय प्रथमजा-मृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥

नृषु तव मायया भ्रममभीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम्। कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ३२ विजितहृषीकवायुभिरदांतमनस्तुरगं य यह यतन्ति यंतुमतिलोलमुपायखिदः। व्य-

तुम्हारी। (मायया) मायाकरके। (अनुप्रभवम्) वारम्वार जन्ममरणरूप। (भ्रमम्) भ्रमणको (अवगत्य) जानकर। (सुधियः) विवेकी पुरुष (अभवे) संसारको दूर करनेवाले (त्वयि) तुम्हारे विषै। श्रवणकीर्त्तन आदिके द्वारा (भृशम्) अत्यन्त। (भावम्) भक्तिको। (दधति) करते हैं। यदि कहो कि-उस भक्तिके करनेसे क्या होता है ? तो-(अनुवर्त्तताम्) तुम्हें शरण जाकर तुम्हारी भक्ति करने वाले पुरुषोंको। (भवभयम्) संसारका भय (कथम्) कैसे (भवेत् +) होगा ? अर्थात् कभी नहीं होगा। (यत्) क्योंकि-(तव) तुम्हारा। (भ्रुकुटिः) भ्रुकुटि को चलानारूप। (त्रिणेमिः) शीत-उष्ण और वर्षा इन तीन भागवाला संवत्सर नामक काल। (अभवच्छरणेषु) जिनके तुम रक्षक नहीं हो ऐसे पुरुषोंमें ही। (भयम्) जन्ममरण आदिरूप भयको। (सृजति) उत्पन्न करता है, इस कारण ही विचारवान् पुरुष तुम्हारी भक्ति करते हैं॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'संसारचक्र-क्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम्। कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम्॥' अर्थात्-हे नृसिंहभगवन् ! संसार चक्रके दाँतोंसे विदीर्ण हुए और बढ़ेहुए नानाप्रकारके सांसारिक तापोंसे तपेहुए एवं बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार इस संसारमें मानवशरीरको प्राप्त होकर तुम्हारी शरणमें आयेहुए मेरा तुम उद्धार करो॥ ३२॥ वह भगवद्भक्ति, मनको वशमें करने पर होती है और वह मनको वशमें करना गुरुके आश्रयसे होता है,इसकारण'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवेत्यादि'(१) श्रुतियें,गुरुका आश्रय करनेका वर्णन करती हैं कि-(अज) हे जन्मरहित परमेश्वर ! (विजितहृषीकवायुभिः) जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको और प्राणोंको जीता है ऐसे योगियों करके। [अदान्तम्] वशमें करनेको अशक्य ऐसे [अतिलोलम्] अति-चञ्चल। [मनस्तुरगम्] अपने मनरूपी घोड़ेको। [यन्तुम्] वशमें करनेके निमित्त [ये] जो। [यतन्ति] यत्न करते हैं। [ते] वह। [गुरोः] गुरुके [चरणम्] चरणको। [समवहाय] त्यागकर। अर्थात् गुरुके चरणका आश्रय न करके [उपाय-खिदः] दूसरे उपायोंमें क्लेश भोगते हुए। [व्यसनशतान्विताः] सैकड़ों विघ्नों से तिरस्कारको प्राप्त हुए। (अकृतकर्णधराः) मल्लाहोंका आश्रय न करनेवाले पुरुष (जलधौ-इव) समुद्रमें जैसे। 'दुःख पाते हैं। वैसे ही। (इह) इस जन्म-मरणरूप संसारमें। 'दुःखको प्राप्त। (सन्ति) हैं॥ अर्थात् जैसे विना मल्लाहोंके व्यापारी नदीमें गोते खाते हैं तैसे ही विनागुरुके सांसारिक पुरुष संसारसमुद्रमें गोते खाते हैं और मन निश्चल नहीं होता है परन्तु गुरुके बताये भगवद्भजनरूप सुखका अनुभव होने पर तो मन स्वयं ही निश्चल होजाता है। श्रीधरजीकी अनु-

१ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। आचार्यवान् पुरुषो वेद। नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुविज्ञानाय प्रेष्ठेत्याद्याः श्रुतयः॥

सनशकाण्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज संत्यक्तकर्णधरा जलधौ॥३३॥ स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे। इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥ ३४ ॥ भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदांबुज-

कृति-'यदा परानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत । तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥' अर्थात्-हे भगवन् ! हे परमानन्दस्वरूप गुरो ! जब आपकी कृपासे मेरा मन आपके स्वरूपमें स्थान पावे तो सकल साधनों के श्रमसे रहित होकर परम सुखको प्राप्त करूँ ३३अब परीक्ष्य लोकान् इत्यादि (१) दूसरी कितनी ही श्रुतियें वैराग्यका वर्णन करती हैं कि-(श्रयतः) तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुषको (सर्वरसे) सकल सुखोंके स्थान ऐसे परमानन्दस्वरूप ।(त्वयि) तुम । (आत्मनि) आत्माके । (सति) प्राप्त होने पर (स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैः) स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, गृह, भूमि, प्राण और रथ, आदि अतितुच्छ सुखके साधनों करके (किम्) कौनसा लाभ है ? अर्थात कोई लाभ नहीं है । (इति) ऐसे । (सत्) परमार्थ सुखको । (अजानताम्) न जाननेवाले और (मिथुनतः) स्त्रीके साथ मिलकर (रतये) रतिसुखके निमित्त । (चरताम्) घरमें रहनेवाले । (नृणाम्) पुरुषोंको (स्वविहते) स्वयं नाशवान् । और (स्वनिरस्तभगे) स्वयं ही साररहित ऐसे । [इह] इस संसारमें [कः नु] भला स्वजन आदि कौनसा अर्थ । (सुखयति) सुख देनेवाला है अर्थात् कोई सुख देने वाला नहीं है ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'भजतो हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्घनः आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ॥' अर्थात् हे भगवन् ! निःसन्देह,भजन करनेवालेको साक्षात् परमानन्द चैतन्यघन तुम आत्मा प्राप्त होजाते हो तो फिर इन तुच्छ स्त्री पुत्रादिकोंसे उसको क्या कार्य है अर्थात् कोई कार्य नहीं है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार गुरुके उपदेशसे आत्मतत्त्वको जानकर सार असारका विवेक होनेसे विरक्त हुए पुरुषको, सत्संगतिसे तत्त्वसाक्षात्कार होता है, इस विषयमें 'श्रोतव्यो मन्तव्य इत्यादि' (२) श्रुतियें सदाचारका वर्णन करती हैं कि (ये +) जो । (विमदाः) निरहंकारी । (भवत्पदांबुजहृदः) तुम्हारे चरणकमलका हृदयमें ध्यान करनेवाले । और (अघभिदंघ्रिजलाः) अपने चरणोदकसे लोकोंके पापोंका नाश करनेवाले । ऋषि हैं । (ते) वह । (उत) भी । सत्समागम होनेके निमित्त (भुवि) भूतल पर । (पुरुपुण्यतीर्थसदनानि) बहुत पुण्यकारी तीर्थोंका भगवान्के मन्दिरों का और भगवान्के क्षेत्रोंका (उपासते +) सेवन करते हैं । क्योंकि तहाँ ही प्रायः सत्समागम होता है (ते +) वह ऋषि । (पुनः) फिर ।(पुरुषसारहरावसथान्) पुरुषोंके विवेक, स्थैर्य, धैर्य, क्षमा, दया, शान्ति आदिकोंका नाश करनेवाले घरों

१ परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन । यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः अथ मर्त्योमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

२ श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । इत्यादयः ॥

द्रोऽघभिदंघ्रिजलाः। दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥३५॥ सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति

को। (न) नहीं (उपासते) सेवन करते हैं। (प्रभो +) हे प्रभो ! (ये) जो ऋषि। (नित्यसुखे) नित्यसुखरूपी। (त्वयि) तुम। (आत्मनि) आत्माके विषें (सकृत्) एकबार भी (मनः) मनको। (दधति) धारण करते हैं। यह भी विवेकादिकोंका नाश करने वाले गृहोंका सेवन नहीं करते हैं, फिर पहिले कहेहुए परमसमर्थ ऋषि, घरोंका सेवन नहीं करते इसका तो कहना ही क्या ? श्रीभरतजी की अनुकृति-'मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव संचिन्तयन्सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्। नित्यं तन्मुखपंकजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृतस्रोतः स्प्लवसंप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ॥, अर्थात् हे प्रभो नृहरे! इन स्त्रीपुत्रादिकों के शरीरोंके संगको त्यागता और रात्रिदिन तुम्हारा ही भलीप्रकार चिंतवन करता हुआ तथा जहाँ २ निरभिमानी सन्तजन हैं उन आश्रमोंमें वसता हुआ, नित्य उनके मुखरूप कमलसे निकले हुए तुम्हारी पवित्र कथारूप अमृतके स्रोतके प्रवाह में यथोचित स्नान करके मैं इस अनर्थके मूल देहका न धारण करने वाला अर्थात् मुक्त कब होऊँगा ? ॥ ३५ ॥ अब कितनी ही श्रुतियें प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मननपूर्वक तत्त्वनिश्चय करनेकी रीति कहती हैं तिसमें पहिले प्रश्न (इदम्) 'यह मैं और यह मेरा इस प्रकार प्रतीतिमें आनेवाला यह सब द्वैत। (सत्) सत्यस्वरूप है क्योंकि (सतः) ब्रह्मरूप सत्यवस्तुसे। (उत्थितम्) उत्पन्न हुआ है। अर्थात् जो वस्तु जिससे उत्पन्न होता है वह तद्रूप कहिये उसके रूपवाला ही होता है,ऐसा सबके देखनेमें आता है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुण्डल आदि वस्तु सुवर्ण ही होते हैं तैसे ही सत्यरूप ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ यह सब द्वैत सत्यरूप ही है। (इति चेत्) ऐसा यदि मीमांसकोंका प्रश्न होय तो, उसका उत्तर यह है कि-(ननु तर्कहतम्) यह तुम्हारा अनुमान विचार करने पर बाधित होता है। यदि कहो कि-कैसे तो तुम द्वैतका सत्य वस्तुसे अभेद करनेकी इच्छा करते हो, परन्तु उसको सिद्ध करने में तुमने जो कारण कहा, उस ही कारणसे वह सिद्ध न होकर उलटा द्वैतका भेद सिद्ध होता है, क्योंकि-सत्य वस्तुसे उत्पन्न हुआ, इतना कहनेसे ही उसका सत्य वस्तु से निराला होना समझमें आता है, और जो सत्यसे निराला है वह असत्य सिद्ध होता है,इससे तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। इस पर फिर प्रश्न करो कि-हम अभेद करनेकी इच्छा नहीं करते हैं किन्तु भेदका निषेध करना चाहते हैं, वह इस प्रकार कि-द्वैत,सत्यसे निराला नहीं है,क्योंकि-वह सत्यसे,उत्पन्न हुआ है,जो जिस से उत्पन्न होता है वह उससे निराला नहीं होता है,जैसे सुवर्णसे होनेवाले कुंडल सुवर्णसे निराले नहीं होते हैं,इसप्रकार भेदका निषेध करनेसे अभेद ही सिद्ध होता है न ? । इस कथनका उत्तर यह है कि-(क्व च) कहीं। (व्यभिचरति) व्यभिचारको प्राप्त होता है अर्थात् जो जिससे उत्पन्न होता है वह उससे भिन्न नहीं होता है यह तुम्हारा कहना सर्वत्र ठीक नहीं बैठता देखो=पितासे उत्पन्न हुआ

क्व च क च मृषा न तथोभययुक् । व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरंपरया भ्रमयति

पुत्र और मुद्गरसे होने वाला घटप्रध्वंस (घटका टूटना) यह उनसे निराले नहीं होते हैं क्या ? किन्तु होते ही हैं। इस पर फिर प्रश्न करो कि-जो वस्तु जिस उपादानसे उत्पन्न होती है वह वस्तु उस उपादानसे कभी भी निराली नहीं होती । देखो कुण्डल सुवर्णरूप उपादानसे उत्पन्न हुए हैं वह उस सुवर्णसे कभी भी निराले नहीं रहते पिता और मुद्गर यह पुत्र और घटप्रध्वंसके उपादान कारण नहीं हैं किंतु निमित्तकारण हैं इस कारण हमारे कहनेमें कुछ बाध नहीं आता है । इस कथन का दूषणरूप उत्तर यह है कि-(क च) किसी स्थान पर (मृषा) कार्य असत् ही होता है अर्थात् जो वस्तु जिस उपादानसे होती है वह वस्तु तिस उपादानसे भिन्न नहीं होती है यह तुम्हारा अनुमान ठहरनेवाला नहीं है, क्योंकि-रज्जुरूप उपादान से होने वाला सर्प रज्जुसे भिन्न होता है और रज्जुके सत्य होनेपर भी वह मिथ्या होता है। यदि उसको सत्य कहो तो जैसे कुंडलोंका बाध नहीं होता है तैसे सर्पका बाध नहीं होना चाहिये, वह होता है या नहीं ? अर्थात् होता ही है । इस पर फिर यह प्रश्न है कि-रज्जुमें भासने वाले सर्पकी केवल रज्जु ही उपादान कारण नहीं है किन्तु उसके साथमें दूसरा अज्ञान भी कारण है, इस कारण अज्ञानसहित रज्जु से होने वाले सर्पका मिथ्यात्व होता है; परन्तु केवल सत्य ब्रह्म उपादानसे होने वाले जगत्में मिथ्यापना नहीं आवेगा, इस कारण यह जगत्रूप द्वैत मिथ्या नहीं है किन्तु सत्य है । इस कथनका दूषणरूप उत्तर कहते हैं कि-(उभययुक्) सत्य रूप ब्रह्म और उसके साथमेंकी अविद्या इन दोनों उपादानोंसे होने वाला यह द्वैत-रूप प्रपञ्च भी । (तथा) सत्य । (न) नहीं है । किन्तु ब्रह्म और अविद्या दोनोंसे उत्पन्न होनेके कारण रज्जुमें भासने वाले सर्पकी समान मिथ्या ही ठहरता है; सत्य नहीं सिद्ध होता । इस पर फिर प्रश्न होता है कि-इस कहे हुए कारणसे द्वैतरूप प्रपञ्चका सत्यत्व नहीं बनता परन्तु हम दूसरे कारणसे प्रपञ्चका सत्यत्व सिद्ध करते हैं कि-यह द्वैत सत्य है, क्योंकि—इससे 'घड़ेसे जल लाना आदि' कार्य सिद्ध होते हैं,जो सत्य नहीं हो उससे कार्यसिद्ध नहीं होता है,जैसे सीपीमें भासने वाला रजत (चाँदी) सत्य नहीं होता है, क्योंकि-उससे कार्य सिद्ध नहीं होता है,ऐसा कहनेका उत्तर यह है कि-(व्यवहृतये) व्यवहारके निमित्त । (विकल्पः) भ्रम । (इषितः) इच्छित है अर्थात् खोटे रुपयेसे भी कभी कभी व्यवहार चलता हुआ देखनेमें आता है, सत्य ही पदार्थ सदा व्यवहारमें चाहिये ऐसा नहीं है, इस कारण प्रपञ्चका व्यवहार चलानेके निमित्त द्वैतरूपी भ्रमको ग्रहण करना चाहिये यह हमें इष्ट है । इसपर फिर प्रश्न होता है कि-जो वस्तु एक स्थानपर सत्य होती है उसका दूसरे स्थान पर जो आरोप (धोखा) होना उसको भ्रम कहते हैं, जैसे सर्पको एक स्थानपर सत्य देखा होता है तो उसका रज्जुपर आरोप होता है, अत एव वह भ्रम होता है, तैसे ही ब्रह्ममें द्वैतका भ्रम होनेके विषयमें दूसरे स्थान पर द्वैत सत्य होना चाहिये । आकाशपुष्प अत्यन्त ही असत्य है, इसकारण उसका

भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ॥ ३६ ॥ न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निध-

दूसरे स्थानमें आरोप नहीं होता है तैसे द्वैत अत्यंत ही असत् होता तो उसका ब्रह्ममें आरोप नहीं होता,और वह तो हुआ है,इससे द्वैत सत्य सिद्ध होकर तुम्हारा अद्वैत ही सत्य है ऐसा सिद्ध नहीं होता है । इस कथनका खण्डनरूप उत्तर यह है कि (अन्धपरम्परया) अन्धपरम्परा करके, जो भ्रम (आरोप) वह व्यवहार चलाने के निमित्त हमें इष्ट है, अर्थात् इस बड़के वृक्ष पर मैंने पिशाच देखा है, ऐसा एक अन्धेने दूसरे अन्धेसे कहा, उसने तीसरेसे, तिसने चौथेसे इस प्रकार परम्परासे पिशाचके भ्रमकी समान जो निर्विवाद परिपाटी चलती होती है उस परिपाटी को अन्धपरम्परान्याय कहते हैं । कोईसा भी भ्रम हो वह पूर्वसंस्कारसे उत्पन्न हुआ होता है । उस भ्रममें, अपनेमें संस्कार है ऐसा सिद्ध करनेके निमित्त, भ्रम होनेकी वस्तु (सर्पादिक) पहिले थी,केवल इतनी प्रसिद्धि की ही अपेक्षा होती है,वस्तुकी सत्यताकी अपेक्षा नहीं होती है। वस्तु सत्य नहीं हो तोभी उसकी एक बार प्रसिद्धि होने पर वह भ्रम उत्तरोत्तर चलता ही जाता है । इन्द्रियोंका अगोचर भी ब्रह्म, स्वप्रकाशपनेसे स्फुरित होनेके कारण तहाँ 'जैसे इंद्रियोंके अगोचर और साक्षि-भास्य आकाशमें कालेपनेका और नानाप्रकारके आकारका भान होता है तैसे ही' द्वैतरूप आरोपका भासमान होना योग्य ही है । अर्थात् ब्रह्मके विषें अनादि काल से असत् द्वैतकी जो प्रतीति चली आरही है उसमें प्रथम प्रथम भासे हुए द्वैत पर उत्तरोत्तर द्वैतके भासनेका सम्भव है । द्वैतकी जो प्रतीति होती है वह वास्तवमें सत्य नहीं है किन्तु उसके सत्यपनेका कारण, ब्रह्मका सत्तामात्र ही सत्य है, तिस से अद्वैत ही सत्य है ऐसा सिद्ध होता है ॥ प्रपञ्चव्यवहार जो चलता है सो अन्धपरम्परासे मिथ्या ही चलता है इस कारण उसकी सत्यतामें जो अर्थ-क्रियाकारीपनेका हेतु तुमने कहा सो निष्फल है । इस पर यह प्रश्न होता है कि- 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादि श्रुतियोंने, 'चातुर्मास्य यज्ञ करने वालेको अक्षय फल प्राप्त होना है' इस प्रकार कर्मफलको नित्य कहा है, सो मिथ्या कैसे होयगा, इस कारण वेदका वर्णन करा हुआ द्वैत सत्य है । इस कथन का खण्डनरूप उत्तर यह है कि-(भगवन्+) हे भगवन् ! (ते) तुम्हारी । (भारती) वेदरूपवाणी । (उरुवृत्तिभिः) गौणी और लक्षणा आदि वृत्तियोंके द्वारा । (उक्थ-जडान्) कर्मकी श्रद्धाके भारका दबाव पड़नेके कारण मन्दबुद्धि हुए पुरुषोंको । (भ्रमयति) मोहमें डालती है । अर्थात् वेद कर्मफलको नित्य नहीं मानता है किन्तु लक्षणावृत्तिके द्वारा कर्मफलकी प्रशंसामात्र करता है, यदि ऐसा नहीं कहा जाय तो 'तद्यथेह कर्म चित इत्यादि (१) श्रुतियोंसे विरोध आवेगा । इसकारण वेद सकाम पुरुषोंसे, अन्तःकरणकी शुद्धिके अर्थ कर्म करानेके निमित्त, कर्मोंके फल की स्तुति करके,उन कर्मोंकी प्रीति उत्पन्न करता है ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'उद्-भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नेव सर्पः स्रजः कुर्वत्कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि

१ तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते । एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते ।

नादनुमितमंतरा त्वयि विभाति मृषैकरसे । अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथै-र्वितथमनोविलासमृतमित्यवयंत्यबुधाः ॥ ३७ ॥ स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च

नैवं परः । अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम् ॥' अर्थात्-हे हरे ! यह भुवन सत्रूप तुमसे उत्पन्न हुआ है परन्तु सत्रूप रज्जुमें उत्पन्नहुए सर्पकी समान,सत् नहीं हैं,और इस संसारमें अर्थ-क्रियाकारी होकर भी खोटे सुवर्णकी समान भ्रमरूप है, और कर्म फलकी नित्यता को कहनेवाला वेद भी वास्तवरूपसे कर्म फलको सत्य नहीं कहता है किन्तु उपाधि-ग्रस्त जीवके अन्तःकरणकी कर्म द्वारा शुद्धि होनेके निमित्त कर्म फलकी प्रशंसा-मात्र करता है । तुम्हारे तिस सत्यस्वरूप परमानन्द परमपद को ही मैं आनन्दके साथ प्रणाम करता हूँ । हे लक्ष्मी करके स्तुति करे हुए भगवान् ! तुम्हारे चरणों में नम्र हुए मुझे तुम न त्यागो ॥ ३६ ॥ इस प्रकार प्रपञ्चकी सत्यताके विषयमें कोई साधक नहीं है ऐसा कहा, अब उसकी असत्यताके विषयमें 'यतो वा इमानि' (१) इत्यादि, सृष्टिप्रलय विषयक श्रुतियें प्रमाण हैं और अनुमान भी होता है, ऐसा कहते हैं कि—(यत्) क्योंकि—(इदम्) यह जगत् । (अग्रे) सृष्टिसे पहिले । (न) नहीं । (आस) था । और । (निधनात्) प्रलयसे । (अनु) पीछे । (न) नहीं । (भविष्यत्) होगा । (अतः) इससे । (अन्तरा) सृष्टि और प्रलयकी मध्यदशामें (एकरसे) केवल एकरस (त्वयि) तुम्हारे स्वरूपमें । (मृषा) मिथ्यारूप । (विभाति) भासता है, (इति) ऐसा । (मितम्) निश्चित है । (अतः) इस कारण । (द्रविणजातिविकल्पपथैः उपमीयते) मृत्तिका, सुवर्ण, लोहा आदि पदार्थोंके घट कुण्डल और कुदाल आदि भेदोंके प्रकारोंसे समानता करके इसका निरूपण करते हैं अर्थात् जैसे घट, कुण्डल और कुदाल आदि कार्यरूप पदार्थोंके अनेकों नाम उच्चारणमात्र करनेमें आते हैं परन्तु सत्य मृत्तिका सुवर्ण आदि ही हैं, तैसे ही यह आकाश आदि आ र्यनाममात्र हैं और सत्य ब्रह्म ही है । इसप्रकार इस प्रपञ्चकी सत्यताके विषयमें प्रमाण न होकर मिथ्यापनेमें बहुतसे प्रमाण होनेके कारण-(वितथमनोविलासम्) व्यर्थ और मनोविलासमात्र, ऐसे इस प्रपञ्चको जो कोई पुरुष, (ऋतम्) सत्य है । (इति) ऐसा । (अवयन्ति) जानते हैं । वह (अबुधाः) अज्ञानी हैं । इस विषयमें ऐसा अनुमान है कि-यह द्वैत सत्य नहीं है क्योंकि—यह आदि और अन्तसे रहित है, विकारी है और दृश्य कहिये दीखनेमें आने वाला है, अतः जो आदि और अन्तमें नहीं रहता है, विकारी और अदृश्य होता है वह सत्य नहीं होता, जैसे सीपीमें प्रतीत होने वाला रजत आदिमें और अन्तमें नहीं होता है, विकारी और दृश्य होता है इस कारण सत्य नहीं होता है तैसे ही जो वस्तु आदि और अन्तमें होती है, विकारी और दृश्य नहीं होती है वह सत्य होती है । जैसे आत्मा द्वैतके आदि और अन्तमें होता है विकारी और दृश्य नहीं है इस कारण सत्य है ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्क-

१ यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति इत्यादि ॥

जुषन् भजति सरूपतां तदनुमृत्युमपेतभगः । त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्त-भगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥३८॥ यदि न समुद्धरंति यतयो हृदि

णीपरिणतं कनकं परमार्थतः। महदहङ्कृतिखप्रमुखं तथा नरहरे न परं परमार्थतः॥' अर्थात्-हे नरहरे ! जैसे परिणामको प्राप्तहुए मुकुट, कुण्डल, कङ्कण और किङ्किणी आदि परमार्थरूपसे सुवर्ण ही हैं तैसे ही यह महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश आदि सब वास्तवमें ब्रह्म ही हैं ॥ ३७ ॥ अब यदि प्रपञ्च कुछ है ही नहीं, ऐसा कहा जायगा तो तिस मिथ्याभूत प्रपञ्चसे चैतन्यके सम्बन्धका लेश भी नहीं है ऐसा सिद्ध होयगा और ऐसा हुआ तो फिर जीवने क्या अपराध करा है कि—जिसके द्वारा वह संसार पाता है अथवा ईश्वरका ऐसा कौनसा बड़ा भारी पुण्य है कि—जिस करके वह नित्यमुक्त है और उस समय कर्मकाण्डका भी विषय क्या है ? ऐसी शङ्का आने पर 'द्वा सुपर्णा इत्यादि' (१) श्रुति जीव ईश्वरकी विशेषताका वर्णन करती हैं कि-(प्रभो +) हे प्रभो ! (सः) वह जीव । (यत्) जब । (अजया) तुम्हारी मायासे, मोहित होकर । (अजाम्) अपनी अविद्याको । (अनुशयीत) आलिङ्गन करता है । तब । (गुणान्) देह इन्द्रियादि जो गुणोंके कार्य हैं तिनको । (जुषन्) सेवन करता हुआ अर्थात—यह मेरा स्वरूप है ऐसा मानता हुआ (तदनु-सरूपताम्) और तिसके अनन्तर तिन देह इन्द्रियादिकोंके धर्मोंको । (जुषन् +) सेवन करता हुआ । (अपेतभगः) अपने आनन्द आदि गुणोंके आवरणको प्राप्त हुआ (मृत्युम्) जन्ममरण आदिरूप संसारको । (भजति) प्राप्त होता है । उसके निमित्त ही कर्मकाण्डकी अपेक्षा है । (आत्तभगः) प्राप्त हैं नित्य ऐश्वर्य जिनको ऐसे । (त्वम्-उत) तुम तो । (अहिः) सर्प । (त्वचम्-इव) अपने ऊपरकी त्वचा कहिये कैंचलीको जैसे, यह उत्तम है और मेरी है ऐसा अभिमान नहीं करता है, तैसे ही तिस मायाको 'यह उत्तम है इसबुद्धिसे, तुम स्वीकार नहीं करते हो किन्तु । (ताम्) उसको । (जहासि) त्यागते हो । और (परिमेयभगः) अपरिमित ऐश्वर्यसे युक्त होते हुए । (अष्टगुणिते) अणिमादि आठ ऐश्वर्योंसे युक्त । (महसि) सर्वोत्तम ऐश्वर्यके विषै । (महीयसे) पूजित होते हो इस कारण ही नित्यमुक्त हो ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति—'नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावादिभिर्भावान्सत्त्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून् । मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय ॥' अर्थात्-हे नृहरे ! तुम्हारे कटाक्षरूप आँगनमें जाकर काल स्वभाव आदिके साथ नाचने वाली तुम्हारी माया, सत्त्व—रजः—और तमोमय भावोंसे बहुतोंको उखाड़ कर मेरे शिर पर अतिभारी चरणको रख उससे दबा कर कुचल रही है इस कारण अति आतुर हुआ मैं तुम्हारी ही शरण आया हूँ, तुम अपनी उस मायाको मेरे शिर परसे हटा दो ॥ ३८ ॥ इस प्रकार कहे हुए सकल साधनोंसे जो

१ द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीतीत्यादिः ॥

कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदिगतोऽस्मृतकण्ठमणिः। असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतांतकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥ ३९ ॥ त्वदवगमी न वेत्ति

भगवानका सेवन करते हैं वह मृत्युको तर जाते हैं और अन्य पुरुष संसारको प्राप्त होते हैं, ऐसा कहा। अब, जो बाहरी सङ्गतिको त्याग कर भगवान्‌के मार्गमेंको प्रवृत्त होने पर भी फिर वमन (उलटी)का भक्षण करनेकी समान विषयोंका ही सेवन करते हैं उनको भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती है और इस लोकमें सुख भी नहीं मिलता है किन्तु उनको निन्दित योनि प्राप्त होती हैं इसकारण उनका शोक करतीहुई, 'कामान् य इत्यादि (१)' श्रुतियें कहती हैंकि-(भगवन्) हे भगवन्! । (ये +) जो। सकल संगोको त्याग कर। (यतयः) संन्यासी होकर। (हृदि) अपने हृदयमेंकी। (कामजटाः) कामकी मूल ऐसी वासनाओंको। (यदि) जो। (न) नहीं। (समुद्धरन्ति) उखाड़ते हैं। तो उन। (असताम्) दुष्ट संन्यासियोंको। (हृदि) हृदयमें। (गतः) गये हुए अर्थात् विद्यमान भी। (त्वम् +) तुम। (अस्मृतकण्ठमणिः-इव) जैसे कण्ठमें विद्यमान भी धारण करा हुआ मणि विस्मरण होजाने पर नहीं मिलता है तैसे उन दुष्ट संन्यासियों। (दुरधिगमः) बड़ी कठिनतासे मिलते हो। और इतना ही नहीं किन्तु, उन (असुतृपयोगिनाम्) इन्द्रियोंकी तृप्ति करनेमें तत्पर हुए दम्भी योगियोंको। (उभयतः) इस लोकमें और परलोकमें दोनों स्थान पर। (अपि) ही। (असुखम्) दुःख प्राप्त होता है। यदि कहो कि-कैसे ? तो (अनपगतान्तकात्) न चूके हुए मृत्युरूप तुमसे। इस लोकमें और [अनधिरूढपदात्] नहीं प्राप्त करा है स्वरूप जिनका ऐसे [भवतः] तुमसे। परलोकमें भय प्राप्त होता है अर्थात् उनको, लोकोंको प्रसन्न रखना, धन प्राप्त करने आदिके क्लेश न दूर होनेका तथा भोगोंके वैभव लोकमें प्रकट होनेके भयका इस लोकमें दुःख और तुम्हारे स्वरूपकी जिसको प्राप्ति नहीं हुई ऐसे अविद्यायुक्त पुरुषको, कहे हुए वर्णाश्रमधर्मोंका उल्लंघन होनेके कारण तुमसे प्राप्त होने वाले दण्डरूप नरक प्राप्तिका परलोकमें दुःख प्राप्त होता है ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं संमुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्। आज्ञालंघिनमज्ञजनतासम्मानसासन्मदं दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम् ॥' अर्थात्-हे दीनानाथ ! हे दयानिधान ! हे परमानन्दस्वरूप ! हे प्रभो ! पाखण्ड धारण करनेके मिषसे संसारको ठगने वाले, एक भोगकी ही चिन्तासे आतुर, रात्रि दिन मोहको प्राप्त होने वाले, करे हुए नानाप्रकारके उद्योगोंके कष्टोंसे आकुल हुए, आपकी आज्ञाका उल्लंघन करने वाले, अनजान और अज्ञानियोंके सम्मानका वृथा घमण्ड रखनेवाले मेरी रक्षा करो ॥ ३९ ॥ अब, संन्यासीको कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है, वह सुखके उपभोग करके केवल अपने प्रारब्ध कर्मोंका क्षय करता है। फिर उसको इस लोकमें और परलोकमें सुख नहीं है, इस प्रकार उसकी निन्दा क्यों करते हो, और ब्रह्मज्ञानी की तो

१ कामान् यः कामयते मन्यमानः स कर्मभिर्जायते तत्र तत्र।

भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः। अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरंपरया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः॥ ४० ॥ द्युपतय एव ते न ययु-

बड़ी महिमा कही है, ऐसा कोई कहे तो उसके विषयमें कहते हैं कि—(सगुण) हे षड्गुणऐश्वर्यसम्पन्न ईश्वर ! (त्वद्वगमी) जिसको तुम्हारा ज्ञान होगया है वह पुरुष, (भवदुत्थशुभाशुभयोः) कर्मफल देनेवाले तुम ईश्वरसे प्रकट हुए अपने पुरातन पुण्यपापोंके फलरूप (गुणविगुणान्वयान्) सुखदुःखोंके सम्बन्धोंको (न) नहीं। (वेत्ति) जानता है। (तर्हि) उस समय। (देहभृताम्) देहाभिमानी लोकोंकी। (गिरः च) प्रवृत्ति निवृत्ति करनेवाली विधिनिषेधरूप वाणियोंको भी (न +) नहीं। (वेत्ति +) जानता है। अर्थात् देहाभिमान छूट जानेके कारण उसको करने योग्य कर्मोंका अथवा न करनेयोग्य कर्मोंका संबंध नहीं रहता है और यह योग्य ही है। (यतः) क्योंकि—(मनुजैः) मनुष्यों करके। (अनुयुगम्) प्रत्येकयुगमें। (गीतपरम्परया) प्रकट होनेवाले संप्रदायोंके उपदेशके अनुसार (अन्वहम्) प्रतिदिन (श्रवणभृतः) श्रवणके द्वारा चित्तमें धारण करेहुए। (त्वम्) तुम। (अपवर्गगतिः) उनको मोक्षगतिरूप। (भवसि +) होते हो। इसका तात्पर्य यह है कि—जिन पुरुषोंको तत्त्वज्ञान होगया है उनको कर्मके अधिकारकी शंका ही नहीं है और जो निरन्तर तुम्हारे श्रवण आदिमें तत्पर हैं उनको भी तुम्हारे स्वरूपकी प्राप्ति होती है इस कारण विधिनिषेधकी बाधा नहीं है, हाँ दंभी योग-साधन दिखाकर विषयलंपट होनेवाले अन्य पुरुषोंको इसलोकमें और परलोकमें सुख नहीं मिलता है॥ श्रीधरजीकी अनुकृति-'अवगमं तव मे दिश माधव स्फुरति यत्र सुखासुखसंगमः। श्रवणवर्णनभावमथापि वा नहि भवामि यथा विधिकिंकरः' अर्थात् हे माधव ! तुम मुझे अपना ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान दो जिससे मुझे सुख दुःखका समागम न हो। अथवा मुझे श्रवण कीर्त्तन की भक्ति दो, जिससे कि—मैं कर्मजालका किंकर न बनूँ ॥ ४० ॥ अब तुम्हारे स्वरूपको जाननेवाला पुरुष, सुख दुःख और विधि निषेधको नहीं जानता है ऐसा कहा, तहाँ दुर्ज्ञेय बताकर कहा हुआ जो तुम्हारा स्वरूप सो कैसे जाना जायगा ? ऐसी शंका हो तो ठीक है, परन्तु तुम्हारी महिमा वाणीके और मनके अगोचर है इस कारण उस महिमा का अविषयरूपसे ही ज्ञान होता है ऐसा समझो, यह दिखाते हुए 'यदूर्ध्वं गार्गी-' त्यादि, (१) श्रुतियोंसे वर्णन करी हुई अपरिमित महिमा कहते हैंकि—(भगवन्+) हे भगवन्। (द्युपतयः) स्वर्गादि लोकोंके स्वामी ब्रह्मादिक। (एव) ही। (ते) तुम्हारे। (अन्तम्) अन्तको। (न) नहीं। (ययुः) प्राप्तहुए। ब्रह्मादिकोंकी तो वार्त्ता अलग रहे परन्तु (त्वम्—अपि) सर्वज्ञ तुम भी। (आत्मनः) अपने। (अन्तम् +) अन्तको (न +) नहीं। (यासि+) प्राप्त होते हो। (अनन्ततया) क्योंकि—तुम्हारा अन्त नहीं है। तो फिर सर्वज्ञपना और सर्वशक्तिपना कैसा ?

१ यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं भवच्च भविष्यच्च।

रंतमनंततया त्वमपि यदंतरांऽडनिचया ननु सावरणाः । ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलंत्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥ ४१ ॥ श्रीभगवानुवाच । इत्येतद् ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम् । सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वात्मनो गतिम् ॥ ४२ ॥ इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः । समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥ त्वं चैतद् ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम् । धार-

---

यदि ऐसा कहो तो—जो अन्त है ही नहीं, उसको नहीं जाननेसे सर्वज्ञपनेकी वा अंत प्राप्त नहीं हुआ इससे सर्वशक्तिमान्पनेकी हानि नहीं होती है,क्योंकि-शशा कहिये खरगोशके सींग नहीं होते हैं, सो उन शशाके सींगोंको न जाननेके कारण सर्वज्ञताकी और उनको न पानेके कारण सर्वशक्तिमान्पने की हानि नहीं होती है क्योंकि जो वस्तु हो उसको न जाननेसे सर्वज्ञतामें कमी आती है , और जो वस्तु है ही नहीं उसको न जाननेसे कौन हानि है ? इसी प्रकार जब तुम्हारा अन्त है ही नहीं तो उसको तुमने नहीं भी जाना तो तुम्हारी सर्वज्ञतामें कुछ हानि नहीं है। अब यदि कहो कि मेरा अनन्तपना कैसे है तो [खे] आकाशमें । [वायुना+] वायु करके । [रजांसि इव] जैसे रजके कण धूमते हैं तैसे [यदन्तरा] जिन तुम्हारे विषैं। (सावरणाः) उत्तरोत्तर दश गुण अधिक पृथिव्यादि सात आवरणों सहित । [अण्डनिचयाः] ब्रह्माण्डोंके समूह । [वयसा सह] कालचक्रके साथ [वान्ति] एक साथ घूमते हैं । अर्थात् क्रमसे न घूमकर एकसाथ घूमते हैं [ननु] यह कैसे आश्चर्यकी बात है (हि) क्योंकि । (अतएव +) इस कारण ही [भवन्निधनाः] तुम्हारे विषैं परिसमाप्तिको पानेवालीं । [श्रुतयः] श्रुतियें । [अतन्निरसनेन] स्थूलत्व आदि जड पदार्थोंका निरास करके निषेधमुखसे । [त्वयि] तुम्हारे विषैं । (फलन्ति) तात्पर्यवृत्तिसे सफल होती हैं । अर्थात् अवधिके विना निषेध हो नहीं सकता इसकारण अवधिरूप तुम्हारे विषैं निषेधमुखसे परिसमाप्ति को प्राप्त होकर सफल होती हैं ॥ श्रीधरजीकी अनुकृति 'द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते न च भवाश्न गिरः श्रुतिमौलयः । त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पदम्॥' अर्थात हे अनन्त ! स्वर्गादि लोकोंके स्वामी ब्रह्मादिकोंने तुम्हारे अन्तको नहीं जाना इतना ही नहीं किंतु तुम भी अपने अन्तको नहीं जानते हो, श्रुतिशिरोभूषणरूप उपनिषदूकी वाणियें तुम्हारे विषैं ही सफल होती हैं इस कारण सत्यस्वरूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, हे भगवन् ! तुम्हारी सदा जय होय, मैं तुम्हारे उस अखण्ड सच्चिदानन्द पदको भजता हूँ ॥ ४१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे नारदजी ! इस प्रकार ब्रह्माजीके सनकादि पुत्रोंने, सनन्दनके वर्णन करे हुए वेदस्तुतिरूप, आत्मतत्त्वके वर्णनको सुनकर, आत्माके तत्त्वको जाननेके कारण कृतकृत्य हुए उन्होंने, तदनन्तर गुरुबुद्धिसे उन सनन्दनका पूजन करा ॥ ४२ ॥ सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न हुए और आकाशमें विचरने वाले उन महात्मा सनकादिक ऋषियोंने, इस प्रकार यह सकल श्रुतियोंका, पुराणोंका और उपनिषदोंका तात्पर्यरूप रस निकाला है ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मपुत्र नारद !-तुम भी, मनुष्योंकी वासनाओंको

यंभर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान् । पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥ ४५ ॥ नारद उवाच । नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्त्तये । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ॥४६॥ इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः । ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ॥ ४७ ॥ सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः । तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥४८॥ इत्येतद्वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया ।

भस्म करने वाले इस ब्रह्मनिरूपणको, श्रद्धाके साथ मनमें धारण करके भूमि पर जहाँ जानेकी तुम्हारी इच्छा होय तहाँ विचरो ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! इसप्रकार नारायण ऋषिके उपदेश करे हुए आत्मतत्त्वको श्रद्धाके साथ ग्रहण करके, आत्मज्ञानी, कृतकृत्य, सुने हुए अर्थको मनमें धारण करने वाले और नैष्ठिक ब्रह्मचारी तिन नारदजीने कहा ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि-जो तुम,सकल प्राणिमात्रको मोक्ष देनेके निमित्त मनोहर अवतार धारण करते हो ऐसे निर्मलकीर्त्ति तुम श्रीकृष्णजीको नमस्कार हो॥४६॥श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार वह नारदजी, आदि ऋषि तिन नारायणको और उनके महात्मा शिष्यों को नमस्कार करके तदनन्तर तहाँसे मेरे साक्षात् (योनिसम्बन्धके विना [१] होने वाले) पिता वेदव्यासजीके आश्रमको चले गये ॥ ४७ ॥ तब वेदव्यासजीके सत्कार करे हुए उन नारदजीने, आसनको ग्रहण करके और उस आसन पर बैठ कर, नारायणके मुखसे आप जो सुना था वह सब उन व्यासजीसे वर्णन करा॥४८ हे राजन् ! हमसे जो तुमने प्रश्न करा था वह, 'जिसप्रकार अनिर्देश्य और निर्गुण ब्रह्मके विषें श्रुतियोंकी प्रवृत्ति होती है सो' यह सब मैंने तुमसे वर्णन करा है ४९ अब सब वेदस्तुतिका अर्थ संक्षेपसे कहते हैं कि-जो भगवान् अपने स्वरूपमें सोये हुए जीवोंको सकल पुरुषार्थोंकी सिद्धि होनेके निमित्त इस जगत्के उत्पत्ति,पालन और संहार करनेका विचार करते हैं, जो इस जगत्के आरम्भमें मध्यमें और अंत में रहते हैं, जो प्रकृति और पुरुषके उपादान कारण हैं, जिन्होंने इस ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके और तिसमें अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करके जीवोंको भोग प्राप्त होनेके निमित्त भिन्न भिन्न शरीर उत्पन्न करे हैं, जो जीवोंको भोग देकर उनके शरीरोंकी रक्षा करते हैं और जिनकी प्राप्ति होने पर, चरणतलमें वारम्वार दण्डकी समान प्रणाम आदि करके उपासना करने वाला यह जीव, जैसे गाढ़ निद्रामें सोया हुआ पुरुष, अपने शरीरका अनुसन्धान (१) नहीं रखता है किन्तु उसका त्याग करता

१ एक समय व्यासजी अग्नि मथ रहे थे, सो किसी कारणसे व्यासजीका वीर्य स्खलित होकर वह अरणीमें गिरा तब व्यासजीने उसका भी मन्थन करा इस कारण उस अरणीसे तत्काल शुक पुत्र उत्पन्न हुआ, ऐसा प्रसिद्ध है ।

१ जैसे गाढनिद्रामें सोये हुए सरीरवान् पुरुषको और लोग देखते हैं परन्तु वह अपने शरीरको कुछ नहीं देखता है तैसे ही जीवन्मुक्त हुए पुरुषको, अन्य लोग, यह देहधारी है, ऐसा देखते हैं परन्तु वह कुछ नहीं देखता है ।

यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि श्रुतिश्चरेत् ॥४९॥ योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो यः सृष्ट्वेदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः। यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ५०
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नारदनारायणसंवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

राजोवाच ॥ देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम्। प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः संदेहोऽत्र महान् हि नः। विरुद्धशीलयोः प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिंगो गुणसंवृतः। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥ ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु किंचन। उपाधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥ हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः। स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भज-

---

है तैसे ही जो अपनी कार्यकारणरूप अविद्याका अनुसन्धान न रख कर त्याग करते हैं तिन भयको दूर करने वाले और अखण्डस्वरूपकी स्थिति करके मायारूप मूल कारणका तिरस्कार करने वाले भगवान् श्रीहरिका निरन्तर ध्यान करे ॥५०॥
इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें सप्ताशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८७ ॥

अब आगे अट्ठासीवें अध्यायमें विष्णुभगवान्के भक्तको मोक्ष प्राप्त होता है और दूसरे देवताओंके भक्तोंको ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, यह कथा वर्णन करी है ॥ * ॥
श्रीहरि भक्तोंको मुक्ति देते हैं, ऐसा कहा तिसको सुन कर राजाने कहा कि—हे शुकदेवजी ! देवता, असुर और मनुष्योंमें जो प्राणी, विषयभोगोंका तिरस्कार करने वाले श्रीशङ्करका आराधन करते हैं वही प्रायः धनी और विषयभोग करने वाले होते हैं और लक्ष्मीके पति तथा सकल भोगोंसे युक्त श्रीहरिकी जो आराधना करते हैं वह दरिद्री और भोगरहित होते हैं, इसका कारण क्या है ? ॥ १ ॥ यह जाननेकी हम इच्छा करते हैं क्योंकि-इस विषयमें हमें बड़ा भारी सन्देह है, विरुद्ध स्वभाववाले श्रीहरि और श्रीहरिके भक्तोंको विरुद्ध फल प्राप्त होता है अर्थात् ऐश्वर्यके त्यागने वाले श्रीशंकरके भक्तोंको दरिद्रता होना चाहिये और ऐश्वर्योंका स्वीकार करने वाले श्रीविष्णुके भक्तोंको ऐश्वर्य मिलने चाहियें, परन्तु ऐसा न होकर भक्तोंको विपरीत फल प्राप्त होता है इसका क्या कारण है ? ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! निरन्तर आनन्दरूप भी ईश्वर, जब अपनी शक्ति (प्रकृति) से युक्त होते हैं तब उस प्रकृतिके सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इन तीन नामोंको धारण करते हैं, सात्विक, राजस और तामस यह तीन प्रकारका अहंकार है ॥ ३ ॥ तिससे एक मन, दश इन्द्रियें और पाँच महाभूत इस प्रकार सोलह विकार और दिशा, वायु, सूर्य आदि देवता उत्पन्न हुए हैं, तिसमें अहंकारके सत्त्वादि तीन गुणोंमेंसे रजोगुणका अंश ब्रह्माजीमें अधिक है, सत्त्वगुणका विष्णुमें और तमोगुणका अंश शिवजीमें अधिक है, इस कारण जो मनुष्य जिस अधिक गुणसे युक्त देवताका भजन करता है उसको उस गुणसे सम्बन्ध

इदोऽघभिदंघ्रिजलाः। दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ॥३५॥ सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति

को। (न) नहीं (उपासते) सेवन करते हैं। (प्रभो +) हे प्रभो ! (ये) जो ऋषि। (नित्यसुखे) नित्यसुखरूपी। (त्वयि) तुम। (आत्मनि) आत्माके विषैं (सकृत्) एकवार भी (मनः) मनको। (दधति) धारण करते हैं। वह भी विवेकादिकोंका नाश करने वाले गृहोंका सेवन नहीं करते हैं, फिर पहिले कहेहुए परमसमर्थ ऋषि, घरोंका सेवन नहीं करते इसका तो कहना ही क्या ? श्रीधरजी की अनुकृति-'मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव संचिन्तयन्सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्। नित्यं तन्मुखपंकजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृतस्रोतः संप्लवसंप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्॥, अर्थात् हे प्रभो नृहरे।उन स्त्रीपुत्रादिकों के शरीरोंके संगको त्यागता और रात्रिदिन तुम्हारा ही भलीप्रकार चिंतवन करता हुआ तथा जहाँ २ निरभिमानी सन्तजन हैं उन आश्रमोंमें वसता हुआ, नित्य उनके मुखरूप कमलसे निकले हुए तुम्हारी पवित्र कथारूप अमृतके स्रोतके प्रवाह में यथोचित स्नान करके मैं इस अनर्थके मूल देहका न धारण करने वाला अर्थात् मुक्त कब होऊँगा ? ॥ ३५ ॥ अब कितनी ही श्रुतियें प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मननपूर्वक तत्त्वनिश्चय करनेकी रीति कहती हैं तिसमें पहिले प्रश्न (इदम्) 'यह मैं और यह मेरा इस प्रकार प्रतीतिमें आनेवाला यह सब द्वैत। (सत्) सत्यस्वरूप है क्योंकि (सतः) ब्रह्मरूप सत्यवस्तुसे। (उत्थितम्) उत्पन्न हुआ है। अर्थात् जो वस्तु जिससे उत्पन्न होता है वह तद्रूप कहिये उसके रूपवाला ही होता है,ऐसा सबके देखनेमें आता है, जैसे सुवर्णसे उत्पन्न हुए कुण्डल आदि वस्तु सुवर्ण ही होते हैं तैसे ही सत्यरूप ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ यह सब द्वैत सत्यरूप ही है। (इति चेत्) ऐसा यदि मीमांसकोंका प्रश्न होय तो, उसका उत्तर यह है कि (ननु तर्कहतम्) यह तुम्हारा अनुमान विचार करने पर बाधित होता है। यदि कहो कि कैसे तो तुम द्वैतका सत्य वस्तुसे अभेद करनेकी इच्छा करते हो, परन्तु उसको सिद्ध करने में तुमने जो कारण कहा, उस ही कारणसे वह सिद्ध न होकर उलटा द्वैतका भेद सिद्ध होता है, क्योंकि सत्य वस्तुसे उत्पन्न हुआ, इतना कहनेसे ही उसका सत्य वस्तु से निराला होना समझमें आता है, और जो सत्यसे निराला है वह असत्य सिद्ध होता है,इससे तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। इस पर फिर प्रश्न करो कि-हम अभेद करनेकी इच्छा नहीं करते हैं किन्तु भेदका निषेध करना चाहते हैं, वह इस प्रकार कि-द्वैत,सत्यसे निराला नहीं है,क्योंकि-वह सत्यसे उत्पन्न हुआ है,जो जिस से उत्पन्न होता है वह उससे निराला नहीं होता है,जैसे सुवर्णसे होनेवाले कुंडल सुवर्णसे निराले नहीं होते हैं,इसप्रकार भेदका निषेध करनेसे अभेद ही सिद्ध होता है न ? । इस कथनका उत्तर यह है कि-(क्व च) कहीं। (व्यभिचरति) व्यभिचारको प्राप्त होता है अर्थात् जो जिससे उत्पन्न होता है वह उससे भिन्न नहीं होता है यह तुम्हारा कहना सर्वत्र ठीक नहीं बैठता देखो = पितासे उत्पन्न हुआ

जनः ॥ १० ॥ ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः । मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरंत्यवजानते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥ अत्र चोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् । वृकासुराय गिरिशो वरं दत्वाप संकटम् ॥१३॥ वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् । दृष्ट्वाशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥ स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्ध्यति । योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥ दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बंदिनोरिव । ऐश्वर्यमतुलं दत्वा तत आप सुसंकटम् ॥१६॥ इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः । केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥ १७ ॥ देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि । शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥ तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा

धन करना परम कठिन है इस कारण ही लोक मुझे त्यागकर अन्य देवताओंकी सेवा करते हैं ॥१०॥ और वह पुरुष, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले उन देवताओंसे राज्यलक्ष्मीको पाकर उद्धत, घमण्डी और असावधान होकर, अपनेको वर देनेवाले उन देवताओंको भी भूल जाते हैं और उनका अपमान करते हैं ॥ ११ ॥ यही वार्त्ता इतिहासके द्वारा स्पष्ट करनेके निमित्त श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, शाप देनेको और अनुग्रह करनेको समर्थ हैं परन्तु ब्रह्मा और शिवजी यह दो देवता, शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं और शाप भी शीघ्र ही देते हैं विष्णु शीघ्र ही प्रसन्न नहीं होते हैं और शाप भी नहीं देते हैं ॥ १२ ॥ इस विषयमें यह पुरातन इतिहास कहते हैं कि-महादेवजी वृकासुरको वरदान देकर स्वयं ही संकटमें पड़े ॥१३॥ शकुनि दैत्यका पुत्र वृकासुर नामवाला दुर्बुद्धि असुर था, उसने मार्गमें नारदजीको देखकर उनसे बूझा कि-ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनों देवताओंमें शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाला कौनसा देवता है ? ॥ १४ ॥ तब नारदजीने कहा कि-तू महादेवजीकी शरण जा; तब शीघ्र ही तुझे सिद्धि प्राप्त होयगी जो महादेवजी थोड़े ही आराधनसे शीघ्र प्रसन्न होते हैं और थोड़से अपराधसे शीघ्र ही कोपमें होजाते हैं ॥ १५ ॥ जिन शंकरने, स्तुति पढ़नेवाले बन्दिकी समान स्तुति करने वाले रावणके और बाणासुरके ऊपर प्रसन्न होकर, उनको अनूपम ऐश्वर्य दिया और उनसे ही बड़े संकटको प्राप्त हुए, रावणने उनके ही कैलास पर्वतको उखाड़ा और बाणासुरने उनको ही अपने नगरका रक्षक बनाया १६ इस प्रकार नारदजीके कहने पर वह वृकासुर, केदारक्षेत्रमें अपने शरीरके मांसको काटकर उसके हवनसे अग्निमुख श्रीमहादेवजीका आराधन करने लगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन हवन करने पर भी छः दिन पर्यन्त महादेवजीका दर्शन नहीं हुआ, तब सातवें दिन वृकासुर खिन्न होकर 'मरूँगा वा कार्यको सिद्ध करूँगा' ऐसे निश्चयसे उस केदारकुण्डमें स्नान करनेके कारण गीले केशोंवाला अपना मस्तक अपने ही शस्त्रसे काटनेको उद्यत हुआ १८ तब परमदयालु तिन श्रीशंकरने, उस कुण्डमेंकी अग्निमेंसे बाहर निकल कर, साक्षात् मूर्तिमान् अग्निकी समान

चर्चं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् । निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥ तमाह चांगालमलं वृणीष्व मे यथाऽभिकामं वितरामि ते वरम् । प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥ देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् । यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति २१ तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत । ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा२२ इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरणलालसः । स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः। स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ २३ ॥ तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावन्सवेपथुः । यावदंतं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥ अजानंतः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः । ततो वैकुंठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥ यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः । शांतानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः । दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा

प्रकाशवान् अपनी भुजाओंसे उसका हाथ पकड़ लिया और, जैसे हम, किसी दुःख से खिन्न होकर आत्मघात करनेवालेको निषेध करते हैं तैसे, मस्तक काटनेसे उसको रोका, तब वह दैत्य, उन श्रीशंकरके स्पर्शसे ही फिर पूर्णशरीर होगया १९ तब श्रीशंकर उससे कहने लगे कि-हे वृकासुर ! बस, बस, अब मस्तक काटनेकी आवश्यकता नहीं है, तू मुझसे वर माँगले, तेरा जैसा मनोरथ होय वैसा ही वरदान मैं तुझे देता हूँ, मैं तो शरण आये हुए भक्तोंके ऊपर केवल जलमात्रसे ही प्रसन्न होजाता हूँ, सो तू निष्कारण ही अपने शरीरको कष्ट देता है ॥ २० ॥ इस प्रकार कहने पर उस वृकासुरने, प्राणिमात्रको भय देनेवाला ऐसा वर माँगा कि-मैं जिस जिसके मस्तक पर हाथ रक्खूँ वह तत्काल मर जाय ॥ २१ ॥ हे महाराज ! वह उसका वचन सुनकर रुद्र भगवान्ने खिन्नसे होकर, बहुत अच्छा, ऐसा कह कर, जैसे सर्पको दूध पिलाते हैं तैसे उस दैत्यको वह वरदान दिया ॥ २२ ॥ इस प्रकार शिवजीके कहने पर वह दैत्य, निःसन्देह पार्वतीको ही हरण करनेके विषय में उत्कण्ठित होकर शिवजीका कहना सत्य है वा असत्य इसकी परीक्षा करनेके निमित्त उन शिवजीके मस्तक परही अपना हाथ रखनेका उद्योग करने लगा, तब वह शिवजी, अपने दिये हुए वरदानसे आप ही भयको प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ और वह दैत्य जिनके पीछे लगा हुआ है ऐसे भयभीत हुए और थर थर काँपनेवाले वह शिवजी, स्वर्ग, भूमि और दिशाओंके छोर पर्यन्त दौड़कर तदनन्तर उत्तर दिशा की ओरको भागने लगे ॥२४॥ उस समय ब्रह्मादिक देवता भी, उन शिवजीके भय के दूर होनेका उपाय न जानते हुए, मौन ही रहे तदनन्तर वह शिवजी, अन्धकार के परली ओर प्रकाशित होनेवाले श्वेतद्वीपमें जापहुँचे ॥२५॥ जहाँ शान्त और सब लोकोंको अभय देनेवाले संन्यासी पुरुषोंकी परम गति ऐसे श्रीनारायणजी रहते हैं और जहाँ गया हुआ प्राणी फिर संसारदुःखमें नहीं पड़ता है ॥ २६ ॥ दुःख हरने वाले भगवान् नारायणने, उन इस प्रकार दुःखी हुए श्रीशङ्करको दूरसे ही देखकर, अपनी योगमायाकी शक्तिसे ब्रह्मचारी बटुकका वेष धारण करा और उनके सम्मुख

वटुको योगमायया ॥ २७ ॥ मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाऽग्निरिव ज्वलन् । अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रांतः किं दूरमागतः । क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥ यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो । भण्यतां प्रायशः पुंभिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच । एवं भगवता पृष्टो वचसामृतवर्षिणा । गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथा पूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच । एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि । यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥ यदि वस्तत्र विश्रंभो दानवेंद्र जगद्गुरौ । तर्ह्यंगाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥ यद्यसत्यं वचः शंभोः कथञ्चिद्दानवर्षभ । तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ३४ इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः । भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥ अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् । जयशब्दो नमःशब्दः

आपहुँचे ॥२७॥ मेखला, कृष्णमृगछाला, काठका दण्ड और रुद्राक्षकी मालासे युक्त, तेजसे अग्निकी समान प्रकाशवान् और हाथमें कुशोंका मुट्ठा धारण करे हुए वह बटु, अतिनम्रता उनको प्रणाम कर कहने लगा ॥२८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-अरे शकुनिके पुत्र वृकासुर ! तू निःसन्देह थका हुआसा दीख रहा है, बहुत दूर चल कर आया है क्या? क्षण भर विश्राम करले क्योंकि-पुरुषका यह शरीर सकल मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है, इसको अधिक श्रम देना ठीक नहीं है ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! तुमने कौनसा कार्य करनेका मनमें विचार करा है ? वह यदि हमारे सुनने योग्य होय तो कहो क्योंकि-यह लोक, सहायरूपसे लिये हुए पुरुषोंके साथ ही अपने प्रयोजनको साधता है, इस कारण तुम अपना निश्चय हमसे कहो, हम तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्ने, मानो अमृतकी वर्षा ही करनेवाला है ऐसे अपने वचनसे जिससे प्रश्न करा है ऐसा वह वृकासुर, क्षण भर विश्राम लेकर, श्रमरहित हुआ और उसने पहिले तपस्या करना आदि सब वृत्तान्त उस बटुसे कहा ॥ ३१ ॥ उस वृत्तान्तको सुनकर श्रीभगवान् कहने लगे, कि-तुम जैसा कहते हो यदि ऐसा है उन रुद्रका वरदानरूप वाक्य 'सत्य है' ऐसा हम तो किसी प्रकार नहीं मानते क्योंकि-जो रुद्र दक्षके शापसे पिशाचपनेको प्राप्त होगये और प्रेतोंके तथा पिशाचोंके राजा हुए हैं ॥३२॥ हे दानवेन्द्र ! उन जगद्गुरु श्रीशंकरके विषयमें तुमको यदि विश्वास होय तो हे वृकासुर ! तुम पहिले शीघ्र अपने ही मस्तक पर हाथ रखकर उनके वचनकी परीक्षा करलो ॥ ३३ ॥ और हे दानवोत्तम ! यदि किसी भी प्रकार उन शम्भुका वचन असत्य निकले तो असत्य बोलनेवाले उनको तू मार डाल, जिससे कि-वह फिर ऐसा असत्य भाषण न करें ॥३४॥ इस प्रकार विचित्र और अतिकोमल भगवान्के वचनोंसे जिसकी बुद्धि चलायमान हुई है तिस वृकासुरने भूलमें पड़कर अपना हाथ अपने ही शिर पर रख लिया ॥३५॥ तदनन्तर मानो वज्रसे ही ताड़ित हुआ क्या ऐसा वह दैत्य मस्तक फट कर मर कर गिर गया, उस समय

साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥ ३६ ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे । देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः संकटाच्छिवः ॥ ३७ ॥ मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः । अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥ हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः । क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥ य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः । गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द० उ० रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८ ॥

श्रीशुक उवाच । सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत । वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥ तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप । तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥ २ ॥ न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया । तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ॥ ३ ॥ स आत्मन्युत्थितं मन्युं

देवताओंने स्वर्गमें जयजयकार शब्द, बहुत अच्छा हुआ ऐसा शब्द और नमःशब्द उच्चारण करा ॥ ३६ ॥ उस पापी वृकासुरके मरणको प्राप्त होने पर देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्वोंने पुष्पोंकी वर्षा करी, इस प्रकार भगवान्ने शिवजीको संकटसे छुटाया है ॥ ३७ ॥ संकटसे छूटे शिवजीसे यह भगवान् पुरुषोत्तम, कहने लगे कि-अहो देव ! हे महादेव ! यह पापी दैत्य अपने ही पापसे मारा गया है, हे ईश्वर ! तुमसे महात्मा भक्तोंका भी अपराध करने वाला कौनसा प्राणी सुख पावेगा ? कोई सुख नहीं पावेगा, फिर जगत्के पूजनीय तुम विश्वेश्वर का अपराध करनेवाला प्राणी सुख नहीं पावेगा, इसका तो कहना ही क्या ३८।३९ जो पुरुष, मनके और वाणीके अगोचर रहने वाली शक्तियोंके समुद्र और मायासे पर, साक्षात् परमात्मा भगवान्ने, महादेवजीको सङ्कटसे छुड़ाया, इस चरित्रको सुनता है अथवा कहता है वह जन्ममरणरूप संसारके कारणभूत कर्मोंके बन्धनसे और शत्रुओंसे मुक्त होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें अष्टाशीतितम अध्याय समाप्त ॥ ८८ ॥ छ * छ

अब आगे नौवासीवें अध्यायमें, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनमें कौन बड़ा है ऐसा सन्देह होने पर भृगु ऋषिने, परीक्षा करके, विष्णुका महत्त्व ऋषियोंसे वर्णन करा यह कथा और भगवान्ने ब्राह्मणके पुत्र महाकालपुरमेंसे लाकर दिये, यह कथा वर्णन करी है ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! सरस्वती नदीके तट पर ऋषि, सत्र कर रहे थे; तहाँ उनमें यह संशय उत्पन्न हुआ कि-ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इनमें कौनसा देवता बड़ा है ? ॥ १ ॥ उस महत्त्वको जाननेकी इच्छासे उन ऋषियोंने तिस महत्त्वको जाननेके निमित्त ब्रह्माजीके पुत्र भृगुऋषिको भेजा, वह भृगु ऋषि परीक्षा करनेके निमित्त पहिले ब्रह्माजीकी सभामें गये ॥ २ ॥ उन्होंने, ब्रह्माजीके पास सत्त्वगुण है वा नहीं इसकी परीक्षा करनेके निमित्त उनको नमस्कार वा उनकी स्तुति आदि कुछ नहीं करी, तब भगवान् ब्रह्माजी, इसने मेरा अपमान करा ऐसा जान कर अपने ही तेजसे देदीप्यमान होते हुए उन भृगुजीके ऊपर

मात्मजायात्मना प्रभुः । अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मनः ॥ ४ ॥ ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः । परिरब्धुं समारेभ उत्थाय भ्रातरं मुदा ॥ ५ ॥ नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह । शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ६ पतित्वा पादयोर्देवी सांत्वयामास तं गिरा । अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ॥ ७ ॥ शयानं श्रिय उत्संगे पदा वक्षस्यताडयत् । तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥ ८ ॥ स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् । आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् । अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥ ९ ॥ अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने । इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥ १० पुनीहि सह लोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् । पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥ अद्याहं भगवंल्लक्ष्म्या आसमेकांतभाजनम् । वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः १२ श्रीशुक उवाच । एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा । निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं

क्रुद्ध हुए ॥ ३ ॥ तदनन्तर उन प्रभु ब्रह्माजीने, अपने मनमें, पुत्रके ऊपर क्रोध उत्पन्न हुआ ऐसा जान कर विवेकयुक्त बुद्धिसे 'जैसे कोई समर्थ पुरुष ही अग्निसे उत्पन्न हुए जलके द्वारा ही अग्निकी शान्ति करता है तैसे' अपनेसे उत्पन्न हुए पुत्रके ऊपर दृष्टि देकर ही क्रोधको शांत करा ॥४॥ तदनन्तर वह भृगुजी कैलासपर्वत पर गये तब महेश्वरदेव, यह मेरे भ्राता भृगु ऋषि आये हैं ऐसा जान कर हर्षसे उठ कर उनको आलिङ्गन करनेको उद्यत हुए, तब उन भृगुजीने, तुम चिताकी भस्म आदि धारण करके, अपने शुद्ध मार्गको छोड़ कर, अमङ्गलपनेका व्यवहार करने वाले हो, इस कारण मुझे स्पर्श न करो, ऐसा कहा तब, वह शिवजी क्रुद्ध हुए और नेत्र लाल करके हाथमें त्रिशूल उठा कर उनको मारनेको उद्यत हुए ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब पार्वतीने चरणों पर गिर कर मधुर वाणीसे उन श्रीशंकरको समझाया, तदनन्तर भृगु ऋषि, जहाँ जनार्दन विष्णुभगवान् रहते हैं उस वैकुंठलोकको चले गये ॥७॥ तहाँ लक्ष्मीकी जङ्घा पर शिर रख कर शयन करते हुए श्रीविष्णुभगवान्के वक्षःस्थल पर उन्होंने लात मारी, तदनन्तर साधुओंकी गति वह भगवान् लक्ष्मीसहित जाग कर ॥ ८ ॥ अपने पलङ्गपरसे नीचे उतरे, और उन ऋषिको मस्तकसे प्रणाम करके कहने लगे कि–हे ब्राह्मण ! तुम आये यह बड़ी उत्तम वार्त्ता हुई क्षण भर इस पलङ्ग पर बैठो, हे प्रभो ! आये हुए तुमको न जानने वाले अपराधोंकी तुम्हें क्षमा करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे तात मुने ! तुम्हारे चरण बहुत ही कोमल हैं और उनको बड़ा परिश्रम हुआ है, ऐसा कह कर अपने हाथसे उन ब्राह्मणके चरणको दबाते हुए वह विष्णुभगवान् कहने लगे कि–॥ १० ॥ हे ब्राह्मण ! तुम, तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले अपने चरणोदकसे लोकों सहित मुझे और मुझमें रहनेवाले सकल लोकों को पवित्र करो ॥११॥ हे भगवन् ! आज मैं लक्ष्मीके निरन्तर रहनेका स्थान हुआ हूँ, क्योंकि तुम्हारे चरणके स्पर्शसे निष्पाप हुए मेरे वक्षःस्थलपर लक्ष्मी स्थिर रहेगी १२ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान्के भाषण करने पर, उनकी गम्भीर वाणीसे सुखको प्राप्त हुए और प्रसन्न हुए भृगु ऋषि, भक्तिसे

भक्त्युत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥ १३ ॥ पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् । स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥१४॥ तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः । भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥ १५ ॥ धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् । ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥ १६ ॥ मुनीनां न्यस्तदंडानां शांतानां समचेतसाम् । अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ॥ १७ ॥ सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः । भजंत्यनाशिषः शांता यं वा निपुणबुद्धयः ॥ १८ ॥ त्रिविधा कृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः । गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये । पुरुषस्य पदांभोजसेवया तद्गतिं गताः ॥ २० ॥ सूत उवाच । इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगंधपीयूषं भवभयभित्परस्य पुंसः । सुश्लोक्यं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच । एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः । जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ॥ २२ ॥

गद्गद कण्ठ होकर मौन ही रहे और उनके नेत्रोंमेंसे आनन्दके आँसू टपकने लगे १३ हे राजन् ! उन भृगुजीने, फिर उन ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके सत्रमें आकर उनसे अपना अनुभव करा हुआ ब्रह्मादिक तीनों देवताओंका वर्त्ताव वर्णन करा ॥१४॥ उसको सुनकर तदनन्तर भगवान्का नम्रपना सुननेसे आश्चर्य युक्त और संशयरहित हुए तिन ऋषियोंने, बड़े भारी अपराधके समय भी निर्विकार रहनेवाले विष्णुभगवान् को ही सबसे बड़ा माना, क्योंकि जिनमें शान्ति है, जिनसे अभय प्राप्त होता है १५ जिनसे धर्म प्रवृत्त होता है, जिनसे साक्षात्कारात्मक ज्ञान और तिस ज्ञानसे युक्त वैराग्य उत्पन्न होता है, जिनसे अणिमादिक आठ प्रकारके ऐश्वर्य और अन्तःकरण के मलको दूर करने वाला यश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ जिनको, सबोंके अभय देने वाले, शान्त, समचित्त, अकिंचन, परोपकारी और मननशील साधुओंकी परम गति कहते हैं ॥ १७ ॥ सत्त्वगुण ही जिनकी प्रियमूर्त्ति है, जिनके ब्राह्मण ही इष्टदेव हैं, और शान्त, निष्काम और विचारवान् पुरुष जिनका सेवन करते हैं ।१८। जब उन भगवान्की ही गुणमयी मायाकी उत्पन्न करी हुई राक्षस, असुर और देव यह तीन प्रकारकी मूर्त्ति हैं और उनको, वह सत्वगुणात्मक विष्णुमूर्त्ति ही पुरुपार्थ प्राप्त होनेका साधन है ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! मनुष्योंका संशय दूर करनेके निमित्त ऐसा, निश्चय करके सरस्वती नदीके तट पर रहनेवाले वह ब्राह्मण, भगवान्के चरणकमलकी सेवासे मुक्तिको प्राप्त हुए ॥ २० ॥ सूतजी कहते हैं कि–हे शौनकादिक ऋषियो ! इस प्रकार इस कहे हुए, शुकदेवजीके मुखकमलसे प्रकट हुए, सुगन्धयुक्त अमृतकी समान संसारभयको दूर करनेवाले भगवान्के शुद्ध यशको, जो संसारी पुरुष, अपने कर्णरूप पात्रोंसे निरन्तर पान करता है; वह संसाररूप मार्गमें फिरते हुए होनेवाले श्रमोंको त्याग करता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! एक समय द्वारकामें किसी एक ब्राह्मणकी स्त्रीका पुत्र जन्म पाकर भूमिका स्पर्श होते ही तत्काल मरण

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः। इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः॥२३ ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः। क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पंचत्वं मे गतोऽर्भकः॥ २४ ॥ हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेंद्रियम्। प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः॥ २५ ॥ एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च। विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत॥ २६ ॥ तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवांतिके। परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत॥ २७ ॥ किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः। राजन्यबंधुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते॥ २८ ॥ धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः। ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुंभराः॥ २९ ॥ अहं प्रजां वां भगवन्रक्षिष्ये दीनयोरिह। अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः॥ ३० ॥ ब्राह्मण उवाच। संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः। अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत्॥ ३१ ॥ तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः। चिकी-

---

को प्राप्त होगया ॥२२॥ तब पुत्रके शोकसे व्याकुल हुए और दीनचित्त तिस ब्राह्मण ने, तिस मरे हुए पुत्रके प्रेतको उठा कर राजा उग्रसेनके द्वार पर रक्खा और वह विलाप करता हुआ इस प्रकार कहने लगा कि-॥ २३ ॥ यह पुत्र मरणको प्राप्तहुआ इसमें मेरा कोई दोष नहीं है किन्तु ब्राह्मणोंके द्वेषी, कृपणबुद्धि, विषयलम्पट तथा लोभी राजाके कर्मके दोषसे ही यह मेरा पुत्र मरणको प्राप्त हुआ है ॥ २४ ॥ हिंसा करने वाले, इन्द्रियोंका जय न करने वाले और स्वभावसे दुष्ट ऐसे राजाका सेवन करने वाली प्रजा, दरिद्री और नित्य दुःखित होती हुई क्लेश पाती हैं ॥ २५ ॥ इस प्रकार ही तिस ब्राह्मणने दूसरा, तीसरा इत्यादि आठपर्यंत पुत्र उत्पन्न होतेही मरण को प्राप्त होगये तब उनके प्रेत पूर्वकी समान राजाके द्वारपर रखकर वह राजाओं की निन्दारूप गाथाका गान करा ॥ २६ ॥ तदनन्तर एक दिन, नवम पुत्र मरणको प्राप्त हुआ तब श्रीकृष्णजीके समीप बैठे हुए अर्जुनने, उस ब्राह्मणकी रोते हुए गाई हुई गाथाको सुना और वह अर्जुन एकांतमें तिस ब्राह्मणसे कहने लगे कि-॥२७॥ हे ब्राह्मण ! तू व्यर्थ क्यों रोता है, तू जहाँ रहता है, इस द्वारकामें धनुर्धारी कोई सामान्य राजा भी नहीं है फिर ब्राह्मणोंका हितकारी शूर राजा नहीं है इसका कहना ही क्या ? यह यादव तो यज्ञमें इकट्ठे हुए ब्राह्मणोंकी समान (केवल भोजन करनेवाले) होमेके योग्य हैं ! ॥ २८ ॥ जिन क्षत्रियोंके जीवित रहते, धन स्त्री और पुत्रके वियोगसे ब्राह्मण शोक करते हैं वह क्षत्रिय, राजाके वेषधारी नट की समान अपने प्राणोंका पोषण करनेके निमित्त जीवित रहते हैं ॥ २९ ॥ अब,मैं कुछ दिनों पर्यंत यहाँ रह कर, तुम दोनों दीन स्त्रीपुरुषोंके आगे होने वाले बालकों की रक्षा करूँगा, और यदि मेरे हाथसे यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं होयगी तो मैं अग्निमें प्रवेश करके निष्पाप होऊँगा ॥ ३० ॥ तब वह ब्राह्मण कहने लगा कि-हे अर्जुन ! जिस मेरे पुत्रकी रक्षा करनेके विषयमें बलराम,श्रीकृष्ण;धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिसकी समान कोई रथी नहीं ऐसा अनिरुद्ध यह भी समर्थ नहीं हुए ॥३१॥ ऐसे जगदीश्वरोंसे भी न होसकने वाले कर्मको तुम, अपने मूर्खपनेके कारण कैसे

षसि त्वं बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम् ॥ ३२ ॥ अर्जुन उवाच । नाहं संकर्षणो प्रद्युम्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च । अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥ ३३ ॥ मावमंस्था मम ब्रह्मन् वीर्यं त्र्यंबकतोषणम् । मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥ ३४ ॥ एवं विश्रंभितो विप्रः फाल्गुनेन परन्तप । जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥ ३५ ॥ प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः । पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥ ३६ ॥ स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् । दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥ ३७ ॥ न्यरुणत्सूतिकाऽगारं शरैर्नानाऽस्त्रयोजितैः । तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपंजरम् ॥३८॥ ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः । सद्योऽदर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ॥ ३९ ॥ तदाह विप्रो विजयं विनिंदन्कृष्णसन्निधौ । मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीवकत्थनम् ॥४०॥ न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः । यस्य शेकुः परित्रातुं कोन्यस्तदवितेश्वरः ॥ ४१ ॥ धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः । दैवोपसृष्टं यो मौढ्या-

करनेकी इच्छा करते हो ? इस कारण तुम्हारे कहनेका हम कुछ भी विश्वास नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥ अर्जुनने कहा कि—मैं बलराम नहीं हूँ, श्रीकृष्ण नहीं हूँ और प्रद्युम्न भी नहीं हूँ किन्तु जिसका गाण्डीव नाम वाला धनुष है वह अर्जुन नाम वाला वीर हूँ ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! युद्धमें शिवजीको भी प्रसन्न करनेवाले मेरे पराक्रमका तू अपमान मत कर, हे प्रभो ! अवसर पर युद्धमें मृत्युको भी जीतकर तेरी सन्तानको लेकर आऊँगा ॥ ३४ ॥ हे राजन ! इस प्रकार अर्जुनने जिसके चित्तमें विश्वास उत्पन्न करा है ऐसा वह ब्राह्मण,प्रसन्न होकर अर्जुनका पराक्रम लोकोंसे वर्णन करता हुआ अपने घरको चला गया ॥ ३५ ॥ फिर कुछ कालमें, स्त्रीके सन्तान उत्पन्न होनेका समय समीप आने पर, चिन्तासे व्याकुल हुए उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने, उस अर्जुनसे, अब मेरी सन्तानकी मृत्युसे रक्षा करो, रक्षा करो, ऐसा कहा ॥ ३६ ॥ तब उस अर्जुनने, शुद्ध जलका आचमन कर, शिवजीको नमस्कार करके और दिव्य अस्त्रका स्मरण करके, सम्हाला हुआ गाण्डीव धनुष हाथमें लिया ॥ ३७ ॥ और तिस अर्जुनने, अनेकों प्रकारके अस्त्रमंत्रोंका प्रयोग करे हुए बाणोंसे उस जच्चाका घर सब ओरसे रोक दिया, अर्थात् आड़े ऊपर और नीचे बाण छोड़ कर उस घरको बाणोंका पिञ्जरा कर दिया ॥ ३८ ॥ तदनन्तर उस ब्राह्मणकी स्त्रीके पुत्र हुआ, वह बारम्बार रोते रोते एकाएकी शरीरसहित आकाशमें गुप्त होगया अर्थात् उसको मृतशरीर भी कहीं देखनेको नहीं मिला ॥ ३९ ॥ तब वह ब्राह्मण श्रीकृष्णजीके समीपमें अर्जुनकी निन्दा करता हुआ कहने लगा कि—अहो ! मेरी यह कितनी मूर्खता है ! देखो, जिस मैंने, इस नपुंसक अर्जुनकी व्यर्थ बड २ भाषणका विश्वास करके सत्य मान लिया ॥ ४० ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम और श्रीकृष्णजी, यह सब ही जिसके बालकोंकी रक्षा करनेको समर्थ नहीं हुए, उनकी रक्षा करनेको दूसरा कौन समर्थ होगा ? ॥ ४१ ॥ इस कारण असत्य बोलनेवाले अर्जुनको धिक्कार है, अपनी प्रशंसा करनेवाले उसके गाण्डीव धनुष

द्गामिनीषति दुर्मतिः ॥ ४२ ॥ एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः । ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ॥४३॥ विप्रापत्यमचक्षाणस्तत ऐन्द्रीमगात्पुरीम् । आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ । रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ॥ ४४ ॥ ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः । अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ॥ ४५ ॥ दर्शये द्विजसूनुंस्ते माऽवज्ञात्मानमात्मना । ये ते हि कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यंति ॥ ४६ ॥ इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः । दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥ ४७ ॥ सप्तद्वीपान्ससप्तसिंधून्सप्तसप्तगिरीनथ । लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥ ४८ ॥ तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकाः । तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥ ४९ ॥ तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः । सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥ ५० ॥ तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा । मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ॥ ५१ ॥ द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमःपरं परं

को धिक्कार है, जो दुर्बुद्धि अर्जुन, दैव करके दूसरे स्थान पर ले गये हुए मेरे बालकको अपनी मूर्खतासे लानेकी इच्छा करता है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मण श्रेष्ठके निन्दा करते हुए, अर्जुनने, चाहे जिधरको जानेकी अपनी विद्याको स्वीकार करके, जहाँ भगवान् यमराज रहते हैं तिस संयमनी नामवाली नगरीमें गमन करा ॥ ४३ ॥ तहाँ ब्राह्मणका पुत्र कहीं भी उनको दृष्टि नहीं पड़ा, इस कारण तहाँ से इन्द्रकी नगरीको गये, तहाँ भी ब्राह्मणका पुत्र नहीं मिला इस कारण हाथमें शस्त्र उठाकर तदनन्तर अग्नि, निर्ऋति सोम, वायु और वरुणकी नगरियोंमें जाकर, फिर पाताल, स्वर्ग तथा और भी दूसरे सब स्थानोंमें ढूँढकर देखा, परंतु कहीं भी उनको ब्राह्मणका पुत्र नहीं मिला, तदनन्तर जिनकी प्रतिज्ञा असत्य हुई है ऐसे अर्जुन, अग्निमें प्रवेश करने लगे, तब अनेकों प्रकारकी युक्तियोंसे अग्निमें प्रवेश करनेका निषेध करनेवाले श्रीकृष्णजीने उनसे कहा कि-॥ ४४ ॥ ४५ ॥ हे अर्जुन ! मैं तुम्हें ब्राह्मणका पुत्र दिखाता हूँ, तुम आप ही अपना तिरस्कार न करो, जो पुरुष, अब तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं वही हमारी निर्मल कीर्त्तिको स्थापन करेंगे ॥ ४६ ॥ इस प्रकार कहकर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, अर्जुनसहित अपने दिव्य रथ पर बैठ कर पश्चिम दिशाकी ओरको चल दिये ॥ ४७ ॥ सात २ पर्वत वाले सात द्वीप, सात समुद्र, तैसे ही लोकालोक पर्वत, इनका उल्लंघन करके, तिनके परली ओर 'सूर्यका प्रकाश न होनेके कारण' गाढ़ अंधकारमें प्रवेश करा४८ हे भरतश्रेष्ठ राजन् ! उस गाढ़ अन्धकारमें श्रीकृष्णजीके शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और वलाहक नामवाले चारों घोड़े भ्रष्टगति हुए अर्थात् आगेको चलनेको समर्थ नहीं हुए ॥ ४९ ॥ उनको देखकर महायोगेश्वरोंके भी योगेश्वर तिन श्रीकृष्ण भगवान्ने, सहस्र सूर्योंकी समान प्रकाश वाला अपना सुदर्शन चक्र आगे छोड़ा ॥ ५० ॥ तब मनकी समान वेगवाला वह सुदर्शन चक्र जिसमें प्रवेश करना कठिन और अतिभयंकर है ऐसे तिस प्रकृतिके कर्मरूप अपार अन्धकारको, अपने बड़े भारी तेजसे

ज्योतिरनन्तपारम् । समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षो पिदधेऽक्षिणी उभे ॥ ५२ ॥ ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद् बृहदूर्मिभूषणम् । तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ॥ ५३ ॥ तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः । विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ॥ ५४ ॥ ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् । सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ॥ ५५ ॥ महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् । प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्म्या वनमालया वृतम् ॥ ५६ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः । पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाऽखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम् ॥ ५७ ॥ ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः । तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ॥ ५८ ॥ द्विजात्मजा मे

विदीर्ण करता हुआ, रोदेसे छूटा हुआ श्रीरामचन्द्रजीका बाण जैसे रावणकी सेनामें को गया था तैसे उस अन्धकारमें गया ॥५१॥ तब, चक्रके पीछे २ होनेवाले द्वारसे जाते २ आगे उस अंधकारके परली ओर जिसका अन्त और पार नहीं ऐसा व्याप्त होकर रहनेवाला भगवान्‌का तेज उन अर्जुनके दृष्टि पड़ा, तब उन्होंने चौंधाए हुए अपने दोनों नेत्रोंको मूँद लिया ॥ ५२ ॥ फिर वह श्रीकृष्णजी और अर्जुन, प्रचण्ड पवनसे कम्पायमान होनेवाली बड़ी २ तरंगोंसे शोभायमान जलमें घुसे और तहाँ उन्होंने बड़े भारी प्रकाशसे युक्त और दमकते हुए सहस्रों मणि जड़े खम्भोंसे शोभायमान एक अद्भुत स्थान (महाकालपुर) देखा ॥ ५३ ॥ और तहाँ अतिभयंकर आश्चर्यकारी, मस्तक परके सहस्र फणों पर देदीप्यमान मणियोंकी कांतियोंसे शोभायमान होनेवाले, दो सहस्र भयंकर नेत्रोंवाले, कैलासपर्वतकी समान श्वेत और जिनका कण्ठ और जिव्हा काले हैं ऐसे शेषजीको देखा ॥ ५४ ॥ और उनके शरीररूप सुखकारक आसन पर बैठे हुए महाप्रतापी पुरुषोत्तम भगवान्‌को देखा, वह भगवान्-घने मेघकी समान श्यामवर्ण, व्यापक, पीला पीताम्बर धारण करे, प्रसन्नमुख, सुन्दर और विशाल नेत्रवाले, बहुत मूल्यकी मणियोंके समूहोंसे जड़े किरीटकी और कुण्डलोंकी कान्तिसे चमकनेवाले असंख्य घुंघराले केशोंसे युक्त, लंबी और सुन्दर आठ भुजा धारण करनेवाले, और कण्ठमें कौस्तुभ मणि, वक्षःस्थल पर श्रीवत्सका चिन्ह और चरणोंपर्यन्त लटकनेवाली वनमालासे युक्त थे ॥५५॥५६॥ तैसे ही सुनन्द नन्द आदि पार्षदोंसे, मूर्तिमान् हुए सुदर्शन आदि शस्त्रोंसे, पुष्टि, लक्ष्मी, कीर्त्ति, माया और सकल सिद्धियोंके सेवन करे हुए होकर वह ब्रह्मादिकोंके अधिपति थे ॥ ५७ ॥ उन जन्मरहित भूमानामक भगवान्‌को श्रीकृष्णजीने प्रणाम करा और उनके दर्शनसे भतभीत हुए अर्जुनने भी उनको प्रणाम करा और वह दोनों ही उनके आगे हाथ जोड़ कर खड़े होगये, तब ईश्वरोंके भी ईश्वर वह भूमा भगवान्, हँस कर गम्भीरवाणीमें तिन अर्जुन कृष्णसे कहने लगे कि- ।५८॥ तुम्हें देखनेकी इच्छा

युवयोर्दिदृक्षुणा मयापनीता भुवि धर्मगुप्तये । कलाऽवतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥ ५९ ॥ पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी । धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥ ६० ॥ इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना । ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥ ६१ ॥ न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् । विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥ ६२ ॥ निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः । यत्किञ्चित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥ इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् । बुभुजे विषयान् ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ६४ प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु । यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥ ६५ ॥ हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः । अंजसा वर्त्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६६ ॥

इति श्रीभागवते म० द० उ० द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ८९

श्रीशुक उवाच । सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियः पतिः । सर्वसंपत्समृ-

---

करनेवाला मैं इन ब्राह्मणके पुत्रोंको अपने समीप ले आया हूँ, पृथ्वी पर धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त,तुम दोनों ही मेरे अंशसे प्रकट हुए, इस कारण अब पृथ्वीके भारभूत दैत्योंका शीघ्र ही वध करके तुम फिर यहाँ मेरे समीप आजाओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों ही श्रेष्ठ नारायण ऋषि हो, और पूर्णमनोरथ हो तथापि जगत्की रक्षा करनेके निमित्त लोकोंको शिक्षा देनेके अर्थ धर्मोंका आचरण करो ॥ ६० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार उन भूमा भगवान्के आज्ञा करे हुए वह श्रीकृष्णजी और अर्जुन, बहुत अच्छा, ऐसा कहकर उनकी आज्ञाको स्वीकार कर उन भूमा भगवान्को नमस्कार कर और ब्राह्मणके पुत्रों को लेकर हर्षयुक्त होते हुए जिस मार्गसे गये थे उसी मार्गसे लौटकर द्वारकाको आये और उन्होंने, जैसे पहिले रूप और अवस्था आदि था तैसे ही बड़े छोटे ब्राह्मणके पुत्रोंको लाकर समर्पण करा ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ विष्णुभगवानके उस महाकालपुरुष स्थानको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए अर्जुनने, मनुष्योंका जो कुछ पराक्रम है वह सकल श्रीकृष्णजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है ऐसा माना ॥ ६३ ॥ इस प्रकार ऐसे अनेकों प्रकारके पराक्रम इस भूलोकमें, करके दिखानेवाले श्रीकृष्णजीने, संसारके विषयों का सेवन करा और बहुतसी दक्षिणायुक्त यज्ञोंसे देवादिकोंका आराधन करा ६४ सबोंमें श्रेष्ठताको पाये हुए तिन भगवान्ने, जैसे इन्द्र उचित समयमें लोकोंके ऊपर जलकी वर्षा करता है तैसे ही ब्राह्मणादिक प्रजाओंके ऊपर इनके इच्छित सकल मनोरथोंकी योग्यकालमें वर्षा करी ॥ ६५ ॥ और कितने ही अधर्मी राजाओंको स्वयं मारकर और कितनों हीको अर्जुनादिकोंसे मरवा कर युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओंके द्वारा अनायासमें धर्मकी प्रवृत्ति करी ॥६६॥ इति श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्ध उत्तरार्द्धमें एकोननवतितम अध्याय समाप्त ॥ ८९ ॥ ❀

अब आगे नब्बेवें अध्यायमें फिर श्रीकृष्णजीकी लीला संक्षेपसे कही है और यमवंशमें उत्पन्न हुए पुरुषोंका अनन्तपना कारणसहित कहा है ॥ ❀ ॥ अब श्री-

द्वारायां जुष्टायां वृष्णिपुंगवैः ॥ १ ॥ स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकांतिभिः कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ॥ २ ॥ नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः । स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ॥ ३ ॥ उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु । निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समंततः ॥४॥ रेमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवल्लभः । तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ॥ ५ ॥ प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदांभोजरेणुभिः । वासितामलतोयेषु कूजद्द्विजकुलेषु च ॥६॥ विजहार विगाह्यांभो ह्रदिनीषु महोदयः । कुचकुंकुमलिप्तांगः परिरब्धश्च योषिताम् ॥ ७ ॥ उपगीयमानो गंधर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् । वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधवन्दिभिः॥८ सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसंतीभिः स्मरेचकैः । प्रतिसिंचन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥ ९ ॥ ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिंचन्त्य उद्धृतबृहत्कवरप्रसूनाः।

कृष्णजीकी विभूति संक्षेपसे दिखाते हुए श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि-हे राजन्! सकल संपत्तियोंसे बढ़ीहुई,श्रेष्ठ यादवों करके सेवन करीहुई फूलोंके वृक्षोंके बगीचों से फलयुक्त वृक्षोंके बागोंसे भरी हुई, प्रफुल्लित वृक्षोंकी पंक्तियोंसे उड़ते हुए भौंरों से और विचरतेहुए पक्षियोंसे सब ओरसे शब्दायमान करीहुई तथा वस्त्र आभूषण आदि धारण करनेवालीं नवीन तरुणाईकी कांतिसे युक्त और अपने २ महलमें गेंद आदिखेलनेकी सामग्री लेकर खेलतेमें बिजलीकी समान चमकनेवालीं स्त्रियोंसे युक्त और जिनका मद टपक रहा है ऐसे मदोन्मत्त हाथी आभूषण धारण करेहुए वीर घोड़े, और सुवर्णसे मँढ़ेहुए होनेके कारण चमकनेवाले रथोंकी जिसमेंके मार्गोंमें प्रतिदिन चिचपिच होती थी ऐसी अपनी द्वारकानगरीमें सुखके साथ रहनेवाले और सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियोंको एक ही प्रिय प्रतीत होनेवाले तिन लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजीने, उन स्त्रियोंके परमसम्पदाओंसे भरे हुए घरोंमें उतने ही सुन्दररूप धारण करके क्रीडा करी ॥ १—५ ॥ उन सब घरोंके आरामबागोंमें जो तालाव थे उनके निर्मल जल, उनमें खिलेहुए-उत्पल, कल्हार, कुमुद और कमलोंके सुगन्धसे उत्तम बसे हुए होरहे थे, उन तालावोंके तटों पर पक्षियोंके समूह शब्द कर रहे थे ॥ ६ ॥ उन तालावोंमेंके जलोंमें प्रवेश करके बड़े भारी ऐश्वर्य वाले उन श्रीकृष्ण जीने, उन स्त्रियोंसे आलिङ्गित और उनके कुचोंके केशरसे लिप्तशरीर होकर क्रीड़ा करी ॥ ७ ॥ उस समय प्रेमसे मृदङ्ग, प्रणव, नगाड़े, और वीणा बजाने वाले गन्धर्वोंने, उनका यश गाया, सूत, मागध और वन्दीजनोंने स्तुति करी ॥ ८ ॥ उस समय हास्य करने वाली उन स्त्रियोंने, जलकी और रङ्गकी पिचकारियें छोड़ कर जिनको भिगोया है ऐसे श्रीकृष्णजीने, आप भी पलटेमें उनको भिगो कर 'जैसे यक्षस्त्रियोंके साथ कुवेर क्रीडा करता है तैसे, क्रीडा करी ॥ ९ ॥ उस समय वस्त्र भीग जानेके कारण जिनकी जंघा और कुच स्पष्ट दीख रहे हैं जिनके बड़े २ केश पाशोंमेंसे फूल बिखर कर गिर रहे हैं ऐसी, पिचकारियोंसे श्रीकृष्णजीको भिगोनेवालीं वह स्त्रियें, श्रीकृष्णजीके हाथमेंकी पिचकारीको छीन लेनेकी इच्छासे, श्रीकृष्णजीके समीप जाकर और उनको दृढ आलिंगन करके, तिससे प्राप्त हुए

कान्तं स्मरेचकजिह्मीरपयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः॥ १०॥ कृष्णस्तु तत्स्तनविषज्जितकुङ्कुमस्रक्क्रीडाऽभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः। सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः॥ ११॥ नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम्। क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः॥१२॥ कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः। नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः॥१३॥ ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम्। चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु॥१४॥ महिष्य ऊचुः। कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति राऽयामीश्वरो गुप्तबोधः। वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन॥ १५॥ नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि। दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण वोढुम्॥१६ भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः। किं वा मुकुन्दापहृतात्म-

कामदेवके उत्साहके कारण हर्षसे प्रफुल्लित मुखी होती हुई शोभा पाने लगीं १० स्त्रियोंके कुचोंके केशरसे जिनकी माला लिपगई है, क्रीडाकी आसक्तिसे जिनका केशपाश खुल गया है ऐसे वह श्रीकृष्णजी भी, अपने आप वारंवार उन स्त्रियोंको भिगोते हुए और पलटेमें उन स्त्रियों करके स्वयं भी भिगोये जाते हुए 'जैसे हथिनियोंसे घिरा हुआ हाथी क्रीडा करता है तैसे' क्रीडा करनेलगे ॥ ११ ॥ उससमय नटोंको, नटनियोंको और गाने बजानेसे जीविका चलानेवाले पुरुषोंको, श्रीकृष्णजीने और उनकी स्त्रियोंने, क्रीड़ा करनेके निमित्त अपने आप जो वस्त्र धारण करे थे वह पुरस्कार (इनाम) में दे दिये ॥१२॥ इस प्रकार क्रीड़ा करनेवाले श्रीकृष्णजीकी गति, भाषण अवलोकन, मन्दमुसकान, हास्य, चौल और आलिंगनके द्वारा उन स्त्रियोंकी बुद्धियें अत्यन्त तन्मय होगईं ॥१३॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी ओर जिनका चित्त जड़ा है ऐसी उन स्त्रियोंने, श्रीकृष्णजीकी समीपता न होनेके समय मौनव्रत धारण करके, उन कमलनेत्रका चिन्तवन करते हुए उन्मत्तकी समान जो अनन्वित (अटसट) भाषण करे हैं वह मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥१४॥ वह स्त्रियें कहने लगीं कि-अरी टटीरीपक्षिणी! इस जगत्में रात्रिके समय जागते समयके सब व्यापारोंको छोड़ कर श्रीकृष्णजीके शयन करने पर, निद्रारहित तू उनकी निद्राका भङ्ग करती हुई विलाप करती है, सोती नहीं है, यह तुझे योग्य नहीं है, हे सखि! हमारी समान तू भी श्रीकृष्णजीके हास्य सहित उदार लीलायुक्त कटाक्षोंसे चित्तमें अत्यन्त विंध गई है क्या? ॥१५॥ अरी चकवी! रात्रिके समय तू अपने नेत्र क्यों मूँद रही है? और तू करुणस्वरसे पुकार रही है सो तेरा पति इस समय तेरी दृष्टिके सामने नहीं है क्या? अथवा हमारी समान ही तू भी श्रीकृष्णजीके दासभावको पाकर उन श्रीकृष्णजीके चरणों पर भक्तोंकी चढ़ाई हुई फूलोंकी मालाको अपने केशपाशमें धारण करनेकी इच्छा करती है क्या? ॥ १६ ॥ अरे हे समुद्र! निद्रा न आनेके कारण जागता हुआ तू एक समान शब्द कर रहा है, सो हमें प्राप्त हुई अटलदशाको तू भी प्राप्त हुआ है क्या? बड़े दुःखकी वार्त्ता

लाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥ १७ ॥ त्वं यक्ष्मणा बलवताऽसि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि । कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥ १८ ॥ किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल ते प्रियम् । गोविंदापांगनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥ मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेंद्रस्य नूनं श्रीवत्सांकं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः । अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः श्रुत्वा श्रुत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः २० प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा । करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकंठ कोकिल ॥ २१ ॥ न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिंतयसे महांतमर्थम् । अपि बत वसुदेवनंदनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥ २२ ॥ शुष्यद्ध्रदाः करशिता बत सिंधुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः । यद्वद्वयं

है कि-श्रीकृष्णजीने हमारे साथ संभोग करके हमारे कुचोंके कुंकुम आदिके चिन्हों को हरण करा तिसके कारण जैसे हम खिन्न हुई हैं तैसे ही कौस्तुभ आदि चिन्ह जिसके हरे गये हैं ऐसा तू खिन्न दीख रहा है ॥ १७ ॥ हे चन्द्रमा ! तू अतिबली क्षयरोगसे ग्रसित हुआ है, इस कारण ही क्षीण होकर अपनी कान्तियोंसे अन्धकार का नाश नहीं करता है, सो तू भी हमारी समान ही श्रीकृष्णजीके रहस्यभाषणों को भूलकर उनके चिन्तवनमें निमग्न होता हुआ,मौन होकर क्षीण हुआ है क्या ? हमें तो ऐसा ही दीखता है ॥१८॥ हे मलयाचलके पवन ! हमने तेरा कौनसा अप्रिय कार्य करा है ? कि-जिससे तू श्रीकृष्णजीके कटाक्षोंसे अत्यन्त विधी हुई, हमारे हृदयमें कामकी प्रेरणा करता है ॥ १९ ॥ हे सुन्दर मेघ ! तू निःसन्देह श्रीकृष्णजी का मित्र है, क्योंकि-ताप हरना, श्यामता आदि भगवान्‌के गुण तुझमें दीखते हैं, इस कारण ही, तू हमारी समान उनके प्रेमसे बँध कर, उन श्रीवत्सलाञ्छनका ध्यान करता है क्या ? अरे तू हमारी समान ही, उनके दर्शनके विषयमें अत्यन्त उत्कण्ठित और प्रेमसे आर्द्रचित्त होता हुआ उनका वारम्वार स्मरण करके आँसुओं की धारा छोड़ रहा है अरे ! उनके साथ तूने काहेको मित्रता करी, क्योंकि-उनकी संगति विरक्तोंको सुख देनेवाली हो परन्तु गृहस्थियोंको तो दुःख ही देनेवाली है ॥ २० ॥ हे मञ्जुलकण्ठ कोकिल ! तू मरे हुओंको भी जीवित करनेवाली इस कोमल वाणीसे मुझे प्रिय बोलनेवाले श्रीकृष्णजीके शब्दकी समान शब्द सुनाकर दिखाती है, सो अब बता-मैं तेरा कौनसा प्रियकार्य करूँ ? ॥ २१ ॥ हे उदारबुद्धे पर्वत ! तू हलता नहीं है और बोलता भी नहीं है इससे किसी तो गहन अर्थका विचार करता है ? सो जैसे हम श्रीकृष्णजीके चरणको स्तन पर धारण करनेकी इच्छा करती हैं तैसे ही तू भी अपने, स्तनोंकी समान शिखरोंसे भगवान्‌के चरण को धारण करनेकी इच्छा करता है क्या ? यदि ऐसा है तो तुझे भी हमारी समान ही दशा प्राप्त हुई है ॥ २२ ॥ हे समुद्रपत्नी नदियों ! जैसे हम श्रीकृष्णजीके कृपा-कटाक्षोंको न पाकर, उनके हृदयको चुरा लेजानेके कारण अत्यन्त ही दुर्बल होगई हैं, तैसे ही तुम भी इस समय ग्रीष्मऋतुमें अपने इच्छितपति समुद्रके जलको मेघ

यदुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥ २३ ॥ हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यंग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा । किंवा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥ २४ ॥ इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे । क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ॥ २५ ॥ श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः । उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ॥२६॥ याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः । जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥ २७ ॥ एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः । गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥ २८ ॥

के द्वारा न पाकर, जिनके कुण्डे सूख गये हैं और जिनकी कमलोंकी शोभा दूर होगई है ऐसी अत्यन्त ही दुर्बल होगई हो, सो तुम्हारा पति समुद्र मेघके द्वारा अमृतवर्षासे तुम्हें आनन्द नहीं देता है, यह देखकर हम बड़ी दुःखित हुई हैं २३ उस ही समय तहाँ दैववश आये हुए हंसको, यह दूत है ऐसा मानकर कहने लगीं कि–हे हंस ! तू आया, यह बड़ी अच्छी वार्त्ता हुई, तू यहाँ बैठ और दूध पी, हे हंस ! तू हमसे श्रीकृष्णजीकी कथा वर्णन कर तू श्रीकृष्णजीका दूत होकर आया है, यह हम जानती हैं, अरे ! श्रीकृष्ण ! आनन्दसे तो हैं ? श्रीकृष्णजीने 'तुझ समान प्रेमवती स्त्री इस गृहस्थाश्रममें मैं कहीं नहीं देखता हूँ, ऐसा जो' पहिले हमसे कहा था उसका अब क्षणिक मित्रता रखने वाले वह श्रीकृष्ण कभी स्मरण करते हैं क्या ? यदि कहे कि स्मरण करके ही उन्होंने तुझे भेजा है तो अरे ! छछोरके दूत ! हम उनके समीप काहेको जायँ ? यदि कहै कि–कामसुखके निमित्त वह तुम्हें बुलाते हैं तो, उसको ही तू इधर बुलाला, तदनन्तर 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर जाते हुएसे उनको देखकर फिर कहने लगीं कि–जो हमें धोखा देकर इकली ही उन श्रीकृष्णजीका सेवन करती है उस लक्ष्मी के विना उनको इधर बुला यदि कहे कि–वह उनके विषै अनन्यभावसे प्रेम करती है उसको छोड़कर कैसे आवेंगे ? तो हमें स्त्रियोंमें वही एक अनन्यभावसे प्रेम करनेवाली है ? हम क्या अनन्यभावसे प्रेम नहीं करती हैं ? ॥२४॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! इस प्रकार योगेश्वरोंके ईश श्रीकृष्णजीके विषैं ऐसे करे हुए अनूपम प्रेमके प्रभावसे वह श्रीकृष्णजीकी स्त्रियें परमगतिको प्राप्त हुईं ॥२५॥ श्रीकृष्णजीके ऊपर उनका ऐसा प्रेम होना कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि–अनेकों पुरुषों करके अनेकों प्रकारके गीतोंके द्वारा अनेकों प्रकारसे गान करे हुए उन श्रीकृष्णजीका केवल श्रवण होय तो भी वह स्त्रियोंके मनको बलात्कारसे (जबरदस्ती) हरता है फिर उनको जो स्त्रियें साक्षात् देखें उनके मनको वह हरेंगी, इसका तो कहना ही क्या ? ॥ २६ ॥ जिन स्त्रियोंने जगद्गुरु भगवान्की पतिबुद्धिसे चरणशुश्रूषा आदि करके प्रेमसे सेवन करा उन स्त्रियोंके तपका वर्णन हमसे कैसे होसकता है ? ॥ २७ ॥ इस प्रकार सत्पुरुषोंकी गतिरूप भगवान् श्रीकृष्णजीने वेदमें कहे हुए धर्मोंका बारम्बार आचरण करके, यह दिखाया कि–यह

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् । आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥ २९ ॥ तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः । रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्राश्चानुपूर्वशः ॥ ३० ॥ एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् । यावत्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥ ३१ ॥ तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः । आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान् भानुरेव च । सांबो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ॥ ३३ ॥ पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः । चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ॥ ३४ ॥ एतेषामपि राजेंद्र तनुजानां मधुद्विषः । प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ॥ ३५ ॥ स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः । तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ३६ स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः । वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥ ३७ ॥ प्रतिबाहुरभूत्तस्मात्सुबाहुस्तस्य चात्मजः । सुबाहोः शांतसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥ ३८ ॥ न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥ यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।

धर्म, अर्थ और कामका स्थान है ॥ २८ ॥ गृहस्थाश्रमियोंके परमधर्मका सेवन करनेवाले श्रीकृष्णजीकी स्त्रियें सोलह सहस्र एक सौ आठ थीं ॥२९॥ हे राजन् ! स्त्रियोंमें रत्नरूप उन स्त्रियोंमेंसे रुक्मिणी आदि जो आठ पटरानियें, वह मैंने पहिले तुमसे कही हैं और उनके पुत्र भी क्रमसे कहे हैं ३० इन आठोंको छोड़कर दूसरी भी जितनी (१६१००) श्रीकृष्णजीकी स्त्रियें थीं उनमेंसे हर एकके विषें भी उन सत्संकल्प ईश्वर श्रीकृष्णजीने दश २ पुत्र उत्पन्न करे सब मिलकर श्रीकृष्णजीके पुत्र (१६१०८०) थे ॥३१॥ उन महापराक्रमी पुत्रोंमें अठारह पुत्र महारथी और बड़े यशस्वी थे, उनके नाम मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥३२॥ १ प्रद्युम्न, २ अनिरुद्ध, ३ दीप्तिमान्, ४ भानु ५ साम्ब ६ मधु ७ बृहद्भानु, ८ चित्रभानु, ९ वृक, १० अरुण ११ पुष्कर, १२ देवबाहु १३ श्रुतदेव, १४ सुनन्दन, १५ चित्रबाहु, १६ विरूप १७ कवि और १८ न्यग्रोध, यह थे ॥ ३४ ॥ हे राजेन्द्र ! भगवान्के इन सब पुत्रोंमें भी रुक्मिणीका प्रथम पुत्र जो महारथी प्रद्युम्न, वह रूपमें और गुणोंमें पिता (श्रीकृष्ण) की समान ही था ॥ ३५ ॥ उस महारथीने, रुक्मी की कन्या रुक्मवतीको वरा उनके दश सहस्र हाथीके बल वाला अनिरुद्ध नामवाला पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ रुक्मीकी कन्याके पुत्र ऐसे तिस अनिरुद्धनेभी, रुक्मीके पुत्रकी कन्या(रोचना) को वरा, तदनन्तर उसका तिस रोचनामें वज्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसको, मूसलके कारण हुए यादवोंके संहारमेंसे भगवान्ने शेष (बचा कर) रक्खा था ॥ ३७ ॥ तिस वज्रसे प्रतिबाहु हुआ, तिसका पुत्र सुबाहु हुआ, तिस सुबाहुसे शान्तसेन हुआ, तिसका पुत्र श्रुतसेन हुआ ३८ इस कुलमें कोई भी निर्धन, थोड़ी सन्तान वाला, थोड़ी आयु वाला, थोड़े पराक्रम वाला, और ब्राह्मणोंकी भक्तिसे हीन नहीं हुआ ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! यदुवंशमें उत्पन्न हुए और प्रसिद्ध कर्म करने वाले पुरुषोंकी गिनती करना, लाखों वर्षोंमें भी नहीं

संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥ ४० ॥ तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च । आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥ ४१ ॥ संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् । यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥ ४२ ॥ देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः । ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ४३ तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले । अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ॥ ४२ ॥ तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः । ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ॥ ४५ ॥ शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु । न विदुः सन्तमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ॥ ४६ ॥ तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः । यन्नामामंगलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रा-

होसकता ॥ ४० ॥ क्योंकि यदुकुलमें असंख्य बालकोंको शिक्षा देनेवाले गुरु तीन करोड़ आठसहस्र आठसौ (३०००८८००) थे ऐसा सुना है ॥ ४१ ॥ फिर महात्मा यादवोंकी गिनती कौन करसकेगा ? जहाँ अयुतों (दश सहस्रों) के अयुत लाखों करके सहित वह उग्रसेन राजा राज्य करते थे ॥ ४२ ॥ पहिले अमृतकी प्राप्तिके समय देवदैत्योंका संग्राम हुआ, तिसमें जो अतिभयंकर दैत्य मारे गये थे वह ही, बहुतसे रूपोंसे मनुष्योंमें उत्पन्न होकर घमण्डमें भरे हुए प्रजाओंको दुःख देनेलगे, इस कारण ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! उनका नाश करनेके निमित्त, श्रीहरिके आज्ञा करे हुए देवता, यादवोंके कुलमें प्रकट हुए और उनके एक सौ एक (१०१) कुल थे४४ उन कुलके प्रभुरूपसे माननीय भगवान् श्रीकृष्णजी ही थे, जो यादव उन भगवान्के आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करनेवाले थे वह सब ही धन बल आदिसे वृद्धिको प्राप्त हुए ॥४५॥ उनकी दुःख भूलनेकी रीति कहते हैं कि-श्रीकृष्णजीके विषैं चित्त लगाने वाले उन यादवोंने, सोना, बैठना, फिरना, बोलना, खेलना, और स्नान करना आदि कर्मोंमें लगे हुए अपने शरीरोंका भी भान नहीं रक्खा, फिर वह और सब दुःखोंको भूल गये, इसका तो कहना ही क्या ? ॥४६॥ अब श्रीकृष्णजीकी कीर्त्तिकी जो सर्वोत्तमता और श्रीकृष्णजीकी जो सकल देवोंमें उत्तमता सो आश्चर्यकारी नहीं है, ऐसा वर्णन करते हैं-हे राजन् ! इससे पहिले, भगवान्के चरणके धोवनका जल जो गङ्गा वही सबोंसे बड़ा तीर्थ था; अब तो यादवोंमें जो श्रीकृष्णजीकी कीर्त्ति रूप तीर्थ उत्पन्न हुआ है, वह तिस गङ्गाकी अपेक्षा सब स्थानमें सुलभ है और अधिक प्रभाव वाला होनेके कारण तिसने गङ्गारूप तीर्थको छोटा कर छोड़ा है, जिन श्रीकृष्णजीकी परमदयालुताके कारण शत्रु और मित्र सबही सायुज्यमुक्तिको प्राप्त हुए, जिसके अपनेको प्राप्त होनेके निमित्त ब्रह्मादिकोंका प्रयत्न चल रहा है, वह किसीको भी प्राप्त न होने वाली, परिपूर्ण लक्ष्मी, जिन श्रीकृष्णजीके आश्रयसे रही है जिनका नाम सुनने पर अथवा उच्चारण करने पर सकल प्रकारके अमङ्गलपने का नाश करता है और जिन्होंने अनेकों ऋषियोंके वंशोंमें धर्मकी प्रवृत्ति करी है, उन कालमूर्त्ति और चक्रका शस्त्रको धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीका यह पृथ्वीके

मुखस्य ॥ ४७ ॥ जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् । स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मित श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ॥४८ इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि । कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ॥ ४९ ॥ मर्त्यस्तयाऽनुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिंतयैति । तद्धाम दुस्तरकृतांतजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

भारका हरण करना कुछ आश्चर्यकारी नहीं है अर्थात्–सबका संहार करने वाले कालमूर्त्ति और विशेष करके अनन्त प्रभाववाले चक्रको धारण करनेवाले श्रीकृष्णजीका यह कितनासा कार्य है ? कुछ भी नहीं है ॥ ४७ ॥ देवकीके विषें जन्मको प्राप्त हुए केवल यही वर्णन करा परन्तु वास्तवमें जन्मरहित, इच्छामात्रसे अधर्मका नाश करनेमें समर्थ होकर भी क्रीड़ाके निमित्त अपनी भुजाओंसे अधर्मको दूर करने वाले, अधिकारकी अपेक्षा न रख कर वृन्दावनमेंके स्थावर जङ्गम जीवोंके संसार दुःखका नाश करने वाले और मन्दहास्ययुक्त श्रीमुखसे गोलोकवासी तथा नगरवासी स्त्रियोंको भोगके द्वारा मोक्ष देने वाले वह जगन्निवास भगवान् श्रीकृष्णजी, श्रेष्ठ यादवोंसे सेवित होते हुए उत्कर्षको प्राप्त होरहे हैं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार अपने वैदिक धर्मकी रक्षा करनेके निमित्त, तिन २ कार्योंके प्रसंगसे मत्स्य आदि अनेकों अवतार धारण करने वाले परन्तु उनमें विशेष करके यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्णरूप परमात्माके, मनुष्यावताररूप चेष्टाका अनुकरण करने वाले और जीवोंके कर्म बन्धनोंको तोड़ डालने वाले जो कर्म हैं उनको, इन श्रीकृष्णजीके चरणमें आसक्ति की इच्छा करने वाला पुरुष, अवश्य श्रवण करे ॥ ४९ ॥ तब श्रीकृष्णजीकी सुन्दर कथाओंके श्रवण कीर्त्तन सहित चिन्तवनसे प्रतिक्षणमें बढ़ी हुई तिस आसक्ति करके ही मनुष्य, कालके दुस्तर वेगको शान्त करने वाले उन श्रीकृष्णजीके लोकको पाता है वह लोक इतना दुर्लभ है बड़े २ राजे भी जिसकी अभिलाषासे अपने राज्य आदिकोंको त्याग कर, श्रवण आदि साधनोंका अनुष्ठान करते हुए नगरोंमें से निकल कर वनोंको चले गये हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध उत्तरार्द्धमें नवतितम अध्याय समाप्त ॥ ९० ॥ छ * छ

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य,पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि–मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र–गौड़वंश्य–श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थ–राजकीय-प्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतंत्रस्वतंत्र महामहोपाध्याय–सत्संप्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिराममिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेन भाषानुवादेन सहितो दशमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयं दशमः स्कन्धः ॥

* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *



अथ-एकादशस्कन्धः प्रारम्भः



श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीबादरायणिरुवाच । कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः । भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ॥ १ ॥ ये कोपिताः सुबहु पांडुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् । कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥ २ ॥ भूभारराजपृतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः

॥ श्रीः ॥ अब इस ग्यारहवें स्कन्धमें नौ योगीश्वर आदिकोंके इतिहासके द्वारा इकतीस अध्यायोंमें संक्षेपसे और विस्तारसे मोक्षके मार्गका वर्णन करा है ॥ * ॥ श्रीशुकदेव कहते हैं कि-हे राजन्! बलरामजी सहित और यादवोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णजीने, पूतना आदि दैत्योंका अपने आप वध करके और कौरव पाण्डवोंमें बड़ा भारी कलह उत्पन्न करके भूमिका भार उतार दिया ॥१॥ इसको ही स्पष्टरूपसे कहते हैं कि-दुर्योधन आदि शत्रुओंने, कपटका जुआ खेलना, अपमान; सभामें द्रौपदीके केशोंका खैंचना, विष देना और लाखाघरमें जलाना इत्यादि उपद्रव करके अनेकों समय जिन पाण्डवोंको कोपित करा था, उनको निमित्त करके उन पांडव और कौरवोंका युद्ध करनेका नियम ठहर जाने पर उन दोनोंकी सहायता करनेके निमित्त दोनों पक्षमें होकर एक स्थानपर इकट्ठे हुए राजाओंको परस्पर मरवाकर श्रीकृष्णजीने पृथ्वीका भार हरा, उनमें जो पूतना आदि प्रकट दैत्य थे उनको स्वयं

स्वबाहुभिरचिंनयद्रप्रमेयः । मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो ह्यविषह्यमास्ते ॥ ३ ॥ नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत्कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् । अन्तः कलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तंबस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ॥ ४ ॥ एवं व्यवसितो राजन्सत्यसंकल्प ईश्वरः । शापव्याजेन विप्राणां सजह्रे स्वकुलं विभुः ॥ ५ ॥ स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् । गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥ ६ ॥ आच्छिद्य कीर्त्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ । तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥ ७ ॥ राजोवाच । ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् । विप्रशापः कथमभूद् वृष्णीनां कृष्णचेतसाम् ॥ ८ ॥ यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम । कथमेकात्मनां

ही मारा और जो दैत्य बांधवरूप थे उनको आपसमें कलह करवाकर मरवा दियार अपनी भुजाओंसे रक्षा करे हुए यादवोंके हाथमे, पृथ्वीके भाररुप दूसरे राजाओं की सेनाको मरवाकर, जिनके कर्त्तव का कोई तर्क भी नहीं कर सकता ऐसे उन श्रीकृष्णजीने विचार करा कि—लोकदृष्टिसे यद्यपि भूमिका भार दूर होगया है तथापि वह भार न दूर हुआ सा ही है, ऐसा मैं निःसंदेह मानता हूँ,क्योंकि-अहो जिसका सहना अत्यन्त ही अशक्य है ऐसा ये यादवोंका कुल अब भी ज्योंका त्यों ही है॥३॥यदि कोई कहे कि-इसको दूसरेसे मरवादो तो इस यादवकुलका तिरस्कार दूसरे देवादिकोंसे भी किसी प्रकार नहीं होसकता, क्योंकि—इसने नित्य मेरा आश्रय करा है और यह हाथी घोड़े आदि ऐश्वर्यसे उच्छृंखल होरहा है, इसकारण इसका संहार करे विना कार्य नहीं चलेगा, इस कारण जैसे बाँसोंके झुंड में रगड़ से अपने आप अग्नि उत्पन्न होता है तैसे ही यादवोंके कुलमें अब थोड़े ही कालमें कलह उत्पन्न करूँगा और मैं शांतिको प्राप्त होकर अपने वैकुंठ नामक लोकको जाऊँगा ॥४॥ हे राजन् ! इसप्रकार सत्यसंकल्प और चाहें जो कुछ करनेको समर्थ ऐसे श्रीकृष्णजीने, निश्चय करके ब्राह्मणोंके शापके मिष (बहाने) से अपने कुलका संहार करा ॥ ५ ॥ तदनन्तर लोकमें कहीं भी जिसकी अपेक्षा अधिक सुन्दरता नहीं है अथवा जिससे लोकोंको सुन्दरता प्राप्त हुई है ऐसी अपनी मूर्त्तिसे लोकोंके नेत्रोंको अपनेमें आसक्त करके, तैसे ही अपनी उपदेशरूप वाणीसे, तिस वाणीका स्मरण करने वाले लोकोंके चित्तोंको आकर्षण करके और धूलिमें उमड़े हुए अपने चरणोंके चिह्नों करके तिनको देखने वाले लोकोंकी गमन आदि चेष्टाओंको दूसरी ओरको प्रवृत्त होनेसे रोक कर और आगेको होने वाले लोक, इसके द्वारा अनायासमें संसारसमुद्रको तरजायँगे ऐसे विचारसे कवियोंके उत्तम श्लोकोंमें वर्णन करी जानेवाली अपनी कीर्त्तिका पृथ्वी पर विस्तार करके प्रभु श्रीकृष्णजीने अपने स्थानको गमन करा ॥ ६ ॥ ७ ॥ राजा परीक्षितने कहा कि-हे शुकदेवजी ! जो ब्राह्मणोंकी भक्तिसे रहित, दान न करने वाले और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा न करने वाले होते हैं उन पुरुषोंके ऊपर ही ब्राह्मण क्रोध करते हैं, यादव तो ब्राह्मणोंके भक्त,परमदानी, निरन्तर वृद्ध पुरुषोंकी सेवा करनेवाले और श्रीकृष्णजीका ध्यान

मेद् एतत्सर्वं वदस्व मे ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच । बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दर सन्निवेशं कर्माचरन् भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः । आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥ १० ॥ कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि गायज्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा । कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिंडारकं समगमन्मुनयो विसृष्टाः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरंगिराः । कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः । उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥१३॥ ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः सांबं जांबवतीसुतम् । एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥१४॥ प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः । प्रसोष्यंती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥१५॥ एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप । जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥ १६ ॥

करनेवाले थे उनको ब्राह्मणोंका शाप कैसे हुआ ? ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह शाप कौनसे निमित्तसे हुआ ? किस प्रकारका था ? और एक चित्त रहनेवाले यादवोंका परस्पर कलह कैसे हुआ ? यह सब कहो ॥ ९ ॥ इस विषयमें ईश्वरकी इच्छा ही कारण हुई ऐसा उत्तर कहते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-पूर्ण मनोरथ और उदारकीर्ति भगवान्ने, सकल सुन्दर वस्तुओंके निवास स्थानरूप शरीरको धारण करके, भूतल परकी द्वारकानगरीमें रह कर क्रीड़ा करते हुए और शुभकारक कर्मोंका आचरण करते हुए, भूमिका भार हरण करना मात्र अपना कार्य शेष रहा है ऐसा मनमें विचार कर अपने कुलका संहार करनेकी मनमें इच्छा करी ॥ १० ॥ लोकोंके करे हुए कितने ही (अश्वमेधादिक) कर्म, केवल पुण्य ही उत्पन्न करते हैं कितने ही (पुत्रलालन आदि) कर्म तत्काल सुख देते हैं, कितने ही (प्रायश्चित्त आदि) कर्म केवल पापोंका नाश करते हैं, श्रीकृष्णभगवान्ने तो-केवल कीर्त्तन आदि करनेसे ही पुण्य देने वाले, अत्यन्त सुखरूप और गाने वाले पुरुषोंके कलियुगी पापोंका नाश करने वाले कर्म करके, कालरूपसे वसुदेवजीके घरमें रहनेवाले उन्होंने; कर्म करनेके निमित्त जिन ऋषियोंको बुलाया था, उनसे सकल कर्म करवा कर जानेकी आज्ञा दी तब वह ऋषि, द्वारकाके समीपमेंके ही पिण्डारक क्षेत्रको चले गये ॥ ११ ॥ वह ऋषि-विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ और नारद आदि थे ॥ १२ ॥ वह ऋषि, कुछ दिनों पर्यन्त पिण्डारक क्षेत्रमें रहते रहे सो एक समय यादवोंके कुमार खेलते खेलते उन ऋषियोंके समीप गये, उस समय उन्होंने, जाम्बवतीका पुत्र जो साम्ब उसको स्त्रीके वेषसे स्वांग भरकर अपने साथ लेलिया था, उन उद्धत परन्तु नम्रसे होकर अपनी दुष्टता दिखाने वाले कुमारोंने, उन ऋषियोंके चरण पकड़ कर प्रश्न करा कि-हे सफलज्ञानवान् ब्राह्मणो ! यह गर्भिणी स्त्री प्रसूता होनेको होरही है. इसके पुत्र होय ऐसी इच्छा है, यह प्रत्यक्ष अपने मुखसे आपसे बूझनेमें लज्जित होती है अतः हमारे द्वारा आपसे बूझती है सो इसके पुत्र होगा वा कन्या होगी ? यह बताइये ॥ १३-१५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार धोखा दिये हुए वह ऋषि क्रुद्ध

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् । साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥ १७ ॥ किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यंति नो जनाः । इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥ १८ ॥ तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः । राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप । विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥ २० ॥ तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः । समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥ २१ ॥ कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः । उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन् किलैरकाः ॥ २२ ॥ मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे । तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥ २३ ॥ भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा । कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीशुक उवाच । गोविंदभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह । अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं

होकर उन कुमारोंसे कहने लगे कि-अरे मन्दभाग्यो ! यह स्त्री तुम्हारे कुलका नाश करने वाला मूसल उत्पन्न करेगी ॥ १६ ॥ यह सुन कर अत्यन्त भयभीत हुए उन कुमारोंने, तत्काल ही साम्बका पेट खोल कर देखा तो उसमें कुलका संहार करने वाला लोहेका मूसल उनकी दृष्टि पड़ा ॥ १७ ॥ तब वह परस्पर कहने लगे कि— अहो ! हम मन्दभाग्योंने क्या करा ? लोक अब हमें क्या कहेंगे ? ऐसा कहकर घबड़ाए हुए वह कुमार मूसलको लेकर अपने घरोंको गये ॥१८॥ फिर उस मूसलको राजसभामें लेजाकर, जिनके मुखकी शोभा अतिमलीन होगई है ऐसे उन कुमारोंने सब यादवोंके समीप, राजा उग्रसेनको अपना करा हुआ सब ऊधम सुनाया परन्तु श्रीकृष्णजीको कुछ वृत्तान्त नहीं सुनाया ॥ १९ ॥ हे राजन् ! द्वारकावासी लोक, उस ब्राह्मणोंके अमोघशापको सुन कर तैसे ही उस मूसलको प्रत्यक्ष देख कर विस्मित और भयभीत हुए ॥ २० ॥ तब यादवोंके राजा उन उग्रसेनने भी, श्रीकृष्णजीसे बिना बूझे ही उस मूसलका चूरा करवा कर उस चूरेको और उस मूसलके शेष रहे हुए लोहेके टुकड़ेको समुद्रके जलमें फिकवा दिया ॥ २१ ॥ उस लोहेके टुकड़ेको एक मत्स्यने निगल लिया और उस चूरेके कण, तरङ्गोंसे बहते २ जाकर समुद्रके किनारेसे लग कर वह तहाँ पतेलके रूपसे उत्पन्न होगये ॥ २२ ॥ फिर समुद्रमें कहारोंने दूसरे मत्स्योंके साथ जालसे वह मत्स्य भी पकड़ लिया, उसको एक लुब्धकने विकते हुए मोल लेलिया उसको काटते समय उसके पेटमेंसे एक लोहेका टुकड़ा मिला, वह उस लुब्धकने, अपने बाणके अग्रभागमें लगवा लिया ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी तो उन सब वृत्तान्तोंको जानने वाले और उस शापको दूर करनेमें भी समर्थ थे, परन्तु उन्होंने उस ब्राह्मणोंके शापको दूर करनेकी इच्छा ही नहीं करी, किन्तु स्वयं कालरूपी होनेके कारण उसका अनुमोदन ही करा ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे कुरुकुलके दीपक राजन् ! श्रीकृष्णजीकी, दर्शन

कृष्णोपासनलालसः ॥१॥ को नु राजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम् । न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥२॥ तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् । अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ वसुदेव उवाच । भगवन् भगवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् । कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥ ४ ॥ भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च । सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥५॥ भजन्ति ये यथा देवान् देवा अपि तथैव तान् । छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ६ ब्रह्मंस्तथाऽपि पृच्छामो धर्मान् भागवतांस्तव । यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ७ ॥ अहं किल पुराऽनन्तं प्रजाऽर्थो भुवि मुक्तिदम् । अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ॥ ८ ॥ यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतो भयात् ।

नमस्कार आदि उपासनामें उत्कण्ठित नारदऋषि, उन श्रीकृष्णजीकी भुजाओंसे रक्षा करी हुई द्वारकामें 'श्रीकृष्णजीके अन्यत्र जानेके निमित्त वारम्वार भेजने पर भी' वारम्वार आकर तहाँ ही रहते थे ॥ १ ॥ हे राजन् ! सब ही लोकोंमें मृत्युको प्राप्त होने वाला कौनसा इन्द्रियवान् पुरुष, ब्रह्मा रुद्र आदि श्रेष्ठ देवताओं करके भी उपासना करने योग्य श्रीकृष्णजीके चरण कमलका सेवन नहीं करेगा ? अर्थात् सब ही करेंगे ॥ २ ॥ एक समय अपने घर आये हुए और पूजाको ग्रहण करके सुखसे आसनपर बैठेहुए उन नारदजीको नमस्कार करके वसुदेवजी कहनेलगे ३ वसुदेवजीने कहा कि-हे भगवन् नारदजी ! जैसे माता पिताका आना बालकोंके कल्याणके निमित्त होता है अथवा जैसे भगवान्की प्राप्तिके मार्गरूप साधुओंका आना आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंसे तपे हुए दीन पुरुषोंके कल्याणके निमित्त होता है तैसे ही, तुम्हारा विचरना सकल प्राणियोंके मङ्गलके निमित्त है ॥ ४ ॥ साधु, देवताओंसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि-देवताओंके चरित्र, प्राणीमात्रको वर्षा आदिके द्वारा सुख देते हैं, ठीक है परन्तु वह किसी समय अतिवर्षा आदिके द्वारा दुःख भी देते हैं और भगवत्के स्वरूपमें चित्त लगाने वाले तुम समान साधुओंका चरित्र तो सब लोकोंको सुख ही देता है ॥ ५ ॥ और देवता सुख देते हैं परंतु जो पुरुष देवताओंका, जैसे छोटे बड़े यज्ञादि कर्म करके आराधन करते हैं उनको देवता भी उन कर्मोंकी छोटाई बड़ाईके अनुसार तैसा ही फल देते हैं अर्थात् जैसे पुरुषकी छाया, पुरुष जैसा कर्म करे उसका ही अनुकरण करती है तैसे ही देवता कर्मानुसार फल देनेवाले हैं और तुम समान साधु तो दीनवत्सल हैं अर्थात् अपना उपकार करानेकी अपेक्षा न करके दूसरोंका दुःख दूर करने वाले हैं ॥६॥ इससे हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे आगमनसे, सत्कारसे और सम्भाषण आदि करके ही यद्यपि हम कृतार्थ होगये हैं तथापि जिन धर्मोंसे तुम्हारे ऊपर भगवान् प्रसन्न हुए हैं और जिन धर्मोंको श्रद्धाके साथ सुनने वाला पुरुष, सकल भयोंसे छूटता है वह भागवत धर्म कौनसे हैं उनको मैं बूझता हूँ ॥ ७ ॥ देवकी मायासे मोहित हुए मैंने, पूर्वजन्ममें इस भूमि पर, भगवान् मेरे पुत्ररूपसे उत्पन्न हों ऐसी इच्छासे ही उन मुक्तिदाता भगवान्का आराधन करा था, मोक्षके निमित्त नहीं करा था ॥ ८ ॥

मुच्येमह्यंजसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ॥९॥ श्रीशुक उवाच । राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता । प्रीतस्तमाह देवर्षिर्हरेः संस्मारितो गुणैः ॥ १० ॥ नारद उवाच । सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ । यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥ ११ ॥ श्रुतोऽनुपठितो ध्यात आदृतो वानुमोदितः । सद्यः पुनाति सद्धर्मो देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥ १२ ॥ त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥१४॥ प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः । तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १५ ॥ तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया । अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्वेदपारगम् ॥ १६ ॥ तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥ १७ ॥ स भुक्तभोगां त्यक्त्वेमां निर्गतस्तपसा हरिम् । उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभि-

इससे हे सुव्रत नारदजी ! अब तुम्हारी कृपासे अनेकों दुःखों करके युक्त और सब ओर भयसे भरे हुए इस संसारसे, जैसे हम अनायासमें मुक्त हों तैसे स्पष्ट रीतिसे तुम हमें शिक्षा दो ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार बुद्धिमान् वसुदेवजीने जिनसे प्रश्न करा है, और श्रीहरिके गुणोंका प्रसङ्ग आनेके कारण उन श्रीहरिके गुणोंने ही जिनको स्मरण कराया है ऐसे वह नारदजी सन्तुष्ट होकर उन वसुदेवजीसे कहने लगे ॥ १० ॥ नारदजीने कहा कि-हे यादवोंमें श्रेष्ठ वसुदेवजी ! क्योंकि-तुम सबोंको पवित्र करने वाले भागवतधर्म बूझते हो इस कारण तुमने यह बड़ा श्रेष्ठ निश्चय करा है, अर्थात् इस तुम्हारे निश्चयसे लोकमें भागवत धर्मोंकी प्रसिद्धि होकर बहुतसे लोक कृतार्थ होंगे ॥११॥ हे वसुदेवजी ! सुना हुआ, वारम्वार पढ़ा हुआ, ध्यान करा हुआ, आस्तिकताकी बुद्धिसे ग्रहण करा हुआ अथवा दूसरोंके आचरण करने पर प्रशंसा करा हुआ भागवत धर्म, जगत्का द्रोह करने वाले भी लोकोंको तत्काल पवित्र करता है १२ हे वसुदेवजी ! जिसके श्रवण कीर्त्तन पवित्र हैं ऐसा परम कल्याणरूप, भगवान् नारायणका, आज तुमने मुझे स्मरण कराया है, यह मेरे ऊपर बड़ा उपकार करा है ॥ १३ ॥ इस भागवद्धर्मके निर्णयके विषयमें योगिराज ऋषभके पुत्रोंका और महात्मा राजा जनकका सम्वादरूप यह पुरातन इतिहास तत्त्वज्ञानी पुरुष कहा करते हैं सो मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ १४ ॥ स्वायम्भुव मनुका प्रियव्रत नाम वाला जो पुत्र था उसका पुत्र आग्नीध्र हुआ, तिसका नाभि और तिसका पुत्र ऋषभ हुआ ॥ १५ ॥ वह ऋषभदेव मोक्षधर्मको प्रवृत्त करनेकी इच्छासे वासुदेवका अवतार हुए थे, ऐसा बड़े २ ने वर्णन करा है, उन ऋषभदेवके भी वेद के पारगामी सौ पुत्र हुए ॥ १६ ॥ उनमें बड़ा पुत्र भरत था, वह बड़ा भगवत्परायण था, यह पूर्वकालका अजनाभ नाम वाला अद्भुत खण्ड, जिन भरतके नामसे भरतखण्ड कह कर प्रसिद्ध हुआ है ॥ १७ ॥ उन भरतने उपभोग करी हुई इस भूमिको त्याग कर वनमें गमन करा और तपके द्वारा श्रीहरिका सेवन करके तीन

स्त्रिभिः ॥१८॥ तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः । कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥ १९ ॥ नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः । श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ॥२०॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः । आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥२१॥ एते वै भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् । आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन्महीम् ॥ २२ ॥ अव्याहतेष्टगतयः सुरसिद्धसाध्यगंधर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् । मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥ २३ ॥ त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया । वितायमानमृषिभिरजनाभे र्महात्मनः ॥ २४ ॥ तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान् महाभागवतान्नृप । यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥ २५ ॥ विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् । प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान् यथाऽर्हतः ॥२६॥ तान् रोचमानान् स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव । पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥२७॥ विदेह उवाच । मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः । विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति

जन्मोंमें तिन श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त कर लिया ॥ १८ ॥ शेष निन्यानवे पुत्रोंमेंसे नौ पुत्र इस भरतखण्डके भीतर ब्रह्मावर्त्त आदि नौ भूखण्डोंके चारों ओरसे राजे हुए, दूसरे इक्यासी पुत्र कर्ममार्गको प्रवृत्त करने वाले द्विज हुए ॥ १९ ॥ शेष जो नौ पुत्र रहे वह महाभाग्यशाली योगेश्वर हुए, वह परमार्थका निरूपण करने वाले, आत्मज्ञानके अभ्यासमें परिश्रम करने वाले, दिगम्बर और आत्मविद्यामें प्रवीण थे ॥ २० ॥ उनके नाम—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन यह थे ॥ २१ ॥ वह यह योगेश्वर, स्थूल सूक्ष्मरूप जगत्को यह भगवद्रूप ही है ऐसा देखते हुए और उस भगवद्रूपसे अपना अभेदपना देखते हुए भूमि पर विचरते थे ॥ २२ ॥ और अब भी जिनकी इच्छित गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती है ऐसे और कहीं भी आसक्त न होने वाले वह नौ योगीश्वर, देव, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर और नागोंके लोकमें तैसे ही मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, द्विज और गौओंके स्थानोंमें यथेच्छभाव से विचरते थे ॥ २३ ॥ वह योगेश्वर, एक दिन भरतखण्डमें महात्मा निमि राजा के, जिसमें ऋषियोंके अनुष्ठान चल रहे हैं ऐसे सत्रमें स्वाभाविक इच्छासे अकस्मात् आपहुँचे ॥२४॥ हे राजन् ! सूर्यकी समान तेजके पुञ्ज तिन परमभगवद्भक्त योगेश्वरोंको देख कर यजमान, ब्राह्मण, और मूर्त्तिमान् हुए आहवनीय आदि अग्नि यह सब ही उठ कर खड़े हुए ॥ २५ ॥ तदनन्तर राजा निमिने, उनको नारायणके परमभक्त जान कर, प्रसन्नताके साथ आसन पर बैठा कर उनका अवस्थाके क्रम से विधिपूर्वक पूजन करा ॥ २६ ॥ और अति प्रसन्न तथा नम्रतायुक्त हुए तिस निमि राजाने, अपनी कान्तिसे प्रकाश पाने वाले और ब्रह्माजीके सनकादिक पुत्रों की समान उन नौ योगीश्वरोंसे प्रश्न करा ॥२७॥ विदेहने कहा कि-मैं तुम्हें साक्षात् विष्णुभगवान्के पार्षद हो ऐसा जानता हूँ, यदि कहो कि-यहाँ भगवान्के पार्षद कहाँसे आये ? तो—विष्णुभगवान्के पार्षद लोकोंको पवित्र करनेके निमित्त

हि ॥ २८ ॥ दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥ २९ ॥ अत आत्यंतिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः । संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्संगः शेवधिर्नृणाम ॥ ३० ॥ धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम् । यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥ ३१ ॥ नारद उवाच । एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः । प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यात्विजं नृपम् ३२ कविरुवाच । मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादांबुजोपासनमत्र नित्यम् । उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥ ३३ ॥ ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये । अंजः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान् हि तान् ॥ ३४ ॥ यानास्थाय

सर्वत्र विचरते हैं ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २८ ॥ जीवोंका क्षणभंगुर भी यह मनुष्य शरीर 'मोक्षका साधन होनेके कारण दुर्लभ है' और उस मनुष्य जन्ममें भी भगवद्भक्तोंका दर्शन दुर्लभ है ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २९ ॥ इस कारण हे राग लोभ आदि दोषोंसे रहितो ! मैं तुमसे बूझता हूँ कि-जगत्में सर्वोत्तम कल्याणकारी साधन कौनसा है क्योंकि-इस संसारमें मनुष्योंको आधा क्षणभर भी सत्समागम होना, जैसे निधि (खजाना) मिलने पर आनन्द होता है तैसे आनन्द देने वाला है ॥ ३० ॥ और उस सर्वोत्तम कल्याणको सुननेका यदि हमें अधिकार होय तो भगवान्को प्रसन्न करनें वाले भागवतधर्मोंको कहिये, जिन धर्मोंसे प्रसन्न हुए अजन्मा भगवान्, शरणागत भक्तको अपना स्वरूप भी देदेते हैं ॥३१॥ नारदजीने कहा कि-इसप्रकार राजा निमिके प्रश्न करने पर वह कवि हरि आदि नौ योगेश्वर प्रीतिसे सभासद् और ऋत्विजोंसहित उस निमि राजाका सत्कार करके नवोंजने क्रम २ से एक करके भाषण करने लगे और शेष, भगवद्धर्मोंके सुननेमें तत्पर होकर तहाँ ही बैठ रहे, उस समय राजा निमिने, १ भगवद्धर्म, २ भगवद्भक्त, ३ माया, ४ मायाको तरनेका उपाय, ५ ब्रह्म, ६ कर्म, ७ अवतारलीला, ८ अभक्तोंकी गति और, ९युगों का अनुक्रम यह नौ विषय जाननेके निमित्त नौ प्रश्न करे, तिनमेंसे एक २ प्रश्नका उत्तर कवि आदि एक २ ने कहा है ॥ ३२ ॥ तिनमेंसे कविने सर्वोत्तम कल्याणका वर्णन करते हुए कहा कि-हे राजन् ! इस संसारमें, जिसका कभी भी नाश नहीं होता ऐसी भगवान्के चरणकमलकी उपासना करना,यह ही कालकर्म आदि सकल भयोंसे रहित कल्याणकारी उत्तम साधन है, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योंकि—जिस उपासनामें देहादिकोंके विषैं आत्मबुद्धि करके सदा बना रहनेवाला,जिसकी बुद्धि उद्विग्न हुई है ऐसे पुरुषका भय,सब प्रकारसे दूर होजाता है३३अब भागवतधर्मोंका लक्षण कहते हैं कि-हे राजन् ! भगवान्ने, मनु याज्ञवल्क्य आदिकोंके मुखके द्वारा वर्णाश्रम आदिका धर्म कहकर अतिगुप्तहोनेके कारण न जाननेवाले भी पुरुषोंको सुख से आत्मप्राप्ति होनेके निमित्त जो श्रवण आदि उपाय अपने आपकहे हैं वही भागवत धर्म हैं,ऐसा तुम जानो३४हे राजन् ! जिन भागवतधर्मोंको पालन करनेवाला पुरुष, जैसा योग आदिका अनुष्ठान करनेवाला विघ्नोंसे तिरस्कार पाता है तैसे तिरस्कार नहीं पाता है और इस भागवतधर्ममें दोनो नेत्रोंको मूँद कर दौड़ने वाला भी पुरुष

नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् । धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥ ३५ ॥ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् । करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ॥ ३६ ॥ भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः । तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥ ३७ ॥ अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा । तत्कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥ ३८ ॥ शृण्वन् सुभद्राणि रथांग-

ठोकर नहीं खाता है और गिरता भी नहीं है, यहाँ दोनों नेत्र श्रुति और स्मृतिको समझना, ऐसा कहा है कि-श्रुति और स्मृति यह ब्राह्मणोंके दो नेत्र हैं इनमेंसे एक से रहित होय तो काणा और दोनोंसे रहित होय तो अन्धा कहाता है तैसे ही एक चरण रखनेके स्थानको छोड़ कर शीघ्रतासे दूसरा चरण रखनेके स्थानमें पहिला चरण रख कर चलनेको दौड़ना कहते हैं, इन भगवत्सम्बन्धी धर्मोंमें श्रुति स्मृति के विषें कही हुई रीति विदित नहीं होय तो अथवा इस भागवतधर्म के आचरणके समय-क्रमसे करने योग्य किसी विधिको भूल कर अगली विधि करी जाय तो दोषी नहीं होता है और फलसे भ्रष्ट भी नहीं होता है अर्थात् उस अनुष्ठानको पूर्ण रीतिसे करनेका फल पाता है ॥ ३५ ॥ यदि कहो कि-वह भागवतधर्म कौनसे हैं ? तो-शास्त्रमें कही हुई विधिसे करे हुए कर्म ही ईश्वरको अर्पण करनेपर भागवत धर्म होता है ऐसा नियम नहीं है, किन्तु-देहसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धि से, अहंकारसे और अध्याससे माना हुआ जो ब्राह्मणत्व और स्वभाव तिस करके भी प्राणी जो २ कर्म करता है उन उन सब कर्मोंको वह परमेश्वर नारायणके अर्पण करे, इस रीतिसे शरीर आदि सब ही धर्म भागवत धर्म होते हैं ॥ ३६ ॥ अब अज्ञानसे कल्पना करा हुआ भय, ज्ञानसे ही दूर होता है इस कारण परमेश्वर के भजनसे क्या होगा ? ऐसा कहो तो-क्योंकि—भय ईश्वरकी मायासे होता है इस कारण गुरुके विषें ही ईश्वरकी और आत्माकी भावना करनेवाला पुरुष,अनन्य भक्तिसे उन ईश्वरका ही सेवन करे, यदि कहो कि-भय देहाभिमानसे होता है,वह देहाभिमान अहंकारसे होता है और वह अहंकार स्वरूपका ज्ञान न होनेसे होता है इसमें ईश्वरकी माया क्या करती है ? तो-ईश्वरसे विमुख हुए पुरुषको भगवान्की मायासे ही भगवान्के स्वरूपका अस्फुरण (ज्ञानका अभाव) होता है तिससे देह के ऊपर 'मैं' इस प्रकारकी और अन्योंके ऊपर 'यह पराये हैं' ऐसी बुद्धि होती है तदनन्तर पराये माने हुए शत्रु रोग आदिकोंसे भय होता है ऐसा लौकिक माया में भी प्रसिद्ध है इस कारण हो भयकी मूल कारण जो माया तिसके नियन्ता ईश्वरका भजन करे ॥ ३७ ॥ अब, जिसका चित्त विषयोंसे विक्षिप्त हुआ है ऐसे पुरुषको अनन्यभक्ति कहाँ ? और उस अनन्यभक्तिके प्राप्त हुए विना अभय कैसे होयगा ? ऐसी शंका होने पर, विषयोंके मिथ्याभूत होनेके कारण मनको वशमें करके भजन करने पर अभय प्राप्त होयगा ऐसा कहते हैं कि-हे राजन् ! जैसे स्वप्न में देखा हुआ पदार्थ-अथवा जागतेमें किसी मनोरथके समय मनमें विचारा हुआ

पाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके। गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः ॥ ३९ ॥ एवं व्रतःस्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः। हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥ ४० ॥ खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्। सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ४१ ॥ भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः। प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ॥ ४२ ॥ इत्यच्युतांघ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः। भवन्ति वै भागवतस्य

पदार्थ वास्तवमें मिथ्या होने पर भी सत्यसा भासता है तैसे ही यह द्वैत प्रपञ्च यद्यपि वास्तवमें परमार्थरूप नहीं है तथापि इसका ध्यान करनेवाले पुरुषको यह परमार्थरूप है ऐसा प्रतीत होता है इस कारण चतुर पुरुष, कर्मके संकल्पविकल्प करनेवाले अपने मनको रोके तब अनन्यभक्ति प्राप्त होकर अभय मिलेगा ॥ ३८ ॥ अब यदि कहो कि यह मनको वशमें करनेका मार्ग बड़ा कठिन है तो दूसरा सुलभ मार्ग यह है कि—चक्रपाणि भगवान्के कल्याणकारी जन्म, कर्म और जन्म तथा कर्मोंके अर्थोंके अनुसार 'देवकीनन्दन' गोवर्द्धनोद्धरण' इत्यादि लोकमें गाये हुए जो प्रसिद्ध नाम हैं उनका श्रवण और गान करता हुआ पुरुष निर्लज्जपनेसे और निरीहपनेसे भूमिपर विचरे ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वर्त्ताव करनेवाला, श्रीहरिके नाम कीर्त्तनसे जिसका श्रीहरिके विषें प्रेम उत्पन्न हुआ है और जिसका चित्त द्रवीभूत हुआ है ऐसा भक्त, लोकोंको दिखानेके निमित्त दम्भ करनेवाले पुरुष की समान नहीं किंतु पिशाचसे झगड़ा हुआसा परवश होकर एकाध समय भगवान्को भक्तोंने जीतलिया है ऐसा मनमें विचारकर खिलखिलाके हँसता है, कभी इतने समय पर्यन्त भगवान्ने मेरी सुध नहीं ली है ऐसा मनमें विचारकर रुदन करता है कभी हे हरे! मेरे ऊपर अनुग्रह करो, इस प्रकार चिल्लाता है, किसी समय अतिहर्षके साथ गान करता है और जीत लिया २ ऐसा मानकर नृत्य करता है ॥ ४० ॥ अब दूसरा उपाय कहते हैं कि—आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, जीवजन्तु, दिशा, वृक्षादिक, नदियें समुद्र और दूसरे जो कुछ प्राणीमात्र हैं सो सकल भगवान्का ही स्वरूप हैं ऐसा जानकर अनन्यभावसे उनको नमस्कार करे ॥ ४१ ॥ अब यह गति, योगिजनोंको बहुतसे जन्मों करके भी दुर्लभ है सो केवल नाम कीर्त्तनसे एक ही जन्ममें कैसे प्राप्तहोयगी?ऐसी शंका आने पर दृष्टान्तसहित कहते हैं कि—भोजन करनेवाले पुरुषको ग्रासग्रासमें ही नहीं किंतु शीत २ में भी संतोष पेट भरना और भूँखकी निवृत्ति होती है तैसे ही भगवान्का भजन करने वाले पुरुषको प्रेमरूप भक्ति, प्रेमकी आश्रयरूप भगवान्के स्वरूपकी स्फूर्त्ति और तिससे तृप्तहुएको घर स्त्री आदिमें वैराग्य यह तीनों भजनके समय एक साथ प्रकट होते हैं और जैसे बहुतसे ग्रास भक्षण करनेसे सुखादिकोंकी वृद्धि होती है तैसे ही बहुतसा भजन करनेसे परमभक्ति आदि प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन्! इसप्रकार अविच्छिन्नपनेसे भगवान्के चरणका भजन करनेवाले भगवद्भक्तको, भक्ति, वैराग्य

राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥४३॥ राजोवाच । अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् । यथा चरति यद् ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ॥४४॥ हरिरुवाच । सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः । भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥ ४५ ॥ ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च । प्रेममैत्रीकृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ४६ अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते । न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः४७ गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान्यो न द्वेष्टि न हृष्यति । विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ॥ ४८ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः । संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ॥ ४९ ॥ न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः । वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ५० ॥ न यस्य जन्मकर्मभ्यां न

और ज्ञान यह प्राप्त होते हैं और तदनन्तर वह अन्तकालमें परमशांति पाता है ४३ भगवद्भक्तको, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य यह प्राप्त होते हैं ऐसा सुनकर राजाने कहा कि—हे ऋषियों ! अब भगवद्भक्तोंके विषयमें कहो कि—भगवद्भक्त, कौनसे धर्मपर निष्ठा रखता है ? उसका स्वभाव कैसा होता है ? वह मनुष्योंमें कैसा वर्त्ताव रखता है ? क्या बोलता है ? और वह कौनसे चिह्न धारण करने पर भगवान्को प्रिय होता है ? ॥ ४४ ॥ यह सुन कर हरिनामक योगेश्वर कहने लगे कि-जो पुरुष अपने आत्माका सकल भूतोंमें ब्रह्मभावसे अनुस्यूतपना (पुराव) है ऐसा देखता है अथवा मच्छर आदि सकल प्राणियोंमें नियन्ता होकर रहनेवाले परमात्मा श्रीहरिका, परम ऐश्वर्यादिमान्पना ही है न्यूनाधिकभाव नहीं है,ऐसा जो देखता है,तैसे ही ऐश्वर्य आदि गुणपूर्ण तिन श्रीहरिके विषैं सकलभूत हैं और तिन जड़, मलिन भूतोंका आश्रय होनेसे जो श्रीहरिके ऐश्वर्य आदिकोंका कमीपना नहीं देखता है वह पुरुष भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है ॥४५॥ जो पुरुष,ईश्वरमें प्रेम,भगवान्के भक्तोंके साथ मित्रता, अज्ञानी पुरुषोंके ऊपर कृपा और शत्रुओंकी उपेक्षा करता है वह भेददर्शी होनेके कारण मध्यम भगवद्भक्त है ॥ ४६ ॥ जो पुरुष, मूर्त्तिके विषैं ही श्रद्धासे श्रीहरिको पूजा समर्पण करता है, भगवद्भक्तोंकी पूजा नहीं करता है, औरोंकी तो सर्वथा ही नहीं करता है वह पुरुष प्राकृत (अब ही भक्तिका आरम्भ करनेवाला) भक्त है, वह आगेको मध्यम और उत्तम होयगा ॥ ४७ ॥ अब फिर आठ श्लोकोंसे उत्तम भगवद्भक्तके लक्षण कहते हैं-श्रीवासुदेव भगवान्की ओर चित्त लगानेवाला भगवद्भक्त,पहिले तो इन्द्रियोंसे विषयोंका सेवन ही नहीं करता है,कदाचित् करे भी तो, यह जगत् भगवान्की मायारूप है ऐसा जान कर जो पुरुष, प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता है और अनुकूल विषयोंसे हर्षित नहीं होता है वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है ॥ ४८ ॥ जो पुरुष, भगवान्का निरन्तर स्मरण करके, देहके धर्म-जन्म मरण; प्राणके धर्म क्षुधा और तृषा; मनका धर्म-भय, बुद्धिका धर्म—आशा और इन्द्रियोंका धर्म श्रम, इन संसारके धर्मोंसे मोहित नहीं होता है वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ जिसके चित्तमें काम, कर्म और तिनकी वासना इनकी उत्पत्ति ही नहीं होती है और जिनका एक वासुदेव ही आश्रय है वह उत्तम भगवद्भक्त

वर्णाश्रमजातिभिः। सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः ॥ ५१ ॥ न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा। सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः५२ त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात्। न चलति भगवत्पदारविंदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ॥ ५३ ॥ भगवत उरुविक्रमांघ्रिशाखानखमणिचंद्रिकया निरस्ततापे। हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चंद्र इवोदितेऽर्कतापः ॥ ५४ ॥ विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः। प्रणयरशनया धृतांघ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥ ५५ ॥

इति श्रीमहाभागवते म० एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसम्वादे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

राजोवाच। परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम्। मायां वेदितुमिच्छामो भगवंतो ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम्। संसारताप-

---

हैं ॥५०॥ जिसको, उत्तम कुलमें हुए जन्म, तप आदि कर्म, वर्ण आश्रम और जाति के द्वारा इस शरीरमें कुछ भी अहंकार नहीं होता है वह पुरुष, श्रीहरिका प्यारा भक्त होता है ५१ जिसको द्रव्यमें यह अपना और दूसरेको ऐसा तथा शरीरके विषें यह अपना और यह दूसरेका ऐसा भेद प्रतीत नहीं होता है और जो सब प्राणिमात्र में समान बुद्धि रख कर शान्त होता है उसको उत्तम भगवद्भक्त कहै ॥ ५२ ॥ जो पुरुष, कोई कहे कि-त्रिलोकीका राज्य देता हूँ तब भी भगवान्के विषें चित्त लगाने वाले देवादिक भी जिसकी खोज करते हैं ऐसे,भगवान्के चरणारविन्दसे आधे लव वा आधे निमेष (पलक लगाने) समान कालको भी चलायमान नहीं होता है, भगवान्के चरणकमलसे अन्य सब तुच्छ है-ऐसा जान कर उसका ही निरन्तर स्मरण करने वाला जो पुरुष वह विष्णु भगवान्के भक्तोंमें श्रेष्ठ होता है ॥ ५३ ॥ और भगवान्के चरणारविन्दसे चलायमान होना इन विषयोंकी इच्छासे मनको सन्ताप होने पर कदाचित् होजाय, परन्तु भगवत्सेवासे परम सुख मिलनेके कारण भगवान्के महापराक्रमी चरणोंकी अंगुलियों परके नखरूप मणियोंकी चन्द्रमाकी समान शीतल कान्तिसे एकवार जिसके सम्पूर्ण ताप नष्ट होगये हैं ऐसे भक्तके हृदयमें, वह विषयवासनारूप ताप फिर कैसे उत्पन्न होयगा? किन्तु जैसे रात्रिमें चन्द्रमाका उदय होने पर सूर्यका ताप किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता है तैसे ही वह ताप कदापि उत्पन्न नहीं होगा ॥ ५४ ॥ ज्वरादि पीड़ासे प्राप्त हुई पराधीन दशामें केवल नामकीर्त्तन करने पर भी, सकल पापोंका नाश करने वाले साक्षात् श्रीहरि, मेरा चरणकमल इस भक्तने प्रेमरूप डोरीसे बँध कर अपने हृदयमें धारण करा है ऐसा जान कर जिसके हृदयको कभी नहीं छोड़ते हैं वह, शास्त्रमें वर्णन करा हुआ श्रेष्ठ भगवद्भक्त है ५५ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें द्वितीय अध्याय समाप्त

यह सब जगत् विष्णु भगवान्की मायारूप है ऐसा जो जानता है वह उत्तम भक्त है यह कहा, इस कारण मायाके विषयमें प्रश्न करता हुआ राजा कहने लगाकि हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठो! सबोंके कारण और सबोंके अन्तर्यामी ऐसे विष्णु भगवान्की, मायावी ब्रह्मादिकोंको भी मोहित करने वाली मायाको जाननेकी हम इच्छा करते

निस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥ २ ॥ अन्तरिक्ष उवाच । एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज । ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः । एकधा दशधात्मानं विभजन् जुषते गुणान् ॥ ४ ॥ गुणैर्गुणान् स भुंजान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः । मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ॥ ५ ॥ कर्माणि कर्मभिः कुर्वन् स निमित्तानि देहभृत् । तत्तत्कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह सुखेतरम् ॥ ६ ॥ इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् । आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ॥ ७ ॥ धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम् । अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥ ८ ॥ शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्वणा भुवि । तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥ ९ ॥ पातालतलमारभ्य

हैं इस कारण तुम उसका हमसे वर्णन करो ॥ १ ॥ जब पहिले कहे हुए लक्षणोंसे युक्त भगवद्भक्त होकर तू कृतार्थ है, बहुतसे प्रश्नोंसे क्या करना है ? ऐसा कहो तो संसारके तापोंसे अत्यन्त तपा हुआ मैं, तिन संसारके तापोंकी औषध ऐसे हरि-कथामृतरूप तुम्हारे भाषणको सेवन करतेमें तृप्त नहीं होता हूँ ॥ २ ॥ ऐसा प्रश्न सुन कर अन्तरिक्ष नामक योगेश्वर कहने लगे कि-हे महापराक्रमी राजन् ! अपनी उपासना करने वाले जीवोंको उत्तम सिद्धि प्राप्त होनेके निमित्त अथवा अपने अंश-रूप उन जीवोंको भोग और मोक्ष देनेके निमित्त सबके कारणरूप परमेश्वरने,अपने उत्पन्न करे हुए पञ्चमहाभूतोंसे, छोटे बड़े प्राणियोंके जो शरीर उत्पन्न करे हैं यह भगवान्‌की माया है ॥ ३ ॥ इस प्रकार जीवोंके ऊपर उपकार करनेके निमित्त पंच-महाभूतोंके रचे हुए शरीरोंमें अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हुए वह भगवान्, मनके और इन्द्रियोंके रूपसे अपना विभाग करके जीवसे तिन २ इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका जो सेवन कराते हैं यही भगवान्‌की माया है ॥ ४ ॥ तदनन्तर वह जीव,अन्तर्यामी आत्मा करके प्रकाशित करी हुई इन्द्रियों द्वारा विषयोंका उपभोग करता हुआ उत्पन्न हुए इस शरीरको, यही मैं हूँ ऐसा मान कर और उस शरीरमें आसक्त हो-कर संसारको प्राप्त होता है यही भगवान्‌की माया है ॥ ५ ॥ अब, विषयभोग करने वाले जीवकी भोगकी समाप्तिके अनन्तर मुक्ति होयगी, ऐसा होते हुए वह जीव, संसारको कैसे प्राप्त होता है ? ऐसा कहो तो--कर्मेन्द्रियों करके वासनायुक्त कर्म करने वाला और तिन २ कर्मोंके सुखदुःखरूप फलोंको ग्रहण करनेवाला यह जीव, इस जन्ममरणरूप संसारमें बारम्बार आता है, मुक्त नहीं होता है यही भगवान्‌की माया है ॥ ६ ॥ कितने कालपर्यन्त भ्रमणको प्राप्त होता है ऐसा कहो तो-इसप्रकार अनेक दुःख देने वाली कर्मगतिको प्राप्त होने वाला और परवश हुआ यह जीव, जगत्‌का प्रलय होनेपर्यन्त जन्ममरण पाता है यह भगवान्‌की माया है ॥ ७ ॥ इस प्रकार मायामय सृष्टि कह कर अब उसका लय कहते हैं-पञ्चमहाभूतोंके नाशका कारण प्राप्त होने पर, जिसके आदि और अन्त नहीं हैं,ऐसा काल, स्थूलसूक्ष्मरूप जगत्‌को अव्यक्त ईश्वरके स्वरूपमें लेजानेके निमित्त तिस जगतको खेंचता है यही भगवान्‌की माया है ॥ ८ ॥ प्रलय होनेका समय आते ही भूमि पर सौवर्ष पर्यन्त

संकर्षणमुखानलः । दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥ १० ॥ सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः । धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥११॥ ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप। अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिंधन इवानलः १२ वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते । सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥ १३ ॥ हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते । हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥ १४ ॥ कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते । इंद्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकारिकैर्नृप । प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥ १५ ॥ एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यंतकारिणी । त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १६ ॥ राजोवाच । यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः । तरन्त्यंजः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ॥ १७ ॥ प्रबुद्ध उवाच । कर्माण्यारभमाणानां दुःख-

---

भयंकर अनावृष्टि होती है और उस समय जिसमें अत्यन्त उष्णता बढ़ी है ऐसा सूर्य तीनों लोकोंको संताप देता है, यह भगवान्‌की माया है ॥ ९ ॥ पातालसे लेकर जगत्‌को जलानेमें लगा हुआ और वायुका प्रेरणा करा हुआ शेषजीके मुखका अग्नि, चारों ओरसे फैल कर बढने लगता है यह भी भगवान्‌की माया है ॥ १० ॥ फिर प्रलय करनेवाले मेघोंका समूह, हाथीकी सूँडकी समान मोटी धाराओंसे सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा करता है तब ब्रह्माण्ड जलमें लीन होजाता है यही भगवान्‌की माया है ११ हे राजन् ! फिर ब्रह्मांडशरीर विराट्‌पुरुष,अपने ब्रह्मांड शरीरका त्याग करके,किसीप्रकारसे भी प्रकट न होनेवाले सूक्ष्म ब्रह्ममें प्रवेश करता है यह भगवान् की माया है १२ इसप्रकार विराट्‌पुरुषका लय कहकर अब ब्रह्मांडके कारण पृथिवी आदिकोंका लय कहते हैं कि-तदनन्तर वायुने जिसका गंधगुण हरण करा है ऐसी पृथ्वी जलमें लीन होती है, फिर उस जलके भी रसगुणको वायुके हरण करलेनेपर वह जल, तेजमें लीन होता है ॥ १३ ॥ तदनन्तर प्रलयकालके अन्धकारके उस तेजके रूपगुणको हरण कर लेनेपर वह तेज वायुमें लय पाता है,तदनन्तर वायुके स्पर्शगुणको आकाशके हरण कर लेने पर वह वायु आकाशमें लीन होजाता है, आकाशके शब्दगुणको कालके हरण कर लेने पर वह आकाश तामस अहंकारमें लीन होता है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इन्द्रियें और बुद्धि यह राजस अहंकारमें लीन होते हैं मन और इन्द्रियोंके देवता भी सात्विक अहंकारमें प्रविष्ट होते हैं फिर वह अहंकार तीनों प्रकारके अपने कार्यों सहित महत्तत्वमें और महत्तत्व प्रकृतिमें लीन होता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली भगवान्‌की त्रिगुणमयी माया, हमने तुमसे वर्णन करी, अब दूसरा क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥ १६ ॥ तब राजा निमि कहने लगा कि-हे महर्षे ! मनको वश में न करनेवाले पुरुष जिसको न तर सकें ऐसी इस ईश्वरकी मायाको, शरीर पर अहंबुद्धि रखनेवाले पुरुष, जैसे अनायासमें तर सकें सो मुझसे कहो ॥ १७ ॥ तब, मायाको तरनेके विषयमें भक्तिके सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है ऐसा मनमें विचार कर, साधन सहित भक्तिका वर्णन करनेके निमित्त पहिले वैराग्यके द्वारा

हत्यै सुखाय च । पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥ १८ ॥ नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना । गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥ एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् । सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् २० तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् तत्र भागवतान्धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः । अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ॥ २२ ॥ सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ संगं च साधुषु । दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥२३॥ शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वंद्वसंज्ञयोः ॥ २४ ॥ सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् ।

गुरुके सेवनकी रीति कहते हुए प्रबुद्धनामक योगेश्वर कहने लगे कि-हे राजन् ! दुःखोंको दूर करनेके निमित्त और सुखको प्राप्त करनेके निमित्त कर्म करनेका प्रारम्भ करनेवाले और स्त्रीके साथ मिथुनधर्मको स्वीकार करके रहनेवाले पुरुषों को उनके कर्मोंके, उनके विचारोंसे उलटे (दुःखरूप) फल प्राप्त होते हैं ऐसा देखो ॥ १८ ॥ कर्मोंसे प्राप्त करे हुए भी धन आदिक सुखके कारण नहीं होते हैं ऐसा भी देखो, इस प्रकार कि निरन्तर (मिलनेके समय, रक्षा करनेके समय और उसका नाश होनेके समय भी) दुःख देनेवाले दुर्लभ और अपनी मृत्युरूप धन तैसे ही घर, सन्तान, सम्बन्धी और पशु इन मिले हुए चञ्चल (एक समय अवश्य छूटनेवाले) पदार्थोंसे प्राणीको कौन सुख होना है ? अर्थात् कोई सुख नहीं मिलेगा ॥१९॥ इस प्रकार यह लोक और इस लोकमेंके सुख जैसे नाशवान् हैं तैसे ही कर्मसे प्राप्त करा हुआ परलोक और उसमेंके सुख भी नाशवान् हैं ऐसा जाने, क्योंकि यहाँके माण्डलिक राजाओंकी समान तहाँ रहनेवाले प्राणियोंको भी समान सुख सम्पत्तिवालोंके साथ स्पर्धा, अधिक सुख सम्पदावालोंकी निन्दा और वह लोक नाशको प्राप्त होगा इस कारण अटल दुःख यह सब होते ही हैं ॥ २० ॥ इस कारण अपने उत्तम कल्याणको जाननेकी इच्छा करनेवाला पुरुष, वेदब्रह्ममें पारङ्गत होनेके कारण सकल संदेहोंको दूर करनेवाले, परब्रह्ममें साक्षात् अनुभवसे निष्णात होनेके कारण शिष्योंके मनमें आत्मज्ञान बैठा देनेवाले और परमशान्तिके साक्षात् स्थान ऐसे गुरुकी शरण जाय ॥ २१ ॥ और उनके समीप रहकर उनको ही आत्मा और इष्टदेव माननेवाला वह पुरुष, निष्कपटरूपसे उन गुरुकी सेवा करके उनसे भगवत्धर्म सीखे, जिन धर्मोंके द्वारा आत्मरूप और भक्तोंको आत्मस्वरूप देनेवाले हरि प्रसन्न होते हैं ॥२२॥ तिनमें पहिले देह, स्त्री, पुत्र, धन आदि के विषें मनकी अनासक्ति (वैराग्य) सीखे, साधुओंकी संगति करनेकी रीति सीखे, अपनेसे दीन प्राणियोंके ऊपर दया, समान प्राणियोंके साथ मित्रता, और अपनेसे अधिक योग्यता वाले प्राणियोंसे नम्र रहना, यह यथायोग्य गुण प्रत्यक्ष सीखे ॥ २३ ॥ मृत्तिका और जल आदिसे देहकी बाहरी और भीतरी पवित्रता, अदम्भ और भगवान्के ध्यान आदि करके मनकी पवित्रता, स्वधर्मका आचरण, क्षमा, निरर्थक वार्तालाप करनेका त्याग, अधिकारके अनुसार वेदको पढ़ना,

विविक्तचीरवसनं सन्तोषो येनकेनचित् ॥२५॥ श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि । मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥ २६ ॥ श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः । जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥ २७ ॥ इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् । दारान्सुतान् गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥२८॥ एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् । परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥२९ परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः । मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ३० स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् । भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥ ३१ ॥ क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिंतया क्वचिद्धसंति नन्दन्ति वदन्त्यलौ-

सरलता, ऋतुकालमें अपनी स्त्रीके साथ समागम करना इत्यादि ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सुख दुःख, शीत उष्ण आदि द्वन्द्वपदार्थोंमें हर्षशोक न करना ॥ २४ ॥ सकल प्राणियोंमें सच्चिदानन्दरूपसे रहनेवाले आत्माको देखना, नियंतारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्तमें वास करना, घर आदिकोंके ऊपरका अभिमान त्यागना; कहीं निर्जन स्थानमें पड़े हुए शुद्ध चीथड़ोंको अथवा भोजपत्र आदिको पहरना, जो अनायासमें मिले उससे ही सन्तोष मानना ॥ २५ ॥ भगवान्का वर्णन करनेवाले शास्त्रमें श्रद्धा करना और दूसरे शास्त्रोंकी निन्दा न करना, प्राणायामके द्वारा मन का दण्ड, मौनसे वाणीका दण्ड, उद्योगको त्यागकर कर्मका दण्ड, सत्य, अन्तःकरणका निग्रह, बाहरी इन्द्रियोंका निग्रह ॥ २६ ॥ अद्भुत कर्म करनेवाले हरिभगवान्के जन्म, कर्म और गुणोंको सुनना वर्णन करना और भगवान्की प्रीतिके निमित्त सकलकर्मोंका आचरण करना यह सीखै ॥ २७ ॥ तैसे ही यज्ञ आदि वैदिक कर्म, दान आदि स्मार्त्त कर्म, एकादशीका उपवास आदि तप, मन्त्रादिकोंका जप, सदाचार, और अपनेको जो माला चन्दन आदि वस्तु प्रिय हों वह भगवान्को समर्पण करना और स्त्री पुत्र, घर और प्राणोंका भी जो भगवानको सेवकरूपसे समर्पण करना सो सीखे ॥ २८ ॥ इस प्रकार कृष्ण ही जिनके आत्मा और स्वामी हैं ऐसे मनुष्योंके ऊपर स्नेह, और स्थावरजंगमरूप प्राणियोंकी शुश्रूषा, तिनमें विशेष करके मनुष्योंकी तिनमें भी स्वधर्मका आचरण करनेवालोंकी, तिनकी अपेक्षा भी भगवद्भक्तोंकी शुश्रूषा करना सीखे ॥ २९ ॥ और तिन साधुओं के साथ समागमको प्राप्त होकर भगवान्के पवित्र यशका जो परस्पर वर्णन करना तिसको सीखे और यशके वर्णनमें भी स्पर्धा आदि दोष न करके जो मनका परस्पर रमण, जो परस्पर सन्तोष और जो परस्पर सकल दुःखोंकी निवृत्ति तिसको सीखे ॥३०॥ इस प्रकार पापोंके समूहोंका नाश करनेवाले श्रीहरिका अपने आप स्मरण करके परस्पर स्मरण करानेवाले भक्तजन, साधनोंमें भक्ति होनेके कारण उत्पन्न हुई भगवान्की प्रेमलक्षण भक्ति करके अपने शरीर पर रोमांच धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ और तदनन्तर वह देहाभिमान छूट जानेके कारण संसार से विलक्षण दशाको पाकर कभी तो भगवान्के साक्षात्कारके विना जीवनको धिक्कार है, ऐसा जानकर रोते हैं, कभी भगवान्की चोरी करने आदिकी लीला

किकाः । नृत्यन्ति गायंत्यनुशीलयंत्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥ ३२ ॥ इति भागवतान्धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया । नारायणपरो मायामंजस्तरति दुस्तराम् ॥ ३३ ॥ राजोवाच । नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३४ ॥ पिप्पलायन उवाच । स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च । देहेंद्रियासुहृदयानि चरंति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ॥३५॥ नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेंद्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः । शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयाऽऽत्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धिः ॥ ३६ ॥ सत्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रव-

को स्मरण करके हँसते हैं, किसी समय भगवान् भक्तके अधीन हैं ऐसा मनमें विचार कर उनकी पानेकी सम्भावना करके आनन्द पाते हैं, कभी, हे हरे ! दीनवत्सल ! प्रसन्न हूजिये' ऐसा भाषण करते हैं, कभी उनकी रासक्रीड़ा आदिका स्मरण करके आप ही नृत्य करते हैं और गाते हैं, किसी समय भगवान्‌की गोवर्द्धनको उठाना आदि लीलाओंका अनुकरण करते हैं और कभी तदाकारपनेसे परमात्माके साक्षात्कारको पाकर परमानन्दमें निमग्न होते हुए मौन ही रह जाते हैं३२इस प्रकार भागवत धर्मोंको सीखनेवाला और नारायणपरायण पुरुष, भागवत धर्मोंके आचरणसे उत्पन्न हुई भक्ति करके दुस्तरमायाको अनायासमें तर जाता है इसप्रकार नारायणपरायण हुआ पुरुष मायाको तरता है ऐसा कहा तिसको सुन कर राजाने कहा कि हेऋषियो!तुम बड़े ब्रह्मज्ञानी हो इस कारण तुम नारायणनामक परमात्मा ब्रह्मका स्वरूप हमसे कहनेको समर्थ हो अर्थात् ब्रह्म एक ही वस्तु नारायण, भगवान,परमात्मा आदि शब्दोंसे उच्चारण करा जाता है अथवा उसमें कुछ विशेष है ? सो मुझसे कृपा करके कहो ॥३४॥ तब पिप्पलायन नामक योगेश्वर कहने लगे कि हे राजन् ! वास्तवमें परब्रह्म एक ही है,परन्तु उसके संबन्धविशेषोंसे नामों में भेद इस प्रकार हैं कि-तो इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति, संहारका कारण होकर वास्तवमें कारणरहित है उसको नारायण कहते हैं, जो सकल प्राणियोंकी स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें साक्षीरूपसे अनुस्यूत रहकर इन तीनों अवस्थाओंसे निराली समाधि आदि अवस्थाओंमें भी अनुस्यूत होता है उसको ब्रह्म कहते हैं, इस प्रकार लक्षणोंके भेदोंके कारण नारायण आदि नामोंसे उच्चारण करा हुआ भी एक ही तत्त्व है ऐसा तुम जानो३५इस परमतत्त्वको,मन वाणी,चक्षु,बुद्धि, प्राण और दूसरी इन्द्रियें भी नहीं जानसकती हैं, जैसे अग्निको, अग्निकी ही अंशरूप चिनगारियें प्रकाशित करनेको अथवा जलानेको समर्थ नहीं होती हैं तैसे ही इन्द्रियोंकी वृत्तियें, अपनेको प्रकाशित करनेवाले आत्माको प्रकाशित करनेको समर्थ नहीं होती हैं, इन्द्रियोंकी तो वार्ता अलग रहे परन्तु स्वतःप्रमाण ऐसे वेदरूप शब्दने भी,अपने विषयमें प्रमाण होनेवाले आत्मवस्तुका'वहाँ अपना ही निषेध होनेके कारण' साक्षात् वर्णन नहीं करा है, किन्तु जहाँसे वाणी मनके साथ पीछेको लौट आती हैं, जो वाणीकी प्रेरणा करता है उसको ही तुम ब्रह्म जानो,इत्यादि

दन्ति जीवम् । ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥ ३७ ॥ नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि । सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ॥ ३८ ॥ अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र । सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥ ३९ ॥ यह्नी-

कारसे जैसे अर्थात् वर्णन करा हुआ सा होयगा तैसा करा है; तो फिर वेदने वर्णन ही नहीं करा ऐसा कहो तो—तैसा नहीं है, क्योंकि-स्थूल शरीर ब्रह्म नहीं है, सूक्ष्म शरीर ब्रह्म नहीं है जिसका वाणीसे उच्चारण होता है वह ब्रह्म नहीं है, इत्यादि जो वेदने निषेध करा है उसकी अवधि ब्रह्म ही है,यदि अवधि नहीं होता तो उससे औरोंका निषेध ही सिद्ध नहीं होता ॥ ३६ ॥ अब प्रमाणका विषय न होनेके कारण ब्रह्म है ही नहीं ऐसा कोई कहे तो कहते हैं-इस जगत्में जो कुछ स्थूल (कार्य) और सूक्ष्म (कारण) दृष्टि पड़ता है सो सब ब्रह्म ही भासता है, क्योंकि वह ब्रह्म, स्थूल सूक्ष्मोंका परमकारण है और वह अनेकों प्रकारकी शक्तियों से युक्त है, इसकारण एक होनेपर अनेक प्रकारका भासता है, वह अनेक प्रकारसे भासना इस प्रकार होता है कि-जो पहिले एक ब्रह्म था उसको ही सत्त्व, रज और तम इन तीनगुणोंसे युक्त प्रधान कहते हैं,तदनन्तर उसको ही क्रिया शक्तिके द्वारा सूत्र और ज्ञानशक्तिके द्वारा महत्तत्त्व कहते हैं, तदनन्तर उसको ही जीवका उपाधिरूप अहंकार कहते हैं, फिर इन्द्रियोंके देवता, इन्द्रियें, विषय और विषयों का प्रकाश इन सब रूपोंसे वह एक ब्रह्म ही सर्वत्र प्रकाश पारहा है, इस प्रकार स्वयं ही सब रूपोंसे भासनेवाले ब्रह्मकी सिद्धि होनेमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३७ ॥ अब, यदि ब्रह्म सर्वात्मक है तो—सकल कार्योंको जन्म आदि विकार होनेके कारण ब्रह्ममें भी उनका होना सम्भव है ऐसा कहो तो-यह ब्रह्मरूप आत्मा कभी भी उत्पन्न नहीं होता है, मरता नहीं है, बढ़ता नहीं है, परिणाम (रूपान्तर) को प्राप्त नहीं होता है और क्षीण भी नहीं होता है, क्योंकि—उत्पत्ति और नाश को प्राप्त होनेवाले बालकपन और तरुणाई आदि शरीरकी अवस्थाओंके तिन २ कालोंको देखनेवाला है. अवस्थावालोंका देखनेवाला उन अवस्थाओंसे युक्त नहीं होता है यह तो स्पष्ट है-अब, अवस्थारहित ऐसा यह कौनसा आत्मा है,इसप्रकार कहो तो-वह आत्मा सकल देशोंमें निरन्तर रहनेवाला ज्ञानरूप है, वह ज्ञान ही अनेक इन्द्रियोंके बलसे अनेक प्रकारका कल्पना किया जाता है अर्थात् उस ज्ञानके आधारसे ही नीलज्ञान पीतज्ञान इत्यादि अनेकों प्रकारकी वृत्तियें उत्पन्न होती हैं और लयको प्राप्त होती हैं परन्तु उस आधारभूत ज्ञानका रूपान्तर (बदल) 'जैसे मनुष्य पशु आदि शरीरोंका बदल होने पर भी उनमेंके प्राणोंका बदलना नहीं होता है तैसे ही' नहीं होता है ॥ ३८ ॥ अब दृष्टान्तका विवरण (खुलासा) करते हुए इन्द्रियोंके लयसे निर्विकार आत्माकी प्राप्ति कैसे होती है सो दिखाते हैं-अण्डज, जरायुज उद्भिज और स्वेदज इन चार प्रकारके शरीरोंमें,वह देह बदल जायँ तो भी

ऽज्ञनामचरणैषणयोरुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि । तस्मिन् विशुद्ध-
उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ॥ ४० ॥ राजोवाच ।
कर्मयोगं वदतः नः पुरुषो येन संस्कृतः । विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते
परम् ॥४१॥ एवंप्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके । नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कार-
णमुच्यताम् ॥४२॥ आविर्होत्र उवाच । कर्माकर्म विकर्मेति वेदवादो न लौकिकः ।

तिन २ सब शरीरमें जीवके पिछाड़ी होकर रहनेवाला प्राण जैसे एकका एक ही रहता है तैसे ही देहकी बालकपन तरुणाई आदि अनेकों अवस्था बदल जायँ तो भी उनमें होने वाला आत्मा एकका एक ही रहता है, बदलता नहीं है, तैसे ही सर्वात्मक परब्रह्म जगत्के विकारोंसे लेशमात्र भी लिप्त नहीं होता है, वह, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंमें भी निर्विकार रहता है,जब जाग्रत् अवस्था में इन्द्रियें अपने अपने काम करती हैं और स्वप्नमें जाग्रत् अवस्थामेंके संस्कारसे युक्तहुआ अहंकार अपने काम करता है तब वह निर्विकारीआत्मा,सविकारी हुआ सा प्रतीत होता है ठीक है परन्तु जब सुषुप्तिमें इन्द्रियोंका और अहंकारका लय होजानेके कारण लिङ्गशरीररूप उपाधिका भी लय होजाता है तब निर्विकारी सुख रूप आत्मा प्रत्यक्ष अनुभवमें आता है, उसका स्मरण जागने पर भी हमें, इतने समय पर्यन्त मैं सुखसे सोया था कुछ भी नहीं जाना ऐसा, होता है इस कारण जिसका अनुभव नहीं उसका स्मरण होनेके कारण सुषुप्तिमें आत्माका अनुभव है ही, परन्तु उस समय विषयका सम्बन्ध न होनेके कारण वह स्पष्ट समझमें नहीं आता है ॥ ३९ ॥ अब यदि सुषुप्तिमें कूटस्थ आत्माका अनुभव होता है तो फिर उसको संसार कैसे होता है ? अविद्या और अविद्याका संस्कार होनेके कारण होता है, ऐसा कहो तो तिस अविद्याको दूर करने वाला अनुभव कब होयगा ? ऐसा कहो तो यह मनुष्य धन पुत्रादिकोंकी इच्छाको छोड़ कर केवल भगवान्के चरणकी इच्छा रख कर उत्पन्नहुई बड़ी भारी भक्तिसे जब चित्तके मलको दूर करता है अथवा इसका चित्तही गुणोंके और कर्मोंके सम्बन्धसे अपनेको प्राप्तहुए संस्कार रूप मलका त्याग करता है तब (उस चित्तके शुद्ध होने पर) तिस पुरुषको 'जैसे दृष्टि शुद्ध होते ही पूर्वसिद्ध सूर्यका प्रकाश प्राप्त होता है तैसे ही' अपरोक्षभावसे (प्रत्यक्ष) आत्मतत्त्व प्राप्त होता है और संसारकी निवृत्ति होती है ॥ ४० ॥ अब, भक्तिके कर्माधीन होनेके कारण कर्मयोगका प्रश्न करता हुआ राजा कहने लगा कि हे ऋषियो ! तुम हमसे कर्मयोग कहो, जिस कर्म करके संस्कारयुक्त हुआ पुरुष, इस ही जन्ममें कर्मका शीघ्र त्याग करके कर्मोंकी निवृत्तिसे प्राप्त होने वाले आत्म-ज्ञानको पाता है॥४१॥ और यही प्रश्न पहिले मैंने पिता राजा इक्ष्वाकुके समीप,ब्रह्मा जीके पुत्र सनकादि ऋषियोंसे करा था तब सर्वज्ञ भी तिन ब्रह्मपुत्रोंने उसका उत्तर नहीं दिया इसका क्या कारण है सो कहो ॥ ४२ ॥ तब उनमेंसे पहिले दूसरे प्रश्न का उत्तर कहतेहुए आविर्होत्र योगेश्वर कहने लगे कि-हे राजन् ! कर्म (विहित) अकर्म (निषिद्ध), विकर्म (विहितको न करना) यह तीन प्रकार केवल वेदसे

वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ४३ ॥ परोक्षवादो वेदोऽयं बालाना-मनुशासनम् । कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ॥ ४४ ॥ नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः । विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ ४५ ॥ वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे । नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥४६॥ य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः । विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥ ४७ ॥ लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः । महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याऽभि-

ही समझे जाते हैं, लोकसे नहीं समझे जाते हैं, वेद तो ईश्वरसे हुआ (अपौरुषेय) है,पुरुषके वाक्यमें कहने वालेके अभिप्रायसे अर्थका ज्ञान होता है,वेदमें तो वाक्यों के पूर्वापर सम्बन्धसे ही तात्पर्य जाना जाता है, वह बड़ी कठिन है, इस कारण उन कर्मादिकोंके निर्णयके विषयमें विद्वान् पुरुष भी मोहको प्राप्त होते हैं फिर औरोंकी तो बात क्या ? सो तब तुम बालक होनेके कारण समझ नहीं सकते थे इससे तिन सनकादि ऋषियोंने तुम्हारे प्रश्नका उत्तर नहीं दिया ॥ ४३ ॥ अब वेद का तात्पर्य दुर्ज्ञेय कैसे है सो कहते हैं कि—हे राजन् ! यह वेद परोक्षवाद (एक प्रकारसे होनेवाले अर्थको गुप्त रखनेके निमित्त उसको दूसरे प्रकारसे कहनेवाला) है सो अज्ञानी पुरुषोंकी जैसे समझमें आवे तैसी रीतिसे उनसे कर्म कराता है,जैसा पिता बालकोंको औषध पिलाने लगता है तो उनसे 'यदि यह पियेगा तो तुझे लड्डु आदि दूँगा, ऐसा लोभ देकर औषध पिलाता है और लड्डू आदि भी देता है परंतु लड्डू आदि मिलना औषध पीनेका फल नहीं है किंतु रोगकी निवृत्ति ही उसका फल है तैसेही वेदभी स्वर्गादिक आवांतर (क्षुद्रावके) फलोंसे प्राणियोंको लोभित करके और उनको वह फल भी देकर उनसे कर्मोंकी मोक्षके निमित्त ही कर्म कर-वाता है ॥४४॥ अब कर्म मोक्षही यदि पुरुषार्थ है तो पहिलेसे ही कर्मको छोड़ देय, ऐसी शंका उठनेपर कहते हैं कि–जो मनुष्य, अजितेन्द्रिय होनेके कारण स्वयं ज्ञान को प्राप्त हुआ होकर भी वेदोक्त कर्मोंका आचरण नहीं करता है वह कर्मलोपरूप अधर्मसे वारम्बार जन्ममरणरूप संसारको पाता है ॥ ४५ ॥ इस कारण निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके, ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर्यन्त जो मनुष्य, फलकी चाहनासे रहित होकर, ईश्वरके विषें अर्पण होयँ ऐसी रीतिसे वेदमें कहेहुए कर्मोंको करता है वह अन्तःकरणकी शुद्धि, भक्ति और वैराग्यको प्राप्त होकर सकल कर्मोंको दूर करनेवाली मोक्षरूप सिद्धिको पाता है,स्वर्गादिकी प्राप्तिरूप फलका जो वेदने वर्णन करा है सो केवल कर्मोंके ऊपर रुचि उत्पन्न करनेके निमित्त ही करा है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार वैदिक कर्मयोग कह कर अब तांत्रिक कर्मयोग कहते हैं–जो मनुष्य,पर-ब्रह्मरूप ही होने वाले अपने जीवात्माके अहंकाररूप बन्धनको शीघ्रतासे तोड़नेकी इच्छा करता होय वह तन्त्रोक्त दोनों प्रकारकी विधियोंसे भगवान्‌की पूजा करे ४७ आचार्यसे जिसको उपनयनपूर्वक मन्त्रकी प्राप्ति हुई है और तिस गुरुने ही जिस को आगममें कहा हुआ पूजा आदिका प्रकार दिखाया है ऐसा पूजक, अपनेको प्रिय लगने वाली रामकृष्ण आदि मूर्तिके स्वरूपसे युक्त महापुरुष भगवान्‌का

मतयात्मनः ॥ ४८ ॥ शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ॥ ४९ ॥ अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः द्रव्यक्षित्यात्मलिंगानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम् ॥ ५० ॥ पाद्यादीनुपकल्प्याथ सन्निधाप्य समाहितः । हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ॥५१॥ सांगोपांगां सपार्षदां तां तां मूर्त्तिं स्वमन्त्रतः । पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥ ५२ ॥ गन्धमाल्याक्षतस्रग्भिर्धूपदीपोपहारकैः । साङ्गं संपूज्य विधिवत् स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम् ५३ आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्त्तिं संपूजयेद्धरेः । शेषामाधाय शिरसि स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥ ५४ ॥ एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः । यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

राजोवाच । यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः । चक्रे करोति कर्ता

पूजन करे ॥ ४८ ॥ स्नान आदिके द्वारा शुद्ध होकर, मूर्त्तिके सामने बैठ कर और प्राणायाम, भूतशुद्धि आदिके द्वारा शरीरकी शुद्धिको करके उत्तम प्रकारके न्यासों से रक्षाकी विधि होने पर देशकाल आदिकी अनुकूलताके अनुसार प्राप्त हुई गन्ध पुष्पादि सामग्रियोंसे प्रतिमा आदिके विषैं अथवा हृदयमें श्रीहरिका पूजन करे, इस पूजनके करनेसे पहिले ही पुष्प आदि पदार्थोंको-कीड़े आदिकोंको दूर करनेसे भूमिको-बुहारने आदिसे, मनको-एकाग्रतासे और श्रीहरिकी मूर्त्तिको—पहिले दिन लगाये हुए चन्दन आदिको धोने आदिसे ठीक करके और तदनन्तर आसनका प्रोक्षण करके, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय इनके तीन पात्र स्थापन करे फिर एकाग्रपनेसे हृदयमें ध्यान और पूजन करे हुए भगवान्का प्रतिमामें आवाहन करके फिर उन देवके विषैं हृदय, शिर, शिखा, नेत्र, अस्त्रमन्त्रोंसे और मूलमन्त्रसे न्यास करके मूलमंत्रसे उनका पूजन करे ॥ ४९-५१ ॥ तिसमें हृदय आदि अङ्ग, सुदर्शन आदि उपांगों सहित और नन्दादि पार्षदों सहित तिन २ रामकृष्णादि मूर्त्तियोंके मूलमंत्रसे पाद्य, अर्घ्य आचमनीय, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, भूषण, गन्ध, पुष्प, अक्षत, माला, धूप, दीप, नैवेद्य और तांबूल आदि सामग्रियोंसे श्रीहरिकी साङ्गोपांग विधिके अनुसार पूजा करे, तदनन्तर स्तोत्रोंसे स्तुति करके भगवान्को नमस्कार करे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ अपना आत्मा भगवद्रूप है ऐसा ध्यान करता हुआ भगवान्की मूर्त्तिका पूजन करे, तदनन्तर भगवान्का प्रसाद (निर्माल्य) मस्तक पर धारण करके, पूजा करे हुए देवको स्वस्थानमें (देवको हृदयमें वा मूर्त्ति रखने के सिंहासनमें) स्थापन करके पूजाकी विधिको समाप्त करे ॥ ५४ ॥ इस प्रकार अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और हृदयके विषैं जो पुरुष आत्मा ईश्वरका पूजन करता है वह पुरुष शीघ्र ही संसारसे मुक्त होता है ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ छ ॥

अपनेको प्रिय हो तिस २ मूर्त्तिके विषैं भगवान्का पूजन करे, ऐसा सुननेसे भगवान्के अवतारको जाननेकी अपेक्षा हुई इस कारण राजाने कहा कि-ऋषियों !

वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥ १ ॥ द्रुमिल उवाच । यो वा अनन्तस्य गुणाननंतानुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः । रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः २ भूतैर्यदा पंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ३ यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो यस्येंद्रियैस्तनुभृतामुभयेंद्रियाणि । ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज इहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥ ४ ॥ आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः । रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशांतः । नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ इन्द्रो विशंक्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुंक्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ।

श्रीहरिने जिन२स्वतन्त्र अवतारोंसे इस मनुष्यलोकमें जो २ कर्म करे हैं जो २ करते हैं और आगेको करेंगे वह अवतारोंके चरित्र हमसे कहिये १ तव द्रुमिल नाम वाले योगेश्वर कहनेलगे कि हे राजन्!जो पुरुष,अनन्त भगवान्के अनंतगुणोंको गिननेकी इच्छा करे उनको मंदबुद्धि समझना चाहिये,क्योंकि कोई एकाद परमबुद्धिमान् पुरुष बहुतसे समयमें और बड़े प्रयत्नसे कदाचित् भूमिके रजके कणोंकी गणना करलेय परन्तु सकल शक्तियोंके आश्रय भगवान्के गुणोंको गिननेको वह समर्थ नहीं होगा इस कारण तुम्हारे अर्थ मैं संक्षेपसे कई एक अवतारोंके चरित्र कहता हूँ सुनो।२। तिसमें पहिले सकल अवतारोंके मूल पुरुषावतारको कहते हैं कि-जव सबके कारणभूत नारायणने, अपने ही उत्पन्न करे हुए आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्डरूप देहको उत्पन्न करके उसमें अपने अंशसे प्रवेश करा तव वह पुरुष नाम को प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ जिनके शरीर पर यह त्रिलोकीकी रचना हुई, जिनकी इन्द्रियों से जीवोंकी ज्ञानेन्द्रियें उत्पन्न हुई हैं, जिनके स्वरूपभूत सत्त्वगुणसे जीवोंको ज्ञान प्राप्त होता है, जिनके प्राणसे जीवोंकी-देहशक्ति, इन्द्रियशक्ति और सकलक्रिया उत्पन्न होती हैं और जो इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहारके आदि कर्त्ता हैं ४ जिनके रजोगुणसे इस जगत्की उत्पत्तिके विषयमें प्रथम ब्रह्माजी हुए, जिनके सत्त्वगुणसे जगत्का पालन करनेके विषयमें यज्ञका फल देनेवाले, ब्राह्मणोंका और ब्राह्मणके धर्मोंका पालन करनेवाले विष्णुभगवान् हुए, जिनके तमोगुणसे जगत्के संहारके विषयमें रुद्र उत्पन्न हुए, इस प्रकार जिनसे उत्पन्न हुए ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र से निरन्तर प्रजाओंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं वह आदि पुरुष हैं ॥५॥ अव नरनारायणावतार और उनके कर्म कहते हैं-धर्मकी भार्या और दक्षकी कन्या मूर्त्ति नामवाली स्त्रीके उदरमें, ऋषियोंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त शान्त नारायण और नर इन दो मूर्त्तियोंके द्वारा अवतार हुआ, इन्होंने आत्मस्वरूपका प्रकाश करने वाले कर्म नारदादिकोंसे कहे हैं और अपने आप भी करे हैं, वह नरनारायण ऋषि अव भी, नारदादि श्रेष्ठ-ऋषियोंने जिनके चरणकी सेवा करी है ऐसा होते हुए तपस्या कर रहे हैं ॥ ६ ॥ अव उनकी भगवान्के अवतारपनेको प्रकाशित करने

गत्वाऽप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥ विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् । मा भैष्ट भो मदन मारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥ इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः । नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥ त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलंघ्य परमं व्रजतां पदं ते । नान्यस्य बर्हिषि बलीन् ददतः स्वभागान् धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥ क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्व्यशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् । क्रोधस्य यांति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च

वाली बड़ी भारी सहनशीलता दिखानेके निमित्त इतिहास कहते हैं कि-इन्द्रने उन नरनारायणके तपको देखकर 'यह मेरे स्थानको हरनेकी इच्छा करते हैं' ऐसी,मनमें शंका करके उनके तपका नाश करनेके निमित्त, वसन्त आदि परिवार सहित कामदेवको भेजा, तब उनकी महिमाको न जाननेवाला वह कामदेव, अप्सराओंके समूह, वसन्तऋतु और मन्दगामी पवन इनके साथ 'बदरिकाश्रममें जाकर, स्त्रियोंके कटाक्षरूप बाणोंसे उनको वेधने लगा, अर्थात् उनके चित्तको डिगानेमें प्रवृत्त हुआ ॥ ७ ॥ तब वह नरनारायण, इंद्रके करे हुए अपराधको जानकर, उसके मोहके स्मरणसे हँसकर गर्वरहितपनेसे, अपना उद्योग व्यर्थ होनेके कारण शापके भयसे थरथर काँपनेवाले, उन कामदेव आदिकोंसे कहने लगे कि-हे कामदेव ! हे पवन ! हे देवाङ्गनाओ ! तुम मुझसे भय मत मानो,तुम,हमारी करी हुई पूजाको ग्रहण करके इस आश्रमको अशून्य (कृतार्थ) करो—जिस आश्रममें अतिथिका सत्कार नहीं होता है तिस आश्रमको शून्य कहते हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! अभय देनेवाले उन नरनारायणके ऐसा कहने पर लज्जित हुए मस्तक नमाए हुए वह काम आदि देवता, उन दयालुसे कहने लगे कि-हे विभो ! मायासे पर,कामक्रोधादि विकाररहित और अपने स्वरूपमें रमण करनेवाले धैर्यवान् पुरुषोंके समूहोंसे जिनका चरण कमल वन्दना करा गया है ऐसे तुम्हारे विषें यह चलायमान न होना और कृपा करना आश्चर्यकारक नहीं है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! तुम्हारी सेवा करनेवाले पुरुष, स्वर्गरूप स्थानको लाँघ कर सर्वोत्तम वैकुण्ठ लोकको जाते हैं इस कारण उनको ही इन्द्रादिक देवताओंके करे हुए बहुतसे विघ्न प्राप्त होते हैं, तुम्हारी सेवा न करनेवालोंको वह विघ्न नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि-वह यज्ञमें तिन इन्द्रादिकोंके पुरोडाश आदि भाग 'जैसे किसान लोग, राजाको कर आदि राजाको देते हैं तैसे ही, देते हैं, तो क्या मेरा भक्त विघ्नोंसे तिरस्कारको प्राप्त होता है ? नहीं नहीं सकल देवताओंके स्वामी तुम उसकी रक्षा करते हो इस कारण वह भक्त विघ्नोंके मस्तक पर चरण रखकर तुम्हारे वैकुण्ठको जाता है जब तुम्हारे भक्तको भी विघ्न नहीं होते तो फिर तुम्हें विघ्न कहाँसे होंगे ? अर्थात् कभी हो ही नहीं सकते ॥ १० ॥ तुम्हारी भक्ति न करके केवल तप करनेवालोंकी दो प्रकारकी गति होती है, वह प्रथम तो हमारे वशमें होजाते हैं, नहीं तो क्रोधके वशमें होजाते हैं, तिसमें हमारे वशमें होने

वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥ इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥ ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः । गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥ तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव । आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥ ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः । उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥ इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् । ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥१६॥ हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः । विष्णुः शिवाय जगतां कलयाऽवतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये १७

वालोंको विषयभोग तो प्राप्त होता है और क्रोधके वशमें होनेवाले तो बड़े ही मूढ़ होजाते हैं, क्योंकि-भूँख, प्यास, सरदी, गरमी, वर्षा, पवन, जिह्वाके विषय और मूत्रेन्द्रियके भोग इस अपार समुद्रको लाँघकर कितने ही मूर्ख तपस्वी; निष्फल क्रोधके वशमें होकर, गौके पैरके चिन्हरूप गढ़हेके जलमें ही डूब जाते हैं और अपने दुष्कर तपको व्यर्थ नष्ट कर देते हैं अर्थात् जैसे जलमें डूबता हुआ पुरुष, घबड़ा जाने पर मस्तक पर रक्खे हुए धनादिके बोझेको विवश होकर व्यर्थ छोड़ देते हैं तैसे ही यह मूर्ख तपस्वी भी मोक्षके निमित्त नहीं और विषयभोगके निमित्त भी नहीं किन्तु व्यर्थ ही शाप आदिके रूपसे अपने दुष्कर तपका नाश कर डालते हैं ११ इस प्रकार उन कामदेव आदिकोंके स्तुति करने पर नरनारायणने उनका गर्व नष्ट करनेके निमित्त योगबलसे तहाँ अपनी शुश्रूषा करनेवालीं, अद्भुत रूपवती और उत्तम आभूषण धारण करनेवाली सहस्रों स्त्रियें रचकर उनको दिखाईं ॥१२॥ तब, मानो मूर्त्तिमान् लक्ष्मी ही हैं ऐसी उन स्त्रियोंको देखकर उनके रूपकी अधिक सुन्दरता आदिसे निस्तेज हुए वह कामदेव आदि देवसेवक,उन स्त्रियोंके शरीरकी सुगन्धसे ही मोहको प्राप्त होगए १३ तब ब्रह्मादिकोंके भी ईश्वर वह नरनारायण, हास्य करनासा दिखाकर नम्र हुए उन कामदेव आदिकोंसे कहने लगे कि–इन स्त्रियोंमेंसे किसी स्त्रीको माँग लो, यदि अतितुच्छ हम कहाँ (और यह अतिसुन्दर स्त्रियें कहाँ ? ऐसा तुम्हारे मनमें विचार हो तो इनमेंकी कोई बुरी सी अपनी समान ही माँग लो, यदि कहो कि इनमें ऐसी एक भी नहीं है तो न सही परन्तु स्वर्गकी भूषणरूप एक तो माँग ही लो ॥ १४ ॥ तब उन काम आदि देवताओंने' बहुत अच्छा'ऐसा कहकर उन नरनारायणकी आज्ञाको माना और उनको नमस्कार करके तथा अप्सराओंमें श्रेष्ठ जो उर्वशी तिसको आगे करके वह स्वर्गको चले गये ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन्होंने सभामें बैठे हुए इन्द्रको नमस्कार करके, देवताओंके सुनते हुए,नरनारायणका प्रभाव वर्णन करा, तिसको सुनकर इन्द्रने बड़ा आश्चर्य माना ॥ १६ ॥ अब दूसरे अवतार और उनके चरित्र कहते हैं-जगत्के कल्याणके निमित्त अंश करके अवतार धारण करनेवाले विष्णु भगवान्ने हंसावतार धारण करके ब्रह्माजीको ब्रह्मविद्याका उपदेश करा, तैसे ही तिन विष्णु भगवान्के दत्तात्रेय सनत्कुमार और हमारे पिता भगवान् ऋषभदेव यह तीन अवतार हुए,

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरतांऽब सः क्ष्माम् । कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥ संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान्श्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् । देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेंद्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥ देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वांऽतरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः । भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाछलेन समदाद्दितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥ निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिः सप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः । सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥ २१ ॥ भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि । वादैर्विमोहयति यज्ञकृतेऽतदर्हान् शूद्रान्कलौ क्षिति-

---

उन्होंने भी तत्वज्ञानका उपदेश करा, उन ही विष्णुने हयग्रीव अवतारमें मधुनाम वाले दैत्यको मारकर उससे श्रुतियें लौटा कर लीं ॥ १७ ॥ उन्होंने हा मत्स्यावतार धारण करके प्रलयके समय वैवस्वत, मनु, पृथ्वी और औषध इनकी रक्षा करी, तैसे ही वराहावतार धारकर जलमें पृथ्वीका उद्धार करतेमें हिरण्याक्ष दैत्यका वध करा, कूर्मावतार धारकर समुद्रमन्थनके समय पीठपर मन्दराचलको धारणकरा और हरि अवतारके समय पीड़ित होकर शरण आयेहुए गजराजको ग्राहसे छुड़ाया १८ उन ही भगवान्ने निराले २ अवतार धारकर कश्यपजीके निमित्त समिधा लानेको वनमें जाकर तहाँ गौके खुरके गढहेके जलमें डूबने लगनेके कारण इन्द्रके हास्य करे हुए और श्रम पाकर स्तुति करनेवाले वालखिल्य ऋषियोंको उस संकटसे तारा और वृत्रासुरके वधसे ब्रह्महत्यारूप पापमें पड़ेहुए इन्द्रको उस पापसे छुड़ाया, तैसे ही दैत्योंके घरोंमें बन्द करके रक्खी हुई देवताओंकी अनाथ स्त्रियोंको छुड़ाया और तिन भगवान्ने नृसिंहावतार धारकर साधुओंको अभय प्राप्त होनेके निमित्त हिरण्यकशिपुका वध करा १९ उन ही भगवान्ने सब मन्वंतरोंमें देवदैत्योंके युद्धमें देवताओंका कार्य साधनेके निमित्त अपने अवतारोंसे दैत्याधिपतियोंको मारकर भुवनकी रक्षा करी और वामनावतार धारण करके भिक्षा माँगनेके बहानेसे राजा बलिसे यह पृथ्वी लेकर देवताओंको दी ॥ २० ॥ सहस्राबाहु आदि राजाओंके कुलोंका नाश करनेके विषयमें भृगुकुलमें उत्पन्न हुए, मानो जैसे अग्नि ही हो ऐसे तेजस्वी परशुरामावतारको धारण करके पृथ्वीको इक्कीसवार निःक्षत्रिय करा, उन्होंने ही रामावतार धारकर समुद्रपर सेतु बाँधा और लंकामें रहनेवाले रावणका वध करा, वह लोकों के पापोंका नाश करनेवाली कीर्तिसे युक्त सीतापति श्रीरामचन्द्रजी, इस समय राज्य करते हैं ॥ २१ ॥ वही जन्मरहित भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके निमित्त यादवोंमें रामाकृष्णावतार धारकर, जिनको देवता भी न करसकें ऐसे चरित्रकरेंगे और बुद्धावतार धारण करके, यज्ञका अनुष्ठान करनेके विषयमें अयोग्य होकर भी यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले दैत्योंको वेदविरुद्ध तर्क समझाकर मोहित करेंगे, तैसे ही कलियुगके अन्तमें कल्किरूपसे अवतार धारकर शूद्रप्राय हुए अधर्मी राजाओंका संहार करेंगे ॥ २२ ॥ हे पराक्रमी राजन् ! इस प्रकार जगत्पति महा-

भुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥ एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः । भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

राजोवाच । भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः । तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥ १ ॥ चमस उवाच । मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ।२। य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥३॥ दूरे हरिकथाः केचिद् दूरे चाच्युतकीर्तनाः । स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकंप्या भवादृशाम् ॥ ४ ॥ विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदांतिकम् । श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः । वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या

कीर्त्तिमान् भगवान्के जन्म और कर्मोंका मैंने तुमसे संक्षेप वर्णन करा है, दूसरे भी बहुतसे चरित्र कवियोंने जहाँ तहाँ वर्णन करे हैं ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

राजा निमिने कहा कि-हे परब्रह्म ज्ञानियों ! जो बहुतसे पुरुष भगवान् श्रीहरिका भजन नहीं करते हैं, उन मनको वशमें करके न रखनेवाले और विषयवासनाओंमें आसक्तहुए पुरुषोंकी अन्तमें कौन गति होती है ? ॥१॥ तब, अपने उत्पन्न करनेवाले भगवान्का अनादर करनेसे उनको दुर्गति प्राप्त होती है, यह कहनेके निमित्त पहिले चमस नामक योगेश्वर, भगवान्से वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति कहते हैं, चमसने कहा कि—हे निमि राजन् ! नारायणके मुख, बाहु, जंघा और चरण इन अङ्गोंसे क्रम करके निराले २ ब्राह्मण आदि चार वर्ण गुणोंसे अर्थात् सत्त्वगुणसे ब्राह्मण, सत्त्वरजोगुणसे क्षत्रिय, रजस्तमोगुणसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं, तैसे ही हृदयसे ब्रह्मचर्य आश्रम, कमरके पीछेके भागसे गृहस्थ आश्रम, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ आश्रम और मस्तकसे संन्यास आश्रम यह चारों आश्रम उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ इन वर्णाश्रमवान् लोकोंमें जो पुरुष, अपनेको उत्पन्न करनेवाले साक्षात् पुरुषोत्तम ईश्वरको नहीं जानते हैं और सेवा नहीं करते हैं अथवा जानकर भी अवज्ञा करते हैं वह पुरुष, कृतघ्नी होनेके कारण अपने वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट होकर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ अब जिनसे भगवान्की कथाओंका सुनना और भगवान्का कीर्त्तन दूर है अर्थात् यह जिन्होंने कभी करे ही नहीं हैं ऐसी जो स्त्रियें और शूद्र हों वह तुम समान अधिकारी राजाओंके साम दाम आदि उपायोंके द्वारा अनुग्रह करनेके योग्य हैं ॥ ४ ॥ अब जो अधिकारी होकर भी जानबूझकर भगवान्का भजन नहीं करते हैं उनकी निन्दा करते हैं कि-कितने ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यद्यपि उपनयन संस्कार अध्ययन आदि भगवद्भजनके अधिकारको प्राप्त होगये हैं तथापि वह, वेदमेंके अर्थवाद (फलश्रुति) सत्य हैं ऐसा मानकर कर्मोंके फलोंमें आसक्त होकर मोहित होते हैं ॥ ५ ॥ अब, भक्तिमार्गको दृढ करनेके निमित्त उनके मोहका विस्तार करके उनकी निन्दा करते हैं कि—कर्मके विषयमें अकोविद (जैसे कर्म

गिरोत्सुकाः ॥ ६ ॥ रजसा घोरसङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः। दांभिका मानिनः पापा विहसंत्यच्युतप्रियान् ॥ ७ ॥ वदंति तेऽन्योऽन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यसुखेषु चाशिषः। यजंत्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नंति पशूनतद्विदः ॥ ८॥ श्रिया विभूत्याऽभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा। जातस्मयेनांधधियः सहेश्वरान् सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान् खलाः ॥ ९ ॥ सर्वेषु शश्वत्तनुभृत्स्ववस्थितं यथा खमात्मानमभीष्टमीश्वरम्। वेदोपगीतं च न शृण्वतेबुधा मनोरथानां प्रवदंति वार्तया ॥ १० ॥ लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जंतोर्नहि तत्र चोदना।

वन्धन करनेवाला नहीं होय तैसे कर्मकरना नहीं जाननेवाले) उद्धत और मूर्ख होकर भी हम ही पण्डित हैं ऐसा माननेवाले वह पुरुष, हम यहाँ यज्ञमें सोमपान करें और फिर अमर होयँ इत्यादिक जिस मधुर वाणीसे उत्कण्ठित होकर मोहित होते हैं तिस ही वाणीसे वह, 'हम अप्सराओंके साथ क्रीडा करें' इत्यादि मनको प्रिय लगनेवाले शब्द भाषण करते हैं ॥ ६ ॥ और रजोगुणकी अधिकतासे दूसरोंके घातपात करनेका सङ्कल्प करनेवाले, विषय भोगोंमें आसक्त, सर्पोंकी समान क्रोधी, दम्भी, अभिमानी और पापी वह पुरुष, भगवद्भक्तोंका उपहास करते हैं ॥ ७ ॥ जिन्होंने, स्त्रियोंकी ही उपासना चला रक्खी है और वृद्धोंकी सेवा नहीं करते हैं वह पुरुष, जिनमें मैथुन ही सुख है, अतिथिका सत्कार नहीं है ऐसे घरोंमें रहकर आज मैंने इतना पाया है, अब मेरा यह मनोरथ पूर्ण होगा, मेरे पास इतना धन तो अब है ही और आगेको अब इतना धन होजायगा इत्यादि' अपने मनोरथ परस्पर वर्णन करते हैं, और जिसमें परिपूर्ण दक्षिणा अथवा अन्नदान नहीं हैं ऐसे विधान रहित दाम्भिक यज्ञ करते हैं तैसे ही हिंसाका दोष मनमें न लाकर केवल अपनी जीविका चलानेके निमित्त पशुओंकी हिंसा करते हैं ॥ ८ ॥ सम्पत्ति, ऐश्वर्य, उत्तमकुलमें जन्म, विद्या, दान, रूप, बल और कर्म इनसे होने वाले अभिमानके कारण अन्धबुद्धि हुए वह दुष्ट, भगवान्‌का और भगवद्भक्तोंका अपमान करते हैं ॥ ९ ॥ इस प्रकार बर्त्ताव करने वाले वह मूर्ख पुरुष, वेदोंके स्पष्ट प्रतीत होने वाले भी ठीक अर्थको नहीं जानते हैं. क्योंकि-वह पुरुष सकलप्राणिमात्रोंमें आत्मत्व करके और ईश्वरत्व करके आकाशकी समान व्याप्त होकर रहने वाले, वेदमें गान करेहुए और अतिप्रिय आत्माका श्रवण भी नहीं करते हैं किन्तु वास्तवमें निवृत्तिपरायण भी वेदका, स्त्रीसंभोग, मांसभक्षण और मद्यपान आदि विषयोंकी वार्त्तासे प्रवृत्ति परायणरूपसे वर्णन करते हैं ॥ १० ॥ अब 'ऋतुकालमें स्त्री × सम्भोग करे' हवन करके + शेष रहे हुए मांसका भक्षण करे' इत्यादि विधिसे ही सम्भोग आदिके कहनेपर, उनकी तुम निन्दा क्यों करते हो ? ऐसा कहो तो सुनो-इसलोकमें प्राणी मात्रको विषयासक्ति स्वाभाविक ही होनेके कारण स्त्रीसम्भोग, मांसभक्षण और मद्यपान यह निरंतर प्राप्त हुए हैं ही इस कारण उनको करनेके विषयमें वेदने विधि

× ऋतौ भार्यामुपेयात्।
+ हुतशेषं भक्षयेत्।

व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥ ११ ॥ धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशांतिः । गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ॥ १२ ॥ यद् घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा । एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ॥१३॥ ये त्वनेवंविदो-ऽसंतः स्तब्धाः सदभिमानिनः । पशून् द्रुह्यंति विस्रब्धाः प्रेत्य खादंति ते च तान्॥१४ द्विषंतः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् । मृतके सानुबंधेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पत-

नहीं कही है किंतु उन विषयोंमें आसक्त हुए प्राणीको नियमकी विधिरूपसे विवाह, यज्ञ और सुराग्रहणके द्वारा सम्भोग आदिकोंको करनेकी आज्ञा दीहुईसी करके सङ्कोच मात्र करा है अर्थात्-स्त्री सम्भोग करना होय तो विवाह करके उस स्त्रीके विषैं ऋतु-कालमें ही(सोलह दिनके भीतरही)वर्जित दिनोंको छोड़कर रात्रिमें एकबार ही पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त ही करे,और समय न करे,तैसेही रागवश मांसभक्षियोंको यदि मांस ही भक्षण करना होय तो यज्ञमें शेष रहेहुए हविर्भागका ही सेवन करे, दूसरे मांसका सेवन न करे,सुरापान करना होय तो सौत्रामणिनामक इष्टि करके तिसमें ही गन्ध सूँघनेके रूपसे सुरापान करे. और प्रकार नहीं करे, ऐसा संकोच करा है; तो फिर स्त्रीसम्भोग, मांसभक्षण और सुरापान यह बड़ी खटपटके हैं इस कारण नहीं होना चाहिये ऐसा समझ कर प्राणी उनका त्याग करेंगे सो वह त्याग करना ही वेदको इष्ट है ॥ ११ ॥ इस प्रकार मैथुन मांसभक्षण आदि मनोरथोंसे व्याकुल चित्त हुए पुरुष, प्रिय आत्माका श्रवण नहीं करते हैं ऐसा कहा अब धर्मके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले धनका भी वह पुरुष केवल विषयभोगके निमित्त ही व्यय करते हैं इस कारण उनको ज्ञान नहीं प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं-धर्माचरण करना ही धनका मुख्य फल है, जिस धर्मसे परोक्ष ज्ञान और तत्काल शान्ति देनेवाला अप-रोक्ष ज्ञान यह दोनों प्राप्त होते हैं,ऐसे कल्याणकारी धनका वह विषयलम्पट पुरुष केवल शरीरके सुखके निमित्त घरोंमें व्यय करते हैं,वह,अटलपराक्रमी मृत्युने हमारे शरीरको घेर लिया है ऐसा नहीं देखते हैं१२और वेदमें जो मद्यपान आदिकोंकी व्य-वस्थासे आज्ञा दी है वह भी दूसरे प्रकारकी ही है,यथेष्ट नहीं है,सो इसप्रकार है कि सुराका जो प्राशन कहा है सो सुराका नाकसे सूँघनामात्र ही कहा है, प्रत्यक्ष पान नहीं कहा है, तैसे ही यज्ञमें पशुका देवताके उद्देशसे आलभन (मारण) कहा है, हिंसा (भक्षण उद्देशसे मारना) नहीं कहा है,इसप्रकार स्त्रीसम्भोग भी पुत्रकी प्राप्ति के निमित्त ही कहा है,रतिसुखके निमित्त नहीं कहा है इस अत्यन्त शुद्ध स्वधर्मको वह अज्ञानी पुरुष नहीं जानते हैं ॥१३॥ इस प्रकार भगवान्से विमुख रहने वालोंके बहुतसे दोष अब कहकर उनकी अंतकी गति कहते हैं कि-जो इसप्रकारका धर्म न जाननेवाले असत्पुरुष, उद्धतपना, हम ही सत्पुरुष हैं ऐसा अभिमान धारण करके निःशंकपनेसे 'ऐसा करने पर ऐसा होयगा' इस प्रकारका मनोरथ करके पशुओं का द्रोह करते हैं वह मरणको प्राप्त होने पर, उनके यहाँ मारे हुए जो पशु होते हैं वही उनको परलोकमें मार कर खाते हैं ॥ १४ ॥ और जो पुरुष, पुत्रादिसहित इस

न्त्यधः ॥ १५ ॥ ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् । त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ॥ १६ ॥ एत आत्महनोऽशांता अज्ञाने ज्ञानमानिनः । सीदंत्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ॥१७॥ हित्वात्मायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः । तमो विशंत्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ राजोवाच । कस्मिन्काले स भगवान् किंवर्णः कीदृशो नृभिः । नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ॥ १९ ॥ करभाजन उवाच । कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः । नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ॥ २० ॥ कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलांबरः । कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ॥ २१ ॥ मनुष्यास्तु तदा शांता निर्वैरा सुहृदः समाः । यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥ हंसः सुपर्णो

अपने शवतुल्य शरीरके ऊपर स्नेह रख कर, और शरीरोंमें रहनेवाले परन्तु अपने भी आत्मा ऐसे परमेश्वर श्रीहरिका द्वेष करते हैं, वह मरणको प्राप्त होने पर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ अज्ञानी पुरुष; तत्त्वज्ञानियोंका अनुग्रह होने पर तरजाते हैं और तत्त्वज्ञानी तो स्वयं ही तरजाते हैं परन्तु जो तत्त्वज्ञानको प्राप्त नहीं हुए हैं और जो अत्यन्त मूढ़ भी नहीं हैं वह धर्मार्थ कामके विषयमें खटपट करने वाले और शान्तिके विषयमें क्षणभर भी अवकाश न पाने वाले पुरुष, अपने हाथसे ही अपना घात करलेते हैं अर्थात् आत्मस्वरूपको न जाननेके कारण जन्ममरणरूप संसारको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥ यह पुरुष अपनेको ही धोखा दे लेने वाले, शांतिरहित अज्ञानरूप कर्मको ही ज्ञान मानने वाले और अवश्य कर्त्तव्य जो श्रवणादिक साधन तिनको न करने वाले होनेके कारण इसलोकमें और परलोकमें कालके द्वारा नष्ट मनोरथ होकर अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं ॥ १७ ॥ जो पुरुष वासुदेव भगवान्से विमुख हैं वह परम कष्टसे प्राप्त करे हुए घर, सन्तान, मित्र, धन आदि सम्पत्तियोंको,त्यागनेकी इच्छा न होनेपर भी इसलोकमें ही छोड़कर अन्तमें नरकमें प्रवेश करते हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार भक्तोंकी गति कहनेके कारण साधक भगवान्की भक्ति ही करे ऐसा सिद्ध होनेपर तिसके विषयमें विशेष बूझनेके निमित्त राजा निमिने कहा कि–हे ऋषियो ! वह भगवान् किस समयमें किस वर्णके और किस आकारके होते हैं तथा उनका कौनसे नामसे और कौनसी विधिसे, मनुष्य पूजन करें सो अब मुझसे कहो ॥ १९ ॥ तब करभाजन नाम वाले योगेश्वर कहने लगे कि—हे राजन् ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि यह चार युग हैं, तिनमें निराले निराले वर्ण, नाम और स्वरूपोंको धारण करने वाले भगवान्की अनेकों प्रकारकी विधियोंसे लोक पूजा करते हैं ॥२० ॥ सत्ययुगमें श्वेतवर्ण, चतुर्भुज, जटाधारी और वृक्षोंकी छाल धारण करने वाले, तैसे ही कृष्णमृगचर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला,दंड और कमंडलु धारण करनेवाले ब्रह्मचारीरूप भगवान् होते हैं२१तिस युगमें मनुष्य, शान्त, निर्वैर, सबोंके मित्र और सुखदुःखोंमें समान तथा ध्यान, योग मनका निग्रह और इन्द्रियोंके निग्रहके द्वारा भगवान्की आराधना करते हैं ॥२२॥ और वह पुरुष, हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगीश्वर, मनु, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त

वैकुण्ठो धर्मो योगीश्वरो मनुः । ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥ २३ ॥ त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः । हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥ २४ ॥ तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् । यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥ २५ ॥ विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः । वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥ २६ ॥ द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः । श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥२७॥ तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् । यजन्ति वेदतन्त्राभ्यां परं जिज्ञासवो नृप ॥ २८ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२९॥ नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने । विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ३० ॥ इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ॥ ३१ ॥ कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् । यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥३२॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिंचिनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं

और परमात्मा ऐसे भगवान्‌के नाम गाते हैं ॥ २३ ॥ त्रेतायुगमें रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, कमरमें दीक्षाकी त्रिगुणित मेखलाको धारण करने वाले पिंगल वर्णके केश वाले और स्रुचि, स्रुवा आदि लक्षणोंसे युक्त ऐसे यज्ञमूर्त्ति भगवान् होते हैं ॥ २४ ॥ उस समय धर्मात्मा और ब्रह्मवादी मनुष्य, इन्द्रादि सकल देवतारूपी श्रीहरिदेव का, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें कहे हुए यज्ञके मार्गोंसे आराधन करते हैं २५ और वह पुरुष, विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय इन भगवान्‌के नामोंको गाते हैं ॥ २६ ॥ द्वापरयुगमें श्यामवर्ण पीताम्बरधारी और शंख चक्र गदा पद्म धारण करने वाले तैसे ही श्रीवत्स आदि चिह्नों करके और कौस्तुभ आदि लक्षणों करके शोभायमान भगवान् होते हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! उस समय तत्त्वज्ञानकी इच्छा करने वाले मनुष्य, चक्रवर्त्ती राजाके छत्र चँवर आदि चिन्होंसे शोभायमान तिन पुरुषोत्तम भगवान्‌का वेदमें कही हुई और तन्त्रमें कही हुई पूजाकी विधिसे आराधन करते हैं ॥ २८ ॥ और स्तुति करते हैं कि–हे प्रभो ! तुम वासुदेवको नमस्कार हो, तैसे ही संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप तुम भगवान्‌को नमस्कार हो ॥ २९ ॥ नारायण, ऋषि, महात्मा पुरुष, जगत् रूप होकर जगत्‌के ईश्वर ऐसे तुम सकल भूतात्माको नमस्कार होय ॥ ३० ॥ इस प्रकार द्वापरयुगमें लोग जगदीश्वरकी स्तुति करते हैं, अब कलियुगमें भी नाना प्रकारकी तांत्रिक विधिसे लोग जैसे ईश्वरका आराधन करते हैं तैसा मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ ३१ ॥ वर्णमें श्याम होकर भी कान्तिसे देदीप्यमान, हृदयादिक अङ्ग, कौस्तुभ आदिक उपांग, सुदर्शन आदिक अस्त्र और सुनन्द आदि पार्षदोंसे युक्त श्रीकृष्णजीका विवेकी पुरुष, जिनमें नामसंकीर्त्तन और स्तुति बहुतसी हैं ऐसे पूजन आदि यज्ञोंसे आराधन करते हैं ॥ ३२ ॥ वह इस प्रकारकी स्तुति कि–हे भक्तपालक महापुरुष ! निरन्तर ध्यान करने योग्य, इन्द्रियोंसे और कुटुम्बसे प्राप्त होने वाले तिरस्कारका नाश करने वाले; गङ्गादिक तीर्थों के आश्रय होनेके कारण

प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३३ ॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यज-सुरेप्सितराजलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयितयेप्सित-मन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविंदम् ॥ ३४ ॥ एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युग-वर्तिभिः । मनुजैरिज्यते राजञ्छ्रेयसामीश्वरो हरिः ॥ ३५ ॥ कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः । यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥ ३६ ॥ न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह । यतो विन्देत परमां शांतिं नश्यति संसृतिः ३७ कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति संभवम् । कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण-परायणाः ॥ ३८ ॥ क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः । ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥ ३९ ॥ कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी । ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर । प्रायो भक्ता भविष्यन्ति वासुदेवेऽमला-शयाः ॥४०॥ देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन् । सर्वात्मना

परमपवित्र, शिवजी और ब्रह्माजीसे स्तुति करे हुए, सुखरूप होनेके कारण आश्रय करनेके योग्य, भक्तमात्रके दुःखको दूर करने वाले, और संसारसमुद्रसे तारने वाले ऐसे तुम्हारे चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ हे महापुरुष ! धर्ममार्गमें रहने वाले जो तुम, रामावतारमें, जिसको दूसरे न त्याग सकें और देवताओंकी भी इच्छा करी हुई राज्यलक्ष्मीको त्याग कर पिता दशरथजीके वचनसे (कैकेयीसे कहे हुए उनके वचनको पालन करनेके निमित्त) वनको गये थे, और जो तुम भक्तवत्सलताके कारण सीताके इच्छा करे हुए और मायासे सुवर्णके हरिणका रूप धारण करनेवाले मारीच राक्षसके पीछे दौड़े थे, तिन श्रीरामरूपी तुम भगवान्‌के चरणकमणको नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तिस तिस युगमें योग्य नामरूपोंसे चार प्रकारका पुरुषार्थ देनेवाले भगवान् श्रीहरिका, हरएक युगमें भगवान् आराधन करते हैं ॥ ३५ ॥ परन्तु गुण जाननेवाले और सारग्राही पुरुष, चारों युगोंमें कलियुगकी ही प्रशंसा करते हैं क्योंकि-सत्ययुगमें ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञ करनेसे और द्वापरमें पूजन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब फल जिस कलियुगमें केवल नामसंकीर्त्तनसे ही प्राप्त होजाता है ॥ ३६ ॥ इससे इस संसारमें भ्रमनेवाले देहधारियोंको, कलियुगमें नामसंकीर्त्तनकी अपेक्षा दूसरा उत्तम कोई भी लाभ (पुरुषार्थोंका साधन) नहीं है, क्योंकि-जिस नामसंकीर्त्तनसे प्राणीको मुक्तिरूप शान्ति प्राप्त होती है और संसारका नाश होता है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! सत्ययुग आदिमेंकी प्रजा, हमारा कलियुगमें जन्म हो, ऐसी इच्छा करती हैं, क्योंकि-कलियुगमें मनुष्य निःसन्देह नारायणपरायण होंगे तब हम भी ऐसे ही होयँ, ऐसा उनका अभिप्राय होता है ३८ हे महाराज ! कलियुगमें किन्हीं किन्हीं देशोंमें तिसमें विशेष करके द्रविड़देशोंमें भगवद्भक्त उत्पन्न होंगे, यदि कहो कि-वह द्रविड़देश कौनसे हैं तो-जहाँ ताम्रपर्णी नदी है, तैसे ही कृतमाला, पयस्विनी, परमपवित्र कावेरी और महानदी प्रतीची, यह नदियें हैं वह द्रविड़ देश हैं हे राजन् ! जो मनुष्य उन ताम्रपर्णी आदि नदियोंका जल पीते हैं वह प्रायः निर्मलचित्त होकर

यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तुम् ॥ ४१ ॥ स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः। विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद् धुनोति सर्वं हृदि संनिविष्टः ॥ ४२ ॥ नारद उवाच। धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः। जायंतेयान्मुनीन् प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥ ४३ ॥ ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः। राजा धर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥४४॥ त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवताञ्छ्रुतान्। आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यसे परम् ॥ ४५ ॥ युवयोः खलु दंपत्योर्यशसापूरितं जगत्। पुत्रतामगमद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥ दर्शनालिंगनालापैः शयनासनभोजनैः। आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः॥४७ वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौंड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः। ध्यायंत आ-

वासुदेव भगवान्के परमभक्त होते हैं॥ ३९ ॥ ४० ॥ अब भक्तकी कृतकृत्यताका वर्णन करते हैं कि–हे राजन्! देवता, ऋषि, प्राणी, कुटुम्बी, मनुष्य और पितरों का, जैसे अभक्त पुरुष, ऋणी और किंकर (उनके निमित्त पञ्चमहायज्ञ आदि करने वाला] होता है, तैसे ही जो सकल कार्योंका अथवा भेददृष्टियोंका त्याग करके शरण जानेके योग्य मुक्तिदाता भगवान्की सर्वभावसे शरण गया है वह देवादिकों का ऋणी वा किंकर नहीं होता है अर्थात् उसको पञ्चमहायज्ञ आदि करनेकी आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि–वह सब कृत्य भक्तिसे ही हुए होजाते हैं ।४१। और यम आदि सकल देवताओंके नियंता श्रीहरि ही अपनेसे अन्य देवताओंके ऊपर और शरीरके ऊपर भी प्रेम न रखकर, अनन्यभावसे अपने चरणतलका ध्यान पूजन आदिके द्वारा सेवन करनेवाले प्रिय भक्तके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होकर, उसके हाथसे यदि कदाचित् प्रमादादि करके पाप बन जाय तो यह सब ही पाप तत्काल नष्ट कर देते हैं अर्थात् भगवद्भक्तोंको प्रमादसे होनेवाले भी पापको दूर करनेके निमित्त प्रायश्चित्त करनेकी आवश्यकता नहीं होती है ।॥४२॥ नारदजी कहते हैं कि—हे वसुदेवजी! इस प्रकार उपाध्याय सहित वह राजा निमि, भागवतधर्मोंको सुनकर प्रसन्न हुए और उन्होंने जयन्तीके पुत्र तिन नौ योगीश्वरोंकी पूजा करी ॥ ४३ ॥ तदनन्तर सब लोगोंके देखते हुए, वह कवि हरि आदि सिद्धयोगी अन्तर्धानको प्राप्त हुए, तदनन्तर वह राजा निमि, भागवतधर्मोंको आचरण करके परमगतिको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ हे महाभाग वसुदेवजी! तुम भी मुझसे सुने हुए इन भागवतधर्मोंका श्रद्धापूर्वक आचरण करोगे तो निःसंग होकर परमपदको प्राप्त होओगे॥४५॥यह तो एक शास्त्रकी रीति, मैंने तुम दोनोंसे कही है परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो भगवान् श्रीहरि जो तुम्हारे पुत्ररूप को प्राप्त हुए हैं तिससे तुम दोनों स्त्री–पुरुष कृतार्थ हो और तुम्हारे यशसे यह जगत् भर गया है ॥४६॥ और दर्शन, आलिंगन, भाषण, शयन,आसन और भोजन के द्वारा श्रीकृष्णजीमें पुत्रभावका स्नेह करनेवाले तुम दोनोंका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है इस कारण औरोंकी समान तुम्हें भागवतधर्म आचरण करनेकी आवश्यकता नहीं है तुम्हारे पुत्रोंको लालन करनेसे ही भागवतधर्मोंका सर्वस्व सिद्ध होगया

कृष्णधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥४८॥ माऽपत्यबुद्धिमकृथाः कृष्णे सर्वात्मनीश्वरे । मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥४९॥ भूभारासुरराजन्यहंतवे गुप्तये सताम् । अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥ श्रीशुक उवाच । एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः । देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥ ५१ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः । स विधूयेह शमलं ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥ ५२ ॥

इति श्रीमहाभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच । अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् । भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥१॥ इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ । ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥२॥गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः ।

है ॥४७॥ सोने बैठने आदिके विषैं वैरभाव करके भी जिन भगवान्‌का ध्यान करनेवाले शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व आदि राजे, उनकी गति, विलास और कटाक्षोंके अवलोकन आदि करके उनके विषैं बुद्धिका लय होनेके कारण उनकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त हुए हैं फिर जिनकी बुद्धि स्नेहसे तदाकार हुई है उनकी सायुज्यमुक्ति होयगी इसका तो कहना ही क्या ? ॥४८॥ अब पुत्र स्नेहसे यदि मोक्ष होती है तो सब ही पुत्रवान् लोक क्यों नहीं मुक्त होजाते हैं ? ऐसा कहो तो-हे वसुदेवजी ! सर्वात्मा, ईश्वर, सबकी अपेक्षा पर और अविनाशी हैं परंतु मायाके द्वारा मनुष्यनाट्यको स्वीकार करके गुप्त ऐश्वर्यवाले तिन श्रीकृष्णभगवानके विषैं तुम 'यह मेरा पुत्र है' ऐसी बुद्धि न रक्खो ॥ ४९ ॥ पृथ्वीके भारभूत दैत्यरूप राजाओंको मारनेके निमित्त और साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त भूमि पर अवतार धारनेवाले तिन भगवान्‌की, कंसवधादिरूप कीर्त्ति, उनकी महिमाकी ओरको देखने पर यद्यपि आश्चर्यकारक नहीं है तथापि मनुष्योंको मुक्ति प्राप्त होनेके निमित्त इस लोकमें वह आश्चर्यरूपसे वर्णन करी है ॥५०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! यह आख्यान सुनकर महाभाग्यवान् वसुदेवजी और महाभाग्यवती देवकी यह दोनों, अति विस्मित हुए और उन्होंने अपना पुत्रबुद्धिरूप मोह त्याग दिया ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य, एकाग्रचित्त होकर इस पवित्र इतिहासको मनमें धारण करता है वह इस ही देहमें मोहका त्याग करके ब्रह्मभावको पानेके योग्य होता है५२

इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

अब आगे अतिविस्तारसे आत्मविद्याका निरूपण करनेके निमित्त श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! तदनन्तर सनकादिक पुत्र, देवता और मरीचि आदि प्रजापति इनसे घिरे हुए ब्रह्माजी, और भूतगणोंसे घिरे हुए भूत भविष्य प्राणियोंके स्वामी श्रीशंकर, यह दोनों श्रीकृष्णजीका दर्शन करनेके निमित्त द्वारकामें पहुँचे ॥ १ ॥ तैसे ही मरुत् नामक देवगणोंसहित भगवान् इन्द्र, द्वादश आदित्य, अष्टवसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अङ्गिरस्, एकादशरुद्र, तेरह विश्वेदेव, साध्यदेवता, ॥ २ ॥ गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर

ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिंनराः ॥ ३ ॥ द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः । वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः । यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥ ४ ॥ तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः । व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् । गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः । नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः । यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥ ७ ॥ त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः । नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ८ शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपःक्रियाभिः । सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ॥९॥ स्यान्न

विद्याधर और किंनर यह सब ही, भगवान्‌ने, जिस स्वरूपसे मनुष्यलोकके मनको आनन्दित करके लोकोंमें, सब लोकोंके मनका मल दूर करनेवाला यश फैलाया था, उस ही अतिसुन्दर कृष्णस्वरूपका दर्शन करनेके निमित्त द्वारकामें पहुँचे॥३॥४॥ उन्होंने बड़ी २ सम्पदाओंसे भरी तिस द्वारकामें, जिनके नेत्र तृप्त नहीं हुए हैं ऐसे होकर, अतिसुन्दरस्वरूप श्रीकृष्णका दर्शन करा ॥ ५ ॥ और स्वर्गके बागोंमेंके पुष्पोंसे श्रीकृष्णजीको ढक देनेवाले वह देवता, शृंखलाबद्ध आदि विचित्रपद और मनोहर अर्थवाली वाणियोंसे तिन जगदीश्वर भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवताओंने कहा कि-हे नाथ ! कर्मरूप दृढ़पाशसे मुक्त होनेकी इच्छा करनेवाले पुरुष, अपने अंतःकरणमें जिसका ध्यान करते हैं परन्तु जिसको देख नहीं पाते हैं तिस तुम्हारे चरणकमलको हम बुद्धि, इन्द्रियें, प्राण, मन और वचनके द्वारा साष्टांग नमस्कार करते हैं, यह हमारा बड़ा भाग्य है ॥७॥ अब मुझे भी इस लोकमें और परलोकमें सुख देनेवाले कर्म करने पड़ते हैं, फिर कर्मपाशसे मुक्त होनेकी इच्छा करनेवाले पुरुष, मेरे चरणारविन्दका ध्यान क्यों करते हैं ? ऐसा कहो तो—हे अजित ! इस अवतारमें यह अतिअल्प कर्म तो रहें परन्तु मायाके गुणोंमें नियन्ता होकर रहनेवाले तुम, जिसकी मनसे भी तर्कना नहीं होसके ऐसे महत्तत्त्व आदि सकल प्रपञ्चको, अपने स्वरूपमें त्रिगुणमयी माया से उत्पन्न करते हो, पालन करते हो और संहार भी करते हो तथापि उन कर्मोंसे तुम लिप्त नहीं होते हो क्योंकि—तुम रागद्वेषादि रहित और आवरण शून्य आत्मसुखमें रमे रहते हो इस कारण तुम कर्म करते हुए भी आत्माराम परमेश्वर हो, इस कारणसे मुमुक्षु पुरुष तुम्हारे चरणका चिन्तवन करते हैं॥८॥ अब मुझ आत्मारामको कर्म करके क्या करना है ऐसा कहो तो-हे स्तुतियोग्य उत्तम ! सत्त्वगुणकी वृद्धिकी प्राप्ति करनेवाले पुरुषोंको तुम्हारे यशको सुननेसे बढ़ी हुई श्रद्धा करके जैसी शुद्धि प्राप्त होती है तैसी शुद्धि, विषयाभिलाषी पुरुषोंको उपासना, शास्त्रका सुनना, वेदका पढ़ना, दान, तप और कर्मोंके द्वारा नहीं प्राप्त होती है इस कारण आत्माराम भी तुम्हारे जो कर्मोंका आचरण सो अपने (तुम्हारे) परमपवित्र

स्तवांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः । यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ॥ १० ॥ यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा । अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥ ११ ॥ पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः । यः सुप्रणीतममुयाऽर्हणमाददन्नो भूयात्सदांघ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥ १२ ॥ केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः । स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥ १३ ॥ नस्योत गाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्य-

यशको फैलानेके निमित्त है ॥ ९ ॥ सो तुम्हारे यशकी श्रद्धा ही शुद्धिका कारण है, हमने तो तुम्हारे चरणका दर्शन करा है इस कारण जिस तुम्हारे चरणका मुमुक्षु पुरुषोंने मोक्षके निमित्त प्रेमसे द्रवीभूत हुए अपने हृदयमें ध्यान करा है और जिसका भक्तोंने, तुम्हारी समान ऐश्वर्य प्राप्त होनेके निमित्त वासुदेव आदि व्यूहके विषें पूजन करा है तिनमेंसे कितने ही आत्मज्ञानी वीर पुरुषोंने स्वर्गका उल्लंघन करके वैकुण्ठको जानेके निमित्त त्रिकाल पूजन करा है वह तुम्हारा चरण हमारी विषयवासनाओंको भस्म करने वाले अग्निसमान होय ॥ १० ॥ हे ईश्वर ! जिसका यज्ञ करने वाला पुरुष, हाथ जोड़ कर और बसमें हवनकी सामग्री लेकर, वेदमें कहे हुए इन्द्रादि देवतारूपसे आहवनीय आदि अग्नियोंमें चिन्तवन करते हैं, जिसका योगीजन, मनको वशमें करनारूप योगके द्वारा अणिमादि सिद्धि प्राप्त होनेकी इच्छासे चिन्तवन करते हैं और जिसका परमभगवद्भक्त सब प्रकारसे पूजन करते हैं वह तुम्हारा चरण हमारी विषयवासनाओंको भस्म करने वाला हो ॥११॥ इन कहे हुए छः प्रकारके सेवकोंमें परम भागवतोंके ऊपर, तुम्हारी लक्ष्मीसे भी अधिक प्रीति है ऐसी स्तुति करते हैं कि-हे प्रभो ! 'मैं जहाँ रहती हूँ तहाँ ही यह वनमाला पर्युषित (बासी अर्थात् दूसरे दिन कुमलाइ हुई) होने पर भी रहती है' ऐसे तिसके रहनेको सहन न करने वाली भगवती लक्ष्मी, यद्यपि सौतके समान तिस वनमालासे ईर्षा करती है तथापि यह वनमाला भक्तोंकी अर्पण करी हुई है ऐसी प्रीतिसे तुम, भक्तपुरुषोंकी वनमाला करके करी हुई पूजाको ही उत्तम रीतिसे स्वीकार करते हो, ऐसे तुम्हारा चरण, हमारी अशुभ वासनाओंको निरन्तर भस्म करने वाला हो ॥ १२ ॥ अब, तुम्हारे चरणका, भक्तका पक्षपात करना प्रसिद्ध ही है ऐसा दिखातेहुए प्रार्थना करते हैं कि-हे व्यापक ! हे भगवन् ! जो तुम्हारा चरण, बलि राजाका बन्धन करते समय त्रिलोकीको ग्रहण करनेवाले तीनपग रखनेवाला हुआ, उसके दूसरे चरणके समय सत्यलोक पर्यंत जानेपर वह,खड़ी करीहुई ध्वजा की समान दीखने लगा, इस प्रकार कि-तीनों लोकोंमें संचार करनेवाली जो गङ्गा वही जिसकी पताका है, तैसे ही देवदैत्योंकी सेनाओंको, क्रमसे भय और अभय करने वाले होकर देवताओंको स्वर्ग देनेके विषयमें और असुरोंकी अधोगति करने के विषयमें जो कारण हुआ वह तुम्हारा चरण, भक्ति करने वाले हमारे पापोंको

मानाः। कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥१४॥ अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः। सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥१५॥ त्वत्तः पुमान्समधिगम्य ययाऽस्य वीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः। सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥१६॥ तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान्। अर्थान् जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥१७॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः। पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥१८॥ विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शम-

दूर करो ॥ १३ ॥ अब, युद्धमें देवदैत्य आदि परस्पर जीतते और हारते हैं तहाँ मैं भय और अभय करनेवाला कैसे होता हूँ? ऐसा कहो तो युद्ध करके परस्पर पीड़ा देने वाले जो देहधारी ब्रह्मादिक वह भी, नाकमें नाथ डाले हुए बैलोंकी समान जिन तुम्हारे वशमें हैं, जय पराजय पानेमें स्वाधीन नहीं है, ऐसे प्रकृति पुरुषसे पर और सबके प्रवर्त्तक तुम पुरुषोत्तमका चरण हमारा कल्याण करै ॥१४॥ अब इन का पुरुषोत्तमत्व कहते हैं-हे प्रभो! प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वके नियन्ता होनेके कारण इस जगत्की उत्पत्ति स्थिति और संहारके कारण, उत्तम पुरुष हो, ऐसा श्रुति कहती है,जगतकी उत्पत्ति आदि कालसे होते हैं मुझसे नहीं होते हैं ऐसा कहो तो-सबोंका नाश करनेमें प्रवृत्त होने वाला, गम्भीर वेगवान् और तीन चातुर्मास्यरूप अवयवोंसे युक्त सम्वत्सर नामक जो काल वह भी तुम ही हो ॥ १५ ॥ अब तुम ही जगत्के सृष्टि आदिके कारक हो जो कहा तिसका प्रकार विस्तारके साथ कहते हैं कि-तुमसे पुरुषनामा शक्ति प्राप्त होनेके कारण वह अमोघशक्ति हुआ तदनन्तर उसने मायासे युक्त होकर इस जगत्के बीजभूत महत्तत्त्वको उत्पन्न करा फिर उस महत्तत्त्वने भी उस की मायासे युक्त होकर अपनेमे एकके बाहर दूसरा ऐसे आवरणोंसे युक्त ब्रह्मांडकोश उत्पन्न करा है ॥ १६ ॥ इस कारण ही स्थावरोंके और जङ्गमोंके तुम स्वामी हो, और हे इन्द्रियोंके स्वामिन्! मायासे क्षोभित हुई इंद्रियोंकी वृत्तियों करके प्राप्त करे हुए शब्दादि विषयोंका तुम सेवन करतेहुए भी लिप्त नहीं होते हो, तुमसे दूसरे जो जीव वा योगी हैं वह अपने त्याग करे हुए भी विषयोंके सेवनसे वासनामात्र करके बन्धनको प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ जिन तुम्हारे मनको, सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रियें अपने मन्दहास्यसे शोभायमान कटाक्षों करके सूचित करे हुए अभिप्रायसे मनको हरने वाला जो भ्रूमण्डल तिस करके प्रेरणा करेहुए रतिसम्बन्धी विचारोंसे प्रौढ़ हुए कामदेवके बाणों करके और मोहने वाली कामकलाओं करके चलायमान करनेको समर्थ नहीं हुई इस कारण ही तुम विषयोंका सेवन करते हुए भी अलिप्त हो ॥ १८ ॥ तुम्हारी अमृतसमान कथारूप नदियें और चरणके धोवनके जलकी गंगादिक नदियें, त्रिलोकीमेंके जीवोंके पापों को धोडालनेमें समर्थ हैं इस कारण ही अपनी शुद्धि होनेकी इच्छा करनेवाले वर्णा-

लानि हन्तुम् । आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति १९ बादरायणिरुवाच । इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम् । अभ्यभाषत गोविंदं प्रणम्यांबरमाश्रितः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच । भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो । त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥२१॥ धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया । कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥२२॥ अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् । कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥ २३ ॥ यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ । शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥२४॥ यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम । शरच्छतं व्यतीयाय पंचविंशाधिकं प्रभो ।२५। नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् । कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥ ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे । सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठ किंकरान् ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच । अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर । कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥ २८ ॥ तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् । लोकं

धर्मधर्मी पुरुष, वेदमें वर्णन करी हुई तुम्हारी कीर्त्तिरूप तीर्थका श्रवण कीर्त्तन आदिरूप करके और चरणसे उत्पन्न हुए गंगादि तीर्थका स्नानपानादिरूपसे सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–हे राजन् ! ब्रह्माजीने, शिवजी और देवताओंसहित इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी स्तुति करी, तदनन्तर नमस्कार करके लौट कर जानेके निमित्त आकाशमें खडे होकर श्रीकृष्णजीसे कहा ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने कहा कि—हे सर्वात्मन् प्रभो ! पृथ्वीका भार उतारनेके निमित्त पहिले हमने तुम्हारी प्रार्थना करी थी तैसे ही वह सब कार्य तुमने ठीक कर लिया है २१ सत्यप्रतिज्ञ साधुओंका कल्याण करनेके निमित्त तुमने धर्मकी स्थापना करी है और और दशों दिशाओंमें सब लोकोंके पाप नष्ट करनेवाली अपनी कीर्त्ति फैलाई है२२ यदुवंशमें अवतार लेकर सर्वोत्तम रूप धारण करने वाले तुमने जगत्के हितके निमित्त परमपराक्रमयुक्त कर्म करे हैं ॥ २३ ॥ हे ईश्वर ! जिन तुम्हारे चरित्रोंको सुननेवाले और कीर्त्तन करनेवाले सदाचारवान् मनुष्य, इस कलियुगमें भी संसार कारणरूप अज्ञानको तरजायँगे ॥ २४ ॥ हे प्रभो ! पुरुषोत्तम ! यदुवंशमें अवतार धारण करने वाले तुम्हें एक सौ पच्चीस वर्ष होगये हैं ॥ २५ ॥ हे सर्वाधार ! देवताओंके कार्य करनेमेंसे अब तुम्हें कोई भी कार्य करनेको शेष नहीं रहा है और यह यादवकुल भी ब्राह्मणोंके शापसे नष्ट हुआसा ही होगया है ॥ २६ ॥ इससे हे वैकुण्ठ ! अब यदि तुम्हारी इच्छा होय तो तुम अपने वैकुण्ठलोकको गमन करो और तुम्हारे किंकररूप हम लोकपालोंकी लोकों सहित रक्षा करो अर्थात् वैकुंठको जानेमें हम लोकपालोंके घर पधारकर हमारी पूजाको ग्रहणकरके हमें कृतार्थ करो२७ ऐसी प्रार्थना सुन कर श्रीभगवान् कहने लगे कि—हे देवेश्वर ब्रह्मदेव ! तुमने जो कहा यह सब मैंने पहिले ही मनमें विचार लिया है,तुम्हारा सब कार्य मैंने करलिया है और भूमिका भार भी उतार कर दूर कर दिया है ॥ २८ ॥ और वीरता, शूरता तथा लक्ष्मीसे उद्धत होकर लोकोंका नाश करनेकी इच्छा करनेवाला यह यादवोंका

जिघृक्षद्दृप्तं मे वेलयेव महार्णवः ॥ २९ ॥ यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् । गन्तास्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनंक्ष्यति ॥ ३० ॥ इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापजः । यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् । सह देवगणैर्देवः स्वधाम समपद्यत३२ अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् । विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ॥३३॥ श्रीभगवानुवाच । एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः । शापश्च नः कुलस्यासीद् ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ॥ ३४ ॥ न वस्तव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः । प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ॥ ३५ ॥ यत्र स्नात्वा दक्षशापाद् गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् । विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ॥३६॥ वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् । भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवतान्धसा ॥ ३७ ॥ तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महांति वै । वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं भगवतादिष्टा यादवाः

कुल भी, जैसे मर्यादा समुद्रको रोकती है तैसे ब्राह्मणोंके शापसे रोक दिया है २९ घमण्डी हुए यादवोंके बहुत बढ़े हुए कुलका संहार करे विना यदि मैं निजधामको चला जाऊँगा तो मर्यादाको उल्लङ्घन करनेवाले इस यादवकुलसे ही लोकोंका नाश होजायगा ॥ ३० ॥ हे पवित्र ब्रह्माजी ! अब ही ब्राह्मणोंका शाप रच कर इस कुलके नाशका प्रारम्भ करा है, इससे इसका अंत होने पर शीघ्र ही मैं वैकुंठको जाऊँगा तब तुम्हारे लोकमें भी आऊँगा ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजन् ! भगवान्‌के इस प्रकार कहने पर ब्रह्माजीने, उन श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके देवगणोंके साथ सत्यलोकको गमन करा ॥ ३२ ॥ तदनन्तर द्वारकामें बड़े बड़े उत्पात होने लगे, उनको देख कर एक स्थान पर इकट्ठे हुए बूढे २ यादवोंसे भगवान्‌ने कहा ॥ ३३ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि | हे वृद्धो ! इस द्वारकामें जिधर तिधर यह बड़े बडे उत्पात होने लगे हैं और हमारे कुलको ब्राह्मणोंसे बड़ा दुस्तर शाप भी प्राप्त हुआ है ३४ सो हे श्रेष्ठ यादवों ! जीवित रहनेकी इच्छा करने वाले हमारा अब इस द्वारकामें रहनेका काम नहीं है, इससे अधिक विलम्ब न करके आज ही पुण्यकारी प्रभास + क्षेत्रमें चलें ॥ ३५ ॥ जहाँ दक्षके शाप करके क्षयरोगसे पीड़ित हुए चंद्रमाने, स्नान करने पर तत्काल रोगके दुःखसे छुटकारा पाया और फिर अपनी कलाओंकी वृद्धिको प्राप्त हुआ ३६ हम भी तहाँ स्नान करके देवताओंका और पितरोंका तर्पण करके, मधुरता आदि अनेकों गुणोंसे युक्त अन्न करके बड़े२ विद्वान् ब्राह्मणोंको भोजन करावेंगे और उन सत्पात्र ब्राह्मणोंको, अनेक फल देनेवाले बड़े २ दान श्रद्धाके साथ देकर, जैसे नौकाके द्वारा समुद्रको तरजाते हैं तैसे ही सकल दुःखों

+ प्रभास क्षेत्रमें चलें ऐसा कहनेका श्रीकृष्णजीका अभिप्राय था कि-यादव देवताओंके अंश हैं वह अपने २ अधिकारों पर ही जानेके योग्य हैं, तत्काल मोक्ष पानेके योग्य नहीं हैं, द्वारकामें शरीर छोड़ने पर मुक्त होजायँगे इस कारण इनको कल्याणरूप फल देनेवाले प्रभास क्षेत्रमें ही लेजाना चाहिये ।

कुलनन्दन । गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ॥ ३९ ॥ तन्निरीक्ष्योद्धवो राजञ्छ्रुत्वा भगवतोदितम् । दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः ॥ ४० ॥ विविक्त उपसंगम्य जगतामीश्वरेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत ४१ उद्धव उवाच । देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन । संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान । विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ॥ ४२ ॥ नाहं तवांघ्रिकमलं क्षणार्द्धमपि केशव । त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥४३॥ तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम् । कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजन्त्यन्यस्पृहां जनः ॥ ४४ ॥ शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाऽशनादिषु । कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥ ४५ ॥ त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलंकारचर्चिताः । उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेम हि ॥ ४६ ॥ वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमंथिनः । ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ ४७ ॥ वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्म-

को तर जायँगे ३७॥३८ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌के आज्ञा करेहुए वह यादव, तिस तीर्थको जानेकी इच्छासे अपने२ रथोंमें घोड़े जोड़ने लगे ॥ ३९ ॥ यह देखकर, भगवान्‌का भाषण सुनकर और भयंकर उत्पात देखकर निरन्तर भगवान्‌के आज्ञाकारी होकर रहनेवाले उद्धवजीने, जगत्‌के ईश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णजीसे एकान्तमें मिलकर उनके चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम करा और हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे देव-देव ! हे ईश्वर ! हे योगेश्वर ! हे पुण्यश्रवणकीर्त्तन ! तुम निःसन्देह इस कुलका संहार करके मनुष्यलोकका त्याग करने वाले हो, क्योंकि-तुमने ईश्वर और समर्थ होकर भी ब्राह्मणोंके शापको दूर करनेका उपाय नहीं करा ॥ ४२ ॥ हे नाथ ! हे केशव ! मैं तुम्हारे चरणकमलका आधे क्षणको भी त्याग नहीं कर सकता, इस कारण तुम मुझे भी निजधामको ले चलो ॥४३॥ हे कृष्ण ! तुम्हारी क्रीड़ाके चरित्र मनुष्योंको परममंगलरूप और कर्णों को अमृतकी समान मधुर लगनेवाले हैं इस कारण उनका आस्वादन (श्रवण) करके भी जब मनुष्य, धन, पुत्र, स्त्री आदिकोंमेंकी आसक्तिको छोड़ देते हैं तो जिन हमने सोना, बैठना, फिरना, रहना स्नान करना, खेलना, और भोजन करना, इत्यादिकोंमें तुम्हारी सेवा करी है ऐसे हम, परमप्रिय, आत्मस्वरूप तुम्हें त्यागनेको कैसे समर्थ होसकते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ मैं मायाके भयसे यह प्रार्थना करता हूँ ऐसा नहीं है किन्तु तुम्हारा वियोग सहन नहीं होसकेगा, इस कारण कहता हूँ, तुम्हारे उपभोग करे हुए माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण धारण करनेवाले और उच्छिष्ट (तुम्हें अर्पण करने पर, यह मुझे पहुँच गया, अब तुम इसको भोजन करो ऐसा तुम्हारे कहे हुए अन्न आदि) का भोजन करनेवाले हम दास, तुम्हारी मायाको जीत रहे हैं इसमें संदेह नहीं है।४६। दिगंबरपनेसे फिरनेवाले, इन्द्रियोंको वशमें रखनेका परिश्रम करनेवाले, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले, सकल विषयभोगोंको त्यागनेवाले, शान्त और निर्मल जो ऋषि हैं वह बड़े कष्टसे तुम्हारे ब्रह्म नामक स्थानको पाते हैं ॥ ४७ ॥ और हे महा-

वर्त्मसु । त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ॥ ४८ ॥ स्मरन्तः कीर्तयंतस्ते कृतानि गदितानि च । गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच । एवं विज्ञापितो राजन् भगवान्देवकीसुतः । एकांतिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ॥ ५० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच । यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे । ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकांक्षिणः ॥१॥ मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः । तदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणाऽर्थितः ॥ २ ॥ कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योऽन्यविग्रहात् । समुद्रः सप्तमेह्न्येतां पुरीं च प्लावयिष्यति ॥ ३ ॥ यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमंगलः । भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥४॥ न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले । जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ॥ ५ ॥ त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबंधुषु । मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ॥६॥ यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः । नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि

योगिन् ! हम तो इस लोकमें कर्ममार्गके विषैं भटकते हुए भी तुम्हारे करे हुए कर्म तुम्हारे भाषण, और तुम्हारी गति, मन्दहास्य, अवलोकन, चोल आदि जो कुछ मनुष्यलोकका अनुकरण हुआ है तिसका अनुकरण और कीर्त्तन करते हुए तुम्हारे भक्तोंके साथ होनेवाले कथाश्रवण आदि करके दुस्तर भी संसारको अनायासमें तर जायँगे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार प्रार्थना करे हुए वह देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी,एकान्तभक्त, प्रिय और सेवक तिन उद्धवजीसे कहने लगे५० इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त

श्रीभगवान्ने कहा कि-हे महाभाग उद्धवजी ! तुमने जो मुझसे कहा सो यदुकुलका संहार आदि कार्य मेरे मनमें करनेका है, क्योंकि-ब्रह्माजी, शंकर, और इन्द्रादिक लोकपाल यह सब मेरे वैकुण्ठवासकी इच्छा कर रहे हैं ॥ १ ॥ ब्रह्माजीके प्रार्थना करने पर मैं बलरामसहित इस मनुष्यलोकमें जिस कार्यके निमित्त प्रकट हुआ था वह सब देवताओंका सब कार्य ठीक होगया है २ जो यह भूमिका भाररूप शेष रहा हुआ यादवकुल है सो भी ब्राह्मणोंकी शापाग्निसे भस्मसा होकर परस्पर कलह करके नाशको प्राप्त होजायगा और इस नगरीको आजसे सातवें दिन समुद्र डुबालेगा इस कारण तुम सकल संगोंका त्याग करके आत्मनिष्ठ हो जाओ ॥ ३ ॥ हे साधो ! यह भूलोक जिस समय मुझसे त्यागा हुआ होयगा उस समय नष्टमंगल होजायगा और इसके ऊपर कलियुग भी अपना प्रभाव बैठालेगा ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! मेरे त्यागे हुए इस भूतल पर तुम भी रहो, क्योंकि-आगेका कलियुगमें लोकोंकी अधर्म पर प्रीति होयगी ॥ ५ ॥ तब फिर क्या करना चाहिये ? यदि ऐसा कहो तो-तुम स्वजन और बान्धवोंके स्नेहको त्यागकर मुझमें उत्तम प्रकारसे मन लगाकर सर्वत्र समदृष्टि रक्खो और भूमि पर विचरो६अब गुण दोषोंसे युक्त लोकोंमें समदृष्टि कैसे रक्खी जाय? ऐसा कहो तो-मन,वाणी,चक्षु और

गायामनोमयम् ॥७॥ पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् । कर्माकर्म विकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ॥८॥ तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् । आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥ ९ ॥ ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूतः शरीरिणाम् । आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥१०॥ दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते । गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथाऽर्भकः ॥ ११ ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः । पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच । इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप । उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ॥१३॥ उद्धव उवाच । योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव । निःश्रेय-

कर्ण आदि इंद्रियोंके द्वारा जो कुछ ग्रहण करा जाता है वह सब मनकी कल्पनामात्र होनेके कारण मायाकल्पित और क्षणभरमें नाशवे । प्राप्त होनेवाला है क्योंकि विक्षिप्तचित्त हुए पुरुषको, भेदविषयक जो भ्रम होता है वह उसमें गुणदोषबुद्धि उत्पन्न करनेवाला है, इस भेदके सत्य न होनेके कारण विचारवान् पुरुष सर्वत्र समदृष्टि रखते हैं, अब वेदने ही विधिनिषेधोंके द्वारा 'भेद सत्य है' ऐसा कहा है ऐसा कदाचित् ध्यानमें आवे तथापि विचार करके देखने पर; जिसकी बुद्धिमें गुणदोष हैं उसको ही वेदने, यह विहितकर्म है, यह अकर्म है और यह निषिद्धकर्म है ऐसा कहा है, ज्ञानीको नहीं कहा है, क्योंकि ज्ञानी निरन्तर सकल जगत्को अभेदभावसे देखता है ॥ ८ ॥ इस कारण ही इन्द्रियोंके समूहको, और मनको वशमें करके इस जगत्को अपने जीवात्माके विषें देखो और जीवात्माको मुझ सर्वात्माके विषें अभेदरूपसे व्याप रहा है ऐसा देखो ॥ ९ ॥ अब ऐसा देखकर, एकाग्रचित्तपनेसे कर्म न करने पर देवादिक विघ्न करेंगे ऐसा कहो तो-वेदके तात्पर्यके निश्चय और उसके अर्थोंके अनुभवसे सन्तुष्ट हो, तब सकल देवतादिकोंमें आत्मरूप हुए तुम, विघ्नोंसे तिरस्कार नहीं पाओगे, इसका तात्पर्य यह है कि-आत्माका अनुभव होने पर्यन्त वर्णाश्रमधर्मों के अनुसार कर्म करे, तदनन्तर सबोंके आत्मरूप होजानेके कारण कोई भी विघ्न नहीं कर सकता ॥ १० ॥ इससे ही ज्ञानी यथेष्ट आचरण करता है ऐसा न समझे, क्योंकि-जैसे बालक संकल्पविकल्पोंसे रहित होता हुआ स्वाभाविक इच्छासे ही किसी हस्त चलाना आदि कर्मको करता है और स्वाभाविक ही रोना आदि कर्म नहीं करता है तैसे ही गुणदोषबुद्धिसे रहित हुआ ज्ञानी, पूर्वके संस्कारवश अनकों निषिद्धकर्मोंसे निवृत्त ही होता है परन्तु इस निषिद्धकर्मको न करना चाहिये ऐसी दोषबुद्धिसे निवृत्त नहीं होता है, तैसे ही वेदविहित ही कर्म करता है परन्तु यह विहित है करना ही चाहिये ऐसी गुणबुद्धिसे नहीं करता है ॥११॥ इस प्रकार वेदके तात्पर्यका यथार्थ निश्चय और वेदार्थका अनुभव करनेवाला, सकल प्राणियोंका मित्र और शान्त हुआ पुरुष, सकलजगत् मेरा स्वरूप ही है ऐसा देखकर फिर जन्ममरणरूप संसारको नहीं पाता है १२ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इसप्रकार भगवान्के आज्ञा करने पर वह परमभगवद्भक्त उद्धवजी तत्त्वको जाननेकी इच्छा करके फिर उन श्रीकृष्णजीको नमस्कार करके कहने लगे १३

साय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ॥१४॥ त्यागोऽयं दुष्करो भूमन् कामानां विषयात्मभिः । सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ॥ १५ ॥ सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबंधे । तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥ १६ ॥ सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे । सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावाः ॥ १७ ॥ तस्माद्भवंतमनवद्यमनंतपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् । निर्विण्णधीरहमुह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच । प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः । समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥ १९ ॥ आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशे-

उद्धवजीने कहा कि—हे योगेश्वर ! हे योगफलके निधिरूप ! हे योगस्वरूप ! तुमने जो यह मेरे कल्याणके निमित्त संन्यासरूप त्यागका लक्षण कहा है सो केवल अपनी महिमाके महत्त्वके अनुसार कहा है मेरे अधिकारको देखकर नहीं कहा है ॥ १४ ॥ क्योंकि—हे व्यापक सर्वात्मन् ! यह विषयोंका त्याग, विषयोंमें आसक्त पुरुषोंसे होना बड़ी कठिन है, तिसमें जो तुम्हारे भक्त नहीं हैं उनको तो अत्यन्त ही कठिन है, ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १५ ॥ तिस कारण जिससे तुमने त्याग आदि कहा ऐसा मैं, मूढबुद्धि होकर तुम्हारी मायासे रचे हुए पुत्रकलत्रादि सहित देहके विषैं मैं और मेरा इस प्रकारकी बुद्धिसे निमग्न होरहा हूँ, इससे हे भगवन् ! जो मुझसे संक्षेपसे कहा है, उसको जैसे मैं सुखसे साधसकूँ तैसे अपने सेवक मेरे अर्थ विस्तारके साथ कहिये ॥ १६ ॥ मैंने संक्षेपसे कहा है इसका विस्तार तुम दूसरेसे बूझो ? ऐसा कहो तो–हे ईश्वर! सत्य और स्वप्रकाश आत्माका मुझसे वर्णन करनेवाला तुम्हारे सिवाय देवताओंमें भी नहीं दीखता है, क्योंकि यह ब्रह्मादिक सब ही देहधारी होनेके कारण तुम्हारी मायासे मोहितबुद्धि होकर विषयोंमें सत्यताकी बुद्धि रखनेवाले हैं ॥ १७ ॥ और कितने ही लोक तो दुष्ट स्वभाव वाले हैं कितने ही सेवा करनेपर भी फल मिलनेके समय नाशको प्राप्त होजाते हैं, कितने ही अज्ञानी कितने ही रक्षा करनेमें असमर्थ और कितने ही स्थानभ्रष्ट हैं इससे निर्दोष अविनाशी, सर्वज्ञ, रक्षा करनेमें समर्थ और काल आदिसे बाधा न पानेवाले वैकुण्ठलोकमें रहनेवाले तुम नरसखा नारायणको, आध्यात्मिक आदि अनेकों तापों से तप्त होनेके कारण विषयोंके सेवनसे घबड़ाया हुआ मैं शरण आया हूँ ॥ १८ ॥ इस प्रकार उपदेश करे हुए तत्त्वको असंभावना विपरीतभावनाओंके द्वारा ग्रहण करनेमें असमर्थ हुए तिन उद्धवजीसे, तिन असंभावना आदिकोंके दूर होनेके निमित्त, गुरुके उपदेशके विना भी मनमें ही विचार करने पर अन्वयव्यतिरेकसे तत्त्वसाक्षात्कार होता है ऐसा दिखानेके निमित्त श्रीभगवान्ने कहा कि–हे उद्धव जी ! प्रायः इस लोकमें लोकतत्त्वकी परीक्षा करनेवाले जो पुरुष हैं वह आप ही अपना विषयवासनाओंसे उद्धार कर लेते हैं, गुरुके उपदेशकी कुछ अपेक्षा नहीं रखते हैं १९पशु आदि शरीरोंमें भी अपना हित अहित विचारनेवाला गुरु आप ही

यनः । यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविंदते ॥२०॥ पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः । आविस्तरां प्रपश्यंति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ॥२१॥ एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथाऽपदः । बह्वयः संति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ २२ ॥ अत्र मां मार्गयंत्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् । गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः २३ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः॥२४॥ अवधूतं द्विजं कंचिच्चरंतमकुतोभयम् । कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ २५ ॥ यदुरुवाच । कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा । यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ॥२६॥ प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः। हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ॥ २७ ॥ त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगो-

---

है, तिसमें मनुष्य शरीरके विषैं तो विशेष करके है, क्योंकि-इस पुरुषको मनुष्य शरीरमें प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा अपना स्वरूप जानकर कल्याण कर लेना सुलभ होता है ॥ २० ॥ तिसमें प्रत्यक्ष इस प्रकार है कि-इस पुरुष जन्ममें सांख्यशास्त्र और योगशास्त्रमें प्रवीण विचारवान् पुरुष,ज्ञान ऐश्वर्य आदि सकल शक्तियों से परिपूर्ण मुझ परमात्माको अत्यन्त सुलभ रीतिसे जान लेते हैं ॥ २१ ॥ एक, दो, तीन वा चार चरणोंके, बहुतसे चरणोंके,अथवा चरणोंके विना ही उत्पन्न करेहुए बहुतसे शरीर हैं उनमें मुझे मनुष्य शरीर परम प्रिय लगता है ॥ २२ ॥ अब अनुमान इस प्रकार है कि- इस मनुष्य शरीरमें ही सावधान रहने वाले पुरुष, चक्षु इन्द्रियसे ग्रहण करनेको अशक्य और अहंकार आदिकोंमेंसे निराले मुझ ईश्वरकी यथार्थ रीतिसे खोज करके उसको प्राप्त कर लेते हैं,वह खोजनेकी रीति इसप्रकार है कि-बुद्धि आदि जड़ पदार्थोंका प्रकाश एक स्वप्रकाश वस्तुके विना नहीं होसकता इस कारण सकल दृश्य पदार्थोंको प्रकाश करनेवाली जो एक वस्तु है वही आत्मा है, दूसरा अनुमान इस प्रकार है कि-बुद्धि आदि पदार्थ एक स्वतन्त्रकर्त्ता से प्रेरित हैं क्योंकि-वह साधनरूप हैं, जो जो साधनरूप पदार्थ होते हैं वह वह 'कुल्हाड़ी आदि पदार्थोंकी समान' दूसरे स्वाधीनकर्त्ताके प्रेरणा करे हुए होते हैं, ऐसा अनुमान करके सावधान हुए पुरुष, मेरी खोज करके मेरी प्राप्ति कर लेते हैं ॥ २३ ॥ अब अन्वय व्यतिरेकसे असम्भावनाकी निवृत्तिके विषयमें इतिहास कहते हैं कि—हे उद्धवजी ! इस आप ही अपना उद्धार करनेके विषयमें अवधूत (दत्तात्रेय) का और परमतेजस्वी राजा यदुका सम्वादरूप पुरातन इतिहास वृद्ध पुरुष दृष्टान्तरूपसे वर्णन करते हैं वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ २४ ॥ धर्मको जानने वाले राजा यदुने, उवटन आदि संस्कारसे रहित, तरुण, निर्भय फिरने वाले और विद्वान् किसी एक ब्राह्मणको देख कर उससे प्रश्न करा ॥ २५ ॥ यदुने कहा कि—हे ब्राह्मण ! इन्द्रियोंकी प्रीतिके निमित्त कर्म न करने वाले तुम्हें यह परमनिपुण, लोकविलक्षण बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई है ? जिस बुद्धिको पाकर तुम विद्वान् होकर भी लोकमें बालककी समान (अज्ञानीकी समान) विचरते हो ॥ २६ ॥ प्रायः धर्म, अर्थ, काम और आत्मविचारके विषयमें सब ही मनुष्य प्रवृत्त होते हैं, तिनमें भी

ऽमृतभाषणः । न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥२८॥ जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना । न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भःस्थ इव द्विपः ॥ २९ ॥ त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् । ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ३० श्रीभगवानुवाच । यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा । पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं नृपम् ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण उवाच । सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः । यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥ ३२ ॥ पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः । कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद्गजः ॥ ३३ ॥ मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः । कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥३४॥ एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः । शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ३५ यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज । तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥ ३६ ॥ भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः । तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं

आयु, यश अथवा लक्ष्मी प्राप्त होनेकी कामनासे ही वह प्रवृत्त होते हैं ॥ २७ ॥ और तुम तो समर्थ, ज्ञानी, चतुर, सुन्दर और अमृतकी समान मधुर बोलने वाले होकर भी जड़, उन्मत्त और पिशाचकी समान कोई भी कर्म नहीं करते हो और करनेकी इच्छा भी नहीं करते हो ॥ २८ ॥ काम और लोभरूप वनकी अग्निसे जलते हुए सब लोकोंमें तुम, अग्निमेंसे बाहर निकल कर गङ्गाके जलमें गोता लगा कर रहने वाले हाथीकी समान जरा भी ताप नहीं पाते हो, सो ऐसा बड़ा भारी आनन्द तुम्हें कैसे प्राप्त हुआ है ? ॥ २९ ॥ इससे हे ब्राह्मण ! विषयभोगसे और स्त्री पुत्रादिकोंसे रहित हुए तुम्हारे मनमें आनन्द रहनेका कारण क्या है ? यह सब बूझने वाले हमसे तुम कहो ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे उद्धवजी ! इसप्रकार ब्राह्मणोंके भक्त और उत्तमबुद्धि उन राजा यदुने जिनसे सत्कारपूर्वक प्रश्न करा है ऐसे वह महाभाग ब्राह्मण, नम्रतायुक्त तिन राजा यदुसे कहने लगे ॥३१॥ ब्राह्मण ने कहा कि–हे यदु राजन् ! बुद्धिसे ही आश्रय किये हुए मेरे बहुतसे गुरु हैं, उन मेंसे जिस गुरुसे जो बुद्धि सीख कर मैं मुक्त होता हुआ पृथ्वी पर विचरता हूँ उन गुरुओंका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ सुनो ॥ ३२ ॥ १पृथिवी, २वायु, ३आकाश ४ जल, ५ अग्नि, ६ चन्द्रमा, ७ सूर्य, ८ कपोत, ९ अजगर सर्प, १० समुद्र, ११ पतङ्ग, १२ मधुमक्षिका, १३ हाथी, ॥ ३३ ॥ १४ मधुको हरण करने वाला, १५ हरिण, १६ मत्स्य, १७ पिंगला, १८ कुररपक्षी, १९ बालक, २० कुमारी, २१ बाण बनाने वाला, २२ सर्प, २३ मकड़ी और २४ भृङ्गी कीड़ा ॥ ३४ ॥ यह चौबीस गुरु मैंने अपनी बुद्धिसे ग्रहण करे हैं, इनके चरित्रसे मैंने अपने ग्रहण करनेके और त्यागनेके गुण सीख लिये हैं ॥ ३५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ यदु राजन् ! अब मैंने जिस गुरुसे जिस रीतिसे जो सीखा है सो तैसाही तुमसे कहता हूँ सुनो ! ॥ ३६ ॥ अब पृथ्वीसे जो कुछ सीखा सो कहते हैं कि सकल प्राणियोंके चरणोंसे आक्रमण करने पर भी (खूँदने पर भी) यह जैसे क्षमा करती है अपने नियमसे चलायमान नहीं होती है तैसे ही प्रारब्ध कर्मके प्रेरणा करे हुए प्राणियोंके पीड़ा देनेपर भी धैर्यवान्

क्षितेर्व्रतम् ॥ ३७ ॥ शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकांतसंभवः । साधुः शिक्षेत भूभृत्तो नगशिष्यः परात्मताम् ॥ ३८ ॥ प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेंद्रियप्रियैः । ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥ ३९ ॥ विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः । गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ॥ ४० ॥ पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः । गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ॥ ४१ ॥ अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन । व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं

पुरुष, उन प्राणियोंकी उस दैवाधीनताको जानकर आप अपने धर्ममार्गसे चलायमान नहीं होय, यह व्रत (नियम) मैंने पृथिवीसे सीखा है ॥ ३७ ॥ अब विशेष करके पर्वतरूप और वृक्षरूप हुई पृथिवीसे सीखे हुए गुण कहते हैं कि-जैसे पर्वत करके वृक्ष, तृण, झरने आदि सब पदार्थ परोपकारके निमित्त होते हैं और उनका जन्म भी केवल परार्थ ही होता है तैसेही अपने सब व्यवहार और जन्म यह केवल परोपकारके ही लिये हों ऐसा,साधु पुरुष पर्वतसे सीखे और वृक्षोंका शिष्य होकर उनसे परात्मता सीखे अर्थात् जैसे वृक्ष, दूसरेके तोड़ कर अथवा उखाड़ कर ले-जाने पर उसका अनुमोदन ही करके केवल पराधीनतासे रहता है तैसे ही अपने को कोई मारे अथवा खसोटे तो उसका अनुमोदन करके पराधीनपनेसे रहे ॥३८॥ वायु भी प्राणवायु और बाहरी वायु ऐसे दो प्रकारका है,तिसमें प्राणवायुका गुरुभाव कहते हैं कि-जैसे प्राणवायु आहार मिलनेसे ही सन्तुष्ट होजाता है, रूपरस आदि इन्द्रियोंके विषयोंकी अपेक्षा नहीं करता है तैसे ही योगीको भी आहारमात्रसे ही सन्तुष्ट होना चाहिये, इन्द्रियोंके प्रिय विषयोंकी अपेक्षा नहीं करना चाहिये;कुछ भी भोजन नहीं किया जायगा तो मन विह्वल होकर ज्ञानका नाश होजायगा,ऐसा न होनेके निमित्त देहका निर्वाह होने योग्य भोजन करना चाहिये, श्रेष्ठ आहारकी और विषयोंकी अपेक्षा होय तो मन और वाणीको विक्षेप प्राप्त होता है, ऐसा न होनेकी युक्ति करना चाहिये ॥ ३९ ॥ अब बाहरी वायुका गुरुभाव कहते हैं कि—जैसे बाहरका वायु, वनमें वा अग्निमें सर्वत्र फिरने पर कहीं भी आसक्त होकर नहीं रहता है तैसे ही गुण दोषोंसे रहित बुद्धि हुआ योगीको,सर्वत्र शीत उष्ण आदि अनेकों धर्मोंके विषयोंमें अनुकूल वा प्रतिकूल प्राप्त होय तो उस का सेवन करते हुए कहीं भी आसक्त नहीं होना चाहिये ॥ ४० ॥ और जैसे वायु सुगन्धित अथवा दुर्गन्धित पदार्थोंके आश्रयसे सुगन्धि वा दुर्गन्धि वाला प्रतीत होता है परन्तु वह सुगन्ध आदि गुण पृथिवीके हैं इस कारण उनके संयोगको नहीं पाता है तैसे ही पृथिवीके विकाररूप देहोंमें प्रविष्ट होकर उन देहोंके बालकपन आदि धर्मोंका आश्रय करके बालक युवा आदि रूपोंसे प्रतीत होने वाला भी योगी वास्तवमें आत्मदर्शी होनेके कारण उन बालकपन आदि गुणोंसे युक्त नहीं होता है यह मैंने बाहरी वायुसे सीखा है ॥ ४१ ॥ अब आकाशका गुरुभाव कहते हैं—देह-स्थितिसे वर्ताव करने वाला भी योगी, मेरा आत्मा आकाशकी समान है ऐसी भावना करे और जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त होय तो भी उसको घट आदि पदार्थों

विततस्य भावयेत् ॥ ४२ ॥ तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः । न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ॥ ४३ ॥ स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् । मुनिः पुनात्यपांमित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ॥ ४४ ॥ तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः । सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ॥४५॥ क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् । भुंक्ते सर्वत्र दातॄणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ॥४६॥ स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः । प्रविष्ट ईयते तत्तत्स्वरूपोऽग्निरिवैधसि ॥४७ विसर्गाद्याः श्मशानांता भावा देहस्य नात्मनः । कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्त-

से संग वा परिच्छिन्नता नहीं प्राप्त होते हैं तैसे ही ब्रह्मस्वरूप भावनासे अपने आत्माकी स्थावर जङ्गमोंमें अनुस्यूतपनेसे व्याप्ति और वह भी जैसे मणियोंमें सूत की होती है तैसी नहीं किंतु सब अंशोंमें व्याप्ति है ऐसा समझ कर अपना किसी भी देह आदिकोंसे संग वा किसी भी पदार्थसे परिच्छेद नहीं है ऐसी भावना करे४२ और जैसे आकाशको वायुके प्रेरणा करेहुए मेघ, धूलिआदिकोंका स्पर्श नहीं होता है तैसे ही अन्तर्यामी जीवात्माको, कालके रचे हुए—तेज, जल और पृथ्वीमय देह आदिक पदार्थोंका स्पर्श नहीं होता है ॥ ४३ ॥ अब जलसे सीखे हुए गुण कहते हैं जैसे जल, स्वच्छ, स्वभावसे स्निग्ध, मधुर, मनुष्योंके पवित्र होनेका स्थान और दर्शन, स्पर्शन तथा वर्णनके द्वारा जगत्को पवित्र करता है तैसे ही योगी भी— स्वच्छ, स्वभावसे स्नेह युक्त, मधुर भाषण करने वाला, मनुष्योंके पवित्र होनेका स्थान,और दर्शन,स्पर्शन तथा कीर्त्तनके द्वारा जगत्को पवित्र करनेवाला होय४४ अब अग्निसे जो सीखा सो कहते हैं—जैसे अग्नि तेजस्वी, तापशक्तिसे प्रकाशवान् क्षोभ करनेको अशक्य, अपने पेटमें सब रखने वाला और सर्वभक्षक होकर भी दोषरहित होता है तैसे ही योगी भी, ज्ञानकी अधिकतासे तेजस्वी, तपसे प्रकाशवान्, मोहित करनेको अशक्य, उदरसे ही पात्रका व्यवहार करने वाला और सर्वभक्षक होकर भी दोषरहित होय ॥ ४५ ॥ और जैसे अग्नि कहीं गुप्त, कहीं स्पष्ट, कल्याणकी इच्छा करने वाले पुरुषों करके उपासना करने योग्य होकर अपनेको होमकी सामग्री देने वाले पुरुषोंके पहिले हुए और आगेको होने वाले पापोंको जला डालता है और दूसरोंकी इच्छासे सकल स्थलमें भक्षण करता है तैसेही साधु, कहीं गुप्त, कहीं प्रकट, और कल्याणकी इच्छा करने वाले लोकों करके सेवन करने योग्य और अन्न देने वाले लोकोंके हुए और होने वाले पापोंको भस्म करने वाला होकर दूसरोंकी इच्छासे सर्वत्र भोजन करने वाला होय ॥ ४६ ॥ और जैसे अग्नि काठमें होय तो उन काठोंकी समान ही लम्बा टेढ़ा आदि प्रतीत होता है, परन्तु वह वास्तवमें तैसा नहीं होता है तिसी प्रकार आत्मा भी, अपनी अविद्यासे उत्पन्न करे हुए छोटे बड़े देवता-पशु-पक्षी आदि जगत्में प्रविष्ट होने पर तिस २ के स्वरूपवाला प्रतीत होता है परन्तु वास्तवमें तैसा नहीं होता है, ऐसा योगी जाने ॥ ४७ ॥ अब चन्द्रमासे जो सीखा सो कहते हैं कि-जैसे चन्द्रमा

र्तना ॥ ४८ ॥ कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ । नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथाऽर्चिषाम् ॥ ४९ ॥ गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति । न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ॥ ५० ॥ बुद्ध्यते स्वेन भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः । लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ॥ ५१ ॥ नातिस्नेहः प्रसंगो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् । कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ॥ ५२ ॥

की प्रकाशरूप सोलह कलाओंके ही उत्पत्तिनाश होते हैं, उदकमण्डलरूप + (जलमय) चन्द्रमाके नहीं होते हैं तैसे ही जन्मसे मरण पर्यन्त सकल विकार, अव्यक्तस्वरूप कालके द्वारा देहके ही होते हैं, आत्माके नहीं होते हैं ॥ ४८ ॥ फिर सिंहावलोकन्यायसे अग्निसे सीखे हुए वैराग्यका वर्णन करते हैं-नदीके प्रवाहकी समान वेगवाले काल करके आत्मसम्बन्धी प्राणिमात्रके देहोंके उत्पत्तिनाश प्रतिक्षणमें होते हैं तो भी,जैसे अग्निकी ज्वालाओंके उत्पत्ति नाश प्रतिक्षणमें होते हुए भी नहीं दीखते हैं तैसे ही दीखते नहीं हैं, इस प्रकार देहके क्षणभंगुर होनेके कारण योगी उस देहमें आसक्त न होय ॥ ४९ ॥ अब सूर्यसे जो सीखा सो कहते हैं कि-जैसे सूर्य आठ मास पर्यन्त अपनी किरणोंसे जलको खेंचता है और फिर वर्षा ऋतुमें उसको छोड़देता है परन्तु खेंचनेके और छोड़नेके अभिमानको धारण नहीं करता है तैसेही देहसे निराले आत्माका अनुसन्धान रखनेवाला योगी भी, इन्द्रियोंके द्वारा विषयों को स्वीकार करता है और याचकके आने पर वह विषय उसको देदेता है परन्तु उनमें यह मेरे प्राप्त करे हुए हैं और यह मेरे दिये हुए हैं ऐसा अभिमान नहीं रखता है ॥ ५० ॥ और जैसे एक ही सूर्य, जल आदिमें प्रतिबिंबित होने पर, स्थूलबुद्धि पुरुषों करके निराला २ देखा जाता है तैसे ही वास्तवमें स्वरूपमें एक ही हुआ आत्मा दैहिक उपाधियोंमें प्रविष्ट होने पर स्थूलबुद्धि (देहाभिमानी) पुरुषों करके निराला २ जाना जाता है, ऐसा योगी जाने ॥ ५१ ॥ अब कपोत (कबूतर) से जो

+ ज्योतिषशास्त्रमें इस विषयमें ऐसा नियम है कि-चन्द्रमाका मण्डल जलमय है और सूर्यका मण्डल तेजोमय है, इन दोनोंकी एक नक्षत्र पर स्थिति होने पर,नेत्रोंके सन्मुख आये हुए सूर्यमण्डलकी आड़में हुआ चन्द्रमा दीखता नहीं है,वही अमावास्या है, तदनन्तर साठ घड़ीमें चन्द्रमा दूसरे नक्षत्र पर जाता है और सूर्य तो तेरह दिनमें दूसरे नक्षत्र पर जाता है इस कारण प्रतिपदासे विषम रहे हुए सूर्यमण्डलका प्रतिदिन पन्द्रहवाँ पन्द्रहवाँ भाग जलमण्डलमें प्रतिबिम्बित हुआ दीखने लगता है, उसको कला कहते हैं, ऐसा होते २ पन्द्रहवें दिन तेरह नक्षत्रका अन्तर पड़नेके कारण सत्ताईस नक्षत्ररूप राशिचक्रके मध्यमें चन्द्रमा और सूर्य यह दोनों एक दूसरेके सन्मुख आ जाते हैं, तब पृथिवीकी छायासे चिन्हित हुए सूर्यका सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब दीखता है,वही पूर्णिमा है, तिस पूर्णिमामें अमावास्यामेंके प्रतिबिम्बके सहित सोलह कलाका चन्द्रमा ऐसा कहते हैं तदनन्तर फिर प्रतिपदासे लेकर इन दोनों मंडलोंके विषम होनेके कारण प्रतिदिन एक २ कला कम होती जाती है, इस प्रकार केवल चन्द्रमाकी कलाओंके ही उत्पत्ति नाश होते हैं उदकमंडलरूप चन्द्रमाके नहीं होते हैं ॥

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ । कपोत्या भार्यया सार्द्धमुवास कतिचित्समाः ॥ ५३ ॥ कपोतौ स्नेहगणितहृदयौ गृहधर्मिणौ । दृष्टिं दृष्ट्याऽङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥ ५४ ॥ शय्यासनाटनस्थानवार्त्ताक्रीडाशनादिकम् । मिथुनीभूय विश्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥ ५५ ॥ यं यं वांछति सा राजंस्तर्पयंत्यनुकंपिता । तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णन्ती काल आगते । अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः सन्निधौ सती ॥५७॥ तेषु काले व्यजायंत रचितावयवा हरेः । शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलांगतनूरुहाः ॥ ५८ ॥ प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दंपती पुत्रवत्सलौ । शृण्वंतौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥५९॥ तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः । प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥ स्नेहानुबद्धहृदयावन्योऽन्यं विष्णुमायया । विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥ ६१ ॥ एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थौ तौ कुटुम्बिनौ । परितः कानने तस्मि-

कुछ सीखा सो कहते हैं कि-मनुष्य, किसी विषयमें वा किसीके भी साथ अतिप्रीति वा लालनपालन आदि न करे, यदि करेगा तो वह विवेकहीन होकर कपोत पक्षीकी समान सन्ताप पावेगा ॥ ५२ ॥ कोई एक कबूतर पक्षी, जंगलमें एक वृक्ष पर घोंसला बनाकर अपनी कपोती स्त्रीके साथ कितने ही वर्षों पर्यन्त रहता रहा ॥ ५३ ॥ स्नेहसे परस्पर चित्त गुँथे हुए गृहधर्मी (मैथुनसुखमें निमग्न) तिस कबूतर और कपोती इन दोनोंने ही, अपनी दृष्टिसे दृष्टि, अंगसे अंग और बुद्धिसे बुद्धि अत्यन्त मिलाली थी ॥ ५४ ॥ वह दोनों ही, सोना, बैठना, फिरना, खड़ा रहना, परस्पर बातचीत करना, रतिक्रीड़ा करना और खाना इत्यादि विषयोंमें निःशंकपनेसे रहकर दोनों साथ २ वनकी पंक्तियोंमें फिरते थे ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! हास्यके साथ देखना, मधुरभाषण आदि करके कपोतको प्रसन्न करनेवाली और उसकी प्रीतिपात्र हुई वह कबूतरी जिस २ पदार्थ की इच्छा करती थी तिस २ पदार्थको वह अजितेन्द्रिय कबूतर बड़े कष्टसे भी लाकर देता था ॥ ५६ ॥ तदनन्तर पहिला ही गर्भ धारण करनेवाली उस सती कबूतरीने, प्रसूतिका समय प्राप्त होने पर अपने पतिके समीप ही घोंसलेमें अंडे उत्पन्न करे ॥ ५७ ॥ फिर जलके भरे हुए उन अण्डोंमें श्रीहरिकी काल कर्म आदि अतर्क्य शक्तियों करके अंगोंकी रचना होकर उत्पन्न होनेके समय कोमल अंग और रोमोंसे युक्त बच्चे उत्पन्न हुए ॥५८॥ तदनन्तर प्रसन्नचित्त और पुत्रों पर प्रेम करनेवाले वह दोनों, उन बच्चोंके कुलकुल शब्दोंको सुनकर उनके मधुर शब्दोंसे सुख पाते हुए उनका पोषण करने लगे ५९ तब हर्षयुक्त हुए उन बच्चोंके उत्तम स्पर्शवाले पंखोंसे कुलकुल शब्दोंसे, बालकपन की भोली चेष्टाओंसे और सन्मुख आनेसे उन मातापिताओंको बड़ा आनन्द होता था ॥ ६० ॥ इस प्रकार विष्णुभगवान्की मायासे अत्यन्त मोहित होकर परस्पर स्नेहसे जिनके चित्त गुँथ गये हैं और उन बच्चोंका पोषण करनेके विषयमें तत्पर होनेके कारण व्याकुल चित्त हुए वह दोनों उन छोटे२ बच्चोंका पोषण करते थे६१ एक दिन उन बच्चोंके खानेके निमित्त अन्नकी इच्छा करनेवाले वह दोनों ही

गर्धिनौ चेरतुश्चिरम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः । जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥६३॥ कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ । गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥ ६४ ॥ कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् । तानभ्यधावत्क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥६५॥ साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया । स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः ॥६६॥ कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् । भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ॥ ६७ ॥ अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः । अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ॥ ६८ ॥ अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता । शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ॥६९॥ सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः । जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवितः ॥ ७० ॥ तांस्तथैवावृतान् शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः । स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥ ७१ ॥ तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् । कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थः प्रययौ गृहम् ॥७२॥ एवं

कुटुम्बी कपोतपक्षी अपने घोंसलेके चारों ओर उस वनमें जाकर बहुत समय पर्यन्त फिरते रहे ॥ ६२ ॥ सो इतने ही में वनमें फिरनेवाले किसी एक बहलियेने स्वाभाविक अपने घोंसलेके आसपास फिरते हुए उन कबूतरके बच्चोंको देखकर अपना जाल फैलाया और उनको पकड़ लिया ॥६३॥ इधर बच्चोंके पालनके विषय में निरन्तर उत्सुक ऐसे कबूतर और कबूतरी दोनों गये थे, सो बच्चोंका चुग्गा लेकर अपने घोंसलेमें आये ६४ उनमें कबूतरी अपने बच्चोंको जालमें फँसकर रोते हुए देखकर, अत्यन्त दुःखित हुई और आप भी विलाप करती २ उनके समीपको दौड़ कर गई ॥ ६५ ॥ वह कबूतरी भगवान्‌की मायासे उन बच्चोंके ऊपर बारंबार स्नेह बँध जानेके कारण दीनचित्त होती हुई, मैं भी ऐसे ही जालमें फँस कर मरूँगी ऐसी स्मृतिको भूलकर बँधे हुए उन बच्चोंको देखती हुई आप भी जालमें फँसकर बँधगई ॥ ६६ ॥ तब वह कबूतर पक्षी तो, अपने शरीरसे भी अधिक प्रिय परन्तु बँधे हुए उन बच्चोंका तैसे ही अपने शरीरकी समान प्रिय परन्तु जालसे बँधी हुई उस स्त्रीको देखकर, अत्यन्त दुःखित और दीन होता हुआ शोक करने लगा कि-॥ ६७ ॥ अहो प्राणियो ! अल्पपुण्य और दुर्मति मेरा यह कैसा नाश हुआ है सो देखो ! इस लोकमेंके सुखसे तृप्त न होनेवाले और परलोकका भी कोई साधन न करनेवाले मेरा धर्म अर्थ कामका सम्पादन करानेवाला यह गृहस्थाश्रम नष्ट हो गया है ॥ ६८ ॥ जिस मेरी योग्य और अनुकूल पतिव्रता स्त्री, सूने हुए घरमें मुझे छोड़कर अपने उत्तम बालकोंके साथ स्वर्गको चली गई है ॥ ६९ ॥ सो स्त्री और पुत्र मर जानेके कारण इकला रहा हुआ मैं दीन; अब सूने घरमें दुःखरूप आयुको बिताकर जीवित रहनेकी क्यों इच्छा करूँ ॥ ७० ॥ इसप्रकार विलाप करनेवाला वह अज्ञानी दीन कबूतर पक्षी, तिसी प्रकार जालमें फँसकर फड़फड़ानेवाले और मृत्युके ग्रसे हुए उन स्त्री सहित बच्चोंको देखता हुआ भी उनके मोहसे आप भी जालमें जा पड़ा ॥ ७१ ॥ वह क्रूर बहेलिया तो उस गृहस्थाश्रमी कबूतर

कुटुम्ब्यशांतात्मा द्वंद्वारामः पतत्रिवत्। पुष्णन्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति७३ यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्। गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः७४

इति श्रीमहाभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

ब्राह्मण उवाच। सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च। देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः॥ १॥ ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा। यदृच्छयै-वापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः॥ २॥ शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः। यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक्॥ ३॥ ओजः सहो बलयुतं बिभ्रद्देह-मकर्मकम्। शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि॥ ४॥ मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः। अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोद इवार्णवः॥ ५॥ समृद्धकामो

की, उसके बच्चोंकी और कबूतरीकी एक साथ प्राप्ति होजाने पर सिद्धकार्य होकर अपने घरको चला गया॥ ७२॥ इस प्रकार कबूतरकी समान दूसरा भी कुटुम्बके ऊपर प्रेम करनेवाला गृहस्थी, चित्तकी अशान्ततासे सुखदुःखादिकों में रमकर कुटुम्बका पोषण करने लगे तो वह भी उन पुत्रकलत्रादिकोंके साथ दुःख से नाशको प्राप्त होता है॥७३॥ इस कारण खुले हुए मुक्तिके द्वाररूप मनुष्यशरीर के प्राप्त होने पर उस कबूतर पक्षीकी समान यदि घरमें आसक्त होता है तो उसको विद्वान् पुरुष ऐसा कहते हैं कि-यह कल्याणके मार्गोंकी सीढ़ी पर चढ़कर भी फिर नीचे गिरपड़ा॥७४॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें सप्तम अध्याय समाप्त

ब्राह्मणने कहा कि-हे यदु राजन्! जैसे दुःख, यत्नके विना प्राप्त होता है तैसे इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाला जो सुख वह, स्वर्गमें और नरक में भी प्रारब्धके अनु-सार प्राप्त होता है इस कारण चतुर पुरुष उसकी जरा भी इच्छा न करे॥१॥ किंतु जैसे अजगर उदासीन होता है तैसे ही उदासीनवृत्ति धारण करके देहका निर्वाह होने योग्य ही दैवसे उद्योगके विना ही प्राप्त हुआ आहारमात्र 'फिर वह सुन्दर मीठा हो वा विरसहो तैसे ही पेटभरने योग्य हो वा थोड़ासा हो' भक्षण करे॥२॥ यदि ग्रास प्राप्त नहीं होय तो वह दैवके ऊपर विश्वास रखकर महाअजगरकी समान उद्योग न करके निराहार ही बहुत दिनों पर्यन्त सोता रहे॥३॥ आहार पाने में समर्थ होकर भी क्या वह सोता ही रहे? ऐसा कहो तो—हाँ, इन्द्रियोंके बल मनके बल और शरीरके बलसे युक्त भी देहधारी, कुछ न करके सोता रहे,तैसे ही आत्मविचाररूप अपने प्रयोजनके विषयमें जागता हुआ रहकर, देखना आदि व्यापार करनेमें समर्थ होकर भी उनको न करे, यह मैंने अजगरसे सीखा है॥४॥ अब समुद्रसे जो सीखा सो कहते हैं कि-ऋषि निश्चलजलवाले समुद्रकी समान बाहरसे प्रसन्न और भीतरसे गम्भीर, (अभिप्रायसे) यह इतना है ऐसी थाह पानेको अशक्य, (तेजस्वीपनेसे) दूसरोंको दुस्तर, (स्वरूपसाक्षात्कार होनेके कारण) काल और देश करके अन्त और पार रहित तथा (राग द्वेष आदि न होनेके कारण) क्षोभरहित होय॥ ५॥ और जैसे समुद्र, वर्षाऋतुमें नदियोंके जल से समृद्ध होजाने पर भी बढ़ता नहीं है और ग्रीष्म ऋतुमें नदियोंका जल न मिले

हीनो वा नारायणपरो मुनिः । नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः । प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ७ योषिद्धिरण्याभरणांबरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः । प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥ ८ ॥ स्तोकं स्तोकं ग्रसेद् ग्रासं देहो वर्तेत यावता । गृहानहिंसन्नातिष्ठेद् वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ॥ ९ ॥ अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः । सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ॥ १० ॥ सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् । पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ॥ ११ ॥ सायं-

तो भी सूखता नहीं है तैसे ही मुनि, भोगसंपदाओंकी दशामें हर्ष न माने और भोगहीनदशामें शोक भी न करे, किन्तु नारायणपरायण होकर रहे ॥ ६ ॥ रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द और रस इन पाँच विषयोंसे मोहको प्राप्त होते हुए पतङ्ग (कीडा), मधुकर (भौंरा), हाथी, हिरन और मत्स्य यह पाँचों नाशको प्राप्त होते हैं इस कारण उन रूपगन्ध आदिकोंमें आसक्त न होनेके विषयमें यह पाँच गुरु हैं, तिनमें पतंगेसे जो सीखा सो कहते हैं कि-जैसे पतङ्ग अग्निमेंरूप देखकर उसको खानेकी इच्छासे उसमें गिरकर नाशको प्राप्त होजाता है तैसे ही इन्द्रियों को वशमें न रखनेवाला पुरुष, भगवान्‌की मायारूप स्त्रीको देखकर उसके हावभावों से लोभित होता हुआ तिसमें आसक्त होने पर अंतमें नाशको प्राप्त होकर अन्ध-तम नरकमें जाकर पडता है ॥ ७ ॥ यह स्त्री तो एक उपलक्षण है तिससे भगवान् की माया करके रचेहुए-स्त्री, सुवर्ण, भूषण और वस्त्रादि पदार्थोंका उपभोग करने की बुद्धिसे आसक्तचित्त हुआ पुरुष, मोहित और विवेकहीन होकर पतंगेकी समान निःसन्देह नाशको प्राप्त होता है इस कारण योगी, तिन स्त्री पुत्रादिकोंमें आसक्त न होय ॥ ८ ॥ मधुकर दो प्रकारका है-एक पुष्पोंका रस ग्रहण करनेवाला भ्रमर दूसरा मधुमक्खी, तिसमें भ्रमरसे सीखे हुए गुण कहते हैं कि-जैसे भौंरा पुष्पोंका नाश न करके उनमेंका थोड़ा२ मकरंद लेकर किसीमें भी आसक्त न होता हुआ अपना निर्वाह करता है तैसे ही मुनि, गृहस्थोंको पीड़ा न देकर जितनेसे अपना निर्वाह होय उतना, बहुतसे घरोंमेंसे थोड़ा२ आहार भक्षण करनेकी मधुकरी (भौंरेकी) वृत्ति धारण करे, ऐसा न करेगा तो वह मुनि, जैसे भौंरा बहुतसे मक-रन्दके लोभसे एक ही कमलके पुष्प पर रहजाय तो, सूर्यास्तके अनन्तर उस कमल के मुँदने पर उसमें मोहसे बँध जाता है तैसे ही मुनि भी, गुणके लोभसे एक ही घरमें रहेगा तो तहाँ मोहसे बँध जायगा ॥ ९ ॥ और जैसे भौंरा छोटे बड़े फूलोंमेंसे मकरन्दको ग्रहण करता है तैसे ही विवेकी पुरुष, छोटे बड़े सकल शास्त्रोंमेंसे जो सार होय उसको ग्रहण करे ॥ १० ॥ सायंकालको भक्षण करनेके निमित्त वा दूसरे दिन भक्षण करनेके निमित्त भिक्षाके अन्न आदिका संग्रह न करे, किन्तु हाथ ही जिसका पात्र है अर्थात् जितना हाथमें आवे उतना ही ग्रहण करने वाला अथवा उदर ही जिसका पात्र है ऐसा होय, यदि इकट्ठा करेगा तो उसको मौहालकी मक्खी की समान मरना पड़ेगा ॥ ११ ॥ इसको ही स्पष्ट करके कहते हैं कि-यह संध्याके

तनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः । मक्षिका इव संगृह्णन् सह तेन विनश्यति१२ पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि । स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अङ्गसंगतः ॥ १३ ॥ नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः । बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥१४॥ न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद् दुःखसञ्चितम् । भुंक्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥ १५ ॥ सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः । मधुहेवाग्रतो भुंक्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥ ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः

समय भोजन करूँगा, और यह कलको भोजन करूँगा ऐसी इच्छासे भिक्षाके अन्न आदिका संग्रह नहीं करे, यदि संग्रह करेगा तो वह,उस संग्रह करेहुए अन्न आदि के साथ, जैसे मौहालकी मक्खी संग्रह करे हुए मधु (सहद) के साथ नाशको प्राप्त होती हैं तैसे, नाशको प्राप्त होयगा१२स्पर्शकी आसक्ति नाशका कारण है,इस विषयमें हाथीसे लीहुई शिक्षाका वर्णन करते हैं कि-योगी; सच्ची तो क्या परन्तु काठकी स्त्रीको हाथसे तो क्या परन्तु पैरसे भी स्पर्श करनेकी इच्छा न करे । यदि स्पर्श करनेकी इच्छा करेगा तो हाथीको पकड़ने वाले पुरुष, जहाँ हाथी होय उस वनमें एक बड़ा भारी गढ़हा खोद कर उसको ढक कर उसके समीपमें लकड़ीकी रँगी हुई हथनी खड़ी कर देते हैं, तब रात्रिके समय उस हथिनीसे सङ्ग करनेको मदान्धपनेसे जाने वाला हाथी गढहेमें गिर जाता है सो उसी समय वह जैसे परवश होकर दुःख भोगता है तैसे ही' वह भिक्षुक भी नरक आदिमें पड़कर दुःख भोगेगा ॥ १३ ॥ और चतुर पुरुष, कभी भी स्त्रीके विषै भोगबुद्धिसे आसक्त न होय, किन्तु उस स्त्रीको 'यह मेरी मृत्यु है' ऐसा देखे, उसमें यदि आसक्त होयगा तो वह पुरुष, जैसे हथनीमें आसक्त हुआ हाथी, उसमें आसक्त हुए दूसरे बलवान् हाथियोंसे मारा जाता है तैसे ही उस स्त्रीके विषै आसक्त होने वाले अन्य पुरुषोंसे मारा जायगा ॥ १४ ॥ अब मधुको हरण करनेवालेसे सीखेहुए गुणका वर्णन करते हैं कि-जैसे मधुका हरण करने वाला पुरुष, मौहालकी मक्खियोंके हरण करे हुए मधुका हरण करके लेकर जाने लगता है तो उससे मधुको कोई दूसरा ही बलवान् पुरुष छीनकर भक्षण करता है तैसे ही,धनके लोभी पुरुषोंने जिसको दान न करा और न जिसको भोगा ही, ऐसा दुःखसे इकट्ठा करा हुआ जो धन होता है, उसको उससे कोई दूसरा ही हरण कर लेता है और उससे कोई तीसरा हरण करके उपभोग करता है, यदि कहो कि-उत्तमताके साथ गुप्त करके रक्खे हुए धनको दूसरा कैसे जानेगा ? और कैसे हरण करलेगा ? ऐसा कहो तो जैसे मधु (शहद) को हरण करने वाला पुरुष, वृक्षकी खखोड़लमेंके मधुको मौहालकी मक्खियोंके आने जानेसे जान जाता है तैसे ही लोक भी धनको जान जाते हैं ॥ १५ ॥ अब उद्योग बिना करे भी यतिको भोजन प्राप्त होता है, यह भी मैंने उससे ही सीखा है ऐसा वर्णन करते हैं कि अतिदुःखसे इकट्ठे करे हुए धनके द्वारा, घरमेंके खाना पीना आदि भोगोंकी इच्छा करने वाले गृहस्थोंके भोगोंको, उनसे पहिले ही यति; जैसे मौहालकी मक्खियोंके इकट्ठे करे हुए शहदको उनसे पहिले ही उस शहदका हरण

क्वचित् । शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥१७॥ नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् । आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृङ्गो मृगीसुतः॥१८॥ जिह्वयाति-प्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः । मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥ १९ ॥ इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः । वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥२०॥ तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रियः पुमान् । न जयेद्रसनं याव-ज्जितं सर्वं जिते रसे ॥ २१ ॥ पिङ्गला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा । तस्या मे शिक्षितं किञ्चिन्निबोध नृपनन्दन ॥ २२ ॥ सा स्वैरिण्येकदा कांतं संकेत उपने-ष्यती । अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥ २३ ॥ मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ । तान् शुल्कदान्वित्तवतः कांतान्मेनेऽर्थकामुका ॥ २४ ॥ आगतेष्व-

करने वाला भक्षण करता है तिसी प्रकार सेवन करता है, क्योंकि-यति और ब्रह्म चारी यह दोनों, पके हुए अन्नके स्वामी हैं, इस कारण उनके आजाने पर गृहस्थ उनको न देकर भक्षण करे तो उसको चान्द्रायण व्रतका प्रायश्चित्त करना चाहिये, इस रीतिसे गृहस्थोंको आवश्यक दान कहा है ॥ १६ ॥ अब हरिणसे जो सीखा सो कहते हैं कि—सर्वत्र फिरने वाला यति भगवान्का गान और श्रवण करे परंतु कभी भी विषयासक्त पुरुषोंके करे हुए गानको न सुने,इस तत्त्वको,बहेलियेके गान से मोहित होकर बँधे हुए हरिणसे यति सीखे, नहीं तो बन्धनमें पड़ेगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहाँ देखनेमें आया है ? यदि ऐसा कहो तो-हरिणीके पुत्र ऋष्यशृङ्ग ऋषि, स्त्रियोंके ग्रामीण नृत्य बाजे और गानको सुन कर उन स्त्रियोंके वशमें खिलौनेकी समान होगये थे ॥ १८ ॥ रसके सेवनकी आसक्ति नाशका कारण है, यह मैंने मत्स्यसे सीखा है ऐसा वर्णन करते हैं-अति दुर्जय जिह्वाके रसके सेवनमें आसक्त हुआ दुर्बुद्धि मनुष्य, जैसे मांसके रसमें आसक्त हुआ मत्स्य, उस मांसमें चुभे हुए लोहेके काँटोंसे मरणको प्राप्त होता है तैसेही,मरणको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ रसना इन्द्रिय ऐसी दुर्जय है कि-आहारका त्याग करने वाले विचारवान् पुरुष, रसना इंद्रियको छोड़ कर शेष सब इन्द्रियोंको जीत लेते हैं परन्तु अन्नरहित पुरुष, की वह रसना इन्द्रिय वृद्धिको प्राप्त होती है, तब यदि आहारका सेवन करा जाय तो फिर रसकी आसक्तिसे सब इन्द्रियें चलायमान होजाती हैं,इससे रसकी आसक्ति को छोड़ कर केवल औषधकी समान भोजन करे ॥ २० ॥ और इन्द्रियोंको जीतने वाला भी पुरुष जब तक रसना इन्द्रियको नहीं जीते तब तक वह जितेन्द्रिय नहीं है, रसना इन्द्रियको जीत लिया जाय तो सब ही इन्द्रियें जीती हुईसी होजाती हैं ॥ २१ ॥ हे राजपुत्र ! पहिले राजा विदेहके नगरमें एक पिंगला नामवाली वेश्या रहती थी, उससे मैंने जो कुछ सीखा है सो तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ २२ ॥ वह वेश्या एक दिन किसी बहुतसा धन देने वाले सुन्दर पुरुषको अपने रतिमन्दिरमें लेजानेके निमित्त, आभूषण धारण करे हुए अपना सुंदर रूप सजा कर सायंकाल के समय द्वारमें बैठी ॥ २३ ॥ हे पुरुषोंमें उत्तम राजन् ! धनकी अभिलाषासे व्या-कुल हुई वह पिंगला, मार्गमें आने वाले पुरुषोंको देख कर, उनमें धनी और बहुत-

पयातेषु सा संकेतोपजीविनी । अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः॥२५॥ एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलंबती । निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥ २६ ॥ तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः । निर्वेदः परमो जज्ञे चिंताहेतुः सुखावहः ॥ २७ ॥ तस्या निर्विण्णचित्ताया गीतं शृणु यथा मम । निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः॥२८॥ न ह्यंगाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति । यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥ २९ ॥ पिंगलोवाच । अहो मे मोहविततिं पश्यताविजितात्मनः । या कांतादसतः कामं कामये येन बालिशाः ॥ ३० ॥ सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय । अकामदं दुःखभयादिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा॥३१॥अहो मयात्मा परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया । स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥ ३२ ॥

सा मूल्य देने वाला पुरुष मुझे रतिसुखके निमित्त प्राप्त होय, ऐसा विचार कररही थी ॥ २४ ॥ वह जारपुरुषोंसे मिले हुए धनसे जीविका चलानेवाली थी इसकारण, आये हुए साधारण धनी पुरुषोंके निकल कर चले जाने पर दूसरा कोई ही तो बड़ा धनवान् पुरुष मेरी ओरको आवेगा और उससे मुझे बहुतसा धन प्राप्त होयगा ॥ २५ ॥ ऐसी दुराशासे जिसकी निद्रा नष्ट होगई है और द्वार पर खड़ीहुई वह पिंगला अब कोई नहीं आवेगा ऐसा समझकर घरमेंको चली जाती थी और इतने ही में कोई आया ऐसा प्रतीत होने पर बाहरको चली आती थी, इस प्रकार होते २ आधीरातका समय होगया ॥ २६ ॥ द्रव्यकी आशासे जिसका मुख अत्यन्त सूख गया है ऐसी दीनचित्त हुई तिस पिङ्गला वेश्याको, द्रव्यकी चिन्तासे परिणाममें सुख देने वाला उत्तम वैराग्य (अब विषयसुखसे भरपाई ऐसा विचार) उत्पन्न हुआ ॥ २७ ॥ उस विरक्तचित्त हुई पिङ्गलाका गीत जैसा हुआ है तैसा मैं तुमसे कहता हूँ तुम मुझसे सुनो, वैराग्य, पुरुषकी आशारूप पाशोंको काटनेवाला खड्ग ही है ॥ २८ ॥ हे यदु राजन्! जैसे अपरोक्षज्ञानको प्राप्त न हुआ पुरुष, ममताको त्याग करनेकी इच्छा नहीं करता तैसे ही वैराग्यको प्राप्त न हुआ पुरुष, अपने देहबन्धनका त्याग करनेकी इच्छा नहीं करता है ॥ २९ ॥ पिङ्गला कहने लगी कि-अहो! जिसने मनको नहीं जीता ऐसी मेरे मोहके फैलावको देखो! जिस मोहसे विवेकहीन हुई, मैं तुच्छ पुरुषसे भोग पानेकी और धन पानेकी इच्छा करती हूँ ३० जो मूर्ख मैं, समीप (अन्तर्यामी) रहनेवाले, मनको रमा कर सुख देनेवाले और लक्ष्मीपति होनेके कारण धन भी देनेवाले इन नित्य ईश्वरका त्याग करके, उनसे दूसरे भोगसम्पादनमें असमर्थ और दुःख, भय, खेद, शोक और मोह उत्पन्न करने वाले तुच्छ पुरुषका सेवन करती हूँ! ॥ ३१ ॥ अहो! जो मैं, स्त्रीलम्पट, द्रव्यलोभी और शोक करने योग्य पुरुषसे, उसने विक्रसेमें मोल लिये हुए और अपने आप उस के हाथ वेचे हुए देहसे धनकी और रतिसुखकी इच्छा करती हूँ, सो मैंने आज पर्यन्त परपुरुषके समागमरूप अतिनिन्दनीय वृत्तिसे अपने अन्तर्यामी आत्माको व्यर्थ ताप दिया है३२अहो! मुझे धिकार है, जो मैं अत्यन्त ही निन्दित पदार्थोंका सेवन

तदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचारोमनखैः पिनद्धम् । क्षरन्नवद्वारमगारमेत-
द्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति काऽन्या ॥ ३३ ॥ विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः ।
याऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥ ३४ ॥ सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं
शरीरिणाम् । तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥ ३५ ॥ कियत्प्रियं मे व्यभ-
जन् कामा ये कामदा नराः । आद्यंतवंतो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ॥ ३६ ॥
नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा । निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः
सुखावहः ॥ ३७ ॥ मैवं स्युर्मंदभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः । येनानुबन्धं निर्हृत्य
पुरुषः शममृच्छति ॥ ३८ ॥ तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः । त्यक्त्वा दुराशाः
शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ॥ ३९ ॥ संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवती । विह-
राम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ॥ ४० ॥ संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् ।

करती हूँ, शरीररूप घर कि-जिसमें खम्भ, बाँस और दासे सब हाड़ोंके ही बने हैं, तिसमें पीठका, हाड़ दासा, उसके दोनों ओरके हाड़ बाँस और हाथ पैरकी हड्डियें खंभ हैं ऐसे' त्वचा-रोम-नखोंसे ढके हुए, जिसमें नौ द्वार (पतनाले) बह रहे हैं और जो विष्ठासे और मूत्रसे भरा हुआ है ऐसे शरीररूपी घरको, यह सुन्दर है ऐसी बुद्धि से मेरे सिवाय दूसरी कौनसी स्त्री सेवन करेगी अर्थात् कोई सेवन नहीं करेगी ३३ अहो ! सत्सङ्ग होने पर भी मेरा यह कैसा मोह है! विदेह राजाओं (ज्ञानियों) के इस नगर में एक मैं ही मूढ़बुद्धि हूँ, क्योंकि, जो जारकर्म करनेवाली मैं, इन नाश-रहित और परमानन्द देनेवाले भगवान्को छोड़कर दूसरे भोगोंके सुखकी इच्छा करती हूँ ॥ ३४ ॥ इससे, क्योंकि यह ईश्वर, सकल प्राणियोंके अतिप्रिय, स्वामी, हितकर्त्ता, और आत्मा हैं इस कारण अब मैं, उनको आप ही अपने देहको अर्पण करके उनके साथ जैसे लक्ष्मी रमण करती है तैसे रमण करूँगी ॥ ३५ ॥ जो शब्दा-दिक विषय, रतिसुख देनेवाले पुरुष, और इन्द्रादिक देवता हैं वह तो मुझ भार्याका क्या प्रिय करेंगे ? क्योंकि-वह आदि और अन्तसे युक्त हैं कालके ग्रासरूप होरहे हैं इस कारण इस लोकमें वा परलोकमें ईश्वरके सिवाय दूसरा कोई भी पुरुष सेवन करने योग्य नहीं है ॥ ३६ ॥ ऐसा निश्चय करके अपने भाग्यकी प्रशंसा करती है-किन्हीं भी प्राचीन शुभकर्मोंके द्वारा विष्णुभगवान्, मेरे ऊपर निःसन्देह प्रसन्न हुए हैं, इस कारण ही दुष्ट आशा धारण करनेवाली मुझे यह सुखदायक वैराग्य हुआ है ॥ ३७ ॥ ईश्वरकी प्रसन्नताके विना मुझ मन्दभाग्यको, वैराग्य होनेके कारण ऐसे क्लेश होते ही नहीं, जिस वैराग्यसे युक्त हुआ पुरुष, अपने घरद्वार आदिका सम्बन्ध छोड़कर शान्ति पाता है ॥ ३८ ॥ इससे अब मैं, तिन विष्णुभगवान्के करे हुए वैराग्यरूप उपकारको शिरपर धारण करके और तुच्छ विषयोंकी दुष्ट आशाको त्याग कर, तिन ही सर्वनियन्ता परमेश्वरकी शरण जाती हूँ ॥ ३९ ॥ संतुष्ट होकर इस प्राप्त हुए वैराग्य पर श्रद्धा रखनेवाली और दैवयोगसे ही जो प्राप्त होय उससे ही निर्वाह करनेवाली मैं, इन ही आत्मरूप प्रियपतिके साथ क्रीड़ा करती हूँ ॥ ४० ॥ अब ब्रह्मादिकोंका त्याग करके इन आत्माके साथ ही क्यों रमती है ? ऐसा कोई

ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ॥४१॥ आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाऽखिलात्। अप्रमत्त इदं पश्येद् ग्रस्तं कालाहिना जगत् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मण उवाच। एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम्। छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ४३ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पिंगलोपाख्याने अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण उवाच। परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्। अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिंचनः ॥ १ ॥ सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः। तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥२॥ न मे मानापमानौ स्तो न चिंता गेहपुत्रिणाम्। आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥ ३ ॥ द्वावेव चिंतया मुक्तौ परमानन्द

कहे तो–संसाररूप कूपमें पड़े हुए विषयरूप धुएँसे जिसके विवेकरूप नेत्र फूट गये हैं और कालरूप अजगरसे निगले हुए आत्माको ईश्वरके सिवाय दूसरा कौन रक्षा करसकता है ? ॥ ४१ ॥ अब अपनी रक्षा करनेके निमित्त उनकी सेवा करती है ? ऐसा कोई कहे तो–यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि–यह पुरुष जब सावधान होकर, यह सब जगत् कालसर्पका निगला हुआ है ऐसा देखता है और सब प्रपञ्च से विरक्त होता है तब अपनी रक्षा करनेको आप ही समर्थ होता है, इस कारण मैं केवल प्रेमसे ही उन ईश्वरका सेवन करती हूँ ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणने कहा कि–इसप्रकार बुद्धिसे निश्चय करनेवाली तिस पिङ्गला वेश्याने, पुरुष, की अभिलाषासे उत्पन्न हुई धन आदिकी दुराशाको तोड़ कर शान्तिका आश्रय करा और शय्याके ऊपर जाकर सुखसे शयन करा ॥ ४३ ॥ तात्पर्य यह कि आशा ही परमदुःखका साधन है, और आशाका न होना ही परमसुखका साधन है, देखो ! पतिकी आशासे दुःखित हुई भी पिङ्गलाने, तिस आशाको अत्यन्त तोड़ कर परम आनन्दके साथ शयन करा॥४४॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥८॥

अब कुरर पक्षीसे जो कुछ सीखा तिसका वर्णन करते हुए ब्राह्मणने कहा कि–हे यदुराज ! मनुष्योंकी जो २ अत्यन्त प्रिय वस्तु होती है, वह संग्रह करने पर अति दुःखका कारण होती है, इस कारण जो पुरुष, संग्रहको दुःखदायक जानकर, किञ्चिन्मात्र भी संग्रह नहीं करता है वह अनन्त सुख पाता है ॥ १ ॥ इस विषयमें दृष्टांत कहते हैं कि—एक टिट्टिभ पक्षी अपनी चोंचमें मांस लेकर जारहा था सो उसको, दूसरे जो बलवान् पक्षी थे कि–जिनके पास मांस नहीं था वह मारने लगे, तब उस पक्षीने तिस मांसको छोड़ दिया, उसके साथ ही वह पक्षी उस मांसकी ओरको गये और वह टिट्टिभ पक्षी सुखको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ अब बालकसे लीहुई शिक्षाका वर्णन करते हैं कि–जैसे बालकका मान वा अपमान नहीं होता है और गृहस्थकी समान घरकी तथा बालबच्चोंकी भी चिन्ता नहीं होती है, तैसे ही मुझे भी मान वा अपमान नहा हैं, घरद्वारकी और बालबच्चोंकी चिंता भी नहीं है इस कारण मैं अपने साथ ही क्रीड़ा करता हुआ और अपनेमें ही प्रीति करता हुआ

आप्लुतौ। यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥ ४ ॥ क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान् गृहमागतान्। स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥ ५ ॥ तेषामभ्यवहारार्थं शालीन् रहसि पार्थिव। अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शंखाः स्वनं महत् ॥ ६॥ सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः। बभञ्जैकैकशः शंखान् द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥ ७॥ उभयोरप्यभूद् घोषो ह्यवघ्नंत्याः स्म शंखयोः। तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥ ८ ॥ अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम। लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥ ९ ॥ वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि। एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कंकणः ॥ १० ॥ मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः। वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥११॥ यस्मिन्मनो लब्धपदं

इस जगत्में बालककी समान विचारता हूँ ॥ ३ ॥ इससे अज्ञानीकी और सर्वज्ञकी सब प्रकारसे तुल्यता न माने किंतु केवल निश्चिन्तपनेके विषयमें ही समानता माने, क्योंकि-इस जगत्में मान अपमानकी चिंतासे मुक्त और परमानन्दमें निमग्न दोनों ही हैं यदि कहो कि-वह दोनों कौन? तो-एक तो उद्योगरहित अज्ञानी बालक और दूसरा गुणातीत परमेश्वरमें एकीभावको प्राप्त हुआ साधु ॥ ४ ॥ अब कुमारी से ली हुई शिक्षाका वर्णन करते हैं कि-एक ग्राममें एक गृहस्थकी एक विवाहके योग्य हुई कन्या थी, उसने घरमेंके पिता आदि सब मनुष्योंके कहीं कामके निमित्त घरसे बाहर चले जाने पर अपनेको वरनेके निमित्त घर आये हुए पाहुनोंका 'बैठनेका आसन और जल आदि देकर' आप ही सत्कार करा ॥ ५ ॥ हे राजन्! तदनंतर उन पाहुनोंके भोजनके निमित्त वह कन्या, एकांतमें उखलीमें धान डालकर कूटनेलगी सो उसके हाथमेंके शंखके कङ्कण बड़ा खटखट शब्द करने लगे ॥ ६॥ तब वह बुद्धिमती कन्या. यह अपने आप ही धान कूटना अपनी दरिद्रता को जतानेवाला है, ऐसा जानकर लज्जित हुई, और फिर उसने अपने हाथमेंके एक एक करके कङ्कण निकाले दो दो कङ्कण हाथोंमें शेष रह गये ॥ ७ ॥ और फिर कूटनेलगी तो उन दो २ कंकणोंका भी शब्द होनेलगा, तब उसने उनमें से भी एक २ निकालडाला, तब एकसे शब्दका होना बन्द हुआ ॥ ८ ॥ हे शत्रु-नाशक यदु राजन्! लोकोंका तत्त्व जाननेके निमित्त इन सब लोकोंमें फिरनेवाला मैं, स्वाभाविक ही तहाँ पहुँचगया था, तब उस कन्याका यह उपदेश मैंने ग्रहण करा है कि-॥ ९ ॥ बहुतसे पुरुषोंका एक स्थान पर निवास होने पर कलह होता है और दो का एकत्र वास होनेपर परस्पर बातचीत होती है इस कारण चतुरपुरुष उस कुमारीके कंकणकी समान इकला ही विचरे ॥ १० ॥ अब चित्तकी एकाग्रता करने पर वह, द्वैत होनेपर भी स्फुरित न होय ऐसी समाधिका कारण होती है ऐसा बाण बनानेवालेसे मैंने सीखा है सो कहता हूँ-एक बाण बनानेवाला,अपनी दुकानमें बैठा हुआ बाण बनारहा था, उसका चित्त बाण बनानेमें, बननेके निमित्त बाणकी ओर लगरहा था; उसने जैसे उस समय समीपके मार्गमेंको बाजे और सेनाके साथ जानेवाले भी राजाको नहीं जाना, तैसे ही जिसका मन ब्रह्माकार

यद्येतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून्। सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिधनम् ॥१२॥ तदेवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरन्तरं वा यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ॥ १३ ॥ एकाचर्यनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः। अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ॥१४॥ गृहारंभोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः। सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ १५ ॥ एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया। संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ॥ १६ ॥ एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः। कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु। सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ १७ ॥ परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः। केवलानुभवानन्दसंदोहो निरुपाधिकः ॥ १८ ॥ केवलात्मानुभावेन

होता है वह योगी, किसी भी पदार्थसे होनेवाले सुखदुःखको नहीं जानता है, ऐसा जानकर योगी आलस न करके आसन और श्वासको जीतकर वैराग्य और अभ्याससे स्थिर कराहुआ अपना मन, एक स्थानमें लगावे, यदि कहो कि—कहाँ लगावे तो—जो यह मन, विषय न होय तो सुषुप्तिमें लय पाता है और विषय होय तो उसमें आसक्त होता है, वह मन जहाँ स्थिति पाने पर धीरे २ कर्मवासनाओंको छोड़ देता है और बढ़ेहुए सत्त्वगुणसे, तमोगुण रजोगुणको दबाकर उन तमोगुण रजोगुणके लयविक्षेपरूप कार्योंसे रहित होता हुआ जिसके स्वरूपसे रहता है तिन भगवान्में लगावे, इस प्रकार जिसने परमात्मामें चित्त लगाया है वही पुरुष कृतकृत्य होकर दर्शन आदि करके बाहर द्वैतकी और स्मरणसे मानसिक द्वैतकी स्फूर्त्तिको नहीं रखता है ॥ ११—१३ ॥ अब सर्पसे जो सीखा उसका वर्णन करते हैं कि—जैसे सर्प लोकोंसे भयकी शंका करके इकला फिरता है, अपना एक स्थान नहीं रखता है, सावधानीके साथ एकांतमें रहता है, अपना विषियरपन वा निर्विषपन किसी प्रकार भी लोकोंको नहीं समझने देता है, सहायतारहित होकर थोड़े शब्द उच्चारण करता है तैसे ही ऋषि भी इकला ही फिरे, अपना एक स्थान नियत न रक्खे, सावधान और एकांतमें रहे अपनी रीतिभाँति किसी प्रकार भी लोकोंको समझने न देय, अपने साथ किसीको न लेय, थोड़ा भाषण करे ॥ १४ ॥ और घर बनानेकी रीति अपनेको अतिदुःख देनेवाली होती है और अपना शरीर थोड़े काल रहनेवाला होनेके कारण निष्फल भी है ऐसा विचारकर योगी, जैसे सर्प दूसरेके बनाये हुए घरमें प्रवेश करके सुखसे रहता है तैसे ही दूसरेके बनाये हुए घरमें ही निर्वाह करलेय ॥ १५ ॥ अब साधनसामग्रीके विना केवल ईश्वरसे ही जगत्के उत्पत्ति प्रलय होते हैं, यह मैंने मकड़ीके दृष्टांतसे निश्चय करा है ऐसा कहनेके निमित्त पहिले संहारकी रीति कहते हैं—एक, नारायण देव ईश्वर, अपनी मायासे पहिले उत्पन्न करे हुए इस जगतका 'अपनी शक्तिरूप कालसे' संहार करके, कल्पके अन्तमें सत्त्व आदि सब शक्तियोंके प्रकृतिमें लीन होनेपर उस समय सकल प्रपञ्चके आधार, सबोंके आश्रय, सजातीय आदि भेदशून्य, प्रकृति पुरुषोंके ईश्वर, ब्रह्मादिकोंको और जीवन्मुक्तोंको प्राप्त होनेवाले, मोक्ष शब्दसे उच्चारण करे

स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् । संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ॥ १९ ॥ तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् । यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ॥२०॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्त्रतः । तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥२१॥ यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया । स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥२२॥ कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः । याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥ २३ ॥ एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः । स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥ २४ ॥ देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् । तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्य-

जानेवाले निरुपाधिक और परमानन्दरूप एक आदिपुरुष ही रहते हैं ॥ १६-१८ ॥ हे शत्रुनाशक राजन् ! तदनन्तर वही परमात्मा केवल अपने प्रभावरूपकालसे, त्रिगुणमयी अपनी मायाको क्षोभित करके उससे सृष्टिके आरम्भमें सूत्र (महत्तत्त्व) को उत्पन्न करते हैं ॥ १९ ॥ वह सूत्र अहङ्कारके द्वारा त्रिगुणमय जगत्को उत्पन्न करने लगता है तब उसको ही तीनों गुणोंका कार्य कहते हैं, उसको महतत्त्व और सूत्र कहनेका कारण यह है कि-जिस सृष्टिरूप कारणके विषें यह विश्व ओतप्रोत भरा हुआ है और जिस वायुरूप सूत्रसे जीव संसार पाता है ॥ २० ॥ इस प्रकार सीखे हुए अर्थको कह कर अब दृष्टान्त कहते हैं-जैसे मकड़ी नाम वाला कीड़ा, अपने हृदयमेंसे मुखके द्वारा तन्तुओंको फैला कर घर बनाता है और उसके द्वारा, बहुत समय पर्यन्त क्रीड़ा करके फिर उन सब तन्तुओंको निगल जाता है, इस कार्य में उसको दूसरे साधनकी अपेक्षा नहीं होती है ऐसे ही परमेश्वर भी अपनेमें से जगत्को फैलाकर उसके द्वारा क्रीडा करके अन्तमें उस जगत्को अपनेमें लीन कर लेते हैं ॥ २१ ॥ अब भगवान्का ध्यान करने वाले भक्तोंको उनका सारूप्य प्राप्त होना आश्चर्य नहीं है ऐसा भृङ्गी नामक कीड़ेसे मैंने सीखा है सो वर्णन करता हूँ कि-जो प्राणी अपनी निश्चयात्मक बुद्धिसे जिस जिस विषय पर अपना मन, स्नेह से, द्वेषसे वा भयसे निश्चल धारण करता है वह तिस २ के समानरूपको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ इस विषयमें दृष्टान्त यह है कि—भृंगी नाम वाले भ्रमर करके भीत (दीवार) आदिके आश्रयसे मट्टीका घर बना कर उसमें बन्द करके रक्खा हुआ किसी भी प्रकारका कीड़ा भयसे उसका ध्यान करता हुआ, हे राजन् ! पहिले रूपको छोड़ कर तिस ही रूपसे तिस भृंगीकी समान रूपको प्राप्त होता है, तब भगवान्का ध्यान करने वाले पुरुष, देहान्त होने पर दूसरे शरीरसे उन भगवानके स्वरूपको पावेंगे, इनका क्या कहना ! ॥ २३ ॥ हे प्रभो यदु राजन् ! इसप्रकार इन चौबीस गुरुओंसे मैंने यह बुद्धि (शिक्षा) पाई है, अब अपने शरीरसे ही पाई हुई शिक्षा मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ २४ ॥ यह देह भी मेरा गुरु है, क्योंकि—यह, वैराग्य और ज्ञानका कारण है, तिसमें यह जन्ममरण और निरन्तर परिणाममें दुःख देने वाले फलको धारण करता है, इससे वैराग्यका कारण है और इस देहके द्वारा उत्तम प्रकारसे मैं तत्त्वोंका विचार करता हूँ इससे यह ज्ञानका कारण है ऐसा अति

वसितो विचराम्यसंगः ॥ २५ ॥ जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रिय-चिकीर्षया वितन्वन्। स्वान्ते स कृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वाऽस्य बीजमवसी-दति वृक्षधर्मः ॥ २६ ॥ जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्। घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ २७ ॥ सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृपपशून् खग-दंशमत्स्यान्। तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः २८ लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः। तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥२९॥ एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि। विचरामि महीमेतां मुक्तसंगोनहंकृतिः ॥३०॥ न ह्येकस्माद्

उपकारी भी यह देह, अन्तमें श्वान और गीदड़ आदिकोंका भक्ष्य होता है, ऐसा निश्चय करके, इसकी आस्था छोड़ कर मैं असंगपनेसे विचारता हूँ ॥ २५ ॥ अब देहका फल निरन्तर परिणाममें दुःखदायक कैसे है ? सो कहता हूं-बड़े कष्टसे द्रव्य को इकट्ठा करने वाला पुरुष, जिस देहका भोग प्राप्त करनेकी इच्छासे, स्त्री, पुत्र, धन, पशु, सेवक, घर और मान्य पुरुषोंका पोषण करता है, वह शरीर आयुके समाप्त होते ही फिर दूसरे शरीरके उत्पन्न होनेका बीजरूप कर्म उत्पन्न करके, जैसे वृक्ष दूसरे वृक्षका बीज उत्पन्न करके नाशको प्राप्त होता है तैसे ही, नाशको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ और इस देहको वा देहाभिमानी पुरुषको, कभी तो जिह्वा रसकी ओरको खेंचती है, कभी तृषा जलकी ओरको खेंचती है, तैसे ही मूत्रेंद्रिय मैथुनकी ओरको, त्वचा स्पर्शकी ओरको, पेट अन्नकी ओरको घ्राणेंद्रिय सुगन्धकी ओरको और चञ्चल दृष्टि रूपकी ओरको खेंचती है, तैसे ही कर्मेन्द्रियें बोलना, देना लेना, जाना आना और मलमूत्रका त्याग करना इनकी ओरको खेंचती हैं, तात्पर्य यह कि—जैसे बहुतसी सपत्नी स्त्रियें, एक पतिको पकड़ कर अपनी अपनी ओरको खेंचती हैं और उसको दुःख होता है तिसी प्रकार इसको भी दुःख होता है ॥२७॥ इस प्रकार तीन श्लोकोंसे, देह वैराग्य और ज्ञानका कारण है ऐसा कह कर अब इस देहकी अतिदुर्लभता दिखाते हुए ईश्वरनिष्ठाका वर्णन करते हैं कि—परमेश्वर ने, अपनी मायाशक्तिसे, वृक्ष, सर्प, पशु,पक्षी, डाँस और मत्स्य आदि अनेक शरीर उत्पन्न करे परन्तु उनमें किसीकी भी बुद्धि, परमात्माको प्रत्यक्षरूपसे जाननेमें समर्थ नहीं है ऐसा जान कर, वह सन्तुष्ट नहीं हुए, तदनन्तर ब्रह्मका अपरोक्ष-ज्ञान प्राप्त करने वाली बुद्धिसे युक्त पुरुषशरीरको उत्पन्न करके वह देव सन्तोष को प्राप्त हुए॥२८॥ इस कारण इस लोकमें बहुत जन्मोंके अन्तमें, अनित्य होकर भी पुरुषार्थ देने वाला, इस कारण ही अत्यन्त दुर्लभ यह मनुष्यशरीर दैवसे प्राप्त होने पर, यह वारम्वार मरनेवाला है इसकारण जबतक मरकर गिर न पड़े तबतक ही, धैर्यवान् पुरुष, बड़ी शीघ्रतासे मोक्षके साधनके निमित्त यत्न करे, क्योंकि विषयों का सेवन तो श्वान सूकर आदि योनियोंमें भी प्राप्त होता ही है, फिर उसके निमित्त यत्न करनेकी आवश्यकता ही क्या ? ॥ २९ ॥ ऐसे अनेकों प्रकारके महण

गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् । ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच । इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः । वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथा गतम् ॥३२॥ अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः । सर्वसंगविनिर्मुक्तः समचित्तो बभूव ह ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच । मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः । वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ॥ १ ॥ अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् । गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ॥ २ ॥ सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः ।

करने योग्य और त्यागने योग्य गुणोंका विचार करके अब तुम समर्थ विद्वान् होकर भी उद्योग क्यों नहीं करते हो ? इत्यादि प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि—इस प्रकार बहुतसे गुरुओंके प्रभावसे जिसको वैराग्य उत्पन्न हुआ है और अपरोक्षज्ञानरूप प्रकाशसे युक्त मैं, आत्मस्वरूपमें रह कर, सब प्रकारके कर्म करनेको समर्थ होकर भी, देहमें अहंकाररहित और स्त्रीपुत्रादिकोंमें ममता रूप संगरहित होकर इस पृथ्वी पर विचरता हूँ ॥ ३० ॥ अब बहुतसे गुरुओंकी कौन आवश्यकता है? श्वेतकेतु,भृगु आदिकोंने तो बहुतसे गुरु नहीं करे थे,ऐसा कहो तो—एक गुरुसे,बहुतसे विचारोंसे भरपूर और स्थिर ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि—अद्वितीय ब्रह्मको, किन्हीं ऋषियोंने, प्रपञ्चरहित और कितनोंहीने प्रपञ्चसहित इत्यादि अनेकों प्रकारसे वर्णन करा है, तिसमें यह गुरु केवल परमार्थका उपदेश करनेके विषयमें ही नहीं है किन्तु अन्वयव्यतिरेकोंसे, आत्माके विषयकी असम्भावना विपरीतभावना दूर करनेके विषयमें हैं, इस कारण इनका बहुत होना योग्य ही है, ज्ञानोपदेश करनेवाला गुरु तो शास्त्रमें एक ही कहा है ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! इस प्रकार उन गम्भीर बुद्धि ब्राह्मण (दत्तात्रेय) ने राजा यदुसे कहा तब उन राजा यदुने उनको प्रणाम करा और उनकी पूजा करी,तदनन्तर तृप्तहुए वह ब्राह्मण उन राजाकी आज्ञा लेकर,जैसे आये थे तैसेही अपनी इच्छाके अनुसार चलेगये३२ हमारे पूर्वपुरुषाओंके भी पूर्वज (वृद्ध) वह राजा यदु, अवधूतका भाषण सुनकर पुत्रादि सब संगोंसे मुक्त होते हुए परब्रह्ममें चित्त लगा कर तत्पर हुए ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ * छ

चौबीस गुरुओंकी शिक्षाके वर्णनसे असम्भावना दूर होकर कुछ ज्ञानको प्राप्त हुए उद्धवजीको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होनेके निमित्त, आरम्भसे साधनोंका वर्णन करते हुए श्रीभगवान् कहने लगे कि—हे उद्धवजी ! गीता पञ्चरात्र आदिकोंमें मेरे कहे हुए पूजा-नमस्कार आदि वैष्णवधर्ममें सावधान रहकर,मेरा ही आश्रय करनेवाला मुमुक्षु पुरुष, उस धर्ममें विरोध न आवे इस प्रकार निष्कामभावसे वर्ण, आश्रम और कुलके विहित धर्मका आचरण करे ॥ १ ॥ अब, निष्कामभाव कैसे हो सकता है? यह कहो तो पहिले स्वधर्मका आचरण करके शुद्धचित्त हुआ पुरुष विषयासक्त हुए सकल प्राणियोंके विषय सत्य हैं ऐसे,अभिमानसे आरंभ करे हुए सकल

नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीगुणैः ॥ ३ ॥ निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् । जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥ ४ ॥ यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् । मदभिज्ञं गुरुं शांतमुपासीत मदात्मकम् ॥ ५ ॥ अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः । असत्वरोर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ६ जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु । उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥ ७ ॥ विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् । यथाऽग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥८॥ निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् । अन्तः प्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥ ९ ॥ योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि । संसारस्तन्नि-

कर्मोंका विपरीत फल प्राप्त होता है, ऐसा देखे, अर्थात् ऐसा करते २ निष्कामभाव प्राप्त होता है॥२॥अब काम्यविषयोंके मिथ्या होनेके कारण भी निष्कामभाव प्राप्त होता है ऐसा कहते हैं-जैसे स्वप्न देखने वाले पुरुषका नानाप्रकारके पदार्थोंका देखना निष्फल है, अथवा जैसे चिंतन करने वाले पुरुषका अनेकों प्रकारके मनोरथ करना निष्फल है तैसे ही इन्द्रियोंके द्वारा बाहरी विषयोंका जो सेवन करना वह, एक आत्मामें नाना प्रकारसे कल्पित होनेके कारण निष्फल है ॥ ३ ॥ ऐसा मनमें विचार कर मुमुक्षु पुरुष, काम्य कर्मोंका त्याग करके, नित्य नैमित्तिक कर्मोंका ही निष्कामभावसे सेवन करे, और आत्मविचारके विषयमें प्रवृत्त होय तो वह निष्काम कर्म करने वाले वेदका भी अधिक आदर न करे ४ किन्तु अहिंसा आदि यमोंका ही आदरके साथ सेवन करे, शौचादि नियमका शक्तिके अनुसार जितनेसे आत्मज्ञानमें विरोध न आवे, उतना ही सेवन करे और तत्त्वविचारके निमित्त मेरे स्वरूपको जानने वाले, राग लोभादि दोषरहित और मेरे ध्यानसे मेरा स्वरूप ही हुए गुरुका सेवन करे ॥ ५ ॥ अब गुरु सेवकके धर्म कहते हैं-गुरुकी सेवा करने वाला मुमुक्षु, मैं उत्तम हूँ ऐसा अभिमान और दूसरेसे डाह न करे, किन्तु आलस्य रहित, स्त्रीपुत्रादिकी ममतासे शून्य और गुरुमें दृढप्रेम करने वाला होय, और वह व्यग्रता रहित होकर आत्मवस्तुको जाननेकी इच्छा करे, दूसरेकी निन्दाकी इच्छा न करे, किन्तु सत्यवक्ता और स्त्री, पुत्र, घर, क्षेत्र, स्वजन और धन आदिके विषें, अपना समान ही प्रयोजन है ऐसा देखने वाला होय अर्थात् सबके देहोंमें आत्माके एक होनेके कारण स्त्री पुत्रादिके ऊपर ही विशेष ममता क्यों रक्खे ? ऐसा विचार कर उनमें उदासीन रहै और गुरुकी सेवा करे ॥६—७॥ अब, देह आदिसे निराला आत्मा कौन है ? जिसकी एकतासे सबों में समता प्राप्त होती है ऐसा कहो तो-जैसे अग्नि दाह्य(जलाने योग्य), और प्रकाश्य काठसे, निराला ही जलाने वाला और प्रकाश करने वाला है तैसे ही दृश्य और जड़ स्थूल सूक्ष्मरूप दोनों देहोंसे, उनका देखने वाला और प्रकाशक आत्मा अत्यन्त विलक्षण (निराला ही) है ॥ ८ ॥ और काठमें प्रविष्ट हुआ अग्नि जैसे काठके निमित्तसे-नाश, उत्पत्ति, छोटापन, बड़ापन, और अनेकपनेको पाता है परन्तु वह स्वयं नाश आदिसे रहित होता है तिसी प्रकार देहमें प्रविष्ट हुआ आत्मा भी

बन्धोऽयं पुंसो विद्या छिदात्मनः ॥ १० ॥ तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् । संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥ ११ ॥ आचार्योऽरणिराद्यः स्यादंतेवास्युत्तराऽरणिः । तत्संधानं प्रवचनं विद्यासंधिः सुखावहः ॥ १२ ॥ वैशारदी-सातिविशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम् । गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाऽग्निः ॥ १३ ॥ अथैषां कर्मकर्तॄणां भोक्तॄणां सुखदुःखयोः । नाना-

देहके निमित्तसे-अनित्यत्व, आदित्व, बद्धत्व, और अनेकत्व आदि धर्मोंको पाता है, परन्तु वास्तवमें वह नित्य, अनादि, व्यापक, मुक्त और एक आदि रूप है ॥९॥ अब अग्निको काष्ठके संयोगसे उसके धर्म प्राप्त होते हैं, यह योग्य ही है, आत्मा तो असङ्ग है, उसको देहसे और देहके धर्मोंसे सम्बन्ध कैसे होता है ? ऐसी शङ्का आने पर कहते हैं कि-ईश्वरकी वशीभूत मायाके, इन्द्रियादि रूप परिणामको प्राप्त हुए गुणोंसे, जो यह सूक्ष्म और स्थूल शरीर बना है, इसके अध्यासका करा हुआ ही यह जन्म मरण आदि रूप संसार जीवको प्राप्त हुआ है, उसकी निवृत्ति आत्मज्ञान ही करता है, ॥ १० ॥ इसकारण विचारके द्वारा, कार्य कारण समुदाय रूप देहमें ही विद्यमान शुद्ध परमात्माको जानकर, इस देहादिमें मानी हुई आत्मबुद्धिको स्थूल सूक्ष्मक्रमसे निरास करे ११ अब, गुरुसे पाई हुई विद्या ही, अविद्याको और अविद्यासे उत्पन्न हुए अध्यासको दूर करनेमें समर्थ होती है, ऐसा स्पष्ट करनेके निमित्त विद्या की उत्पत्ति अग्निकी उत्पत्तिके वर्णनके द्वारा निरूपण करते हैं आचार्य नीचेकी अरणि है, शिष्य ऊपरकी अरणि है, उन दोनों अरणियोंके मध्यका जो मथनेका काष्ठ सो उपदेश है और उससे उत्पन्न हुई जो ब्रह्मविद्या वह अरणीके और मथनेके काष्ठके मिलने पर उत्पन्न हुई अग्निकी समान सुखकारी है अर्थात् अविद्यादि दोषों को दूर करके परमानन्दरूप मोक्षकी प्राप्ति करादेती है ॥१२॥ अब, उस ब्रह्मविद्या की अग्निसे समता कहते हैं कि-चतुर शिष्य करके ग्रहण करी हुई और चतुर गुरु की दीहुई वह उत्तम ब्रह्मविद्या, गुण कार्यरूप मायाको (संसारको) दूर करके, जिन गुणोंसे उत्पन्न हुआ जगत् जीवको संसार प्राप्त होनेका कारण होता है उन ही गुणोंको जलाकर, जैसे अग्नि काठको जलाकर अन्तमें आप भी शान्त होजाता है तैसे ही, अन्तमें आप भी शान्त होजाती है, इस प्रकार ज्ञानको प्राप्त हुआ यह जीव, कार्य, कारण और विद्याका भी व्यवधान दूर होनेके कारण परमानन्दरूप होजाता है ॥१३॥ इस प्रकार स्वप्रकाशक, ज्ञानरूप, नित्य और एक ही आत्मा है और उसमें कर्तापन आदि धर्म देहरूप उपाधिसे ही भासते हैं, तिस आत्मासे निराला सब जगत् अनित्य और मायामय है इसकारण सब विषयोंसे विरक्त होकर आत्म-ज्ञान करके मुक्त होजाना है ऐसा 'विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मात्' इत्यादि वाक्योंसे कहा इस प्रकार श्रुतियोंके आधारसे निर्णय करे हुए भी अर्थके विषयमें मतान्तरके विरोधसे संशय न होय इसकारण उस मतका खण्डन करनेके निमित्त अपने आप ही कथन करके दिखाते हैं-अब यदि तुम कर्म करने वाले और कर्मोंके फल (सुख दुःख) भोगने वाले इन जीवोंका नानात्व मीमांसकोंकी समान मानते होओ, तैसे

स्त्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥ १४ ॥ मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा । तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥ १५ ॥ एवमप्यङ्ग सर्वदा देहिनां देहयोगतः । कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत् ॥ १६ ॥ अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातंत्र्यं च लक्ष्यते । भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत्॥१७ न देहिनां सुखं किञ्चिद्विद्यते विदुषामपि । तथा च दुःखं मूढानां वृथाऽहंकरणं परम् ॥ १८ ॥ यदि प्राप्तिं विघातं च जानंति सुखदुःखयोः । तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥ १९ ॥ कोन्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरंतिके । आघातं

ही भोगके स्थान, भोगका काल, भोगके उपाय भूत कर्मोंका कहने वाला शास्त्र और भोक्ता आत्मा इन सबोंका नित्यत्व मानते होओ, तैसे ही माला, चन्दन, स्त्री आदि सब पदार्थोंकी स्थिति प्रवाहरूपसे नित्य है और सत्य है, मायाकल्पित नहीं है ऐसा मानते होओ और एक समय घटका ज्ञान होता है, दूसरे समय पट का ज्ञान होता है, तीसरे समय तीसरे ही पदार्थका ज्ञान होता है,तिससे बुद्धि,धी, घटपटादि अनेकों आकारोंसे उत्पन्न होती है और भेदको प्राप्त होती है इसकारण आत्मा, नित्य ज्ञानरूप न होकर ज्ञान परिणामी है इस कारण मुक्तिके समय इन्द्रियरहित हुए आत्माको ज्ञानपरिणामीपना न होनेसे जडपनेसे मुक्ति प्राप्त होना पुरुषार्थ नहीं है इस कारण प्रवृत्तिमार्ग ही श्रेष्ठ है निवृत्तिमार्ग श्रेष्ठ नहीं है ऐसा मानते होओ तो-॥ १४—१५ ॥ हे उद्धवजी ! यह मीमांसकोंका मत है, इसको सच्चा माना जाय तो अनर्थका कारण होजायगा, यदि कहो कि-कैसे ? तो-सब ही प्राणियोंको देहके सम्बन्धसे, मास वर्ष आदि कालके अवयवों करके जो जन्म मरण आदि विकार बारम्बार प्राप्त होते हैं वह इस मतके अनुसार कभी भी दूर नहीं होसकेंगे ॥ १६ ॥ और इस लोकमें कर्म करने वाले और सुख दुःखोंको भोगने वाले जीवको पराधीनता देखनेमें आती है, क्योंकि—जीव यदि स्वाधीन होता तो इच्छा न होने पर भी उसके हाथसे जो दुष्कर्म होना है वह कदापि नहीं होता और उसको दुःख भी नहीं भोगना पड़ता,इससे मीमांसकोंके मतके अनुसार जीव कुछ स्वतन्त्र नहीं है, तब पराधीन हुए पुरुषको कौनसा विषय सुख देगा? अर्थात् कोई नहीं देगा ॥ १७ ॥ अब जो भली प्रकार कर्म करना जानते हैं वह सुखी होते हैं और जो भली प्रकार कर्म करना नहीं जानते हैं वही दुःखी होते हैं, ऐसा कहो तो—भली प्रकार उपाय जानने वाले भी प्राणियोंको किसी समय कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता है और मूढ़ पुरुषोंको भी किसी समय कोई भी दुःख प्राप्त नहीं होता है, तिससे यह कर्म कुशल होनेके कारण सुखी हैं ऐसा उन लोगोंका केवल व्यर्थ अभिमान ही है ॥ १८ ॥ अब वह पुरुष, सुखकी प्राप्तिका उपाय और दुःख को दूर करनेका उपाय जानते हैं ऐसा यद्यपि मानलिया तथापि वह पुरुष, जो साक्षात् मृत्यु प्राप्त होता है वह जैसे प्राप्त न होय तैसे उपायको नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ तथापि उनको, जबतक जीवित रहेंगे तबतक सुख ही होयगा, ऐसा कहो तो—यह ठीक नहीं है क्योंकि—जिसके आगे मृत्यु भय दिखाता हुआ खड़ा

नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः॥२०॥श्रुतं च दृष्टवद् दुष्टं स्पर्द्धाऽसूयात्ययव्ययैः। बह्वन्तरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥ २१ ॥ अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः। तेनापि निर्जितं स्थानं गच्छति तच्छृणु ॥ २२ ॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः। भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ॥ २३ ॥ स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते। गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् २४ स्त्रीभिः कामगयानेन किङ्किणीजालमालिना। क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥ २५ ॥ तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते। क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥ २६ ॥ यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वा जितेन्द्रियः। कामात्मा

है उसको, कौनसा धन आदि पदार्थ, वा शब्दादि विषय सुख देगा ? किन्तु जैसे वध करनेके स्थानमें लिये जाते हुए वधके योग्य अपराधीको उस समय दिया हुआ माला, चन्दन, मिष्टान्न आदि कोई भी पदार्थ सुख नहीं देता है तैसे ही जिसके आगे मृत्यु खडा है ऐसे इस जीव को कोई भी पदार्थ सन्तोष नहीं देता है ॥ २० ॥ इस लोकके सुखकी समान ही स्वर्गादि लोकमेंका सुख भी, दूसरेके सुखको न सहना, दूसरेके गुणोंमें दोष लगाना, नाश होना और प्रतिदिन कमी होते जाना इनके द्वारा दोषयुक्त है और 'जैसे अतिश्रेष्ठ है ऐसी सुनी हुई खेती, अतिवर्षा आदि बहुतसे विघ्नोंसे युक्त होनेके कारण निष्फल होती है, तैसे ही' परलोकमेंके सुख भी इस लोकमें करेहुए कर्मोंमेंके वैगुण्य आदि बहुत से विघ्नोंसे युक्त होनेके कारण निष्फल हैं ॥ २१ ॥ अब कर्म में विघ्न न पडें तो उसका फल स्वर्गादि सुख जैसा चाहिये वैसा मिलेगा, ऐसा कहो तो विघ्न न पड कर यदि उत्तम प्रकारसे धर्माचरण किया जाय तो उससे प्राप्त हुआ भी स्वर्गादिक स्थान जैसे निकल जाता है सो मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाला पुरुष,इस लोकमें यज्ञोंके द्वारा इन्द्रादिक देवताओंका यजन करके स्वर्गलोकमें जाता है और तहाँ अपने सम्पादन करे हुए दिव्यभोगोंको देवताओंकी समान भोगता है ॥२३॥ वह अपने पुण्यके प्रभावसे प्राप्तहुए सकल भोगोंसे परिपूर्ण सुन्दर विमान में अप्सराओंके मध्यमें उनके मनको हरनेवाला रूप धारण करताहुआ विहार करने लगता है तब उसके समीपमें गन्धर्व आदि उसके यशको गाते हैं २४ तब छोटी २ घण्टियोंके समूहोंसे शोभा पानेवाले और यथेच्छ गमन करनेवाले विमानमें बैठ कर देवताओंके नन्दनवन आदि क्रीड़ा करनेके स्थानोंमें स्त्रियोंके साथ सुखसे क्रीड़ा करनेवाला वह पुरुष, पुण्यके समाप्त होने पर मैं नीचे गिरूँगा, यह नहीं जानता है ॥ २५ ॥ वह पुरुष, विषयभोगसे पुण्यकी समाप्ति होने पर्यन्त स्वर्गमें आनन्द पाता है, परन्तु पुण्य क्षीण होते ही तहाँसे गिरनेकी इच्छा न करता हुआ भी कालके गिराने पर नीचे गिरता है ॥२६॥ प्रवृत्ति दो प्रकारकी है-एक तो विधिवाक्यके कहेहुए काम्यकर्ममें, दूसरी विधिका उल्लंघन करके अधर्ममें, तिसमेंसे काम्यकर्ममें प्रवृत्त होनेकी गति तो कह दी अब अधर्मप्रवृत्तिकी गति कहते हैं यदि वह पुरुष,विषयासक्त पुरुषोंके संगसे अधर्ममें तत्पर होकर इन्द्रियोंको न जीत कर

कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः ॥२७॥ पशूनविधिनालभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् । नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥२८॥ कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन् देहेन तैः पुनः । देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ॥ २९ ॥ लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् । ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्द्धपरायुषः ॥३०॥ गुणाः सृजंति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् । जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुंक्ते कर्मफलान्यसौ ॥ ३१ ॥ यावत्स्याद् गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः । नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदेव हि ॥ ३२ ॥ यावदस्यास्वतंत्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् । य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यंति शुचार्पिताः ॥ ३३ ॥ काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च । इति

विषयासक्त, कृपण, लोभी, स्त्रीलम्पट, और प्राणिमात्रकी हिंसा करनेवाला होय तो वह शास्त्रकी विधिके विना पशुओंको मारकर प्रेतगणोंका और भूतगणोंका आराधन करने लगता है और कर्मके वशीभूत हो नरकमें जाकर तहाँके दुःखोंको भोगता है और तदनन्तर अज्ञानसे भरीहुई स्थावर आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है२७-२८ इस प्रकार दुःख ही जिसका अन्तका फल है ऐसे कर्मोंको देहसे करनेवाला यह प्राणी, उन कर्मोंसे फिर देह पाता है, परन्तु ऐसे संसारचक्रमें फिरनेवाले तिस मरणधर्मी प्राणीको कौन सुख होता है ? कोई सुख नहीं होसकता ॥२९॥ तथापि लोकोंके नित्य और लोकपालोंको अमर होनेके कारण सुख है ऐसा कहो तो-सब लोकोंको और कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले लोकपालोंको, अधिक तो क्या, परन्तु दो परार्द्धपर्यन्तकी परमायुवाले ब्रह्माजीको भी मुझसे भय है, इससे प्रवृत्तिमार्ग अनर्थका हेतु है ऐसा जानकर तिससे विरक्त होकर निवृत्त होना ही योग्य है३० इस प्रकार अपनी ईश्वरताको प्रकट करनेसे निरीश्वरवादी सांख्य आदिकोंका भी खण्डन हुआ, अब कर्त्ता भोक्तारूप ही आत्मा है, ऐसा जो उन्होंने कहा था तिस का खण्डन करते हैं कि-सत्वादिगुणोंकी कार्य जो इन्द्रियें वही कर्मोंको उत्पन्न करती हैं और सत्व आदि गुण, इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति करते हैं,आत्मा कुछ नहीं करता है इस कारण आत्माको कर्त्तापन नहीं है, और वह जीवात्मा तिन इन्द्रियादिकोंके विषैं अहङ्कारसे तादात्म्यको पाकर कर्मोंके फल भोगता है,इस कारण उसमें भोक्ता-पन भी औपाधिक भासता है,वह सत्य नहीं है३१अव आत्माको जो नानात्व कहा था वह भी औपाधिक ही है ऐसा वर्णन करते हैं-जब तक गुणोंका इन्द्रियरूपसे परि-णाम है तब तक ही आत्माको नानात्व (अनेकपना) है और जब तक यह आत्मा का नानात्व है तब तक कर्माधीनता आदि परवशपना है ॥ ३२ ॥ और जब तक परवशपना है तब तक ही उसको मुझ कालरूप ईश्वरसे भय है,तात्पर्य यह है कि-जो पुरुष, इन गुणोंके परिणामरूप शरीर, इन्द्रिय, पुत्र, स्त्री, विषय भोग आदिकों को सत्य मानकर अंगीकार करते हैं वह लोक आदिकोंके अनित्य होनेके कारण शोकयुक्त होकर मोहको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ अब, लोक आदि केवल अनित्य ही नहीं है किन्तु मायामय भी हैं ऐसा कहते हैं कि-हे उद्धवजी ! काल आदिक अनेक रूपोंसे प्रकृतिके गुणका परिणाम होनेपर, ज्ञानवान् पुरुष, काल, ईश्वर, वेद, लोक,

मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥३४॥ उद्धव उवाच । गुणेषु वर्त्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः । गुणैर्न बद्धयते देही बद्धयते वा कथं विभो ॥ ३५ ॥ कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः । किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ॥ ३६ ॥ एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर । नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ३७ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽध्यायः॥१०॥

श्रीभगवानुवाच । बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः । गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न च बन्धनम् ॥ १॥ शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्च मायया ।

स्वभाव और धर्म, ऐसे मेरा ही बहुत प्रकारसे वर्णन करते हैं, इससे वह पुरुष काल आदि रूप मुझसे निराले नहीं हैं, इस कारण निवृत्ति ही मुक्तिका कारण होनेसे श्रेष्ठ है ॥३४॥ इस प्रकार एक ही आत्माको गुणकार्यरूप देहके सम्बन्धसे संसार और आत्मज्ञानसे मुक्ति होती है ऐसा कहकर उसकी ही मतान्तरोंके खण्डनसे दृढ़ता करने पर उद्धवजी कहने लगे कि—हे विभो ! सत्त्वादिगुणोंके दूर होने पर मुक्ति होती है अथवा उनके होते हुए ही होती है ? यदि कहो कि-दूर होने पर होती है तो-ज्ञानका साधन न होनेके कारण मुक्ति नहीं होगी और यदि ऐसा कहो कि-गुणोंके होते हुए ही होती है तो-गुणोंके कार्यरूप देहादिके विषैं अभिमानके साथ रहने वाला यह देहधारी, देहसे होने वाले कर्मोंके विषैं और सुख दुःखादिके विषैं बद्ध क्यों नहीं होता है ? यदि कहो कि-वह आकाशकी समान अनावृत (न घिरा हुआ) है इस कारण बद्ध नहीं होता है तो-वह पहिले ही गुणोंसे कैसे बद्ध होता है ? ॥ ३५ ॥ अब यदि गुणोंके होते हुए ही उनके अहंकारसे बद्ध होता है और तिस अहंकारकी निवृत्तिसे मुक्त होता है ऐसा मान लें तो-उसको कैसे जानें इससे बद्ध और मुक्त हुआ पुरुष कैसा वर्त्ताव करता है ? कैसा विहार करता है ? और किन लक्षणोंसे जाना जाता है ? तैसे ही भोजन करना, मल मूत्रका त्याग करना, सोना, बैठना, जाना, आना आदि व्यवहार कैसे करता है ? ॥ ३६ ॥ हे प्रश्नको जानने वालोंमें श्रेष्ठ अच्युत ! तुम इन मेरे प्रश्नोंका उत्तर कहो, क्योंकि— एक ही आत्मा अनादि गुणोंके सम्बन्धसे नित्यबद्ध कैसे होता है ? और वह स्वयं नित्यमुक्त कैसे होता है ? इस विषयमें मुझे भ्रम होरहा है ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ ॥

एक ही आत्मा ईश्वररूपसे नित्यमुक्त और जीवरूपसे नित्यबद्ध कैसे है ? इस विषयमें मुझे भ्रम है, ऐसा जो तुम कहते हो,सो क्या तुम्हें वास्तवमें विरोध प्रतीत होता है ? अथवा कुछ एक विरोधका भास होता है ? यदि कहो कि-वास्तविक प्रतीत होता है तो-ठीक नहीं, क्योंकि—सत्त्वादि गुण मायासे उत्पन्न हुए हैं, इस कारण मायासे रहित मुझको मोक्ष वा बन्धन कुछ भी नहीं है, ऐसा मेरा ही करा हुआ निर्णय है, इसके ऊपर अधिक कुतर्क करनेकी आवश्यकता नहीं है, तात्पर्य यह है कि-उपाधिरूप जो सत्त्वादि गुण वह,मेरी मायासे कल्पित हैं,मायाके सिवाय दूसरा कोई भी उनका मूल नहीं है,जो पदार्थ मायाकल्पित है वह रज्जुमें भासने वाले

स्वप्नो यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी॥२॥ विद्याऽविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम्। मोक्षबंधकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥ ३ ॥ एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते। बन्धोऽस्याविद्ययानादिर्विद्यया च तथेतरः ॥ ४ ॥ अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते। विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ॥५॥ सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे। एकस्तयोः खादति पिप्प-

---

सर्पकी समान ही भासता है, वास्तवमें सत्य नहीं है, इस कारण बन्ध और मोक्ष यह दोनों मायाकल्पित स्वरूपको धारण करे हुए हैं, मैं गुणोंके आधीन न होकर गुणोंका नियन्ता हूँ, इसकारण मुझे बन्धन वा मोक्ष कुछ भी नहीं है, जीवको भी वास्तवमें बन्ध मोक्ष नहीं हैं किन्तु वह अज्ञानसे गुणोंके वशीभूत हुआ सा है इस कारण उसको अज्ञानके रहने पर्यन्त बन्ध और तदनन्तर मोक्ष, यह प्रतीत होते हैं॥१॥ इसप्रकार, जैसे स्वप्न बुद्धिका निमित्त है अर्थात् बुद्धिके ही द्वारा भासता है, तैसे ही अन्तःकरणके धर्म शोक, मोह, सुख, दुःख, देहकी उत्पत्ति और लय, यह माया के रचे हुए अध्याससे ही आत्मामें भासते हैं इस कारण जीवको भी संसार अज्ञान वश ही है वास्तवमें नहीं है ॥ २ ॥ हे उद्धवजी ! प्राणियोंका मोक्ष और बन्धन करने वाली, विद्या और अविद्यारूप मेरी दो शक्ति हैं, वह—सृष्टि आदिकी कारणभूत हैं और मेरी माया करके रचना करी हुई हैं, इस कारण जब तक मैं अविद्या की प्रवृत्ति करता हूँ तब तक बन्ध होता है और जब विद्या देता हूँ तब मोक्ष भी प्राप्त होता है॥३॥हे महामते उद्धवजी ! एकही जो मैं आत्मा तिसका अंश मानाहुआ जो जीव है उसको ही अविद्याके द्वारा अनादि बन्धन प्राप्त होता है, तैसे ही विद्या के द्वारा मोक्ष भी प्राप्त होता है, इसका तात्पर्य यह है कि जैसे एक ही चन्द्र आदि पदार्थोंका, जल आदि उपाधिके कारण बिम्ब प्रतिबिंबरूप भेद होता है और उसमें जैसे जलके करे हुए कम्पायमान होना आदि धर्म प्रतिबिम्बको ही प्राप्त होते हैं, तैसे ही प्रतिबिम्बके भी उपाधिभेदसे भेद होनेके कारण एक जलपात्रके फूट जाने पर उसमेंका एक प्रतिबिंब ही बिम्बमें एकताको प्राप्त होता है, दूसरे घटमेंके प्रतिबिम्बको नहीं प्राप्त होता है, तैसे ही अविद्यामें प्रतिबिम्बित हुए मेरे अंशरूप जीव को ही अविद्याका करा हुआ बन्धन और विद्याका करा हुआ मोक्ष होता है, प्रत्येक जीवोंकी उपाधि भिन्न २ होनेके कारण उनके बन्धमोक्षकी व्यवस्था नहीं होती है४ अब बद्ध और मुक्तका भेद मैं तुमसे कहता हूँ सुनो हे तात उद्धवजी ! एक तो जीवों का और ईश्वरका परस्पर भेद है, दूसरे जीवोंका जीवोंके साथ ही परस्पर भेद है, तिसमें जीव ईश्वरका भेद इसप्रकार है कि—वह जीवेश्वर शोक और आनंद रूप विरुद्ध धर्म वाले हैं और एकधर्मी (नाशवान्) शरीरके विषैं नियम्यपनेके और नियामकपनेके सम्बन्धसे रहते हैं ॥ ५ ॥ जैसे वृक्षके ऊपर घोंसला बना कर रहने वाले पक्षी वृक्षसे निराले होते हैं तैसे ही, जिसका वर्णन न होसके ऐसी मायाके द्वारा शरीररूप वृक्ष पर हृदयरूप घोंसला बना कर रहने वाले यह जीव ईश्वररूप पक्षी, देहसे निराले हैं और यह दोनों ही चैतन्यरूप होनेके कारण एकसे

लाभमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥ ६ ॥ आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्पलादो न तु पिप्पलादः । योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥ ७ ॥ देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्नाद्यथोत्थितः । अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्नदृग्यथा ॥ ८ ॥ इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च । गृह्यमाणेष्वहं कुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥ ९ ॥ दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा । वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्ताऽस्मीति निबध्यते ॥१०॥ एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने । दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥११॥ न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र

और एक मतिसे साथ रहनेवाले होनेके कारण सखा हैं, उनमें एक जीवरूपपक्षी पिप्पलाख (देहाभिमानसे होनेवाले कर्मका सुख सुखदुःखरूपफल) को भक्षण करता है दूसरा ईश्वररूप पक्षी, निराहार (कर्मफलरूप विषयभोगसे रहित) होकर भी, निजानन्दसे तृप्त होनेके कारण ज्ञानादि शक्तियोंसे जीवकी अपेक्षा अधिक है ॥६॥ उनमें कर्मफलको न भोगने वाला जो सर्वज्ञ ईश्वर वह अपनेको और दूसरे जीवको भी जानता है तथा कर्मफलको भोगने वाला जो जीव वह अपनेको और परमात्मा को भी नहीं जानता है इस कारण ही वह देहादिकोंका आत्मभावसे अभिमान धारण करता है, इससे जो अविद्यासे युक्त जीव है वह अनादिकालसे बद्ध है और जो विद्यासे युक्त ईश्वर है वह नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ अब बद्धमुक्त जीवोंका ही परस्पर भेद कहते हैं-जैसे स्वप्न देख कर उठा हुआ पुरुष, स्मरण आये हुए स्वप्नके देहमें रहता हुआ भी उसमेंके सुख दुःखादिकोंके संबन्धसे छुटाहुआ होनेके कारण उसमें रहता हुआसा नहीं होता है, तैसे ही जीवन्मुक्त पुरुष, संस्कारवश देहमें स्थित होय तो भी देहसम्बन्धी सुख दुःखादिकोंका संबन्ध छूट जानेके कारण देह में रहा हुआसा नहीं होता है और जैसे स्वप्नको देखने वाला जीव, वास्तविकरूप से उस देहमें न रहता हुआ भी उसमेंके सुखदुःखादिकोंके सम्बन्धसे उसमें रहता हुआसा होता है, तैसे ही अज्ञानी जीव, वास्तवमें देहके सम्बंधसे रहित होकर भी देहनिमित्तक सुखदुःखोंका अपनेमें अध्यास करके देहके संबंधसे युक्तसा होता है ॥ ८ ॥ गुणोंके कार्यरूप इन्द्रियोंसे गुणोंके कार्यरूप विषयोंका सेवन करने पर भी जो राग द्वेषादिरहित मुक्तजीव है वह, मैं इन विषयोंको ग्रहण करता हूँ ऐसा नहीं मानता है, क्योंकि-गुणोंकी कार्यरूप इन्द्रियें, गुणरूप विषयोंको ग्रहण करती हैं उसमें मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसा वह मानता है ॥ ९ ॥ और अज्ञानी जीव तो पूर्वकर्मोंके वशीभूत शरीरमें रह कर, इंद्रियोंसे होने वाले कर्मोंका मैं कर्त्ता हूँ ऐसा अभिमान धारण करके उन शरीरादिकोंमें बद्ध होता है, इन तीनों श्लोकों करके, ज्ञानी कैसा बर्त्ताव करता है इस प्रश्नका, सुखदुःख शून्य और निरभिमान होकर देहके विषैं बर्त्ताव करता है ऐसा उत्तर जाने ॥ १० ॥ अब दूसरा भेद कहकर, कैसा भोजन करता हैं इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर कहते हैं-इन्द्रियोंके कर्म मुझे कुछ बन्धन नहीं करते हैं, ऐसा जान कर विरक्तहुआ विद्वान् जीव यद्यपि-सोना, बैठना, फिरना स्नान करना, देखना, स्पर्श करना, सूँघना, भोजन करना, सुनना इत्यादि कर्मोंमें

तत्रादयन् गुणान् । प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सविताऽनिलः ॥१२॥ वैशारद्येक्षयाऽसंगशितया छिन्नसंशयः । प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥१३॥ यस्य स्युर्वीतसंकल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् । वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥ १४ ॥ यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया । अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥ १५ ॥ न स्तुवीत न निंदेत कुर्वतः साध्वसाधु वा । वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ् मुनिः ॥१६॥ न कुर्यान्न वदेत्किञ्चिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा । आत्मारामोनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥ १७ ॥ शब्दब्रह्मणि

तिन २ विषयोंका तिन २ इंद्रियोंसे भोग करता है तथापि उन कर्मोंका अभिमान अपनेमें धारण न करनेके कारण प्रकृतिके कार्यरूप देहमें साक्षी होकर रहने वाला भी वह जीव, तिसमेंके कर्मोसे जैसे अज्ञानी बन्धन पाता है किन्तु जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी अथवा जैसे सूर्य, जलमें प्रतिबिम्बित होने पर भी अथवा जैसे वायु सर्वत्र विचरने पर भी कहीं आसक्त नहीं रहता तैसे ही, कहीं भी आसक्त नहीं होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ किन्तु वैराग्यसे तीक्ष्ण हुई ब्रह्मविद्या करके जिसके असम्भावना आदि दोष दूर हुए हैं ऐसा वह विद्वान् पुरुष, स्वप्नसे जगे हुए पुरुषकी समान देहादि प्रपञ्चसे पृथक् होता है, इस प्रकार बद्धपुरुष और मुक्त किस प्रकार भोगोंको भोगते हैं इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर कहा ॥ १३ ॥ अब बद्ध और मुक्त पुरुष कैसे विहार करता है इसके उत्तर रूपसे उनका भेद कहते हैं कि-जिस पुरुषके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि की यह खाऊँ, यह देखूँ, यह प्राप्त करूँ इत्यादि' वृत्तियें, संकल्पोंसे रहित होती हैं, वह देहमें स्थित होय तो भी उस देहके गुणोंसे मुक्त है, इस कारण मुक्त पुरुष, प्राणादिकी वृत्ति संकल्पसे रहित रखकर विहार करता है और बद्ध पुरुष, प्राणादिकोंकी वृत्तियोंको संकल्पयुक्त रखकर विहार करता है ऐसा जाने ॥ १४ ॥ इस प्रकार बद्धमुक्तोंके स्वयं जानने योग्य लक्षण कहकर अब, कौनसे लक्षणोंसे जाना जाता है इसके उत्तररूपसे दूसरे भी सहजमें जानने योग्य भेद कहते हैं जिसका शरीर दुष्ट पुरुषोंसे पीड़ित किया जाता है और किसी समय दैववश कुछ एक पूजा जाता है परन्तु यदि वह पुरुष, विद्वान् होय तो उसका मन हर्षखेद आदि विकारोंको नहीं प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ और वह गुण दोषोंसे रहित और समदृष्टि धारण करनेवाला मुनि, भला बुरा करनेवाले वा बोलनेवाले लोकोंकी स्तुति वा निन्दा कुछ भी नहीं करता है, उसको ही मुक्त समझे और इससे विपरीत होय तो उसको बद्ध समझे ॥१६॥ तैसे ही भीतरसे मननशील और अपने स्वरूपमें रमा हुआ होने पर भी बाहरसे जो कुछ भला वा बुरा कर्म नहीं करता है और भला वा बुरा नहीं कहता है तथा किसी प्रकारका विचार भी नहीं करता है किन्तु इस पहिले कही हुई वृत्तिसे जड़पुरुषकी समान विचरता है उस पुरुषको मुक्त समझे और उससे विपरीत वर्त्ताववालेको बद्ध समझे इन्हीं कहे हुए मुक्त पुरुषोंके लक्षणोंको मुमुक्षु पुरुषोंके साधन जाने ॥१७॥ अब, जो केवल वेदब्रह्मका जाननेवाला है और केवल

निष्णातो न निष्णायात्परे यदि । श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥ १८ ॥ गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च । वित्तं त्वतीर्थीकृतमंग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥ १९ ॥ यस्यां न मे पावनमंग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य । लीलाऽवतारेप्सितजन्म वा स्याद्वंध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥ २० ॥ एवं जिज्ञासयाऽपोह्य नानात्वभ्रममात्मनि । उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥ २१ ॥ यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् । मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥ २२ ॥ श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः । गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः॥२३॥मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः। लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥ २४ ॥ सत्संगलब्धया भक्त्या मयि मां

अपनी पण्डिताईकी ही प्रशंसा करता है परन्तु इन पूर्व कहे हुए साधनोंसे वेदके अर्थ पर निष्ठा नहीं रखता है उसकी निन्दा करते हैं—जो पुरुष, वेदब्रह्मके विषैं अर्थतः पारङ्गत होकर भी यदि परब्रह्मके विषैं ध्यान आदिके अभ्याससे उसमें निष्ठा करनेवाला न होय तो उसका अध्ययन करने आदिका सब परिश्रम, 'बहुत दिनों में व्याहनेवाली गौको दूधके निमित्त पालनेवाले पुरुषके परिश्रमकी समान' केवल परिश्रमरूपफल ही देनेवाला होता है, पुरुषार्थ देनेवाला नहीं होता है ॥१८॥ इसको ही दूसरे दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि—हे उद्धव ! दूध न देनेवाली गौकी, प्रीतिशून्य स्त्रीकी, पराधीन होकर प्रतिक्षणमें दुःखके कारण शरीरकी, इस लोक और परलोकके साधन न होने वाले पुत्रकी, सत्पात्रमें दान न करे हुए अकीर्त्तिकारक और पापकारक धनकी तथा मेरे वर्णनसे रहित वाणीकी जो पुरुष रक्षा करता है वह आगे २ को बराबर दुःख भोगता है ॥ १९ ॥ हे उद्धवजी ! जिस वाणीमें इस जगत्के उत्पत्ति, स्थित, संहारका कारण और श्रवण आदि करनेवाले लोकों को पवित्र करनेवाला मेरा कर्म न हो अथवा लीलासे धारण करे हुए मेरे अवतारोंमेंके जगत्के प्रिय रामकृष्णादि जन्म न हों उस निरर्थक वाणीका उच्चारण प्रवीण पुरुष न करे ॥ २० ॥ ऐसे विचारसे आत्मामें प्राप्त हुए देव मनुष्यादि देहों के अध्यासको दूर करके, निर्मलहुए मनको, परिपूर्णरूप मुझ भगवान्के विषैं धारण करके शान्ति पावे, केवल शास्त्रकी पण्डिताईसे अपनेको कृतकृत्य न समझलेय २१ यदि तुम, ब्रह्ममें निश्चलभावसे मनको धारण करनेको असमर्थ होओ तो फल पानेकी इच्छाको छोड़कर मेरे उद्देशसे अर्थात् मुझे अर्पण करके वर्णाश्रमके निमित्त कहे हुए सकल कर्मोंको करो अर्थात् मेरी भक्तिसे ही कृतार्थ होजाओगे ॥ २२ ॥ हे उद्धवजी ! जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर, परममंगलरूप और लोकोंको पवित्र करने वाली मेरी कथाओंका श्रवण करता है, मेरे जन्मोंका और कर्मोंका वारंवार गान करता है, स्मरण करता है और अनुकरण करता है, मेरे संतोषके निमित्त धर्म, अर्थ और कामका आचरण करता है तथा मेरा ही आश्रय करके रहता है वह पुरुष, सकल कारण ऐसे मेरे विषैं निश्चल भक्ति पाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ सत्संगसे प्राप्त हुई तिस मेरी भक्तिके द्वारा वह भक्त, निरन्तर मेरा ध्यान करके ध्यानमें मग्न

स उपासिता । स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥ २५ ॥ उद्धव उवाच । साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो । भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥२६॥ एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो । प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥ २७ ॥ त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः । अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच । कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥ २९ ॥ कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः । अनीहो मितभुक् शांतः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ॥ ३० ॥ अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः । अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ॥ ३१ ॥ आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मयादिष्टानपि स्वकान् । धर्मान्संत्यज्य

होते ही साधुओंके दिखाये हुए मेरे स्वरूपको निःसंदेह सुखसे प्राप्त होजाता है२५ अब साधुओंकी और भक्तिकी विशेषता बूझनेके निमित्त उद्धवजी कहने लगे-हे उत्तम कीर्त्तिवाले प्रभो ! मनुष्यों करके अपनी २ बुद्धिसे कल्पना करे हुए साधु बहुतसे होते हैं परन्तु तुम्हें कौनसे लक्षणोंवाला साधु माननीय है ? और भक्ति भी लोकोंमें बहुत प्रकारकी है परन्तु नारदादि साधुओंकी सन्मान करी हुई कौनसी भक्ति तुम्हारे विषयमें उपयोगी होती है ॥ २६ ॥ हे पुरुषाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! हे जगत्प्रभो ! यह जो कुछ मैंने बूझा सो, तुम कृपा करके अत्यन्त नम्र, भक्त और शरणमें आये हुए मुझसे कहिये ? ॥२७॥ हे भगवन् ! तुम आकाशकी समान असङ्ग, परब्रह्मरूप और प्रकृतिसे परपुरुष हो तथापि अपने भक्तोंकी इच्छासे निराला स्वरूप धारण करके अवतरे हो२८श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी! अब तुमसे तीस लक्षणोंवाले उत्तम साधुओंका वर्णन करता हूँ-१लोकोंके ऊपरकृपा करने वाला २, किसीसे द्रोह न करनेवाला, ३ क्षमावान, ४ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाला, ५ निन्दा आदि दोषोंसे रहित, ६ सुख दुःखके समय समान, ७ यथाशक्ति सबका उपकार करनेवाला ॥ २९ ॥ ८ विषयोंसे चित्तको चलायमान न होने देनेवाला ९ जितेन्द्रिय, १० कोमलचित्त ११ सदाचारको पालने वाला १२ परिग्रहको त्यागने वाला १३ इस लोकमेंके सुखके निमित्त किसी प्रकारके कर्म न करनेवाला, १४ परिमित भोजन करनेवाला, १५ शांत, १६ अपने धर्ममें स्थिर रहनेवाला १७ मेरे आश्रयसे रहनेवाला, १८ मननशील ॥ ३० ॥ १९ सावधान, २० निर्विकार, २१ कष्टके समय भी धैर्य धरनेवाला, २२ भूँख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन छहों विकारोंको जीतनेवाला, २३ मानरहित, २४ दूसरोंका सन्मान करनेवाला, २५ दूसरोंको समझानेमें चतुर, २६ धोखा न देनेवाला २७ करुणा करके ही परोपकारमें लगनेवाला, २८ ज्ञानवान् ॥ ३१ ॥ और २९ वेदरूप मेरे कहे हुए स्वधर्मको पालन करने पर अन्तःकरणकी शुद्धि आदि गुण हैं और उसको पालन न करने पर नरकगमन आदि दोष हैं ऐसा जानकर भी, यह धर्म प्रभुके ध्यानमें विक्षेप करने वाले हैं और आचरण न करने पर भी यह भक्तिसे ही सिद्ध होसकते हैं ऐसे दृढ़ निश्चयसे तिन अपने सकल धर्मोंको त्यागकर जो पुरुष मेरी सेवा करता है वह

यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ ३२ ॥ ज्ञात्वाऽज्ञात्वाथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः । भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ॥ ३३ ॥ मल्लिंगमद्भक्तजनदर्शन-स्पर्शनार्चनम् । परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ॥३४॥ मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव । सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥३५॥ मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् । गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ॥ ३६ ॥ यात्रा बलि-विधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु । वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥ ३७ ॥ ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः । उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ३८ संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः । गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥३९॥

उत्तम साधु है ३२ तैसे ही जो पुरुष, मैं देशकाल आदिके परिच्छेदसे रहित, सर्वात्मा और सच्चिदानन्दरूप हूँ ऐसा सामान्यपनेसे जानकर और फिर मनन आदिके द्वारा विशेषरूपसे जानकर अनन्यभावसे मेरी सेवा करते हैं वह उत्तम भक्त होते हैं ऐसा मैं मानता हूँ ॥३३॥ इस प्रकार साधुओंके लक्षण कहकर अब आठ श्लोकों में भक्तिके लक्षण कहते हैं, मेरी मूर्त्तिका और मेरे भक्तजनोंका दर्शन, स्पर्श और, पूजन करे, मेरी सेवा स्तुति और गुणकर्मोंका वर्णन करे, नम्रता रक्खे ॥ ३४ ॥ हे उद्धवजी ! मेरी कथा सुननेमें श्रद्धा रक्खे, मेरा ध्यान करे जो कुछ मिले वह सब मुझे समर्पण करे, दासभावसे अपना शरीर मुझे समर्पण करे ॥ ३५ ॥ मेरे जन्म और कर्मोंका वर्णन करे, मेरे जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका अनुमोदन करे, मेरे मन्दिरोंमें भक्तमण्डली इकट्ठी करके गाना नाचना, बजाना आदिके द्वारा मेरा उत्सव करे ॥ ३६ ॥ मेरा दर्शन आदि करनेको यात्रा करे, चौमासेमेंके जन्माष्टमी एकादशी आदि पर्वोंमें महापूजन सर्वोत्तम नैवेद्य आदि समर्पण करे, वैदिक वा तान्त्रिक दीक्षाग्रहण करे,मेरे एकादशी आदि व्रतोंको धारण करे ॥३७॥ मेरे पूजन और मूर्त्तिस्थापन करनेमें श्रद्धा रक्खे, मेरे निमित्त फूलोंके वृक्षोंके बाग, फलोंके वृक्षोंके बाग, क्रीड़ाके स्थान, नगर और मंदिर उत्पन्न करनेके काममें शक्तिके अनु-सार अपने आप और शक्ति न होय तो दूसरोंके साथ मिलकर उद्योग करे ॥३८॥ मेरे मन्दिरमें निष्कपटभावसे दासकी समान झाड़ना बुहारना, लीपना, छिड़काव करना, चित्रकारी करना इत्यादिके द्वारा सेवा करे ॥ ३९ ॥ अभिमान और पाखंड को धारण न करे, अपने करे हुए धर्मका वर्णन न करे, मुझे अर्पण करे हुए पदार्थ का आप उपभोग + न करे, और पदार्थोंकी तो वार्त्ता अलग रहे परन्तु मुझे अर्पण

+ विष्णुको निवेदन करा हुआ ग्रहण न करे, इसका तात्पर्य यह है, कि-लाभसे ग्रहण न करे भक्तिसे तो ग्रहण करे ही, क्योंकि-छः मास तक उपवास करनेसे जो फल मिलता है वह फल विष्णुभगवानके नैवेद्यके एक सीतके भी भक्षण करनेवाले पुरुषोंको कलियुगमें प्राप्त होता है । जिसके हृदयमें हरिका रूप, मुखमें नाम पेटमें नैवेद्य और मस्तक पर चरणोदक तथा निर्माल्य रहता है वह साक्षात् विष्णु ही है, ऐसा स्मृतिवचन है ।

अन्नानित्वमदंभित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् । अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितुम् ॥ ४० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः । तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानंत्याय कल्पते ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम् । भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥४२॥ सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाऽग्नौ यजेत माम् । आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वंग यवसादिना ॥ ४३ ॥ वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया । वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥ ४४ ॥ स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि । क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥ ४५ ॥ धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शंखचक्रगदांबुजैः । युक्तं चतुर्भुजं शांतं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥४६॥ इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः । लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव । नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सता-

करे हुए दिव्य प्रकाशको भी अपने कार्य × में न लावे दूसरे देवताको अर्पण करा हुआ पदार्थ मुझे ÷ अर्पण न करे ॥४०॥ लोकोंमें जो २ पदार्थ सबोंको प्रिय लगने वाला है अपनेको अति प्रिय है वह पदार्थ मुझे निवेदन करे तब वह अनन्तफल देनेवाला होता है ॥४१॥ हे उद्धवजी ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, विष्णुभक्त, हृदयाकाश, वायु, जल, पृथिवी, अपना जीवात्मा और सकलप्राणी यह ग्यारह मेरे पूजा करनेके स्थान हैं ॥ ४२ ॥ हे उद्धवजी ! सूर्यके विषैं वेदमें कहेहुए सूर्यस्तुतिपरक सूक्तोंसे उपस्थान आदि करके मेरी पूजाकरे अग्निके विषैं घृत आदि हवनके पदार्थों से मेरी पूजा करे श्रेष्ठ ब्राह्मणके विषैं आदर सत्कार करके और गौके विषैं कोमल घास आदि खिलाकर मेरा पूजन करे४३ विष्णुभक्तके विषैं बन्धुकी समान सत्कार करके मेरा पूजन करे, हृदयाकाशमें ध्यानकी निष्ठा रखकर मेरी पूजा करे, वायुमें प्राणवायुकी दृष्टिसे और जलमें जलादि पदार्थोंका तर्पण आदि करके मेरा पूजन करे ॥ ४४ ॥ भूमिमें रहस्यमन्त्रोंके न्याससे और जीवात्मामें विषयभोग अर्पण करके मेरी पूजा करे, सकल प्राणिमात्रमें समता रखकर उनके अंतर्यामी हुए क्षेत्रज्ञका पूजन करे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार इन ग्यारहों स्थानोंमें शंख, चक्र, गदा और कमल से युक्त चारभुजा धारण करनेवाले शांतस्वरूपका ध्यान करके एकाग्रचित्तपनेसे मेरा पूजन करे ॥४६॥ इसप्रकार जितेन्द्रिय रहनेवाला जो पुरुष, मेरा पूजन करता है और यज्ञ याग आदि वैदिककर्मोंसे तथा बावड़ी, कुआ, सरोवर आदि स्मार्त्त कर्मोंसे मेरा आराधन करता है उसको मेरी दृढ भक्ति प्राप्त होती है और दृढभक्ति पाने वाले उसको साधुसेवासे तत्त्वज्ञान होता है ॥ ४७ ॥ हे उद्धवजी ! तुमसे यह

× इस कारण ही पूजा आदि करते समय दूसरा दीपक लाकर रक्खे नहीं तो दो बत्ती तो अवश्य ही डाले ।

÷ विष्णुभगवान्को अर्पण करा हुआ अन्नादि पदार्थ अन्य देवताओंको अर्पण करे और वह पितरोंको भी देय तब अनन्त फल देनेवाला होता है, पितरोंको देकर शेष रहा हुआ पदार्थ यदि परमात्मा श्रीहरिको अर्पण करे तो उसके पितर नरकमें पड़कर दुःख भोगते हैं । इत्यादि स्मृतिवचन हैं ।

महम् ॥ ४८ ॥ अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन । सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ११

श्रीभगवानुवाच । न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥ १ ॥ व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुन्धे सत्संगः सर्वसंगापहो हि माम् ॥ २ ॥ सत्संगेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः । गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ॥ ३ ॥ विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः । रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ॥४॥ बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः । वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ५ सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः । व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥ ६ ॥ तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः । अव्रता तप्ततपसः सत्संगा-

ज्ञानमार्ग और भक्तिमार्ग कहा, तिसमें भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसे भी श्रेष्ठ है, क्योंकि प्रायः सत्सङ्गसे होनेवाले भक्तियोगके विना संसारको तरजानेका दूसरा कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं है इसका कारण, सत्पुरुषोंका उत्तम आश्रय मैं हूँ. इस कारण सत्संगसे मेरी प्राप्ति शीघ्र होती है ॥ ४८ ॥ अब, दूसरे साधनोंकी अपेक्षा रखने वाले सांख्ययोग आदिसे भी, स्वतंत्र साधु समागम ही श्रेष्ठ है ऐसा वर्णन करने के निमित्त कहते हैं कि-हे यदुनन्दन उद्धवजी ! तुम मेरे दास, बन्धु और मित्र हो इस कारण श्रद्धाके साथ सुनने वाले तुमसे अतिरहस्य और सबसे गुप्त रखने योग्य एक विषय कहता हूँ उसको सुनो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ छ ॥ छ

श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी ! अन्य सब सङ्गोंको दूर करनेवाला सत्संग जैसे मुझे वशमें करता है तैसे आसन प्राणायाम आदि योग, तत्त्वविवेकरूप सांख्य अहिंसा आदि धर्म, वेद पाठरूप स्वाध्याय, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि तप, संन्यासरूप त्याग, अग्निहोत्र आदि इष्ट, कूप बगीचा आदि पूर्त्त, अभयदान आदि दक्षिणा, एकादशी उपवास आदि व्रत, देवपूजा आदि यज्ञ, रहस्यमन्त्ररूप छन्द, गङ्गा आदि तीर्थ, शौच आदि नियम, अहिंसा आदि यम, यह सब साधन वशमें नहीं करते हैं॥१॥२॥ हे उद्धवजी ! सत्संगसे ही, दैत्य, राक्षस, मृग, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, तैसे ही मनुष्योंमें जो रजोगुण तमोगुणके स्वभाव वाले थे वह वैश्य, शूद्र, स्त्रियें और अन्त्यज. तैसे ही वृत्रासुर प्रह्लाद आदि बहुत से पुरुष, तिन २ युगोंमें मेरे स्वरूपको प्राप्त होगये हैं, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयासुर, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान् , गजराज, जटायु पक्षी, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा दासी, गोकुलकी स्त्रियें, यज्ञ करने वाले ऋषियोंकी स्त्रियें तैसेही और भी बहुतसे पुरुष मेरे स्वरूपको प्राप्त होगये हैं३-६उन्होंने वेद नहीं पढे थे, तथा वेदोंका अर्थ जाननेके निमित्त बड़े२ सत्पुरुषोंकी सेवा भी नहीं करी थी, व्रत धारण नहीं करे थे और तप भी नहीं करा था तथापि वह केवल सत्संग

न्मामुपागताः ॥ ७ ॥ केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः । येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥ ८ ॥ यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः । व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ॥ ९ ॥ रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ताः । विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥ १० ॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण । क्षणार्द्धवत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥ ११ ॥ ता नाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् । यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥ १२ ॥ मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः । ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगच्छतसहस्रशः ॥१३॥ तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् । प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥ १४ ॥ मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् । याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ १५ ॥ उद्धव उवाच । संशयः शृण्वतो

से ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होगये हैं ॥ ७ ॥ तिसमें सत्संगसे ही प्राप्तहुई केवल प्रीति से गोपी, गौ, यमलार्जुन आदि वृक्ष, मृग और जो दूसरे मूढ़बुद्धि कालियादि सर्प कृतार्थ होकर मुझे अनायासमें ही प्राप्त होगये हैं ॥ ८ ॥ जिस मुझको, योग, सांख्य, दान, व्रत, तप, यज्ञ, व्याख्यान, वेदपठन और संन्यासके द्वारा यत्न करने वाला पुरुष भी नहीं पाता है, इसका तात्पर्य यह है कि–पहिले श्रीकृष्णजीके साथ जिन गोपियोंको और गौ आदि पशुओंको समागम हुआ था वही साधु थे, उनका समागम ही औरोंको सत्संग होकर तिसके द्वारा ही उनको भक्ति प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ अक्रूरजी, बलरामजीके साथ जब मुझे गोकुलमेंसे मथुराको लेगये थे तब, मुझमें अतिदृढ़ प्रेमभावसे आसक्तचित्त हुईं और मेरे वियोगसे अतिदुःखितहुईं गोपियों ने, मुझसे भिन्न कोई भी पदार्थ सुखदायक नहीं देखा ॥ १० ॥ उनको ऐसा दुःख हुआ कि–हे उद्धवजी ! वृन्दावनमें विचरते हुए और परम प्रिय साक्षात् मेरे साथ क्रीडा करतेमें जिन गोपियोंने जिन रात्रियोंको अतिसुखसे आधे क्षणकी समान बिताया था, उन गोपियोंको ही वही रात्रियें वियोग होनेपर कल्पकी समान बहुत बड़ी होगईं ॥ ११ ॥ जैसे समाधिमें स्थित ऋषि, अपने नामरूप कुछ भी नहीं जानते हैं तैसे ही मेरे विषैं आसक्तिसे अपनी बुद्धिको लगाने वालीं उन गोपियोंने, अपने पति पुत्रादिकोंको, शरीरको, परलोकको और इस लोकको भी कुछ नहीं जाना किन्तु जैसे नदियें अपने नामरूपोंको छोड़ कर समुद्रके जलमें प्रविष्ट हो जाती हैं तैसे केवल मेरी कामना करने वालीं वह सैंकड़ों सहस्रों स्त्रियें, यद्यपि मेरे स्वरूपको जानने वाली नहीं थी तथापि 'हमें आनन्द देने वाले यह जार हैं' ऐसी बुद्धिसे जाने हुए परब्रह्मरूप मुझको सत्संगतिके प्रभावसे प्राप्त होगईं ॥ १२॥१३ ॥ हे उद्धवजी ! मेरे भजनका प्रभाव ऐसा है इस कारण तुम, श्रुति, स्मृति, विधि, निषेध; प्रवृत्त कर्म, निवृत्त कर्म, श्रवण करने योग्य और श्रवण कराहुआ सब शास्त्र छोड़ कर, सकल प्राणिमात्रके अन्तर्यामी एक आत्मा मुझको 'सब जगत् भगवद्रूप ही है' ऐसी भावनासे शरण जाओ और मेरी प्राप्ति करके संसारभयसे छूट-

याचं तव योगेश्वरेश्वर । न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥१६॥ श्रीभगवानुवाच । स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः । मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥ १७ ॥ यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमानः । अणुः प्रजातो हविषा समिद्धयते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥ १८ ॥ एवं गदिः कर्म गतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च । संकल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्त्वतमोविकारः ॥ १९ ॥ अयं हि जीवस्त्रि-

जाओ ॥ १४ ॥ १५ ॥ उद्धवजीने कहा कि—हे योगेश्वरोंके ईश्वर ! तुमने पहिले 'मेरे कहे हुए स्वधर्ममें सावधान रहकर इत्यादि' कर्म करे ऐसा कहा था और अब सब धर्मोंका त्याग कर मेरी शरण जा, ऐसा कहते हो, सो तुम्हारा भाषण सुनने वाले मेरा आत्मविषयक 'आत्माको कर्तृत्व है या नहीं ? ऐसा' संशय निवृत्त नहीं होता है, कि—जिस संशयसे मेरा मन घूम रहा है, इस कारण इस संशयको दूर करो ॥ १६ ॥ इसका उत्तर कहनेके निमित्त श्रीभगवान् बोले ¶ कि—हे उद्धवजी ! यह प्रत्यक्ष आधार आदि चक्रमें नादादिरूपसे प्रकट हुआसा प्रतीत होने वाला ईश्वर, परावाणी नामक नादरूप प्राणसहित वर्त्तमान आधार चक्रमें प्रविष्ट होकर तदनन्तर मणिपूरक चक्रमें पश्यन्ती नामक मनोमय सूक्ष्मरूपको पाकर फिर विशुद्धि चक्रमें अस्पष्टनादरूप कुछ स्थूल स्वरूपको प्राप्त होता है, तदनन्तर मुखमें ह्रस्वादि मात्रा, उदात्तादि स्वर और ककार आदि वर्ण इस प्रकार वैखरी नामक अतिस्थूल अनक वेदशाखारूप होता है ॥ १७ ॥ जैसे अग्नि, आकाशमें प्रथम अस्पष्ट ऊष्मारूप होता है और उसका काठमें बलके साथ विशेष मन्थन करने पर पहिले सूक्ष्म चिनगारीरूपसे उत्पन्न होकर फिर वायुकी सहायतासे बडा होते २ घृतादि होमके द्रव्योंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता है, तैसे ही मुझ ईश्वरकी परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी नामक अति सूक्ष्म, स्थूल और अति स्थूल ऐसी वाणीके स्वरूपसे उत्पत्ति हुई है ॥१८॥ इसप्रकार ही भाषण, कर्म (हाथोंका व्यवहार), गति (चरणों का व्यवहार) विसर्ग (पायु और उपस्थ इन दो इन्द्रियोंकी वृत्ति), सुगन्ध लेना रस ग्रहण करना, देखना, स्पर्श, करना, श्रवण करना, सङ्कल्प (मनकी वृत्ति), विज्ञान (बुद्धि और चित्तकी वृत्ति) अभिमान (अहंकारकी वृत्ति), सूत्र (प्रधान की वृत्ति) और रज, सत्त्व तथा तम इन तीन गुणोंका आधिदैविक आदि यह सब प्रपञ्च उत्पन्न हुआ है ॥ १९ ॥ लोकरूपी कमलका आधार और तीनों गुणोंका

¶ यह सब उत्तर कहनेका भगवान्का ऐसा अभिप्राय है कि-ईश्वर ही अपनी मायाके द्वारा प्रपंच रूपसे भासता है, जीवोंको प्रपंचके अध्याससे अनादि अविद्याके द्वारा कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि प्राप्त होकर विधि निषेधका अधिकार प्राप्त हुआ है वह जब तक है तब तक ही वह अंतःकरणकी शुद्धिके निमित्त कर्म करें, अन्तःकरण शुद्ध होने पर कर्मजाड्यके दूर होनेके निमित्त भक्तिमें विक्षेप करने वाले कर्मका आदर छोड़ कर दृढ विश्वासके साथ मेरा भजन करें और ज्ञान होजाय तो फिर जीवोंको कुछ भी कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है ।

वृद्ध्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः। विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥ २० ॥ यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितान-संस्थः। य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ॥ २१ ॥ द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पंचस्कन्धः पंचरसप्रसूतिः। दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोर्कं प्रविष्टः ॥ २२ ॥ अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः। हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥ २३ ॥ एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः। विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मान-मथ त्यजास्त्रम् ॥ २४ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच। सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः। सत्त्वेनान्यतमौ

आश्रय यह आदि ईश्वर पहिले निराला २ न होकर अव्यक्तरूप एक ही था, वही कालके द्वारा वाणी आदि इन्द्रियरूप शक्तियोंका विभाग पाकर, जैसे बीज क्षेत्रका आधार पाकर वृक्षादि अनेक प्रकारके भासते हैं तैसे ही इन्द्रियादिरूपसे अनेक प्रकारका भासता है ॥ २० ॥ तन्तुओंके फैलावमें है स्थिति जिसकी ऐसा पट जैसे खड़े लम्बे तन्तुओंमें, ओत और आड़े तन्तुओंमें प्रोत होता है उनसे भिन्न नहीं होता है तैसे ही यह सकल जगत भी जिस कारणरूप ईश्वरमें ओत प्रोत होकर उससे निराला नहीं है, इसी प्रकार जो यह अनादि कालीन, प्रवृत्ति स्वभाववाला, अविद्यासे आत्मामें कल्पना करा हुआ देहरूपी संसारवृक्ष भोगरूप पुष्प और मोक्ष-रूप फलको उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥ इस वृक्षके पुण्य पाप रूप दो बीज हैं, वासनारूप सैंकड़ों जड़ हैं, गुणरूप तीन गुद्दे हैं महाभूतरूप पाँच स्कन्ध हैं, शब्द स्पर्श आदि पाँच रस हैं, ग्यारह इन्द्रिय शाखा हैं, इसके ऊपर जीव ईश्वर-रूप दो पक्षियों के घोंसले हैं, जिसकी वात, पित्त, कफरूप तीन छाल हैं जिसके सुखदुःखरूप दो फल हैं और वह वृक्ष सूर्यमण्डल पर्यन्त बढा हुआ है अर्थात् सूर्यमण्डलको भेद कर जाने वालेको संसार नहीं रहता है ॥ २२ ॥ उस वृक्षके एक फल (दुःख) को गाँवमें रहने वाले गृध्र पक्षी (कामीगृहस्थ) खाते हैं और दूसरे एक फल (सुख) को वनमें रहने वाले हंस पक्षी (विवेकी संन्यासी) भक्षण करते हैं, इस प्रकार एक परमात्मा ही मायामय होकर बहुतरूप हुआ है, ऐसा पूज-नीय गुरुओंके उपदेशसे जो जानता है वही वेदका वास्तविक अर्थ जानता है २३ हे उद्धवजी ! तुम तो इस प्रकार सावधान और जितेन्द्रिय होकर गुरुकी उपासना से बढ़ी हुई एकाग्र भक्ति करके तीक्ष्ण करे हुए ज्ञानकुठारसे जीवोपाधिरूप त्रिगुण-मय लिङ्गशरीरको काट कर और परमात्माकी प्राप्ति करके तदनन्तर सकल साधनों का त्याग करो ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें द्वादश अध्याय समाप्त

पूर्व अध्यायमें ज्ञानकुठारसे लिङ्ग शरीरका छेदन करके साधनोंका त्याग करे ऐसा कहा, तिसमें गुणोंकी वृत्तियोंका प्रतिबन्ध होने पर ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे होयगी ? ऐसी शङ्का आने पर, गुणोंकी निवृत्तिसे ज्ञानकी प्राप्तिका उपाय कहनेके

हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥ १ ॥ सत्त्वाद्धर्मो भवेद् वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः । सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ॥ २ ॥ धर्मो रजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः । आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ॥ ३ ॥ आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च । ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ॥ ४॥ तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यद् वृद्धाः प्रचक्षते । निन्दन्ति तामसं यत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ॥ ५ ॥ सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये । ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम्॥६॥वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम्। एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥७॥ उद्धव उवाच । विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् । तथापि

निमित्त श्रीभगवान् कहने लगे कि-हे उद्धवजी ! सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण बुद्धि (प्रकृति) के ही हैं आत्माके नहीं हैं इस कारण सत्त्वगुणकी वृद्धिसे रजोगुण और तमोगुणकी वृत्तियोंको जीते तथा सत्यदयादिवृत्तिरूप सत्त्वगुणको शान्तरूप सत्त्वरूपसे ही जयकरे यह क्रम शास्त्रसिद्ध है ॥ १ ॥ बढे हुए सत्त्वगुणसे, मेरी भक्ति दिखाने वाला धर्म उत्पन्न होता है, सात्त्विक पदार्थोंके सेवनसे सत्त्वगुण बढ़ता है और फिर उससे धर्म प्रवृत्त होता है ॥ २ ॥ और फिर सत्त्वगुणसे बढ़ा हुआ वह सर्वोत्तम धर्म, रजोगुणका और तमोगुणका नाश करता है, तिन दोनोंका नाश होनेपर वह दोनों रागद्वेष आदिके द्वारा और प्रमाद आलस्य आदिके द्वारा जिसके कारण थे वह अधर्म भी तत्काल नष्ट होजाता है॥३॥ शास्त्र (निवृत्ति प्रवृत्ति वा पाखण्ड आदि शास्त्र), जल (गङ्गाजल, सुगन्धिजल वा मद्यादिकजल), लोक (सत्पुरुष, गृहासक्त वा दुराचारी आदि लोक), देश (एकान्त स्थल, राजमार्ग और द्यूतस्थान आदि देश), काल (प्रातःकाल, प्रदोष और मध्यरात्रिका काल), कर्म (नित्यनैमित्तिक काम्य और जारण मारण आदि कर्म), जन्म (वैष्णवदीक्षा, शैवदीक्षा, शाक्तदीक्षा और क्षुद्रदीक्षा आदि जन्म), ध्यान (विष्णु का, स्त्री पुत्रादिका और शत्रु आदिका ध्यान), मन्त्र (प्रणव, काम्य और क्षुद्र आदि मन्त्र), और संस्कार (आत्मशोधक, देहशोधक और गृहादिशोधक आदि संस्कार) यह दश पदार्थ तीनों गुणोंको बढ़ाने वाले हैं ॥४॥ इस जगत्मेंके पदार्थों मेंसे शास्त्रके जानने वाले जिस जिसकी प्रशंसा करते हैं वह वह पदार्थ सात्त्विक है, जिस जिसकी निन्दा करते हैं वह वह तामस है और जिस जिसकी प्रशंसा वा निन्दा कुछ न करके उपेक्षा करते हैं वह वह राजस है ॥ ५ ॥ तिसमें सत्त्वगुण की वृद्धिके निमित्त पुरुष, जो सात्त्विक हैं ऐसे निवृत्तिशास्त्र, गङ्गाजल आदिका ही सेवन करे तब उनसे भक्तिलक्षणधर्म और तिस धर्मसे आत्मसाक्षात्कार करने वाला और स्थूल सूक्ष्म देहोंके कारणभूत गुणोंका निरास करने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥ तदनन्तर, जैसे बाँसोंकी परस्पर रगड़से उत्पन्न हुआ अग्नि, स्वयं ही उत्पन्न हुई ज्वालाओंसे उस सब बनको जला कर आप भी शान्त होजाता है तैसे ही तिस अग्निकी समान व्यापार वाला और गुणोंके मेलसे उत्पन्न हुआ देह भी, अपने आप उत्पन्न हुए ज्ञानसे अपने कारणभूत गुणोंका निरास करके आप

भुंजते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच । अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि । उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ॥ ९ ॥ रजोयुक्तस्य मनसः संकल्पः सविकल्पकः । ततः कामो गुणध्यानाद् दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः॥१०॥ करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः । दुःखोदर्काणि संपश्यन् रजोवेगविमोहितः ॥ ११ ॥ रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः । अतन्द्रितो मनो युञ्जन् दोषदृष्टिर्न सज्जते ॥१२॥ अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयन् शनैः । अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ॥ १३ ॥ एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः । सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धावेश्यते यथा॥१४॥ उद्धव उवाच । यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव । योगमादिष्टवानेतद् । रूपमिच्छामि वेदितुम् १५

भी शान्त होजाता है ॥ ७ ॥ उद्धवजीने कहा कि–हे श्रीकृष्णजी ! जितेन्द्रियपनेसे सात्त्विक पदार्थोंके सेवनमें जब ऐसा बड़ा पुरुषार्थ है और अनेकों मनुष्य, राजस और तामस विषयोंको दुःखोंका स्थान जानते हैं तब वही मनुष्य, फिर 'जैसे कुत्ते कुतियाके ललकारने पर भी उसके भोगनेमें ही लम्पट होते हैं, अथवा जैसे गदहे चरणोंसे प्रहार करनेपर भी गदहीके पीछे ही दौड़ते हैं, अथवा जैसे बकरे मारनेको आने पर भी निर्लज्जपनेसे बकरीके पीछे दौड़ते हैं तैसे ही' विषयोंको भोगनेमें लम्पट रहते हैं, यह कैसे होता है ? ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! विचार हीन पुरुषको पहिले देहादिके विषें 'मैं हूँ' ऐसी बुद्धि पूर्ण रीतिसे उत्पन्न होती है, तदनन्तर उसके सत्त्वगुणप्रधान भी मनको दुःखरूपी रजोगुण घेर लेता है ॥ ९ ॥ फिर रजोगुणसे युक्त हुए तिस मनका 'यह ही उत्तम भोग है' ऐसा भोग्यपनेके विषयका सङ्कल्प उत्पन्न होता है, तदनन्तर अहो कैसा स्वरूप है ! कैसा भाव है ! कैसी मधुरता है ऐसे गुणोंके चिन्तवनसे उस दुर्बुद्धि पुरुषको दुःसह कामवासना उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ फिर रजोगुणके वेगसे मोहित होकर कामके वशीभूत हुआ वह अजितेन्द्रिय पुरुष, विषयभोगके निमित्त करे हुए कर्म परिणाममें दुःखरूप हैं ऐसा जानता हुआ भी उनको ही फिर करता है ॥ ११ ॥ जब ऐसा है तब तो किसी भी दुःखकी निवृत्ति नहीं होयगी, ऐसा कहो; तो–जो विद्वान् (देहादिकोंसे आत्मा निराला है ऐसा जानने वाला) पुरुष है वह, यदि कदाचित् रजोगुणसे और तमोगुणसे बुद्धिको मूढ़ता प्राप्त होकर विषयासक्त होजाय तो भी वह यदि फिर आलस्यरहित होता हुआ विषयोंमें दोषदृष्टि रख कर यत्नके साथ मनको रोकेगा तो विषयोंमें आसक्त नहीं होयगा ॥१२॥ मनका वशमें होना कठिन है इस कारण उसको जीतनेमें विलम्ब लगे तो आलस्य न करके सावधानीके साथ प्रतिदिन, दिनमें तीन बार आसनका जय और प्राणायामोंके द्वारा श्वासवायुका जय करने वाला योगी, अपने मनको धीरे २ मेरे विषें लगा कर स्थिर करे ॥१३॥ हे उद्धवजी ! सकल विषयोंसे खेंचा हुआ मन, जैसे साक्षात् मेरे स्वरूपमें पूर्ण रीतिसे स्थिर होयगा ऐसा योग मेरे सनकादि शिष्योंने कहा है ॥ १४ ॥ उद्धवजी ने कहा कि—हे केशव ! अति वृद्ध सनकादि ऋषियोंको तुमने इस जन्ममें जिस

श्रीभगवानुवाच । पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः । पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥ १६ ॥ सनकादय ऊचुः । गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो । कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच । एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः । ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥ १८ ॥ स मामचिंतयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया । तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा मां तु उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ॥ २० ॥ इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा । यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ॥ २१ ॥ वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्नः ईदृशः । कथं घटेत वो

करा हो सो तो हो नहीं सकता, तिससे तुमने उन सनकादि ऋषियोंको जिस समयमें जिस रूपसे योगका उपदेश करा हो उस काल और उस रूपको जाननेकी मैं इच्छा करता हूँ वह आप मुझसे कहिये ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धव जी ! ब्रह्माजीके मानसिक पुत्र सनकादि ऋषियोंने, एक समय अपने पिताजीसे, योगकी पराकाष्ठाकी सूक्ष्मगतिके विषयमें प्रश्न करा ॥ १६ ॥ सनकादिकोंने कहा कि—हे प्रभो ब्रह्माजी ! यह चित्त स्वभावसे ही प्रीतियुक्त होनेके कारण विषयोंमें प्रविष्ट होकर उनमें ही आसक्त होता है और वह (अनुभव करे हुए) विषय भी वासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करते हैं, तब संसार समुद्रको तरनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुके चित्तका और विषयोंका वियोग कैसे होता है, सो कहिये ॥ १७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! इस प्रकार प्रश्न करने पर वह देवाधिपति जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी, विचार करनेलगे परन्तु उन्होंने प्रश्नका बीज 'यह प्रश्न अज्ञानसे है ऐसा' नहीं जाना, क्योंकि-उनकी बुद्धि उस समय दूसरे सृष्टि आदि कर्मोंसे व्यग्र होरही थी ॥ १८ ॥ तब उन ब्रह्माजीने, उस प्रश्नका अभिप्राय और उत्तर जाननेकी इच्छासे मेरा ध्यान करा, तब मैं, जैसे हंसपक्षी जल और दूधको पृथक् पृथक् करनेमें समर्थ होता है तैसे गुण और चित्तको पृथक् पृथक् करनेमें समर्थ हूँ ऐसा दिखानेके निमित्त हंसरूपसे उनके समीपमें गया ॥ १९ ॥ तब मुझे देखकर वह सनकादि ऋषि, ब्रह्माजीको आगे करके मेरे समीप आये और मेरे चरणोंको प्रणाम करके उन्होंने मुझसे, तू कौन है ? ऐसा प्रश्न करा ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! इस प्रकार तत्त्वको जाननेकी इच्छा करने वाले उन ऋषियोंने मुझसे प्रश्न करा तब उस समय उनसे मैंने जो कुछ कहा सो तुम मुझसे सुनो ॥ २१ ॥ देहसे निराले आत्माका ज्ञान होने पर उस आत्मामें मनकी की एकाग्रता रखनेवाले पुरुषको, विषयासक्तिका होना असम्भव होनेके कारण अपने आप ही विषयोंका और चित्तका भिन्न २ पना होजाता है ऐसा कहनेके निमित्त प्रश्नखण्डनके मिषसे ही पहिले आत्मानात्मविवेक कहते हैं हे ब्राह्मणो ! यह तुम्हारा प्रश्न क्या आत्मविषयक है ? अथवा आत्माकी उपाधिरूप पञ्चभूतके समूहके विषयका है ? यदि आत्मविषयक है तो उस परमार्थभूत आत्मवस्तुको अनेक पना न होनेके कारण तुम्हारा करा हुआ 'तू कौन है ऐसा' अनेक पदार्थोंमेसे एक

विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥ २२ ॥ पंचात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुनः । को भवानिति वः प्रश्नो वाचारंभो ह्यनर्थकः ॥ २३ ॥ मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपींद्रियैः । अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुद्ध्यध्वमञ्जसा ॥ २४ ॥ गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः । जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥ २५ ॥ गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया । गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥२६॥ जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः । तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन

का निश्चय करनेका प्रश्न कैसे बनसकता है ? और उत्तर देनेवाले मुझको भी किस का आश्रय है ? अर्थात् आत्मामें कुछ विशेष न होने पर कौनसे जाति गुण आदि विशेषोंका आश्रय करके मैं उत्तर दूँ ॥ २२ ॥ और यदि यह प्रश्न पञ्चभूतके समूह के विषयका होय तो–देव मनुष्यादि सब शरीरोंके पञ्चमहाभूतस्वरूप होनेके कारण वास्तवमें उनके (परम कारणरूपसे) एक समान होनेपर, तू कौन है ? ऐसा जो तुम्हारा प्रश्न है सो केवल वाणी मात्रसे उच्चारण करा हुआ है और निरर्थक है२३ मन, वचन, दृष्टि और अन्य भी सब इन्द्रियोंसे जिसका ग्रहण करते हैं वह सब मैं ही हूँ, मुझसे दूसरा कुछ नहीं है ऐसा तुम तत्त्वविचारसे जानो, इस वाक्यसे 'तू कौन है' इस प्रश्नका 'मैं सर्वात्मक हूँ ऐसा उत्तर भी कहा हुआसा ही होगया २४ इस प्रश्नका खण्डन करनेके मिषसे अपना स्वरूप सामान्यभावसे निरूपण करके, अब ब्रह्माजीको भी जिसका उत्तर देना कठिन ऐसा जो प्रश्न करा था उसका उत्तर अध्यायकी समाप्ति पर्यन्त कहते + हैं—हे पुत्रो ! चित्त विषयोंमें प्रवेश करता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट होते हैं, यह ठीक है तथापि वह विषय और चित्त दोनों ही परस्पर मिलकर उनका एकरूप आकार होने पर वह, मत्स्वरूपी (ब्रह्मरूपी) जीवका देह (अध्याससे अपना माना हुआ उपाधि है) वास्तविक स्वरूप नहीं है ॥२५॥ इस प्रकार बारम्बार विषयसेवनके संस्कारसे उन विषयोंमें प्रवेश करने वाले चित्तका और वासनारूपसे चित्तमें प्रवेश करनेवाले विषयोंका जीव स्वयं ब्रह्मरूप होकर त्याग करे ॥ २६ ॥ जाग्रत् आदि अवस्थायुक्त जीवको ब्रह्मपना कैसे प्राप्त होयगा ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्था बुद्धिकी ही हैं, जीवकी नहीं हैं, वह भी स्वाभाविक नहीं किन्तु क्रमसे सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंसे हुई हैं, जीव तो उन वृत्तियोंके साक्षीरूपसे तिन अवस्थाओंसे निराला ही निश्चय करा गया है ॥ २७ ॥ क्योंकि-बुद्धि

+ इसका अभिप्राय यह है कि,कर्तृत्वभोक्तृत्व आदि स्वरूपसे विषयोंसे गुथाहुआ चित्त ही बुद्धि अहंकार आदि नामोंसे उच्चारण करा जाता है, वही यदि जीवका सत्यस्वरूप होता तो उसका और विषयोंका वियोग नहीं होता, परन्तु जीवका सत्य-स्वरूप मैं ब्रह्म हूँ, उसमें चित्तके अध्याससे चित्तका स्वभाव आजानेके कारण विषयों के साथ गुथागुथी होरही है इसकारण अपनी ब्रह्मभावनासे और विषयोंके मिथ्यापन का अनुसन्धान करनेसे,सब विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्की सेवा करनेवाले जीवकी परिपूर्णस्वरूपसे स्थिति होती है ।

विनिश्चितः ॥ २७ ॥ यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः । मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥ २८ ॥ अहंकारकृतं बंधमात्मनोर्थविपर्ययम् । विद्वान्निर्विद्य संसारचिंतां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ॥२९॥ यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः । जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ॥३०॥ असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा । गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥ ३१ ॥ यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान् भुंक्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् । स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्तिदृगिंद्रियेशः ॥३२॥ एवं विमृश्य गुणतो मन-

का करा हुआ अध्यास आत्माको 'मैं जागरहा हूँ मैं सोता हूँ इत्यादि' अवस्थारूप बन्धन करनेवाला हुआ है इससे तीनों अवस्थाओंके साक्षीरूप मुझ तुरीयके विषैं रहकर, जीव इस बन्धनका त्याग करे तब अपने आप ही विषयोंका और चित्तका परस्पर त्याग होजाता है ॥२८॥ अहंकारका करा हुआ बन्धन अपने परमानन्दादि धर्मोंको ढककर अनर्थका कारण हुआ है, ऐसा जानकर जीव, विषयोंसे विरक्त होकर, तीनों अवस्थाओंसे निराले चौथे मेरे विषैं एकतारूपसे रहकर संसारके कारणभूत देहाभिमान और उसकी करीहुई भोगोंकी चिन्ताका त्याग करे ॥२९॥ जब तक पुरुषकी भेदबुद्धि, गुरुके उपदेश करे हुए शास्त्रके अभ्याससे प्राप्त हुई युक्तियोंसे निवृत्त नहीं होती है तबतक, जैसे कोई पुरुष स्वप्नमें जागनेकी अवस्था को देखता है परन्तु वह स्वप्न ही है तैसे ही वह अज्ञानी पुरुष, जागता हुआ भी (सांसारिक कार्योंमें चतुरतासे चलता हुआ भी) स्वप्न देखने वालेकी समान है क्योंकि-उसको यथार्थ ज्ञान नहीं होता है ॥३०॥ आत्मासे निराले देहादि पदार्थोंके मिथ्या होनेके कारण उनका करा हुआ वर्णाश्रम आदि भेद, स्वर्गादि फल और उन फलोंके देने वाले कर्म, यह सब मिथ्या हैं अर्थात् आत्मासे निराले कुछ भी नहीं हैं जैसे स्वप्न देखने वाले जीवको, स्वप्नमेंके देहादि मिथ्या होनेके कारण उनके भेद, कर्म और फल मिथ्या होते हैं तैसेही आत्माके भी वर्णाश्रम आदि सब भेद मिथ्या हैं इससे अज्ञानी पुरुषोंके निमित्त ही वेद है जिनको आत्मज्ञान होगया उनके निमित्त नहीं है ॥ ३१ ॥ जो (आत्मा) जाग्रत अवस्थामें, जिनकी बालकपन तरुणाई आदि अवस्था क्षण २ में बदलती है उन बाहरके स्थूल देह आदि सब पदार्थोंको चक्षु आदि सब इन्द्रियोंसे सेवन करता है, जो स्वप्नकी दशामें जागतेमें देखेहुए पदार्थों की समान ही क्षण २ में नाश पाने वाले, हृदयमें उत्पन्न हुए वासनामय पदार्थों का सेवन करता है और जो सुषुप्ति अवस्थामें तिन सब विषयोंका उपसंहार करता है वही तीनों अवस्थाओंका द्रष्टा एक है । अब यदि जाग्रत् अवस्थाको इन्द्रियें देखती हैं, स्वप्नावस्थाको मन देखता है और सुषुप्ति अवस्थाको जाग्रत् स्वप्नावस्थाओं मेंके शेष रहे हुए संस्कारोंवाली बुद्धि देखती है, ऐसा समझनेमें आता है तथापि, उन इन्द्रियोंका, मनका और बुद्धिका द्रष्टा वह आत्मा ही है । अब जाग्रत् आदि अवस्थाओंके द्रष्टा विश्व, तैजस और प्राज्ञ यह निराले कहे हैं ऐसा कोई कहे तो ठीक नहीं है, क्योंकि-जिसने स्वप्न देखे और तदनन्तर जिसने (सुषुप्तिमें) कुछ

सत्त्वस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः । संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥ ३३ ॥ ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् । विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥ ३४ ॥ दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः । संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ॥ ३५ ॥ देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् । दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदांधः ॥३६॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारंभकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः।

नहीं जाना वही मैं अब जाग रहा हूँ ऐसी स्मृतिका तीनों अवस्थाओंमें अन्वय होनेमें उपाधिभेदसे विश्वादि नामोंको धारण करने वाला वह आत्मा ही है, इस प्रकार बालकपन तरुणाई आदि अवस्थाओंमें भी आत्माकी एकताको जाने ॥ ३२ ॥ इस प्रकार विचार करके, गुणोंसे जो मनकी जाग्रत् आदि तीन अवस्था हुई हैं वह मेरे अंशभूत जीवके विषैं मेरी अविद्याकी करी हुई हैं, वास्तविक नहीं हैं ऐसे आत्मरूप पदार्थका निश्चय करने वाले तुम, अनुमानसे, साधुओंके उपदेशसे और श्रुतियोंसे सीखे हुए ज्ञानखड्गकेद्वारा 'आत्मा देहसे भिन्न है अथवा अभिन्न है इत्यादि संशयके अधिष्ठान अहंकारका छेदन करके हृदयमें ही रहने वाले मेरा सेवन करो ॥३३। यह जगत् भ्रांतिमात्र है,ऐसा अनुमान करै,क्योंकि यह स्वप्नकी समान मनोविलासरूप, दृश्य और नाशवान् है,तैसे ही अलातचक्रकी समान अति चंचल है,अब निर्विषयक भ्रांति कैसे होयगी ऐसी शंका होनेपरकहते हैं कि भ्रांतिका अधिष्ठान जो एक ब्रह्म वही भ्रांतिके समय अनेकप्रकारका भासता है इसकारण गुणोंके परिणामका कराहुआ जो यह देह इन्द्रिय अन्तःकरणरूप तीन प्रकारका भेद है सो केवल माया ही है ३४ इससे तिस दृश्य (देहादि) प्रपंच करके अभिमान करनेका त्यागकरकेप्राणी अपने स्वरूप सुख का अनुभवकरे और उसस्वरूप सुखकी निश्चलता के निमित्त सब इच्छा और शरीरसंबंधी व्यापारोंको छोड़ देय, अब देहधारी पुरुष की द्वैतदृष्टि सर्वथा दूर होना असंभव है अतः उसको फिर संसार प्राप्त होजायगा ऐसी शंका आनेपर कहते हैं कि जीवन्मुक्तको किसी आवश्यक आहारादि कर्मके समय यदि यह देहादि द्वैत देखनेमें आता है तथापि पहिले ही अवस्तु जान कर छोड़ा हुआ वह फिर उसको मोहित करनेको समर्थ नहीं होता है, किन्तु देहपात होने पर्यन्त उसको उसका संस्कारवश स्मरणमात्र हो रहता है ॥ ३५ ॥ तथापि जैसे मदिराके मद (नशे) से मत्त हुआ पुरुष, शरीर पर धारण करा हुआ वस्त्र, दूसरी ओरको अस्तव्यस्त होगया अथवा कहीं रह गया है इसका कुछ ध्यान नहीं रखता है तैसे ही जीवन्मुक्त हुआ पुरुष, जिस देहसे अपने आत्मतत्त्वको जाना है, वह नाशवान् होनेके कारण उपेक्षा करा हुआ अपना देह, सोतेसे उठ कर आसन पर बैठा है अथवा खड़ा है अथवा तहाँसे दूसरी ओरको कहीं गया है अथवा जाकर फिर लौट आया है इस का अनुसन्धान नहीं रखता है फिर अपने सम्बन्धी स्त्री

तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३७ ॥ मयै-तदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः । जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ३८ अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः । परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ॥ ३९ ॥ मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् । सुहृदं प्रियमात्मानं साम्या संगादयो गुणाः ॥ ४० ॥ इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः । सभाज-यित्वा परया भक्त्याऽगृणत संस्तवैः ॥ ४१ ॥ तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परम-र्षिभिः । प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

उद्धव उवाच । वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः । तेषां विकल्पप्राधा-न्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥ भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः । निरस्य सर्वतः संगं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच । कालेन नष्टा प्रलये

पुत्रादिकोंको कहाँसे रक्खेगा ? ॥३६॥ अब जो देह पालन करनेपर भी मरणोन्मुख होता है उसकी ओरको यदि किंचिन्मात्र भी नहीं देखा तो वह गिर ही पड़ेगा, ऐसा कहो तो प्रारब्ध कर्मके अधीन वह शरीर, जब तक अपनेको उत्पन्न करने वाला कर्म है तब तक प्राण इन्द्रियोंके सहित जीवित रहेगा ही, इसमें सन्देह नहीं है, यदि कहो कि-इस दशामें कभी तो उसके ऊपर आसक्ति होगी, इस शंकाका उत्तर कहते हैं कि-जिसने समाधिपर्यन्त योगसाधन करा है और जिसने परमार्थ वस्तुको जान लिया है वह पुरुष, स्वप्नमेंके देहकी समान जाने हुए तिस पुत्र स्त्री आदि सहित देहको अहन्ता ममतासे सेवन नहीं करता है ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! आत्मा-नात्मविवेकरूप सांख्यशास्त्र और अष्टाङ्गयोगमेंका यह रहस्य, मैंने तुमसे कहा है, तुमसे मोक्षधर्मका वर्णन करनेकी इच्छासे हंसरूपसे आया हुआ मैं विष्णु हूँ ऐसा तुम जानो ॥ ३८ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! मैं योग, सांख्य, जानने योग्य धर्म, पालन करने योग्य धर्म, प्रभाव, लक्ष्मी, कीर्ति और इन्द्रिय निग्रहका परम आश्रय हूँ ३९ इस कारण निर्गुण, निरपेक्ष, और सबोंके सुहृद्, प्रिय और आत्मा ऐसे मेरा ही, जो गुणोंके परिणामरूप नहीं ऐसे साम्य, असंग आदि सब गुण मेरा सेवन करते हैं इसकारण मेरे कहनेपर तुम दृढ़ विश्वास रक्खो४०इसकारण मैंने जिनके संशयों को तोड़ डाला है ऐसे वह सनकादि ऋषि, परम भक्तिसे मेरा सत्कार करके उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥ तिन ऋषियोंसे पूजन करा हुआ और स्तुति करा हुआ मैं, ब्रह्माजीके देखते हुए अपने स्थानको लौट आया ॥ ४२ ॥ इति श्री-मद्भागवतके एकादश स्कन्धमें त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ छ

उद्धवजीने कहा कि-हे श्रीकृष्णजी ! वेदको जाननेवाले पुरुष, कल्याणके बहुतसे साधन कहते हैं, उनमें सब ही मुख्य हैं ? अथवा उनमेंसे एक मुख्य है शेष सब उसके अवान्तर भेद हैं ? ॥ १ ॥ हे स्वामिन् ! तुमने तो, जिससे, सब प्रकारके विषयोंकी आसक्ति छूट कर तुम्हारे विषें मन लगे ऐसे भक्ति योगको ही मोक्षका साधन कहा है सो इन साधनोंकी क्या व्यवस्था है ? ॥ २ ॥ श्रीभगवान्ने कहा

वाणीयं वेदसंज्ञिता । मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥ ३ ॥ तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा । ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥ ४ ॥ तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः । मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ५ किंदेवा किन्नरा नागा रक्षः किंपुरुषादयः । बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्वतमोभुवः ६ याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा । यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवंति हि ॥ ७ ॥ एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यंते मतयो नृणाम् । पारंपर्येण केषांचित्पाखण्डमतयोपरे ॥८॥ मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ । श्रेयो वदन्त्यनेकांतं यथाकर्म यथारुचि ॥ ९ ॥ धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् । अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् । केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥१०॥ आद्यंतवंत एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः । दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचाऽ-

कि-हे उद्धवजी ! जिसमें मेरे विषें मन लगाने वाला धर्म कहा है ऐसी यह वेद नाम वाली वाणी, पहिले प्रलयके समय, काल करके नष्ट होगई थी, वही मैंने सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीसे कही है ॥ ३ ॥ फिर उन ब्रह्माजीने, वह वाणी अपने बड़े पुत्र मनुजीसे कही, उनसे वह, महाऋषि, भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य पुलह और क्रतु इन सात प्रजापतियोंने ग्रहण करी ॥४॥ उन प्रजापतियोंसे जो उन के पुत्र-देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, चारण, किन्देव, किन्नर, नाग, राक्षस और किंपुरुष आदि हुए उन्होंने ग्रहण करी, उन देवादिकोंकी रजः-सत्व तमोगुणोंसे उत्पन्न हुई नानाप्रकारकी वासना होनेके कारण, उन वासनाओं के द्वारा प्राणियोंमें देवता, असुर और मनुष्य आदि भेद होकर उनकी बुद्धि भी निराली २ होती है; तैसेही उन सबोंके स्वभावके अनुसार चित्रविचित्र वेदके अर्थ की व्याख्यानरूप वाणी भी प्रवृत्त होती हैं ॥५—७॥ इसप्रकार स्वभावकी विचित्रता के कारण ही अध्ययन आदिसे शून्य भी कितने ही पुरुषोंकी बुद्धियें, उपदेश की परम्परासे भेदको प्राप्त होजाती हैं, दूसरे कितने ही तो पाखण्डबुद्धि वेदविरुद्ध अर्थके करने वाले होजाते हैं ॥ ८ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! मेरी मायासे मोहित बुद्धि हुए पुरुष, अपने २ कर्मके अनुसार और रुचिके अनुसार भिन्न २ प्रकारके कल्याण साधन कहते हैं ॥ ९ ॥ कोई (मीमांसक) स्वर्ग ही फल है और धर्म ही उसका साधन है ऐसा कहते हैं, दूसरे (अलङ्कार-शास्त्रके जानने वाले) यशको, वात्स्यायन आदि-कामको, योग शास्त्री-सत्य, दम और शमको, तथा राजनीतिके जानने वाले पुरुष, ऐश्वर्यको ही, स्वार्थ साधनेका मुख्यसाधन कहते हैं, चार्वाक (नास्तिक) लोग, दान और भोगको ही मुख्य साधन कहते हैं, दूसरे कितने ही लोकायतिक-यज्ञ, तप, दान, व्रत, नियम और यमोंको ही पुरुषार्थका साधन कहते हैं ॥ १० ॥ इन 'धर्मादि साधनोंको कहने वाले' सब लोकोंके कर्मोंके द्वारा रचेहुए सकल फल, आदि और अन्तसे युक्त, परिणाममें दुःख और मोहमें डालने वाले, तुच्छ आनन्दसे युक्त और भोगके समय भी स्पर्धा, निन्दा आदि दोषोंसे तथा शोक से युक्त होते हैं ॥ ११ ॥ हे उद्धवजी ! मुझमें चित्त लगाने वाले और सब ही

पिताः ॥ ११ ॥ मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः । मयात्मना सुखं यत्त-त्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥ १२ ॥ अकिञ्चनस्य दांतस्य शांतस्य समचेतसः । मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१३॥ न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् । न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनाऽन्यत् ॥ १४ ॥ न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः । न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥ निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम् । अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥ १६ ॥ निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः शांता महांतोऽखिलजीववत्सलाः ।कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥ १७ ॥ बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥ १८ ॥ यथाऽग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् । तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥१९॥ न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥२०॥ भक्त्याहमेकया ग्राह्यः

विषयोंके सुखोंमें निरपेक्ष रहने वाले भक्तको, परमानन्दरूपसे स्वरूप भाव करके स्फुरित होनेवाले मेरे द्वारा जो सुख है वह विषयासक्त चित्तोंको कहाँ मिलेगा? १२ धन आदिको इकट्ठा न करने वाला, जितेन्द्रिय शान्त, समचित्त, और मेरी प्राप्ति होने पर ही सन्तुष्ट चित्त ऐसे भक्तको सब ही दिशा सुखमय हैं ॥ १३ ॥ अपने चित्तको मेरे विषैं अर्पण करनेवाला भक्त, मेरे सिवाय दूसरे-ब्रह्माजीके आधिपत्य, स्वर्गके राज्य, सम्पूर्ण भूमण्डलके आधिपत्य, पातालके आधिपत्य, अणिमादि आठ ऐश्वर्य और मोक्षपदको भी इच्छा नहीं करता है ॥ १४ ॥ हे उद्धवजी ! जैसे मुझे तुम भक्त अतिप्रिय हो ऐसे, पुत्र ब्रह्माजी भी, साक्षात् मेरे स्वरूप शङ्कर भी, भ्राता-बलराम भी, लक्ष्मी स्त्री भी और आत्मा भी अतिप्रिय नहीं है ॥ १५ ॥ निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदृष्टि भक्तके पीछे मैं नित्य 'इस भक्तके चरण-रजसे अपने पेटमेंके ब्रह्माण्डोंको पवित्र करूँगा ऐसी भावनासे' जाता हूँ ॥ १६ ॥ जिनके पास किसी भी वस्तुका संग्रह नहीं है, जिनका मन मुझमें लगा हुआ है, जिनके चित्तको शब्दादिविषय स्पर्श भी नहीं करते हैं और जो शान्त, निरभिमानी और सकलप्राणियोंके ऊपर दया करने वाले हैं वह मेरे भक्त जिस सुखको भोगते हैं, निरपेक्ष पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य उस सुखको वही जानते हैं, वह सुख दूसरे किसीके भी जाननेमें नहीं आता है ॥ १७ ॥ उत्तम भक्तोंकी तो कथा अलग रहे परन्तु जितेन्द्रिय न होनेके कारण, विषयोंसे अपनी ओरको खेंचा हुआ भी मेरा भक्त, प्रतिक्षण बढ़ने वाली भक्तिसे भली प्रकार रक्षा करा हुआ होनेके कारण प्रायः विषयोंसे तिरस्कारको नहीं प्राप्त होता है किन्तु वह कृतार्थ ही होता है ॥ १८ ॥ हे उद्धवजी ! जैसे स्वयंपाक करनेवालेका अत्यन्त प्रदीप्त करा हुआ अग्नि काठको जला कर भस्म करता है, तैसे ही काम द्वेष आदि किसी भी निमित्तसे होनेवाली मेरी भक्ति, सब पातकोंको भस्म करती है ॥ १९ ॥ इसकारण बढ़ी हुई मेरी भक्ति जैसे मुझे वशमें करती है तैसे योग, सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप अथवा दान यह

श्रद्धयात्मा प्रियः सताम्। भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात् ॥ २१ ॥ धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता। मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥ २२ ॥ कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनानन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥ २३ ॥ वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च। विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥ यथाऽग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते स्वरूपम्। आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥ २५ ॥ यथायथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः। तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवांजनसंप्रयुक्तम् २६ विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते। मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते२७

साधन मुझे वशमें नहीं करते हैं ॥ २० ॥ प्रिय आत्मरूपी मैं, श्रद्धासे उत्पन्न होने वाली भक्ति करके ही सत्पुरुषोंके वशमें होता हूँ, मेरी भक्ति चाण्डालपर्यन्त सब पुरुषोंको जातिदोषसे पवित्र कर देती है ॥ २१ ॥ भक्ति न होय तो अन्य साधन व्यर्थ हैं, क्योंकि-सत्य और दयासे युक्त धर्म और तपसे युक्त आत्मविद्या भी, मेरी भक्तिसे रहित जीवको उत्तम प्रकारसे पवित्र नहीं करती है ॥ २२ ॥ शरीर पर रोमाञ्च खड़े हुए बिना, चित्तके द्रवीभूत हुए बिना और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू आये बिना भक्ति कैसे समझी जाय ? और भक्तिके बिना अन्तःकरणकी शुद्धि कैसे होसकती है ? ॥ २३ ॥ और मेरी भक्ति, करने वाले पुरुषको पवित्र करती है इसका तो कहना ही क्या ? परन्तु जिसकी वाणी मेरे प्रेमसे गद्गद होती है, जिसका चित्त द्रवीभूत (बाहरी व्यवहारमें शिथिल) होता है, जो मेरे वियोगको प्राप्तहुआ सा वारम्वार रोदन करता है, कभी मेरा क्रीड़ाका रहस्य समझमें आजाय तो हँसने लगता है, कभी लोकलाजको छोड़ कर ऊँचे स्वरसे मेरे चरित्रका गान करता है और नृत्य करता है, ऐसा मेरी भक्ति करने वाला पुरुष, अपनेको तो क्या परन्तु अपने दर्शन आदिसे जगत्को पवित्र करता है ॥ २४ ॥ जैसे सोना, अग्निसे तपाने पर ही अपनेमेंके दूसरी धातुओंके मेलरूप मलका त्याग करता है, धोने आदिसे नहीं त्याग करता है और अपने वास्तविक स्वरूपको पाता है तैसेही जीव भी मेरी भक्तिके द्वारा ही संसारकी कारण कर्म वासनाओंको त्याग कर मेरा भजन करता है और मुझमें एकताको पाता है ॥ २५ ॥ मेरी पवित्र कथाओंका सुननेसे और वर्णन करनेसे जैसे२ अन्तःकरण शुद्ध होता है तैसे२ यह जीव, जैसे अञ्जन डाला हुआ नेत्र दोष रहित होकर सूक्ष्म वस्तुको भी देखता है, तैसे ही सूक्ष्म भी आत्मवस्तुको जाननेमें समर्थ होता है अर्थात् भक्तिका ही एक व्यापार ज्ञान है, भक्तिसे भिन्न नहीं है ॥ २६ ॥ और वह ज्ञान भी चित्तका मेरी रूपता करके एक परिणाम है और वह भी मेरी भक्ति करने वालेको स्वाभाविक ही होता है, उसके निमित्त यत्न नहीं करना पड़ता है, जैसे विषयोंका ध्यान करने वाले पुरुषका चित्त विषयोंमें आसक्त होता है तैसे ही वारम्वार मेरा चिन्तवन करने वालेका चित्त मुझमें लीन होजाता है ॥ २७ ॥ इस कारण हे उद्धवजी ! क्योंकि-विषयोंका

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्। हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥ २८ ॥ स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्। क्षेमे विविक्त आसीनश्चिंतयेन्मामतंद्रितः ॥ २९ ॥ न तथाऽस्य भवेत्क्लेशो बंधश्चान्यप्रसंगतः। योपित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥ ३० ॥ उद्धव उवाच। यथा त्वामरविंदाक्ष याद्दशं वा यदात्मकम्। ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं न वक्तुमर्हसि॥३१॥श्रीभगवानुवाच। सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्। हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाऽग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः। विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥३३॥ हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्। प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥३४॥ एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत्। दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥ हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधो-

ध्यान संसारका कारण और मेरा ध्यान मेरी प्राप्तिका कारण है तिससे जिस प्रकार स्वप्नमें और मनोरथके समय प्राप्त हुए विषय मिथ्या हैं तिसी प्रकार भक्तिके विना दूसरे साधन और उनके फल मिथ्या (कल्पनारूप) हैं ऐसा जान कर उनका त्याग करो और मेरी भक्तिसे ही शुद्ध हुए चित्तको मेरे विषें स्थिर करो ॥ २८ ॥ धैर्यवान् पुरुष, स्त्रियोंकी और स्त्रियोंमें आसक्त हुए कामी पुरुषोंकी संगतिको दूरसे ही छोड़ कर निर्भय एकान्त स्थानमें बैठे और मेरा चिन्तवन करे ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी सङ्गतिसे और स्त्रियोंकी सङ्गति करने वाले जारपुरुषोंकी सङ्गतिसे पुरुषको जैसा क्लेश और बन्धन प्राप्त होता है तैसा दूसरे किसीकी भी सङ्गतिसे नहीं प्राप्त होता है इस कारण उनकी सङ्गति सर्वथा छोड़ देनी चाहिये ॥ ३० ॥ उद्धवजीने कहा कि–हे कमलनेत्र श्रीकृष्णजी! मुमुक्षु पुरुष, जिस प्रकार, जिन लक्षणोंसे युक्त जिस तुम्हारे रूपका ध्यान करे सो मुझसे कहनेकी कृपा करिये ३१ श्रीभगवान्ने कहा कि–न बहुत ऊँचा न बहुत नीचा ऐसे कम्बल आदिके आसन पर समान शरीरसे जैसे सुख प्रतीत हो तिस रीतिसे बैठने वाला साधक, अपने दोनों हाथ जंघाओं पर रख कर और चित्तकी स्थिरताके निमित्त नासिकाके अग्र भाग पर दृष्टि लगा कर पूरक, कुम्भक और रेचक इस क्रमसे अथवा नासिकाके बायें नथुनेसे ऊपरको खैंच कर रोका हुआ वायु, दाहिने नथुनेसे छोड़ना और दाहिने नथुनेसे ऊपरको लेजा कर रोका हुआ वायु, बायें नथुनेसे छोड़ना, इस क्रमसे प्राणके मार्गको शुद्ध करके विषयोंसे इन्द्रियोंको अन्तर्मुख करके प्राणायाम का अभ्यास करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ प्राणायाम दो प्रकारका है एक सगर्भ और दूसरा अगर्भ, तिसमें श्रेष्ठ होनेके कारण सगर्भ (ॐकारगर्भित) प्राणायामका वर्णन करते हैं–मूलाधारचक्रसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त कमलकी दण्डीमेंके तन्तुकी समान सूक्ष्म और अविच्छिन्न (कहींसे न टूटा हुआ) ॐकारको मनमें प्राणवायुके द्वारा प्रकट करके फिर उस ॐकारमें घण्टेके नादकी समान सूक्ष्म गुञ्जारयुक्त उदात्तस्वर (अनुस्वार) को स्थिर करे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रणवगर्भित प्राणायाम प्रतिदिन प्रातःकाल दुपहर और सायंकालके समय दश २ बार जो पुरुष करता है वह एक

मुखम् । ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥ ३६ ॥ कर्णिकायां न्यसेत्सूर्य-सोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् । वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ॥ ३७ ॥ समं प्रशांतं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् । सुचारुसुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ ३८ ॥ समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् । हेमांबरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेत-नम् ॥ ३९ ॥ शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् । नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ॥ ४० ॥ द्युमत्किरीटकटककटिसूत्रांगदायुतम् । सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसु-मुखेक्षणम् ॥ ४१ ॥ सुकुमारमभिध्यायेत्सर्वाङ्गेषु मनो दधत् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः । बुद्धया सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥ तत्सर्व-व्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत् । नान्यानि चिंतयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥४३ तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत् । तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ४४ ॥ एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि । विचष्टे मयि सर्वात्मन्

मासके पहिले ही प्राणवायुको जीतनेवाला होता है ॥३५॥ देहमें ऊपरको दण्डी और नीचेको मुखवाला केलेकी फूलकी समान मुँदाहुआ एक हृदयकमल है उसको विपरीत ध्यान करे अर्थात्, नीचेको दण्डी और ऊपरको मुख है तथा खिला हुआ अष्टदल और कर्णिकायुक्त है ऐसा ध्यान करे ॥ ३६ ॥ उस कर्णिकामें एकके ऊपर एक इस क्रमसे मण्डलाकार सूर्य चन्द्रमा और अग्नि है ऐसा ध्यान करे, तदनन्तर अग्निमें आगे कहे हुए ध्यानके विषय मेरे स्वरूपका चिन्तवन करे ॥ ३७ ॥ उस स्वरूपके विशेषण कहते हैं कि—यथोचित अङ्गोंवाला, शान्त, सुन्दरमुखसे युक्त, घुटनोंपर्यन्त लम्बी चार भुजाओंसे शोभायमान, अतिरमणीय, सुन्दर कण्ठ और कपोलोंसे विराजमान, स्वच्छ मन्द हास्यसे शोभायमान ॥३८॥ एक समान कानोंमें पहिने हुए दमकते हुए मकराकार कुण्डलोंसे युक्त,सुवर्णकी समान पीला पीता-म्बर पहिनेहुए, मेघकी समान श्यामवर्ण, वक्षःस्थल पर दक्षिणकी ओर श्रीवत्स-लांछन और बाईं ओर लक्ष्मीके आश्रय ॥३९॥ शंख चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित, नूपुरोंसे शोभित चरणोंवाला, कौस्तुभमणिकी कान्तिसे युक्त ॥४०॥ मस्तक पर देदीप्यमान किरीटवाला, हाथोंमें कड़े तोड़े, कमरमें तागड़ी, भुजदण्डों पर धारण करेहुए बाजूबन्दोंसे युक्त, सकल अवयवोंसे सुन्दर, मनोहर, प्रफुल्लित हुए मुख वा नेत्रोंसे युक्त ॥ ४१ ॥ और सुकुमार मेरे स्वरूपका, मेरे चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्तके अवयवोंमें मन लगाकर ध्यान करे इस सविशेष ध्यानको करके, फिर शब्दादि विषयोंसे इन्द्रियोंको मनसे खेंचकर, धीरजवान् पुरुष, उस संकल्प विकल्पात्मक मनको भी,सहायभूत निश्चयात्मक बुद्धिके द्वारा सर्वाङ्गयुक्त मेरे विषैं स्थापन करे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उस सर्वाङ्गव्यापक चित्तको, सब अङ्गोंसे खेंचकर एक ही अवयवमें स्थापन करे, फिर दूसरे अवयवका चिन्तवन न करे किन्तु मन्दहास्ययुक्त मुखका ही ध्यान करे ॥४३॥ फिर उस मुखमें स्थिरता पायेहुए चित्त को सबके कारणरूप मेरे विषैं स्थापन करे फिर उस कारणत्व आदिको छोड़कर ब्रह्मरूप मेरे विषैं भक्तके आरूढ होनेपर ध्याता, ध्यान, ध्येय, इनमेंसे किसी विभाग

ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥ ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः। संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥
इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः१४

श्रीभगवानुवाच। जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः। मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥ १ ॥ उद्धव उवाच। कया धारणया कास्वित् कथं वा सिद्धिरच्युत। कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥२॥ श्रीभगवानुवाच। सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः। तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥३॥ अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः। प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४ ॥ गुणेष्वसंगो वशिता यत्कामस्तदवस्यति। एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५ ॥ अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम्। मनो-

---

का चिन्तवन न करे ॥ ४४ ॥ इस प्रकार समाधिपर्यन्त ध्यान करनेवाला पुरुष, मेरे विषैं निश्चल बुद्धि हो जाय तो मुझे अपनेमें देखता है और अपने आत्माको, जैसे दीपक आदिका तेज महाभूतरूप तेजमें लीन होजाता है तैसे ही सर्वात्मा मेरे विषैं एकतारूपसे संयुक्त हुआ देखता है॥४५॥ इसप्रकार अत्यन्त तीव्र ध्यानसे मन की एकाग्रता करनवाले योगीका अधिभूत,अधिदैव और अध्यात्मरूप अथवा द्रष्टा दर्शन-दृश्यरूप भ्रम तत्काल नाशको प्राप्त होजाता है ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्धमें चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

श्रीभगवान्ने कहते हैं कि-हे उद्धवजी ! श्वासवायु और इन्द्रियोंका जय करने वाले तथा मेरे विषैं चित्तको स्थापन करने वाले योगीको बहुतसी सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ १ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे श्रीकृष्णजी ! कौनसी धारणासे कौनसे नामकी किस प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है और वह सब सिद्धियें कितनी हैं ? यह मुझसे कहो, क्योंकि-तुम योगियोंको सिद्धि देनेवाले हो ॥२ ॥ तब श्रीभगवान् कहने लगे कि-हे उद्धवजी ! योगके पारगामी पुरुषोंने अठारह सिद्धि और उनकी अठारह धारणा कही हैं, इससे त्रिकालज्ञत्व आदि क्षुद्र सिद्धियोंको दूसरे भी पुरुष जानते हैं ऐसा सिद्ध हुआ, उन अठारहमेंसे आठ सिद्धियें मुख्यतासे मेरा ही आश्रय करके रहती हैं, वह मेरे सारूप्यको प्राप्त हुए पुरुषोंमें मुझसे कुछ कम अंश करके रहती हैं और दश सिद्धियें सत्त्वगुणकी वृद्धिसे प्राप्त होती हैं ॥ ३ ॥ तिनमें १ पहिली अणिमा, (बड़े शरीरसे ही एक साथ सूक्ष्म होजाना) २-री महिमा, (सूक्ष्म शरीरसे ही एक साथ बड़ा होजाना) ३-री लघिमा, (भारी शरीरसे ही हलका होजाना) यह तीन सिद्धियें शरीरकी हैं, ४-थी प्राप्ति, (सकल प्राणियोंकी इन्द्रियोंके साथ उनके अधिष्ठातृ देवतारूपसे सम्बन्ध), ५-वीं प्राकाश्य, (परलोक मेंके और इस लोकमेंके सब स्थानोंमें भोग देखनेकी शक्ति) ६-ठी ईशिता, (ईश्वर के विषैं मायाको और दूसरोंमें मायाके अंशोंको प्रेरणा करनेकी शक्ति) ॥४॥ ७-वीं वशिता, (विषय भोगतेमें भी असङ्ग रहना) और ८-वीं प्राकाम्य, (जो जो सुख पानेकी इच्छा होय वह २ पराकाष्ठाको प्राप्त होना) हे उद्धवजी ! यह आठसिद्धियें

जवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥ स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सह क्रीडानुदर्शनम् । यथासंकल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥ त्रिकालज्ञत्वमद्वंद्वं परचित्ताद्यभिज्ञता । अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥८॥ एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः । यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥ भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः । अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥१०॥ महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् । महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक् पृथक् ॥११॥ परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् । कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥१३॥ महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् । प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४ ॥ विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं

मेरे विषैं स्वाभाविक और अधिकतासे हैं ॥ ५ ॥ इस देहमें ९–अनूर्मिमत्त्व (भूँख प्यास आदि न लगना), १०–दूर श्रवण (दूरसे सुनना), ११–दूर दर्शन (दूरसे देखना), १२—मनोजव (मनके समान वेगसे देहकी गति), १३—कामरूप (इच्छितस्वरूपकी प्राप्ति) १४–परकायप्रवेश (दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना), १५–स्वच्छन्दमृत्यु (अपनी इच्छाके अनुसार मृत्यु होना), १६–देवताओंके साथ क्रीड़ा करना (अप्सराओंके साथ देवताओंकी जो क्रीड़ा होती है उनको देखना), १७–यथा सङ्कल्पसिद्धि (सङ्कल्पके अनुसार प्राप्ति होना), और १८–जिसकी गति कहीं भी खुटली नहीं होती ऐसी आज्ञा, यह दश सत्त्वगुणकी वृद्धिसे सिद्धि होती हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ त्रिकालका ज्ञाता होना, सरदी गरमी आदिसे क्लेश न पहुँचना, दूसरोंके चित्त आदिकोंको जानना, अग्नि-सूर्य-जल-विष आदिका स्तम्भन करना, और किसी स्थान पर भी तिरस्कार न पाना ॥ ८ ॥ जप योगकी धारणाओंसे होने वाली मुख्य २ सिद्धियें मैंने तुमसे कही हैं, अब जिस २ धारणासे जो जो सिद्धि जिस २ प्रकारकी होती है सो मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ ९ ॥ शब्द स्पर्श–रूप–रस गन्ध इन सूक्ष्मभूतोंकी उपासना करनेवाला जो पुरुष, शब्द स्पर्शादिरूपी मेरे विषैं तदाकार हुए मनको धारण करता है वह मेरी अणिमा नामवाली सिद्धिको पाता है ॥ १० ॥ ज्ञानशक्तिमान् महातत्त्वरूपी मुझ परमेश्वरके विषैं महातत्त्वाकार हुए मनकी धारणा करने वाला पुरुष, महिमा नाम वाली सिद्धिको पाता है और आकाशादि महाभूतरूपी मेरे विषैं मनकी धारणा करने वाला पुरुष, तिस २ महाभूतकी महिमाको पाता है ॥ ११ ॥ वायु आदि पञ्चमहाभूतोंके परमाणुस्वरूप मेरे विषैं मनकी धारणा करने वाला योगी, कालकी परमाणुरूप स्थिति लघिमानामक सिद्धिको पाता है ॥१२॥ सात्त्विक अहङ्काररूप मेरे विषैं एकाग्र हुए मनकी धारणा करने वाला मेरा उपासक, सकल प्राणिमात्रकी इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण करनेकी शक्तिरूप प्राप्ति नाम वाली सिद्धिको पाता है ॥ १३ ॥ क्रियाशक्ति प्रधान जो महत्तत्त्व वही सूत्र है तद्रूपी मेरे विषैं जो मनकी धारणा करता है वह उस सूत्रोपाधिक मेरे सर्वोत्तम ब्रह्माण्डमेंकी ज्ञानरूप प्राकाश्यनामक सिद्धिको पाता

धारयेत्कालविग्रहे । स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ॥१५॥ नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते । मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥ निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन् विशदं मनः । परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोवसीयते ॥ १७ ॥ श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि । धारयन् श्वेततां याति षड्र्मिरहितो नरः ॥ १८ ॥ मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् । तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥ चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि । मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ॥ २० ॥ मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना । मद्धारणाऽनुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥२१ ॥ यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति । तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥२२॥ परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् । पिंडं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडंघ्रिवत् ॥२३॥ पार्ष्ण्या

है ॥ १४ ॥ त्रिगुणमयी मायाके नियन्ता, कालरूपी और अन्तर्यामी विष्णुके विषैं जो चित्तकी धारणा करैगा वह देह इन्द्रिय-अन्तःकरणके समूहरूप देहोंकी और जीवोंकी प्रेरणा करने वाली सामर्थ्यरूप ईशिता नामक सिद्धिको पावेगा ॥ १५ ॥ विराट्, हिरण्यगर्भ और कारण इन तीन उपाधियोंसे रहित अथवा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंके साक्षी तुरीयनामक, पूर्ण-ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्य युक्त मुझ नारायणमें, मेरी उपासनासे एकाग्र हुए मन को, धारण करने वाले और मेरे धर्मको पालने वाले योगीको, विषयोंमें अनासक्ति रूप वशिता नाम वाली सिद्धि प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ मुझ निर्गुण ब्रह्मके विषैं स्वच्छ मनको लगाने वाला योगी, परमानन्दरूप प्राकाम्यनामक सिद्धिको पाता है, इस सिद्धिमें सब प्रकारके मनोरथ पूरे होते हैं ॥ १७ ॥ शुद्ध सत्त्वगुणी, धर्ममय, श्वेतद्वीपके पति (अनिरुद्धरूप) मेरे विषैं मनकी धारणा करनेवाला योगी, शुद्ध होकर, भूँख, प्यास, शोक, मोह, जरा और मृत्यु इन धर्मोंसे रहित होनेकी अनूर्मिमत्व सिद्धिको पाता है ॥ १८ ॥ आकाशरूप अर्थात् आकाशकी समान निर्मल और सर्वव्यापक, जगत्के समष्टि प्राणरूप मेरे विषैं मनसे नादका चिन्तवन करने वाला यह जीव, उस आकाशमें सकल प्राणियोंकी विचित्रवाणियोंको सुनना रूप दूरश्रवण सिद्धिको पाता है ॥ १९ ॥ आदित्यको चक्षु इन्द्रियमें और आदित्यमें चक्षुको संयुक्त करके उन दोनोंके संयोगमें मेरा ध्यान करने वाला पुरुष, सूक्ष्म दृष्टि होकर सब जगत्को देखता है अर्थात् दूरदर्शन नामक सिद्धिको पाता है ॥ २० ॥ मन और देह, दोनोंको देहमें रहने वाले प्राणवायुके साथ मेरेमें भली प्रकारसे संयुक्त करके मेरी धारणा करने पर, उस धारणाके प्रभावसे जहाँ उसका मन जाता है तहाँ ही देह भी जापहुँचता है अर्थात् उसको मनोजवरूप सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २१ ॥ अचिन्त्यशक्ति और अनेक प्रकारके आकार धारण करने वाले मुझमें जो मनकी धारणा करी जाती है तो उसके बलके आश्रयसे यह योगी, जब मनको उपादान कारण बनाकर जिस २ देवादिरूपको प्राप्त होनेकी इच्छा करता है तिस २ मनके इच्छितरूपको पानारूप प्राकाम्यसिद्धिको पाता है ॥ २२ ॥ पराई

पीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु । आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् २४ विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् । विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥ यथा संकल्पयेद् बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् । मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥ यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् । कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥२७॥ मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः । तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८ ॥ अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः । मद्योगश्रांतचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥ मद्विभूतीरभिध्यायञ्छ्रीवत्सास्त्रविभूषिताः । ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥ उपा-

कायामें प्रवेश करने वाला सिद्ध, उस कायामें अपने आत्माका चिन्तवन करे और अपने स्थूल देहको छोड़ कर लिङ्गशरीररूप उपाधिके साथ वायुके मार्गसे, जैसे भौंरा एक फूलसे दूसरे फूल पर जाता है तैसे पराई कायामें प्रवेश करे, यह परकायप्रवेशन नाम वाली सिद्धि है ॥ २३ ॥ योगी, पैरकी एड़ीसे गुदाके द्वारको रोक कर, प्राण उपाधि वाले आत्माको क्रमसे हृदय, उर, कण्ठ और मस्तकमें चढ़ा कर ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा ब्रह्ममें अथवा मनके द्वारा दूसरे इच्छित स्थानमें लेजा कर स्थूल शरीरका त्याग कर देय, यह स्वच्छन्दमृत्यु नाम वाली सिद्धि है ॥ २४ ॥ जहाँ देवता क्रीड़ा करते हैं ऐसे विमानादिकोंमें अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष, मेरी मूर्त्तिरूप शुद्ध सत्वगुणका ध्यान करे तो, सत्वगुणकी अंशरूप अप्सरा, विमानों सहित उसके समीप आजाती हैं, यह देवक्रीड़ानुदर्शन नाम वाली सिद्धि है ॥ २५ ॥ मेरी आराधना करनेमें तत्पर हुआ पुरुष, मुझ सत्यसङ्कल्पमें मनकी धारणा करके जब जैसी वस्तुका बुद्धिसे सङ्कल्प करेगा उसी समय वैसी ही वस्तु उसको उत्तमतासे प्राप्त होगी, यह यथासङ्कल्प सिद्धि है ॥२६॥ जो पुरुष, ध्यानयोगके द्वारा, मुझ सर्वनियन्ता स्वतंत्रके स्वभावसे एकताको प्राप्त हुआ है उसकी आज्ञाको, मेरी आज्ञाकी समान कोई भी नहीं टालता है, यह अप्रतिहताज्ञा नाम वाली सिद्धि है, यह दश सिद्धियें गुणनिमित्तक हैं।।२७ ।अब त्रिकालज्ञत्व आदि क्षुद्र सिद्धियोंका वर्णन करते हैं मेरी भक्तिसे शुद्धचित्त हुआ और मेरी धारणाको जानने वाला जो पुरुष होगा उसको तीनों कालको जाननेकी तथा अपने जन्ममरणको जाननेकी त्रिकालज्ञत्व नामक सिद्धि प्राप्त होती है और इस धारणा से ही दूसरेके चित्त आदिको जाननेकी, परचित्ताद्यभिज्ञता नामक सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २८ ॥ अग्नि सूर्य आदि उपघातोंसे रहित मेरी धारणासे शान्तचित्त हुए मुनिका, प्राणायाम आदि योगसाधनोंसे वशमें करा हुआ शरीर, जैसे मत्स्य आदि जलजन्तुओंका शरीर जलसे किसी प्रकार भी नाशको नहीं प्राप्त होता है तैसे ही, अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिकोंसे किसी प्रकार नाशको नहीं प्राप्त होता है, इस ही धारणासे अद्वन्द्वता (शीत उष्णादिसे तिरस्कार न पाना) सिद्धि प्राप्त होती है २९ श्रीवत्सलांछनादि चिह्न, चक्र आदि आयुध, और ध्वजा छत्र चँवर आदि राजचिन्ह, इनसे भूषित मेरे अवतारोंका जो पुरुष ध्यान करता है वह सब स्थानोंमें

सक्तस्य मामेवं योगधारणया मुनेः । सिद्धयः पूर्वं कथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥३१॥ जितेन्द्रियस्य दांतस्य जितश्वासात्मनो मुनेः । मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥ अन्तरायान्वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् । मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥ जन्मौषधितपोमंत्रैर्यावतीरिह सिद्धयः । योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः । अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥ अहमात्मांतरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् । यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः १५

उद्धव उवाच । त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यंतमपावृतम् । सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥ १ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः । उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणाः ॥ २ ॥ येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः । उपा-

जय पाता है,यह अपराजय नामक सिद्धि है ॥ ३० ॥ इसप्रकार जुदी२ योग धारणा से मेरी उपासना करने वाले मुनिको, पहिले कही हुई सब सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३१ ॥ अथवा अनेक धारणा करनेके परिश्रमकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि-इन्द्रियें, मन और प्राणवायुका जय करने वाले और पहिले वशिता नाम वाली सिद्धिके प्रकरणमें कहे हुए तुरीय नामक भगवान् नारायणके विषें मनकी धारणा करने वाले मुनिको, कौनसी सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ? अर्थात् उस एक धारणासे ही उसको सब सिद्धियें प्राप्त होती हैं ॥ ३२ ॥ यद्यपि ऐसा है तथापि उन सिद्धियोंकी चाहना न करे, क्योंकि-उत्तम योग (मेरी उपासना) करनेवाले और मेरी शीघ्र प्राप्ति कर लेनेके अधिकारी योगीको,यह सिद्धियें मेरी प्राप्तिके होने के मध्यमें जन्म भोगादि करके कालक्षेपका कारण होती हैं अर्थात् यह विघ्नरूप हैं ऐसा वृद्ध पुरुष कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस जगत्में, जन्म, ओषधि, तप और मन्त्रोंसे जितनी सिद्धियें प्राप्त होती हैं, उन सब ही सिद्धियोंको, पहिले कहे हुए तुरीय नारायणकी भावनासे योगी पाता है परन्तु केवल जन्म ओषधिमात्र साधनोंसे वह मेरे सालोक्य आदिरूप सिद्धिको नहीं पाता है ॥३४॥ मैं सब सिद्धियोंका देनेवाला और उनकी रक्षा करने वाला प्रभु हूँ और केवल इतना ही नहीं किन्तु-मोक्षका और मोक्षके साधन ज्ञानका तथा धर्मका और धर्मका उपदेश करनेवाले साधुओंका भी प्रभु हूँ ॥ ३५ ॥ इसका कारण यह है कि -जैसे पञ्चमहाभूत, जरायुज आदि चार प्रकारके प्राणियोंके शरीरोंमें भीतर और बाहर व्याप्त हैं तैसे ही, सकल जीवों का अन्तर्यामी आत्मा मैं भी सबोंके भीतर और बाहर व्यापक होकर अपरिच्छिन्न हूँ ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें पंचदश अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

उद्धवजीने कहा कि-हे श्रीकृष्णजी ! आदि अन्त और आवरणोंसे रहित तुम साक्षात् परब्रह्म हो और सब प्राणियोंकी जीविका चलानेवाले तथा उत्पत्ति,स्थिति और प्रलय करने वाले तुम ही हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! जिन्होंने अपना मन नहीं जीता है यह, जाननेमें नहीं आते हुए भी तुम्हें, वेदका अभिप्राय जानने वाले

लीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥३॥ गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावनः। न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते॥४॥ याः काश्च भूमौ दिवि रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते। ता मह्यमाख्याह्यनुभाविताःस्ते नमामि ते तीर्थपदांघ्रिपद्मम्॥ श्रीभगवानुवाच। एवमेतदहं पृष्टः प्रश्नं प्रश्नविदां वर। युयुत्सुना विनशने सपत्नै रर्जुनेन वै॥६॥ ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम्। ततो निवृत्तो हंताहं हतोऽयमिति लौकिकः॥७॥ स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः। अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि॥८॥ अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः। अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः॥९॥ अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्। गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः॥१०॥ गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम्। सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः॥११॥ हिरण्यगर्भो वेदानां मंत्राणां प्रणवस्त्रिवृत्। अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छन्दसामहम्॥१२

ब्राह्मण, छोटे बड़े पदार्थोंमें यथार्थ रूपसे जान कर तुम्हारी उपासना करते हैं ॥२॥ वह विवेकी ब्राह्मण, जिन २ पदार्थोंमें भक्तिसे तुम्हारी उपासना करते हुए मोक्ष पाते हैं सो मुझसे कहो ॥३॥ हे भूतपालक! सब प्राणियोंके अन्तर्यामी जो तुम, सब प्राणियोंमें गुप्तरूपसे रह रहे हो, तिन तुम्हारे मोहित करे हुए सकल प्राणी, देखने वाले भी तुम्हें नहीं देखते हैं ॥४॥ इससे हे महाविभूते! पृथ्वी पर, स्वर्ग में, पातालमें और दिशाओंमें तुम्हारी विशेष शक्तिसे, तुम्हारी ही संयुक्त करी हुई जो कुछ तुम्हारी विभूतियें हैं वह सब मुझसे कहो सब तीर्थोंके स्थानरूप तुम्हारे चरणकमलको मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे प्रश्न जानने वालोंमें श्रेष्ठ उद्धवजी! जैसे तुमने मुझसे प्रश्न करा है तैसे ही यह प्रश्न पहिले कुरुक्षेत्रमें शत्रुओंके साथ युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले अर्जुनने मुझसे करा था॥६ वह अर्जुन, मैं मारने वाला और यह मानवसमूह मरने वाला है ऐसा मान कर अज्ञानी पुरुषोंकी समान मोहित चित्त और ज्ञातियोंका वध केवल अधर्म और निन्दनीय है ऐसा जान कर तिससे हट गया था ॥७॥ तब उस पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन को उस रणभूमिमें ही मैंने युक्तिसे समझाया उससमय उसने, जैसे अब तुमने मुझ से प्रश्न करा है ऐसे ही विभूतिप्रश्न करा था, इस कारण उससे जैसा कहा था सोई तुमसे भी कहता हूँ सुनो ॥८॥ हे उद्धवजी! इन सब प्राणीमात्रका आत्मा, मित्र और ईश्वररूपसे उपासना करने योग्य मैं ही हूँ और सकल प्राणी और उनकी उत्पत्ति, स्थिति संहारका कारण भी मैं ही हूँ९गतिमान् पदार्थोंकी गति मैं हूँ, दूसरों को वशमें करने वालोंमें काल मेरा स्वरूप है, सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों की जो समतारूप अवस्था (प्रकृति) सो मैं हूँ, पदार्थोंमें जो मधुरता आदि स्वाभाविक गुण हैं सो मैं हूँ ॥१०॥ सत्त्वादि त्रिगुणमयी पदार्थोंमें क्रिया शक्तिप्रधान पहिला विकार जो सूत्र सो मैं हूँ, बड़े पदार्थोंमें महत्तत्त्व मैं हूँ, सूक्ष्म पदार्थोंमें जीव मैं हूँ, दुर्जय पदार्थोंमें मन मैं हूँ ॥११॥ वेदोंके सिखाने वालोंमें ब्रह्मा मेरी विभूति है, वेदोंमें अकार-उकार-मकाररूप ॐकार मैं हूँ, अक्षरोंमें अकार मैं हूँ

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् । आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः । देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥ १४॥ सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्त्रिणाम् । प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥ १५ ॥ मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् । सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥१६॥ ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् । तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥१७॥ उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् । यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥१८॥ नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् । आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ तीर्थानां स्रोतसां गंगा समुद्रः सरसामहम् । आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥२०॥ धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः । वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः ॥२१॥ पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः । स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥ २२ ॥ यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् । वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः॥२३॥योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोस्मि विजिगीषताम् । आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां

छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं हूँ ॥ १२ ॥ सब देवताओंमें इन्द्र मैं हूँ, अष्टवसु नाम वाले देवताओंमें अग्नि मैं हूँ, बारह आदित्योंमें वामन मैं हूँ, ग्यारह रुद्रोंमें नीललोहित रुद्र मैं हूँ ॥ १३ ॥ ब्रह्मर्षियोंमें भृगु मैं हूँ, राजर्षियोंमें स्वायम्भुव मनु मैं हूँ,देवर्षियों में नारद मैं हूँ और धेनुओंमें कामधेनु मैं हूँ ॥ १४ ॥ सिद्धेश्वरोंमें कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियोंमें दक्ष और पितरोंमें अर्यमा मैं हूँ ॥ १५ ॥ हे उद्धवजी ! दैत्यों में उनका अधिपति प्रह्लाद मैं हूँ, ऐसा जानो,नक्षत्र और ओषधियोंका राजा चंद्रमा मैं हूँ, यक्ष और राक्षसोंका प्रभु कुबेर मैं हूँ ॥ १६ ॥ गजेन्द्रोंमें ऐरावत,जलके जीवों में उनका प्रभु वरुण, ताप देने वालोंमें और कान्ति मानोंमें सूर्य और मनुष्योंमें मैं उनका राजा हूँ ॥ १७ ॥ घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा (इन्द्रका घोडा)और धातुओंमें सुवर्ण मैं हूँ, दण्ड देने वालोंमें यम, और सर्पोंमें वासुकि मैं हूँ ॥ १८ ॥ श्रेष्ठ नागोंमें अनंत मैं हूँ,सींग वा दाढ़वाले पशुओंमें मैं सिंह हूँ, हे पवित्र उद्धवजी ! आश्रमोंमें संन्यास और वर्णोंमें ब्राह्मण मैं हूँ ॥ १९ ॥ तीर्थोंमें और सोतोंमें गङ्गा तथा स्थिर जलाशयों में समुद्र मैं हूँ, आयुधोंमें धनुष, और धनुर्धारियोंमें त्रिपुरासुरका नाश करनेवाला महादेव मैं हूँ ॥ २० ॥ निवासके स्थानोंमें मेरु, और गहन स्थानमें हिमालय मैं हूँ वनस्पतियोंमें पीपल और ओषधियोंमें जौ मैं हूँ ॥ २१ ॥ पुरोहितोंमें वसिष्ठ और वेदके अर्थमें निष्ठा रखनेवालोंमें बृहस्पति मैं हूँ,सब सेनापतियोंमें स्वामिकार्त्तिकेय और सन्मार्ग चलाने वालोंमें मैं भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥ २२ ॥ यज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ और व्रतों में अहिंसा व्रत मैं हूँ, बुहारना-छीलना-घिसना आदि शुद्ध करनेकी रीतियोंमें वायु, अग्नि, सूर्य, जल और ब्राह्मणोंके वचनरूपसे शुद्ध करने वाला मैं हूँ ॥ २३ ॥ अष्टाङ्गयोगोंमें समाधि और विजयकी इच्छा करनेवालोंमें नीति मैं हूँ विवेक आदि निपुणताओंमें आत्मानात्मविवेकरूप ब्रह्मविद्या मैं हूँ,अख्याति अन्यथाख्याति आदि

तु शतरूपाऽहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः। नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम ॥२५॥ धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामवहिर्मतिः। गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥ संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ। मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाऽभिजित् ॥२७॥ अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः। द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान् ॥ २८ ॥ वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम्। किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥२९॥ रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम्। कुशोस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम्३० व्यवसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः। तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्ववतामहम् ॥ ३१ ॥ ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्वताम्। सात्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥३२॥ विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम्। भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥ ३३ ॥ अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः। प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः। भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥ ३५ ॥ गत्युक्त्युत्सर्गोपादान-

---

संशयवाद करनेवालोंमें 'यह ऐसाहै अथवा ऐसा है' इसप्रकारका जो दुरन्त विकल्प सो मैं हूँ२४स्त्रियोंमें स्वायम्भुव मनुकी स्त्री जो शतरूपा सो मैं हूँ, पुरुषोंमें स्वायंभुव मनु, मुनियोंमें नरनारायण और ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार मैं हूँ २५ धर्मोंमें प्राणियों को अभय देनेवाला संन्यास, अभय स्थानोंमें अन्तरनिष्ठा और गुह्योंमें प्रिय वचन तथा मौन मैं हूँ, मिथुनों (जोड़ों) में जिसके आधे शरीरसे पुरुष और आधे शरीर से स्त्री हुई वह ब्रह्मा मैं ही हूँ ॥ २६ ॥ सावधान रहनेवालोंमें वर्षरूप जो काल सो मैं हूँ ऋतुओंमें चैत वैशाखरूप वसन्त ऋतु, मासोंमें मार्गशीर्ष और नक्षत्रोंमें अभिजित् नक्षत्र मैं हूँ ॥२७॥ युगोंमें सत्ययुग और धीरपुरुषोंमें असित तथा देवलमुनि मैं हूँ, वेदका विभाग करनेवालोंमें व्यास, और बुद्धिमानोंमें सूक्ष्मबुद्धिमान् शुक्राचार्य मैं हूँ ॥ २८ ॥ प्राणिमात्रकी उत्पत्ति, लय, आना, जाना, विद्या और अविद्या इन छः को जाननेवालोंमें वासुदेव मैं हूँ, भगवद्भक्तोंमें हे उद्धवजी! तुम मेरा स्वरूप हो, वानरोंमें हनुमान्, विद्याधरोंमें सुदर्शन और रत्नोंमें पद्मराग मैं हूँ, सुन्दरपदार्थों में कमलकी कली, दर्भकी जातियोंमें कुश और होमके पदार्थोंमें गौका घी मैं हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ उद्योगी पुरुषोंमें धनादिसंपत्ति और जुआ खेलनेवालोंमें कपटद्यूत मैं हूँ, सहनशीलोंमें सहनशीलता, और धैर्यवानोंमें धीरज मेरी विभूति है ॥ ३१ ॥ बलवानोंमें देहशक्ति और इन्द्रियशक्ति मैं हूँ, तैसे ही भगवद्भक्तोंमें जो भक्तिके करे हुए कर्म सो मैं हूँ भक्तोंकी पूजनीय वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह नृसिंह और ब्रह्मा इन नौ मूर्त्तियोंमें पहिली मूर्त्ति जो वासुदेव सो मेरी श्रेष्ठ विभूति है ॥ ३२ ॥ गन्धर्वोंमें विश्वावसु और अप्सराओंमें पूर्वचित्ति यह मेरी विभूति है, पर्वतोंमें स्थिरता और भूमिका अविकारी गन्ध गुण और जलोंका मधुरस मैं हूँ, तेजस्वी पदार्थोंमें अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और तारोंकी प्रभा तथा आकाश का नादरूप सूक्ष्म शब्द मैं हूँ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणोंके भक्तोंमें राजाबलि और वीरों

मानन्दस्पर्शलक्षणम् । आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ॥३६॥ पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् । विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् । अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ॥३७। मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना। सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥ ३८ ॥ संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया । न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥ ३९ ॥ तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः । वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः॥४० एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः । मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते।॥४१॥ वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च । आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने ॥४२॥ यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः । तस्य

मैं अर्जुन मैं हू, सकल प्राणीमात्रके उत्पत्ति स्थिति-संहारका कारण मैं हूँ ॥३५॥ गति, भाषण, मल त्यागना, ग्रहण करना, आनन्द स्पर्श, स्वाद लेना, सुनना, सूँघना और देखना आदि दश इन्द्रियोंके धर्मोंमें देखना मेरी विभूति है ॥ ३६ ॥ गन्ध, स्पर्श, शब्द, रस, रूप अहङ्कार और महत्तत्व इन सात प्रकृतियोंकी विकृति पञ्चमहाभूत, ग्यारह इन्द्रियें अर्थात् सोलह प्रकारका विकार,जीव और प्रकृति यह पचीस तत्त्व, सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण और परब्रह्म यह सब मैं ही हूँ, इन तत्त्वोंकी गिनती, इनका लक्षणपूर्वक ज्ञान तिसका फल और तत्त्वनिश्चय यह सब मैं ही हूँ ॥ ३७ ॥ जो जीव-ईश्वररूप दो प्रकारका भेद है, तैसे ही जो गुणगुणीरूप और क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप भेद है सो सब ही मेरे विना कुछ नहीं है अर्थात् सर्वरूप मैं ही हूँ ॥ ३८ ॥ मैं बहुतसे समयमें पृथिवी आदिकोंके परमाणुओंकी गिनती कर सकता हूँ परन्तु करोड़ों ब्रह्माण्डोंको रचने वाले मेरी विभूतियोंकी गिनती नहीं होसकती, जब मेरे रचे हुए ब्रह्माण्डोंकी ही गिनती नहीं होसकती तो उनमेंकी विभूतियोंकी गिनती कैसे की जासकती है ? ॥ ३९ ॥ जहाँ २ प्रभाव, सम्पत्ति, कीर्त्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, दान, सुन्दरता, भाग्य, बल, सहनशक्ति और विज्ञान यह गुण हैं उस २ को मेरा अंश जानो ॥ ४० ॥ हे उद्धवजी ! यह सब विभूतियें मैंने तुमसे संक्षेपसे कहीं हैं, यह मेरे विषें चित्त लगानेके निमित्त ही कल्पना करके कहीं हैं इसकारण इनके ऊपर ही अधिकतासे चित्तको न लगावे, क्योंकि-यह सब मनके विकार हैं और जैसे आकाशपुष्प, खरगोशके सींग, आदि पदार्थ केवल कहने मात्रमें आते हैं तैसे ही इन विभूतियोंको समझो, परम सत्य तो केवल ईश्वर ही है ॥ ४१ ॥ इस कारण तुम वाणी, मन, प्राण और इन्द्रियोंको वशमें कर लो तथा अपनी बुद्धिका निग्रह, सत्त्वगुणयुक्त तिस बुद्धिसे ही करो तो फिर संसारमार्गमें नहीं पड़ोगे ॥ ४२ ॥ जो संन्यासी अपनी बुद्धिसे,उत्तमप्रकारसे वाणी और मनका निग्रह नहीं करता है, उसके व्रत, तप और ज्ञान, जैसे मट्टीके कच्चे घड़ेमेंका जल धीरे २ निकल जाता है तैसे नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥ इससे मेरे विषैं तत्पर रहने वाला योगी, मेरी भक्ति

व्रतं तपो दानं स्ववत्यामघटाम्बुवत् ॥ ४३ ॥ तस्मान्मनोवाचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः । मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमाप्यते ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

उद्धव उवाच । यस्त्वयाऽभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥ १ ॥ यथाऽनुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् । स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥ पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो । यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ॥ ३ ॥ स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन । न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासितः ॥ ४ ॥ वक्ता कर्ताविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि । सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ॥५॥ कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन । त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ॥६॥ तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ॥७॥ श्रीशुक उवाच । इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान् हरिः । प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ॥८॥ श्रीभगवानुवाच । धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् ।

युक्त अपनी बुद्धिसे अपने मन, वाणी और प्राणका निग्रह करे तो कृतकृत्य होता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें षोडश अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

उद्धवजीने कहा कि–हे श्रीकृष्णजी ! वर्णोंके और आश्रमोंके धर्मोंका आचरण करने वालोंको तथा वर्णाश्रमके धर्मोंसे रहित सकल द्विपाद (दो पैर वाले) मनुष्योंको, तुम्हारी भक्ति प्राप्त होनेका साधन जो धर्म तुमने पहिले, युगके प्रारम्भमें कहा है सो जैसा कर्म करने पर मनुष्योंकी तुममें भक्ति होय तैसा वह धर्म और उसके आचरणकी रीति मुझसे आपको कहना योग्य है ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! हे शत्रुदमन ! हे प्रभो ! हे माधव ! निःसन्देह परमश्रेष्ठ जो धर्म, तुमने पहिले हंसरूपसे ब्रह्माजीको कहा था, वह पहिले कहा हुआ भी धर्म, बहुतसा समय बीत जानेके कारण लुप्तसा होगया है सो अब ही प्रायःउसका प्रचार नहीं है तो आगेको क्या होगा ? ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे अच्युत ! क्योंकि–तुमसे दूसरा पुरुष, इस भूमि पर अथवा जहाँ देवतादिक भी मूर्त्तिमान् हैं उस ब्रह्माजीकी सभामें भी, इस भक्तिके साधनरूप धर्मको कहने वाला, करने वाला और रक्षा करने वाला कोई नहीं है ५ तिससे हे मधुसूदनदेव ! धर्मका आचरण करने वाले, रक्षा करने वाले और कहने वाले तुम, इस भूतलका त्याग करके चले जाओगे तो नष्ट हुए उस धर्मको कौन कहेगा ? ॥ ६ ॥ इससे हे सब धर्मोंके जानने वाले प्रभु श्रीकृष्णजी ! तुम्हारी भक्ति उत्पन्न करने वाला वह धर्म, इस मनुष्योंमें जिस २ वर्ण, धर्मके अधिकारीको जैसा २ कहा है सो तुम मुझसे वर्णन करो ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन् ! ऐसे, भगवत्सेवकोंमें मुख्य उद्धवजीके प्रश्न करने पर वह भगवान् श्रीकृष्णजी, प्रसन्न होकर मनुष्योंके कल्याणके निमित्त पुरातन धर्म कहने लगे ॥ ८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि–हे उद्धवजी ! तुम्हारा यह प्रश्न धर्मयुक्त और वर्णाश्रम धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्योंमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला है इससे वह धर्म ही तुमसे

वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥ ९ ॥ आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः । कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥ १० ॥ वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् । उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥ ११ ॥ त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी । विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥ १२ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः । वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम । वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥ १४ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः । आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमैः ॥१५॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षांतिरार्जवम् । मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १६ ॥ तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः । स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्य क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १७ ॥ आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् । अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥१८॥ शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया । तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ १९ ॥ अशौचमनृतं स्तेयं

कहता हूँ, तुम मुझसे सुनो ॥ ९ ॥ कल्पके आरम्भमें सत्ययुगमें मनुष्योंका हंस नाम वाला एक ही वर्ण था, क्योंकि-उस समय सब प्रजा, जन्म लेकर स्वभावसे ही कृतकृत्य थी, इस कारण उसको कृतयुग कहते हैं ॥ १० ॥ तिस कृतयुगमें वेद ॐकाररूप ही था, और धर्म भी वृषभका रूप धारण करने वाला चार चरण वाला मैं ही था, दूसरे यज्ञादि धर्म कुछ नहीं थे, इस कारण उस युगमें सब तपस्वी और निष्पाप होते हुए मनकी एकाग्रतासे शुद्ध हंसरूप मेरी ध्यानरूप उपासना करते थे ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे महाभाग उद्धवजी ! त्रेतायुगके आरम्भमें विराट्रूपी मेरे हृदयसे, श्वासवायुरूपसे ऋक्, यजु और साम यह वेदरूपी विद्या प्रकट हुई, उससे होता, अध्वर्यु और उद्गाता इन तीन ऋत्विजोंके कर्मोंसे युक्त यज्ञ उत्पन्न हुआ १२ विराट्पुरुषरूप मेरे-मुख, बाहु, जंघा और चरणोंसे क्रम करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारवर्ण उत्पन्न हुए, वह अपने २ धर्मसे परस्पर निराले समझे जाते हैं ॥ १३ ॥ विराट्रूपी मेरे कमरके अगले भागसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्य वक्षःस्थलके नीचेके भागसे वानप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास यह चार आश्रम उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ मनुष्योंके वर्णोंके आश्रमोंके स्वभाव, जन्मभूमियोंके अनुसार हुए हैं अर्थात् मेरे मुख आदि उत्तम अङ्गोंसे उत्पन्न हुए ब्राह्मणादिकोंके उत्तम स्वभाव और निकृष्ट अङ्गोंसे उत्पन्न हुओंके निकृष्ट स्वभाव हुए हैं ॥ १५ ॥ शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, शान्ति, सरलता, मेरी भक्ति, दया और सत्य यह ब्राह्मणों के स्वभाव-सिद्ध धर्म हैं ॥ १६ ॥ प्रताप, बल, धीरता, शूरता, दीनोंके अपराध सहना, उदारता, उद्योग, स्थिरता, ब्राह्मणोंकी भक्ति और ऐश्वर्य यह क्षत्रियोंके स्वभावसिद्ध धर्म हैं ॥ १७ ॥ गुरु शास्त्र आदि पर श्रद्धा, दानमें निष्ठा, निष्कपटपना, ब्राह्मणकी सेवा, और धनकी वृद्धि होने पर भी असन्तोष यह वैश्यके लक्षण हैं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, गौ और देवताओंकी निष्कपटभावसे सेवा करना, और उस सेवामें जो मिले उससे ही सन्तुष्ट रहना, यह शूद्रके स्वभावसिद्ध धर्म हैं ॥१९॥

नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः। कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥ २० ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता। भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥२१॥ द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः। वसन् गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः॥ २२ ॥ मेखलाऽजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून्। जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥ २३ ॥ स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः। न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥२४॥ रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम्। अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥ २५ ॥ अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुरान् शुचिः। समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ॥२६॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्। न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥ २७ ॥ सायं प्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत्। यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ॥ २८ ॥ शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत्। यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृतां-

अपवित्रता, मिथ्या बोलना, चोरी करना, नास्तिकपना, निष्कारण कलह करना, काम, क्रोध और अति लोभ यह चाण्डाल आदिकोंका स्वभाव है ॥ २० ॥ अहिंसा, सत्यभाषण, चोरी न करना, काम-क्रोध-लोभका त्याग और प्राणिमात्रका प्रिय तथा हित करनेका उद्योग, यह सब लोकोंका साधारण धर्म है ॥ २१ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंमेंके पुरुष, गर्भाधान आदि संस्कारोंके क्रमसे यज्ञोपवीत नामक दूसरा जन्म होने पर, जितेन्द्रियपनेसे, गुरुके घर रहें और गुरुके बुला कर कहनेपर वेदको पढ़ें और उसके अर्थका विचार भी करें ॥ २२ ॥ वह ब्रह्मचारी मेखला, कालीमृगचर्म दण्ड, रुद्राक्षकी माला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु और कुशधारण करके, तेलमलना आदि छोड़ कर जटाधारी रहे, दाँत घिसना और वस्त्र धोकर विशेष स्वेत रखना, बैठनेका आसन आदि कौतुकसे रँगवाना, यह न करे ॥२३॥ स्नान, भोजन, होम, जप और मल मूत्रका त्याग करते समय मौनव्रत धारण करे, नख न काटे बगल और उपस्थके रोमोंको न काटे ॥ २४ ॥ ब्रह्मचर्यव्रतधारी, जान कर वीर्यपात कभी न करे,कभी अपने आप वीर्य स्खलित होजाय तो जलमें स्नान करके, प्राणायाम करके गायत्री मन्त्रका जप करे ॥ २५ ॥ सावधान और पवित्र रह कर दोनों संध्याके समय और जप करतेमें मौन धारण करके अग्निकी होमादिसे, सूर्यकी अर्घ्यदानसे, गुरुकी नमस्कार आदिसे, गौकी तृण आदिसे, ब्राह्मणकी आदर सत्कारसे, शास्त्रोपदेश करने वाले गुरुकी उपकारको स्मरण करनेसे और देवताओंकी गन्धपुष्पादि सामग्रियोंसे उपासना करे ॥ २६ ॥ अपने गुरुको मेरा स्वरूप अर्थात् साक्षात् ईश्वर हैं ऐसा जाने, कभी उनका तिरस्कार न करे, और यह मनुष्य हैं ऐसा जान कर उनके गुणोंमें कभी दोष न लगावे, क्योंकि-गुरु सर्वदेवमय है ॥ २७ ॥ सायङ्काल और प्रातःकालके समय भिक्षा माँग कर लाया हुआ अन्न उन गुरुको अर्पण करे, और भी जो कुछ (वस्त्रपात्र आदि) मिले वह भी उनको ही अर्पण करे, उन गुरुके भोजनके निमित्त बताये हुए ही अन्न आदिका सन्तोषके साथ सेवन करे ॥ २८ ॥ गुरुकी शुश्रूषा करने वाला वह

जलिः ॥ २९ ॥ एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः । विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥ ३० ॥ यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् । गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥ ३१ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् । अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ॥ ३२ ॥ स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसंलापक्ष्वेलनादिकम् । प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ॥३३॥ शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवम् । तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३४ ॥ सर्वाश्रमप्रयुक्तोयं नियमः कुलनन्दन । मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ॥ ३५ ॥ एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ३६ अथानंतरमावेक्ष्यन्यथा जिज्ञासितागमः।गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद्गुर्वनुमोदितः ३७ गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः । आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ३८

ब्रह्मचारी निरन्तर, गुरु कहीं जायँ, सोवें, बैठें, और खड़े रहें तो उस समय बहुत समीप नम्रतासे रह कर उनकी शुश्रूषा करे ॥ २९ ॥ ऐसा वर्त्ताव रख कर भोगरहित हुआ ब्रह्मचारी, अपने पढ़नेकी समाप्ति पर्यन्त, अविच्छिन्न ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुके घर वास करे ॥ ३० ॥ यदि वह ब्रह्मचारी, जहाँ मूर्त्तिमान् वेद हैं तिस ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा करे तो, मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके अपना शरीर, अधिक अध्ययनके निमित्त वा करेहुए अध्ययनके पलटेमें गुरुको अर्पण कर देय ॥ ३१ ॥ और वेदाभ्याससे प्राप्त हुए तेजको धारण करने वाला और निष्पाप हुआ वह सर्वत्र समबुद्धि रख कर अग्नि, गुरु, जीवात्मा और सब प्राणियोंमें मुझ परमात्माकी उपासना करे ॥ ३२ ॥ गृहस्थाश्रमको ग्रहण न करने वाला ब्रह्मचारी, कामबुद्धिसे स्त्रियोंकी ओरको देखना उनका स्पर्श,उनसे भाषण,और उनसे हास्य आदि करनेका त्याग करे और मैथुन करने वाले पशु-पक्षियोंकी ओरको भी न देखे ॥ ३३ ॥ वह, शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासना, सरलता, तीर्थसेवा, जप करता रहै और स्पर्श न करने योग्यका स्पर्श, अभक्ष्यका भक्षण तथा वार्त्ता न करने योग्यसे वार्त्ता न करे ॥ ३४ ॥ हे कुलको आनन्द देनेवाले उद्धवजी ! यह कहे हुए शौचादि नियम, मन—वाणी और देहका निग्रह तथा सब प्राणीमात्रमें मेरी भावना यह धर्म सब आश्रमोंको विहित हैं ॥ ३५ ॥ ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रतको धारण करने वाला और अग्निकी समान तेजका पुञ्ज जो ब्राह्मण, वह यदि निष्काम होय तो तीव्र तपके प्रभावसे उसका अन्तःकरण (लिङ्गशरीर) भस्म होकर स्वच्छ होते ही वह मेरा भक्त होजाता है ॥ ३६ ॥ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला और गुरुसे ठीक २ वेदके अर्थको जानने वाला, गुरुको दक्षिणा देकर उनकी आज्ञासे उबटन तैल मलना आदि करके समावर्त्तन नामक स्नान करे ॥ ३७ ॥ वह श्रेष्ठब्राह्मण सकाम होय तो गृहस्थाश्रमको स्वीकार करे, किन्तु उसको केवल अन्तःकरण शुद्ध होनेकी इच्छा होय तो वह वनमें प्रवेश करे;शुद्धचित्त होय तो संन्यास धारण करे अथवा एकके अनन्तर दूसरा उसके अनन्तर तीसरा इस प्रकार आश्रमको स्वीकार करे, मेरी पूर्ण भक्ति प्राप्त न हुई होय तो विना किसी आश्रमके न रहे और वान-

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदजुगुप्सिताम् । यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ॥ ३९ ॥ इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् । प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥ ४० ॥ प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजो यशोनुदम् । अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः ॥४१॥ ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते । कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानंतसुखाय च ॥ ४२ ॥ शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः । मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शांतिम् ॥ ४३॥ समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् । तानुद्धरिष्ये न चिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥ ४४ ॥ सर्वाः समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः । आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥४५॥ एवं विधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा ।

ग्रस्थले गृहस्थ ऐसे उलटे आश्रमको स्वीकार न करे,मेरा पूर्ण भक्त होय तो आश्रम का नियम नहीं है यह आगे आवेहीगा ॥ ३८ ॥ गृहस्थाश्रमकी इच्छा करने वाला अपने योग्य अपने वर्णकी, कुलसे और लक्षणोंसे उत्तम और अपनेसे अवस्थामें छोटी स्त्री करे, तिसमें ब्राह्मणको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंकी स्त्रियें करनेका क्रमसे अधिकार है, क्षत्रियको क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी करनेका अधिकार है,वैश्यको वैश्यकी और शूद्रकी करनेका अधिकार है और शूद्रको केवल अपने ही वर्णकी करनेका अधिकार है ॥ ३९ ॥ यज्ञ करना, वेद पढ़ना और दान करना यह तीन कार्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनोंही वर्णोंको कहे हैं प्रतिग्रह (दान लेना) पढ़ाना, दूसरोंको यज्ञ कराना यह तीन कर्म ब्राह्मणको अधिक कहे हैं ॥ ४० ॥ तिसमें दान लेना अपने तपका, तेजका और यशका नाश करने वाला है,ऐसा ब्राह्मणको प्रतीत होय तो वह यजन कराना,और विद्या सिखाना इन दोनोंसे ही अपनी आजीविका चलावे और इसमें भी यदि दीनता आदि दोष देखने लगे तो वह शिलवृत्तिसे (स्वामीके खेत काटकर लेजाने पर उस खेतमें पड़ेहुए कणों को बीन कर उस धान्यसे) अपना निर्वाह करे ॥ ४१ ॥ क्योंकि–यह ब्राह्मणका शरीर, संसारमें तुच्छ विषय भोगनेके लिये नहीं है किन्तु इसलोकमें जीवित रहने पर्यन्त कष्ट सह कर, तप करनेके निमित्त और मरणके अनन्तर परलोकमें अनन्तसुख भोगनेके निमित्त है ॥ ४२ ॥ पहिले कही हुई शिलवृत्तिसे वा बाजार आदिमें पड़े हुए कणोंको बीनकर उससे कहीहुई उञ्छवृत्तिसे सन्तुष्ट रहकर और अतिथि की पूजा आदि अतिस्वच्छ धर्मका प्रीति सेवन करे और घरमें रहते हुए भी आसक्ति रहित होकर जो मुझमें चित्तको अर्पण करता है वह ब्राह्मण या दूसरा क्षत्रियादि कोई भी हो मोक्ष पाता है ॥ ४३ ॥ जो धनवान् पुरुष,धनके विना दुःख पाने वाले और मेरे परमभक्त ब्राह्मणका, दरिद्रतासे उद्धार करते हैं उनको मैं शीघ्र ही सब कष्टोंसे, जैसे नौका समुद्रसे पार कर देती है तैसे, पार कर देता हूँ ॥४४॥ जैसे पिता छोटे बच्चोंको सङ्कटमेंसे छुड़ाता है तैसे धैर्यवान् राजा सब प्रजाओंको संकटमेंसे छुड़ावे और जैसे श्रेष्ठ हाथी दूसरे हाथियोंको दलदलमेंसे बाहर निकाल कर आप भी अपने ही बलसे बाहर निकल आता है तैसे ही वह क्षत्रिय अपना भी

विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ॥ ४६ ॥ सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदन्तरेत् । खड्गेन वापदाक्रांतो न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४७ ॥ वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययापदि । चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथञ्चन ॥ ४८ ॥ शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् । कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥४९॥ वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् । देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥ ५० ॥ यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा । धनेनापीडयन् भृत्यान्न्यायेनैव हरेत्क्रतून् ॥ ५१ ॥ कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि । विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ ५२ ॥ पुत्रदाराप्तबंधूनां संगमः पान्थसंगमः । अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥ ५३ ॥ इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् । न गृहैरनुबद्ध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥ ५४ ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्ति-

उद्धार आप ही कर लेय ॥ ४५ ॥ ऐसे वर्त्तनेवाला राजा, यहाँ ही सब पापोंका नाश करके सूर्यकी समान दमकते हुए विमानमें बैठ स्वर्गलोकको जाता है और तहाँ इन्द्रके साथ आनन्द पाता है ॥४६॥ शिलोंछवृत्तिसे निर्वाह न होनेके कारण क्लेश पाने वाला ब्राह्मण, वैश्यकी वृत्तिसे अपनी आपत्तिको तर जाय, ऐसे भी आपत्ति न जाय तो तरवार धारण करके क्षत्रियकी वृत्तिसे अपनी आपत्तिको दूर करे परन्तु नीचवृत्तिसे कभी दूर न करे ॥ ४७ ॥ राजा आपत्तिकालमें खेती आदि वैश्य की वृत्तिसे तिसमें भी अधिक आपत्ति होय तो शिकारसे अथवा ब्राह्मणकी पढ़ाने की वृत्तिसे अपनी आपत्तिको दूर करे परन्तु नीच जातिकी सेवासे दूर न करे४८ वैश्य आपत्तिकालमें शूद्रकी, सेवारूप वृत्तिको स्वीकार करे, शूद्र हीनजातिकी डलियें टोकरें आदि बनानेकी वृत्ति करे, संकटसे छूट जाय तो निन्दित कर्मसे निर्वाह करनेकी इच्छा न करे ॥ ४९ ॥ गृहस्थ, वेदपाठरूप ब्रह्मयज्ञसे ऋषियोंका, स्वधाकारसे पितरोंका और स्वाहाकारसे देवताओंके निमित्त बलिदान करके प्राणियोंका और अन्नजलादिके दानसे मनुष्योंका इस प्रकार पंचयज्ञ, उन ऋषि आदि सबोंको ईश्वररूप जान करकरे५०उद्योगके विना मिलेहुए अथवा अपनी वृत्ति से केवल न्यायमार्गसे मिले हुए शुद्ध द्रव्यसे अपने कुटुम्बरूप पोष्यवर्गकी आजीविका चलावे जो कुछ शेष रहै तिससे दर्शपूर्णमास चातुर्मास्य आदि यज्ञ करे ५१ कुटुम्बवत्सल भी गृहस्थी, स्त्रीपुत्रादिकोंमें आसक्त न रहे और ईश्वरनिष्ठामें असावधान न रहे किन्तु वह विचारवान् पुरुष इसलोकमेंके दीखने वाले सुखकी समान ही न दीखने वाला स्वर्गादि सुख भी नाशवान् है ऐसा देखे ॥ ५२ ॥ पुत्र, स्त्री, आप्त और बान्धवोंको जो समागम है सो केवल बटोहियोंके समागमकी समान क्षणिक है, क्योंकि-प्रत्येक देहके सम्बन्धसे मिले हुए स्वप्न जैसे निद्रा दूर होनेपर नष्ट होजाते हैं तैसे यह देह गया कि-सब नष्ट होजाते हैं ॥५३॥ इस प्रकार विचार करके देहमें अहंकाररहित और स्त्रीपुत्रादिकोंमें ममतारहित हुआ तथा घरमें अतिथि की समान उदासीनतासे रहने वाला पुरुष, घरके कर्मोंसे बद्ध नहीं होता है किंतु मुक्त रहता है ॥ ५४ ॥ वह भक्तिमान् पुरुष, गृहस्थको कहे हुए कर्मोंसे मेरा आरा-

मान् । तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ॥ ५५ ॥ यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्र-वित्तैषणातुरः । स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ॥ ५६ ॥ अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः।अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवंति दुःखिताः॥५७ एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् । अतृप्तस्ताननुध्यायन् मृतोऽन्धं विशते तमः॥५८

इति श्रीभागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच । वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा । वन एव वसेच्छांतस्तृतीयं भागमायुषः ॥ १ ॥ कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् । वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ॥ २ ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलोमानि बिभृयाद्दतः । न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ॥३॥ ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन् वर्षास्वासारषाड् जले । आकण्ठमग्नः शिशिर एवं वृत्तस्तपश्चरेत ॥ ४ ॥ अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा । उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ॥ ५ ॥ स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम् । देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाहृतम् ६

धन करके तिस गृहस्थाश्रममें ही रहे अथवा वनमें जाय अथवा पुत्रवान् होय तो संन्यास लेलेय ॥ ५५ ॥ जो पुरुष, घरमेंके विषयोंमें आसक्तिबुद्धि, पुत्र-धन आदि की अभिलाषासे व्याकुल, स्त्रीका वशीभूत, कृपणबुद्धि और अज्ञानी होता है वह 'मैं और मेरा' ऐसी बुद्धिसे बन्धन पाता है ॥ ५६ ॥ अहो ! मेरे माता—पिता बूढ़े हैं, स्त्रीके बालक छोटे हैं, बिचारे बालक मेरे बिना अनाथ हैं,दीन और दुःखी हुए यह सब मेरे बिना कैसे जीवित रहेंगे ! ॥ ५७ ॥ ऐसे घरकी वासनाओंसे चारों ओर जिसका चित्त गुथा है और विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ यह मूढ़बुद्धि गृहस्थ, निरन्तर उनका ध्यान करनेसे मरणको प्राप्त होनेके अनन्तर तामसयोनियोंमें जन्म पाता है ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें सप्तदश अध्याय समाप्त

श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! वानप्रस्थ आश्रममें रहनेकी इच्छा करने वाला गृहस्थी, अपनी स्त्रीकी रक्षाका काम पुत्रको सौंपकर अथवा उसको अपने साथ लेकर आयुका तीसरा भाग (पिछत्तर वर्ष) समाप्त होने पर्यन्त वनमें शांति के साथ रहे, फिर इन्द्रियें क्षीण होने पर उसको थोड़ासा वैराग्य होय तो संन्यास लेनेका अधिकार है ॥ १ ॥ वह वनमें रहता हुआ, वनमेंके पवित्र कन्दमूलफलोंसे अपना निर्वाह करे, तिनके, पत्ते और काली मृगछाला धारण करे ॥२॥ केश,रोम, नख, दाढ़ीमूछ और शरीरके मलको धारण करे, अर्थात् उनके दूर करनेका यत्न न करे, दाँत घिसकर स्वच्छ न करे, शीतलजलमें त्रिकाल स्नान करे, भूमिपर सोवे ॥ ३ ॥ ग्रीष्मऋतुमें पञ्चाग्नि तपे, वर्षाऋतुमें शरीर पर ही वर्षाको सहकर अभ्रावकाश व्रतको धारण करे, शिशिरऋतुमें कण्ठपर्यन्त जलमें डूबा रहकर उदकवासना नामक व्रतको धारण करे, इस प्रकार बर्त्ताव रखकर वह वानप्रस्थ आश्रम वाला तप करे ॥ ४ ॥ वह कन्दमूलादि पदार्थ और नीवार आदि धान्योंको सिजा कर भक्षण करे,फल आदि कालके द्वारा पक जाएँ तो खाय,कुछ पदार्थोंको उखली में कूटकर, पत्थर पर पीसकर वा दाँतोंसे चबाकर खाय ॥ ५ ॥ अपने आजीवनके

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालनोदितान् । न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत् सवनाश्रमी ॥७॥ अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत् । चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥ ८ ॥ एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसन्ततः । मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥९॥ यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् । कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ॥१०॥ यदाऽसौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः । आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ ११ ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु । विरागो जायते सम्यङ्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ १२ ॥ इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्वा सर्वस्वमृत्विजे । अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् १३

साधन फल आदि सब अपने आप वनमें जाकर लावे, दूसरेसे न मँगवावे, और अपने लाएहुएको भी कालांतरमें (सायङ्कालका प्रातःकालको वा प्रातःकालका सायङ्कालको) कार्यमें न लावे, परन्तु देश, काल और अपने बलकी योग्यता देख कर वर्त्ताव करे, अर्थात् अपनी अशक्ति होनेके कारण दूसरेके लायेहुएके लेनेका अथवा दूसरे समय मिलेगा या नहीं इसका विचार करके संग्रह करनेका भी विचार करे ॥६॥ वह वानप्रस्थ, वनमें उत्पन्न हुए नीवार आदि धान्योंके ही चरु पुरोडाश आदि करके, उनसे तिस २ समय प्राप्त होनेवाली आग्रायणेष्टि आदि करे परन्तु वेदमें कहेहुए पशुयागसे (वानप्रस्थाश्रमी) मेरा यजन न करे ॥ ७ ॥ अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, और चातुर्मास्य भी वेदको जानने वाले ब्राह्मणोंने, गृहस्थाश्रमीकी अनुसार ही वानप्रस्थको भी कहे हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार मरणपर्यन्त करे हुए तपसे रगोंसे व्याप्त (सुखकर मांसरहित हुआ) वह वानप्रस्थ ऋषि,तपोरूप मेरा आराधन करके महर्लोक तपोलोकमें जानेके क्रमसे मेरे स्वरूपको पाता है,तिसमें भी यदि वह शुद्ध अन्तःकरण और भक्तिसे युक्त होय तो तहाँ ही जीवन्मुक्त होजाता है और यदि उसके प्रतिबन्धक बहुतसे कर्म हों तो पहिले कहे हुए क्रमसे मुक्त होता है ९ और जो वानप्रस्थ कष्ट भोग कर करे हुए और परमकल्याणरूप मोक्ष देने वाले तप को, संसारमेंके अति थोड़े विषय सुखके निमित्त खर्च करता है उससे दूसरा कौन मूर्ख है, ॥ १० ॥ मरणकाल पर्यन्त वानप्रस्थ धर्मका आचरण करने वालेको मोक्ष प्राप्त होता है, आयुका तीसरा भाग समाप्त होने पर थोड़ा वैराग्य होय तो उसको संन्यासका अधिकार है,यदि आयुका तीसरा भाग समाप्त होनेसे पहिले जरावस्था के कारण देहमें कपकपी उत्पन्न होकर वानप्रस्थ धर्मको पालन करनेमें असमर्थ होय और वैराग्य न हुआ होय तो आत्मामें अग्निका समारोप करके (अग्निहोत्रको त्याग कर) मेरे विषैं मनकी धारणा कर अग्निमें प्रवेश करे ॥ ११ ॥ और जब,करे हुए कर्मोंकी फल प्राप्तिरूप और परिणाममें नरकतुल्य सब लोकोंमें पूर्ण वैराग्य होजाय तो वह, अग्निहोत्रका त्याग करके वानप्रस्थ आश्रमके समयमें ही संन्यास धारण कर लेय ॥ १२ ॥ आठ श्राद्ध कहे हैं उनको करके प्राजापत्य नामक इष्टिसे मेरा यजन करे, तदनन्तर अपने आत्मामें अग्निका समारोप करके निरीहपनेसे संन्यासको ग्रहण करे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण संन्यास लेने लगता है तो, उस समय 'यह

बिभ्यद्वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः। विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम्॥ १४॥ बिभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम्। त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि॥ १५॥ दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्। सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥ १६॥ मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम्। न ह्येते यस्य सन्त्यंग वेणुभिर्न भवेद्यतिः॥ १७॥ भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत्। सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता॥ १८॥ बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः। विभज्य पावितं शेषं भुंजीताशेषमाहृतम्॥ १९॥ एकश्चरेन्महीमेतां निःसंगः संयतेन्द्रियः। आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान् समदर्शनः॥२०॥ विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः। आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः॥२१॥ अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया। बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च

हमारे स्थानका उल्लंघन करके परब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होएगा इस अभिप्रायसे सब देवता, स्त्री पुत्रादिकोंके स्वरूपसे उसको विघ्न करते हैं अर्थात् उसको अनेकों कारण दिखाकर संन्यास धारण मत करे ऐसा कहते हैं इस समय वह किसीकी न सुनकर संन्यास धारण करे॥१४॥ वह पहिले तो वस्त्र धारण ही न करे, करना ही होय तो; जितने वस्त्रसे लिंग ढक जाय उतना कौपीनमात्र धारण करे, प्रैषोच्चारके पहिले जो सब पदार्थ त्यागे हैं उनमेंसे दण्ड और पात्रके सिवाय दूसरा कोई भी, पदार्थ, परम आपत्तिकालके विना धारण न करे ॥ १५ ॥ दृष्टिसे देख कर शुद्ध निश्चय करे हुए स्थानमें चरण रख कर चले, वस्त्रसे छाना हुआ (जीवरहित) जल पिये, सत्यसे पवित्र वाणीका उच्चारण करे, और मनसे विचार कर जो शुद्ध होय उसका उच्चारण करे ॥ १६ ॥ हे उद्धवजी ! मौन रखना वाणीका दण्ड है, सकाम कर्म न करना देहका दण्ड है, और प्राणायाम करना मनका दण्ड है, यह तीन दण्ड जिस यतिके न हों वह बाहरसे धारण करेहुए बाँसके दण्डोंसे संन्यासी नहीं होता है ॥ १७ ॥ संन्यासी, 'प्रतिग्रह, यज्ञ कराना, अध्यापन और शिलोंछ इन चार वृत्तियोंसे निर्वाह चलानेके कारण चार प्रकारके हुए ब्राह्मणोंमें हो जातिसे छोड़े हुए और पतितोंको छोड़ कर, अमुक घर ही जाना चाहिये ऐसा सङ्कल्प न करके सात घरोंमें भिक्षाके निमित्त जाय और जो भिक्षाका अन्न मिले उतनेसे ही सन्तोष माने ॥ १८ ॥ और वह भिक्षा लेकर ग्रामके बाहर जलाशयके समीप जाकर तहाँ जलका आचमन करके लाए हुए उस अन्नको प्रोक्षण आदिसे शुद्धि करे, तदनन्तर विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, और प्राणियोंको भाग देकर तथा इसी अवसरमें कोई माँगे तो उसको भी थोड़ासा देकर शेष सब भोजन करे॥ १९ ॥ वह मननशील संन्यासी, निःसंगपना, जितेन्द्रियपना, अपनेमें क्रीडा, अपनेमें सन्तोष, धीरता और समदृष्टि रखकर इस भूमिपर इकला ही विचरे ॥ २० ॥ और निर्जन तथा निर्भय स्थानमें बैठ कर मेरी भावनासे चित्तको शुद्ध करे और मुझ परमात्मासे अभेदबुद्धि करके एक रूप हुए अपने जीवात्माका चिन्तवन करे ॥ २१ ॥ तत्त्वविचारसे, अपना बन्धन कैसे हुआ है और मोक्ष कैसे होयगा इसका विचार करे, इंद्रियों

संयमः ॥२२॥ तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः । विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥२३॥ पुरग्रामव्रजान् सार्थान् भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् । पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥ वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् । संसिद्ध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥ २५ ॥ नैतद्वस्तुतया पश्येद् दृश्यमानं विनश्यति । असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्र चिकीर्षितात् ॥ २६ ॥ यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् । सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः । सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ॥ २८ ॥ बुधो बालकवत् क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् । वदेदुन्मत्तवद्विद्वान् गोचर्यां नैगमश्चरेत् ॥ २९ ॥ वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः । शुष्कवादविवादे न कञ्चित्पक्षं समाश्रयेत् ॥३० ॥ नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु ।

की विषयासक्ति ही बन्धन और इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाये रखना ही मोक्ष है २२ इस कारण मनसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करके तुच्छ विषयोंसे विरक्त हुआ वह मुनि, मेरी भक्तिसे ही अन्तःकरणमें बड़ा भारी सुख पाकर विचरता रहे २३ वह केवल भिक्षाके निमित्त ही नगर, ग्राम, मँढ़ैये तथा यात्रियोंके समूहमें प्रवेश करे, बाकी सब समयमें पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन और ऋषियोंके आश्रमोंसे युक्त पृथ्वी पर इकला ही विचरता फिरै ॥ २४ ॥ वानप्रस्थोंके आश्रम स्थानोंमें बारम्बार भिक्षा माँगे, क्योंकि-शिलवृत्तिसे प्राप्त हुए उनके अन्नसे शुद्धचित्त होने पर मोहरहित होकर शीघ्र ही मुक्त होता है ॥ २५ ॥ यह दीखनेवाले मिष्टान्न आदि सत्य हैं ऐसा न देखे, क्योंकि-सबका नाश होता है इस कारण इस लोकमें और परलोकमें कहीं भी चित्तको आसक्त न करके इस लोक और परलोककी प्राप्तिके निमित्त कोई कर्म न करै ॥ २६ ॥ ममताका स्थान जो जगत् और मन, वाणी और प्राणसहित अहन्ताका स्थान जो यह शरीर, तैसे ही इन दोनोंसे होने वाला जो सुख, यह सब आत्मवस्तुमें मायासे कल्पित है, ऐसा स्वप्नके दृष्टान्तसे जान कर और उनका त्याग करके यति आत्मनिष्ठ होय और फिर उसका चिन्तवन ही न करै ॥ २७ ॥ इसलोकमेंके सुखोंसे विरक्त हुआ मुमुक्षु,ज्ञाननिष्ठ वा मोक्षकी चाहना न रखने वाला जो मेरा भक्त हो वह त्रिदण्ड आदि सहित यतिधर्मकी आसक्ति छोड़ कर जिससे विधि निषेधका किङ्कर न हो ऐसे यथायोग्य धर्मका आचरण करे ॥ २८ ॥ वह विवेकी पुरुष भी बालककी समान (मान अपमानरहित) क्रीड़ा करे, निपुण होकर भी जड़की समान (फल पानेका हेतु न रख कर) विचरै, पण्डित होकर भी उन्मत्तकी समान (लोकोंकी प्रसन्नता न करता हुआ सा) भाषण करे और वेदके अर्थको जानने वाला होकर भी (लोकोंका संग न होय इस कारण) वृषभकी समान नियमरहित आचरण करे ॥ २९ ॥ वेदके विषयका वाद (कर्मकाण्ड पर व्याख्यान आदि) करनेमें तत्पर न होय, पाखण्डवाद वा तर्कवाद न करे और निष्प्रयोजन वादमें किसीका पक्ष भी न लेय ॥ ३० ॥ वह धैर्यवान् होकर आप, लोगोंसे भय न माने और दूसरोंको भय न देय, लोकोंके दुर्वचनोंके

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन । देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ३१ एक एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः । यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ॥ ३२ ॥ अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित् । लब्ध्वा न हृष्येद् धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥ ३३ ॥ आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् । तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥ ३४ ॥ यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् । तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥ ३५ ॥ शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् । अन्यांश्च नियमान् ज्ञानी यथाऽहं लीलयेश्वरः ॥ ३६ ॥ न हि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता । आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ३७ दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् । अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥ ३८ ॥ तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः । यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ॥ ३९ ॥ यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः । ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रि-

भाषणोंको सहन करै, आप किसीका अपमान न करै और इस देहके निमित्त पशुकी समान किसीसे वैरभाव न करै ॥३१॥ जैसे एक ही चन्द्रमा जलके अनेक पात्रोंमें प्रतिबिम्बरूपसे रहता है तैसे ही देहादिसे निराला एक ही आत्मा देवमनुष्यादि शरीरोंमें और अपने शरीरमें भी रहरहा है तैसे ही सब शरीर भी पंचमहाभूतरूप होनेके कारण एकरूप ही हैं ऐसा जानकर वह किसीके साथ वैर न करै ३२ एकाध स्थानपर भोजनके समयरपर भोजन नमिले तो खिन्न न होय किन्तु धीरज रक्खे और भोजन मिलजाय तो हर्ष न माने, क्योंकि-लाभ और अलाभ दोनों प्रारब्धके अधीन हैं ॥३३॥ आहारमात्रके निमित्त ही उद्योग करै, क्योंकि-उसको प्राण धारण करना आवश्यक है, उस प्राण धारणसे ही तत्त्व विचार करता है और उस तत्त्वको जानकर मुक्त होता है ॥ ३४ ॥ भला वा बुरा स्वयंसिद्ध जो भोजन मिले उसको खालेय, तथा वस्त्र और शय्या भी स्वाभाविक जो मिलजाय परमहंस उसको ही ग्रहण करै ३५ जैसे मैं ईश्वर लीलासे लोकशिक्षाके निमित्त स्नान संध्या आदि करता हूँ तैसेही वह ज्ञानी परमहंस भी कहीं आसक्त नहोकर शौच, आचमन, स्नान तथा और भी नियमोंका आचरण करे परन्तु वेदकी आज्ञा पालन करनी ही चाहिये इस हेतुसे न करे, क्योंकि-वह यदि सब नियमोंका पालन करनेकी वेदकी आज्ञाका पालन करेगा तो उसकी ज्ञाननिष्ठामें हानि पहुँचेगी३६ उसको भेद प्रतीत होता ही नहीं है, जो कुछ भेदबुद्धि पहिले थी वह भी ज्ञानदृष्टिसे नष्ट होगई है, यदि उसको देहपात होने पर्यन्त एकाधवार भेदबुद्धि भासे तो उसको मिथ्यारूप जाननेके कारण देहपात होनेके अनन्तर वह मुझसे एकताको पाता है अर्थात् विदेहमुक्त होता है ॥ ३७ ॥ जिस पुरुषको, परिणाममें दुःख देने वाले विषयोंमें वैराग्य होगया है परन्तु जिसने मेरी प्राप्तिका साधन नहीं जाना है वह धीरज धर कर किसी ब्रह्मज्ञानी गुरुकी शरण जाय ॥ ३८ ॥ और अपनेको ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर्यन्त गुरुकी निन्दा आदि न करके श्रद्धा और आदरके साथ यह ईश्वर ही हैं, ऐसी दृष्टिसे ही उन गुरुकी सेवा करै और ज्ञान प्राप्त होनेके अनन्तर 'भूतल पर इकला विचरै

दंडमुपजीवति॥४०॥ सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा। अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ॥ ४१ ॥ भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः। गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम्। गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ॥ ४३ ॥ इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक्। सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दतेऽचिरात् ॥४४॥ भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम्। सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ४५ इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः। ज्ञानविज्ञानसंपन्नो न चिरात्समुपैति माम् ॥ ४६ ॥ वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः। स एव मद्भक्तियुतो निःश्रेयसकरः परः ॥४७॥ एतत्तेऽभिहितं साधो भवान् पृच्छति यच्च माम्। यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इत्यादि' पहिले कहे हुए यतिके धर्मोंसे वर्त्ताव करे ॥ ३९ ॥ जिसकी बुद्धि अतिविषयासक्त है, जिसने इन्द्रियोंको वा कामक्रोधादिको नहीं जीता है और जिसको ज्ञान वा वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ है ऐसा होकर जो केवल पाखण्डीपनेसे त्रिदण्डी यतिका वेष धारण करता है ॥ ४० ॥ (वह जिसके रागद्वेषादि भस्म नहीं हुए हैं और धर्मको डुबोने वाला) यति, पूजनीय देवताओंको, जीवात्माको और अन्तर्यामी मुझ परमात्माको धोखा देता है तथा ऐसा करनेके कारण इस लोकसे और परलोकसे भ्रष्ट होता है ॥ ४१ ॥ शान्ति और अहिंसा संन्यासीके मुख्य धर्म हैं, तप और यजन करना वानप्रस्थके मुख्य धर्म हैं, प्राणियोंकी रक्षा और यजन गृहस्थके मुख्य धर्म हैं तथा गुरुकी सेवा करना ब्रह्मचारीका मुख्य धर्म है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मचर्य, तप, शौच, सन्तोष, प्राणिमात्रके साथ मित्रभावसे वर्त्ताव करना और मेरी उपासना करना यह चारों आश्रमोंके धर्म हैं, तिसमें ऋतुकालमें स्त्री समागम करना ही गृहस्थका ब्रह्मचर्य है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य अपने धर्मसे मेरी सेवा करता है, अन्य स्त्री पुत्रादिकोंमें आसक्त नहीं होता है और सब प्राणियोंमें मेरी भावना रखता है वह शीघ्र ही मेरी दृढ़ भक्ति पाता है ॥ ४४ ॥ और हे उद्धवजी ! फिर वह उस एकाग्रभक्तिके द्वारा सब लोकोंके महेश्वर और सबोंके उत्पत्ति प्रलय के कारण मुझ वैकुण्ठवासी देवको समीपभावसे पाता है ॥ ४५ ॥ ऐसे स्वधर्माचरणसे शुद्ध चित्त हुआ और मेरा ऐश्वर्य जानने वाला वह भक्त, परोक्ष और अपरोक्ष ज्ञानसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही मेरे स्वरूपको पाता है अर्थात् मुक्त होजाता है ॥ ४६ ॥ हे उद्धवजी ! जो यह (पितृलोककी प्राप्ति करा देने वाला) वर्णाश्रम वालोंका धर्म तुमसे मैंने कहा है वही यदि मुझे अर्पण करके किया जाय तो मुक्ति का सर्वोत्तम साधन होता है ॥ ४७ ॥ हे साधो उद्धवजी !, जो मुझसे तुमने बूझा था सो 'जैसे स्वधर्माचरण करने वाला पुरुष मेरा भक्त होकर मुझ परमेश्वरको पावेगा तैसा' यह तुमसे मैंने कहा है ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ छ * छ

श्रीभगवानुवाच । यो विद्याश्रुतसम्पन्न आत्मवान्नानुमानिकः । मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥ १ ॥ ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च सम्मतः । स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम । ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥३॥ तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च । नालंकुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ॥ ४ ॥ तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावतः ५ ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि । सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ॥ ६ ॥ त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायांऽतरा पतति नाद्यपवर्गयार्यत् । जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥७॥ उद्धव उवाच । ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् । आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ॥ ८ ॥ तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे

श्रीभगवान्‌ने कहा कि-हे उद्धवजी ! जो पुरुष आत्माका अनुभव होनेके पर्यन्त होने वाले शास्त्रके ज्ञानसे युक्त होता हुआ आत्मतत्त्वको प्राप्त हुआ है, केवल शब्द ज्ञानसे ही युक्त नहीं है वह, यह सब द्वैत मायामात्र है ऐसा जान कर उसको दूर करनेका साधन जो ज्ञान तिसको भी मेरे विषैं संन्यास करे अर्थात् मुझसे अभिन्नपना देखे, इस प्रकार उसके करे हुए संन्यासको ही विद्वत्संन्यास कहते हैं ॥१॥ क्योंकि-ज्ञानी पुरुषको, इच्छितफलरूप मैं ही मान्य हूँ, स्वर्ग वा मोक्ष भी मैं ही हूँ, मुझसे अन्य कोई भी पदार्थ उसको प्रिय नहीं होता है इस कारण उसको प्राप्त होने योग्य वा करने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहा है ॥ २ ॥ ज्ञानविज्ञानसे सिद्ध हुए पुरुष, मेरे श्रेष्ठ पदको जानते हैं और वह ज्ञानी ही ज्ञानरूपसे मेरा धारण करता है इस कारण वही मुझे अतिप्रिय है ॥ ३ ॥ ज्ञानके लेशमात्रसे भी जो सिद्धि होती है वह सिद्धि, तप, तीर्थ, जप, दान और दूसरे जो पवित्र साधन हैं उनसे कभी भी सिद्ध नहीं होती है ॥ ४ ॥ इससे हे उद्धवजी ! जैसे ज्ञान प्राप्त होय तिस रीतिसे अपने आत्माको जान कर ज्ञान विज्ञान सम्पन्न होते हुए भक्तिभावसे केवल मेरा ही आराधन करो, दूसरे सब कर्मोंका त्याग करो ॥ ५ ॥ सब यज्ञोंके स्वामी मुझ अपने आत्माका, ज्ञानविज्ञानरूप यज्ञसे अपने आत्मामें ही आराधन करके, पहिले कितने ही ऋषि मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होगये हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धवजी ! तुममें जो यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन प्रकारका द्वैतभाव प्रतीत होता है वह, क्योंकि-आदि अन्तमें न होकर मध्यमें ही भासता है तिससे रज्जुमें भासने वाले सर्पकी समान मायाकल्पित है, सच्चा नहीं है, इससे यह जन्म आदि विकार यदि देहको ही हैं तो उनके अधिष्ठानरूप तुम्हें उनसे क्या है ? क्योंकि—धोखेके सर्पादिकोंकी आदि और अन्तमें जो रज्जु आदि होती है वही मध्यमें भी होती है, सर्पादि दूसरा कुछ नहीं होता है ॥ ७ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्त्ते ! शुद्धि करनेवाला, ज्ञानविज्ञानसहित और अनादिदेव सिद्ध यह ज्ञान, जैसे मेरी समझमें आवे तैसे विस्तारके साथ कहिये, जिसको

संतप्यमानस्य भवाध्वनीश । पश्यामि नान्यच्छरणं तवांघ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥९॥ दष्टं जनं संपतितं बिलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् । समुद्धरैनं कृपयाऽपवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच । इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् । अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ॥ ११ ॥ निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः । श्रुत्वा धर्मान्बहून् पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत तानहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् । ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ॥१३॥ नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै । ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ॥ १४ ॥ एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् । स्थित्युत्पत्त्यप्य-

---

ब्रह्मादिक भी ढूंढते हैं वह अपना भक्तियोग भी तुम मुझसे कहो ॥ ८ ॥ हे प्रभो! आध्यात्मिक आदि तीन प्रकारके तापों करके चारों ओरसे तपे हुए और भयङ्कर संसारमार्गमें पड़े हुए मुझको, चारों ओरसे अमृतकी वर्षा करनेवाले तुम्हारे दोनों चरणरूप छत्रसे दूसरा कोई भी आश्रय नहीं दीखता है ॥ ९ ॥ हे महानुभाव ! इस संसारकूपरूप गढहेमें पड़े हुए और तहाँ कालरूप सर्पसे डसे हुए तथापि तुच्छ विषयसुखोंमें अतितृष्णा धारण करने वाले इस जनका तुम कृपा करके उद्धार करो, मोक्षका बोध करानेवाले अपने वचनामृतोंसे इसको सींचकर इसके तापको शान्त करो ॥ १० ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! यह तुम्हारा बूझा हुआ प्रश्न, ऐसे ही पहिले धर्मराजने, हम सबोंके सुनते हुए, भगवद्धर्मपरायणोंमें श्रेष्ठ भीष्मजीसे बूझा था ॥ ११ ॥ भारतका युद्ध होजाने पर, बन्धुओंके मरणसे विह्वल हुए धर्मराजने भीष्मजीसे बहुतसे धर्म सुन कर फिर उनसे मोक्षधर्म बूझा था ॥ १२ ॥ वह भीष्मजीके मुखसे सुने हुए ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्ति इनसे युक्त मोक्षधर्म, मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ १३ ॥ प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार, और पञ्चतन्मात्रा यह नौ, पाँच ज्ञानेन्द्रियें, पाँच कर्मेन्द्रियें, और मन यह ग्यारह, पाँच महाभूत और तीन गुण यह सब मिल कर अट्ठाईस तत्त्व ब्रह्मादि स्थावर पर्यन्त सब कार्योंमें व्याप रहे हैं ऐसा जिस ज्ञानसे देखता है और सब तत्त्वोंमें भी, एक परमात्मतत्त्व ही है ऐसा जिस ज्ञानसे देखता है अर्थात् कार्य कारणरूप जगत् को देखता हुआ भी यह परम कारणरूप ही है तिससे निराला नहीं है ऐसा जिस ज्ञानसे जानता है वही ज्ञान है, यह मेरा निश्चय है ॥ १४ ॥ पहिले ज्ञानके समय एकसे व्याप्त हुए सब पदार्थ एकरूप ही हैं ऐसा जो देखता था वह अब तैसा नहीं देखता है किन्तु यह एक परम कारणरूप ब्रह्म ही है ऐसा देखता है, ऐसा देखने लगा कि—उस ज्ञानको विज्ञान कहते हैं, जैसे दिशाओंकी अपरोक्ष भ्रान्ति निश्चित दिशाके परोक्षज्ञानसे निवृत्त नहीं होती है तैसी, पुरुषको यह संसाररूप भ्रान्ति अपरोक्ष होनेके कारण परोक्षज्ञानसे निवृत्त नहीं होती है अर्थात् आत्मरूप जगत्को देखने वाला पुरुष, जगत्को ब्रह्मरूपसे जानता हुआ भी उसको अपनेसे निराला मानता है, अपरोक्षज्ञानमें तो, उसका बाध होकर जीवन्मुक्त हुआ पुरुष, वह अपनेसे निराला देखना, जले हुए वस्त्रकी समान आभासमात्र है ऐसा देखता है,

यान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १५ ॥ आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात । पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत ॥ १६ ॥ श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् । प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥ १७ ॥ कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् । विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥ १८॥ भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ । पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् १९ श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् । परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ॥२०॥ आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् । मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥२१॥ मदर्थेष्वंग चेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् । मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ॥ २२ ॥ मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च । इष्टं दत्तं हुतं

उसके सिवाय और कुछ नहीं देखता है, इसकारण परोक्षज्ञानका नाम 'ज्ञान' कहा है अपरोक्ष ज्ञानका नाम 'विज्ञान' कहा है, अब एक वस्तुका सब कार्यों में होना और कार्यों का तिस कारणसे निरालापन न होना, दिखानेके निमित्त सब पदार्थोंकी उत्पत्ति आदि साधते हैं-त्रिगुणमय पदार्थोंके सावयव होनेके कारण उनके उत्पत्ति स्थिति, संहार हैं ऐसा देखे ॥ १५ ॥ जो वस्तु किसी भी कार्यके आरम्भमें और परिणाम पानेके समय कारणरूपसे, तैसे ही मध्यमें भी आश्रयरूपसे और एक कार्य से दूसरा कार्य होते समय उसमें अनुस्यूतपनेसे रहती है और जो फिर उस कार्य का लय होने पर भी शेष रहती है वही वस्तु सत् है ऐसा देखे॥१६॥ 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि श्रुति, तैसे ही पट आदि पदार्थ तन्तु आदिके बिना नहीं दीखते हैं यह प्रत्यक्ष, बड़े पुरुषोंकी प्रसिद्धिरूप ऐतिह्य, और दीखनेवाला होनेके कारण सीपीमें भासनेवाला रजत (चाँदी) मिथ्या है इत्यादि अनुमान यह चार प्रमाण है, इनसे, सब प्रपञ्च नाशवान् है ऐसा निश्चय होता है इस कारण जो विवेकी पुरुष है वह सर्वव्यापक और सत्य आत्मतत्त्वको जानकर इस प्रपञ्चसे विरक्त होता है ॥ १७ ॥ विवेकी पुरुष, जैसे यह लोक नाशवान् है तैसे ही इस लोकमें करे हुए कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला जो 'स्वर्गलोकसे लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्तका सर्व सुख सो, कर्मोंके नाशवान् होनेके कारण दुःखरूप और नाशवान् है ऐसा देखे ॥ १८ ॥ हे उद्धवजी ! यद्यपि भक्तियोग मैंने तुमसे पहिले ही कहा है तथापि उस भक्तियोग के ऊपर प्रेम रखनेवाले तुमसे, फिर भी अपनी भक्तिके श्रेष्ठ कारण कहता हूँ १९ मेरी अमृतसमान कथाके सुननेमें आदर और सुननेके अनन्तर निरन्तर मेरी कथा का व्याख्यान करना, मेरी पूजामें लगे रहना, स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करना ॥ २० ॥ मेरे मन्दिरको बुहारने आदिके काममें आदर, मुझे साष्टांग नमस्कार करना, मेरे भक्तोंकी विशेष पूजा, सब प्राणियोंमें मेरी भावना रखना ॥ २१ ॥ मेरी पूजाकी फूल तुलसी आदि सामग्री लानेका स्वयं प्रबन्ध करना, वाणीसे मेरे गुण वर्णन करना, मुझे अपना मन अर्पण करना, सब विषयोंकी वासना छोड़देना ॥ २२ ॥ मेरे निमित्त द्रव्य खर्च करना, मेरे भजनमें हानि पड़े तो मालाचन्दनादि भोगसाधनका और पुत्रोंके लाड़ करने आदिके सुखको भी त्याग देना, यज्ञादि वैदिक

जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ॥ २३ ॥ एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् । मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥२४॥ यदात्मन्यर्पितं चित्तं शांतं सत्त्वोपबृंहितम् । धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ॥२५॥ यदर्पितं तद्विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति । रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ॥ २६ ॥ धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् । गुणेष्वसंगो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ॥ २७ ॥ उद्धव उवाच । यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वाऽरिकर्शन । कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो ॥२८॥ किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते । कस्त्यागः किं धनं चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा ॥२९॥ पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव । का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ॥ ३० ॥ कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पंथा उत्पथश्च कः । कः स्वर्गो नरकः कःस्वित्को बंधुरुत किं गृहम् ॥ ३१ ॥ क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः । एतान्प्रश्नान्मम

कर्म करना, दान, होम, जप, तप और एकादशी आदि व्रत मेरे निमित्त करना२३ हे उद्धवजी ! इसप्रकारके श्रवण आदि साधनों सहित आत्मनिवेदन करनेवाले मनुष्योंकी, मुझमें प्रेमरूपभक्ति उत्पन्न होती है फिर उनको कोई साधनरूप वा साधनेयोग्य अर्थ बाकी नहीं रहता है ॥ २४ ॥ अधिक तो क्या परन्तु चित्त ही अन्तर्मुख वा बहिर्मुख हुआ अर्थ और अनर्थका कारण होता है जब सत्त्वगुणसे युक्त हुआ चित्त,आत्मरूप मुझमें अर्पण करनेके कारण शान्त और तहाँ ही आसक्त होता है तब वह पुरुष, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यसे युक्त होता है ॥ २५ ॥ और जब वह चित्त देहगेह आदिमें लगता हुआ इंद्रियोंके द्वारा विषयोंकी ओरको दौड़ कर अति मलिन और विषयासक्त होता है तब वह पुरुष अधर्म आदिसे युक्त होता है ऐसा जानो ॥ २६ ॥ जिससे मेरी भक्ति प्राप्त होती है उस ही धर्मको शास्त्रमें उत्तम कहा है, जिससे एक आत्माका दर्शन होता है वह ज्ञान है, जिससे विषयोंकी आसक्ति छूटती है वह वैराग्य है और जिससे अणिमादि सिद्धि प्राप्त होती हैं वह ऐश्वर्य है ऐसा शास्त्रमें कहा है ॥ २७ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे शत्रुदमन प्रभो ! श्रीकृष्णजी ! यम कितने प्रकारका कहा है ? और नियम भी कितने प्रकारका है ? शम किसको कहते हैं ? दम कौनसा है ? तितिक्षा कौनसी है ? और धैर्य कौनसा है ? ॥ २८ ॥ दान क्या है ? तप क्या है ? शूरता, सत्य और ऋत कौनसे कहे है ? त्याग क्या है ? इच्छित धन क्या है ? यज्ञ कौनसा है ? और दक्षिणा क्या है ? ॥ २९ ॥ हे श्रीमान् केशव ! मनुष्यका बल क्या है ? भाग्य क्या है ? और लाभ कौनसा है ? विद्या, शोभा और लज्जा यह उत्तम कौनसी हैं ? सुख कौनसा है ? और दुःख कौनसा है ? ॥ ३० ॥ पण्डित कौन है ? और मूर्ख कौन है ? सन्मार्ग क्या है ? और कुमार्ग क्या है ? स्वर्ग कौनसा है? और नरक कौनसा है ? बन्धु कौन है ? और घर क्या है ? ॥ ३१ ॥ धनवान् कौन है ? और दरिद्र कौन है ? कृपण कौन है ? और ईश्वर कौन है? हे सत्पुरुषोंके अधिपति भगवन् ! इन मेरे बूझे हुए प्रश्नोंका उत्तर और इनसे प्रतिकूल अशम अदम आदिके लक्षण

न्न हि विपरीतांश्च सत्पते ॥३२॥ श्रीभगवानुवाच । अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रीर-संचयः । आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम् ॥३३॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् । तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ ३४ ॥ एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः । पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ॥३५॥ शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः । तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् । स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च सम-दर्शनम् ॥ ३७ ॥ ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता । कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ॥ ३८ ॥ धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः । दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ॥ ३९ ॥ भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिः

भी मुझसे कहो ॥ ३२ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी ! १ अहिंसा, २ सत्य बोलना, ३ चोरी न करना, ४ आसक्ति न रखना. ५ निन्दित कर्ममें लज्जा, संग्रह न करना, ७ धर्म पर विश्वास रखना, ८ ब्रह्मचर्य, ९ मौन १० स्थिरता, ११ क्षमा और १२ अभय ॥ ३३ ॥ तैसे ही १ मनमें शुद्धि, २ बाहर शुद्धि, ३ जप, ४ तप, ५ होम, ६ श्रद्धा, ७ अतिथिका सत्कार, ८ मेरी पूजा, ९ तीर्थयात्रा, १० दूसरेके निमित्त चेष्टा करना, ११ सन्तोष और १२ गुरुकी सेवा ॥ ३४ ॥ यह दो श्लोकोंमें बारह २ क्रमसे यम और नियम कहे हैं, हे तात उद्धवजी ! इनका आचरण सकाम और निष्काम मनुष्य करें तो यह उनके मनकी कल्याण और मोक्षरूप कामनाओंको पूर्ण करने वाले हैं ॥ ३५ ॥ मेरे विषैं बुद्धिकी निष्ठाको शम कहते हैं, केवल शान्त रहना ही शम नहीं है, इन्द्रियोंके दमन करनेको दम कहते हैं, केवल चोरादिकों का दमन करना दम नहीं है, केवल बोझेको सहना ही नहीं किन्तु दुःखको सहन करना तितिक्षा है, केवल घबराहट न होना ही नहीं किन्तु जिह्वा और उपस्थ इन इन्द्रियोंके वेगको रोकना धैर्य है॥३६॥केवल धनका देना ही,नहीं किन्तु प्राणियोंके द्रोहका त्याग करना ही उत्तम दान है,केवल कृच्छ्रचान्द्रायण आदि ही नहीं किन्तु भोगोंकी उपेक्षा करना ही तप है, केवल पराक्रम करना ही नहीं, किन्तु स्वभावका जीतना ही शूरता है, केवल यथार्थ बोलना ही नहीं, किन्तु समरूप ब्रह्मको देखना ही सत्य है ॥३७॥ सत्य और प्रिय बोलना ऋत है ऐसा कवियोंने कहा है स्नानादि करके केवल मल धोना ही शौच नहीं है, किन्तु कर्मोंमें अनासक्ति ही शौच है, केवल घरद्वारको छोड़ देना ही त्याग नहीं है, किन्तु सब कर्मोंका संन्यास करना ही त्याग है ॥ ३८ ॥ केवल पशु आदि ही धन नहीं है, किन्तु परमार्थरूप जो धर्म वही मनुष्योंका इष्टधन है, पूर्ण ज्ञानादिरूप परमेश्वर मैं ही यज्ञ हूँ अर्थात् मेरी बुद्धि से ही यज्ञ करे, कर्मबुद्धिसे न करे, यज्ञके निमित्त (मेरे निमित्त) ज्ञानोपदेश करना ही दक्षिणा है,केवल सुवर्णादिका दान ही दक्षिणा नहीं है,मनका दमन करने का साधन जो प्राणायाम वही बड़ा बल है, केवल शरीरका बल ही बल नहीं है ३९ मेरी जो षड्गुणैश्वर्यरूप सम्पत्ति सो भाग्य है, केवल पुण्य ही भाग्य नहीं है, मेरी ही उत्तम लाभ है, केवल पुत्रादिका ही लाभ नहीं है, आत्मामें प्रतीत होने वाले

रुत्तमः । विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ ४० ॥ श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः । दुःखं कामसुखापेक्षा पंडितो बंधमोक्षवित् ॥ ४१ ॥ मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पंथा मन्निगमः स्मृतः । उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ४२ नरकस्तम उन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे । गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ४३ दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः । गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसंगो विपर्ययः ॥ ४४ ॥ एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः । किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः । गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ॥ ४५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच । विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते । अवेक्षतेऽरविंदाक्ष गुणदोषं च कर्मणाम् ॥१॥ वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् । द्रव्यदेशवयः-

---

देवमनुष्यादि भेदोंका जो बाध होना वही विद्या है, केवल ज्ञान ही विद्या नहीं है, निन्दित कर्मोंमें जो त्यागकी बुद्धि वही लज्जा है, केवल लौकिक लज्जा ही लज्जा नहीं है ॥ ४० ॥ निरपेक्षता आदि गुण ही शोभा (भूषण) है, किरीटादि भूषण नहीं है, दुःख-सुखका अनुसन्धान न रखना ही सुख है, भोग ही सुख नहीं है, विषयोंके भोगकी इच्छा ही दुःख है, अग्नि दाह आदि नहीं, बन्धसे मोक्षको अथवा बन्धन और मोक्ष इन दोनोंको जो जानता है वही पण्डित है, केवल विद्वान् ही नहीं ॥ ४१ ॥ देहगेह आदिमें जो मैं और मेरा ऐसा अभिमान रखता है वही मूर्ख है, केवल अनजान मूर्ख नहीं है, मेरी प्राप्ति करा देनेवाला निवृत्तिमार्ग ही सन्मार्ग है, केवल काँटे आदिरहित मार्ग ही नहीं, चित्तका विक्षेपरूप प्रवृत्तिमार्ग ही कुमार्ग है, केवल चोरादिकोंसे युक्त ही कुमार्ग नहीं है, सत्त्वगुणका उत्कर्ष ही स्वर्ग है, केवल इन्द्रादिलोक ही नहीं ॥४२ ॥ तमोगुणकी वृद्धि ही नरक है, केवल रौरवादि ही नहीं, हे सखा उद्धवजी ! गुरुरूपमें ही बन्धु हूँ, केवल भ्राता आदि ही बन्धु नहीं हैं, मनुष्यशरीर ही घर है, केवल काठ मट्टी आदिके ही नहीं, गुणोंसे सम्पन्न ही धनी है केवल धनवान् ही नहीं ॥ ४३ ॥ जो असंतोषी है वही दरिद्री है, केवल निर्धन ही नहीं, जिसने इन्द्रियोंको नहीं जीता वही कृपण है, केवल दीन ही नहीं जिसका चित्त विषयोंमें आसक्त नहीं हुआ वही ईश्वर है, केवल राजा आदि ही नहीं, जो विषयोंमें आसक्त है वही अनीश्वर है ॥ ४४ ॥ हे उद्धवजी ! मैंने तुम्हारे यह सब प्रश्न जैसे मोक्षमें लाभदायक हों तैसे वर्णन करे हैं, अधिक वर्णन करने से क्या है ? केवल इतने ही गुण दोषोंके लक्षण हैं कि-गुण और दोषको जो देखना वही दोष है और गुण दोषोंको न देखनेका स्वभाव ही गुण है ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें एकोनविंश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ छ

उद्धवजीने कहा हे कमलनयन ! तुम परमेश्वरकी जो आज्ञा वही विधि निषेध रूप वेद है वह वेद, विहित और निषिद्ध कर्मोंके पुण्यपापरूप फलोंका वर्णन करता है ॥ १ ॥ और उत्तम अधमभावसे उनके अधिकारी वर्णाश्रमोंके गुणदोषरूप भेदों का प्रतिपादन करता है, तैसे ही प्रतिलोमज (उत्तम वर्णकी स्त्रियोंमें हीन वर्णके

कालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥ २ ॥ गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव । निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥ ३ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर । श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥४॥ गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः । निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया । ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥६॥ निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु । तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ॥७॥ यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् । न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥ तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता । मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥ ९ ॥ स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीःकाम

पुरुषोंसे उत्पन्नहुए सूनवैदेह आदि) और अनुलोमज (उत्तम वर्णके पुरुषोंसे हीन वर्णकी स्त्रियोंमें उत्पन्न हुए (मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ आदि) भेदोंका वर्णन करता है और कर्मके योग्य तथा अयोग्य होनेके कारण द्रव्य, देश, अवस्था और कालके गुण दोषरूप हुए भेदोंका तथा उनके फलरूपसे स्वर्ग नरक आदिका वर्णन करता है २ अब, गुणदोषोंमें भेददृष्टि न रखना यह तुम्हारा वचन है और विधि निषेधका वर्णन करने वाला वेद भी तुम्हारा ही वचन है, अब मनुष्योंका कल्याण कैसे हो ? क्योंकि–इन आपके वचनोंमें ही परस्पर विरोध है ॥ ३ ॥ हे ईश्वर ! पितर, देवता और मनुष्योंको भी, प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे समझमें न आये हुए स्वर्ग मोक्षादिकोंके ज्ञानके विषयमें और यह इसका साध्य है तथा यह इसके साधन हैं इस विषयमें तुम्हारा वचनरूप जो वेद वह उत्तमज्ञापक है,तात्पर्य यह कि गुणदोषदृष्टिका अभाव हुआ तो मोक्ष सुख नहीं प्राप्त होयगा ४ इससे गुणदोषोंकी भेददृष्टि तुम्हारी आज्ञा रूप वेदसे ही है,अपने आप नहीं है,और फिर तुम्हारे वचनसे ही उस भेदका अपवाद भी मैंने सुना है, इसकारण मुझे भ्रम होरहा है उसको दूर करो ५ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे उद्धवजी ! मनुष्योंको मोक्ष प्राप्त होनेकी इच्छासे मैंने,ब्रह्म-कर्म-देवता कांडोंसे ज्ञान,निष्काम कर्म और भक्ति,यह तीनप्रकारके उपाय कहे हैं,इनसे दूसरा कोई भी उपाय शास्त्रमें नहीं कहा है तहाँ दुःखबुद्धिसे कर्मोंके फलोंसे विरक्त होकर कर्मोंका त्याग करनेवाले पुरुषोंको ज्ञानयोग सिद्धि देने वाला है और उन कर्मोंमें जिनके चित्तको विराग नहीं हुआ है उन सकाम पुरुषोंको कर्म-योग सिद्धि देने वाला है ७ और जिस पुरुषको दैवयोगसे मेरी कथाओंके श्रवण कीर्त्तन आदि में श्रद्धा उत्पन्न हुई है परन्तु कर्मोंके फलोंमें वैराग्य नहीं हुआ है और अधिक आसक्ति भी नहीं है उनको भक्तियोग सिद्धि देनेवाला है ॥ ८ ॥ मनुष्यको जबतक वैराग्य न हो वा मेरी कथा सुनने आदिमें श्रद्धा उत्पन्न न हो तबतक वह नित्य नैमित्तिक कर्म करे ॥ ९ ॥ हे उद्धवजी ! फलकी कामनाको छोड़कर अपने धर्म का आचरण करने वाला और बहुत यज्ञ करके मेरा आराधन करने वाला पुरुष, यदि निषिद्ध कर्मका आचरण नहीं करे तो मरने पर स्वर्गलोकमें वा नरकमें नहीं जाता है अर्थात् नरकमें जाना दो प्रकारका होता है एक विहित कर्मका उल्लंघन

उद्धव । न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥ १० ॥ अस्मिल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः । ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥११॥ स्वर्गिणोऽप्येतदिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा । साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम् ॥ १२ ॥ न नरः स्वर्गतिं कांक्षेन्नारकीं वा विचक्षणः । नेमं लोकं च कांक्षेत देहावेशात्प्रमाद्यति ॥ १३ ॥ एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः । अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ॥१४॥ छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् । खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलंपटः ॥ १५ ॥ अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वायुर्भयवेपथुः । मुक्तसंगः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ॥ १६ ॥ नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् । मयाऽनुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ॥१७॥ यदारंभेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः । अभ्यासेनात्मनो योगी

करनेसे, दूसरा निषिद्ध कर्मका आचरण करनेसे तिसमें वह पुरुष, स्वधर्मका आचरण करता है और निषिद्धको त्यागता है इस कारण नरकमें नहीं जाता है और फलकी कामनारहित होनेके कारण स्वर्गमें भी नहीं जाता है ॥ १० ॥ किन्तु इस लोकमें ही और इस मनुष्य शरीरमें ही रहकर निषिद्ध कर्मोंका त्याग करता हुआ और अपने धर्ममें पवित्रतासे रहता हुआ, अनायासमें ही पुरुष, विशुद्धज्ञान और मेरी भक्तिको पाता है ॥११॥ जैसे नरकमेंके प्राणी इस मनुष्य शरीरकी इच्छा करते हैं, तैसे ही स्वर्गवासी देवता भी इसकी इच्छा करते हैं, क्यों कि—जैसे यह मनुष्य शरीर ज्ञान-भक्तिका वा ज्ञानभक्तिके द्वारा मुक्तिका साधक है "से वह नरकमेंका शरीर वा दिव्य शरीर नहीं है ॥ १२ ॥ इस कारण विवेकी पुरुष, स्वर्गमें जानेकी वा नरकमें आनेकी इच्छा न करे अर्थात् स्वर्ग नरकके साधक काम्य तथा निषिद्ध कर्म न करे, और इस शरीरके अतिश्रेष्ठ होनेके कारण फिर भी मुझे मनुष्य शरीर मिले ऐसी भी इच्छा न करे, क्यों कि—देहमें आसक्त होनेसे अपने स्वार्थमें सावधान नहीं रहता है ॥१३॥ ऐसा जानने वाला वह विवेकी पुरुष, अर्थसिद्धि देनेवाले भी इस अपने शरीरको मरणधर्मसे युक्त जानकर मृत्युका समय आनेसे पहिले, अशक्तअवस्थामें ही सावधानीसे मोक्षको प्राप्त करनेमें यत्न करे१४ अथवा जैसे पक्षी घोंसला बनाकर रहनेके अपने आश्रयभूत वृक्षको, यम सा निर्दयी पुरुष, तोड़ रहा है ऐसा देखकर तहाँ आसक्त न होकर उसको त्यागकर चलेजाने पर सुख पाता है तैसे ही रातदिन रूप कालके अवयवोंसे टूटनेके कारण कम होते हुए अपने आयुको जानकर भयसे काँपने वाला और सकल व्यापाररहित हुआ जीव, परमात्माको जानकर देहकी सङ्गति छोड़ते ही सकल सन्तापरहित होकर परमानन्दको पाता है ॥ १५-१६ ॥ सकल फलोंकी मूलभूत करोड़ों उद्योगोंसे प्राप्त न होनेवाली परन्तु सहजमें प्राप्तहुई गुरुरूप कर्णधार (मल्लाह)से युक्त और स्मरण मात्रसे ही अनुकूल वायुरूप मेरी प्रेरणा करी हुई मनुष्यशरीररूप नौकाको पाकर जो प्राणी संसार समुद्रको नहीं तैरता है उसको केवल आत्मघाती समझे ॥ १७ ॥ जो योगी, कर्ममें दुःखको देखनेसे घबड़ावे और कर्मके फलमें विरक्त होय तब वह

धारयेच्चलं मनः ॥ १८ ॥ धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम्। अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ॥ १९ ॥ मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः। सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥ २० ॥ एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः। हृदयज्ञत्वमन्विच्छन्दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥ २१ ॥ सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः। भवाप्ययावनुध्यायन्मनो यावत्प्रसीदति ॥ २२ ॥ निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः। मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिंतितस्यानुचिन्तया ॥ २३ ॥ यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया। ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥ २४ ॥ यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम्। योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥२५॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः।

इंद्रियोंको वशमें करके, आत्मानुसन्धानके अभ्याससे आत्मामें अपने मनको निश्चल भावसे धारण करे ॥ १८ ॥ मुझमें धारण कराहुआ भी मन जब भ्रमण पाकर (दूसरे विषयोंमें जाकर) स्थिर न रहता हुआसा होता है तब योगी आलस न करके उसकी इच्छा पूरी करके धीरे २ अपने वशमें करलेव ॥ १९ ॥ उपेक्षा करने पर वह अत्यन्त चञ्चल होजायगा इस कारण उसको स्वाधीन करनेसे छोड़े नहीं किन्तु सावधानीसे प्राणोंको और इंद्रियोंको जीतकर, सत्त्वगुणयुक्त हुई बुद्धिसे उस मनको जीतलेय ॥ २० ॥ जैसे घोड़ेका सिखाने वाला, सिखाने योग्य उद्धत घोड़ेकी गति अपनी इच्छाके अनुसार होनेकी चाहना करता हुआ धीरे २ अपने आप उसकी गतिके अनुसार ही शिक्षा देता है और किसी समय दौड़ते हुये भी उसको लगामसे पकड़ कर ही उसके पीछे दौड़ता है, परन्तु सर्वथा उसकी उपेक्षा नहीं करता है और कुछ समयमें ही उसको अपने वशमें करलेता है तैसे ही मनकी थोड़ीसी इच्छा पूर्ण करके उपेक्षा न करता हुआ उसको धीरे २ अपने वशमें करलेना ही बडा योग साधन है ऐसा जाने ॥ २१ ॥ तत्त्वज्ञानसे महत्तत्त्वादिक देहपर्यन्त सब पदार्थोंकी अनुलोम करके (प्रकृति आदिके क्रमसे) उत्पत्ति और प्रतिलोम करके (पृथिवी आदिके क्रमसे) नाशको, जबतक मन निश्चल होय तब तक चिन्तवन करे ॥ २२ ॥ उत्पत्ति नाशवान् पदार्थोंमें उनके अवधिभूत आत्माके दर्शनसे, अज्ञानके रचेहुये संसारमें खिन्न होकर विरक्त हुये और गुरुके कहे हुये अर्थका विचार करनेवाले और तिस विचार करे हुए अर्थका ही वारम्वार चिन्तवन करने वाले पुरुषका मन, देहादिकोंमेंके अभिमानका त्याग करता है ॥ २३ ॥ और यमादि योग मार्गोंसे तथा आत्मानात्मविचाररूप विद्यासे और मेरा पूजन ध्यान आदि करके योग्य हुआ मन परमात्माका स्मरण करता है, दूसरे साधनोंसे स्मरण नहीं करता है इस कारण योगी, मनके जीतनेको दूसरा साधन न करे ॥ २४ ॥ योगीके हाथसे पहिले तो पापाचरण होता नहीं है, कदाचित् प्रमादसे यदि योगी निन्दितकर्म बनजाय तो उस पापको वह ज्ञानाभ्याससे जलाडाले, उसके विषय मे दूसरे कृच्छ्र प्रायश्चित्त आदि कभी नहीं करे ॥२५॥ नित्य नैमित्तिक कर्म अन्तःकरणके शोधक होनेसे गुणरूप और हिंसादि कर्म अशुद्धिके कारण होनेसे दोषरूप

कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः। गुणदोषविधानेन संगानां त्याजनेच्छया॥२६ जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु। वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः॥ २७॥ ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः। जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन्॥ २८॥ प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः। कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते॥ २९॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेऽखिलात्मनि॥ ३०॥ तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः। न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥ ३१॥ यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्। योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ३२

हैं और उनको दूर करने वाले प्रायश्चित्त भी गुणरूप हैं सो उस प्रायश्चित्तके करे बिना योगीका पाप कैसे भस्म होसकेगा ? ऐसी शङ्का करो तो तहाँ कहते हैं कि-अपने २ अधिकारमें जो निष्ठा वही गुण कहा है, दूसरा नहीं, क्योंकि—इन विधिनिषेधोंके द्वारा कहेहुये गुणदोषोंके विधान करके उत्पत्तिसे ही अशुद्ध होने वाले कर्मोंका संकोच 'विषयासक्तिको छोड़नेकी इच्छासे' करा है, इसका तात्पर्य यह है कि-पुरुषकी प्रवृत्तिके सिवाय दूसरी कोई भी अशुद्धता नहीं है, क्यों कि-स्वाभाविक प्रवृत्तिसे ही यह मलिन हुआ है और उस प्रवृत्तिको एकाएक सर्वथा दूर करना भी नहीं होसकता, इस कारण वेदने 'यह न करे और यही करे' इस प्रकार स्वाभाविक प्रवृत्तिके संकोचके द्वारा निवृत्ति ही करी है और वह वेद भी प्रवृत्तिपर नहीं है निवृत्तिपर ही है, ऐसा हम अगले अध्यायमें 'उत्पत्त्यैव हि कामेषु' इत्यादि श्लोकमें तुमसे कहेंगे, इसप्रकार योगीकी कर्मोंमें स्वाभाविक प्रवृत्ति न होनेसे उसको प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है ॥२६॥ जब मेरी कथामें श्रद्धा उत्पन्न होती है, सर्वकर्मोंमें ग्लानि मानता है परन्तु उन कर्मोंके फलसे विरक्त नहीं होता है अर्थात् विषय दुःखरूप हैं ऐसा जानता है परन्तु उनके त्यागनेको समर्थ नहीं होता है ॥ २७ ॥ तब परिणाममें दुःखरूप उन विषयोंकी निन्दा करता और निर्वाहकी पूर्त्तिके योग्य उनका सेवन करता हुआ, भक्तिसे ही मेरे सब मनोरथ पूरे होजायँगे ऐसा निश्चय करके वह पुरुष प्रीतिके साथ मेरी भक्ति करे ॥ २८ ॥ 'मेरी अमृत समान कथामें श्रद्धा' इत्यादि कहेहुये भक्तियोगसे मेरा नित्य भजन करने वाले पुरुषके हृदयमें मेरे रहने पर, तहाँकी सब कामवासना नष्ट होजाती हैं ॥ २९ ॥ जब सबके अन्तर्यामी मुझ आत्माका साक्षात्कार होता है तब इस भक्तकी अहन्ताममता रूप हृदयकी गाँठ कटजाती है, असम्भावना आदि सब सन्देह टूट जाते हैं और संसारके कारण सकल कर्म क्षीण होजाते हैं ॥ ३० ॥ तिससे, मेरी भक्तिसे युक्त और मुझमें मन लगाने वाले योगीको, उस काममें ज्ञान वा वैराग्यरूप साधन कल्याणकारक नहीं होते हैं किन्तु भक्तिरूप साधन ही कल्याण कारक है ॥ ३१ ॥ इसका कारण यह है कि-कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दानधर्म और तीर्थयात्रादि अन्य साधनोंसे जो अन्तःकरणकी शुद्धि आदि फल मिलता है वह सब फल मेरे भक्तको मेरी

सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा। स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वांछति३३ न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकांतिनो मम। वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥ नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम्। तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥ ३५ ॥ न मय्येकांतभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणा। साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥ ३६ ॥ एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः। क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

श्रीभगवानुवाच। य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान्। क्षुद्रान् कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥ १ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः। विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥ २ ॥ शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु। द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥३॥ धर्मार्थं

भक्तिसे अनायासमें ही मिलजाता है, यह तो क्या परन्तु यदि वह स्वर्ग, मोक्ष वा मेरे वैकुण्ठलोककी भी इच्छा करे तो वह भी उसको मिलेगा, परन्तु वह इच्छा ही नहीं करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ क्योंकि–जो धैर्यवान् साधु मेरे एकान्त भक्त हैं, वह मेरे आग्रहसे दिये हुए सर्वोत्तम मोक्षपदको भी नहीं ग्रहण करते हैं, फिर वह इच्छा नहीं करते इसका तो कहना ही क्या? निरपेक्षता ही उत्तम और बड़े कल्याणका फल तथा साधन है ऐसा कहते हैं, इस कारण किसीकी भी प्रार्थना न करनेवाले निरपेक्ष पुरुषको मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥३५॥ मुझमें एकान्त भक्ति करनेवाले समचित्त और बुद्धिसे परेके ईश्वरस्वरूपको प्राप्तहुए साधुओंको विहितनिषिद्धकर्मसे होनेवाले पुण्यपाप आदि गुणदोष नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष, इस प्रकार मेरे कहे हुए इस मेरी प्राप्तिके मार्गसे सेवा करते हैं वह, काल माया आदिसे रहित मेरे लोकको प्राप्त होते हैं और जिसको परब्रह्म कहते हैं उसको जानते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें विंश अध्याय समाप्त ॥ २० ॥

श्रीभगवान्ने कहा कि–हे उद्धवजी! जो पुरुष, इन भक्ति–ज्ञान–कर्मरूप मेरे मार्गोंको छोड़कर, विषयोंमें दौड़नेवाली इन्द्रियोंसे, उन नाशवान् विषयोंका सेवन करते हैं वह सकल गुणदोषोंको सेवन करनेवाले होनेसे नानाप्रकारकी योनिय पाते हैं ॥ १ ॥ अब उन ही कर्मोंसे कितने ही गुणदोषयुक्त होते हैं और कितने ही नहीं, यह भेदभाव क्यों? अग्निसे कितनों ही को ताप हो कितनों ही को न हो यह नहीं होसकता, ऐसा कहो तो तहाँ कहते हैं कि–अपने २ अधिकारमें जो निष्ठा रखना उसको गुण कहा है और दूसरेके अधिकार पर आसक्ति रखना दोष है, ऐसा गुणदोषोंके स्वरूपका निर्णय है इस कारण अधिकारभेदसे ही गुणदोषोंकी कल्पना होती है, वह वस्तुका अवलम्बन करके नहीं रहते हैं ॥ २ ॥ पदार्थोंके वास्तवमें समान होनेपर 'यह पदार्थ योग्य है अथवा अयोग्य है ऐसे सन्देहके द्वारा' तहाँ प्राणीकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होनेकी रुकावट करनेके निमित्त पदार्थोंमें वेदने शुद्धि और अशुद्धि (योग्यपना और अयोग्यपना) कही हैं और उनके निमित्तसे

व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ । दर्शितोऽयं मयाचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥ ४ ॥ भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः । आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥ ५ ॥ वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि । धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम । गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥ ७ ॥ अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् । कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥ ८ ॥ कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा । यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥ ९ ॥ द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च

गुण दोष तथा उनके निमित्तसे पुण्यपापरूप अर्थ कहे हैं ॥ ३ ॥ हे उद्धवजी ! तहाँ शुद्धि और अशुद्धि, यह धर्म व्यवहार और देहके निर्वाहके निमित्त गुणदोषरूप कहे हैं तिनमें धर्मार्थ ऐसे हैं कि-शुद्धिसे धर्म होता है और अशुद्धिसे अधर्म होता है व्यवहारार्थ ऐसे कि-अशौच आदि अशुद्धि दशामें भी राजा आदिको प्रजादिकों का न्याय आदि करनेमें शुद्धि है और अन्यकार्योंमें शुद्धि नहीं किन्तु अशुद्धि ही है,देह निर्वाहके निमित्त ऐसे कि-प्रतिग्रहका निषिद्ध होना ठीक है परन्तु आपत्तिकालमें उससे देहके निर्वाहकी पूर्त्ति करलेने पर पाप नहीं लगता है, अधिक करने पर पाप लगता है इत्यादि आचार, धर्मरूप भार उठानेवाले पुरुषोंको मैंने मन्वादिरूपसे दिखाया है ॥ ४ ॥ वास्तविक रीतिसे विचारकर देखने पर सब ही पदार्थ समान हैं-क्योंकि-ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त सब प्राणियोंके शरीरोंकी उत्पत्तिके कारण भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश यह पञ्चमहाभूत एकसे हैं और सबों का जीवात्मा भी ईश्वरका अंश होनेके कारण एकरूप ही है ॥ ५ ॥ इस कारण हे उद्धवजी ! इन प्राणियोंकी प्रवृत्तिके नियमके द्वारा धर्म आदि चार प्रकारके पुरुषार्थकी सिद्धि होनेके निमित्त इनके एक समान भी पञ्चमहाभूतात्मक शरीरोंमें वेदने वर्ण आश्रम आदि विषय नाम कल्पना करे हैं ॥ ६ ॥ हे उद्धवजी ! केवल देहादिकोंमें ही यह कल्पना नहीं है किन्तु देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी और ग्रहण करने योग्य तण्डुल आदि पदार्थ इन सबोंके भी गुण दोष, कर्मकी स्वाभाविक प्रवृत्तिका सङ्कोच होनेके निमित्त वेदरूप मैंने कहे हैं ॥ ७ ॥ जिस देशमें काला हिरन नहीं फिरता है वह देश अपवित्र है, तिसमें भी जहाँ ब्राह्मणभक्ति नहीं वह देश अत्यन्त अपवित्र है, और जहाँ काला हिरन भी है परन्तु सत्पुरुष नहीं है वह कीकट (अंग, बंग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र और मगधआदि) देश भी अपवित्र गिना है, परन्तु उस कीकट देशमें सत्पुरुष हों तो उसको पवित्र माना है तैसे ही बिना झाड़ाबुहारा, अधिक म्लेच्छों वाला और ऊसर भूमिका भाग यह देश अपवित्र है और बाकीके पवित्र हैं ॥ ८ ॥ जो काल पदार्थोंकी सम्पत्तिसे युक्त अथवा जो दिन का पहिला भाग आदि काल स्वयं ही कर्मके योग्य है वह उस कर्मके विषयमें शुद्ध है और जिसमें पदार्थ नहीं मिलता अथवा राष्ट्रविप्लव (गदर) आदि होनेसे कर्म नहीं होसकता और जो सूतक आदिसे कर्मके अयोग्य होता है वह दशाह आदि काल अशुद्ध माना है ॥ ९ ॥ पदार्थोंकी शुद्धि वा अशुद्धि, दूसरे पदार्थसे, वचनसे

द्रव्येण वचनेन च। संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाऽथवा ॥ १० ॥ शक्त्याऽशक्त्याऽथवा बुद्धया समृद्धया च यदात्मने। अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ॥ ११ ॥ धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम्। कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ॥१२॥ अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति। भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥ १३ ॥ स्नानदानतपोवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः। मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः ॥ १४ ॥ मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्प-

---

संस्कारसे, कालसे अथवा अधिक कम होनेसे मानी है, तहाँ पदार्थसे-तण्डुल आदि पदार्थोंकी जल आदिसे शुद्धि और मूत्रादिसे अशुद्धि होती है संस्कारसे वचनसे-यह वस्तु शुद्ध है अथवा अशुद्ध है ऐसा संशय प्राप्त होनेपर, यह शुद्ध है ऐसे ब्राह्मणके वचनसे शुद्धि अन्यथा अशुद्धि होती है, छिड़कने आदिसे पुष्पादिकों की शुद्धि और सूँघनेसे अशुद्धि होती है कालसे-दश दिन बीतने पर नवीन जल की शुद्धि और चौमासेमें तीन दिनमें नये जलकी शुद्धि तथा रात्रि बस जानेसे बासी अन्नकी अशुद्धि होती है, और अधिकता न्यूनतासे-चाण्डालदिकोंका स्पर्श होजाने पर भी तालाब आदिके जलकी शुद्धि और घड़े आदिके जलकी अशुद्धि है ॥ १० ॥ तैसे ही शक्ति और अशक्तिसे-सूर्यग्रहण आदि सूतकके अन्न आदिकी शक्तिमान् पुरुषोंको अशुद्धि और असमर्थ पुरुषोंको शुद्धि होती है, ज्ञानसे-पुत्रजन्म आदिका अशौच दश दिनके अनन्तर जाना जाय तो शुद्धि और दश दिनके भीतर जाना जाय तो तबसे दश दिन तक अशुद्धि होती है, समृद्धिसे-पुराने और मैले वस्त्रोंकी सम्पत्तिमानोंको अशुद्धि और दरिद्रोंको शुद्धि होती है, तिस पर भी यह पदार्थ, अपने अशुद्धपनेसे प्राणीको जो पाप उत्पन्न करते हैं वह देश और अवस्था आदिके अनुसार ही करते हैं, सर्वत्र नहीं करते हैं अर्थात् निर्भय देशमें ही करते हैं चोरादिकोंके उपद्रवसे युक्त देशमें नहीं करते हैं, रोग आदि रहित तरुण आदि अवस्थामें ही करते हैं, रोगीपनेके दशामें वा बालक आदि अवस्थामें नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ धान्यकी शुद्धि वायुसे होती है, लौकिक काठोंकी जलसे, और ग्रहचमस आदि यज्ञके पात्रोंकी शुद्धि गरम जलसे होती है, हाथी दाँत आदि हड्डियोंकी शुद्धि कालसे होती है, घी तेल आदि रसोंकी और सुवर्ण आदि धातुओंकी शुद्धि अग्निसे होती है, वस्त्रादिकोंकी शुद्धि जलसे, चर्म आदिकी शुद्धि कालसे, और अन्य पदार्थोंकी शुद्धि भिन्न २ शुद्धिकारी पदार्थोंसे, और दो तीन आदि पदार्थोंके मिलनेसे होती है, काक चाण्डाल आदिके छुए हुए पदार्थोंकी शुद्धि स्पर्श आदिके न्यूनाधिकभावसे काल आदि करके होती है ॥ १२ ॥ पटला, पात्र, वस्त्र आदि जो वस्तु, जिस छीलने आदिसे, खारी खट्टे आदि जलसे धोने पर अमङ्गल पदार्थोंके गन्ध, लेप और मलको त्यागकर ठीक दशाको प्राप्त होय, उन पटले आदि वस्तुओं का वह छीलना आदि ही शोधक है, उसका भी गन्ध और लेप जाने पर्यन्त बारंबार लगाना ही इच्छित है ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तप, अवस्था, शक्ति, उपनयन आदि संस्कार, सन्ध्योपासनादि कर्म और मेरे स्मरणके द्वारा कर्त्ताकी शुद्धि कही

णम्। धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥१५॥ क्वचिद् गुणोपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः। गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ॥ १६ ॥ समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम्। औत्पत्तिको गुणः संगो न शयानः पतत्यधः ॥ १७ ॥ यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्ततः। एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः॥१८ विषयेषु गुणाध्यासात्पुंसः संगस्ततो भवेत्। संगात्तत्र भवेत्कामः कामादेव कलिर्नृणाम् ॥ १९ ॥ कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते। तपसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥ २० ॥ तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते। ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्छितस्य मृतस्य च ॥ २१ ॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नाप-

है, इस कारण इन संस्कारोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, शुद्ध होकर अपने अधिकारके अनुसार कर्म करें ॥ १४ ॥ श्रेष्ठ गुरुके मुखसे अङ्गोपाङ्ग सहित मन्त्रका ज्ञान होना ही मन्त्रशुद्धि है, मुझ ईश्वरको समर्पण करना ही कर्मकी शुद्धि है, इस प्रकार देश, काल, पदार्थ, कर्त्ता, मन्त्र और कर्म यह छः शुद्धियें होनेपर इनसे धर्म प्रवृत्त होता है और इनमें विपरीतपना होय तो अधर्म होता है ॥ १५ ॥ यह गुणदोषका विभाग वास्तविक नहीं है क्योंकि-कहीं अर्थात् आपत्तिमें प्रतिग्रह गुण है तो भी सम्पत्तिमें निषिद्ध होनेसे दोष होता है और कहीं दोष भी विधिबलसे गुण होजाता है, क्योंकि-जैसे कुटुम्बका परित्याग आदि साधारण पुरुषको दोषरूप है परन्तु विरक्तको दोषरूप नहीं है, गुणदोषका जो नियामक शास्त्र है वह गुणदोषके भेदका ही बोध करता है ॥ १६ ॥ कहीं दोष भी दोषरूप न होकर गुणरूप होजाता है, जैसे सुरापान आदि अपतित पुरुषोंके पतनका हेतु होनेसे दोषरूप होने पर भी पतितपुरुषोंके अधिकारका नाशक नहीं होता है, क्योंकि-वह पतित तो पहिलेसे ही है इससे यहाँ दोष भी दोषरूप नहीं हुआ, तथा संन्यासीको आसक्ति दोष है, परन्तु गृहस्थोंको पहिलेसे ही होनेसे दोष न होकर गुणरूप है इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि-जो पहिलेसे ही नीचे सोया है वह नीचे नहीं गिरता है ॥ १७ ॥ अत एव गुणदोषकी नियम विधिका तात्पर्य, प्रवृत्तिके सङ्कोचके द्वारा निवृत्ति विषयमें ही है,क्योंकि-जिस २ विषयसे यह पुरुष निवृत्त होता है उस २ से मुक्त होता है और मुक्त होना यह धर्म ही मनुष्योंका कल्याणकारी होकर शोक, मोह और भयका नाश करता है ॥ १८ ॥ पहिले 'यह विषय अति उत्तम हैं' ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने पर उन विषयोंमें पुरुषकी आसक्ति होती है और आसक्ति होने पर उनको भोगनेकी इच्छा होती है उसके पूर्ण होनेमें विघ्न करने वालेके साथ उन पुरुषोंका उस इच्छाके कारण ही कलह होता है ॥ १९ ॥ और कलहसे तीव्र क्रोध होता है, तिस क्रोधके कारण अतिमोह होता है और मोहसे पुरुषकी सब पदार्थोंमें फैली हुई 'क्या करना चाहिये और क्या न करना चाहिये, इस प्रकारकी स्मृति नष्ट होजाती है ॥ २० ॥ फिर उस विवेककी स्मृतिसे रहित हुआ प्राणी, होकर भी न होने वालासा होता है तदनन्तर मूर्छितकी समान अथवा मृतक समान हुए उस प्राणीके पुरुषार्थकी हानि होती है ॥ २१ ॥ विषयोंमें अभिनिवेश (यह अवश्य

रम् । वृक्षजीविकया जीवन् व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥ २२ ॥ फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् । श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥ २३ ॥ उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च । आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोनर्थहेतुषु ॥२४॥ नतान-विदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि । कथं युञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥ २५ ॥ एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः । फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥ २६ ॥ कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः । अग्निमुग्धा धूम-तान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते ॥ २७ ॥ न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः। उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ॥ २८ ॥ ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्म-

करना चाहिये ऐसे आग्रह) से अपनेको नहीं जानता है और दूसरेको भी नहीं जानता है किन्तु वृक्षकी समान केवल आहारमात्र ग्रहण करके जीवित रहता है, वह मूर्छितकी समान होता है और लुहारकी धौंकनीकी समान व्यर्थ श्वांस लेता रहता है तथा मृतकसमान है ॥२२॥ 'स्वर्गकी इच्छा करनेवाला अग्निष्टोमयज्ञ करे' ऐसी जो फलश्रुति है वह मनुष्योंको परमपुरुषार्थ देनेवाली नहीं है किंतु वहिर्मुख पुरुषोंको मोक्षका उपदेश करनेकी इच्छासे आनुषङ्गिक फलोंके द्वारा कर्मपर रुचि उत्पन्न करनेवाली है, इस फलश्रुतिसे जैसे पिता,बालकोंके ज्वरादि रोग दूर होनेके निमित्त उनको औषध पिलानेका मनमें विचारकरके उनसे, औषधका फल मिसरी लड्डू आदि दूँगा ऐसा कहता है तिसी प्रकार स्वर्गादि फल कहा है ॥ २३ ॥ अपने अनर्थके कारण जो पशु आदि विषय, आयु, इन्द्रिय, बल,पराक्रम और पुत्रादि स्व-जनोंमें स्वभावसे ही आसक्तचित्त हुए और वेदके कहने पर विश्वास रखने वाले, अपने स्वार्थको न जानने वाले और देवादि योनिरूप दुःखमार्गमें घूम कर अन्तमें वृक्षादियोनियोंमें जन्म धारण करने वाले उन पुरुषोंको, फिर उन ही पशु आदि विषयोंमें, उनका परम हितू जो वेद सो कैसे प्रवृत्त करेगा ? ॥ २४ ॥ २५ ॥ कितने ही कुबुद्धि, वेदका अभिप्राय न जानते हुए स्वर्गादि फल कहनेके कारण मनोहर प्रतीत होने वाली फलश्रुतिको ही सत्य मानते हैं, वेदके जानने वाले ऋषि तैसा नहीं जानते हैं ॥ २६ ॥ जो पुरुष, कामी, कृपण, लोभी, स्वर्गादि अवान्तर फलोंमें परमफलकी बुद्धि रखने वाले, अग्निसे सिद्ध होने वाले कर्मोंके आग्रहसे विवेक-हीन और अन्तमें दक्षिणायन मार्गसे जानेवाले हैं, वह किसी प्रकार भी आत्मतत्त्व को नहीं जानते हैं ॥ २७ ॥ हे उद्धवजी ! जो परमात्मा जगद्रूप है अर्थात् जिससे जगत् निराला नहीं है और जिससे जगत् उत्पन्न हुआ है ऐसे हृदयमें स्थित मुझ परमेश्वरको भी नहीं जानते हैं, क्योंकि–वह पशु हिंसारूप कर्मफलको ही वर्णन करने योग्य समझते हैं और अपने प्राणोंकी तृप्ति करनेमें तत्पर रहते हैं इस कारण जैसे अन्धकारसे व्याप्त दृष्टि वाले पुरुष, समीपके भी पदार्थको नहीं देखते हैं तैसे वह समीपमेंके भी मुझको नहीं देखते हैं ॥ २८ ॥ वह स्पष्ट मतको न जानते हुए विषयोंमें मग्न होकर देवता आदिकोंका यजन करते हैं, मेरा मन ऐसा है कि-मांस-भक्षणमें यदि प्रीति होय तो यज्ञमें हवन करके शेष रहा हुआ मांस देवताके प्रसाद-

काः । हिंसायां यदि रागः स्याद्यज्ञ एव न चोदना ॥ २९ ॥ हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया । यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः ॥ ३० ॥ स्वप्नोपममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम् । आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजन्त्यर्थान्यथा वणिक् ॥ ३१ ॥ रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः । उपासते इन्द्रमुख्यान् देवादीन्न तथैव माम् ॥३२॥ इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि । तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः ॥ ३३ ॥ एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम् । मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्त्तापि न रोचते ॥ ३४ ॥ वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकांडविषया इमे । परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ॥ ३५ ॥ शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् । अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ॥ ३६ ॥ मयोपबृंहितं भूम्ना

रूपसे ग्राह्य है, अपनी आवश्यकतासे उसके ग्रहण करनेकी आज्ञा नहीं है ॥२९॥ हिंसा करने वाले और क्रूर स्वभाव वाले वह पुरुष, अपने सुखकी इच्छासे, पशुओं को मार कर करे हुए यज्ञोंसे देवता, पितर और भूतपतिका यजन करते हैं ॥३०॥ स्वप्नकी समान नाशवान् और केवल कानको ही प्रिय लगने वाली परलोककी और इस लोककी कामनाओंका मनमें कल्पना रख कर पासका धन खर्च करते हैं वह पुरुष, जैसे कोई व्यापारी दुस्तर समुद्रके उल्लंघनसे बहुतसा द्रव्य मिलनेकी इच्छा रख कर पासका धन खर्च करता है और इतोभ्रष्ट ततोभ्रष्ट होता है तैसे ही वह इस लोकके और परलोकके सुखको खोते हैं॥३१॥ वह पुरुष, रजःसत्त्वतमोगुणके स्वभाव वाले होनेके कारण अपनी समान रजोगुणी, सत्त्वगुणी और तमोगुणी इन्द्रादिकोंकी आराधना नहीं करते हैं, वह मुझ गुणातीतकी आराधना नहीं करते हैं, वह इन्द्रादि देवता यद्यपि मेरे ही अंशभूत हैं तथापि भेददर्शीपनेसे उनकी करी हुई उपासना विधिपूर्वक न होनेके कारण वह मेरे निमित्त करी हुईसी नहीं होती है ॥ ३२ ॥ यहाँ हम यज्ञोंसे देवताओंका यजन करके स्वर्गमें जायँगे और तहाँ अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करेंगे, फिर स्वर्गके भोगों को भोगनेके अनन्तर इसलोकमें जन्म लेकर बड़े प्रतिष्ठित कुलीन गृहस्थ होयँगे३३ इसप्रकार पुष्परूप स्वर्गादि सुखको वर्णन करनेवाली वाणीसे जिनका मन विक्षिप्त हुआ है ऐसे अभिमानी और घमण्डी हुए तिन पुरुषोंको मेरी वार्त्ता भी प्रिय नहीं लगती है इस कारण वह निरन्तर संसारमें ही रहते हैं ॥ ३४ ॥ त्रिकाण्डविषयक (कर्म, ब्रह्म और देवताकाण्डविषयक) यह सब वेद, जीवात्मा ब्रह्मरूप ही है, संसारी नहीं है ऐसा ही कहने वाले हैं, वह वेद अथवा उनके द्रष्टा ऋषि, अपनेमें का अर्थ गुप्त रखते हैं और वह अर्थ गुप्त रखना मुझे प्रिय है ॥ ३५ ॥ परा, पश्यंती मध्यमा नामक सूक्ष्म और वैखरी नामक स्थूल, ऐसे दो प्रकारका वेद ब्रह्म है, उस दोनों ही प्रकारकेको जानना परम कठिन है, क्योंकि-वह देश और कालके अन्त तथा पारसे रहित है और अर्थमें गम्भीर होनेके कारण समुद्रकी समान उसमें बुद्धि का भी प्रवेश नहीं होसकता ॥ ३६ ॥ अनन्तशक्ति, व्यापक और परब्रह्म रूप मैंने उस वेदब्रह्मको भीतरसे प्रेरणा करके बढ़ाया है, जैसे कमलकी दण्डीमेंके सूक्ष्म तंतु

ब्रह्मणाऽनन्तशक्तिना । भूतेषु घोषरूपेण विसेषूर्णेव लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् । आकाशाद् घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥ ३८ ॥ छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः । ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तस्थभूषिताम् ॥ ३९ ॥ विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः । अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥४०॥ गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च । त्रिष्टुब् जगत्यतिछन्दो ह्यत्यष्ट्यतिजगद्विराट् ॥ ४१ ॥ किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत् । इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥ ४२ ॥ मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापो-

चतुर पुरुषोंके ध्यानमें आते हैं तैसे ही वह वेदब्रह्म सकल पुरुषोंकेशरीरमें नादरूप से चतुर पुरुषोंके अनुभवमें आता है ॥ ३७ ॥ जैसे मकड़ी अपने हृदयमेंसे मुखके द्वारा तन्तुओंको बाहर प्रकट करती है और उन तन्तुओंके ऊपर कुछ समय पर्यन्त क्रीड़ा करके अन्तमें उनको अपनेमें ही समेट लेती है तैसे ही प्राणोपाधिसे हिरण्यगर्भ रूप हुए, वेदमूर्त्ति और अमृतमय यह नादरूप भगवान्, स्पर्श आदि च०ोंकी कल्पना करने वाले मनोरूप निमित्त करके अपने हृदयाकाशसे अनन्तमार्गोंसे युक्त और अनन्त पार वेदब्रह्मरूप वाणीको उत्पन्न करते हैं और अन्तमें उसको आप ही समेट लेते हैं, वह वाणी हृदयमें स्थित सूक्ष्म ॐकारसे उर कण्ठ आदि स्थानोंके संयोगसे स्पर्श (क खसे लेकर भ म पर्यन्त), सोलह स्वर, ऊष्म (श ष स ह) और अन्तस्थ (य र ल व) इन वर्णोंसे भूषित होकर लौकिक और वैदिक विचित्र भाषाओंके द्वारा फैली हुई है, उसके चौवीस अक्षरोंसे लेकर अट्ठाईस वत्तीस आदि चार २ अक्षरों करके बढ़े हुए छन्द हैं ॥ ३८—४० ॥ गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, अष्टी, अत्यष्टी, विराट् और अतिविराट् यह छन्द हैं, चौवीस अक्षरका गायत्री, अट्ठाईस अक्षरोंका उष्णिक्, वत्तीस अक्षरोंका अनुष्टुप् इत्यादि चार २ अक्षरोंको बढ़ा कर बनाए हुए बृहती आदि छन्द हैं ॥ ४१ ॥ यह वेदरूप वाणी कर्मकाण्डमें नाना प्रकारके वाक्योंसे किसका विधान करती है, देवताकाण्डमें मन्त्रवाक्योंसे किसका प्रकाश करती है और, ज्ञान कांडमें अनुवाद करके किसका विकल्प करती है, इस विषयका इस वाणीका तात्पर्य मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ ४२ ॥ तुम ही कृपा करके हमें बताओ ऐसा कहो तो सुनो—यह वेदवाणी कर्मकांडोंमें मुझ यज्ञरूपका ही विधान करती है, देवताकांडोंमें तिन २ देवताओंके रूपसे मेरा ही प्रकाश करती है, मुझसे दूसरे किसीका भी प्रकाश नहीं करती है और जो 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन् आकाशः सम्भूतः' इत्यादि श्रुतियोंसे आकाश आदि सब प्रपञ्चकी कल्पना करके अन्तमें 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि श्रुतियोंसे निषेध किया जाता है वह सब मैं ही हूँ, मुझसे दूसरा कोई नहीं है, यदि कहो कि—क्यों नहीं है ? तो सुनो—सकल वेदों का अर्थ इतना ही है कि—वेद, परमार्थरूप मेरा आश्रय करके मुझमें भासने वाले आकाशादि भेदका, यह सब मायामय है ऐसा कहकर अन्तमें उसका निषेध करके शान्त होता है, इसका अभिप्राय यह है कि—अंकुरमें जो रस होता है वही उसकी

ह्यते त्वहम् । एतावान् सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् । मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

उद्धव उवाच । कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो । नवैकादश पंच त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥ १ ॥ केचित् षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् । सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥ २ ॥ केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश । एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया । गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ श्रीभगवानुवाच । युक्तयः सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा । मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ॥४॥ नैतदेवं यदात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा । एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययः ॥ ५ ॥ यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां

फैली हुई शाखा, प्रशाखा, फूल, मूल आदिमें प्राप्त होता है, तैसेही ॐकारका अर्थ परमेश्वर है, वही उस विस्तारभूत, त्रिकांडमय शाखाओं सहित सब वेदोंका अर्थ है, दूसरा कुछ नहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें एकविंश अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ छ ॥ * छ

उद्धवजीने कहा कि—हे प्रभो ! विश्वेश्वर ! ऋषियोंने शास्त्रोंमें तत्त्व कितने गिने हैं ? अर्थात् उन्होंने शास्त्रोंमें जो कुछ तत्त्व कहे हैं उनमें कितने योग्य हैं, तुम ने तो नौ, ग्यारह, पाँच और तीन मिला कर सब अट्ठाईस तत्त्व कहे सो हमने सुने हैं ॥ १ ॥ कितने ही ऋषि, छव्वीस तत्त्व कहते हैं, दूसरे पच्चीस, तीसरे कितने सात, कितने ही नौ, कितने ही छः, कितने ही चार और कितने ही ग्यारह तत्त्वों का वर्णन करते हैं ॥ २ ॥ कितने ही सत्तरह, कितने ही सोलह, और कितने ही तेरह तत्त्व कहते हैं, हे आयुष्मन् श्रीकृष्णजी ! ऋषियोंने ऐसे निराले निराले भेद, तत्त्वोंकी संख्याओंके, जिस प्रयोजनको कहनेकी इच्छासे वर्णन करे हैं वह सब आप कृपा करके मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! ब्राह्मणोंने, तत्त्वोंके विषयमें जैसे जो रीति कही है उन सबोंमें ही युक्ति है,क्योंकि मेरी मायाको स्वीकार करके कहनेवालोंको क्या दुर्घट है? अर्थात जैसे मृगतृष्णाके जलको मानलेने पर उसके परिमाणके विवादमें घुटनों जल कहें तो चलसकता है और बीस बांस जल कहें तो भी चलसकता है ऐसे ही मायाको स्वीकार करनेके अनन्तर मायाकी जितनी संख्या कही जाय उतनी ही युक्तिसे सिद्ध होसकती है ॥४॥ इस पर कहो कि–यदि सब ही ठीक है तो विवाद कैसा ? और जब मायाका ही आश्रय मानलिया तो उसके भेदोंके कारणोंको सिद्ध करनेमें विवाद कैसा ? तहाँ कहते हैं कि—'जैसे तू कहता है ऐसे यह नहीं है, किंतु जैसे मैं कहता हूँ तैसा ही ठीक है, इस प्रकार यद्यपि उन तत्त्वोंके मूल कारणमें भी ब्राह्मण विवाद करते हैं तथापि वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो अपने २ स्वभाव के अनुसार परिणाम पाये हुए मायाके सत्त्वादि गुण ही उस विवादमें कारण हैं ५ कि-जिन गुणोंके क्षोभसे वाद करनेवालोंमें वाद करनेका विषय पक्षभेद हुआ है,

पदम् । प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति ॥ ६ ॥ परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ । पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥७॥ एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च । पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥ ८ ॥ पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् । यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ॥ ९ ॥ अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् । स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ॥१०॥ पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि । तदन्यकल्पनापार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥ ११ ॥ प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । १२ ॥ सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते । गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥१३॥ पुरुषः

जब शम और दम प्राप्त होते हैं तब यह विकल्प (भेद) नष्ट होजाता है और भेद के नष्ट होते ही वाद भी शांत होजाता है ॥६॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! एकका दूसरे में अन्तर्भाव होनेके कारण वाद करनेवाले पुरुषोंकी जैसी छोटी बड़ी संख्या कहने को इच्छा होती है तैसी 'पहिले कारण और तदनन्तर कार्य ऐसे धर्मसे' वह संख्या होसकती है ॥ ७ ॥ जैसे घट सकोरे आदि कार्य पदार्थ, कारणरूपमृत्तिकामें अंतर्भावको प्राप्तहुए दीखते हैं अथवा जैसे वह कारणरूप मृत्तिका घटादिकोंमें प्रवेश करी हुई दीखती है तैसे पूर्वके एक ही कारणभूत तत्त्वमें और सब कार्यतत्त्व अथवा आगेके एक ही कार्यरूपतत्त्वमें पूर्वके कारणतत्त्व अन्तर्भाव करके प्रविष्टहुए दीखते हैं ॥ ८ ॥ इस कारण इन तत्त्वोंकी कार्यकारणता और कम अधिक संख्याकी इच्छा करनेवाले वादियोंमें जो कहनेकी इच्छासे जिसकी वाणी प्रवृत्त होती है, उस सब कहनेको युक्तियुक्त होनेके कारण हम ठीक मानकर ग्रहण करते हैं ॥ ९ ॥ कार्यकारणरूप जड़तत्त्वोंकी भिन्नता और एकताके कहनेमें इच्छासे तत्त्वोंका भेद रहे परन्तु जीव और ईश्वरके चैतन्यरूप होनेके कारण उनके भेद और अभेदको कहने की इच्छा क्यों हुई ? कि—जिससे तत्त्वोंके पचीस छब्बीस यह संख्याका भेदरूप दो पक्ष हुए, ऐसा कहो तो-तहाँ कहते हैं कि—अनादि अविद्यासे युक्त जीवको, स्वयं ही आत्मज्ञान होनेका सम्भव नहीं है दूसरेसे होसकता है,इस कारण उसको ज्ञानोपदेश करनेवाला दूसरा तत्त्वज्ञानी परमेश्वर होना चाहिये, ऐसा मानकर छब्बीस तत्त्वोंकी संख्याका पक्ष चला है ॥ १० ॥ इस शरीरमें जीव और ईश्वरके, चैतन्यरूपी होनके कारण अणुमात्र भी भेद नहीं है इसकारण उनके भेदकी कल्पना करना व्यर्थ है और ज्ञान सत्त्वगुणकी वृत्ति होनेके कारण प्रकृतिका ही गुण है, इस कारण जीव ईश्वरकी एकता मानकर पचीस तत्त्व माननेका पक्ष चला है ११ तीनों गुणोंकी समतारूप अवस्था ही प्रकृति है इस कारण स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके कारण जो सत्त्व, रज और तम यह तीन गुण हैं वह उस प्रकृतिके ही हैं, आत्माके नहीं हैं, क्योंकि-आत्मा अकर्ता है इस कारण उसके विषें सृष्टि आदिके कारणभूत गुणोंका आश्रयत्व नहीं होसकता ॥ १२ ॥ इस कारण सत्त्वगुणमय ज्ञान प्रकृतिका ही गुण है तैसे रजोगुणमय कर्म और तमोगुणमय जो अज्ञान है सो इस तत्त्वोंकी संख्यामें तत्त्व नहीं है और उनका प्रकृतिके गुणोंमें ही अन्तर्भाव है, गुणों

प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः। ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव॥१४ श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः। वाक्पाण्युपस्थपाय्वंघ्रिः कर्माण्यङ्गोभयं मनः॥१५॥ शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः। गत्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः॥ १६॥ सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी। सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषोऽव्यक्त ईक्षते॥१७। व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया। लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात्॥ १८॥ सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः। ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः॥ १९॥ षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान्। तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत्॥ २०॥ चत्वार्येवेति तत्रापि तेजः आपोऽन्नमात्मनः। जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु२१

का मेलन करनेवाला काल स्वभाव और सूत्र (महत्तत्त्व) इनका भी प्रकृतिमें ही अन्तर्भाव है॥ १३॥ हे उद्धवजी! पुरुष प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथ्वी यह मैंने नौ तत्व कहे हैं॥ १४॥ श्रोत्र, त्वचा चक्षु, घ्राण और जिह्वा यह पाँच ज्ञानेन्द्रियें, वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ यह पाँच कर्मेन्द्रियें तथा ज्ञानकर्ममय मन यह ग्यारह॥ १५॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयोंके रूपसे परिणामको प्राप्त हुए पञ्चमहाभूत और सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण सब मिलकर मेरे मतमें अट्ठाईस तत्त्व हैं, चलना, बोलना वीर्यका त्यागकरना मलका त्यागकरना और कलाकुशलता यह कर्मेन्द्रियोंके फल हैं इस कारण इनको कर्मेन्द्रियोंमें ही अन्तर्गत जानना॥ १६॥ श्रोत्र इन्द्रियसे गन्धपर्यंत पहिले कहे हुए सोलह विकाररूप कार्योंको और महत्तत्वसे लेकर पृथ्वीपर्यन्त कहे हुए सात कारणोंको धारण करने वाली जो प्रकृति वही इस जगत्की सृष्टि आदि के विषयमें गुणोंके द्वारा सृज्यत्व आदि अवस्थाको धारण करती है और परिणाम रहित तथा निमित्तकारणरूप जो पुरुष वह केवल साक्षीपनेसे देखता है इसकारण वह, उन परिणाम वाले प्रकृति आदिसे निराला है॥ १७॥ प्रकृतिसे उत्पन्न होकर, विकारको प्राप्त होने वाले जो महत्तत्व आदि कारण, वह प्रकृतिका आश्रय करके, पुरुषके आलोकनसे सामर्थ्य युक्त हुए और परस्पर संयोगयुक्त होकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं॥ १८॥ सात ही तत्त्व कहने वालोंका अभिप्राय यह है कि—पञ्चमहाभूत, ज्ञान (द्रष्टा जीव) और आत्मा (द्रष्टाका और दृश्य जगत्का आधार) इतने ही तत्त्व होते हैं, तिनमें प्रकृति, महत्तत्त्व और अहङ्कार इन कारणतत्त्वोंका और इन्द्रिय प्राण आदि कार्यतत्त्वोंका आकाश आदिमें अन्तर्भाव जानना॥ १९॥ पञ्चमहाभूत और छठा परमात्मा (पुरुष) यह थे तिनमें वही परमात्मा अपनेसे उत्पन्न हुए उन आकाशादिसे युक्त होकर उस ब्रह्माण्डको उत्पन्न करता है और तिनमें अन्तर्यामिरूपसे प्रवेश करता है, यहाँ भौतिक पदार्थोंका पञ्चमहाभूतोंमें और जीवका परमात्मामें अन्तर्भाव जानना॥ २०॥ कोई चार ही तत्त्व कहते हैं, तहाँ आत्मासे उत्पन्न हुए तेज, जल और पृथिवी यह तीन और चौथा यही था, उन चार तत्त्वोंसे ही इस अवयवी जगत्का जन्म हुआ है, इससे चार तत्त्वोंमें ही सब

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च। पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥ २२ ॥ तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते। भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥ २३ ॥ एकादशत्वमात्मासौ महाभूतेन्द्रियाणि च। अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ॥२४॥ इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम्। सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ॥२५॥ उद्धव उवाच। प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ। अन्योऽन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः। प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ॥ २६ ॥ एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि। छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ॥ २७ ॥ त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः। त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच। प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ। एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः २९

कार्यकारणोंका अन्तर्भाव जानना ॥ २१ ॥ कितनों हीके मतमें सत्रह तत्त्व गिने हैं, तिनमें पञ्चमहाभूत, शब्दादि पाँच विषय, श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियें और एक मन इनके साथ आत्मा है ॥ २२ ॥ सोलह तत्त्वोंकी गिनतीमें भी पूर्वके ही पन्द्रह तत्त्व हैं और आत्माही संकल्प करने लगता है तो उसको मन कहते हैं इसकारण आत्मा और मन एकही तत्त्व है, कोई तेरह ही तत्त्व कहते हैं, तहाँ पंचमहाभूत, पंचज्ञानेन्द्रियें, मन जीव और आत्मा यह समझने ॥ २३ ॥ ग्यारह ही तत्व हैं ऐसा भी पक्ष है, तहाँ आत्मा पंचमहाभूत और पाँच ज्ञानेन्द्रियें यह जानने, नौ तत्त्व माननेके पक्षमें पंचमहाभूत, मन, बुद्धि, अहंकार और पुरुष यह समझने ॥ २४ ॥ इस प्रकार ऋषियोंने तत्वोंकी भिन्न २ संख्या कही है वह, प्रकृतिसे पुरुष निराला है इसके समझनेके निमित्त ही है, वह सब युक्तिसहित होनके कारण न्यायके अनुकूल ही हैं, क्योंकि-विद्वान् पुरुषोंका कौनसा कहना ठीक नहीं है ? ॥ २५ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे श्रीकृष्णजी! प्रकृति और पुरुष यह दोनों यद्यपि स्वभावसे जड़ और चेतन होनेके कारण परस्पर भिन्न हैं तथापि उनको भिन्न २ होनेकी प्रसिद्धि न होनेके कारण उनका भेद नहीं दीखता है अर्थात् प्रकृतिके कार्यरूप देहमें यही आत्मा है ऐसा समझनेमें आता है और आत्मामें यही देह है ऐसा ध्यानमें आता है, उनका परस्पर भेद ध्यानमें नहीं आता है ॥ २६ ॥ हे पुण्डरीकाक्ष! इस प्रकार मेरे हृदयमेंके इस बड़भारी सन्देहको तुम सर्वज्ञ होनेके कारण, युक्तिसे निपुण अपने वचनोंके द्वारा दूर कर सकते हो ॥ २७ ॥ क्योंकि-इस संसारमें जीवोंको यथार्थज्ञान तुम्हारे अनुग्रहसे ही होता है और ज्ञानका नाश भी तुम्हारी मायामें ही होता है और अपनी मायाके विस्तारको ठीक २ तुम ही जानते हो, दूसरा कोई नहीं जानता इस कारण तुम ही इस सन्देहको दूर करो ॥ २८ ॥ यह सुन कर श्रीभगवान्ने कहा कि-हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी! महत्तत्त्व आदिरूपसे परिणामको प्राप्त होने वाली वह प्रकृति और परिणामको न प्राप्त होने वाला वह पुरुष, ऐसा प्रकृति पुरुषोंका भेद स्पष्ट ही है प्रकृति शब्दसे कहाहुआ यह देह इन्द्रियादिका समूहरूप सर्ग (सृष्टि) जन्मादि विकारोंसे युक्त है और गुणोंके परस्पर मेलका करा हुआ

ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते। वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥३०॥ दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिद्ध्यति यः स्वतः खे। आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याऽखिलसिद्धसिद्धिः। एवं त्वगादिः श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥ ३१ ॥ योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकारः प्रधानमूलान्महतः प्रसूतः। अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥३२॥ आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदार्थनिष्ठः। व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्तः परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच। त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो। उच्चावचान्यथा देहान् गृह्णन्ति

है ॥ २९ ॥ हे उद्धवजी ! मेरी गुणमयी माया, अपने गुणोंसे अनेक प्रकारके भेद और भेदबुद्धिको उत्पन्न करती है जिसमें पहिले विकारको प्राप्त होने वाला सर्ग ही तीन प्रकारका है, एक अध्यात्म, दूसरा अधिदैव और तीसरा अधिभूत ॥३०॥ चक्षु अध्यात्म, रूप अधिभूत और इस चक्षुके गोलकमें प्रवेश करा हुआ जो सूर्य का स्वरूप है वह अधिदैव है,इस चक्षुकी समान ही त्वचा, स्पर्श और वायु,श्रवण शब्द और दिशा, जिह्वा, रस और वरुण, नासिका, गन्ध और अश्विनीकुमार, चित्त, चेतयितव्य और वासुदेव, मन, मन्तव्य और चन्द्रमा, बुद्धि, बोद्धव्य और ब्रह्मा, अहंकार, अहंकर्तव्य और रुद्र इनको समझना, इन अध्यात्म आदिकोंकी परस्पर सापेक्षता सिद्ध होती है अर्थात् चक्षु न होय तो रूप सिद्ध नहीं होता है, रूप न होय तो चक्षु सिद्ध नहीं होता, चक्षुकी प्रवृत्ति नहीं होय तो उसकी अधिष्ठात्री देवता सिद्ध नहीं होती है, अधिष्ठात्री देवताके विना चक्षुकी प्रवृत्ति भी सिद्ध नहीं होती और चक्षुकी प्रवृत्तिके विना रूपका ज्ञान भी सिद्ध नहीं होसकता, तात्पर्य यह कि—सबोंकी सिद्धतामें परस्परकी अपेक्षा है, इसी प्रकार त्वचा आदि तीन २ पदार्थोंकी सिद्धता जानना और जो आकाशमें मण्डलरूपी सूर्य है वह किसीकी अपेक्षा न रख कर स्वयं ही सिद्ध है और अपने प्रकाशसे सर्वत्रके चक्षुओंके अधिष्ठात्री देवताओंका जैसा प्रकाशक है तैसे ही आत्मा इन आध्यात्मिक आदिकोंका आदिकारण होकर इनसे निराला और स्वतःसिद्ध प्रकाश से परस्पर प्रकाशक होनेवाले पहिले कहेहुए अध्यात्मिक आदिकोंका प्रकाशक है ३१ जो यह, गुणोंका क्षोभ करने वाले कालरूप निमित्तसे; जिसका प्रकृति मूलकारण है ऐसे महत्तत्त्वसे उत्पन्न हुआ सात्त्विक, राजस और तामस विकाररूप अहंकार है वही मोहमय विकल्पका (मैं देवता हूँ,मैं मनुष्य हूँ इत्यादि भेदका) कारण है ३२ देहसे निराला आत्मा है अथवा नहीं है ऐसे भेदका आश्रय करके रहने वाला जो विवाद है वह आत्माके अज्ञानसे ही हुआ है,वह वास्तवमें यद्यपि निरर्थक है तथापि स्वस्वरूपभूत मुझ परमात्मासे जिनकी बुद्धि फिरी हुई है उन पुरुषोंका कभी दूर नहीं होता है अर्थात् वह भेदबुद्धिसे करे हुए कर्मोंके द्वारा उच्च नीच योनियोंमें सुखदुःखरूप संसार ही पाते हैं ॥ ३३ ॥ उद्धवजीने कहा कि—हे प्रभो ! जिनकी बुद्धि आपसे फिरी हुई है वह प्राणी अपने करे हुए कर्मोंसे उत्तम नीच शरीरोंको

विसृजन्ति च ॥३४॥ तन्ममाख्याहि गोविंद दुर्विभाव्यमनात्मभिः। न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥ ३५ ॥ श्रीभगवानुवाच। मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम्। लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥ ३६ ॥ ध्यायन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ। उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति॥३७॥ विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः। जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यंतविस्मृतिः॥३८॥ जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद। विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः॥ ३९ ॥ स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ। तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥४०॥ इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि। बहि-

जैसे ग्रहण करते हैं और जैसे त्यागते हैं सो मुझसे कहिये? अर्थात् व्यापक भी आत्मा को इस देहसे तिस देहमें जाना कैसे बनता है, अकर्त्ताको कर्म करना कैसे बनता है? और नित्यको जन्ममरण कैसे प्राप्त होते हैं, अल्पबुद्धि पुरुषोंको इस विषयका तर्क करना भी कठिन है सो हे गोविन्द! आप मुझसे कहिये, इसको जानने वाला प्रायः दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि-सब ही लोक तुम्हारी मायासे मोहित हो रहे हैं॥ ३४ ॥ ३५॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी! पाँच इंद्रियोंसे युक्त यह जीवका मन ही एक देहसे दूसरे देहमें अथवा एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है तब उस मनसे निराला भी आत्मा; उस मनसे एकताको प्राप्त होकर उसके अनुसार ही बर्त्ताव करता है अर्थात् उसके जानेसे अपनेको भी गया हुआ मानता है३६ कर्मोंके वशीभूत हुआ मन, देव मनुष्यादि अनेकों शरीरोंकी प्राप्तिके कारणरूप कर्मोंमेंसे फलोन्मुख हुए कर्मों करके आगे आने वाले देखे और सुने हुए विषयों का देहके अन्तकालमें ध्यान करने लगता है तब इस ध्यानमें आये हुए नवीन विषयमें (देहमें) प्रवेश करता है और पहिले पुरातन विषयसे (देह से) छूटता है फिर उसकी पहिला पिछला विचार करनेकी बुद्धि नष्ट होजाती है ॥३७॥ उस समय कर्मके प्राप्त हुए देवादि शरीरके ऊपर 'यही मैं हूँ' ऐसा अत्यन्त आग्रही होकर वह देह उत्तम हो तो हर्ष आदि किसी कारणसे और नीच होय तो भय वा शोक आदि किसी कारणसे जीवको प्रथम देहका सर्वथा विस्मरण होजाता है यही आत्माका मरण हुआ कहलाता है आत्मा देहकी समान नष्ट नहीं होता है ॥ ३८ ॥ और हे उद्धवजी! दूसरे शरीरसे मनकी एकता होकर 'यह देह मैं ही हूँ' ऐसी बुद्धिसे स्वप्नकी समान अथवा मनोरथकी समान जीव उस नवीन देहको जो स्वीकार करता है यही उसका जन्म कहाता है, उस समय भी देहकी समान जीव की उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ३९ ॥ जैसे स्वप्न देखने वाला अथवा मनोरथ करने वाला यह जीव, उस स्वप्नके अथवा मनोरथके समय पूर्वकालके अपने देहका स्मरण नहीं करता है और प्रतीत होते हुए उस पूर्वके ही देहको, यह अपूर्व देह है, ऐसा देखता है ॥ ४० ॥ तात्पर्य यह कि-मनका दूसरे देहसे ऐक्यभाव होने पर तिससे आत्माको भी इस देहके अभिमानके कारण उत्तम मध्यम अधमपना प्राप्त होता है और फिर जैसे जीव स्वप्नमें मिथ्याभूत अनेकों देहोंको देखने लगता है तो

रन्ताभदाहेतुर्जनोऽसज्जनहृद्यथा ॥ ४१ ॥ नित्यदा ह्यंग भूतानि भवन्ति न भवंति च । कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ॥४२॥ यथाऽर्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः । तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥४३॥ सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् । सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥ ४४ ॥ मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् । म्रियते वामरो भ्रांत्या यथाऽग्निर्दारुसंयुतः ॥४५॥ निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् । वयो मध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥४६॥ एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः । गुणसंगा-

अनेक स्वरूप वाला प्रतीत होता है अथवा जैसे कुपुत्रका पिता वास्तवमें सर्वत्र समान होने पर भी पुत्रके अभिमानसें उसके शत्रु मित्रादिकोंमें भेदभाव रखता है तैसे ही आत्मा भी उस देहके सम्बन्धसे बाहरके शब्दादि विषयोंके सेवनका और भीतरके सुखदुःखादि परिणामोंके भोगनेका कारण होता है ॥ ४१ ॥ हे उद्धवजी ! प्रतिक्षणमें प्राणीमात्रके शरीर उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं तथापि काल के अतिसूक्ष्म होनेसे उसके वेग करके करे हुए वह देहोंके उत्पत्ति नाश अज्ञानी पुरुषोंके ध्यानमें नहीं आते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे कालके द्वारा,अग्निकी ज्वालाओंके परिणाम आदि करके, नदियोंका प्रवाहोंके गमन आदि करके अथवा वृक्षोंका फलोंके रूपान्तर आदि करके क्षण २ में परिवर्त्तन (बदलना) होता है तैसे ही उस ही कालके द्वारा करीहुई सकल प्राणियोंके शरीरोंकी, आयु, अवस्था, तेज, बल, कर्म, कुशलता आदि अनेक प्रकारकी दशा देखनेमें आती है ॥ ४३ ॥ जैसे अग्निकी ज्वाला क्षण २ में नवीन २ उत्पन्न होकर पहिली नष्ट होजाती हैं परन्तु उन पहिली पिछली सब ज्वालाओंके समान होनेके कारण, वही यह दीपक है ऐसा देखने वालोंका ध्यान होता है अथवा जैसे प्रवाहोंका जल क्षण २ में पहिला जाकर नया आने पर यह वही प्रवाह है ऐसा समझा जाता है तैसे ही जिनका आयु व्यर्थ जाता है ऐसे सैंकड़ों मनुष्योंके शरीरोंकी दशा क्षण २ में बदलती है तो भी यह वही पुरुष है ऐसा मिथ्या ही समझना और मिथ्या ही कहना व्यवहारमें चलता है ॥ ४४ ॥ देहमें अहंभाव रखने वाले पुरुषके ही कर्म, जन्म और मरण हैं दूसरेके नहीं हैं ऐसी व्यवस्था कैसे होसकती है ? क्योंकि एक ही घट, एक पुरुषके मतमें है और एक पुरुषके मतमें नहीं है ऐसा कहना नहीं बन सकता, ऐसा कहो सो ठीक नहीं है, क्योंकि–देहाभिमान वाला यह जीवात्मा भी वास्तवमें न उत्पन्न होता है, न मरणको प्राप्त होता है तथापि भ्रान्तिसे, जैसे महाभूतरूप अग्नि, प्रलय काल पर्यन्त रहने वाला होकर भी काष्ठोंके संयोग वियोगोंसे उत्पत्तिको प्राप्त हुआ सा प्रतीत होता है तैसेही आत्मा जन्मरहित होकर भी उत्पन्न हुआसा और अमर होकर भी मरणको प्राप्त हुआसा प्रतीत होता है ॥ ४५ ॥ गर्भमें प्रवेश, तहाँ बढ़ना, जन्म लेना, बालकपना (पाँच वर्ष पर्यंन्त), कुमार अवस्था (सोलह वर्ष पर्यन्त), यौवन (पचास वर्ष पर्यन्त), वयोमध्य (साठ वर्ष पर्यन्त), तदनन्तर वृद्धावस्था और फिर मृत्यु यह शरीरकी नौ अवस्था हैं ॥ ४६ ॥ इस मनके विकारसे प्राप्तहुई

दुपादत्ते क्वचित्क्वचिज्जहाति च ॥ ४७ ॥ आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ । न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ॥ ४८ ॥ तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ । तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ॥ ४९ ॥ प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् । तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ॥५०॥ सत्त्वसंगादृषीन्देवान् रजसा सुरमानुषान् । तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् । एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ॥५२॥ यथाऽम्भसा प्रचलता तरवोपि चला इव । चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते

देहकी छोटी बड़ी अवस्था, प्रकृतिके अज्ञानसे जीवोंको प्राप्त होती हैं परन्तु उनमेंसे एकाद् जीव, परमेश्वरके अनुग्रहसे, 'अवस्थाओं वाले देहका द्रष्टा आत्मा, अवस्थायुक्त नहीं होता है ऐसे विवेक ज्ञानसे' उन अवस्थाओंका त्याग करता है ॥ ४७ ॥ यद्यपि जन्म और मरणके समय वह (देहके जन्म और मरण) अपने देखनेमें नहीं आते हैं तथापि पिताके अन्तकालमें अपनी जंघा पर उनका मस्तक रख कर बैठने वाले पुत्रको उन पिताका मरण देखनेमें आता है और पुत्रका जातसंस्कार करतेमें उसका जन्म देखनेमें आता है तिससे वह अपने देहके जन्म और मरणका भी अनुमान कर लेय इस प्रकार दृश्यपना होनेके कारण उत्पत्तिनाशयुक्त देहोंका द्रष्टा आत्मा उत्पत्ति नाश धर्म वाला नहीं होता है ॥ ४८ ॥ बीजसे वृक्षका जन्म होता है और छेदन आदिसे नाश होता है ऐसा जो जानता है वह द्रष्टा (देखने वाला) जैसे उस वृक्षसे निराला होता है तैसे ही देहके उत्पत्ति नाश देखने वाला जो जीव वह तिस देहसे निराला है इस कारण वह जीव तिस देहमें रहता हुआ भी उसके जन्म मरणसे संयुक्त नहीं होता है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार प्रकृतिके कार्यरूप देहादिकोंसे यथार्थ रीति करके आत्माका विचार न करता हुआ अज्ञानी पुरुष, विषयोंमें आसक्त होता हुआ संसार पाता है ॥ ५० ॥ वह, अनेक प्रकारके कर्मोंसे जिधर तिधरको घुमाया जाकर सत्त्वगुणके समागमसे ऋषियोंका वा देवताओंका जन्म पाता है, रजोगुणके योगसे असुरोंकी वा मनुष्योंकी योनिमें जाता है और तमोगुणके योगसे पिशाचयोनिमें अथवा तिर्यक्योनिमें जन्म पाता है ॥ ५१ ॥ जैसे नाचने वाले वा गाने वाले मनुष्योंको देखने वाला मनुष्य, उनका अनुकरण करता है अर्थात् उन नृत्य गान आदिकोंकी गति और उनके शृङ्गार करुणा आदि रसोंको अपने मनमें लाता है तैसे ही बुद्धिके गुणोंको देखने वाला पुरुष, वास्तवमें अकर्त्ता होकर भी उन गुणोंके बलसे उनके धर्मोंका अपनेमें आरोप करके भ्रम पाता है ॥ ५२ ॥ जैसे तालाव आदिकोंमेंके हिलने वाले जलके कारणसे तिसमें प्रतिबिम्बित हुए तट परके वृक्ष भी हलते हुएसे प्रतीत होते हैं तैसे ही अन्तःकरणके जन्म मरण आदि करके, तिस अन्तःकरणमें तादात्म्यको प्राप्त हुआ आत्मा भी जन्म मरणको प्राप्त होता है ऐसा प्रतीत होता है अपने आप चारों ओरको घूमते हुए पुरुषके नेत्र इन्द्रियसे जैसे चारों ओरकी भूमि भी घूमती हुई सी प्रतीत होती है तैसे ही देहके और आत्माके तादात्म्य होनेके कारण आनन्दादि गुण यद्यपि

भ्रमतीव भूः ॥५३॥ यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा। स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥ ५४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेपि संसृतिर्न निवर्तते। ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेनर्थागमो यथा ॥५५॥ तस्मादुद्धव मा भुंक्ष्व विषयानसदिंद्रियैः। आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ ५६ ॥ क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा। ताडितः सन्निबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ॥५७॥ निष्ठितो मूत्रितो वाज्ञैर्बहुधैवं प्रकंपितः। श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ॥५८॥ उद्धव उवाच। यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर। सुदुःसहमिमं मन्य आत्मन्यसदतिक्रमम् ॥ ५९ ॥ विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी। ऋते त्वद्धर्मनिरतांछांतास्ते चरणालयान् ॥ ६० ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः २२

वास्तवमें आत्माके हैं तथापि मानो वह शब्दादि विषयोंके हैं ऐसे प्रतीत होते हैं ५३ हे उद्धवजी! जैसे स्वप्नमें दीखे हुए अथवा मनोरथके समय मनमें विचारते हुए सब विषय मिथ्या हैं तैसे ही आत्माको प्राप्त हुआ यह विषयानुभवरूप संसार भी मिथ्या है ॥ ५४ ॥ जैसे स्वप्न वास्तवमें सच्चा न होकर भी उस समय विषयोंका चिन्तवन करने वाले पुरुषको तहाँ प्राप्त हुआ अनर्थ (अपने शिरका कटना आदि दुःख) जगनेके प्रयत्नके विना दूर नहीं होता है तैसे ही इस आत्माका अहन्ता ममतारूप संसार, वास्तवमें मिथ्या होकर भी तिसमें कुछ अर्थ न होसका तो तिस अज्ञानदशामें विषयोंका चिन्तवन करनेवाले उसके जन्म मरण नहीं छूटते हैं इस कारण अज्ञानकी निवृत्तिके निमित्त यत्न करना चाहिये ॥ ५५ ॥ इस कारण हे उद्धवजी! तुम अपनी दुष्ट (कभी भी तृप्त न होने वाली) इन्द्रियोंसे विषयोंका सेवन न करो और अपने स्वरूपके अज्ञानसे प्रतीत होने वाला यह सुख दुःखरूपी संसार भ्रम है, ऐसा देखो ॥५६॥ नीच पुरुषोंने जिसका तिरस्कार करा, अपमान करा, हास्य करा, निन्दा करी, ताड़न करा, बन्धन करा और वृत्ति (आजीविका) छीन ली ॥५७॥ और अज्ञानी पुरुषोंने, जिसके शरीर पर थूका अथवा मूत्र करा, ऐसे अनेक प्रकारके परमेश्वरकी निष्ठासे चलायमान करनेको उपाय करा हुआ और कष्ट पहुँचाया हुआ पुरुष आप ही अपना उद्धार करलेय ॥ ५८ ॥ उद्धवजीने कहा कि—हे कहनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णजी! तुम्हारे कहे हुए इस कहनेके उपायको जैसे मैं सहजमें जानजाऊँ तैसा हमसे (मुझसे वा आगेको होनेवाले अपने भक्तों के निमित्त) कहिये, क्योंकि-यह दुष्टपुरुषोंका करा हुआ निन्दा आदि अपराध विद्वान् पुरुषोंके मनको भी सहन होना परमकठिन है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ५९ ॥ हे जगदात्मन्! तुम्हारे धर्ममें मग्न, शान्त और तुम्हारे चरणोंका आश्रय करके रहने वाले पुरुषोंके सिवाय विद्वान् पुरुषोंको भी दुष्टोंका कराहुआ अपराध सहन करना परम कठिन है, क्योंकि—सबका स्वभाव बड़ाबलवान् और दुस्तर है ॥६०॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें द्वाविंश अध्याय समाप्त ॥ २२ ॥

बादरायणिरुवाच । स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः । सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः । दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः २ न तथा तप्यते विद्धः पुमान्बाणैः सुमर्मगैः । यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥ कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव । तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥ ४ ॥ केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः । स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥ ५ ॥ अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया । वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥६॥ ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः । शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥ ७ ॥ दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः । दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥ ८ ॥ तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः । धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन् ! इस प्रकार भगवद्भक्तोंमें मुख्य उद्धवजीके प्रार्थना करेहुए, यादवोंमें मुख्य और जिनका पराक्रम श्रवण करने योग्य है ऐसे भगवान् श्रीकृष्णजी, अपने दास उद्धवजीके वचनका सत्कार करके उनसे कहने लगे॥१॥श्रीभगवान्ने कहा कि-हे बृहस्पतिजीके शिष्य उद्धवजी ! इस लोकमें ऐसा साधु कोई नहीं है कि-दुष्टोंके उच्चारण करेहुए दुर्वचनोंसे बिंधेहुए अपने अन्तःकरणको सावधानीसे शान्त करनेको समर्थ होय ! ॥२॥ क्योंकि-मर्मस्थानमें लगेहुए नीच पुरुषोंके कठोर वचनरूप बाणोंसे पुरुष जैसा दुःख पाता है तैसा मर्मस्थलमें लगेहुए लोहेके सच्चे बाणोंसे बिधा हुआ भी पुरुष संताप नहीं पाता है ॥ ३ ॥ हे उद्धवजी ! इस तिरस्कारको सहन करनेके उपायको जाननेके विषयमें, महापुण्यकारक इतिहास वृद्धपुरुष कहते हैं वह मैं तुमसे प्रश्नके उत्तररूपसे वर्णन करता हूँ, तुम एकाग्रपनेसे ध्यान दो ॥ ४ ॥ दुर्जनोंसे तिरस्कार करे हुए परन्तु अपने कर्मोंके परिपाकको स्मरण करके धैर्य धरनेवाले किसी एक भिक्षुकने (संन्यासीने) गानकरा है, अर्थात् तिरस्कारको सहन करनेके विषयमें बड़ा अच्छा विचार करा है ॥ ५ ॥ अवन्तिदेशोंमें (मालवामें) धनादिसम्पत्तिसे परमसम्पन्न कोई एक ब्राह्मण था,वह खेती व्यापार आदि करता था और कामी,लोभी महाक्रोधी और कदर्य + था ॥६॥ उसने अपने धर्मरहित घरोंमें बान्धवोंका अथवा अतिथियोंका वचनमात्रसे सत्कार नहीं करा, तैसे ही अपना देह भी भोगोंको भोगनेके समय विषयोंसे सन्तुष्ट नहीं करा ॥ ७ ॥ तब ऐसे दुष्टस्वभाववाले उस कदर्यके पुत्र, बान्धव, स्त्री, कन्या और सेवक पुरुष यह सब ही खिन्न होकर उसका प्रियकार्य तो नहीं करते थे परन्तु उलटा द्रोह करने लगे ॥ ८ ॥ इस प्रकार यक्षकी समान केवल रक्षा करनेके धनका संग्रह करनेवाले और धर्मकामरहित होनेके

+ आत्मानं धर्मकृत्यञ्च पुत्रदारांश्च पीडयन् । देवतातिथिभृत्यांश्च स कदर्य इति स्मृतः । अर्थात्, धर्मकार्य, स्त्री,देवता,अतिथि और सेवकोंको त्रास देकर जो वर्त्ताव करता है उसको कदर्य कहते हैं ।

तद् वध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद । अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः॥१०
ज्ञातयो जगृहुः किञ्चित्किञ्चिद्दस्यव उद्धव । दैवतः कालतः किंचिद्ब्रह्मबंधोर्नृपा-
र्थिवात् ॥११॥ स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः । उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्ता-
माप दुरत्ययाम् ॥१२॥ तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः । खिद्यतो बाष्प-
कण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥१३॥ स चाहेदमिदं कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः ।
न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥ १४ ॥ प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय
कदाचन । इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥ १५ ॥ यशो यशस्विनां शुद्धं
श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः । लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम् १६
अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये । नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो

कारण इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट हुए तिस कदर्य ब्राह्मणके ऊपर नित्य करने योग्य पञ्चमहायज्ञके देवता कुपित हुए ॥ ९ ॥ उन पञ्चमहायज्ञोंके अभिमानी देवताओंके अनादरसे, द्रव्य मिलनेकी पूर्त्ति करनेवाला उसका पुण्यांश नष्ट होगया ऐसे उस कदर्यके, खेती व्यापार आदि अनेकों प्रकारके परिश्रमोंसे मिला हुआ धन नष्ट होने लगा ॥ १० ॥ हे उद्धवजी ! उस अधम ब्राह्मणका कुछ धन बान्धवोंने ले लिया, कुछ चोरोंने ले लिया, कुछ घरोंमें आग आदि लग कर नष्ट होगया, कुछ अन्नकी खत्तियोंको जल आदि लग कर नष्ट होगया, कुछ वकील आदिकोंने ले लिया और कुछ राजाने अनेक प्रकारके कारणोंसे छीन लिया ॥ ११ ॥ इस प्रकार धन नष्ट होने पर धर्म और काम भोगोंसे रहित तथा स्वजनोंका उपेक्षा करा हुआ वह ब्राह्मण अपार चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ इस प्रकार द्रव्य नष्ट होनेके कारण लम्बे २ श्वास छोड़ कर नष्ट हुए द्रव्यका चिन्तवन करने वाले सन्तापको प्राप्त हुए और गद्गद कण्ठ हुए तिस ब्राह्मणको एकायकी वैराग्यपूर्वक बड़ा भारी विवेक प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर वह अपने मनमें ऐसा कहने लगा कि-अहो मेरी बड़ी बुरी वार्त्ता हुई, मैंने अपने शरीरको व्यर्थ दुःख दिया, जिस मेरा धन प्राप्त करनेके निमित्त बड़ा भारी परिश्रम था तिस मेरा यह सब द्रव्य, धर्मके निमित्त और कामके निमित्त खर्च न होकर व्यर्थ नष्ट हुआ ॥ १४ ॥ प्रायः कदर्योंका धन कभी भी सुख देने वाला नहीं होता है, इतना ही नहीं किन्तु वह धन, इस लोकमें जीवित रहने पर्यन्त तिसके देहको और मनको ताप देता है और मरण पानेके अनन्तर उसके होतेमें धर्माचरण न करनेके कारण, नरक प्राप्तिका साधन होता है ॥ १५ ॥ जैसे थोड़ा सा भी श्वेत कुष्ट, पुरुषोंके सुन्दर भी रूप को हीन कर देता है तिसी प्रकार थोड़ासा भी लोभ यशस्वी पुरुषके निर्मल यश और गुणी पुरुषोंके स्तुति योग्य गुणोंका नाश करता है ॥ १६ ॥ पहिले धन मिलनेके समय मनुष्योंको त्रास होता है, फिर उस (मिले हुए) को बढ़ानेके समय, रक्षा करनेके समय खर्च होने पर, नाशको प्राप्त होने पर और उपभोगमें आने पर भी त्रास, चिन्ता और भ्रम (धर्ममें अधर्मबुद्धि और उपकारीमें अनुपकारी बुद्धि) यह होते हैं और धनकी प्राप्तिके निमित्त-चोरी हिंसा असत्यभाषण, दम्भ, काम, क्रोध,

नृणाम् ॥१७॥ स्तेयं हिंसाऽनृतं दंभः कामः क्रोधः स्मयो मदः । भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १८ ॥ एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् । तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥ १९ ॥ भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा । एका स्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥ २० ॥ अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः । त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् । तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम् ॥ २२ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् । द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥ देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बन्धूंश्च भागिनः । असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ २४ ॥ व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् । कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥ २५ ॥ कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयाऽर्थेहयाऽसकृत् । कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥२६॥

अभिमान, मद, भेद, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, स्त्री, द्यूत और मद्यपान यह पन्द्रह अनर्थ मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, इस कारण कल्याणकी इच्छा करने वाला पुरुष, अर्थरूपी अनर्थको दूरसे ही त्याग देय ॥ १८ ॥ १९ ॥ भ्राता, स्त्री, माता, पिता, तैसे ही मित्र संबन्धी कि-जो स्नेहके सम्बन्धसे एक मन होकर रहते थे वह भी धनके निमित्त भेदको प्राप्त होते हैं, इतना ही नहीं किन्तु बीस कौड़ीमात्र धनके निमित्त भी वह तत्काल सब ही परस्परके शत्रु होजाते हैं ॥ २० ॥ यह थोड़ेसे भी धनके निमित्तसे सन्ताप पाकर स्पर्धा करते हैं और अतिक्रोधमें भर कर परस्परके स्नेह को एक साथ त्याग कर घरमेंसे निकाल देते हैं अथवा उसी समय परस्पर मार पीट करने लगते हैं ॥ २१ ॥ देवताओंके भी प्रार्थना करने योग्य मनुष्य जन्मको तिसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मण शरीरको पाकर जिसका अनादर करके जो स्वार्थका नाश करते हैं अर्थात् अपने हित (मोक्ष)को नहीं साधते हैं वह परलोकमें नरकगतिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ इस कारण स्वर्ग और मोक्षके द्वार (साधन) इस मनुष्य देहको पाकर कौनसा विचारवान् पुरुष, अनर्थके घर ऐसे धनमें आसक्ति करेगा ? अर्थात् कोई नहीं करेगा ॥ २३ ॥ देवता, ऋषि, पितर, भूत, ज्ञाति और द्रव्यके भागी, भाई बन्धु इनकी और अपनी भी तृप्ति, धन खर्च कर अन्नादिके द्वारा जो नहीं करता है वह यक्षकी समान धनकी रक्षा करने वाला पुरुष, नरकमें जाकर पड़ता है ॥ २४ ॥ ऐसा विचार करके सन्तापको प्राप्त होता हुआ वह भिक्षु कहता है कि-अरे ! रे ! धन पानेके निमित्त व्यर्थ उद्योग करके उन्मत्त हुए मेरा वह धन कि-जिससे धर्मादि सिद्ध होते हैं जाता रहा, आयु जाता रहा और बल भी जाता रहा अब तो बुड्ढा हुआ मैं कौनसा फल साधूँ ? ॥ २५ ॥ अब अपनी समान दूसरे का भी शोक करता है कि-अहो ! इस प्रकारके अनर्थको जानने वाला भी पुरुष, भला कौनसे कारणसे निरन्तर व्यर्थ धन पानेके व्यापारसे क्लेश पाता है ? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि निःसन्देह यह सब ही लोक-किसीकी मायासे अत्यन्त मोहित होरहा है ॥ २६ ॥ मृत्युके घेरे हुए इसको, धन वा धन देने वाले लोक,

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत। मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः। येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥२८॥ सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः। अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥२९॥ तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः। मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत् ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच। इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः। उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥ ३१ ॥ स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः। भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥ ३२ ॥ तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः। दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥ ३३ ॥ केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम्। पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ३४ प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः। अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ॥ ३५ ॥ मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि। यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ॥ ३६ ॥ तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः।

भोग या भोग देने वाले लोक इनसे, तैसे ही बारम्बार जन्म देने वाले कर्मोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २७ ॥ तिससे अब मैं निःसन्देह ऐसा मानता हूँ कि—मेरे ऊपर सकल देवमय भगवान् प्रसन्न हुए हैं, कि—जिनकी कृपासे धननाशके द्वारा मुझे संसार समुद्रसे पार उतारने वाली नौकारूप वैराग्य प्राप्त हुआ है ॥ २८ ॥ तिससे अब तिस वैराग्यको प्राप्त हुआ मैं, यदि कुछ आयुका समय शेष रहा होयगा तो उसके द्वारा अपनेमें ही सन्तुष्ट और धर्मादि साधनोंमें सावधान रह कर अपने शरीरको तपस्या करके सुखाऊँगा ॥ २९ ॥ इस विषयमें त्रिलोकीके स्वामी देवता मुझे अनुमोदन दें अर्थात् विघ्न न करें, देखो-राजा खट्वाङ्गने, एक मुहूर्तमें ही वैकुण्ठलोककी प्राप्ति कर ली है तिससे मुझे थोड़े कालमें सद्गति प्राप्त होयगी ऐसा प्रतीत होता है ॥ ३० ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि हे उद्धवजी ! इस प्रकार अवन्ति देशमें रहने वाले उस ब्राह्मणने, मनसे निश्चय करके अहन्ताममतारूप हृदयकी ग्रन्थिको दूर कर दिया और शान्त तथा मननशील होकर संन्यासी होगया ३१ वह भिक्षुक, मन, इन्द्रियें और प्राणोंको स्वाधीन करके सर्वत्र आसक्तिरहित और अपने प्रभुत्वको न दिखाता हुआ इस पृथ्वीपर विचरता हुआ नगरोंमें और ग्रामोंमें केवल भिक्षाके निमित्त प्रवेश करता था ॥ ३२ ॥ हे उद्धवजी ! तिस अवधूत (मलिन) हुए वृद्ध संन्यासीको देख कर नीच पुरुष, अनेक प्रकारके तिरस्कारके साधनोंसे उसको दुःख देने लगे ॥ ३३ ॥ कितनों हीने उसका त्रिदण्ड छीन लिया, कितनों ही ने पात्र, कमण्डलु और आसन यह छीन लिये, दूसरे कितनों ही ने, जपकी माला, कंथा, चीर, कौपीन आदि छीन लीं ॥ ३४ ॥ कितनों ही ने तो-हे भगवन् ! यह तुम अपने त्रिदण्डादिक लो ऐसा कह कर वह दिखाये और देकर फिर छीन लिये, एक समय वह भिक्षा माँग कर लाया हुआ अन्न नदीके तट बैठ कर भोजन करने लगा, तब वह पापी पुरुष उसके शरीर पर मूत्रोत्सर्ग करते थे, उसके मस्तकऊपर थूकते थे, मौन बैठेहुए को बुलवाते थे और न बोलने पर ताड़ना

बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ॥ ३७ ॥ क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः । क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥ ३८ ॥ अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव । मौनेन साधयत्यर्थं बकवद् दृढनिश्चयः ॥ ३९ ॥ इत्येके विहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च । तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ४० एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् । भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥४१॥ परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः । पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ॥ ४२॥ द्विज उवाच । नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः । मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ॥ ४३ ॥ मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि । शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥ ४४ ॥ अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो

करते थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ कितने ही दूसरे पुरुष, यह चोर है ऐसा कह कर कठोर वचनोंसे उसका तिरस्कार करते थे, कितने ही बाँधो २ ऐसा कह कर उसको रस्सोंसे बाँधते थे ॥ ३७ ॥ कितने ही पुरुष, यह त्रिदण्डीके वेषका ढोंग दिखा कर लोगोंको धोखा देने वाला ठग है, धन नष्ट होजानेसे और कुटुम्बियोंके निकाल देनेके कारण इसने यह वृत्ति (रोजगार) स्वीकार करी है, ऐसा तिरस्कार करके उसकी निन्दा करते थे ॥ ३८ ॥ दूसरे कितने ही पुरुष, अहो ! यह बड़ा बलवान्, धैर्यवान्, और पर्वतकी समान दृढ़ होकर, अपना निश्चय पक्का रख कर मौन धारे हुए बगलेकी समान अपना कार्य साध रहा है, ऐसा कह कर उसका हास्य करते थे, कितने ही तो उसके ऊपर अपनी गुदाके द्वारका वायु छोड़ते थे, कितनों होने, उसको बाँधलिया, दूसरोंने उसको, जैसे खेलनेके तोते मैना आदिको पिंजरोंमें बन्द करके रखते हैं तैसे कारागारमें बन्द करके डाल दिया ॥३९॥४०॥ इस प्रकार उस संन्यासीने, दुर्जनोंके दिये हुए ताडन आदि दुःख, देहसे होने वाले ज्वरादि दुःख और दैवसे होनेवाले सरदी गर्मी आदिके दुःख इन सबोंको अपने प्रारब्धका भोग समझ कर जो २ प्राप्त हुआ उस २ को भोगनेका क्रम प्रारम्भ करा ॥ ४१ ॥ स्वधर्मसे भ्रष्ट करनेकी इच्छा करने वाले दुर्जनोंसे, इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुए परन्तु सात्त्विक धीरज धर कर स्वधर्ममें रहनेवाले तिस भिक्षुकने, यह गाथा गान करी ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणने कहा कि-अहो ! यह सब लोक, देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म वा काल यह मेरे सुख दुःखमें कुछ कारण नहीं हैं किन्तु जो संसारचक्रको फिराता है वह मन ही केवल सुख दुःखोंका कारण है, ऐसा कहते हैं ॥ ४३ ॥ वह अतिबलवान् मन पहिले गुणोंकी वृत्तिको उत्पन्न करता है तब उन गुणोंसे सात्त्विक राजस और तामस ऐसे भिन्न २ कर्म उत्पन्न होते हैं और फिर उन कर्मोंसे उन कर्मोंके अनुसार देव-तिर्यक् मनुष्य आदि जन्म प्राप्त होते हैं इसप्रकार मन संसार चक्रको फिराता है ॥ ४४ ॥ सङ्कल्पविकल्प करने वाले मनके साथ नियन्तारूपसे रहनेवाला भी मुझ जीवात्माका सखा परमात्मा, विद्याशक्तिप्रधान होनेके कारण अहन्ताममतारहित होकर लुप्त न हुए ज्ञानसे केवल जीवके संसारको देखता है

मत्सखं उद्धिवष्टे। मनः स्वलिंगं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसंगतोऽसौ॥४५ दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतानि कर्माणि च सद्व्रतानि। सर्वे मनोनिग्रहलक्षणांता परो हि योगो मनसः समाधिः॥ ४६॥ समाहितं यस्य मनः प्रशांतं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम्। असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः मनोवशेऽन्ये ह्यभवं स्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति। भीष्मो हि देवःसहसः सहीयान् युञ्ज्याद्वशे तं स हि देवदेवः॥ ४८॥ तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित्। कुर्वंत्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः॥४९॥ देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यंधधियो मनुष्याः। एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति॥ ५०॥ जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र

और यह मेरा जीवात्मा तो अपनेमें संसार दिखाने वाले मनको, आत्मरूपसे स्वीकार करके उसके सत्त्वादि गुणोंकी लङ्गनिसे विषयोंका सेवन करता हुआ बूढ़ा होगया है अर्थात् आत्माको यह संसार अविद्याके अध्याससे ही हुआ है, स्वयं नहीं हुआ है,क्योंकि अध्यासरहित ईश्वरको तो सर्वथा संसार है ही नहीं किन्तु अध्यासयुक्त जीवको ही है॥ ४५॥ इससे मनका निग्रह करने पर सब कुछ करा हुआसा होजाता है, नहीं तो सब व्यर्थ है, दान, नित्यनैमित्तिक स्वधर्म, नियम, यम, एकादशी आदि व्रत, शास्त्र पढ़ना और दूसरे भी जितने साधन हैं वह सब ही उपाय मनोनिग्रहका ही अवलम्बन करके रहते हैं, अतः मनका निग्रह होना ही ज्ञानका परम साधन है॥ ४६॥ इससे जिस पुरुषको मन शान्त और वशमें हुआ है, उसको दानादि कार्योंका क्या करना है? कहो (ऐसा दूसरेको उपदेश करने की समान वह ब्राह्मण आप ही अपनेसे कहने लगा) और जिसका मन वशमें न होकर भटकरहा है उसको इन दानादिकोंसे दूसरा कौनसा फल प्राप्त होना है?४७ अन्य इन्द्रियोंके सब देवता मनके वशमें हैं, परन्तु मन दूसरी किसी भी इन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवताके वशमें होकर नहीं रहता है, मन बलवानोंसे भी अधिक बलवान् है और योगियोंको भी भय देने वाला देवता है इस कारण जो पुरुष उसको अपने वशमें करेगा वही देवताओंका भी देवता होयगा, दूसरा कोई नहीं होयगा४८ इस कारण जिसके रागलोभादि वेग असह्य हैं, जो मर्मभेदी है तिस मनोरूप दुर्जय शत्रुको जीते बिना कितने ही मूर्ख पुरुष, इस संसारमें दूसरे कितने ही म , ष्योंके साथमें व्यर्थ वैर करते हैं और मनुष्योंमें ही मित्र, उदासीन शत्रु, यह धर्म मानते हैं॥ ४९॥ केवल मनसे कल्पनामात्र करे हुए इस शरीरको 'यह मैं हूँ' ऐसी बुद्धिसे और पुत्रादिकोंको 'मेरे हैं' ऐसी बुद्धिसे स्वीकार करके अन्धबुद्धि हुए कितने ही मनुष्य, 'यह मैं हूँ और यह दूसरा है' ऐसे भ्रमसे अन्तपाररहित संसार रूप अन्धकारमें भ्रमते हैं५० इस प्रकार मन ही सुख दुःखका कारण है,लोक देवता, आत्मा, ग्रह, कर्म, और काल इनमें कोई भी सुख दुःखका कारण नहीं है यदि लोक सुख दुःखके कारण हों तो उसमें आत्माको क्या अर्थात् सुख दुःखका भोक्तृत्व और सुखदुःखका कर्तृत्व आत्माका नहीं है,एक शरीर दूसरे शरीरको दुःख देकर

हि भौमयोस्तत्। जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ५१
दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत्। यदंगमङ्गेन निहन्यते क्वचित्क्रुद्ध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥ ५२ ॥ आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः। नह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात् क्रुद्ध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥ ५३ ॥ ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै। ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुद्ध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ॥ ५४ ॥ कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोर्वै किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे। देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुद्ध्येत

आप सुख पावे तो वह सुख दुःख शरीरोंके ही हुए, आत्माके नहीं क्योंकि–अमूर्त्त और अक्रिय आत्मा किसी पदार्थका भोक्ता वा कर्त्ता नहीं होसकता, तथापि शरीर का दुःख आत्मामें ही पर्यवसान पाता है, ऐसा कहो तो–परमात्मा कर्त्ता और कर्म इन दोनोंमें एकरूपसे ही है इस कारण वह कोपयुक्त नहीं होता है, परमात्मा कर्त्ता अपने पर ही दृष्टांत दे देखो कि–जब मनुष्य अपनी ही जीभको अपने ही दाँतोंसे चाबता है तो उसकी पीड़ा होने पर वह किसके ऊपर क्रोध करे ? यदि दाँतोंके ऊपर क्रोधित होकर उनको ताडना करेगा तो अपनेको ही पीड़ा होयगी ॥ ५१ ॥ यदि इन्द्रियोंके देवता दुःखके कारण हों तो भले ही हों, परन्तु उसमें आत्माका क्या ? कुछ नहीं; क्योंकि–उस सुखदुःखका कर्त्तापन और कर्मपन देवताओंका ही है अर्थात् हाथसे मुख पर थप्पड़ लगाने पर अथवा मुखसे हाथको चाब लेने पर वह कर्त्तापन और कर्मपन, हाथके और मुखके अभिमानी देवता जो अग्नि और इन्द्र इनका ही है तहाँ रहनेवाले निरहङ्कारी आत्माका नहीं है और देवताओं का सब ही देहोंमें अभेद होनेकेकारण उनके ऊपर क्रोध करना बन नहीं सकता, देखो–जब कभी पुरुष अपने शरीरमें किसी हाथ आदि अङ्गसे दूसरे चरण आदि अंगको ताड़न करता है तब वह किसके ऊपर क्रोध करता है ? किसी के ऊपर नहीं ॥ ५२ ॥ सुख दुःखादिरूप परिणाम आत्माके होते हैं ऐसा मान कर, आत्मा को सुख दुःखका कारणरूप माना जाय तो यह सुख दुःख आत्माके ही स्वभाव हुए, और विचार कर देखने पर आत्मासे जुदा कुछ भी नहीं है, यदि कुछ दूसरा प्रतीत भी होय तो वह भ्रांतिसे कल्पित होनेके कारण मिथ्या है, ऐसे, आत्मासे दूसरा वास्तवमें सुख दुःख है ही नहीं तो किस कारणसे क्रुद्ध होय ? ॥ ५३ ॥ यदि कहो कि–सुख दुःखादिके निमित्त सूर्यादि ग्रह हैं तो–उनसे जन्म-रहित आत्माका क्या होसकता है ? वह ग्रह (जन्म लेने वाले देहके ही सम्बन्ध होनेसे जन्मलग्नसे आठवें बारहवें आदि होने पर) उत्पन्न होनेवाले देहको ही सुख दुःख देनेके कारण होते हैं, और आकाशमेंके ग्रहोंसे तिस आकाशमेंके ग्रहको ही तृतीय पञ्चम आदि स्थानमें एक चरण दूसरे चरण आदि दृष्टियोंसे पीड़ा कही है उनकी दृष्टिके अगोचर द्वितीय षष्ठ आदि स्थानमें नहीं कही है इस कारण उनकी लग्न में उत्पन्न होनेवाले देहमें ही उस लग्नके अभिमानसे उनकी पीड़ा होती है आत्मा तो उन ग्रहोंसे और देहसे निराला है इस कारण किसके ऊपर क्रोध करे ॥ ५४ ॥

कस्मै न हि कर्ममूलम् ॥ ५५ ॥ कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ । नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ॥५६॥ न केनचित्क्वापि कथञ्चनास्य द्वन्द्वोपरागः परतः परस्य । यथाहमः संसृतिरूपिणः स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतैः ॥ ५७ ॥ एतां समास्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः । अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच । निर्विद्य नष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् । निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥५९॥ सुखदुःखप्रदो नान्यः

यदि कर्मको सुख दुःखका कारण कहो तो उसमें भी आत्माको क्या ?, वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो कर्म कुछ है ही नहीं फिर वह कारण ही क्या होगा ?, क्योंकि-कर्म वा कर्मसे होने वाले सुख आदि, जब एकमें ही जड़ता और चेतनता दोनों होयँ तो जड़ताके कारण विकारीपन होसकै और चेतनाके कारण हितका अनुसंधान तथा प्रवृत्त होय सो देह तो जड़ है इससे उसकी कर्ममें प्रवृत्ति नहीं होसकती और पुरुष (आत्मा) तो शुद्ध ज्ञानस्वरूप है इस कारण उसको विकारीपन नहीं होसकता, इस प्रकार सुख दुःखका मूलभूत कर्म ही जब सिद्ध नहीं होसकता तो पुरुष कर्मके ऊपर किस कारणसे क्रोध करे ? ॥५५॥ यदि कालको सुख दुःखोंका कारण कहो तो इसमें भी आत्माको क्या है ? क्योंकि-काल परमात्माका अंश ही है, अपने अंशसे अपनेको पीड़ा नहीं होती है, देखो जैसे अग्निकी लपटसे अग्निको ताप तथा हिमके कणसे हिमको ठण्ड नहीं होती है इसकारण कालसे होने वाले सुख दुःखों करके आत्माको किसी प्रकारका क्लेश नहीं होसकता और यह कालको अंशकी कल्पना करना तो अलग रहे परन्तु प्रकृतिसे पर आत्माको सुखदुःखादिका सम्बन्ध ही नहीं है ॥ ५६ ॥ इस प्रकार लोक देवता आदि प्रसिद्ध सुख दुःखोंके छहों कारणोंका निरास करा, अब यदि कोई इनसे दूसरा ही कारण बतावे करे तो वह नहीं होसकता, यह वर्णन करते हैं—जैसे संसारका प्रकाश करने वाले अहङ्कारको सुख दुःखादिकोंका सम्बन्ध है तैसा प्रकृतिसे पर इस आत्माको, किसीके भी हाथसे किसी भी कालमें और किसी प्रकार भी सुख दुःखादिकोंका सम्बन्ध नहीं होसकता, सारांश यह है कि-अहंकारके अध्याससे ही आत्मामें सुख दुःखादिका सम्बन्ध भासता है, वास्तवमें कुछ भी नहीं है ॥ ५७ ॥ इस कारण पूर्वकालके बड़े २ ऋषियोंकी स्वीकार करी हुई इस परमात्मनिष्ठाको स्वीकार करके मैं, मोक्षदाता भगवान्की चरण सेवा से ही अन्त पार रहित भी संसाररूप अन्धकारको तरजाऊँगा ॥ ५८ ॥ श्रीभगवान् ने कहा कि-हे उद्धवजी ! इस प्रकार धन नष्ट होने पर भी खेदरहित तिस मनन करनेवाले ब्राह्मणने, विरक्त होकर और संन्यास धारकर पृथ्वी पर विचरते समय दुर्जनोंके तिरस्कार करने पर भी ईश्वरके अनुसन्धानरूप अपने धर्मसे न डिगकर ऐसी गाथा गाई है ॥ ५९ ॥ इससे सिद्ध होता है कि-जीवको सुखदुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है, मित्र,शत्रु और उदासीन आदि सब प्रकारका ही संसार जीव

पुरुषस्यात्मविभ्रमः। मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृतः ॥ ६० ॥ तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया। मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ॥६१॥ य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः। धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० एका० भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच । अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम्। यद्विज्ञाय पुमान् सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ॥ १ ॥ आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थ एकमेवाविकल्पितम्। यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥ २ ॥ तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम्। वाङ्मनोगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥ ३ ॥ तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका। ज्ञानं त्वन्यतमो भावः पुरुषः सोऽभिधीयते ॥ ४ ॥ तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः। मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥ ५ ॥ तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः। ततो विकुर्वतो जातोऽहंकारो यो विमोहनः ॥ ६ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत्। तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं

का अज्ञानसे ही हुआ है और वह केवल अपने मनकी भ्रान्तिका ही करा हुआ है, सच्चा नहीं है ॥६०॥ इस कारण हे तात! उद्धवजी! मुझमें लगीहुई बुद्धिसे युक्त तुम, सकल प्रयत्नोंसे मनका विषयोंसे निग्रह करके उस मनको मुझमें लगाओ, इतनी ही योगकी परम उन्नति है ॥६१॥ मनका निग्रह करनेमें अशक्त होय तो भी जो पुरुष, एकाग्रचित्त होकर भिक्षुककी गाई हुई इस ब्रह्मनिष्ठाको धारण करता है अथवा सुनता वा दूसरेको सुनाता है वह सुखदुःखादि द्वन्द्वोंसे कभी तिरस्कार नहीं पाता है ॥६२॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें त्रयोविंश अध्याय समाप्त

श्रीभगवानने कहा कि-हे उद्धवजी! अब मैं तुमसे पूर्वके कपिलादि आचार्यों करके निश्चय करेहुए सांख्यशास्त्रका वर्णन करता हूँ, कि-जिस सांख्यशास्त्रको जानलेने पर पुरुष तत्काल भेदबुद्धिसे होनेवाले सुखदुःखादि भ्रमका त्याग करता है ॥ १ ॥ यह देखनेवाला और दीखनेवाला इत्यादि सब ही प्रपञ्च, पहिले प्रलयके समय तैसे ही सत्ययुगमें और जब पुरुष विवेकमें निपुण थे तब भेदशून्य एक ज्ञान रूप ही था ॥ २ ॥ फिर वह केवल, भेदरहित और सत्य ऐसा ज्ञानरूप ब्रह्म ही, जैसे वाणीकी और मनकी प्रवृत्ति होय तैसे, मायाका विलासरूप दृश्य और उसका प्रकाशरूप द्रष्टा ऐसे दो प्रकारका हुआ ॥ ३ ॥ उन दो अंशोंमें जो एक दृश्य पदार्थ वह कार्यकारणरूप प्रकृति है और जो ज्ञानरूप दूसरा द्रष्टा तिसको पुरुष कहते हैं४ फिर उस पुरुषरूपके प्रेरणा करेहुए मुझ परमेश्वरसे क्षोभित करी हुई प्रकृतिसे सत्त्व रज और तम यह तीन गुण उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उन गुणोंसे सूत्र (क्रियाशक्तियुक्त) पहिला विकार उत्पन्न हुआ, तिस सूत्रसे युक्त महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ, फिर उस विकार पानेवाले महत्तत्त्वसे जीवके देहादिरूप अध्यासका कारण अहङ्कार उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥ वह अहंकार सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका हुआ, वह चैतन्य और जडका ग्रन्थिरूप होकर शब्दादि पाँच विषयोंका, दश इन्द्रियोंका और

चिद्‌चिन्मयः ॥ ७ ॥ अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च । तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैकृतात् ॥ ८ ॥ मया सञ्चोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः । अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ । मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥ १० ॥ सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् । लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवःस्वरिति त्रिधा ॥ ११ ॥ देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् । मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥ १२ ॥ अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ १३ ॥ योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः । महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥ १४ ॥ मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् । गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥ १५ ॥ अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति । सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १६ ॥ यस्तु यस्यादिरन्तश्च

मनसहित इन्द्रियोंके देवताओंका कारण है ॥ ७ ॥ शब्दादि तन्मात्राओंके कारण तिस तामस अहंकारसे पृथिव्यादि पञ्चमहाभूतरूप कार्य उत्पन्न हुआ, राजस अहंकारसे दश इन्द्रियें हुईं और सात्त्विक अहंकारसे दिशा आदि दश और चन्द्रमा यह ग्यारह उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ मेरे प्रेरणा करेहुए यह सब महत्तत्त्वादि पदार्थ, एक साथ मिलकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेमें समर्थ हुए तब उनसे विराट्‌रूपसे मेरा उत्तम क्रीड़ाका स्थान एक अण्ड उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥ जलके भीतर रहे हुए उस अण्डमें, मैं श्रीनारायणरूप लीलाविग्रहसे रहा, फिर मेरी नाभिमेंसे लोकोंका कारण एक कमल उत्पन्न हुआ और उसमेंसे चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रकट हुए ॥ १० ॥ रजोगुणयुक्त और जगत्‌के स्रष्टा ब्रह्माजीने, मेरे अनुग्रहसे तपस्या करके इन्द्रादि लोकपालों सहित सब लोकोंको रचा, उनके भूलोक (अतल आदि सहित), अंतरिक्षलोक और स्वर्गलोक (स्वर्गसे सत्यलोक पर्यन्त तीन लोक) ऐसे भेद हुए ॥ ११ ॥ स्वर्गलोक देवताओंके रहनेका स्थान, अन्तरिक्षलोक भूत प्रेत पिशाचादिकोंके रहने का स्थान भूर्लोक मनुष्योंके रहनेका स्थान और तीनों लोकोंके परली ओर जो महर्लोक आदि लोक वह भृगु आदि महर्षियोंके रहनेके स्थान हुए ॥ १२ ॥ तैसे ही भूमिके नीचेके अतल आदि लोक असुरोंके और नागोंके रहनेका स्थान, उन इकले समर्थ ब्रह्माजीने ही उत्पन्न करे, त्रिगुणमय कर्म करने पर जो गति प्राप्त होती हैं वह सब त्रिलोकीमें ही उत्पन्न करी है ॥ १३ ॥ केवल योग, तप और संन्यासका आचरण करने वालोंको ही, उनके धर्मोंकी कमी अधिकताके अनुसार महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक इनके विषें निर्मलगति मिलती है और भक्तियोग करने वालेको वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ इनमें वैकुंठलोककी गतिको छोड़ शेष सब गति चञ्चल हैं, क्योंकि-कालशक्तिरूप और कर्मानुसार फल देने वाले मुझ परमेश्वरकी शक्तिसे कर्मोंमें लगाहुआ यह जगत्, गुणोंके प्रवाहरूप संसार में कभी सत्यलोक पर्यन्तकी उत्तम गतियोंको पाता है और कभी स्थावर पर्यन्त नीच योनियोंको पाता है ॥ १५ ॥ छोटे, बड़े, दुबले, मोटे, जो पदार्थ

स वै मध्यं च तस्य सन्। विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ॥ १७ ॥ यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुते परम्। आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते १८ प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः। सतोऽभिव्यंजकः कालो ब्रह्म तत्त्रितयं त्वहम् ॥ १९ ॥ सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः। महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ॥ २० ॥ विराण्मयासाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः। पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ॥ २१ ॥ अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते। धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ॥ २२ ॥ अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे। लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते ॥२३॥ रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोपि चांबरे। अम्बरं शब्दतन्मात्रं इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ॥ २४ ॥ योनिर्वै

प्रसिद्ध हैं वह सब ही प्रकृति और पुरुष इन दोनोंसे संयुक्त हैं॥ १६ ॥ जिस कार्यका जो मूल कारण होता है और जो लयस्थान होता है वही मध्यको अवस्थामें भी होता है, यह वार्त्ता मृत्तिका सुवर्ण आदिमें प्रसिद्ध है यदि कहो कि फिर यह मिथ्याभूत कार्य सिद्ध सृष्टि किस लिये कही है ? तो यह सृष्टि आदि व्यवहार, व्यवहारके निमित्त है अर्थात् मेरी अनेकों लीलाओंकी सिद्धिके निमित्त है, जैसे सुवर्ण के कड़े कुण्डल आदि पदार्थ अथवा जैसे मृत्तिकाके घड़े सकोरे आदि पदार्थ केवल व्यवहारके निमित्त ही भिन्न २ होकर वास्तवमें वह सुवर्णरूप वा मृत्तिकारूप ही होते हैं तिसी प्रकार सकल ही जगत्, केवल व्यवहारके निमित्त भिन्नरूप है और वास्तवमें परमेश्वररूपही है॥१७॥जैसे मट्टीका पिण्डा, मृत्तिकाको लेकर आप निमित्तरूप होता हुआ घड़ेको उत्पन्न करता है तैसे ही जिस रूपको, उपादान कारणतासे स्वीकार करके, पूर्वके महत्तत्त्वादि पदार्थ आगेके अहंकारादि पदार्थोंको उत्पन्न करते हैं वही रूप सत्य है,फिर 'मृत्तिका ही सत्य है' ऐसा श्रुतिने क्यों कहा ऐसा कहो तो–जिसमें पदार्थमात्रका आदि और अन्त होता है वह वस्तु सत्य है ऐसा श्रुतिने परम कारणआत्माकी सत्यता कहनेके निमित्त दरसाया है१८ इस जगत्का उपादान कारण जो प्रकृति और तिसका अधिष्ठाता आधार जो परमपुरुष तैसे ही गुणोंके क्षोभसे प्रकट हुआ जो काल है यह तीनों ब्रह्मरूप मैं ही हूँ१९ जीवको भोग देनेके निमित्त प्रकट हुई यह बड़ी भारी सृष्टि, स्थितिका अन्त होनेपर्यंत पिता पुत्र आदि रूपसे चल रही है और यह स्थिति जबतक परमेश्वरका अवलोकन है तब तक ही है ॥ २० ॥ जिसमें लोकोंके अनेकों सृष्टिके प्रकार और लय कल्पना करे जाते हैं ऐसा यह ब्रह्मांड, कालरूप मेरे व्याप्त कर लेने पर,भुवनोंसहित पञ्चमहाभूतोंमें अंशरूपसे मिल कर लय पानेको प्रवृत्त होता है ॥ २१ ॥ तहाँ पहिले सौ वर्षपर्यन्त वर्षा न होने पर, सब प्राणियोंके शरीर जिस अन्नसे बढ़े हैं तिस अन्नमें ही लीन होजाते हैं तब वह अन्न बीजमात्र शेष रहता है फिर बीज भूमिमें लीन होते हैं, भूमि गन्धगुणमें लय पाती है ॥ २२ ॥ वह गन्ध जलमें लय पाता है, वह जल अपने गुणरसमें लय पाते हैं, वह रस तेजमें लय पाता है, वह तेज रूपमें लीन होता है ॥ २३ ॥ रूप वायुमें और वह वायु स्पर्शमें लय पाता है और वह स्पर्श

कारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे। शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ॥२५॥ स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणसत्तमः। तेऽव्यक्ते संप्रलीयंते तत्काले लीयतेऽव्यये ॥२६॥ कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे। आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ॥२७॥ एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः। मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥ २८ ॥ एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः। प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

श्रीभगवानुवाच। गुणानामसम्मिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत्। तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥ १ ॥ शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः। तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः ॥ २ ॥ काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशी-

---

भी आकाशमें लय पाता है, आकाश शब्दतन्मात्रामें और इन्द्रियें अपने प्रवर्त्तक देवताओंमें लय पाती हैं ॥ २४ ॥ और हे उद्धवजी ! वह देवता अपने २ नियन्ता मनमें लय पाते हैं, वह मन देवताओं सहित सात्त्विक अहंकारमें लय पाता है, आकाश का शब्दगुण तामस अहंकारमें लय पाता है, वह अहंकार महत्तत्त्वमें लीन होता है ॥ २५ ॥ ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसहित वह महत्तत्त्व अपने कारणरूप गुणोंमें लीन होता है, वह गुण मायामें लीन होते हैं, वह माया कालके वशमें होनेके कारण जिसकी वृत्ति लीन हुई हैं ऐसे कालमें लीन होती है अर्थात् कालके साथ एकता को पाकर रहती है ॥ २६ ॥ वह काल मायाके प्रवर्त्तक जीवके विषैं (पुरुषमें) लय पाता है, जीव अपनी प्रकृतिके लीन होनेके कारण दूसरे किसी प्रतियोगी (जिस में लीन होय ऐसे पदार्थ) के न होनेसे मुझ पूर्ण सद्रूप आत्मामें एकरूप होकर रहता है, वह मैं आत्मा केवल निज स्वरूपमें ही रहता हूँ, किसी दूसरेमें लय नहीं पाता हूँ, किन्तु ऐसा मैं, केवल जगत्के उत्पत्तिलयोंसे अधिष्ठानता करके और अवधिरूपसे जाना जाता हूँ ॥ २७ ॥ इस प्रकार हृदयमें विचार करने वाले मनुष्य के मनमेंका भेदभावके कारणका भ्रम भला कैसे दूर होयगा, ऐसा कहो तो जैसे आकाशमें सूर्यका उदय होने पर अन्धकार कुछ भी नहीं रहता है तैसेही वह भ्रम किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहेगा ॥ २८ ॥ हे उद्धवजी ! भूत भविष्यको जानने वाले मैंने तुमसे यह सन्देहकी गाँठको काटने वाली सांख्यशास्त्रकी विधि, जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके वर्णनके द्वारा निरूपण करी है ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें चतुर्विंश अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ छ ॥ *

श्रीभगवान्ने कहा कि-हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! भिन्न २ सत्त्वादि गुणोंमें जिस गुणसे यह पुरुष जैसे स्वभावका होता है सो, यह वर्णन करने वाले मुझसे तुम सुनो ॥ १ ॥ शम, दम, सहनशीलता, विवेक, अपने धर्ममें निष्ठा, सत्य, दया, पूर्वापरका स्मरण, संतोष, खर्चीला स्वभाव, विषयोंमें वैराग्य, गुरु आदिके वाक्योंपर विश्वास, अनुचित कर्मसे लज्जा, सरलता, विनय, आत्मप्रीति यह सत्त्वगुणकी वृत्तियें हैं ॥ २ ॥ स्वर्गादिकोंकी इच्छा, यज्ञादि व्यापार, मद, लाभ होने पर भी

मिदा सुखम्। मदोत्साहो यशःप्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ॥ ३ ॥ क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याञ्चा दंभः क्लमः कलिः। शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ॥ ४ ॥ सत्त्वस्य रजसश्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः। वृत्तयो वर्णितप्रायाः सन्निपातमथो शृणु ५ सन्निपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः। व्यवहारः सन्निपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ॥६॥ धर्मे चार्थे च कामे च यदाऽसौ परिनिष्ठितः। गुणानां सन्निकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥ ७ ॥ प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे। स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥८॥ पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः। कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसायुतम् ॥ ९ ॥ यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः। तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव च ॥ १० ॥ यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः। तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥ ११ ॥ सत्त्वं

असंतोष, गर्व, धनादिकी इच्छासे देवादिकोंकी प्रार्थना, भेदबुद्धि विषयभोग, मदसे युद्धादिमें उत्कण्ठा, अपनी प्रशंसामें प्रीति, दूसरेका हास्य करना, अपना पराक्रम प्रसिद्ध करना, और बलसे उद्योग करना यह रजोगुणकी वृत्तियें हैं ॥ ३ ॥ क्रोध, लोभ, झूठ बोलना, हिंसा, याचना, दम्भ, परिश्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख दीनता, निद्रा, आशा, भय और जड़ना यह तमोगुणकी वृत्ति हैं ॥ ४ ॥ ऐसी सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंकी बहुत सी वृत्तियें क्रमसे मैंने कही हैं और भी जो होयँ उनको इनकी समान ही जानना, अब तीन गुणोंकी वृत्तियोंके मेलको कहता हूँ सुनो ॥ ५ ॥ हे उद्धवजी ! मैं शान्त, कामी और क्रोधी हूँ इत्यादि तैसे ही मुझे शान्ति, काम और क्रोध हैं इत्यादि जो बुद्धि होती है वह गुणोंका मेल है, इससे मन, विषय इन्द्रियें और प्राणोंसे युक्त जो व्यवहार वह सत्त्वरजस्तमोगुणात्मक होनेसे तिन सत्त्वादिकोंका मेल ही है ऐसा समझो ॥ ६ ॥ जब यह पुरुष, धर्म, अर्थ और काममें आसक्त होता है तब यह सत्त्वरजस्तमोगुणोंका श्रद्धा, प्रीति और धनकी प्राप्ति करा देने वाला मेल है ऐसा जानना ॥ ७ ॥ सकाम धर्ममें जब पुरुषकी निष्ठा उत्पन्न होती है तैसे ही जब पुरुष गृहस्थाश्रममें आसक्त रहता है और तदनन्तर नित्य नैमित्तिक रूप स्वधर्ममें आसक्त रहता है तब उसको गुणोंका मेल ही समझना, क्योंकि-सकाम धर्म, घरमें आसक्ति और स्वधर्म यह रज तम और सत्त्वगुणरूपी हैं ॥ ८ ॥ पुरुष, शम आदि वृत्तियोंसे सत्त्वगुणयुक्त है, कामादि वृत्तियोंसे रजोगुण युक्त और क्रोधादि वृत्तियोंसे तमोगुणयुक्त है ऐसा अनुमान करे ॥ ९ ॥ जब पुरुष वा स्त्रियें निष्कामपनेसे निजधर्मका आचरण करके प्रेम भक्तिके साथ मेरा आराधन करते हैं तब उनको सत्त्वगुणका स्वभाव प्राप्त हुआ है ऐसा समझना ॥ १० ॥ जब पुरुष विषय सुखोंकी अपेक्षा रख कर अपने कर्मसे मेरा आराधन करता है तब उसको रजोगुणके स्वभावका समझे और जब हिंसाकी इच्छा रख कर मेरी आराधना करता है तब वह तमोगुणी स्वभाव वाला है ऐसा समझे ॥ ११ ॥ सत्त्व, रज और तम यह तीनों गुण जीवके ही हैं, मेरे नहीं हैं, क्योंकि-वह जीवके ही चित्तमें प्रकट होते हैं, जिन गुणोंसे वह जीव देह इन्द्रियादि

रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे । चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबद्ध्यते यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् । तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ॥ १३ ॥ यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः संगं भिदा बलम् । तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ॥ १४ ॥ यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढं लयं जडम् । युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाशया ॥ १५ ॥ यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः । देहेऽभयं मनोसंगं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥ १६ ॥ विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् । गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रांतं रज एतैर्निशामय ॥ १७ ॥ सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् । मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥ १८ ॥ एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते । असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥ १९ ॥ सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् । प्रस्वापं तमसा जन्तोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ २० ॥ उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः ।

विषयोंमें आसक्ति करने लगते ही बँध जाता है, मैं तो गुणोंका नियन्ता होकर सृष्टि आदि करता हूँ तथापि कहीं आसक्त न होनेके कारण नित्यमुक्त हूँ इसकारण जीवोंमें और मुझमें बड़ा अन्तर है ॥ १२ ॥ इस प्रकार मिश्र अमिश्र गुणोंके कार्य दिखा कर अब एक २ गुणकी अधिकताके कार्य दिखाते हैं—जब प्रकाशक स्वच्छ और शान्त सत्त्व गुण दूसरे दो गुणोंको जीत कर आप बढ़ता है तब यह पुरुष, सुख, धर्म, ज्ञान, शम, दम आदि धर्मोंसे युक्त होता है ॥ १३ ॥ जब सङ्ग तथा भेद का कारण और प्रवृत्ति स्वभाव वाला रजोगुण, दूसरे दो गुणोंको दबा कर आप बढ़ता है तब पुरुष, दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मीसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ जब विवेकसे भ्रष्ट करने वाला, आवरणरूप और अनुद्योगरूप तमोगुण, दूसरे दो गुणों को दबा कर आप बढ़ता है तब पुरुष, शोक, मोह, निद्रा, हिंसा और आशाओंसे युक्त होता है ॥ १५ ॥ जब चित्त स्वच्छ होता है, इन्द्रियोंका उपराम होता है, देहमें अभय प्रतीत होता है, और मन संगरहित होता है तब मेरी प्राप्तिके आश्रय सत्त्वगुणको बढ़ा हुआ समझो ॥ १६ ॥ जब विषय चिन्तवनरूप क्रियासे पुरुषकी बुद्धि चलायमान होती है, ज्ञानेन्द्रियें विषयासक्त होती हैं, कर्मेन्द्रियें अस्वस्थ होती हैं और मन चञ्चल होता है तब इन लक्षणोंसे रजोगुणको बढ़ा हुआ जाने ॥ १७ ॥ जब सुषुप्ति आदिमें लीन होता हुआ चित्त, चिदाकाररूपसे परिणाम पानेको असमर्थ होकर लीन होता है, सङ्कल्पविकल्पात्मक मन भी लय पाता है और अज्ञान तथा ग्लानता उत्पन्न होते हैं तब तमोगुणको बढ़ा हुआ जानो ॥ १८ ॥ हे उद्धवजी ! सत्त्वगुण बढ़ा हुआ होने पर देवताओंका बल बढ़ता है, रजोगुण बढ़ा हुआ होने पर असुरोंका और तमोगुण बढ़ा हुआ होने पर राक्षसोंका बल बढ़ता है ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणकी उन्नतिसे पुरुषकी जागृत अवस्था जानना, रजोगुणकी उन्नतिसे स्वप्नावस्था तथा तमोगुणकी उन्नतिसे सुषुप्त्यवस्था जाननी और तुरीय अवस्था तो तीनों अवस्थाओंमें व्याप्त होकर रहने वाला आत्मरूप है ॥ २० ॥ वेदमें कहा अनुष्ठान करने वाले मनुष्य, सत्वगुणके द्वारा

तमसाधोऽध आमुख्याद्व्रजसांऽनरचरिणः ॥ २१ ॥ सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः । तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥ २२ ॥ मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् । राजसं फलसंकल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥२३॥ कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् । प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते । तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥ २५ ॥ सात्त्विकः कारकोऽसंगी रागांधो राजसः स्मृतः । तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥ २६ ॥ सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी । तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा ॥ २७ ॥ पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् । राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाशुचि २८ सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थन्तु राजसम् । तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपा-

ब्रह्मलोक पर्यन्त ऊँचे २ लोकोंमें गमन करते हैं, तमोगुणके द्वारा स्थावर पर्यन्त नीच २ योनियोंमें जन्म पाते हैं और रजोगुणसे फिर मनुष्य ही होते हैं ॥ २१ ॥ सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय मरणको प्राप्त हुए मनुष्य स्वर्गमें जाते हैं, रजोगुणकी उन्नतिके समय मरणको प्राप्त हुए मनुष्य, मनुष्यलोकमें ही जाते हैं और तमोगुणकी वृद्धिके समय मरणको प्राप्त हुए पुरुष, नरकमें जाते हैं और निर्गुण हुए मनुष्य जीवितदशामें ही मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ मेरी प्रीति प्राप्त होनेकी इच्छासे करा हुआ वा केवल दासभावसे करा हुआ जो अपने वर्ण तथा आश्रमको कहा हुआ कर्म है वह सात्विक है, फलकी कामना रखकर करा हुआ कर्म राजस है और हिंसाके उद्देश्यसे करा हुआ वा अतिहिंसायुक्त कर्म तामस है ॥ २३ ॥ आत्मा देहसे निराला है ऐसा ज्ञान सात्त्विक है आत्मा देहसे भिन्न नहीं है ऐसा ज्ञान राजस है और बालककी समान वा गूँगेकी समान जो विवेक शून्य ज्ञान वह तामस है, तैसे ही मेरे स्वरूपका जो ज्ञान वह निर्गुण है ॥ २४ ॥ एकान्त वनमें रहना सात्विक है, गाँव वा नगरमें रहना राजस है, जुए आदिके स्थानमें रहना तामस है और मेरे मन्दिरमें रहना निर्गुण है ॥ २५ ॥ जो आसक्तिरहित होकर कर्म करता है वह सात्त्विक है जो अति आसक्तिसे अन्धा होकर कर्म करता है वह राजस है और जो पूर्वापरके स्मरणसे रहित होकर कर्म करता है वह तामस है तथा जो केवल मेरे आश्रयसे कर्म करता है वह कर्त्ता निर्गुण है ॥ २६ ॥ परमेश्वरमें स्वाभाविक श्रद्धा सात्त्विक है, कर्मकी श्रद्धा तो राजस है और अधर्ममें जो श्रद्धा वह तामस है तथा मेरी सेवामें जो श्रद्धा वह निर्गुण है ॥ २७ ॥ हितकारी, पवित्र और परिश्रमके विना प्राप्त हुआ जो भक्ष्यभोज्य आदि भोजन वह सात्त्विक माना है, भोगतेमें इन्द्रियोंको सुख देने वाला जो तीखा खट्टा आदि आहार वह राजस है, दीनता तथा अपवित्रता दिखाने वाला जो आहार वह तामस है और मुझे अर्पण करे हुए नैवेद्यका जो आहार वह निर्गुण है ॥ २८ ॥ देहसे निराला आत्मासे प्राप्त होने वाला सुख सात्त्विक है, विषयोंसे होने वाला सुख राजस है मोह वा दीनतासे होने वाला सुख तामस है और तत्त्व पदार्थके विवेकसे होने

भयम् ॥२९॥ द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः । श्रद्धाऽवस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥ ३० ॥ सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः । दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्धया वा पुरुषर्षभ ॥ ३१ ॥ एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः । भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम् । गुणसंगं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ॥ ३३ ॥ निःसंगो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः । रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्वसंसेवया मुनिः ॥३४॥ सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शांतधीः । सम्पद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् ॥ ३५ ॥ जीवोजीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसम्भवैः । मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीभगवानुवाच । मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः । आनन्दं पर-

---

वाला सुख निर्गुण है ॥ २९ ॥ इस प्रकार पवित्र आहार आदि पदार्थ, सुखरूप फल, दूसरे दो गुणोंको जीतने आदिका काल, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, श्रद्धा, जाग्रत् आदि अवस्था, देवादिरूपःआकृति और स्वर्गादिकी प्राप्तिरूप निष्ठा यह सब ही वस्तु त्रिगुणमय हैं ॥ ३० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! केवल कही हुई वस्तु ही त्रिगुणात्मक हैं ऐसा नहीं है किन्तु प्रकृति पुरुषोंका आश्रय करे हुए जितने पदार्थ देखनेमें सुननेमें और विचार करनेमें आते हैं वह सब गुणोंके कार्य ही हैं ॥ ३१ ॥ हे उद्धवजी ! जीवको जितने देवमनुष्यादि जन्म प्राप्त होते हैं, वह सब गुण और कर्मोंके निमित्त होते हैं, इस कारण जो जीव चित्तसे होने वाले इन गुणोंको जीतता है वह जीव, भक्तियोगसे मुझमें निष्ठा पाकर मोक्ष पानेके योग्य होता है ३२ इस कारण जिसमें ज्ञान और विज्ञान होनेका सम्भव है ऐसा यह मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर पुरुष, गुणोंका संग छोड़ कर मेरा ही सेवन करें ॥ ३३ ॥ विवेकी पुरुष, विषयोंकी आसक्तिसे रहित, जितेन्द्रिय, मननशील, सावधान और शान्तबुद्धि होकर मेरी भक्ति करे, तिस सात्विक पदार्थोंके सेवनसे सत्वगुणकी वृद्धि करके रजोगुण और तमोगुणको जीते, तदनन्तर निरन्तर मेरा ध्यान करने वाला वह पुरुष, शान्तरूप सत्वगुणसे उस सत्वगुणको भी जीते तब सत्वादि-गुणोंसे रहित हुआ वह जीव, जीवपनेके कारण लिङ्ग शरीरको त्याग कर मुझको पाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मुझे प्राप्त हुआ और चित्तसे होने वाले गुणोंसे छूटा हुआ वह जीव; परब्रह्मरूप मेरेसे पूर्णताको पाते ही बाहरके विषयोंका सेवन नहीं करता है और मनसे विषयोंका स्मरण भी नहीं करता है इस कारण उसको फिर जन्ममरणरूप संसार नहीं प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें पञ्चविंश अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

श्रीभगवान्ने कहा कि—हे उद्धवजी ! जिससे मेरा स्वरूप जाननेमें आता है ऐसा यह मनुज शरीर प्राप्त होने पर मेरी भक्तिरूप धर्ममें रहने वाला पुरुष, अपनेमें ही नियन्तारूपसे रहने वाले आनन्दरूपी मुझ परमात्माको उत्तम प्रकारसे पाता

मात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥ १ ॥ गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया। गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुनः। वर्त्तमानापि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः॥२॥ सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगोऽन्धवत्॥३॥ ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः। उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे॥४॥ त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः। विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः॥५॥ कामानतृप्तोनुजुषन् क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः। न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः॥६॥ ऐल उवाच। अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः। देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डा इमे स्मृताः॥७॥ नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाऽभ्युदितोऽमुया। मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत॥८॥

है ॥ १ ॥ ऐसे पुरुषको फिर विषयोंमें आसक्ति नहीं होगी, क्योंकि-ज्ञाननिष्ठाके प्रभावसे गुणमय लिङ्गशरीरसे छूटा हुआ वह पुरुष (जीव) मायामात्र और अवस्तुरूपसे दीखने वाले गुणोंके कार्यरूप देहमें वर्त्ताव करता हुआ भी, तिन मिथ्याभूत विषयोंके साथ सङ्गमात्र ही पाता है अर्थात् उनमें आसक्त नहीं होता है ॥२॥ तथापि विचारवान् पुरुष, शिश्न और पेटकी तृप्तिकी करने वाले दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग कभी न करे, ऐसे बहुतोंकी सङ्गति तो दूर रही, किन्तु ऐसे एककी भी सङ्गति करने वाला पुरुष, जैसे अन्धेके पीछे जानेवाला अन्धा गढेमें पड़ता है तैसे नरकमें पड़ता है ॥ ३ ॥ इलापुत्र बड़ी कीर्त्तिवाले, चक्रवर्त्ती राजा पुरूरवाने, प्रथम उर्वशी के विरहसे मोहित होकर फिर कुरुक्षेत्रमें उर्वशीसे भेट होने पर, उर्वशीने राजासे कहा कि—गन्धर्वोंकी उपासना कर तब तेरा मनोरथ पूरा होगा, फिर राजाने गन्धर्वोंकी उपासना करी तब प्रसन्न हुए गन्धर्वोंने उसको अग्नि नामक पुत्र दिया तिससे वह देवताओंका आराधन करके उर्वशीलोकको गया, तहाँ उर्वशीके मिलने से शोक दूर होने पर उसने विरक्त होकर यह गाथा गाई ॥ ४ ॥ इससे पहिलेकी राजाकी मोहदशाका वर्णन करते हैं कि—अपनेको शय्यापर छोड़ जानेवाली उस उर्वशीके वियोगसे व्याकुल हुआ वह राजा, उन्मत्तकी समान नङ्गा होकर, हे पाषाणहृदये स्त्रि! मुझे छोड़कर न जा, खड़ीरह,२ ऐसा विलाप करता हुआ उस के पीछे दौड़नेलगा ॥ ५ ॥ क्योंकि-जिस समय मनुष्यलोकमें उर्वशी अपने समीप थी उस समय विषयभोग करनेवाला वह राजा, तृप्त नहीं हुआ और उर्वशीके चित्त को खेंचनेके कारण इतना विकल होगया कि उसने बहुतसे वर्षोंकी रात्रियें कितनी निकलगईं और कितनी शेष हैं यह कुछ नहीं जाना ॥ ६ ॥ उर्वशीके भोगके अनन्तर विरक्त हुआ वह राजा कहने लगा कि-हे प्राणियों! मेरे मोहका विस्तार देखो! कामसे चित्तमें चलायमान हुए और उर्वशीने कण्ठमें आलिङ्गन करके जिस को ग्रहण करा है ऐसे मैंने, अपने यह वृथा बीतेहुए रात्रिदिनरूप आयुके भाग मन में भी नहीं विचारे ॥ ७ ॥ सो बड़े खेदकी वार्त्ता है कि-इस उर्वशीके धोखा दिये हुए मैंने इसके साथ क्रीड़ा करतेमें सूर्यका उदय हुआ वा अस्त हुआ यह कुछ नहीं जाना और तैसे ही सहस्रों वर्षोंके बीतेहुए दिनोंको भी नहीं जाना ॥ ८ ॥ अहो!

अहो मे आत्मसम्मोहो येनात्मा योषितां कृतः । क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥ ९ ॥ सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् । यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥ १० ॥ कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा । योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत्पादताडितः ॥ ११ ॥ किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा । किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥ १२ ॥ स्वार्थस्याकोविदं धिङ् मां मूर्खं पण्डितमानिनम् । योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥ १३ ॥ सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् । न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥ १४ ॥ पुंश्चल्याऽपहृतं चित्तं कोऽन्वन्यो मोचितुं प्रभुः । आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ १५ ॥ बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः । मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ॥ १६ ॥ किमेतया नोऽपकृतं रज्ज्वा वा सर्पचेतसः । रज्जुस्वरूपा-

---

यह मेरे मनका कैसा प्रबल मोह है ! जिस मोहसे राजाओंमें शिखामणिकी समान सर्वोत्तम और चक्रवर्ती भी मैंने, अपना शरीर, खेलनेके वानरकी समान स्त्रियोंके वशमें करदिया ॥ ९ ॥ राज्यादि सहित और चक्रवर्ती मेरे शरीरका तृणकी समान त्याग करके जानेवाली उर्वशीके पीछे उन्मत्तकी समान नङ्गा और रोता हुआ दौड़ा ॥ १० ॥ जैसे गधा मुँहपर लातें खाता हुआ भी गदहीके पीछे दौड़ता है तैसे ही उर्वशीका तिरस्कार करा हुआ भी जो मैं, छोड़कर जाती हुई उसके पीछे गया ऐसे मेरा प्रभाव दूसरेको जीतनेकी शक्ति और जगत्का स्वामीपन कहाँसे रहै ? सब ही नष्ट हुएसे होगए ॥ ११ ॥ ऐसे मनुष्यके सब साधन व्यर्थ हैं, क्योंकि—जिसका मन स्त्रियोंने अपने वशमें करलिया है उसकी विद्यासे, तपसे, संन्याससे, शास्त्र पढ़नेसे, एकान्तवाससे और मौनसे कौन लाभ होता है ? कोई नहीं ॥ १२ ॥ अपने कल्याणको न जानने वाले और मूर्ख होकर अपनेको पण्डित मानने वाले मुझको धिक्कार है, जो मैं चक्रवर्तीपनेको पाकर भी, स्त्रियोंसे तिरस्कारके साथ बैलकी समान वा गदहेकी समान अपने वशमें करा गया हूँ ॥ १३ ॥ जैसे अग्नि, घृतकी आहुतियोंसे शान्त नहीं होता है किन्तु अधिक २ बढ़ता ही है तैसे ही सहस्रों वर्ष उर्वशीके अधरामृतका सेवन करने वाले मेरे मनमें उत्पन्न हुआ काम तृप्त नहीं होता है किन्तु अधिक २ बढ़ता ही है ॥ १४ ॥ जारिणी स्त्री करके वशमें करेहुए चित्तको, एक आत्माराम अधोक्षज भगवान्के सिवाय भला दूसरा कौनसा पुरुष छुटवानेको समर्थ है ? कोई नहीं है, इसका तात्पर्य यह है कि-आज पर्यन्त कर्मोंके द्वारा भेदभावसे देवताओंका आराधन करके मैंने दुःख ही पाया है इस कारण अब परमेश्वरका आराधन करूँगा ॥ १५ ॥ उर्वशी देवीने वेदमेंके यथार्थ वचनसे समझाया तो भी मुझ दुर्मति अजितेन्द्रियके मनका महामोह दूर नहीं हुआ ॥ १६ ॥ मैंने जो उर्वशीको दोष दिया सो ठीक नहीं है किन्तु यह दोष मेरा ही है, क्योंकि-जैसे रस्सीके स्वरूपको न जानने वाले रस्सीमें सर्पकी कल्पना करके दुःख पाने वाले पुरुषका रस्सीने कौन अपराध करा है ? तैसे ही मुझ कामातुरका इसने कौन अपराध करा है ? कोई अपराध नहीं करा है किन्तु इसप्रकारके

विदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ॥ १७ ॥ क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचिः । क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोविद्यया कृतः ॥ १८ ॥ पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः । किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते १९ तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते । अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥ २० ॥ त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जाऽस्थिसंहतौ । विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥२१॥ अथाऽपि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् । विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥२२॥ अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते । असंप्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥२३॥ तस्मात्संगो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः । विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥ २४ ॥ श्रीभगवानुवाच । एवं प्रगायन्नरदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय । आत्मानमात्मन्य-

मोहसे इसमें आसक्त होने वाला मैं ही अपराधी हूँ ॥ १७ ॥ अतिमलिन, अति दुर्गन्धादियुक्त और अपवित्र यह स्त्रीका शरीर कहाँ? और सुगन्धता, पवित्रता, सुकुमारता आदि गुण कहाँ? इस कारण निःसन्देह यह अध्यास (दोषमें गुणका प्रतीत होना) अविद्याका करा हुआ है ॥ १८ ॥ यह शरीर, माता-पितासे उत्पन्न होनेके कारण क्या उनका ही धन है ऐसा कहैं? वा, स्त्री इसको भोग देती है इस कारण उसका कहैं? अथवा स्वामीके वशमें रहता है अतः उस धनीका कहैं? अथवा अन्तमें अग्निकी आहुति होजाता है अतः उसका कहैं? अथवा कूकर गिद्ध आदि इसको खाते हैं अतः उनका कहैं? अथवा देहसे करे हुए शुभाशुभकर्म जीवात्माको भोगने पड़ते हैं अतः जीवात्माका कहैं? अथवा मित्रोंके ऊपर उपकार करता है अतः उनका कहैं? इस प्रकार जिस देहका निश्चय नहीं होता है ॥ १९ ॥ तिस अपवित्र और अन्तमें कीड़े, विष्ठा वा भस्मरूप होने वाले देहमें अहो! यह स्त्रीका मुख अति सुन्दर सरल नासिकासे युक्त और अति मनोहर मन्दहास्य सहित है इस प्रकार पुरुष आसक्त होजाता है ॥ २० ॥ वास्तवमें विचार करने पर त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेद, मज्जा और हाड इनके समूहरूप देहमें मग्न होने वाले प्राणीमें और विष्ठा, मूत्र तथा पीवमें मग्न रहने वाले कीड़ेमें क्या अन्तर है? कुछ अन्तर नहीं है ॥ २१ ॥ इस कारण विवेकी पुरुष, स्त्रियोंमें और स्त्रीलम्पट पुरुषोंमें कभी आसक्त न होय, क्योंकि-विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे ही मन चलायमान होता है अन्यथा नहीं ॥ २२ ॥ देखे हुए अथवा सुने हुए पदार्थोंके बिना मन चलायमान नहीं होता है इस कारण इन्द्रियोंको विषयोंसे रोकने वाले पुरुषका मन निश्चल होकर शान्त होजाता है ॥ २३ ॥ इस कारण इन्द्रियोंसे भी स्त्रियोंकी और स्त्रीलम्पट पुरुषोंकी सङ्गति कदापि नहीं करे, क्योंकि-विद्वान् पुरुषोंको भी इन्द्रियोंके समूहका विश्वास नहीं करना चाहिये, मुझसोंको न करना चाहिये इसका तो कहना ही क्या? ॥ २४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी! इस प्रकार गान करने वाला वह राजाधिराज पुरूरवा, उर्वशीलोकको त्याग कर और फिर अपने जीवात्मामें ही शुद्ध परमात्माको जान कर, ज्ञानसे मोह दूर होनेके

वगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥ २५ ॥ ततो दुःसंगमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् । सन्त एतस्य छिन्दन्ति मनोव्यासंगमुक्तिभिः ॥ २६ ॥ सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः । निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥ २७ ॥ तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः । संभवन्ति हि ता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥ २८ ॥ ता ये शृण्वंति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः । मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥ २९ ॥ भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥ ३० ॥ यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् । शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥ ३१ ॥ निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् । सन्तो ब्रह्मविदः शांता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥ ३२ ॥ अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् । धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥ ३३ ॥ सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः । देवता बांधवाः सन्तः

कारण उपरामको प्राप्त हुआ (जीवन्मुक्त हुआ) ॥ २५ ॥ इस कारण बुद्धिमान् पुरुष, नीच पुरुषोंकी सङ्गति छोड़ कर सत्पुरुषोंकी सङ्गति करे, तब वह सत्पुरुष, अपने उपदेशके वचनोंसे इसके मनकी विषयासक्तिको तोड़ डालते हैं ॥ २६ ॥ साधु-विषयोंकी अभिलाषा रहित, मुझमें चित्त लगाने वाले, अत्यन्त शान्त, समदृष्टि सर्वत्र ममतारहित, देहादिमें अहङ्काररहित, सरदी गरमी आदिसे होने वाले विकारों करके रहित और विषयोंका त्याग करने वाले होते हैं ॥ २७ ॥ हे महाभाग उद्धवजी ! इन महाभागशाली पुरुषोंमें निरन्तर मेरी कथा होती रहती हैं और वह कथा ही आदरके साथ अपने सुनने वाले पुरुषोंके पापोंको निःसन्देह दूर करती हैं ॥ २८ ॥ मुझमें चित्त लगाने वाले जो पुरुष, श्रद्धा और आदरके साथ उन कथाओंको सुनते हैं, गाते हैं वा अनुमोदन करते हैं वह पुरुष मुझमें भक्ति पाते हैं ॥ २९ ॥ अनन्तगुण, आनन्द और अनुभवरूप मुझ परब्रह्ममें भक्ति पाने वाले साधुको, दूसरा कौनसा फल मिलनेको शेष रहता है ! ॥ ३० ॥ जैसे भगवान् अग्निका आश्रय लेने वाले पुरुषोंके सरदी, अन्धकार और भय यह तीनों दूर होजाते हैं तिसी प्रकार साधुओंकी सेवा करने वाले पुरुषोंके कर्मजड़ता, जन्ममरणरूप संसारका भय और मूलकारणरूप अज्ञान यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ समुद्रमें डूबते हुए पुरुषोंको जैसे दृढ़ (मजबूत) नाव ही तरजानेका साधन है तैसे ही भयङ्कर संसारसमुद्रमें गोते खाने वाले (छोटी बड़ी योनियोंमें जन्म पाने वाले) पुरुषोंको, ब्रह्मज्ञानी और शान्त साधु ही परम आश्रय हैं ॥ ३२ ॥ और जैसे प्राणियोंका अन्न ही जीवन है अथवा जैसे पीड़ित पुरुषोंका मैं ही शरण (पीड़ा दूर करने वाला) हूँ अथवा जैसे आचरण कराहुआ धर्म ही मनुष्योंको परलोकमें धनरूप है तैसे ही संसारमें पड़नेके कारण भयभीत हुए पुरुषोंको सत्पुरुष ही शरणरूप हैं ३३ और साधु, अनेकों चक्षु इन्द्रियें देते हैं अर्थात् मनमें बैठने योग्य सगुण निर्गुण ज्ञानोंका उपदेश करते हैं, तैसे सूर्य भी नहीं देता है, क्योंकि-वह उदय होने पर केवल बाहरके एक चक्षु इन्द्रियोंका ही प्रकाशक होता है, इस कारण साधु देव-

स्न्त आत्माऽहमेव च ॥ ३४ ॥ वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः । मुक्तसंगो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भागवते म० एका० भगवदुद्धवसंवादे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः २६

उद्धव उवाच । क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो । यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥ १ ॥ एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् । नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥ २ ॥ निःसृतं ते मुखांभोजाद्यदाह भगवानजः । पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥ ३ ॥ एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च सम्मतम् । श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥ ४ ॥ एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् । भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । न ह्यंतोऽनंतपारस्य कर्मकांडस्य चोद्धव । संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ६ ॥ वैदिकस्तांत्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः । त्रयाणामीप्सितेनैव

ताओंकीसमान आराधना करने योग्य, बान्धवोंकी समान आराधना करने योग्य, आत्माकी समान प्रीति करने योग्य तथा मुझ ईश्वरकी समान (मेरी दृष्टिसे) सेवन करने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वह पुरूरवा राजा, उर्वशीके लोककी अथवा उर्वशीको देखनेकी भी इच्छाको त्याग कर तदनन्तर सत्सङ्गतिसे सकल विषयोंकी सङ्गति छोड़ कर आत्मस्वरूपमें मग्न होता हुआ अपनी इच्छानुसार जीवन्मुक्ति दशासे इस पृथ्वी पर विचरने लगा ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें षड्विंश अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

उद्धवजीने कहा कि-हे प्रभो ! हे भक्तपालक ! भक्तजन, जिस निमित्तसे जिस अधिष्ठानमें जिसप्रकार तुम्हारी पूजा करते हैं वह अपना आराधनरूप क्रिया योग (पूजा विधि) मुझसे कहो ॥ १ ॥ क्योंकि-मनुष्योंके अकल्याणका साधन यही है, ऐसा मुनिजन बारम्बार कहते हैं, नारदजी, त्रिकालके जानने वाले, आचार्य व्यासजी, और बृहस्पतिजीका भी यही मत है ॥ २ ॥ तुम्हारे मुखारविन्दसे इस विधिका उपदेश भगवान् ब्रह्माजीको मिला था, फिर ब्रह्माजीने वही विधि अपने भृगु आदि पुत्रोंसे कही और भगवान् शिवजीने पार्वतीजीसे कही॥३॥ हे भगवन् ! तुम अपने भक्तोंको बड़ी योग्यताको पहुँचाते हो, चार वर्ण, चार आश्रम स्त्री, शूद्र, इन सबोंके कल्याणका समान साधन यही है, ऐसी मेरी समझ है, ॥ ४ ॥ हे कमलदलनयन ! कर्मबन्धनसे मुक्त होनेका उपाय यही है, मैं तुम्हारा प्रेमी भक्त हूँ, इस कारण हे देवाधिदेव ! वह विधि मुझसे कहिये ॥ ५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी ! कर्मकाण्डके ग्रन्थ असंख्य हैं और अनुष्ठानोंका पार नहीं है, उनका अन्त कभी मिलता ही नहीं तथापि मैं तुमसे कर्मोंके अनुष्ठानकी रीति संक्षेपसे क्रम करके अङ्गों सहित वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ मेरी प्रीतिके निमित्त यज्ञ करनेके वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र यह तीन मार्ग हैं, जिसमें मन्त्र और अङ्ग वेदोक्त होते हैं, वह पुरुषसूक्त आदि पूजाका मार्ग वैदिक है, जिसमें मन्त्र और अङ्ग तन्त्रोक्त ही होते हैं वह तान्त्रिक विधि है और जिसमें दोनोंसे कार्य होता है वह मिश्र

विधिना मां समर्चयेत् ॥७॥ यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः । यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ ८ ॥ अर्चायां स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाऽप्सु हृदि द्विजे । द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥ ९ ॥ पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये । उभयैरपि च स्नानमन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिभिः ॥१०॥ संध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे । पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक्संकल्पः कर्मपावनीम् ॥११॥ शैला दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥ १२ ॥ चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् । उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ १३ ॥ अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम् । स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥१४॥ द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः । भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥ १५ ॥ स्नानालंकरणं प्रेष्ठम-

(अष्टाक्षर मन्त्रपूजा आदि) है, इन तीनोंमेंसे जो विधि जिसको प्रिय होय, उससे ही वह मेरा पूजन करे ॥ ७ ॥ पुरुष, योग्य समयमें अपने अधिकारके अनुसार वेदमें कही हुई रीतिसे द्विजपनेको प्राप्त होकर किस प्रकार भक्तिपूर्वक श्रद्धाके साथ मेरी पूजा करे सो मुझसे सुनो ॥ ८ ॥ मनुष्य, मेरे ऊपर भक्ति रख कर और परमात्मा ही मेरे गुरु हैं ऐसी भावना करके प्रतिमा, स्थण्डिल, अग्नि, सूर्य, जल, हृदय वा ब्राह्मण इनमेंसे किसी अधिष्ठानके ऊपर योग्य सामग्रियोंसे निष्कामभाव करके मेरी पूजा करे ॥ ९ ॥ पहिले दन्तधावन करके शरीरकी शुद्धिके निमित्त वेद और तन्त्रमें कहे हुए दो प्रकारके मंत्रोंसे मृत्तिका ग्रहण (भस्म गोवर लगाना) आदि विधिसे स्नान करे ॥ १० ॥ वेदमें जो सन्ध्योपासन आदि कर्म विधान कहे हैं उनका त्याग न करके, कर्मवन्धनको दूर करनेवाली मेरी पूजा करे ॥ ११ ॥ प्रतिमा शिलाकी, काठकी, सुवर्ण आदि धातुकी, मृत्तिका—चन्दन आदिकी, चित्ररूप, वालूकी, मनकी (यह मानसपूजामें ही लीजाती है) और रत्नोंकी ऐसे आठ प्रकारकी कही है ॥ १२ ॥ जिसको प्रतिष्ठा अर्थात् निवासस्थान कहते हैं वह भगवान्‌की मन्दिररूप प्रतिमा चलने वाली और स्थिर ऐसे दो प्रकारकी है, हे उद्धवजी ! स्थिर प्रतिमाके ऊपर पूजा करने वालोंको आवाहन और विसर्जन करनेका विधान नहीं है ॥ १३ ॥ चलने वाली (एक स्थान पर ही स्थापन न करी हुई) प्रतिमाके ऊपर आवाहन और विसर्जन करे चाहें न करे ऐसा विकल्प है, (शालग्रामका आवाहन विसर्जन न करे अन्यत्र कहीं करते हैं कहीं नहीं), स्थण्डिल पर पूजन करना होय तो आवाहन और विसर्जन दोनों करे, प्रतिमा मट्टीकी, चंदनकी वा चित्ररूप न होय तो स्नान करावे अन्यत्र (मट्टीकी चन्दनकी वा चित्ररूप प्रतिमाके ऊपर) केवल मार्जन ही करे ॥ १४ ॥ प्रतिमादिकमें मुझे पूजाकी सामग्री के जो पदार्थ अर्पण करे वह अति उत्तम होयँ, भक्त निष्काम होय तो वह जैसे मिलें तैसे पदार्थोंसे मेरी आराधना करे, हृदयमें पूजा करनी होय तो मनोमय सामग्रीको ही इकट्ठा करे ॥ १५ ॥ हे उद्धवजी ! स्नान और अलंकारका तो धातु आदिकी मूर्त्तिमें ही उपयोग करना, पृथ्वीमें पूजा करनी हो तो, अङ्ग प्रधानसहित

वायमेव तूद्धव । स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ॥१६॥ सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः । श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ॥ १७ ॥ भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते । गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ॥ १८ ॥ शुचिः सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः । आसीनः प्रागुदग्वार्चेदर्चायामथ सम्मुखः॥१९॥ कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना मृजेत् । कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥ २० ॥ तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च । प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ २१ ॥ पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि देशिकः । हृदा शीर्ष्णाऽथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ २२ ॥ पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम । अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम् ॥ २३ ॥ तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः । आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य

देवताओंकी उन स्थानोंमें भिन्न २ मन्त्रोंसे स्थापन करे,अग्निमें पूजा करनी होय तो घृतसे भीगे हुए साकल्यकी आहुति देय ॥ १६ ॥ सूर्यमण्डलमें पूजा करनेवालोंको उपस्थान और अर्घ्य आदि सामग्री अत्यन्त श्रेष्ठ है, जलमें पूजा करे तो जल आदि सामग्री ही लेय, भक्त श्रद्धाके साथ यदि थोड़ासा भी जल अर्पण करे तो वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है ॥ १७ ॥ और जिसके हृदयमें भक्ति नहीं है वह, गन्ध, पुष्प, दीप, अन्न आदि बहुतसी सामग्री अर्पण करे तो भी उनसे मेरी प्रसन्नता नहीं होती है, इससे अधिक और क्या कहूँ ? ॥ १८ ॥ मनुष्य पूजाकी सब सामग्री इकट्ठी करे, फिर पूर्वको अग्रभाग करे हुए कुशोंका आसन बिछावे और पवित्र होकर उस आसन पर पूर्वको मुख करके वा उत्तरको मुख करके अथवा प्रतिमा स्थिर होय तो प्रतिमाके सन्मुख बैठ कर पूजा करे ॥ १९ ॥ फिर विधिपूर्वक अपने शरीर पर न्यास करे, मेरी मूर्त्ति पर भी मन्त्रका न्यास करे, और हाथसे निर्माल्य आदि हटा कर मूर्त्तिको पूँछकर स्वच्छ करे,भरा हुआ कलश और प्रोक्षणके लिये लिया हुआ जलका पात्र, इनकी गन्ध पुष्पादि सामग्रीसे पूजा करे ॥ २० ॥ तिसमें जलसे देवपूजनका स्थान, पूजाकी सामग्री और अपने शरीरका प्रोक्षण करे, और तिस ही जलसे एक पाद्यके निमित्त एक अर्घ्यके निमित्त और एक आचमनके निमित्त ऐसे तीन पात्र भर कर उनमें तिस २ सामग्रीके योग्य शास्त्रमें कहे हुए पदार्थोंको डाले और वह पात्र हृदय, मस्तक तथा शिखा (गायत्रीके क्रमसे तीन चरण) इन मंत्रोंसे प्रोक्षण करके पूरे गायत्री मंत्रसे उन सबोंका फिर अभिमन्त्रण करे ॥ २१ ॥ २२ ॥ फिर वायु और अग्निसे शुद्ध हुए शरीररूप पिंडमेंकी (शरीर, कोठमेंकी अग्निसे सूख कर आधारमेंकी अग्निसे दग्ध होता है परन्तु ललाटमें स्थित चन्द्रमण्डलमेंसे झडेहुए अमृतरससे वह फिर अमृतमय होता है तिसमेंकी) हृदयकमलमें स्थित मेरी जीव कलाका अर्थात् नारायणमूर्त्तिका ध्यान करे, उस कलाका सिद्ध पुरुष ॐकार के नादसंज्ञक अंशके परली ओर ध्यान करते हैं ॥ २३ ॥ उस कलाका आत्मरूपसे चिंतवन करने पर उससे जैसे दीपक प्रभाके द्वारा घरको व्याप्त करता है तैसे सर्वशरीरके व्याप्त होने पर,

न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत् ॥ २४ ॥ पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् । धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वासनं मम ॥२५॥ पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । उभाभ्यां वेदतंत्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ॥ २६ ॥ सुदर्शनं पांचजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् । मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥ २७ ॥ नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च । महाबलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥२८॥ दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् । स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥ २९ ॥ चन्दनोशीरकर्पूरकुंकुमागुरुवासितैः । सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा,विभवे सति ३० स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया । पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभि ३१ वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः । अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ३२ पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् । धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयाऽर्चकः ॥ ३३ ॥ गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् । संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥३४॥ अभ्यंगोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् । अन्नाद्यगीतनृत्यादि

उस ही स्थलमें (हृदयकमलमें) उसकी मानसिक सामग्रियोंसे पूजा करके फिर उसका प्रतिमाओंके ऊपर आवाहनपूर्वक स्थापन करे और आवरणपूजा होने पर पूजाका आरम्भ करे ॥ २४ ॥ पाद्य, आचमन, अर्घ्य आदि सामग्रियोंकी कल्पना करे, धर्मादि गुण और नौ शक्तियोंसे मेरा आसन कल्पना करे ॥ २५ ॥ तिस पर कर्णिका और केसरसे उज्ज्वल दीखनेवाला अष्टदल कमल बनावे,और वैदिक तथा तान्त्रिक विधियोंसे, दोनोंमें कही हुई पूजाकी सिद्धिके निमित्त मेरे अर्थ सामग्री ठीक करे ॥ २६ ॥ सुदर्शन, पांचजन्य, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, और मूसल इन आठ आयुधोंकी मूर्तियोंको आठ दिशाओंमें और कौस्तुभ, माला तथा श्रीवत्स इनको वक्षःस्थलमें पूजन करे ॥ २७ ॥ नन्द, सुनन्द प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण इन पार्षदोंकी क्रमसे आठ दिशाओंमें गरुडजीकी आगे स्थापना करके पूजा करे ॥ २८ ॥ चार कोनोंमें दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वक्सेन, दाहिनी ओर गुरु और आठ दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपाल यह सब अपने २ स्थानमें ईश्वरकी ओरको मुख करके बैठे हुए कल्पना करके अर्घ्य आदि सामग्रियोंसे इनकी पूजा करे ॥ २९ ॥ ऐश्वर्य होय तो, प्रतिदिन, चन्दन, खस, कपूर,केसर, काली अगर आदि सामग्रियोंसे, सुगन्धित जलसे मुझे मंत्र पढ़ता हुआ स्नान करावे ॥३०॥ स्नान करानेके समय स्वर्णधर्म (सुवर्णधर्मं परिवेदवेनं) यह अनुवाक पढ़े, महापुरुष विद्याका (जितन्ते पुण्डरीकाक्ष आदि स्तोत्रका) पाठ करे, पुरुषसूक्त पढ़े, और राजनादि (इन्द्रं नरोने मधितादवं ते इत्यादि) सामका गान करे ॥ ३१ ॥ वस्त्र, उपवस्त्र, आभूषण, पत्र, माला, गन्ध,विलेपन इन द्रव्योंसे मेरा भक्त, योग्यरीति करके प्रेमके साथ मुझे उत्तमतासे भूषित करे ॥ ३२ ॥ पूजा करने वाला श्रद्धाके साथ, माला, पाद्य, आचमनीय, गन्ध, फूल, अक्षत, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करे ॥ ३३ ॥ धनकी अनुकूलता होय तो—गुड़, खीर, घी, पूरी, पुए, लड्डू, लपसी, दही, चटनी आदि पदार्थोंका नैवेद्य समर्पण करे ॥ ३४ ॥ अभ्यङ्ग-

पर्वणि स्युस्तान्वहम् ॥ ३५ ॥ विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः । अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ॥३६॥ परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि । प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ ३७ ॥ तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शंखचक्रगदाम्बुजैः । लसच्चतुर्भुजं शांतं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ॥ ३८ ॥ स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवरांगदम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ३९ ॥ ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि हविषाभिघृतानि च । प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥ ४० ॥ जुहुयान्मूलमंत्रेण षोडशर्चाऽवदानतः । धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥ ४१ ॥ अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् । मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ ४२ ॥ दत्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् । मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥४३॥ उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम

स्नान, अङ्गको सुगन्धित पदार्थोंका मलना, शीशा दिखाना, दन्तधावन, पंचामृतका अभिषेक, नानाप्रकारके भक्ष्य और भोज्यके पदार्थ, गान, नृत्य यह सामान एकादशी समान पर्वके दिनोंमें अथवा प्रतिदिन करे ३५ मेखला, गर्त्त, वेदी कैसे२ हों उनकी विधि शास्त्रमें कही हैं तैसे ही रचेहुए कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके प्रज्वलित अग्निका हाथसे परिसमूहन करे ॥ ३६ ॥ तदनन्तर परिस्तरणकर चारों ओर प्रोक्षणकर विधिपूर्वक अन्वाधान करे (व्याहृतियोंका जप करता हुआ अग्निमें समिधाओंकी आहुति देय) अग्निसे उत्तरको होमके उपयोगी-पात्र फैलाकर प्रोक्षणीपात्रमेंके जलसे उनका प्रोक्षण करे और अग्निमें मेरा ध्यान करे ॥३७॥ तपाये हुए सुवर्णकीसी कांतिसे युक्त, और शंख, चक्र, गदा, पद्म इन आयुधोंसे चारों भुजा शोभायमान हैं, शांतस्वरूप और कमलके केसरके वर्णका वस्त्र पहिरे हुए हैं ॥३८॥ किरीट, कड़े, तागड़ी श्रेष्ठ बाजूबन्द, यह आभूषण अपने २ उचित स्थान पर शोभित हैं, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स है और तहाँ ही कौस्तुभमणि विराजमान है, कण्ठमें वनमाला धारण करे हैं ॥३९॥ ऐसा ध्यान करता हुआ पूजाकी सामग्री अर्पण करके अग्निमें घीसे भीगी हुई सूखी समिधाडाले, आघारहोम करके फिर 'अग्नये स्वाहा' और 'सोमाय स्वाहा' ऐसे घृतकी दो आहुति देय, फिर घृतसे भीगीहुई हविकी सामग्रीसे अष्टाक्षर मूलमंत्रको पढ़कर तैसे सोलह ऋचाओंके सूक्तसे प्रत्येक ऋचाकी एक २ आहुति देय, इस पूजाके क्रमसे ही धर्मादि परिचारकवर्गको भी उनके नामयुक्त मंत्रसे (नाममें स्वाहा जोड़कर-'धर्माय स्वाहा' इत्यादि) उन ही पदार्थोंकी आहुति देय और अन्तमें वह बुद्धिमान् पुरुष, स्विष्टकृत हवन करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर अग्निमें विद्यमान अंतर्यामी पुरुषकी पूजा और उसको नमस्कार करके आठ दिशाओंमें पार्षदोंको बलि देय, फिर पूजाके स्थानमें आकर और देवताके सन्मुख बैठकर नारायणरूप ब्रह्मका ध्यान करता हुआ शक्तिके अनुसार अष्टाक्षर मूलमन्त्रका जप करे ॥ ४२ ॥ जपके अनन्तर आचमन देकर प्रतिमा और अग्निमें भगवान्का भोजन समाप्त हुआ ऐसा चिंतवन करे और आसन देकर उच्छिष्टभाग विष्वक्सेनको अर्पण करे और उन्होंने मुझे आज्ञा दी ऐसी भावना

मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ॥ ४४ ॥ स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैरपि । स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ॥ ४५ ॥ शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् । प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युमहार्णवात् ॥ ४६ ॥ इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् । उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥ ४७ ॥ अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् । सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माऽहमवस्थितः ॥ ४८ ॥ एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः । अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ ४९ ॥ मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद् दृढम् । पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ ५० ॥ पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् । क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ५० प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् । पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ ५२ ॥ मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति । भक्तियोगं स लभते एवं यः

करके स्वयं भोजन करे, फिर सुगंधयुक्त तांबूल आदि मुखवासके निमित्त देकर पुष्पाञ्जलि चढ़ावे ॥ ४३ ॥ फिर मेरी लीला गावे, उनका कीर्त्तन करे, नृत्य करता हुआ मेरे चरित्रोंका अभिनय करे, मेरी कथा लोकोंको सुनावे और आप सुने तथा मुहूर्त्तभरको व्यग्रता छोड़कर स्वस्थ होय ॥ ४४ ॥ छोटे बड़े पुराणोंमेके स्तोत्र और देशभाषाकी स्तुतियें पढ़कर मेरी स्तुति करे और 'हे भगवन् प्रसन्न हूजिये' ऐसा कह कर दण्डवत् प्रणाम करे ॥ ४५ ॥ मेरे चरण पर मस्तक रख कर 'रक्षा करो' ऐसी प्रार्थना करे, दोनों हाथोंसे, बायें हाथमें बायाँ और दाहिने हाथमें दायाँ ऐसे मेरे चरण पकड़े और हे ईश्वर ! पिशाचकी समान भयङ्कर तथा समुद्रकी समान दुस्तर मृत्युपाशसे डर कर मैं तुम्हारी शरणमें आया हूँ, इसकी प्रार्थनाके मन्त्रसे मेरी दी हुई प्रसादरूप मालाको आदरके साथ मस्तक पर धारण करे और विसर्जन करना होय तो प्रतिमामें न्यास करी हुई ज्योति फिर, हृदयकमलमेकी ज्योतिमें आमिली ऐसी भावना करे, यही विसर्जन है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ मनुष्यकी जिस समय जिस अधिष्ठानके ऊपर श्रद्धा होय उस मूर्त्ति आदिमें ही वह मेरी पूजा करे, मेरे सर्वात्मा होनेके कारण सकल प्राणियोंमें और अपने स्वरूपमें भी रहता हूँ ॥ ४८ ॥ जो पुरुष, वेद और तन्त्रमें कही हुई इन पूजाकी विधियोंसे मेरी आराधना करता है उसको मुझसे इस लोकमें और परलोकमें इच्छित सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ४९ ॥ मेरी प्रतिमाकी स्थापना करके उसके निमित्त पक्का मन्दिर बनवावे, रमणीय फुलवाड़ी लगवावे, नित्यपूजा, विशेष पर्वके दिन बड़ी भारी यात्रा, वसन्त आदि उत्सव इनके चलानेके आश्रयके निमित्त खेत, बाजार, नगर, और गाँव दान देय (इनकी आमदनीसे उत्सवोंका निर्वाह होय ऐसा प्रबन्ध कर देय) ऐसा करनेवाले पुरुषको मेरी समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ मूर्त्तिकी स्थापना करनेसे चक्रवर्ती पद मिलता है, मन्दिर बनवानेसे त्रिलोकीका राज्य मिलता है, पूजा आदिके द्वारा ब्रह्मलोक मिलता है और यह तीनों करने वाला पुरुष तो मेरी समान होता है ॥ ५२ ॥ निष्काम भक्तियोगसे पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है, जो ऐसे

पूजयेत माम् ॥५३॥ यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः। वृत्तिं स जायते विड्भुग् वर्षाणामयुतायुतम् ॥५४॥ कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च। कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

श्रीभगवानुवाच। परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्। विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥ परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति। स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥ २ ॥ तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः। मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥३॥ किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्। वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥४॥ छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः। एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥ ५ ॥ आत्मैव

मेरी आराधना करता है उसकी मुझमें अखण्ड भक्ति होती है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य, अपनी दी हुई वा दूसरेकी दी हुई देवताकी वा ब्राह्मणकी वृत्तिको हरता है वह लाखों वर्ष पर्यन्त विष्ठा भक्षण करने वाला कीड़ा होकर नरकमें बिल बिलाता फिरता है ॥ ५४ ॥ करनेवाला, सहायक, उत्तेजना देने वाला, अनुमोदन करनेवाला, इन चारोंको ही परलोकमें तिस कर्मका फल भोगना पड़ता है, क्योंकि-वह उस कर्मके भागी हैं, सहायता आदि कर्म जैसी २ अधिक योग्यताका होगा तैसे २ फल भी अधिक २ मिलेगा ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें सप्तविंश अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ छ * छ

श्रीभगवान्‌ने कहा कि—हे उद्धवजी! मनुष्य, समस्त विश्व, प्रकृति पुरुषोंसे अभिन्न है ऐसी दृष्टि रक्खे, और दूसरोंके स्वभावोंकी तथा कार्योंकी प्रशंसा वा निन्दा न करे ॥ १ ॥ जो पुरुष, दूसरोंके स्वभावोंकी और कार्योंकी प्रशंसा वा निन्दा करता है, वह मिथ्याभूत द्वैत पर अभिमान रखनेके कारण तत्काल स्वर्गसे भ्रष्ट होजाता है ॥ २ ॥ राजस अहङ्कारका कार्य जो इन्द्रियोंका समूह उसके निद्रासे व्याप्त होने पर शरीर पिण्डमें स्थित जीव, केवल मनके द्वारा स्वप्नरूप मायामें भूलता रहता है, फिर उस मनके भी लीन होजाने पर चेतना नष्ट होकर वह मृत्यु अथवा मृत्युकी समान सुषुप्ति दशाको पाता है, तैसे ही द्वैतके अभिमानी पुरुषको विक्षेप और लय प्राप्त होते हैं अर्थात् जैसे सुषुप्तिके अभिमानी प्राज्ञका सम्पर्क होते ही, जाग्रत्‌का अभिमानी विश्वके भोगका क्षयरूप भ्रंश पाता है तैसे ही अनात्माके सम्पर्कसे आत्मा अपने स्वरूपसे डिग जाता है ॥ ३ ॥ पहिले तो स्तुति वा निन्दाका विषय पदार्थ ही नहीं है, क्योंकि-द्वैत यदि मिथ्या है तो उसमें उत्तम क्या! और बुरा क्या! वा कितना है ?, जो वाणीसे कहा अथवा नेत्रादि इन्द्रियोंसे देखा, सुना वा चाखा अथवा मनसे विचारा वह सब मिथ्या ही है ॥४॥ प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि, और सीपीमें चाँदीकी भ्रान्ति यह मिथ्या है, ठीक है परन्तु भय कम्प आदि अनर्थके कारण होते हैं तैसे ही देह आदि मिथ्या पदार्थ भी मृत्यु पर्यन्त छोटे-बड़े सब प्रकारके भय उत्पन्न करते हैं (अथवा देहादि लीन होने पर्यंत

तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः । त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥६॥ तस्मान्न ह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यो भावो निरूपितः । निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि । इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥ ७ ॥ एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् । न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥ ८ ॥ प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा । आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसंगो विचरेदिह ॥ ९ ॥ उद्धव उवाच । नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः । अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥ आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः । अग्निवद्दारुवदचिद्देहः कस्येह संसृतिः ॥ ११ ॥ श्रीभगवानुवाच । यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् । संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥१२॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा॥१३॥यथा ह्यप्रति-

---

दुःख देते हैं) ॥ ५ ॥ यह समस्त विश्व आत्मा ही है, उत्पन्न होने वाला और उत्पन्न करने वाला दोनों ब्रह्म ही है, उसमें सब प्रकारके रूप धारण करनेकी शक्ति है, रक्षा करने योग्य वही है और रक्षा करने वाला भी वही है, वही विश्वात्मा ईश्वरसंहार किया जाता है और वही संहार करता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार श्रुतियोंने आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ कहा है ऐसा नहीं है किंतु आत्मा ही रची जाने वाली वस्तु भिन्न है, देह, इन्द्रियें और अन्तःकरण यह निरूपण करी हुई तीन प्रकारकी प्रतीति तिस आत्मामें निर्मल है, यह त्रिगुणमयी त्रयी मायाकी रची हुई है ऐसा समझो ॥ ७ ॥ मेरा कहा हुआ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ज्ञान जिसने पूर्ण रीतिसे समझ लिया है वह पुरुष, किसीकी प्रशंसा वा निन्दा नहीं करता है किन्तु सूर्यकी समान उदासीन (प्रिय-अप्रिय-रहित) होकर विचरता है ॥ ८ ॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और अपना अनुभव इन चार प्रमाणोंसे, जितना द्वैत है वह सब उत्पत्तिनाशयुक्त अर्थात् मिथ्या है, ऐसा निश्चय करे और सब आसक्तियोंको छोड़ कर भूतल पर फिरता रहै ॥ ९ ॥ उद्धवजीने कहा कि-हे ईश्वर ! आत्मा तो द्रष्टा चेतन है इस कारण उसको संसार नहीं है और देह तो दृश्य जड़ है इस कारण उसको संसार नहीं है परन्तु वह अनुभवमें तो आता है अर्थात् दोनोंमेंसे एकको तो होना चाहिये, सो किसको है ॥ १० ॥ आत्मा तो नाशादि रहित है, उसके रागद्वेष आदि गुण नहीं हैं, पुण्यपाप आदि दोष भी नहीं हैं, वह स्वयं प्रकाश अर्थात् अज्ञानरहित है और उसको किसीने आच्छादन नहीं करा है अर्थात् उसके स्वरूपकी सीमा नहीं है, इस गुणसे उसको अग्निकी उपमा देने पर बहुतसे अंशोंमें ठीक बैठता है और देह तो काठकी समान जड़ है फिर जगत्में संसार किसको है ॥ ११ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-जब तक आत्माका देह, इन्द्रियें और प्राणोंसे सम्बन्ध है तब तक, अविवेकी पुरुषको, संसार मिथ्या होने पर भी फलरूप होता है (अनुभवमें आता है) ॥ १२ ॥ देखो—स्वप्न मिथ्या होता है यह सिद्ध है तथापि उसमें दीखने वाली भयदायक वस्तुओंके देखनेसे स्वप्न देखनेवाले को भय होता है, तब वह उचक उठता है तैसे ही संसार वास्तवमें सत्य न होने

बुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् । स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ १४ ॥ शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः । अहंकारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः॥१५ देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः । सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावति कालतन्त्रः ॥ १६ ॥ अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचःप्राणशरीरकर्म । ज्ञानासिनोपासनया शितेन च्छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥ १७ ॥ ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् । आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ॥१८॥ यथा हिरण्यं सुकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य । तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥ विज्ञानमेतत्त्रियवस्थमंग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ । समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव

पर भी जब तक मनुष्य विषयोंका ध्यान करता है तब तक दूर नहीं होता है॥१३॥ जब तक मनुष्य जागता नहीं है तब तक ही स्वप्न उसको अनेक प्रकारसे अनर्थकारक होता है, वही जागा कि-फिर स्वप्न उसको मोहित नहीं कर सकता है तैसे ही ज्ञानवान्को संसारमेंके अनर्थोंसे मोह नहीं होता है ॥ १४ ॥ शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह इच्छा आदि तथा जन्म और मृत्यु, यह अहङ्कारके धर्म दीखते हैं, आत्माके नहीं हैं ॥ १५ ॥ देहादिके ऊपर अभिमान रखने वाला उनके भीतर रहने वाला और गुणकर्ममय मूर्त्ति धारण करने वाला (लिङ्गशरीर) आत्मा जो जीव वह, कालरूप परमेश्वरके अधीन होकर उनके वर्त्ताव करानेके अनुसार संसारमें इधरसे उधरको दौड़ता है उसके ही सूत्रात्मा, महान् ऐसे अनेक नाम हैं ॥ १६ ॥ मन, वाणी, प्राण, शरीर कर्म (अहङ्कार) यह समूह वास्तवमें मूलरहित है परन्तु अज्ञानके कारण देवादि नाना प्रकारके स्वरूपोंसे प्रकाशित होरहा है, मुनि उपासनाके द्वारा ज्ञानरूप खड्गको तीखी करके उस खड्गसे ऊपर कहे हुए समूहका छेदन करता है और निरीहपनेसे पृथ्वी पर विचरता रहता है ॥ १७ ॥ ज्ञानका स्वरूप विवेक ही है, और वह वेद, अपने धर्मका अनुष्ठान, अपना अनुभव, गुरुका उपदेश और तर्क इन साधनोंसे होता है, इस जगत्‌की उत्पत्तिसे पहिले और प्रलयके अनन्तर जो होता है वही एक आत्मस्वरूप जगत्‌की विद्यमान दशामें भी होना चाहिये वही जगत्‌का प्रकाशक और सबका हेतु है ऐसा निश्चय ही ज्ञानका फल है ॥ १८ ॥ जैसे सुन्दर गहने बनानेसे पहिले सुवर्ण सब गहनोंके आदिमें और टूट कर गलनेके अन्तमें एकसमान ही होता है मध्यमें ही उसमें कड़े कुण्डल आदि अनेकों नामोंसे व्यवहार होते हैं, परन्तु वह आदि मध्य और अन्तमें सुवर्ण ही सत्य है तैसेही मैं (आत्मा) जगत्‌के आदि मध्य अन्तमें होता हूँ अर्थात् विद्यमानरूप पृथक् नहीं है ॥ १९ ॥ ऐसे कार्यका कारणरूप होना कह कर अब प्रकाश्यका प्रकाशकरूप होना कहते हैं-हे उद्धवजी ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं वाला विज्ञान (मन), इन तीन अवस्थाओंके कारण तीन गुण (सत्व, रज, तम) तथा कारण (अध्यात्म) कार्य (अधिभूत) और कर्त्ता (अधिदेव) यह समूह मिलकर गुणोंका कार्य सकल तीनप्रकारका जगत, तीनों अवस्थाओं

सत्यम् ॥ २० ॥ न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तत्तद्व्यपदेशमात्रम् । भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥२१॥ अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः । ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेंद्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥२२॥ एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन । छित्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानंदतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ॥२३॥ नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुर्जलं हुताशः । मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्त्वमहंकृतिः क्षितिरर्थसाम्यम् ॥२४॥ समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः । विक्षि-

से पर सामान्य ज्ञानकी सत्तासे प्रकाशित है- अर्थात् तुरीयज्ञानके सर्वत्र अनुस्यूत (पुरा हुआ) होनेसे विश्व प्रकाशित है इस विषयमें श्रुतियोंके बहुतसे प्रमाण हैं- 'तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' अर्थात् वह परमात्मा (ज्ञान) प्रकाशवान् है, उसके प्रकाश करके सब प्रकाशित होरहा है, दूसरी श्रुति कहती है-'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः,अर्थात्-वह (ज्ञानरूप परमात्मा) नेत्रका नेत्र, कर्णका कर्ण, और मनका मन है ऐसा ज्ञानी मानते हैं यह ज्ञानका सब कार्यमात्रमें अन्वय कहा, तैसे ही इसका व्यतिरेक भी है, देखो— समाधिदशामें सब जगत् न होने पर भी ज्ञानकी सत्तासे अनुभवमें आता है, इस प्रकार सर्वत्र सब कालमें जिसकी सत्ता सिद्ध हुई वही ज्ञान सत्य है ॥ २० ॥ जो (विश्व) उत्पत्तिसे पहिले नहीं था और प्रलय होने पर भी नहीं था, केवल मध्यमें ही नामका आधार होकर रहता है, पहिले जिसकी उत्पत्ति दूसरेसे ही हुई और प्रकाश भी दूसरेसे ही हुआ ऐसा वह विश्व अपने कारणका और प्रकाशकका ही रूपान्तर होना चाहिये, तिससे जुदा नहीं, ऐसा मेरी बुद्धिको प्रतीत होता है, घड़े सकोरे भिन्न २ कितने ही आकार हुए, परन्तु उन नामोंका आधार मृत्तिका ही सबका सत्य (ठीक) रूप है तैसे ही जगत् अपने कारणरूप ज्ञानसे पृथक् नहीं है ॥ २१ ॥ यह जो विकारोंका समूह प्रपञ्च,जो पहिले नहीं था और फिर भासने लगा है, यह रजोगुणके द्वारा ब्रह्मका कार्य है (इसका प्रकाश ब्रह्मकी सत्तासे है) ब्रह्म तो स्वयं सिद्ध है; वह किसीका कार्य नहीं है, वह ज्योतिःस्वरूप अर्थात् प्रकाशक होनेके कारण इन्द्रियें, इन्द्रियोंके विषय, मन और पाँच स्थूलभूत इन चित्र-विचित्र रूपोंसे प्रतीतिमें आता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार वेद, सदाचार, अनुभव, उपदेश और अनुमान इन ब्रह्मज्ञानके स्पष्ट साधनभूत प्रमाणोंसे देहमें आत्मभावकी प्रतीतिको पूर्णरूपसे दूर करे, आत्माके विषयके संशयको तोड़ डाले और स्वरूपके आनन्दसे ही सन्तुष्ट होकर, सकल इच्छाओंसे भरी हुई इन्द्रियोंके सङ्गसे अलग रहे ॥ २३ ॥ शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि-वह घड़ेकी समान पृथ्वीका कार्य है, तैसे ही इन्द्रियें, इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री देवता, प्राण, बुद्धि, चित्त और अहंकार यह आत्मा नहीं हैं; क्योंकि—यह शरीरकी समान ही अन्नके आश्रित वा पोष्य हैं, वायु, जल, तेज, आकाश और पृथ्वी, यह पाँच स्थूलभूत, शब्दादि विषय (सूक्ष्मभूत) और तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अर्थात् प्रकृति यह भी घटकी समान जड़

प्यमाणैरुत किं नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥२५॥ यथा नभो वाय्वनलाम्बु-भूगुणैर्गतागतैर्वर्त्तुगुणैर्न सज्जते । तथाऽक्षरं सत्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृति-हेतुभिः परम् ॥ २६ ॥ तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् । मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥ यथाऽऽमयोऽसाधु-चिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् । एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयो-गिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥२८॥ कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोप-सृष्टैः । ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ॥२९॥ करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् । न तत्र विद्वान् प्रकृतौ

हैं अर्थात् आत्मा नहीं हैं ॥ २४ ॥ इस रीतिसे जिसको मेरे स्वरूपका उत्तम विवेक होगया है उसकी गुणमय इन्द्रियें, सावधान रहैं तो उससे कुछ विशेष लाभ है ऐसा नहीं है और वह विषयोंको ग्रहण करनेमें प्रवृत्त होयँ तो उनसे कोई दोष हो ऐसा भी नहीं है, घनघटा आई तो क्या और चली गई तो क्या, उनके गुणदोष सूर्यको किंचिन्मात्र भी नहीं लगते हैं तैसे ही इन्द्रियोंकी सावधानता (विषयोंसे से बचे रहना) का और चंचलताका प्रकार जानना ॥ २५ ॥ जैसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इनके क्रमसे सुखाना, जलाना, गीला करना और मैला करना इन गुणोंका तथा ऋतुओंका कुछ कालपर्यन्त आकर चले जाने वाले सरदी गरमी आदि धर्मोंका सम्बन्ध आकाशको नहीं होता है तैसे ही अहंकारसे पर अविनाशी परब्रह्म, संसारके कारण सत्व, रज और तम इन गुणोंके दोषोंसे लिप्त नहीं होता है ॥ २६ ॥ जब तक पूरा २ ज्ञान न हो तब तक पुरुष, मुक्तकी समान अपनी इच्छानुकूल वर्त्ताव न करे, यह वर्णन करते हैं-ब्रह्मरूप अलिप्त है यह ठीक है तथापि जब तक मनको बिगाड़ने वाली विषयासक्ति, मेरे विषैं करे हुए पक्के भक्तियोगसे दूर न होय तब तक मायाके कल्पना करेहुए विषयोंसे सम्बन्ध रखना वर्जित है२७ क्योंकि-जैसे रोगकी भली प्रकार चिकित्सा न करी जाय तो वह बार २ बढ़ कर मनुष्यको पीड़ा देता है तैसे ही जिसके रागद्वेषादि मल और उन मलोंकी जड़रूप कर्म भस्म नहीं हुए हैं वह मन, स्त्री पुरुष आदि सब विषयों पर आसक्त हो कर कच्चे ज्ञानी तिस योगीको भ्रष्ट कर देता है ॥ २८ ॥ बन्धु शिष्य आदिरूप देवताओंके प्रेरणा करेहुए विघ्नोंके आजानेसे जो योगभ्रष्ट होजाते हैं वह जन्मांतर में करे हुए अपने पूर्व अभ्यासके बलसे फिर योगका ही अभ्यास करने लगते हैं, कर्मकांडका फैलाव करते हुए नहीं बैठे रहते हैं ॥ २९ ॥ ज्ञानवान्से भी सर्वथा कर्म नहीं छूट सकता यह ठीक है परन्तु उसको फिर संसारमें नहीं पड़ना पड़ता है, देखो-यह प्राणी किसी पुरातन संस्कारकी प्रेरणासे मरण पर्यन्त कुछ न कुछ कर्म करता ही करता है और उससे उसे पुष्टि दुर्बलता आदि विकार भी प्राप्त होते हैं, परन्तु विद्वान् पुरुष देहमें रहता हुआ भी इस कर्मके कारण विकार नहीं पाता है, क्योंकि-आत्मसुखका अनुभव मिलनेके कारण उसकी सब इच्छा नष्टसी होजाती हैं और उसको अहंकार नहीं होता है इसकारण ही उसको हर्ष शोक आदिसे प्रकट

स्थितोऽपि निवृत्ततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ॥ ३० ॥ तिष्ठन्तमासीनमथ व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् । स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ॥ ३१ ॥ यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानाऽनुमानेन विरुद्धमन्यत् । न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ॥ ३२ ॥ पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमंग । निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥ ३३ ॥ यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते । एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ॥ ३४ ॥ एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः

होने वाला संसार नहीं भोगना पड़ता है ॥ ३० ॥ जिसकी बुद्धि आत्मस्वरूपमें अड़ी हुई है उस पुरुषका देह खड़ा रहो, चलो, सोवो, मूत्र करो, अन्न खाओ, अथवा स्वभावसे ही प्राप्तहुए दर्शन श्रवण आदि कोई भी काम करो वह उस शरीर की किसी वार्त्ताका ध्यान नहीं रखता है ॥ ३१ ॥ यदि कदाचित् बहिर्मुख हुई इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध हुआ देखनेमें आवे तो, वह विद्वान् पुरुष, स्वप्नके दृष्टांतसे 'जितनेभी पदार्थ अनेक हैं वह सब मिथ्या हैं' ऐसे अनुमान करके आत्मा के सिवाय किसी भी पदार्थको सत्य नहीं मानता है, क्योंकि-उसको पूरा२ ज्ञात (मालूम) होता है कि-मनुष्य स्वप्न देखकर उठे तो उसको स्वप्नमें देखेहुए पदार्थ संस्कारके कारण फिर सन्मुख भासते हैं परंतु वह अपने आप लुप्त होजाते हैं; यही विश्वमेंके सकल विषयोंकी दशा है, जैसे जागनेकी दशामें भासनेवाले स्वप्नमें देखे हुए पदार्थ मिथ्या हैं तैसे ही सब इन्द्रियोंके विषय क्षणिक और मिथ्या हैं ३२ इस प्रकार आत्माको विकार नहीं है ऐसा कहा, परन्तु इसपर एक शंका उठती है कि-इस प्रकार आत्माके बद्धावस्थामें मलिन होनेके कारण हेय (त्यागनेयोग्य) होनेसे और मोक्षदशामें शुद्ध होनेके कारण उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) होनेसे, आत्माको विकार नहीं है ऐसा कहना नहीं बनेगा, देखो धानोंको कूटकर उनको धानरूपसे त्यागा और तण्डुल (चावल) रूपसे ग्रहण करा तो उनमें कुछ विकार नहीं आया ऐसा कहना नहीं बनसकता, इसशंकाका समाधान करते हैं कि हे उद्धवजी! गुणोंसे और कर्मोंसे चित्र विचित्र दीखनेमें आनेवाले जो देह इंद्रियादिरूप अज्ञानके कार्य आत्माके ऊपर मानेहुए होते हैं उनका ही पहिले अर्थात् बद्धदशामें ग्रहण करा था और ज्ञानके द्वारा मुक्तावस्थामें उस अज्ञानका त्याग करा; आत्माका तो किसी अवस्थामेंभी ग्रहण वा त्याग नहीं कियाजाता है, यदि मुक्ति किसी क्रियाका अथवा व्यापार का फल होती तो आत्मामें विकार आसकता था, परन्तु मुक्तिका स्वरूप इतना ही है कि-आत्माके ऊपर आरोपण करेहुए अज्ञानमात्रकी निवृत्ति, अर्थात् बन्ध वा मोक्ष आत्माको कभी नहीं लगता है इस कारण ही उसको विकार नहीं है ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्यका उदय, मनुष्योंके नेत्रों परके अन्धकारको दूर करता है, ऐसा मानते हैं घटादि दृश्य पदार्थोंको नवीन उत्पन्न करता है ऐसा अर्थ नहीं है तैसे ही मेरा पूर्ण शुद्ध ज्ञान पुरुषकी बुद्धिके ऊपरके पलड़ (अज्ञानरूप ढक्कन) को दूर करदेता है ॥ ३४ ॥ यह प्रत्यक्ष अनुभवसे निश्चयप्राप्त आत्मा स्वयंप्रकाश है अर्थात् उसमें अज्ञानरूप मल

सकलानुभूतिः । एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ॥ ३५ ॥ एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले । आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलंबो न यस्य हि ॥ ३६ ॥ यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् । व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पंडितमानिनाम् ॥ ३७ ॥ योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः । उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥ ३८ ॥ योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः । तपो-

का दूर करना, यह विकार नहीं है, वह जन्मरहित, प्रमाणोंका अविषय और परम समर्थ अर्थात् देश काल आदिकी करीहुई मर्यादासे रहित है तात्पर्य यह कि-उसमें उत्पन्न होना, बढ़ना, पकना, क्षीणता और नाश यह विकार नहीं हैं, वह सबका अनुभवरूप है, जब उससे भिन्न दूसरा कोई कारण होय तब उसमें विकार उत्पन्न होय, परन्तु उससे भिन्न कुछ है ही नहीं, वह एक है, सब इन्द्रियें उसके स्वरूपमें प्रविष्ट न होकर पीछेको लौट आती हैं और उससे प्रेरित होनेके कारण इन्द्रियें और प्राण अपने २ विषयोंको ग्रहण कर सकते हैं ॥ ३५ ॥ भेदरहित आत्मस्वरूपमें विकल्प मानना, यह सब मनका भ्रम है, क्योंकि-आत्मासे भिन्न उस विकल्पका कोई आश्रय है ही नहीं, उदाहरण देखो-सीपीमें चाँदीका भ्रम होना है परंतु उस भ्रमका आधार सीपीसे दूसरा नहीं होता है, अर्थात् सीपीमें माना जाने वाला रजत सत्य नहीं तैसे ही आत्मामें माना हुआ विकल्प सत्य नहीं है ॥३६॥ कोई २ ऐसा कहते हैं कि-प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे प्रतीतिमें आनेवाला प्रपञ्च मिथ्या नहीं है और वेदांतके वचन यज्ञके अर्थके और यज्ञकर्त्ताका वर्णन करनेवाले अर्थवादरूप हैं इसकारण द्वैत ही सत्य है, इस मतका आशय कहकर तिसका खण्डन करते हैं कि-द्वैत, नामोंसे और आकारोंसे युक्त तथा पञ्चमहाभूतरूप है, ऐसे द्वैतरूप प्रपञ्चका बाध नहीं होता है किंतु प्रपञ्च सत्य है, ऐसा कहनेवाले कितने ही अपने को पण्डित मानने वाले पुरुष कहते हैं उनके। वेदांतके वचन अर्थवादपर (कर्मकांडकी स्तुति करनेवाले) प्रतीत होते हैं;परन्तु उस प्रतीत होनेका कुछ भी आधार नहीं है, देखो 'तत्त्वमसि' ऐसे वचनोंकी 'अग्निहोत्रं जुहोति' अथवा 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि विधिवाक्योंसे एकवाक्यता नहीं की जासकती, यदि ऐसा हो तो उन वेदांतवचनोंको अर्थवाद कहसकते थे। और आत्मा अकर्त्ता तथा अभोक्ता है ऐसा वर्णन करनेवाले वचन कर्मविधिके अंग भी नहीं होसकते, फिर द्वैतकी सत्यता कहाँ सिद्ध होती है ? अर्थात् नहीं होती,द्वैत नाम रूपों वाला और इंद्रियों से ग्रहण करने योग्य तथा पञ्चमहाभूतरूप है, अतः वह स्वप्नकी समान मिथ्या है, ऐसे अनुमानोंसे और 'वाचारम्भणम्' ऐसी श्रुतियोंके उस प्रपञ्चका बाध होना निश्चय करा है ॥ ३७ ॥ जिसका योगाभ्यास पूरा नहीं हुआ है ऐसे किसी योगीके शरीरको, योग साधन करते हुए मध्यमें ही रोगादि उत्पन्न होकर उससे पीड़ा होनेलगे तो उसके उपायकी यह विधि वर्णन करी है कि-॥ ३८ ॥ कितने ही रोगों को योगधारणासे नाश करे, सन्ताप शीत आदिकी पीड़ा होनेलगे तो क्रमसे सोम की और सूर्यकी धारणा करके उनका नाश करे) कितने ही (वातआदि) रोगों

मन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥ ३९ ॥ कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः । योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान् शनैः ॥ ४० ॥ केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् । विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ॥ ४१ ॥ न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः । अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ॥४२॥ योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् । तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ॥ ४३ ॥ योगचर्यामिमां योगी विचरन्मदपाश्रयः । नांतरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उद्धव उवाच । सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः । यथाऽञ्जसा पुमान् सिद्ध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाऽच्युत ॥१॥ प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः । विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ २ ॥ अथात आनन्ददुघं पदांबुजं हंसाः

को, आसन साधकर और वायुको धारण करके नाश करे पापग्रह सर्प आदिकी पीडा होनेलगे तो तप,मंत्र औषधिके द्वारा उनको दूर करे ॥३९॥ किन्हीं (कामादि) रोगोंका निरन्तर मेरे ध्यानसे और नामसंकीर्त्तन आदि करके संहार करे, और दम्भ, मान आदि अमङ्गलकारी शत्रुओंका, योगेश्वरों (गुरुओं) की सेवा करके नाश करे ॥ ४० ॥ कितने ही धैर्यवान् पुरुष, इनसे तथा दूसरे भी अनेकों उपायोंसे अपने शरीरको जरारोग आदि रहित और नित्य युवा अवस्थामें रहने वाला बनाकर फिर अतुलनीय शक्तिवाला होना, दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना ऐसी नाना-प्रकारकी सिद्धियोंके निमित्त गुहोर धारणा करते हैं,ज्ञाननिष्ठाके निमित्त योगा-भ्यास नहीं करते हैं ॥ ४१ ॥ परन्तु वह मार्ग चतुर पुरुषोंके स्वीकार करने योग्य नहीं है, सिद्धिके निमित्त परिश्रम करना निरर्थक है, क्योंकि-वनस्पतिके फलकी समान शरीर नाशवान् है, केवल आत्मा ही नित्य है ॥ ४२ ॥ कभी कभी समाधिके अङ्ग, नित्य प्राणायाम आदि योगका साधन करते रहने पर शरीर जरारोग आदि रहित होयगा, यह ठीक है परन्तु जिसकी मुझमें निष्ठा है वह बुद्धिमान् उस देहपर विश्वास न रक्खे औरसमाधियोगको न छोडे ॥४३॥ जो योगी मेरा आश्रय करके ऐसा योगाभ्यास करता रहेगा उसको कभी भी विघ्नोंसे पीडा नहीं होयगी, क्योंकि-सब विघ्नोंकी मूल इच्छा है, मेरी ओरको ध्यान हुआ कि—वह सब छूट जाती हैं और उसको आत्मसुखका अनुभव मिलता है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें अट्ठाविंश अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ छ ॥

उद्धवजीने कहा कि—हे अच्युत ! जिसने अपने चित्तको नहीं जीता है उन पुरुषोंके हाथसे यह योगसाधन होना मुझे अत्यन्त दुर्घट प्रतीत होता है इसकारण पुरुषको जैसे अनायासमें सिद्धि प्राप्त होय वह रीति मुझसे कहिये ॥ १ ॥ हे कमलनयन ! प्रायः मनको वशमें करनेके निमित्त योगीजन मनोनिग्रह करनेमें अत्यन्त ही उद्योग करते हैं तथापि वह वशमें नहीं होता तब थक कर विषादको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ अतएव हे कमललोचन ! सार असारका विचार करनेमें जो पुरुष चतुर

श्येश्वरारविन्दलोचन । सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥३॥ किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् । योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ ४ ॥ तं त्वाऽखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु । को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनुभूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥५॥ नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषाऽपि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः । योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति॥६॥श्रीशुक उवाच । इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः । गृहीतशक्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच । हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्

हैं, वह सकल आनन्द देने वाले तुम्हारे चरणकमलकी ही सुखसे सेवा करते हैं, योगाभ्यासके कारण और कर्माचरणके कारणसे अभिमानी होकर जो तुम्हारे चरणका आश्रय नहीं करते हैं उनको ही तुम्हारी माया मोहित करती है॥३॥हे अच्युत ! तुम सबोंके अन्तर्यामी और हितकर्त्ता हो, जिनके चरण रखनेके आसनपर ब्रह्मादि देवताओंके सुन्दर मुकुटोंके अग्रभाग घिसे जाते हैं (जिनके आगे ब्रह्मादि देवता मस्तक नमाते हैं) ऐसे तुमने रामावतारमें वानरोंके साथ मित्रता करी थी फिर जो अनन्यतावसे शरण आये उन नन्द गोपी व्रजआदि सेवकोंके तुम आधीन होकर रहे और उनके सकल कार्य सिद्ध करे, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? ॥ ४ ॥ तुम सकल जगत्के प्रवर्त्तक अन्तर्यामी अर्थात् अत्यन्त प्रिय और ईश्वर अर्थात् सेवा करने योग्य हो और तुम आश्रितोंको सकल इच्छित फल देते हो, फिर जिसको, ऐसे अन्तर्यामी रह कर करे हुए तुम्हारे उपकारोंका ज्ञान (खबर) है, ऐसा कौनसा पुरुष, भला तुम्हारी सेवा करना छोड़ देगा ? वह भी, तुम्हारी भक्ति, फल पानेकी आशासे करे, ऐसा अर्थ नहीं है तुम्हारे विना स्वर्गादि कोईसा भी फल मिले तो वह केवल इंद्रियोंको तृप्त करने वाला और परिणाममें तुम्हें विस्मरण करा देने वाला (भुला देने वाला) होता है, ऐसे अनर्थकारी फलके निमित्त तुम्हारी सेवा करनेमें कौन प्रवृत्त होयगा ? इसके सिवाय, जिन्होंने तुम्हारे चरणकी धूलिकी सेवा प्रारम्भ करी है ऐसे हमें न मिले ऐसा कौन पदार्थ है ? जो इच्छा होयगा वह फल अपने आप प्राप्त होजायगा ॥ ५ ॥ हे ईश्वर ! तुम प्राणियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे और बाहर श्रेष्ठ गुरुरूपसे रह कर विषयवासनारूपी अमङ्गलको दूर करते हो और उनको अपने स्वरूपका दर्शन देते हो, ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस तुम्हारे उपकारको स्मरण करते हैं और परमानन्दसे भरपूर रहते हैं, ऐसे ब्रह्मज्ञानी भी तुम्हारे उपकारोंका पलटा कभी नहीं चुका सकते (वह केवल तुम्हारे उपकारोंका नित्य ही स्मरण करते हैं) ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—जिनके मनमें भगवान्का परमप्रेम बसा हुआ था उन उद्धवजीने ऐसा प्रश्न करा, तब, सब जगत् जिनकी क्रीड़ाका साधन है और जो अपनी सत्त्वादि गुणमयी शक्तियोंसे विष्णु, ब्रह्मा और शिव इन तीन मूर्त्तियोंको धारण करते हैं वह देवाधिदेव प्रेमके साथ

सुमङ्गलान् । यान् श्रद्धया चरन् मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ॥ ८ ॥ कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् । मय्यर्पितमनश्चित्तो मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ ९ ॥ देशान्पुण्यान् संश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् । देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ॥ १० ॥ पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् । कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ॥ ११ ॥ मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् । ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ॥ १२ ॥ इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते । सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिंगके । अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥ १४ ॥ नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् । स्पर्धाऽसूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥ १५ ॥ विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् । प्रणमेद्दण्डवद् भूमावाश्वचांडालगोखरम् ॥ १६ ॥ यावत्सर्वेषु

मनोहर हास्य करते हुए उनसे कहने लगे ॥ ७ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि—हे तात उद्धवजी ! मैं तुमसे अत्यन्त सुखरूप अपने (भागवत) धर्म कहता हूँ, मृत्युको जीतना कठिन है, यह ठीक है परन्तु श्रद्धाके साथ इन धर्मोंका आचरण करने वाला जिस मृत्युको जीत लेता है ॥ ८ ॥ मनुष्य, मेरा स्मरण करताहुआ मेरे संतोष के निमित्त धीरे २ सब कर्मोंका आचरण करे संकल्पविकल्पात्मक मन और चित्त को मेरी ओर लगावे और भागवतधर्मोंके आचरणमें मनकी प्रीति रक्खे ॥ ९ ॥ जहाँ मेरे भक्त साधुजन रहते हैं उन पवित्र क्षेत्रोंका आश्रय करे, देवता दैत्य, मनुष्योंमें जो जो मेरे भक्त होगये हैं उनके आचरणकी समान आप भी वर्त्ताव करे ॥ १० ॥ इकला ही वा समूहके साथ मिल कर मेरी प्रीतिके निमित्त विशेष पर्वकी यात्रा वा महान् उत्सव करे, उससमय गान नाच आदि करे और राजाधिराजके योग्य ऐश्वर्य मुझे समर्पण करे ॥ ११ ॥ चित्तको निर्मल (विषयवासनाओं से रहित) रक्खे; और जैसे आकाश विश्वको भीतर बाहरसे व्याप्त करेहुए है और कहीं भी आसक्त नहीं होता है, तैसे ही सकल प्राणियोंमें और अपनेमें भी, भीतर और बाहर भी मैं ही व्याप रहा हूँ, मेरे स्वरूपकी मर्यादा नहीं है ऐसी दृष्टि रक्खे१२ हे महाज्ञानवान् ! इस प्रकार केवल ज्ञान दृष्टिका आश्रय रख कर जो पुरुष, सकल प्राणियोंको मेरा रूप मानता है और सत्कार करता है, वही पण्डित है यह बात्त सबको मान्य है इसकी दृष्टिमें ब्राह्मण वा चाण्डाल, ब्राह्मणोंके धनका छीननेवाला वा ब्राह्मणोंको दान देनेवाला, सूर्य वा अग्निकी चिनगारी शांत वा क्रूर ऐसे परस्पर विरोधी पदार्थ भी एकसमान ही होते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ उत्तम, मध्यम और हीन ऐसे सब ही मनुष्यमात्रके ऊपर नित्य मेरी भावना (ईश्वरबुद्धि) रखनेवाले पुरुषके द्वेष, असूया (दूसरेके गुणको दोष कहना), तिरस्कार और अहंकार यह धर्म दूर होजाते हैं १५ अपने मित्र, अपना हास्य करने लगें तो उधरका ध्यान न देय, और शरीरके ऊपर 'मैं अच्छा हूँ, यह बुरा है' ऐसी दृष्टि और उसके कारणकी लज्जाको छोड़कर, कुत्ते, चांडाल, बैल, गदहे इनपर्यंत सबोंको दंडवत् प्रणाम करे १६ जब तक समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना उत्पन्न होय तबतक वाणी, मन और शरीरके व्यापारों

भूतेषु मद्भावो नोपजायते। तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः ॥ १७ ॥ सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्ममनीषया। परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥१८॥ अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम। मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः १९ न ह्यंगोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि। मया व्यवसितः सम्यङ् निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ २० ॥ यो यो मयि परे धर्मः कल्पते निष्फलाय चेत्। तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१॥ एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्। यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति माऽमृतम् ॥ २२ ॥ एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः। समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ॥२३॥ अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत्। एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ॥ २४ ॥ सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत्। सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२५॥ य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम्। तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥२६॥ य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि। स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ २७ ॥ य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः। मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते २८

से ऐसी उपासना करता रहै १७ इस प्रकार आचरण करने वाले पुरुषको, सर्वत्र ईश्वरबुद्धि रखनेके कारण ज्ञान उत्पन्न होकर सब विश्वरूप दीखने लगता है, ऐसीबुद्धि होय और सब संशय छूटें कि-वह सकल क्रिया करना छोड़देय१८सकल प्राणियोंमें शरीर वाणी और मनके व्यापारोंसे ईश्वरबुद्धि रखना ही सब उपायोंमें उत्तम उपाय है ऐसा मेरा मत है ॥१९॥ हे उद्धवजी ! मेरे निष्काम धर्मके आचरण करनेका प्रारंभ करनेपर उसमें कुछभी वैगुण्य (गड़बड़ी) आदि उत्पन्न होकर हानि नहा होती है क्योंकि-इसही धर्मको निर्गुण होनेके कारण मैंने स्वयं ही उत्तम ठहराया है २० भागवतधर्मोंका नाश नहीं होता इनमें कुछ विशेषता नहीं है, क्योंकि हे साधुवर्य ! भयका अवसर आनेपर भागना, शोकके समय विलाप करना, आदि व्यवहारका निरर्थक परिश्रम भी यदि परब्रह्मरूप मुझे निष्कामबुद्धिसे अर्पण किया जाय तो वह धर्म ही होता है २१ बुद्धिमान् पुरुषोंका विवेक यही है और चतुरोंकी चतुराई भी यही है कि-इस जन्ममें असत्य और नाशवान् शरीरसे सत्य और अविनाशी सुखरूप मेरी प्राप्ति करलेना २२ यह ब्रह्मविद्याका संग्रह मैंने तुमसे संक्षेपसे और विस्तारसे वर्णन करा, यह देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ २३ ॥ तुमसे, अत्यन्त स्पष्ट युक्तियों सहित ज्ञान वारम्वार कहा इसको समझने पर संशय छूटकर पुरुष मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ पूरा २ स्पष्ट करके मेरे, तुमसे कहेहुए इस प्रश्न (इस सम्वादरूप आख्यान) को जो धारण करेगा, वह भी सनातन सर्वव्यापी गुह्य परब्रह्मको प्राप्त होगा ॥ २५ ॥ जो पुरुष मेरी भक्तमण्डलीमें इसका पूरे विस्तारके साथ वर्णन करेगा उसब्रह्मका उपदेश करने वालेको मैं आत्मज्ञान दूँगा२६ जो इस परम पवित्र और श्रोताओंको शुद्ध करने वाले सम्वादका प्रतिदिन ऊँचे स्वरसे पाठ करे वह ज्ञानरूप दीपक दिखाकर लोकोंको मेरा दर्शन कराने वाला पुरुष पवित्र हो जाता है ॥ २७ ॥ जो मुझमें दृढ भक्ति रखकर चित्तको व्यग्रतारहित रख कर यह

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् । अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥ २९ ॥ नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च । अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ॥ ३० ॥ एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च । साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ ३१ ॥ नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते । पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ॥ ३२ ॥ ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे । यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥३३॥ मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे । तदाऽमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥ ३४ ॥ श्रीशुक उवाच । स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य । बद्धाञ्जलिः प्रत्युपरुद्धकण्ठो न किञ्चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥३५॥ विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन्बहु मन्यमानः । कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥ ३६ ॥ उद्धव उवाच । विद्रावितो मोहमहान्धकारो य

सम्वाद श्रद्धासे नित्य सुनता है उसको कर्मसे बन्धन नहीं प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ हे सखा उद्धवजी ! क्या आपको ब्रह्मका बोध भलीप्रकार निश्चित होगया? तुम्हारा मोह और मनमें प्रकट होनेवाला यह शोक दूर हुआ या नहीं ! ॥२९॥ यह उपदेश, पाखण्डोंको नास्तिकको, धोखा देनेवालेको, सुननेकी इच्छा न करने वालेको, भक्तिरहित और नम्रतारहित पुरुषको तुम कभी नहीं सुनाना ॥ ३० ॥ यह दोष जिसके शरीरमें न हों उसको ब्राह्मणोंके हितकारीको, साधुको, पवित्र पुरुषको और भक्तियुक्त हों तो शूद्रोंको और स्त्रियोंको भी इसका उपदेश करना ॥३१॥ मधुर अमृत पीलेने पर कुछ पीने योग्य शेष नहीं रहता है क्योंकि—उससे आगे कोई पीने योग्य पदार्थ ही नहीं है तैसे ही इस ज्ञानको पाकर जिज्ञासु पुरुषको कुछ जानना शेष नहीं रहता है ॥ ३२ ॥ हे तात उद्धवजी ! ज्ञान होनेपर मोक्ष पाना, कर्मानुष्ठान करनेपर धर्म साधना, योगाभ्यास करनेपर सिद्धि पाना, खेती व्यापार आदि करनेपर धन प्राप्त करना और दण्डनीतिका प्रयोग करके ऐश्वर्य पाना ऐसे, मनुष्योंको जो लोकमें चार प्रकारका पुरुषार्थ सिद्ध होता है वह सब तुम्हारा, मैं ही हूँ, अनन्यभावसे मेरी शरण आते ही सब पुरुषार्थ सिद्ध होजाते हैं ॥ ३३ ॥ क्योंकि-मनुष्य, जिस समय सब क्रियाओंको छोड़कर अपना आपा मुझे अर्पण कर देता है तब मुझे उसको विशेष योग्यताको पहुँचाना आवश्यक होता है अर्थात् उसको मोक्ष तो मिलता ही है और अन्तमें वह मेरी समान ऐश्वर्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥३४॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-भगवान्ने उद्धवजीको इसप्रकार योगमार्ग दिखा दिया, पवित्रकीर्त्ति ईश्वरका भाषण सुनकर उनका कण्ठ प्रेमके कारण रुकगया उन्होंने हाथ जोड़े, उनके नेत्र आँसुओंसे भरआये परन्तु मुखमेंसे एक भी शब्द बाहर न निकला ॥३५॥ हे राजन् ! फिर उन्होंने, प्रेमसे क्षुभित हुए चित्तको धीरजसे स्थिर करा, उनको प्रतीत हुआ कि-मैं कृतार्थ होगया, फिर वह यदुवर श्रीकृष्णजीके चरणकमल पर मस्तक रखकर और हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे ॥ ३६ ॥ उद्धवजीने कहा कि—हे ब्रह्माजीके जनक ! मैं मोहरूप प्रबल

आश्रितो मे तव सन्निधानात्। विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमो भीः प्रभवंत्यजाद्य ॥३७॥ प्रत्यर्पितो मे भवताऽनुकंपिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः। हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ॥ ३८ ॥ वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु। प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ ३९ ॥ नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्। यथा त्वच्चरणांभोजे रतिः स्यादनपायिनी ॥ ४० ॥ श्रीभगवानुवाच। गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम्। तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ॥ ४१ ॥ ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः। वसानो वल्कलान्यंग वन्यभुक्सुखनिःस्पृहः ॥ ४२ ॥ तितिक्षुर्द्वंद्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः। शांतः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥४३॥ मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन्। मय्यावेशितवाक्चित्तो मद्धर्मनिरतो भव। अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥४४॥ श्रीशुक उवाच। स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः। शिरो

अन्धकारका आश्रय करेहुए था, परन्तु वह अन्धकार आपके समागमसे दूर हो गया, जो सूर्यके समीप प्राप्त होगया उसको, शीत वा अन्धकारके भय क्या पीड़ा देसकते हैं ? ॥ ३७ ॥ आपने दयालु होकर मुझ भक्तको अपना ज्ञानमय दीपक फिर लौटाकर दिलवा दिया (पहिले मैं ज्ञानमय ही था परन्तु मध्यमें तुम्हारी मायाने वह ज्ञानमय दीपक हर लिया था वह तुमने फिर दिलवा दिया) जिसको उपकारों का ज्ञान है वह कोई भी पुरुष तुम्हारे चरणतलको छोड़कर दूसरेकी शरण नहीं जायगा ॥ ३८ ॥ तुमने सृष्टिको बढ़ानेके निमित्त अपनी मायाके द्वारा स्नेहरूप पाशको फैला रक्खा है, मेरा वह स्नेहपाश दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वत इन कुलोंपर अतिदृढतासे जड़ाहुआ था, उसको तुमने आत्मज्ञानरूप शस्त्रसे काट डाला ॥ ३९ ॥ हे महायोगिन् ! तुम्हें नमस्कार हो, मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, तिससे मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये कि-जिससे तुम्हारे चरणकमलों पर निश्चल भक्ति रहे ॥४०॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे उद्धवजी ! मेरी तुमको आज्ञा है कि-तुम मेरे बदरिकाश्रममें जाओ, तहाँ मेरे चरणके तीर्थरूपी जलसे स्नान और आचमन आदि करके शुद्ध होओ ॥४१॥ स्नानसे पहिले ही अलकनन्दा (गङ्गा) के दर्शनसे तुम्हारे सब पातक नष्ट होजायँगे, हे तात ! फिर तुम तहाँ वल्कल पहरकर और वनमेंके फल मूल आदि भक्षण करके रहो, इस लोकके सुखकी इच्छा कुछ भी न रक्खो ॥४२ सरदी गरमी, लाभ हानि, जीत हार आदि द्वन्द्वोंमेंसे किसीका भी अवसर आवे तो सहन करते जाओ, स्वभाव सरल रक्खो, इन्द्रियोंको वशमें रक्खो, बुद्धिको एकाग्र करके चित्त स्वच्छ होने दो, प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञानको प्राप्त करो ॥ ४३ ॥ मुझसे तुमने जो कुछ सीखा है उसका निरन्तर विचार और चिन्तवन करते रहो, वाणी और चित्त मेरी ओर लगाकर भगवत्सम्बन्धी धर्मोंके आचरणमें तत्पर रहो तब तुम त्रिगुणमयी गतिको लाँघकर परब्रह्मरूप मुझको प्राप्त होओगे ॥ ४४ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् ! जिनमें स्थिर करी हुई बुद्धि संसारका नाश

निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वंद्वपरोऽप्युपक्रमे ॥४५॥ सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः । कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥ ४६ ॥ ततस्तमंतर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् । यथोपदिष्टां जगदेकबंधुना ततः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ॥ ४७ ॥ य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् । कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयासेव्य जगद्विमुच्यते ॥४८॥ भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् । अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

राजोवाच । ततो महाभागवते उद्धवे निर्गते वनम् । द्वारवत्यां किमकरोद्भग-

---

करती है, उन भगवान्ने उद्धवजीको ऐसी आज्ञा दी, तब जानेको उद्यत हुए उन्होंने; श्रीकृष्णजीकी प्रदक्षिणा करके चरणों पर मस्तक रक्खा, उन्होंने सुखदुःखादि द्वन्द्वोंको छोड दिया था तथापि इस अवसर पर अन्तःकरण भर आया और उन्होंने आँसुओंके प्रवाहसे भगवानके चरणोंको भिगोया ॥ ४५ ॥ जिन प्रभुके ऊपरका स्नेह त्यागना अति कठिन है उनका ही विरह होनेसे वह अति व्याकुल हुए, इस कारण एक साथ श्रीकृष्णजीको छोड़कर जाना उनको अति असह्य प्रतीत हुआ, अन्तमें स्वामीकी पादुका मस्तक पर रखकर और उनको वारम्वार नमस्कार करके वह तहाँसे चलेगये ॥ ४६ ॥ फिर वह परमभगवद्भक्त उद्धवजी भगवान्को हृदयमें रखकर (ध्यान करके) बदरिकाश्रमको गये, और तहाँ भगवद्धर्मोका आचरण करके, जगत्के अद्वितीय हितकारी (श्रीकृष्णजी)ने पहिले (इस अध्यायके चौतीसवें श्लोकमें) जो उपदेश करी थी उस श्रीहरिकी गतिको प्राप्तहुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंने जिनके चरणोंकी सेवा करी ऐसे श्रीकृष्णजीने, उद्धवजीको जिस ज्ञानामृतका उपदेश करा वह ज्ञानामृत भगवद्भक्तिके मार्गसे भिन्न नहीं है,किन्तु एक ही है जिस मनुष्यको इस ज्ञानामृतकी थोडीसी भी प्राप्ति होयगी वह मनुष्य अपने आप मुक्त होजायगा इसका तो कहना ही क्या ? क्योंकि—उसकी सङ्गतिसे सारा ही जगत् मुक्त होजायगा ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—जैसे भौंरा पुष्पोंको दुःख न देकर उनमेंके मकरन्दको ग्रहण करता है तैसे ही वेद उपनिषदुको रचने वाले भगवान्ने, उस वेदमें विरोध न आने देकर उसमेंसे ज्ञानके अनुभवरूप उत्तम सार (ज्ञानामृत) को ग्रहण करा, और निवृत्तिमार्गमेंके सेवकोंको उसका उपदेश करके उनको संसारके दुःखोंसे छुटाया और समुद्रको मथकर उसमेंसे अमृत निकाल कर प्रवृत्तिमार्गमेंके सेवकोंको पिलाया जिससे उनके जरा रोगादिके दुःख को दूर करा ऐसे श्रेष्ठ पुराण पुरुष श्रीकृष्णजीको नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादशस्कन्धमें एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

राजाने कहा कि—फिर परमभगवद्भक्त उद्धवजीके वनको चलेजाने पर प्राणिमात्रकी रक्षा करनेवाले भगवान्ने द्वारकामें क्या करा? ॥१॥ अपने कुलको ब्राह्मणों

वान् भूतभावनः ॥ १ ॥ ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः । प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥ २ ॥ प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् । यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान् समुत्थितान् दृष्ट्वासीनान् । सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ४ श्रीभगवानुवाच । एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः । मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शंखोद्धारं व्रजन्त्वितः । वयं प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥ ६ ॥ तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः । देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥ ७ ॥ ब्राह्मणांस्तु महाभागान् कृतस्वस्त्ययना वयम् । गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥ ८ ॥ विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् । देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥ ९ ॥ इति सर्वे समा-

के शापसे ग्रसित होजाने पर, सब इन्द्रियोंको अतिप्रिय अपने देहका यादवाधिपति (प्रभु) ने त्याग कैसे करा ? इस प्रश्नका तात्पर्य यह है कि-प्रभुको पीड़ा देनेको शाप तो समर्थ हो नहीं सकता था फिर यादवोंका अनुकरण करनेवाले भगवान्ने शापका निर्वाह कैसे करा ? ॥ २ ॥ जिन भगवान्की ओरको टकटकी बाँध कर लगी हुई दृष्टि, स्त्रियोंको दूसरी ओरको नहीं फिरने देती थी, जिसका वर्णन साधुजन सुनने लगते थे तो उनके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर रहता था और तहाँसे हिलता नहीं था, जिस रूपकी शोभाको कवि वर्णन करने लगते थे तो उनको अति प्रेम उत्पन्न होकर जगत्में श्रेष्ठता प्राप्त होता है ? युद्धके अवसरमें रथपर बैठे हुए भगवान्के जिस रूपकी ओरको देखकर मरणको प्राप्त होनेवालोंको उस रूपकी सारूप्यता प्राप्त हुई ऐसे रूपका प्रभुने किस प्रकार त्याग करा ? ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि-आकाशमें सूर्यके चारों ओर घेरा आदि, भूमि पर भूकम्प आदि और अन्तरिक्षमें दिशाओंका दाह आदि अतिभयानक बड़े २ उत्पात होनेलगे, ऐसा देखकर श्रीकृष्ण भगवान् सभामें बैठे हुए यादवोंसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्ने कहा कि-हे श्रेष्ठ ! यादवो ! इस समय इस द्वारकामें अतिभयानक बड़े २ उत्पात होने लगे, यह उत्पात यमराजकी ध्वजा समान हैं, इनसे प्रतीत होता है कि-मृत्यु आने वाला है अब आप मुहूर्त्तभर भी यहाँ न रहैं ॥ ५ ॥ स्त्री, बालक और बूढ़ोंको शंखोद्धारको भेजदो और हम सब मिलकर प्रभासतीर्थको चले जायँगे, जहाँ पश्चिमको बहनेवाली सरस्वती नदी है ॥६॥ उस तीर्थमें स्नान कर पवित्र होकर और निराहार रहकर सावधान अन्तःकरणसे देवताओंके ऊपर अभिषेक करेंगे और गन्ध धूप आदि सामग्रीसे पूजा करेंगे ॥ ७ ॥ प्राप्त होनेवाले अरिष्टकी महातपस्वी ब्राह्मणोंसे शान्ति करवा कर तिन ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ; और घर देकर उनकी पूजा करेंगे ॥ ८ ॥ यह रीति सब अरिष्टोंको दूर करने वाली और उत्तम कल्याणकारक है और ऐसी है कि-देवता, ब्राह्मण, गौओंकी पूजा करनेपर सकल प्राणियोंमें उत्पत्ता प्राप्त होती है,

कर्ण्यं यदुवृद्धा मधुद्विषः । तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥ १० ॥ तस्मिन् भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः । चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥ ११ ॥ ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु । दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः १२ महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम् । कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥ १३ ॥ युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः । धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥ १४ ॥ पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि । मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदा न्यहन् शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥ १५ ॥ प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी । सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥१६॥ अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः । अन्योऽन्यमासाद्य मदांधकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम्१७ दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः । विसर्जनाः कुकुराः

इसका तात्पर्य यह है कि-प्राप्तहुए अरिष्टका निवारण नहीं हुआ तो देवलोकमें उत्तमजन्म प्राप्त होयगा ॥९॥ इस प्रकार मधु दैत्यके शत्रु (श्रीकृष्ण)का भाषण सब वृद्ध यादवोंने सुनकर हे कृष्ण ! जो तुम कहते हो यह ठीक है ऐसा कहा, तथा वह सब नौकामें बैठकर समुद्रको उतरे और रथोंमें बैठकर प्रभासतीर्थको गये १० तहाँ सब यादवोंने इकट्ठे होकर यदुपति भगवान्की कही हुई वह सब अरिष्टको दूर करने वाली रीति कुछ कमती न करके बड़ी भक्तिके साथ पूर्ण करी ॥ ११ ॥ फिर तहाँ जिनकी बुद्धिको प्रारब्धने उलट दिया था उन यादवोंने जिस मद्यरस से बुद्धिभ्रष्ट होती है ऐसे मैरेयक नाम वाले सुरसमद्यको यथेष्ट पिया ॥१२॥ बड़े अभिमानी वह वीर बहुतसा मद्य पीनेसे मत्त और श्रीकृष्णजीकी मायासे मूढ़ हो-गये, इस कारण उनका परस्पर बड़ा कलह बढ़ा ॥ १३ ॥ उस समय वह यादव क्रोधसे भर कर मारनेको उद्यत होते हुए, धनुष, तरवार, भाला, गदा, तोमर, ऋष्टि इन शस्त्रोंको लेकर समुद्रके तट पर युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ मदोन्मत्त हुए वह यादव, जिनके ऊपर पताका स्थानसे हट कर इधर उधरको हल रही हैं ऐसे रथ, हाथी, गधे, ऊँट, बैल, भैंसे, मनुष्य और खच्चरोंको परस्पर भिड़ा कर बाणोंसे परस्पर ऐसे प्रहार करने लगे जैसे वनमें हाथी परस्पर दाँतोंसे प्रहार करते हैं १५ प्रद्युम्न और सांब, अक्रूर और भोज, अनिरुद्ध और सात्यकि, सुभद्र और संग्रामजित्, गद नाम वाला श्रीकृष्णजीका भ्राता था वह और श्रीकृष्णजीका पुत्र गद, सुमित्र और सुरथ, उनको परस्पर क्रोध आगया और परस्पर डट गये ॥ १६ ॥ और अन्य जो निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित्, भानु आदि वीर थे वह भी मदिरा पीनेके मदसे आपसमें भिड़ कर, तमोगुणके कारण अत्यन्त क्रोधके वशमें होकर एक दूसरेको मारने लगे, क्योंकि-श्रीकृष्णजीने ही उनको मोहित करदिया था ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, विसर्जन, कुकुर और कुन्ति वंशके तथा अर्बुद, माथुर और शूरसेन इन देशोंके वह सब वीर मित्रभाव को छोड़ कर परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ पिताके ऊपर पुत्र, भाईके ऊपर भाई

कुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥ १८ ॥ पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः । मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥ १९ ॥ शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु । शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥ २० ॥ ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः । जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते ॥ २१ ॥ प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः । हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥ २२ ॥ अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन । एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि॥२३॥ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् । स्पर्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवोऽग्निर्यथा वनम् ॥ २४ ॥ एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः । अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः॥२५॥ रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् । तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥२६॥ रामनिर्याणमालोक्य भगवान् देवकीसुतः । निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥२७॥ बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया । दिशो वितिमिराः कुर्वन् विधूम इव पावकः ॥ २८ ॥ श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् ।

भानजेके ऊपर मामा, धेवतेके ऊपर नाना, चचाके ऊपर भतीजा, मामाके ऊपर भानजा, मित्रके ऊपर मित्र, सुहृदोंके ऊपर सुहृद, और जातिके ऊपर जाति वाले, मूढ़ होकर प्रहार करने लगे ॥ १९ ॥ इस प्रकार उन यादवोंके प्रहार करने पर कुछ ही समयमें उनके बाण निबड़ गये, मनुष्य कट गए, और शस्त्र खुटले होगए तब उन्होंने मुट्ठियोंमें समुद्रके किनारेकी पतेल ली ॥ २० ॥ उस समय उनकी मुट्ठियों में लीहुई वह पतेल वज्रसमान लोहेके दण्डेसी होगईं सो वह उनसे ही प्रहार करने लगे, उस समय श्रीकृष्णजीने उनको रोका परन्तु वह श्रीकृष्णजीके ऊपर भी प्रहार करने लगे ॥ २१ ॥ हे राजन्! मूढ़ हुए वह यादव, बलरामजीको शत्रु मान उनको मारनेका निश्चय करके और मारनेको उद्यत होकर उनके समीप गये ॥२२॥ हे कुरुनन्दन! फिर बलराम और कृष्ण यह दोनों भी, अतिक्रोधमें भर कर लोहेके दण्डेकी समान पतेलोंको मुट्ठीसे उखाड़ कर तिस युद्धमें फिरते हुए मारनेको फैले ॥ २३ ॥ वह यादव, ब्राह्मणोंके शापसे ग्रस्त हुए और श्रीकृष्णजीकी मायासे मोहित थे इस कारण उनके चित्तमें स्पर्धासे क्रोध उत्पन्न हुआ उस क्रोधने उनके कुलका ऐसे विध्वंस करडाला जैसे बाँसोंकी रगड़से उत्पन्न हुआ अग्नि उन बाँसों के ही वनको भस्म कर डालता है ॥ २४ ॥ इस प्रकार अपने सब कुलके नष्ट होने पर भगवान् श्रीकृष्णजीने, शेष रहे हुए भूमिके भारको उतरा हुआ जाना ॥ २५ ॥ बलरामजी समुद्रके तट पर, पौरुषयोग (परमपुरुषके ध्यान) को धारण करके और परमात्मामें मनको लगा कर भूलोक वा मनुष्यदेहको छोड़ गये ॥ २६ ॥ इस प्रकार बलरामजीके निर्याणको देख कर भगवान् देवकीपुत्र, पीपलके वृक्षके नीचे जाकर भूमि पर स्वस्थ बैठ गये ॥ २७ ॥ उस समय भगवान्ने चतुर्भुजरूप धारण करा था, भगवान्का रूप अत्यन्त दमकता हुआ होनेके कारण उसकी कांतिसे दशों दिशाओंका अन्धकार ऐसे दूर होगया जैसे धूमरहित अग्निके जलने पर उसको

कौशेयांबरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ॥२९॥ सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमंडितम्। पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३० ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकांगदैः । हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ॥ ३१ ॥ वनमालापरीतांगं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः । कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पंकजारुणम् ॥ ३२ ॥ मुसलावशेषायःखण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा । मृगस्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशंकया ३३ चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः । भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ३४ अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन । क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेनघ ३५ यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वांतनाशनम् । वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥ ३६ ॥ तमाशु जहि वैकुण्ठ पाप्मानं मृगलुब्धकम् । यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥३७॥ यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिंचो रुद्रादयोऽस्य तनयाः

कान्तिसे अन्धकार दूर होजाता है ॥ २८ ॥ भगवान्के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न था, भगवान्का स्वरूप सजल मेघमण्डलकी समान श्यामवर्ण और उनकी कान्ति अग्निमें तपाए हुए सुवर्णकी समान थी, दो पीताम्बरोंसे शोभित भगवान्का रूप अत्यन्त ही सुन्दर दीखता था ॥ २९ ॥ सुन्दर और कुछ एक मुसकुरानयुक्त जिनका मुखकमल, नीलवर्णके केशोंसे भूषित, सफेद कमलकी समान सुन्दर जिसमें नेत्र और जिसमेंके कर्णोंमें मकराकार कुण्डल शोभायमान थे ॥ ३० ॥ कमरमें तागड़ी, कण्ठमें यज्ञोपवीत, मस्तक पर किरीट, हाथोंमें कड़े, भुजदण्डोंमें बाजूबन्द कण्ठमें हार, चरणोंमें नूपुर, अंगुलियोंमें अँगूठी छल्ले, कण्ठमें कौस्तुभमणि इनसे भगवान्का स्वरूप अतिशोभायमान था ॥ ३१ ॥ उनका शरीर वनमालासे ढका हुआ था, उनके पास शस्त्र मूर्त्तिमान् थे, ऐसे वह भगवान् कमलकी समान अरुण वर्ण बायाँ चरण दाहिनी जङ्घा पर रख कर बैठ हुए थे ॥ ३२ ॥ पहिले यादवोंने मूसलको रेत कर शेष रहा हुआ थोड़ासा टुकड़ा फैंक दिया था, वह टुकड़ा जरा नामक व्याधेको, पकड़े हुए मच्छके पेटमें मिला और उसने उसका बाणके आगेका फलका बना लिया था उस व्याधेने भगवान्के चरणकमलको दूरसे देखा सो उसको तिस चरणका आकार हरिणके चरणकी समान दीखा और 'यह मृग है' ऐसा समझ कर उसको तिस बाणसे वेधदिया ॥ ३३ ॥ फिर व्याधा आगे आया तो चतुर्भुज पुरुष श्रीकृष्ण हैं ऐसा देख कर अपराध होनेके कारण अति भयभीत हुआ और उसने भगवान्के चरणकमल पर मस्तक रक्खा ॥ ३४ ॥ और प्रभुका चरण पकड़ कर वह व्याधा कहने लगा कि-हे भगवन् ! हे मधुसूदन ! इस पापीके हाथसे अनजानमें यह वार्त्ता हुई है, हे उत्तमश्लोक ! हे निष्पाप ! मैं परम अपराधी हूँ, आपको मेरा अपराध क्षमा करना उचित है ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! हे नारायण ! जिनका स्मरण करने पर मनुष्यका अज्ञानरूपी अन्धकार दूर होता है ऐसा पण्डित कहते हैं, ऐसे आपका मैंने बड़ा अनिष्ट करा है ॥ ३६ ॥ हे वैकुण्ठ ! हे भगवन् ! मैं मृगका लोभी और बड़ा पापी हूँ, मुझे तुम शीघ्र ही दण्ड दो, कि-जिससे मैं ऐसा महात्माओंका अपराध फिर कभी न करूँ ॥ ३७ ॥ तुम्हारी माया

पतयो गिरां ये । त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥३८॥ श्रीभगवानुवाच । मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे । याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥ ३९ ॥ इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा । त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥ ४० ॥ दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् । वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥४१॥ तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् । स्नेहाप्लुतात्मा निपपात पादयोरथादवप्लुत्य सबाष्पलोचनः ॥४२॥ अपश्यतस्त्वच्चरणांबुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा । दिशो न जाने न लभे च शांतिं यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥४३॥ इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः । खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः॥४४ तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च । तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥ ४५ ॥ गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः । संकर्षणस्य निर्याणं बंधुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥ ४६ ॥ द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिः स्वस्वबंधुभिः । मया

के रचे हुए इस जगत्को ब्रह्माजी, ब्रह्माजीके रुद्र आदि पुत्र और वेदवेत्ता ऋषि नहीं जानते हैं, क्योंकि-इनकी दृष्टि, तुम्हारी ही मायासे ढकी हुई है; फिर जिन का जन्म निःसन्देह पापमय है ऐसे हम तुम्हारे ब्राह्मणशाप आदिका क्या वर्णन करें (इस कारण शीघ्र ही मेरा वध करो) ॥ ३८ ॥ भगवान्ने कहा हे जरा! तू भयभीत न हो, तूने मेरी इच्छा पूर्ण करी है अब मेरी आज्ञा दिया हुआ तू पुण्यवानोंके स्थान स्वर्गको जा ॥ ३९ ॥ अपनी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्णजीके ऐसी आज्ञा देने पर वह व्याधा श्रीकृष्णजीकी तीन प्रदक्षिणा करके विमानमें बैठ कर स्वर्गलोकको चला गया ॥४०॥ दारुक (सारथी) श्रीकृष्णजीका मार्ग ढूँढता फिरता था, सो उसको वह मार्ग मिल गया तब वह, जिस दिशासे तुलसीकी सुगन्धयुक्त वायु आरहा था उधरको मुख करके उस सुगन्धको सूँघता हुआ आगेको चला॥४१॥सो पीपलकी जड़का आश्रय करके बैठहुए और जिनके चारों ओर परमतेजस्वी शस्त्र हैं ऐसे अपने स्वामी श्रीकृष्णजी उसकी दृष्टि पड़े प्रेमके कारण उसका अन्तःकरण भर आया और नेत्रोंमें आँसुओंके बिंदु आगये, वह रथमेंसे कूद कर भगवान्के चरणों पर आकर गिरा और कहने लगा कि-॥ ४२ ॥ हे भगवन् ! तुम्हारे चरणकमलको न देखनेके कारण मेरी दृष्टि नष्ट होकर अज्ञानमें प्रविष्ट होगई, रात्रिमें चन्द्रमाका लोप होजाने पर जैसी दशा होती है तैसेही मुझे दिशाओंका ज्ञान नहीं होता है और कहींभी शांति नहीं मिलती है४३ हे राजेन्द्र ! सारथीके ऐसा कहने पर, गरुडजीके चिन्हसे युक्त वह रथ घोड़े और ध्वजाओं सहित, दारुकके देखते हुए आकाशको उड़ गया ॥ ४४ ॥ उसके पीछे विष्णुभगवान्के दिव्य अस्त्र आकाशमेंको चले गये, यह दशा देख कर दारुकको बड़ा आश्चर्य हुआ तब श्रीकृष्णजी दारुकसे कहने लगे कि-॥ ४५ ॥ हे सारथी ! द्वारकामें जा और ज्ञातियोंका आपसमें युद्ध करके मरना, बलरामजीका योगमार्गसे निर्याण और मेरी यह दशा, सब वार्त्ता बान्धवोंसे कह दे ॥ ४६ ॥ और कह दे

त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥ ४७ ॥ स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः । अर्जुनेनाविताः सर्वं इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥४८॥ त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः । मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥ ४९ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः । तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥५०॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ३०

श्रीशुक उवाच । अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः । महेंद्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥ १ ॥ पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । चारणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥ २ ॥ द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः । गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥३॥ ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः । कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥४॥ भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः । संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥५॥ लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् । योगधारणयाऽऽग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्व-

कि-तुम अपने बान्धवों सहित द्वारकामें न रहो, क्यों कि-मेरी त्यागी हुई इस यदुपुरीको समुद्र डुबावेगा ॥ ४७ ॥ सब जने अपने २ परिवार और मेरे माता पिताको साथ लेकर अर्जुनसे अपनी रक्षा कराते हुए इन्द्रप्रस्थको जाओ ॥ ४८ ॥ तुम तो पुत्रधन आदिमें उदासीन होकर ज्ञानको प्राप्त करनेमें ध्यान लगाओ, मेरे प्यारे भागवत धर्मोका आचरण करते रहो, और यह सब विश्वरचना माया को करी हुई है ऐसा जान कर शान्ति पाओ ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजीके ऐसा कहने पर दारुकने उनको प्रदक्षिणा करके बारंर नमस्कार करा और उनके चरणोंको मस्तक में लगाकर खिन्न होताहुआ वह द्वारकाको चला गया ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें त्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ छ ॥ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-तदनन्तर तहाँ ब्रह्माजी, भवानी सहित शिवजी और महेन्द्र देवता तथा प्रजा-पतियों सहित मुनि तहाँ आये ॥ १ ॥ पितर, सिद्ध, गन्धर्व विद्याधर, बड़े २ सर्प, चारण यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, गरुडलोकके निवासी ॥ २ ॥ भगवान्का निर्याण देखनेके निमित्त अति उत्कण्ठित होकर तहाँ आये, और गान करते हुए श्रीकृष्णजीके अवतार तथा चरित्र वर्णन करने लगे ३ हे राजन् ! परम भक्तिमान् उन सबोंने, फूलोंकी वर्षा करी और विमानोंकी पङ्क्तियोंसे आकाशको भर दिया ॥४॥ भगवान्ने ब्रह्माजीकी ओरको तथा इन्द्रादि अपनी विभूतियोंकी ओरको देख कर परमात्मरूपमें अपने चित्तको एकाग्र करके अपने कमलकी समान नेत्रोंको मूँद लिया अर्थात् समाधि लगानेके निमित्तसे नेत्र मूँद लिये ॥ ५ ॥ लोकोंको सब प्रकार आनन्द देने वाले, धारणाके द्वारा ध्यान करनेके उत्तम विषय ऐसे अपने शरीरको, अग्निकी योगधारणासे भस्म न करके भगवान् अपने लोकको गये, योगी पुरुषोंकी स्वच्छन्द मृत्यु होती है परन्तु वह अग्निकी योगधारणासे शरीरको भस्म करके परलोकको जाते हैं, भगवान्ने भक्तजनोंको ध्यान करनेको मिले साक्षात् दर्शन होय इस निमित्तसे अपने शरीरको

क्रम्॥६॥दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात्। सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥ ७ ॥ देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि। अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥ ८ ॥ सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम्। गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥ ९ ॥ ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः। विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥ १० ॥ राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य। सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतः स आस्ते ॥ ११ ॥ मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम्। जिग्येऽन्तकान्तकमपीशमसावनीशः किं स्वावने स्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥ १२ ॥ तथाप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक्। नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ॥१३॥

भस्म नहीं करा, भक्तजन अब भी उस मूर्त्तिका ध्यान करते हैं और उनको साक्षात्कार भी होता है ॥ ६ ॥ उस समय स्वर्गमें नौबत बजी, आकाशमेंसे फूलोंकी वर्षा हुई, श्रीकृष्णजीके पीछे सत्य, धर्म, धीरज, कीर्त्ति और लक्ष्मी यह भी भूमि परसे चली गईं ॥ ७ ॥ जिनकी गति किसीकी समझमे नहीं आती वह श्रीकृष्णजी अपने धाममें प्रविष्ट होते हुए ब्रह्मादि देवताओंको दीखे नहीं इस कारण वह अति आश्चर्यमें होगये ॥ ८ ॥ जैसे आकाशमें बिजली मेघमण्डलको छोड़ कर जाती है तो उसकी गति मनुष्योंकी समझमें नहीं आती है तैसे ही श्रीकृष्णजीकी गति देवताओंकी समझमें नहीं आई ॥ ९ ॥ वह ब्रह्माजी शिवजी आदि श्रीहरिकी गति को देख कर विस्मयमें हुए और उसका बखान करते हुए अपने २ लोकको चले गये ॥ १० ॥ हे राजन्! परमेश्वरने यादवोंमें शरीर धारण करके उसको गुप्त रक्खा और उससे उन्होंने अनेकों लीला करीं, इस सबको, जैसे नट स्वांग भरता है तैसे उनका मायाके द्वारा करा हुआ अनुकरण जानो, वह स्वयं इस विश्वको उत्पन्न करके इसमें प्रविष्ट होतेहुए विहार करते हैं और अन्तमें संहार करके अपनी महिमासे उपरामको प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जो मनुष्यशरीरसे, यमलोकमें पहुँचे हुए गुरुके पुत्रको लौटा कर लाये, जिन शरणागतोंकी रक्षा करने वाले ने ब्रह्मास्त्रसे भस्म हुए तुम्हारी रक्षा करी, जिन्होंने मृत्युके भी मृत्यु ऐसे शिवजीको भी जीत लिया और जो व्याधेको देहसहित स्वर्गको लेगये वह क्या अपने शरीरकी रक्षा नहीं कर सकते थे? किन्तु कर सकते थे ॥ १२ ॥ तो फिर वह कुछ काल पर्यन्त यहाँ क्यों नहीं रहे? ऐसा कहो तो सुनो—यद्यपि पूर्वोक्त प्रकारसे वह प्रभु जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेमें स्वतन्त्र कारण हैं, क्योंकि—वह सर्वशक्तिमान् हैं तथापि यादवोंका संहार करने पर अपने बचे हुए शरीरको यहाँ रखनेकी इच्छा नहीं करी, क्योंकि—आगेको मनुष्यशरीरसे कोई कार्य करना शेष नहीं था और उन्हें आत्मनिष्ठ पुरुषोंको दिव्यगति दिखानी थी अर्थात् जो मैं अपने शरीरको यहाँ अविचल रक्खूँगा तो आत्मनिष्ठ पुरुष भी दिव्यगतिका अनादर करके देह को अविचल रख कर यहीं रमण करनेका उद्योग करेंगे तो अति अनुचित होगा,

-य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम्। प्रयतः कीर्तयेद्भक्त्या तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ १४ ॥ दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः। पतित्वा चरणावस्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ॥१५॥ कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप। तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्छिताः ॥१६॥ तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः। व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ॥१७॥ देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ। कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ॥ १८ ॥ प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः। उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ॥ १९ ॥ रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन्। वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं प्रद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः। कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥२०॥ अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः। आत्मानं सांत्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥ २१ ॥ बंधूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम्। हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात्। वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् २३ नित्यं सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः। स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम्२४

ऐसे विचारसे भगवान्ने अपने शरीरको यहाँ नहीं रक्खा ॥ १३ ॥ जो पुरुष, प्रातःकाल उठकर शुद्ध होकर भक्तिके साथ श्रीकृष्णकी इस दिव्यगतिका कीर्त्तन करता है वह पुरुष उस उत्तमगतिको पाता है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णजीका विरह होने पर दारुक द्वारकामें आकर वसुदेवजी और उग्रसेनके चरणोंमें पड़ा और उनके चरणों को आंसुओंके जलसे भिगोने लगा ॥ १५ ॥ हे राजन्! उसने सब यादवोंके मरण का वृत्तान्त कहा, उसको सुन कर लोगोंके हृदय दहल गये और वह शोकसे मूर्छित होकर गिर पड़े ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजीके विरहसे विह्वल हुए वह सब जने, मुखको पीटते हुए जहाँ यादव मरेहुए पड़े थे तहाँ शीघ्रतासे आये ॥ १७ ॥ देवकी, रोहिणी तथा वसुदेव, इनको अपने पुत्र श्रीकृष्णजी और बलराम नहीं दीखे इस कारण यह अति व्याकुल हो मूर्छित होकर गिर पड़े और उनको अपने शरीरका भी स्मरण नहीं रहा ॥ १८ ॥ भगवान्के विरहसे व्याकुल हुए उन्होंने तहाँ प्राण छोड़ दिये, हे राजन्! स्त्रियें, पतियोंको हृदयोंसे लगा कर चिताओं पर चढ़ीं १९ बलरामजीकी स्त्रियोंने उनके देहको आलिङ्गन करके अग्निमें प्रवेश करा, वसुदेवजी की स्त्रियोंने उनके शरीरको आलिङ्गन करके और श्रीहरिकी पुत्रवधुओंने प्रद्युम्नादिकोंके शरीरोंको आलिङ्गन करके अग्निमें प्रवेश करा, रुक्मिणी आदि श्रीकृष्ण जीकी स्त्रियोंने भी उनकी ओरको चित्त लगाकर अग्निमें प्रवेश करा ॥ २० ॥ अर्जुन परमप्रिय मित्रके विरहसे व्याकुल हुआ, परन्तु उसने श्रीकृष्णजीके उपदेश करेहुए गीताके श्रेष्ठ वाक्योंसे अपने आत्माको शान्ति दी ॥ २१ ॥ जिनके वंशको चलाने वाले नष्ट होगये, उन मृतबन्धुओंका पिण्ड जल दान आदि कार्य शास्त्रकी विधि के अनुसार क्रमसे अर्जुनने करवाया ॥ २२ ॥ हे महाराज! श्रीहरिके द्वारका त्याग करते ही एक क्षणमें समुद्रने वह ... श्रीभगवान्के मन्दिरको छोड़ कर बाकी सारी डुबाली ॥ २३ ॥ स्मरणमात्रसे ... अशुभोंका नाश करने वाले और

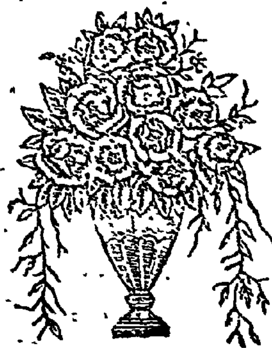
स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः। इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥ २५ ॥ श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः। त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥२६॥ य एतद् देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च। कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥२७॥इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि।अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥२८

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

सकलमङ्गलोंका भी मङ्गल करने वाले तिस मन्दिरमें भगवान् मधुसूदनकी नित्य समीपता है ॥ २४ ॥ जो मरनेसे शेष रही थीं उन स्त्रियोंको बालकोंको और बूढ़ोंको लेकर अर्जुन, इन्द्रप्रस्थको गया और तहाँ उसने वज्रको राज्याभिषेक कर दिया ॥ २५ ॥ हे राजन्! अर्जुनसे जाति वालोंके वधका वृत्तान्त सुनकर तुम्हारे पितामह पाण्डव तुम्हें वंशका आधार करके महामार्गको चले गये ॥ २६ ॥ जो मनुष्य; देवाधिदेव विष्णुभगवान्‌के इस जन्म और चरित्रोंको श्रद्धाके साथ सुनता है वह सकल पापोंसे छूट जाता है ॥ २७ ॥ इसप्रकार इसमें तथा दूसरे भी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध भगवान् श्रीहरिके परमकल्याणकारी इन सुन्दर अवतारके चरित्रोंको और बाललीलाको जो मनुष्य सुनेगा उसको, परम हंसोंको प्राप्त होने योग्य भगवान्‌के ऊपर अखण्डभक्ति प्राप्त होयगी ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें एकत्रिंश अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥　　छ　॥　छ

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणस्य,पश्चिमोत्तरदेशीयरामपुरनिवासि-मुरादाबादप्रवासि-भारद्वाजगोत्र-गौडवंश्य—श्रीयुतपण्डितभोलानाथात्मजेन, काशीस्थ-राजकीय-प्रधानविद्यालये प्रधानाध्यापक-सर्वतंत्रस्वतंत्र महामहोपाध्याय-सत्संप्रदायाचार्य-पण्डितस्वामिरामभिश्रशास्त्रिभ्योधिगतविद्येन, ऋषिकुमारोपनामकपण्डितरामस्वरूपशर्मणा विरचितेन भाषानुवादेन सहितो एकादशस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ समाप्तोऽयमेकादशस्कन्धः ॥



* श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः *



अथ द्वादशस्कन्धः प्रारम्भः

श्रीकृष्णाय नमः ॥ राजोवाच । स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे । कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ॥१॥ श्रीशुक उवाच । योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भविष्यो बार्हद्रथः । तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥ २ ॥ प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः । विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥३॥ नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पंच प्रद्योतना इमे । अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ४ शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः । क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेत्र-

---

धीः ॥ राजा परीक्षितने प्रश्न करा कि–हे मुने शुकदेवजी ! यदुकुलके आभूषण रूप भगवान श्रीकृष्णजीके निजधामको चले जाने पर इस पृथ्वी पर किसका वंश हुआ, यह मुझसे कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन् बृहद्रथके वंशमें जो अन्तका पुरञ्जय नामवाला राजा होयगा, जिसका वर्णन नवमस्कन्धमें करा है उसका शुनक नामवाला मंत्री, अपने स्वामीको (पुरञ्जयको) मारकर उसकी गद्दी पर अपने प्रद्योत नामक पुत्रको बैठावेगा, उसका पुत्र पालकनामा होयगा, उसका पुत्र शिखायूप, तिसका पुत्र राजक होयगा, राजकका नन्दिवर्द्धन नामवाला राजा होयगा, हे राजन् ! प्रद्योतन नामवाले यह पाँच राजे एक सौ अड़तीस वर्षपर्यन्त पृथ्वीका पालन करेंगे ॥२–४॥ फिर उससे शिशुनाग होगा, उनका पुत्र काकवर्ण

धर्मज्ञः ॥ ५ ॥ विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति । दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ॥ ६ ॥ नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः । शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ ७ ॥ समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः । महानन्दिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ॥ ८ ॥ महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् । ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ॥ ९ ॥ स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लंघितशासनः । शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ॥ १० ॥ तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः । य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः ॥ ११ ॥ नव नन्दान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति । तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥ १२ ॥ स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति । तत्पुत्रो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥ १३ ॥ सुयशा भविता तस्य संगतः सुयशः सुतः । शालिशूकस्ततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥ १४ ॥ शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः । मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥ १५ ॥ समाः भोक्ष्यंति

उसका पुत्र क्षेमधर्मा, क्षेमधर्माका पुत्र क्षेत्रज्ञ होयगा ॥५॥ तिसका पुत्र विधिसार, तिसका अजातशत्रु होयगा उसका पुत्र दर्भक होगा, दर्भकका पुत्र अजय कहा है ६ अजयका नन्दिवर्धन, और उसका पुत्र महानन्दि होयगा, यह शिशुनाग आदि दश राजे कलियुगमें तीन सौ आठवर्षपर्यन्त पृथिवीका राज्य करेंगे, हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! फिर उस महानन्दिका शूद्रीके गर्भसे कोई एक नन्दनामक पुत्र होयगा, वह महाबली और महापद्मसंख्याकी सेनाका अथवा इतने धनका स्वामी होकर क्षत्रियोंका नाश करनेवाला होयगा और उससे आगे सब ही राजे शूद्रप्राय और अधार्मिक होजायँगे ॥ ७-९ ॥ वह महापद्मपति, राजा नन्द, जिसकी आज्ञाका कोई उल्लंघन करने वाला नहीं ऐसा होकर, मानो दूसरा परशुराम ही है ऐसे क्षत्रियों का संहार करता हुआ एक छत्र पृथ्वीका पालन करेगा ॥ १० ॥ उस नन्दके शूद्री से सुमाल्य आदि आठ पुत्र होयँगे वही आगेको राजे होकर सौ वर्ष पर्यन्त इस पृथ्वीको भोगेंगे ॥ ११ ॥ फिर कोई एक चाणक्य नाम वाला विश्वासघाती ब्राह्मण नन्द और उसके आठ पुत्र इन नौ नन्दोंको विश्वास दिलाकर उनका समूल नाश करेगा, उनके नष्ट होने पर फिर कलियुगमें मौर्य नाम वाले राजे पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ १२ ॥ हे राजन् ! वह चाणक्य ब्राह्मण ही, मौर्योंमें पहिले चन्द्रगुप्तको राज्य पर अभिषिक्त करेगा, उस चन्द्रगुप्तका पुत्र वारिसार होयगा, तिससे अशोकवर्धन होयगा ॥१३॥ उस अशोकवर्धनका पुत्र सुयशा होयगा, सुयशाका पुत्र सङ्गति, तिसका शालिशूक शालिशूकका पुत्र सोमशर्मा होयगा ॥ १४ ॥ फिर उसका शतधन्वा और तिसका बृहद्रथ होयगा, हे कुरुकुलश्रेष्ठ राजन् ! यह दश + मौर्य राजे कलियुगमें एकसौ सैंतीस वर्ष पर्यन्त पृथ्वीको भोगेंगे, फिर उस बृहद्रथका सेनापति पुष्पमित्र, अपने स्वामी बृहद्रथको मार कर आप ही राजा बनेगा, यही शुङ्ग राजोंमें

+यद्यपि यहाँ चन्द्रगुप्त आदि नौ राजे क्रमसे कहे हैं तथापि पराशरादिके मतसे पाँचवाँ दशरथ नामक राजा है, उसके सहित यह दश होते हैं ।

पृथिवीं कलौ कुरूद्वह । अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥ १६ ॥ वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता सुतः । ततो घोषः सुतस्तस्माद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥१७॥ ततो भागवतस्तस्माद्देवभूतिरिति श्रुतः । शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम् ॥ १८ ॥ ततः काण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप । शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥१९॥ स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः । तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नारायणः सुतः ॥२०॥ काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च । शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे ॥ २१ ॥ हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली । गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कञ्चित्कालमसत्तमः ॥२२॥ कृष्णनामाऽथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः । श्रीशातकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ॥ २३ ॥ लंबोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिविलको नृपः । मेघस्वातिश्चिविलकादटमानस्तु तस्य च ॥२४॥ अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः । पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ॥ २५ ॥ चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दम । तस्यापि गोमती पुत्रः पुरीमान् भविता ततः ॥ २६ ॥ मेदशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः । विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ॥२७॥ एते त्रिंशन्नृप-

---

पहिला होयगा, तिससे आगे अग्निमित्र होयगा, अग्निमित्रसे सुज्येष्ठ होयगा॥१५।१६ उसका वसुमित्र, तिसका भद्रक, तिसका पुलिन्द पुत्र होयगा, तिस पुलिन्दसे घोषपुत्र और घोषसे वज्रमित्र होयगा ॥ १७ ॥ तिससे भागवत और भागवतसे देव भूति नामसे प्रसिद्ध राजा होयगा, शुङ्ग नाम वाले दश राजे एक सौ बारह वर्ष पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करेंगे ॥१८॥ फिर यह भूमिहीन पराक्रमी कण्ववंशी राजाओं के वशमें होजायगी, हे राजन् ! स्त्रीलम्पट हुए उस देवभूति नामक शुङ्गको मार कर उसका परमचतुर मन्त्री वसुदेव नाम वाला कण्व स्वयं ही राज्य करेगा, उस का पुत्र भूमित्र, तिसका पुत्र नारायण और नारायणका पुत्र सुशर्मा होयगा॥१९।२० हे राजन् ! वह वसुदेवादि कण्ववंशके चार राजे कलियुगमें तीनसौ पैंतालीस वर्ष पर्यन्त पृथ्वीका राज्य करेंगे ॥ २१ ॥ फिर कण्ववंशी अन्तके उस सुशर्माको मार कर उसका ही सेवक कोई एक आन्ध्रजातिका बलीनामा दुष्ट शूद्र कुछ वर्षों तक पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ २२ ॥ उस बलि राजाका कृष्ण नाम वाला भ्राता राजा होयगा, उसका पुत्र श्रीशांतकर्ण तिसका पुत्र पौर्णमास ॥ २३ ॥ तिसका पुत्र लम्बोदर तिसका चिविलक राजा होयगा, तिससे मेघस्वाति तिसका अटमान ॥ २४ ॥ अटमानका अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्माका हालेय, हालेयका तलक, तलकका पुत्र पुरीषभीरु, तिसका पुत्र सुनन्दन राजा होयगा ॥ २५ ॥ तिस सुनन्दनका पुत्र चकोर होयगा, हे शत्रुदमन राजन् ! तिस चकोरके भिन्न २ नाम वाले आठ पुत्रों में अन्तका पुत्र शिवस्वाति नाम वाला होयगा, तिसका पुत्र गोमती, तिससे पुरी-मान् होयगा ॥ २६ ॥ तिसका पुत्र मेदशिरा, तिसका शिवस्कन्द तिसका यज्ञश्री, तिसका विजय, विजयका पुत्र चन्द्रविज्ञ और चन्द्रविज्ञका पुत्र सलोमधि नामवाला होयगा ॥ २७ ॥ हे कुरुनन्दन राजन् ! यह तीस राजे चार सौ छप्पन वर्ष पर्यन्त

तपञ्चस्वार्यन्दशतानि च । षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ॥२८॥ सप्ताभीरा आवभृत्या दश गार्दभिनो नृपाः । कंका षोडश भूपाला भविष्यन्ति च लोलुपाः ॥ २९ ॥ ततोष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः । भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ॥३०॥ एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दश वर्षशतानि च । नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम् ॥३०॥ भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यंग त्रीणि तैः संस्थिते ततः । किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वंगिरिः ॥३२॥ शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः । इत्येते वै वर्षशतं भविष्यंत्यधिकानि षट् ॥ ३३ ॥ तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः । पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ३४ एककाला इमे भूपाः सप्तांध्राः सप्त कौशलाः । वैदूरपतयो भव्या नैषधास्तत एव हि ॥३५॥ मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरंजयः । करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिंदयदुमद्रकान् ॥ ३६ ॥ प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः । वीर्यवान् क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि । अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥ ३७ ॥ सौराष्ट्रावंत्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः । व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ॥३८॥ सिंधोस्तटं चन्द्रभागां कौंतीं काश्मीरमण्डलम् । भोक्ष्यन्ति शूद्र-

पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर अवभृति नामवाली नगरीमें सात आभार जातिके राजे होंगे, फिर दश गर्दभी नाम वाले राजे होंगे, फिर अतिलोभी सोलह कङ्क जातिके राजे होंगे ॥ २९ ॥ फिर आठ यवन, चौदह तुरुष्क (तुरकिस्तानके तुर्क) फिर दश गुरुण्ड और ग्यारह मौन नाम वाले राजे होयँगे ॥३०॥ हे राजन् ! मौन राजोंके सिवाय यह आभीर आदि पैंसठ राजे, एक सहस्र निन्यानवे वर्ष पृथ्वीका राज्य करेंगे, और फिर ग्यारह मौन राजे तो तीन सौ वर्ष राज्य करेंगे इन मौनोंके मरणको प्राप्त होने पर किलकिला नामक नगरीमें भूतनन्दादि आगे वर्णन करे हुए राजे होयँगे, तिनमें पहिला भूतनन्द फिर बङ्गिरि ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके अनन्तर इसके भ्राता शिशुनन्दी, यशोनन्दी और प्रवीरक यह, एक सौ छः वर्ष पर्यन्त राजे होंगे ॥ ३३ ॥ फिर इन भूतनन्दादिके क्रमसे बाह्लीक नामक तेरह पुत्र राजे होंगे, फिर एक दूसरा पुष्पमित्र नाम वाला क्षत्रिय राजा होयगा और उसका पुत्र दुर्मित्र नामक होयगा ॥ ३४ ॥ फिर इन पहिले कहे हुए बाह्लीकोंके वंशोंमेंसे सात आंध्रदेशके राजे, सात कोसल देशके राजे कुछ विदूर देशके राजे और कुछ निषधदेशके राजे, यह तिन २ देशोंके नामोंसे सिद्ध होते हुए एक समयमें भिन्न२ खण्डोंके स्वामी होकर राज्य करेंगे ॥ ३५ ॥ मागधवंशमें तो विश्वस्फूर्जि राजा होयगा,वह 'दूसरा पुरञ्जय है'ऐसा प्रसिद्ध होकर 'ब्राह्मणादि वर्णोंको भ्रष्ट करके' पुलिन्द, यदु, और मद्रक, इन म्लेच्छसमान वर्णोंको करेगा ॥३६॥ वह दुष्ट वीर्यवान् पुरञ्जय, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य इन तीन वर्णोंसे रहित शूद्रवर्णकी प्रजा स्थापन करके और क्षत्रियोंका नाश करके, पद्मवती नगरीमें गङ्गाद्वारसे प्रयाग पर्यन्त रक्षा करी हुई पृथ्वीको भोगेगा ॥ ३७ ॥ फिर सौराष्ट्र, आवन्त्य, शूर, अर्बुद और मालवा इन देशोंमेंके द्विज यज्ञोपवीत संस्कारहीन होंगे और राजे भी शूद्र समान

व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चोग्रब्रह्मवर्चसः ॥३९॥ तुल्यकाला इमे राजन् म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः। एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ॥४०॥ स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः। उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ॥४१॥ असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः। प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥४२॥ तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः। अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यंति पीडिताः

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

श्रीशुक उवाच। ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया। कालेन बलिना राजन् क्ष्यन्त्यायुर्बलं स्मृतिः ॥१॥ वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः। धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥२॥ दांपत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके। स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥३॥ लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योऽन्यापत्तिकारणम्। अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पांडित्ये चापलं वचः ॥४॥ अनाढ्यतैवा-

---

होंगे ॥ ३८ ॥ सिन्धुनदीका तट, चन्द्रभागानदीका देश, कौतीनगरी और काश्मीर देशोंका भोग, शूद्र, म्लेच्छ, वेदाचाररहित ब्राह्मण और संस्कारहीन पुरुष करेंगे ३९ हे राजन्! यह म्लेच्छसमान राजे एकही कालमें होंगे, और यह अधर्म, तथा असत्य में तत्पर, अल्पदानी, परमकोपी, स्त्री-बालक-गौ ब्राह्मणकी हत्या करने वाले, परस्त्री और परधनको चाहने वाले, अनेक प्रकारके हर्ष शोक आदिसे युक्त, अल्पपराक्रमी, अल्पायु-॥ ४० ॥ ४१ ॥ संस्कारहीन, क्रियाहीन और रजोगुण तमोगुणों से भरे हुए होंगे, वह राजाओंके रूप धारने वाले म्लेच्छ, धन आदि छीन कर प्रजाओंको पीड़ा देंगे ॥ ४२ ॥ ऐसे राजाओंके देशोंमें रहनेवाले और उन्हींके समान शील, आचार तथा वादविवाद करने वाले पुरुष, परस्परके क्लेशोंसे और राजाओं के करेहुए उपद्रवोंसे पीड़ित होकर नाशको प्राप्त होजायँगे॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ छ ॥ *

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन्! आगेको बलवान् कलियुगमें प्रभावसे दिन दिन धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा दया, आयु, बल और स्मरणशक्तिका धीरे २ नाश होजायगा ॥ १ ॥ हे राजन्! कलियुगमें धन ही, मनुष्योंकी जन्म, आचार और गुणोंकी उन्नतिका कारण होयगा, बल ही धर्म और न्यायकी व्यवस्थामें कारण होयगा ॥ २ ॥ आपसकी प्रीति ही स्त्रीपुरुषोंके सम्बंधका कारण होगी, कुल गोत्र आदिका कोई विचार नहीं करेगा, वेचने खरीदनेके व्यापारमें कपट बहुत होगा, मैथुनकी चतुरता ही स्त्री पुरुषोंकी श्रेष्ठताका कारण होगी, कुछ और आचार नहीं, यज्ञोपवीत ही ब्राह्मणकी पहिचान होगी ॥ ३ ॥ दण्ड मृगछाला आदि चिन्ह ही संन्यासी ब्रह्मचारी आदि की पहिचान होगी, तथा वह चिन्ह ही एक आश्रमको छोड़ दूसरा आश्रम पानेका साधन होगा, आचार की ओर को कोई ध्यान नहीं देगा, धन देने आदिकी शक्ति न होने पर न्याय (मुकद्दमे) में हार होयगी, चपलतासे बोलना ही पण्डितपनेका साधन होगा ॥ ४ ॥ दरिद्रता ही नीचपनेका (चोरआदि माननेका) साधन होगी, बनावट रखना ही साधुपने

साधुत्वे साधुत्वे दंभ एव तु । स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥ ५ ॥ दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्ये केशधारणम् । उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्ट्र्यमेव हि ॥६॥ दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् ।एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥ ७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः । प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥ ८ ॥ आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् । शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥९॥ अनावृष्ट्या विनंक्ष्यंति दुर्भिक्षकरपीडिताः। शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥ १० ॥ क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव सन्तापेन च चिन्तया । त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥ ११ ॥ क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः । वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥ १२ ॥ पाखंडप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु । चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥१३॥ शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु । गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बंधुषु ॥१४॥ अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु । विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ।१५।

का कारण होगी,आपसमें आपसका स्वीकार करनाही विवाहमें विधि होगी,स्नान करना ही देहका आभूषण होगा ॥ ५ ॥ दूरका जलाशय ही तीर्थ माना जायगा, समीपके गङ्गा, गुरु और पिताआदिको कोई तीर्थ नहीं मानेगा, अनेक प्रकारसे केश रखना ही सुन्दरताका कारण होगा, पेट भर लेना ही बड़ा भारी पुरुषार्थ माना जायगा, उद्धतताके साथ ओरसे बोलना ही सत्यताका कारण होयगा ॥ ६ ॥ कुटुम्बका पालन करना ही चतुराई, और कीर्त्तिके निमित्त ही धर्मका आचरण होयगा हे राजन् ! इस प्रकार दुष्ट प्रजाओंसे भूमण्डलके व्याप्त होजाने पर ॥ ७ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो कोई बलवान् होगा वही राजा होयगा, तब चोरोंकी समान लुटेरे, निर्दयी और लोभी राजाओंने जिनकी स्त्रियें और धन हर लिये हैं ऐसे पुरुष नगरोंको छोड़ कर पर्वत और वनोंमेंको चले जायँगे और तहाँ वृक्षोंके पत्ते, जड़, लकड़ी, गोंद, फल, फूल, और गुठली आदि खाकर निर्वाह करेंगे ८।९ कितने ही,अवर्षाके कारण पड़ेहुए दुष्काल और राजाओंके लगाए हुए कर (टक्स) से पीड़ित होकर, शीत, पवन, धूप और वर्षा तथा बरफसे पीड़ित होकर और आपसमें कलह करके नष्ट होजायँगे ॥ १० ॥ कितनी ही प्रजा, भूँख प्यास, अनेक प्रकारके रोग सन्ताप और चिन्तासे अति दुःखित होंगे, कलियुगमें मनुष्योंकी आयु बहुत थोड़ी अर्थात् बीससे तीस पर्यन्त होगी ॥ ११ ॥ हे राजन् ! कलियुगके दोषसे जब प्राणीमात्रके देह छोटे २ होजायँगे, वर्णाश्रम वाले मनुष्योंका वेदविहित धर्म नष्ट होजायगा ॥ १२ ॥ धर्ममें नास्तिकता अधिक बढेगी, राजे चोरोंकी समान (लुटेरे) होंगे, सब जने-चोरी, झूँठ बोलना, विना कारण हिंसा आदि अनेक प्रकारके कर्मोंसे अपना निर्वाह करेंगे ॥ १३ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह वर्ण प्रायः शूद्रतुल्य होंगे, गौ बकरियों सी होंगी संन्यासी आदि आश्रम वाले, गृहस्थों का सा बर्त्ताव करेंगे, स्त्रियोंके पिता भ्राता आदिको ही सगा सम्बन्धी माना जायगा ॥ १४ ॥ वनस्पति बड़े सूक्ष्म होजायँगे, वृक्ष, शमीकेसे छोटे होजायँगे,

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि । धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति१६ चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः । धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये १७ शंभलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः । भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥ १८ ॥ अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः । असिनासाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥ १९ ॥ विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः । नृपलिंगच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥ अथ तेषां भविष्यंति मनांसि विशदानि वै । वासुदेवांगरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् । पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥२१॥ तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति । वासुदेवे भगवति सत्वमूर्तौ हृदि स्थिते यदावतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः । कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥ २३ ॥ यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती । एकराशौ समेष्यंति तदा भवति तत्कृतम् ॥ २४ ॥ येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः । ते

मेघोंमें जल थोड़ा और बिजलीकी चमक अधिक होगी तथा घर अतिथि भोजन आदि धर्मोंसे रहित होंगे ॥ १५ ॥ लोगोंकी ऐसी दशा होकर असह्य चेष्टा वाले कलियुगके समाप्त होनेको आने पर, श्रीविष्णु भगवान् सत्वगुणके द्वारा धर्मकी रक्षाके निमित्त कल्किरूपसे अवतार धारण करेंगे ॥ १६ ॥ चराचरके गुरु और सब जगत्‌के कारण ऐसे उन जगत्पति विष्णु भगवान्‌का अवतार धर्मकी रक्षा करनेको और साधुओंको मोक्ष देनेको होता है ॥ १७ ॥ वह कल्कि अवतार शम्भलनामक गाँवमें श्रेष्ठ, विष्णुयश नाम वाले महात्मा ब्राह्मणके घर प्रकट होगा ॥ १८ ॥ और अणिमादि आठ ऐश्वर्योंसे तथा सत्यसङ्कल्प आदि गुणोंसे युक्त वह परम कान्तिमान् कल्किभगवान्, दुष्टोंको दण्ड देने वाले और शीघ्रगामी देवदत्तनामक घोड़े पर बैठ कर उस शीघ्रगामी घोड़ेके द्वारा पृथ्वी पर फिरते हुए हाथमें धारण करी हुई तलवारसे राजाओंके वेषमें छुपे हुए करोड़ों चोरोंको मारेंगे ॥ १९ ॥ २० ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सब चोरोंके मारे जाने पर उन कल्किरूप भगवान्‌के अङ्गको लगे हुए उबटनके अति पवित्र सुगन्धित वायुसे स्पर्श करे हुए उन पुरवासी और देशवासी लोकोंके मन निर्मल होजायँगे ॥ २१ ॥ और उनके हृदयमें सत्त्वमूर्त्ति भगवान् वासुदेवके स्थित होने पर आगेको उनकी प्रजाकी सृष्टि उत्तरोत्तर बढ़ी होनी लागगी ॥ २२ ॥ हे राजन् ! जब धर्मपति भगवान् श्रीहरि, कल्किरूपसे अवतरेंगे तब सत्ययुगकी प्रवृत्ति होयगी और प्रजाओंकी उत्पत्ति भी सत्त्वगुणी होयगी ॥ २३ ॥ जब चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति इन तीनों ग्रहोंका संयोग होकर वह कर्क राशि पर तिसमें पुष्य नक्षत्र पर एक (१) साथ प्रवेश करते हैं तब कल्कि अवतार होकर वह सत्ययुग प्रवृत्त होता है ॥ २४ ॥ हे राजन् ! चन्द्रवंश और सूर्य वंशके राजे, जो पहिले होगये हैं तथा जो हैं और जो आगेको होंगे वह सब राजे

१ यद्यपि प्रत्येक बारह २ राशियों करके कर्क राशि पर बृहस्पतिके आने पर दो या तीन अमावास्याओंके दिन चन्द्र, सूर्य और बृहस्पतिका पुष्य नक्षत्रसे योग होता है तथापि वह एक साथ हो ऐसा योग सत्ययुगके आरम्भमें ही आता है ऐसा जाने ।

त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीशाः सोमसूर्ययोः ॥ २५ ॥ आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् । एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ॥ २६ ॥ सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि । तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ॥ २७ ॥ तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतानि च । ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥ २८ ॥ विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः । तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ॥ २९ ॥ यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः । तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रांतुं न चाशकत् ॥३०॥ यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि । तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥३१॥ यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः । तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥३२॥ यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाऽहनि । प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥ ३३ ॥ दिव्याब्दानां सहस्रांते चतुर्थे तु पुनः कृतम् । भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ॥ ३४ ॥ इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि । तथा विट्-

मैंने तुमसे संक्षेपसे कहे हैं ॥ २५ ॥ हे राजन् ! तुम्हारा जन्म होनेसे नन्दराजाको राज्याभिषेक होने पर्यन्त, इतने यह कलियुगके ग्यारह (१) सौ पन्द्रह (१११५) वर्ष होंगे ॥ २६ ॥ हे राजन् ! आकाशमें रात्रिके समय सप्तऋषिका उदय होता है, तब जो दो तारे प्रथम उदय होते हुए दीखते हैं वह पुलह क्रतु दो ऋषि हैं, उनमेंसे दक्षिणोत्तर रेखा पर समभागमें अश्विनी आदि नक्षत्रोंमेंका जो एक नक्षत्र दीखता है ॥ २७ ॥ उस ही नक्षत्रसे युक्त सप्तऋषि, मनुष्योंके सौ वर्ष तक रहते हैं और वह सप्तऋषि अब तुम्हारे समयमें मघा नक्षत्र पर हैं ॥ २८ ॥ जब भगवान्विष्णुका यह शुद्ध सत्त्वगुणी कृष्ण नामक शरीर वैकुण्ठ लोकमें गया उस समय लोकमें कलिका प्रवेश हुआ, जिस कलिके समय लोक पापमें मग्न होते हैं ॥ २९ ॥ जब तक वह लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णजी, अपने चरण कमलोंसे पृथ्वीको स्पर्श करते रहे तब तक 'पहिले सूक्ष्मरूपसे प्रविष्ट हुआ भी' कलियुग, पृथ्वीका तिरस्कार करनेको (पृथ्वी पर अपना पराक्रम चलानेको) समर्थ नहीं हुआ ॥ ३० ॥ जबसे सप्तऋषि मघा नक्षत्र पर विचरते हैं तबसे 'पहिले प्रविष्ट हुआ' संध्यांशों सहित दिव्य प्रमाणसे बारह वर्षका जो कलि वह सन्ध्याकालका उल्लंघन करके प्रवृत्त हुआ है ॥ ३१ ॥ जब वह सप्तऋषि, मघा परसे क्रम २ करके पूर्वाषाढा नक्षत्र पर जायँगे तब यह कलि, 'प्रद्योतन राजासे लेकर बढ़ता हुआ, नन्दराजाके समय अत्यन्त ही बढ़ जायगा ॥ ३२ ॥ जिस दिन जिस समय भगवान् श्रीकृष्णजी, वैकुण्ठको गये उसी दिन उसी समय कलियुग प्रवृत्त हुआ ऐसा पूर्वकालके जानने वाले कहते हैं ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जब मनुष्योंका मन, आत्मस्वरूपका प्रकाशक होगया तब कलियुगकी सन्ध्या और सन्ध्यांशों सहित देवताओंके प्रमाणसे सहस्र वर्ष होजाने पर फिर सत्ययुग प्रवृत्त होयगा ॥ ३४ ॥ इस प्रकार यह वैवस्वत

१ ग्यारह सौ पन्द्रह संख्या मूलमें किसी विवक्षासे अन्तर्गत संख्या कही है वास्तवमें पूर्वा परका विचार करने पर चौदह सौ अट्ठानवे वर्ष होते हैं ।

शूद्रविप्राणां तादृग्ना ज्ञेया युगे युगे ॥३५॥ एतेषां नामलिङ्गानां पुरुषाणां महात्मनाम्। कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ॥ ३६ ॥ देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः। कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ॥ ३७ ॥ ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ। वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ॥ ३८ ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ॥ ३९ ॥ राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथाऽपरे। भूमौ ममत्वं कृत्वाऽन्ते हित्वेमां निधनं गताः ॥४०॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽन्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च। भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ ४१ ॥ कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता। मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥४२॥ तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वाऽऽत्मतयाऽबुधाः। महीं ममतया चोभौ हित्वाऽन्तेऽदर्शनं गताः ॥ ४३ ॥ ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जन्ति वसुमोजसा। कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

मनुका वंश भूमि पर जैसी ऊँची नीची दशाओंसे कहा है तैसे ही वैश्य शूद्र और ब्राह्मणोंकी भी वह २ दशा प्रत्येक युगमें होती है ॥ ३५ ॥ हे राजन्! कथामात्र शेष रहे हुए और नामोंसे ही पहिचाने जाने वाले इन महात्मा पुरुषोंकी कीर्त्ति ही भूमि पर शेष रही है ॥ ३६ ॥ शन्तनुका भ्राता देवापी और इक्ष्वाकुवंशका राजा मरु यह दोनों चन्द्र-सूर्य वंशके हैं; हे राजन्! महायोगबलके प्रभावसे समाधि लगा कर, योगियोंके रहनेके स्थान कलाप गाँवमें रहते हैं ॥ ३७ ॥ वह दोनों राजे, कलियुगके अन्तमें भगवान् वासुदेवकी आज्ञासे फिर लौटके आकर इस भूमि पर पहिलेकी समान वर्णाश्रमधर्मोंको प्रसिद्ध करेंगे ॥ ३८ ॥ सत्ययुग, द्वापर, त्रेता और कलि, यह चारों युग इस ही क्रमसे पृथ्वी पर प्राणिमात्रमें वर्त्तते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! मेरे कहे हुए यह राजे और दूसरे भी बहुतसे राजे इस पृथ्वी पर ममता करके और अन्तमें इसको त्याग कर आप ही मरणको प्राप्त होगये हैं ॥ ४० ॥ हे राजन्! राजानामवाले जिस देहका अन्तमें 'सड़ने पर' कीड़े 'कुत्तोंके खालेने पर' विष्टा, और 'भस्म होजाने पर' राख यह नाम प्राप्त होता है ऐसे देहके निमित्त जो कोई प्राणियोंसे द्रोह करता है, क्या वह अपने स्वार्थको जानता है? नहीं जानता, क्योंकि-जिस प्राणिमात्रके द्रोहसे नरक प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ जो अखण्ड पृथ्वी मेरे पूर्वजोंने धारण करी थी अर्थात् जिसका मेरे पूर्व पुरुषोंने पालन करा था और जो इस समय मेरे पास है वह अखण्ड पृथिवी, मेरे पुत्र पर मेरे पोते पर और वंशवालों पर कैसे रहेगी ॥ ? ॥ ४२ ॥ इस प्रकार वह मूर्ख राजे, तेज, जल और अन्नमय शरीरको 'यह अपना है' ऐसा मानकर और पृथ्वीको 'यह मेरी है' ऐसा मानकर रहने पर अन्तमें देह और पृथ्वी दोनोंको त्यागकर मरणको प्राप्त हुए हैं ४३ हे राजन्! जिन२ राजाओंने अपने पराक्रमसे पृथ्वीको भोगा है उन सब ही राजाओं को कालने, कथाओंमें कहनेमात्रको कररक्खा है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ छ ॥ छ ॥

श्रीशुक उवाच । दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् । अहो मां विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥१॥ काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि । येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रंभिता नृपाः ॥ २ ॥ पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः । ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कंटकान् ॥ ३ ॥ एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् । इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥ ४ ॥ समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा । कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ५ यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह । गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ६ मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः । जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ७ ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः । स्पर्द्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ॥ ८ ॥ पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः । मांधाता सगरो रामः खट्वांगो धुन्धुहा रघुः ॥ ९ ॥ तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शंतनुर्गयः । भगीरथः

श्रीशुकदेवजीने कहा कि—हे राजन्! यह पृथ्वी, अपनेको जीतनेके निमित्त उद्यत हुए राजाओंको देख कर उनकी मूर्खताके विषयमें हास्य करती है और कहती है कि-अहो! मृत्युके खिलौनेरूप यह राजे मुझे जीतनेकी इच्छा करते हैं?१ अहो! जिस मनोरथसे पानीके बुलबुलेकी समान नाशवान् अपने शरीरके ऊपर 'यह अजर अमर है ऐसा मान कर' अत्यन्त विश्वास करे हुए हैं उन 'हमारे बाप दादा आदि पूर्व पुरुष मरणको प्राप्त होगये और हम भी मरेंगे' ऐसा, जानने वाले भी राजाओंका इस पृथ्वीको जीतनेका मनोरथ व्यर्थ ही होता है ॥ २ ॥ विषय-लम्पट पुरुषको राज्य नहीं मिलता है इस कारण हम पहिले पाँच इन्द्रियें और छटे मनको जीत कर देवताओंको प्रसन्न करें और राजाओंके मन्त्रियोंको वशमें करके फिर शत्रुओंका तिरस्कार कर उनके मन्त्री, पुरवासी, राजगुरु आदि हितू और बड़े २ हाथियोंको अपने वशमें करलें ॥ ३ ॥ इस क्रमसे धीरे २ समुद्रके तटपर्यन्त का सब पृथ्वीको जीत कर राज्य करेंगे ऐसी आशा मनमें घोलते हुए वह राजे, समीप आपहुँचे हुए अपने मृत्युको भी नहीं देखते हैं अर्थात् आशा करते २ ही मरजाते हैं ॥ ४ ॥ कितने ही तो समुद्रसे घिरी हुई मुझे जीत कर भी, बड़ी तृष्णासे समुद्र पारके देशोंमें भी राज्य करनेको जाते हैं, परन्तु इन्द्रियोंको जीतनेका यह फल नहीं है, क्योंकि—यह अति तुच्छ है, वास्तवमें इन्द्रियोंको जीतनेका फल साक्षात् मोक्ष है ॥ ५ ॥ हे कुरुनन्दन! वह पृथ्वी और यह भी कहती है कि–जिस मुझे छोड़ कर मनु और मनुके पुत्र आदि राजे जैसे आये थे तैसे ही फिर मर गये ऐसी मुझको यह बुद्धिहीन राजे—युद्धमें जीतनेकी इच्छा करते हैं यह कितना आश्चर्य है? ॥ ६ ॥ देखो! मेरी २ कह कर मुझमें आसक्तचित्त हुए इन दुष्टोंका, मेरे निमित्त पिता पुत्रमें और भ्राता २ में परस्पर कलह होता है ॥ ७ ॥ यह सब पृथ्वी मेरी ही है, अरे मूर्ख! तेरी नहीं है, ऐसा वादविवाद करने वाले वह राजे आपसमें सलाह करके, मेरे निमित्त दूसरोंको मारते हैं और आप भी मरते हैं॥८॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रार्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वांग,

कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः ॥१०॥ हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः ।
नमुचिः शंबरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः ॥ ११ ॥ अन्ये च बहवो दैत्या राजानो
ये महेश्वराः । सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः ॥ १२ ॥ ममतां मय्य-
वर्तंत कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः । कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो ॥ १३ ॥
कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् । विज्ञानवैराग्य-
विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ॥ १४ ॥ यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः
संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः । तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्स-
मानः ॥ १५ ॥ राजोवाच । केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः । विधमिष्य-
न्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥ १६ ॥ युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः ।
कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच । कृते प्रवर्तते
धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः । सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १८ ॥
संतुष्टाः करुणा मैत्राः शांता दांतास्तितिक्षवः । आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा

धुंधुहा, रघु ॥ ९ ॥ तृणविन्दु, ययाति, शर्याति, शान्तनु, गय, भगीरथ, कुवल-
याश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग राजे ॥ १० ॥ और हिरण्यकशिपु, वृत्र, लोकोंको दुःख
देने वाला रावण, नमुचि, शम्बर, भौम (नरकासुर) हिरण्याक्ष और तारकासुर
यह दैत्य ॥ ११ ॥ और भी बहुतसे दैत्य और राजा कि-जो बड़े २ ऐश्वर्य वाले हो
कर भी सर्वज्ञ, और सब ही कहीं पराजय न पाने वाले होकर सबोंको जीतने वाले
शूर राजे और दैत्य मेरे ऊपर (पृथ्वीके ऊपर) बड़ी ममता करते रहे उनको भी
मरणधर्मी होनेके कारण मनोरथ पूर्ण होनेसे पहिले ही कालने कहनेमात्रको शेष
रक्खा है अर्थात् वह मरणको प्राप्त होकर कहने मात्रको शेष रह गये हैं, हे परम-
समर्थ राजन् ! ऐसा पृथ्वीने वर्णन करा है ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे राजन् ! विषयोंकी
असारताको जानना और उनसे वैराग्यका वर्णन करनेकी इच्छासे लोकोंमें कीर्त्ति
को फैला कर मरणको प्राप्त हुए राजाओंकी यह कथा कही है, परन्तु हे राजन् !
यह केवल वाणीका विलास ही हैं, परमार्थरूप नहीं हैं ॥ १४ ॥ इस लोकमें जो सब
दोषोंका नाशक पुण्यकीर्त्ति भगवान्का गुणानुवाद बार २ कहनेमें आता है, वही
कथाओंमें सारूप है इस कारण जो कृष्ण भगवान्में निर्मल भक्ति चाहे वह निरं-
तर और बार २ उसको सुने ॥ १५ ॥ राजाने कहा कि-हे भगवन् शुकमुने ! कलि-
युगमें पुरुष, कलियुगके बढ़े हुए दोषोंको किस उपायसे दूर करेंगे ? सो मुझसे
ठीक २ कहिये ॥ १६ ॥ और युग, युग के धर्म, प्रलय और स्थितिकालका प्रमाण
तथा ईश्वररूप विष्णुमूर्त्ति महात्मा कालकी गति भी कहो ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजीने
कहा कि-हे राजन् ! सत्ययुगमें उससमयके लोगोंका धारण कराहुआ चार चरणों
वाला धर्म प्रवृत्त होता है, सत्य, दया, तप और दान (रागद्वेष न करके अभय
देना) यह धर्मके चार चरण हैं ॥ १८ ॥ उस युगमेंके लोग, दैवसे जो अन्न आदि
मिले उतनेसे ही सन्तोष मानने वाले, पराये दुःखको दूर करने वाले, सबसे मित्र-
भाव रखने वाले, शांत, जितेन्द्रिय सुख दुःखादि द्वन्द्वोंको सहने वाले, आत्मामें

जनाः ॥ १९ ॥ त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः । अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥ २० ॥ तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लंपटाः । त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ॥ २१ ॥ तपःसत्यदयादानेष्वर्द्धं ह्रसति द्वापरे । हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ॥ २२ ॥ यशस्विनो महाशालाः स्वाध्यायाध्ययने रताः । आढ्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तमाः ॥२३ ॥ कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः । एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोपि विनंक्ष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः । दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदासोत्तराः प्रजाः २५ सत्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः । कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि२६ प्रभवन्ति यदा सत्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च । तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः२७ यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् । तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥ २८॥ यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दंभोऽथ मत्सरः । कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥ २९ ॥ यदा मायाऽनृतं तंद्रा निद्रा हिंसा विषादनम् । शोका

मग्न रहने वाले, सबमें समदृष्टि रखने वाले और प्रायः आत्माभ्यास करने वाले होते हैं ॥ १९ ॥ त्रेतामें—झूंठ बोलना, हिंसा, असंतोष और कलह इन अधर्म के चार चरणोंसे धर्म का चौथा भाग धीरे २ नष्ट होता है२० हे राजन् ! उससमय पुरुष, अधिक हिंसा न करने वाले, और विषयों पर अधिक आसक्त न होकर यज्ञादि क्रिया और तपमें तत्पर, धर्मार्थ काममें लवलीन,वेदके कहे कर्ममें चतुर और जिन में ब्राह्मणवर्ण ही अधिक है ऐसे होते हैं ॥ २१ ॥ फिर द्वापरमें—हिंसा, असंतोष, मिथ्या भाषण और द्वेष इन अधर्मके चार चरणोंसे, तप, सत्य दया और दान इन धर्मके चारों चरणोंका आधा २ भाग नष्ट होजाता है ॥ २२ ॥ इससे उस द्वापर-युगके लोग—कीर्तिको प्रिय मानने वाले, उदार स्वभाव वाले; वेद पढनेमें तत्पर, धनी, कुटुम्बप्रेमी, आनन्दी और ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जिनमें मुख्य हैं ऐसे होते हैं ॥ २३ ॥ कलियुगमें तो—बढ़े हुए और अधर्मके कारण ऐसे अधर्मके चरणोंसे धर्म के चरणोंका चौथा भाग शेष रह जाता है और वह भी धीरे २ क्षीण होकर अन्त में नष्ट होजायगा ॥ २४ ॥ तिस कलियुगमेंके लोग—लोभी, दुराचारी, निर्दयी, निष्कारण वैर करने वाले हतभाग्य; 'धनकी' अतितृष्णा करनेवाले और शूद्र दास जिनमें मुख्य माने जायँ ऐसे होंगे ॥ २५ ॥ सत्व, रज और तम यह गुण पुरुषमें दीखते हैं और कालके प्रेरणा करे हुए वह गुण ही अन्तःकरणमें घूमते रहते हैं ।२६। जब मन, बुद्धि और इन्द्रियें, सत्वगुणमें अधिक प्रवृत्त होती हैं उस समय सत्य-युग जानें, जिसके समयमें प्राणियोंकी ज्ञानमें और तपमें रुचि होती है ॥ २७ ॥ जब मनुष्योंको धर्म, अर्थ काममें प्रीति होती है तब हे बुद्धिमान् राजन् ! रजोगुण की वृत्ति वाला त्रेतायुग जानो ॥ २८ ॥ जब लोभ, असंतोष, अभिमान और मत्सर यह प्रवृत्त होकर लोगोंकी काम्य कर्मोंमें प्रीति होती है तब रजोगुण तमोगुणवाला द्वापरयुग जानना ॥ २९ ॥ और जब कपट, असत्य, आलस्य, निद्रा, हिंसा, दुःख शोक, मोह, भय और दीनता यह प्रवृत्त होते हैं तब पूर्ण तमोगुणी कलियुग

मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः ॥ ३० ॥ यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः । कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ॥ ३१ ॥ दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाखंडदूषिताः । राजानश्च प्रजाभक्षाः शिश्नोदरपरा द्विजाः ॥ ३२ ॥ अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुंबिनः । तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः ॥ ३३ ॥ ह्रस्वकाया महाहारा भूरिपत्या गतह्रियः । शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसाः ॥ ३४ ॥ पणयिष्यंति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः । अनापद्यपि मंस्यंते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥ ३५ ॥ पतिं त्यक्ष्यंति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् । भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥ ३६ ॥ पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः । ननांद्रश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ३७ शूद्राः प्रतिग्रहीष्यंति तपोवेषोपजीविनः । धर्मं वक्ष्यंत्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥ ३८ ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरपीडिताः । निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥ ३९ ॥ वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः । हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यंति कलौ प्रजाः ॥ ४० ॥ कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः ।

जानना ॥ ३० ॥ जिससे लोग—मन्दबुद्धि, मन्दभाग्य, अधिक खाने वाले, और निर्धन होकर भी विषयासक्त होंगे तथा स्त्रियें भी व्यभिचारिणी और दुष्ट होती हैं ॥ ३१ ॥ देश बहुतसे चोरोंसे युक्त होंगे, वेद पाखण्डोंसे दूषित होजायँगे, राजे प्रजाके भक्षक (उनका सर्वस्व लूटने वाले) होंगे, ब्राह्मण केवल मैथुन करने और पेट भरनेमें तत्पर होंगे ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी अपने आश्रमके आचार और पवित्रतासे हीन होंगे गृहस्थी आप भीख माँगेंगे, फिर दूसरोंको देनेकी तो बात ही क्या ? तपस्वी धन छोड़ कर गाँवोंमें आकर रहने लगेंगे और संन्यासी धनके लिये अतिलोभी होजायँगे ॥ ३३ ॥ स्त्रियें, ठिगनी, बहुत खाने वालीं, बहुत बच्चों वालीं, निर्लज्ज,निरन्तर कठोर वा अप्रिय भाषण करनेवालीं तथा चोरी,कपट और अति साहस करनेवाली होंगी ३४ व्यापारी लोग, हलके और ठग होकर कपटसे देनलैन करेंगे, और भी सब लोग संकट न होने पर भी निन्दित जीविकाको ही अच्छा मानेंगे३५ नौकर लोग,सर्वोत्तम होनेपर भी द्रव्यहीन स्वामीको स्वामी भी, रोगादि कारणोंसे काम करनेमें असमर्थहुए कुलपरम्पराके भी (पुरानेभी) अपने २ सेवकोंको और बूढ़ी होनेके कारण दूध न देनेवालीं गौओंका त्याग करेंगे ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! कलियुगमें मैथुनके कारणसे मित्रभाव करने वाले और स्त्रीके वशमें होनेसे दीन हुए पुरुष पिता, भ्राता, मित्र और जातिवालोंका त्याग करके अपनी स्त्रीके बहिन भाइयोंके साथ सम्मति करने वाले होंगे ॥ ३७ ॥ तपस्वियोंका वेष धारकर निर्वाह करने वाले शूद्र, दान लेंगे, धर्म न जानने वाले पुरुष उत्तम (ऊँचे) आसन पर बैठकर धर्मोपदेश करेंगे ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! कलियुगमें वर्षा न होनेके भयसे व्याकुल हुई प्रजा, पृथिवी मण्डल पर कहीं भी अन्न न मिलने पर दुष्काल और राजकरसे पीड़ित होकर निरन्तर घबड़ाई हुई वस्त्र, अन्न, पान, शय्या, मैथुन,स्नान और भूषण इनसे रहित होनेके कारण पिशाचसी दीखने लगेंगी ॥ ३९ ॥ ४० ॥

त्यक्ष्यंति च प्रियान्प्राणान्हनिष्यति स्वकानपि ॥ ४१ ॥ न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि । पुत्रान्सर्वार्थकुशलांक्षुद्राः शिश्नोदरम्भराः ॥ ४२ ॥ कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रैलोक्यनाथानतपादपङ्कजम् । प्रायेण मर्त्या भगवंतमच्युतं यक्ष्यंति पाखंडविभिन्नचेतसः ॥ ४३ ॥ यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् । विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यंति न तं कलौ जनाः ॥ ४४॥ पुंसां कलिकृतान्दोषान्द्रव्यदेशात्मसम्भवान् । सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ४५ ॥ श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोपि वा । नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥ ४६ ॥ यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् । एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥ ४७ ॥ विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः । नात्यंतशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनंते ॥ ४८ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् । म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥ ४९ ॥ म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः ।

कलियुगमेंके लोग, बीस कौडी मात्र धनके निमित्त स्नेह छोड़कर वैर करेंगे और अपने सगोंको भी मार डालेंगे और मारनेमें असमर्थ होनेपर अपने प्रियप्राणोंको भी त्याग देंगे ॥ ४१ ॥ शिश्न और पेटकी तृप्ति करने वाले नीच मनुष्य, अपने बूढे माता-पिताओंकी और सब विषयोंमें चतुर अपने प्रिय पुत्रोंकी भी रक्षा नहीं करेंगे ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! कलियुगमें प्रायः वेदविरुद्धमार्गोंसे विक्षिप्त चित्तहुए मनुष्य, त्रिलोकीके स्वामी ब्रह्मादिक भी जिनके चरण कमलको नमस्कार करते हैं ऐसे लोकोंके परमगुरु अच्युत भगवान्‌की पूजा नहीं करेंगे ॥ ४४ ॥ अहो ! मरता हुआ, रोगसे घबडाकर परवश हुआ अथवा गिरकर ठोकरें खाता हुआ, मनुष्य जिनका नाम उच्चारण करने पर कर्मबन्धनसे छूटकर उत्तमगतिको पाता है, उन भगवान्‌का पूजन कलियुगमें लोग नहीं करेंगे ॥४४॥ हे राजन् ! अन्तःकरणमें प्रकाशित होनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् पुरुषोंके निषिद्धपदार्थ देश और विषयासक्त मन से उत्पन्न होनेवाले कलियुगके करेहुए सब दोषोंको दूर करते हैं ॥ ४५ ॥ सुने, कीर्त्तन, ध्यान, पूजन वा आदर सत्कार करेहुये भगवान मनुष्योंके हृदयमें रहकर उनके सहस्रों जन्मोंके करेहुये पापोंका नाश करते हैं ॥४६॥ जैसे सुवर्णमेंका अग्नि ही, उसके ताम्बे आदि धातुओंके सङ्गसे प्राप्तहुये मलका नाश करता है, जल आदि उसका नाश नहीं करते हैं तैसे ही योगियोंके हृदयमें विद्यमान विष्णु भगवान् ही उनकी पापवासनाओंका नाश करते हैं, योग आदि साधन नाश नहीं करते हैं ॥ ४७ ॥ अनन्तभगवान्‌के हृदयमें स्थित होनेपर जैसी प्राणियोंके अन्तःकरणकी अत्यन्त शुद्धि होती है, तैसी विद्या, तप, प्राणनिरोध (प्राणायाम), मैत्री, तीर्थस्थान व्रत, दान और मन्त्रोंके जपसे नहीं होती है ॥ ४८ ॥ इससे हे राजन् ! तुम भी मरणको प्राप्त होनेको होरहे हो सो सावधान होकर चित्तको एकाग्र करके भगवान्‌को अपने हृदयमें स्थापन करो तब तुम उत्तम गतिको पाओगे ॥ ४९ ॥ क्योंकि-हे राजन् ! मरणको प्राप्त होतेहुये पुरुषोंके ध्यान करने

आत्मभावं नयत्यंग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ॥ ५० ॥ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ॥ ५१ ॥ कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ ५२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच । कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धावधिर्नृप । कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ १ ॥ चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते । स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥ २ ॥ तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता । त्रयो लोका इमे तत्र कल्पंते प्रलयाय हि ॥ ३ ॥ एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् । शेतेऽनंतासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ॥ ४ ॥ द्विपरार्द्धे त्वतिक्रांते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तदा प्रकृतयः सप्त कल्पंते प्रलयाय वै ॥ ५ ॥ एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते । आंडकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥ ६ ॥ पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति । तदा निरन्ने ह्यन्योऽन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ।

योग्य, सबोंके अन्तर्यामी भगवान् परमेश्वर, ध्यान करने वाले पुरुषोंको अपने स्वरूपकी एकताको पहुँचा देते हैं ॥ ५० ॥ दोषोंके निधि (खजाने) भी इस कलियुगका ग्रहण करने योग्य एक बड़ा गुण है कि-श्रीकृष्णजीके नामसंकीर्त्तनसे मनुष्य, संसारबन्धनसे छूटकर परम पदको प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! सत्ययुगमें विष्णु भगवान्का ध्यान करने वालेको त्रेतामें विष्णु भगवान्का यज्ञोंसे यजन करने वालेको और द्वापरमें विष्णु भगवानका पूजन करने वालेको जो फल प्राप्त होता है वह फल, कलियुगमें विष्णु भगवान्का नामसंकीर्त्तन करनेसे ही प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें तृतीय अध्याय समाप्त

श्रीशुकदेवजीने कहा कि-हे राजन् ! परमाणुसे लेकर दो परार्द्धपर्यन्त कालका और सत्ययुग आदिका प्रमाण मैंने तुमसे (३ स्कन्धमें) कहा है अब कल्प (स्थित) और प्रलयका प्रमाण कहता हूँ सुनो ॥ १ ॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंके सहस्रवार होजाने पर ब्रह्माजीका एक दिन कहलाता है, उसमें ही क्रमसे स्वायम्भुव आदि चौदहों मन्वन्तर होजाते हैं ॥ २ ॥ उस कल्प (ब्रह्माजीके दिन) के अन्तमें उतना ही (चारसहस्रयुगका) प्रलय होता है उसको ब्रह्माजीकी रात्रि कहते हैं, हे राजन् ! उस प्रलयमें स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोक नष्ट होजाते हैं ॥ ३ ॥ जब विश्वको उत्पन्न करने वाले शेषशायी नारायण भगवान् विश्वको अपनेमें समेटकर सोते हैं तब ब्रह्माजी भी उन नारायणमें ही लीन हो जाते हैं, यह ब्रह्माजीके निद्रारूप निमित्तसे होता है इस कारण इसको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥ ४ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीकी आयुका दो परार्द्ध वर्षकाल बीतजाता है तब महत्तत्त्व, अहंकार और पञ्चतन्मात्रा यह सातों प्रकृति लीन होजाती हैं और उस प्रलयमें नाश होनेका कारण प्राप्त होनेपर हे राजन ! महत्तत्वादिकोंका कार्य यह ब्रह्माण्डकोश भी लीन होजाता है इस कारण यह प्राकृतिक प्रलय है ॥ ५।६ ॥ हे राजन् ! यह प्राकृतिक प्रलय होने लगी है तब पहिले सौ वर्ष पर्यंत पृथिवी पर वर्षा

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः ॥ ७ ॥ सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः । रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति ॥ ८ ॥ ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः । दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ ॥ ९ ॥ उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः । दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् ॥ १० ॥ ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् । परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् ॥ ११ ॥ ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः । शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः ॥१२॥ तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥१३॥ तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे । ग्रस्तगंधा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ॥ १४ ॥ अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः । ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा १५ लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् । स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम् १६ शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते तैजसश्चेन्द्रियाण्यंग देवान्वैकारिको गुणैः ॥ १७ ॥ महान् ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् । ग्रसतेऽव्या-

न होनेसे कहीं भी अन्न न मिलनेके कारण भूँखसे घबड़ाई और कालकी पीडित करीहुई प्रजा, आपसमें एकको एक खानेलगती है तब धीरे धीरे सबका नाश हो जाता है ॥ ७ ॥ तब प्रलय कालका वह सूर्य, अपनी तीखी किरणोंसे समुद्र, देह और पृथिवीके सब रसको सुखालेता है और फिर नहीं छोड़ता है ॥ ८ ॥ फिर संकर्षण भगवान्के मुखसे उत्पन्न हुआ और वायुके अधिक वेगका चढाया हुआ प्रलय कालका अग्नि, देहके रसको सूर्यके खेंचलेनेसे प्राणी रहित हुए पृथिवी, पाताल आदि देशोंको जलाडालता है ॥ ९ ॥ तब नीचे, ऊपर चारों ओरसे, अग्नि और सूर्यकी ज्वालाओंसे भस्महुआ यह ब्रह्माण्ड, जलेहुये गोवरके पिण्डेकी समान दीखने लगता है ॥ १० ॥ फिर सौ वर्षसे कुछ अधिक वर्षों पर्यन्त प्रलयकालका प्रचण्ड पवन चलता है और जिधर तिधर धूलिसे भराहुआ आकाश धुमैला हो जाता है ॥ ११ ॥ फिर सौ वर्ष पर्यन्त चित्र विचित्र वर्णके अनेकों मेघ, 'हाथीकी सूँडकी समान धाराओंसे' वर्षा करते हैं और भयंकर शब्दोंसे गर्जते हैं ॥ १२ ॥ उस वर्षासे ब्रह्माण्डविवरमेंका सब जगत् जलमय होजाता है ॥ १३ ॥ इस प्रकार सब जगत्के जलमें डूबते ही भूमिके गन्धगुणको जल ग्रसलेता है अर्थात् जलमें पृथिवीका गन्धगुण लीन होजाता है, गन्धगुणका नाश होते ही पृथिवीका भी नाश होजाता है ॥१४॥ फिर उस जलके रसगुणको तेज निगल लेता है तब नीरस हुआ वह जल तेजमें लीन होजाता है, फिर तेजके रूपगुणको वायु ग्रसलेता है तब रूप रहित हुआ वह तेज वायुमें लीन होता है, तदनन्तर वायुके स्पर्श गुणको आकाश निगललेता है फिर वह वायु आकाशमें प्रविष्ट होता है, आकाशके शब्दगुणको तामस अहङ्कार ग्रसलेता है फिर वह आकाश भी तिस तामस अहङ्कारमें लीन होता है, हे राजन्! फिर इन्द्रियोंको उनकी वृत्तियों सहित राजस अहङ्कार ग्रस लेता है और इन्द्रियोंके देवताओंको सात्त्विक अहङ्कार ग्रस लेता है ॥ १५—१७ ॥ तामस, राजस और सात्त्विक तीनों प्रकारके अहङ्कारको महत्तत्त्व ग्रस लेता है

कृतं राजन्गुणान्कालेन नोदितम् ॥१८॥ न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः । अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥१९॥ न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी । न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा न सन्निवेशः खलु लोककल्पः न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्य तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥ २१ ॥ लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा । शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ॥ २२ ॥ बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् । दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ॥ २३ ॥ दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् । एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ॥२४॥ बुद्धे-

उस महत्तत्त्वको सत्वादि गुण ग्रस लेते हैं, हे राजन् ! फिर कालकी प्रेरणा करी हुई प्रकृति उन सत्वादि तीनों गुणोंको ग्रस लेती है अर्थात् तीनों गुण उसमें मिल जाते हैं ॥ १८ ॥ उस प्रकृतिको ही कालके दिन रात आदि अवयवोंसे परिणाम आदि विकार नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि--वह आदि और अंतसे रहित है, वही अव्यक्त (अस्तित्व विकारसे रहित) है इस कारण ही दीखनेमें नहीं आती है, वह नित्य समान (क्षयवृद्धिरहित) होती है और वह कभी भी नष्ट नहीं होती सबका कारण है ॥ १९ ॥ जिसमें वाणी मन, सत्व गुण, तमोगुण, रजोगुण, महत्तत्व आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रियें, और देवता तैसे ही यह लोकरूप रचना इनमेंसे कुछ नहीं है ॥ २० ॥ जहाँ स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति यह तीन अवस्था आकाश, जल, भूमि, वायु, अग्नि और सूर्य यह कोई नहीं रहते हैं और जो इंद्रिय रहित होनेके कारण सोए हुएकी समान और अतर्क्य होनेके कारण शून्यकी प्रतीत होती है परन्तु शून्य नहीं है, हे राजन् ! वही जगत्का मूलभूत तत्त्व है ऐसा तत्त्वज्ञानी पुरुष वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥ जिस समय पुरुष और प्रकृतिकी सत्वादि शक्तियें, कालसे तिरस्कार पानेके कारण परवश होकर लय पाती हैं उस समय यह प्राकृतिक लय होता है ॥ २२ ॥ अब तीसरा आत्यन्तिक लय (मोक्ष) कहते हैं वह मोक्ष ब्रह्मज्ञानसे प्रपञ्चका लयरूप है, ऐसा जानो, अब आत्माकी समान ही यदि प्रपञ्चको सत्यता होयगी तो उसका लय नहीं होगा, इस कारण ज्ञानरूप ब्रह्मसे निराला प्रपञ्च है ही नहीं ऐसा कहते हैं कि-हे राजन् ! बुद्धि,इंद्रियें और विषय यह जो ग्राहक, साधन और ग्राह्यरूपसे प्रसिद्ध है, उनका आश्रय एक ब्रह्म ही उनके रूपका प्रतीत होता है, ब्रह्मसे जुदे होकर उनकी प्रतीति नहीं होती है, मट्टी में प्रतीत होने वाले घड़े सकोरे आदि वस्तु जैसे दृश्य और आदि अन्त वाले होने के कारण मृत्तिकासे जुदे नहीं हैं तैसे ही ब्रह्ममें प्रतीत होनेवाला यह बुद्धि इन्द्रिय आदि प्रपञ्च दृश्य और आदिअन्तवाला होनेके कारण अपने कारण ब्रह्मसे निराला नहीं है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! जैसे दीपक, चक्षु और रूप यह अपने कारण तेजसे जुदे नहीं हैं तैसेही बुद्धि,इन्द्रियें और विषय यह कार्यरूप अपनेसे अत्यन्त निराले और अपने अधिष्ठान ब्रह्मसे जुदे नहीं हैं अर्थात् सर्प भासनेका कारण जो डोरी वही जैसे तिस सर्पसे अत्यन्त निराली होती है परन्तु उसमें भासने वाला सर्प

जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते। मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥२५॥ यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च। ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥ २६ ॥ सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह। विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवाङ्ग तन्तवः ॥ २७॥ यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः। अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवद्वस्तु यत् ॥ २८ ॥ विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा। न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ॥ २९ ॥ न हि सत्यस्य नानात्वमविद्वान् यदि मन्यते। नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ॥३०॥ यथा हिरण्यं

डोरीके विना नहीं होता है तैसे ही प्रपञ्चसे ब्रह्म निराला है परन्तु प्रपञ्चमात्र ब्रह्म से जुदा नहीं है ॥ २४ ॥ हे राजन्! बुद्धिकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति यह तीन अवस्था हैं ऐसा विवेकी पुरुष कहते हैं उन अवस्थाओंका अभिमान धारण करने वाला जो यह विश्व तैजस-प्राज्ञरूप नानात्व सो परब्रह्ममें केवल मायाका कल्पना करा हुआ है, सत्य नहीं है ॥ २५ ॥ जैसे आकाशमें मेघ किसी समय होते हैं और किसी समय नहीं होते हैं तैसेही अवयवोंवाला और उत्पत्तिनाशयुक्त यह जगत् परब्रह्ममें (सृष्टिकालमें) उत्पन्न होता है और प्रलयकालमें नष्ट होजाता है अर्थात् जैसे घड़ा अवयवी और आदि अन्त वाला होनेसे नाश पाता है तैसे मृत्तिका नष्ट नहीं होती है, तैसे ही यह विश्व भी अवयवी और आदि अन्तवाला होनेके कारण नाश पाता है, ब्रह्मका नाश नहीं होता है इस कारण ब्रह्म ही सत्य है ॥ २६ ॥ हे राजन्! व्यवहारमें सब ही अवयवी (घट आदि) पदार्थोंका कारणभूत जो (मट्टी आदि) अवयव होता है वही सत्य है, जैसे वस्त्रके अवयव डोरे होते हैं वह वस्त्र न होनेके समय भी प्रतीत होते हैं तैसे ही घड़े आदि अवयवियोंके विना भी मट्टी आदि अवयव प्रतीत होती हैं, इससे ब्रह्मके विना केवल जगत्की प्रतीति नहीं होती है और जगत्के विना ब्रह्मकी प्रतीति होती है ॥ २७ ॥ कारण और कार्यके स्वरूपसे जो भिन्न २ पदार्थ देखनेमें आते हैं उनमें परस्पर एकको दूसरेकी अपेक्षा होनेके कारण वह सब ही भ्रम है इस कारण जिनका आदि और अन्त है वह सब ही पदार्थ सत्य नहीं हैं, इस कारण ब्रह्ममें आरोपण करे हुए कारणता आदि धर्म भी आरोपित हैं, वास्तविक नहीं है२८प्रकाशवान् होने वाला भी प्रपञ्च, आत्माके प्रकाशके विना अणुमात्र भी 'प्रकाशवान् है' ऐसा नहीं कहा जासकता, और यदि वह प्रपञ्च प्रत्यगात्माके विना प्रकाशवान् है ऐसा निरूपण किया जाय तो—यह प्रपंच चिद्रूप आत्माकी समान स्वयंप्रकाश होगा अर्थात् आत्माकी समान एकरूप ही होगा ॥ २९ ॥ हे राजन्! अज्ञानी पुरुष,सत्य पदार्थको यदि अनेकपना माने तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि-सत्य पदार्थको अनेकपना है ही नहीं,यदि कहो कि सत्यरूप आत्माको जीवब्रह्मरूपसे अनेकपना है तो-ऐसा अनेकपना मानना,उपाधि की करी हुई, परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नताके विषयमें घटाकाश महाकाश की समान, अथवा उपाधिके करे हुए विकारीपन और अविकारीपनके विषयमें जलमें प्रतिबिम्बित और आकाशमें स्थित सूर्यकी समान, अथवा उपाधिके करेहुए

बहुधा समीयते नृभिः क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु । एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनैः ॥ ३१ ॥ यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तमः । एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धनः ॥३२॥ घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा । यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥ ३३ ॥ यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबन्धनम् । छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमंग संप्लवम् ॥३४॥ नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप । उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ॥ ३५ ॥ कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा । परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ॥३६॥ अनाद्यन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना । अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ॥ ३७ ॥ नित्यो नैमित्तकश्चैव तथा प्राकृतिको

कर्मभेदके विषयमें बाहरके और शरीरके भीतरके वायुकी समान वास्तविक नहीं है ३० हे राजन् ! जैसे सुवर्ण व्यवहारमें कड़े कुण्डल आदि अनेकों अलंकारके भेदोंसे अनेकों प्रकारका लोकोंके देखनेमें आता है तैसे ही अधोक्षज भगवान्‌को, अहंकाररूप उपाधिसे युक्त पुरुषोंने, व्यवहारमें लौकिक और वैदिक वचनोंके द्वारा नाना प्रकारका वर्णन करा है, भेद केवल इतना ही है कि-सुवर्ण इन्द्रियगोचर है और अधोक्षज भगवान् इन्द्रियगोचर नहीं हैं ॥ ३१ ॥ जैसे सूर्यसे उत्पन्न हुआ और सूर्यसे प्रकाश पानेवाला मेघ, सूर्यके अंश चक्षु इन्द्रियको, अपने स्वरूप सूर्यका दर्शन होनेमें प्रतिबन्धक होता है तैसे ही ब्रह्मका कार्य और ब्रह्मसे प्रकाशित हुआ अहंकार ब्रह्मके अंश जीवको ब्रह्मका दर्शन होनेमें प्रतिबन्धक होता है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! जिस समय वह सूर्यसे उत्पन्न हुआ मेघ, दूर होता है उससमय चक्षु इंद्रिय अपने स्वरूपभूत सूर्यको देखता है, तिसी प्रकार ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ अपनेको ढकने वाला अहंकार, जब विचारके प्रभावसे दूर होजाता है तब जीव भी अपने स्वरूपभूत ब्रह्मको देखता है अर्थात मैं ही ब्रह्मरूप हूँ ऐसा देखता है ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जब जीव, इस विवेकरूप शस्त्रसे इस मायामय अहंकाररूप अपने बन्धनको काट कर, पूर्ण आत्मस्वरूपका अनुभव लेता है उस समय उसको आत्यन्तिकलय कहते हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! कितने ही सूक्ष्म विचारको जानने वाले विद्वान् पुरुष, ऐसा कहते हैं कि-ब्रह्मादि सकल प्राणियोंके प्रतिक्षणमें उत्पत्तिलय होते हैं ॥ ३५ ॥ जैसे परिणाम पानेवाले नदीके प्रवाह और दीपककी ज्योति आदिकी अनेकों ऊँची नीची दशा क्षण २ में बदलनेके कारण उनके उत्पत्ति नाश दिखाती हैं तिसीप्रकार कालरूप प्रवाहके वेगसे बदलने वालीं शरीरकी दशा, देहके क्षण २ उत्पत्तिनाश दिखाने की कारण होती हैं ॥ ३६ ॥ हे राजन् ! जिसके आदि अन्त नहीं ऐसे परमेश्वरमूर्ति कालके द्वारा, आकाशमें गमन करने वाले चन्द्रमादिकोंके चलनेकी अवस्थाएँ जैसे दीखती नहीं हैं तैसे ही कालके द्वारा देहकी क्षण २ में होने वाली अवस्था भी दीखती नहीं है, इसकारण जैसे उन चन्द्रमा आदिकोंके उदय अस्तादिकोंके द्वारा क्षण २ में होने वालीं गतिकी अवस्थाओंकी कल्पना करी जाती है तैसे ही, देहकी

लयः। आत्यंतिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ॥ ३८ ॥ एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः। लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नाजोप्यभिधातुमीशः ॥ ३९ ॥ संसारसिंधुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य। लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ ४० ॥ पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः। नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥४१॥ स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः। इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥ ४२ ॥ एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये। दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीशुक उवाच। अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः। यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥१॥ त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि। न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥ २ ॥ न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूप-

---

बाल वृद्धादि अवस्थाओंसे मध्यकी अवस्थाओंकी कल्पना करी जाती है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक यह चार प्रकारका प्रलय कहा, हे राजन्! ऐसी कालकी गति है ॥३८॥ हे कुरुकुलश्रेष्ठ राजन्! सर्वान्तर्यामी जगत्कर्त्ता, भगवान् नारायणकी यह लीलारूप कथा, मैंने तुमसे संक्षेप करके कही हैं, विस्तारके साथ कहनेको तो ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन्! अनेक प्रकारके दुःखरूप दावाग्निसे पीड़ित हुए और दुस्तर संसार समुद्रको तरने की इच्छा करने वाले पुरुषको, पुरुषोत्तम भगवान्की लीलारूप कथामृतके रसका सेवन करे बिना दूसरा तरनेका उपाय है ही नहीं इस कारण वह यथाशक्ति भगवत्कथाओंका ही श्रवण करे ॥ ४०॥ हे राजन्! पहिले अविनाशी नारायण ऋषिने यह पुराणसंहिता नारदजीसे कही थी, उन नारदजीने व्यासजीसे कही ॥ ४१ ॥ हे प्रभो राजन्! उन भगवान् व्यासजीने प्रसन्न होकर यह श्रीमद्भागवतरूपी वेद समान संहिता मुझसे कही है ॥४२॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नैमिषारण्यमें बड़े भारी यज्ञके समय शौनक आदि ऋषियोंके बूझने पर सूतजी ऋषियोंसे इस कथाको कहेंगे ४३

इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥ छ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! इस श्रीमद्भागवतमें, जिनकी रजोगुण वृत्तिरूप हर्षसे जगत्को उत्पन्न करने वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं और जिनके क्रोधसे सबका संहार करनेवाले रुद्र उत्पन्न हुए हैं उन भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले जगदात्मा भगवान्का वारंवार वर्णन करा है ॥ १ ॥ हे राजन्! तुम तो, इस श्रीमद्भागवतको सुननेसे कृतार्थ ही हो, इससे 'मैं मरूँगा' इस अविवेकको त्याग दो, क्योंकि-जैसे देह, पहिले न होकर अब हुआ है इस कारण नाशको प्राप्त होगा तैसे तुम (आत्मा) पहिले कभी उत्पन्न न होकर अब भी उत्पन्न नहीं हुए हो इस कारण आगेको नाश भी नहीं पाओगे ॥ २ ॥ हे राजन्! जैसे बीज ही अंकुररूपसे उत्पन्न होते हैं और वह अंकुर फिर बीजरूपसे उत्पन्न होते हैं तैसे तुम पुत्र पौत्रादि

वान्। बीजांकुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः॥ ३ ॥ स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम्। यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥४॥ घटे भिन्ने यथाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा। एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥ ५ ॥ मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः। तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥ ६ ॥ स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते। ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतोभवः। रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥ ७ ॥ न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः। आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनंतोपमस्ततः ॥ ८ ॥ एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवामृश प्रभो। बुद्ध्याऽनुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचितया॥९

रूपवान् होकर नाश नहीं पाओगे, क्योंकि-जैसे अग्नि काठमें व्याप्त होकर रहता हुआ भी वास्तवमें काठसे जुदा ही होता है तैसे ही तुम भी देहमें व्याप्त होकर भी तिस देहसे जुदे ही हो,तात्पर्य यह है कि-देहसे देहही उत्पन्न होता है आत्मा उत्पन्न नहीं होता है ॥३॥ जैसे स्वप्नमें अपने शरीरका शिर कटना आप ही देखता है यह केवल भ्रम है तैसे ही जाग्रत् अवस्थामें भी अपने देहके जन्मादि विकार आप ही देखता है; तिसमें पुत्रादिकोंका जन्म और पिता आदिका मरण देखनेसे अपने जन्म मरण भी ऐसे ही हैं ऐसा अनुमान करता है और शेष बढ़ना आदि विकार स्वयं अनुभवसे देखता है और वह विकार देहके अध्याससे अपने को ही हैं ऐसा मानता है यह केवल भ्रम ही है, क्योंकि-जन्म मरणादिकोंका देखने वाला जो आत्मा वह उनसे निराला होनेके कारण जन्म मरण आदिसे रहित है ॥ ४ ॥ घड़ा फूट जाने पर उसमेंका आकाश जैसे पहिलेकी समान महाकाश रूप होता है तैसे ही तत्त्वज्ञानसे देहका लय होने पर यह जीव फिर ब्रह्मरूप होता है ॥ ५ ॥ मन ही आत्माको, देह गुण और कर्म उत्पन्न करता है तिस मनको माया उत्पन्न करती है, फिर उन माया आदि उपाधियोंके समूहसे जीवको जन्म मरणादि रूप संसार प्राप्त होता है स्वयं नहीं प्राप्त होता है ॥६॥ हे राजन्! जब तक तेल, उसका पात्र, रूईकी बत्ती और अग्निका संयोग यह रहते हैं तब तक दियेका दियापन (ज्योतिका ज्वालारूपसे परिणाम) दीखता है ऐसे ही जब तक कर्मरूपी तेल, मनरूपी पात्र, देहरूप बत्ती और चैतन्यका अध्यास रूप अग्निका संयोग रहता है तब तक संसाररूप दीपक प्रतीत होता है, वह रजोगुणकी वृत्तिसे उत्पन्न होता है, सत्त्वगुणकी वृत्तिसे रहता है और तमोगुणकी वृत्तिसे नाशको प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ दीपकका नाश होने पर भी जैसे पञ्चमहाभूतरूप तेज नष्ट नहीं होता है तैसे ही संसारका नाश होनेपर भी स्वयं प्रकाश स्थूल सूक्ष्म देहोंसे निराला और आकाशकी समान आधार जो आत्मा वह नाशको नहीं प्राप्त होता है इस कारण ही वह अनन्त और निरुपम है ॥ ८ ॥ इसलिये हे प्रभो राजन्! वासुदेव भगवान्का वारंवार चिन्तवन करते हुए तुम, द्रष्टा दृश्य, अन्वय और व्यतिरेककी विचारशक्तिसे युक्त अपनी बुद्धिके द्वारा आप ही अपने देहादिमेंके अपने आश्रय आत्माका विचार करो ॥ ९ ॥ हे राजन्! ऐसा विचार करने पर, ब्राह्मणके वचनका प्रेरणा कराहुआ

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः। मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ॥ १० ॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्। एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥ ११ ॥ दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः। न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥ १२ ॥ एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप। हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ १३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

सूत उवाच। एतन्निशम्य मुनिनाऽभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन। तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धांजलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥ १ ॥ राजोवाच। सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना। श्राविता यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ २ ॥ नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम्। अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥ ३ ॥ पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम्। यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥ ४ ॥ भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम्। प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥ ५ ॥ अनुजानीहि मां ब्रह्मन्वाचं

तक्षक, तुम्हें जला कर भस्म नहीं करेगा, क्योंकि–मृत्युके कारण जो काल आदि हैं वह भी मृत्युके भी मृत्युरूप ईश्वरको जला कर भस्म करनेको समर्थ नहीं होते हैं ॥ १० ॥ हे राजन्! जो मैं हूँ सो परमपदरूप ब्रह्म है और जो परमपदरूप ब्रह्म है सोई मैं हूँ, इस प्रकार निरुपाधिक ब्रह्ममें जीवात्माको स्थापन करके एक रूपसे देखने वाले तुम, जीभसे ओठोंके प्रान्तको चाटने वाले और विषैले मुखोंसे, अपने पैरमें काटने वाले तक्षकको, अपने देहको और जगत्को आत्मासे भिन्न मान कर नहीं देखोगे ॥ ११ ॥१२ ॥ हे तात राजन् परीक्षित्! तुमने विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिकी लीलाके विषयमें जैसा मुझसे बूझा था, तैसा यह सब मैंने तुमसे कहा है, हे राजन्! अब तुम और क्या सुननेकी इच्छा करते हो? ॥ १३ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥　छ　॥　छ

सूतजी कहते हैंकि–हे शौनकादि ऋषियो! सर्वात्मा श्रीहरिको निरन्तर देखने वाले, समदृष्टि, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीके इस प्रकार कहे हुए इस पुराणको सुनकर वह विष्णुरात राजा परीक्षित्, नम्रमस्तकसे उन शुकदेवजीके चरण कमल पर शीस रख कर और हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगे कि–॥ १ ॥ हे शुकदेवजी! मैं कृतार्थ हूँ, क्योंकि–करुणामूर्त्ति तुमने, जो मुझे आदि अन्त रहित साक्षात् श्रीहरिका श्रवण कराया है सो तुमने मेरे ऊपर बड़ा ही अनुग्रह करा है ॥२॥ हे ऋषे! भगवद्रूपी महात्मा पुरुषोंका, संसारतापसे तपे हुए अज्ञानी प्राणियोंके ऊपर जो अनुग्रह करना, उसको मैं कोई बड़ा आश्चर्य नहीं मानता हूँ, क्योंकि–वह उनका स्वाभाविक कार्य है ॥ ३ ॥ जिसमें पुण्यकीर्त्ति भगवान्का वारम्वार वर्णन करा है ऐसी यह श्रीमद्भागवत नामक पुराण संहिता हम सबोंने, आपसे सुनी है ॥ ४ ॥ हे भगवन्! मैं मृत्युके कारण तक्षकादिसे नहीं डरता हूँ, क्योंकि–तुम्हारे दिखाये हुए निर्भय मोक्षरूप ब्रह्ममें प्रविष्ट हुआ हूँ ॥ ५ ॥ हे शुकदेवजी! मैं अब वाणीके

यच्छाम्यधोक्षजे । मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥ ६ ॥ अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया । भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच । इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः । जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ॥ ८ ॥ परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना । समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ॥ ९ ॥ प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूल उदङ्मुखः । ब्रह्मभूतो महायोगी निःसंगश्छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना । हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥ ११ ॥ तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् । द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहो हि गरलाग्निना । बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥ १३ ॥ हाहाकारो महानासीद्भुवि खे दिक्षु सर्वतः । विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ॥ १४ ॥

और सब इन्द्रियोंका नियमन करके, कामवासनाओंसे रहित हुआ अपना चित्त, अधोक्षज भगवान्में लगा कर प्राणोंको त्यागता हूँ, इससे ऐसा करनेको मुझे आप आज्ञा दें ॥ ६ ॥ तुमने भगवान्का परम कल्याणकारी स्वरूप दिखाया है, तिससे ज्ञान विज्ञान की निष्ठा करके मेरा अज्ञान और अज्ञानसे होने वाला संस्कार नष्ट होगया है ॥ ७ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनकादि ऋषियो ! इस प्रकार प्रार्थना करके राजाने जिनकी पूजा करी है ऐसे वह भगवान् व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी, राजाको आज्ञा देकर और अपने जानेकी राजासे आज्ञा लेकर संन्यासियोंके साथ तहाँसे चले गये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजीके चले जाने पर जिसका सन्देह दूर होगया है ऐसा, निःसङ्ग और गङ्गा तट पर पूर्वदिशाकी ओरको अग्रभाग करे हुए कुशके आसन पर उत्तरको मुख करके बैठे हुए तिस राजा परीक्षित्ने भी, बुद्धिसे अपने मनको प्रत्यगात्मामें लगा कर परमात्माका ध्यान करा, तब वह महायोगी राजा ब्रह्मरूप होकर वृक्षकी समान लीनप्राण होगया अर्थात् राजाने प्राणोंको त्याग दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ हे विप्रो ! क्रुद्धहुए ब्राह्मणके पुत्रके प्रेरणा करेहुए तक्षक सर्पने, राजाको मारनेके निमित्त जातेमें मार्गके विषैं कश्यप ऋषिको देखा ॥ ११ ॥ (वह कश्यपजी, तक्षकका विष उतार कर राजा परीक्षित्की रक्षा करनेसे धन पानेके निमित्त राजाकी ओरको जाते थे, उनको देखते ही उनके परीक्षा करनेके निमित्त तहाँ एक वड़का वृक्ष था उसको तक्षकने डस कर जला कर भस्म कर दिया, तब कश्यपजीने उस वड़के वृक्षको मन्त्रबलसे अंकुरादियुक्त पहिलेकी समान जीवित कर दिया यह देख कर) तक्षकने उन विष उतारने वाले कश्यपजीको, यथेष्ट धन आदि देकर पीछेको लौटाल दिया, और इच्छितरूप धारण करने वाले उस तक्षकने ब्राह्मणके वेषसे राजाके समीप आकर फिर तक्षकरूप धार कर राजाको डस लिया ॥ १२ ॥ ब्रह्मरूप हुए राजाका देह, तब सब लोकोंके देखते हुए तक्षकके विषरूप अग्निसे तत्काल भस्म होगया ॥ १३ ॥ उस समय पृथ्वी पर, आकाशमें और दशों दिशाओंमें जिधर तिधर बड़ा हाहाकार शब्द हुआ और देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सब ही लोक आश्चर्ययुक्त हुए ॥ १४ ॥ फिर देवताओंका

देवदुन्दुभयो नेदुर्गंधर्वाप्सरसो जगुः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि विबुधाः साधुवादिनः॥१५ जनमेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् । तथाजुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ॥१६ । सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् । दृष्ट्वेंद्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ॥ १७ ॥ अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् । उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥ १८ ॥ तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् । तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥ १९ ॥ पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः । सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा जुहुवुर्विप्राः सहेंद्रं तक्षकं मखे । तक्षकाशु पतस्वेह सहेंद्रेण मरुत्वता ॥ २१ ॥ इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिंद्रः प्रचालितः । बभूव संभ्रांतमतिः सविमानः सतक्षकः ॥ २२ ॥ तं पतन्तं विमानेन सह तक्षकमम्बरात् । विलोक्यांगिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥ २३ ॥ नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् । अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥ २४ ॥ जीवितं मरणं जंतोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा । राजंस्ततोऽन्यो

बजाई हुई दुंदुभि बजने लगीं,गन्धर्व अप्सरा आदि गान करनेलगे, और राजाका मोक्ष हुआ यह बड़ा सुन्दर हुआ ऐसा कहते हुए देवता फूल वर्षाने लगे ॥ १५ ॥ फिर राजा जनमेजय, मेरे पिता तक्षकके डसलेनेसे मरणको प्राप्त हुए ऐसा सुन कर क्रोधमें भरगया, और ब्राह्मणोंको ऋत्विज् करके यज्ञमें सब सर्पोंका हवन करने लगा ॥ १६ ॥ तब उस सर्पयज्ञमेंके धधकते हुए अग्निमें बड़े २ सर्प जलने लगे ऐसा देखकर भयसे अतिव्याकुल हुआ वह तक्षक 'रक्षाके निमित्त' इन्द्रकी शरण गया१७ इधर परीक्षितके पुत्र जनमेजयने, सर्पयज्ञमें तक्षकके दृष्टि न पड़नेसे ब्राह्मणोंसे बूझा कि-हे द्विजो ! सर्पोंमें अधम तिस तक्षकका अभी तक तुम हवन क्यों नहीं करते हो ? ॥१८। तब ब्राह्मण कहने लगे कि-हे राजेन्द्र ! वह तक्षक इन्द्रकी शरण में गया इस कारण इन्द्र उसकी रक्षा कररहा है, तिस इन्द्रने तक्षकको रोका है इस कारण वह सर्प अग्निमें नहीं गिरता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके कहने को सुनकर वह उदारबुद्धि परीक्षित्का पुत्र राजा जनमेजय कहने लगा कि—हे विप्रो ! तो फिर इन्द्रसहित तिस तक्षकको तुम अग्निमें क्यों नहीं गिराते हो? २० यह राजाका भाषण सुनकर वह ब्राह्मण इन्द्रसहित तक्षकका हवन करनेके निमित्त प्रेष उच्चारण करने लगे कि-हे तक्षक ! मरुत् नामक देवगणोंके साथ रहनेवाले इन्द्रसहित तू 'अग्निमें' शीघ्र गिर ॥ २१ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंके उच्चारण करेहुए परुष वाक्योंसे तक्षक और विमानसहित इन्द्र अपने स्थानसे चलायमान हुआ और घबड़ा गया ॥२२॥ तब आकाशमेंके विमानमेंसे तक्षक सहित गिरनेवाले उस इन्द्रको देखकर, अङ्गिरा ऋषिके पुत्र बृहस्पति उस राजाके समीप आकर ऐसा कहने लगे कि-॥ २३ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! राजन् ! यह सर्पोंका राजा तक्षक, तुमसे वध पाने योग्य नहीं है, क्योंकि-इसने अमृत पिया है तिससे यह अजर अमर होगया ॥ २४ ॥ इस पर भी तुम अपने पिताको डसनेके कारण इसको भस्म करने का आग्रह करो तो सुनो! प्राणीका जीवित रहना, मरना, तथा स्वर्गादि लोकोंको

नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥२५॥ सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्व्याध्यादिभिर्नृप। पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्त आरब्धकर्म तत् ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् । सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥ २७ ॥ इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः । सर्पसत्त्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥ २८ ॥ सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया । मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः॥२९ न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः । न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च संकल्पविकल्पवृत्ति यत् ॥३०॥ न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् । तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥ ३१ ॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः । विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥ ३२ ॥ त

प्राप्ति होना यह सब अपने कर्मोंसे होते हैं, इस कारण हे राजन् ! दूसरेको सुख दुःख देनेवाला दूसरा कोई नहीं है इस कारण अकालमृत्युसे पिताकी दुर्गति इस तक्षकने करी है ऐसा तुम अपने मनमें न समझो॥२५॥ हे राजन् ! सर्प, चोर, अग्नि, बिजली, वा भूख, प्यास, रोगादिसे, जो जीवका मरण होता है वह उसके अपने प्रारब्ध कर्मोंसे ही मिलता है अर्थात् उसके कर्मके प्रेरणा करेहुए ही सर्पादि काटते हैं वह स्वतन्त्र नहीं हैं ॥ २६ ॥ तिससे हे राजन् ! हिंसायुक्त इस सत्रको अब तुम समाप्त करो, इसमें दूसरे निरपराधी सर्प निष्कारण ही जल गये, यह तुम्हारा भी दोष नहीं है, क्योंकि-सब प्राणी अपने पुरातन कर्मका ही भोग करते हैं ॥ २७ ॥ सूतजी कहते हैं कि—इस प्रकार बृहस्पतिजीने कहा तब उनके वचनका आदर करते हुए राजा जनमेजयने 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर सर्पयज्ञको समाप्त करा और बृहस्पतिजीका पूजन करा ॥ २८ ॥ वह यह विष्णुभगवान्की अतर्क्य महामाया ही है कि-जिस अनिवार्य मायाके द्वारा यह विष्णुभगवान्के ही अंशभूत प्राणी, क्रोध लोभादिके कारण मोहित हो प्राणियोंमें वैरभाव करके बाध्यबाधकता पाते हैं ॥ २९ ॥ यह पुरुष कपटी है, ऐसी बुद्धिमें जिसका बारम्बार उल्लेख होता है वह माया, जहाँ आत्मविचार करने वाले पुरुषोंके बारम्बार आत्मविचार प्रारंभ करने पर निर्भयपनेसे प्रकाशित नहीं होती हैं किन्तु भयभीतसी हुई अपने मोह आदि कार्योंको न करके बड़े कष्टसे रहतीहै और जहाँ मायाका आश्रय अनेकप्रकार का वादविवाद नहीं है तथा जहाँ सङ्कल्पविकल्परूप वृत्ति वाला मन भी नहीं है ॥ ३० ॥ और जहाँ इन्द्रियोंके समूहसहित कर्म नहीं हैं, उन इन्द्रिय तथा कर्म दोनोंसे सिद्ध होने वाला फल भी नहीं है, तैसे ही कर्म, इन्द्रियोंका समूह, फल इन तीनोंसे युक्त अहङ्कारात्मक जीव भी नहीं है इसकारण ही जहाँ बाध्यबाधकों का निषेध करा है ऐसे तिस आत्मस्वरूपमें मननशील पुरुष अहङ्कारादिका त्याग करके रमण करे ॥ ३१ ॥ आत्माके सिवाय दूसरे स्थानमें प्रेम न रखने वाले और 'नेति नेति' इस निषेधवाक्यके द्वारा आत्मासे भिन्न वस्तुओंका त्याग करनेकी इच्छा करने वाले भक्तपुरुष, उस आत्मस्वरूपको ही विष्णुभगवान्का सर्वोत्तमस्व-

एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् । अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ३३ अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्चन । न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ॥३४॥ नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे । यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ॥३५॥ शौनक उवाच । पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः । वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥३६॥ सूत उवाच । समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥ ३७ ॥ यदुपासनया ब्रह्मन्योगिनो मलमात्मनः । द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥ ३८ ॥ ततोऽभूत्त्रिवृदोंकारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् । यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३९ ॥ शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् । येन वा व्यज्यते यस्य

रूप जानते हैं और देहमेंके अहङ्कारका त्याग करके एकाग्रचित्त हुए मुमुक्षु पुरुषों ने, उस ही स्वरूपका हृदयमें ध्यान आदि करके निश्चय करा है ॥ ३२ ॥ जिन पुरुषोंको देह और घरमें मैं और मेरा ऐसा दुष्ट अभिमान नहीं है वही पुरुष, विष्णु भगवान्‌के इस सर्वोत्तमस्वरूपको पाते हैं ॥ ३३ ॥ दूसरेके दुष्ट भाषणको सहन करे 'अपना अपमान करनेके कारणसे' स्वयं दूसरेका अपमान न करे तिस (नाशवान्) देहका आश्रय करके 'तिस देहके निमित्त' दूसरे किसीके भी साथ वैरभाव न करे ॥ ३४ ॥ जिनके चरणकमलका ध्यान करके, यह श्रीमद्भागवतसंहिता प्राप्त हुई है तिन अकुण्ठबुद्धि भगवान् व्यासजीको मेरा नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ शौनकने कहा कि–हे सूतजी ! व्यासजीके शिष्य, वेदोंके प्रवर्त्तक, जो पैल आदि महात्मा ऋषि थे, उन्होंने वेदोंके कितने प्रकारके विभाग करे हैं सो मुझसे कहिये ॥ ३६ ॥ सूतजी ने कहा कि--हे शौनक ! समाधि लगा कर भगवान्‌के ध्यानमें बैठे हुए परमेष्ठी ब्रह्माजीके हृदयाकाशसे पहिले नाद उत्पन्न हुआ कि–जो कानोंमें अंगुलि डालकर उनकी बाहरकी शब्द सुननेकी वृत्तिको बन्द करने पर अस्मदादिकोंके भी सुननेमें आता है ॥ ३७ ॥ और हे शौनकजी ! जिस नादब्रह्मकी उपासनासे योगिजन, अपने अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव नामक मलको धोकर मोक्ष पाते हैं ॥३८॥ उस नादसे अकार–उकार मकाररूप तीन मात्राओंसे युक्त ॐकार उत्पन्न हुआ, जिस ॐकारकी उत्पत्ति स्पष्ट समझनेमें नहीं आती है, जो स्वयं ही हृदयमें प्रकाशित होता है, जो ब्रह्मरूप परमात्मा भगवान्‌का स्वरूप है ॥ ३९ ॥ यदि कहो कि–कौनसा परमात्मा तो जो इस अस्पष्ट ॐकारको सुनता है, अब जीव ही उसको सुनता है ऐसा कहो सो ठीक नहीं होसकता, कानोंको बन्द करलेनेसे श्रोत्रइन्द्रिय श्रवण करने वाली वृत्तिसे रहित होने पर जो ॐकारको सुनता है वही परमात्मा है, जीव तो 'इन्द्रियोंके अधीन ज्ञान वाला होनेके कारण, उस समय नहीं सुनता है, उसको तिसकी प्राप्ति परमात्माके द्वारा ही होती है ईश्वर तो ऐसा नहीं है, क्योंकि–वह इन्द्रियोंके समूहका लय होने पर भी ज्ञानवान् है, अर्थात् जब सोया हुआ पुरुष, शब्द सुन कर जगता है तब उस शब्दको इन्द्रियोंके लीन होजानेके कारण जीव नहीं सुनता है किन्तु जो उस समय शब्दको सुन कर जीवको जगाता है

व्यक्तिराकाश आत्मनः ॥ ४० ॥ स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः । स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ॥ ४१ ॥ तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगूद्वह । धार्यंते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ॥ ४२ ॥ ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानजः । अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥ ४३ ॥ तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभुः । सव्याहृतिकान्सोंकारांश्चातुर्होत्रविवक्षया ॥ ४४ ॥ पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् । ते तु धर्मोपदेष्टारः स्वपुत्रेभ्यः समादिशन् ४५ ते परंपरया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतैः । चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभिः क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः । वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतनोदिताः ॥ ४७ ॥ अस्मिन्नप्यंतरे ब्रह्मन्भगवाँल्लोकभावनः । ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥ ४८ ॥ पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः । अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥४९॥ ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः । चतस्रः

वही परमात्मा है, उसका ही वाचक ॐकार है और जिस ॐकारसे वैखरी वाणी प्रकट होती है और जिसकी हृदयाकाशमें आत्मासे उत्पत्ति है ॥ ४० ॥ और जो अपने आश्रयभूत साक्षात् ब्रह्मस्वरूप परमात्माका वाचक है वही ॐकार सब मन्त्रोंका रहस्य और वेदोंका नित्य एकरूप (निर्विकार) कारण है ॥ ४१ ॥ हे शौनकजी ! उस ॐकारके अकार, उकार, और मकार यह तीन वर्ण हैं, जिन अ, उ, म्, इन तीन वर्णोंसे, क्रमसे रज, सत्त्व और तम यह तीन गुण ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद यह नाम, भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक यह अर्थ, और जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति यह वृत्तियें धारण करी हैं ॥ ४२ ॥ हे शौनकजी ! तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने, उन 'अ, उ, म्, इन वर्णोंसे, य, र, ल, व, यह अन्तःस्थ, श, ष, स, ह, यह ऊष्म, अ से लेकर औ पर्यन्त स्वर, क से लेकर म पर्यंत स्पर्श और ह्रस्व दीर्घ आदि लक्षणों वाला सम्पूर्ण अक्षरसमूह उत्पन्न करा ॥ ४३ ॥ फिर उन अक्षरोंके समूहसे, उन ब्रह्माजीने, अपने चार मुखों करके होता अध्वर्यु आदि चार ऋत्विजोंके करनेका कर्म (यज्ञ) वर्णन करनेकी इच्छासे 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृति और ॐकार सहित चार वेद उत्पन्न करे ॥ ४४ ॥ और वह चारों वेद, वेदाध्ययन करनेमें चतुर अपने मरीचि आदि पुत्रोंको पढ़ाये फिर धर्मोपदेश करने वाले ऋषियोंने वह वेद अपने पुत्रोंको पढ़ाये ॥ ४५ ॥ तदनन्तर वह वेद, नियम धारण करने वाले शिष्योंकी परम्परासे चारों युगोंमें आये और द्वापरके अन्तमें महर्षियोंने उन वेदोंका विभाग करा ॥४६॥ हृदयमें रहनेवाले भगवान्के प्रेरणा करे हुए उन महर्षियोंने, कालवश दिन पर दिन सकल मनुष्य, बलहीन, तिस पर भी दुर्बुद्धि और तिसमें भी अल्पायु होने लगे ऐसा देखकर वेदोंके 'भिन्न२ शाखाओं के द्वारा' विभाग करे ॥ ४७ ॥ हे शौनकजी ! इस मन्वन्तरमें भी, ब्रह्मा शिव आदि देवताओंने और इन्द्रादि लोकपालोंने धर्मकी रक्षाके निमित्त जिनकी प्रार्थना करी है ऐसे लोकपालक प्रभु भगवान्-॥ ४८ ॥ पराशर ऋषिकी सत्यवती नामक स्त्रीके विषें मायाके सात्त्विक अंश करके व्यासरूपसे अवतीर्ण हुए और उन्होंने वेदके

संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥ ५० ॥ तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः। एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥५१॥ पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह। वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥ ५२ ॥ साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम् ॥ अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥ ५३ ॥ पैल स्वां संहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः। बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥ ५४ ॥ चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव। पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥ ५५ ॥ अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम्। तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥ ५६ ॥ शाकल्यस्तत्सुतस्तां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम्। वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥ ५७ ॥ जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम्। बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥ ५८ ॥ बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम्। चक्रे वालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥ ५९ ॥ बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः। श्रुत्वैतच्छ-

चार भाग करे ॥ ४९ ॥ जैसे एक स्थानमेंकी अनेक प्रकारके रत्नोंकी बड़ी भारी ढेरीमेंसे पद्मराग आदि रत्नोंकी ढेरियें भिन्न २ निकाली जाती हैं तैसे ही संपूर्ण वेदके बड़े भारी समूहमेंसे ऋक्, अथर्व, यजु और साम इन मन्त्रोंके समूह अनेकों प्रकरणोंके भेदरूपसे निराले २ निकालकर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यह चार संहिता करी हैं ५० हे शौनकजी! फिर उन महाबुद्धिमान् व्यासजीने अपने चार शिष्योंको बुलाकर हरएकको एक२ संहिता उपदेशके द्वारा देदी ५१ बह्वृच नाम वाली ऋग्वेदसंहिता पैल ऋषिको दी, दूसरी निगद नामवाली गद्यरूप यजुर्वेद संहिता वैशम्पायन नामक ऋषिको, तैसेही तीसरी छन्दोग नामकी सामवेदसंहिता जैमिनि ऋषिको चौथी अथर्वाङ्गिरसी नाम वाली अथर्ववेद संहिता सुमन्तु ऋषिको उपदेश करी ॥ ५२॥५३ ॥ हे शौनक ! पैल ऋषिने, अपनी ऋक्संहिताकी दो शाखा करके, उनमेंसे एक इंद्रप्रमितिको और दूसरी बाष्कलनामक शिष्यको पढ़ाई, उन बाष्कलने भी अपनी संहिताकी चार शाखा करके एक बोध्यको, दूसरी याज्ञवल्क्यको, तीसरी पराशरको और चौथे अग्निमित्रको पढ़ाई, हे शौनक ! पहिले कहे हुए आत्मज्ञानी इंद्रप्रमितिने, अपने मांडूकेय नामक विद्वान् पुत्रको अपनी सब संहिता पढ़ाई, मांडूकेयका शिष्य देवमित्र था उसने वह संहिता अपने सौभरि आदि शिष्योंको पढ़ाई ५४–५६ उस माण्डूकेयका पुत्र शाकल्य था, उसने उस अपनी संहिताके पाँच भाग करके वात्स्य मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर इन पाँच शिष्योंको पढ़ाई ॥ ५७ ॥ उन शाकल्यका शिष्य जातूकर्ण्य नाम वाला था उसने अपनी संहिताके तीन भाग करके और वेदमें कहे पदार्थोंका व्याख्यानरूप चौथा निरुक्त रच कर तिसके साथ वह बलाक, पैज, वैताल और विरज इनको सिखाई ॥ ५८ ॥ बाष्कलके पुत्र बाष्कलिने, पहिली सब शाखाओंमेंसे वालखिल्य नामकी एक संहिता रची, यह वालायनि, भज्य और कासारने पढ़ी ॥ ५९ ॥ हे शौनकजी ! यह ऋग्वेदकी संहिता महर्षियोंने धारण करी है जो कोई पुरुष, इन संहिताओंके विस्तारको सुनता है

न्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६०॥ वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन्। यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत्। चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥ ६२ ॥ इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया। विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥ ६३ ॥ देवरातसुतः सोपि छर्दित्वा यजुषां गणम्। ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥ ६४ ॥ यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः। तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन्सुपेशलाः ॥ ६५ ॥ याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मन् छन्दांस्यधिगवेषयन्। गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वर ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच। ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसम्वत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोक-

---

वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ६० ॥ हे शौनक ! वैशम्पायन ऋषिके चरकाध्वर्यु नाम वाले शिष्य थे, उनका चरकाध्वर्यु नाम पड़नेका कारण यह था कि-उन्होंने अपने वैशम्पायन गुरुको ब्रह्महत्या लगने पर उस ब्रह्महत्याको दूर करने वाला उन गुरुके करनेका व्रत (प्रायश्चित्त) आप करा था इस कारण वह चरकाध्वर्यु नाम को प्राप्त हुए ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्य भी उन वैशम्पायनके शिष्य थे, वह गुरुसे कहने लगे कि-हे भगवन् ! अल्प दृढ़ता वाले इन शिष्योंके करे हुए व्रतसे कौन फल प्राप्त होगा ? इस कारण इनको अति कठिन ऐसे व्रतको मैं ही करूँगा ॥ ६२ ॥ ऐसा कहने पर वैशम्पायनजी क्रोधमें होकर कहने लगे कि-अरे ! ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले तुझ शिष्यसे भर पाये, तूने मुझसे पढ़ा है उसको त्यागकर यहाँसे शीघ्र निकल जा, ऐसा कहते ही ॥ ६३ ॥ देवरातके पुत्र वह याज्ञवल्क्य भी यजुर्वेदोंके समूहको तहाँ ही वमन करके डाल कर तहाँसे चले गये, फिर वह वमन करे हुए यजुर्वेद कितने ही ऋषियोंकी दृष्टि पड़े ॥ ६४ ॥ तब उनकी तिन यजुर्वेदके मंत्रोंको ग्रहण करनेकी इच्छा हुई परन्तु वमन ग्रहण करना ब्राह्मणोंको उचित नहीं है इस कारण उन ऋषियोंने, उन वेदोंके लोभसे अपने तीतर पक्षीके रूप रख कर उनको ग्रहण कर लिया, तब अतिसुन्दर तैत्तिरीय नामसे प्रसिद्ध यजुर्वेदकी शाखाहुई ६५ हे शौनक ! वह याज्ञवल्क्य, अपने गुरुके पास, व्यासजीके विभाग करके न कहनेके कारण जो नहीं थे ऐसे दूसरे ही यजुर्वेदके मंत्रोंकी खोज करते हुए ऋग्वेदादि सब वेदोंके नियन्ता सूर्यनारायणकी स्तुति करने लगे ॥ ६६ ॥ याज्ञवल्क्यजी बोले कि-हे सवितः सूर्यनारायण ! जो तुम एक ही भगवान् होकर जरायुज, अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज इन चार प्रकारके प्राणियोंके समूहरूप ब्रह्माजीसे लेकर तृण पर्यन्त सम्पूर्ण जगत्के हृदयमें आत्मस्वरूपसे और बाहर क्षण, लव, निमेष आदि अवयवोसे बढ़े हुए सम्वत्सर समूहरूप कालस्वरूपसे 'जैसे आकाश घट मठ आदि उपाधियोंके भीतर और बाहर व्याप्त होने पर भी कहीं भी लिप्त नहीं होता है तैसे ही' देहादि उपाधियोंके भीतर और बाहर रह कर भी उपाधियोंसे आच्छादित न होते

यात्रामनुवहन्ति॥६७॥ यदुह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ॥ ६८ ॥ य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति ॥ ६९ ॥ य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति॥७०॥परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥ ७१ ॥ अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुष्काम उपसरामीति ॥७२॥ सूत उवाच । एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः । यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥ ७३ ॥ यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्च शतैर्विभुः । जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यंदिना-

---

हुए प्रतिवर्ष जलको सुखाना और फिर वर्षा करना इसके द्वारा लोकोंका आजीवन करते हो ऐसे तुम आदित्यरूपी भगवान्को नमस्कार हो (इस प्रकार गायत्रीके प्रथम पादका अर्थ वर्णन करा) ॥ ६३ ॥ अब गायत्रीके दूसरे चरणके अर्थका वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं कि-हे देवोत्तम ! हे सवितः ! प्रति दिन प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय वैदिक कर्मकी रीतिसे तुम्हारी स्तुति करने वाले भक्तोंके सकल पातकोंसे उत्पन्न होने वाले दुःखोंके बीजका नाश करने वाले हे सूर्यनारायण ! इस तुम्हारे प्रति दिन प्रकाश पाने वाले मण्डलका हम ध्यान करते हैं ॥६८॥ हे सूर्यनारायण ! जो तुम, सबके अन्तर्यामी आत्मा होतेहुए, अपने आश्रित स्थावर जङ्गमरूप जीवोंके जड़ रूप मन, इन्द्रियों और पञ्च प्राणोंको प्रेरणा करते हो ऐसे तुम भगवान्को नमस्कार हो ॥ ६९ ॥ अब गायत्रीके तीसरे चरणसे स्तुति करते हैं कि-हे सूर्यनारायण ! जो परमदयालु भगवान्, अति भयानक मुख वाले अन्धकार नामक अजगररूप ग्रहके निगले हुए और उससे ही मृतक समान अचेतन पड़ेहुए इस लोकको देखकर और अपनी दयायुक्त दृष्टिसे उठा कर प्रति दिन तीनों कालमें कल्याणकारी अपने धर्मरूप परमात्माकी उपासनामें प्रवृत्त करते हो, 'जैसे राजा दुष्ट पुरुषोंको भय देता हुआ विचरता है तैसे, दुराचारियोंको भय देते हुए गमन करते हो-॥ ७० ॥ और जिनके चारों ओर इन्द्रादि लोकपाल, जहाँ तहाँ अपने २ स्थानोंमें रह कर कमलकी समान हाथोंकी अञ्जलियोंसे अर्घ्य देते हैं तिन भगवान् सूर्यको नमस्कार हो ॥ ७१ ॥ हे भगवन् ! क्योंकि-तुम ऐसे हो इसकारण दूसरोंके यथार्थ न जानेहुए यजुर्वेदके मंत्रोंकी इच्छा करके मैं, त्रिलोकीके अधिपतियों करके वन्दना करे हुए तुम्हारे दोनों चरणकमलोंका भजन करता हूँ ॥ ७२ ॥ सूतजी कहते हैं कि-इस प्रकार स्तुति करके प्रसन्न करे हुए उन भगवान् सूर्यनारायणने वाजिरूप धारण करके, याज्ञवल्क्य मुनिको अयातयाम (विस्मरण आदि दोषोंसे रहित और दूसरोंको प्राप्त न हुए) यजुर्वेदके मन्त्र दिये ॥ ७३ ॥ फिर उन याज्ञवल्क्यजीने उन असंख्यात यजुर्वेदके मन्त्रोंकी १५ शाखा करीं, उन वाजसनेयी

द्गपः ॥ ७४ ॥ जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमंतुस्तनयो मुनिः । सुत्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥ ७५ ॥ सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् । सहस्रं संहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥ ७६ ॥ हिरण्यनाभः कौसल्यः पौष्यंजिश्च सुकर्मणः । शिष्यौ जगृहतुश्चान्य आवंत्यो ब्रह्मवित्तमः ॥ ७७ ॥ उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै । पौष्यंज्यावंत्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥७८॥ लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च । पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥ ७९ ॥ कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः । शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवंत्य आत्मवान् ॥ ८० ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच । अथर्ववित्सुमन्तश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् । संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥१॥ शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्पलायनिः । वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु । कुमुदः शुनको ब्रह्मन् जाजलिश्चाप्यथर्व-

---

नामक शाखाओंको काण्व माध्यन्दिन आदि ऋषियोंने पढ़ा ॥ ७४ ॥ सामवेदका गान करने वाले जैमिनिका एक सुमन्तु नाम वाला पुत्र था और उस सुमन्तुका एक सुत्वान् नाम वाला पुत्र था उन दोनोंको (पुत्र और पौत्रको) उन्होंने अपनी संहिताकी दो शाखा करके एक २को एक २ पढ़ाई ॥ ७५ ॥ उन जैमिनिका सुकर्म नाम वाला भी एक बड़ा बुद्धिमान् शिष्य था, उसने सामवेदरूप वृक्षकी एक सहस्र संहिता निराली २ करीं, फिर हे शौनकादि ऋषियो ! उस सुकर्माका एक शिष्य कौशल्य हिरण्यनाभ, दूसरा शिष्य पौष्यञ्जि और तीसरे शिष्य ब्रह्मवेत्ता (सामवेद जानने वाले) आवन्त्यने उन सब संहिताओंको ग्रहण करा ॥७६॥७७॥ उन पौष्यञ्जि तथा आवन्त्यके और हिरण्यनाभके भी उत्तर दिशामें रह कर सामवेदका गान करने वाले पाँच सौ शिष्य थे उन्होंने उन संहिताओंको समान भाग कर लिया, यद्यपि वह सब ही उदीच्य थे तथापि कालवश उनमेंसे कितनों हीको प्राच्य (पूर्ववासी) कहते हैं ॥ ७८ ॥ लौगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुशीद और कुक्षि यह पौष्यञ्जिके शिष्य थे उन्होंने सौ सौ संहिता लीं ॥ ७९ ॥ उस हिरण्यनाभका कृतनामा शिष्य था उसने चौबीस संहिता अपने शिष्योंको पढ़ाई और शेष रहीं संहिता आवन्त्य ऋषिने अपने शिष्योंको पढ़ाई ॥ ८० ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥ छ * छ

सूतजीने कहा कि-हे शौनक ! अथर्ववेद जानने वाले सुमन्तु ऋषिने, अपनी संहिता कवन्ध शिष्यको पढ़ाई उस कवन्धने भी अपनी संहिताकी दो शाखा करके एक पथ्यनामक शिष्यको और दूसरी वेददर्श नामक शिष्यको पढ़ाई ॥ १ ॥ वेददर्शने अपनी संहिताकी चार शाखा करके शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि इन चार शिष्योंको पढ़ाई, अब पथ्यके शिष्य कहता हूँ, सुनो-हे शौनक ! कुमुद, शुनक, और जाजलि यह तीन 'पथ्यने अपनी संहिताकी तीन शाखा करके पढ़ाये हुए होनेसे' अथर्वके जानने वाले हुए ॥ २ ॥ शुनकने बभ्रु और सैन्धवायन

वित् ॥ २ ॥ बभ्रुः शिष्योऽथांगिरसः सैंधवायन एव च । अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथाऽपरे ॥ ३ ॥ नक्षत्रकल्पः शांतिश्च कश्यपांगिरसादयः । एते आथर्वणाचार्याः श्रृणु पौराणिकान्मुने ॥ ४ ॥ त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः । वैशम्पायनहारीतौ षड् वै पौराणिका इमे ॥ ५ ॥ अधीयंत व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् । एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥ ६ ॥ कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः । अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥७॥ पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् । श्रृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ८ सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षांतराणि च । वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥९॥ दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः । केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥ १० ॥ अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः । भूतसूक्ष्मेंद्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ ११ ॥ पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः । विसर्गोऽयं

दो शिष्य थे,उन्होंने दो संहिता पढ़ी,तैसे ही सैन्धवादिकोंके सावर्ण्य आदि अर्थात् नक्षत्रकल्प, शांतिकल्प, कश्यप और आंगिरस आदि शिष्य अथर्ववेदके आचार्य (शाखा विभाग करके प्रवृत्त करने वाले) थे,हे मुने अब पुराणोंके आचार्य कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे शौनक ! त्रय्यारुणि, कश्यप सावर्णि,अकृतव्रण, वैशंपायन और हारीत यह छः पौराणिक थे ॥५॥ पहिले वेदव्यासजीने, पुराणकी छः संहिता रचकर मेरे रोमहर्षण पिताको सिखाईं फिर उन व्यासजीके शिष्य मेरे पिताके मुखसे त्रय्यारुणि आदि छः जनोंने एक २ संहिता पढ़ी, और उन सबोंका शिष्य मैं, छहों संहिताओंको पढ़ा हूँ ॥ ६ ॥ कश्यप, मैं, सावर्णि, परशुरामका शिष्य अकृतव्रण इन हम चारोंने, व्यासजीके शिष्यसे पुराणोंकी चार मूलसंहिताओंको+ पढ़ा है ॥ ७ ॥ अब शुकदेव और राजा परीक्षितके सम्वादमें कहे हुए पुराणोंके लक्षण और उनके भेद कहता हूँ हे शौनक ! ब्रह्मर्षियोंने वेदशास्त्रोंके अनुसार जो पुराणोंके लक्षण कहे हैं उनको ध्यान देकर सुनो ॥ ८ ॥ हे शौनक ! इस विश्वका सर्ग, विसर्ग, वृत्ति (स्थान), रक्षा (पालन) मन्वंतर, वंश तथा वंशवालोंका चरित्र (ईशानुकथा), संस्था (निरोध) मुक्तिहेतु (ऊति) और अपाश्रय यह दश विषय जिसमें हो उसको विद्वान् पुरुष पुराण कहते हैं और कितने ही आचार्य कहते कि–सर्ग,विसर्ग वंश,वंशजोंका चरित्र और मन्वन्तर यह पाँच विषय जिस में हों वह पुराण कहलाता है, इस मतभेदमें ऐसी व्यवस्था है कि–दशों विषयोंका जिसमें भिन्न २ वर्णन हो वह महापुराण और जिसमें अन्य पाँच लक्षणोंका अन्तर्भाव करके पाँच लक्षण वर्णन करे हों उसको अल्पपुराण (उपपुराण) माने ॥ ९ ॥ हे शौनक ! प्रधान (प्रकृति) के गुणोंका क्षोभ होकर तिससे महत्तत्त्वकी महत्तत्त्वसे तीन प्रकारके अहङ्कारकी और उससे शब्दादि तन्मात्रा इन्द्रियें पञ्चतत्त्व और उनके देवताओंकी जो सृष्टि होती है उसको 'सर्ग' कहते हैं ॥ ११ ॥ ईश्वरके अनुग्रह करे

+ श्लोकमें 'मूल संहिता' ऐसा पद है इससे प्रतीत होता है कि–और भी बहुतसी संहिता थीं ॥

समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥१२॥ वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च। कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयाऽपि वा ॥ १३ ॥ रक्षाऽच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे। तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥ १४ ॥ मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः। ऋषयोऽंशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १५ ॥ राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः। वंश्यानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥ १६ ॥ नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः। संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः ॥ १७ ॥ हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः। यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥ १८ ॥ व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु। मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥ १९ ॥ पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु। बीजादिपञ्चतां तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥ २० ॥ विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं

हुए (सृष्टिकी सामर्थ्य दिये हुए महत्तत्त्व आदिका जो, पूर्वकर्मोंकी वासनाओं वाला और 'जैसे बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है तैसे' प्रवाहकी समान 'कार्यभूत' चराचर प्राणिरूप समुदाय तिसको 'विसर्ग' कहते हैं ॥ १२ ॥ चर प्राणियों की सामान्य रीतिसे चराचर प्राणी जीविकाका साधन हैं, तिनमें मनुष्योंकी अपने अपने स्वभावके अनुसार रागसे वा शास्त्रके वचनोंसे जो आजीविका कही गई है उसको वृत्ति कहते हैं ॥ १३ ॥ जिनसे दैत्योंका नाश किया जाता है तिसर प्रत्येक युगमें पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि और देवताओंमें अच्युत भगवान्के अवतारकी लीला होकर जो विश्वका पालन होता है उसको रक्षा कहते हैं ॥ १४ ॥ मनु देवता मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तऋषि और श्रीहरिके अंशका अवतार इन छहोंका समूह जब अपने२ अधिकारमें प्रवृत्त होते हैं उस समयके उस कालको 'मन्वन्तर' कहते हैं१५ ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए (शुद्ध) राजाओंकी भूत, भविष्य और वर्त्तमान कालकी सन्ततिको 'वंश' कहते हैं और उन शुद्ध राजाओंके चरित्रको तथा उनके वंशधरों के चरित्रको 'वंश्यानुचरित' कहते हैं ॥ १६ ॥ इस विश्वका नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक जो चार प्रकारका, मायासे प्रलय होता है तिसको विद्वान् पुरुष 'संस्था' कहते हैं ॥ १७ ॥ हे शौनक ! चैतन्यको मुख्य मानने वाले कितनेही पुरुष, जिस जीवको अनुशायी कहते हैं और दूसरे उपाधिको मुख्य मानने वाले कितने ही पुरुष, अव्याकृत कहते हैं वह अविद्यासे मोहित होकर, कर्म करनेवाला जीव, इस विश्वकी उत्पत्ति आदि होनेका कारणभूत है इस कारण उसको 'हेतु' कहते हैं ॥ १८ ॥ परब्रह्म कि-जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें जीवपनेसे वर्त्तनेवाले मायामय विश्व, तैजस और प्राज्ञमें पुरा हुआ है और समाधि आदिमें उनसे भी जुदा है तिसको 'अपाश्रय' कहते हैं ॥ १९ ॥ जैसे कारणरूप मृत्तिका आदि वस्तु, नामरूप वाले अपने कार्यरूप घटादि पदार्थोंमें अनुस्यूत होकर भी तिनसे भिन्न होते हैं तैसे ही, गर्भाधानसे मरणपर्यन्त होनेवाली देहकी अवस्थाओंमें अधिष्ठानपने से' अनुस्यूत और 'साक्षीपनेसे' उनसे भिन्न जो, नामरूपोंमें सत्तामात्रसे रहनेवाला परब्रह्म वही अपाश्रय है ॥ २० ॥ जिस समय पुरुषका मन, रजःसत्वतमोगुणरूप

स्वयम् । योगेन वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्तते ॥ २१ ॥ एवं लक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः । मुनयोष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महांति च ॥ २२ ॥ ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कांदसंज्ञितम् ॥ २३ ॥ भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कंडेयं सवामनम् । वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्मांडाख्यमिति त्रिषट् ॥ २४ ॥ ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः । शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शौनक उवाच । सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर । तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥ १ ॥ आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः । यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥२॥ स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः। नैवाधुनाऽपि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥ ३ ॥ एक एवार्णवे भ्राम्यद्ददर्श पुरुषं किल । वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ॥ ४ ॥ एष नः संशयो भूयान्

तीनों वृत्तियोंको त्याग कर विराम पावे, अथवा यहाँ ही करेहुए योगबलसे अथवा सर्गादि लक्षणोंके श्रवण कीर्त्तन आदिसे होने वाली भक्तिसे वैराग्यको प्राप्त होय तब विक्षेपके नष्ट होजानेके कारण यह पुरुष आत्माको जानेगा और संसाररूप अविद्यासे स्वयं ही छूट जायगा ॥ २१ ॥ हे शौनकजी ! इस प्रकारके लक्षणोंसे जाननेमें आने वाले महापुराण और उपपुराण अठारह हैं ऐसा प्राचीन विद्वानोंका कथन है ॥ २२ ॥ ब्राह्म (ब्रह्मपुराण), पाद्म (पद्मपुराण), वैष्णव और शैव, लैंग, गारुड़, नारदीय, भागवत, आग्नेय, स्कान्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मात्स्य, कौर्म और ब्रह्माण्ड यह अठारह पुराण हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे शौनक ! व्यास, व्यासजीके शिष्य, उनके शिष्य और उनके भी शिष्य इत्यादिकोंका करा हुआ और श्रोताओंके ब्रह्म सर्वस्वको बढ़ाने वाला यह शाखाओंका विस्तार मैंने तुमसे वर्णन करा है ॥२५॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ छ ॥ छ ॥ छ ॥

शौनकने कहा कि—हे बोलने वालोंमें श्रेष्ठ सूतजी ! तुम चिरञ्जीव रहो, तुम संसाररूप अपार अन्धकारमें घूमते हुए पुरुषोंको पार दिखाने वाले हो, इसकारण हम जो बूझते हैं सो कहो ॥ १ ॥ जिस प्रलयसे यह जगत् नष्ट होता है उस कल्पके अन्तमें होने वाले प्रलयमें भी जो शेष रहे उन मृकण्डके पुत्र मार्कण्डेय ऋषिको सब लोक 'चिरायु' कहते हैं सो यह कैसे होसकता है ? अर्थात् प्रलयमें भी कैसे जीवित रहते हैं ॥ २ ॥ दूसरे यह कि–वह मार्कण्डेय ऋषि भृगुवंशमें श्रेष्ठ होनेके कारण इस ही कल्पमें और हमारे कुलमें उत्पन्न हुए हैं और अब तक (भृगुकुलकी उत्पत्ति होनेसे) तो प्राणियोंका प्राकृत वा नैमित्तिक इनमेंसे कोई भी प्रलय नहीं हुआ है अर्थात् इस समयपर्यंत जब प्रलय ही नहीं हुआ तो 'प्रलयमें शेष रहे' यह कहना कैसे बन सकता है ? ॥ ३ ॥ एक और भी अघटित बात है कि–वह मार्कण्डेय ऋषि, प्रलयकालके समुद्रमें इकले ही भ्रमण कर रहे थे, सो बड़के पत्तेके पुटके ऊपर (दोनेमें

सूत कौतूहलं यतः । त्वं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ॥ ५ ॥ सूत उवाच । प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः । नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ॥ ६ ॥ प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् । छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥७॥ बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलांबरः । बिभ्रत्कमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ॥ ८ ॥ कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये । अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्संध्ययोर्हरिम् ॥ ९ ॥ ॥ सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यतः । बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ॥१०॥ एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् । आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च ये परे । नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ॥ १२ ॥ इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपःस्वाध्यायसंयमैः । दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ॥ १३ ॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः । व्यतीयाय महान्कालो मन्वंतरषडात्मकः ॥१४॥ एत-

---

उन्होंने सोये हुए एक आश्चर्यकारी बालकरूप पुरुषको देखा ॥ ४ ॥ यह बड़ा भारी संशय उत्पन्न होनेके कारण सुननेको बड़ी उत्कण्ठा होरही है, हे बहुत जाननेवाले सूतजी ! तुम केवल महायोगी ही नहीं हो किन्तु सब पुराणोंको जाननेके विषयमें माननीय भी हो, इस कारण हमारे उस संशयको दूर करो ॥ ५ ॥ सूतजीने कहा कि–हे शौनक ! जिस तुम्हारे प्रश्नका समाधान करतेमें कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाली भगवान्‌की कथा गाई जायगी ऐसा यह लोकोंके भ्रमको दूर करनेवाला तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न करा है ॥ ६ ॥ जब मार्कण्डेयजीने गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रम करके पितासे यज्ञोपवीत संस्कार पाया तब वह ब्रह्मचर्य व्रत धार कर वेदको पढ़ कर तप और स्वाध्यायमें लग गए ७ वल्कल वस्त्र ओढ़े, जटा धारण करे वह शान्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मार्कण्डेयजी, धर्मको बढ़ानेके निमित्त दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत, मेखला, जप करनेकी रुद्राक्षकी माला सहित काली मृगछाला और कुशा धारण करके अग्नि, सूर्य, गुरु, ब्राह्मण और आत्मामें श्रीहरिका पूजन करने लगे वह प्रातः और सायंकाल भीख माँगके लाकर अपने गुरुको अर्पण करते थे और जब अपने गुरु आज्ञा देते थे तब मौन साध कर एक समय भोजन करते थे, कभी गुरुने भोजन करनेको आज्ञा न दी तो निराहार ही रहजाते थे ॥ ८–१० ॥ हे शौनक ! ऐसे तप और स्वाध्यायमें तत्पर रहने वाले उन मार्कण्डेयजीने दशकरोड़ वर्ष पर्यन्त श्रीहरिकी आराधना करके अतिकठिनतासे जीतने योग्य मृत्युको भी जीत लिया ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयजीके मृत्युको जीत लेनेके कारण ब्रह्मा, भृगु, महादेव दक्ष और ब्रह्माजीके नारदादि पुत्रोंको तथा और जो मनुष्य, देवता, पितर तथा भूत आदि थे तिनको बड़ा आश्चर्य प्रतीत हुआ ॥ १२ ॥ ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले वह योगी, तप, स्वाध्याय और इन्द्रियजयके द्वारा अन्तःकरण को रागादि रहित करके अधोक्षज भगवान्‌का ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ ऐसे बड़े योगके बलसे मनका नियम न कर, रहने वाले उन मार्कण्डेयजीको छः मन्वन्तरका (१७०४ युगोंकी चौकड़ी) समय बीत गया ॥ १४ ॥ हे शौनकजी ! इस सातवें

त्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्कलांतरे । तपोविशंकितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् १५ गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ । मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तदा१६ ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे । पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥ १७ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताऽञ्चितम् । पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुण्यामलजलाशयम् ॥ १८ ॥ मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् । मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥१९॥ वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् । सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन् स्मरम् ॥२०॥ उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः। गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥ २१ ॥ अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः । अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥ २२ ॥ हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिंकराः । मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥ २३ ॥ ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः । मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥ २४ ॥ संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा । मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥ २५ ॥ क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् । भृशमुद्विग्नमध्यायाः

मन्वन्तरमें इस वार्त्ताको जान कर इस मन्वंतरमेंके पुरन्दर नामक इंद्रने, तपस्यासे यह मेरे इन्द्रपदको लेलेगा ऐसा संदेह करके, उनकी तपस्यामें विघ्न करनेको उद्यत हुआ ॥ १५ ॥ उस इन्द्रने, मार्कण्डेय मुनिको तपस्यासे डिगानेके निमित्त गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव बसंत ऋतु और मलयागिरिके पवन तथा रजोगुणके अतिप्रिय लोभ और मदको भेज दिया ॥ १६ ॥ हे शौनकजी ! वह सब ही हिमालयके उत्तर की ओर जहाँ पुष्पभद्रा नदी और चित्रा नामक शिला है तहाँ मार्कण्डेयजीके आश्रमके पास आपहुँचे ॥ १७ ॥ उस पवित्र आश्रमका स्थान सुन्दर वृक्षलताओंसे शोभायमान, पवित्र पक्षियोंके समूहोंसे भरा हुआ और पवित्र निर्मल जलाशयोंसे युक्त था ॥ १८ ॥ जहाँ मदमत्त भौंरे गुंजार रहे थे, और मत्त कोकिल अपना कुहूर शब्द कररहे थे,जहाँ मदोन्मत्त मोर नट नृत्य कररहे थे ऐसा वह मदोन्मत्त पक्षियों के कुलोंसे भरा हुआ था ॥ १९ ॥ ऐसे उस आश्रममें फूलोंसे सुगन्धित हुआ वह मलयाचलका पवन, ठण्डे झरनोंके कणोंको लेकर कामदेवको दीप्त करता हुआ चलने लगा ॥ २० ॥ जिसमें चन्द्रमा निकला है ऐसे प्रदोष कालके होने पर वसंत ऋतु भी कोमल पत्तोंकी पंक्तियोंसे लिपटे हुए वृक्षोंके और लताओंके झुण्डों पर प्रकट हुआ ॥ २१ ॥ और गाने बजाने वालों सहित गन्धर्वोंको साथ लेकर सज्ज (तयार) धनुष और बाणोंको धारण करनेवाला कामदेव,उस आश्रममें दृष्टि पड़ने लगा २२ फिर अग्निमें हवन करके नेत्र मूँदे बैठे हुए वह मार्कण्डेयजी, तिरस्कार करनेको अशक्य होनेके कारण उन इन्द्रके सेवकोंको मूर्त्तिमान् अग्निसे प्रतीत होने लगे ॥२३॥ अप्सरा उन मार्कण्डेयजीके सामने नाचने लगीं, गन्धर्व गाने लगे और कितने ही मृदङ्ग, वीणा, ढोल आदि बाजोंका मनोहर शब्द करने लगे ॥ २४ ॥ उस समय कामदेवने, शोषण, दीपन, सम्मोहन तापन और उन्मादन ऐसे पाँच मुखवाले अस्त्रको अपने धनुष पर चढ़ाया, उस समय वसन्तऋतु, लोभ तथा और भी इंद्रके

केशविस्रंसितस्रजः ॥२६॥ इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम्। वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥२७॥ विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः। सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥२८॥ त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने। दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः॥ २९॥ इतींद्रानुचरैर्ब्रह्मन् धर्षितोऽपि महामुनिः। यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥३०॥ दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान् स्वराट्। श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम्॥ ३१॥ तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः। अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः॥३२॥ तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ। पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥ ३३ ॥ पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ। तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ

सेवक ऋषिके मनको चल विचल करने लगे॥ २५॥ फिर तहाँ पुञ्जिकस्थली अप्सरा, गेंद खेलने लगी तब स्तनोंके भारसे उसकी कमर बहुत ही झुक गई थी, और उसकी चोटीमेंसे फूलोंकी माला नीचेको खसक रही थी ॥२६॥ वह अप्सरा गेंदके पीछे फिरती हुई जिधर तिधरको दृष्टि डालती थी, इतने हीमें कमरकी तगड़ीके टूटकर गिर जानेसे मलयाचलके पवनने उसके महीन वस्त्रको उड़ादिया २७ तब 'मार्कण्डेयको मैंने जीत लिया' ऐसा मान कर कामदेवने अपना बाण छोड़ा, परन्तु जैसे भाग्यहीनका करा हुआ उद्योग निष्फल होता है तैसे कामदेवका तपसे डिगानेके निमित्त कराहुआ सब प्रयत्न उन मार्कण्डेयजीके ऊपर निष्फल हुआ २८ हे मुने! ऐसे मार्कण्डेयजीके प्रतिकूल आचरण करने वाले वह इन्द्रके दूत, उनके तेजसे जलने लगे तब जैसे बालक सर्पको जगा कर भयसे पीछेको भाग जाते हैं तैसे तहाँसे लौट गये॥ २९॥ हे राजन्! ऐसे इन्द्रके अनुचरोंके तिरस्कार करे हुए उन महामुनि मार्कण्डेयजीको अहङ्कारसे होने वाला कामक्रोधादि विकार उत्पन्न नहीं हुआ, तिससे ऐसे महात्माओंमें यह बात कुछ आश्चर्य माननेकी नहीं है ३० इधर भगवान् इन्द्र, अप्सरमण्डलोंके साथ मलिन मुख हुए उस कामदेवको देखकर और 'उससे' उन ब्रह्मर्षिका प्रभाव सुनकर परमविस्मयको प्राप्त हुए॥ ३१॥ फिर, इस रीतिसे तप, स्वाध्याय और यमनियमोंके द्वारा चित्तको जीतने वाले उन मार्कण्डेय ऋषिके ऊपर अनुग्रह करनेके निमित्त नर और नारायणके रूपसे श्रीहरि उनके समीप प्रकट हुए॥ ३२॥ वह आकारमें ऊँचे और चतुर्भुज होकर शुक्ल तथा कृष्णवर्णके थे, उनके नेत्र कमलकी समान सुन्दर थे, वह काली मृगछाला और वल्कल धारण करे और हाथमें पवित्री, गलेमें तीन आवृत्तिके (नौ सूत्रके) यज्ञोपवीतको धारण करे हुए थे, उनके शरीरकी कान्ति चमकने वाली बिजलीकी समान पीले वर्णकी थी इस कारण वह साक्षात् तपकी मूर्त्ति ही दीखते थे, वह कमण्डलु, बाँसका सूधा दण्डा, कमलगट्टोंकी माला 'चलतेमें कीड़े आदि प्राणी न मरें इस कारण' उनको एक ओर करनेके निमित्त (वस्त्रकी कूँची आदि) और कुशाकी मुट्ठी यह एक २ धारण करे हुए थे वह श्रेष्ठ देवताओंके भी पूजनीय

ते वै भगवतो रूपं नरनारायणावृषी। दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्नमामांगेन दण्डवत् ॥३५॥ स तत्संदर्शनानंदनिर्वृतात्मेद्रियाशयः। हृष्टरोमाश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥३६॥ उत्थाय प्रांजलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिषन्निव। नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥ ३७ ॥ तयोरासनमादाय पाद्योरवनिज्य च। अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥ ३८ ॥ सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी। पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥३९॥ मार्कण्डेय उवाच। किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि। स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥४०॥ मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै। नाना बिभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ॥४१॥ तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरंघ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः

थे; ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ हे शौनक ! वह भगवान्के नरनारायण नाम वाले अवतार थे, ऐसे उन ऋषियोंको देखते ही मार्कण्डेयजीने उठ कर और अति आदर सत्कार करके शरीरसे दण्डवत् नमस्कार करा ॥ ३५ ॥ उनके दर्शनसे होने वाले आनन्द करके जिनके शरीर, इन्द्रियें और मन परमशान्त हुए हैं, जिनके शरीरपर रोमाञ्च खड़े होगये हैं और जिनके नेत्र आँसुओंसे भर आये हैं ऐसे वह मार्कण्डेय ऋषि, उन नरनारायणकी ओरको देख भी नहीं सके ॥ ३६ ॥ फिर वह मानो उत्कण्ठासे आलिङ्गन ही करते हैं ऐसे उठ कर हाथ जोड़ कर नम्र होते हुए तिन नारायणसे, नमस्कार हो, नमस्कार हो, ऐसे अटकते अटकते कहने लगे ॥ ३७ ॥ और उन्होंने उनको आसन देकर तथा उनके चरण धोकर अर्घ, चन्दन, फूल, धूप, आदि सामग्रियोंसे पूजा करी ॥ ३८ ॥ फिर मार्कण्डेय ऋषि, सुखसे आसन पर बैठे हुए और प्रसाद करनेको समर्थ उन अतिपूजनीय नरनारायण मुनिके चरणोंमें फिर गिर कर ऐसे कहने लगे ॥ ३९ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा कि-हे प्रभो ! मैं तुम्हारी क्या स्तुति करूँ ? क्योंकि-देहधारी प्राणियोंका तुम्हारा प्रेरणा करा हुआ प्राण प्रवृत्त होता है और उसके पीछे वाणी मन, इन्द्रियें, यह अपने २ कर्म करनेमें प्रवृत्त होती हैं, केवल प्राकृत प्राणकी ही यह दशा नहीं है किन्तु ब्रह्मा शिवके प्राणादिक भी तुम्हारे ही प्रेरणा करने पर प्रवृत्त होते हैं और मेरे प्राणादिक भी तुम्हारीही प्रेरणासे प्रवृत्त होते हैं, इस कारण तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई भी स्वतन्त्र नहीं है तथापि तुम, अपना भजन करने वालोंके आत्माके बन्धु हो, पिता मातादिके समान केवल देहके नहीं ॥ ४० ॥ हे भगवन् ! जैसे तुम इस विश्वकी रक्षा करनेके निमित्त मत्स्य कूर्म आदि अनेक अवतार धारण करते हो तैसे यह दो भगवान्की (तुम्हारी) मूर्त्ति भी त्रिलोकीका पालन करनके निमित्त, दुःखको दूर करनके निमित्त और मृत्युको जीत कर मोक्षकी प्राप्ति होनेके निमित्त तुम धारण करते हो, जैसे मकड़ी पहिले अपने पेटमेंसे तार निकालकर घर (जाला) रचती है और फिर उसको आप ही भक्षण कर जाती है तैसे तुम भी इस जगत्को उत्पन्न करके फिर उसका संहार करते हो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! स्थावर-जङ्गम जगत्को प्रेरणा करनेवाले और पालन

स्पृशंति । यद्वै स्तुवंति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं ध्यायंति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ॥४२॥ नान्यं तवांघ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितो भिय ईश विद्मः । ब्रह्मा बिभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ॥४३॥ तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य । देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ॥४४॥ सत्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य । लीला धृता यदपि सत्वमयी प्रशान्त्यै नान्यैर्नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥४५॥ तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति । यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशंति सत्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥ ४६ ॥ तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने

करनेवाले तुम्हारे चरण कमलका मैं भजन करता हूँ, कि-जिसकी उपासना करने वाले पुरुषको, कर्म, गुण और कालका दोष स्पर्श भी नहीं करता है, और वेदका तात्पर्य जानने वाले मुनि, उसकी प्राप्तिके निमित्त जिस (चरण)की स्तुति करते हैं, पूजन करते हैं, नमस्कार करते हैं और निरन्तर ध्यान करते हैं ॥४२॥ हे ईश ! तुम भ्रुकुटिको उघाड़ कर देखते हो उस समय तिस भ्रुकुटिके चढ़नेसे ही, जिन का स्थान दो परार्द्ध पर्यन्त रहता है वह ब्रह्माजी भी, अत्यन्त भयभीत होजाते हैं फिर उन ब्रह्माजीके रचे हुए प्राणियोंके डरनेका तो कहना ही क्या ? इससे सर्वत्र भय पानेवाले प्राणीको, मोक्षरूप तुम्हारे चरणकी प्राप्तिको छोड़कर दूसरा कल्याणकारी स्थान हम नहीं जानते हैं ॥ ४३ ॥ इस कारण आत्मस्वरूपको ढकने वाले निष्फल, तुच्छ, नाशवान् और 'अत्यन्त ही मिथ्या होनेके कारण' आत्मस्वरूपसे भिन्न न दीखने वाले इन देहादि पदार्थोंको त्याग कर मैं, उस जीव नियन्ता, सत्यस्वरूप और कारणसे पर तुम्हारे तिस चरणतलको भजन करता हूँ, जब पुरुष तुम्हारा भजन करेगा तो उसको तुमसे इच्छित फल प्राप्त होयगा ही ॥ ४४ ॥ हे जीवके हितकारिन् ! यद्यपि, सत्व, रज और तम यह तीनों गुण, तुम्हारी ही मूर्त्ति हैं और इनसे तुम, इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय होनेकी हेतु जो माया तिसके द्वारा लीलाओंको धारण करते हो, तथापि हे परमेश्वर ! उनमेंको जो सत्वगुणमयी मूर्त्ति है वही मनुष्योंको मोक्ष मिलनेका कारण होती है, दूसरी (रजोगुणी वा तमोगुणी) मूर्त्तिका ध्यान करनेपर उससे दुःख, मोह वा भय प्राप्त होते हैं ॥४५॥ क्योंकि-सत्वगुणी मूर्त्ति ही कल्याणकारिणी है तिससे हे भगवन् ! इस लोकमें चतुर बुद्धि वाले पुरुष, तुम्हारी (नारायणकी) शुद्धसत्वगुणी मूर्त्ति का और तुम्हारे भक्तोंके मनको प्रिय लगनेवाली शुद्धसत्वगुणी (नररूप) मूर्त्तिका ही भजन करते हैं, क्योंकि—जिस सत्वगुणकी मूर्त्तिसे वैकुण्ठलोक प्राप्त होकर अभय मिलनेके कारण आत्माको सुख होता है, वह सत्व ही पुरुषका रूप है ऐसा भक्तजन मानते हैं, रजोगुण और तमोगुणको ईश्वरका रूप नहीं मानते हैं ॥ ४६ ॥ हे ईश्वर ! तुम सर्वान्तर्यामी, व्यापक, विश्वरूप, विश्वगुरु, परमदेवत, शुद्धमूर्त्ति और वाणीके नियन्ता वेदोंके भी प्रवर्त्तक होकर अब नारायण और नरोत्तम इन

विश्वाय विश्वगुरवे परदेवताय । नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥ ४७ ॥ यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु । तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यस्तवाऽखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ४८ यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः । तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥ ४९ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

सूत उवाच । संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता । नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच । भो भो ब्रह्मर्षिवर्यासि सिद्ध आत्मसमाधिना । मयि भक्त्याऽनपायिन्या तपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २ ॥ वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया । वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ॥३॥ ऋषिरुवाच । जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत । वरेण तावताऽलं नो यद्भवान्समदृश्यत ॥४॥ गृहीत्वाऽजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् । मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्ष-

---

रूपोंको धारने वाले ऋषि हुए हो तिन तुम भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ ॥४७॥ निष्फल इन्द्रियोंसे विक्षिप्तबुद्धि हुआ जो पुरुष, अपनी इन्द्रियोंमें, प्राणोंमें और हृदयमें तथा दीखते हुए पदार्थोंमें रहने वाले भी तुम्हें नहीं जानता है, वह तुम्हारी मायासे आच्छादित बुद्धि वाला पुरुष, पूर्वकी समान अज्ञ होकर भी सबोंके गुरु तुमसे प्रवृत्त हुए वेदको पाने पर तुम्हें प्रत्यक्ष जानलेता है ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! तुम्हारे गुप्त भेदको प्रकाशित करनेवाला जिन तुम्हारा ज्ञान वेदमें होता है, जिन तुम्हारे विषैं, ब्रह्माजी महादेव आदि बड़े २ विद्वान् भी 'स्वरूपज्ञान होनेकी आशा से' सांख्य योग आदिके द्वारा यत्न करते हुए भी मोहित होते हैं, जिनका स्वभाव सकल सांख्यवादी लोकोंके वादके भेद आदिके अनुसार है और जिनका ज्ञान देहादिके संघातसे गुप्त है ऐसे महापुरुषरूपी तुम्हें मैं नमस्कार करता हूँ॥४९॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं कि—हे शौनक! उन बुद्धिमान् मार्कण्डेय मुनिने, इस प्रकार स्तुति करके जिनको प्रसन्न करा है ऐसे वह नरके मित्र भगवान् नारायण, उन भृगुकुल श्रेष्ठ मार्कण्डेयजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान्‌ने कहा कि—हे ब्रह्मर्षि-श्रेष्ठ! तुमने चित्तको एकाग्र करके मुझमें निर्दोष भक्ति करी है और तपस्या, वेदाध्ययन तथा इन्द्रियजय यह भी करे हैं इस कारण तुम सिद्ध होगए हो ॥ ॥ २ ॥ हे ऋषे! तुम्हारे नैष्ठिक ब्रह्मचर्यसे हम प्रसन्न हुए हैं इस कारण वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ऐसे हमसे तुम इच्छित वर माँगलो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजीने कहा कि—हे देवदेव! हे शरणागतोंके दुःख दूर करने वाले अच्युत! वरदानसे मुझे लोभ युक्त करके तुमने अपना उत्कर्ष दिखलाया, हे ईश्वर! अब जो तुमने दर्शन दिया यही बहुत है इससे दूसरे वरकी मुझको इच्छा नहीं है ॥ ४ ॥ ब्रह्मादि देवता, योगाभ्यास करके पक्व (शुद्ध) हुए केवल मनसे ही जिन तुम्हारे श्रीमान् चरणकमलका दर्शन करके कृतार्थ होते हैं वह तुम प्रत्यक्ष मेरी दृष्टि पड़े हो, फिर

गोचरः ॥ ५ ॥ अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे । द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच । इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने । तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥ ७ ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः । वसन्नग्न्यर्कसोमांबुभूवायुवियदात्मसु ॥ ८ ॥ ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत् । क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥ ९ ॥ तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः । उपासीनस्य संध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥ १० ॥ तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं बलाहका अन्वभवन्करालाः । अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनंत उच्चैरभिवर्षधाराः ॥ ११ ॥ ततो व्यदृश्यंत चतुःसमुद्राः समंततः क्ष्मातलमाग्रसंतः । समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषाः ॥ १२ ॥ अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभिः खरैः शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् । चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमनाः समत्रसत् ॥ १३ ॥ तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभंजनाघूर्णि-

इससे अधिक दूसरा कौनसा वरदान माँगने योग्य है ॥५॥ तथापि हे पवित्र कीर्ति वालोंमें श्रेष्ठ कमलदलनयन ! जिनकी मायासे ब्रह्मादिकों सहित यह जन सत्यवस्तुमें देवता, तिर्यक्, मनुष्य आदि भेद देखता है वह माया ही मेरे देखनेमें आवे ऐसी मुझको इच्छा है ॥ ६ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनक ! इस प्रकार मार्कण्डेय ऋषिने बहुतसी स्तुति करके पूजा करी, तब वह ईश्वर (नरनारायण) भगवान्, तथास्तु (मेरीमाया तुम्हें दीखेगी) ऐसा कह कर और विस्मय करके बदरिकाश्रमको चले गये ॥ ७ ॥ फिर उस मायाका दर्शन मुझे कब होयगा ऐसा विचारते हुए वह मार्कण्डेय ऋषि, अपने आश्रममें ही रह कर अग्नि सूर्य, चन्द्रमा, जल,भूमि वायु, आकाश और आत्मा इनमें तथा दूसरे भी सब स्थानोंमें श्रीहरिका ध्यान करते हुए मानसिक सामग्रियोंसे उनका पूजन करने लगे,एक समय वह आनन्दरूप प्रवाहमें निमग्न होते हुए तिन श्रीहरिकी पूजा करनेको भूल गये ॥ ८ ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् शौनकजी ! एक दिन सन्ध्याकालके समय वह मुनि, पुष्पभद्रा नदीके तट पर सन्ध्या आदि कररहे थे सो हे भृगुश्रेष्ठ ! बड़ा भारी वायुका झोका चला ॥१०॥ प्रचण्ड शब्द करने वाले वायुके पीछे भयानक मेघ घुमड़ आये, उन मेघोंमेंसे बिजलियोंकी चमकके साथ बड़ा कड़कड़ाहटका शब्द होकर रथके पहियेके छिद्रमें के दण्डे (धुरे) की समान बड़ी २ वर्षाकी धारा जिधर तिधरसे पड़ने लगी ॥ ११ ॥ फिर जिनमें अतिक्रूर नाके तथा महाभयानक भँवर हैं और गम्भीर शब्द होरहे हैं ऐसे चारों समुद्र चारों ओरसे वायुकी झकोलोंसे उत्पन्न हुई तरङ्गोंसे भूमण्डलको डुबाते हुए दीखने लगे ॥ १२ ॥ स्वर्ग और पातालोंको भर देने वाले उन जलोंसे, सूर्यकी तीखीकिरणोंसे (अथवा प्रचण्ड पवनोंसे)और बिजलियोंसे,अपने सहित (मार्कण्डेय सहित) जरायुज आदि चार प्रकारका जगत्, भीतर और बाहरसे अत्यन्त भयभीत हुआ, और पृथ्वीको जलमें डूबी देखकर वह मार्कण्डेय मुनि अति खिन्न होकर भयको प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ इस प्रकार उन मार्कण्डेय ऋषिके देखते हुए, वर्षा करने वाले मेघोंके जलोंसेभरे हुए और अति प्रचण्ड पवनसे जलके उछलनेसे

तत्रासीन्महार्णवः । आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदैः क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥ १४ ॥ क्ष्मांऽतरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् । स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ॥ १५ ॥ क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः । तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ॥ १६ ॥ क्वचिद्गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् । यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ॥ १७ ॥ क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् । क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ॥ १८ ॥ अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च । व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ॥ १९ ॥ स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः । न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ॥ २० ॥ प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् । शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ॥ २१ ॥ महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् । कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥ २२ ॥ श्वासैजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् । विद्रुमाधरभासेष-

---

कारण तरङ्गोंसे अतिभयानक दीखने वाले समुद्रने, द्वीप, खण्ड और पर्वतोंसहित पृथ्वीको ढक दिया ॥ १४ ॥ हे शौनक ! पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, तारागण और दिशाओं सहित सारी त्रिलोकी अत्यन्त डूब गई, उसमेंसे इकले मार्कंडेय मुनि ही शेष रह गये, वह जटाओंको बखेर कर बावले और अन्धेकी समान भटकने लगे॥१५ मगर और छोटे २ मत्स्योंको खाने वाले बड़े मच्छोंसे नोंचे हुए, और तरङ्ग तथा वायुके लुढ़कनेके कारण अत्यन्त थक कर भूँख प्याससे व्याकुल हुए वह मुनि, फिरते २ अपार अन्धकारमें पड़ गये जिससे दिशा, आकाश, पृथ्वी आदि कुछ भी उनकी समझमें नहीं आया ॥ १६ ॥ वह कहीं बड़े भँवरमें पड़जाते थे, कहीं समुद्र की तरङ्गोंसे धक्का खाते थे, कहीं कहीं उनको भक्षण करनेके निमित्त परस्परमें युद्ध करनेवाले जलके प्राणियोंसे वह भक्षण करे जाते थे ॥ १७ ॥ उनको कभी शोक होता था, कभी मोह होता था, कभी दुःख होता था, कभी सुख, कभी भय और कभी२ तो रोगादिसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त होजाते थे ॥ १८ ॥ इसप्रकार विष्णु की मायासे मोहित चित्त हुए उन मार्कण्डेय मुनिको, उस प्रलय समुद्रमें फिरते एक शंकु (१०००००००००००००००) वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥ उन ब्राह्मणको उस समुद्रमें फिरते हुए एक समय पृथ्वीके ऊँचे प्रदेश पर फलोंसे और पत्तोंसे शोभायमान बड़का पौधा (छोटासा पेड़) दृष्टि पड़ा ॥ २० ॥ और उस बड़की ईशान दिशामें की शाखाके एक पर्णपुट (दोने) में सोया हुआ और अपने तेजसे अन्धकारका नाश करनेवाला एक बालक उनको दीखा ॥ २१ ॥ वह बालक उत्तम मरकतमणिकी समान श्यामवर्ण, शोभायमान मुख कमल वाला और शंखमेंसे बल पड़े हुए कण्ठ वाला, चौड़ी छाती–सुन्दर नासिका और सुन्दर भौंवाला था ॥ २२ ॥ और वह श्वास लेतेमें हलने वाले केशोंसे शोभायमान और शंखकेसे बल भीतर पड़ रहनेके कारण सुंदर दीखने वाले उसके दोनों कानों पर दाड़िमीके फूल थे, वह मूँगेकी समान ओठोंकी कांतिसे कुछ एक लाल हुए अमृत समान (स्वेत) हास्य

च्छोणायितसुधास्मितम् ॥ २३ ॥ पद्मगर्भारुणापांगं हृद्यहासावलोकनम् । श्वासैज-द्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥ २४ ॥ चार्वंगुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणांबुजम् । मुखे निधाय विप्रेंद्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥ २५ ॥ तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनांबुजः । प्रहृष्टरोमाऽद्भुतभावशंकितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥२६॥ तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् । तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुरामुह्यदतीवविस्मितः ॥२७॥ खं रोदसी भगणानद्रिसागरान् द्वीपान्सवर्षान्ककुभः सुरासुरान् । वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥ २८ ॥ महांति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् । यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥ २९ ॥ हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् । विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ३० तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् । तोकं च तत्प्रेमसुधा-

से युक्त था, उसके नेत्रोंके कोपे कमलके भीतरी भागकी समान कुछ एक लाल थे मनोहर हास्यके साथ देख रहा था और उसके पीपलके पत्तेकी समान पेट परकी त्रिवली श्वासोंसे हलती थीं इस कारण उसकी गहरी नाभि चलायमान होरही थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ वह सुन्दर अंगुलिवाले हाथोंसे अपना चरणकमल ऊपरको करके और उसको मुखमें लेजाकर चूस रहा था, तिस मनोहरमूर्त्ति बालकको देख कर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी बड़े विस्मयको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ हे शौनक ! उसका दर्शन होतेही जिनका परिश्रम दूर हुआ है, आनन्दसे जिनके नेत्र कमल और हृदय कमल प्रफुल्लित हुए हैं और तिस परम आश्चर्यकारीरूपसे शंकित होनेके कारण जिनके शरीर पर रोमाञ्च खड़े होगये हैं वह मार्कण्डेयजी उस बालकसे प्रश्न करने के निमित्त आगेको सरककर उसके समीपमेंको गये ॥ २६ ॥ इतने हीमें, उस बालक के ऊपरको खेंचेहुए श्वाससे वह मार्कण्डेयजी, उसके पेटमें मच्छरके समान खिंचे चले गये, तहाँ जाते ही उन्होंने, यह जगत् जैसा प्रलयसे पहिले बाहर था तैसा ही भीतर भी सब देखा तब वह अति विस्मित होकर मोहित होगये ॥ २७ ॥ आकाश स्वर्ग, पृथ्वी, तारे, पर्वत, समुद्र, खण्डों सहित द्वीप, दिशा, देव, दैत्य, वन, देश, नदी, शहर, खान, किसानोंके गाँव, ग्वालोंकी गढइयें, आश्रम, वर्ण, उनकी आजीविका ॥ २८ ॥ पञ्चमहाभूत, उनसे उत्पन्न हुए पदार्थ, अनेक युगोंकी और कल्पों की कल्पना करने वाला काल और भी जो कुछ व्यवहारका कारण था सो सब ही बालकरूप परमेश्वर से ही परमार्थकी समान (सत्यसा) भासमान हुआ उन मार्कण्डेयजीकी दृष्टि पड़ा ॥ २९ ॥ तैसे ही उन्होंने, वह हिमालय, वह पुष्पभद्रा नदी, उसके तटपर वह अपना आश्रम और उसमेंके वह सब ऋषिभी देखे, हे शौनक! मार्कण्डेयजीके इस प्रकार उस विश्वको देखतेहुए उस बालकके श्वाससेको होकर बाहर निकले सो उसी प्रलयसमुद्रमें जापड़े ॥ ३० ॥ और उन्होंने फिर पृथ्वीके उस टीले पर उगा हुआ वह बड़ और उसके पत्तेके दोनेमें सोया हुआ वह बालक

स्मितेन निरीक्षितोपांगनिरीक्षिणेन ॥३१॥ अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि । अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥ ३२ ॥ तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः । अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥ ३३ ॥ तमन्वथ वटो ब्रह्मन्सलिलं लोकसंप्लवः । तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच । स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् । वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच । प्रपन्नोऽस्म्यंघ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे । यन्माययाऽपि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥ सूत उवाच । तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् । रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥ अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत । पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥ निभृतोदझषव्रातो वातापाये यथाऽर्णवः । कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥ श्रीभगवानुवाच । नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।

देखा तब उस बालकने प्रेमके साथ अमृत समान मन्द मुसकुरानसे युक्त नेत्र के कटाक्षोंसे उसकी ओरको देखा फिर अतिक्लेशको प्राप्त हुए वह मार्कण्डेयजी, नेत्रोंके द्वारा हृदयमें स्थापन करेहुए उस बालकरूप अधोक्षज भगवान्को आलिंगन करनेके निमित्त उनके समीप गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ और हृदयसे लगानेको थे कि— इतने ही में 'जैसे भाग्यहीनका करा हुआ उद्योग सर्वथा नष्ट होजाता है, तैसे ही' सबोंके हृदयमें रहने वाले वह योगाधिपति भगवान्, मार्कण्डेय ऋषिके समीपसे एकाएकी अन्तर्धान होगये ॥ ३३ ॥ भगवान्के अन्तर्धान होनेके अनन्तर हे शौनक! वह बड़, वह जल और वह लोकोंका प्रलय आदि सब ही एक क्षणमें नष्ट होगया और वह मार्कण्डेय मुनि भी पहिलेकी समान अपने आश्रममें स्वस्थ रहे ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ छ

सूतजी कहते हैं कि-इसप्रकार वह मार्कण्डेय मुनि,भगवान् नारायणकी रची हुई योगमायाके इस वैभवका अनुभव लेकर उन ही नारायणकी शरण गये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी कहने लगे कि-हे भगवन् श्रीहरे ! बड़े२ विद्वान् भी ज्ञानकी समान प्रकाशित होनेवाली,जिस तुम्हारी मायासे 'हम ज्ञानी हैं ऐसा अहंकार करके' मोहित होते हैं ऐसे, शरणागतको अभय देने वाले तुम्हारे चरणतलकी मैं शरण आया हूँ २ सूतजीने कहा कि-तदनन्तर एक समय पार्वतीसहित नन्दी पर बैठकर और अपने शृङ्गी भृङ्गी आदि गणोंको साथ लेकर आकाशमें विचरनेवाले भगवान् महादेवजीने, समाधि लगाये बैठेहुए उन मार्कण्डेय मुनिको देखा३ तब पार्वतीजी,उन ऋषिको देखकर महादेवजीसे कहने लगीं कि-हे भगवन्! मेघ न होनेके समय जल और मच्छ मगर आदि प्राणियोंके शान्त होने पर जैसे समुद्र शान्त होता है तैसे जिसका देह, इन्द्रियें और मन यह निश्चल होगये हैं ऐसे इस (शान्त) ब्राह्मणकी ओरको देखकर इसकी तपस्याका फल प्रकट करो, क्योंकि-तुम ही तपस्याओंको सिद्धि देनेवाले हो ॥ ४ ॥ ५ ॥ श्रीशंकरभगवान्ने कहा कि-हे पार्वति ! इसको

भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥ अथाऽपि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना । अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥ सूत उवाच । इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्सात्वतां पतिः । ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥ तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः । न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ९ भगवांस्तदभिज्ञाय गिरीशो योगमायया । आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥ आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिंगजटाधरम् । त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥ व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः । अक्षमालाडमरुकं कपालपरशुं सह ॥१२॥ बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः । किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥ नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् । रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥ तस्मै सपर्यां व्यदधात्सगणाय सहोमया । स्वागतासनपाद्यार्घ्यगंधस्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ आह

अविनाशी पुरुषोत्तम भगवान्में बड़ी भारी भक्ति उत्पन्न हुई है इस कारण यह ब्रह्मर्षि मार्कण्डेय, तपकी फलसिद्धि होनेकी इच्छा नहीं करता है, अधिक क्या कहूँ ! निःसन्देह मोक्षकी भी इच्छा नहीं करता है, फिर सांसारिक सुखोंको नहीं चाहता इसका तो कहना ही क्या ॥ ६ ॥ तथापि हे पार्वति ! इस साधुके साथ हम भाषण करें, क्योंकि-साधुओंका समागम होना ही मनुष्योंको निःसन्देह परम-लाभ है ॥ ७ ॥ सूतजीने कहा कि-हे शौनक ! सकल प्राणियोंका 'अन्तर्यामिरूपसे नियन्ता होनेके कारण सकल विद्याओंके ईश उन भक्तोंको गति देनेवाले महादेवजीने, ऐसा कहकर उन मार्कण्डेय ऋषिके समीप गमन करा ॥ ८ ॥ उस समय तिन मार्कण्डेयजीने, अन्तःकरणकी वृत्तिको रोककर अन्तर्यामी ईश्वरकी ओर लगाया था इस कारण जो अपने शरीरको और विश्वको नहीं जानते थे उन मार्कण्डेयजीको जगदात्मा शिवपार्वतीका आना ज्ञान (मालूम) नहीं हुआ ॥ ९ ॥ उनकी अन्तःकरणकी वृत्तियें रुकी हुई हैं यह जानकर भगवान् ईश्वर, योगमायाके प्रभावसे उसके हृदयरूप गुहामेंके आकाशमें-जैसे वायु जिधर २ छिद्र मिलता है उधर २ को ही प्रवेश करता है तैसे प्रविष्ट होगये ॥ १० ॥ तब बिजलीकी समान पीली जटाओंको धारण करनेवाले, और त्रिशूल, धनुष, बाण, तरवार, तथा ढाल सहित, व्याघ्रचर्मरूप वस्त्र, रुद्राक्षोंकी माला, डमरू, मनुष्य खोपड़ी और फरसा धारण करे तथा तीन नेत्र वाले, दशभुज और ऊँचे तथा जो हृदयके भीतर सूर्यकी समान उदय हुए हैं ऐसे केवल बाहरसे ही नहीं किन्तु हृदयमें भी प्राप्त हुए भगवान् सदाशिवको देखकर वह मार्कण्डेय मुनि, यह हृदयमें एकायकी क्या भासमान हुआ ? और कहाँसे हुआ ? ऐसे विस्मयसे उठक कर समाधिसे उछट गये ॥ ११-१३ ॥ फिर नेत्र उघाड़ते ही अपने गणोंसहित पार्वतीको साथमें लिये त्रिलोकीके एक ही गुरु भगवान् रुद्र आये हैं ऐसा उनकी दृष्टि पड़ा तब उन मुनिने, मस्तकसे नमस्कार करा ॥ १४ ॥ और आये हुए गणों सहित पार्वतीके साथ उनकी स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप और दीप आदि सामग्रियोंसे पूजा करी १५

चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो । करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् १६ नमः शिवाय शांताय सत्त्वाय प्रमृडाय च । रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे१७ सूत उवाच । एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः । परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥१८॥ श्रीभगवानुवाच । वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः । अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥ ब्राह्मणाः साधवः शांता निःसंगा भूतवत्सलाः । एकांतभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥ सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते । अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २१ ॥ न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते । नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २२ ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः । ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् । बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥ श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोपि वः ।

और कहने लगे कि–हे प्रभो ईश्वर! जिन तुमसे इस जगत्को सुख मिलता है ऐसे, अपने प्रभावसे पूर्णकाम हुए आपका हम कौनसा कार्य करें, १६ इससे हे विभो! वास्तवमें देखा जाय तो तुम निर्गुण और शांत होकर भी, सत्त्वगुणको ग्रहण करके (विष्णुरूपसे पालन करके) सबको सुख देते हो, तैसेही रजोगुणको स्वीकार करते हो तथा तमोगुणको स्वीकार करके अतिभयानक होते हो ऐसे आपको मेरा वार२ नमस्कार हो१७सूतजी कहते हैं कि-ऐसे स्तुति करने पर प्रसन्न हुए, साधुओंकी गतिरूप वह भगवान् आदिदेव शंकर अन्तःकरणमें प्रसन्न होकर हँसते हँसते उन मार्कण्डेयजीसे ऐसे कहने लगे ॥१८॥ भगवान् महादेवजीने कहा कि–हे मार्कण्डेय! जिनका दर्शन होना कभी निष्फल नहीं होता है और जिनसे मनुष्यको मोक्ष प्राप्त होती है ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, शिव हम तीनों वर देने वालोंमें श्रेष्ठ हैं, सो हमसे तुम अपना इच्छित वर माँग लो ॥ १९ ॥ हे मुने! जो ब्राह्मण साधु (सदाचारवान्), शान्त (मत्सरता आदिरहित), निःसंग (निष्काम), प्राणीमात्रमें दयायुक्त, निर्वैर और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाले होनेके कारण हम तीनोंमें एक समान निष्कपटभक्ति करनेवाले होते हैं–॥ २० ॥ उनको लोकोंसहित इन्द्रादि लोकपाल वन्दना करते हैं, उनका पूजन करते हैं, सेवा करते हैं और केवल यही तुम्हारा भजन करते हैं ऐसा नहीं किन्तु मैं (महादेव) ब्रह्माजी और स्वयं ईश्वर (मेरे सहित सबोंका ईश्वर) श्रीहरि यह हम तीनों ही उनको वन्दना आदि करके सेवामें तत्पर होते हैं ॥ २१ ॥ क्योंकि–वह ब्राह्मण, मैं (महादेव), विष्णु और ब्रह्मा इन हम तीनोंमें, अपनेमें तथा अन्य सांसारिक प्राणियोंमें भी अणुमात्र भी भेदभाव नहीं जानते हैं इस कारण, हम, तुम ब्राह्मणोंको भजते हैं ॥ २२ ॥ हे मुने! जलमयतीर्थ और चेतनारहित (पाषाणमय) देवता अर्थात् जलमयतीर्थ और पाषाणमय मूर्त्तियोंके अधिष्ठात्री देवता, पवित्र तो करते हैं परन्तु सेवा करते रहने पर बहुतकालमें पवित्र करते हैं और तुम साधुपुरुष तो दर्शन होते ही उद्धार करते हो ॥ २३ ॥ जो, चित्त की एकाग्रता, शास्त्र देखना, वेद पढ़ना और वाणी आदिका संयम करना, इनके

शुद्धयेरन्नंत्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ॥ २५ ॥ सूत उवाच । इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् । वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥ स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् । शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुंजस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच । अहो ईश्वरचर्येयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् । यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवंति जगदीश्वराः ॥२८॥ धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् । आचरंत्यनुमोदंते क्रियमाणं स्तुवंति च ॥ २९ ॥ नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः । न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥ सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः । गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग्यथा ॥ ३१ ॥ तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने । केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥ कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् । यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३३ ॥

द्वारा वेदत्रयीरूप हमारा (ब्रह्मा, विष्णु, शिवका) रूप धारण करते हैं उन ब्राह्मणों को हम नमस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ तुम ब्राह्मणोंके दर्शनसे अथवा केवल नाम सुननेसे महापातकी और चाण्डाल भी शुद्ध होजाते हैं फिर तुमसे सम्भाषण आदि करके शुद्ध होयँगे, इसका तो कहना ही क्या ? ॥ २५ ॥ सूतजी कहते हैं कि-हे शौनकजी ! जिनके भालमें चन्द्रमा ही भूषण है, उन भगवान् महादेवजी का धर्मके रहस्यसे युक्त अमृतसमान मधुर वचन कानोंसे पीकर वह मार्कण्डेयऋषि तृप्त नहीं हुए ॥ २६ ॥ जो विष्णुभगवान्‌की मायासे बहुत दिनों पर्यन्त भ्रान्तसे होकर अतिदुर्बल होगये थे, परन्तु इस समय महादेवजीके वचनामृतसे जिनके सकल क्लेश दूर होगये हैं ऐसे वह मार्कण्डेयजी, तिन महादेवजीसे कहने लगे २७ मार्कण्डेयजीने कहा कि-अहो ! यह ईश्वरकी लीला, देहधारियोंकी तर्कनामें भी आना कठिन है, कि-जिससे शिक्षा दिये जानेवाले मुझ समान प्राणियोंको स्वयं जगदीश्वर भी नमस्कार करते हैंऔर स्तुति करते हैं२८मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि-प्रायः धर्मोपदेश करनेवाले पुरुष, जिसका आप आचरण करते हैं, करनेकी इच्छावालोंको संमति देते हैं और करने पर उसकी प्रशंसा करते हैंवह,देहधारी प्राणी अपने २ धर्म को स्वीकार करें इस निमित्त ही है२९हे भगवन् ! ऐसा लोकव्यवहार करनेसे, अपनी मायामय वृत्तियें जिसमें हैं ऐसे दूसरोंको नमस्कार आदि करनेसे तुम मायाधीश भगवान्‌का प्रभाव ऐसे दूषित नहीं होता है जैसे जादूगरके जादूमें करे हुए आचरणसे उसका वास्तविक प्रभाव दूषित नहीं होता है ॥ ३० ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला पुरुष, स्वप्नमें ही अविद्याके द्वारा मनसे अनेकों पदार्थोंकी कल्पना करके उनमें प्रवेश करता है तब उसको ऐसा प्रतीत होता है कि-इन्द्रियोंकी करी हुई क्रिया मैंने ही करी है तैसे ही, तुम संकल्पमात्रसे इस विश्वको उत्पन्न करके फिर उसमें जीवरूपसे प्रवेश करते हो तुम गुणोंकी करी हुई क्रियाएँ तुम ही करते हो ऐसा प्रतीत होता है परंतु जो तुम त्रिगुणात्मक होकर भी जीवकी समान गुणों से तिरस्कार न पानेके कारण गुणोंको वशमें रखनेवाले ही हो, ऐसे शुद्धरूप, अद्वितीय, गुरु और ब्रह्मरूप तुम भगवान्‌को नमस्कार हो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हे व्यापक

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् । भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥ सूत उवाच । इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा । तमाह भगवान् शर्वः शर्वया चाभिनंदितः ॥ ३५ ॥ कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे । आकल्पांताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥ ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् । ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यताऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ सूत उवाच । एवं वरान्स मुनये दत्वाऽगात्त्र्यक्ष ईश्वरः । देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरा मुनेः ॥ ३८ ॥ सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः । विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकांततां गतः ॥ ३९ ॥ अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः । अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥ एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः । अनाद्या·

प्रभो ! जिन तुम्हारा दर्शन करनेसे पुरुषको सब प्रकारका इच्छानुकूल आनन्द प्राप्त होनेसे उसके सब मनोरथ पूर्ण होजाते हैं ऐसे उत्तम दर्शनवाले तुमसे दूसरा कौनसा वरदान मागूँ ॥ ३३ ॥ तथापि भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले और पूर्णकाम तुमसे एक यही वर माँगता हूँ कि-मेरी अच्युत भगवान् में-उनके भक्तोंमें और तैसे ही तुममें भक्ति होय ३४ सूतजी कहते हैं कि इसप्रकार मधुरवाणीसे स्तुति और पूजन करने वह शिवजी, पार्वतीकी भी सम्मति लेकर उन मार्कण्डेयसे ऐसा कहने लगे कि-३५ महर्षे! तुम ब्रह्मतेजस्वी हो और अधोक्षज भगवान्से भक्तिमान् हो इससे तुम्हारा यह मनोरथ पूरा हो, इस कल्पके अन्तपर्यन्त तुम्हारी कीर्त्ति अटल रहैगी और तुम्हें अजर अमरपना भी प्राप्त होगा, हे ब्राह्मण ! तुम्हें भूत-भविष्य वर्त्तमान कालकी वस्तुओंका ज्ञान, वैराग्यसहित विज्ञान और पुराणोंका आचार्यपना प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सूत जी कहते हैं कि-हे शौनक ! मार्कण्डेयजीको ऐसा वरदान देकर वह त्र्यम्बक ईश्वर, मार्कण्डेयजीके पहिले देखे हुए भगवान्की मायाके वैभवको पार्वतीजीसे कहते हुए तहाँसे चले गये ॥ ३८ ॥ फिर वह मार्कण्डेय मुनि, महायोगकी सामर्थ्य प्राप्त होने पर साक्षात् श्रीहरिके एकान्त भक्त बन कर इस भूलोकमें विचरने लगे, और अब भी वह आनन्दसे विचरते हैं ॥३९॥ हे शौनक ! उन बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीका यह चरित्र और उनका अनुभव करा हुआ अद्भुत भगवान्की मायाका वैभव मैंने तुमसे विस्तारके साथ कहा ॥ ४० ॥ यह मार्कण्डेयजीका अनुभव कराहुआ भगवान्की मायाका अनेक कल्परूप वैभव, भगवान्की इच्छासे अकस्मात् केवल उनके ही देखनेमें आया वैसा सबकी दृष्टि नहीं पड़ा इस कारण वह प्राकृत वा नैमित्तिक प्रलय नहीं है, और मनुष्योंके उत्पत्ति प्रलय आदि होते हैं वह भगवान्की माया ही है ऐसा न जाननेवाले कितने ही पुरुष, बहुत काल पर्यन्त 'देवताओंके दो सहस्र युगोंमें' फिर (अनेक बार) उत्पत्ति प्रलय हुए ऐसा कहते हैं और विद्वान् पुरुष तो-वह मार्कण्डेयजी उस मायिक बालकके श्वासोंके साथ सात बार फिर २ पेटमें जाकर उसी समय बाहर आये ऐसा कहते हैं ॥४१॥ हे भृगुकुलश्रेष्ठ शौनकजी ! जो पुरुष, विष्णुभगवान्की मायाके वैभवसे युक्त इस वर्णन करे हुए मार्कण्डेयजीके चरित्रको आप सुनेगा

वर्त्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथांगपाणेरनुभावभावितम् । संश्रावयेत्संशृणुयादु तावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

शौनक उवाच । अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् । समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवततत्त्ववित् ॥ १ ॥ तांत्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियः पतेः । अंगोपांगायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथैव यैः ॥ २ ॥ तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् । येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच । नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि । याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥४॥ मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् । निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥ ५ ॥ एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः । नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥ ६ ॥ प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः । तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥ ७ ॥ लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दंता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः । रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥ ८ ॥ यावानयं वै

अथवा जो कोई दूसरेको सुनावेगा उन दोनों ही को कर्मवासनाओंका जन्ममरण रूप संसार नहीं प्राप्त होगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धमें दशम अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ छ ॥ छ

शौनक बोले कि–हे भगवद्भक्त सूतजी ! तुम सकल तन्त्रशास्त्रोंके सिद्धान्तका रहस्य जानते हो इस कारण बहुत पुरुषोंमें श्रेष्ठ तुमसे हम इस विषयका प्रश्न करते हैं कि–॥ १ ॥ तन्त्रकी रीतिसे भगवान्का आराधन करने वाले पुरुष, चैतन्यघन लक्ष्मीपति भगवान्की पूजामें, चरण आदि अङ्ग, गरुड़ आदि उपांग, सुदर्शन आदि आयुध और कौस्तुभ आदि अलङ्कारोंकी जिस प्रकार जिन तत्वोंसे कल्पना करते हैं ॥ २ ॥ वह क्रियायोग (उपासनाकी रीति) सुननेकी इच्छा करने वाले हमसे कहो, कि–जिस क्रियायोगमें चतुरता प्राप्त होने पर मनुष्य अमरपनेको पहुँचता है हे सूतजी ! तुम्हारा कल्याण हो ॥३॥ सूतजीने कहा कि–हे शौनक ! मैं श्रीगुरुओंको नमस्कार करके, ब्रह्माजी आदि आचार्योंने वेदमें तन्त्रमें जो वर्णन करी है वह विष्णुभगवान्की विराट् देह आदि विभूति कहता हूँ, ॥४॥ चेतनाधिष्ठित (चैतन्ययुक्त) जिसमें यह त्रिलोकी दीखती है, प्रकृति, सूत्र, महत्तत्त्व, अहंकार और पाँच तन्मात्रा इन नौ तत्वोंसे ग्यारह इन्द्रियें और पञ्चमहाभूत इन सोलह विकारोंका समूहरूप विराट् शरीर बना है ॥ ५ ॥ हे शौनक ! यह (ब्रह्माण्ड) तिस विराट् पुरुषका रूप है; पृथ्वी इसके चरण स्वर्ग मस्तक, आकाश नाभि, सूर्य नेत्र, वायु नासिका, और दिशा प्रभुके कान हैं ॥ ६ ॥ प्रजापति उन ईश्वरका शिश्न, मृत्यु गुदा, लोकपाल बाहु, चन्द्रमा मन, यम भौं ॥ ७ ॥ लज्जा ऊपरका ओठ, लोभ नीचेका ओठ, चाँदनी दाँत, भ्रम हँसना, वृक्ष रोमाञ्च और मेघ व्यापक पुरुषके केश हैं ॥ ८ ॥ हे शौनक ! जितना यह व्यष्टि (साधारण) पुरुष लौकिक अङ्गोंसे अपनी सात विलस्तके प्रमाणका है उतना ही यह समष्टि (विराट् पुरुष) भी

पुरुषो यावत्या संस्थया मितः । तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥ ९ ॥ कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः । तत्प्रभा व्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥ १० ॥ स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् । वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूत्रं त्रिवृत्स्वरम् ॥ ११ ॥ बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले । मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयंकरम् ॥ १२ ॥ अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः । धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥ १३ ॥ ओजः सहो बलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् । अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥ १४ ॥ नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् । कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥ १५ ॥ इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यंदनम् । तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥ १६ ॥ मंडलं देवयजनं दीक्षासंस्कार आत्मनः । परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ॥ १७ ॥ भगवान्भगशब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् । धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ॥ १८ ॥ आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् । त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरु-

भूर्लोकादि अङ्गोंसे सात विलस्तका है ॥ ९ ॥ उन जन्मरहित व्यापक भगवान्ने, कौस्तुभमणिके बहानेसे शुद्ध जीव चैतन्य धारण करा है और अपने वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिन्हके स्थानमें उस शुद्ध चैतन्यरूप कौस्तुभकी व्यापक प्रभा धारण करी है ॥ १० ॥ उन्होंने अनेक गुणयुक्त अपनी माया वनमाला नामसे धारण करी है, और वेदमय पीत वस्त्र तथा तीन मात्राका स्वर (ॐकार) ही यज्ञोपवीत धारण करा है ॥ ११ ॥ उन देवने, सांख्य और योग ही दो मकराकार कुण्डल और ब्रह्मलोक ही सब लोकोंको अभय देने वाला मुकुट धारण करा है ॥ १२ ॥ वह जिस के ऊपर आधार बना कर बैठे हैं और जिसको प्रधानरूप अनन्त-(शेष) नामक आसन कहते हैं उस धर्म ज्ञान-वैराग्य आदि शक्तियोंसे युक्त कमलको इसलोकमें सत्वगुण कहते हैं ॥ १३ ॥ उन्होंने ओज (मनकी शक्ति), सह (इन्द्रियोंकी शक्ति) और बल (देहकी शक्ति) इनसे युक्त मुख्य प्राणतत्व ही गदा, जलोंका तत्व शंख तेजका तत्व सुदर्शन चक्र, आकाशका तत्व ही श्यामवर्ण खड्ग, अन्धकाररूप ढाल, कालरूप शार्ङ्ग धनुष, और कर्ममय बाण रखनेका तर्कस यह धारण करे हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ इन भगवान्के-इन्द्रियें बाण हैं ऐसा कहते हैं, क्रियाशक्ति युक्त मन उनका रथ और पंचतन्मात्रा उस रथका बाहर दीखने वाला रूप है, और वह भगवान् मुद्राके द्वारा वरद अभय आदिरूप धारते हैं इस कारण तिस २ मुद्रासे तैसी २ भावना करके पूजन करे ॥ १६ ॥ देवपूजाका जो स्थान वह सूर्य मण्डल (वा अग्नि कुण्ड), गुरुकी दी हुई मन्त्र दीक्षा ही आत्माकी पूजा करनेकी योग्यता और भगवान्की पूजा करना ही अपना पापक्षय है अर्थात् उनकी पूजा अपने पापों का नाश होनेके निमित्त ही है ऐसी भावना करे ॥ १७ ॥ उन भगवान्ने, 'भग' शब्दके अर्थ जो ऐश्वर्य आदि छः गुण वही लीलाके निमित्त कमल धारण करा है, तैसे ही उन भगवान्ने, धर्मरूप चँवर और कीर्त्तिरूप पंखा धारण करा है ॥ १८ ॥ निर्भय वैकुण्ठ (कैवल्य) नामक तापहारी स्थान ही उन भगवान्का घर (व

वम् ॥ १९ ॥ अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः । विष्वक्सेनस्तंत्रमूर्तिः विदितः पार्षदाधिपः । नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥ २० ॥ वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् । अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते २१ स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः । अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥ २२ ॥ अंगोपांगायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् । बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ २३ ॥ द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च तयैतत् । सृजति हरति पातीत्याख्ययाऽनावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य । गोविंद गोपवनिताव्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् २५

छत्र) है, ऋक्-यजु-सामरूप तीन वेद ही उनका सुपर्ण (गरुड़) नामक वाहन है, वह गरुड़ उन यज्ञरूप पुरुषको उठा कर लेजाता है ॥ १९ ॥ 'आत्मस्वरूपसे चिद्रूपका अभेद होनेके कारण' भगवती (चिद्रूप) लक्ष्मी ही उन आत्मस्वरूप श्रीहरिकी अविचल शक्ति है, पंचरात्र आदि आगम रूप प्रसिद्ध विष्वक्सेन इनके पार्षदोंका अधिपति (मुख्य पार्षद) है और अणिमादि सिद्धिरूप आठगुण श्रीहरिके द्वारपाल हैं ॥ २० ॥ हे शौनक ! वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध इन मूर्तियोंसे स्वयं भगवान् नारायण ही हुए हैं इस कारण चतुर्व्यूह-मूर्त्तिसे ही उन की उपासना करते हैं ॥ २१ ॥ वह भगवान् विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन चार वृत्तियों (अवस्थाओं) से जाने जाते हैं, बाहरी विषय, मन इन दोनोंके संस्कारसे युक्त अज्ञान और इन तीनोंका साक्षी ज्ञान यह वृत्तियोंकी उपाधि हैं अर्थात् जिस समय, नेत्र नासिका आदि इन्द्रियोंसे बाहरी विषय समझनेमें आते हैं वह जाग्रत् अवस्था है, उस हीमें विश्व है, जिस समय केवल मनको ही कल्पित विषय भासते हैं, वह स्वप्नावस्था है, उसमें ही तैजस, जब बाहरी विषय और मन इन दोनोंके संस्कारसे युक्त अज्ञान होता है वही सुषुप्ति अवस्था है, तिसमें प्राज्ञ और इन तीनों अवस्थाओंका साक्षी होकर जो इनसे भिन्न है, उसको तुरीय समझो ॥ २२ ॥ वह भगवान् अंग, उपांग, आयुध और भूषणोंसे युक्त तथा वासुदेवादि चार मूर्त्तिवाला होकर भी विश्व तैजस आदि चारस्वरूपोंको धारण करता है और ऐसा होने पर भी उसको जीवपना नहीं है किन्तु वह भगवान् श्रीहरि उन सबोंके नियन्ता ही हैं॥२३॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ शौनकजी ! वह वेदोंके प्रवर्त्तक, स्वयं प्रकाश और अपने प्रभावसे परिपूर्ण भगवान्, अपनी मायासे इस जगत्को उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं उनका संकोचित ज्ञान न होने पर भी शास्त्रमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इन नामोंसे, मानो भिन्न २ हैं ऐसा वर्णन करा है परन्तु वास्तवमें वह भिन्न नहीं हैं इस कारण उनकी भक्ति करने वाले पुरुषोंको वह (अन्तःकरणमें) आत्मस्वरूपसे प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ हे अर्जुनके मित्र ! हे यादवश्रेष्ठ ! हे पृथ्वीद्रोही राजाओंके वंशको भस्म करने वाले ! हे अक्षीण पराक्रम ! हे श्रवण करनेपर मङ्गलकारक! जिनकी पवित्र कीर्ति गोपांगनाओंके समूह

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम्। तच्चित्तः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम्॥ २६॥ शौनक उवाच। शुको यदाह भगवान्विष्णुराताय शृण्वते। सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः॥ २७॥ तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः। ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः॥ २८॥ सूत उवाच। अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम्। निर्मितो लोकतन्त्रोयं लोकेषु परिवर्तते॥ २९॥ एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः। सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः॥ ३०॥ कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः। द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः॥ ३१॥ मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक्। लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः॥ ३२॥ धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने। पुलस्त्यस्तुंबुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी॥ ३३॥ अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुंजिकस्थली। नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम्॥ ३४॥

और नारदादि भक्तोंने गाई है ऐसे हे गोविन्द! हे श्रीकृष्ण! तुम हम दासोंकी रक्षा करो॥ २५॥ हे शौनक! जो पुरुष प्रातःकालके समय उठकर स्नानादि कर शुद्ध होकर और भगवान्की ओरको ध्यान लगा कर इस (वर्णन करे हुए) महापुरुषके लक्षणोंका जप करेगा उसको हृदयमें ब्रह्मका दर्शन होगा॥ २६॥ शौनकजी कहते हैं कि—हे सूतजी! श्रीशुकदेवजीने, पंचम स्कन्धमें, राजा परीक्षित्के सुनते समय बनसे सूर्यके 'ऋषि, गंधर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवताओंका' सात २ का गण प्रतिमासमें बदलता है ऐसा जो कहा था॥ २७॥ उनके तिन २ अधिपतियों (सूर्योंके नामों) से युक्त उनके नाम और कर्म हमसे कहो, क्योंकि—हम उन सूर्यात्मा श्रीहरिके व्यूहको सुननेकी इच्छा करते हैं॥२८॥ हे शौनक! सब देहधारियोंके प्राणमात्रके आत्मा विष्णुभगवान्की अनादि माया करके रचा हुआ और लोकोंके व्यवहारको प्रवृत्त करने वाला यह सूर्य, सब लोकोंमें फिरता है॥ २९॥ जो सब लोकोंके आत्मा और सृष्टिको उत्पन्न करने वाले श्रीहरि वही एक सूर्य हैं, वह सूर्य सकल वेदविहित कर्मोंका मूल हैं और कितने ही ऋषि कहते हैं कि—उन वेदविहित कर्मोंकी उपाधिसे ही अनेक प्रकारके हैं३० हे शौनक! वह भगवान् श्रीहरि मायाके द्वारा प्रातःकाल आदि काल, ऊँचा नीचा इकसार आदि देश, अनुष्ठान, ब्राह्मण आदि कर्ता (यजमान) स्रुक आदि साधन, यज्ञ आदि क्रिया, वेदमंत्र, व्रीहि आदि द्रव्य और स्वर्ग आदि फल इन भेदोंसे नौ प्रकारके हैं ऐसा वर्णन करा है३१वह कालरूप धारण करनेवाले भगवान् सूर्य, लोक व्यवहार चलानेके निमित्त भिन्न २ बारह गणोंको (प्रत्येक महीनेमें के एक २ सप्तक गणको) साथ लेकर चैत्रादि बारह महीनोंमें घूमते हैं॥ ३२॥ हे शौनक! धातानामक सूर्य, पुलस्त्यनामक ऋषि, तुम्बुरु गन्धर्व, कृतस्थली नामक अप्सरा, वासुकि नाग, रथकृत् यक्ष और हेति राक्षस यह अपने २ कर्म करके चैत्रमासको बिताते हैं॥ ३३॥ अर्यमा सूर्य, पुलह ऋषि, नारद गन्धर्व, पुंजिकस्थली अप्सरा, कच्छनीर नाग, अथौजा यक्ष और प्रहेति राक्षस यह

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः । रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ॥ ३५ ॥ वसिष्ठो वरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः । शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ॥ ३६ ॥ इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिराः । प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥ ३७ ॥ विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः । अनुम्लोचा शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ३८ ॥ पूषा धनञ्जयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा । घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥ ३९ ॥ ऋतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा । विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥ ४० ॥ अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी । विद्युच्छत्रुर्महाशंखः सहोमासं नयन्त्यमी ॥ ४१ ॥ भगस्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पंचमः । कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ॥ ४२ ॥ त्वष्टा ऋचीकतनयः कंबलश्च तिलोत्तमा । ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः ॥ ४३ ॥ विष्णुरश्वतरो रंभा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् । विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ॥ ४४ ॥ एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः । स्मरतां सन्ध्ययोर्नॄणां हरन्त्यंहो दिने दिने ॥ ४५ ॥ द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै । चरन्समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ॥ ४६ ॥ सामर्ग्य-

---

वैशाखमासको विताते हैं ॥ ३४ ॥ मित्रनामक सूर्य, अत्रिऋषि, हाहा गन्धर्व, मेनका अप्सरा, तक्षक नाग, रथस्वन यक्ष और पौरुषेय राक्षस यह ज्येष्ठमासको व्यतीत करते हैं ॥ ३५ ॥ वरुण सूर्य, वसिष्ठ ऋषि, हूहू गन्धर्व, रंभा अप्सरा, शुक्र नाग, सहजन्य यक्ष और चित्रस्वन राक्षस यह आषाढ़ मासको विताते हैं ॥ ३६ ॥ इन्द्र सूर्य, अङ्गिरा ऋषि, विश्वावसु गंधर्व, प्रम्लोचा अप्सरा, एलपत्र नाग, श्रोता यक्ष और वर्य राक्षस यह श्रावणमासको विताते हैं ॥ ३७ ॥ विवस्वान् सूर्य, भृगु ऋषि, उग्रसेन गन्धर्व, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल नाग, आसारण यक्ष और व्याघ्र राक्षस यह भाद्रमासको विताते हैं ॥ ३८ ॥ पूषा सूर्य, गौतम ऋषि, सुषेण गन्धर्व, घृताची अप्सरा, धनञ्जय नाग, सुरुचि यक्ष और वात राक्षस यह माघमासको विताते हैं ॥ ३९ ॥ पर्जन्य सूर्य, भरद्वाज ऋषि, विश्व गन्धर्व, सेनजित् अप्सरा, ऐरावत नाग, ऋतु यक्ष और वर्चा राक्षस यह फाल्गुन मासको विताते हैं ॥ ४० ॥ अंशु सूर्य, कश्यप ऋषि, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, महाशंख नाग, तार्क्ष्य यक्ष और विद्युच्छत्रु राक्षस यह मार्गशीर्ष मासको विताते हैं ॥ ४१ ॥ भग सूर्य, आयुर् ऋषि, अरिष्टनेमि गन्धर्व, पूर्वचित्ति अप्सरा, कर्कोटक नाग, ऊर्ण यक्ष और स्फूर्ज राक्षस यह पौष मासको विताते हैं ॥ ४२ ॥ त्वष्टा सूर्य, जमदग्नि ऋषि धृतराष्ट्र गंधर्व तिलोत्तमा अप्सरा कम्बल नाग शतजित् यक्ष और ब्रह्मापेत राक्षस यह आश्विनमासके पालक हैं ॥ ४३ ॥ विष्णु सूर्य, विश्वामित्र ऋषि, सूर्यवर्चा गन्धर्व, रम्भा अप्सरा, अश्वतर नाग, सत्यजित यक्ष और मखापेत राक्षस यह कार्त्तिक मासको विताते हैं ॥ ४४ ॥ हे शौनक ! यह विष्णुमूर्त्ति भगवान् सूर्यकी विभूतियें, प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्याकालमें स्मरण करनेवाले पुरुषके पातकोंको हरती हैं ४५ हे शौनक ! सूर्य अपने गंधर्व आदि छहोंके साथ वारहों मासमें चारों ओर विचरते

जुभिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम्। गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः॥४७ उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः। नोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः॥ ४८॥ बालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः। पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम्॥ ४९॥ एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः। कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः॥ ५०॥

इति श्रीमद्भागवते म० द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नाम एकादशोऽध्यायः॥११

॥ सूत उवाच। नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान्॥ १॥ एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम्। भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम्॥ २॥ अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः। नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्वतां पतिः॥ ३॥ अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम्। ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम्॥ ४॥ भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम्। पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च॥ ५॥ प्रायोपवेशो

हुए इस प्राणीको इस लोक और परलोकमें उत्तमबुद्धि देते हैं॥ ४६॥ ऋषि, सूर्य के प्रकाशक, ऋग्वेद, यजुर्वेद और और सामवेदके मन्त्रोंसे इन सूर्यकी स्तुति करते हैं; गंधर्व इनके गुणोंका गान करते हैं, अप्सरा इनके आगे नृत्य करती हैं॥ ४७॥ नाग इनके रथको बाँधते हैं, यक्ष रथको जोतकर ठीक करते हैं और बलवान् राक्षस इनके रथको पीछेसे ढकेलते हैं४८और पवित्रसाठ सहस्र बालखिल्य नामक महर्षि सूर्यकी ओरको मुख करके उनके आगे स्वयं पीछेको चलते हुए उन विभुकी स्तुतिरूप मन्त्रोंसे स्तुति करते हैं, यह ऋषि ही प्रतिमासमें न बदल कर वहाँके वहाँ रहते हैं॥ ४९॥ हे शौनक! इस प्रकार आद्यन्तरहित और अजन्मा सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि, हरएक कल्पमें अपने ही स्वरूपका विभाग करके लोकोंकी रक्षा करते हैं॥५०

इति श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धमें एकादश अध्याय समाप्त॥ ११॥ छ

सूतजी कहते हैं कि—हरि भक्तके लक्षण रूप परमधर्मको नमस्कार हो और उन जगत्कर्ता श्रीकृष्णजीको (अथवा) व्यासगुरुको नमस्कार हो अब मैं ब्राह्मणोंको नमस्कार करके 'इस पुराणमें कहे हुए' अनादिधर्मरूप सकल विषय कहता हूँ॥ १॥ हे ब्राह्मणो! तुमने जिस विषयका मुझसे प्रश्न करा था वह मनुष्योंके पुरुषत्वको 'श्रवण आदि करके सेवन करनेके' योग्य यह श्रीविष्णुभगवान्का उत्तम चरित्ररूप उत्तर मैंने तुमसे कहा॥ २॥ इस श्रीमद्भागवतमें सर्वोके पापोंको दूर करनेवाले और सब संकटोंको दूर करके भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, सब इन्द्रियोंके प्रवर्त्तक भगवान् नारायणका ही प्रत्यक्ष वर्णन करा है॥ ३॥ तैसे ही इसमें, जिनसे जगत्की उत्पत्ति होती है और जिनमें फिर लय होजाता है उन निर्गुण परब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होने पर्यन्त ज्ञान और उस ज्ञानको प्रकाशित करनेवाले साधन कहे हैं॥ ४॥ साध्य साधनरूप भक्तियोग और उससे होनेवाला वैराग्य यह मुख्यरूपसे कहे हैं, हे ब्राह्मणो! (प्रथम स्कन्धमें—) राजा परीक्षित्के जन्मादिका उपाख्यान और उसके प्रस्तावके निमित्त नारदजीका उपाख्यान कहा है॥ ५॥

राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः । शुकस्यैव च ब्रह्मर्षेः संवादश्च परीक्षितः ॥ ६ ॥ योगधारणयोत्क्रांतिः संवादो नारदाजयोः । अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ७ विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः । पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥ ८ ॥ ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये । ततो ब्रह्मांडसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ९ कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः । भुव उद्धरणेऽम्भोधौ हिरण्याक्षवधो यथा ॥१०॥ ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च । अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ॥ ११ ॥ शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा । संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ॥ १२ ॥ अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः । देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥ १३ ॥ नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् । ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ॥ १४ ॥ नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः । नाभेस्ततोऽनु चरितमृषभस्य भरतस्य च ॥ १५ ॥ ततो द्वीपसमुद्राद्रिवर्षनद्युपवर्णनम् । ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ॥ १६ ॥ दक्षजन्म प्रचे-

---

फिर ब्राह्मणके शापके कारण राजर्षि परीक्षितका प्रायोपवेश (अन्न जल त्यागकर मरण होने पर्यन्त ईश्वरस्मरण करते हुए बैठनेका नियम) वर्णन करा, तदनन्तर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ जो शुकदेवजी उनका और राजा परीक्षितका सम्वाद कहा है ६ (दूसरे स्कन्धमें-) योगधारणसे ऊर्ध्वलोककी गति, नारद और ब्रह्माजीका सम्वाद, अवतारोंका वर्णन और महत्तत्वादिके क्रम २ से प्रधानके कार्यभूत विराट्रूपकी उत्पत्ति कही है ॥ ७ ॥ (तृतीय स्कन्धमें) विदुर और उद्धवजीका सम्वाद, फिर विदुर और मैत्रेयका सम्वाद पुराणसंहिताओंके विषयमें प्रश्न प्रलयमें महापुरुषकी स्थिति (स्वस्थ रहना) ॥ ८ ॥ प्रकृतिसे होनेवाला गुणक्षोभ, महत्तत्व अहंकार और पञ्चमहाभूत इन सात विकृतियोंकी और विकारोंकी उत्पत्ति, तिनसे ब्रह्माण्ड कि-जिसमें विराट् पुरुष व्याप रहा है तिसकी उत्पत्ति कही है ९ तदनन्तर स्थूल सूक्ष्म कालका स्वरूप, कमलकी उत्पत्ति, पृथ्वीको समुद्रमेंसे ऊपरको निकालतेसमय हिरण्याक्षका वध जिस प्रकार हुआ वह वृत्तांत १० देवता, पशु, पक्षी मनुष्य आदि योनियोंकी उत्पत्ति, और रुद्रसृष्टि वर्णन करी तदनन्तर, जिस स्त्रीरूप आधेभागसे स्त्रियोंकी आदि प्रकृति उत्तम शतरूपा और पुरुषरूप आधे भागसे स्वायंभुव मनु हुए उन अर्धनारीनर (ब्रह्माजीकी) उत्पत्ति, कर्दम प्रजापतिकी उत्पत्ति तिनसे महात्मा भगवान् कपिल महामुनिका अवतार और उन बुद्धिमान् कपिल महामुनिके साथ देवहूतीका सम्वाद (चौथे-स्कन्धमें-) मरीचि आदि नौ ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, धर्मकी पत्नियोंका वंशविस्तार, दक्ष प्रजापतिके यज्ञका विध्वंस, ध्रुवजीका चरित्र, उनके पीछे राजा पृथुका चरित्र, प्राचीनबर्हि राजाका चरित्र और उनका नारदजीसे सम्वाद, यह कहे हैं फिर, हे ब्राह्मणो ! (पञ्चम स्कन्धमें-) प्रियव्रत राजाका चरित्र, तदनन्तर नाभि राजाका, तिसके पीछे ऋषभदेवका और तदनन्तर भरतजीका चरित्र कहा है ॥ ११-१५ ॥ फिर द्वीप, समुद्र, पर्वत, खण्ड और नदियोंका वर्णन ज्योतिश्चक्रकी स्थिति, पातालों और नरकोंकी स्थिति वर्णन करी है ॥१६॥

ततोऽभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः । यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ॥ १७ ॥ त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः । दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ १८ ॥ मन्वंतरानुचरितं गजेंद्रस्य विमोक्षणम् । मन्वंतरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ॥ १९ ॥ कौर्मं मात्स्यं नारसिंहं वामनं च जगत्पतेः । क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ॥ २० ॥ देवासुरं महायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् । इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥ २१ ॥ इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च । सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥ २२ ॥ सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः । खट्वांगस्य च मांधातुः सौभरेः सगरस्य च ॥२३॥ रामस्य कोसलेंद्रस्य चरितं किल्बिषापहम् । निमेरंगपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥२४॥ रामस्य भार्गवेंद्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः । ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च२५ दौष्यंतेर्भरतस्यापि शंतनोस्तत्सुतस्य च । ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः२६ यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः । वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले२७

(षष्ठ-स्कन्धमें-प्रचेतस् राजाओंसे दक्षकी उत्पत्ति, उनकी कन्याओंकी, उनसे देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु वृक्ष और पक्षी आदि योनियोंकी उत्पत्ति ॥ १७ ॥ और वृत्रासुरके जन्म मरणका वर्णन करा है हे ब्राह्मणो ! (सप्तम स्कन्धमें) दितिके हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दोनों पुत्रोंका मरण, दैत्योंके राजा महात्मा प्रह्लादजी का चरित्र और नृसिंहावतार (१)-इतने विषय वर्णन करे हैं-(अष्टम स्कंधमें-) मन्वन्तरोंका वर्णन, गजेन्द्रका मोक्ष, देवताओंको अमृत मिलनेके निमित्त जगत्पति भगवान्का करा हुआ क्षीर समुद्रका मंथन, कूर्मावतार, देवदैत्योंका बड़ाभारी युद्ध, विष्णुभगवान्के मन्वंतरोंमेंके अवतार, वामनावतार मत्स्यावतार और हयग्रीवादि अवतारोंका वर्णन करा है, (नवम स्कंधमें-)राजाओंके वंशोंका वर्णन, इक्ष्वाकु राजाका जन्म, उसका वंश, महात्मा सुद्युम्नका चरित्र-॥१८-२१॥इसमें ही इलाका उपाख्यान कहा है तदनन्तर ताराका उपाख्यान, सूर्य वंशका वर्णन, शशाद और नृग आदि राजाओंका वृत्तांत,-॥२२॥ सुकन्याका वृत्तान्त, राजा शर्यातिका चरित्र, बुद्धिमान् राजा ककुत्स्थका, राजा खट्वाङ्गका, मान्धाताका, सौभरि ऋषिका और राजा सगरका चरित्र ॥२३॥ कोशलेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीका पापनाशक चरित्र, राजा निमिका देहत्याग, जनकके वंशमेंके राजाओंकी उत्पत्ति,-भृगुकुलश्रेष्ठ परशुराम जीका करा हुआ पृथ्वीको क्षत्रियहीन करना रूप चरित्र, सोमवंशके प्रथम पुरुष राजा ऐलका चरित्र, राजा ययातिका चरित्र, नहुषका चरित्र,-॥ २५ ॥ दुष्यन्तके पुत्र (भरत) का, राजा शन्तनुका और उनके पुत्र (भीष्मजी)का चरित्र कहा है, फिर ययातिके बड़े पुत्र यदुका वंश कहा है ॥ २६ ॥ कि-जिस यदु वंशमें जगन्नियन्ता श्रीकृष्णभगवान् अवतीर्ण हुए, वह वसुदेवके घर जन्म धारकर गोकुलमें (नन्दजीके घर) बढ़े ॥ २७ ॥ (दशम स्कन्धमें) उन दैत्यद्वेषी श्रीकृष्णजीके

(१) मूलमें कहीं २ कोई विषय बिलकुल छूट गया है और कहीं किसी विषयका आगे पीछे होगया है सो वक्ताके भक्तिरसमें व्याकुल होनेसे हुआ ऐसा समझना ।

तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः । पूतनाऽसुपयः पानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥ २८ ॥ तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः । धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥ २९ ॥ गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः । दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥ ३० ॥ व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः । प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥ ३१ ॥ गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ । यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु ॥३२॥ शंखचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः । अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥३३॥ व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः । गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥ ३४ ॥ मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः । मथुरायां निवसता यदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥ ३५ ॥ कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः । जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः । घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥ ३६ ॥ आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् । रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥ ३७ ॥ हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् । प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥ ३८ ॥ चैद्यपौंड्रकशाल्वानां दंतवक्त्रस्य दुर्मतेः । शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः

अपार कर्म (चरित्र) कहे हैं, तिनमेंसे मुख्य मुख्य यह आगे कहता हूँ-पूतनाका प्राणों सहित दूध पीना, बालकपनमें ही गाड़ा उलट देना ॥ २८ ॥ तृणावर्त्त दैत्यका वध तथा बकासुर और वत्सासुरका वध, मित्र सहित धेनुकासुरका वध प्रलम्बासुरका वध,-॥ २९ ॥ चारों ओरसे फैलने वाले दावाग्निसे गोपोंकी रक्षा करना, कालिय सर्पका दमन, अजगरसे नन्दजीका छूटना,-॥ ३० ॥ जिसमें भगवान् श्रीकृष्णजी यमनियम आदि व्रतोंसे प्रसन्न हुए वह गोप कन्याओंका कात्यायनी व्रत करना, यज्ञ पत्नियोंको प्रसाद (अनुग्रह) और (उनके पति) ब्राह्मणोंको पश्चात्ताप प्राप्त होना, ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धन उठा कर धारना, फिर इन्द्र और कामधेनुकी करी हुई श्रीकृष्णजीकी पूजा और अभिषेक, शरद्ऋतुकी रात्रिमें गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा ॥ ३२ ॥ दुष्टबुद्धि शंखचूड़ दैत्यका वध, अरिष्टासुर और केशीका वध अक्रूरजीका गोकुलमें आना, पीछे बलराम कृष्णका मथुराको जाना,-॥ ३३ ॥ व्रजकी स्त्रियों (गोपियों) का विलाप, फिर श्रीकृष्ण बलरामका मथुराको देखना, कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक, चाणूर और कंसादिकोंका वध,॥ ३४ ॥ फिर सान्दीपनि नामक गुरुके मरे हुए पुत्रोंको लाकर देना, हे ब्राह्मणो ! फिर उद्धवजी और बलरामजीके साथ श्रीकृष्णजीने मथुरामें रह कर जो २ प्रिय करा वह, जरासन्धकी लाई हुई सेनाका अनेकों वार वध, कालयवनको मारना, द्वारकापुरीका बनाकर बसाना ३५।३६ युद्धमें शत्रुओंको जीत कर श्रीकृष्णजीका रुक्मिणीको हरना, स्वर्गमेंसे पारिजात वृक्ष और सुधर्मा सभाको लाना, ॥ ३७ ॥ 'ऊषाहरणके' युद्धमें महादेवजीको जंभाई उत्पन्न करना, बाणासुरकी भुजा काट डालना, प्राग्ज्योतिष नगरके स्वामी (भौमासुर) को मार कर (सोलह सहस्र एकसौ) राजकन्याओंका हरण करना,-॥ ३८ ॥ शिशुपाल, पौंड्रक (मिथ्या वासुदेव), शाल्व, दुर्मति और दन्तवक्त्रका वध, और

पञ्चजनादयः ॥ ३९ ॥ माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् । भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पांडवान् ॥४०॥ विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च । उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः॥४१॥यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः । ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥ ४२ ॥ युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः । चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥४३॥ देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः । शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा । महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥४४॥ इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः । लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥ ४५ ॥ पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् । हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥ ४६ ॥ संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् । प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥ ४७ ॥ मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ।

भी जो शम्बरासुर, द्विविद (वानर), पीठ, मुर, पञ्चजन (शंखासुर) आदि दैत्य थे उनका प्रभाव और वध, काशीको जलाना और पाण्डवोंको निमित्त करके उन के हाथसे भूमिका भार उतरवाना यह वर्णन करा है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ (एकादश स्कन्धमें) ब्राह्मणोंके शापको निमित्त करके अपने (यादवोंके) कुल का संहार करना, उद्धवजी और श्रीकृष्णजीका अद्भुत सम्वाद, कि-जिस संवादमें, सम्पूर्ण आत्मज्ञान और वर्णाश्रम धर्मोंका विशेष निर्णय कहा है, फिर अपनी योगशक्ति से श्रीकृष्णजीका मनुष्यपनेसे अन्तर्धान होना यह कहा है॥ ४१ ॥ ४२ ॥ (और द्वादश स्कन्धमें-) युगोंके लक्षण उनके अनुसार वृत्ति, कलियुगके मनुष्योंकी दुर्दशा, चार प्रकारका प्रलय, तैसे ही प्राकृतिक, नैमित्तिक और नित्य यह तीन प्रकारकी उत्पत्ति ॥ ४३ ॥ बुद्धिमान् राजर्षि परीक्षित्का देह त्यागना, श्रीव्यासजीका करा हुआ वेदोंकी शाखाओंका विस्तार मार्कण्डेय मुनिकी उत्तम कथा,'भगवान्के पूजन में' महापुरुषके अंग आदिकी कल्पना और जगदात्मा सूर्य नारायणका व्यूह यह विषय वर्णन करे हैं ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणों ! इस प्रकार तुमने इस विषयमें यह तथा और भी जो कुछ मुझसे बूझा था वह सब मैंने तुम्हें सुनाया, इसमें भगवान्ने लीला करनेके निमित्त अवतार धार कर जो २ कर्म करे, उनका प्रसङ्ग निरूपण करते समय वह सब कहे ॥ ४५ ॥ कोई भी मनुष्य, गिरते ठोकर खाते, छींकते तथा और किसी दुःखसे पीड़ित होते हुए परवश होनेपर भी यदि ऊँचे स्वरसे 'हरये नमः' ऐसे कहे तो वह सकल पापोंसे छूट जाता है ॥ ४६ ॥ जैसे सूर्य पर्वतके गुफाओंके अन्धकारका नाश करता है अथवा प्रचण्डपवन मेघोंको फाड़ कर लुप्त कर देता है तैसे ही अनन्त भगवान्का कीर्त्तन करने पर वह कीर्त्तन करना अथवा उसका प्रभाव सुनने पर वह 'कीर्त्तन करने वाले और सुनने वाले' पुरुषोंके हृदयमें प्रवेश करके उनके सकल दुखोंको धोडालता है ॥ ४७ ॥ जिन वाणियोंसे अधोक्षज भगवान्की कथा वर्णन नहीं करी जाती हैं,और जिनमें दुष्टपुरुषोंकी बातें हैं वह वाणी असत्य और व्यर्थ हैं, जिनमें भगवान्के गुणोंका प्राकट्य (वर्णन) है वही वचन

तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥ ४८ ॥ तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् । तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥ ४९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् । तद्ध्वांक्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥ ५० ॥ स वाग्विसर्गो जनताऽघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि । नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वंति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ५१ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् । कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ यशःश्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु । अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः । अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च । सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥५४॥ यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्म-

सत्य, वही मङ्गलकारक और वही पुण्यकारक हैं ॥ ४८ ॥ जिसमें पुण्यकीर्त्ति भगवान्का यश वर्णन करा जाता है वही वचन मनोहर, मधुर और क्षण २ में नवीन नवीनसा होता है, वही निरन्तर मनको आनन्द देने वाला है, और वही मनुष्यों के शोकरूप समुद्रको सुखाने वाला है ॥ ४९ ॥ जिसमें चित्रविचित्र पद हैं परन्तु जगत्को पवित्र करने वाला श्रीहरिका यश वर्णन नहीं करा है वह वचन, काककी समान अपवित्र विषयी पुरुषोंको ही प्रीतिपात्र होता है, ज्ञानी पुरुषोंके सेवन करने योग्य नहीं होता है, क्योंकि—जहाँ अच्युतभगवान्का वर्णन होता है तहाँ ही निर्मल साधु पुरुष रहते हैं॥५०॥ असंबद्ध अर्थात् सम्बन्ध रहित वा अपभ्रंश शब्दोंसे युक्त भी जिस ग्रन्थके प्रत्येक श्लोकमें अनन्त भगवान्के, उनके यशसे शोभित वाक्य हैं वह वाक्यप्रयोग (ग्रन्थ) जनसमूहके पापोंका नाश करने वाला है, क्योंकि—साधु पुरुष 'दूसरोंके उच्चारण करे हुए' उन ही भगवान्के नामोंको सुनते हैं, श्रोताओंके मिलनेपर उनको गाते हैं और श्रोता न मिलें तो आप ही गाते हैं॥५१॥ हे ब्राह्मणो! उपाधिको दूर करने वाला और ब्रह्मको प्रकाशित करनेवाला ज्ञान, यदि भगवद्भक्ति रहित होय तो कुछ भी शोभा नहीं देता है अर्थात् उससे साक्षात्कार नहीं होता है फिर अतिउत्तम कर्म हो और वह यदि परमेश्वरको अर्पण नहीं करा हो तो वह कैसे शोभा पावेगा ? अर्थात् कभी शोभित नहीं होगा, क्योंकि—वह कर्म साध्य करतेसमय और उसका फल प्राप्त होनेके समय भी दुःखका कारण होता है अर्थात् खटपट करके भी फल नहीं मिलता है ॥ ५२ ॥ और वर्ण, आश्रम, आचार, तप तथा शास्त्रमें परिश्रम करने पर उससे कीर्त्ति और लक्ष्मी ही प्राप्त होती है और श्रीहरिका गुणानुवाद तथा उसका श्रवण करने पर लक्ष्मीपति भगवान्के चरणारविंद का विस्मरण नहीं होता है ॥५३॥ श्रीकृष्णजीके पदारविन्दोंका अविस्मरण (स्मरण रहना) पापोंका नाश करता है, शान्ति उत्पन्न करता है और अन्तःकरणकी शुद्धि करके परमात्मामें भक्ति तथा विज्ञान वैराग्यसहित ज्ञान देता है ॥ ५४ ॥ हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! तुम अखण्ड भक्ति वाले होनेके कारण निःसन्देह बड़े पुण्यवान् हो, क्यों

भूतम् । नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावो भजताविवेश्य ॥ ५५ ॥ अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् । प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ॥ ५६ ॥ एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः । माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ॥ ५७ ॥ य एवं श्रावयेन्नित्यं यामं क्षणमनन्यधीः । श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ॥ ५८ ॥ द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् । पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ॥ ५९ ॥ पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् । उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ६० देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः । यच्छन्ति कामान् गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ॥ ६१ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोधीत्यानुविन्दते । मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ॥ ६२ ॥ पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः । प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् । वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्ध्येत पातकात् ॥ ६४ ॥ कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् । इह तु पुनर्भगवानशेष-

किन्तु, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, सबोंके उपास्य और जिनसे दूसरा देवता नहीं है ऐसे श्रीनारायणको अन्तःकरणमें दृढ़ताके साथ धारण करके उनका निरन्तर भजन करते हो॥५५॥ और पहिले (गङ्गातटपर) प्रायोपवेशन करके बैठे हुए राजा परीक्षित्की सभामें बड़े २ ऋषियोंके सुनते हुए महर्षि शुकदेवजीके मुखसे मैंने जो सुना था उस आत्मतत्त्वका तुमने मुझे स्मरण दिलाया ५६ इस कारण हे ब्राह्मणो ! जिनके अनेकों कर्म वर्णन करने योग्य हैं उन वासुदेवका यह सब पापनाशक माहात्म्य मैंने तुमसे कहा ५७ जो श्रद्धावान् पुरुष, दूसरे किसीमें ध्यान न रखकर नित्य नियमसे एक पहर वा एकक्षण भी इसप्रकार (तुम्हारी समान) सुनता है वह अथवा जो दूसरेको सुनाता है वह पुरुष, स्नानादि करके केवळ शरीरको ही पवित्र नहीं करता है किन्तु साक्षात् अपने आत्माको भी पवित्र करता है ५८ जो एकादशीके दिन वा द्वादशीके दिन इसको सुनता है उसकी आयु बढ़ती है, जो निराहार रहकर ध्यानके साथ पढ़ता है वह अत्यन्त पापरहित होता है ५९ जो पुष्करमें मथुरामें, वा द्वारकामें निराहार रह कर इन्द्रियोंको वशमें करके इस संहिताका पाठ करता है वह संसार भयसे छूट जाता है६० इसका कीर्त्तन करनेपर देवता मुनि, सिद्ध पितर, मनु और राजे 'पुराणके' श्रोताओंको और वक्ताओंको इच्छित मनोरथ देतेहैं ६१ ब्राह्मणको, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके पढ़नेसे क्रम करके मधुकुल्या (घृतकी नदी वा कुण्ड), घृतकुल्या और पयःकुल्याका जो फल प्राप्त होता है वह फल इस संहिताका पाठ करनेवाले पुरुषको मिलता है६२और हे द्विजो ! जो पुरुष जितेंद्रिय होता हुआ इस पुराणकी संहिताको पढ़ेगा वह, भगवान्ने जो कहा है तिस परमपदको प्राप्त होयगा ॥ ६३ ॥ इस पुराण संहिताको पढ़ कर ब्राह्मण विद्याको, राजा समुद्र तट पर्यन्त पृथ्वीके राज्यको, वैश्य कुवेरकी समान सम्पत्तिको पावेगा और शूद्र पातकोंसे शुद्ध होयगा ॥ ६४ ॥ अन्य शास्त्रोंमें कलियुगके अनेकों दोषोंको दूर